શ્રીયદ્ રાજ્યંદ્ર પ્રણીત

mien Chief 2003m

વિવેચન ભાગ-૩

પુશ્યથી રાકેશભાઈ ઝવેરી

શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પ્રણીત

आ। लाशिष्टि रै।। रेल

વિવેચન ભાગ-૩



પૂજ્યશ્રી રાકેશભાઈ ઝવેરી

પ્રકાશક :

શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર આશ્રમ ધરમપુર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર આધ્યાત્મિક સત્સંગ સાધના કેન્દ્ર સંચાલિત) ધરમપુર-૩૯૬૦૫૦ જીલ્લો વલસાડ, ગુજરાત

ચૈત્ર સુદ ૧૩, મહાવીરજયંતી વિ.સં. ૨૦૫૭ ૬-૪-૨૦૦૧

પ્રથમ આવૃત્તિ : પ્રત ૩૦૦૦ પડતર કિંમત ચાર ભાગના રૂ.૯૦૦/-વેચાણ કિંમત ચાર ભાગના રૂ.૩૦૦/-

મુદ્રક : રાઈટ-પ્રીન્ટ-પેક મુંબઈ-૪૦૦૦૧૩

પ્રાપ્તિ સ્થાન : શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર આશ્રમ ઘરમપુર ધરમપુર-૩૯૬૦૫૦ જીલ્લો વલસાડ, ગુજરાત ટે. નં. (૦૨૬૩૩) ૪૨૯૬૯

શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર આધ્યાત્મિક સત્સંગ સાધના કેન્દ્ર ૧૦-બી, ઈસ્ટ વિંગ, બોમ્બે માર્કેટ એપાર્ટમેન્ટ, ૭૮-તારદેવ રોડ, મુંબઈ-૪૦૦૦૩૪ ટે. નં. (૦૨૨) ૪૯૧૧૩૫૨/૫૩

આત્મસિદ્ધિશાસ્ત્ર વિવેચન

અહો !

સર્વોત્કૃષ્ટ શાંતરસમય સન્માર્ગ—

અહો !

તે સર્વોત્કૃષ્ટ શાંતરસપ્રધાન

માર્ગના મૂળ સર્વજ્ઞદેવ:—

અહો !

તે સર્વોત્કૃષ્ટ શાંતરસ સુપ્રતીત કરાવ્યો

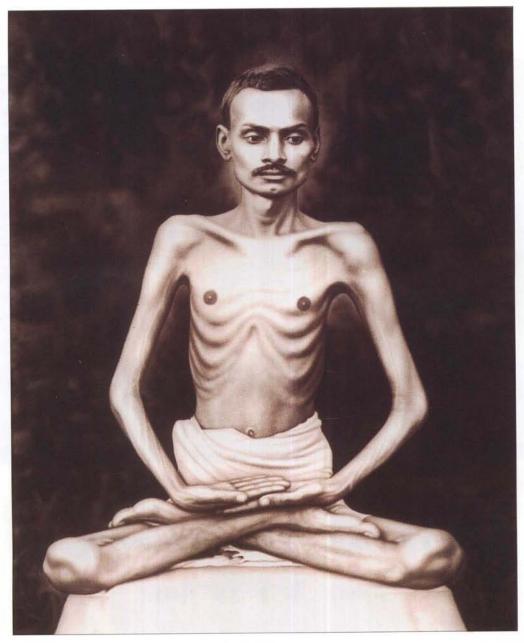
એવા

પરમ કૃપાળુ સદ્ગુરુદેવ— આ વિશ્વમાં સર્વકાળ

તમે

જયવંત વર્તા ! જયવંત વર્તા !!

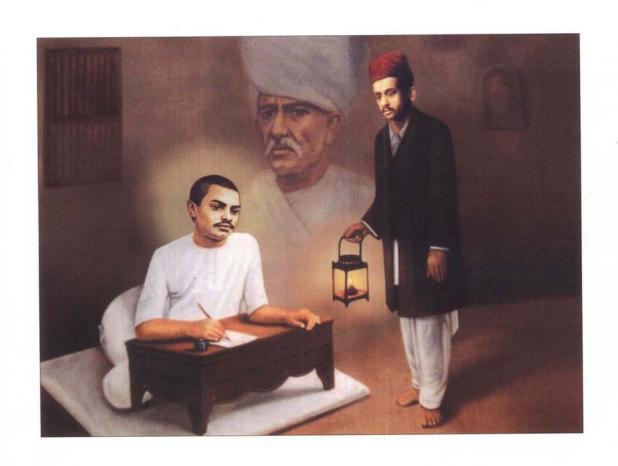
–શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર



શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર

જન્મ કારતક સુદ પૂનમ ૧૯૨૪

દેહવિલય ચૈત્ર વદ પાંચમ ૧૯૫૭



શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રનું મંગળ સર્જન આસો વદ ૧ સં. ૧૯૫૨ નડિયાદ. आ। स्मासिगिष्

(*******************

نود

અના રમ સિર્ફાર્સ.

के स्ट्रिप कामक्यादिना, परक्रारे दुः प्रकानतः । कामकार्यः ते प्टनक्षं - स्ट्रा बन्ध्युदे स्मापंतः ।

स्तिमान का द्वारामां, मारिकार्श कर कार्याके.

द्विर जिल्ला-का वर्ष बहुत, ब्रेडक्ट झानमां होएँ, भाग भावत मेर्द्धानों, इदिला दिस्के को ए उ

भारत क्रियामां कार्यता क्रांतक केर नहार. क्रांन्यामानियमिता, तेर क्रियान्य क्रांग क

कं भे भेरिश के इटसना, त्यांके बरहारी गरे हि, बन्ते भोर दब्देशमां, वेडम्ड झरान ने आंरहि ए

से वर जेमरिट वर्न्युक्त होर को वर अर अर कार्यम्बर . तेमक अरातम् शानम, आस्तिएसं लिधनः द

त्येक्टर विवास म विकासं, भाषा म ते में साम अक्षा का के साम अपने किया का किया का अपने किया किया का अपने किया का

去未去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去 ************** क्यां क्यां के के मोज्य छे. तहां 34.343 निषे न्यर् गुर्दे अत्रहाने, त्यामा १४ निष्पक्ष, यामे ते प्रमाधित, जिल्पद्रशे के क्ष कारम राज नामहार्शिता विसरे हामे अभेगर कार्यं बाल प्रमान्त्रत, कार् पर क्षाल मेल्य र अत्यक्ष काइग्रहे काम नहीं, एके दी विनद्धारी क्रोंका कर प्रेमा दिया हो र आरटमादियार ११ कार्ष्यु देनर दिए हिनेत्यता, क्षेत्रभागे न किन्य देख, או א בינו פני פעזוא אוו או אבי בי בים בים בינו anienie anienecni ore inglig finen. . ક્લાન્ય ક્ષેત્ર સવસ્થાન કે ખેરા માનારે, તેમાં અના પ્રાપ્ત કે મુધાલે . 13 अन्य पर नेत्र्रे देको हता, के अन्यार एन हार ते ते मिल्म विभावयां, उरो भगांतरत्याल रक देरे हे अब इन्य छंडतरे, एको अवश्वी मेरिड, पारमा क्रोप कार्न ए छे. कार्मिं किन किर्देश. प्रत्यक्ष वर दुरुद्ध क्रिशिक, बन्ब छं ह ते बेरहरे, שחשת פענת בשושות. אונים מיאנור שונים

************************* ******** ********** रन्य रहेर, अत आध्यार तत्त्र, यन्ते राहारी तत्त. रामहित तेने लामिने, दार्ख अधी धर्मि १३ minites signer for sit analy कारां देवह्य दे देविधामां, अवस्य अमासे कार्य-क कार्म ३३ ७५ हैं शे. पर केमेर हे पण साना १३दे वहार छ देन वस प्रहा । विने में हे लागपान १८० को कर भारत दिनमेत्यां, लाक्षेत आ ब्रुविश्व. भूषा से दे को भागीकों, रामके हार राजारे. २० अभार्या के विक्रमेंगे, लाल लडे के डांड neintilen show us masonile. हिम अप्रदेश जय ते, रामके क्रीर दिक्षारे, रोध म तार्विक वने, काय और से निर्धा र. १2 on manage פולא אחנות הנח, מנאו **未去去去去去去去去去去** तेर भगार्थि कहिली, अर्था दुर्हेंदे निर्देश. nail of colecue कार्ट्य त्यारा पण दारम नारी, ते माने खरे रात्ये, macar โกษฐเปลท์กา, กิจริสิทา์ตาทหาย. 27 के किन देश अमाला में, देशम करेन देशाहि कि लि पहाँ न कामके विनयं. केंद्रि वह जिल्यु है. **2**~c

<u>************</u>	
अरिष्का कार गुर्व प्रतेशमां, व्यन्ते क्रिक्ट वि अरुष क्रिक्ट में क्रिक्ट क्रिक्ट स्टिक्ट स्ट्रिक्ट	
me be to see a see the see of the see	7 (7
देखर ए अराति व्यं अभागे, के अभाके अग्रामा	
माने मिनमत स्टिमो, क्यांग्रह भुक्ति किरानः	23
राष्ट्र र सर्वेष न स्तिये र नहीं दार कालिय	1 3 3
अहे नहीं प्रभार्थने, विद्या क्षीत्रामान	26
عمود صد الم محدث ماديوك بدي ع ددوم ماكر	
رسور عرو حكم حد لاد عري . عردوم ع لا ي عديد	24
چار موجود بدرتم مردن عدد لوم دغاد معند.	
eren you sise of year which.	პ •
an en agencialni, from ning glow	31
प्टामे नार प्टरमार्थने, अपन आर्टिशरीमाल.	3
नारि ३ प्रांभ ए प्रश्लेताता, नारि आंग्रे देशे वेष	
राम्याप्टराउं म मध्यस्यता, को भवराधि देलारिकरे.	32
abu thi nathar, nath marson	
यस दे हे अरास्त्राहिना, अरास्त्र अपना द्वार	33
·	33
क्या स्माखिलहर्ताः	
અભારમ શાય રેમાં ઝે નિખછું, તે વ્યાસા છે કે હોય	
ताती हैय गुर्द हैत्या, आत्याहि गाँह क्रे	u. 3 m
બ ત્યે જેર વેર દ્રાકેટ્રે ક્યારિય એ, ગાણે પરંત્ર ઉપકાર	
त्रहा क्षेत्रं काद्वर पथा वस्तिका सरकारे.	3/8
	→ =

去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去 法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法法 अर्हे होते अहा द्वारामा, प्रमानिक परि प्रेरेको प्रभाषिने, ते ब्यप्रायसभाव. क्रोम विभाग कांतरे, शार्ध सप्तर्धिया द्राम कर्ड कारकार्था है. उदले नहि मन बेरेट 3.0 इकारेन इपनेतंत्ता, मान महिराकिका कार फेर आएमहोग, त्यां कालाधिकवारा ३८ દ્વા ન જોથી જેમાં નેરુ^{દ્}શ, અલ લા નાર જોતે, महितान धार्मिनकः भटेन अंत्रवेताः ३८० صعرفك حكوز مكاحلا وعجاب عو في عوق مكونه عوداهم ते को है अउ विकास बहार, तेमां अगरे अर्थ हारे. नमां अगरे देश दिन्या दिया, त्मां अगरे जिल्हान. के इसने श्लोप फोट देश, पाके पह निर्धात. उन एक के देव दिवस विद्या में हिर मार्ग देवमान दे गुर्दे हिल्ले रांबरहरी, लाल्डे पर्पट कार्ति नर आल्मा छ ते कित्म छे छे इत्ती विनाम हें कार्का करका मारी के मारी ए प्रांप बर्जा र 3 લ્ટ્ સ્થાન કુ સંશોધમાં, લ્ટ્દ્રાંન પ્લાનેષ્ zineman uznika, seni trilah me ---

ጷጜ፞፞፞ጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜጜ **洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪洪**洪 ્ વેંડા. વિજયવાલ 头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头 नथा नक्षा मायतो, नथा म्यादं ३५ ध्यकि ५(म अन्याय नर्स, ते कि न अवश्या कर कार्यत हें क आतमा अधिक प्रिके पर Meni og El hinai, nië og & silece. re याक कर आत्मर होने तो, क्लामे ते नहिं हेम ह कतित्म के ये हात थीं रह मह साहा कर भन भारे के नहिं आत्मा, मिटना मेरिश हिंबरी, को करां त वे विदेश तिहारे, काम अबहे व्याधारिक मट Ranifera. સાદ ગુરૂ ઉવાસ્ का स्था हे सर्टिमावनक, कात्मा हस देशमा प्ता ने काको (काका छे, अग्र १ तक्षिति कात. न्य מחוז באני לצנג אופח שו או כצ אואות. ** ** प्रा ते का कि कि के अभाने भेरात. ४० 2 x co & x (2 m), or on (2) & 34. अल्हिर अवल के नहें ते छे अवस्तिहर.

के तीरि अल्मोने, निकानिक विष्टिम देशान,

यां स है दिना विक्रिन् , प्रशा आत्मानेलान रेट

*********************** 头尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖尖 ન ભાષે લેલને, ભાષે ન ઇન્દિ પ્રાહ્ आरमान रानायो तेर प्रवन्ति लए। क्त के क्राब्द क्षा के विषये, क्षा के क्षिर क्षा के अग्रह देव क्षेत्रनेत्राके, क्ये क्षेत्रे एए देवहरे हे. स्ट, एट आही काल वं, तथा वेने भाग, oncenta nenale. The Be Be ting स्रमञ्जि इष देएमां, र-मूल हेए मान्यान्य, हिंद होते को आवमा, धी न आम विश्वत्यः क्ट मेराममा किम के, हेयल अगार दे-यत्माय, कार पटां या में नहीं , अही दूरण हुन कार्य. ancental gist st, antent tin ant, विदिश्यों दुर्गार हो, आस्टरण और आमार. (9,000, Garac आस्मानं आस्तित्वमा, आसे इहा अहारे, संकार तेना यत्य है, आंतर इंग्रेटिंग्यत्ये. ४८ देश भोगाक शियले, देश विभोगे ना दे। અમલ લસ્ક દેર (1) છે, દેરણે દેરણે પલટા છે, שה שת מת משת ענות ול . שתובחו הביר מינולו . בי אז או לנוז

<u>***********</u> નેવ દેમ્ડે 3 (ઉપાસ્ ***************** (him ai him & aid os 2 41 -184) चेत्रकां बत्रक्ति क्षेत्र होना अवनुष्य बद्भेष्ट ف مد عمع سعدي به عمر ودوحم دياء ع جراء. ते तथा करहा दिया, काम न हेमें कारत. के मंत्रिकार देखिये, ते ते अवुल्यस्य स्थेतः ઉपके निर्दे रामोशिक्षा आत्मा किन्मे अनेपहर काशा मेरतन अपके मेरतनक का मामे, को को का दुला व हो पने, होता हे हहा न मारे. ५ेर द्वेर संक्रेर गरिं मर्थ, केल ख्रम के प्रमे मात्रा म ते में द्रोगमां, त्या जिस्मे कार्य. होकित्य वस्त्रमेता, स्वर्धिकरी मंदे, पूर्व करण के रेन्डार ते, क्षेत्र शिट्येतः द्यारेष अग्रास्तर हट्ये जिल्लाको, एर्स्ट्रिके एटाराहे, Che che अट्रिय के क्ट्रांस क्रोंडे के क्ट्रीय अवस्था द्वान द्वालावतं, चे व्याला स्ट्यारे, बदकारी ते देशिए नारे, इस अनुकद निर्परि-५८ होत्रे होर बस्दुने, हें बलारे में नना दे عيم مدي مدي من على مدي مدي

************************ 3131 12. 64 Bai2 **决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决决** કુન્તર અલ ન દુર્મનો ક્રમજ કન્તી કર્મી; राहक रक्षकाल हो, इस अवनो मिर्म 31 आत्मा राहा आर्राश में, हरे अहल वंदि, अभिषा प्रवास मेरा. तेका अव अवंध. ७२ माडे महिर करियों, द्वी महेर व्यारे, علامون عمد يون عاملاً عام عاد عع 37 M. George रोंभ न भेतन भेरता, होता अरे तो इम् का वन्द्रकान नारि के निष्य, क्युक्ति दिन्ता दी मर्भः को बेरेत्व इव्छं नश्र, नश्र क्षां वरे इक्ट त्थि कारक र-यलायगढि, तेमक नार अविश्र. देवल हित कासंग कर, लासन को न दे में अवशंत्रा हे परमाधक, पहा निकलाने तेम. ७५ इत्तरिक्षत्र द्वार्षनारे, रिष्ट्र १३ में क्लाप, अभवा भेरा ने अहरे, रीम्परदेश प्रकाय. स्त्व के जिक लावमां, हकी आरे रेन्सलाय, य की मारि विकलानमां इक्ति अलाय.

₹;{৻	
શિબ્ધ ઉપાય.	
^{અંધ} કર્મ કેના કુંહો, પ્લા જોકના નાર્ટ સ્તે	ž Py
श्रे बरमने का उभी, ईपायरिलाम रहेक.	30
इंप्रदाता चीम्बर अल्डे कार्डेतायलं राक्षेत्रे	
अनेम रही रिक्स्यनलां, रिक्स्यपलांक व्यये.	60
والمحدع العاجد طها رهما معال الابهه عاج الريع	
पक्षी देवत्या देवता देवता, त्यारेष रेनीय गार्ड देवेर.	~1
રવમાં મેર જ ∙	
٩٦٤ عن كو و و د عو .	
का बड्डिंगिन इस्ट्रिंग, महेर सेत्र वेर.	•
अब का मन स्र्याः, अष्टा हरे न्डर्षः.	42
केर रहित रामके नता, कास (मारे हैल कारे;	
माम रेड्नारडक्ता इस्टिं, जारेनारएं क्यारे.	< 3
कार राह्न अपरेटर को आधिकताह	
दर्दित हर्द्या न रात्र में में में के न दी आही अहहर.	64
दूर्णहाता पित्रद्धत एवं, क्लेमां नथा कर्वर. दूर्ण स्थलारे पात्रिएमें, कारे क्लेसिन हुरे.	₹
ते ते क्योंक्स स्टिशियमा, वस्ताव न्द्रक्र वस्ताद	1
अध्य वात के शिक्य आ, मार मंदीय देश प	C &

**************** **રે** (કા. શિલ્સ્લિવાસ. ફ્ર-ત્તી ભારતા અલ હો, પહા તેના નાંધ મો ક્ષ, ब्रान्धे इाज कार्गत प्रशा बन्दिमान छे हरेष. ८३ श्वा दे हैं जिल को अरे देवाडी अधि मां में, अभी का हरे नहीं हरू है भी नहीं वर्ष में भी રેરમાર્પાળ. અદુગારે હવા ચન આ શુજાત શુજા કુમેપદ, ભાભાં સુર્યુળ ક્ષમાણ, भरि मेर दे नुकाश्व તેમ હિલ્ફાસ્તિ સાર્ફેળવા, ब्राटमेर इत्य अन्तर वे, इमे ब्रिकारिक कार्य वेर रेडलारेडल छेरतां, ६५० मेश स्थलाय ८० देशादिक अभेरिशमी, अमरतिरंदिक (कि. आहेर देशक्यत परे निक अवंत के प्रेर कोशा. ८१ रोभ इदाका मेर्देशक, नाह आदि के पि उपरे कुमेर इरण कननंतनां, शास्त्र छेक्षां करें આ યુવા માત દર્શન જાણાં, કૃત્તે ઉપાપે અને કે; लेमा भव स्वाक्ते हेमी, अन न क्रेंट विचंहे. हुना कालियां भारित के हुने। सेपमां भारित, अंगो निर्माप मा करें, घट्या केंद्र के होत्र. તેશ અને મ અલામે છે, મળે ન મોરી ઉપાય; अबद्दर काएमा गर्धो, शो छपशर व माम्ब

|**********

પાંચે ઉત્તરથી ધેરેં, રામાધાન રાલાંગ; નામળું મોદી ઉપામનો, ઉદ્દેમ ઉદ્દેમ રાદ્યામાં ૯૯

> ં વેર માર્પલ્ય -વેર્ગ્ફુગ્ડુફે ઉભાવન

पंथि कित्तरमा भर्ण, काल्माविष्टे भतीत्, भारते मेरिहो परिमा, २१८० महत् को रात एव

इर्भ-लास् अस्तान छे, मेर्डिकान किन्द्रस्तः अध्यात अस्तानरामः नारी सानभन्नारेः (८८

के के द्वावता कंदिनां, तेर कंदिनेत्वं है: ते द्वावता केदद्वार, अर्थन-वंद काल्टकंत. एट

कार किन्द्रका केरका, तक महिलो भेद,

क्यार द्वार क्षेत्रकाममें, रामितारि ते होते १०१

हार्य अनंत स्ट्डाइनरं, तेशरं मुख्येआहे. तेशां मुक्ति भोरिकिंग, एएति ते हुई पार्टः १०२ द्रिमोरिकिंभ लेट प्रे, ट्विन सावित्र गाम, एके क्टिंग बातवास्ता, अन्दुई हपान आहे. १०३

去去次去水水水水水水水水水水水水水水水水水水水水水水水水水水水水

፞ጜጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟጟ इमलंप क्लोपात्था, ४ के शमारि वेस. ***** अन्मरी अवकाष सर्वने, क्रीमां की संदेखर wish maceloapil, source The taket. זפוי אושר שחי אזינצאי שישא מצחו שוניב. अर् ५८ मां अर अरत ते, प्रक्रीं इस व्यव्यार ते पदना स्टब्सिंगता, भरेरेशमार्ग निर्देश * काति, वेसने कोटनांट, इस्ते भागिको होते, ₩ कर्म के अद्भार करें, को भां को र म होरे. १०० × **米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米** इक्टोर्न एए शांत्रा, मार मेहित कालियाय, लाये फेट आंतरही, ते डाप्टे किसार १०८ ते किसरास्त अधने, धाम स्वर्वे आर्थ, तो पाम रामहातने, क्लें अंतर होर्क. १०८० मतहरीत आग्नह तक, व्यक्ते सह्द्र्यहित् टारे क्युर्य नामग्रत ते, केमां त्येर ने पक्ष. ११० सर्के मि क र-सकासका, अवदावस्ति न्त्रतीन, स्टि वरे किल लायमं, एडमाये नामनित्रर स्टिमान कामशित वर्ष, टाओ मिश्मातकाकेर, हर्म कार्य कराइमनो, स्रावागाएडस्वाकः ११2 देवल जिन्दन्यादनं, कार्षं वर्ते सान, इंग्डिंगे इक्ष साल के, हिए छनं निर्वाधः ११३ ****************

દો દિ વર્લ જું રત્યક્ર પછ, ભ્યાનન ભાગાં માનાને तेभ विकाद अवादिनो, सान क्षतां दुर क्षेत्रे, रहक **去头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头** લુકે દેશદેશના તો, નાર કર્જા હ કર્મા गाँछ कोड़ता के तेसमी, अमेक हिममी मम. 278 क्रोक दिस्का मेरिके हे के मेरिक स्पर्टेर. अन्त हरीन बरान हुं, अत देश कार्य केन्द्रिए. 115 23 के प्युन्त अरेत के हरत, वन्त्यें करेरे ते बेर्प परित्र CAO इस्टिमे हेटलं. इर दिन्स्तर तो पाम. 273 निकारी रार्वे सामिकेर अरबी अत रेमिन चित्री मोरेनता क्रोभ कारी, नेनलक नेर माध्यामांके. 226 Bus onchen sulk. राहार्रेना एस्ट्रेशिश, आर्था अध्वीकान. נהסיע ב נח שאונו כוני, בע פיני שח מנים. זונר का केने (नेक वन्धविष्त), विवर्ष के तका देए, अल्ड अभ र अग्रिका है। में देशाती तरे स्ट्रेंप्ट. १२० و س مريد و ياما , الوسد و مركة ما الد कृति वही निक्तायमां, यो अहती काई की करांके रहा अभिवर किन्परियाम ने, किस मेर गराइप, इन्हों काउता तेर की. कि विदेश्य र परे १२२ मेंदेश इंदेंगे जिल्ह्यांस्ता, ते पामे ने पद, रेशाल देखी को क्षेप्रियां, काइएर मार्शिकारि, ११3 ₩ ************* *************

આહો! અહો!કા વર્યુટ્ટ કરિલાર્સક અલાર, આ પામર ધર બજ કેમી, અહો! અહો! ઉપકાર ૧૨૪

रेडं अलु ब्रेस्ट्रिंड भे त्रं, क्रात्माध्य क्षीरानः ते तो अलुक्ते क्यास्थिते, वन्ति बर्स्ट्रिश्ति. १३६

આ દેલાઇ આવન્યા, લન્દો માત્ર આધાર દાસ્ત્ર, દાસ્ત્ર કું દરસ છું. તેષ માત્ર જે દાશ. 225

१८२ च मा ११ तरकार कर्ण क्षेत्र क्षेत्र

र अर्थ इंडच्या असे के क्षेत्र इंड्ये ट्येट्स इंड्येड हैं। के

हिप्द शंहार

去去次去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去去

المعدك جدورا عازمهما عراقهم محدد مكر निश्रद्धे २१६० ५६१ मां, सामित इस्तं रेगेपे. १३१ र्भ निरुद्धे कार्राविष, कार मं नही हिटेला क्रोंडों देख्या र नाष्टि, क्रको साथ रहे त 132 गड़ भवना के इंदरना, ते नि सद्देव्या, त्मान नहीं निक है एनं, ते निक्दम नहीं देवते. 133 જ્યારાળ ક્યાના ધાઇકોના, લ-લેમાનમાં હોય, المروع على مع الموطولين بما ما ي ما و عاد الله عام ما रत्व अ प दे । दिन्दि राम, के रामके ने दिरे, २१६७६३ आसर किनारी, निमित्त इत्रिश्मांदे.१३६ अधारामकं नाम क्षा असे के के निमित्त, पामे नार्ट किर्निट्ट को, यह कार कि मां स्थित. २३५ मुक्तिश साल इक्षे अने, अंतर दश्री न मोट, ते पामव आला हैरे, भाज सामिनी करेथ.१३० દ્રીયા, શેલાં હિ, મામલા, શામા, માન્ય, ત્યારા, હૈરામે, होते कुष्ठ द्वार विषये, जारे वन दावे बर वाले. १३८ भोध काब द्वार हिये करें. अवस्ता हित्यक्षांत, ते इरहमें साम हिंगा, वर्डी इहिमें min १३८०

*

米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米米

¥¥¥¥¥¥¥¥¥¥¥¥¥¥¥¥¥¥

ጱ፟፟፟ጱ፟፟፟ጱ፟፟፟ጱ፟፠፟፠፞፠፠፠፠፠፠፠፠፠፠፠፠፠፠*ቚ* 头头尖头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头头 राइ प कात ते अवेदत, अध्या रूप अरेशमान, ते इंडिये सान्वद्येत, काङ्ग या या राजा रण रकामइ पांच विमारिने, छट्टे यून्स मेरे. પામ ર આળક પાંચ્યા. જોમાં ગહિશાં છે. हें ए छतां केन हशा, वर्ते हेयातात. તે જ્ઞાનનાં સરહામાં, હોલિંકન આગલ્યન નજર सारित किनि हिंगा अता, इसर राह संक्षे पट्दशन्यां क्षेप्रमां, काम्मित विद्धितेष्ट. ***********

્રિંગુંથમાં સમાવિષ્ટ વિષયો 💃

ખંડ – ૧ : ચંથપરિચય

પ્રકરણ - ૧ અંથસર્જન

પ્રકરણ - ૨ અંથનાં વિવેચન અને ભાષાંતર

ખંડ – ૨ : 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'ની પ્રત્યેક ગાથાની સવિસ્તર સમાલોચના

```
પ્રકરણ - ૧
         ઉપોદ્ધાત (ગાથા
                                              ૧- ૨૩)
         મતાર્થીલક્ષણ.....(ગાથા
                                             २४- ३३)
પ્રકરશ - ર
         આત્માર્થીલક્ષણ.....(ગાથા
પ્રકરણ - ૩
                                            38- 85)
         ષટ્પદનામકથન……..(ગાથા
પ્રકરણ - ૪
                                            83- 88)
         પ્રથમ પદ - 'આત્મા છે'.....(ગાથા
                                            ४५- ५८)
પ્રકરણ - પ
         દ્વિતીય પદ - 'આત્મા નિત્ય છે'.....(ગાથા
                                            ૫૯- ૭૦)
પ્રકરણ - ૬
         તૃતીય પદ - 'આત્મા કર્મનો કર્તા છે'.....(ગાથા
                                            99- 92)
પ્રકરણ - ૭
         ચતુર્થ પદ - 'આત્મા કર્મનો ભોક્તા છે'……. (ગાથા
                                            96- CE)
પ્રકરણ - ૮
         પંચમ પદ - 'મોક્ષ છે'.....(ગાથા
પ્રકરણ - ૯
                                            ८७- ৫৭)
         ષષ્ઠમ પદ - 'મોક્ષનો ઉપાય છે'.....(ગાથા
પ્રકરણ -૧૦
                                            ७२-११८)
         શિષ્યબોધબીજપ્રાપ્તિકથન.....(ગાથા ૧૧૯-૧૨૭)
પ્રકરણ -૧૧
પ્રકરણ -૧૨
         ઉપસંહાર.....(ગાથા ૧૨૮-૧૪૨)
```

ખંડ – ૩ : 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર' – એક મૂલ્યાંકન

પ્રકરણ - ૧ સાહિત્યિક દષ્ટિએ મૂલ્યાંકન પ્રકરણ - ૨ આધ્યાત્મિક દષ્ટિએ મૂલ્યાંકન

ખંડ – ૪ : પરિશિષ્ટ

પરિશિષ્ટ-૧ ષડ્દર્શનપરિચય પરિશિષ્ટ-૨ સંદર્ભગંથસૂચિ પરિશિષ્ટ-૩ વિષયસચિ

ભાગ-૧ ખંડ-૧ (પ્રકરણ ૧-૨), ખંડ-૨ (પ્રકરણ ૧-૩)

ભાગ-૨ ખંડ-૨ (પ્રકરણ ૪-૮)

ભાગ–૩ ખંડ-૨ (પ્રકરણ ૯-૧૧)

ભાગ–૪ ખંડ-૨ (પ્રકરણ ૧૨), ખંડ-૩ (પ્રકરણ ૧-૨), ખંડ-૪ (પરિશિષ્ટ ૧-૩)

(30)

્રું અનુક્રમણિકા ક્રા

ખંડ – ૨	ઃ 'શ્રી ચ	માત્યવિ	કેબ્રિ શાસ્ત્ર'ની પ્રત્યેક ગાથાની સવિસ્તર સમાલોચના
પ્રકરણ- ૯	પંચમ પ	.દ -	'મોક્ષ છે'૧
	ગાથા -	८७	કર્તા ભોક્તા જીવ હો
	ગાથા -	22	શુભ કરે ફળ ભોગવે ૨૫
	ગાથા -	८७	જેમ શુભાશુભ કર્મપદ ૩૫
	ગાથા -	୯୦	વીત્યો કાળ અનંત તે ૬૯
	ગાથા -	૯૧	દેહાદિક સંયોગનો૯૧
પ્રકરણ-૧૦	ષષ્ઠમ પદ	-د' ـ را -د	ોક્ષનો ઉપાય છે'૧૩૯
	ગાથા -	૯૨	હોય કદાપિ મોક્ષપદ૧૪૧
	ગાથા -	૯૩	અથવા મત દર્શન ઘણાં ૧૪૯
	ગાથા -	८४	કઈ જાતિમાં મોક્ષ છે૧૫૯
	ગાથા -	૯૫	તેથી એમ જણાય છે ૧૭૭
	ગાથા -	<u>८</u> ६	પાંચે ઉત્તરથી થયું ૧૮૯
	ગાથા -	୯૭	પાંચે ઉત્તરની થઈ ૧૯૯
	ગાથા -	66	કર્મભાવ અજ્ઞાન છેર૧૧
	ગાથા -	૯૯	જે જે કારણ બંધનાં૨૩૩
	ગાથા -	900	રાગ, દ્વેષ, અજ્ઞાન એ ૨૫૯
	ગાથા -	૧૦૧	આત્મા સત્ ચૈતન્યમય ૨૮૧
	ગાથા -	૧૦૨	કર્મ અનંત પ્રકારનાં 303
	ગાથા -	१०३	કર્મ મોહનીય ભેદ બે ૩૨૩
	ગાથા -	१०४	કર્મબંધ ક્રોધાદિથી ૩૪૫
	ગાથા -	૧૦૫	છોડી મત દર્શન તણો
	ગાથા -	१०६	ષટ્પદનાં ષટ્પ્રશ્ન તેં ૩૮૬
	ગાથા -	909	જાતિ, વેષનો ભેદ નહિ ૩૯૯
	ગાથા -	१०८	કષાયની ઉપશાંતતા ૪૨૧
	ગાથા -	૧૦૯	તે જિજ્ઞાસુ જીવને ૪૩૯
	ગાથા -	990	મત દર્શન આગ્રહ તજી ૪૫૯
	ગાથા -	૧૧૧	વર્તે નિજસ્વભાવનો ૪૮૩
	ગાથા -	૧૧૨	વર્ધમાન સમકિત થઈપ૦૧

				((૩૧)
	ગાથા	-	११३	કેવળ નિજસ્વભાવનું	૫૧૯
	ગાથા	-	११४	કોટિ વર્ષનું સ્વપ્ન પણ	૫૩૯
				છૂટે દેહાધ્યાસ તો ા	
	ગાથા	-	૧૧૬	એ જ ધર્મથી મોક્ષ છે	૫૭૭
	ગાથા	-	૧૧૭	શુદ્ધ બુદ્ધ ચૈતન્યઘન	६०१
	ગાથા	-	११८	નિશ્ચય સર્વે જ્ઞાનીનો	६२३
પ્રકરણ-૧૧				પ્રાપ્તિકથન'	
	ગાથા	-	११५	સદ્ગુરુના ઉપદેશથી	६३७
	ગાથા	-	૧૨૦	ભાસ્યું નિજસ્વરૂપ તે	૬૫૫
	ગાથા	-	૧૨૧	કર્તા ભોક્તા કર્મનો	६७१
	ગાથા	-	૧૨૨	અથવા નિજપરિશામ જે	६८७
	ગાથા	-	૧૨૩	મોક્ષ કહ્યો નિજશુદ્ધતા	७०३
				અહો! અહો! શ્રી સદ્ગુરુ હ	
				શું પ્રભુચરણ કને ધરું લ	
				આ દેહાદિ આજથી	
	ગાથા	-	१२७	ષટ્ સ્થાનક સમજાવીને	૭૬૫

ખંડ - ૨

प्रકरश - ७

પંચમ પદ - 'મોક્ષ છે'

(ગાથા ૮૭ - ૯૧)

इन्ति लोइता अद हो, पहा तेने नारे मेरेक्ष, यान्यरे इाज अनंत पहा, यन्त्रमान छे रोय શ્રીગુરુના પવિત્ર સત્સંગ દ્વારા શિષ્યના સંશયો ટળતા જાય છે અને સમ્યગ્જ્ઞાનનો ઉદય થતો જાય છે. શ્રીગુરુએ કરેલા સમર્થ સમાધાનથી શિષ્યને આત્માના કર્મફળભોકતૃત્વ સંબંધી સર્વ શંકાઓનું સાંગોપાંગ નિરાકરણ થયું અને 'આત્મા કર્મફળનો ભોક્તા છે' એવા સમ્યક્ત્વના ચોથા સ્થાનકની તેને દઢ પ્રતીતિ થઈ. હવે સમ્યગ્દર્શનના નિવાસનાં સર્વોત્કૃષ્ટ સ્થાનકરૂપ છ પદોમાંનું પાંચમું પદ - 'મોક્ષ છે' એ વિષે શિષ્ય પોતાની મૂંઝવણ વ્યક્ત કરે છે.

અત્યાર સુધીમાં શ્રીગુરુએ સચોટ ન્યાય તથા દેષ્ટાંત વડે દર્શાવ્યું કે આત્મા છે, તે નિત્ય છે અને તે કર્મ બાંધે છે તથા તેનાં ફળ ભોગવે છે. આત્માના અસ્તિત્વ, નિત્યત્વ, કર્મકર્તૃત્વ અને કર્મફળભોક્તૃત્વ સંબંધીના યુક્તિયુક્ત પ્રતિપાદન દ્વારા શિષ્યની સર્વ મૂંઝવણ ટળતી ગઈ અને તેને સમ્યક્ નિર્ધાર થતો ગયો. શ્રીગુરુનાં વચનામૃતનું જિજ્ઞાસાપૂર્વક શ્રવણ કરીને, અંતરમાં તે અંગે વિચારણા કરતાં શિષ્યને તેનું યથાર્થપણું લક્ષમાં આવતું ગયું અને તે મુક્ત મનથી તેનો સ્વીકાર પણ કરતો ગયો.

જેમ જેમ શિષ્ય શ્રીગુરુનાં વચનામૃત વાગોળતો જાય છે, તેમ તેમ તેની વિવેક-શક્તિ વધતી જાય છે અને પરિણામે તેને તત્ત્વનાં ગૂઢ રહસ્યો સમજાતાં જાય છે. વિચારણા આગળ વધતાં શિષ્યના અંતરમાં ફરી એક નવીન શંકાનો ઉદ્દ્ભવ થાય છે. સુવિચારશ્રેણી ઉપર આરૂઢ થતાં શિષ્યને કર્મબંધનથી મુક્ત થવારૂપ મોક્ષ વિષે શંકા જાગે છે. જેવી રીતે જગત અનાદિ-અનંત છે, તેવી જ રીતે શું આત્મા અને કર્મનો સંબંધ પણ અનાદિ-અનંત નથી? કર્મ કરવાં અને તેનાં ફળ ભોગવવાં એવો વ્યવહાર અનાદિ કાળથી ચાલતો આવ્યો છે અને તે અનંત કાળ સુધી ચાલતો રહેશે એમ તેને ભાસે છે. આત્મા કર્મબંધનથી સર્વથા છૂટીને મોક્ષપદ પામી શકે છે એ તથ્ય શિષ્ય નિ:શંકપણે સ્વીકારી શકતો નથી. તે પોતાની શંકાઓ શ્રીગુરુ સમક્ષ રજૂ કરે છે અને સમાધાન માટે શ્રીગુરુને પ્રાર્થના કરે છે.

મોક્ષયદની સિદ્ધિ માટે શ્રીમદે પાંચ ગાથાઓ(૮૭-૯૧)ની રચના કરી છે. તેમાં પ્રથમ બે ગાથાઓ(૮૭-૮૮)માં વિનીત શિષ્ય મોક્ષયદરૂપ પાંચમા પદ વિષે પોતાની શંકાઓ રજૂ કરે છે. અહીં શિષ્ય 'આત્માનો મોક્ષ સંભવતો નથી' એમ જણાવવા માટે જે દલીલો કરે છે, તેમાં પૂર્વ મીમાંસા દર્શનની છાયા સ્પષ્ટપણે જણાય છે. શ્રીમદે મોક્ષયદને નહીં સ્વીકારનાર દર્શનની પ્રચલિત દલીલ તે દર્શનનું નામ લીધા વિના

શિષ્યની જિજ્ઞાસરૂપે મૂકી છે અને તે પછી શ્રીગુરુના મુખે તે દલીલોનું સમાધાન ત્રણ ગાથાઓ(૮૯-૯૧)માં આપ્યું છે. તેમાં શિષ્યની શંકાનું અયથાર્થપણું બતાવી, આત્માનું શ્રેય થાય તે માટે મોક્ષયદને સિદ્ધ કરી આપ્યું છે.

અન્ય મતના પ્રભાવથી ઉત્પન્ન થયેલી 'મોક્ષ છે' એ પાંચમા સ્થાનકની શંકાના સમર્થનમાં દલીલ રજૂ કરતાં પ્રથમ ગાથામાં શિષ્ય કહે છે –

ંકર્તા ભોક્તા જીવ હો, પણ તેનો નહિ મોક્ષ; વીત્યો કાળ અનંત પણ, વર્તમાન છે દોષ.' (૮૭)

અર્થ કર્તા ભોક્તા જીવ હો, પણ તેથી તેનો મોક્ષ થવા યોગ્ય નથી, કેમકે અનંત-કાળ થયો તોપણ કર્મ કરવારૂપી દોષ હજુ તેને વિષે વર્તમાન જ છે. (૮૭)

આ જીવ કર્મનો કર્તા તથા ભોક્તા છે એમ તો ઉપરની ચર્ચાથી શિષ્યને ભાવાર્થ બરાબર સમજાયું છે; પરંતુ આ આત્મા કર્મોનાં બંધનમાંથી મુક્ત થાય છે, આત્માને કર્મો લાગતાં સર્વથા બંધ થઈ જાય છે - આ વાત તેને યુક્તિસંગત લાગતી નથી, કારણ કે આજ સુધી અનંત કાળ વીતી ગયો છે, છતાં પણ કર્મબંધ થવામાં કારણભૂત એવા રાગ-દેષ આદિ જે દોષ આત્મામાં છે તે હજુ ટળ્યા નથી. તે દોષ હજી પણ વિદ્યમાન છે, તેથી શિષ્યને મોક્ષની સંભાવના જણાતી નથી.

શ્રીગુરુની અમૃતવાણી ઉપર અંતરથી વિચાર કરતાં શિષ્યને આત્માનું કર્તૃત્વ અને ભોક્તૃત્વ દઢપણે ભાસે છે, પરંતુ સકળ કર્મથી આત્માની મુક્તિ થઈ શકે એમ તેને લાગતું નથી. અનંત કાળથી કર્મ અહવાનું અને તેનાં ફળ ભોગવવાનું ચક્ર અવિરતપણે ચાલ્યા કરે છે. આજ પર્યંત એ ચક્ર અટક્યું નથી અને જીવનો મોક્ષ થયો નથી. જો જીવનો મોક્ષ થતો હોય તો અનંત કાળ વીતી ગયો છતાં હજુ સુધી તેનો મોક્ષ કેમ થયો નહીં? કર્મ કરવારૂપ દોષ અનાદિ કાળથી થતો આવ્યો છે અને વર્તમાનમાં પણ હજી કર્મ કરવારૂપ દોષ વર્તે છે; અને તેથી કર્મ કરવારૂપ દોષ સર્વથા ટળી શકે એમ નથી એવું શિષ્ય માનતો હોવાથી, જીવને કર્મબંધનથી નિવૃત્ત થવારૂપ મોક્ષ નથી એમ તેને ભાસે છે.

મોક્ષ એ ભારતીય દર્શનોનું કેન્દ્રબિંદુ છે. મોક્ષ શબ્દ 'મુંં ધાતુથી બનેલો છે. તેનો અર્થ 'સ્વતંત્ર થવું', 'છુટકારો મેળવવો' એવો થાય છે. યાર્વાક દર્શનને બાદ કરતાં સર્વ દર્શનોએ મોક્ષનો અર્થ જન્મ-મરણના ફેરામાંથી છુટકારો મેળવવો એવો કર્યો છે. વિવિધ દાર્શનિક અંથોમાં મોક્ષનો નિર્દેશ મુક્તિ, નિર્વાણ, સિદ્ધિ, સિદ્ધગતિપ્રાપ્તિ, અનંતની પ્રાપ્તિ, પરમાત્મલીનતા, બ્રહ્મ એક્ય, અહંશૂન્યતા ઇત્યાદિ વિવિધ નામોથી કર્યો છે. જુદા જુદા દર્શનોમાં મોક્ષ માટે મુક્તિ, નિર્વાણ, નિવૃત્તિ,

કૈવલ્ય, અપવર્ગ ઇત્યાદિ શબ્દો વપરાયેલા છે. આ સઘળા શબ્દોનો મુખ્ય અર્થ થાય છે - દુઃખનિવૃત્તિ.

મોક્ષ એ આર્યસંસ્કૃતિની અદ્ભુત અને અનુપમ શોધ છે. ભારતના મહર્ષિઓએ સાધના અને આરાધનાના ચરમબિંદુને મોક્ષના રૂપમાં અભિવ્યક્ત કરેલ છે. કઠોર તપશ્ચર્યા કર્યા પછી તેઓએ એમ કહ્યું છે કે ફરી ફરી જન્મ ધારણ કરવો એ જ સર્વ દુઃખનું કારણ છે. જન્મ પ્રાપ્ત કરવાનાં કારણોનો આત્યંતિક અભાવ થવો એ જ સર્વ સાધનાનું લક્ષ્ય છે. એ જ મોક્ષ છે. મોક્ષ, મુક્તિ, નિર્વાણ એ એવી સ્થિતિ છે કે જ્યાં પહોંચીને આત્માનો પુનર્જન્મ નષ્ટ થાય છે.

ભારતમાં મોક્ષચિંતનનો ઇતિહાસ પ્રાચીન છે. વસ્તુતઃ મોક્ષચિંતન ભારતીય જીવન-દર્શનનું અવિભાજ્ય અંગ છે. તેને જીવનનાં ઇતર અંગોથી અલગ કરી શકાય તેમ નથી. મોક્ષ એ જીવનનો અંત નહીં પણ જીવનો આત્યંતિક વિકાસ છે. મોક્ષ એ જીવનની શૂન્યાવસ્થા નથી, પણ જીવનની પૂર્ણતા છે. મોક્ષ એ આત્માના પરિપૂર્ણ વિકાસનું ધામ છે, માટે જીવનનું અંતિમ ધ્યેય નિર્વાણ જ છે.

મોક્ષપ્રાપ્તિ એ જ સર્વ આસ્તિક દર્શનોનું ધ્યેય છે. તે સર્વના મત અનુસાર જીવનનું પરમ ધ્યેય મોક્ષ મેળવવાનું હોવું જોઈએ. જીવનું લક્ષ્ય આત્માનું સાચું સ્વરૂપ જાણી મોહના બંધનમાંથી મુક્તિ મેળવવાનું હોવું જોઈએ. બધાં દર્શનો એક જ ઉદ્દેશ લઈને ચાલ્યાં છે કે જીવને કર્મથી મુક્ત, કઈ રીતે કરવો? આત્મા કઈ રીતે મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી શકે એ ભારતીય દર્શનની પ્રત્યેક શાખાનો પરમ ઉદ્દેશ છે. ભારતીય દર્શનની કોઈ પણ શાખાએ (ચાર્વાક દર્શનને બાદ કરતાં) આ સંસારનાં ભૌતિક સુખને પ્રાધાન્ય આપ્યું નથી. તેઓ માને છે કે ઇન્દ્રિયસુખ એ તો અલ્પજીવી છે, દુઃખદાયી છે; શાશ્વત સુખ એ જ સાચું સુખ છે. અર્થ અને કામ એ ભૌતિક સુખ છે અને તે ક્ષણભંગુર છે; જ્યારે ધર્મમાર્ગથી પ્રાપ્ત કરેલું મોક્ષનું સુખ અક્ષય અને અનંત છે.

એકમાત્ર ચાર્વાક દર્શન મોક્ષનો અસ્વીકાર કરે છે. આસ્તિક દર્શનોએ મોક્ષને એકઅવાજે માન્ય કર્યો છે. મોક્ષનો સિદ્ધાંત ચાર્વાક દર્શન સિવાયના સર્વ ભારતીય દર્શનકારોને માન્ય છે. ચાર્વાક દર્શનને છોડીને બધા જ ભારતીય દર્શનોમાં પ્રાયઃ અવિદ્યા અથવા અજ્ઞાનના સંપૂર્ણ નાશને મોક્ષ કહ્યો છે. ભારતીય દર્શનો પ્રમાણે જીવનો મોક્ષ તેના વાસ્તવિક સ્વરૂપ વિષેના જ્ઞાનમાં સમાવિષ્ટ છે. જીવનું સ્વતંત્ર અસ્તિત્વ માનનારાં બધાં ભારતીય દર્શનોએ બંધ-મોક્ષ માન્ય કર્યા જ છે.

જીવને માનનારાં બધાં દર્શનોના મત અનુસાર સામાન્ય રીતે બંધની વ્યાખ્યા છે - અનાત્મામાં આત્માભિમાન હોવું એ બંધ છે. આના ઉપરથી એમ ફ્લિત થાય છે

કે અનાત્મામાં રહેલું આત્માભિમાન ટળી જાય એ જ મોક્ષ છે. આ બાબતમાં બધા દાર્શનિકો એકમત છે, પણ મોક્ષનું સ્વરૂપ કેવું છે અથવા તો મુક્તનું સ્વરૂપ કેવું છે એ બાબતમાં એકવાક્યતા નથી. વળી, બીજી એક બાબતમાં પણ બધા દાર્શનિકો સમ્મત છે કે મોક્ષ અવસ્થા ઇન્દ્રિયગ્રાહ્ય નથી, વચનગોચર નથી, મનોગ્રાહ્ય નથી અને તર્કઆહ્ય પણ નથી. 'કઠોપનિષદ્'માં સ્પષ્ટ કહ્યું છે કે વાણીથી, મનથી કે ચક્ષુથી એની પ્રાપ્તિ થઈ શકે તેમ નથી; પણ સૂક્ષ્મ બુદ્ધિથી એ ગ્રાહ્ય છે.^૧ તપ અને ધ્યાનથી એકાએ થયેલ વિશુદ્ધ સત્ત્વ એનું એહણ કરી શકે છે.^૨ બૌદ્ધમત મજબ પણ શ્રી નાગસેનના કહેવા પ્રમાણે નિર્વાણ તો છે, પણ તેનું સ્વરૂપ, સંસ્થાન, ઉમર, પ્રમાણ એ બધું ઉપમાથી, કારણથી, હેતુથી અથવા તો નયથી બતાવી શકાય તેમ નથી; જેમ સમુદ્રમાં કેટલું પાણી છે તેનો ઉત્તર આપી શકવા કોઈ સમર્થ નથી; તે જ પ્રમાણે નિર્વાણ વિષે પણ ઉત્તર આપી શકાય તેમ નથી. લૌકિક દૃષ્ટિવાળા મનુષ્ય પાસે એને જાણવા માટે કોઈ સાધન નથી.^૩ એ આંખનો વિષય નથી, કાનનો વિષય નથી, નાકનો વિષય નથી, સ્પર્શનો વિષય નથી, જીભનો વિષય નથી; છતાં પણ નિર્વાણ છે જ નહીં એમ તો ન જ કહેવાય, કારણ કે તે વિશુદ્ધ મનોવિજ્ઞાનનો વિષય છે. એ મનોવિજ્ઞાન વિશુદ્ધ એટલા માટે છે કે તે નિરાવરણ છે.^૪ ઉપનિષદમાં જેને વિશુદ્ધ સત્ત્વ કહેવામાં આવ્યું છે એને જ શ્રી નાગસેને વિશુદ્ધ મનોવિજ્ઞાન કહ્યું છે. બહ્મદશાને ઉપનિષદના ઋષિઓ 'નેતિ નેતિ' કહીને વર્ણવે છે^પ અને એ જ વસ્તુ પૂર્વોક્ત પ્રકારે શ્રી નાગસેને પણ કહી છે. જે વસ્તુ માત્ર અનુભવી શકાય એવી હોય, તેનું વર્ણન કરી શકાય જ નહીં અને જો કરવામાં આવે તો તે અધૂરું જ રહે છે. એટલે શ્રેષ્ઠ માર્ગ એ છે કે નિર્વાણના સ્વરૂપનું યથાર્થ જ્ઞાન કરવું જ હોય તો તેનો સાક્ષાત્કાર સ્વયં કરવો જોઈએ. ભગવાન મહાવીરે પણ કહ્યું છે કે ત્યાં વાણીની પહોંચ નથી, તર્કની ગતિ નથી અને બુદ્ધિ પણ પહોંચી શકતી નથી. એ દીર્ઘ નથી, હ્રસ્વ નથી, ગોળ નથી, ત્રિકોણ નથી, કૃષ્ણ નથી, નીલ નથી, સ્ત્રી નથી, પુરુષ નથી. એને કોઈ ઉપમા આપી શકાય એમ છે જ નહીં, એ નિર્વચનીય છે. આ પ્રકારે ભગવાન મહાવીરે પણ 'નેતિ નેતિ'નો જ આશ્રય લઈને મુક્તાત્માને વર્ણવ્યો છે. એ મુક્તાત્માના સ્વરૂપનો યથાર્થ અનુભવ તો ત્યારે જ થઈ શકે કે જ્યારે જીવ સ્વયં મક્તિલાભને પ્રાપ્ત કરે.

૧- જુઓ : 'કઠોપનિષદ્', ૨-૬-૧૨, ૧-૩-૧૨

૨- જુઓ : 'મુંડકોયનિષદ્', ૩-૧-૮

૩- જુઓ : 'મિલિન્દ-પ્રશ્ન', ૪-૮-૬૬-૬૭, પૃ.૩૦૯

૪- જુઓ : 'મિલિન્દ-પ્રશ્ન', ૪-૭-૧૫, પૃ.૨૬૫

૫- જુઓ : 'બૃહદારણ્યક ઉપનિષદ્', ૪-૫-૧૫

૬- જુઓ ઃ 'શ્રી આચારાંગ સૂત્ર', સૂત્ર ૧૭૦

વસ્તુસ્થિતિ આવી હોવા છતાં પણ અવર્શનીયને વર્શવવાના પ્રયત્નો દાર્શનિકોએ કર્યા છે; અને તે વર્શનોમાં પરિભાષાઓનો ભેદ થઈ ગયો હોવા છતાં પણ તત્ત્વમાં કશો જ ભેદ પડ્યો નથી એવો અભિપ્રાય આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજીએ ઉચ્ચાર્યો છે. તેમણે જણાવ્યું છે કે સંસારાતીત તત્ત્વ, જેને નિર્વાણ કહેવામાં આવે છે તે અનેક નામે પ્રસિદ્ધ હોવા છતાં તત્ત્વતઃ એક જ વસ્તુ છે. એ તત્ત્વના સદાશિવ, પરમબ્રહ્મ, સિદ્ધાત્મા ઇત્યાદિ નામો ભલે જુદાં હોય પણ તે તત્ત્વ તો એક જ છે. 1

આમ, ધ્યેયની દષ્ટિએ ભલે નિર્વાણમાં ભેદ ન હોય, પણ દાર્શનિકોએ જ્યારે તેનું વર્ણન કર્યું ત્યારે તેમાં ભેદ પડ્યો છે. આત્માનો મોક્ષ છે એ બાબતમાં બધા દાર્શનિકો (ચાર્વાક સિવાય) એકમત છે, પણ મોક્ષના તેમજ મુક્ત જીવના સ્વરૂપ વિષે તેમની વચ્ચે મતભેદ છે. મોક્ષનું સ્વરૂપ ભિન્ન ભિન્ન દર્શનોમાં ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારે પ્રતિપાદિત થયેલું છે. તે ભેદનું કારણ તે તે દાર્શનિકોએ પ્રરૂપેલી તત્ત્વવ્યવસ્થા છે. તત્ત્વવ્યવસ્થાના પ્રકારમાં જે ભેદ પડે છે, તે ભેદ મોક્ષના વર્શનમાં પણ પડે એ સ્વાભાવિક છે. વિભિન્ન દર્શનોમાં મોક્ષનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે —

(૧) ચાર્વાક દર્શનની દષ્ટિએ મોક્ષ

મોક્ષનો સિદ્ધાંત સર્વ ભારતીય દર્શનોએ માન્ય કર્યો છે, પરંતુ ચાર્વાક દર્શન ભૌતિકવાદી હોવાથી આ બાબત તે માન્ય કરતું નથી. તે આત્મા તરીકે શરીરથી ભિન્ન કોઈ સત્તાને સ્વીકારતું નથી, તેથી તેનો મોક્ષ પણ માનતું નથી. તે આત્માને શરીરથી ભિન્ન સ્વીકારતું જ નથી, તેથી તેને આત્મા અંગેની કોઈ પણ મૂંઝવણ જ ઊભી થતી નથી. 'દેહ એ જ આત્મા છે, શરીરનો વિનાશ એ જ મોક્ષ છે' એવી મોક્ષ વિષેની ચાર્વાક દર્શનની કલ્પના છે. ચાર્વાક દર્શન શરીરના વિલયને જ મોક્ષ માને છે.

(૨) જૈન દર્શનની દૃષ્ટિએ મોક્ષ

આત્માની સ્વાભાવિક અવસ્થાની પ્રાપ્તિને જૈન દર્શન મોક્ષ માને છે, અર્થાત્ મોક્ષ એ અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત સુખ અને અનંત વીર્યની પ્રાપ્તિની અવસ્થા છે. જૈન દર્શન અનુસાર જ્યારે જીવનાં બધાં કર્મ ખપી જાય ત્યારે તે પોતાની સ્વાભાવિક અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરે છે - મોક્ષગતિને પામે છે. કર્મબંધનથી સર્વથા છુટકારો મેળવવો,

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજીકૃત, 'યોગદૃષ્ટિ સમુચ્ચય', શ્લોક ૧૨૯,૧૩૦

'संसारातीततत्त्वं तु परं निर्वाणसंज्ञितम् । तद्ध्येकमेव नियमाच्छब्दभेदेऽपि तत्त्वतः ।।

सदाशिवः परं ब्रह्म सिद्धात्मा तथतेति च ।

शब्दैस्तदुच्यतेऽन्वथदिकमेवैवमादिभिः ।।'

જન્મ-મરણરૂપી મહાદુ:ખનાં ચક્રની ગતિ રોકવી અને પરમાનંદમય અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવી એ મોક્ષ છે. જીવ અને કર્મપુદ્દગલનો જે અનાદિકાલીન સંબંધ છે તે જ બંધ છે - સંસાર છે અને તેનો વિયોગ તે જ મોક્ષ છે. મોક્ષ કાંઈ ઉત્પન્ન થનારી વસ્તુ નથી, માત્ર કર્મબંધનથી છૂટા થવું એ અવસ્થા જ આત્માનો મોક્ષ છે. કર્મનાં આવરણો ખસી જવાથી આત્માના સકળ ગુણો સંપૂર્ણપણે પ્રકાશિત થાય છે. આત્મા તેના મૂળ જ્યોતિર્મય ચિદ્સવરૂપે પૂર્ણપણે પ્રકાશે છે. આનું નામ જ મોક્ષ છે. આત્મા જ્યારે સર્વ કર્મોના બંધનથી મુક્તિ મેળવે છે ત્યારે તે વિદેહમુક્ત બનેલ આત્મા સ્વતઃ સ્વભાવતઃ ઉધ્વિગતિ કરી લોકાકાશના અગ્રભાગે પહોંચે છે. સર્વથા નિર્મળ થયેલ મુક્તાત્માને ફરીથી ક્યારે પણ કર્મબંધન થતું નથી અને તેથી સંસારચક્રમાં તેને ફરી અવતાર લેવાપણું રહેતું નથી. બીજ અત્યંત બળી ગયા પછી તેમાંથી અંકુર ઉત્પન્ન થતો નથી, તે પ્રમાણે કર્મરૂપી બીજ સર્વથા બળી ગયા પછી સંસારરૂપી અંકુર ઉત્પન્ન થતો નથી.

(૩) બૌદ્ધ દર્શનની દિષ્ટિએ મોક્ષ

બૌદ્ધ દર્શન આત્માના મોક્ષને નિર્વાણ કહે છે. નિર્વાણનો અર્થ છે બુઝાઈ જવું કે નાશ પામલું. જે બુઝાય છે તે તૃષ્ણા, દુઃખ અને પુનર્જન્મ છે. નિર્વાણની મૃળ બૌદ્ધ કલ્પના એવી છે કે તે એક અવાચ્ય, અવર્શનીય સ્થિતિ છે. આ અચ્યુતપદ, અહીં આ જન્મમાં જ તૃષ્ણા અને સંયોજનોના સંપૂર્ણ ક્ષયથી પ્રાપ્ત કરી શકાય છે. નિર્વાણ સર્વ દુઃખોના આત્યંતિક ઉચ્છેદની અવસ્થા છે. સર્વ દુઃખોનાં કારણોનો વિનાશ એ નિર્વાણ છે. ભવસંતાપની પરંપરાનો વિચ્છેદ થવો એ નિર્વાણ છે. પુનર્જન્મમાંથી છુટકારો એ નિર્વાણ છે. ક્લેશ, રાગ-દ્વેષનો ક્ષય એ નિર્વાણ છે. બૌદ્ધ દર્શનમાં નામ અને રૂપનો જે અનાદિ સંબંધ છે, તે જ સંસાર છે - બંધ છે અને તેનો વિયોગ તે જ નિર્વાણ છે. રૂપ, વેદના, સંજ્ઞા, સંસ્કાર અને વિજ્ઞાન એ પાંચ સ્કંધોના નિરોધને બૌદ્ધો નિર્વાણ કહે છે. તેમના મત અનુસાર જ્યારે આર્ય અષ્ટાંગ માર્ગ દ્વારા નિર્વાણની પ્રાપ્તિ થાય છે ત્યારે પંચ સ્કંધનો નિરંતર ચાલતો પ્રવાહ સદાને માટે વિલીન થઈ જાય છે. જેમ તેલ ખૂટતાં દીવો ઓલવાઈ જાય છે, તેમ નિર્વાણ એ અક્ષરશઃ જીવના વ્યક્તિત્વનું શમન છે. દીપક ઓલવાય પછી તેની જ્યોતિ ભૂમિ તરફ જતી નથી અને આકાશ તરફ પણ જતી નથી અથવા દિશા અને વિદિશામાં પણ જતી નથી. તેલ ખૂટી જતાં જ્યોત શાંત થઈ જાય છે, તેવી જ રીતે જીવ જ્યારે નિર્વાણ પ્રાપ્ત કરે છે ત્યારે તે પણ પૃથ્વી, આકાશ અથવા કોઈ પણ દિશામાં જતો નથી, પરંતુ ક્લેશનો ક્ષય થવાથી શાંત થાય છે. નિર્વાણ એટલે દીપકની જેમ બુઝાઈ જવું. નિર્વાણના બે પ્રકાર છે -(૧) વાસનાઓનો નાશ થવાથી, અહંપણાનો ભાવ જ્યાં તદ્દન જ ગળી ગયો હોય તે અવસ્થા ઉપાધિશેષ કહેવાય છે. જેઓ મુક્ત થયા હોય છે તેમની ભવસંજ્ઞા તદન જ

પરિક્ષીણ થઈ ગઈ હોય છે. આ અવસ્થા જીવન્મુક્તિને મળતી આવે છે. આ સ્થિતિ પ્રાપ્ત કરનારને 'અર્હત' અથવા 'સુયોગ્ય' કે 'પવિત્ર' કહેવાય છે. અર્હત અનાસક્ત થઈને કાર્ય કરતા હોય છે, માટે તેઓ કર્મબંધનમાં સપડાતા નથી. (૨) આ અનિત્ય જગતમાંથી અર્હતનું પૂરેપૂરું અદશ્ય થઈ જવાને સંપૂર્ણ નિર્વાણ, પરિનિર્વાણ કે અનુપાધિશેષ કહેવાય છે.

(૪) ન્યાય દર્શનની દ્રષ્ટિએ મોક્ષ

ન્યાય દર્શન આત્માના મોક્ષને અપવર્ગ કહે છે. દુઃખથી સદાને માટે છૂટી જવું તેનું નામ અપવર્ગ છે. શરીર દુઃખાદિનું સાધન છે, તેમાંથી હંમેશને માટે છૂટી જવું તે મોક્ષ છે. દુઃખ, જન્મ, પ્રવૃત્તિ, દોષ અને મિથ્યા જ્ઞાન - આ સર્વનો નાશ થવાથી મુક્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે. મિથ્યા જ્ઞાનનો નાશ થવાથી દોષોનો પણ નાશ થાય છે અને પછી કોઈ પણ પ્રવૃત્તિ થતી નથી અને તેથી ફરી જન્મ પણ લેવો પડતો નથી. જ્યારે ૨૧ પ્રકારનાં દઃખો નાશ પામે છે ત્યારે આવી આત્યંતિક દઃખનિવૃત્તિ થાય છે. દઃખની આત્યંતિક નિવૃત્તિ જ મોક્ષ છે. ન્યાય દર્શનના મત પ્રમાણે મોક્ષ એટલે દુઃખનો એવો સમળગો નાશ કે ફરી કદી પણ એનો પ્રાદુર્ભાવ જ ન થઈ શકે. શરીરથી મુક્ત થયા પછી માત્ર આત્માનાં દુઃખનો જ નહીં, સુખનો પણ અંત આવે છે. આમ, ન્યાય દર્શનમાં મુક્ત આત્માનું સ્વરૂપ સુખ-દુઃખથી ૫૨, તદ્દન અનુભૂતિહીન, બિલકુલ અચેતન જેવું કલ્પેલ છે. નૈયાયિકોના મત પ્રમાણે ઇચ્છા, દેષ, પ્રયત્ન, જ્ઞાન, સુખ વગેરે આત્માના ગુણ છે. ગુણ ગુણીની સાથે સમવાય સંબંધથી સંકળાયેલા રહે છે. અર્થાત્ જ્ઞાનાદિ ગુણો આત્માની સાથે સંકળાયેલા ખરા, પણ સ્વરૂપે અને સ્વભાવે આત્મા નિર્ગુણ છે. જ્ઞાન કે ચૈતન્ય આત્માનો સ્વભાવ નથી. મુક્ત અવસ્થામાં આત્મા સ્વભાવમાં, અર્થાતુ નિર્ગુણ ભાવમાં રહે છે. શરીર વગેરે સાથેનો સંયોગ હંમેશને માટે છુટી જતાં આત્મા મુક્ત બને છે. આવા મુક્ત આત્મામાં જ્ઞાન વગેરે વિશેષ ગુણો ઉત્પન્ન થઈ શકે જ નહીં, કારણ કે આત્મામાં વિશેષ ગુણોની ઉત્પત્તિ માટે શરીર સાથે તેનો સંયોગ થવો અત્યંત જરૂરી છે. આત્મા જ્યારે બંધનોથી મુક્ત થાય છે ત્યારે દેહનો ત્યાગ કરે છે. વિષયો સાથે તેને કોઈ પણ જાતનો સંબંધ રહેતો નથી એટલે તેનામાં સુખ, દુઃખ, જ્ઞાન, દ્વેષ, ઇચ્છા, પ્રયત્ન, ધર્મ, અધર્મ અને સંસ્કાર એ નવ વિશેષ ગુણો રહેતા નથી; અર્થાત્ મુક્તાત્મા સંસારસંગરહિત, નિષ્ક્રિય અને વિશેષ ગુણ વિનાનો હોય છે.

(પ) વૈશેષિક દર્શનની દષ્ટિએ મોક્ષ

વૈશેષિક દર્શન અનુસાર આત્માના ધર્મ-અધર્મરૂપ અદેષ્ટનો સંપૂર્ણ નાશ થતાં તે આત્માનો શરીર વગેરે સાથેનો વિશિષ્ટ સંયોગ નાશ પામે છે અને નવા શરીર વગેરે સાથે તે આત્માનો વિલક્ષણ સંયોગ ફરી કદી પણ થતો નથી; આ જ મોક્ષ છે. અદષ્ટનો અભાવ થવાથી, અર્થાત્ કર્મચક્રની ગતિનો અંત આવવાથી આત્માનો શરીર સાથેના સંબંધનો વિચ્છેદ થાય છે. જન્મ-મરણની પરંપરા નષ્ટ થવાથી બધા પ્રકારનાં દુઃખોથી જીવાત્મા હંમેશને માટે છુટકારો મેળવે છે. દુઃખના ૨૧ ભેદ માનેલ છે - ૧ શરીર + ૬ ઇન્દ્રિયો + ૬ વિષયો + ૬ બુદ્ધિ + ૧ સુખ + ૧ દુઃખ. આ સર્વ દુઃખોનો આત્યંતિક નાશ તે જ મોક્ષ છે. મોક્ષ અવસ્થામાં આત્માનો કોઈ વિશેષ ગુણ જોડે સંયોગ થતો નથી, પણ ઔપાધિક ગુણોથી તેનો વિચ્છેદ થાય છે અને ત્યારે જ આત્મા તેના શુદ્ધ સ્વરૂપે જણાય છે.

(૬) સાંખ્ય દર્શનની દ્રષ્ટિએ મોક્ષ

પુરુષ પ્રકૃતિથી ભિન્ન છે, છતાં પોતાને પ્રકૃતિ સાથે ગુંચવી નાખી પ્રકૃતિની ક્રિયાઓને અહંકારવશ એ પોતાની માની લે છે અને એ રીતે તે સ્વયં પોતાના માર્ગમાં દુઃખ ઊભાં કરે છે. પુરુષ પોતે પ્રકૃતિથી જુદો છે એમ માનવું તેનું નામ વિવેકજ્ઞાન છે. આ વિવેકજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી પ્રકૃતિના બધા વિકારોથી મુક્ત થવું એ જ પુરુષની મુક્તિ છે. પ્રકૃતિ અને પુરુષનો વિયોગ થવો - પ્રકૃતિથી અલગ એવી પુરુષની સ્થિતિ એ જ તેને માટે મોક્ષ છે. મોક્ષધર્મ વસ્તુતઃ પ્રકૃતિનો છે - પુરૂષનો નહીં, કારણ કે યુરુષ સ્વયં ન તો બદ્ધ છે કે ન તો મુક્ત છે. પ્રકૃતિ જ બંધાય છે, તે જ સંસારનો અનુભવ કરે છે અને તેનો જ મોક્ષ થાય છે. પુરુષના સંબંધમાં જે મોક્ષની વાત છે તે માત્ર પ્રતિબિંબરૂપ થતાં મિથ્યા દુઃખનો વિયોગ છે. સાંખ્ય શાસ્ત્રમાંથી જીવન્મુક્તિ તથા વિદેહમુક્તિ - બન્ને પ્રકારની મુક્તિને ટેકો મળે તેવાં વચનો ઉપલબ્ધ થાય છે. જીવન્મુક્ત વ્યક્તિ કાર્યરત રહે છે. તેનાં પ્રારબ્ધકર્મો તો ચાલુ જ રહે છે, પરંતુ નવાં કર્મો તેને બંધનરૂપ નીવડતાં નથી. બુદ્ધિરૂપી ભૂમિમાં ક્લેશરૂપી જળનું સિંચન થવાથી કર્મબીજ ઉત્પન્ન થાય છે. તત્ત્વજ્ઞાનરૂપી ગરમીના કારણે ક્લેશરૂપી જળ સુકાઈ જવાથી તે પડતર જમીનમાં કર્મબીજ ઊગતું નથી. નિરપેક્ષ, દ્રષ્ટા, સાક્ષીસ્વરૂપ પુરુષ જ્યારે પ્રકૃતિને બરાબર સમજી લે છે ત્યારે પ્રાપ્ત થયેલા વિવેકજ્ઞાનના કારણે તે ફરીથી પ્રકૃતિના બંધનમાં પડતો નથી. આ જીવન્મુક્તિની અવસ્થા છે. સમ્યક્ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતાં ધર્મ આદિ બંધનાં કારણ બનતાં અટકી જાય છે, તેથી જ્ઞાની ફરતા ચાકડાની જેમ સંસ્કારને વશ, શરીર ધારણ કરતા રહે છે. અંતિમ શરીરનો નાશ થયા પછી તે વિદેહમુક્તિ પ્રાપ્ત કરે છે. દેહનો પાત થતાં અને પ્રકૃતિ કુતાર્થ થઈ નિવૃત્ત થતી હોવાથી પુરુષ ઐકાંતિક અને આત્યંતિક એમ બન્ને પ્રકારનું કૈવલ્ય પ્રાપ્ત કરે છે. આ વિદેહમુક્તિ એ જ વાસ્તવિક મુક્તિ છે. દુઃખત્રયની આત્યંતિક નિવૃત્તિ એ જ મોક્ષ છે. મુક્ત અવસ્થામાં આનંદનો અનુભવ થાય છે એમ સાંખ્યમત સ્વીકારતો નથી. સાંખ્યમત

પ્રમાણે દુઃખના અભાવમાં સુખની હસ્તી પણ રહેતી નથી.

(૭) યોગ દર્શનની દષ્ટિએ મોક્ષ

યોગમત મુજબ માનવમાત્રનાં દુ:ખોનું મૂળ કારણ પ્રકૃતિ તથા પુરુષનો સંયોગ છે. પુરુષનાં બંધનનું કારણ ચિત્તવૃત્તિ સાથેનો તેનો સંયોગ છે. આ બંધનમાંથી પુરુષે મુક્તિ મેળવવી હોય તો ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ થવો જોઈએ. ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ થવાથી પુરુષને નિજરૂપનું ભાન થાય છે અને પરિણામે દુ:ખિનવૃત્તિ થાય છે. માટે કૈવલ્યપ્રાપ્તિ અર્થે જીવે દેહ, ઇન્દ્રિયો તેમજ મનની કિયાઓ ઉપર નિયંત્રણ મૂકી ચિત્તવૃત્તિઓને અટકાવવાની છે. કાર્યચિત્તનો નાશ થતાં ચિત્ત શુદ્ધ કારણાવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે અને પુરુષને પોતે મન, બુદ્ધિ, ઇન્દ્રિયો વગેરેથી જુદો શુદ્ધ, મુક્ત, અમર અને સ્વયંપ્રકાશિત છે તેવું ભાન થાય છે. યોગ દર્શનમાં કૈવલ્યને જીવનનું પરમ ધ્યેય માનેલ છે. કૈવલ્ય એટલે પુરુષના પ્રયોજન વિનાના ગુણો(ઇન્દ્રિયનાં કાર્યો)નું પાછું ફરવું અથવા જ્ઞાન-શક્તિનું પોતાના જ સ્વરૂપમાં સ્થિર બનવું તે.

(૮) પૂર્વ મીમાંસા દર્શનની દષ્ટિએ મોક્ષ

પ્રાચીન પૂર્વ મીમાંસા દર્શન મોક્ષને માનતું નથી. તેના મત પ્રમાણે સ્વર્ગ એ સંપૂર્શ સુખપ્રાપ્તિનું સ્થાન છે. અર્વાચીન મીમાંસા દર્શન પ્રમાણે મોક્ષમાં આત્મા શરીર, ઇન્દ્રિય, મન વગેરે બધાં બંધનોથી મુક્ત થાય છે અને એક વાર એ બંધનોનો નાશ થવાથી ફરી તે સંસારચક્રમાં ફસાતો નથી. શરીર, ઇન્દ્રિય તેમજ મનથી પૃથક્ થવાથી મુક્ત આત્મામાં ચૈતન્યનો વાસ રહેતો નથી અને પરિણામે તે સુખ-દુઃખના અનુભવથી પર રહે છે. પૂર્વ મીમાંસા દર્શનમાં મોક્ષ અવસ્થાને નિષેધાત્મક રીતે, તમામ સુખ તથા દુઃખ ઉભયથી રહિત વર્ણવવામાં આવેલ છે. પૂર્વ મીમાંસા પ્રમાણે મોક્ષ અવસ્થામાં આનંદની પ્રાપ્તિ થતી નથી. મોક્ષમાં આત્મા સુખ-દુઃખથી પર બની તેના યથાર્થ સ્વરૂપમાં રહે છે. મોક્ષ અવસ્થામાં જ્ઞાનશક્તિ તો રહે છે, પણ જ્ઞાન નથી રહેતું.

(૯) વેદાંત દર્શનની દેષ્ટિએ મોક્ષ

શાંકર વેદાંત જીવાત્મા અને બહ્મના ઐક્યભાવની ઉપલબ્ધિને મોક્ષ માને છે. પરમાર્થથી આત્મા બહ્મ જ છે. આત્મા વિશુદ્ધ સત્, ચિત્ અને આનંદસ્વરૂપ છે. બંધ મિથ્યા છે અને તેનું કારણ અવિદ્યા છે. મોક્ષ આત્માની સ્વાભાવિક અવસ્થા છે. એ ન ચૈતન્યરહિત અવસ્થા છે અને ન માત્ર દુઃખના અભાવની અવસ્થા છે; પણ તે વિશુદ્ધ સત્, ચિત્ અને આનંદની બાહ્યી અવસ્થા છે. 'નિર્વિશેષ, નિત્ય, શુદ્ધ, બુદ્ધ, મુક્ત, સ્વપ્રકાશ, ચિન્માત્ર, બહ્મ હું જ છું' એવું જીવને ભાન થતાં અવિદ્યા (અજ્ઞાન) દૂર નાસી જાય છે અને પોતે બદ્ધ છે તેવો જીવનો ભ્રમ દૂર થાય છે. એ જ તેની

મુક્ત અવસ્થા છે. પારમાર્થિક દષ્ટિએ શ્રી શંકરાચાર્ય બંધન કે મુક્તિના અસ્તિત્વનો ઇન્કાર કરે છે, પણ વ્યાવહારિક દષ્ટિએ જોતાં બંધન અને મોક્ષનો તેઓ ઇન્કાર કરતા નથી. તેમના મત અનુસાર મુક્તિ એ ઉત્પન્ન કરવાનો પદાર્થ કે ગુણ નથી કે જે કર્મ કે ઉપાસના દ્વારા સંપાદન કરી શકાય. શ્રી શંકરાચાર્ય મુક્તિને પરમકલ્યાણમય માને છે, પરંતુ મરણ પછી જ મુક્ત થવાની વાત તેમને માન્ય નથી. તેમના મત મુજબ મુક્તિના બે પ્રકાર છે - (૧) જીવન્મુક્તિ અને (૨) વિદેહમુક્તિ. અજ્ઞાનથી જીવને બંધન થાય છે અને જ્ઞાન વડે તેનાં બંધન છૂટે છે. આ જ્ઞાનમયી દષ્ટિ તે જ જીવન્મુક્તિ છે. આ જગતમાં અજ્ઞાનના કારણે થતાં કર્મથી તેમજ તેનાં બંધનમાંથી મુક્ત થયેલ મનુષ્ય ફરી શરીર ધારણ કરતો નથી ત્યારે તે વિદેહમુક્ત બને છે. જીવન્મુક્ત પુરુષ જ્યારે ભૌતિક ઉપાધિઓથી વિમુક્ત થાય છે, જ્યારે તેના પ્રારબ્ધ-કર્મનો ક્ષય થાય છે ત્યારે તે ફરી જન્મ ધારણ કરતો નથી, પણ બહ્મરૂપે રહે છે. આ છે વિદેહમુક્તિ. આ બાહ્મીભાવ પ્રાપ્ત કરનારનું આ માયામય સંસારમાં પુનરાગમન થતું નથી. મુક્ત થયેલો જીવ નિર્ગુણ બ્રહ્મરૂપમાં લીન થઈ જાય છે અને જગતના સાર-અસારથી પર એવી પરમ શાંતિ અનુભવે છે.

મોક્ષના સ્વરૂપ અંગે ભારતીય દર્શનોની આ પ્રકારની માન્યતાઓ છે. ભારતીય દર્શનોમાં ફક્ત ચાર્વાક દર્શન જ એવું છે કે જેશે આત્માનો સ્વીકાર કર્યો ન હોવાથી, આત્માના બંધ-મોક્ષનો સ્વીકાર કર્યો નથી. બાકી બધાં દર્શનોએ બંધ-મોક્ષનો પણ સ્વીકાર કરેલો છે. મોક્ષના સ્વરૂપ વિષે તેમની વચ્ચે મતભેદ છે, પણ તે સર્વ એક વાતનો તો સ્વીકાર કરે છે કે જીવને બંધન છે, કારણ કે બંધનનાં કારણો છે અને જીવ બંધનથી મુક્ત થઈ શકે છે. આ વિચાર ભારતીય દર્શનોનો મૂળ પ્રાણ છે.

અમોક્ષવાદીઓ મોક્ષનો અસ્વીકાર કરે છે અને પોતાના મતના સમર્થનમાં અનેક દલીલો રજૂ કરે છે. તેઓ કહે છે કે મોક્ષ નથી તેનું કારણ એ છે કે મોક્ષ માનનારાં દર્શનોમાં કેટલાંક દર્શનો એને નિરુપમ સુખનું સ્થાન માનીને ઉપાદેય માને છે, તો કેટલાંક દર્શનો દુઃખના અભાવનું સ્થાન માનીને એને ઉપાદેય માને છે; પણ વિચાર કરતાં તો જણાય છે કે આ બન્નેમાંથી એક પણ સ્વરૂપવાળો મોક્ષ માનવામાં મુમુક્ષુની પ્રવૃત્તિ સંભવી શકતી નથી. તે આ રીતે —

મોક્ષને નિરુપમ સુખનું સ્થાન માનનારાઓ પણ મોક્ષમાં ઇન્દ્રિયાદિના હોવાપણાને માનતા જ નથી; તો પછી જ્યાં ઇન્દ્રિયવિલાસો નથી ત્યાં સુખ મળશે એ વાતની કોણ શ્રદ્ધા કરશે? કારણ કે અહીં જે કાંઈ થોડું-ઘણું પણ સુખ અનુભવવા મળે છે તે ઇન્દ્રિયોના વિલાસથી મળતું જણાય છે, એ વિના નહીં. જે દરિદ્રી વગેરેને ઇન્દ્રિયોના વિલાસો મળ્યા નથી તેઓ તો બિચારા દુઃખી જ દેખાય છે. જે કાંઈ સુખ અનુભવાય છે તે ગીત-વિલાસાદિરૂપ જ છે. હવે જો આ બધું મોક્ષમાં ન હોય તો પછી ત્યાં સુખ પણ ક્યાંથી હોય? જ્યાં ગીત-સંગીત નથી, શબ્દાદિ ભાવોના વિલાસો નથી, શૃંગારરસ નથી, હાસ્યરસ નથી, કુતૂહલ પેદા કરે એવી વસ્તુઓ નથી - તેવી મુક્તિમાં કેવું સુખ હોય? માટે ત્યાં 'નિરુપમ સુખ મળશે' એ વાત તો અશ્રદ્ધેય બની જાય છે, તેથી તે અંગે પ્રાજ્ઞજનો પ્રવૃત્તિ કરે જ શા માટે?

જેઓ આત્માના જ્ઞાનાદિ સઘળા વિશેષ ગુણોના ઉચ્છેદરૂપ એવી મુક્તિને માને છે, ત્યાં 'દુઃખનો અભાવ થઈ જાય છે' એવો લાભ બતાવે છે. તેમના મત પ્રમાણે તો કોઈ પણ જીવ જો મોક્ષ માટે પ્રવૃત્તિ કરે તો તે દુઃખના અભાવની ઇચ્છાથી જ કરે એ વાત તો સ્પષ્ટ છે, કારણ કે તે સંસારમાં પણ દુઃખથી જ કંટાળેલો હોય છે, જ્ઞાનાદિથી નહીં. અધર્મથી પણ જે કંટાળેલો છે, તે પણ 'અધર્મ દુઃખનું કારણ છે અને દુઃખથી પોતે કંટાળેલો છે'; એટલા માટે જ તેને અધર્મથી દૂર થવું હોય છે, અન્યથા નહીં. આ સંબંધી વિચાર કરતાં જણાય છે કે દુઃખનો અભાવ કરવો તે તો પુરુષાર્થ જ નથી, કારણ કે જો એને પુરુષાર્થ ગણવામાં આવે તો મૂચ્છાવસ્થામાં પણ જે અવેઘ દુઃખનો અભાવ છે, તે પણ પુરુષાર્થ બની જવાની આપત્તિ આવે અને તે માટે પણ પ્રાજ્ઞજનોએ પુરુષાર્થ કરવો પડે. પરંતુ જેમ તે માટે કોઈ પ્રાજ્ઞજન પુરુષાર્થ કરતો નથી, તેમ મોક્ષ માટે પણ કોઈ પ્રાજ્ઞજન શા માટે કોઈ પ્રવૃત્તિ કરે? અવેદ્ય એવો દુઃખનો અભાવ પુરુષાર્થ તરીકે માની શકાતો નથી, કારણ કે મૂચ્છા વગેરે અવસ્થા માટે કોઈ ડાહ્યો માણસ મહેનત કરતો હોય એવું કાંઈ દેખાતું નથી અને મોક્ષ માટે જો પ્રવૃત્તિ કરવા જેવું રહેતું ન હોય તો પછી મોક્ષ હોવાનું માનવું કઈ રીતે?

મોક્ષ માનવામાં બીજી એક આપત્તિ પણ આવે છે. જો મોક્ષ પદાર્થ સત્ય હોય તો ત્યાં જનાર કોઈએ પાછા ફરવાનું તો રહેતું જ નથી, એટલે આ સંસારમાંથી જીવો અનંત કાળથી મોક્ષમાં જતા હોવાથી સઘળા જીવો ત્યાં ચાલ્યા જાય અને તેથી આ સંસારનો વિલય જ થઈ જાય. મોક્ષ ભલે કરોડોમાંથી કોઈકનો જ અને તે પણ લાંબે ગાળે થતો હોય તોપણ અનંત કાળમાં અનંત જીવો મુક્ત થયા જ હોવા જોઈએ. આમ થવાથી સંસારમાંથી જીવસૃષ્ટિ ઓછી થતાં સંસાર સમાપ્ત થઈ જાય. એક પછી એક જીવ મુક્ત થતા હોય તો ધીરે ધીરે સંસારમાંથી જીવોની સંખ્યા ઓછી થઈ જાય અને અંતે છેલ્લો જીવ મુક્ત થઈ જાય પછી સંસારનું અસ્તિત્વ જ રહે નહીં. એક એક યુગે એક એક જીવ મોક્ષમાં જતો હોય તોપણ અનંત યુગ વીતી ગયા હોવાથી સંસાર ખાલી થઈ જવાની આપત્તિ આવે. પરંતુ સંસાર હજુ પણ પ્રત્યક્ષસિદ્ધ છે, તેથી એમ જણાય છે કે સંસાર ક્યારે પણ ખાલી થવાનો નથી. જીવ મોક્ષે જતા હોવા છતાં સંસાર ખાલી ન થાય એવું ત્યારે જ ઘટી શકે કે જ્યારે કાળના અનંત પરિમાણ કરતાં જીવનું અનંત

પરિમાણ અધિક હોય. પરંતુ આ વાત તો કલ્પનામાત્ર લાગે છે, કારણ કે આ તથ્યનું કોઈ પ્રમાણ નથી.

અમોક્ષવાદીઓ કહે છે કે મોક્ષ માનવામાં બીજા પણ કેટલાક અણઊકલ્યા પ્રશ્નો ઊભા થાય છે. અમોક્ષવાદીની દલીલો ૨જૂ કરતાં ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ 'સમ્યક્ત્વ ષટ્સ્થાન ચઉપઇ'માં કહે છે –

'જિમ અનંત ઇક ઠામિ મિલૈ પહિલો નહિ તો ફુણસ્યું મિલો? પહિલા ભવ કઇ પહિલા મુક્તિ એ તો જોતો ન મિલઇ ચુક્તિ.'^૧

અહીં જણાવ્યા પ્રમાણે સિદ્ધક્ષેત્રને તો પરિમિત જ માનવામાં આવે છે અને તેમ છતાં અનંત કાળમાં અનંતા સિદ્ધ થયા છે એમ પણ માનવામાં આવે છે; તો એક પરિમિત સ્થાનમાં અનંતા સિદ્ધો કઈ રીતે રહી શકે? કદાચ એમ કહેવામાં આવે કે 'પછીથી સિદ્ધ થનારા પૂર્વે થઈ ગયેલા સિદ્ધ જીવમાં ભળી જાય છે, તેથી અનંતા સિદ્ધને ત્યાં રહેવામાં કોઈ આપત્તિ નથી' તો તેની સામે પ્રશ્ન એ છે કે એક પણ જીવને પ્રથમ અનાદિસિદ્ધ તો માનવામાં આવતો નથી, તો બીજો સિદ્ધ થતો જીવ કયા સિદ્ધમાં જઈને મળે? વળી, જો પહેલો અનાદિસિદ્ધ કોઈ છે નહીં તો પ્રથમના બધા સાધકો કયા સિદ્ધને નમે? અર્થાત્ કયા સિદ્ધને પોતાના આરાધ્ય દેવ તરીકે સ્વીકારી તેમની ભક્તિ વગેરેથી પોતાનો સંસાર ટાળે? વળી, દુનિયામાં પહેલો સંસાર માનો છો કે પહેલી મુક્તિ? જો પહેલો સંસાર માનશો તો પછી થયેલી મુક્તિને સાદિ માનવાની આપત્તિ આવશે; અને જો પ્રથમ મુક્તિ કહેશો તો વદતોવ્યાઘાત થશે, અર્થાત્ બોલતાંની સાથે જ એ વચન હણાઈ જશે – એ વચન જૂઠું સિદ્ધ થઈ જશે, કારણ કે જો પહેલાં સંસાર છે જ નહીં – બંધન જ નથી તો મુક્તિ કઈ રીતે પ્રાપ્ત થાય? આવા અનેક પ્રશ્નો સંબંધી કોઈ યુક્તિ મળતી ન હોવાથી મૂળથી મોક્ષને જ ન માનવો યોગ્ય ઠરે છે.

યાજ્ઞિકમતવાદીઓ મોક્ષનું ખંડન કરતાં કહે છે કે આત્માનો મોક્ષ થતો જ નથી, કારણ કે જે બંધાતો હોય તેને છૂટવાનું હોય. આત્મા કર્મથી બંધાતો જ નથી તો તેનો મોક્ષ કઈ રીતે હોઈ શકે? યાજ્ઞિકમતવાદીઓ યુક્તિથી બંધ-મોક્ષનો અભાવ સિદ્ધ કરે છે. બંધ-મોક્ષના વિરોધમાં તેમની યુક્તિઓ આ પ્રમાણે છે –

જો આત્મા કર્મથી બંધાતો હોય તો ત્રણ પ્રશ્નો પૂછી શકાય - (૧) શું પ્રથમ જીવ અને પછી કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે? (૨) શું પ્રથમ કર્મ અને પછી જીવ ઉત્પન્ન થાય છે? (૩) શું તે બન્ને સાથે જ ઉત્પન્ન થાય છે? ઉક્ત ત્રણે પ્રકારથી બંધ ઘટી શકતો નથી, કારણ કે –

૧- ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'સમ્યક્ત્વ ષટ્સ્થાન ચઉપઇ', ગાથા ૯૯

(૧) પ્રથમ વિકલ્પ છે કે શું આત્મા પહેલાં ઉત્પન્ન થાય છે અને પછી તેને કર્મ બંધાય છે? આ વાત બરાબર નથી, કેમ કે કોઈ હેતુ વિના આત્મા ઉત્પન્ન થાય જ કઈ રીતે? ઉત્પત્તિનું કારણ તો જોઈએને? કર્મથી પહેલાં આત્માની ઉત્પત્તિ ઘટી શક્તી નથી, કારણ કે ખરશૃંગની જેમ તેનું કોઈ કારણ નથી. જો આત્માની ઉત્પત્તિ નિર્હેતુક માનવામાં આવે તો તેનો વિનાશ પણ નિર્હેતુક માનવો જોઈએ.

આમાં કોઈ કહે કે જીવ તો અનાદિસિદ્ધ છે, તેથી તે વિષે ઉત્પત્તિનો વિચાર જ અસ્થાને છે; તો તેનું સમાધાન એ છે કે જીવ જો અનાદિસિદ્ધ હોય તો પછી તેનો કર્મ સાથેનો સંયોગ થઈ શકે નહીં, કારણ કે તે સંયોગો થવા માટે કોઈ કારણ છે જ નહીં. જીવને પછીથી બંધ થવામાં કોઈ પણ હેતુ સિદ્ધ થતો નથી અને જો કારણ વિના પણ જીવને કર્મસંયોગ માનવામાં આવે તો પછી મુક્ત જીવને પણ કર્મબંધ ફરી થવો જોઈએ. જો આત્મા પ્રથમ શુદ્ધ જ હતો, પણ અમુક વખત પછી આત્માને કર્મનું બંધન થયું એમ માનવામાં આવે તો તેનો અર્થ એમ થયો કે મુક્ત દશાને પામેલા શુદ્ધ આત્માઓ પણ આવા ભાવિ કર્મબંધથી ખરેખર તો મુક્ત નથી; અને જો મુક્ત પણ ફરી બંધને પ્રાપ્ત થતા હોય તો લોકો એવી મુક્તિમાં શા માટે શ્રદ્ધા રાખે? એવી મુક્તિ માટે શા માટે પુરુષાર્થ કરે? માટે જીવમાં અહેતુ બંધ માની શકાય નહીં.

વળી, જો જીવને બંધ જ ન માનવામાં આવે તો તે નિત્યમુક્ત જ કહેવાય અથવા તો જો તેને બંધ જ ન હોય તો તે મુક્ત પણ કેવી રીતે કહેવાય? કારણ કે મોક્ષવ્યવહાર બંધસાપેક્ષ જ છે. જેમ આકાશને બંધ નથી તો તેનો મોક્ષ પણ નથી, તેમ જીવને જો બંધ ન હોય તો તેનો મોક્ષ પણ ન જ હોય. વળી, કર્મબંધ પાછળથી થયો એમ માનવામાં આવે તો પ્રથમ આત્મા શુદ્ધ હોવાથી અને શુદ્ધ આત્માને બંધના હેતુનો અભાવ હોવાથી, તેને બંધ થઈ શકતો નથી અને તેથી તેને મોક્ષનો પણ અભાવ થાય છે. આ પ્રકારે જીવને કર્મથી પહેલાં માનવામાં બંધ-મોક્ષવ્યવસ્થા ઘટી શકતી નથી.

(૨) બીજો વિકલ્પ છે કે શું આત્મા ઉત્પન્ન થાય તે પૂર્વે જ કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે અને તે કર્મથી આત્મા બંધાય છે? આમ માની શકાય નહીં, કારણ કે આ તો તદ્દન અસંગત બીના છે. જીવથી પહેલાં કર્મની ઉત્પત્તિ સંભવતી નથી, કારણ કે જીવને જ કર્મનો કર્તા માનવામાં આવે છે. હવે જો કર્તા ન હોય તો કર્મ કેવી રીતે થાય? આત્માની પૂર્વે જો કર્મ માનવામાં આવે તો તે સંભવિત નથી, કારણ કે તે વખતે તો કર્તાનો અભાવ છે. વળી, જે કરાય તેનું નામ કર્મ એવી વ્યુત્પત્તિનો પણ વિરોધ આવે છે. આત્માના કર્તૃત્વના કારણે જ કર્મમાં કર્મત્વ આવે છે. હવે આત્મા જ ન હોય ત્યારે કર્તૃત્વ વિના કર્મ જેવી કોઈ વસ્તુ હસ્તી ધરાવી શકે જ નહીં; અને કર્મ વિના

આત્માને બંધ ન હોય. વળી, બંધ વિના મોક્ષ પણ ન જ હોય. બંધનો અભાવ થવાથી મોક્ષનો પણ અભાવ જ થાય છે.

કર્મની નિર્હેતુક ઉત્પત્તિ પણ સંભવતી નથી. જો કર્મની ઉત્પત્તિમાં કોઈ પણ કારણ ન હોય છતાં તે ઉત્પન્ન થતું હોય તો તેનો વિનાશ પણ નિર્હેતુક જ માનવો જોઈએ. પરંતુ ઉત્પત્તિ કે વિનાશ બન્ને નિર્હેતુક તો હોઈ શકે નહીં, માટે કર્મને જીવથી પહેલાં માની શકાય નહીં. પ્રથમ કર્મ પછી જીવ એમ પણ સંભવિત નથી.

(3) ત્રીજો વિકલ્પ છે કે શું આત્મા અને કર્મ એકીસાથે ઉત્પન્ન થાય છે? આ વાત પણ બરાબર નથી. જીવ તથા કર્મ જો બન્ને સાથે ઉત્પન્ન થતાં હોય તો તેમાં જીવને કર્તા અને કર્મને તેનું કાર્ય કહી શકાય નહીં. સાથે ઉત્પન્ન થયેલી વસ્તુમાં એક કર્તા અને બીજું તેનું કાર્ય એમ કર્તૃત્વ-કાર્યત્વ ઘટી શકતું નથી. લોકમાં એક જ સાથે ઉત્પન્ન થનારાં ગાયનાં શિંગડાં અને પૂછડામાં જેમ એકને કર્તા અને બીજાને કાર્ય કહેવાતું નથી, તેમ જીવ અને કર્મ પણ જો એકસાથે જ ઉત્પન્ન થતાં હોય તો તેમાં પણ કર્તા-કાર્યનો વ્યવહાર ઘટી શકતો નથી. જો આત્મા અને કર્મ એકી વખતે ઉત્પન્ન થાય તો તેમાં કર્તા કોણ? કાર્ય કોણ? અને બંધ કોનો? સાથે ઉત્પન્ન થયેલા હોવાથી તે બન્ને વચ્ચે બંધક અને બંધ્યભાવ પણ ઘટી શકતો નથી. જો આત્માને બંધ જ ઘટતો ન હોય, તે અબદ્ધ હોય તો તેને મોક્ષનો અભાવ હોય છે.

આ પ્રમાણે પ્રથમ જીવ પછી કર્મ એમ પણ હોઈ શકતું નથી, પ્રથમ કર્મ પછી જીવ એમ પણ બની શકતું નથી અને જીવ-કર્મ એકસાથે ઉત્પન્ન થવાં પણ સંભવિત નથી. પાછળથી, પ્રથમ અથવા સાથે - એમ કોઈ પણ પ્રકારે આત્મા અને કર્મ વચ્ચે સંબંધ હોઈ શકતો નથી. આત્માને કર્મબંધ છે જ નહીં. આત્માની સાથે કર્મના સંબંધની અવ્યવસ્થા - અનુત્પત્તિ છે, તેથી મોક્ષ જેવી કોઈ વસ્તુ જ નથી. આત્માને કર્મનો બંધ કોઈ રીતે ઘટી શકતો નથી, માટે આત્માનો મોક્ષ થવાની વાત પણ સંભવતી નથી. કર્મરૂપી બંધન ન હોવાથી તેનો મોક્ષ પણ નથી. આત્માને બંધ ન હોવાથી મોક્ષ છે જ નહીં. આમ, જીવને બંધ-મોક્ષ નથી એમ સિદ્ધ થાય છે.

આની સામે મોક્ષવાદીઓ એમ દલીલ કરે છે કે આત્મા અને કર્મનો સંબંધ અનાદિ કાળથી છે. આત્મા અને કર્મ બન્ને હંમેશાં સાથે હોય છે, બન્નેનો અનાદિ સંબંધ છે. આત્મા-કર્મનો સંયોગ અનાદિ છે; તેથી પાછળથી, પહેલાં કે એકસાથે ઉત્પત્તિનો પ્રશ્ન જ સંભવતો નથી. આ દલીલનો પ્રત્યુત્તર આપતાં અમોક્ષવાદીઓ કહે છે કે જો આત્મા અને કર્મનો સંબંધ અનાદિ હોય તો એ સંબંધ અનંત પણ બની જાય છે. જેનો આદિ ન હોય તેનો અંત પણ ન હોય, માટે જીવ કર્મથી મુક્ત થતો નથી, તેથી તેનો મોક્ષ નથી.

આત્મા અને કર્મનો સંબંધ અનાદિ હોવાથી આત્માનો મોક્ષ નથી એ જ વિકલ્પ શિષ્ય પ્રસ્તુત ગાથામાં રજૂ કરે છે. શિષ્યને આત્માનું કર્મકર્તૃત્વ અને કર્મફળભોક્તૃત્વ સિદ્ધ થયું છે, પણ હજી મોક્ષના અસ્તિત્વ વિષે તેને શંકા રહે છે. તેને અંતરમાં સંદેહ છે કે જીવનો મોક્ષ ખરેખર હશે કે નહીં. પોતાનો આ સંદેહ વ્યક્ત કરતાં પહેલાં તે આત્માના કર્મકર્તૃત્વ અને કર્મફળભોક્તૃત્વનો સ્વીકાર કરે છે.

શ્રીગુરુના સમાધાનથી તેને સમજાયું છે કે કર્મ પણ એક પ્રકારનું દ્રવ્ય છે. કર્મ પુદ્દગલસ્વભાવી છે. કર્મ એ વસ્તુતઃ જડ પદાર્થ છે. જીવથી કર્મ તદ્દન ભિન્ન પદાર્થ છે. જીવનો અને કર્મનો સ્વભાવ એક નથી, પણ વિભિન્ન છે. રાગ-દ્વેષ આદિ વિકારી ભાવોના કારણે કર્મપુદ્દગલો આત્માને વળગે છે. કર્મનો આત્માની સાથે દૂધ અને પાણીની જેમ સંબંધ થાય છે, જેને કર્મબંધ કહે છે.

આ બંધના કારણે આત્મા અનેક પ્રકારનાં દુઃખ ભોગવે છે. બંધનની અવસ્થામાં આત્માને સાંસારિક સંયોગોને આધીન રહેવું પડે છે. એ બંધ જીવને સંસારમાં જન્મ-મરણરૂપ વેદનાનો અનુભવ કરાવે છે. બંધનની અવસ્થામાં જીવે જન્મ-મરણની ઘટ-માળમાં ફસાવું પડે છે. બંધનના કારણે તે જન્મ-મરણના ચક્રમાં ફર્યા કરે છે. બંધનના કારણે તે જન્મ-મરણના ચક્રમાં ફર્યા કરે છે. બંધનના કારણે તે ફરી ફરી જન્મ ગ્રહણ કરી ચોર્યાસી લાખ યોનિઓમાં ચક્કર લગાવતો રહે છે. પોતે કરેલાં કર્મોનાં ફળ તેણે અવશ્ય ભોગવવાં પડે છે.

કર્મ આત્માની સાથે કેવી રીતે સંબંધમાં આવે છે અને તે ચોક્કસ પ્રકારનું ફળ કેવી રીતે આપે છે તે શિષ્યને સમજાયું છે. કર્મ અદષ્ટ છે, મૂર્ત છે, વિચિત્ર છે, અનાદિ સંબદ્ધ છે; કર્મઅહણની પ્રક્રિયા, બંધનું સ્વરૂપ, કર્મના બંધહેતુ, બંધ અને જીવની પરાધીનતા, કર્મનું શુભાશુભરૂપે પરિણમન, કર્મના ભેદો, કર્માધીન પરલોકપ્રાપ્તિ ઇત્યાદિ વિષયો સંબંધી તેને સ્પષ્ટ સમજણ થઈ છે. તેને પાકો નિર્ધાર થયો છે કે સંસારી જીવો અનેકવિધ કર્મો કરતા રહે છે અને પોતે કરેલાં તે કર્મો અનુસાર તેમણે ફળ પણ ભોગવવાં જ પડે છે. સારાં કર્મોનાં સારાં અને નઠારાં કર્મોનાં નઠારાં ફળ પ્રાપ્ત થાય છે. આત્મા કર્મનો કર્તા તથા ભોકતા છે.

આમ, શ્રીગુરુના ન્યાયયુક્ત સમાધાનથી શિષ્યને આત્માનાં પ્રથમ ચાર પદનો યથાર્થ નિર્ણય તથા નિશ્ચય થયો છે. 'આત્મા છે', 'તે નિત્ય છે' તથા 'તે કર્મનો કર્તા-ભોક્તા છે' એ યથાર્થપણે સમજાયું છે. આત્માનું અસ્તિત્વ, નિત્યત્વ, કર્તૃત્વ અને ભોક્તૃત્વ તે સ્વીકારે છે. સંસારના જીવો વિષે વિચારતાં તેને જણાય છે કે જીવ નિરંતર કર્મ કરે છે તથા તેનાં ફળ ભોગવે છે. તે ફળ ભોગવતાં વળી નવાં કર્મો ઉપાર્જન કરે છે. દ્રવ્યકર્મના ઉદય વખતે અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ સંજોગોની પ્રાપ્તિ થાય છે અને જીવ અજ્ઞાનદશાના કારણે તેમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટપણું માની, બીજાં નવાં કર્મો ઉપાર્જન

કરે છે. દ્રવ્યકર્મના નિમિત્તે ભાવકર્મ ઉદિત થાય છે અને ભાવકર્મના નિમિત્તે દ્રવ્યકર્મ બંધાય છે. જીવ અનંત કાળથી આ ઘટમાળમાં આવર્તન કરી રહ્યો છે. જીવ સદા રાગ- દેષરૂપ પરિણામો કર્યા જ કરે છે. આ પ્રમાણે અનાદિ કાળથી થતું આવ્યું છે અને વર્તમાનમાં પણ હજુ કર્મો કરવારૂપ દોષ ચાલુ છે. જો આ દોષ ન ટળે તો મોક્ષ થાય નહીં. અનાદિ કાળથી આ દોષ પ્રવર્તે છે અને વર્તમાનમાં આ દોષ વિદ્યમાન છે, તેથી શિષ્યને એમ સંશય થાય છે કે આ દોષ ટળવારૂપ મોક્ષ થઈ શકે નહીં. જો જીવનો મોક્ષ થતો હોત તો આજ સુધીમાં થઈ જવો જોઈતો હતો. જીવ અનંત કાળથી કર્મ કરતો-ભોગવતો આવ્યો છે, પણ તેનો હજી સુધી મોક્ષ થયો નથી; તેથી એમ લાગે છે કે મોક્ષ જેવું કંઈ છે જ નહીં. જીવ કર્મ કરે છે અને ભોગવે છે. આવું અનંત કાળથી થતું આવ્યું છે તોપણ જીવ મુક્ત થયો નથી, તેથી સર્વ કર્મથી મુક્ત થઈ શકાય એમ જણાતું નથી. અનંત કાળમાં જે નથી થયું તે હવે કઈ રીતે થઈ શકે? અર્થાત્ જીવનો કર્મથી નિવૃત્ત થવારૂપ મોક્ષ શિષ્યને અસંભવિત ભાસે છે.

અનંત કાળ વીત્યો તોપણ જીવનો કર્મ કરવારૂપ દોષ હજુ એમ ને એમ જ છે, માટે એનો મોક્ષ કઈ રીતે થાય? આ જીવ કર્મોનો કર્તા-ભોક્તા ભલે હોય, પરંતુ તેનો મોક્ષ થાય છે એ વાત બરાબર નથી, કારણ કે અનંત કાળ વીતી ગયો તોપણ કર્મો બાંધવાનો જે દોષ છે તે તો હજુ વિદ્યમાન જ છે. જીવ કર્તા અને ભોક્તા છે એ ખરું, પણ તેનો મોક્ષ નથી, કારણ કે પાર વિનાનો વખત પસાર થઈ ગયો છે તોપણ કર્મબંધમાં કારણભૂત એવા વિકાર હજી તેનામાં રહેલા છે.

શિષ્યને જીવનું કર્તા-ભોક્તાપણું સમજાયું છે અને વર્તમાનમાં પણ એ દોષ છે એમ પણ સમજાયું છે, તેથી તેને આ શંકા જાગી છે. વિચારણા કરતાં તેને લાગે છે કે અનંત વાર મુનિદીક્ષા લીધી છતાં પણ દોષ ટળ્યો નહીં, અનંત પ્રયત્નો કર્યા છતાં તે દોષ દૂર થયો નહીં; તેથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે જીવ રાગી છે. તેને રાગ થયો છે, થાય છે અને થવાનો છે; અને તેથી તેણે કર્મ બાંધ્યાં હતાં, આજે પણ તે કર્મ બાંધે છે અને ભવિષ્યમાં પણ તે કર્મ બાંધવાનો છે. વળી, એ બાંધેલાં કર્મ ભોગવતાં તે ફરી નવાં કર્મ બાંધશે. કર્મ કરવાનું અને ભોગવવાનું આ ચક્ર અનાદિથી ચાલ્યા કરે છે અને ચાલ્યા જ કરવાનું છે. કર્મ કરવાં અને તેનાં ફળ ભોગવવાં એવો વ્યવહાર અનાદિ કાળથી ચાલતો આવ્યો છે અને અનંત કાળ પછી પણ ચાલતો રહેશે. ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા લખે છે —

'અનંત એવો ભૂતકાળ વીતી ગયો, અનંતા પુદ્દગલપરાવર્ત થઇ ગયા, દ્રવ્યથી - ક્ષેત્રથી – કાળથી – ભવથી અને ભાવથી અનંત પરાવર્ત થઇ ગયા, અનંતા ઉત્સર્પિણી–અવસર્પિણીરૂપ અનંતા કાળચક ફરી ગયાં, અનંત જન્મમરણરૂપ અનંતા ભવભ્રમણના આંટા-ફેરા થઇ ગયા, અનંતકાળ થયાં જીવને પરિભ્રમણ નિવૃત્તિ નથી થઇ, તો પણ 'વર્તમાન છે દોષ' – તે કર્મ કારણરૂપ દોષ હજુ – હમણાં – અદ્યાપિ તે જીવને વિષે વર્તમાન જ છે. વર્તમાનકાળને વિષે વર્તમાન જ છે, – વર્તી રહેલ જ છે; અને એમ ચક્લ્રમણન્યાયે – કર્મ કરતાં કરતાં અને ભોગવતાં ભોગવતાં ભવિષ્યમાં અનંતકાળ થવાયોગ્ય છે, એટલે કર્મના બંધનથી મૂકાવારૂપ – મુક્ત થવારૂપ મોક્ષને જીવ કેમ પામે? ફૂવાના રેંટની જેમ અરઘટ્ટઘટ્ટીન્યાયે પાણીનો ઘડો ભરાય અને ખાલી થાય, તેમ આમ ને આમ કર્મજલનો ઘડો ભરાયા કરે અને ખાલી થયા કરે, તો તો તે કર્મથી છુટકારારૂપ મોક્ષ – કર્મબંધન મોચનરૂપ મોક્ષ અનંતકાળે પણ કેમ થાય?'

જીવ સર્વથા કર્મરહિત થઈ શકે કે નહીં એ વિકલ્પ ઉપર ચિંતન કરતાં શિષ્યને એમ ભાસે છે કે પૂર્વકર્મનો ઉદય પૂર્ણ થતાં જીવને લાગેલાં અમુક કર્મો જ અકર્મરૂપ થઈ છૂટાં પડે છે, તેથી જીવ સર્વ કર્મથી રહિત થઈ શકતો નથી. જેમ કર્મરૂપ પુદ્દગલો કર્મત્વને છોડીને અકર્મરૂપ બની જાય છે, તેમ તે વખતે જીવના વિકારનું નિમિત્ત પામીને, અકર્મરૂપે રહેલાં પુદ્દગલો કર્મરૂપે પરિશમે છે. અમુક કર્મોનું છૂટવું અને તેનું જ અથવા તો અન્ય અકર્મરૂપ પરમાશુઓનું નવા કર્મરૂપે પરિશમવું એવી પ્રક્રિયા સંસારી જીવને નિરંતર ચાલ્યા જ કરે છે. જીવના વિકારથી કાર્મશ વર્ગશાનાં પુદ્દગલો કર્મરૂપ થઈને તેની સાથે બંધાયા કરે છે અને તેની કર્મશૃંખલા ચાલુ રહે છે. આમ, જીવ સદા અમુક કર્મોથી બંધાયેલો જ હોય છે. જીવ અને કર્મનો સંબંધ અનાદિથી છે, તેથી જીવનો કર્મથી સર્વથા મુકાવારૂપ મોક્ષ છે જ નહીં.

જેનો અનાદિ સંયોગ હોય, તેનો વિયોગ કદી પણ ન થાય; માટે જીવ અને કર્મનો વિયોગ કદી પણ થતો નથી. જીવ અને કર્મનો સંયોગ અનાદિ છે, તો તે બન્નેનો વિયોગ કોઈ કાળે થવો સંભવ જ નથી. અનાદિ એવા આ સંયોગનો ક્યારે પણ વિયોગ નહીં થાય. જીવ તથા કર્મ કદી પણ સદંતર છૂટાં નહીં પડે. પરંતુ જીવનો મોક્ષ તો કર્મવિયોગજન્ય છે, અર્થાત્ મોક્ષ તો કર્મના સદંતર વિયોગનું નામ છે; તો એવો મોક્ષ તો કઈ રીતે થાય? મોક્ષની વાત જ સંભવિત નથી, એટલે કે મોક્ષ જેવું કંઈ છે જ નહીં. કર્મવિયોગના અભાવે મોક્ષનો પણ અભાવ સિદ્ધ થાય છે.

જીવ-કર્મનો અનાદિ સંબંધ હોવાથી જીવનો કદી મોક્ષ સંભવે જ નહીં, કારણ કે જે અનાદિ છે તેનો અંત નથી હોતો. જે વસ્તુ અનાદિ હોય છે તે અનંત પણ હોય છે. જેમ જીવ અને આકાશનો સંબંધ અનાદિ છે તો તે સંબંધ અનંત પણ છે, તેમ જીવ-કર્મનો સંબંધ અનાદિ છે તો તે સંબંધ અનંત હોવો જોઈએ; અને જો તે સંબંધ

૧- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', પૃ.૩૦૩

અનંત હોય તો જીવનો કદી મોક્ષ થશે જ નહીં, કારણ કે કર્મસંયોગ સદા રહેશે. જીવ અને કર્મનો સંબંધ અનાદિ છે, તેથી જીવ અને આકાશના સંબંધની જેમ તે સંબંધ અનંત પણ સિદ્ધ થાય છે, એટલે મોક્ષ સાબિત થતો નથી. જીવ અને કર્મનો સંયોગ જીવ અને આકાશના સંયોગની જેમ અનાદિ છે, તેથી જીવ અને આકાશના સંયોગની જેમ જીવ અને કર્મના સંયોગની જેમ જીવ અને કર્મના સંયોગનો પણ વિનાશ નથી થતો. એટલે સંસારનો અભાવ થઈને ક્યારે પણ મોક્ષ થતો નથી.

આત્મા અને કર્મનો સંબંધ અનાદિ-અનંત છે, તેથી જીવનો મોક્ષ થવો અસંભવિત છે. મોક્ષની અસંભાવના વિષે અમોક્ષવાદીઓની આ દલીલ રજૂ કરતાં ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ 'અધ્યાત્મસાર'માં કહે છે કે જો જીવ અને કર્મનો સંબંધ અનાદિ છે, અર્થાત્ શુદ્ધ ચૈતન્ય એવા જીવે કરેલાં જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મનું પરસ્પર મળી જવું અનાદિથી છે, એટલે કે તે બંધપ્રવાહની શરૂઆત કાળથી કદાપિ થયેલી નથી એમ કહેશો તો આત્મા અને આકાશના સંબંધની જેમ, અર્થાત્ આત્મા અને આકાશનો સંબંધ જેમ અનાદિ હોવાથી અનંત પણ છે તેમ, આત્મા અને કર્મનો સંયોગ પણ અનંત - અંતરહિત થશે અને તેમ થવાથી કર્મનો સર્વથા અભાવ (મોક્ષ) નહીં થાય. જેમ આત્મા અને આકાશનો સંબંધ અનાદિ હોવાથી તે સર્વ કાળમાં સ્થિર રહે છે, તેમ જીવ અને કર્મનો સંબંધ પણ અનાદિ હોવાથી તે સર્વ કાળમાં સ્થિર રહે છે, તેમ જીવ અને કર્મનો સંબંધ પણ અનાદિ હોવાથી તે સર્વ કાળમાં સ્થિર રહે છે, તેમ જીવ અને

આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવે પણ 'તત્ત્વાર્થસાર'માં આ પ્રકારની દલીલ રજૂ કરતાં કહ્યું છે કે જે વસ્તુની ઉત્પત્તિનો આઘ સમય ન હોય તે અનાદિ કહેવાય છે અને અનાદિ હોવાથી તેનો કદી પણ અંત આવતો નથી. જો અનાદિ પદાર્થનો અંત થઈ જાય તો સત્નો વિનાશ થાય છે એમ માનવું પડે; પરંતુ સત્નો નાશ થવો તે સિદ્ધાંતથી અને યુક્તિથી વિરુદ્ધ છે. આ ન્યાયના કારણે અહીં એવી શંકા ઉપસ્થિત થઈ શકે કે અનાદિ કર્મબંધનની સંતતિનો નાશ કઈ રીતે થઈ શકે? અર્થાત્ કર્મબંધનનો કોઈ આરંભ નથી, તેથી તે અનાદિ છે અને જે અનાદિ હોય તેનો અંત પણ થવો ન જોઈએ; માટે જેમ કર્મબંધન અનાદિથી ચાલ્યું આવે છે, તેમ તે અનંત કાળ સુધી જીવની સાથે ચાલતું રહેવું જોઈએ. તેનો અર્થ એ થશે કે કર્મબંધનથી જીવ કદી સર્વથા મુક્ત થઈ શકશે નહીં. ર

तदानन्त्यान्न मोक्षः स्यात्तदात्माकाशयोगवत् ।।'

૨- જુઓ : આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવકૃત, 'તત્ત્વાર્થસાર', અધિકાર ૮, શ્લોક ૬

'आद्यभावात्र भावस्य कर्मबंधनसन्ततेः । अन्ताभावः प्रसज्येत दृष्टत्वादन्तबीजवत्।।'

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૪, શ્લોક ૧૨૨ 'अनादिर्यदि संबन्ध इष्यते जीव कर्मणोः ।

શિષ્ય જાશે છે કે આત્મા અને કર્મનો સંબંધ અનાદિ છે. કર્મો આત્મા સાથે અનાદિથી સંયુક્ત છે. અનાદિ કાળથી એ બન્નેનો સંસર્ગ હોવાથી અનાદિ કાળથી સંસારચક્ર પ્રવૃત્ત રહ્યું છે. આત્માનું શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપ અનાદિ કાળથી કર્મના આવરણ વડે ઢંકાયેલું છે. અનંત કાળ વીતી ગયો તોપણ કર્મકર્તૃત્વરૂપી દોષ હજી જીવને વિષે વિદ્યમાન જ છે, તેથી શિષ્યને લાગે છે કે જીવનો મોક્ષ ઘટી શકતો નથી. તેને પ્રશ્ન ઉદ્દ્ભવે છે કે અનંત કાળથી કર્મ કરવારૂપ દોષ વિદ્યમાન હોવાથી જીવનો મોક્ષ કઈ રીતે સંભવે? શું આત્માની ક્યારે પણ એવા પ્રકારની અવસ્થા થઈ શકે કે જેના કારણે જન્માંતર જ નષ્ટ થાય?

આમ, શિષ્ય મોક્ષપદ વિષે શંકા કરતાં પ્રસ્તુત ગાથામાં કહે છે કે શ્રીગુરુના સમાધાનથી તેને જીવનું કર્મકર્તૃત્વ અને કર્મફળભોક્તૃત્વ સિદ્ધ થયું છે. જીવ ભલે કર્મનો કર્તા અને ભોક્તા હોય, પણ તેનો મોક્ષ સંભવિત નથી. જીવનો મોક્ષ થવા યોગ્ય નથી, કારણ કે અનંત કાળથી કર્મ કરવારૂપ દોષ તેનામાં વિદ્યમાન છે. અનંત કાળ વીતવા છતાં પણ જીવનો એ દોષ ટળ્યો નથી, માટે જીવનો મોક્ષ થઈ શકે નહીં. આ પ્રમાણે શિષ્યે પોતાની શંકા રજૂ કરી, તેની નિવૃત્તિ અર્થે સંતોષકારક સમાધાનની શ્રીગુરુને તે વિનંતી કરે છે; અર્થાત્ જો જીવનો મોક્ષ હોય તો તે કઈ રીતે ઘટે છે તે સમજાવવા શ્રીગુરુને પ્રાર્થના કરે છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'કર્તા ભોકતા જીવ હો, આપ વચન સુપ્રમાણ; આ સંસાર અપાર છે, દુઃખ સુખની એ ખાણ. તેમાં જીવ ભ્રમણ કરે, પણ તેનો નહિ મોક્ષ; કારણ સંજ્ઞા ચારનું, જોર ઘણું અફસોસ. જન્મો વિવિધ પ્રકારના, દઢ કીધા સંસ્કાર; તીત્થો કાળ અનંત પણ, તે નહિ ઘટ્યા લગાર. અનુકૂળ વિષયે રાગથી, પ્રતિકૂળથી અસંતોષ; જીવ ચપળતા ભય વડે, તર્તમાન છે દોષ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૫-૨૩૬ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૪૫-૩૪૮)

२६m इरे ईंश कोगरे, देवरहा गानिमां ५, जारी का रे नहिंदि हुंश, इमें यरीय न डीमां पे.

ભૂમિકા ગાથા ૮૭માં શિષ્યે કહ્યું હતું કે જીવ કર્તા-ભોક્તા છે એ વાત યથાર્થ લાગે છે, પણ તેનો મોક્ષ થાય છે એ વાત યથાર્થ લાગતી નથી; કારણ કે અનંત કાળ વીત્યો છતાં કર્મ કરવારૂપ દોષ જીવમાં હજુ સુધી વિદ્યમાન છે. આ કર્મ કરવારૂપ દોષના કારણે અનંત કાળ વીત્યો છતાં હજી જીવ કર્મથી છૂટી શક્યો નથી, તેથી એવું અનુમાન થાય છે કે જીવની મુક્તિ થવી અશક્ય છે.

શિષ્યની સમજણશક્તિની વૃદ્ધિ થઈ છે અને તેની વિવેકબુદ્ધિનો પણ ઉઘાડ થયો છે. સંસારી જીવોનાં ચતુર્ગતિપરિભ્રમણ ઉપર દિષ્ટિ કરતાં તેને તેની મોક્ષ વિષેની શંકાના સમર્થનમાં બીજી એક તર્કયુક્ત દલીલ ઉદ્ભવે છે, જેની રજૂઆત શ્રીગુરુ સમક્ષ કરતાં તે કહે છે –

ગાથા 'શુભ કરે ફળ ભોગવે, દેવાદિ ગતિ માંય; અશુભ કરે નરકાદિ ફળ, કર્મ રહિત ન ક્યાંય.' (૮૮)

શુભ કર્મ કરે તો તેથી દેવાદિ ગતિમાં તેનું શુભ ફળ ભોગવે, અને અશુભ કર્મ કરે તો નરકાદિ ગતિને વિષે તેનું અશુભ ફળ ભોગવે; પણ જીવ કર્મરહિત કોઇ સ્થળે હોય નહીં. (૮૮)

જીવ અનંત કાળથી શુભાશુભ પરિણામ કર્યા જ કરે છે અને તેથી તેને ભાવારી તથાપ્રકારનો કર્મબંધ થયા કરે છે. જીવ સદા કર્મ કર્યા જ કરે છે અને તેને અનુરૂપ ફળ પણ તેને અવશ્ય સંપ્રાપ્ત થાય છે. જો તે શુભ કર્મ કરે તો તે દેવાદિ ગતિમાં પુષ્યરૂપ શુભ ફળ ભોગવે છે અને જો અશુભ કર્મ કરે તો તે નરકાદિ ગતિમાં પાપરૂપ અશુભ ફળ ભોગવે છે. આમ, જીવ જે પ્રકારનું કર્મ કરે છે, તેનું તથાપ્રકારનું ફળ તેણે અવશ્ય ભોગવવું પડે છે.

જીવ જો શુભ કર્મો બાંધે તો તેનાં ફળ દેવાદિ ગતિમાં ભોગવે છે અને અશુભ કર્મો બાંધે તો તેનાં ફળ નરકાદિ ગતિમાં ભોગવે છે. આ રીતે બન્ને પ્રકારનાં કર્મોને ભોગવવા જીવ તે તે ગતિમાં જાય છે અને તે તે પ્રકારનાં કર્મોને ભોગવતાં ભોગવતાં વળી નવાં નવાં કર્મો બાંધે છે. ચારે ગતિમાં કશે પણ જીવ કર્મરહિત દેખાતો નથી. કોઈ પણ સ્થળે જીવ કર્મ વિનાનો જણાતો નથી, તેથી જીવનો સર્વ કર્મના સંગથી રહિત એવો મોક્ષ થવો સંભવિત લાગતો નથી. જીવ શુદ્ધસ્વરૂપી હોવા છતાં અજ્ઞાન અવસ્થામાં તેને શુભાશુભરૂપ અશુદ્ધ ભાવ થાય છે. આ શુભાશુભ ભાવ કર્મબંધનાં કારણ છે અને સંસારને વધારનારા છે. અનંત કાળથી આ જીવે શુભાશુભ પરિણામ કર્યાં છે અને તેથી તેને તે તે પ્રકારના બંધ થયા કરે છે. ભિન્ન ભિન્ન અધ્યવસાય વડે ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારનાં કર્મ બંધાય છે. જીવ શુભ ભાવ કરે તો શુભ કર્મ ઊપજે છે અને અશુભ ભાવ કરે તો અશુભ કર્મ ઊપજે છે. વળી, તે કર્મોના નિમિત્તે જીવને શુભાશુભ ભાવ થાય છે. તે ભાવથી વળી પાછાં કર્મ ઊપજે છે. આમ, પરસ્પર કારણ-કાર્યભાવ વડે પરંપરા ચાલ્યા કરે છે.

જીવ જેવું કર્મ કરે તેવું ફળ તેને મળે છે. કર્મ તેને તથાપ્રકારનાં ફળ આપવા સમર્થ છે. જીવને પોતાનાં બાંધેલાં કર્મોનું ફળ મળ્યા વગર રહેતું નથી. આ જીવનમાં નહીં તો પછીના જીવનમાં પણ તેને તે કર્મનું ફળ અવશ્ય મળે છે. શુભ કર્મનું ફળ પુણ્યરૂપમાં અને અશુભ કર્મનું ફળ પાપરૂપમાં મળે છે. સારા કર્મનું સારું ફળ અને નઠારા કર્મનું નઠારું ફળ પ્રાપ્ત થાય છે. જીવ શુભ કર્મ કરીને તેનું ફળ દેવાદિ ગતિમાં અને અશુભ કર્મ કરીને તેનું ફળ દેવાદિ ગતિમાં અને અશુભ કર્મ કરીને તેનું ફળ દેવાદિ ગતિમાં

દયા, દાન, શીલ, વ્રત, તપ આદિ શુભ પરિણામ દ્વારા શુભ કાર્યો કરવાથી, કરાવવાથી તેમજ અનુમોદવાથી જીવને પુષ્યબંધ થાય છે, તેથી દેવ-મનુષ્યરૂપ શુભ ગતિમાં તેનું શુભ ફળ ભોગવે છે અને સુખ માણે છે. હિંસા, ચોરી, કપટ આદિ અશુભ પરિણામ દ્વારા અશુભ કાર્યો કરવાથી, કરાવવાથી તેમજ અનુમોદવાથી જીવને પાપબંધ થાય છે, તેથી નરક-તિર્યંચરૂપ અશુભ ગતિમાં તેનું અશુભ ફળ ભોગવે છે અને દુઃખથી રિબાય છે. શુભ આયુ, શાતા વેદનીય, શુભ નામ, ઉચ્ચ ગોત્ર એ ચાર અઘાતી કર્મની પુષ્ય પ્રકૃતિઓ છે; તેના ઉદયથી દેવાદિ ગતિ મળે છે અને તેમાં શુભ પ્રકૃતિઓના નિમિત્તે સુખનો અનુભવ થાય છે. અશુભ આયુ, અશાતા વેદનીય, અશુભ નામ, નીચ ગોત્ર એ ચાર અઘાતી કર્મની પાપ પ્રકૃતિઓ છે; તેના ઉદયથી નરકાદિ ગતિ મળે છે અને તેમાં અશુભ કામ, નીચ ગોત્ર એ ચાર અઘાતી કર્મની પાપ પ્રકૃતિઓ છે; તેના ઉદયથી નરકાદિ ગતિ મળે છે અને તેમાં અશુભ પ્રકૃતિઓના નિમિત્તે દુઃખનો અનુભવ થાય છે. ઘાતી કર્મની તમામ પ્રકૃતિઓ કેવળ પાપરૂપ જ છે.

અનંત કાળ વીતી ગયો તોપણ શુભાશુભ ભાવ કરવારૂપ દોષ જીવમાં વિદ્યમાન હોવાથી, શુભાશુભ કાર્યો કરી, શુભાશુભ ગતિમાં પરિભ્રમણ કરતો આ જીવ શુભાશુભ કળ ભોગવતો ભોગવતો જન્મ-મરણનાં અનંત દુઃખ અનુભવી રહ્યો છે. તે શુભ કર્મો કરે તો તેનાં ફળ કરે તો તેનાં ફળ કરે તો તેનાં ફળ નરકાદિ અશુભ ગતિમાં ભોગવે છે. શુભ કે અશુભ કર્મ કરવાથી તે અનુસાર દેવ-મનુષ્યરૂપ શુભ ગતિ કે નરક-તિર્યચરૂપ અશુભ ગતિમાં તે ભટકે છે.

સંસારી જીવો પોતાનાં કર્મો અનુસાર એક ગતિમાંથી બીજી ગતિમાં અને બીજી ગતિમાંથી ત્રીજી ગતિમાં, એમ ચારે ગતિમાં પરિભ્રમણ કર્યા કરે છે. આ પરિભ્રમણના પણ ચોક્ક્સ નિયમો છે. દેવ ગતિનો જીવ ત્યાંથી ચ્યવીને કાં મનુષ્ય ગતિમાં કાં તિર્યંચ ગતિમાં જ ઉત્પન્ન થાય છે. તે રીતે નારકીનો જીવ પણ આ બે ગતિમાંથી કોઈ એક ગતિમાં જ દેહ ધારી શકે છે. દેવ ગતિમાંથી જીવ સીધો દેવ કે નરક ગતિમાં જતો નથી, તેવી જ રીતે નરક ગતિમાંથી જીવ સીધો દેવ કે નરક ગતિમાં જતો નથી. તિર્યંચ ગતિનો જીવ આયુષ્ય પૂર્ણ કરીને દેવ, નરક, મનુષ્ય અને તિર્યંચ એમ ચારેમાંથી કોઈ પણ એક ગતિમાં જઈ શકે છે. મનુષ્ય ગતિમાંથી પણ ચારે ગતિઓમાં જવાનો માર્ગ ખુલ્લો છે. કર્મ અનુસાર આ ચાર ગતિઓમાં જીવનું આવાગમન ચાલુ જ છે.

જીવમાત્ર કર્મ સહિત હોવાથી પોતાનાં કર્મોનું ફળ ભોગવવા ચારે ગતિમાં પરિભ્રમણ કર્યા કરે છે. એક પણ ગતિમાં જીવ કર્મરહિત નજરે પડતો નથી. તે શુભ કર્મથી દેવાદિ ગતિ પામે છે, અશુભ કર્મથી નરકાદિ ગતિ પામે છે, પણ કોઈ ગતિમાં કર્મરહિત હોતો નથી. શુભ કર્મ કરે તો દેવાદિ ગતિમાં તેનું શુભ ફળ ભોગવે છે અને અશુભ કર્મ કરે તો નરકાદિ ગતિમાં તેનું અશુભ ફળ ભોગવે છે, પરંતુ કોઈ સ્થળે આત્મા કર્મ વિનાનો જોવા મળતો નથી. એવું કોઈ સ્થળ જણાતું નથી કે જ્યાં જીવને કર્મનો સંગ ન હોય.

શિષ્ય કહે છે કે આત્મા કર્મ વિનાનો કોઈ પણ કાળે અને સ્થળે હોતો નથી, માટે તે મોક્ષ પામી શકતો નથી અને તેથી જીવને સંસારમાંથી મુક્તિ મળી શકે છે એ વાત સ્વીકારી શકાતી નથી. સંસારમાં કોઈ પણ ક્ષેત્રમાં, કોઈ પણ કાળે જીવ કર્મરહિત હોતો નથી, તેથી સર્વ કર્મથી રહિત થવારૂપ મોક્ષ થઈ શકે એ વાત યથાર્થ ભાસતી નથી. આત્મા કોઈ પણ ગતિમાં કર્મરહિત ન હોવાથી શુભાશુભ ભાવથી રહિત તેમજ શુભાશુભ કર્મથી રહિત એવો મોક્ષ હોય એમ લાગતું નથી.

શિષ્યની આ દલીલ જોતાં એમ પ્રતીત થાય છે કે તેને યથાર્થ નિર્ણય થયો છે કે અશુભ ભાવ તો મોક્ષને અવરોધનારા છે જ, પરંતુ શુભ ભાવ પણ મોક્ષને અવરોધે છે. શુભ ભાવથી પુણ્યબંધ જ થાય છે અને તેનું ફળ ક્યારે પણ મોક્ષરૂપ નથી. શુભ ભાવ એ બંધભાવ છે અને તેનું ફળ દેવાદિ ગતિરૂપ સંસાર જ છે. જ્યાં સુધી શુભ ભાવ વિદ્યમાન છે ત્યાં સુધી મોક્ષ સંભવિત નથી. આ ગાથામાં રહેલ આ આધ્યાત્મિક રહસ્ય વિષે ડૉ. તરુલતાબાઈ મહાસતીજી કહે છે —

'અહીં 'શુભ કરે ફળ ભોગવે, દેવાદિ ગતિ માંથ' એમ કહી શિષ્યે ભ્રમને તોડ્યો છે. પોતાની સત્ય સમજણને રજૂ કરી છે. સમાજમાં બહુ મોટી ભ્રામક માન્યતા ચાલે છે કે – પુણ્ય કરવાથી મોક્ષ મળે છે. જેમ પુણ્ય કરવાથી સંસારસુખનાં સાધનો મળી રહે તેમ મોક્ષ પણ કોઇ શ્રેષ્ઠ સ્થાન છે. દેવલોકથી પણ ઊંચું સ્થાન છે તેથી ઘણાં પુણ્ય કરનારો મોક્ષમાં જાય છે અને ત્યાંનાં સુખો ભોગવે છે.

વળી આ માન્યતાના અનુસંધાનમાં એક બીજો ભ્રમ પણ સેવાઈ રહ્યો છે તે એ કે પુણ્યકરણી, તે જ ધર્મ છે. તેનાથી જુદો બીજો કોઈ ધર્મ નથી. દાન વગેરે કરીને માણસો સંતોષ માનતા હોય છે કે આપણે ધર્મ કરી લીધો. આવા ધર્મથી મોક્ષ માને છે.'

શિષ્યને એટલો નિર્ધાર થયો છે કે મોક્ષ અને સ્વર્ગ એ બન્ને વસ્તુ ભિન્ન ભિન્ન છે અને શુભ કર્મથી દેવાદિ ગતિરૂપ શુભ કળ પ્રાપ્ત થાય છે, અર્થાત્ શુભ કર્મથી મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી. મોક્ષ થવો એટલે સમસ્ત શુભાશુભ કર્મનો અંત આવવો. પરંતુ શિષ્યની દષ્ટિ માત્ર શુભાશુભ ભાવ વડે થતી પ્રવૃત્તિઓ ઉપર જ હોવાથી તેને મોક્ષના અસ્તિત્વ વિષે શંકા જાગી છે. તેને એમ લાગે છે કે શુભાશુભ ભાવમાં પ્રવૃત્ત થયેલો જીવ શુભાશુભ કર્મ ઉપાર્જન કરતો રહે છે અને તેનાં ફળરૂપે સ્વર્ગ-નરક આદિમાં ફર્યા કરે છે. વળી, ત્યાં કર્મનાં ફળને ભોગવતાં ભોગવતાં સંસારપરિભ્રમણને યોગ્ય એવાં પરિણામો કરવાના કારણે નવીન કર્મ ઉપાર્જન કરે છે. જીવ શુભાશુભ ભાવ દ્વારા નવાં નવાં કર્મો બાંધતો જ રહે છે, તેથી કર્મરહિત જીવ અથવા કર્મબંધમાં કારણભૂત એવા શુભાશુભ ભાવથી રહિત જીવ કશે પણ દેખાતો નથી. તાત્પર્ય કે સર્વ કર્મથી રહિત અવસ્થારૂપ મોક્ષ સંભવતો નથી. આ રીતે શિષ્ય એમ જણાવે છે કે જીવનો મોક્ષ ક્યારે પણ થતો નથી, અર્થાત્ મોક્ષ નથી.

મોક્ષના અસ્તિત્વ વિષેની શિષ્યની પ્રસ્તુત શંકા પૂર્વ મીમાંસા દર્શનના પ્રભાવથી થયેલી જણાય છે. શ્રી જૈમીનિ દ્વારા પ્રણીત આ દર્શન મોક્ષનો અસ્વીકાર કરે છે. તે સ્વર્ગપ્રાપ્તિ અને તેનાથી મળતાં સુખને અંતિમ લક્ષ માને છે. તેથી યજ્ઞાદિ કર્મોને લગતાં વિધિ-વિધાનો, અનુષ્ઠાનનું વિશદ નિરૂપણ આ દર્શનમાં છે; યજ્ઞાદિ શુભ કર્મ કરવાથી સ્વર્ગની પ્રાપ્તિ થાય છે, તેથી તેઓ વેદવિહિત કર્મને વિશેષ મહત્ત્વ આપે છે.

તેમના મત અનુસાર વેદ ત્રણ પ્રકારનાં કર્મો બતાવે છે. (૧) કામ્ય કર્મ - કોઈ વિશેષ કામના પ્રેરિત કર્મો. દા.ત. સ્વર્ગની કામનાવાળાએ યજ્ઞ-યાગાદિ કર્મો કરવાં વગેરે. (૨) પ્રતિષિદ્ધ કે નિષિદ્ધ કર્મો - જે અનર્થકારક પરિણામ નિપજાવે તેવાં કાર્યો હોય તે ન કરવાં. દા.ત. વિષ લગાડેલ શસ્ત્રથી મારેલાં પશુનું માંસ ન ખાવું. (૩) નિત્ય તથા નૈમિત્તિક કર્મો '- નિર્હેતુક થતાં નિત્ય કરવાં જેવાં કર્મો, દા.ત. સંધ્યાવંદન આદિ તથા અમુક ખાસ પ્રસંગે કરવામાં આવતાં કર્મો જેવાં કે શ્રાદ્ધ આદિ. તે કહે છે કે પ્રત્યેક કર્મમાં પુષ્ય-પાપ ઉત્પન્ન કરવાની શક્તિ (અપૂર્વ) હોય છે. કર્મ ૧- ડૉ. તરુલતાબાઈ મહાસતીજી, 'હું આત્મા છું', ભાગ-૨, પ્.૧૬૩

દ્વારા અપૂર્વ અને અપૂર્વ દ્વારા કર્મફળ નીપજે છે. તે એમ માને છે કે કર્મ થાય તેનું અદેષ્ટ બને છે અને અદેષ્ટ સમય આવતાં ફળ આપે છે. ફળનિયામક ઈશ્વરની તેમને જરૂર લાગતી નથી. કર્મમીમાંસાનો મુખ્ય ઉદ્દેશ એ છે કે મનુષ્ય વેદ દ્વારા પ્રતિપાદિત કર્મોમાં પોતાને જોડીને પોતાના આત્માનું કલ્યાણ સાધે.

મીમાંસકોની દેષ્ટિ પ્રમાણે વેદવિહિત કર્મો સુખ આપે છે અને વેદનિષિદ્ધ કર્મો દુઃખ આપે છે. સુખ ભોગવવાના સ્થળનું નામ સ્વર્ગ છે અને દુઃખ ભોગવવાનું સ્થળ તે નરક છે. આના પણ પાછા સાત પ્રકાર પાડવામાં આવ્યા છે. પ્રાચીન મીમાંસકોના મત મુજબ આ લોક સિવાય પણ સ્વર્ગ, નરક જેવા પરલોક છે, પણ તેમના મત અનુસાર મોક્ષ જેવી કોઈ વસ્તુ જ નથી.

પ્રાચીન મીમાંસકોના મત અનુસાર સ્વર્ગ જ જીવનનું અંતિમ લક્ષ હોવાથી તેમણે મોક્ષને કાંઈ મહત્ત્વ આપ્યું ન હતું. શ્રી જૈમીનિ તથા શ્રી શબરે સ્વર્ગપ્રાપ્તિ અર્થે ધર્મનાં અનુષ્ઠાનો બતાવ્યાં છે. સર્વ કર્મોનો અંતિમ ઉદ્દેશ સ્વર્ગપ્રાપ્તિનો છે. 'સ્વર્गकामો यजेत' - સ્વર્ગની કામના કરનારે યજ્ઞ કરવો જોઈએ એવો ક્રિયામાર્ગ પૂર્વ મીમાંસા દર્શન સ્વીકારે છે. વૈદિક કર્મકાંડ જીવન પર્યંત કરવાં આવશ્યક છે એ મીમાંસા દર્શનની માન્યતા છે. 'શતપથ બાહ્મણ'માં કહ્યું છે કે અગ્નિહોત્ર યાવજ્જીવન કર્તવ્ય છે. અગ્નિહોત્ર નામનો હોમ આખી જિંદગી સુધી કરવો જોઈએ. ધ

તેમના મત પ્રમાણે જરા અને મરણ સુધી યાવજજીવ યજ્ઞકિયા કરવી જોઈએ. યજ્ઞ એ શુભ ક્રિયા છે અને તેનાથી સ્વર્ગની પ્રાપ્તિ થાય છે. અગ્નિહોત્ર કરવાથી સ્વર્ગ મળે છે. આ અગ્નિહોત્રની હોમ-હવનની ક્રિયાથી સ્વર્ગ તો મળી શકે છે, પરંતુ અપવર્ગ - મોક્ષ મળી શકતો નથી. અગ્નિહોત્ર સ્વર્ગરૂપી સાધ્યનું સાધન છે, માટે તે ક્રિયાથી તો મોક્ષ મળે તેમ નથી.

મીમાંસકો સ્વર્ગનું ફળ આપનારી અગ્નિહોત્ર ક્રિયાને આખી જિંદગી સુધી કરતા રહેવાનું કહે છે. મૃત્યુ સુધી અગ્નિહોત્રની જ ક્રિયા કરવાનું કહેવામાં આવ્યું છે, તો પછી મોક્ષ માટે પુરુષાર્થ ક્યારે કરવાનો? અને શું કરવાનો? જો આખી જિંદગી સુધી સ્વર્ગપ્રાપ્તિ માટે અગ્નિહોત્રની ક્રિયામાં જ સમય જાય તો એવો સમય ક્યારે મળે કે જ્યારે મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે કોઈ ક્રિયા કરી શકાય? આખા જીવન દરમ્યાન અગ્નિહોત્ર જ કરનારને એવો કયો કાળ બાકી રહે કે જ્યારે તે મોક્ષને સાધક કોઈ ક્રિયા કરી શકે? જો મોક્ષ હોય તો મોક્ષસાધક ક્રિયાનો ઉલ્લેખ તેમનાં શાસ્ત્રોમાં હોવો જોઈએ, પણ ૧- જુઓ : 'શતપથ બાહ્મણ', ૧૨-૪-૧-૧

'दीर्घसत्त्रॅं ह वाऽएतऽउपयन्ति । येऽग्निहोत्रं जुह्नत्येतद्वै जरामर्यं सत्त्रं यदग्निहोत्रं, जरवा वा होवारमान्मुच्यन्ते मृत्युना वा ।' એવું કોઈ વિધાન મળતું નથી. મરતાં સુધી અગ્નિહોત્ર જ કરવાનું કહ્યું છે, માટે મોક્ષ હોય એમ મનાતું નથી.

જો તેઓ મોક્ષને માનતા હોત તો એમ જણાવત કે અમુક વર્ષ સુધી અથવા અમુક યોગ્યતાની પ્રાપ્તિ પર્યંત અગ્નિહોત્ર કરો અને ત્યારપછી મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે સાધના કરો. પરંતુ તેમણે મોક્ષ સંબંધી કે મોક્ષપ્રાપ્તિના સાધન સંબંધી કંઈ કહ્યું જ નથી અને ફક્ત સ્વર્ગપ્રાપ્તિ માટે આખી જિંદગી સુધી અગ્નિહોત્ર કરવાનું કહ્યું છે. અગ્નિહોત્ર આખા જીવન પર્યંત કરવાનું છે, તો પછી મોક્ષરૂપી સાધ્યનું તો કોઈ સાધન જ ન રહ્યું; અને જો મોક્ષરૂપી સાધ્યનું કોઈ સાધન જ ન હોય તો પછી મોક્ષના સાધનના અભાવમાં મોક્ષરૂપી સાધ્યનો પણ અભાવ થશે. જો મોક્ષ સાધ્ય હોત અને મોક્ષપ્રાપ્તિનું કોઈ સાધન હોત અને તે પ્રાપ્ત થતું હોત તો અગ્નિહોત્ર મૃત્યુ પર્યંત, આખી જિંદગી સુધી કરવાનું શા માટે કહેવામાં આવત?

જેનું અસ્તિત્વ છે અને જે પ્રાપ્ય છે, તેના માટે ક્રિયા કરવાની આજ્ઞા કરી છે અને મોક્ષનું અસ્તિત્વ જ નથી, માટે તેની પ્રાપ્તિ માટે કોઈ ક્રિયા કરવાની આજ્ઞા કરી નથી. સ્વર્ગપ્રાપ્તિ માટે આખી જિંદગી સુધી અગ્નિહોત્ર કરવાની આજ્ઞા કરી છે અને મોક્ષપ્રાપ્તિનો ઉપાય વગેરે કંઈ નથી બતાવ્યું. મોક્ષ માટે તો એક પણ કથન કરવામાં આવ્યું જ નથી. તેથી તેનો અર્થ એમ છે કે મોક્ષ જેવી કોઈ વસ્તુ જ નથી. મોક્ષ નથી માટે જ તેના વિષે કંઈ કહ્યું નથી. તેમના મત અનુસાર આખી જિંદગી સુધી અગ્નિહોત્ર કરવાથી સ્વર્ગપ્રાપ્તિ થાય છે, પરંતુ મોક્ષની સાધના બતાવી નથી.

વૈદિક કર્મો કરવાથી કેવાં ફળ પ્રાપ્ત થાય છે એ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં પ્રાચીન મીમાંસકો કહે છે કે એ કર્મોનું ફળ સ્વર્ગપ્રાપ્તિ છે. નિરતિશય સુખનું નામ જ સ્વર્ગ છે. પરંતુ જેમ અન્ય દર્શનોમાં જીવનનું અંતિમ ધ્યેય મોક્ષ માનવામાં આવેલ છે, તેમ પૂર્વ મીમાંસામાં પણ પાછળથી મોક્ષનો ખ્યાલ રજૂ થયેલ છે. પ્રાચીન મીમાંસકો સ્વર્ગ-પ્રાપ્તિને પ્રાધાન્ય આપતા, પરંતુ પાછળના વિચારકોએ અન્ય દર્શનોની અસર તળે સ્વર્ગપ્રાપ્તિના સ્થાને નિઃશ્રેયસનો ખ્યાલ રજૂ કરેલ છે. અન્ય દર્શનોના પ્રભાવના કારણે પછીના કાળમાં ધીમે ધીમે મીમાંસકો પણ અન્ય ભારતીય દર્શનોની જેમ મોક્ષને જીવનના ચરમ લક્ષ્ય તરીકે સ્વીકારવા લાગ્યા. શ્રી પ્રભાકર તથા શ્રી કુમારિલે મોક્ષનો ખ્યાલ - તેનાં સ્વરૂપ અને સાધનનો વિચાર સ્પષ્ટ કર્યો. સકામ કર્મોનાં અનુષ્ઠાન વડે પાપ-પુણ્ય સંભવે છે, પરંતુ નિષ્કામ ધર્માચરણ વડે આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે અને આત્મજ્ઞાનના પ્રભાવ વડે પૂર્વે કરેલાં કર્મો નષ્ટ થાય છે અને પરિણામે મનુષ્ય ભવબંધનથી મુક્ત થાય છે.

પ્રસ્તુત ગાથામાં શિષ્ય ઉપર પ્રાચીન મીમાંસાવાદીઓની માન્યતાનો પ્રભાવ જણાય

છે. શિષ્ય શુભાશુભ કર્મના ફળરૂપ સ્વર્ગ-નરકાદિ ગતિઓના અસ્તિત્વનો જ સ્વીકાર કરે છે. તે કહે છે કે શુભ કર્મ કરવાથી દેવાદિ ગતિ મળે છે અને અશુભ કર્મ કરવાથી નરકાદિ ગતિ મળે છે. જો જીવ શુભ કર્મો કરે તો દેવાદિ ગતિમાં તે શુભ કર્મનું ફળ ભોગવે છે અને જો તે અશુભ કર્મો કરે તો નરકાદિ ગતિમાં તે અશુભ કર્મનું ફળ ભોગવે છે; પરંતુ કશે પણ કર્મરહિત દશા જણાતી નથી. તેથી સર્વ કર્મના અભાવરૂપ મોક્ષ સંભવિત નથી. કોઈ સ્થાન એવું નથી કે જ્યાં જીવને કોઈ કર્મનો સંગ ન હોય, માટે મોક્ષ નથી.

આમ, અનંત કાળથી કર્મના કરવાપણારૂપ દોષ વિદ્યમાન હોવાથી તથા કોઈ પણ સ્થળે જીવ કર્મરહિત જણાતો ન હોવાથી શિષ્યને જીવનો મોક્ષ થવો શક્ય લાગતો નથી. તેને લાગે છે કે મોક્ષ જેવી કોઈ સ્થિતિ જગતમાં અસ્તિત્વ ધરાવતી નથી. તેને સંશય થાય છે કે મોક્ષ જેવું કંઈ છે કે નહીં? તે મોક્ષ સંબંધી શંકામાં અટવાયો છે. તે વિકલ્પોની જાળમાં ફસાઈ ગયો છે. મોક્ષ છે કે નહીં એવી દિધા તેના અંતરમાં નિર્માણ થઈ છે અને તે બાબતમાં તે યથાર્થ નિર્ણય કરી શકતો નથી, તેથી તે શ્રીગુરુને વિનંતી કરે છે કે 'અનુમહ કરી મારી આ શંકાને નિવૃત્ત કરો. યથાર્થ સમાધાન દ્વારા મારા સંદેહનું નિવારણ કરો.' શ્રીગુરુ હવેની ત્રણ ગાથાઓ (૮૯-૯૧) દ્વારા સચોટ સમાધાન આપી શિષ્યની શંકા દૂર કરશે. શિષ્યની વિચારધારા કઈ રીતે સત્યથી વેગળી છે, તે જે માને છે તે કઈ રીતે ઉચિત નથી તે દર્શાવી શ્રીગુરુ શિષ્યની ભ્રમણા દૂર કરશે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'શુભ કરે ફળ ભોગવે, પુષ્યતશું સુખરૂપ; અનુકૂળ ભોગ વિષય મળે, મળે વળી પદ ભૂપ. પરભવમાં પણ પુષ્યથી, દેવાદિ ગતિ માંચ; દિવ્ય સુખોને અનુભવે, સુરતરુની જ્યાં છાંય. અને અઢારે પાપનાં, અસદાચરણ કઠોર; અશુભ કરે નરકાદિ ફળ, જ્યાં અનંત દુઃખ ઘોર. ચોવીસ દંડક ચાર ગતિ, ચોરાસી લખ માંહી; કરે કર્મફળ ભોગવે, કર્મ રહિત ન ક્યાંચ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૬ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૪૯-૩૫૨)

केम शिक्षा रेश का रेश्वर का का है। का रेश का हिंदी के का हिंदी

ગાથા ૮૮માં શિષ્યે કહ્યું કે જો જીવ શુભ કર્મ કરે તો દેવાદિ ગતિમાં તેનું શુભ ફળ ભોગવે છે અને જો તે અશુભ કર્મ કરે તો નરકાદિ ગતિમાં તેનું અશુભ ફળ ભોગવે છે; પણ જીવ કર્મરહિત કોઈ સ્થળે હોતો નથી.

અામ, ગાથા ૮૭-૮૮માં શિષ્યે મોક્ષપદ અંગેની શંકાના સમર્થનમાં બે દલીલો કરી. શ્રીગુરુ તેનું નિરસન ગાથા ૮૯ થી ૯૧માં કરે છે. ગાથા ૮૭માં શિષ્યે એવી શંકા કરી હતી કે 'કર્તા ભોક્તા જીવ હો, પણ તેનો નહિ મોક્ષ; વીત્યો કાળ અનંત પણ, વર્તમાન છે દોષ', અર્થાત્ અનંત કાળથી જીવ કર્મ કરવારૂપ દોષથી યુક્ત છે. અનંત કાળ વીત્યો છતાં તેનાથી તે છૂટી શક્યો નથી, વર્તમાનમાં પણ તે દોષનું વિદ્યમાનપશું છે; તેથી એમ અનુમાન થાય છે કે જીવનો મોક્ષ થવો સંભવિત નથી, કારણ કે જો જીવનો મોક્ષ થવો સંભવિત હોત તો અનાદિ કાળ થઈ ગયો છતાં આજ પર્યંત તેનો મોક્ષ શા માટે થયો નહીં? આ શંકાનું સમાધાન શ્રીગુરુએ બે ગાથા દારા આપ્યું છે. પ્રસ્તુત ગાથામાં શ્રીગુરુએ મોક્ષપદની સિદ્ધિ કરી છે તથા ગાથા ૯૦માં અનંત કાળ વીતવા છતાં મોક્ષ શા માટે થયો નથી અને તે શું કરવાથી થાય તેનું સરળ પણ સચોટ શબ્દોમાં નિરૂપણ કર્યું છે.

સમ્યક્ત્વના મુખ્ય નિવાસભૂત એવાં છ પદમાંથી પાંચમા પદની - મોક્ષપદની સિદ્ધિ કરતાં શ્રીગુરૂ કહે છે –

ંજેમ શુભાશુભ કર્મપદ, જાણ્યાં સફળ પ્રમાણ; તેમ નિવૃત્તિ સફળતા, માટે મોક્ષ સુજાણ.' (૮૯)

જેમ શુભાશુભ કર્મપદ તે જીવના કરવાથી તેં થતાં જાણ્યાં, અને તેથી તેનું અર્થ ભોક્તાપણું જાણ્યું, તેમ નહીં કરવાથી અથવા તે કર્મનિવૃત્તિ કરવાથી તે નિવૃત્તિ પણ થવા યોગ્ય છે; માટે તે નિવૃત્તિનું પણ સફળપણું છે; અર્થાત્ જેમ તે શુભાશુભ કર્મ અફળ જતાં નથી, તેમ તેની નિવૃત્તિ પણ અફળ જવા યોગ્ય નથી; માટે તે નિવૃત્તિરૂપ મોક્ષ છે એમ હે વિચક્ષણ! તું વિચાર. (૮૯)

કોઈ પણ કાર્યનું ફળ અવશ્ય હોય છે, અર્થાત્ કોઈ પણ કાર્ય અફળ જતું ભાવાર્થ નથી. જેમ શુભાશુભ કર્મ કરવાથી તેનું ફળ અવશ્ય પ્રાપ્ત થાય છે, તેમ શુભાશુભ કર્મથી નિવૃત્ત થવાનું ફળ પણ જીવને અવશ્ય મળે છે. જેમ શુભાશુભ ભાવમાં પ્રવૃત્ત થયેલા જીવનો પુરુષાર્થ નિષ્ફળ જતો નથી, તેમ શુભાશુભ ભાવોથી નિવૃત્ત થવાનો જીવનો પુરુષાર્થ પણ નિષ્ફળ જતો નથી. જેમ શુભ કે અશુભ ભાવમાં પ્રવૃત્ત થયેલો જીવ સુગતિ કે દુર્ગતિમાં જઈ સુખ-દુઃખરૂપ ફળને અવશ્ય પામે છે, તેમ શુભાશુભ બન્ને પ્રકારના ભાવોથી નિવૃત્ત થતાં જીવ મોક્ષફળને અવશ્ય પામે છે. શ્રીગુરુ શિષ્યને મોક્ષપ્રાપ્તિની બાંહેધરી આપતાં કહે છે કે 'જેમ શુભાશુભ કર્મ અફળ જતાં નથી, અર્થાત્ તે સંસારફળ અવશ્ય આપે છે; તેમ શુભાશુભ કર્મની નિવૃત્તિ પણ અફળ જવા યોગ્ય નથી, અર્થાત્ તે મોક્ષફળ અવશ્ય આપે છે એમ હે સુજાણ! તું સમ્યક્ પ્રકારે વિચાર કરી નિશ્ચય કર.'

મિથ્યાત્વાદિ ભાવો તેમજ રાગાદિ કષાયો એ કર્મબંધનાં કારણો છે. જીવ જેમ જેમ તે કારણોને સેવે છે, તેમ તેમ તે નવાં કર્મો બાંધતો જાય છે. બાંધેલાં કર્મો કાળ પાકતાં ઉદયમાં આવીને તથાપ્રકારનાં ફળ આપે છે અને જીવે તે અવશ્ય ભોગવવાં પડે છે. પોતાના દોષના કારણે બાંધેલાં શુભ કે અશુભ કર્મોનું ફળ જીવે અવશ્ય ભોગવવું પડે છે. શિષ્યની શંકાઓના શ્રીગુરુએ આપેલ સમાધાનથી શિષ્યને આત્માના કર્તૃત્વ-ભોક્તૃત્વની શ્રદ્ધા થાય છે. હવે મોક્ષપદની શ્રદ્ધા કરાવતાં શ્રીગુરુ શિષ્યને કહે છે કે 'પૂર્વે જણાવેલું જીવનું કર્મ કરવાપણું અને કર્મફળ ભોગવવાપણું જેમ તેં સપ્રમાણપણે જાણ્યું છે, તેમ કર્મથી નિવર્તવાપણું પણ સારી રીતે સમજી લેવું જરૂરી છે. જેમ જેમ જીવ કર્મબંધનાં કારણોથી નિવૃત્ત થાય છે, તેમ તેમ તે કર્મબંધનથી પણ વિરામ પામતો જાય છે. તે અંશતઃ વિરામ આગળ વધતાં સર્વથા વિરામ પામે છે અને જીવનો મોક્ષ થાય છે એમ હે વિચક્ષણ! તું સારી રીતે જાણ.'

વિશેષાર્થ જૈન દર્શનના કર્મસિદ્ધાંતમાં કર્તા, કર્મ અને કર્મફળની દષ્ટિએ કર્તાથી કર્મ, કર્મથી કર્મફળ અને કર્મફળથી કર્તાનો સીધો સંબંધ છે. જ્યારે પણ કોઈ જીવ સત્-અસત્ કાર્ય કરે છે, તે ક્ષણે તેના આત્મામાં, પોતાનાં કરેલાં કાર્ય અનુસાર કર્મનો આસવ થાય છે અને કર્મના આસવ અનુસાર ઉદય થતાં જીવ પોતાનાં કરેલાં કર્મોનાં તથાપ્રકારનાં ફળ ભોગવવા માટે વિભિન્ન રૂપોમાં - વિભિન્ન યોનિઓમાં જન્મ લે છે. કર્મમલાચ્છાદિત પ્રત્યેક આત્મા જન્મ, જરા, મરણની અનંત યાતનાઓ અને અગણ્ય કષ્ટો સહન કરતો ચોર્યાસી લાખ યોનિઓમાં ભટકે છે. નિત્યનિગોદ, ઇતર નિગોદ, પૃથ્વીકાય, અપકાય, અગ્નિકાય અને વાયુકાય દરેકની સાત લાખ; પ્રત્યેક વનસ્પતિકાયની દસ લાખ; દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય દરેકની બે લાખ; દેવ, નારકી અને તિર્યંચ પ્રત્યેકની ચાર લાખ અને મનુષ્યની ચૌદ લાખ એમ મળીને ચોર્યાસી લાખ યોનિઓ છે. પોતાનાં શુભાશુભ કર્માનુસાર જીવ જન્મ-મરણરૂપી શૃંખલામાં જકડાયેલો રહે છે. કર્મ જ જીવનાં પુનર્જન્મનું કારણ છે. કરેલાં કર્મો અનુસાર પુનર્જન્મ લઈ જીવ

કર્મોનું ફળ ભોગવે છે.

શિષ્ય આત્માનું અસ્તિત્વ, નિત્યત્વ, કર્તૃત્વ અને ભોક્તૃત્વ સ્વીકારે છે, પણ તેને મોક્ષપદ વિષે હજી સંશય છે. તેને શંકા છે કે આત્માની કર્મથી મુક્તિ હશે કે નહીં? શું કર્મનો ક્ષય થઈ શકે? મોક્ષનું અસ્તિત્વ માનવું કે નહીં એવા વિકલ્પોની જાળમાં તે કસાઈ ગયો છે અને એ બાબતમાં તે કાંઈ નિર્ણય કરી શકતો નથી. પોતાનો સંશય છેદવા તે શ્રીગુરુને વિનંતી કરે છે કે 'કૃપા કરી મારા સંશયનું નિવારણ કરો અને મને બતાવો કે મારી યુક્તિમાં શો દોષ છે, જીવનો મોક્ષ કેવી રીતે સંભવે છે.' શ્રીગુરુ હવે તેના સંશયનું નિવારણ કરે છે. સંક્ષેપમાં પણ સમર્થ અને મર્મવેધક ઉત્તર દારા શ્રીગુરુ તેને મોક્ષપદની બાબતમાં નિર્ણય કરાવે છે.

આત્મા પોતાનાં કર્મનો કર્તા અને ભોક્તા છે એમ પ્રતિપાદન કર્યા પછી હવે આત્માનો મોક્ષ છે એમ શ્રીગુરુ ઉપદેશે છે. શિષ્યને નિશ્ચયપૂર્વક લક્ષમાં આવ્યું છે કે શુભાશુભ ભાવમાં પ્રવૃત્ત થયેલ જીવનો પુરુષાર્થ અફળ જતો નથી, અર્થાત્ શુભાશુભ ભાવમાં પ્રવૃત્ત થયેલો જીવ સુખ-દુઃખરૂપ ફળને અવશ્ય પામે છે. શિષ્યને આ સિદ્ધાંત પ્રમાણ સહિત સિદ્ધ થયો છે, તેથી આ જ સિદ્ધાંત ઉપર વધુ પ્રકાશ નાખીને શ્રીગુરુ મોક્ષપદની સિદ્ધિ કરે છે.

શ્રીગુરુ કહે છે કે 'જીવમાં થતાં શુભાશુભ પરિણામનાં કારણે શુભાશુભ કર્મબંધન થાય છે અને કર્મના કરવાપણાથી તેનું ભોક્તાપણું છે એમ તને યથાર્થપણે સમજાયું છે. હવે તું એ વાતનો નિર્ધાર કર કે શુભાશુભ ભાવ, એ દોષરૂપ છે અને તે કરવા - ન કરવામાં જીવ સ્વતંત્ર છે; તેથી જીવ શુભાશુભ ભાવથી નિવૃત્ત થઈ શકે છે. જેમ પ્રવૃત્તિનું સફળપણું છે, તેમ નિવૃત્તિનું પણ સફળપણું છે. જેમ શુભાશુભ કર્મ અફળ જતાં નથી, તેમ તેની નિવૃત્તિ પણ અફળ જવા યોગ્ય નથી; અર્થાત્ શુભાશુભ કર્મની નિવૃત્તિ કરવાથી મોક્ષફળ પ્રાપ્ત થાય છે.'

અજ્ઞાન અવસ્થામાં બાંધેલાં કર્મોનો જીવ કર્તા અને ભોક્તા છે. કષાયથી અનુરંજિત થયેલી યોગપ્રવૃત્તિ વડે જીવ દ્રવ્યકર્મને આકર્ષી, તે વડે બંધાય છે. તે બાંધેલાં કર્મ કાળ પાકતાં ફળ આપે છે અને ત્યારે જીવ સુખ-દુઃખને વેદે છે. વળી, તે વખતે તે રાગ-દેષરૂપે પરિણમી નવાં કર્મ બાંધે છે. આ રીતે અનાદિ કાળથી જીવ કર્મનો વ્યવસાયી છે. જીવ રાગ, દેષ, અજ્ઞાન વડે સતત કર્મો બાંધ્યા કરે છે, પરંતુ તે કર્મો ટાળી શકાય છે. શુદ્ધ ભાવ કરવાથી કર્મરહિત થવાય છે. કર્મનો નિઃશેષ - બીજ સહિત નાશ થતાં આત્મા પોતાનું સ્વાભાવિક સ્વરૂપ પ્રાપ્ત કરે છે. પોતાના સ્વભાવમાં આત્મા પરિણમે તે મોક્ષ છે. પરભાવમાં પરિણમવું તે બંધ છે અને પરભાવથી છૂટવું તે મોક્ષ છે.

બંધ અને મોક્ષ એ બન્ને આત્માની અવસ્થાવિશેષ છે. મિથ્યાત્વાદિ વડે બાંધેલો કર્મ સાથેનો જે સંબંધ, તે બંધ કહેવાય છે. તે કર્મબંધના કારણે જીવ નરક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવરૂપ ચાર ગતિમાં પરિભ્રમણ કરતાં કરતાં અત્યંત દારુણ દુઃખનો અનુભવ કરે છે. સંસારમાં જન્મ, જરા, મરણ, રોગ, ક્ષુધા, તૃષા આદિ અનંત દુઃખોનો તે અનુભવ કરે છે. આજ સુધી તેને એક ક્ષણને માટે પણ નિરાકુળ સુખની પ્રાપ્તિ થઈ નથી. કર્મનો વિયોગ થતાં જીવનો મોક્ષ થાય છે ત્યારે તેને અનંત સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે. જેવી રીતે બંધનયુક્ત પ્રાણીનું બંધન છોડતાં તે સ્વતંત્ર થઈને સુખી થાય છે, તેવી જ રીતે કર્મબંધનમાંથી છૂટો થતાં આત્મા સ્વાધીન થઈને અનુપમ સુખનો અનુભવ કરે છે.

જો વર્તમાનમાં આત્માને કોઈ વળગણ ન હોત તો તે શુદ્ધ અવસ્થામાં હોત અને અનંતાનંત સુખનો ઉપભોગ કરતો હોત; પરંતુ તે વર્તમાનમાં કર્મથી યુક્ત છે અને તેથી તે દુઃખી છે. તે કર્મો બાંધે છે અને બાંધેલાં કર્મને ભોગવવા માટે તે નવા જન્મો ધારણ કરે છે. તેને બાંધેલાં કર્મોનું ફળ ભોગવવું પડે છે અને તે વખતે તેમાં સમભાવ ન રહેતાં તે બીજાં નવાં કર્મો બાંધે છે. આ પરંપરા ચાલુ જ રહે છે અને તેનો સંસાર પણ ચાલુ જ રહે છે. પોતાના કર્મ અનુસાર જીવ એક જન્મમાંથી બીજા જન્મમાં અને બીજા જન્મમાંથી ત્રીજા જન્મમાં ચક્કર લગાવતો રહે છે. સંસારી જીવ કર્મને વશ થઈને સદા પરિભ્રમણ કર્યા કરે છે.

મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને યોગ દ્વારા જીવ સદા કર્મબંધ કર્યા કરે છે અને કર્મબંધના કારણે જ જીવને સંસારનાં દુઃખ ભોગવવાં પડે છે. મિથ્યાત્વાદિના કારણે આત્મા અને કર્મ એ બે ભિન્ન પદાર્થોનો સંયોગ થાય છે. જેનો સંયોગ થાય છે તેનો વિયોગ અવશ્ય થાય છે. આત્માની સાથે જે કર્મનો સંયોગ થાય છે, તેનો આત્માથી વિયોગ અવશ્ય થાય છે. પરંતુ કર્મના વિયોગ સમયે અજાગૃતિના કારણે જીવ અને કર્મનો નવો સંયોગ થાય છે અને તેથી કર્મનો સર્વથા વિયોગ હજી સુધી થયો નથી. જ્યારે સર્વ કર્મોનો વિયોગ થાય છે ત્યારે જીવનો મોક્ષ થાય છે. કર્મ અને આત્માનો સંયોગ એ જ સંસાર છે અને બન્નેનો સદા માટે સદંતર વિયોગ થવો તેનું જ નામ મોક્ષ છે. કર્મબંધનથી સર્વથા મુક્ત થવું એ જ મોક્ષ છે, એ જ સિદ્ધત્વની પ્રાપ્તિ છે. જ્યારે આત્મા કર્મથી સર્વથા મુક્ત થાય છે, ત્યારે તેનું અચિત્ય સ્વાભાવિક જ્ઞાનાદિ ગુણરૂપ અને અવ્યાબાધ સુખરૂપ સ્વરૂપ પ્રગટ થાય છે, જેને મોક્ષ કહેવાય છે. આ આત્માની પરમવિશુદ્ધ અવસ્થા છે.

રંગભૂમિ ઉપર ભજવવામાં આવતાં નાટકોમાં નાયક અને ખલનાયક એમ બન્ને પ્રકારનાં પાત્ર હોય છે. ખલનાયકનું કામ નાયકને જુદી જુદી રીતે બાધા પહોંચાડવાનું હોય છે. આ કાર્યમાં તે ઘણી વાર સફળ પણ થાય છે, પણ અંતમાં તેની શક્તિ કુંઠિત થઈ જાય છે અને તે પરાભવ પામે છે. સંસારરૂપી નાટકમાં પણ બરાબર આવું જ થાય છે. તેમાં નાયકની જગ્યાએ આત્મા છે અને ખલનાયકની જગાએ કર્મ. કર્મનું કાર્ય આત્માને બાધા પહોંચાડવાનું છે. તેમાં તે પ્રાયઃ સફળ થાય છે. પરંતુ આત્માની શક્તિ જેમ જેમ વધતી જાય છે, તેમ તેમ કર્મ નિર્બળ થતાં જાય છે અને અંતમાં તે પરાભવ પામે છે. બળવાન આત્માઓ શુભાશુભ કર્મને હર્ષ-શોક કર્યા વિના સ્વીકારી, નવાં કર્મ ન બંધાય તે રીતે ઉદયપ્રાપ્ત કર્મને અલ્પ કાળમાં ભોગવી લે છે. કર્મના ઉદય વખતે સાવધાન રહીને, તેનાથી પ્રાપ્ત સંગ-પ્રસંગમાં ચલિત ન થતાં તેને તેઓ ભોગવે છે અને ભાવકર્મને ઉદ્ભવવા દેતા નથી. નિમિત્તની સત્તાને વશ થતા ન હોવાથી તે વીર્યવાન આત્માઓ અલ્પ કાળમાં સિદ્ધપદની પ્રાપ્તિ કરે છે. તેમના પુરુષાર્થથી સર્વ કર્મ વીખરાઈ જતાં તેઓ પરમ સિદ્ધિને વરે છે. સર્વ કર્મોનો આવો આત્યંતિક ઉચ્છેદ તે મોક્ષ છે. કર્મોનો સમૂળ ઉચ્છેદ થવો, કર્મોથી સંપૂર્ણતઃ છુટકારો થવો તે મોક્ષ છે. આ મોક્ષપદનું નિરૂપણ કરતાં શ્રીમદ્ છ પદના પત્રમાં લખે છે —

'જે અનુપચરિત વ્યવહારથી જીવને કર્મનું કર્તાપણું નિરૂપણ કર્યું, કર્તાપણું હોવાથી ભોક્તાપણું નિરૂપણ કર્યું, તે કર્મનું ટળવાપણું પણ છે; કેમ કે પ્રત્યક્ષ કષાચાદિનું તીવ્રપણું હોય પણ તેના અનભ્યાસથી, તેના અપરિચયથી, તેને ઉપશમ કરવાથી, તેનું મંદપણું દેખાય છે, તે ક્ષીણ થવા યોગ્ય દેખાય છે, ક્ષીણ થઈ શકે છે. તે તે બંધભાવ ક્ષીણ થઈ શકવા યોગ્ય હોવાથી તેથી રહિત એવો જે શુદ્ધ આત્મરવભાવ તે રૂપ મોક્ષપદ છે.'

અનુપચરિત વ્યવહારનયથી જીવને કર્મનું કર્તાપણું છે અને કોઈ પણ ક્રિયા અફળ હોય નહીં એ ન્યાયથી કર્તાપણું હોવાથી ભોક્તાપણું છે; અને એ જ ન્યાયથી કર્મનું ટળવાપણું પણ છે. કર્મનું કર્તા-ભોક્તાપણું જ્યારે સર્વથા ટળી જાય છે ત્યારે સર્વ પ્રકારની કર્મમલિનતાથી રહિત થવાય છે અને શુદ્ધ સ્વભાવરૂપ મોક્ષપદ પ્રાપ્ત થાય છે.

શુદ્ધ પારિણામિક પરમ ભાવને અહણ કરનાર એવા શુદ્ધ નિશ્ચયનયથી જીવ ક્યારે પણ બંધ-મોક્ષને કરતો નથી. શુદ્ધ નિશ્ચયનયના વિષયમાં બંધ-મોક્ષની કલ્પના નથી, પરંતુ અશુદ્ધ નિશ્ચયનયથી જીવ ભાવબંધને તેમજ ભાવમોક્ષને કરે છે. અનુપચરિત વ્યવહારનયથી આ જીવ દ્રવ્યબંધને તેમજ દ્રવ્યમોક્ષને કરે છે. જીવને થતો દ્રવ્યકર્મબંધ એ અનુપચરિત વ્યવહારની અપેક્ષાએ છે. દ્રવ્યકર્મ કેવળ બાહ્ય સંયોગો છે. દ્રવ્યકર્મ જીવ સાથે ક્ષીરનીરવત્ રહ્યા છે. ઊકળતા દૂધમાં લીંબુ નાંખવાથી દૂધ-પાણી છૂટાં થઈ જાય છે, તેમ આત્મા અને કર્મ વચ્ચે ભેદજ્ઞાન થતાં આત્મા અને કર્મ છૂટાં પડે છે.

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૯૪-૩૯૫ (પત્રાંક-૪૯૩, 'છ પદનો પત્ર')

મોક્ષપદની પ્રાપ્તિ અર્થે અહીં કહ્યું છે કે કષાયાદિનું તીવપણું તેના અનભ્યાસ આદિથી મંદ કરી શકાય છે, ક્ષીણ થઈ શકે છે. જીવને અનાદિ કાળથી કષાયાદિનો અભ્યાસ હોવાથી નિમિત્ત મળતાં જ તેના પૂર્વસંસ્કાર જાગત થાય છે અને કષાયનો ઉદય થાય છે. જીવને ક્રોધ, માન આદિ કરવાનો ખૂબ અભ્યાસ છે. જો તે આ અભ્યાસ છોડી દે, એટલે કે તેવાં નિમિત્ત પ્રાપ્ત થાય ત્યારે આત્માનું બળ વાપરી ક્ષમાદિ ધારણ કરે તો તેના ક્રોધાદિ મંદતાદિને પામે છે. કોઈ વ્યક્તિનો પરિચય થઈ ગયા પછી તેનો અપરિચય કરવો હોય તો તે વ્યક્તિ સામી મળે ત્યારે તેને ઓળખતો ન હોય એમ તે વર્તે, અજાજ્યો રહે, આવકાર ન આપે, દાદ ન આપે તો તે વ્યક્તિ સાથેનો સંબંધ છૂટી જાય છે; તેવી રીતે જીવ કષાયાદિનો અપરિચય કેળવે, તેની સાથે જોડાય નહીં. તેનાથી અળગો રહે અને વર્તમાનમાં કષાયાદિરહિત વર્તે તો કષાયાદિ મંદતાને પામે અને અંતે ક્ષીણ થાય. જીવ ઉપશમ દ્વારા ક્રષાયાદિને મંદ કરી શકે છે. સતત અનભ્યાસ આદિથી કષાયાદિ મંદ થતા જાય છે. જો જીવ અનભ્યાસ આદિનો પુરુષાર્થ કરે તો તેના કષાયાદિ મોળા પડતાં પડતાં અંતે ક્ષય પામે છે. કષાયાદિનું ગમે તેવં તીવપણં હોય તોપણ, જેમ સાપ ફૂંફાડો મારે અને લોકો દૂર ભાગી જાય, તેમ આત્મા જાગૃત થાય તો તે કષાયાદિ ભાવ ભાગી જાય છે. જેમ જેમ આત્માનું બળ વધતું જાય છે. તેમ તેમ કષાયોનું બળ ઘટતું જાય છે. જ્યારે જીવ અપૂર્વ બળ પ્રગટાવી સર્વ કષાયોનો ક્ષય કરે છે, ત્યારે તે પરમશુદ્ધ અવસ્થારૂપ મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે.

અજ્ઞાની જીવોમાં ક્રોધાદિ વિકારી ભાવોનું તીવપશું હોય છે, જ્યારે સાધકોમાં સત્યુરુષાર્થના કળરૂપે તેવા ભાવોનું મંદપશું થાય છે; તેથી સિદ્ધ થાય છે કે ક્રોધાદિ વિકારી ભાવો પ્રત્યે જાગૃત રહેવામાં આવે, તેનો અનભ્યાસ, અપરિચય, ઉપશમ કરવામાં આવે તો ધીમે ધીમે વિકારી ભાવોની માત્રા ઓછી થતી જાય છે અને આ પ્રક્રિયાને નિરંતર અનુસરવામાં આવે તો અંતે વિકારોનો સર્વથા અભાવ થાય છે અને આત્માનો મૂળ શુદ્ધ સ્વભાવ પ્રગટે છે. ચૈતન્યની આવી શુદ્ધ નિર્મળ દશાને મોક્ષ કહેવામાં આવે છે. સર્વ અશુદ્ધિથી રહિત એવો જે શુદ્ધ આત્મસ્વભાવ તે રૂપ મોક્ષપદ છે. આ પ્રમાણે સમ્યગ્દર્શનના નિવાસસ્થાનરૂપ મોક્ષપદ છે એમ સિદ્ધ થાય છે. છપદના પત્રમાં શ્રીમદે મોક્ષપદ વિષે પ્રગટ કરેલા ભાવોને શ્રી સહજાનંદઘનજીએ એક પદમાં સુંદર રીતે ગૂંથતાં લખ્યું છે કે –

'જે જીવનો શુદ્ધ સ્વભાવ, કષાય અભાવ, પરમ-ગુરુ-જનથી; છે મોક્ષ ચિત્ત-શોધનથી.

નય-અનુપચાર કર્તા-ભોક્તા, જીવ કષાય-ભાવે સંસર્તા; છૂટી શકાય છે તે ક્ષાય વિદ્યનથી.

હોય ક્રોધાદિકનું તીવ્રપશું, વૈરાગ્યબળે થાય મંદ ઘણું; અપરિચય અન્-અભ્યાસે ઉપશમ ક્ષયથી.'^૧

કેટલાક લોકો એમ કહે છે કે રાગ અને દેષનો સર્વથા નાશ થઈ શકતો નથી. જગતમાં સર્વ જીવ ઓછાવત્તા અંશે રાગ અને દેષથી યુક્ત જ જણાય છે, માટે રાગ અને દેષ જેનામાં લેશમાત્ર પણ ન હોય એવો કોઈ પુરુષ આ વિશ્વમાં છે જ નહીં. આ વાત યથાર્થ નથી, કારણ કે જેમ ખાણમાંથી જ્યારે સોનું કાઢવામાં આવે છે ત્યારે તે માટી જેવું જ લાગે છે, પણ તેના ઉપર અમુક પ્રકારની પ્રક્રિયા કરવામાં આવે તો તેને લાગેલો મેલ ધીમે ધીમે દૂર થતો જાય છે અને અંતે તદ્દન નિર્મળ સોનું બને છે. તેમ પુરુષાર્થ દ્વારા આત્માની અશુદ્ધિ દૂર કરતાં કરતાં આત્મા સંપૂર્ણ શુદ્ધ બની શકે છે. જેમ કષાયાદિનું ઓછાવત્તાપણું પ્રત્યક્ષ જણાય છે, તેમ આત્મા કષાયાદિથી સંપૂર્ણ રહિત અવશ્ય થઈ શકે છે. જો રાગ-દેષનું ઓછાવત્તાપણું હોય તો તેનો અભાવ પણ હોઈ શકે. તેથી સિદ્ધ થાય છે કે રાગ અને દેષનો સર્વથા નાશ થઈ શકે છે.

પાણીનો સ્વભાવ છે કે જે બાજુ તેને માર્ગ મળે ત્યાં તે વહેવાનું શરૂ કરી દે. એક વખત તે જે માર્ગ ઉપર વહે છે. બીજી વાર પણ તે એ માર્ગ ઉપર જ વહેશે. પ્રથમ વાર જે માર્ગ ઉપરથી વહે છે ત્યાં ભલે પાણી રહ્યું ન હોય તોપણ ત્યાં એક સુકી રેખા અંકિત થઈ જાય છે, જેના આધારે બીજી વાર પાણી ત્યાંથી જ વહેશે, પરંતુ એવો નિયમ નથી કે પાણીએ પૂર્વે સુકાયેલી સૂકી રેખા ઉપરથી જ વહેવું. કંઈ પણ ફેરફાર કરવામાં ન આવે તો પાણી એ રેખા ઉપરથી જ વહેશે, પણ જો તે સૂકી રેખા ઉપર કોઈ પણ પ્રકારની ચેપ્ટા કરવામાં આવે તો તે જૂની રેખા પાણીને પોતા દ્વારા વહેવા માટે મજબુર નહીં કરી શકે. જો એ માર્ગમાં અવરોધ મુકવામાં આવે તો પાણી નવા માર્ગે વહી જશે, નવી રેખા બનાવી લેશે. તેમ જીવ પણ સ્વતંત્ર છે. એને કોઈ ફરજ નથી પાડતું કે સંસ્કાર પ્રમાણે જ વર્તન કરવું. અનેક ભવના અનેક પ્રકારના સંસ્કારો સાથે સર્વ જીવ જન્મે છે, પરંતુ જૂના સંસ્કાર તો માત્ર એક આમંત્રણ છે ન્યુનતમ સંઘર્ષના માર્ગે વહેવાનું. એ કંઈ જીવની નિયતિ નથી કે સંસ્કાર જાગૃત થાય તે પ્રમાશે જ જીવે વર્તવું. તેથી સંસ્કારને વશ ન થવાના પ્રયત્ન કરવામાં આવે, તેના માર્ગમાં વચ્ચે અવરોધ મૂકવામાં આવે, જૂના સંસ્કારના ચીલે નહીં ચાલવાનો નિર્ણય કરવામાં આવે, જે થતું રહ્યું છે એનાથી અન્ય કરવાની વૃત્તિ રાખવામાં આવે તો તે સંસ્કારથી પર થઈ જીવ પોતાનો માર્ગ બદલી શકે છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

'આટલા કાળ સુધી જે કર્યું તે બધાંથી નિવૃત્ત થાઓ, એ કરતાં હવે અટકો.'ર

૧- શ્રી સહજાનંદધનજીરચિત, પદ ૭૨, કડી ૧,૨ ('સહજાનંદસુધા', પૃ.૯૮-૯૯)

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૨૨૯ (પત્રાંક-૧૪૩)

જીવ પૂર્વસંસ્કારોની જંજીરો વડે પોતાના અતીત સાથે બંધાયેલો હોવા છતાં પણ ભવિષ્ય પ્રતિ તે મુક્ત જ છે. વર્તમાનમાં કઈ રીતે પ્રવર્તવું એ માટે તે સ્વતંત્ર જ છે. અતીત સાથેનું બંધન પણ તેના પોતાના ભાવના કારણે જ ટકેલું છે. જો તે સંકલ્પ કરે કે જૂની આદત પ્રમાણે નથી ચાલવું તો તે રસ્તો બદલી, નવી રીતે જીવવાનું શરૂ કરી શકે છે. જીવ કેટલી બધી કિયાઓ માત્ર આદતથી જ કરતો હોય છે. તે આદતને તોડવી કઠિન છે, પણ અસંભવિત તો નથી જ. જો યથાર્થ પદ્ધતિનો ઉપયોગ કરવામાં આવે તો આદતો બદલી શકાય છે. જેવા જૂના સંસ્કાર જાગૃત થાય કે તરત જ્ઞાનીના બોધનું સ્મરણ કરવું જોઈએ કે જેથી વિચાર અને ભાવ જૂની રેખાથી અલગ થઈ એક નવી રેખા ઊભી કરે.

આ પ્રયોગ વારંવાર કરવામાં આવે તો જૂની રેખા ભૂંસાઈ જાય છે અને નવી રેખા બને છે. જીવ નવો ઢંગ અપનાવે તો ક્રોધ કરવો કઠિન પડશે અને શાંતિ રાખવી સરળ બનશે. થોડા સમયમાં તે એટલો શાંત થઈ જશે કે પછી ઉત્તેજિત થવું તેને માટે અઘરું બની જશે. મોક્ષપ્રાપ્તિ અર્થે આ રીતે નવસંસ્કરણ કરવાની જરૂર છે. આજ સુધી જે સંસ્કાર જોડે સુખ અને લાભ જોડ્યાં હતાં, તેની સાથે દુઃખ અને નુકસાન જોડવામાં આવે તો એના ચીલે ચાલવાનું જ અટકી જશે. જૂના સંસ્કારોને સ્થાને નવસંસ્કરણ થતું રહેશે અને જીવનયાત્રા ઇચ્છેલા માર્ગે પ્રગતિ કરશે.

કર્મસિદ્ધાંત તો ધર્મનું અંગ છે. તેને કેટલાક લોકોએ અધર્મ માટેનું અવલંબન બનાવી દીધું છે. જેમ કે 'કર્મો છે માટે થાય છે', 'ઉદય છે માટે બને છે', 'પોતાના હાથમાં કોઈ વાત નથી', 'પૂર્વજન્મનાં ફળ છે' ઇત્યાદિ. પૂર્વકર્મના કારણે વિપરીત સંસ્કાર જાગૃત થાય એ બરાબર, પણ તે જ પ્રમાણે પરિણતિએ વહેવું એવું બિલકુલ જરૂરી નથી. અજ્ઞાનમય સંસ્કારથી પ્રેરિત થયેલું જીવન જીવીને જીવ આજ સુધી ઘણું ચૂક્યો છે, હવે તેણે જાગૃતિપૂર્વક જીવવું જોઈએ. અજ્ઞાનના અને વિષયના સંસ્કારોની સામે નવા જ્ઞાનસંસ્કારનું નિર્માણ કરવામાં આવે તો કર્મના ઉદય નિષ્ફળ થઈ શકે છે. રાગપરિણામ બંધનું કારણ છે એમ જાણીને રાગાદિ વિભાવોનો ત્યાગ કરતાં અને વિશુદ્ધ જ્ઞાન-દર્શન જેનો સ્વભાવ છે એવા પોતાના આત્મતત્ત્વની નિરંતર ભાવના કરતાં સંસાર ક્ષય થતો જાય છે. જેટલા અંશે જીવનાં રાગાદિ પરિણામ ઘટતાં જાય છે, તેટલા અંશે તેને મોક્ષનો અનુભવ થતો જાય છે. ગાંધીજીએ ડરબન(આફ્રિકા)થી પૂછેલ ૨૭ પ્રશ્નોમાંથી ચોથો પ્રશ્ન 'મોક્ષ મળશે કે નહીં તે ચોક્ક્સ રીતે આ દેહમાં જ જાણી શકાય?' - તેના ઉત્તરમાં શ્રીમદ્દ લખે છે —

'એક દોરડીના ઘણા બંધથી હાથ બાંધવામાં આવ્યો હોય, તેમાંથી અનુકમે જેમ જેમ બંધ છોડવામાં આવે, તેમ તેમ તે બંધના સંબંધની નિવૃત્તિ અનુભવમાં આવે છે, અને તે દોરડી વળ મૂકી છૂટી ગયાના પરિણામમાં વર્તે છે એમ પણ જણાય છે, અનુભવાય છે. તેમ જ અજ્ઞાનભાવના અનેક પરિણામરૂપ બંધનો પ્રસંગ આત્માને છે, તે જેમ જેમ છૂટે છે, તેમ તેમ મોક્ષનો અનુભવ થાય છે; અને તેનું ઘણું જ અલ્પપણું જ્યારે થાય છે ત્યારે, સહજે આત્મામાં નિજભાવ પ્રકાશી નીક્ળોને અજ્ઞાનભાવરૂપ બંધથી છૂટી શક્વાનો પ્રસંગ છે, એવો સ્પષ્ટ અનુભવ થાય છે.'

અામ, શુદ્ધસ્વભાવી ચેતન પોતાની અજ્ઞાનરૂપ દશામાં પરપદાર્થનો કર્તા-ભોક્તા થઈ રાગાદિ વિભાવમાં પરિણમે છે. જીવનાં રાગાદિ પરિણામ તે બંધભાવ છે અને એ બંધભાવથી નિવૃત્ત થવારૂપ મોક્ષભાવ છે. મોક્ષભાવ વિભાવભાવની નિવૃત્તિરૂપ છે અને સ્વભાવની પ્રવૃત્તિરૂપ છે. પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવમાં સ્થિર થતાં જીવ રાગાદિ ભાવોનો કર્તા થતો નથી અને ભાવકર્મના અભાવે તેને દ્રવ્યકર્મનો બંધ પણ થતો નથી. રાગ-દેષની પરંપરા તૂટતાં પૂર્વે બાંધેલાં કર્મો ખરતાં જાય છે અને નવીન કર્મબંધ અટકી જાય છે. સ્કંધમાં રહેલો પરમાણુ જ્યારે જઘન્ય ચીકાશરૂપે પરિણમવાની સન્મુખ થાય છે ત્યારે સ્કંધ સાથેના બંધનથી તે છૂટો પડી જાય છે, તેમ શુદ્ધ સ્વભાવ તરફ ઝૂકેલા જીવના રાગાદિ ચીકાશવાળા ભાવો અત્યંત ક્ષીણ થતા હોવાથી તે પૂર્વબંધનથી છૂટતો જાય છે અને તેને નવીન કર્મબંધન થતું નથી. આ ક્રમે જીવ સર્વ કર્મથી રહિત એવી શુદ્ધ દશા પ્રાપ્ત કરે છે.

આત્માને લાગેલાં આઠે પ્રકારનાં કર્મોનો ક્ષય થવો તે મોક્ષ છે. સંવર અને નિર્જરાથી મોક્ષ થાય છે. સંવર એટલે કર્મ આવવાનાં દ્વાર બંધ કરવાં અને નિર્જરા એટલે આત્મા સાથે પૂર્વે બંધાયેલાં કર્મોનો ક્ષય કરવો. કર્મબંધના હેતુઓના સેવનના અભાવથી અને પૂર્વબદ્ધ કર્મોની નિર્જરાથી કર્મોનો આત્યંતિક ક્ષય થાય છે અને કર્મબંધનોનો સર્વથા ક્ષય એ જ મોક્ષ છે. બંધનાં કારણોના અભાવ અને નિર્જરાથી થતો સર્વ કર્મોનો આત્યંતિક ક્ષય એ જ મોક્ષ છે.

સંવર એટલે આસવનો નિરોધ. જેનાથી કર્મો બંધાય તેને રોકવાં તેનું નામ સંવર. મિથ્યાત્વાદિ આસવનો નિરોધ થવાથી તેનાથી આવવાવાળા કર્મોનું અટકવું તે સંવર છે.³

कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः ।'

૩- જુઓ : આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર'ની આચાર્યશ્રી અકલંકદેવકૃત ટીકા, 'તત્ત્વાર્થવાર્તિકમ્', અધ્યાય ૯, સૂત્ર ૧-૬

'मिथ्यादर्शनादिप्रत्ययकर्मसंवरणं संवरः।'

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૪૨૬ (પત્રાંક-૫૩૦)

૨- જુઓ : આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર', અધ્યાય ૧૦, સૂત્ર ૨,૩ 'बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्याम् ।

સંવર પ્રગટતાં કર્મનો પ્રવેશ અટકી જાય છે. સંવર આસવના અભાવપૂર્વક થનારી દશા છે. આસવ અને સંવર પરસ્પર વિરોધી છે. આસવ અપવિત્ર છે, સંવર પવિત્ર છે; આસવ દુઃખમય છે, સંવર સુખમય છે; આસવ દુઃખનું કારણ છે, સંવર સુખનું કારણ છે.

નિર્જરા એટલે કર્મનું નિર્જરણ - ક્ષય થવું તે. જીવને વળગેલાં કર્મનો ક્ષય થવો એનું નામ નિર્જરા છે. પૂર્વે બંધાયેલાં કર્મોનો ક્ષય થવાની પ્રક્રિયા તે નિર્જરા છે. આત્માનો શુદ્ધોપયોગ એ ભાવનિર્જરા છે અને એ શુદ્ધોપયોગના પ્રભાવથી નીરસ થયેલ કર્મોનું આત્મપ્રદેશો ઉપરથી અંશે ખરી જવું એ દ્રવ્યનિર્જરા છે.

બંધાયેલાં કર્મોની નિર્જરા બે રીતે થાય છે. નિર્જરાના બે પ્રકાર છે - ૧) સવિપાક નિર્જરા અને ૨) અવિપાક નિર્જરા. સવિપાક નિર્જરા એટલે કર્મ ભોગવાઈ જઈ આપોઆપ ખરી પડે તે. બંધાયેલાં કર્મો પરિપક્વ થઈ ભોગવાય છે અને એ રીતે કર્મક્ષય થાય છે તે સવિપાક નિર્જરા છે. કર્મ જીવની સાથે બંધાઈને જીવને વિવિધ ફળ ભોગવાવે અને એની ચોક્કસ મુદત પૂરી થાય પછી તે જીવનો ત્યાગ કરી જાય - આ સવિપાક નિર્જરા છે. અવિપાક નિર્જરા એટલે જે કર્મો ભોગવવાનાં બાકી હોય તેનો તપ વડે ક્ષય કરવો તે. કર્મપુદ્ગલ ફળ આપવા તૈયાર થાય તે પહેલાં જ કઠોર તપશ્ચયંદિથી એનો ક્ષય કરી નાખવો એ અવિપાક નિર્જરા. 9

જેમ આંબાના ઝાડની ડાળી ઉપર રહેલી કેરી સમય આવે ત્યારે સ્વયં પાકે છે અને ક્યારેક તેને ઘાસમાં મૂકીને સમય પહેલાં પણ પકાવવામાં આવે છે; તેમ નિયત થયેલા સમય અનુસાર ઉદયમાં આવીને કર્મોનું સ્વયં ખરી જવું તે સવિપાક નિર્જરા છે અને ઉદયકાળ પાકતાં પહેલાં કર્મોનું આત્મપ્રદેશો ઉપરથી ખરી જવું તે અવિપાક નિર્જરા છે. આમાંથી સવિપાક નિર્જરા આત્મહિતમાં કાર્યકારી નથી. તે તો સર્વ સંસારી જીવને સમયે સમયે વિના ઉદ્યમે થતી હોય છે. તેનાથી આત્મકલ્યાણનું કાર્ય સિદ્ધ થતું નથી. અવિપાક નિર્જરા જ મોક્ષમાં કારણભૂત છે, કારણ કે તે ઉદ્યમપૂર્વક થાય છે. સંસારપરિભ્રમણ મિટાવી મોક્ષ પ્રાપ્ત કરાવનાર આ અવિપાક નિર્જરા માત્ર સાધકોને જ હોય છે. રે

૧- જુઓ : શ્રી માઈલ્લધવલજીકૃત, 'દ્રવ્યસ્વભાવપ્રકાશક નયચક્ર', ગાથા ૧૫૭

^{&#}x27;सयमेव कम्मगलणं इच्छारहियाण होइ सत्ताणं । सविषक्क णिज्जरा सा अविषक्कमुवायकरणादो ।।'

२- જુઓ : आयार्थश्री કુંદકુંદદેવકૃત, 'બારસ અણુવેક્ખા', ગાથા ૬૭ 'सा पुण दुविहा णेया सकालपक्का तवेण कयमाणा ।

चदुगदियाणं पढमा वयजुत्ताणं हवे बिदिया।।'

કર્મની અવિપાક નિર્જરા સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્તિથી શરૂ થઈને સર્વજ્ઞ અવસ્થામાં પૂર્ણ થાય છે. આમાં પૂર્વ અવસ્થાની અપેક્ષાએ પરિણામોની વિશુદ્ધિ ક્રમશઃ ઉત્તરોત્તર સવિશેષ વૃદ્ધિ પામતી જાય છે. પરિણામોમાં જેટલી વિશુદ્ધિ વધારે, તેટલી જ કર્મ-નિર્જરા પણ વિશેષ થાય છે; એટલે કે પહેલી અવસ્થામાં જેટલી કર્મનિર્જરા થાય છે તેના કરતાં તેની આગળની અવસ્થામાં પરિણામોની વિશુદ્ધિ વધારે હોવાથી કર્મનિર્જરા પણ વિપુલ પ્રમાણમાં થાય છે. જ્યારે સર્વ કર્મની સર્વથા સંપૂર્ણપણે નિર્જરા થાય છે ત્યારે મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે.

જેમ કર્મબંધ અનાદિ છે, તેમ નિર્જરા પણ અનાદિ છે. તે પણ સદાકાળથી થતી આવી છે. પરંતુ તે નિર્જરા આંશિક હોય છે, સંપૂર્ણ નિર્જરા થતી નથી. આવી આંશિક નિર્જરા તો પ્રતિપળ થાય છે. થોડી થોડી નિર્જરા તો સમયે સમયે થાય છે અને સાથે સાથે બીજાં નવાં કર્મોનો બંધ પણ થાય છે. આ ક્રમ સતત, અનાદિ કાળથી ચાલુ જ છે. સંસારી જીવોને નવાં કર્મોનો બંધ અને પૂર્વબદ્ધ કર્મોની નિર્જરા - એ ક્રમ ચાલ્યા જ કરે છે.

ઘરમાંથી કચરો કાઢ્યા પછી પણ નવો કચરો આવ્યા જ કરે છે અને તેથી જ રોજ કચરો કાઢવો પડે છે. આજે કચરો કાઢ્યા છતાં કાલે પાછો કચરો નીકળે છે. ધળ આદિનાં રજકણો ઘરમાં સતત આવતાં જ હોય છે. નિર્જરા વખતે પણ જીવને શુભાશુભ અધ્યવસાયો હોવાના કારણે બીજી બાજુ નવો કર્મબંધ પણ થતો જાય છે. જ્યાં સુધી કર્મબંધના હેતુરૂપ મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને યોગનું સેવન બંધ ન થાય ત્યાં સુધી કર્મબંધ સતત ચાલુ રહે છે. કર્મબંધના હેતુઓ કાર્યાન્વિત રહે, આસવદાર ખુલ્લાં રહે તો કર્મનું અહણ ચાલુ રહે છે. નિર્જરા થતી હોય, પરંતુ તેની સાથે સાથે કર્મબંધના હેતુઓ અટક્યા ન હોય, આસવમાર્ગીનો નિરોધ થયો ન હોય તો ફરી નવો કર્મબંધ થશે જ. જેમ બારી-બારણાં ખુલ્લાં હોવાથી, ઘરમાંથી કચરો કાઢતી વખતે પણ નવો કચરો આવવાનું બંધ થતું નથી, તો પછી ઘર હંમેશ માટે ચોખ્ખું કઈ રીતે રહી શકે? તેમ જીવને નિર્જરા તો થાય છે, પણ આસવરૂપી બારી-બારણાં ખુલ્લાં છે. કર્મબંધના હેતુઓ કાર્યાન્વિત છે; તોપછી કર્મબંધથી જીવ કઈ રીતે બચી શકે? જ્યાં સુધી આસવદાર ખુલ્લાં છે ત્યાં સુધી કર્મબંધથી બચવું સંભવિત જ નથી. નવાં કર્મ તો બંધાતાં જ જાય છે. આત્મા બહારથી આવતાં કર્મોને અટકાવી દે અને નિર્જરા કરે તો પૂર્વકર્મોનો નાશ થઈ જાય અને નવાં કર્મો ન બંધાય. આ જ રીતે આગળ વધતાં એક દિવસ આત્મા સદંતર સર્વથા કર્મરહિત થઈ જાય. આનું જ નામ મોક્ષ છે. કર્મથી સંપૂર્ણપણે છૂટકારો થવો એ જ મોક્ષ છે. આ પ્રમાણે મિથ્યાત્વાદિથી દૂર રહી, નવાં કર્મોનું બંધન અટકાવી, પૂર્વકર્મોનું નિર્જરણ કરી જીવ કર્મબંધનથી સર્વથા મુક્ત થાય

છે. સર્વ કર્મોનો સંપૂર્ણ ક્ષય તે જ મોક્ષ છે. સર્વ કર્મોનો પ્રકૃષ્ટપણે સંપૂર્ણતઃ સર્વથા નાશ થવો તેને જ મોક્ષ કહ્યો છે.

ધર્મની ઉત્પત્તિને સંવર, વૃદ્ધિને નિર્જરા અને પૂર્ણતાને મોક્ષ કહે છે. વાસ્તવમાં આત્મશુદ્ધિ જ ધર્મ છે, તેથી એમ પણ કહી શકાય કે શુદ્ધિની ઉત્પત્તિ તે સંવર, શુદ્ધિની વૃદ્ધિ તે નિર્જરા અને શુદ્ધિની પૂર્ણતા તે મોક્ષ છે. ભેદજ્ઞાન થવું અને આત્માની અનુભૂતિપૂર્વક શુદ્ધિની ઉત્પત્તિ થવી તે ભાવસંવર છે અને તેના નિમિત્તે કર્મો આવતાં રોકાય તે દ્રવ્યસંવર છે. આત્મધ્યાનરૂપ શુદ્ધોપયોગથી શુદ્ધિની વૃદ્ધિ થવી તે ભાવનિર્જરા છે અને તે નિમિત્તે પૂર્વબદ્ધ કર્મોનું ખરી જવું તે દ્રવ્યનિર્જરા છે. આત્મસ્વભાવની પૂર્ણ શુદ્ધિનું પ્રગટવું તે ભાવમોક્ષ છે અને તદનુસાર સંપૂર્ણ દ્રવ્યકર્મોથી મુક્ત થઈ જવું તે દ્રવ્યમોક્ષ છે. જેમ વૃક્ષની ઉત્પત્તિ વિના તેની વૃદ્ધિ અને પૂર્ણતા સંભવતી નથી, તેમ આત્મશુદ્ધિની ઉત્પત્તિ વિના તેની વૃદ્ધિ અને પૂર્ણતા સંભવતી નથી. તેથી નિર્જરા સંવરપૂર્વક જ હોય છે.

સંવર અને નિર્જરા દ્વારા સર્વ કર્મો નષ્ટ કરી, પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરી લેવું એ મોક્ષ છે. આત્માની સાથે જ્ઞાનાવરણીયાદિ આઠ કર્મ અનાદિથી લાગેલાં છે. આ કર્મોના કારણે આત્માના સ્વાભાવિક ગુણ પ્રગટ થઈ શકતા નથી. અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત સુખ, અનંત વીર્ય આદિ આત્માના ગુણો છે. આઠ કર્મોનો નાશ થવાથી આત્મા ઉક્ત ગુણો પ્રાપ્ત કરે છે અને તે સદાને માટે સંસારના બંધનથી છૂટી જાય છે.

જીવ રાગાદિ વિભાવ કરે તો તેને કર્મબંધ થાય છે અને સ્વભાવનું અવલંબન લે તો તેને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. જીવ રાગાદિ વિભાવભાવ કરે તો તે શુભાશુભ કર્મને મહણ કરે છે અને એ કર્મો પોતાના ઉદયકાળે તેને તે પ્રકારે ફળ આપે છે. શુભાશુભ કર્મ જીવને સુખ-દુઃખરૂપ ફળ આપી તેનાથી છૂટાં પડે છે. કર્મયુક્ત એવો જીવ પોતે કરેલાં શુભાશુભ કર્મનાં સુખ-દુઃખદિ ફળનો ભોક્તા બને છે. જેમ શુભાશુભ કર્મ સફળ છે, તેમ તેની નિવૃત્તિ પણ સફળ છે. જીવ સ્વભાવસન્મુખતાના પુરુષાર્થ દ્વારા શુભાશુભ કર્મની નિવૃત્તિ કરે તો તેનું ફળ અવશ્ય મળે છે અને તે ફળ મોક્ષ છે. જીવ સર્વ કર્મથી નિવૃત્ત થાય તો તેને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. આના ઉપરથી મોક્ષ છે એમ સિદ્ધ થાય છે.

કેટલાક લોકો આત્માના બંધ અને મોક્ષનો અસ્વીકાર કરે છે. તેઓ કહે છે કે જીવદ્રવ્ય અમૂર્ત હોવાથી આકાશની જેમ અબદ્ધ અને અમુક્ત જ હોવું જોઈએ. આકાશ કોઈ વસ્તુથી બંધાતું નથી. જો આકાશમાં બંધ નથી તો તેની મુક્તિ પણ નથી, કારણ કે મુક્તિ બંધસાપેક્ષ હોય છે. મોક્ષ થવા માટે પહેલાં બંધ હોવો જરૂરી છે. બંધ ન

હોય તો મોક્ષ કોનો થાય? કેવી રીતે થાય? તેથી જીવ પણ આકાશની જેમ અમૂર્ત દ્રવ્ય હોવાથી તેમાં પણ બંધ-મોક્ષ ઘટી શકે નહીં. આવો મત ધરાવનારાઓ કર્મ પહેલું, જીવ પહેલો કે બન્ને સાથે ઉત્પન્ન થાય છે એવા વિકલ્પો દ્વારા સિદ્ધ કરે છે કે જીવ-કર્તનો સંબંધ ઘટી શકતો નથી.

વિચાર કરતાં સમજાય છે કે આ વાત અસંગત છે. શરીર અને કર્મની સંતતિ અનાદિ છે, કારણ કે તે બન્નેમાં પરસ્પર કારણ-કાર્યભાવ છે, બીજ-અંકુરની જેમ. બીજ અને અંકુરની માફક તે બન્નેમાં પરસ્પર કારણ-કાર્યભાવ રહેલો છે. શરીરથી કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે અને પૂર્વકર્મનાં ફળ સ્વરૂપે શરીરની ઉત્પત્તિ થાય છે. શરીરથી કર્મ બંધાય છે અને એ કર્મથી શરીર મળે છે. પ્રાપ્ત થયેલ એ શરીરથી ફરી કર્મ બંધાય છે અને એ કર્મથી ફરી શરીર મળે છે. શરીર એ કારણ છે, કર્મ એ કાર્ય છે; અને વળી, કર્મ એ કારણ છે અને શરીર એ કાર્ય છે. આમ, બન્નેનો પરસ્પર કારણ-કાર્યભાવ છે. શરીર અને કર્મ પરસ્પર કારણ-કાર્ય છે. જેમ બીજથી અંકુર અને અંકુરથી બીજ થાય છે, આ ક્રમ અનાદિ કાળથી ચાલ્યો આવે છે માટે બીજ અને અંકુરની સંતતિ અનાદિ છે; તે જ પ્રમાણે દેહથી કર્મની અને કર્મથી દેહની ઉત્પત્તિનો ક્રમ અનાદિ કાળથી ચાલ્યો આવે છે, માટે તે બન્નેની સંતતિ પણ અનાદિ છે. જેમ બીજ અને અંકુરનો કારણ-કાર્યભાવ પ્રવાહથી અનાદિ છે, તેમ દેહ અને કર્મનો કારણ-કાર્યભાવ પણ અનાદિ સંતતિરૂપ છે. આ તથ્ય સામે પૂર્વપક્ષનો કોઈ વિકલ્પ ટકી શકતો નથી. તેઓ જે વિકલ્પ કરે છે કે કર્મ પહેલું કે જીવ પહેલો - એ વિકલ્પને કોઈ અવકાશ જ નથી, કારણ કે તેની સંતિત અનાદિ છે.

શરીરથી કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે, એટલે કે કર્મ એ શરીરનું કાર્ય છે; પણ જે શરીરે કર્મને ઉત્પન્ન કર્યું, તે શરીર પણ પૂર્વકર્મનું કાર્ય છે, અર્થાત્ તે પણ કર્મથી જ ઉત્પન્ન થયેલું છે; વળી પાછું જે કર્મ વડે કર્મોત્પાદક શરીર ઉત્પન્ન થયું, તે કર્મ પણ પૂર્વશરીરથી ઉત્પન્ન થયેલ હોય છે. આ પ્રમાણે કર્મ અને શરીર પરસ્પર કારણ-કાર્યભાવ હોવાથી બન્નેની સંતતિ અનાદિ છે; તેથી કર્મની સંતતિ પણ અનાદિ જ છે. જે કર્મ કરાય છે તે જ તો બંધ છે, એટલે જો કર્મસંતાન અનાદિ હોય તો બંધ પણ અનાદિ સિદ્ધ થાય છે.

અહીં કોઈને પ્રશ્ન થાય કે કર્મસંતાન અનાદિ સિદ્ધ થવાથી બંધનો સંભવ કહ્યો, પણ અત્રે તો શરીર અને કર્મમાં પરસ્પર કારણ-કાર્યભાવ સિદ્ધ કર્યો છે, તો તેમાં જીવને કંઈ લેવા-દેવા રહેતી નથી, તેથી જીવ-કર્મનો સંયોગ અનાદિ છે એમ કઈ રીતે કહી શકાય?

શરીર અને કર્મનો પરસ્પર કાર્ય-કારણભાવ ખરો, પણ જો કોઈ કર્તા ન હોય

તો શરીર કે કર્મ બન્નેમાંથી એક પણ ઉત્પન્ન ન થાય. એટલે માનવું જોઈએ કે જીવ કર્મ દ્વારા શરીરને ઉત્પન્ન કરે છે, તેથી તે જીવ શરીરનો કર્તા છે અને જીવ એ શરીર દ્વારા કર્મને ઉત્પન્ન કરે છે, તેથી તે જીવ કર્મનો પણ કર્તા છે; જેમ દંડ દ્વારા ઘટને ઉત્પન્ન કરનાર કુંભાર ઘટનો કર્તા કહેવાય છે, તેમ કર્મયુક્ત જીવ શરીરનો કર્તા બને છે. અને શરીરયુક્ત એ જીવ કર્મનો કર્તા બને છે. આથી શરીર અને કર્મની સંતતિ અનાદિ હોવાથી જીવને પણ અનાદિ માનવો જોઈએ અને તેનો બંધ પણ અનાદિ માનવો જોઈએ. અને કર્મનો બંધ પણ અનાદિ છે. જીવ અને કર્મનો સંબંધ અનાદિ છે.

ચેતનની કૃષિ આદિ કિયા જેમ સફળ છે, તેમ દાનાદિ કિયા પણ સફળ છે અને તેનું જે ફળ તે કર્મ છે, તેથી કર્મનો બંધ સ્વીકારવો જ જોઈએ. જીવમાં બંધ સંભવે છે, કારણ કે જીવની દાન તથા હિંસાદિ કિયા સફળ છે; અને એ બંધનો વિયોગ પણ જીવમાં સંભવે છે, કારણ કે જીવ અને કર્મનો સંબંધ સંયોગરૂપ છે. તેથી જીવમાં બંધ અને મોક્ષ છે. જો બંધ-મોક્ષ ન હોય તો મુક્તિના પ્રરૂપક શાસ્ત્રો અને તેમાં કહેલી સર્વ કિયાઓ નિષ્ફળ જાય. વળી, પ્રત્યક્ષ જણાતા જન્મ-મરણ, સુખ-દુઃખ, પુણ્ય-પાપ, ધર્મ-અધર્મ વગેરે અસત્ય ઠરે.

સ્થૂળ દષ્ટિએ જોવામાં આવે તો આત્માનો બંધ અને મોક્ષ નહીં માનનારા જીવો આત્માને માને છે એમ જણાય છે, પણ સૂક્ષ્મ દષ્ટિથી વિચારતાં જણાય છે કે તેઓ આત્માની સત્તાને જ માનતા નથી. જો તેઓ આત્માનો મોક્ષ નથી માનતા, તો તેઓ આત્માને કર્મનો બંધ થાય છે એમ પણ નથી જ માનતા અને તેથી તેઓ આત્માને (કર્મબંધના હેતુભૂત) રાગાદિમય પણ નથી માનતા. આમ માનવાથી રાગાદિમય સંસારી આત્માઓની સત્તાનો લોપ થાય છે. વળી, તેઓ વીતરાગસ્વરૂપ આત્માને તો નથી જ માનતા, કેમ કે એ તો આત્માની મોક્ષ અવસ્થા છે અને આત્માનો મોક્ષ તો તેઓ માનતા જ નથી. આમ, બંધ-મોક્ષનિષેધથી તો બન્ને પ્રકારના આત્માની સત્તાનો નિષેધ ફલિત થાય છે, એટલે સૂક્ષ્મ દષ્ટિથી તો તેઓ આત્માનું અસ્તિત્વ ન માનનાર જ છે.

કેટલાક અમોક્ષવાદીઓ એમ દલીલ કરે છે કે જે અનાદિ હોય તે અનંત પણ હોય જ છે. જે પદાર્થનો આદિ હોય તેનો અંત હોય જ છે અને જે અનાદિ હોય તે અનંત જ હોય છે. આ ન્યાય અનુસાર અનાદિ કર્મબંધનની સંતતિનો નાશ થઈ શકે નહીં. કર્મબંધનનો કોઈ આઘ સમય નથી, તેથી તે અનાદિ છે. જેમ કર્મબંધ અનાદિથી ચાલ્યો આવે છે, તેમ અનંત કાળ સુધી રહેવો જોઈએ, અર્થાત્ જીવનો મોક્ષ સંભવિત નથી. કર્મબંધ અનાદિ હોવાથી જીવનો મોક્ષ ઘટી શકતો નથી.

આ દલીલનું સમાધાન આ પ્રમાણે છે - કર્મનો સંબંધ જીવ સાથે જો કે

અનાદિથી છે, પરંતુ તે અનાદિ સંબંધ તે ને તે જ કાર્મણ વર્ગણાનાં પુદ્ગલપરમાણુઓ સાથેનો નથી. જીવને અનાદિ કાળથી કર્મો લાગેલાં છે એ વાત સત્ય છે, પણ જે કર્મો અનાદિ કાળથી હતાં, તે જ કર્મો અત્યારે પણ જીવને લાગેલાં નથી. જીવ સાથે દરેક કર્મના સંબંધની અવધિ - મર્યાદા છે, તે અમુક મુદ્દત સુધી જ જીવ સાથે રહે છે.

એટલું ખરું છે કે અનાદિની જીવની વિકારી અવસ્થામાં કર્મોનો સંયોગ થયા કરે છે. સંસારી જીવને વિકારી અવસ્થા અનાદિથી છે, તેથી કર્મોનો સંબંધ કોઈ નિયત કાળથી થયો નથી, પણ તે અનાદિ છે. પરંતુ આ તો સમુચ્ચય કર્મની અપેક્ષાએ વાત છે. એનો અર્થ એમ નથી કે અમુક કર્મનાં પુદ્ગલો અનાદિ કાળથી જીવની સાથે લાગેલાં જ છે. દરેક કર્મની ઉત્પત્તિ પણ હોય છે અને તેનો નાશ પણ હોય છે.

કર્મો બંધાય છે તેમ ખપે પણ છે. એક પણ કર્મ એવું નથી કે જે ખપે જ નહીં. તેનું કારણ એ છે કે જે જે કર્મ બંધાય છે, જ્યારે જ્યારે બંધાય છે; ત્યારે ત્યારે તે તે કર્મની સ્થિતિ પણ બંધાય છે. જઘન્ય, ઉત્કૃષ્ટ કે તે બન્ને વચ્ચેની – એમ ગમે તે સ્થિતિ બંધાય, પણ બંધાયેલાં કર્મની સ્થિતિ પૂરી થતાં તે કર્મ ખપે જ છે. દરેક કર્મની અવધિ નિયત હોય છે અને એ અવધિ પૂરી થતાં તે કર્મ ખપી જ જાય છે. કાં તો તે એના સમયે ઉદયમાં આવીને ખપે છે અને કાં તો ઉદીરણા કરીને જીવ તેને ખપાવે છે.

દરેક કર્મનો ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિબંધ પણ નિશ્ચિત કાળમર્યાદાવાળો જ છે. મોહનીય કર્મનો ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિબંધ ૭૦ કોડાકોડી સાગરોપમનો છે. જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, અંતરાય અને વેદનીય - આ ચાર કર્મોનો ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિબંધ ૩૦ કોડાકોડી સાગરોપમનો છે. નામ અને ગોત્ર કર્મનો ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિબંધ ૨૦ કોડાકોડી સાગરોપમનો છે અને આયુષ્ય કર્મનો ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિબંધ ૩૩ સાગરોપમનો છે. તેથી બધાં કર્મોનો એકસાથે વિચાર કરવામાં આવે તો કોઈ પણ કર્મ ૭૦ કોડાકોડી સાગરોપમ કરતાં વિશેષ સ્થિતિબંધનું ન હોઈ શકે. જો આ પ્રમાણે કર્મનો ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિબંધ છે તો પછી આત્માનો કોઈ પણ નિયત કર્મની સાથે અનાદિ સંયોગ કેવી રીતે ઘટી શકે? આત્મા જ્યારે કોઈ એક કર્મ બાંધે તો વધુમાં વધુ તેની કાળસ્થિતિ ૭૦ કોડાકોડી સાગરોપમથી વિશેષ હોઈ જ ન શકે અને આ ૭૦ કોડાકોડી સાગરોપમનો કાળ કંઈ અનાદિ કાળ તો નથી જ.

અત્રે કોઈને પ્રશ્ન ઉદ્દભવે કે તો પછી જીવ-કર્મનો સંયોગ અનાદિ કેવી રીતે સિદ્ધ થાય? તો તેનો ઉત્તર એમ છે કે આ ઉત્કૃષ્ટ કાળસ્થિતિ તો ફક્ત એક વાર બાંધેલાં કર્મની છે અને દર સમયે જીવ સાત કર્મ બાંધે છે અને આયુષ્ય બાંધે ત્યારે આઠ કર્મ બાંધે છે. જો કે દરેક સમયે બંધાતાં કર્મો ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિનાં નથી બંધાતાં, પણ સામાન્ય સ્થિતિનાં જ બંધાય છે. અત્યંત તીવ અધ્યવસાયમાં જ ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિનાં કર્મો બંધાય છે. આ રીતે જીવ પ્રત્યેક સમયે કર્મ બાંધે છે. દરેક સમયનું દરેક કર્મ ભિન્ન ભિન્ન છે, સ્વતંત્ર છે. જેમ એક પ્રવાહબદ્ધ નદીનું પાણી ગામે ગામે જુદાં જુદાં નામથી ઓળખાય છે. ગામના નામ પ્રમાણે અથવા તો કોઈ અલગ નામથી ઓળખાય છે. પરંત મુળમાં જોઈએ તો પ્રવાહથી પાણી એક જ છે. જે ગંગા સમુદ્રમાં મળી રહી છે અને જે ગંગા ગંગોત્રીમાંથી નીકળી રહી છે તે પ્રવાહથી એક જ છે. એમ એક કર્મ અત્યારે બાંધ્યું, એક આગલા સમયે બાંધ્યું, એક ગઈ કાલે, એક એનાથી પણ પહેલાં, એક કર્મ ગત જન્મમાં, વળી એક એનાથી પણ પહેલાંના જન્મમાં, હજી એનાથી પણ પહેલાંના જન્મમાં - એમ અનંત જન્મોમાં જીવે અનેતાં કર્મો બાંધ્યાં છે. આ અનેત કર્મોમાં પ્રથમ કયા કર્મનો બંધ ક્યારે થયો એ શોધવં સંભવિત નથી. કારણ કે નિગોદ અવસ્થામાં જ અનંતાં જન્મ-મરણ થયાં છે અને નિગોદમાંથી બહાર નીકળ્યા પછી આ ચાર ગતિની ઘટમાળમાં પરિભામણ કરતાં કરતાં પણ અનંત જન્મ-મરણ વીતી ગયાં છે. હવે જો કર્મબંધની પરંપરાનો વિચાર કરવામાં આવે તો તેનો અંત કશે પણ ન મળી શકે. માટે જીવાત્મા સાથે કર્મનો સંબંધ પરંપરાથી અનાદિ સિદ્ધ થાય છે. તે છતાં અત્યારે જીવ ઉપર ૭૦ કોડાકોડી સાગરોપમ પહેલાંનું તો એક પણ કર્મ રહ્યું નથી. તે કર્મો પોતપોતાની સ્થિતિ પૂરી થઈ ગયા પછી તો ક્ષય થઈ જ ગયાં છે. અનાદિ કાળથી કેટલાં બધાં કર્મો બંધાયાં છે અને તે બધાં કર્મો ક્ષય પણ થયાં જ છે.

આ પ્રમાણે કર્મ પરંપરાથી અનાદિ છે, તે છતાં વ્યક્તિગતરૂપે અનાદિ નથી. કર્મનો નાશ નિર્જરા વડે થતો જ જાય છે અને વળી, બીજાં નવાં કર્મો બંધાતાં પણ જાય છે. એટલે જ જીવ કર્મથી સદંતર મુક્ત થઈ શક્યો નથી. જૂનાં કર્મો ક્ષય થતાં જાય છે અને નવાં કર્મો બંધાતાં જાય છે. જૂનાં હજી પૂરાં ક્ષય ન થયાં હોય તે પહેલાં નવાં કર્મો તો બંધાયાં જ હોય, કારણ કે જીવની મન-વચન-કાયાની પ્રવૃત્તિ તો સતત ચાલુ જ રહે છે. જો એ પ્રવૃત્તિ ન અટકે તો કર્મનો બંધ કઈ રીતે અટકી શકે? પરંતુ આ ઉપરથી એમ શંકા ન કરવી કે જો બંધ સતત ચાલુ જ છે તો પછી મોક્ષ કઈ રીતે થશે? મોક્ષ થઈ ન શકે એવો સંશય કરવા યોગ્ય નથી. જીવનો મોક્ષ અવશ્ય થઈ શકે છે.

જીવ અને કર્મનો સંયોગ છે. જ્યાં સંયોગ હોય છે ત્યાં વિયોગ પણ થાય જ છે. જેનો સંયોગ થાય તેનો વિયોગ થાય જ છે. આંશિક નિર્જરામાં અમુક પ્રમાણમાં કર્મનો વિયોગ થાય છે, પણ સંવર ન હોવાથી ફરી નવાં કર્મનો સંયોગ થયા કરે છે. આમ હોવા છતાં જીવાત્માનો કર્મપુદ્ગલની સાથેનો સંયોગ સર્વથા નષ્ટ પણ થઈ શકે છે, અર્થાત્ સદંતર વિયોગ થઈ શકે છે. કર્મના આ સંપૂર્ણ વિયોગને જ મોક્ષ કહેવાય છે. જીવ જો નવીન કર્મોનું બંધન ન થવા દે અને પૂર્વબદ્ધ કર્મોની નિર્જરા કરતો જાય

તો અનુક્રમે કર્મનો સંબંધ સર્વથા છૂટી શકે છે.

સંબંધ બે પ્રકારના છે - સમવાય સંબંધ અને સંયોગ સંબંધ. આત્મા અને તેનો જ્ઞાન ગુણ; સુવર્ણ અને તેનો પીતત્વ ગુણ એ સમવાય સંબંધ કહેવાય. સમવાય સંબંધ અનાદિ-અનંત સંબંધ છે. જીવ અને કર્મનો અથવા સુવર્ણ અને માટીનો સંબંધ સંયોગ સંબંધ છે અને તે અનાદિ-સાંત હોય છે, અર્થાત્ અનાદિથી એ સંબંધ હોવા છતાં પણ તેનો અંત થઈ શકે છે. કર્મ બાંધવાં, છોડવાં, વળી બાંધવાં વગેરે જે પ્રક્રિયા અનાદિ કાળથી ચાલતી આવે છે, તે પ્રક્રિયા બંધ પડતાં આત્માનો મોક્ષ થાય છે.

અનાદિ કાળની કર્મશૃંખલા અનંત કાળ સુધી ચાલતી જ રહે છે એવું લાગે છે, પરંતુ શૃંખલાનો એવો નિયમ નથી કે જે અનાદિકાલીન હોય તે અનંત કાળ પર્યંત રહેવી જ જોઈએ; કેમ કે શૃંખલા સંયોગથી બને છે અને સંયોગનો વિયોગ થઈ શકે છે. જો તે વિયોગ અંશતઃ હોય તો તે શૃંખલા ચાલુ રહે છે, પણ જ્યારે તેનો આત્યંતિક વિયોગ થઈ જાય છે ત્યારે શૃંખલા તૂટી જાય છે. કર્મશૃંખલા બળવાન કારણ દ્વારા તૂટી શકે છે. જીવના સત્ય પુરુષાર્થ દ્વારા કર્મશૃંખલા મૂળમાંથી નષ્ટ થઈ શકે છે.

આમ, જીવ અને કર્મનો સંબંધ અનાદિ છે એમ જ્યારે કહેવામાં આવે છે ત્યારે તેનો અર્થ એ છે કે પરંપરાથી તે અનાદિ છે. આમ કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે જીવ નવાં નવાં કર્મ અહણ કરે છે, પરંતુ ક્યારે પણ તે કર્મ વિનાનો હોતો નથી. પૂર્વ-વાસનાના નિમિત્તે નવા કર્મની ઉત્પત્તિ થાય છે અને કર્મ બંધાયા પછી પાછી નવી વાસના ઉત્પન્ન થાય છે. એ વાસના વળી નવું કર્મ ઉત્પન્ન કરે છે. એમ બીજ-અંકુરની જેમ જીવ સાથે કર્મ અનાદિથી છે. અનાદિ અજ્ઞાનના કારણે, અનાત્મમાં જે આત્મબુદ્ધિ છે તેના કારણે બાહ્ય વિષયોની તૃષ્ણા જન્મે છે અને તેથી કર્મ બંધાતાં રહે છે અને સંસારપરંપરા ચાલુ રહે છે. અજ્ઞાનનો નિરોધ થઈ જાય તો તૃષ્ણા માટે કોઈ અવકાશ રહેતો નથી અને તેથી નવું બંધન થતું નથી, જૂનું બંધન કપાતું જાય છે અને સંસારના મૂળમાં કુઠારાઘાત થવાથી સંસાર વિનષ્ટ થઈ જાય છે.

વંશપરંપરા અનાદિ છે, અર્થાત્ મનુષ્યના પિતા, પિતામહ વગેરે પેઢીઓ ગણતાં તેનો કોઈ આદિ હોતો નથી. તે છતાં જો કોઈ મનુષ્ય બાળબ્રહ્મચારી રહે અથવા નિર્વંશ મરી જાય તો અનાદિ વંશપરંપરા તૂટી જાય છે. અનેક પેઢીઓથી ચાલી આવતી વંશપરંપરામાં કોઈ મનુષ્ય દીક્ષા લઈ લે, લગ્ન ન કરે તો તે વંશપરંપરા અટકી જાય છે, તેમ આત્મા કર્મોને આવતાં અટકાવી દે અને પ્રબળ નિર્જરા કરે તો બધાં કર્મોનો નાશ થઈ જાય છે.

જીવ અને કર્મનો પરસ્પર અનાદિ સંયોગ સિદ્ધ છે, પણ જેમ અગ્નિથી સુવર્શ

અને પાષાણ જુદાં પડી શકે છે, તેમ જ્ઞાનાદિથી જીવ અને કર્મનો વિયોગ થઈ શકે છે. સુવર્ણ અને પાષાણનો અનાદિ સંબંધ છે, પણ તે સંયોગ સંબંધ હોવાથી કોઈ કારણ- વિશેષથી તેનો વિયોગ થઈ જ શકે છે. કનકપાષાણમાં કનક અને પાષાણનો અનાદિ સંયોગ છતાં કનકને પાષાણથી પ્રયત્ન વડે જુદું પાડી શકાય છે, તેવી જ રીતે પ્રયત્ન વડે જીવ-કર્મનો અનાદિ સંયોગ હોવા છતાં પણ જીવ જો સત્પુરુષાર્થ કરે તો તે પોતાથી કર્મને જુદું પાડી શકે છે. આત્મામાં બંધરૂપ કર્મસંયોગનો પ્રયત્ન વડે નાશ થઈ શકે છે અને તે જ જીવનો મોક્ષ છે.

ખાણમાં જ્યારે સોનું હોય છે ત્યારે માટીની સાથે મિશ્રિત હોય છે, સંયુક્ત હોય છે. તેને બહાર કાઢીને, ભકીમાં તપાવીને, બન્નેનો વિયોગ કરાવવો પડે છે. પ્રયોગ વડે માટી જુદી અને સોનું જુદું થાય છે. આ પ્રમાણે સુવર્ણ અને માટીનો ખાણમાં અનાદિનો સંયોગ હોવા છતાં અગ્નિના યોગ વડે તે સંયોગનો નાશ થાય છે. જેવી રીતે માટી અને સુવર્ણનો સંબંધ અનાદિ કાળનો હોવા છતાં અગ્નિ, ક્ષાર, સુવર્ણકાર વગેરેનો યોગ મળતાં તે અનાદિ સંબંધ છૂટે છે અને શુદ્ધ સુવર્ણ પ્રાપ્ત થાય છે; તેવી જ રીતે મનુષ્યભવ, સદ્યુરુ વગેરેનો યોગ થતાં આત્મા પણ સત્પુરુષાર્થ વડે અનાદિ કર્મ સંબંધથી છૂટી, શુદ્ધ બની મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી શકે છે. જીવ અને કર્મનો વિયોગ થતાં મોક્ષ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે.

જેમ માટીથી છુટું પડેલું શુદ્ધ સોનું ૧૦૦ ટચનું હોય છે, તેમ મુક્ત અવસ્થામાં આત્મા પૂર્ણશુદ્ધ, સંપૂર્ણ કર્મમલરહિત હોય છે. આત્મા પુરુષાર્થ દ્વારા અષ્ટ કર્મનો ક્ષય કરી, સદા માટે કર્મસંબંધથી રહિત થઈ; શુદ્ધ, બુદ્ધ, મુક્ત, સિદ્ધ બની જાય છે. તે આઠે કર્મોનો ક્ષય કરી, કર્મનાં બંધનમાંથી સર્વથા છૂટીને સર્વદા સંસારનો ત્યાગ કરી લોકાએ બિરાજે છે.

આમ, સંતાન અનાદિ છે, તેથી તે અનંત પણ હોવું જ જોઈએ - એમ કહી ન શકાય, કારણ કે જેમ બીજ-અંકુરનું સંતાન અનાદિ હોવા છતાં તેનો અંત થઈ શકે છે, તેમ કર્મસંતાન અનાદિ છતાં તેનો નાશ થઈ શકે છે. બીજ અને અંકુરમાંથી ગમે તે એકનો પોતાના કાર્ય પહેલાં જ જો નાશ થઈ જાય તો બીજ-અંકુરની પરંપરાનો અંત આવી જાય છે. તે જ પ્રમાણે જીવ અને કર્મનો સંયોગ અનાદિનો હોવા છતાં સત્પુરુષાર્થ દ્વારા તેનો અંત આવી શકે છે. જીવ-કર્મના અનાદિ સંયોગનો નાશ થઈ શકે છે અને બંધમાં પડેલો જીવ મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી શકે છે. એ સ્પષ્ટ છે કે જીવ-કર્મનો અનાદિ સંયોગ હોવા છતાં વિયોગ ઘટે છે, તેથી જીવ અને કર્મનો સંબંધ નષ્ટ થવાથી મોક્ષ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે તે સ્વીકારવું જોઈએ. જે અનાદિ હોય તે અનંત પણ હોય જ એમ માનવું ન જોઈએ.

કર્મની અનાદિ સંતિતનો અંત ન આવે એવો મત યથાર્થ નથી, કારણ કે બીજ- અંકુરની સંતિત અનાદિ છતાં, મરઘી-ઈડાની સંતિત અનાદિ છતાં, સુવર્ણ અને માટીનો સંબંધ અનાદિ છતાં વિભિન્ન ઉપાયથી તે નાશ પામી શકે છે; તેમ જીવ અને કર્મનો અનાદિ સંબંધ ઉપાયવિશેષથી નાશ પામી શકે છે. આ વિષે આચાર્યશ્રી જિનભદ્રજી 'વિશેષાવશ્યકભાષ્ય'માં લખે છે કે બીજ અને અંકુરમાંથી ગમે તે એકનો પોતાના કાર્યને ઉત્પન્ન કર્યા પહેલાં જ જો નાશ થઈ જાય તો બીજ-અંકુરના સંતાનનો અંત આવી જાય છે અને તે જ પ્રમાણે મરઘી અને ઈડા વિષે પણ કહી શકાય કે મરઘી અને ઈડાની સંતિત પણ અનાદિ કાળથી હોવા છતાં જ્યારે તે બન્નેમાંથી એક પોતાના કાર્યને ઉત્પન્ન કર્યા પહેલાં જ જો નષ્ટ થઈ જાય તો તે બન્નેના સંતાનનો પણ અંત આવે. વળી, સોનું અને માટીનો સંયોગ અનાદિસંતિગત હોવા છતાં અગ્નિતાપાદિથી તે સંયોગનો નાશ થાય છે, તે જ પ્રકારે જીવ અને કર્મનો સંયોગ પણ અનાદિ-સંતિગત હોવા છતાં સમ્યક્ શ્રદ્ધાદિ રત્નત્રય વડે તે સંયોગનો નાશ કરી શકાય છે. સર્વ કર્મના આત્યંતિક વિયોગરૂપ અવસ્થા તે જ મોક્ષપદ છે.'

આમ, કર્મોની સંતતિ અનાદિ હોવા છતાં પણ સત્પુરુષાર્થ દ્વારા કર્મોનો નાશ કરવામાં આવે તો તેની સંતતિ નિઃશેષ થઈ નષ્ટ થઈ જાય છે, તેથી જીવ અને કર્મનો સંબંધ અનાદિ હોવા છતાં પણ આકાશ અને આત્મા જેવો અનાદિ-અનંત સંબંધ નથી, પણ સુવર્ણ અને માટી જેવો અનાદિ-સાંત સંબંધ છે. કર્મસંતતિ અનાદિ હોવા છતાં કર્મસંતતિનો નાશ થઈ શકે છે.

સંયોગ સંબંધની ચતુષ્ટયી આ પ્રમાણે છે –

(૧) અનાદિ-અનંત – જે સંયોગનો આદિ પણ નથી અને અંત પણ નથી. આત્મા અને આકાશનો સંબંધ આ પ્રકારનો છે. આત્મા સંસાર અવસ્થામાં હોય કે મોક્ષ અવસ્થામાં હોય, અવગાહનાના કારણે આત્માનો આકાશની સાથે સંબંધ અનાદિ-અનંત, એટલે કે આદિ-અંત વિનાનો છે. વળી અભવી જીવને, અર્થાત્ જે જીવનો મોક્ષ ક્યારે

૧- જુઓ ઃ આચાર્યશ્રી જિનભદ્રજીકૃત, 'વિશેષાવશ્યકભાષ્ય', ગાથા ૧૮૧૮,૧૮૧૯

'अण्णतरमणिव्यत्तितकज्जं बीयंकुराण जं विहितं ! तत्थ हतो संताणो कुक्कुडि-अण्डातियाणं च !! जधवेह कंचणोवलसंजोगोऽणातिसंतिगतो वि ! वोच्छिज्जति सोवायं तध जोगो जीवकम्माणं !!'

સરખાવો : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૪, શ્લોક ૧૨૫

'अनादिसंततेर्नाशः स्याद्वीजांकुरयोरिव । कुक्कुट्यंडकयोः स्वर्णमलयोरिव वानयोः।।' પણ થઈ શકે એમ નથી એવા જીવને કર્મસંયોગ અનાદિ છે અને તે બંધનો અંત ક્યારે પણ આવતો નથી. અભવી જીવો આ સંસારમાં અનાદિ કાળથી કર્મયુક્ત છે અને ભાવિમાં પણ તેમનો કર્મબંધ અનંત જ રહેવાનો છે. તેઓ કદાપિ મુક્ત નહીં થાય.

- (ર) અનાદિ-સાંત જે સંયોગનો આદિ નથી પણ અંત છે. આ બીજા ભેદમાં આસન્ન ભવ્ય જીવોનો કર્મ સાથેનો સંયોગ આવે છે. આસન્ન ભવ્ય જીવોનો કર્મબંધ ભૂતકાળની દેષ્ટિએ અનાદિ જરૂર છે, પરંતુ ભાવિની દેષ્ટિએ સાંત છે, અંત સહિત છે. એક દિવસ આ કર્મબંધનો અંત જરૂર આવશે.
- (3) સાદિ-અનંત જે સંયોગનો આદિ છે પણ અંત નથી. મોક્ષની શરૂઆત છે. કર્મક્ષય પછી જ્યારે આત્મા મોક્ષમાં જાય છે ત્યારે તે મોક્ષનો આદિ થયો કહેવાય છે અને એક વાર મોક્ષ પામ્યા પછી તે અનંત છે, સાંત નહીં. તે જીવના મોક્ષનો અંત ક્યારે પણ આવતો જ નથી.
- (૪) સાદિ-સાંત જે સંયોગનો આદિ પણ છે અને અંત પણ છે. જીવાત્મા સાથે વ્યક્તિગત કર્મના સંયોગનો આદિ પણ છે અને અંત પણ છે. જીવ સાથે જ્યારે એક કર્મ બંધાય છે ત્યારે તે કર્મનો આદિ તેની શરૂઆત થાય છે અને જ્યારે એ કર્મનો ક્ષય થાય છે ત્યારે તે કર્મનો અંત થાય છે. કર્મપરંપરાની દષ્ટિએ સર્વ જીવોનાં કર્મ અનાદિ છે, એક જીવની કર્મપરંપરાનો વિચાર કરતાં પણ તે અનાદિ છે, પરંતુ પરંપરાને ન જોતાં એક વ્યક્તિગત કર્મને જોવામાં આવે તો તે સાદિ છે અને એક દિવસ નિર્જરી જાય છે માટે સાંત છે.

આ પ્રમાશે સંયોગ સંબંધની ચતુર્ભંગી થાય છે. આત્મા અને કર્મનો સંબંધ એક કર્મની અપેક્ષાએ ચોથા પ્રકારનો છે, જ્યારે ભવ્ય જીવ અને કર્મનો સંબંધ પ્રવાહની અપેક્ષાએ બીજા પ્રકારનો છે. પુરુષાર્થ વડે એ સંબંધનો અંત આવવાથી મોક્ષની સિદ્ધિ થાય છે. અનાદિ કર્મસંયોગનો નાશ થાય એવી અનાદિ-સાંત ભાંગાવાળી વ્યવસ્થા ભવ્ય જીવોને માટે જ છે. અભવી જીવનો કર્મનો સંગ પ્રથમ પ્રકારનો છે. અભવ્યોના અનાદિ કર્મ સંબંધનો કદી નાશ થતો નથી, એટલે કે ત્યાં જીવ-કર્મ સંબંધ આત્મા અને આકાશના અનાદિ-અનંત સંબંધ જેવો જ છે.

જીવરાશિની અપેક્ષાએ જોઈએ તો જીવ-કર્મનો સંયોગ અનાદિ-સાંત અને અનાદિ-અનંત એમ બન્ને પ્રકારનો છે. જીવમાં બન્ને જાતના સંબંધો ઘટી શકે છે, એમાં કશો જ વિરોધ આવતો નથી. પરંતુ જીવવિશેષનો વિચાર કરવામાં આવે તો એ બન્ને સંબંધ એક જીવમાં સંભવે નહીં, કારણ કે તેમાં વિરોધ છે. એ બન્ને સંબંધ પરસ્પર વિરુદ્ધ છે, તેથી જે જીવ અને કર્મોનો અનાદિ-અનંત સંબંધ હોય છે, તેનામાં અનાદિ-સાંત સંબંધ નથી હોતો અને જેનામાં અનાદિ-સાંત સંબંધ હોય છે, તેનામાં અનાદિ-અનંત સંબંધ નથી હોતો. અભવ્ય જીવોમાં કર્મસંયોગ અનાદિ-અનંત છે, કારણ કે અભવ્ય જીવોનો મોક્ષ નથી. તેવા જીવોના કર્મસંયોગનો કદી નાશ થતો જ નથી. ભવ્ય જીવોમાં તે સંયોગ અનાદિ-સાંત છે, કારણ કે તેઓ કર્મસંયોગનો નાશ કરી મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાની યોગ્યતા ધરાવે છે. આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત 'પંચાસ્તિકાય'નો અનુવાદ કરતાં શ્રીમદ્ લખે છે –

'સંસારચક્રવાલમાં તે ભાવે કરીને પરિભ્રમણ કરતા જીવોમાં કોઈ જીવોનો સંસાર અનાદિસાંત છે, અને કોઈનો અનાદિઅનંત છે, એમ ભગવાન સર્વફ્રો કહ્યું છે.'^૧

ભવ્ય અને અભવ્ય એમ બે પ્રકારના જીવો છે. અનાદિ સહજ પરિણામથી જીવ બે પ્રકારના સ્વભાવવાળા હોવાથી બે જાતિના છે - એક ભવ્ય અને બીજા અભવ્ય ભવ્ય એટલે મોક્ષ પામવાને યોગ્ય. મોક્ષ પામવાની સામગ્રી મળતાં જે જીવો મોક્ષ પામી શકે તે ભવ્ય. અભવ્ય એટલે મોક્ષ પામવાને અયોગ્ય, મોક્ષ પામવાની સામગ્રી મળવા છતાં અભવ્ય જીવો કદી પણ મોક્ષ ન પામે. ભવ્ય જીવમાં ભવ્યત્વ નામનો પારિણામિક ભાવ છે. અભવ્ય જીવમાં અભવ્યત્વ નામનો પારિણામિક ભાવ છે. ભવ્યત્વ એટલે મોક્ષ પામવાની યોગ્યતા. અભવ્યત્વ એટલે મોક્ષ પામવાની અયોગ્યતા. ભવ્ય જીવોમાં મોક્ષે જવાની યોગ્યતારૂપ સ્વભાવની સત્તા અનાદિથી રહેલી છે. તેથી તેમની ભવપરિશતિ બદલાય છે. અભવ્ય જીવોમાં મોક્ષે જવાની યોગ્યતા ન હોવાથી તેમની ભવપરિણતિ ક્યારે પણ બદલાતી નથી - અનાદિથી જેવી છે તેવી ને તેવી જ રહે છે. જેમનામાં મોક્ષે જવાની યોગ્યતાવાળો પારિશામિક ભાવ છે એવા ભવ્ય જીવોને વિષે કર્મનો સંબંધ નષ્ટ થઈ શકે છે. તેથી મોક્ષરૂપ વસ્તુસ્વરૂપને સ્થાપન કરવાની મર્યાદા ભવ્ય જીવોને વિષે છે. ભવ્ય જીવોમાં પણ કેટલાક જાતિભવ્ય જીવો હોય છે. જાતિભવ્ય એટલે મોક્ષ પામવાની યોગ્યતા હોવા છતાં જેમને ક્યારે પણ મોક્ષ પામવાની સામગ્રી મળવાની જ નથી તેવા જીવો. અભવ્ય જીવો સામગ્રી મળવા છતાં મોક્ષ પામતા નથી. જ્યારે જાતિભવ્ય જીવોને તો મોક્ષ પામવાની સામગ્રી જ મળતી નથી.

એક દેષ્ટાંત વડે જીવોના આ ભેદોને સમજીએ. એક કન્યા એવી છે કે જે લગ્ન પછી માતા બને છે. બીજી કન્યા એવી છે કે જે લગ્ન પછી પણ જીવનભર માતા થતી નથી. તે ક્યારે પણ બાળકને જન્મ આપતી નથી. તેને વંધ્યા કે વાંઝણી કહેવાય છે. ત્રીજી કન્યા એવી છે કે જે બાલ્યાવસ્થામાં જ દીક્ષા લઈ લે છે, તેથી હવે તે ક્યારે પણ માતા નહીં બને. સાધ્વી માતા ન જ બને એ વાત સાવ સાચી છે, પરંતુ માતા બનવાની યોગ્યતા તો તે ધરાવે છે. તે માતૃત્વની, અર્થાત્ માતા થવાની શક્યતા તો ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૫૯૪ (આંક-૭૬૬, ૧૩૦)

- ધરાવે છે. અલબત્ત જીવનભરના વ્રતના કારણે તે માતા થવાની નથી તે વાત ચોક્કસ છે. આજીવન બ્રહ્મચર્ય વ્રત ધારણ કરનારી સાધ્વી સંતાનને જન્મ આપવાની યોગ્યતા ધરાવતી હોવા છતાં તેવા પ્રકારના પુરુષસંયોગરૂપ કારણના અભાવથી તે સંતાનને જન્મ આપતી નથી. આ પ્રમાણે ત્રણ કન્યાની યોગ્યતા-અયોગ્યતાના દેષ્ટાંતથી ત્રણ પ્રકારના જીવો છે તે સમજી શકાશે —
- (૧) પહેલી કન્યા કે જે લગ્ન પછી માતા બને છે, તેના જેવા ભવ્ય જીવો છે કે જે સત્પુરુષાર્થ કરીને મોક્ષ પામે છે.
- (૨) બીજી વાંઝણી કન્યા જેવા અભવ્ય જીવો છે. વાંઝણી કન્યા ક્યારે પણ માતા બનતી નથી, તેમ અભવ્ય જીવો ક્યારે પણ મોક્ષ પામતા નથી.
- (3) સાધ્વી થયેલી કન્યા જેવા ત્રીજી કક્ષાના જાતિભવ્ય જીવો છે, જે ભવ્યની કક્ષાના છે, પરંતુ ક્યારે પણ મોક્ષે જવાના નથી. જેમ સાધ્વી થયેલી કન્યા કોઈ કાળે માતા બનતી નથી, તેમ જાતિભવ્ય જીવો કોઈ કાળે સિદ્ધ થતા નથી, કારણ કે તેમને મોક્ષ પામવાની સામગ્રી જ મળતી નથી.

મૂળભૂત સ્વભાવમાં જ ભિન્નતા હોવાથી જીવોમાં આ પ્રકારના ભેદ છે. આ ભેદ કર્મજન્ય નથી. જો આ ભેદ કર્મજન્ય માનવામાં આવે તો જ્યારે તે કર્મોનો ક્ષય થાય ત્યારે જીવોમાં રહેલા ભવ્યત્વ-અભવ્યત્વમાં પરિવર્તન આવી શકે અને અભવ્ય જીવ પણ મોક્ષે જઈ શકે. પરંતુ આમ થવું શક્ય નથી, કારણ કે આ ભેદ કર્મજન્ય નથી. જીવસ્વભાવગત આ ભેદો છે, માટે આને પારિણામિક ભાવજન્ય ભેદ કહેવાય છે. પારિણામિક ભાવના કારણે જીવ ક્યારે પણ અજીવ અને અજીવ ક્યારે પણ જીવ થતો જ નથી; એ જ પ્રમાણે ભવ્ય ક્યારે પણ અભવ્ય અને અભવ્ય ક્યારે પણ ભવ્ય બનતો જ નથી.

અહીં કોઈ શંકા કરે કે જીવ તો બધા સરખા જ છે, તો તેમાં ભવ્ય અને અભવ્ય એવો ભેદ શા માટે? જીવ બધા સરખા છતાં જેમ નારક, તિર્યંચ આદિ ભેદો છે, તેમ ભવ્ય અને અભવ્ય એવો ભેદ પણ સંભવે છે, તેમાં કશો જ વિરોધ આવતો નથી એમ કહી શકાય નહીં, કારણ કે જીવના નારકાદિ ભેદો કર્મકૃત છે, સ્વાભાવિક નથી; જ્યારે ભવ્ય અને અભવ્ય એવા ભેદ કર્મકૃત નહીં પણ સ્વાભાવિક છે. એટલે જ પ્રશ્ન છે કે જીવના એવા સ્વાભાવિક ભેદો માનવાનું શું કારણ? જીવત્વ તો બન્ને જીવમાં સમાન હોવા છતાં એક જીવ ભવ્ય કહેવાય અને બીજો અભવ્ય કહેવાય એનું શું કારણ? જીવપણું સમાન છતાં ભવ્ય અને અભવ્યનો ભેદ શી રીતે થઈ શકે છે એ પ્રશ્નનું સમાધાન કરતાં ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ 'અધ્યાત્મસાર'માં લખે છે કે

જેમ દ્રવ્યપણું સમાન છતાં પણ જીવત્વ અને અજીવત્વનો ભેદ છે, તેમ જીવપણું સમાન છતાં પણ ભવ્યત્વ તથા અભવ્યત્વનો ભેદ છે.^૧

જીવ અને અજીવ બે દ્રવ્ય છે, છતાં જેમ એક દ્રવ્ય જીવ કહેવાય છે, બીજું અજીવ કહેવાય છે; તેમ બધા જીવો જીવત્વ ધર્મથી એકસરખા હોવા છતાં ભવ્યત્વ-અભવ્યત્વના કારણે જીવોમાં ભવ્ય-અભવ્યના ભેદો મૂળથી જ છે. કેટલાક ગુણધર્મો એવા હોય છે કે જે ભિન્ન ભિન્ન પદાર્થોમાં સમાનપણે હોય છે. દા.ત. આત્મા અને આકાશ એ બે દ્રવ્યો છે. જીવ અને આકાશ બન્ને દ્રવ્યત્વ, પ્રમેયત્વ, જ્ઞેયત્વ આદિ ધર્મોના કારણે સમાન છે; છતાં જીવત્વ અને અજીવત્વ, ચેતનત્વ અને અચેતનત્વ આદિરૂપે જીવ અને આકાશમાં સ્વભાવભેદ છે. જીવ અને આકાશ બન્નેમાં દ્રવ્યપણું સમાન છતાં જેમ જીવત્વ અને અજીવત્વરૂપે જીવ અને આકાશમાં સ્વભાવભેદ છે, તેમ બધા જીવો જીવત્વને કારણે સમાન હોવા છતાં ભવ્યત્વ અને અભવ્યત્વના કારણે ભવ્ય અને અભવ્ય એવો જીવમાં સ્વભાવભેદ રહેલો છે.

આ ભેદ સ્વભાવથી છે. ભવ્યત્વપશું, અભવ્યત્વપશું એ કર્મજન્ય ભેદ નથી. નારકીપશું, દેવપશું એ કર્મજન્ય ભેદો છે. જીવ પોતે કરેલાં કર્મના કારણે તે ક્યારેક નરકમાં જાય છે, ક્યારેક સ્વર્ગમાં જાય છે અને ત્યાંથી પછી બીજી ગતિમાં જન્મ લે છે. તે પછી નારકીપશું, દેવપશું નથી રહેતું, માટે આ કર્મકૃત ભેદ છે. પરંતુ ભવ્ય-અભવ્યપશું એ કર્મકૃત ભેદ નથી પણ સ્વભાવજન્ય ભેદ છે. વળી, નારકીપશું, દેવપશું વગેરે કર્મજન્ય હોવાથી એક જ જીવ ક્યારેક નારક બને છે તો ક્યારેક દેવ પણ બને છે; પરંતુ ભવ્ય જીવ ક્યારે પણ અભવ્ય નથી બનતો અને અભવ્ય જીવ ક્યારે પણ ભવ્ય નથી બનતો અને અભવ્ય જીવ ક્યારે પણ ભવ્ય નથી બનતો, કારણ કે આ ભેદ સ્વાભાવિક છે.

જેમ એક જ છોડમાં ઊગેલા મગમાં પણ બે ભેદ હોય છે. મગ બાફવા મૂકવામાં આવે ત્યારે મગના અમુક દાશા સીઝે છે, જ્યારે અમુક દાશા બિલકુલ સીઝતા નથી. કલાકો સુધી પાણીમાં ઊકળતા જ રહે, છતાં પણ તે નથી સીઝતા. તેવા મગને કોરડુ મગ કહેવાય છે. આ ભેદ સ્વભાવથી છે. તે મગની જાતિ જ એવી છે કે જેથી તે કોરડુ જ રહે છે, તે ક્યારે પણ સીઝતા જ નથી. તેમ ભવ્ય અને અભવ્યના ભેદ સ્વભાવના કારણે મૂળભૂત ભેદો છે. ભવ્ય મોક્ષે જઈ શકે છે, જ્યારે અભવ્ય ક્યારે પણ મોક્ષે જતો નથી, સિદ્ધ થતો નથી. કોરડુ મગ કદી પણ સીઝતા જ નથી, તેમ અભવ્ય જીવ ક્યારે પણ સિદ્ધ થતો જ નથી.

१- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૪, શ્લોક ૧૨૭ 'द्रव्यभावे समानेऽपि जीवाजीवत्वभेदवत् । जीवभावे समानेऽपि भव्याभव्यत्वयोर्भिदा ।।'

ગાયનું અને આકડાનું દૂધ દૂધરૂપે સમાન હોવા છતાં એ બન્નેમાં ભેદ છે. ગાયના દૂધમાં દહીં-ઘીરૂપે બનવાની યોગ્યતા છે અને આકડાના દૂધમાંથી દહીં-ઘી બનતાં નથી. સ્ત્રીરૂપે બધી સ્ત્રીઓ સમાન હોવા છતાં સંતાનોત્પત્તિની દષ્ટિએ માતા બનવાની યોગ્યતાવાળી સ્ત્રી અને જેનામાં માતા બનવાની યોગ્યતા નથી એવી વંધ્યા સ્ત્રી એમ બે ભેદ પડે છે. એ જ પ્રમાણે જીવરૂપે બધા સમાન હોવા છતાં મોક્ષ-ગમનની યોગ્યતા અને અયોગ્યતાના કારણે ભવ્ય અને અભવ્ય એવા ભેદો પડે છે.

અહીં કોઈ શંકા કરે કે ભવ્યપશું એ જીવનો સ્વાભાવિક ધર્મ હોય તો પછી તેને પણ જીવપણાની જેમ નિત્ય માનવો જોઈએ અને ભવ્યપણાને જો નિત્ય માનવામાં આવે તો જીવનો મોક્ષ કદી થઈ જ ન શકે, કારણ કે મુક્ત જીવોમાં ભવ્ય-અભવ્યના ભેદ જ નથી. જીવનું ભવ્યત્વ સ્વાભાવિક છે તો પછી જીવનો મોક્ષ થતાં તેના ભવ્યત્વનો નાશ કઈ રીતે માની શકાય? સ્વભાવનો નાશ કઈ રીતે થાય?

આ શંકાનું સમાધાન આ પ્રમાણે છે - ઘટનો પ્રાગભાવ હોવાથી, એટલે કે ઘટની ઉત્પત્તિ થયા પહેલાં ઘટનો અભાવ હોવાથી, ઘડાના આકારે નહીં વિદ્યમાન એવી માટી એ સ્વાભાવિક દ્રવ્ય છે; તોપણ પોતાના આકારના નાશના કારણરૂપ સામગ્રીના સામર્થ્યથી, અર્થાત્ ઘટને ઉત્પન્ન કરનાર કુંભાર વગેરેની પ્રાપ્તિ થવાના કારણે ઘટરૂપ કાર્ય ઉત્પન્ન થવાથી, તે ઘટનો પ્રાગભાવ (માટીનો આકાર) નાશ પામે છે. આ વાતમાં કાંઈ વિરોધ આવતો નથી. તેવી રીતે આત્માના પારિણામિક ભાવથી ઉત્પન્ન થયેલું ભવ્યત્વ, આત્મા જ્યારે મુક્ત દશા પ્રાપ્ત કરે છે ત્યારે નાશ પામે છે. સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ વગેરે સામર્થ્યવાળા કારણનું સંપૂર્ણપણું થવાથી ભવ્યત્વ નાશ પામે છે, છતાં પણ આ વાતમાં કોઈ પણ પ્રકારનો વિરોધ આવતો નથી.

આ પ્રમાણે ઘટનો પ્રાગભાવ (ઘટનો અભાવવિશેષ) સ્વાભાવિક હોવા છતાં પણ તે અભાવનો નાશ થવાનાં કારણો, જેવાં કે કુંભાર, દંડ વગેરે ઉપસ્થિત થાય તો તે અભાવનો નાશ થઈ જાય છે; તેમ જીવના ભવ્યત્વના નાશમાં કારણભૂત એવી મુક્તિની પ્રાપ્તિ થતાં તેના ભવ્યત્વનો નાશ થવામાં કશો વિરોધ આવતો નથી. જેવી રીતે ઘટનો પ્રાપ્તિ થતાં તેના ભવ્યત્વનો નાશ થવામાં કશો વિરોધ આવતો નથી. જેવી રીતે ઘટનો પ્રાગભાવ અનાદિસ્વભાવરૂપ હોવા છતાં પણ તેનો નાશ, ઘટની ઉત્પત્તિ થવાથી થાય છે; તેવી જ રીતે જીવનો ભવ્યત્વસ્વભાવ અનાદિ હોવા છતાં પણ જ્ઞાન અને ક્રિયાથી મુક્તિ પ્રાપ્ત થતાં તેનો નાશ થાય છે.

બીજી એક દલીલ એવી છે કે ભલે ભવ્યત્વનો નાશ થઈ જાય, પણ તેમ માનવામાં એક બીજો દોષ છે. તે એ કે સંસારમાંથી ભવ્યત્વનો ક્યારેક ઉચ્છેદ થઈ જશે. જેમ ધાન્યના કોઠારમાંથી થોડું થોડું ધાન્ય કાઢવામાં આવે તો કોઠાર ખાલી થઈ જાય છે, તેમ ભવ્ય જીવો ક્રમશઃ મોક્ષમાં જવાથી સંસારમાં ભવ્ય જીવોનો અભાવ થઈ જશે અને તેથી મોક્ષનો પણ અભાવ થશે. મોક્ષપ્રાપ્ત કરવાની યોગ્યતા ભવ્ય જીવોમાં છે અને તે સર્વ ભવ્ય જીવો ઘણા કાળ પછી મોક્ષે ચાલ્યા જ જશે, તેથી કોઈ ભવ્ય જીવ બાકી રહેશે નહીં; એટલે મોક્ષનો અભાવ થઈ જશે. ભવ્ય જીવોમાં મોક્ષે જવાની યોગ્યતા હોવાથી ઘણા કાળ પછી એક એવો કાળ આવશે જ્યારે આ સંસારમાં એક પણ ભવ્ય જીવ રહેશે નહીં. સંસારમાં માત્ર અભવ્ય જીવો જ હશે.

આ દલીલનું સમાધાન આપતાં આચાર્યશ્રી જિનભદ્રજી 'વિશેષાવશ્યકભાષ્ય'માં લખે છે કે અનાગત કાળ અને આકાશની જેમ ભવ્યો પણ અનંત છે. તેથી સંસાર ભવ્યોથી કદી ખાલી થઈ શકશે જ નહીં. અનાગત કાળના સમયરાશિમાંથી પ્રત્યેક ક્ષણમાં એક એક સમય વર્તમાનરૂપ બનવાથી તે રાશિમાં પ્રત્યેક ક્ષણે હાનિ થવા છતાં, તે રાશિ અનંત સમયપ્રમાણ હોવાથી જેમ તેનો ઉચ્છેદ કદી સંભવતો નથી; અથવા તો કલ્પના વડે આકાશના અનંત પ્રદેશોમાંથી પ્રતિ સમયે એક એક પ્રદેશ અંલગ કરવામાં આવે તોપણ આકાશપ્રદેશનો જેમ ઉચ્છેદ થતો નથી, તેમ ભવ્ય જીવો પણ અનંત હોવાથી પ્રત્યેક સમયે તેમાંથી મોક્ષે જાય તોપણ ભવ્યરાશિનો કદી ઉચ્છેદ થતો નથી. વળી. અતીત કાળ અને અનાગત કાળનું પરિમાણ સરખું છે, તેમજ અતીત કાળમાં ભવ્યોનો અનંતમો ભાગ જ સિદ્ધ થયો છે. જે નિગોદના જીવોનો અનંતમો ભાગ જ છે; તેથી અનાગત કાળમાં પણ તેટલો જ ભાગ સિદ્ધ થઈ શકશે, કારણ કે તેનું પરિમાણ અતીત કાળ જેટલું જ છે. તેથી સંસારમાંથી કદી પણ ભવ્ય જીવોનો ઉચ્છેદ સંભવતો નથી, સંપૂર્ણ કાળમાં પણ ભવ્ય જીવોના ઉચ્છેદનો પ્રસંગ આવશે જ નહીં. ભવ્યો અનંત છે અને સર્વ કાળ મળીને પણ તેમનો અનંતમો ભાગ જ મુક્ત બને છે એ વસ્તુની સિદ્ધિ કેવી રીતે થાય છે? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર એમ છે કે જેમ કાળ અને આકાશ અનંત છે, તેમ ભવ્ય જીવો પણ અનંત છે અને જેમ કાળ અને આકાશનો ઉચ્છેદ થતો નથી, તેમ ભવ્ય જીવોનો પણ ઉચ્છેદ થાય નહીં; માટે માનવું જોઈએ કે ભવ્ય જીવોનો અનંતમો ભાગ જ મુક્ત થાય છે.^૧

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી જિનભદ્રજીકૃત, 'વિશેષાવશ્યકભાષ્ય', ગાથા ૧૮૨૭-૧૮૩૦ भव्यच्छेतो कोट्टागारस्स 'एवं वावचयतो त्ति। तं णाणंतत्त्रणतोऽणागतकालंबराणं चातीताणागतकाला तुल्ला जतो अणंतभागो भव्याणमतीतकालेणं ।। एरसेण तत्तियो चियय जुत्तो जं तो वि सव्वभव्याणं । जुत्तो ण समुच्छेदो होज्ज मता किथ मतं सिद्धं।। भव्वाणमणंतत्त्रणमणंतभागो व किध व मुक्को सिं।

व्य मंडिय!

कालादओ

मह वयणातो

ભવ્ય જીવોમાં મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાની યોગ્યતા છે, પણ જેમનામાં એ યોગ્યતા હોય તે બધા મોક્ષે જાય જ છે એમ પણ નથી. ભવ્યનો મોક્ષ થાય છે, પરંતુ બધા ભવ્ય સંસારપરિભ્રમણથી છૂટે જ છે એવું નથી. બધા ભવ્ય મુક્ત થાય જ છે એવો એકાંત નથી. એવા ઘણા ભવ્યો છે જેઓ મોક્ષે જઈ શકતા નથી. તેમનામાં ભવ્યત્વ હોવા છતાં તેઓ મોક્ષે જઈ શકતા નથી. જે ભવ્ય જીવોમાં યોગ્યતાનો અભાવ નથી, પણ તેમને કારણસામગ્રીનો અભાવ હોવાથી તેઓ મોક્ષે જઈ શકતા નથી.

અત્રે પ્રશ્ન થાય કે કેટલાક ભવ્યો મોક્ષે જશે જ નહીં તો પછી તેમનામાં રહેલા ભવ્યત્વનું ફળ શું? તો પછી તેમનું ભવ્યત્વ નિષ્ફળ જ જાયને? તેઓ મોક્ષે કદાપિ ન જાય તો તેમને અભવ્ય જ કેમ ન કહેવાય? ભવ્ય હોવા છતાં પણ જો મોક્ષે ન જાય તો તેમને ભવ્ય કહેવાનો અર્થ શું? તેમને અભવ્ય જ કહીએ તો શું ખોટું છે? ભવ્યોનો અનંતમો ભાગ જ મુક્ત થઈ શકે છે, અર્થાત્ કેટલાક ભવ્યો એવા પણ છે જે કદી સિદ્ધ નહીં થાય; તો પછી તેમને અભવ્ય જ કહેવા જોઈએ, ભવ્ય શા માટે કહેવા?

આ કથન બરાબર નથી. ભવ્યનો અર્થ થાય છે મોક્ષગમનને યોગ્ય. મોક્ષે જવા યોગ્ય જે જીવ હોય છે તેને ભવ્ય જીવ કહેવાય છે. ભવ્ય એટલે મોક્ષે જાય જ એવો અર્થ નથી થતો, પરંતુ મોક્ષે જવા યોગ્ય એવો અર્થ થાય છે. મોક્ષે જવાની યોગ્યતા ભવ્યમાં છે, અભવ્યમાં તો છે જ નહીં. અભવ્યને બાહ્ય મોક્ષસામગ્રી મળે તોપણ યોગ્યતાના અભાવના કારણે તેને મોક્ષ મળી શકતો નથી. આના ઉપરથી ખ્યાલ આવે છે કે ભવ્યમાં યોગ્યતા છે, પરંતુ યોગ્યતા હોવામાત્રથી તે મોક્ષે જશે જ એવો કોઈ નિયમ નથી.

જેમ બીજને ઊગવા માટે હવા, પાણી, તાપ, જમીન આદિ યોગ્ય સામગીઓ જરૂરી છે. આ સહયોગી કારણો મળે તો તે બીજ પોતાની યોગ્યતા પ્રમાણે ફળીભૂત થાય છે. એ જ પ્રમાણે ભવ્ય જીવોને મોક્ષે જવા યોગ્ય સહકારી કારણો મળે તો જ તે મોક્ષે જાય છે. તેમનામાં યોગ્યતા પડેલી હોવા છતાં પણ જો સહકારી કારણોનો અભાવ હોય તો તેમનો મોક્ષ નથી થતો. આથી ભવ્ય જીવોનો મોક્ષ ન થવામાં કારણભૂત યોગ્યતાનો અભાવ નથી પણ સામગ્રીનો અભાવ છે. મોક્ષે ન જાય એથી કંઈ તેઓ અભવ્ય નથી થઈ જતા. જેમ એક કન્યામાં માતા થવાની યોગ્યતા પડેલી છે, પરંતુ તેનું લગ્ન જ ન થાય તો તે માતા નથી થતી. માતા ન બને એટલે કંઈ તેને વંધ્યા ન કહી શકાય. જે માતા થવાની યોગ્યતા નથી ધરાવતી તેને જ વંધ્યા કહેવાય. તેમ જે ભવ્ય જીવો મોક્ષે ન જાય તેમને અભવ્ય કહેવાતા નથી. મોક્ષે ન જવાથી ભવ્ય જીવોનું

ભવ્યત્વપશું કંઈ નષ્ટ થતું નથી. તેમનું ભવ્યત્વપશું સદા યથાવત્ રહે છે.

કનકપાષાણમાં કનક અને યાષાણના વિયોગની યોગ્યતા હોવા છતાં, એટલે કે કનકને કનકપાષાણથી જુદું પાડી શકાતું હોવા છતાં બધા જ કનકપાષાણથી કનક જુદું પડતું નથી, પણ વિયોગ થઈ શકે એવી સામગ્રી જેને મળે છે તે જ કનકપાષાણમાંથી કનક જુદું પડે છે. વળી, તે સામગ્રી અન્ય પ્રકારના પાષાણને મળે તો તેમાંથી કનક પ્રાપ્ત થતું નથી, માત્ર કનકપાષાણમાંથી જ પ્રાપ્ત થાય છે; એટલે કે કનકપાષાણની જ તે વિશેષ યોગ્યતા છે, સર્વ પ્રકારના પાષાણની નહીં. તે જ પ્રકારે ભલે બધા ભવ્યો મોક્ષે ન જાય છતાં જે પણ જીવ મોક્ષે જાય છે તે ભવ્ય જ હોય છે, તેથી મોક્ષે જવાની યોગ્યતા ભવ્યમાં જ મનાય છે અને કોઈ પણ અભવ્ય મોક્ષે જતો નથી, તેથી અભવ્યમાં મોક્ષે જવાની યોગ્યતાનો અસ્વીકાર કરવામાં આવ્યો છે.

સુવર્શ, મિશ, પાષાણ, ચંદનકાષ્ઠ એ બધાંમાં પ્રતિમા બનવાની યોગ્યતા છે, પરંતુ જો કોઈ શિલ્પી એને ઘડે નહીં તો એમાંથી પ્રતિમા બનતી નથી. જો શિલ્પીનો સહયોગ મળે તો તેમાંથી પ્રતિમા ઘડાય છે. વળી, સુવર્શ આદિમાં પ્રતિમા થવાની યોગ્યતા હોવા છતાં તે બધાંમાંથી પ્રતિમા બનશે જ એવું પણ નથી. એટલે ઉક્ત દ્રવ્યોમાંથી પ્રતિમાનું નિર્માણ ન થયું હોય કે ન થવાનું હોય તોપણ તે પ્રતિમા માટે અયોગ્ય છે એમ કહી શકાય નહીં. વળી, જો શિલ્પીને મૂર્તિનું નિર્માણ કરવું હોય તો તે એમાંની જ કોઈ વસ્તુમાંથી મૂર્તિ બનાવી શકે છે, અન્યમાંથી નહીં. સ્વયંભૂરમણ સમુદ્રના તળિયે રહેલા પાષાણમાં પ્રતિમા બનવાની યોગ્યતા છે, પછી ભલે તેમાંથી કદી પ્રતિમા ન બને, પણ તેથી કંઈ તેની તે યોગ્યતાનો નાશ ન થઈ જાય. તે જ પ્રકારે જે ભવ્યો કદી મોક્ષે જવાના નથી તેમને અભવ્ય ન જ કહી શકાય. સારાંશ એ છે કે એવો નિયમ બનાવી શકાય કે જે દ્રવ્યો પ્રતિમાયોગ્ય છે તેની જ પ્રતિમા બને છે, અન્યની નહીં અને જે જીવો ભવ્ય છે તેઓ જ મોક્ષે જાય છે, અન્ય નહીં; પરંતુ એવો નિયમ ન બનાવી શકાય કે જે દ્રવ્યો પ્રતિમાયોગ્ય છે તેની પ્રતિમા બને જ છે અને જે જીવો ભવ્ય છે તેઓ મોક્ષે જાય જ છે.

આમ, જેટલા ભવ્યો છે તેટલા મોક્ષે જશે જ એવો નિયમ સાચો ઠરતો નથી, પરંતુ જેટલા મોક્ષે જશે તેટલા તો ચોક્કસ ભવ્યો જ હશે એ નિયમ સાચો ઠરે છે. ભવ્ય મોક્ષે જાય પણ ખરા અને ન પણ જાય, પણ એક વાત સાચી છે કે જે જે મોક્ષે ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી વીરસેનજીકૃત, 'ધવલા', પુસ્તક ૪, ખંડ ૧, ભાગ ૫, સૂત્ર ૩૧૦, પ્.૪૭૮

'ण च सत्तिमंताणं सब्बेसिं पि बत्तीए होदब्बमिदि णियमो अत्थि सब्बस्स वि हेमपासाणस्स हेमपञ्जाएण परिणमणयसंगा । ण च एवं, अणुवलंभा।' ગયા છે, જાય છે અને જશે તે બધા ભવ્ય જ હોવાના. અભવ્ય કદી મોક્ષે નહીં જ જાય. અભવ્ય કદી પણ સમ્યક્ત્વ પામતો જ નથી અને તેથી તે ક્યારે પણ મોક્ષે જતો નથી. અભવ્ય અને જાતિભવ્ય જીવો ક્યારે પણ મોક્ષે જતા જ નથી. અભવ્ય અને જાતિભવ્ય જીવો ક્યારે પણ સંસારપરિભ્રમણમાંથી છૂટતા નથી, તેમનો મોક્ષ કદાપિ થતો નથી.

અનંત કાળ વીતી જશે પછી પણ અનંતા ભવ્ય જીવો સંસારમાં હશે. ત્યારે પણ અનંતા ભવ્ય જીવો મોક્ષે નહીં ગયા હોય. અનંત કાળમાં અનંતા ભવ્ય જીવો મોક્ષે ગયા હોવા છતાં, અનંતા જીવોથી ભરેલો નિગોદનો એક ગોળો પણ હજી ખાલી થયો નથી અને એવા તો નિગોદના અસંખ્ય ગોળા લોકમાં છે. તેથી અનંતો કાળ વીતવા છતાં પણ સંસારમાં ભવ્ય જીવો તો રહેવાના જ છે. અનંત કાળે પણ એવો દિવસ નથી આવવાનો કે જે દિવસે આ સંસારમાં કોઈ ભવ્ય જીવ જ નહીં રહે.

અમોક્ષવાદીઓ અન્ય એક દલીલ એમ કરે છે કે વ્યાપક આત્માને મુક્તિગમન અસંભિવિત છે, માટે મોક્ષ નથી. આનું સમાધાન એ છે કે આત્માની વ્યાપકતા અનુમાન-પ્રમાણથી બાધિત છે, તેથી જીવાત્માને વ્યાપક માની શકાય નહીં. તે આ પ્રમાણે – દેહમાં જ આત્માના ગુણો ઉપલબ્ધ થતા હોવાથી આત્મા દેહાકાર જ માનવો જોઈએ. આત્માનો કોઈ પણ ગુણ, સુખ-દુ:ખનો અનુભવ દેહથી બહાર કોઈ પણ આકાશ-પ્રદેશમાં થતો નથી. વળી, એવો નિયમ છે કે જેનો ગુણ જ્યાં હોય છે ત્યાં જ તેનું દ્રવ્ય હોય છે. જ્યાં ગુણ ન હોય ત્યાં દ્રવ્ય પણ નથી હોતું. માટે આત્માને આકાશમાં સર્વત્ર વ્યાપક માની ન શકાય. શરીરથી બહાર આત્માના ગુણો અનુપલબ્ધ હોવાથી આત્મા શરીરવ્યાપી જ છે, સકળ આકાશમાં તે વ્યાપ્ત નથી. એ પ્રમાણે જો મુક્તાત્માનો વિચાર કરવામાં આવે તો મુક્તાત્મા આકાશપ્રમાણ વ્યાપક વિસ્તારવાળા નથી, કારણ કે મોક્ષમાં જતી વખતે તેમણે જે શરીર છોડ્યું હોય તેના ર/3 ભાગપ્રમાણની જ તેમની અવગાહના હોય છે અને એટલા જ આકાશપ્રદેશને તે આત્મા સ્પર્શ કરે છે. તે આત્મા એટલી જ જગ્યામાં રહે છે, માટે મુક્તાત્મા પણ સર્વવ્યાપી નથી.

આત્માને સર્વવ્યાપી માનનારના મત અનુસાર તો જીવનું પરભવમાં ગમન અશક્ય બનવાથી તેનો સંસાર જ ઘટી શકતો નથી, કેમ કે એક ભવમાંથી બીજા ભવમાં સંસરણ કરવાનું જેમાં હોય તે સંસાર છે. વળી, સર્વવ્યાપી માનવાથી સિદ્ધક્ષેત્રમાં પણ ગમન અસંભવિત બનવાથી મોક્ષ પણ ઘટી શકતો નથી. જૈન દર્શન

यस्तु सिध्यति सोऽवश्यं भव्य एवेति नो मतम् ।।'

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૪, શ્લોક ૧૩૦ 'नैतद्वयं वदामो यद्भव्यः सर्वेऽपि सिध्यति ।

આત્માને શરીરપ્રમાણ માને છે, તેથી આત્માની ગમનાદિ ક્રિયા સંભવિત હોવાથી સંસાર અને મુક્તિ બન્ને ઘટે છે. જીવે જેવું આયુષ્ય, ગતિ, જાતિ આદિ બાંધ્યાં હોય, તે કર્મોનો ઉદય થાય ત્યારે તેને અનુસરીને જીવ તે ક્ષેત્રમાં જાય છે. આમ, એક ગતિમાંથી બીજી ગતિમાં ગમન ઘટતું હોવાથી સંસાર ઘટે છે. તેવી જ રીતે મોક્ષગામી જીવનું પણ પૂર્વપ્રયોગાદિ કારણો અનુસાર સિદ્ધક્ષેત્રમાં ગમન થાય છે. તે સિદ્ધશિલા ઉપર જાય છે અને ત્યાં શાશ્વત આનંદઘનરૂપે સ્થિત થાય છે.

આમ, મોક્ષપદની સિદ્ધિ થાય છે, માટે જ ભ્રમપૂર્ણ જીવોનો મોક્ષસત્તાનો નિષેધ કરતો મત જરા પણ આવકારવા યોગ્ય નથી. જીવનો મોક્ષ થઈ શકે છે, કારણ કે બંધ સ્વાભાવિક કે આકસ્મિક નથી. જો બંધ જીવનો સ્વાભાવિક ધર્મ હોય તો તે બંધ જીવ સાથે સદા માટે રહેવો જોઈએ, પણ તે તો સંયોગ-વિયોગરૂપ છે; તેથી સમય પાકતાં જૂનો બંધ ટળે છે અને જીવ વિકાર કરે તો જ નવો બંધ થાય છે. જો બંધ સ્વાભાવિક હોય તો સર્વ બદ્ધાત્મા જ હોય, કોઈ મુક્તાત્મા હોઈ શકે નહીં. વળી, બંધ સ્વાભાવિક હોય તો બદ્ધ જીવોમાં પરસ્પર અંતર પણ ન દેખાય, કારણ કે ભિન્ન કારણ વિના એક જાતિના પદાર્થોમાં ભેદ હોઈ શકે નહીં. પરંતુ જીવોમાં ભેદ દેખાય છે, તેથી બંધ સ્વાભાવિક નથી. જેમ બંધ સ્વાભાવિક નથી, તેમ તે આકસ્મિક પણ નથી, અર્થાત્ કારણ વગર તેની ઉત્પત્તિ નથી. દરેક કાર્ય પોતપોતાના કારણ અનુસાર જ થાય છે. સ્થૂળ બુદ્ધિથી તેનું કારણ જાણી શકાતું ન હોવાથી તેને કેટલાક લોકો આકસ્મિક કહે છે. પરંતુ બંધ આકસ્મિક હોઈ શકે નહીં. સદા નિયમબદ્ધ થનાર બંધને આકસ્મિક કહે રીતે કહી શકાય? અને જો બંધ આકસ્મિક ન હોય તો બંધથી છૂટવું - મોક્ષ પણ આકસ્મિક હોઈ શકે નહીં.

બંધનું કારણ જીવના વિકારી ભાવ છે. જીવના વિકારી ભાવોમાં તરતમતા દેખાય છે, તેથી તે ક્ષણિક છે અને ક્ષણિક વિકારી ભાવના કારણે થતો કર્મબંધ પણ ક્ષણિક છે, કેમ કે જેનું કારણ ક્ષણિક હોય તેનું કાર્ય શાશ્વત કઈ રીતે હોઈ શકે? જેનું કારણ શાશ્વત હોય તેનું જ કાર્ય શાશ્વત હોય. શાશ્વતપણું અને તરતમતા એ બન્ને શીતળતા અને ઉષ્ણતાની માફક પરસ્પર વિરોધી છે. કર્મનો બંધ અને ઉદય તરતમતા સહિત જ થાય છે, માટે બંધ શાશ્વત નથી. તેથી બંધના હેતુઓનો અભાવ થતાં મોક્ષ થાય છે એમ સ્વીકારવું જ જોઈએ.

મોક્ષ એ તો આત્માનું પૂર્ણશુદ્ધ અને ચિન્મય સ્વરૂપ છે. જ્યાં સુધી કર્મોનો સંપૂર્ણ રીતે ક્ષય થતો નથી, ત્યાં સુધી આત્માનો શુદ્ધ સ્વભાવ છુપાયેલો રહે છે. જે જીવ સર્વ કર્મોનો નાશ કરીને પોતાનું સાધ્ય પ્રાપ્ત કરી લે છે, તે પૂર્ણ આનંદ મેળવે છે. કર્મબંધનથી મુક્તિ મળ્યા પછી જન્મ-મરણરૂપ દુઃખના ચક્રની ગતિ રોકાઈ જાય છે અને સચ્ચિદાનંદ સ્વરૂપની અનંત કાળ માટે પ્રાપ્તિ થાય છે. મોક્ષમાં જન્મ, મરણ, દુઃખ, સંતાપ, રોગ, શોક, ભય, જરા, રાગ, દેખ આદિ કોઈ તત્ત્વો નથી અને ત્યાં, જેનું શબ્દોમાં વર્શન ન શકે એવું અનંત અવ્યાબાધ સુખ છે.

આ અદ્ભુત મોક્ષ અવસ્થાની પ્રાપ્તિ સરળ છે, સુગમ છે. મોક્ષની પ્રાપ્તિ વિકટ નથી. યથાર્થ દિશામાં પગલાં ભરતાં સરળતાથી તેની પ્રાપ્તિ થઈ શકે છે. પરંતુ જો જીવ અશસમજશથી ખોટી દિશામાં પ્રયત્નો કરે તો તેની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી. જીવ જો પોતાનો ઉપયોગ અંતર્મુખ કરે તો તેને મોક્ષની પ્રાપ્તિ અવશ્ય થાય છે. જીવ અંતર્મુખ થાય તો જ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે, બહિર્મુખ રહેતાં કદાપિ થતી નથી.

મોક્ષને યોગ્ય એવો ભવ્ય જીવ શુદ્ધાત્માના અવલંબન વડે આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિર થવાનો પુરુષાર્થ કરે તો અનાદિની ભૂલ સુધરે અને સ્વાધીન જ્ઞાનદશા પ્રાપ્ત થાય. શુભાશુભ ભાવ દોષરૂપ છે. શુભાશુભ ભાવ કરવાથી કર્મબંધ થાય છે અને તે કર્મનું સફળપશું છે, અર્થાત્ તેના વડે સંસારફળ પ્રાપ્ત થાય છે. જીવ શુભાશુભ ભાવને ટાળી શકે છે. શુભાશુભ ભાવ કરવારૂપ દોષ વડે તે બંધાતો હતો, પરંતુ તે ભાવો છોડી દેવાથી કર્મબંધન છૂટતું જાય છે. કર્મબંધની જેમ કર્મનિવૃત્તિનું પણ સફળપશું છે, અર્થાત્ તેના વડે મોક્ષફળ પ્રાપ્ત થાય છે. સર્વ કર્મથી નિવૃત્ત થતાં આત્મા પોતાના સહજાનંદ સ્વરૂપમાં અખંડપણે સ્થિર રહે છે અને આ જ તેનો મોક્ષ છે.

વસ્તુવ્યવસ્થા જ એવી છે કે સ્વભાવનો અભાવ ક્યારે પણ ન થઈ શકે, પરંતુ યોગ્ય ઉપચાર વડે દોષનો અભાવ જરૂર થઈ શકે છે. કોઈ પણ દોષનો અભાવ કરતાં તેનો પ્રતિપક્ષી સ્વાભાવિક ગુણ પ્રગટે છે એ અનુભવસિદ્ધ તથ્ય છે. માટે કર્મગ્રહણનો દોષ ટાળતાં કર્મથી મુક્તિરૂપ ગુણ પ્રગટે જ છે. શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ લખે છે –

'ચેતન પોતાની અવસ્થાના દોષથી શુભાશુભ ભાવો કરે છે, તે ભાવો શુભાશુભ કર્મપદ છે અને તે જીવના કરવાથી થાય છે, એમ પણ તેં જાણ્યું અને તેથી તેનું ફળ સંસાર છે, નરકાદિ ગતિ છે, અર્થાત્ તેનું ભોક્તાપણું છે એ પણ તે બરાબર જાણ્યું છે. હવે શુભાશુભ ભાવ એ દોષ છે, તે નહીં કરવાથી અથવા તે કર્મ નિવૃત્ત કરવાથી નિવૃત્તિ અથવા મોક્ષ થવા યોગ્ય છે, એ પ્રમાણે નિવૃત્તિનું પણ સફળપણું છે. જેમ શુભાશુભ કર્મ અફળ જતાં નથી, તેમ તેની નિવૃત્તિ પણ અફળ જવા યોગ્ય નથી અને તે નિવૃત્તિરૂપ મોક્ષ છે એમ હે વિચક્ષણ, તું વિચાર કરીને નિર્ધાર કર.'

શિષ્યની મોક્ષપદ વિષેની શંકાના ઉત્તરમાં શ્રીગુરુ કહે છે કે 'હે વત્સ! તને એ ૧- શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ, 'આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર (વિશેષાર્થ સહિત)', ચોથી આવૃત્તિ, પૃ. ૨૫૨

તથ્યનો તો બરાબર નિર્ણય થયો છે કે જીવને પોતાનાં કરેલાં શુભાશુભ કર્મનું ફળ અવશ્ય મળે છે. શુભ અને અશુભ કર્મ સંસારરૂપી ફળ આપનારાં છે એવું તેં યથાર્થપણે જાણ્યું છે, તેવી જ રીતે હે બુદ્ધિમાન! શુભાશુભ કર્મની નિવૃત્તિનું ફળ પણ જીવને અવશ્ય પ્રાપ્ત થાય છે એ તું સ્પષ્ટપણે જાણ. તું એ સમજ કે જેમ જીવ શુભાશુભ કર્મ કરે તો તેનું ફળ તેને પ્રાપ્ત થાય છે, તેમ તે શુભાશુભ કર્મથી નિવૃત્ત થાય તો તેનું ફળ પણ તેને પ્રાપ્ત થાય છે અને તે જ મોક્ષ છે. શુભાશુભ કર્મની નિવૃત્તિ સફળ છે અને તે નિવૃત્તિનું ફળ મોક્ષ છે. તેથી મોક્ષપદ છે એમ હે સુજાણ! તું નિશ્ચયે જાણ.' આ પ્રમાણે શુભાશુભ કર્મની નિવૃત્તિથી જીવને મોક્ષફળ પ્રાપ્ત થાય છે એમ શ્રીગુરુ શિષ્યને સમજાવે છે. શિષ્યને કરેલા 'સુજાણ' સંબોધન દ્વારા, તેની પ્રવર્ધમાન પાત્રતાને જોઈને પોતાને ઉદ્ભવેલ આહ્લાદને શ્રીગુરુ વ્યક્ત કરે છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'જેમ શુભાશુભ કર્મપદ, ચિત્ત વિષે સમજાય; જીવ કર્મ જેવા કરે, તે ફળ ભોક્તા થાય. એ સમજાથી ઠીક એ, જાણ્યાં સફળ પ્રમાણ; હવે સમજવા મોક્ષને, અપાય ઠીક પ્રમાણ. જીવ કરે તો ભોગવે, નહીં કરે તો નાંહીં; તેમ નિવૃત્તિ સફળતા, વિચારી લ્યો મનમાંહી. જીવ સમજી નિજ ભાવને, કરે ન કર્મ વિધાન; સહેજે નિવૃત્તિ લહે, માટે મોક્ષ સજાણ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', યૃ.૨૩૬ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૫૩-૩૫૬)

ब्रिट्येर द्वाप अवंत ते, दूर्य देवलाश्वल लाय, तेर देवलाश्वल केरतां, दिएके मोश्वरूपकाय. ભૂમિકા ગાથા ૮૯માં શ્રીગુરુએ કહ્યું કે જેમ શુભાશુભ કર્મ કરવાથી તેનાં ફળ ભૂમિકા ભોગવાય છે, તેમ કર્મ નહીં કરવાથી તેનું ફળ પણ પ્રાપ્ત થાય છે; અર્થાત્ શુભાશુભ કર્મ જેમ અફળ જતાં નથી, તેમ તેની નિવૃત્તિ પણ અફળ જવા યોગ્ય નથી, તે નિવૃત્તિનું પણ સફળપણું છે. તેનું ફળ મોક્ષપદ છે.

આમ, શ્રીગુરુએ મોક્ષપદની સિદ્ધિ કરી. મોક્ષ સંભવિત હોવા છતાં હજી સુધી, અનંત કાળ વીત્યો છતાં શા માટે થયો નહીં તે શ્રીગુરુ પ્રસ્તુત ગાથામાં સમજાવે છે. ગાથા ૮૭માં શિષ્યે કહ્યું હતું કે 'કર્તા ભોક્તા જીવ હો, પણ તેનો નહિ મોક્ષ; વીત્યો કાળ અનંત પણ, વર્તમાન છે દોષ', અર્થાત્ જીવના કર્તા-ભોક્તાપણાનો યથાર્થપણે નિશ્ચય થયો છે, પરંતુ કર્તા-ભોક્તાપણાના ચક્રના નાશરૂપ મોક્ષપદનો નિર્ણય થતો નથી, કારણ કે અનંત કાળથી ચારે ગતિમાં જીવ રખડ્યા કર્યો છે અને તેના પરિભ્રમણનો અંત આવ્યો નથી, તેથી જીવનો મોક્ષ થવો સંભવિત નથી.

જીવના પરિભ્રમણનું કારણ શું છે અને તે પરિભ્રમણનો અંત કઈ રીતે આવી શકે તે સમજાવતાં શ્રીગુરૂ કહે છે –

ગાથા 'વીત્યો કાળ અનંત તે, કર્મ શુભાશુભ ભાવ; તેહ શુભાશુભ છેદતાં, ઊપજે મોક્ષ સ્વભાવ.' (૯૦)

કર્મસહિત અનંતકાળ વીત્યો, તે તે શુભાશુભ કર્મ પ્રત્યેની જીવની આસક્તિને લીદો વીત્યો, પણ તેના પર ઉદાસીન થવાથી તે કર્મફળ છેદાય, અને તેથી મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટ થાય. (૯૦)

ભાવાર્થ જીવ જેવા ભાવ કરે છે તેવું ફળ તેને પ્રાપ્ત થાય છે. જો તે શુભાશુભ ભાવાર્થ ભાવ કરે તો તેને સંસારફળ પ્રાપ્ત થાય છે અને શુભાશુભ ભાવની નિવૃત્તિરૂપ શુદ્ધ ભાવ કરે તો તેને મોક્ષફળ પ્રાપ્ત થાય છે. અનંત કાળ વ્યતીત થવા છતાં મોક્ષ થયો નહીં, કારણ કે જીવ શુભાશુભ ભાવ જ કરતો રહ્યો છે. તેણે શુભાશુભ ભાવને દૂર કરવાનો પ્રયાસ જ કર્યો નથી. આજ સુધી તે શુભાશુભ ભાવથી નિવૃત્ત થયો જ નથી, માટે તે ચારે ગતિમાં પરિભ્રમણ કરતો રહ્યો છે અને તેથી તે હજી પણ મોક્ષ પામ્યો નથી.

ભલે અનંત કાળથી શુભાશુભ ભાવ થતા હોય, અનંત કાળથી શુભાશુભ ભાવનું

કરવાપણું અને તેના ફળનું ભોગવવાપણું ચાલુ હોય, પણ તે ટળી શકે છે, કારણ કે શુભાશુભ ભાવ એ જીવનો સ્વભાવ નથી. શુભાશુભ ભાવ આત્માના વિકારી ભાવો છે, વિભાવ છે. જ્યારે જીવ આ બન્ને ભાવોથી નિવૃત્ત થાય છે ત્યારે તેનામાં સ્વપરિણતિ-રૂપ સહજ શુદ્ધ ભાવ પ્રગટ થાય છે. જો જીવ શુભાશુભ ભાવોથી વિરામ પામે તો અનંત કાળથી તિરોહિત એવો મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટ થાય છે. આત્માની સહજ શુદ્ધ અવસ્થા પ્રગટ થવી એ જ મોક્ષ છે. અનાદિ કાળથી જે શુભાશુભ ભાવ થાય છે, તેને અટકાવીને જો જીવ સ્વસ્વભાવમાં સ્થિર થાય તો ભાવકર્મ ઉત્પન્ન થતાં નથી અને તે ભાવકર્મના નિમિત્તે આવતાં દ્રવ્યકર્મ પણ રોકાય છે. નવીન દ્રવ્યકર્મ આવતાં રોકાય છે અને પૂર્વબદ્ધ કર્મની નિર્જરા થતી જાય છે, તેથી સર્વ કર્મથી રહિત એવી મોક્ષદશા પ્રગટે છે. શુભાશુભ ભાવ રોકીને, ઉપયોગ આત્મામાં સ્થિર કરવાથી કર્મનાં સંવર-નિર્જરા થતાં મોક્ષ થાય છે. આમ, શુભાશુભ ભાવથી નિવૃત્ત થઈ મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટ કરનાર જીવ મોક્ષ પામી શકે છે.

વિશેષાર્થી અનંત કાળથી જીવ કર્મ સહિત હોવાથી ચારે ગતિમાં રખડ્યો છે. આ પરિભ્રમણના કારણરૂપ શુભાશુભ ભાવ નિવૃત્ત થયેલાં આજ સુધી જણાયા નથી, તેથી શિષ્ય સંસારપરિભ્રમણની નિવૃત્તિરૂપ મોક્ષ વિષે શકિત થાય છે. બંધનથી છૂટવાની સાચી જિજ્ઞાસાવાળા શિષ્યને મોક્ષનો નિર્ણય ન્યાયથી કરવો છે અને તેનો અવિરુદ્ધ ઉપાય જાણી તે પ્રમાણે વર્તવું છે, તેથી તે પોતાની વિચારણા શ્રીગુરુ સમક્ષ રજૂ કરી તત્ત્વ સમજાવવા તેમને વિનંતી કરે છે. પરિભ્રમણનું કારણ અને પરિભ્રમણની નિવૃત્તિરૂપ મોક્ષ કઈ રીતે થાય તેની વિચારણા અત્યંત આવશ્યક તથા મહત્ત્વની છે. આ વિચારણાના ગાંભીર્ય વિષે શ્રીમદ્ લખે છે –

'"અનંતકાળથી જીવનું પરિભ્રમણ થયા છતાં તેની નિવૃત્તિ કાં થતી નથી? અને તે શું કરવાથી થાય?"

આ વાક્યમાં અનંત અર્થ સમાયેલો છે; અને એ વાક્યમાં કહેલી ચિંતના કર્યા વિના, તેને માટે દઢ થઈ ઝૂર્યા વિના માર્ગની દિશાનું પણ અલ્પ ભાન થતું નથી.'

અનંત કાળથી જીવ સંસારમાં રખડ્યો છે. તેનું કારણ શુભાશુભ કર્મ પ્રત્યેની તેની આસક્તિ છે. જીવ આસક્તિના કારણે જ્ઞાતાપણું ભૂલીને ઉપાધિમાં અટક્યો છે અને તેથી તે સંસારમાં ફસાયો છે. 'હું શુભાશુભ ભાવથી રહિત છું, શુભાશુભ ભાવ મારા નથી' એવો બોધ તેને પ્રગટ થયો નથી, તેથી શુભાશુભ વિકારી ભાવો સાથે તન્મય થઈને તે ભવભ્રમણ કરી રહ્યો છે. પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિર રહેવાને બદલે, આત્મભાન વિના શુભાશુભ ભાવ કરી તે સંસારપરિભ્રમણ કરી રહ્યો છે. જીવ પોતાના ૧- 'શ્રીમદ્દ રાજચંદ્ર', છઢી આવૃત્તિ, પૃ.૨૬૦ (પત્રાંક-૧૯૫)

શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપને ભૂલી, કર્મકૃત અવસ્થામાં જોડાઈને શુભાશુભ ભાવરૂપે પરિણમે છે, તેથી તેના પરિભ્રમણનો અંત આવતો નથી. પરંતુ જો તે કર્મકૃત અવસ્થાઓને પોતાના સ્વરૂપથી ભિન્ન જાણી, તે સર્વનો માત્ર જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા રહે તો શુભાશુભ ભાવ છેદાતાં મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટ થાય છે.

જીવ અનંત કાળથી શુભાશુભ ભાવમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે, પણ જો જીવ ધારે તો તેનાથી નિવૃત્ત થઈ શકે છે અને જો તે શુભાશુભ ભાવથી નિવૃત્ત થાય તો મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટ થાય છે. શુભાશુભ પરિણામમાં અનંત કાળ વીત્યો છે, પરંતુ જ્યારે આ શુભાશુભ પરિણામો છેદાય છે ત્યારે અવશ્ય મોક્ષસ્વભાવ ઊપજે છે. શુભાશુભ પરિણામોને રોકીને ઉપયોગને સ્વસ્વરૂપમાં સ્થિર કરતાં, સંવર અને નિર્જરા દ્વારા મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. શુભાશુભ વિકારી ભાવથી જીવની બંધ અવસ્થા થાય છે. તે શુભાશુભ ભાવને ટાળી નિજમાં વૃત્તિ સ્થિર કરવાથી આત્માની શુદ્ધ, નિર્મળ, કર્મકલંકથી રહિત અવસ્થા પ્રગટે છે. આ સહજ, સ્વાભાવિક, પવિત્ર અવસ્થા એ જ મોક્ષ છે.

જીવ જેવા જેવા ભાવ કરે, તેવાં તેવાં ફળની તેને પ્રાપ્તિ થાય છે. ભલે અનંત કાળથી શુભાશુભ ભાવ થતા આવ્યા છે, અનંત કાળથી શુભાશુભ ભાવનું કરવાપશું અને તેનાં ફળનું ભોગવવાપશું ચાલુ રહ્યું છે, પણ તે ટળી શકે છે. પોતાના શુદ્ધ યૈતન્યસ્વભાવનો નિશ્ચય કરી, તેનું અવલંબન અહણ કરવામાં આવે તો તે શુભાશુભ ભાવને છેદી સમસ્ત દુઃખથી મુક્ત થવાય છે. જીવ સ્વરૂપાનુસંધાનનો - શુદ્ધ ભાવનો પુરુષાર્થ કરે તો અવશ્ય મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટ થાય છે.

અતમા મોક્ષસ્વભાવી છે, ત્રિકાળશુદ્ધ જ્ઞાનસ્વભાવી છે. વસ્તુની અવસ્થા બદલાવા છતાં જે કદી ન બદલાય અને કાયમ રહે તેને સ્વભાવ કહે છે. જેમ ખાંડનો સ્વભાવ મીઠાશ છે. તે માટી સાથે મેળવવામાં આવે તોપણ તેની મીઠાશનો નાશ થતો નથી. તે પ્રમાણે આત્માનો સ્વભાવ જાણવાનો છે, તેથી આત્માનું જાણપણું તો સદા - ત્રણે કાળને વિષે રહે જ છે. પ્રશ્ન થાય કે જ્ઞાન જો આત્માનો સ્વભાવ છે તો શુભાશુભ ભાવ શું છે? એક ઉદાહરણ વડે આ વાત સરળતાથી સમજી શકાશે. ખાંડ સગડી ઉપર વાસણમાં ગરમ થઈ રહી હોય તો તે વખતે તેમાં મીઠાશ અને ગરમી બન્ને જણાશે; પણ મીઠાશ તેનો સ્વભાવ છે, જ્યારે ગરમી અગ્નિ સાથે સંબંધ થવાના કારણે આવી છે. ગરમી અગ્નિના કારણે છે, તેથી અગ્નિનો સંયોગ દૂર થતાં તે જતી રહેશે, પરંતુ મીઠાશ કદી પણ જતી નથી. ગરમી આવી છે, તે હાજર છે, છતાં ગરમી ખાંડનો સ્વભાવ નથી. જેમ વાસણ ખાંડથી અલગ છે, તેમ ગરમી પણ ખાંડના અસ્તિત્વથી અલગ જ છે. ખાંડનું પોતાનું અસ્તિત્વ માત્ર મીઠાશમાં છે. જો મીઠાશ હશે તો જ તે ખાંડ ગણાશે અને જો મીઠાશ નહીં હોય તો તેનું ખાંડપણું પણ નહીં હોય. ખાંડની

મીઠાશ એ આત્માનો જ્ઞાતાસ્વભાવ છે, ખાંડની ગરમી એ આત્મામાં થતા શુભાશુભ ભાવ છે, વાસણ એ શરીર છે અને અગ્નિ એ પૂર્વકર્મ છે. આત્માનું જાણપણું અર્થાત્ જ્ઞાતાસ્વભાવ અને શુભાશુભ ભાવ એકસાથે હોવા છતાં જ્ઞાતાપણું સ્વયં ચેતનનું છે, જ્યારે શુભાશુભ ભાવ પૂર્વકર્મના નિમિત્તે થાય છે. શુભાશુભ ભાવનો અભાવ થતાં આત્માનો અભાવ થતો નથી, તેથી શુભાશુભ ભાવ આત્માના છે અને આત્મામાં છે, છતાં તે આત્માનો સ્વભાવ નથી. આત્માનો સ્વભાવ તો માત્ર જાણપણું છે, જે આત્મામાં સર્વદા વિદ્યમાન રહે છે. જાણપણું કાયમ રહે છે, જ્યારે શુભાશુભ ભાવો કાયમ ટકતા નથી. શુભાશુભ ભાવોની ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને લય સ્પષ્ટપણે અનુભવી શકાય છે. પરંતુ એની ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને ક્ષીણતા - આ ત્રણેને જાણનાર તત્ત્વ સતત વિદ્યમાન છે. આ જ્ઞાયકપણું તે જ આત્માનો સ્વભાવ છે. આ જ્ઞાયકસ્વભાવના અવલંબન વડે શુભાશુભ ભાવો છેદાય છે અને મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટે છે.

જેમ 'મેલું પાણી' એ એકવસ્તુરૂપે ભાસે છે, પણ વાસ્તવમાં ત્યાં બે વસ્તુ છે, મેલ અને પાણી. પાણી મેલું દેખાય ત્યારે પણ પાણી તો સ્વચ્છ જ છે, કારણ કે મેલ પાણીમાં હોવા છતાં તેનાથી અલગ છે. આ તથ્યનો ખ્યાલ રાખીને જ્યારે મેલ અને પાણીમાં હોવા છતાં તેનાથી અલગ છે. આ તથ્યનો ખ્યાલ રાખીને જ્યારે મેલ અને પાણીને છૂટા કરવાની પ્રક્રિયા કરવામાં આવે ત્યારે નિર્મળ જળની પ્રાપ્તિ થાય છે. વ્યવહારથી જળ હવે નિર્મળ બન્યું, પણ નિશ્ચયથી તો તે મેલું જણાતું હતું ત્યારે પણ તે નિર્મળ જ હતું. એ જ રીતે જ્ઞેયને અવલંબીને પ્રવર્તનારી જ્ઞાનશક્તિ શુદ્ધ જ છે. વિકાર વખતે જ્ઞાન અને શુભાશુભ ભાવ એકત્ર થાય છે, પરંતુ ત્યારે પણ જ્ઞાન તો શુદ્ધ જ છે. તે સતત જાણવાનું કાર્ય કરે જ છે. શુભાશુભ ભાવ વખતે આ શુદ્ધ જ્ઞાનશક્તિ જોવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. શુભાશુભ ભાવ વખતે પણ સતત વિદ્યમાન એવા શુદ્ધ જ્ઞાનને પકડવું જોઈએ.

જેણે પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવનો નિશ્ચય કર્યો છે એવો આત્માર્થી જીવ જાણે છે કે 'મારામાં જે શુભાશુભ ભાવરૂપી વિકાર દેખાય છે તે મારા સ્વભાવભૂત નથી, પણ મારામાં આરોપાયેલા છે.' જે ક્ષણે શુભાશુભ ભાવ વર્તે છે, તે ક્ષણે જ વિવેકજ્યોતિના કારણે તે જાણે છે કે 'મારો સ્વભાવ તો શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર છે, આ શુભાશુભ ભાવ તો ઉપાધિરૂપ છે. આ શુભાશુભ ભાવ મારા સ્વભાવના આશ્રયે થયા નથી, પણ કર્મના આશ્રયે થયેલા છે; પરંતુ હવે હું મારા સ્વભાવના આશ્રયે નિર્મળ પર્યાય પ્રગટાવીને આ શુભાશુભ ભાવને છેદી નાંખીશ.' પોતાના સ્વભાવનો આવો નિશ્ચય કરીને તે પ્રમાણે જે જીવ વર્તે છે, તે જીવ મુક્તિ પામે છે.

પોતાના સ્વભાવને ભૂલીને કર્મ તરફના ઝુકાવના કારણે જીવને અનાદિથી શુભાશુભ ભાવની પરંપરા ચાલી રહી છે. શુભાશુભ ભાવની પરંપરા અનાદિથી ચાલતી રહી હોવા છતાં પણ તે સ્વભાવભૂત નથી. આત્માર્થી જીવ પોતાનામાં તે ઉપાધિને અવલોકે છે, પોતાની પર્યાયમાં થતાં વિકારી ભાવોને જાણે છે અને તે જ કાળે પોતાના નિરુપાધિક શુદ્ધ સ્વભાવનો નિશ્ચય વર્તતો હોવાથી તે સ્વભાવ તરફ ઝૂકતો જાય છે તથા શુભાશુભ ભાવની પરંપરાને તોડતો જાય છે. શુભાશુભ ભાવની પરંપરા તૂટતાં કર્મબંધન પણ છૂટતાં જાય છે. શુદ્ધ સ્વભાવ તરફ ઝૂકેલા જીવને શુભાશુભ ભાવો અત્યંત ક્ષીણ થયા હોવાથી તે પૂર્વબંધનથી છૂટતો જાય છે, તેને નવું બંધન થતું નથી અને તેથી તે મુક્ત થાય છે.

જો જીવ સ્વભાવની દેષ્ટિ કરે તો તેનો વિકારરૂપી રોગ મટે છે. પરંતુ જો જીવ પોતાને વિકાર જેટલો જ માને અને પોતાના વિકારરહિત સ્વભાવને ઓળખે નહીં તો તેનો વિકાર ટળતો નથી. તેથી સૂક્ષ્મ વિચારણા કરી દઢ નિર્ણય કરવો ઘટે છે કે આત્માના સ્વરૂપમાં વિકાર છે જ નહીં. આત્માનો સ્વભાવ શુદ્ધ છે અને માત્ર તેની અવસ્થામાં વિકાર છે. અવસ્થામાં થતો વિકાર તે પોતે કરે છે. પોતાના દોષથી વિકાર થાય છે અને તેમાં તેનાં પોતાનાં કર્મો નિમિત્ત બને છે. આમ, પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવને અને અવસ્થાના વિકારને યથાર્થ જાણી, પોતાના જ્ઞાનમાં શુદ્ધ સ્વભાવની મુખ્યતા અને અવસ્થાની ગૌણતા કરતાં જીવની અનાદિની ભૂલ ટળે છે.

જીવ આત્માને માને પણ એના પરિણમનને ન માને તો તેની ભૂલ ટળે નહીં. તે આત્માને માને અને એના પરિણમનને પણ માને, પણ પરિણમનમાં ભૂલ છે એમ ન માને તોપણ ભૂલ ટળે નહીં. તે આત્માને માને, એના પરિણમનને માને અને એના પરિણમનમાં ભૂલ છે એમ પણ માને, પરંતુ ભૂલરહિત શુદ્ધ સ્વરૂપને ન માને તોપણ ભૂલ ટળે નહીં. તે આત્માને માને, એના પરિણમનને માને, એના પરિણમનમાં ભૂલ છે એમ માને અને તેના ત્રિકાળી શુદ્ધ સ્વરૂપમાં ભૂલ નથી એમ જાણીને ત્રિકાળી શુદ્ધ સ્વરૂપમું અવલંબન લે તો જ ભૂલ ટળે.

જેમ એક પિતા હોય, તેમને બે પુત્રો હોય - એક કમાઉ અને એક ઉડાઉ તથા ઘરમાં એક નોકર પણ હોય; તે પિતા દરેકને જુદા જુદા જાણે છે. પિતા એમ માનતા નથી કે હું જ પુત્ર છું, અને તે બન્ને પુત્રોને પણ સમાન માનતા નથી. તેઓ કમાઉ પુત્રને આદરણીય (ઉપાદેય) અને ઉડાઉ પુત્રને છોડવા યોગ્ય (હેય) માને છે તથા નોકરને ન તો તેઓ હેય માને છે કે ન ઉપાદેય, માત્ર પરરૂપે માને છે. તેમ આત્મામાં જે ત્રિકાળી શુદ્ધ સ્વભાવ છે તે પિતારૂપ છે. આત્મા એક પર્યાય જેટલો નથી પણ ત્રિકાળી છે. નિર્મળ મોક્ષદશા આદરણીય છે; વર્તમાન મલિન અવસ્થા ટાળવા જેવી છે અને કર્મ તો માત્ર પરરૂપ છે, જ્ઞેયમાત્ર છે.

જીવની મલિન પર્યાય ત્રિકાળી નથી. તે એક સમયની મહેમાન છે; માટે તે

મલિન પર્યાય તો આત્માનું સ્વરૂપ નથી જ; પરંતુ જીવની શુદ્ધ નિર્મળ પર્યાયની ખતવણી પણ આત્મસ્વરૂપમાં થતી નથી. તેનું કારણ એ છે કે એ પર્યાય શુદ્ધ હોવા છતાં ત્રિકાળી નથી, નવીન ઉત્પન્ન થયેલ છે. આત્મસ્વરૂપ એ ક્ષણિક સત્ નથી, પણ ત્રિકાળી સત્ છે.

ત્રિકાળી ચૈતન્યસ્વરૂપ એક દર્પણ જેવું છે કે જે બધું જ પ્રતિબિંબિત કરે છે. દર્પણની આગળ જે, જેવા સ્વરૂપે આવે; તેને, તેવા સ્વરૂપે દર્પણ પ્રતિબિંબિત કરે છે. માણસ પીઠ કરીને ઊભો રહે કે સન્મુખ થઈને, એમાં દર્પણને શું? એનો ધર્મ એટલો જ છે કે દરેક પદાર્થને તથારૂપ પ્રતિબિંબિત કરવો. તેમ જીવની પર્યાય, ત્રિકાળી દ્રવ્યની સન્મુખ હોય કે વિમુખ, એમાં ત્રિકાળીને શું? એ તો દર્પણરૂપ છે. એ તો જીવની સમગ્ર વાસ્તવિકતાને પૂરેપૂરી પ્રતિબિંબિત કરી દે છે. જ્ઞાયકસ્વરૂપની સામે શુભાશુભ ભાવો, વિચારો કે ઘટનાઓ ઘટવા છતાં જ્ઞાયકસ્વરૂપમાં તો કાંઈ જ ઘટતું નથી. દશ્ય ઊઠે છે અને મટે છે પણ દ્રષ્ટા એક જ ભાવમાં રહે છે.

આત્મા સદા જ્ઞાયકરૂપ જ છે. ચૈતન્યસ્વરૂપ તો આકાશ જેવું શુદ્ધ છે, સ્વચ્છ છે, નિર્લેપ છે. આકાશમાં કાળાં-ધોળાં વાદળાંઓ કરે છે, વીજળીઓ ચમકે છે, ઇન્દ્રધનુષ રચાય છે, છતાં આકાશને તેનાથી કોઈ ફરક પડતો નથી. તે ન કાળું થાય છે, ન ધોળું થાય છે, ન સ્ફું થાય છે, ન ચમકે છે, ન રંગબેરંગી થાય છે. વાદળાં, વીજળી કે ઇન્દ્રધનુષની કોઈ રેખા આકાશમાં રહેવા પામતી નથી. એ તો અસ્પૃષ્ટ જ રહે છે. તે જ પ્રમાણે આત્મા પણ સર્વથી અસ્પૃષ્ટ જ રહે છે.

સ્ફટિક રત્ન સ્વચ્છ હોવા છતાં તેની બાજુમાં જો લાલ ફૂલ હોય તો તે રત્ન લાલ દેખાય છે, પણ જે વિવેકી છે તે તો સ્પષ્ટ જાશે છે કે સ્ફટિક સ્વચ્છ છે, લાલ નથી. તે સ્ફટિકને સ્ફટિકરૂપે જાશે છે, ફૂલથી સ્ફટિકને ભિન્ન જાશે છે, લાલ દેખાતા સ્ફટિકનું સાચું સ્વરૂપ તેને ખબર હોય છે. પરંતુ સ્ફટિક અને ફૂલની ભિન્નતાનો વિવેક જેને નથી, તે આ બન્નેના સંયોગમાં તાદાત્મ્ય કલ્પી લે છે. તેમ વિવેકી જીવ દશ્યથી દ્રષ્ટાને ભિન્ન જાશે છે, દશ્ય જોતી વખતે શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપના ભાનમાં રહે છે, તેથી તેનામાં એક રૂપાંતરણ ઘટિત થાય છે, એક ક્રાંતિ સર્જાય છે; જ્યારે દેહ તથા ક્રોધાદિના સંગે અજ્ઞાની જીવ પોતાનું સ્વચ્છ - અબદ્ધસ્પૃષ્ટ સ્વરૂપ ભૂલી, નિકટ થઈ રહેલ ઘટના સાથે તાદાત્મ્ય સાધે છે, તેમાંથી પોતાની એક ખોટી ઓળખ ઊભી કરે છે અને ભટકી જાય છે.

કર્મકૃત વ્યક્તિત્વ એ આત્માનું સ્વરૂપ નથી. આત્મા તો મોક્ષસ્વરૂપી છે. તેનું સ્વરૂપ પરમાત્મા સમાન પૂર્ણશુદ્ધ જ છે. પરંતુ પોતાના સ્વરૂપની ઓળખાણ ન હોવાથી તે પોતાને દેહરૂપે, રાગરૂપે માને છે. અનાદિ કાળથી જીવનો જ્ઞાનોપયોગ તેના પરમાત્મસ્વરૂપ તરફ વળ્યો નથી. સાંસારિક પ્રવૃત્તિઓ છોડી જીવ ક્યારેક ધાર્મિક પ્રવૃત્તિઓ તરફ વળ્યો, પરંતુ ત્યારે પણ તે સ્વરૂપને તો ચૂકી જ ગયો. ક્યારેક પરિણામોના અવલોકનમાં પણ પ્રવૃત્તિ કરી, પરંતુ ત્યાં પણ તે ક્ષણિક પર્યાયમાં જ અટકી ગયો. પરમાંથી પર્યાય સુધી આવ્યો પણ પોતાના પરમાત્મસ્વરૂપની ઓળખાણ ન કરી. તેથી તે પોતાને દીન, હીન, અપરાધી જ માનતો રહ્યો. જીવ પોતાને ગમે તેવો દરિદ્ર, પાપી, અધમ માને; તેનું સ્વરૂપ તો પરમાત્મા સમાન શુદ્ધ, બુદ્ધ, પૂર્ણ જ છે. તે ભલે પોતાને કામી, કપટી, ક્રોધી માને; તે પરમાત્મસ્વરૂપ જ છે. તેની એ પામર પર્યાય વખતે પણ ત્રિકાળી પ્રભુ તો પૂર્ણ સ્વરૂપે બિરાજમાન જ છે. જીવ બેહોશ રહે તેથી કંઈ તેનું સ્વરૂપ નષ્ટ થતું નથી. તેનું પરમાત્મસ્વરૂપ કદી પણ નષ્ટ થયું જ નથી.

જીવે પોતાનું પરમાત્મસ્વરૂપ કદી ખોયું જ નથી. પરંતુ અજ્ઞાનીને એમ લાગે છે કે જાણે પરમાત્મસ્વરૂપ ખોવાઈ ગયું છે અને તેની શોધ કરવાની છે. સત્ તેનાથી જુદું નથી, દૂર નથી; પરંતુ જીવને જુદું લાગે છે, દૂર લાગે છે અને તે જ તેનો મોહ છે, તેની મૂઢતા છે. જીવ ભ્રાંતિમાં છે. તે એમ માની બેઠો છે કે 'સત્ ખોવાઈ ગયું છે, હજી સુધી પ્રાપ્ત થયું નથી. તે કશે દૂર રહ્યું છે, તેને પ્રાપ્ત કરવાનું છે.' વાસ્તવમાં આ શોધની ભ્રાંતિ જ્યારે છૂટે છે ત્યારે જ સત્ની પ્રાપ્તિ થાય છે.

જે ખોવાયું હોય તેને શોધી શકાય, પરંતુ પરમાત્મસ્વરૂપને શું કોઈ ખોઈ શકે ખરું કે જેથી તેને શોધવું પડે? જે ખોવાઈ શકે તે જીવનું સ્વરૂપ ન હોઈ શકે. સ્વરૂપ તે જ કે જે ત્રિકાળ ટકે, જે સતત સાથે હોય; તેથી સ્વરૂપ ખોવાઈ તો ન જ શકે. હા, જીવને સ્વરૂપનું વિસ્મરણ થઈ ગયું હોય એવું બની શકે છે અને એમ જ બન્યું છે. માટે જીવે સ્વસ્વરૂપનું જ્ઞાન કરવાનું છે, સ્મૃતિ કરવાની છે. કોઈ મનુષ્યના ગળામાં સોનાનો હાર છે. તે મનુષ્ય એ હાર ક્યાં છે એ ભૂલી જઈ અહીં તહીં, બહાર શોધે છે, પણ તેને હાર મળતો નથી. જ્યારે કોઈ જાણકાર વ્યક્તિના કહેવાથી તેને ખબર પડે છે કે પોતે જે હાર શોધી રહ્યો છે તે બીજે કશે નહીં પણ તેના પોતાના ગળામાં જ છે ત્યારે તેનું અજ્ઞાન દૂર થવાથી તે પ્રસન્નતા અનુભવે છે. જીવ પરમાત્મસ્વરૂપી જ છે, પરંતુ અજ્ઞાનવશ જીવ એ ભૂલી જઈ પરમાત્માને બહાર શોધતો ફરે છે. સદ્દ્ગુરુના ઉપદેશ વડે વિવેકજ્ઞાન પ્રાપ્ત થવાથી અને અજ્ઞાન દૂર થવાથી પરમાત્મસ્વરૂપમાં એકતા કરી તે પ્રસન્ન થાય છે.

પોતાનું જે ત્રિકાળ સ્વરૂપ છે, પણ જેનું વિસ્મરણ થઈ ગયું છે, તેનું સ્મરણ થવું, અનુસંધાન થવું એ જ મોક્ષનો ઉપાય છે. જેમ ભરવાડને ત્યાં ઊછરેલો કોઈ રાજકુમાર પોતાને ભરવાડ માની લે છે, પરંતુ સત્ય હકીકતનું ભાન થતાં તે પોતાને રાજપુત્ર જ માને છે; તેમ પરમાત્મસ્વરૂપ એવા આત્માને નિજસ્વરૂપ સંબંધી ભ્રમ છે, પરંતુ જ્ઞાન દ્વારા તે ભ્રમની નિવૃત્તિ થતાં શુભાશુભ ભાવ છેદાય છે અને પરમાત્મ-સ્વરૂપ આત્મા પર્યાયમાં પરમાત્મા બને છે.

જીવ અને પરમાત્મા બે જુદા નથી, એક જ છે. જીવ અને પરમાત્મામાં કોઈ અંતર જ નથી. જીવ પરમાત્મસ્વરૂપ જ છે. તે સ્વયં જ પોતાની મંજિલ છે, એટલે જો તે કોઈ પણ માર્ગે બહાર પ્રયાણ કરશે તો તે પોતાથી દૂર જ જશે. મંદિરમાં ભગવાન ગભારામાં બિરાજમાન હોય છે. જેમ તેમનાં દર્શન કરવા માટે વ્યક્તિ ગભારા તરફ જાય છે, તેમ પોતાના અંતરગભારામાં બેઠેલા ભગવાનને મળવું હોય તો જીવે અંતર્મુખ થવું જોઈએ. તેને બહાર યાત્રા કરવાની જરૂર નથી, અંદર જવાની જરૂર છે.

અંતર્યાત્રા કરવી હોય તો જીવે સૌથી પહેલાં એ નિર્ણય કરવો પડશે કે પોતાનું ખરું સ્વરૂપ શું છે. તેણે પોતાના ચૈતન્યસ્વભાવને બધા પદાર્થોથી, સંબંધોથી, શરીરથી, વિચારોથી, શુભાશુભ વિકારી ભાવોથી ભિન્ન જાણવો પડશે. પહેલાં સર્વ સંયોગો અને સંબંધોમાં સ્થાપેલું મારાપણું હટાવવું જોઈએ. ત્યારપછી એકક્ષેત્રાવગાહે રહેલ શરીર સાથે તાદાત્મ્ય તોડવું જોઈએ. 'આ જડ શરીરરૂપ સંયોગી તત્ત્વથી ભિન્ન હું તો જ્ઞાનધારક, ચૈતન્ય, અસંયોગી, શાશ્વત પદાર્થ છું' એવો દઢ નિર્ણય કરવો જોઈએ. એ જ રીતે વિચારથી પણ તાદાત્મ્ય તોડવું જોઈએ, ત્યારપછી પલટાતી ભાવદશાથી પોતાનું ભિન્નપણું ચિંતવવું જોઈએ. 'શુભાશુભ ભાવ તો પળે પળે પલટાય છે. હું તો તેનાથી ભિન્ન ત્રિકાળ ધુવ તત્ત્વ છું' - આવું ભાસતાં તેને પલટાતી શુભાશુભ દશાથી પર એવા ભગવાન આત્માની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેના સ્વાધીન સુખામૃતની રસધાર ઊમટે છે.

જન્મોજન્મથી જીવ ભટકે છે છતાં તેને અપૂર્વની પ્રાપ્તિ થઈ નથી. તેનું કારણ એ છે કે તેણે કદી સ્વરૂપની સમજણ કરી નથી, સ્વરૂપાનુસંધાનનો પ્રયત્ન કર્યો નથી, સ્વરૂપનો આશ્રય લીધો નથી. અનાદિથી સ્વનું વિસ્મરણ થયું હોવાથી પરમાં તાદાત્મ્ય થયું છે. સ્વરૂપની જાગૃતિ વડે આ અનાદિનો તાદાત્મ્ય અભ્યાસ તૂટે છે. પરમાં તન્મય ન થતાં શુદ્ધ દ્રવ્ય ઉપર દેષ્ટિ કરતાં પરમાત્મા પ્રગટ થાય છે. માટે સત્પુરુષોના બોધથી સ્વરૂપનો નિર્ણય કરવો જોઈએ અને સમસ્ત પરદ્રવ્ય અને પરભાવ ઉપરથી દેષ્ટિ હટાવી તેને શુદ્ધ સ્વરૂપમાં કેન્દ્રિત કરવી જોઈએ. આ અભ્યાસ નિયમિતપણે કરતા રહેવાથી સફળતા નિશ્ચિતપણે મળે છે.

અજ્ઞાનીને લાગે છે કે આ કાર્ય અત્યંત કઠિન છે. જન્મોજન્મથી થયું નથી, તેથી તેને એવો મિથ્યા ખ્યાલ બંધાઈ ગયો છે કે આ કાર્ય અત્યંત કઠિન છે. સત્ની ઉપલબ્ધિ તેને અત્યંત દુઃસાધ્ય લાગે છે. આમાં મૂળ દોષ સમજણનો છે, સત્ અંગેની માન્યતાનો છે. જીવ અને સત્યની વચ્ચે કોઈ ઉન્નત પહાડ કે અગાધ ખાઈ નથી કે જે

ઓળંગવાનો પ્રચંડ પુરુષાર્થ કરવો પડે. શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપ અને તેની વર્તમાન પર્યાય વચ્ચે કોઈ દુર્ભેદ્ય દીવાલ નથી, પરંતુ ધુમાડાની એક પાતળી રેખા જ છે. જો તે ઇચ્છે તો ક્ષણમાં મિટાવી શકાય એમ છે, અન્યથા જન્મોજન્મ પર્યંત પણ તે અંતર યથાવત્ જ રહે છે. જો ધુમાડાની એ પાતળી રેખાને ફૂંક મારીને મિટાવવામાં ન આવે તો એ જીવને જન્મોજન્મ સુધી રઝળાવે છે. જો આ રઝળપાટનો હિસાબ લગાવવામાં આવે તો એવું જ લાગશે જાણે પોતાની અને સત્યની વચ્ચે અસંખ્ય હિમાલય ઊભા છે, પરંતુ એવું નથી. માત્ર ધુમાડાની એક પાતળી રેખા જ છે.

એ ધૂમરેખાને વિખેરવા માટે એક ફૂંક - અલબત્ત સાચી જગ્યાએ મારવામાં આવે તો તે પર્યાપ્ત છે. તેના માટે કશે પણ જવાની જરૂર નથી. સ્વરૂપ સાથે અભેદતા સાધવા માટે કરોડો માઇલની યાત્રા કરવાની નથી. એક જ પગલાની જરૂર છે. એક જ ઝટકો લાગશે અને તાળું ખૂલી જશે! ચાવીને જે તરફ ફેરવવાથી તાળું ખૂલે, એની વિપરીત દિશામાં જ આજ સુધી પુરુષાર્થ થતો રહ્યો છે; તેથી એમ લાગવું સ્વાભાવિક છે કે આત્મપ્રાપ્તિ માટે 'પ્રચંડ પુરુષાર્થ' કરવો પડશે. પરંતુ હકીકત જુદી જ છે. સાચી દિશામાં ચાવી ફેરવવામાં આવે તો સહજમાત્રમાં તાળું ખૂલી જાય છે.

આંખમાં રેતીનો એક ક્ષ પણ જાય તો આંખ બંધ થઈ જાય છે અને કંઈ જ દેખાતું નથી. સામે ગમે તે હોય - મોટો પર્વત હોય, તોપણ તે દેખાતો બંધ થઈ જાય છે. આંખમાં કોઈ મોટી વસ્તુ આવી જતી નથી, માત્ર એક નાનકડો ક્ષ્ણ આવે છે, પણ તેનાથી આંખ બંધ થઈ જાય છે. એ ક્ષ્ણ કંઈ મોટી દુર્ઘટના નથી, મોટી સમસ્યા નથી. એને કાઢવો અઘરો પણ નથી અને છતાં એ ન નીકળે ત્યાં સુધી કશું જોઈ શકાતું નથી. એ જ રીતે અંતર્ચક્ષુમાં પણ માત્ર મિથ્યા અભિપ્રાય આવી ગયો છે. એ હશે ત્યાં સુધી સત્યનું દર્શન થઈ શકતું નથી. એ ક્ષ્ણ જ્યાં સુધી ન નીકળે, ત્યાં સુધી સત્યનાં દર્શન થઈ શકતું નથી. એ ક્ષ્ણ જ્યાં સુધી ન નીકળે, ત્યાં સુધી સત્યનાં દર્શન થઈ શકતાં નથી. પરંતુ જો એ ખ્યાલમાં આવી જાય કે બાધા બહુ નાની છે અને તેને દૂર કરનાર પોતે ખૂબ શક્તિશાળી છે, તો એ બાધા તૂટી જાય છે. સ્વરૂપની ઓળખાણ કરી, પરમાંથી દષ્ટિ હટાવી, સ્વમાં એક્ય કરવાથી ધુમાડાની એ રેખા, રેતીનો એ ક્ષ્ણ નીકળી જાય છે અને સત્ય તેની સામે ઉદ્દાદિત થાય છે.

પરમાં થયેલું તાદાતમ્ય નિદ્રા જેવું છે. એકઝાટકે તૂટી શકે છે. નિદ્રા ગમે તેટલી ગાઢ હોય પણ એક જ ઝાટકે ઉડાડી શકાય છે. વ્યક્તિ ગમે તેટલા કલાક નિદ્રાધીન રહે, જાગૃત થવાની પ્રક્રિયા તો ક્ષણની જ છે. કોઈ તેને ઉઠાડવા માટે હલાવે, બૂમ પાડે અને ઊઠવા માટે તે તૈયાર હોય તો ઊઠવાની પ્રક્રિયા કંઈ વર્ષો નહીં લગાડે. તેમ અનાદિની મૂચ્છા ટાળી અમૂર્ચ્છિત અવસ્થામાં આવતાં વાર લાગતી નથી. જો મોહનું સામાજય જીવની સમજમાં આવી ગયું હોય અને કોઈ મહાપુરુષ તેને જગાડે એવી

તમન્ના તેનામાં જાગી ચૂકી હોય તો તે કાર્ય કરતાં કંઈ ઘણો સમય લાગતો નથી. ક્ષણમાત્રમાં પરમ જ્યોતિ પ્રગટ થઈ જાય છે.

ચકમકના પથ્થરોને પરસ્પર ઘસવામાં આવે તો તેમાંથી આગ પ્રગટે છે. એવું બને કે કરોડો વર્ષોથી તે પથ્થરો બાજુ બાજુમાં પડ્યા હોય, છતાં તેમાંથી આગ પ્રગટી ન હોય. તેનું કારણ એ છે કે ત્યાં ઘર્ષણની પ્રક્રિયા જ થવા પામી નથી. જે વીતી ગયાં તે કરોડો વર્ષોએ કંઈ તેમાં બાધા નથી નાખી. બસ! માત્ર ઘસવાની પ્રક્રિયાનો અભાવ હતો અને તેથી અગ્નિનો પણ અભાવ રહ્યો. વળી, એવું નથી કે આગ પ્રગટાવવા માટે કરોડ વર્ષો સુધી પથ્થર ઘસવા પડશે. જો ઘસવાનો પુરુષાર્થ કરવામાં આવે તો આગ તો એક ક્ષણમાં ઉત્પન્ન થઈ જશે. તેમ જીવ કોઈ મહાપુરુષના શરણે જાય, તેમની આજ્ઞા પાળવા તત્પર રહે તો જાગૃત થવાની પ્રક્રિયા ઘટિત થાય છે અને ક્ષણમાં પરમ જ્યોતિ પ્રગટી ઊઠે છે. સદ્ગુરુના આશ્રયે શુભાશુભ ભાવ છેદાતાં મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટી ઊઠે છે.

જ્ઞાનીઓ કહે છે કે 'હે જીવ, સમાટ થવાનો અવસર આવી ગયો છે. હવે તો તું ભિખારીપણું છોડ.' જીવની માન્યતામાં બેસવું જોઈએ કે 'હું સમાટ છું', 'હું શુદ્ધ છું', 'હું બુદ્ધ છું', 'હું પરમાત્મસ્વરૂપ છું'; તો હમણાં અને અહીં જ તે સ્વરૂપ પ્રગટ થઈ શકે છે. જો માન્યતામાં આ અહણ થઈ જાય તો જન્મોજન્મથી અનુપલબ્ધ એવા સ્વરૂપની ઉપલબ્ધિ ક્ષણમાં થઈ જશે. જ્યારે સત્ય હૃદય સુધી પહોંચી જશે ત્યારે ઘટના ઘટશે. માટે દેહાદિમાં સ્થાપેલું તાદાત્મ્ય તોડી પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપ સાથે તાદાત્મ્ય સાધવું જોઈએ. ત્યાં નિજતા સ્થાપવી જોઈએ. ત્યાં જ સ્થિરતા કરવામાં આવે તો આનંદ પામી શકાય છે.

જ્ઞાનસ્વરૂપી આત્માને ઓળખીને તેમાં એકાપ્ર થવાથી જ પરમાનંદ પ્રાપ્ત થાય છે. જ્ઞાનસ્વરૂપી આત્મામાં એકાપ્ર થયા વિના બીજા ગમે તે ઉપાય કરવામાં આવે તો તે બધો બંધભાવ છે, તેમાં કશે પણ તૃપ્તિ નથી, શાંતિ નથી; તેમાં માત્ર આકુળતા છે. દીવાસળીના ટોપચામાં અગ્નિ પ્રગટાવવાનો સ્વભાવ છે એમ સ્વીકારીને તે ટોપચાવાળા ભાગને ઘસીએ તો અગ્નિ પ્રગટે છે. તેમ આત્મામાં મોક્ષસ્વભાવ છે, તેની પરિપૂર્ણ શ્રદ્ધા કરીને તેમાં એકાગ્રતારૂપી ઘસારો કરતાં મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટે છે. શરીરાદિ પરદ્રવ્ય તો દીવાસળીના ખોખા જેવાં છે. જેમ દીવાસળીના ખોખામાં અગ્નિ પ્રગટાવવાની તાકાત નથી, તેમ શરીરાદિમાં કેવળજ્ઞાન પ્રગટાવવાની તાકાત નથી. શુભાશુભ ભાવો તે દીવાસળીની સળી જેવા છે. જેમ દીવાસળીની સળીમાં અગ્નિ પ્રગટાવવાની તાકાત નથી, તેમ શુભાશુભ ભાવોમાં પણ મોક્ષ પ્રગટાવવાની તાકાત નથી. જેમ અગ્નિ પ્રગટાવવાની તાકાત માત્ર દીવાસળીના ટોપચામાં છે, તેમ મોક્ષ પ્રગટાવવાની તાકાત

માત્ર ચૈતન્યસ્વભાવમાં જ છે. શરીર અને શુભાશુભ વિકાર વિનાનો જે ત્રિકાળી ચૈતન્યરૂપ આત્મસ્વભાવ છે; તેની સમજણ, તેની પ્રતીતિ અને તેમાં સ્થિરતા કરતાં સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રરૂપ ધર્મ પ્રગટ થાય છે. એ સિવાય બીજી કોઈ રીતે ધર્મ થતો નથી.

આત્મધર્મ પામવો હોય તો પોતાની સ્વભાવગત ક્રિયા સાથે એકરૂપતા સાધવી જોઈએ. દેહ અને મનની સર્વ ક્રિયાઓ ઉપરથી લક્ષ હટાવી આત્માની જાણનક્રિયા સાથે તાદાત્મ્ય સાધવું જોઈએ. આ તથ્યને બરાબર સમજીએ. ક્રિયાનો અર્થ પરિણતિ છે. દરેક દ્રવ્યની ક્રિયા હોય છે. દ્રવ્યની પર્યાય જ તેની ક્રિયા છે. દ્રવ્યની પર્યાયનું બદલાવું તે ક્રિયા છે. દરેક દ્રવ્યની પર્યાય સમયે સમયે બદલાયા જ કરે છે. દરેક દ્રવ્યની પર્યાય તેના પોતામાં જ થાય છે. એક દ્રવ્યની પર્યાય બીજા દ્રવ્યમાં થતી નથી, તેથી એક દ્રવ્યની ક્રિયા બીજા દ્રવ્યમાં હોતી નથી, તેમજ એક દ્રવ્યની ક્રિયા બીજું દ્રવ્ય કરી શકતું પણ નથી.

આ જગતમાં જડ અને ચેતન એમ બે પ્રકારનાં દ્રવ્યો છે. દ્રવ્યની પર્યાય તે જ ક્રિયા હોવાથી ક્રિયા પણ જડ અને ચેતન એમ બે પ્રકારની છે. જડની પરિણતિ તે જડની ક્રિયા અને ચેતનની પરિણતિ તે ચેતનની ક્રિયા છે. ચેતનની ક્રિયાના બે પ્રકાર છે - (૧) શુભાશુભ ભાવરૂપ વિકારી ક્રિયા અને (૨) જાણવારૂપ અવિકારી ક્રિયા. આમ, કુલ ત્રણ પ્રકારની ક્રિયા છે - (૧) જડની ક્રિયા, (૨) ચેતનની વિકારી ક્રિયા, (૩) ચેતનની જાણવારૂપ ક્રિયા.

શરીરની બધી અવસ્થાઓને જાણવાની ક્રિયા સતત ચાલે છે. શરીર રોગી છે તો ત્યાં રોગ થવાની ક્રિયા અને રોગ થયો છે તેને જાણવાની ક્રિયા – એમ બન્ને ક્રિયા સાથે ચાલે છે. રોગ થવો અને રોગને જાણવો; નીરોગી થવું અને નીરોગિતાને જાણવી; હાથ ઊઠવો અને હાથના ઊઠવાને જાણવું; શરીરની અવસ્થાઓ બદલાતી રહે છે અને જાણવાવાળો તે બધી અવસ્થાને જાણે છે. શરીર રોગિષ્ઠ થયું, તેને તે જાણે છે. શરીર ઘરડું થયું, તેને પણ તે જાણે છે. પરંતુ જે જાણે છે તે રોગિષ્ઠ થયો નથી – થતો નથી, તે ઘરડો થયો નથી – થતો નથી.

એ જ પ્રમાણે શુભાશુભ વિકારી ક્રિયા તે આત્માની વર્તમાન દશા છે અને જાણવાની ક્રિયા તે પણ આત્માની વર્તમાન દશા છે. પરિણામોનું બદલાવું અને તેને જાણવાનું કાર્ય એકસાથે થાય છે. જેમ કે ક્રોધ થયો તે એક ક્રિયા થઈ અને તે થયો તેને જાણવું તે બીજી ક્રિયા થઈ. ક્રોધાદિ ઓછાવત્તા થતા રહે છે. એક કષાયમાંથી બીજા કષાયમાં જવાનું પણ બને છે. પરંતુ જે જે પરિણમનો થતાં રહે છે, તે બધાને જાણવાવાળો તો સતત અને એવો ને એવો રહી તે બધાને જાણે છે - જાણતો રહે છે.

તે ક્રોધને જાણે છે, ક્રોધના અભાવને પણ જાણે છે; પણ ક્રોધના અભાવમાં તેનો અભાવ થતો નથી. તેનું જાણવારૂપ કાર્ય તો સતત ચાલુ રહે છે.

આના ઉપરથી નક્કી થાય છે કે (૧) શરીરની ક્રિયા, (૨) ચેતનની શુભાશુભ પરિણામરૂપ વિકારી ક્રિયા અને (૩) ચેતનની જાણવારૂપ જ્ઞપ્તિક્રિયા - આ ત્રણે કાર્યો એકસાથે થઈ રહ્યાં છે. તેમાં પ્રથમનાં બે કાર્યો તો ક્ષણિક છે - નાશવાન છે, જ્યારે ત્રીજું જાણવાપણાનું કાર્ય ત્રિકાળ રહે છે. આ ત્રીજું કાર્ય અજ્ઞાની જીવના લક્ષમાં આવતું નથી. જ્ઞપ્તિક્રિયા તેની પકડમાં આવતી નથી, માત્ર શરીરની ક્રિયા તથા શુભાશુભ ભાવરૂપ વિકારી ક્રિયા તેની પકડમાં આવે છે. આ બે ક્રિયા ઉપરાંત કોઈ ત્રીજી ક્રિયા - જ્ઞપ્તિક્રિયા પણ થઈ રહી છે અને એનો સ્તર તે બે ક્રિયાઓના સ્તરથી ભિન્ન છે એ તથ્ય તેની સમજમાં આવ્યું નથી. તે આત્માની સ્વાભાવિક ક્રિયાને ઓળખતો નથી અને તેથી શરીરની ક્રિયાઓને તથા વિકારી પરિણામોને પોતાનાં માની લે છે. શરીરની ક્રિયાઓને અને રાગ-દ્રેષરૂપ પરિણામોમાં તે પોતાપણું માને છે. આ જ મિથ્યાત્વ છે. આ જ સંસાર છે. જ્યાં સુધી જીવ પોતાની સ્વાભાવિક ક્રિયાને ઓળખતો નથી ત્યાં સુધી તેનો સંસાર મટતો નથી.

અનાદિ કાળથી જીવે શરીરની ક્રિયાઓને તથા શુભાશુભ પરિણામોને જ જાણ્યાં છે, ત્રીજી જાણવાની ક્રિયાનો તેને ખ્યાલ જ આવ્યો નથી, પરિણામે તેને જ્યારે પણ ધર્મ કરવાનું મન થયું ત્યારે તેણે કાં શરીરાશ્રિત ક્રિયાઓને બદલી કાં પરિણામોને ફેરવવાની ચેપ્ટા કરી. ધર્મ કરવા માટે જીવ એક બાજુ શરીરાશ્રિત અશુભ ક્રિયાઓને શુભમાં બદલવા મથ્યો અને બીજી બાજુ અશુભ પરિણામોને શુભમાં બદલવા મથ્યો. આ બે ક્રિયાઓમાં જે પરિવર્તન આવ્યું એને જ તેણે ધર્મ માની લીધો. પરંતુ આ બે ક્રિયાઓ પરાશ્રિત હોવાથી તેનાથી ધર્મ થતો નથી. શરીરની ક્રિયા અને શુભાશુભ પરિણામ, આ બન્ને ક્રિયાઓ આત્માની સ્વાભાવિક ક્રિયા ન હોવાથી તે બન્નેમાં ફેરફાર થવામાત્રથી ધર્મ થવાનો સંભવ નથી. ધર્મ તો આત્માનો સ્વભાવ છે અને તેનો સંબંધ ત્રીજી ક્રિયા સાથે - જ્ઞપ્તિક્રિયા સાથે છે. ધર્મનો સંબંધ પર સાથે તો નથી અને પર તરફના વલણથી જે ભાવ થાય તેની સાથે પણ નથી. ધર્મમાં પર ઉપર કે વિકાર ઉપર દેષ્ટિ હોતી નથી, પરંતુ પરથી અને વિકારથી ભિન્ન પોતાના અસંયોગી, અવિકારી, ત્રિકાળી જ્ઞાયકસ્વભાવ ઉપર દષ્ટિ હોય છે.

પરદ્રવ્યનું છોડવા-મૂકવાનું તો આત્મામાં નથી, તેથી જડક્રિયાથી મોક્ષ થાય નહીં. જે શુભાશુભ ભાવ થાય છે તે પણ પરલક્ષે થતા હોવાથી વિકાર છે, તેના લક્ષે પણ મોક્ષ થાય નહીં. આમ, જડની ક્રિયાથી અને વિકારી ક્રિયાથી મોક્ષ થાય નહીં. બાહ્ય સંયોગ હોવા છતાં અને પર્યાયમાં રાગ-દ્રેષ હોવા છતાં 'હું આ જડથી ભિન્ન છું અને મારા શુદ્ધ જ્ઞાનભાવમાં રાગ-દેષ નથી' એવું ભેદજ્ઞાન તે ધર્મ છે. ભેદજ્ઞાન દારા પર સાથેનું તાદાત્મ્ય તૂટે છે અને સ્વ સાથેનું ઐક્ય સધાય છે. જેમ જેમ સ્વરૂપમાં સ્થિરતા થતી જાય છે, તેમ તેમ રાગ-દેષ ટળતા જાય છે. આ રીતે ધર્મની ક્રિયાના બળ વડે વિકારી ક્રિયાનો નાશ થાય છે. જ્ઞાનમાં સ્થિર રહેવારૂપ ક્રિયા વધતાં વધતાં તે જ્ઞાનમાં જ પૂર્ણસ્થિરતા થાય છે. આ દશાને મોક્ષપદ કહે છે.

આમ, શરીરની જડ ક્રિયાઓથી અને શુભાશુભ ભાવરૂપ ચૈતન્યની વિકારી ક્રિયાથી ધર્મ થતો નથી. આ વાત એક દષ્ટાંત વડે સમજી શકાશે. સત્સંગમાં જવાની ભાવના થવાથી જીવ ઘરેથી સત્સંગમાં ગયો. ત્યાં નીચે મુજબ ક્રિયાઓ થઈ —

- ૧) શુભ ભાવ થયો તે ચેતનની વિકારી ક્રિયા છે.
- ર) શરીરનું ક્ષેત્રાંતર થયું તે જડની ક્રિયા છે.
- ૩) આત્માના પ્રદેશોનું ક્ષેત્રાંતર થયું તે ચેતનની વિકારી ક્રિયા છે.
- ૪) સત્શ્રવણ પ્રત્યેનું લક્ષ તે શુભભાવરૂપ ચેતનની વિકારી ક્રિયા છે.

આ ચાર ક્રિયાઓ કરવામાં આવે ત્યાં સુધી ધર્મ થતો નથી. જડની ક્રિયા, આત્મપ્રદેશોની ક્ષેત્રાંતરરૂપ ક્રિયા અને શુભભાવરૂપ વિકારી ક્રિયા - આ સર્વ ક્રિયાથી ધર્મની ક્રિયા ભિન્ન છે. જીવ શ્રવણના લક્ષ ઉપરથી ખસીને સ્વલક્ષ તરફ ઢળે અને પોતાના શુદ્ધ જ્ઞાયકસ્વભાવનો મહિમા લાવીને અંતર્મુખ થાય તો તે ધર્મની ક્રિયા છે.

અન્ય એક દેષ્ટાંત વડે આ વાત વધુ સ્પષ્ટ થશે. ઉપવાસ કરવાની ભાવના થવાથી જીવે આહાર પ્રહેશ કર્યો નહીં. દિવસ દરમ્યાન ભૂખ લાગતાં તેના ભાવ બગડ્યા, વળી બોધની સ્મૃતિના કારણે ભાવ સુધર્યા અને આગળ વધતાં સ્વલક્ષ પણ થયો. અહીં નીચે મુજબ ક્રિયાઓ થઈ –

- ૧) પેટમાં આહાર ન પડ્યો તે જડની ક્રિયા છે.
- ર) પેટમાં આહાર ન પડ્યો, તેથી ભૂખની પીડાથી તેને જો અણગમો થાય કે 'ઉપવાસ તો કર્યો પણ કાલ જેવી આજે મજા નથી', તો આ તેનાં અશુભ પરિણામ છે, તેથી વિકારી ક્રિયા છે અને તેને અશુભ (પાપ) બંધ થાય છે.
- 3) તે વખતે જો મન વાળી લઈ તપાદિ સત્સાધન સંબંધી શુભ વિચાર કરવામાં આવે તો તેને મંદ કષાયરૂપ શુભ પરિશામ થાય છે, તેથી આ પણ વિકારી ક્રિયા છે, પરંતુ અહીં તેને શુભ (પુષ્ય) બંધ થાય છે.
- ૪) તે વખતે જો જીવ આહારનું, શરીરનું અને શુભાશુભ ભાવનું લક્ષ છોડીને પોતાના ત્રિકાળી આત્મસ્વભાવની ઓળખાણપૂર્વક તેમાં સ્થિર થાય તો તે ધર્મ છે.

આમાં પ્રથમ ક્રિયા જડની છે, બીજી અને ત્રીજી અનુક્રમે ચેતનની અશુભ અને શુભ વિકારી ક્રિયા છે અને ચોથી ચેતનની અવિકારી ક્રિયા હોવાથી ધર્મની ક્રિયા છે.

ધર્મની શરૂઆત કરવા માટે જીવે સદ્દ્ગુરુનાં વચનામૃતના આધારે પ્રથમ નિર્ણય કરવો ઘટે છે કે 'ત્રણ પ્રકારની ક્રિયા એક્સાથે થઈ રહી છે. એક શરીરની ક્રિયા, બીજી શુભાશુભ વિકારી પરિણામરૂપ ક્રિયા અને ત્રીજી જ્ઞપ્તિક્રિયા. શરીર તથા શુભાશુભ પરિણામોની વિવિધ અવસ્થાઓથી ભિન્ન એવો હું તેને સતત જાણવાવાળો છું. જ્ઞપ્તિક્રિયા મારા જ્ઞાતાસ્વભાવમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે, તે મારી પોતાની ક્રિયા છે; જ્યારે બીજી બે ક્રિયાઓ - શરીરની તથા શુભાશુભ ક્રિયાઓ કર્મના કારણે થઈ રહી છે. અત્યાર સુધી આ બે કર્મકૃત ક્રિયાઓમાં જ મેં મારાપણું માન્યું હતું, તે ક્રિયાઓ મારી છે એમ માન્યું હતું, પરંતુ તે ભૂલ છે. હવે મારું પોતાપણું માત્ર જાણનારમાં - જ્ઞાયક-સ્વભાવમાં આવવું જોઈએ.'

દેહ અને રાગાદિ દશ્ય છે અને જીવ દ્રષ્ટા છે. તે સર્વ જ્ઞેય છે અને જીવ જ્ઞાયક છે. પરંતુ જીવે પોતાના મિથ્યા અભિપ્રાય વડે દશ્ય અને દ્રષ્ટા વચ્ચે, જ્ઞેય અને જ્ઞાયક વચ્ચે એકતા સ્થાપી છે. જો જીવે ધર્મકિયા કરવી હોય તો તેણે દેહ અને રાગાદિથી પોતાના જ્ઞાયકસ્વભાવને ભિન્ન જાણવો જોઈએ. માત્ર જાણનકિયામાં પોતાપણું - તાદાત્મ્ય સ્થાપવું જોઈએ. નિરંતર જ્ઞાયકસ્વભાવની સ્મૃતિ રહેવાથી ઉપયોગ સૂક્ષ્મ થતો જાય છે, અંતર્મુખ થતો જાય છે, દ્રવ્યદળમાં સરકતો જાય છે. જ્ઞાયકભાવનો અભ્યાસ નિરંતર કરતા રહેવાથી જીવની મૂચ્છા ટળતી જાય છે. સજાગતાથી જ સર્વ પડદા ખસી જાય છે, સ્વરૂપ અનાવૃત થઈ જાય છે અને એ જીવ એક ગહન શાંતિ અનુભવે છે. તેનો ભગવત્તામાં પ્રવેશ થાય છે.

એક વાર ભગવત્તામાં ડૂબીને જીવ જ્યારે બહાર નીકળે છે ત્યારે તે કોઈ અન્ય જ વ્યક્તિ હોવાનું અનુભવે છે; જાણે તદન નવી વ્યક્તિનો જન્મ થયો હોય, એક જ્યોતિર્મય વ્યક્તિનો જન્મ થયો હોય એવું તે અનુભવે છે. દિષ્ટે નિર્દોષ થતાં તેનું આખું વ્યક્તિત્વ બદલાઈ જાય છે. હવે તેને પોતાના ત્રિકાળી શુદ્ધ સ્વરૂપની પ્રતીતિ નિરંતર રહે છે. તે આ જગતમાં જ હોય છે, પણ જગતના જીવોથી સાવ જુદો હોય છે. તે હવે એક જુદા જ દિષ્ટિકોણથી જીવે છે. દર્શન સમ્યક્ થયા પછી પરજ્ઞેય જુદા પ્રકારે જણાય છે. પરસંયોગ સાથેનો વ્યવહાર પણ જુદા પ્રકારનો થાય છે. જીવનમાં માત્ર શાંતિ અને આનંદ રહે છે.

આવી અદ્ભુત દશા પામવા જીવે જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ, કર્તૃત્વ-ભોક્તૃત્વબુદ્ધિથી વિરામ પામી જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવ કેળવવો જોઈએ. જીવનું સ્વરૂપ જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા છે, તે પરનું કંઈ કરવા-ભોગવવા સમર્થ જ નથી; માટે પરના કર્તા-

ભોક્તાપણાના વિકલ્પોમાં ન ઊલઝાતાં જીવે સાક્ષીભાવનો પુરુષાર્થ કરવો જોઈએ. જે કોઈ પ્રસંગ ઉદ્દભવે તેમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટ બુદ્ધિ કર્યા વગર જ્ઞાયકભાવે રહેવું જોઈએ. આ પુરુષાર્થના પરિપાકરૂપે જીવને સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય છે અને ક્રમશઃ સર્વ શુભાશુભ ભાવનો નાશ થતાં મોક્ષદશા પ્રગટે છે. જ્ઞાતાભાવના બળે શુભાશુભ ભાવ છેદાતાં જીવને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે –

'દેહમાં એક્સેમ જ્ઞાનનો વ્યાપાર અને તે જ્ઞાનની ક્ષણે-ક્ષણે થતી અવસ્થા અને તે જ ક્ષણે, તે જ ક્ષેત્રે પૂર્વ કર્મથી શુભાશુભ અવસ્થાની પ્રગટદશા ઊપજે છે. તે રાગ, હર્ષ, શોક આદિ મલિન પરિણામ પ્રકૃતિનો ઔપાધિક ભાવ છે, તેમાં જે પ્રીતિથી અટક્વું થાય છે તે ભૂલ છે; માટે તે ભૂલ ટાળી શુભાશુભ રાગથી ભિષ્ન જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા જીવ રહે તો તે સહેજે નિવૃત્ત થાય છે. ભૂલરૂપ દશા આ જીવે કરી છે તે ભૂલ નિર્મળ જ્ઞાતાપણે ટાળ, તો તારું સ્વરૂપ મોક્ષસ્વરૂપ જ છે. જ્ઞાતાપણમાં ટકી રહેવારૂપ પુરુષાર્થથી પ્રગટ મોક્ષદશા – પૂર્ણ પવિત્રતા થઈ શકે છે.'

આમ, શુભાશુભ ભાવો છેદાતાં, આત્મા પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપમાં અખંડપણે સ્થિર રહે છે અને એ જ મોક્ષદશા છે. મોક્ષદશા શુભ અને અશુભ બન્ને પ્રકારના ભાવો છેદાય ત્યારે જ પ્રગટે છે, કારણ કે તે બન્ને અશુદ્ધ ભાવ છે. અશુભ ભાવ તીવ્ર કષાય છે અને શુભ ભાવ મંદ કષાય છે, પણ બન્ને કષાયની જાતિના જ છે. બન્નેથી કર્મબંધ થાય જ છે. શુભ ભાવ અને અશુભ ભાવ બન્ને કષાય છે, તેથી ત્યાં કર્મબંધ છે અને તે સંસારનું કારણ છે.

જૈન દર્શન અનુસાર મોક્ષનો અર્થ છે - સમસ્ત કર્મોથી મુક્તિ. એમાં શુભ અને અશુભ બન્ને પ્રકારનાં કર્મો આવે છે. જેવી રીતે બેડીઓ, પછી તે સોનાની હોય કે લોખંડની, મનુષ્યને બાંધી રાખે છે; તેવી જ રીતે જીવનાં શુભ અને અશુભ, બન્ને પ્રકારનાં કર્મો તેને બંધનમાં જકડી રાખે છે. સુવર્ણની બેડી અને લોખંડની બેડીની જેમ પુષ્ય અને પાપ બન્ને આત્માની સ્વતંત્રતા હણવામાં સરખો ભાગ ભજવે છે. આત્માને પરાધીન કરવામાં પુષ્ય અને પાપ બન્ને સમાન કારણ છે. ર

'सोवण्णियं पि णियलं बंधिद कालायसं पि जह पुरिसं । बंधिद एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं।।'

સરખાવો : આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવકૃત, 'તત્ત્વાર્થસાર', અધિકાર ૪, શ્લોક ૧૦૪

'संसारकारणत्वस्य द्वयोरप्यविशेषतः ।

न नाम निश्चयेनास्ति विशेषः पुण्यपापयोः ।।'

૧- શ્રી કાનજીસ્વામી, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચનો', આઠમી આવૃત્તિ, પૃ.૩૧૮

૨- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'સમયસાર', ગાથા ૧૪૬

અત્રે કોઈ શંકા કરે કે પાપથી તો સ્પષ્ટપશે મોક્ષ થતો જ નથી, પરંતુ વ્રત, ત્યાગ, પૂજા, દાન, ભક્તિ, સત્સંગ આદિ શુભ ક્રિયાને પણ શા માટે સંસારનું કારણ કહેવામાં આવે છે? આ શંકાનું સમાધાન આ પ્રમાણે છે - શુભ ભાવ અને શુભ કરણી એ જ ધર્મ છે અને તેનાથી જીવનો મોક્ષ થાય છે એમ માનવું તે અજ્ઞાન છે. શુદ્ધ ભાવ જ મોક્ષનું કારણ છે અને શુભ ભાવ બંધનું કારણ છે. શુદ્ધ ભાવથી નિર્જરા થાય છે, જ્યારે શુભ ભાવથી પુષ્ટ્યબંધ થાય છે, અર્થાત્ શુભ કર્મનો બંધ થાય છે અને તે સુગતિનું કારણ છે. શુભ કર્મ હોય તોપણ મોક્ષ થતો નથી. કર્મના ફળરૂપે મોક્ષ હોઈ શકે જ નહીં. આમ, પુષ્ટય એ ધર્મ નથી, પણ બંધ હોવાથી અધર્મ છે. સંવરપૂર્વક નિર્જરા એ જ ધર્મ છે અને તેવી ધર્મકરણીથી મોક્ષ થાય છે. વ

જ્યાં સુધી અભિપ્રાયમાં અંશમાત્ર શુભ રાગનું અવલંબન રહે ત્યાં સુધી સંસાર-વૃક્ષનું મૂળિયું એવું ને એવું મજબૂત રહે છે. જીવ પાપ છોડીને અજ્ઞાનપૂર્વક વ્રત, તપ, દયા. શીલ. પુજા વગેરે શુભ ભાવો ભૂતકાળમાં અનંત વાર કરી ચૂક્યો છે, પણ તેનાથી તેના ભવભ્રમણનો અંત આવ્યો નથી. રાગના આશ્રયની બુદ્ધિ છૂટી ન હોવાથી તે સંસારમાં જ રખડ્યો છે. ક્ષણિક પુલ્યફળ માટે તેણે પોતાના મોક્ષને વેચી દીધો છે. ક્ષણિક પુણ્યની મીઠાશ માટે તેણે મોક્ષમાર્ગને છોડી દીધો છે અને સંસારમાર્ગને આદર્યો છે. રાગની મીઠાશ માટે તેણે નિજ ચિદાનંદતત્ત્વનો આશ્રય છોડી દીધો છે અને પરાધીન પણ્યતત્ત્વનો આશ્રય ત્રહ્યો છે. ભૂતકાળમાં અનેક વાર તેણે જ્યારે દીક્ષા લીધી હતી, ત્યારે તેણે શુદ્ધાત્માના અનુભવરૂપ સામાયિકની પ્રતિજ્ઞા કરી હતી; પણ તેણે તો મોક્ષના સાધનરૂપ સાચા સામાયિકને ઓળખ્યું પણ ન હતું, રાગથી ભિન્ન ચૈતન્યની શ્રદ્ધા પણ કરી ન હતી અને શુભ રાગમાં જ તે અટકી ગયો હતો. ચિદાનંદસ્વભાવના અનભવ3પ સામાયિક એ જ મોક્ષનું કારણ છે એનો સ્વીકાર ન કરી, રાગના અનુભવને જ મોક્ષનું કારણ માની તેમાં તે અટકી ગયો હતો. અંતરમાં રાગ અને ચૈતન્યની ભિન્નતાનું જ્ઞાન કર્યું જ ન હતું, તેથી તે સ્થૂળ લક્ષ સહિત શુભ રાગમાં જ અટકી ગયો હતો. મોક્ષ તો એકમાત્ર ચૈતન્યસ્વભાવના અવલંબન વડે પમાય છે, પુષ્ય વડે નહીં. જેઓ અંતર્મુખ થઈને જ્ઞાનસ્વભાવનો આશ્રય કરે છે તેઓ જ મુક્તિ પામે છે. જ્ઞાનસ્વભાવનો આશ્રય કરી જ્ઞાયકપણે પરિણમવું તે જ મોક્ષનું કારણ છે. જ્ઞાનસ્વભાવનો આશ્રય કરી જ્ઞાયકરૂપે પરિણમવું તે જ ધર્મ છે.

આમ, વીતરાગસ્વભાવનો આશ્રય તે જ નિર્જરાનું કારણ છે અને તે જ ધર્મ

'पुण्णं पि जो समिच्छदि संसारो तेण ईहिदो होदि । पुण्णं सम्गइ-हेऊ पुण्णखयेणेव णिव्वाणं ।।'

૧- જુઓ : શ્રી કાર્તિકેયસ્વામીકૃત, 'કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા', ગાથા ૪૧૦

છે. જેનાથી આત્માને ચોંટેલાં કર્મોની નિર્જરા થાય તે ધર્મ છે અને જેનાથી શુભ કે અશુભ કર્મો બંધાય તે અધર્મ છે. પુણ્ય-પાપના કારણે મળતી ઇષ્ટ-અનિષ્ટ ગતિ, જાતિ વગેરેના ભેદનું જ્ઞાન કરાવવા માટે તેમાં ભેદ કહ્યો છે, એટલે કે સંસાર અપેક્ષાએ તેમાં ભેદ છે; પરંતુ ધર્મ અપેક્ષાએ ભેદ નથી, અર્થાત્ બન્ને પ્રકારના ભાવ અધર્મ છે.

પંડિત શ્રી બનારસીદાસજીએ આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવના 'સમયસાર' ગ્રંથ ઉપર આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવ દ્વારા લિખિત 'આત્મખ્યાતિ' ટીકા અને કલશોનો આધાર લઈ, 'સમયસારનાટક' રચ્યું છે, જેમાં ગુરુ-શિષ્યના સંવાદરૂપે પુષ્ય-પાપ સંબંધી હેય-ઉપાદેય વ્યવસ્થાની વિસ્તારથી ચર્ચા કરી છે.

શિષ્ય શ્રીગુરુને કહે છે કે પાપ અને પુષ્ય બન્ને સમાન નથી, કારણ કે એનાં કારણ, રસ, સ્વભાવ અને ફળ જુદાં જુદાં છે. પાપ અનિષ્ટ જણાય છે અને પુષ્ય પ્રિય લાગે છે. સંક્લેશ(અશુભ)પરિણામોથી પાપબંધ થાય છે અને વિશુદ્ધ (શુભ) પરિણામોથી પુષ્યબંધ. આ પ્રમાણે બન્નેમાં કારણભેદ વિદ્યમાન છે. પાપના ઉદયથી દુઃખ થાય છે, જેનો સ્વાદ કડવો લાગે છે અને પુષ્યના ઉદયથી સુખ થાય છે, જેનો સ્વાદ મધુર છે; આ પ્રમાણે બન્નેમાં રસભેદ પણ રહેલો છે. પાપપરિણામ સ્વયં ક્લેશરૂપ છે અને પુષ્યપરિણામ વિશુદ્ધરૂપ છે, તેથી બન્નેમાં સ્વભાવભેદ પણ વિદ્યમાન છે. પાપથી નરકાદિ કુગતિઓમાં જવું પડે છે અને પુષ્યથી દેવાદિ સુગતિની પ્રાપ્તિ થાય છે, આ પ્રમાણે બન્નેમાં ફળભેદ પણ પ્રત્યક્ષ જોવામાં આવે છે. આવો સ્પષ્ટ ભેદ હોવા છતાં આપ બન્નેને શા માટે સમાન કહો છો?

આના ઉત્તરમાં શ્રીગુરુ કહે છે કે પાપબંધ અને પુષ્યબંધ બન્ને મુક્તિમાર્ગમાં બાધક છે, તેથી બન્ને સમાન જ છે. પાપ તીવ્ર કષાય છે, પુષ્ય મંદ કષાય છે. કડવો અને મધુર સ્વાદ બન્ને પુદ્દગલજન્ય છે. સંક્લેશ(અશુભ)ભાવ અને વિશુદ્ધ (શુભ) ભાવ બન્ને વિભાવભાવ છે, તેથી એ પણ સમાન જ છે. કુગતિ અને સુગતિ બન્ને ચતુર્ગતિરૂપ સંસારમાં જ છે, તેથી તેમાં ફળભેદ છે જ નહીં. પુષ્ય-પાપમાં કારણ, રસ, સ્વભાવ અને ફળનો ભેદ વાસ્તવિકપણે નથી; મિથ્યાત્વના કારણે અજ્ઞાનીને તે દેખાય છે, જ્ઞાનીને આવા ભેદ દષ્ટિગત થતા નથી. પુષ્ય અને પાપ બન્ને અંધકૂપ છે, બન્ને કર્મબંધરૂપ છે અને મોક્ષમાર્ગમાં બન્નેનો અભાવ થતો જોવામાં આવે છે. ધ

વીતરાગદેવે પુણ્ય-પાપ બન્નેને બંધરૂપ અને બંધનાં કારણ કહ્યાં છે. પુણ્ય-પાપમાં અંતર જોવાવાળો વીતરાગમાર્ગનો ઉપાસક નથી. હિંસા, ચોરી, વ્યભિચારાદિ અશુભ ક્રિયાઓને તો દુનિયા પણ અપરાધ કહે છે. વીતરાગમાર્ગની આ એક અલૌકિકતા છે કે જ્યાં શુભ ક્રિયાઓને પણ અપરાધ કહેવામાં આવે છે. વીતરાગધર્મમાં ૧- જુઓ : પંડિત શ્રી બનારસીદાસજીક્ત, 'સમયસારનાટક', પણ્યપાપદ્ધાર તો શુભ કર્મ પણ સંપૂર્ણપણે ત્યાગવા યોગ્ય છે. શુભ અને અશુભ બન્ને છેદાય ત્યારે મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટે છે.

દીવાસળી પેટાવીને આજુબાજુનું બધું બાળી શકાય છે, તેમ શુભ ભાવોથી અશુભ ભાવો બાળી શકાય છે. સંસાર સંબંધી વિચારો તોડવા માટે શુભ વિચારનો અને તે માટે શુભ ક્રિયાનો આશ્રય લેવો આવશ્યક છે. જીવ જો શુભ ભાવમાં હોય તો તે સ્વરૂપનો નિર્ણય કરી શકે છે, સ્વરૂપનું ઘોલન કરી શકે છે અને તેથી સ્વરૂપનો મહિમા વધે છે, રસ જામે છે; માટે તેની ઉપયોગિતા છે. પરંતુ બીજાને બાળવા ઉપરાંત દીવાસળી પોતે પણ બળે છે, બળીને ખાખ થઈ જાય છે; તેમ સ્વરૂપલક્ષી પુરુષાર્થમાં શુભ ભાવો પ્રથમ અશુભ ભાવોને ક્ષીણ કરે છે અને પછી પોતે પણ ક્ષય પામે છે; અર્થાત્ યથાર્થ પુરુષાર્થ થતાં શુભ વિચાર પણ ક્રમશઃ ક્ષીણ થતાં જાય છે અને અંતે નિર્વિચાર સ્થિતિ આવે છે, ઉપયોગ નિર્વિકલ્પ થઈ સ્વરૂપસ્થ થાય છે.

નાવમાં બેસીને જીવ સામા કિનારે જાય છે ત્યારે નાવ સાધનરૂપ બને છે, પરંતુ સામા કિનારે જઈ જો નાવને છોડવામાં ન આવે તો તે બાધારૂપ બને છે. જો ત્યાં પહોંચીને નાવને છોડવામાં ન આવે તો ગંતવ્ય સ્થળે પહોંચાતું નથી, આખી યાત્રા નિષ્ફળ જાય છે. જેમ નાવને પહેલાં પકડવાથી અને પછી છોડવાથી ગંતવ્ય સ્થળે પહોંચાય છે, તેમ શુભ ભાવ અશુભ ભાવથી નિવૃત્ત થવા માટે જરૂરી છે, પણ ઉપયોગને અંતર્મુખ કરતી વખતે તે પણ છૂટી જાય છે.

મંદિરનાં પગિથયાં ચઢવામાં આવે તો દેવનાં દર્શન થાય. પગિથયાં ઉપર પગ મૂકતાં પણ આવડવું જોઈએ અને તેના ઉપરથી પગ લેતાં પણ આવડવું જોઈએ. તેને પકડવું જેટલું અનિવાર્ય છે, તેટલું જ તેને છોડવાનું પણ અનિવાર્ય છે. પગિથયાં પકડતાં આવડે પણ છોડતાં ન આવડે તો તે ચૂકી જાય છે. જીવ મંદિરના દાર સુધી પહોંચી જાય પણ જો છેલ્લા પગિથયાને છોડતાં ન આવડે તો તે મંદિરમાં પ્રવેશ કરી શકતો નથી. જો તેને પગિથયાં છોડતાં ન આવડે તો તે મંદિરથી હજાર માઇલ દૂર હોય, હજાર ઈચ દૂર હોય કે છેલ્લા પગિથયા ઉપર હોય - કંઈ જ ફરક પડતો નથી; કારણ કે દેવનાં દર્શન આ બધી જગ્યાએથી સંભવિત જ નથી. ત્યાં ઊભા રહી જવાથી મંદિરમાં પ્રવેશ થતો નથી, ભીતર જવાતું નથી. તે બહાર જ રહી જાય છે. આત્મદેવના દર્શનથી તે વંચિત જ રહે છે.

કેળાના રક્ષણ માટે તેની છાલ આવશ્યક છે, પણ જ્યારે કેળાનો ઉપયોગ કરવો હોય ત્યારે છાલ કાઢી નાખવી પડે છે અને એમાં જ તેની સાર્થકતા છે. તેવી જ રીતે જેમ શુભ ભાવની આવશ્યકતા છે, તેમ તેનાથી પાર થવાની પણ આવશ્યકતા છે. શુભ ભાવ સહાયક પણ છે અને બાધક પણ છે. તેનાથી સ્વરૂપની નિકટ અવાય છે, સ્વરૂપનો પરિચય થાય છે; પણ જો તેનું અતિક્રમણ ન કરવામાં આવે તો સ્વરૂપની અનુભૂતિ થઈ શકતી નથી.

સાંકડી નાની ગુફામાં જવું હોય અને માથે પાણીનું બેડું હોય, બેડું ભલે સોનાનું હોય, તોપણ તેને બહાર મૂકીને જવું પડે છે; તેમ ચૈતન્યગુફામાં પ્રવેશ કરવા માટે, સૂક્ષ્મ સ્વરૂપપ્રદેશમાં જવા માટે, શુભ ભાવના સ્થૂળ ઉપયોગરૂપ સોનાનું બેડું બહાર મૂકવું જ પડે છે. શુભાશુભ ભાવ છેદાતાં જ મોક્ષરૂપી કાર્ય નીપજે છે. જીવે શુભાશુભ ભાવ કર્યા તેથી અનંત કાળથી રખડ્યો છે, પણ જો તે શુભાશુભ ભાવને છેદે તો મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટ થાય છે. કર્મનો બંધ શુભ અને અશુભ પરિણામોથી થાય છે, શુદ્ધ પરિણામોથી જ એ બન્નેનો મૂળમાંથી ક્ષય થાય છે.

સંસારસમુદ્રથી પાર ઉતારવાવાળો, મોક્ષપ્રાપ્તિ કરાવવાવાળો એકમાત્ર શુદ્ધોપયોગ જ છે, શુભાશુભ ઉપયોગ નહીં. શુદ્ધ આત્મસ્વભાવમાં થતી એકાગ્રતા તે શુદ્ધોપયોગ છે. જેવો શુદ્ધ સ્વભાવ છે તેવો જાણ્યા વગર, એની શ્રદ્ધા કર્યા વગર તેમાં એકાગ્રતા થઈ શકે જ નહીં. જીવ શુદ્ધાત્માને અનુભવપૂર્વક જાણે અને શ્રદ્ધે અને તેમાં જ સંપૂર્ણ એકાગ્રતા કરે તો કેવળજ્ઞાન અને અતીન્દ્રિય સુખ પ્રગટે છે.

આમ, મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે શુદ્ધોપયોગ પ્રગટ કરવો, અર્થાત્ અવસ્થાને સ્વદ્રવ્યના અવલંબનમાં ટકાવવી એ જ સાચો પુરુષાર્થ છે. ચિત્તને આત્મભાવમાં સ્થાપી જે જે કર્મના ઉદય ભોગવવા પડે તે સર્વ સાક્ષીભાવે વેદાય, અર્થાત્ ચિત્ત ઇષ્ટ-અનિષ્ટ ભાવથી રહિત વાય તે જ સત્પુરુષાર્થ છે. ચિત્તને આત્મભાવમાં એકાગ્રપણે સ્થાપીને શુભાશુભ વૃત્તિનો નિરોધ કરવો એ જ સત્ય પુરુષાર્થ છે. કર્મના ઉદય અનુસાર ભિન્ન ભિન્ન પરિસ્થિતિઓ સર્જાયા કરે છે, પરિવર્તનો આવ્યા કરે છે, તેને જાણવાનું પણ ચાલુ જ હોય છે; પરંતુ તેમાં જીવ જો ઇષ્ટ-અનિષ્ટનો ભાવ ન કરે તો મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટ થયા વગર રહે નહીં.

આમ, શિષ્યના સંશયનું સમાધાન કરતાં શ્રીગુરુ પ્રસ્તુત ગાથામાં ફરમાવે છે કે કર્મ જેનાથી બંધાય છે એવા શુભાશુભ ભાવમાં જીવની પ્રવૃત્તિ અનંત કાળથી છે, તેથી જ અનંત કાળ વીત્યો છતાં મોક્ષ થયો નથી. અત્યાર સુધી જે કાળ વીત્યો છે તે શુભાશુભ ભાવના કારણે છે, પણ તે ભાવનો નાશ થઈ શકે છે. શુભાશુભ ભાવ છેદવાથી મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટે છે. શુભાશુભ ભાવ છેદી શુદ્ધ ભાવમાં વર્તતાં મોક્ષની ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી વીરસેનજીકૃત, 'ધવલા', પુસ્તક ૧૨, ખંડ ૪, ભાગ ૨, સૂત્ર ૮-૩, પ્.૨૭૯

'कम्मबंधो हि णाम सुहासुहपरिणामेहिंतो जायदे, सुद्धपरिणामेहिंतो तेसिं दोण्णं पि णिम्मूलक्खओ ।' પ્રાપ્તિ થાય છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે -

'alal કાળ અનંત તે, મિથ્યાભાવ પ્રસંગ; અહંકાર મમકારનો, ખોટો લાગ્યો રંગ. તેથી કર્તા અન્યનો, કર્મ શુભાશુભ ભાવ; કરી અનંતા ભવ ભમ્યો, છોડી આપ સ્વભાવ. જો સદ્દગુરુ શિક્ષા અહી, સ્થિર કરી નિજ ચિત્ત; તે શુભાશુભ છે દતાં, શિવસુખ અનુભવ નિત્ય. પુષ્પપાપ ક્ષય જે કરે, આદરતાં સમભાવ; રાગદેષ દૂર થતાં, ઊપજે મોક્ષ સ્વભાવ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૬ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૫૭–૩૬૦)

देशारिक व्यंभेशानी, कार नेशंकि विभोग, विक्रिमिन मोदिर वैशिक्षण पडे, निक्र कानण केम को गा. <mark>ભૂમિકા</mark> ગાથા ૯૦માં શ્રીગુરુએ કહ્યું કે કર્મ સહિત અનંત કાળ વીતવાનું કારણ છે, શુભાશુભ કર્મ પ્રત્યેની જીવની આસક્તિ. પરંતુ શુભાશુભ ભાવથી ઉદાસીન થઈ, જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાપણે રહેવાથી શુભાશુભ ભાવ છેદાય છે અને તેથી મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટે છે.

આમ, ગાથા ૮૯-૯૦ દ્વારા શ્રીગુરુએ મોક્ષપદની સિદ્ધિ કરી, તેમજ અનંત કાળ વીત્યો છતાં મોક્ષની પ્રાપ્તિ શા માટે થઈ નથી અને કઈ રીતે થાય તેનું નિરૂપણ કર્યું. શુભાશુભ ભાવથી નિવર્તવારૂપ ભાવમોક્ષનું પ્રતિપાદન કર્યા પછી હવે તેઓ મોક્ષપદ વિષેની શંકાના સમાધાનની આ અંતિમ ગાથામાં દ્રવ્યમોક્ષનું પ્રતિપાદન કરે છે.

ગાથા ૮૮માં શિષ્યે કહ્યું હતું કે 'શુભ કરે ફળ ભોગવે, દેવાદિ ગિત માંચ; અશુભ કરે નરકાદિ ફળ, કર્મ રહિત ન ક્યાંચ', અર્થાત્ જીવ શુભ કર્મ કરે તો દેવાદિ ગિતમાં તેનું શુભ ફળ ભોગવે છે અને અશુભ કર્મ કરે તો નરકાદિ ગિતમાં તેનું અશુભ ફળ ભોગવે છે, પણ જીવ કર્મરહિત કોઈ પણ સ્થળે હોતો નથી. શિષ્યને એવું કોઈ સ્થળ જણાતું નથી કે જ્યાં જીવ કર્મના સંગ વિનાનો હોય. તેની આ શંકાના સમાધાન સાથે મોક્ષનું સ્વરૂપ દર્શાવતાં શ્રીગુરુ કહે છે —

ાાથા 'દેહાદિક સંયોગનો, આત્યંતિક વિયોગ; સિદ્ધ મોક્ષ શાશ્ચત પદે, નિજ અનંત સુખભોગ.' (૯૧)

અર્થ દેહાદિ સંયોગનો અનુક્રમે વિયોગ તો થયા કરે છે, પણ તે પાછો ગ્રહણ ન થાય તે રીતે વિયોગ કરવામાં આવે તો સિદ્ધસ્વરૂપ મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટે, અને શાશ્વતપદે અનંત આત્માનંદ ભોગવાય. (૯૧)

ભાવાર્થ દેહનો સંયોગ છૂટે તે મરણ છે, પણ દેહનો સંયોગ એવા પ્રકારે છૂટે કે જેથી ફરી પાછો કદી પણ તે સંયોગ ન થાય; અર્થાત્ અપુનર્ભાવથી સદાને માટે દેહનો આત્યંતિક વિયોગ થાય તે સિદ્ધાવસ્થારૂપ મોક્ષ છે. દેહાદિનો સંયોગ દ્રવ્યકર્મના કારણે થાય છે. દ્રવ્યકર્મની ઉત્પત્તિ ભાવકર્મના કારણે, એટલે કે રાગ-દેષના કારણે થાય છે. જ્યારે પોતાના સ્વભાવનો મહિમા આવે છે ત્યારે વૃત્તિ સ્વભાવમાં સ્થિર થાય છે અને તેથી રાગ-દેષરૂપ ભાવકર્મ ટળે છે, પરિણામે તે નિમિત્તે થતો દ્રવ્યકર્મનો બંધ પણ અટકે છે. સ્વભાવદષ્ટિના બળ વડે જૂનાં કર્મ ખરતાં જાય છે અને અંતે પૂર્ણ કર્મરહિત દશા પ્રગટ થાય છે. આ દશાને સિદ્ધ અવસ્થા કે મોક્ષપદ કહે છે.

આમ, પ્રબળ પુરુષાર્થ વડે જ્યારે જીવ સર્વ કર્મનો ક્ષય કરી, સિદ્ધદશા પ્રાપ્ત કરે છે ત્યારે દેહાદિ સંયોગ તથા સાંસારિક દુઃખનો સદાને માટે નાશ થાય છે અને આત્માનાં અનંત સુખનો અનુભવ થાય છે. સિદ્ધસ્વરૂપી એવું મોક્ષપદ શાશ્વત પદ છે, એટલે તે પ્રાપ્ત કર્યા પછી જીવને ફરીથી જન્મ-મરણરૂપ સંસારમાં આવવું પડતું નથી. અનંત કાળ સુધી તે શુદ્ધ પૂર્ણ આનંદ ભોગવે છે. આમ, શ્રીગુરુએ પૂર્વની ગાથામાં શુભાશુભ ભાવથી છૂટવારૂપ ભાવમોક્ષનું પ્રતિપાદન કર્યું હતું અને આ ગાથામાં દેહાદિ સંયોગથી છૂટવારૂપ દ્રવ્યમોક્ષનું નિરૂપણ કર્યું છે.

વિશેષાર્થ જીવના શુભાશુભ ભાવના નિમિત્તથી પુદ્દગલકર્મનો બંધ થાય છે અને તે કર્મના ફળરૂપ મનુષ્યાદિ ગતિઓમાં તેનું પરિભ્રમણ થાય છે. જ્યાં જ્યાં જીવ જન્મ ધારણ કરે છે, ત્યાં ત્યાં તેને દેહ તો મળે જ છે. અનંત કાળથી આજ સુધીમાં, એકેન્દ્રિયપણાથી લઈને પંચેન્દ્રિયપણું પ્રાપ્ત થયું છે, ક્યારેક મનની પણ પ્રાપ્તિ થઈ છે; પરંતુ આ સર્વ સંયોગો આયુષ્ય પૂર્ણ થતાં નિયમપૂર્વક જીવથી છૂટા પડી જાય છે. જ્યાં સુધી જીવને દ્રવ્યકર્મનો સંયોગ રહે છે, ત્યાં સુધી જીવ ફરી નવો જન્મ ધારણ કરે છે અને પોતાનાં કર્મ અનુસાર તેને ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારના દેહાદિનો સંયોગ થાય છે. આમ, દેહાદિનો સંયોગ અને વિયોગ જીવે અનંત વાર કર્યો છે અને આ રીતે અનાદિ કાળથી તે સંસારમાં પરિભ્રમણ કરતો રહ્યો છે.

દેહાદિ સંયોગનો વિયોગ તો જીવને પૂર્વે અનંતી વાર થયો છે, પરંતુ જ્યારે તેનો આત્યંતિક વિયોગ થાય છે, અર્થાત્ દેહાદિ ફરી પાછા ગ્રહણ ન થાય એવો અપુનર્ભાવથી સદાને માટે વિયોગ થાય છે, તે સ્થિતિને મોક્ષ કહેવાય છે. દેહાદિનો ફરીથી કોઈ પણ કાળે સંયોગ ન થાય એવા શાશ્વત અને આનંદમય પદની પ્રાપ્તિ થવી તે જ મોક્ષ છે.

કર્મનો સંપૂર્ણ નાશ થયા પછી શરીરની વર્તમાન સ્થિતિ ટકવા માટે કોઈ જ કારણ બાકી રહેતું નથી અને નવા શરીરને ધારણ કરવા માટે પણ કોઈ જ કારણ બાકી રહેતું નથી, માટે આયુષ્યના અંતે વર્તમાન શરીરનો વિયોગ થાય છે અને નવું શરીર પ્રાપ્ત થતું નથી. સદાકાળ માટે જન્મ-મરણરહિત અવસ્થા પ્રાપ્ત થાય છે. આ રીતે કર્મોનો ક્ષય થયા પછી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે.

જીવ વડે દેહાદિનો આત્યંતિક ત્યાગ કરાય છે ત્યારે તેના આત્મપ્રદેશો અંશમાત્ર પણ ઓછા થતા નથી. સંસારના બીજભૂત રાગ-દેષાદિને છોડતાં નિર્મળ જ્ઞાનપર્યાય પ્રાપ્ત થાય છે, પણ અસંખ્ય આત્મપ્રદેશોમાંથી એક પણ પ્રદેશ છૂટો પડતો નથી. તાત્પર્ય એ છે કે આત્માનો એક પણ પ્રદેશ ઓછોવત્તો થતો નથી, પણ રાગાદિ પર્યાયોનો પૂર્વે જે આવિર્ભાવ હતો, તે પર્યાયોની ઉત્પત્તિ અટકે છે અને અનંત જ્ઞાનયુક્ત પર્યાયો પ્રગટ થાય છે. એ જીવની શુદ્ધ અવસ્થા છે, મુક્ત અવસ્થા છે. જેમ વાદળાંઓનો નાશ થતાં સૂર્ય-ચંદ્ર પ્રગટ થાય છે; તેમ રાગ, કર્મ, દેહ આદિ ટળતાં જીવનું અનંત જ્ઞાનાદિ તથા અવ્યાબાધ સુખરૂપ શુદ્ધ સ્વરૂપ પ્રગટ થાય છે. ધ

અશરીરી મુક્ત જીવને મોક્ષમાં તૃષા, ભૂખ વગેરે કોઈ પણ પ્રકારના ઉપદ્રવ રહેતા નથી. ભૂમિ, પાણી, હવા ઇત્યાદિની જરૂરિયાત રહેતી નથી, કારણ કે ત્યાં ફક્ત જ્યોતિર્મય ચૈતન્ય જ છે, એકમાત્ર આત્મદ્રવ્ય જ છે, શરીર નથી. અનંત જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું હોવાથી સૂર્ય, ચંદ્ર ઇત્યાદિ પ્રકાશયુક્ત પદાર્થોની આવશ્યકતા પણ રહેતી નથી. મોક્ષમાં આત્માની સ્થિતિ અવ્યાબાધ છે. મોક્ષમાં સર્વ બાધાઓનો અભાવ હોય છે, કારણ કે આત્માના પોતાના ગુણો ત્યાં પૂર્ણપણે પ્રગટ થાય છે. મોક્ષ એ આત્માની પૂર્ણપણે વિકાસ પામેલી દશા છે.

મોક્ષનું નિરૂપણ બે પ્રકારે કરવામાં આવે છે – દ્રવ્યમોક્ષ અને ભાવમોક્ષ. દેહ, કર્મ આદિ પરદ્રવ્યનો આત્યંતિક વિયોગ થવો તે દ્રવ્યમોક્ષ છે અને રાગ-દ્રેષ-અજ્ઞાનનાં પરિણામોની નિવૃત્તિ થવી તે ભાવમોક્ષ છે. રાગ-દ્રેષ-અજ્ઞાનનાં પરિણામ કર્મબંધનાં મુખ્ય કારણો છે. જ્યારે આ ત્રણે અશુદ્ધ ભાવનો સંપૂર્ણ વિનાશ થાય છે ત્યારે સર્વજ્ઞ-પદ પ્રગટ થાય છે અને અખંડ અતીન્દ્રિય આનંદનો અનુભવ થાય છે. આ ભાવમોક્ષની અવસ્થા છે. આ ભાવમોક્ષના નિમિત્તથી જીવ અને કર્મનાં પરમાણુઓનું સર્વથા પૃથક્ થવું તે દ્રવ્યમોક્ષ છે. આમ, જે સર્વ કર્મોના નાશનું કારણ છે એવા આત્માનાં પરિણામ તેને ભાવમોક્ષ કહે છે અને સર્વ કર્મોનું આત્માથી સર્વથા જુદાં થવું તેને દ્રવ્યમોક્ષ કહે છે. ર

આમ, મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવા માટે સર્વ વિકારોથી તથા સર્વ કર્મોથી રહિત થવું ઘટે છે. જ્યાં સુધી આત્મામાં કામ, કોધ, લોભ, મોહ, મદ, માયા ઇત્યાદિ વિકારો હોય છે; ત્યાં સુધી તેનો મોક્ષ થતો નથી. સકળ કર્મોને નષ્ટ કર્યા વગર કોઈ પણ આત્મા મોક્ષ પામી શકતો નથી. સકળ કર્મોનો ક્ષય એ જ મોક્ષનું એકમાત્ર કારણ છે. સ્વભાવના અવલંબન વડે સર્વ કર્મોનો ક્ષય થતાં આત્મા પોતાના વાસ્તવિક સ્વરૂપમાં ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર'ની આચાર્યશ્રી પૂજ્યપાદ-સ્વામીકત ટીકા, 'સર્વાર્થસિદ્ધિ', અધ્યાય ૧, સૂત્ર ૧ની ટીકા

'निरवशेषनिराकृतकर्ममलकलंकस्याशरीरस्यात्मनोऽचिन्त्यस्वाभाविकज्ञानादिगुणमव्याबाधसुखमात्यन्तिकमवस्थान्तरं मोक्ष इति।'

२- જુઓ : सिद्धांतयक्ववर्ती श्री नेभियंद्रक्थरियत, 'द्रव्यसंग्रह', गाधा उ७ 'सव्यस्स कम्मणो जो खयहेदू अणणो हु परिणामो । णेयो स भावमुक्खो दव्वविमुक्खो य कम्मपुहभावो ।।' સ્થિત થાય છે અને પરમ શાંતિ પ્રાપ્ત કરે છે.

જીવ પોતે પોતાનો સ્વભાવ પ્રગટ કરીને, તેમાં જ રમમાણ થઈને આત્માથી પરમાત્મા બની શકે છે, નરથી નારાયણ બની શકે છે, જીવથી શિવ બની શકે છે. માટે જ્ઞાનસ્વભાવી આત્મામાં જ ઉપયોગ જોડવો કર્તવ્યરૂપ છે. 'આત્મા જ્ઞાનસ્વભાવી છે, વિકાર ઉપાધિ છે તથા પ્રાપ્ત સંયોગો પર છે' એવો નિર્ણય કરવો એ મોક્ષનો પુરુષાર્થ છે. નિમિત્ત અને વિકાર ઉપરથી દેષ્ટિ હટાવી સ્વભાવ તરફ દેષ્ટિ કરવી એ સત્પુરુષાર્થ છે. અવે અંતરવલણ કરવું એ સત્પુરુષાર્થ છે. સ્વભાવનો અાશ્રય કરવારૂપ પુરુષાર્થ વડે આત્માનો ક્રમશઃ વિકાસ થતાં દેહાદિ બાહ્ય સંયોગોનો સર્વથા વિયોગ થાય છે તથા અંત વિનાના આત્મિક સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે.

જૈનમત અનુસાર આત્માનો પૂર્ણ વિકાસ થવો એ જ મોક્ષ છે. આત્મા એકાએક મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી શક્તો નથી, પરંતુ ક્રમશઃ પોતાનો વિકાસ સાધતો જઈ પૂર્ણત્વને પ્રાપ્ત કરે છે. તેનો આધ્યાત્મિક વિકાસ ક્રમશઃ થાય છે. જૈન દર્શનમાં આધ્યાત્મિક વિકાસનું પ્રતિપાદન અત્યંત સૂક્ષ્મતાથી અને સ્પષ્ટપણે કરવામાં આવ્યું છે.

આત્મવિકાસમાં મિથ્યાત્વ સૌથી મોટો અવરોધ છે. આત્મા જ્ઞાનસ્વભાવી છે, જાહાવું-જોવું તેનું કાર્ય છે, પરમાં ફેરફાર કરવા એ તેનું કાર્ય નથી એવી યથાર્થ પ્રતીતિ થતાં મિથ્યાત્વ દૂર થાય છે અને સમ્યગ્દશર્ધન પ્રગટ થાય છે; દર્શનમોહનીય કર્મ ટળતાં જીવ યોથા ગુણસ્થાને આવે છે. સ્વભાવની ખુમારીના બળ વડે આત્મસ્થિરતા વધતાં જીવ પાંચમા ગુણસ્થાને આવે છે. તેનાથી વિશેષ આત્મસ્થિરતા થતાં સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રદશા પ્રગટે છે અને તે છકા-સાતમા ગુણસ્થાને આવે છે. છકા-સાતમા ગુણસ્થાને આત્મસ્થિરતામાં વિઘ્નભૂત એવા કષાય-નોકષાયરૂપ ચારિત્રમોહનો પરાજય કરવાના પુરુષાર્થમાં તે પ્રવર્તે છે. આત્મસ્થિરતા નિરંતર વધતી રહે તેમ પ્રવર્તતાં, ચારિત્રમોહનો સર્વથા ક્ષય કરે એવાં બળવાન પરિણામની શ્રેણી મંડાય છે, જેમાં નિરંતર અધિકાધિક વધતાં જાય એવાં અપૂર્વ કરણ - પરિણામ પ્રગટે છે અને ત્યારે આઠમું અપૂર્વકરણ ગુણસ્થાન જીવને પ્રાપ્ત થાય છે.

જીવ જ્યારે સાતમા ગુણસ્થાનથી આગળ વધે છે ત્યારે તે આત્મ-અનુભવની ગહનતામાં વધુ ને વધુ ઊંડો ઊતરે છે અને ધર્મધ્યાનથી આગળ જઈ શુક્લધ્યાનમાં પ્રવેશ કરે છે. આઠમા, નવમા, દસમા ગુણસ્થાનોમાં ધર્મધ્યાનનું માધ્યમ હોતું નથી - રહેતું નથી. બુદ્ધિપૂર્વકના વિકલ્પ તો સમાપ્ત થઈ ગયા હોય છે. અત્યંત અલ્પ અબુદ્ધિ-પૂર્વકના વિકલ્પ શેષ રહ્યા હોય છે, જેના કારણે જ્ઞાનોપયોગમાં અબુદ્ધિપૂર્વક જ જ્ઞેય પદાર્થોની અને મન-વચન-કાયાની પ્રવૃત્તિની સંક્રાંતિ એટલે કે પરિવર્તન થતું રહે છે. આ વિકલ્પો સૂક્ષ્મ રાગજન્ય છે. જેટલા પ્રમાણમાં રાગ બચ્યો હોય છે તેટલા પ્રમાણમાં

વિકલ્પ ઊઠે છે. અહીં સંસારનો કે શરીરભોગનો રાગ નથી. તે રાગરૂપી લાકડાં તો બળીને ખાખ થઈ ગયાં છે. તેની રાખ આત્મધ્યાનની આંધીથી ઊડીને વીખરાઈ ગઈ છે. હવે સૂક્ષ્મ રાગનો પણ અભાવ થતો જાય છે અને સ્વભાવમાં સ્થિરતા વધતી જાય છે. ચેતનામાં સ્થિરતા થવાના કારણે આત્મિક આનંદ વધતો જાય છે.

ચેતનામાં વધતી સ્થિરતાના કારણે કર્મપ્રકૃતિઓની સ્થિતિ અને અનુભાગ ક્ષીણ થતાં જાય છે. સાતમા ગુણસ્થાનથી આગળ વધતી વખતે કેટલાક જીવ રાગાદિના પૂર્વ-સંસ્કારોનું ઉપશમન કરે છે, જ્યારે કેટલાક જીવ રાગાદિનો ક્ષય કરે છે. પહેલા પ્રકારના જીવ દસમા ગુણસ્થાનને પાર કરી અગિયારમા ઉપશાંતમોહ ગુણસ્થાનમાં પહોંચે છે. દબાયેલ પૂર્વસંસ્કાર તેને ત્યાં ટકવા દેતા નથી અને તે પુનઃ નીચેના ગુણસ્થાનમાં આવી જાય છે. જ્યારે બીજા પ્રકારના જીવ આત્મધ્યાનની ગહનતા દ્વારા શુકલધ્યાનના પ્રથમ ચરણ દ્વારા રાગસંસ્કારોને મિટાવતા આગળ વધે છે અને મોહનીય કર્મનો સર્વથા નાશ કરી કષાયરહિત એવા બારમા ક્ષીણમોહ ગુણસ્થાનમાં પ્રવેશ કરે છે.

મોહનીય કર્મના ક્ષયના માર્ગે આગળ વધતો જીવ શુક્લધ્યાનમાં એકાત્ર થઈને મોહનીય કર્મને ક્ષય કરવા સમર્થ એવી ક્ષપકશ્રેણી માંડી, સતત વધતી જતી પરિણામની વિશુદ્ધિની અખંડ ધારા વડે મોહનો ક્ષય કરી ક્ષીણમોહ નામના બારમા ગુણસ્થાનને પ્રાપ્ત કરે છે. ક્ષપકશ્રેણીએ શુક્લધ્યાનમાં મગ્ન રહેતાં વીર્ય, ઉલ્લાસ અને પરિણામની ઉજ્જવળતા એટલી બધી વૃદ્ધિ પામે છે કે અંતર્મુહૂર્તમાં સર્વ મોહનીય કર્મનો ક્ષય થવાથી ક્ષીણમોહ ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત થાય છે. અહીં શુક્લધ્યાનની અધિક ગહનતા પ્રાપ્ત થાય છે અને શુક્લધ્યાનના બીજા પાયા વડે શેષ ત્રણ ઘાતી કર્મો - જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય અને અંતરાયનો પણ નાશ થાય છે.

આઠ કર્મોમાં જ્ઞાનાવરણીય આદિ ચાર ઘાતી કર્મો મુખ્ય છે. અથી એ ચારનો ક્ષય થયા પછી જ બાકીનાં ચાર અઘાતી કર્મોનો સર્વથા ક્ષય થઈ શકે છે. ચાર ઘાતી કર્મોમાં પણ મોહનીય કર્મ પ્રધાન છે અને મોહનીય કર્મનો ક્ષય થયા પછી જ અન્ય ત્રણ ઘાતી કર્મોનો સર્વથા ક્ષય થઈ શકે છે. મોહનીયનો ક્ષય થવાથી શુદ્ધ આત્માના અનુભવની અખંડ ધારાના બળ વડે અંતર્મુહૂર્તમાં જ જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય અને અંતરાય એ ત્રણ ઘાતી કર્મોનો એકસાથે ક્ષય થાય છે. તેના ફળસ્વરૂપે આત્મામાં વિશુદ્ધ જ્ઞાનજ્યોતિ પ્રગટ થાય છે. તે જ સમયે પ્રધાન, અનંત, પરિપૂર્ણ, આવરણરહિત, અજ્ઞાનતિમિરરહિત, વિશુદ્ધ અને લોકાલોકપ્રકાશક એવા કેવળજ્ઞાનનો આવિભાવ થાય છે. મોહનીય, જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય અને અંતરાય એ ચાર ઘાતી કર્મોના ક્ષયથી કેવળજ્ઞાન આદિ અનંત ચતુષ્ટય પ્રાપ્ત થાય છે.

જેમ મેઘપટલથી આચ્છાદિત સૂર્ય પોતાના પ્રચંડ પ્રકાશરૂપ સહજ સ્વરૂપથી રહિત

જણાતો હોય, પણ જ્યારે મેઘપટલ દૂર થઈ જાય છે ત્યારે તે સહજ સ્વરૂપે પ્રકાશે છે; તેમ મોહનીયાદિ ચાર ઘાતી કર્મોનો ક્ષય થતાં, પોતાના અનંત જ્ઞાનાદિ પ્રકાશને રોકનારાં એ કારણો દૂર થતાં અનંત ચતુષ્ટ્યસ્વરૂપ, આત્મિક ઐશ્વર્યરૂપ નિજ સહજ સ્વરૂપપ્રકાશ ઝળહળી ઊઠે છે. તેરમા ગુણસ્થાનના પ્રથમ સમયમાં અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત સુખ અને અનંત વીર્ય - આત્માના આ સ્વાભાવિક ગુણો પ્રાપ્ત થાય છે. જે શક્તિઓ છદ્મસ્થ અવસ્થામાં નામમાત્ર વ્યક્ત હતી તે શક્તિઓ હવે પૂર્ણપણે પ્રકાશે છે.

આ કેવળી અવસ્થા છે. અહીં જ્ઞાન સ્વયંમાં જ પ્રતિષ્ઠિત થાય છે. જીવ સ્વરૂપના આનંદમાં મગ્ન હોય છે, અનંત શક્તિઓના આવિર્ભાવ સાથે અનંત આનંદનો ઉપભોગ થઈ રહ્યો હોય છે. જો કે અઘાતી કર્મ હજુ બાકી છે. જીવનાં જ્ઞાનાવરણીય આદિ ચાર ઘનઘાતી કર્મોનો નાશ થયો છે અને વેદનીય, નામ, ગોત્ર અને આયુષ્ય - આ ચાર અઘાતી કર્મો બાકી છે. આવી દશા તે ભાવમોક્ષ છે, સદેહમુક્તિ છે. વિશુદ્ધ જ્ઞાની હોવા છતાં પણ શારીરિક પ્રવૃત્તિથી યુક્ત જીવને સયોગી કેવળી કહેવાય છે. આ તેરમા સયોગીકેવળી ગુણસ્થાનનું આલેખન કરતાં શ્રીમદ્ લખે છે –

'ચાર કર્મ ઘનઘાતી તે વ્યવચ્છેદ જ્યાં, ભવનાં બીજતણો આત્યંતિક નાશ જો; સર્વ ભાવ જ્ઞાતા દ્રષ્ટા સહ શુદ્ધતા, કૃતકૃત્ય પ્રભુ વીર્ચ અનંત પ્રકાશ જો. વેદનીયાદિ ચાર કર્મ વર્તે જહાં, બળી સીંદરીવત્ આકૃતિ માત્ર જો; તે દેહાયુષ આધીન જેની સ્થિતિ છે, આયુષ પૂર્ણે, મટિયે દૈહિક પાત્ર જો."

મોહનીય આદિ ચાર ઘનઘાતી કર્મોનો ક્ષય થતાં સંસારમાં જન્મ-મરણાદિરૂપ પરિભમણ કરવાનું મૂળ કારણ સર્વથા ટળી ગયું હોવાથી તે આત્માને ફરીથી ક્યારે પણ સંસારમાં પાછું આવવાનું થતું નથી. અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત સુખ અને અનંત વીર્ય; એ અનંત ચતુષ્ટયની પ્રાપ્તિ થતાં તેમને શુદ્ધ આત્મસ્વભાવની સંપૂર્ણપણે પ્રાપ્તિ થાય છે. સમસ્ત લોકના જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા, સર્વજ્ઞ, સર્વદર્શી થઈ, અનંત વીર્ય સહિત અનંત કાળ સુધી તેઓ પરમપદે બિરાજે છે. કૃતકૃત્ય થયા હોવાથી હવે તેમને કોઈ કર્તવ્ય બાકી રહેતું નથી. તેરમા ગુણસ્થાને વર્તતા આ કેવળી ભગવાનને હજુ વેદનીય, નામ, ગોત્ર અને આયુષ્ય એ ચાર અઘાતી કર્મ બાકી રહ્યાં છે; પણ જેમ બળેલી દોરી બાંધવાના કામમાં આવી શકતી નથી, તેમ ઘાતી કર્મ ક્ષય થતાં અઘાતી કર્મનું બળ ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.પદપ (આંક-૭૩૮, 'અપૂર્વ અવસર', કડી ૧૫,૧૬)

તૂટી જાય છે. આયુષ્ય કર્મ પૂર્ણ થતાં બાકીના ત્રણે અઘાતી કર્મની સ્થિતિ પૂરી થાય છે અને સંપૂર્ણ કર્મરહિત, દેહરહિત સિદ્ધદશા પ્રાપ્ત થાય છે.^૧

સયોગી કેવળી ભગવંત જ્યારે વિશુદ્ધ ધ્યાનનો આશ્રય લઈને માનસિક, વાચિક અને કાયિક વ્યાપારોને છોડે છે, મન-વચન-કાયાના યોગને રોકે છે ત્યારે તે આધ્યાત્મિક વિકાસની ઉચ્ચતમ અવસ્થાએ પહોંચે છે. આત્માની આ અવસ્થાને અયોગી કેવળી ગુણસ્થાન કહે છે. આયુષ્ય કર્મ અંત પામવાની તૈયારીમાં હોય ત્યારે સૂક્ષ્મ કાયયોગમાં રહેવાવાળા સયોગી કેવળી ભગવંત શુક્લધ્યાનના ત્રીજા ચરણમાં યોગનિરોધ કરી, ચૌદમા અયોગી કેવળી ગુણસ્થાનમાં આવે છે. આયુષ્ય પૂર્ણ થવાને અલ્પ સમય બાકી રહે છે ત્યારે તેમને યોગના પ્રકંપથી રહિત એવું ચૌદમું અયોગી કેવળી ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત થાય છે.

પાંચ હસ્વ સ્વર(અ, ઇ, ઉ, ઋ, લૂ)નો ઉચ્ચાર કરવામાં જેટલો સમય લાગે, તેટલા સમય માટે શુક્લધ્યાનમાં તે અયોગી, અબંધ આત્મા સ્થિત થાય છે. ત્યાં સ્થિત થતાં શેષ રહેલાં વેદનીય, નામ, ગોત્ર અને આયુષ્ય કર્મો એકસાથે નાશ પામે છે. સર્વ કર્મના નાશની સાથે જ ઔદારિક, કાર્મણ, તૈજસ - એ ત્રણે શરીરથી કાયમ માટે ૧- કોઈ જીવ મોક્ષ જતાં પહેલાં કેવળી સમુદ્ધાત કરે છે. ત્યારે તે જીવ આઠ સમય માટે સમસ્ત લોકાકાશમાં વિસ્તરી જાય છે. મળ શરીરને છોડ્યા વગર આત્મપ્રદેશોનું શરીરની બહાર નીકળવું તેને સમુદ્ધાત કહે છે. સમુદ્ધાત = સમ + ઉત્ + ઘાત = એકસાથે + પ્રબળતાથી + કર્મોનો ઘાત = બધી બાજુએ અતિશય ઉગ્રતાથી વેદનીય વગેરે કર્મોનો ઘાત. સમુદ્ધાતના સાત પ્રકાર છે. સયોગી કેવળીના આયુષ્ય કર્મની સ્થિતિ અલ્પ હોય અને બાકીનાં ત્રણ અઘાતી કર્મ - નામ, ગોત્ર અને વેદનીય કર્મની સ્થિતિ વધારે હોય ત્યારે તે કેવળી ભગવંત કેવળી સમદધાત કરે છે. તે ભગવંતના આત્મપ્રદેશો સમસ્ત લોકમાં ફેલાતાં, આયુષ્ય કર્મની સ્થિતિપ્રમાણ બાકીનાં ત્રણ કર્મો થાય તે રીતે તે ત્રણ કર્મોનો ઘાત થાય છે. ત્યારપછી આયુષ્ય કર્મ આદિ ચાર અઘાતી કર્મોની સ્થિતિ સમાન થઈ જાય છે. કેવળી સમુદ્દ્ધાતની ક્રિયા ચાર વિભાગમાં થાય છે - (૧) દંડ (૨) કપાટ (૩) પ્રત્તર (૪) લોકપૂરણ. કેવળી સમુદ્દ્રઘાત વખતે આત્મપ્રદેશો ચૌદ રજ્જુપ્રમાણ એવા આખા લોકમાં ફેલાઈ જાય છે. (૧) દંડ - પ્રથમ આત્મપ્રદેશો ઊભા ફેલાય છે. (૨) કપાટ - આત્મપ્રદેશો પહોળા થઈ પૂર્વ, પશ્ચિમ, ઉત્તર, દક્ષિણ, ઉપર, નીચે એમ સર્વત્ર ફેલાય છે. (૩) પ્રત્તર - બાકીની દિશાઓમાં તિચ્છાં, અર્થાત્ ઈશાન, અગ્નિ, નૈઋત્ય અને વાયવ્ય દિશામાં આત્મપ્રદેશો ફેલાઈ જાય છે. (૪) લોકપૂરણ - લોકમાં જ્યાં જ્યાં ખાંચા-ખૂંચી હોય ત્યાં ફેલાય છે. પ્રથમ વાર વાતવલયના ક્ષેત્રમાં પણ તેમની પ્રવેશવિધિ થાય છે. કોઈ જગ્યા બાકી ન રહે તેમ ચૌદ રાજલોકમાં આત્મપ્રદેશો પુરેપુરા ફેલાઈ જાય છે. પછી પ્રદેશો પાછા ફરતાં પ્રથમ લોકપૂરણ સમુદ્ધાત સંકેલાઈ જાય છે. પછી ક્રમાનુસાર પ્રત્તર, કપાટ, દંડ સમુદ્ધાત સંકેલાઈ જઈ આત્મપ્રદેશો મૂળ શરીરમાં પ્રવેશ પામી જાય છે. આ સમૃદ્ધાતમાં આત્મપ્રદેશોનો ફેલાવો થતાં ચાર સમય અને પ્રદેશો પાછા ફરતાં બીજા ચાર સમય એમ કુલ આઠ સમય લાગે છે.

છુટકારો થાય છે. શુક્લધ્યાનના ચોથા ચરણ દ્વારા તે અયોગી કેવળી ભગવાન ચાર અઘાતી કર્મોનો નાશ કરી તથા ત્રણ શરીરને છોડી સિદ્ધ અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે. શરીર અને જન્મ-મરણથી રહિત થઈ તેઓ સિદ્ધ, બુદ્ધ, મુક્ત થાય છે. તેઓ સિદ્ધશિલા ઉપર પોતાના અનંત આનંદધામમાં શાશ્વત પદે બિરાજે છે.

આ પ્રમાણે જીવનો આધ્યાત્મિક વિકાસ થાય છે. તેનાં સર્વ બંધનો છેદાઈ જાય છે અને તે પરમ સિદ્ધિને પામે છે. દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મ અને નોકર્મનો આત્માની સાથે કોઈ પણ પ્રકારનો સંબંધ રહેતો નથી. સર્વ કર્મોનો સર્વથા નાશ થતાં, આત્મા ઊર્ધ્વગિત કરી લોકના અંત સુધી જાય છે. તે જ્યારે સર્વ કર્મમલથી રહિત થાય છે ત્યારે એક જ સમયમાં ઊર્ધ્વગમન કરીને લોકાંતે સિદ્ધશિલા ઉપર સ્થિત થઈ જાય છે. સિદ્ધ થયેલ જીવ ત્યાં સુધી જ જાય છે. લોકાંતે જઈને અટકી જાય છે. તેની આગળ જતા નથી. તેનાથી વધુ ઉપર જઈ શકતા નથી.

અહીં એવો પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થઈ શકે કે જીવ ઊર્ધ્વગમન કરી ઉપર જાય છે તો પછી લોકાંતે શા માટે અટકી જાય છે? હજી તો તેની આગળ અનંત આકાશ આવેલું છે. આગળ અનંત અલોકાકાશ છે. લોકનું આકાશ હોય કે અલોકનું આકાશ હોય, બન્નેમાં કોઈ તફાવત નથી. આકાશદ્રવ્ય તરીકે બન્ને એક્સરખા છે. તો પછી જીવ હજી આગળ, અલોકમાં શા માટે જતો નથી? લોકના અગ્રભાગે કેમ અટકી જાય છે?

આ પ્રશ્નનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે - અનંત અલોકના કેન્દ્રમાં પરિમિત ક્ષેત્રવાળો લોક છે. લોકના આકાશને લોકાકાશ અને લોકની બહારના આકાશને અલોકાકાશ કહેવાય છે. અલોકમાં ફક્ત આકાશ જ છે. તેમાં ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, જીવ, પુદ્દગલપરમાણુ આદિ એક પણ દ્રવ્ય નથી. એ બધું માત્ર લોકમાં જ છે. લોકાકાશમાં જ ગતિસહાયક ધર્માસ્તિકાયદ્રવ્ય છે, સ્થિતિસહાયક અધર્માસ્તિકાયદ્રવ્ય છે, આત્મદ્રવ્ય છે, પુદ્દગલદ્રવ્ય છે અને કાળ છે.

કોઈ પણ મનુષ્ય જ્યારે તિચ્છલોકના અઢી ઢીપમાંથી કર્મક્ષય કરી મોક્ષે જાય છે ત્યારે તે આત્માને ધર્માસ્તિકાયદ્રવ્ય ગતિમાં સહાય કરે છે. જ્યાં સુધી ધર્માસ્તિકાયદ્રવ્ય છે ત્યાં સુધી જ જીવ ગતિ કરે છે અને અંતે અધર્માસ્તિકાયદ્રવ્યની સહાયથી ત્યાં સ્થિત થઈ જાય છે, તેનાથી આગળ તે આત્મા જઈ શકતો નથી. આગળ ગતિ સહાયક ધર્માસ્તિકાયદ્રવ્ય જ નથી એટલે એ લોકના અપ્રભાગે જઈને સ્થિર થઈ જાય છે.

આત્મા લોકાગ્રથી ઉપર જતો નથી, કારણ કે ત્યાં અનુકૂળ નિમિત્તનો અભાવ છે. તે અલોકમાં ગતિ કરતો નથી, કારણ કે ત્યાં ગતિસહાયક ધર્માસ્તિકાયદ્રવ્યનો અભાવ છે. ઊર્ધ્વગતિથી આત્મા લોકાંતે જઈને અટકે છે, કેમ કે આગળ અલોકમાં ગતિસહાયક ધર્માસ્તિકાયદ્રવ્ય નથી. લોકના અગ્રભાગથી આગળ ગતિ કરવામાં મદદગાર એવું ધર્માસ્તિકાયદ્રવ્ય ન હોવાથી ઊર્ધ્વગમન કરતો આત્મા લોકના અગ્રભાગે પહોંચી અટકી જાય છે અને ત્યાંથી આગળ ગમન કરી શકતો નથી.

જેમ જળમાં ડૂબેલા તૂંબડા ઉપરથી માટીનો લેપ ધોવાઈ જતાં તૂબડું જળની સપાટી ઉપર આવી જાય છે, પરંતુ ઉપગ્રાહક જળના અભાવે જળના ઉપરના ભાગથી અધિક ઉપર તે જઈ શકતું નથી; તેમ કર્મથી મુક્ત થતાં આત્મા લોકાગ્ર સુધી ગમન કરે છે અને અલોકમાં ગતિસહાયક ધર્માસ્તિકાયદ્રવ્યનો અભાવ હોવાથી લોકની બહાર ગતિ થઈ શકતી નથી, તેથી જ તે લોકાંતે આવીને અટકે છે. મુક્તાત્મા લોકાગ્રે સિદ્ધપદમાં બિરાજિત થાય છે.

જો અલોકમાં પણ ધર્માસ્તિકાયદ્રવ્ય હોત તો તો જીવ અલોકમાં પણ ગમન કરી શકત. પરંતુ ગત્તિસહાયક દ્રવ્ય અલોકમાં નથી, માટે જીવ અલોકમાં ગતિ કરતો નથી. અલોકાકાશમાં સિદ્ધાત્માની ગતિ થતી નથી. લોકાકાશ ઓળંગીને તેઓ અલોકાકાશમાં જઈ શકતા નથી, પરંતુ તેઓ લોકના અગ્રભાગ ઉપર પ્રતિષ્ઠિત થાય છે. સિદ્ધ ભગવંત લોકના અગ્રભાગ સુધી જઈને ત્યાં રોકાઈ જાય છે. સિદ્ધ ગતિને પામતો આત્મા મનુષ્યશરીરનો ત્યાગ કરે છે અને લોકના અગ્રભાગ ઉપર જઈને સ્થિત થાય છે.

અહીં બીજા અનેક પ્રશ્નો પણ ઊઠે છે. સર્વ કર્મ ક્ષય થતાં આત્માની ગતિ ઊર્ધ્વ જ શા માટે થાય છે? તિચ્છી કે અધોગતિ શા માટે થતી નથી? આત્માને ગતિ કરવામાં યોગ સહાયક છે. યોગ વિના આત્મા ગતિ કરી શકતો નથી. સર્વ કર્મનો ક્ષય થતાં આત્મા યોગરહિત હોવાથી તે કઈ રીતે ગતિ કરી શકે? કર્મરહિત થયેલા જીવની ઊર્ધ્વગતિ જ શા માટે હોય?

ઊર્ધ્વગમન જ શા માટે થાય છે એ પ્રશ્નનો ઉત્તર એમ છે કે તેમ થવામાં ચાર હેતુ છે. એ ચાર કારણો આ પ્રમાણે છે - (૧) પૂર્વપ્રયોગ, (૨) સંગનો અભાવ, (૩) બંધવિચ્છેદ અને (૪) તથાગતિપરિણામ. સર્વ કર્મ ક્ષય થતાં મુક્ત જીવની ઊર્ધ્વગતિ થવાનાં આ કારણો દર્શાવતાં આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજી 'શ્રી તત્ત્વાર્થીધગમ સૂત્ર'માં કહે છે કે પૂર્વપ્રયોગ, અસંગ, બંધવિચ્છેદ અને તથાગતિપરિણામ - એ ચાર હેતુઓથી આત્મા સર્વ કર્મ ક્ષય થતાં ઊર્ધ્વગતિ કરે છે.

જીવની ઊર્ધ્વગતિના સમર્થનમાં ઉપરોક્ત પૂર્વપ્રયોગાદિ ચાર કારણનાં દષ્ટાંત શાસ્ત્રમાં નીચે પ્રમાણે આપ્યાં છે –

१- कुओ : आयार्थश्री उमास्वातिक्षप्रशीत, 'श्री तत्त्वार्थाधिगम सूत्र', अध्याय १०, सूत्र ६
 'पूर्वप्रयोगाद्, असङ्गत्वाद्, बन्धविच्छेदात्, तथागतिपरिणामाच्च तद्गतिः ।।'

(૧) પૂર્વપ્રયોગ - કુંભારચક્ર

કુંભાર ચક્રને દંડ વડે ગતિમાન કરે છે, પછી તે દંડ લઈ લે છે તોપણ પૂર્વપ્રયોગના કારણે કેટલોક વખત તે ચક્ર ગતિમાન રહે છે અને પછી સ્થિર થાય છે; તેમ સંસાર અવસ્થામાં મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે જીવ જે પુરુષાર્થ કરતો હતો તે છૂટી જાય છે, તોપણ પહેલાંના અભ્યાસના સંસ્કારથી મુક્ત જીવનું ઊર્ધ્વગમન થાય છે. આત્મદ્રવ્ય કર્મબંધનોથી બંધાયેલું હતું, તેને મુક્ત કરવા માટે – તેનું સ્વાભાવિક, કર્મમુક્ત, શુદ્ધ, સહજાત્મસ્વરૂપ સિદ્ધ પદ પ્રાપ્ત કરવા માટે ભાવોલ્લાસથી વીર્ય સ્ફુરાયમાન કરી, પુરુષાર્થમાં પ્રવર્તવારૂપ જે જે પૂર્વપ્રયોગ કર્યા હતા, તેના પરિણામે હવે સ્વાભાવિકપણે જ ઊર્ધ્વગમન થાય છે અને લોકાએ જઈ આત્મા સ્થિત થાય છે.

(૨) અસંગતા - લેપરહિત તૂંબડું

શુષ્ક તૂંબડાનો સ્વભાવ જળમાં ડૂબવાનો ન હોવા છતાં તેને માટીનો લેપ લગાડીને જો જળમાં નાખવામાં આવે તો તે ડૂબી જાય છે. થોડી વાર પછી પાણીથી માટીનો લેપ ધોવાઈ જતાં તે તૂંબડું જળની ઉપર આવી જાય છે. માટીના લેપથી તૂંબડું પાણીમાં ડૂબે તો છે, પરંતુ જ્યારે માટીનો લેપ નીકળી જાય છે ત્યારે તે પાણીની સપાટી ઉપર આવી જાય છે. માટીના લેપથી રહિત થતાં તૂંબડાની જળમાં ઊર્ધ્વગતિ થાય છે. જેમ તૂંબડાને જ્યાં સુધી માટીનો લેપ રહે છે ત્યાં સુધી તે પાણીમાં ડૂબેલું રહે છે અને જ્યારે લેપ ઓગળીને છૂટો થાય છે ત્યારે તે પાણીની ઉપર આવી જાય છે; તેમ જીવ જ્યાં સુધી કર્મરૂપ લેપના સંગવાળો હોય ત્યાં સુધી સંસારસમુદ્રમાં ડૂબેલો રહે છે અને કર્મરૂપ લેપનો નાશ થતાં, અસંગ થતાં, તે શુદ્ધ આત્મા ઊર્ધ્વગમન કરીને, લોકાએ જઈ સદ્ધિશલા ઉપર સ્થિત થાય છે.

(૩) બંધછેદ - એરંડબીજ

એરંડાનું ફળ પાકતાં, તેની ઉપરનું પડ સુકાઈ જવાથી તે ફાટી જાય છે અને તેમાં રહેલ બીજ એકદમ ઉપર ઊછળે છે. એરંડફળનું બંધન છેદાતાં બીજની તુરંત ઉપરની તરફ ગિત થાય છે. જ્યાં સુધી પડના બે ભાગ ન થાય ત્યાં સુધી બીજ એ પડમાં જ રહે છે, કારણ કે પડનું બંધન તેને ઉપર જતાં અટકાવે છે. તેમ સંસારી જીવને કર્મનું બંધન છે. કર્મના બંધનનો વિયોગ થતાં જીવ એરંડાના બીજની જેમ ઊર્ધ્વગતિ કરે છે. જે રીતે ઉપરનું ફોતરું નીકળતાં જ એરંડાનું બી છૂટીને ઉપર જાય છે, તે રીતે ભવ પ્રાપ્ત કરાવનારાં કર્મનાં બંધન દૂર થતાં જ જીવની ઊર્ધ્વગતિ થાય છે. જ્યારે જીવનાં કર્મબંધનનો છેદ થતાં તે મુક્ત થાય છે ત્યારે તે મુક્ત જીવ ઊર્ધ્વગમન કરીને સિદ્ધાલયમાં જાય છે.

(૪) તથાગતિપરિશામ - અગ્નિશિખા

અગ્નિની શિખાનો સ્વભાવ ઊર્ધ્વગમન કરવાનો છે, અર્થાત્ હવાના અભાવમાં અગ્નિની શિખા ઊર્ધ્વ દિશામાં જાય છે. તિચ્છી વહેતી હવાનો અભાવ હોય ત્યારે અગ્નિશિખા સ્વાભાવિક રીતે ઉપર જાય છે. જેમ અગ્નિનો ઊર્ધ્વગમન કરવાનો સ્વભાવ છે, તેમ આત્માનો પણ ઊર્ધ્વગમન કરવાનો સ્વભાવ છે. આત્માનો મૂળ સ્વભાવ ઉર્ધ્વગતિ કરવાનો છે અને તેથી કર્મનો નાશ થતાં જીવની પોતાની સ્વાભાવિક ઊર્ધ્વગતિ થાય છે. છ દ્રવ્યોમાં જીવ અને પુદ્દગલ એ જ બે દ્રવ્યોનો ગતિ કરવાનો સ્વભાવ છે. પુદ્દગલનો ઊર્ધ્વ, અધો અને તિચ્છી એમ ત્રણ તરફ ગતિ કરવાનો સ્વભાવ છે. જેમ કે અગ્નિનો ઊર્ધ્વગતિ કરવાનો સ્વભાવ છે, પથ્થરનો અધોગતિ કરવાનો સ્વભાવ છે, પવનનો તિચ્છી ગતિ કરવાનો સ્વભાવ છે. અગ્નિ ઊંચે ગતિ કરે છે, પથ્થર નીચે જાય છે, વાયુ તિચ્છી ગતિ કરે છે; પરંતુ આત્માનો સ્વભાવ કેવળ ઊર્ધ્વગતિ કરવાનો છે. આત્મા માત્ર ઉપર જવાના જ સ્વભાવવાળો છે. આત્મા સ્વભાવથી માત્ર ઊર્ધ્વગામી છે, પરંતુ સંસારી જીવને કર્મોનો સંગ છે, તેથી તેણે પોતાનાં કર્મ પ્રમાણે ગતિ કરવી પડે છે. કર્મસંગ છૂટતાં જીવ પોતાના સ્વભાવ પ્રમાણે ઊર્ધ્વગતિ કરી એક સમયમાં લોકાએ પહોંચે છે. વ

સર્વ કર્મ ક્ષય થતાંની સાથે જ આત્મા ઊર્ધ્વગમન કરે છે. તે સાત રાજલોક જેટલું અંતર એક સમયમાત્રમાં કાપે છે અને લોકાંતે સ્થિત થાય છે. આટલું અંતર કાપતાં માત્ર એક સમય જ લાગે છે. ક્યારે પણ સમયાંતર થતો નથી. એ જ સમયે જીવ ઉપર જઈને સિદ્ધશિલા ઉપર સ્થિત થઈ જાય છે. જે સમયે સઘળાં કર્મોનો ક્ષય થાય છે, તે જ સમયે દેહનો વિયોગ થાય છે, ઊર્ધ્વગમન થાય છે અને લોકના અંત સુધી પહોંચે છે; અર્થાત્ સર્વકર્મક્ષય, દેહવિયોગ, ઊર્ધ્વગતિ અને લોકાંતગમન એ ચારે એક જ સમયમાં થાય છે. એક જ સમયમાં આ ચાર કાર્યો થાય છે.

અહીં એવો પ્રશ્ન ઊઠી શકે કે માત્ર એક સમયમાં જ, એકસાથે આ ચાર કાર્ય કેવી રીતે સંભવી શકે? તેનો ઉત્તર એમ છે કે જેમ પ્રકાશની ઉત્પત્તિ અને અંધકારનો નાશ આ બન્ને વચ્ચે પહેલા-પછીનો ક્રમ સંભવતો નથી, અર્થાત્ પ્રકાશની ઉત્પત્તિ થતાંની સાથે જ અંધારાનો નાશ થાય છે, બન્ને એકીસાથે જ થાય છે; તે પ્રમાણે સર્વ કર્મનો ક્ષય અને મોક્ષની ઉત્પત્તિ બન્ને એકીસાથે જ થાય છે. માટે કર્મક્ષય, દેહવિયોગ, ઊર્ધ્વગતિ અને લોકાંતગમન એકસાથે જ થાય છે. એમાં સમયાંતર નથી. કર્મક્ષય થતાંની ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'પંચાસ્તિકાય'ની આચાર્યશ્રી જયસેનજીકૃત ટીકા, 'તાત્પર્ય- વૃત્તિ', ગાથા ૭૩

'सर्वतो मुक्तोषि स्वाभाविकानंतज्ञानादिगुणैर्युक्तः सन्नेकसमयलक्षणावित्रहगत्योर्ध्वं गच्छति ।'

સાથે જ જીવ જ્યાં હોય ત્યાંથી જ સીધી ઊર્ધ્વગતિ કરે છે, પણ અલોકાકાશમાં ગતિમાં સહાયક ધર્માસ્તિકાયનો અભાવ હોવાથી લોકાકાશનો અંતિમ પ્રદેશ આવતાં તે અટકી જાય છે અને તેથી સિદ્ધાત્માની અવગાહનાનો સૌથી ઉપરનો ભાગ લોકના અંતિમ પ્રદેશને અડીને રહે છે.

સિદ્ધલોકમાં બિરાજતા સિદ્ધ ભગવાનનો આકાર અંતિમ ત્યજાયેલ મનુષ્યદેહ જેવો હોય છે, પરંતુ સિદ્ધ ભગવંતની અવગાહના અંતિમ શરીરના ²/3 ભાગ જેટલી રહે છે. અવગાહના એટલે આત્મપ્રદેશોને રહેવાની જગ્યા. આત્મા મોક્ષે જાય ત્યારે છેલ્લા શરીરની જે અવગાહના હોય છે તેના કરતાં તે અવગાહના ⁹/3 ભાગ ઘટી જાય છે. એટલા જ ક્ષેત્રમાં ફેલાયેલો રહીને આત્મા મોક્ષમાં રહે છે. આત્મા સિદ્ધક્ષેત્રમાં એટલી જગ્યા રોકે છે, અર્થાત્ એટલા ક્ષેત્રમાં બિરાજે છે, સ્થિર રહે છે. ⁹

સિદ્ધોની અવગાહના પોતાના અંતિમ શરીરના ²/₃ ભાગની રહે છે, કારણ કે મનુષ્યશરીરના ⁹/₃ જેટલા ભાગમાં પોલાણ છે. તેમાં માત્ર વાયુ ભરાયેલો હોય છે. યોગનિરોધ થતાં વાયુ નીકળી જવાથી એ પોલાણનો ભાગ પુરાઈ જાય છે, તેથી શરીરની અવગાહના ⁹/₃ ભાગ જેટલી સંકોચાઈ જાય છે. નાક, આંખ, કાન, પેટ વગેરેનાં પોલાણો પુરાઈને આત્મપ્રદેશો ઘન થઈ જતાં તેમની અવગાહના તેમના અંતિમ દેહથી ⁹/₃ ભાગ ન્યૂન થાય છે. ત્યજાયેલ છેલ્લા દેહના નખ-કેશાદિરૂપ જે અંશોમાં આત્માના પ્રદેશો ન હતા; તેમજ મુખ, કાન, નાક, પેટ જેવાં અંગોનાં પોલાણમાં આત્મપ્રદેશ ન હતા; તે પોલાણ મુક્તાત્મામાં રહેતું નથી, કારણ કે આત્માના પ્રદેશો ઘનવિવરતા અથવા નિચ્છિદ્ર અવસ્થાના રૂપમાં સ્થિત થાય છે.

લોકાએ બધા સિદ્ધ ભગવાનનો ઉપરનો ભાગ એક જ સપાટીએ હોય છે, જ્યારે નીચેનો ભાગ તેમની લંબાઈ તેમજ દેહસ્થિતિ અનુસાર ઓછોવત્તો હોવાથી એક જ સપાટીએ નથી હોતો. લોકના ઉપરના અંતિમ એક ગાઉના અંતિમ છકા ભાગ(333%) ધનુષ્ય જેટલા ભાગ)માં સિદ્ધો વસે છે, અર્થાત્ લોકાકાશના છેલ્લા પ્રતરક્ષેત્રથી 333% ધનુષ્યપ્રમાણ ભાગ સુધીમાં સિદ્ધ જીવો વસે છે. વધારેમાં વધારે ૫૦૦ ધનુષ્યની કાયાવાળા મનુષ્યો મોક્ષે જઈ શકે છે. ૫૦૦ ધનુષ્યની કાયાનો ર/3 ભાગ 333% ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીરચિત, 'પ્રશમરતિ', શ્લોક ૨૮૨

'चरमभवे संस्थानं यादृग् यस्योच्छ्रयग्रमाणं च । तस्मातुत्रिभागहीनावगाहसंस्थानपरिणाहः ।।'

सरजावो : आयार्थश्री यतिवृषल्मक्छड्दत, 'तिक्षोय-पश्शत्ती', अधिडार ८, गाथा १० 'दीहत्तं बाहल्लं चरिमभवे जस्स जारिसं ठाणं । तत्तो तिभागहीणं ओगाहण सव्यसिद्धाणं।।' ધનુષ્ય થાય છે. એટલે લોકાકાશના ઉપરના અંતિમ પ્રદેશથી નીચે ૩૩૩^૧/૩ ધનુષ્ય-પ્રમાણ ભાગ સુધીમાં સિદ્ધ જીવો રહે છે. આમ, એક ગાઉનો છકો ભાગ અને ઉત્કૃષ્ટ અવગાહનાવાળા શરીરનો ^૨/૩ ભાગ સમાન (૩૩૩^૧/૩ ધનુષ્ય) થાય છે.

લોકાકાશના ઉપરના છેડાથી એક યોજન નીચે સિદ્ધશિલા (ઈષત્પ્રાગ્ભારા) નામની પૃથ્વી આવેલી છે. જેમ લોકમાં રત્નપ્રભા વગેરે સાત પૃથ્વીઓ આવેલી છે, તેમ સિદ્ધશિલા નામની આઠમી પૃથ્વી પણ આવેલી છે. આ પૃથ્વી સ્ફટિક જેવી સફેદ છે. આ શિલા ઉપરથી સપાટ અને નીચેથી ગોળાકાર છે. તેનો વિસ્તાર ૪૫ લાખ યોજન છે. તે મધ્યના ભાગમાં આઠ યોજન જાડી છે. મધ્ય ભાગ પછી બધી બાજુ તેની જાડાઈ ક્રમશઃ ઘટતી જાય છે. તે છેડાના ભાગમાં માખીની પાંખ કરતાં પણ પાતળી છે. તેને એકબાજુથી જોવામાં આવે તો તે ઊંધી રાખેલી છત્રી જેવી અથવા આઠમના ચંદ્ર જેવી અર્ધચંદ્રાકાર જણાય છે.

સિદ્ધશિલા ૪૫ લાખ યોજનપ્રમાણ વિસ્તારવાળી, એટલે કે અઢી ઢીપ જેટલા વિસ્તારવાળી છે. અઢી ઢીપ ૪૫ લાખ યોજનપ્રમાણ છે. મોલે જનારા જીવો ૪૫ લાખ યોજનપ્રમાણ વિસ્તારવાળા આ અઢી ઢીપમાંથી જ જાય છે, કારણ કે માત્ર મનુષ્ય ગતિમાંથી જ મોલે જઈ શકાય છે અને મનુષ્ય માત્ર અઢી ઢીપમાં જ વસેલા છે, તેથી અઢી ઢીપમાંથી જ જીવો મોલ પામે છે. એની બહારના અસંખ્ય ઢીપ-સમુદ્રોમાં તો ફક્ત તિર્યંચોની વસતિ છે. અઢી ઢીપની બહાર મનુષ્યની ઉત્પત્તિ નથી અને મનુષ્ય સિવાય બીજી કોઈ પણ ગતિમાંથી, કોઈ પણ પશુ, પક્ષી, દેવ, નારક તો મોલે જઈ શકે જ નહીં; માટે મોલે જઈ શકાય તેવું લેત્ર ૪૫ લાખ યોજનપ્રમાણ જ છે. એટલા લેત્રમાંથી જ જીવો મોલે જાય છે. વળી, જીવ જે સ્થાનમાં સર્વ કર્મોનો ક્ષય કરે છે, તે જ સ્થાનથી સીધી લીટીમાં ઉપર જાય છે. આઠે કર્મને સર્વથા ખપાવનાર આત્મા ઋજુ ગતિએ સીધા ઉપર જાય છે અને લોકના અન્નભાગે જઈને સ્થિર થઈ જાય છે. મુક્તાત્મા ૯૦° - કાટકોણની ઊભી લીટીની જેમ સીધા જ ઉપર જાય છે અને તેથી જે આત્મા જ્યાંથી, જે લેત્રમાંથી મોલે જાય છે તે બરાબર તે લેત્રની ઉપર સીધા જ જઈ લોકાન્રે સ્થિર થાય છે. ૪૫ લાખ યોજનપ્રમાણ અઢી ઢીપથી બહાર મોલે જનાર કોઈ જ ન હોવાથી સિદ્ધ જીવો સિદ્ધશિલા ઉપર ૪૫ લાખ યોજનપ્રમાણ ભાગમાં જ હોય છે.

ભૂતકાળમાં અનંતા જીવો સિદ્ધ થયા છે અને ભાવિમાં પણ અનંતા જીવો સિદ્ધ થશે. અનાદિ કાળથી આજ સુધીમાં અનંત જીવો મોક્ષે ગયા છે. સિદ્ધશિલા ઉપર પહોંચેલા જીવો અનંતા છે. અઢી દીપના એક સ્થાનેથી એક જ જીવ સિદ્ધ થાય છે એવું નથી, પરંતુ એક સ્થાનેથી અનંતા જીવો મોક્ષમાં ગયા છે. એક સ્થાનેથી એક આત્મા સિદ્ધ થયા, કાળાંતરે એ જ સ્થાનેથી બીજા આત્મા પણ સિદ્ધ થયા, ફરી કાળાંતરે ત્રીજા, ચોથા, પાંચમા, છજ્ઞા એમ અનંત જીવો એ જ ક્ષેત્રથી કર્મરહિત દશા પામ્યાં છે અને બધા જ સરલ ઋજુ ગતિએ ઉપર જઈને લોકાંતે સ્થિર થયા છે. વળી, અમુક સ્થાનથી જ અનંતા જીવો મોક્ષમાં ગયા છે એવું પણ નથી. અઢી ઢીપમાં સઘળી જગ્યાએથી અનંત કાળ દરમ્યાન અનંત જીવો મોક્ષમાં ગયા છે. ૪૫ લાખ યોજનપ્રમાણ અઢી ઢીપનો તસુ જેટલો પણ ભાગ એવો નથી કે જ્યાંથી અનંતા જીવો મોક્ષમાં નગયા હોય. એટલે મોક્ષમાં દરેક સ્થાને અનંતા સિદ્ધ પરમાત્માઓ રહેલા છે. જે ક્ષેત્રમાં એક સિદ્ધ રહેલા છે તે જ ક્ષેત્રમાં અનંતા સિદ્ધ રહેલા છે.

જે ક્ષેત્ર એક સિદ્ધથી રોકાયેલું હોય તેમાં અન્ય સિદ્ધો કેવી રીતે રહી શકે? એ પ્રશ્નનો ઉત્તર એમ છે કે જે ક્ષેત્રને રોકીને દૂધ રહ્યું હોય, તેમાં જ સાકર મળીને રહી શકે છે; તે પ્રમાણે સિદ્ધો પણ રહી શકે છે. આ દૂધ-સાકરનું દષ્ટાંત સર્વ અંશે પ્રમાણભૂત નથી, પરંતુ એક અંશે લાગુ પડે છે; કારણ કે રૂપી પદાર્થો એક ક્ષેત્રમાં મળતાં પરસ્પર સંકડામણ ઊભી થાય છે, જ્યારે અરૂપી પદાર્થોમાં એમ થતું નથી. અર્થાત્ જેમ સમસ્ત લોકમાં અરૂપી એવા ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, કાળ અને આકાશ સંકડામણ વિના એકત્ર રહ્યાં છે; તેમ અનંતા સિદ્ધો પણ અરૂપી હોવાથી સંકડામણ વિના એકત્ર રહ્યાં છે; તેમ અનંતા સિદ્ધો પણ અરૂપી હોવાથી સંકડામણ વિના એકત્ર રહ્યાં છે. ૪૫ લાખ યોજનપ્રમાણ ક્ષેત્રના દરેકે દરેક ભાગમાં અનંતા સિદ્ધો બિરાજમાન છે, છતાં ત્યાં જરા પણ સંકડામણ થતી નથી, કારણ કે સિદ્ધો અરૂપી છે. બધા સિદ્ધો એકબીજાને અવગાહના આપી શકતા હોવાથી જ્યાં એક સિદ્ધો બરાજે છે ત્યાં તે જ ક્ષેત્રમાં બીજા અનંત સિદ્ધો પણ હોય છે.

એક જ ઓરડામાં એક દીવો રાખ્યો હોય કે સો દીવા રાખ્યા હોય કે બસો દીવા, તોપણ તે બધા દીવાનો પ્રકાશ એક જ ઓરડામાં રહી શકે છે. એ જ પ્રમાણે મોક્ષમાં પણ અશરીરી એવા આત્માઓ પ્રકાશપુંજની જેમ રહી શકે છે. અનેક સિદ્ધો એકબીજામાં સમાઈને રહી શકે છે. અવ્યાબાધપણું હોવાથી કશે પણ, કોઈને પણ બાધા થવાનો સંભવ નથી. આમ, પરિમિત ક્ષેત્રમાં પણ અનંતા સિદ્ધો રહી શકે છે. પરિમિત ક્ષેત્રવાળી સિદ્ધશિલા ઉપર અનંતા સિદ્ધો કઈ રીતે રહી શકે એ શંકાનું સમાધાન કરતાં આચાર્યશ્રી જિનભદ્રજી 'વિશેષાવશ્યકભાષ્ય'માં કહે છે કે મુક્ત જીવો અમૂર્ત છે, તેથી પરિમિત ક્ષેત્રમાં પણ અનંત મુક્તોનો સમાવેશ થવામાં કશી જ બાધા નથી. જેમ પ્રત્યેક દ્રવ્ય અનંત સિદ્ધોનાં અનંત જ્ઞાન અને અનંત દર્શનનો વિષય બને છે, અર્થાત્ એક જ દ્રવ્યમાં અનંત જ્ઞાન અને અનંત દર્શન જો રહી શકતાં હોય અને જો એક જ નર્તાકીમાં હજારો પ્રેક્ષકોની દષ્ટિ સમાઈ શકતી હોય તો પરિમિત ક્ષેત્રમાં અનંત સિદ્ધોના સમાવેશમાં શું બાધા આવી શકે? વળી, નાના એવા ઓરડામાં અનેક દીપોનો મૂર્ત પ્રકાશ સમાઈ શકે છે, તો અમૂર્ત અનંત સિદ્ધોનો પરિમિત ક્ષેત્રમાં સમાવેશ શા માટે

ન થઈ શકે?^૧

મુક્તાત્મા જે આકાશપ્રદેશમાં સ્થિત થયા હોય તે અને તેટલા જ આકાશપ્રદેશમાં અનંત કાળ સુધી સ્થિત રહે છે. અનંત કાળમાં ક્યારે પણ હાલતા-ચાલતા નથી. તેઓ અંશમાત્ર પણ અહીંથી ત્યાં હલન-ચલન આદિ કંઈ જ કરતા નથી, સ્થિર જ રહે છે. તેમને સર્વ ભાવનું જ્ઞાતાપણું, સ્વસ્વરૂપનું ભોક્તાપણું તથા શાશ્વતી સ્થિરતા પ્રાપ્ત થઈ હોય છે. આ પ્રમાણે મુક્ત જીવને લોકાંત ક્ષેત્રમાં શાશ્વત સ્થિતિ પ્રાપ્ત થાય છે.

જે દર્શનોએ આત્માને વ્યાપક માન્યો છે, તે દર્શનોના મત મુજબ મુક્તિસ્થાનની કલ્પના અનાવશ્યક છે. મુક્ત આત્મા જ્યાં છે ત્યાં જ રહે છે, માત્ર તેમાં જે મલ હોય છે તે છ્ટી જાય છે. તેને અન્યત્ર જવાની કોઈ જરૂર જ નથી. વળી, સર્વવ્યાપી હોવાથી ગમન કરીને જાય પણ ક્યાં? પરંતુ જૈન અને બૌદ્ધ દર્શન તથા જીવાત્માને અણુ માનનારાં ભક્તિમાર્ગી વેદાંત દર્શનોની સામે મુક્તિસ્થાનનો પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થાય તે સ્વાભાવિક છે. ભક્તિમાર્ગી વેદાંતીઓ વિષ્ણુ ભગવાનના વિષ્ણુલોકમાં. જે ઊર્ધ્વલોક છે ત્યાં મુક્ત જીવાત્માનું ગમન સ્વીકારે છે અને પરબ્રહ્મરૂપ ભગવાન વિષ્ણુનું સદાકાળ સાન્નિધ્ય તે મુક્તાત્માને રહે છે એમ તેઓ માને છે. બૌદ્ધોએ આ પ્રશ્નનું જુદી જ રીતે નિરાકરણ કર્યું છે. તેમના મત અનુસાર જીવ-પુદ્દગલ એ શાશ્વત દ્રવ્ય નથી. એટલે પનર્જન્મ વખતે પણ તેમણે એક જીવનું અન્યત્ર ગમન નહીં, પણ એક સ્થાનમાં એક ચિત્તનો નિરોધ અને તેની અપેક્ષાએ અન્યત્ર નવા ચિત્તની ઉત્પત્તિ સ્વીકારી છે. એ સિદ્ધાંત અનુસાર મુક્ત ચિત્તનો નિરોધ થાય છે ત્યારે તે સદાકાળ માટે બુઝાઈ જાય છે. એટલે તેને કશે જવાનો કે રહેવાનો પ્રશ્ન જ ઊભો થતો નથી. જૈનમત પ્રમાણે ભૌગોલિક દષ્ટિએ મોક્ષનું સ્થાન લોકાએ, સિદ્ધશિલા ઉપર છે. મોક્ષ સમગ્ર લોકની ઉપરના સ્થાને છે. ઊર્ધ્વલોકના અગ્રભાગમાં મુક્તાત્માનું ગમન થાય છે અને સિદ્ધ-શિલાની ઉપર સદાને માટે સ્થિત થાય છે એમ તે માને છે.

જૈન આગમોમાં અને જૈન ગ્રંથોમાં ઠેકઠેકાશે સિદ્ધસ્થાનના સ્વરૂપનું વર્શન છે. નિર્વાણ થયા પછી જે સ્થાન આત્માને ઊર્ધ્વગમનથી પ્રાપ્ત થાય છે તેને જૈન શાસ્ત્રમાં સિદ્ધશિલાના નામથી સંબોધ્યું છે. જૈન શાસ્ત્રો અનુસાર જન્મ-મરણનો અંત કરનાર

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી જિનભદ્રજીકૃત, 'વિશેષાવશ્યકભાષ્ય', ગાથા ૧૮૬૦

'षरिमियदेसेऽणंता किध माता मुत्तिविरहितत्तातो । णेयम्मि व णाणाइं दिट्टीओ वेगरूवम्मि ।।'

સરખાવો : સિદ્ધાંતચકવર્તી શ્રી નેમિચંદ્રજીરચિત, 'દ્રવ્યસંગ્રહ', ગાથા ૧૪ની ટીકા

'एकदीपप्रकाशे नानादीपप्रकाशवदेकसिद्धक्षेत्रे सङ्करव्यतिकरदोषपरिहारेणानन्तसिद्धावकाशदान-सामर्थ्यमवगाहनगुणो भण्यते ।' આત્મા જે સ્થાનને પ્રાપ્ત થાય છે તે મોક્ષસ્થાન લોકાએ, લોકના સૌથી ઉપરના ભાગમાં આવેલું છે. લોકાએ આવેલું આ એક એવું ધ્રુવ સ્થાન છે કે જ્યાં શરીર, ઇન્દ્રિય, મન નથી; જન્મ, જરા, મરણ નથી; ભય, શોક નથી; પીડા, રોગ નથી; આધિ, વ્યાધિ, ઉપાધિ નથી; નિદ્રા, સ્વપ્ન નથી; આહાર, વિહાર, નિહાર નથી; ખાવું, પીવું નથી; ઓઢવું, પહેરવું નથી; હસવું, રમવું, ફરવું નથી; શત્રુ, મિત્ર નથી; રાજા, રંક નથી; શેઠ, નોકર નથી; ગુરુ, શિષ્ય નથી; શીખવું, શીખવવું નથી; માયા, મમતા નથી; હેષ, ક્લેશ નથી, ધાંધલ, ધમાલ નથી; વાદ, વિવાદ નથી; વિચાર, પ્રચાર નથી; ન્યાય, અન્યાય નથી; અર્થ, અનર્થ નથી; દિવસ, રાત નથી; સૂર્ય, ચંદ્ર, તારા નથી; વીજ, વરસાદ નથી; અર્ગન, પાણી નથી. મોક્ષસ્થાન એક એવું સ્થળ છે કે જ્યાં ન ઉદ્યાન હોય છે, ન ઝાડ હોય છે, ન ફળ હોય છે, ન ફૂલ હોય છે, ન પર્વત હોય છે, ન નદી હોય છે, ન મકાન હોય છે, ન ગામ હોય છે કે ન મહાનગર હોય છે. ત્યાં સિદ્ધ, ભુદ્ધ, મુક્ત, નિરંજન પદમાં પ્રતિષ્ઠિત મુક્તાત્મા હોય છે.

ચૌદ રાજલોકના અગ્રભાગે બિરાજમાન સિદ્ધાત્મા સતત કેવળજ્ઞાન-કેવળદર્શન ઉપયોગવાળા છે. લોકાંતે સ્થિર સિદ્ધાત્મા કેવળજ્ઞાન-કેવળદર્શન વડે લોકાકાશ તથા અલોકાકાશને સ્પષ્ટપણે જાણે-જુએ છે. તેમને લોક-અલોકનાં સ્વરૂપનું સમસ્ત પ્રકારે જ્ઞાન-દર્શન થાય છે. જે કેવળજ્ઞાન-કેવળદર્શન સશરીરી અવસ્થામાં જ તેરમા ગુણસ્થાને આવતાં પ્રાપ્ત થયું હતું, તે સિદ્ધાવસ્થામાં પણ સદાકાળ માટે રહે છે. સિદ્ધાત્મા તાદાત્મ્ય-ભાવે કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શનથી પરિપૂર્ણ હોય છે. તેઓ સકળ કર્મરહિત એવી સંપૂર્ણ જ્ઞાનમય દશામાં બિરાજમાન છે. એ અનુરાગહીન અને વર્ણનાતીત શાંતિની અવસ્થા છે, વીતરાગતાની દશા છે. લોકના અગ્રભાગે બિરાજતા સિદ્ધ ભગવાન જ્ઞાનાવરણીય આદિ સર્વ કર્મોથી રહિત, નવીન કર્મબંધમાં કારણભૂત એવાં મિથ્યાદર્શન ઇત્યાદિથી રહિત, અનંત સુખરૂપી અમૃતનો અનુભવ કરાવનારી શાંતિ સહિત, અનંત જ્ઞાનાદિ આઠ ગુણોથી યુક્ત હોય છે. 9

સિદ્ધ ભગવાનને આઠ કર્મોના અભાવથી આઠ મહાગુણોની પ્રાપ્તિ થઈ હોય છે. જ્ઞાનાવરણીય કર્મના અભાવથી અનંત જ્ઞાન, દર્શનાવરણીય કર્મ દૂર થવાથી અનંત દર્શન, મોહનીય કર્મના ક્ષયથી અનંત (યથાખ્યાત) ચારિત્ર, અંતરાય કર્મના અંતથી અનંત વીર્ય, નામ કર્મના નાશથી અરૂપીપણું, આયુષ્ય કર્મ નષ્ટ થવાથી જન્મ-મરણના અભાવરૂપ અક્ષયસ્થિતિ, ગોત્ર કર્મનો ક્ષય થવાથી ઉચ્ચ-નીચ ગોત્રના અભાવરૂપ અગુરૂ-

૧- જુઓ : પંડિત શ્રી રાજમલજીકૃત, 'પંચાધ્યાયી', ઉત્તરાર્ધ, શ્લોક ૧૧૪૩

^{&#}x27;सिद्धत्वं कृत्रनकर्मभ्यः पुंसोवस्थान्तरं पृथक् । ज्ञानदर्शन सम्यक्तवीर्याद्यष्टगुणात्मकम् ।।'

લઘુત્વ અને વેદનીય કર્મના વિલયથી ઇન્દ્રિયજન્ય સુખ-દુઃખના અભાવરૂપ અવ્યાબાધત્વ - આ આઠ ગુણો સિદ્ધ ભગવાનને સંપૂર્ણપણે પ્રગટ હોય છે. કર્મનાં સર્વ આવરણો ખસી ગયાં હોવાથી આ આઠ ગુણો પૂર્ણશુદ્ધ સ્વરૂપમાં પ્રગટ હોય છે.

સિદ્ધાત્મામાં નથી રાગ કે નથી દેષ, તેમના જ્ઞાનાદિ ગુણો પૂર્ણતાને પામ્યા છે. તેઓ સર્વ ઇષ્ટ અર્થ પ્રાપ્ત થવાથી કૃતકૃત્ય થઈ ગયા છે. તેમનાં સર્વ કરવા યોગ્ય કાર્ય પૂર્ણ થયાં છે. હવે કોઈ પણ કાર્ય કરવાનું બાકી નથી. જેમના કેવળજ્ઞાનાદિ કાર્ય સંપૂર્ણ થયાં છે એવા સિદ્ધ જીવને કોઈ પણ પ્રવૃત્તિ કરવાની બાકી રહી નથી. સ્વભાવ પૂર્ણપણે પ્રગટ થતાં હવે કંઈ થવા - બનવાનું શેષ રહ્યું નથી. જેને કદી પણ પ્રાપ્ત કર્યો ન હતો, તે નિજસ્વભાવને હવે મેળવી લીધો છે. જે કંઈ અહણ કરાયું હતું તે સઘળું અલોપ થઈ ગયું છે. હવે ન કંઈ અહણ કરવા જેવું બાકી રહ્યું છે કે ન કંઈ છોડવા જેવું બાકી છે. કર્મના સંગથી મુક્ત જીવ પૂર્ણશ્રેષ્ઠ અવસ્થામાં વસે છે. આ જ મોક્ષ છે. આ જ પરમાત્મદશા છે. આ જ પ્રભુપદ છે.

જેઓ કર્મમળથી મુક્ત છે, નિરંજન છે, નિર્દોષ છે, નિત્ય છે, કૃતકૃત્ય છે, આઠ ગુણ સહિત છે; જેમણે સમસ્ત લોકના સર્વ પદાર્થોને જાણ્યા છે; જેઓ ત્રણ લોકના મસ્તકના શિખરસ્વરૂપ છે; જેઓ વજશિલાનિર્મિત અભગ્ન પ્રતિમા સમાન, અભેદ્ય આકારથી યુક્ત છે તેમને સિદ્ધ કહે છે. જેમણે આઠ કર્મોનાં બંધન નષ્ટ કર્યા છે, જેઓ આઠ મહાગુણોથી યુક્ત છે, જેઓ અનંત સુખ અને અનંત જ્ઞાનમાં લીન છે, જેઓ શરીરરહિત છે, જેઓ લોકાએ સ્થિત છે, જેઓ પરમપ્રભુત્વને પ્રાપ્ત થયા છે એવા આત્મા સિદ્ધ છે, મુક્ત છે. શુદ્ધ ચેતના, કેવળજ્ઞાન-દર્શનોપયોગરૂપ લક્ષણોથી યુક્ત એવા જીવ સિદ્ધ છે, મુક્ત છે. બધા સિદ્ધ ભગવંત આત્મદશાની દષ્ટિએ સમાન છે, તેમના વચ્ચે કોઈ પણ પ્રકારનું અંતર નથી.

સિદ્ધાત્મા શબ્દરૂપ, વર્ણરૂપ, ગંધરૂપ, રસરૂપ અને સ્પર્શરૂપ નથી. તેઓ કાળા નથી, સફેદ નથી, લાલ નથી, પીળા નથી; ગોળ નથી, ત્રિકોણ નથી, ચોરસ નથી; સુગંધી નથી, દુર્ગંધી નથી; કડવા નથી, તીખા નથી, ખાટા નથી, ગળ્યા નથી, ઠંડા નથી, ગરમ નથી, કઠોર નથી, કોમળ નથી, ભારે નથી, હલકા નથી, સ્નિગ્ધ નથી, રક્ષ નથી; સ્ત્રી નથી, પુરુષ નથી, નપુંસક નથી. તેઓ નિર્મળ જ્ઞાનસ્વરૂપ છે. કર્મ અને કામનાથી મુક્ત થયેલી એ અવસ્થા છે. મુક્ત આત્મા સર્વ કર્મબંધથી છૂટેલા હોય છે. તેમને શરીર અને જન્મ, મૃત્યુ વગેરે શરીરજન્ય કિયા કાંઈ જ હોતાં નથી.

કેવળજ્ઞાન-કેવળદર્શન જેમણે પ્રગટાવ્યું છે એવા, રાગ-દેષાદિ આંતરિક શત્રુઓ જેમણે નષ્ટ કરી નાખ્યા છે એવા, જન્મ-જરા-મરણાદિ સર્વ પ્રકારનાં દુઃખથી રહિત થયા છે એવા, દેહાદિ સંયોગનો આત્યંતિક વિયોગ જેમણે કર્યો છે એવા મુક્ત જીવો અનંત સમાધિસુખમાં અનંત કાળ સુધી સ્થિર રહે છે. આ સિદ્ધપદનો આદિ છે - તેની શરૂઆત છે, પણ અંત નથી. આ પદની અનંત કાળ પર્યંત શાશ્વત સ્થિતિ છે.

અહીં કોઈને સંશય થાય કે જે વસ્તુની ઉત્પત્તિ થાય છે તે વસ્તુનો નાશ પણ થાય જ છે એવો એક સર્વમાન્ય નિયમ છે. એ નિયમ પ્રમાણે મોક્ષ પણ ઉત્પન્ન થતો હોવાથી તેનો પણ અંત આવવો જોઈએ અને તેથી મોક્ષ શાશ્વત ન કહેવાય. મોક્ષમાં રહેવારૂપ જે સ્થિતિ છે તે જન્ય છે અને જે જન્ય હોય તે વિનાશી હોય જ એવો નિયમ છે. માટે મોક્ષસ્થિતિનો એક દિવસ જરૂર વિનાશ થશે. જો મોક્ષસ્થિતિ વિનાશી હોય તો મુક્ત જીવને ફરી સંસારી બનવાની આપત્તિ આવશે. જે જન્ય હોય છે તે અવશ્ય નાશવંત હોય છે, માટે જીવને ફરીથી સંસારમાં આવવું જ પડશે. મોક્ષની ઉત્પત્તિ ઉપાયથી થતી હોવાથી મોક્ષને કૃતકજન્ય માનવો ઘટે છે, અર્થાત્ તે સ્વાભાવિક નથી પણ ઉત્પન્ન થાય છે; અને જે કૃતક હોય છે તે નિત્ય નહીં પણ અનિત્ય હોય છે, તેથી ઘટાદિની જેમ મોક્ષને પણ અનિત્ય માનવો જોઈએ. જે કૃતક હોય છે તે ઘડાની જેમ કાળાંતરે વિનષ્ટ થાય જ છે, માટે મોક્ષનો પણ ક્યારેક તો નાશ થવો જ જોઈએ. તે કૃતક હોવાથી તેનો કાળાંતરમાં તો નાશ થવો જ જોઈએ, માટે મોક્ષ કાયમ માટે નહીં પણ અમુક કાળ પૂરતો જ થાય છે અને તે કાળાવિધ પૂર્ણ થયા પછી મુક્તાત્મા પણ ફરી જન્મ લે છે.

આ શંકાનું સમાધાન આ પ્રમાણે છે - ઘટાદિનો ધ્વંસ ઉત્પન્ન થનારો છે છતાં તે વિનાશી નથી કિંતુ નિત્ય છે, કારણ કે એ ધ્વંસનો નાશ થઈ શકતો નથી. માટે તેવો નિયમ નથી કે જે કોઈ જન્ય હોય તે વિનાશી હોય. જે કૃતક હોય તે વિનાશી હોય જ છે એવો એકાંતિક નિયમ નથી. ઘટનો પ્રધ્વંસાભાવ કૃતક છતાં નિત્ય છે, અવિનાશી છે; એટલે મોક્ષ કૃતક હોવાથી વિનાશી હોવો જરૂરી નથી. મોક્ષસ્થિતિ જન્ય હોવા છતાં પ્રધ્વંસાભાવની જેમ અવિનાશી છે, માટે મુક્તાત્માને ફરી સંસારીપણાની પ્રાપ્તિ સંભવતી નથી. કૃતક હોવા છતાં મોક્ષનો નાશ નથી એ વાત સમજાવતાં આચાર્યશ્રી જિનભદ્રજી 'વિશેષાવશ્યકભાષ્ય'માં કહે છે કે કૃતક હોય તે અનિત્ય જ હોય એવો નિયમ વ્યભિયારી છે, કારણ કે ઘટાદિનો પ્રધ્વંસાભાવ કૃતક છતાં નિત્ય છે. પ્રધ્વંસાભાવને જો અનિત્ય માનવામાં આવે તો પ્રધ્વંસાભાવનો અભાવ થઈ જવાથી ઘટાદિ પદાર્થોની પુનઃ ઉપસ્થિતિ થઈ જાય; માટે પ્રધ્વંસાભાવ કૃતક છતાં નિત્ય જ છે; તે જ પ્રકારે મોક્ષ પણ કૃતક છતાં નિત્ય છે.

१- शुओ : आयार्थश्री शिनल्मद्रक्षडृत, 'विशेषावश्यडलाप्य', गाथा १८३७ 'कतकादिमत्तणातो मोक्खो णिच्चो ण होति कुंभो व्य । णो पद्धंसाभावो भुवि तद्धम्मा वि जं णिच्चो।।'

અહીં કોઈ એમ દલીલ કરે કે પ્રધ્વંસાભાવ એ ખરશૃંગની જેમ તુચ્છ હોવાથી ઉદાહરણ ન બની શકે, એવી કોઈ વિદ્યમાન વસ્તુને ઉદાહરણરૂપે બતાવવી જોઈએ જે કૃતક છતાં અવિનાશી હોય; તો તેનું સમાધાન એમ છે કે ઘટનો પ્રધ્વંસાભાવ એ ખરશૃંગની જેમ સર્વથા અભાવરૂપ નથી - તુચ્છરૂપ નથી, કારણ કે ઘટના વિનાશથી વિશિષ્ટ એવું વિદ્યમાન પુદુગલદ્રવ્ય જ ઘટપ્રધ્વંસાભાવ કહેવાય છે.

મોક્ષ કૃતક હોવાથી શાશ્વત નથી એ શંકાનું સમાધાન બીજી રીતે પણ થઈ શકે છે. સંશયકર્તાએ મોક્ષને કૃતક કહ્યો છે અને કૃતક હોવાથી મોક્ષ અનિત્ય હોવો જોઈએ એવું તેનું અનુમાન છે; પણ મોક્ષનો અર્થ એટલો જ છે કે જીવથી કર્મોનું સર્વથા છૂટાં પડી જવું. કર્મપુદ્દ્ગલનું આત્મપ્રદેશથી સર્વથા ખરી જવું, છૂટા થવું એ જ જીવનો મોક્ષ છે. એટલે પ્રશ્ન એ થાય છે કે કર્મપુદ્દ્ગલો જીવથી માત્ર છૂટાં પડી ગયાં, તેથી જીવમાં એવું શું થઈ ગયું કે જેથી મોક્ષને કૃતક કહેવામાં આવે છે? અત્યાર સુધી મોક્ષ કૃતક છે એ વાત સાચી છે એમ માનીને તેનો ખુલાસો કરવામાં આવ્યો, પણ ખરેખર પ્રશ્ન તો એ છે કે જીવમાંથી કર્મપુદ્દ્ગલનો સંયોગ નષ્ટ થઈ જવાથી એવું તો શું બન્યું છે કે જેથી મોક્ષને કૃતક કહેવામાં આવ્યો છે? આકાશમાં સંયોગ સંબંધ રહેલા ઘડાનો નાશ થઈ જવાથી આકાશમાં કંઈ પણ નવું ઉત્પન્ન થાય છે? જેમ આકાશમાં રહેલા ઘડાને મુદ્દ્ગરથી ફોડી નાખવામાં આવે તો આકાશમાં કશી જ નવી વિશેષતા આવતી નથી, તેમ કર્મને તપસ્યાદિ વડે નષ્ટ કરવામાં આવે તો જીવમાં પણ કશું જ નવું ઉત્પન્ન થતું નથી; તેથી મોક્ષને એકાંતે કૃતક કહેવાય નહીં. કર્મના સંયોગનો નાશ થવાથી જીવ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને પામે છે, પણ જીવમાં કશું જ નવું ઉત્પન્ન થતું નથી, એટલે મોક્ષને એકાંતે કૃતક માની શકાય નહીં.

આકાશમાં રહેલ ઘડાનો નાશ થાય છતાં સ્વયં આકાશ તો તેવું ને તેવું જ રહે છે. મુદ્દ્ગરથી ઘડો ભાંગી નાખવામાં આવે તો ઘટાત્મક આવરણ ખસી જતાં કાંઈ આકાશ મોટું થઈ જતું નથી. તેમ જ્ઞાનાદિથી કર્મનો નાશ થઈ જતાં, કર્મનું આવરણ હટી જતાં આત્મામાં કાંઈ જ અધિક થતું નથી. એનું જે અનંતસુખાદિમય સ્વરૂપ છે તે માત્ર પ્રગટ થાય છે. જેમ વાદળાં ખસી જવાથી ઝળહળતો સૂર્ય પ્રકાશે છે, તેમ કર્મનાં આવરણો ખસી જવાથી આત્માના સકળ ગુણો પ્રકાશે છે, તેથી મોક્ષ એકાંત કૃતક છે જ નહીં. મોક્ષ એ કોઈ એકાંતે ઉત્પન્ન થનારી વસ્તુ નથી. માત્ર કર્મથી અલગ થવું એ જ આત્માનો મોક્ષ છે. આત્મામાં કોઈ નવીન વસ્તુ ઉત્પન્ન થતી નહીં હોવાથી તેનો અંત આવવાની શક્યતા પણ રહેતી નથી.

અત્રે કોઈ એમ દલીલ કરે કે કર્મના વિનાશને મોક્ષ કહ્યો, પણ જેમ મુદ્દ્ગરથી ઘટનો વિનાશ થાય છે તેથી વિનાશ કૃતક કહેવાય છે; તે જ પ્રમાણે તપસ્યાદિથી

થતો કર્મવિનાશ પણ કૃતક જ છે અને તેથી મોક્ષ પણ કૃતક થયો અને અનિત્ય પણ થયો. આ દલીલનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે - ઘટવિનાશ અને કર્મવિનાશને જેઓ કુતક કહે છે, તેઓ ઘટવિનાશ અને કર્મવિનાશ શું છે એ જાણતા નથી, તેથી તેને કૃતક કહે છે. વસ્તુતઃ ઘટવિનાશ એ બીજું કાંઈ નથી, પણ ઘટરહિત કેવળ આકાશ એ જ ઘટ-વિનાશ છે. આમાં આકાશ તો સદા અવસ્થિત હોવાથી નિત્ય જ છે, તેથી તેને કૃતક કઈ રીતે કહી શકાય? મુદ્દગરે ઉપસ્થિત થઈને આકાશમાં તો કશું જ નવું કર્યું નથી, પછી શા માટે ઘટવિનાશરૂપ એવા આકાશને કુતક કહેવું? તે જ પ્રકારે કર્મનો વિનાશ થાય એટલે બીજું કાંઈ રહેતું નથી, પણ કર્મરહિત એવો કેવળ આત્મા જ રહે છે. અહીં તપસ્યાદિથી આત્મામાં કશું જ નવું ઉત્પન્ન થતું નથી, કારણ કે આકાશની જેમ આત્મા સદા અવસ્થિત હોવાથી તે નિત્ય જ છે. એટલે મોક્ષને એકાંતે કૃતક કે અનિત્ય માની શકાય નહીં. પરંતુ જો મોક્ષને એકાંતે નહીં પણ કથંચિત્ અર્થાત્ પર્યાયદષ્ટિથી અનિત્ય માનવામાં આવે તો તે યોગ્ય જ છે, કારણ કે મોક્ષાદિ સમસ્ત પદાર્થો પર્યાય-નયની અપેક્ષાએ અનિત્ય જ છે. વિશ્વના સર્વ પદાર્થો દ્રવ્ય અને પર્યાય ઉભયની અપેક્ષાએ નિત્ય અને અનિત્ય છે, એટલે એ દુષ્ટિએ મોક્ષ પણ નિત્ય તેમજ અનિત્ય છે. મોક્ષ નિત્યાનિત્ય છે, માટે મોક્ષને એકાંતે અનિત્ય માનવાનો આગ્રહ રાખી શકાય નહીં. જો બધી જ વસ્તુ ઉત્પાદ-વિનાશ-સ્થિતિરૂપ છે તો મોક્ષ માટે એકાંત અનિત્યતાનો આગ્રહ કેવી રીતે રાખી શકાય?

અહીં કોઈ શંકા કરે કે જેમ ઘડો ફૂટી જાય છતાં તેનાં ઠીકરાં સાથે આકાશનો સંયોગ રહે છે, તેમ જીવે જે કર્મની નિર્જરા કરી હોય, તે કર્મો અને જીવ એ બન્ને લોકમાં જ રહે છે; તેથી તેમનો સંયોગ પણ કાયમ જ રહે છે, તો ફરી જીવ-કર્મનો બંધ શા માટે થતો નથી? કર્મપુદ્દ્ગલ તો ચૌદ રાજલોકમાં સર્વત્ર ઠાંસી ઠાંસીને ભરેલાં છે, તેથી ચૌદમા રાજલોકના ઉપરના ભાગમાં રહેલા સિદ્ધ જીવોને પણ કર્મપુદ્દ્ગલનો સંબંધ થવાનો જ. એટલે તેઓ પણ કર્મથી બદ્ધ થવાથી મુક્ત તો નહીં જ રહેને? કર્મનાં પુદ્દ્ગલો લોકમાં સર્વત્ર વ્યાપી રહેલાં છે, માટે તેના સંબંધથી આત્મા મુકાયો હોય તોપણ તે અમુક્ત જ રહેશે.

આ શંકાની નિવૃત્તિ આ પ્રમાણે થઈ શકે - કર્મબંધ થવામાં હેતુ છે રાગાદિ ભાવો અને મન, વચન, કાયાના યોગ. તેમાંનું કાંઈ પણ મુક્તાત્માને પ્રાપ્ત થવાનો સંભવ છે જ નહીં. માટે ફરી કર્મથી બંધાવાનો તેમને કોઈ અવકાશ નથી. તેઓ કર્મરહિત થયા પછી ફરીથી કર્મ સહિત થતા નથી. મોક્ષમાં ગયેલા જીવ ફરી કર્મ સાથે બંધાતા નથી. ફરીથી કર્મ ન બંધાય એવી ઉપદ્રવરહિત, કલ્યાણકારી, અચલ, અક્ષય સ્થિતિ એ જ મોક્ષ છે. કર્મપુદ્દ્ગલના સ્પર્શમાત્રથી મુક્ત જીવો અમુક્ત થઈ જતા નથી.

આ વિષે ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ 'અધ્યાત્મસાર'માં કહે છે કે કર્મને યોગ્ય એવાં પરમાણુઓની સાથે મુક્તનો સંબંધ - સ્પર્શ કરવાપણું છે, તેથી સિદ્ધનો પણ મોક્ષ નથી એવી શંકા ન કરવી; કારણ કે તેમને બંધનાં કારણરૂપ મન, વચન અને કાયાના યોગની ફરી ઉત્પત્તિનો સંભવ નથી, તેથી મુક્ત જીવોને ક્યારે પણ સંસારની પ્રાપ્તિ થશે નહીં.

જેમ નિરપરાધીને કેદ મળતી નથી, તેમ મુક્ત આત્મામાં પણ બંધકારણનો અભાવ હોવાથી તેઓ ફરી બદ્ધ થતા નથી. મુક્ત જીવ અશરીરી છે, તેથી કર્મબંધમાં કારણભૂત એવા મન, વચન અને કાયાના યોગ ન હોવાથી તેમને પુનઃ કર્મબંધનો પ્રસંગ જ ઉદ્દભવતો નથી. માત્ર કાર્મણ વર્ગણાનાં પુદ્દગલોનો આત્મા સાથે સંયોગ હોય એટલામાત્રથી કર્મબંધ માની શકાય નહીં, કારણ કે તેમ માનવા જતાં કાર્મણ વર્ગણાનાં પુદ્દગલો સર્વત્ર વિદ્યમાન હોવાથી બધા જીવોને સમાન ભાવે કર્મબંધ થવો જોઈએ. આ પ્રકારે અતિપ્રસંગાદિ દોષો આવતા હોવાથી માત્ર જીવ અને પુદ્દગલ એક ક્ષેત્રમાં રહે તેને જ કર્મબંધનું કારણ માની શકાય નહીં, પણ જીવના મિથ્યાત્વાદિ દોષો અને યોગના કારણે જ કર્મબંધ થાય છે.

જીવના મિથ્યાદર્શનાદિ વિકારી ભાવોનો અભાવ થવાથી કર્મ સાથેનો કારણ-કાર્ય સંબંધ પણ છૂટી જાય છે. પરવસ્તુઓમાં આત્મીયપણાની મિથ્યા ભાવના તે કર્મબંધનું મુખ્ય કારણ છે, તેને જાણવું તે કાંઈ બંધનું કારણ નથી. જીવમાં રહેલી મિથ્યા ભાવનાના કારણે જીવના જ્ઞાનને મિથ્યા જ્ઞાન કહેવાય છે. મિથ્યા ભાવના છૂટી જવાથી જ્ઞાન છૂટી જતું નથી, પણ જગતની ચરાચર સમસ્ત વસ્તુઓનું જાણવું થાય છે, કારણ કે જ્ઞાન તો જીવનો સ્વાભાવિક અસાધારણ ધર્મ છે. વસ્તુના સ્વાભાવિક અસાધારણ ધર્મોનો કદી નાશ થતો નથી. જો તેનો નાશ થાય તો વસ્તુનો પણ નાશ થઈ જાય. તેથી મિથ્યા વાસનાના અભાવમાં પણ જાણવાનું હોય છે; પણ મિથ્યા વાસનાના અભાવનાં કારણ-કાર્યનો અભાવ થઈ જાય છે. કર્મને આવવાનાં કારણોનો અભાવ થયા પછી, જાણવા છતાં પણ જીવને કર્મોનો બંધ થતો નથી અને કર્મોનો બંધ નહીં થવાથી તેના ફળરૂપે સ્થૂળ શરીરનો સંયોગ પણ મળતો નથી. તેથી જીવને નવો જન્મ હોતો નથી.

મુક્ત જીવ ફરીને સંસારમાં જન્મ લેતા નથી, કારણ કે તેમના પુનર્જન્મ માટેનું કારણ હવે રહ્યું નથી. જન્મરહિત થયેલા મુક્ત જીવને જરાવસ્થા હોતી નથી. ઉત્પત્તિ-૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૪, શ્લોક ૧૩૩

> 'न च कर्माणुसंबन्धान्मुक्तस्यापि न मुक्तता । योगानां बन्धहेतूनामपुनर्भवसंभवात् ।।'

રહિત એવા જીવને ઉંમરનો નાશ થવારૂપ જરાવસ્થા આવતી નથી. જન્મ અને જરાનો અભાવ થતાં મરણ પણ રહેતું નથી, મરણનો ભય પણ રહેતો નથી. આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજી 'શાસ્ત્રવાર્તાસમુચ્ચય'માં કહે છે કે મૃત્યુ આદિથી રહિત એવા મોક્ષની પ્રાપ્તિ કર્મોનો સર્વથા નાશ થવાથી થાય છે, કારણ કે કર્મોથી રહિત જીવ ક્યારે પણ નવો જન્મ લેતો નથી. જેમ બીજ સર્વથા બળી જવાથી તેના વડે અંકુરની ઉત્પત્તિ થતી નથી, તેમ કર્મરૂપી બીજ સર્વથા બળી જવાથી સંસારરૂપી અંકુરની ઉત્પત્તિ નથી થતી. '

જન્માદિનું બીજકારણ કર્મનો વિષાક છે. આ બીજના અભાવથી જન્માદિનો પણ અભાવ થાય છે. બીજ વિના જેમ અંકુર ન ફૂટે, તેમ કર્મરૂપ બીજ વિના જન્માદિ થતાં નથી. જેમ બીજ બળી જવાથી તેમાંથી અંકુરની ઉત્પત્તિ થતી નથી, તેમ કર્મરૂપ બીજ બળી જવાથી જન્માદિરૂપ અંકુરની ઉત્પત્તિ થતી નથી. બીજ દગ્ધ થયા પછી તેમાંથી અંકુરનો પ્રાદુર્ભાવ થતો નથી, તે જ રીતે કર્મરૂપી બીજ દગ્ધ થવાથી ભવરૂપી અંકુરનો ઉદય થતો નથી.

કર્મ સહિત એવા જીવને જ ફરીથી જન્મ-મરણાદિ થાય છે, કર્મરહિત જીવને જન્માદિ થતાં નથી. આ કારણથી કર્મરહિત એવા સિદ્ધાત્માને ફરીથી જન્માદિ થતાં નથી. નિર્વાણગત જીવ કર્મરહિત હોવાથી તેમને ફરીથી જન્મ-મરણાદિ થતાં નથી. મોક્ષ પામ્યા પછી ફરી વાર જન્મ-મરણાદિ થતાં નથી. આઠ કર્મથી સર્વથા મુક્ત સિદ્ધ જીવને જન્મ-મરણની જંજાળ નથી. તેમને જન્મ-મરણ આદિ દુઃખોનો વિચ્છેદ થયો હોય છે, માટે જ મોક્ષને સર્વોત્તમ કહેવામાં આવે છે. જ્યાં સુધી રાગ-દેષ-મોહ છે ત્યાં સુધી જન્મ-મરણ છે અને જ્યાં જન્મ-મરણ છે ત્યાં દુઃખ છે, જન્મ-મરણાદિ સર્વ દુઃખથી આત્યંતિક મુક્તિ થતી હોવાથી મોક્ષ સર્વોત્તમ કહેવાય છે.

અત્રે કોઈ એમ કહે કે ધર્મતીર્થના કરનારા જ્ઞાનીપુરુષો મોક્ષમાં જાય છે, પણ જો તીર્થનો ઉચ્છેદ થયેલો જુએ તો તેઓ ફરીથી પાછા સંસારમાં આવે છે. તેથી કર્મરહિત આત્માને જન્માદિનું અહણ ફરીથી ન થાય એમ શા માટે કહેવામાં આવે છે? આ શંકાનો ઉત્તર આપતાં આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજી 'ધર્મબિંદુ'માં કહે છે કે કર્મથી સર્વથા મુક્ત થયેલા જીવને તેવા પ્રકારના સ્વભાવના કારણે, તેમજ પૂર્વના પોતાનાં પ્રયોજનને સંપૂર્ણ કર્યાં હોવાથી એવા મુક્ત જીવને પુનર્જન્માદિ અહણ કરવા માટે કોઈ

'मृत्यादिवर्जिता चेह मुक्तिः कर्मपरिक्षयात् । नाकर्मणः क्वचिज्जन्म यथोक्तं पूर्वसूरिभिः।। दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः । कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः।।'

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજીકૃત, 'શાસ્ત્રવાર્તાસમુચ્ચય', શ્લોક ૬૯૨,૬૯૩

નિમિત્ત રહ્યું હોતું નથી, તેથી તેઓ જન્મ ધારણ કરતા નથી.^૧

અહીં જણાવ્યા પ્રમાણે સર્વ કર્મોથી મુકાયેલ મુક્તાત્માઓનું તેવા પ્રકારનું સ્વરૂપ છે તેથી, તેમજ તેમણે સર્વ પ્રયોજન પૂર્ણ કરેલ છે તેથી તે મુક્તાત્માઓને જન્માદિ અહણ કરવાનું કોઈ પણ કારણ છે જ નહીં. જેઓ સર્વ કર્મોથી સર્વથા મુકાયા છે તથા જેમના સર્વ પ્રયોજનની સમાપ્તિ થઈ છે, તેમને જન્મ અહણ કરવાનું કોઈ પણ નિમિત્ત રહ્યું નથી. વળી, તેમને જન્માદિને અહણ કરાવનાર સ્વભાવનો અભાવ હોય છે. તેમને તીર્થનો ઉચ્છેદ કરવારૂપ હેતુ પણ ઘટતો નથી, કારણ કે તે હેતુ કષાયરૂપ વિકારથી ઉત્પન્ન થાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે જેમને કષાય રહી ગયા હોય તેમને એવો વિચાર આવે કે 'મારું તીર્થ ઉચ્છેદ થયું છે, તેથી હું અવતાર લઈને ફરીથી તેનું સ્થાપન કરું', પરંતુ જેમને કષાયનો સર્વથા ક્ષય થયેલ છે, તેમને એવો વિચાર આવે જ નહીં.

સિદ્ધાત્મા ક્યારે પણ મોક્ષમાંથી પાછા આવતા નથી, કારણ કે સંસારપરિભ્રમણના કારણરૂપ એવા રાગ-દ્રેષાદિ ભાવોનો તેમને સર્વથા અભાવ થઈ ગયો છે. રાગ-દ્રેષના અભાવમાં અવતાર લેવાનું કંઈ કારણ રહેતું નથી. ગમે તેવા નિમિત્તે – કોઈ પણ પ્રસંગે તેમને પાછા આવવાનું કોઈ જ પ્રયોજન રહેતું નથી. ધર્મના અભ્યુદય માટે, કોઈ ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે કે કોઈને બચાવવા માટે ઇત્યાદિ કોઈ પણ હેતુથી મુક્તાત્મા ફરી સંસારમાં આવતા નથી. તેમને કોઈ પ્રત્યે શત્રુ-મિત્રભાવ હોતો જ નથી, એટલે દાનવોરૂપી શત્રુને મારવા અને દેવતારૂપ મિત્રને બચાવવા જન્મ લેવાનો સંભવ જ નથી; માટે અવતારવાદ માનવો ઉચિત નથી.

જૈન દર્શનના મત અનુસાર મોક્ષ એક એવું સ્થાન છે કે જ્યાં ગયા પછી ફરીથી પાછા આવવાનું નથી. ત્યાં નથી કર્મબંધના હેતુઓ, ત્યાં નથી મન-વચન-કાયાના યોગ કે નથી રાગ-દેષાદિ વિભાવભાવ; તેથી ત્યાં ગયા પછી પાછું આવવાનું થતું નથી. જેમને અનંતચતુષ્ક પ્રાપ્ત થયું છે, જેઓ લોકાંતને પ્રાપ્ત થયા છે, જેમનાં જ્ઞાનાવરણીયાદિ આઠ કર્મો સર્વથા નષ્ટ થયાં છે; તેમનું ક્યારે પણ પુનરાગમન થતું નથી, અર્થાત્ તેઓ ફરી આ સંસારમાં આવતા નથી. મુક્તાત્મા ક્યારે પણ, અનંતા કાળ પછી પણ પાછા સંસારમાં આવતા નથી. ^ર

મોક્ષ અવસ્થા ક્યારે પણ નષ્ટ થતી નથી. તે અવિનાશી અર્થાત્ ત્રિકાળ છે. તે ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજીકૃત, 'ધર્મબિંદુ', અધ્યાય ૮, શ્લોક ૩૯

'सर्वविप्रमुक्तस्य तु तथा स्वभावत्वा-न्निष्ठितार्थत्वात्र तद्ग्रहणे निमित्तमिति ।।'

२- જુઓ : આચાર્યશ્રી વીરસેનજીકૃત, 'ધવલા', પુસ્તક ૪, ખંડ ૧, ભાગ ૧, સૂત્ર ૫, પૃ.૩૧૦ 'ण च ते संसारे णिवदंति, णट्टासक्तादो ।' અવ્યાબાધ, અર્થાત્ કોઈથી પણ બાધા-પરાભવ પામે તેવી નથી. અનંત દર્શન, અનંત જ્ઞાન, અનંત સુખ તથા અનંત વીર્ય એકસમયમાત્ર માટે પણ નાશ પામતાં નથી, તે સર્વ અખંડપણે નિરંતર રહે છે. આગામી સર્વ કાળમાં સિદ્ધ ભગવંતને તે જ રૂપે રહેવાપણું છે. સિદ્ધપણું પામવાની ક્ષણે સર્વ પ્રકારે સર્વ કર્મ ક્ષય થયાં છે. તેમનું આગામી સર્વ ક્ષણો માટે એકરૂપપણું છે, તેમાં કોઈ ભેદ નથી; તેથી સિદ્ધ ભગવંત સદાકાળ તે જ રૂપે રહે છે. સિદ્ધ અવસ્થાના પ્રથમ સમયમાં પોતાના સર્વ કર્મ ક્ષય કરવારૂપ અર્થને સિદ્ધ કરી, ઊર્ધ્વગતિ કરી, તેઓ લોકના અંતે પોતાના સ્વરૂપમાં રહે છે. એ જ પ્રકારે પ્રથમ સમયથી આરંભીને સદાકાળ માટે તેઓ સ્વરૂપમાં રહે છે. સિદ્ધ ભગવાન નિરંતર પોતાના સ્વભાવમાં જ રહે છે.

આમ, સર્વ કર્મનો ક્ષય થવાથી દેહાદિ સંયોગોનો આત્યંતિક વિયોગ થાય છે, અર્થાત્ દેહાદિ ફરી કદી પણ પ્રાપ્ત ન થાય એવો વિયોગ થાય છે. વળી, તે મોક્ષપદ શાશ્વત પદ છે. ત્યાંથી કદી ફરી જન્મ-મરણરૂપ સંસારમાં આવવું પડતું નથી, ત્યાં આત્માનું અનંત સુખ ભોગવાય છે. સર્વ કર્મોથી મુક્ત થયેલ આત્મા ઊર્ધ્વગમન કરી, લોકાગ્રે જઈ સ્થિર થાય છે અને ત્યાં સિદ્ધાલયમાં અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન સહિત અનંત સમાધિસુખ ભોગવતાં તે આત્મા અનંત કાળ સુધી સ્વસ્વભાવરમણતામાં જ સ્થિર રહે છે. એકાંત ભાવે સર્વ ક્લેશો જેમના નષ્ટ થયા છે તેવા મુક્ત જીવો સર્વ કાળ માટે સચ્ચિદાનંદ દશામાં રહે છે. ધ

તિર્યંચ, નારક, દેવ અને મનુષ્ય; સંસારની આ ચાર ગતિ દુઃખથી ભરેલી છે, પણ સિદ્ધ ગતિ સંસારની આ ચાર ગતિથી વિલક્ષણ છે. તેમાં માત્ર સુખ હોય છે અને સર્વ પીડાનો આત્યંતિક ઉચ્છેદ થયેલો હોય છે. આ સ્થિતિમાં આત્યંતિક દુઃખનિવૃત્તિ અને આત્માના અનંત, અવ્યાબાધ, અલૌકિક સુખની પ્રાપ્તિ હોય છે. જ્યાં દુઃખનું નામ પણ નથી અને સુખ જ સુખ - અનંત સુખ છે, તે સિદ્ધદશા છે.

દુઃખનાં કારણોથી રહિત સિદ્ધ ભગવાનનું સુખ અપૂર્વ અને અતીન્દ્રિય છે. સિદ્ધ પરમાત્માનું સુખ અનંત, અપરિમિત, અતીન્દ્રિય, આત્મોત્પન્ન, અવ્યાબાધ અને અનુપમ છે. તે સુખ સંસારના વિષયોથી અતીત, સ્વાધીન, અવ્યય, અવિનાશી છે. જે આત્માની ઉપાદાનશક્તિથી સિદ્ધ છે એટલે કે આત્માથી જ ઉત્પન્ન થયેલ છે, અતિશયવાળું છે, બાધારહિત છે, વિશાળ છે, હાનિ અને વૃદ્ધિથી રહિત છે, પાંચ ઇન્દ્રિયના વિષયોથી રહિત છે, નિર્દંદ છે, અન્ય દ્રવ્યની અપેક્ષાથી રહિત છે, અનુપમ છે, અનંત છે, અપાર છે, સર્વ કાળ રહેનાર છે, ઉત્તમ છે તથા અનંત સારયુક્ત છે એવું પરમ સુખ

૧- જુઓ ઃ આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવકૃત, 'તત્ત્વાર્થસાર', અધિકાર ૮, શ્લોક ૪૯

^{&#}x27;कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्तमम् ।'

સિદ્ધ પરમાત્માને વર્તે છે.

સિદ્ધ ભગવાનનું સુખ પરવશ નહીં પણ સ્વવશ છે, ક્ષણિક નહીં પણ નિત્ય છે, અંતવાળું નહીં પણ અનંત છે; મોહને આધીન નહીં પણ જ્ઞાનમય અને નિજસ્વભાવની રમણતાવાળું છે. તેમનું સુખ કેવળજ્ઞાનમય, રાગ-દેષરહિત વીતરાગતામય છે. તે કોઈ પણ પ્રકારના વિઘ્ન વિનાનું અવ્યાબાધ છે. શરીર, ઇન્દ્રિય, મનને આધીન ન હોવાના કારણે દેહાતીત, અતીન્દ્રિય તથા મનાતીત છે.

સિદ્ધ ભગવાનને પ્રગટેલી શીતળતાની તો વાત જ શું કરવી! તેમને તો જાશે શાંતિનો સાગર ઊછળી રહ્યો હોય એવી અમાય શાંતિ હોય છે, જાશે આનંદનો સમુદ્ર હિલોળા લઈ રહ્યો હોય એવો અપાર આનંદ હોય છે. તેમાં ક્યારે પણ ઓટ આવતી નથી. સર્વ કર્મથી મુક્ત સિદ્ધ પરમાત્મા પોતાના સચ્ચિદાનંદ સ્વરૂપમાં, આનંદઘન સ્વરૂપમાં સદા મસ્ત હોય છે. તેઓ અલૌકિક, અક્ષય, અનંત, અવ્યાબાધ સુખમાં લીન હોય છે. ત્યાં શરીર પણ નથી અને ઇન્દ્રિયો પણ નથી, માત્ર આત્મા જ સ્વયં અનંત સુખ ભોગવે છે. મોક્ષદશા આવી આનંદમય અવસ્થા છે. આચાર્યશ્રી શુભચંદ્રજીએ 'જ્ઞાનાર્ણવ'માં દર્શાવેલ સિદ્ધની સહજ સ્વાભાવિક નિર્મળ નિજાનંદમય દશાનું વર્ણન અનુવાદિત કરતાં શ્રીમદ્ લખે છે —

'પ્રકૃતિ, પ્રદેશ, સ્થિતિ અને અનુભાગ રૂપ સમસ્ત કર્મોના સંબંધના સર્વથા નાશરૂપ લક્ષણવાળો તથા જે સંસારનો પ્રતિપક્ષી છે તે મોક્ષ છે. આ વ્યતિરેક પ્રધાનતાથી મોક્ષનું સ્વરૂપ છે. દર્શન અને વીર્ચાદ ગુણ સહિત તથા સંસારના ક્લેશો રહિત ચિદાનંદમયી આત્યંતિક અવસ્થાને સાક્ષાત્ મોક્ષ કહે છે. આ અન્વય પ્રધાનતાથી મોક્ષનું સ્વરૂપ કહ્યું છે.

જેમાં અતીંદ્રિય, ઇંદ્રિયોથી અતિકાંત, વિષયોથી અતીત, ઉપમારહિત અને સ્વાભાવિક, વિચ્છેદરહિત, પારમાર્થિક સુખ હોય તેને મોક્ષ કહ્યો જાય છે. જેમાં આ આત્મા નિર્મળ, શરીરરહિત, ક્ષોભરહિત, શાંતસ્વરૂપ, નિષ્પન્ન (સિદ્ધરૂપ), અત્યંત અવિનાશી સુખરૂપ, કૃતકૃત્ય તથા સમીચીન સમ્યક્જ્ઞાન સ્વરૂપ થઇ જાય છે તે પદને મોક્ષ કહીએ છીએ.'

સર્વ કર્મોની ઉપાધિઓ છૂટી જવાના કારણે શરીર, ઇન્દ્રિય અને મનનો સર્વથા અભાવ થતાં જે અનંત સુખ મુક્ત આત્માઓ અનુભવે છે, તે સુખની આગળ સમગ્ર ત્રિલોકનું સુખ બિંદુમાત્ર પણ નથી. દુનિયાભરના જેટલા પૌદ્ગલિક સુખ છે, તે બધા સુખોને એકઠા કરવામાં આવે, તે સર્વ સુખોના પિંડને ત્રાજવાના એક પલ્લામાં રાખવામાં ૧- પ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છઢી આવૃત્તિ, પૃ.૨૦૯ (પત્રાંક-૧૦૨)

આવે અને ત્રાજવાના બીજા પલ્લામાં મોક્ષસુખને રાખવામાં આવે તોપણ મોક્ષના સુખનું પલ્લું વજનદાર થશે, પૌદ્દગલિક સુખનું પલ્લું ઉપરનું ઉપર જ રહેશે.

મોક્ષના સુખની સામે સંસારનાં સુખની કોઈ ગણતરી જ નથી. લોકમાં વિષયોથી પ્રાપ્ત થતાં જે જે સુખ છે, તે સર્વ સુખ વીતરાગસુખના અનંતમા ભાગની પણ બરાબરી કરી શકતા નથી. ત્રુપા કાળમાં મનુષ્ય, તિર્યંચ અને દેવોને જે સુખ મળે છે તે બધાં સુખ મળીને પણ સિદ્ધના એક ક્ષણના સુખની બરાબરી કરી શકતાં નથી. સંસારમાં ચક્રવર્તી, યુગલિક, ધરણેન્દ્ર, દેવેન્દ્ર અને અહમિન્દ્રનું સુખ ક્રમશઃ એકબીજાથી અનંતગણું ચડિયાતું છે. આ બધાનાં સર્વ સુખનો સરવાળો કરવામાં આવે તોપણ તે સિદ્ધ ભગવાનના એક સમયના સુખના અનંતમા ભાગ જેટલું પણ થઈ શકતું નથી. ર

વાસ્તવમાં તો સંસારના કોઈ પણ સુખની સાથે સિદ્ધ ભગવાનના વીતરાગ નિર્વિકલ્પ સમાધિથી સમુત્પન્ન, પરમ આહ્લાદક, શાશ્વત, સહજ સુખની સરખામણી થઈ જ શકતી નથી. સિદ્ધ ભગવાનના સુખની જાત જ જુદી છે. તેમનું સુખ સાંસારિક સુખને ટપી જાય એવું ધર્માંતરરૂપ અત્યંત વિલક્ષણ સુખ છે. તે સુખ સંસારી જીવોનાં સુખ જેવું નથી, માટે તે અસાધારણ સુખ છે. સિદ્ધ ભગવંતનું સુખ સામાન્ય જીવોનાં સુખથી તદ્દન ભિન્ન પ્રકારનું છે, તેથી તે અસામાન્ય છે. તેમનું સુખ અલૌકિક સુખ છે.

જો કોઈ એમ માનતું હોય કે સ્વર્ગનાં સુખ કરતાં અનંતગણું સુખ મોક્ષમાં છે, તો તે માન્યતા મિથ્યા છે, કેમ કે સ્વર્ગનાં સુખની અને મોક્ષના સુખની જાતિ એક નથી. સ્વર્ગમાં વિષયાદિ સામગ્રીજનિત ઇન્દ્રિયસુખ હોય છે, પણ મોક્ષમાં તો વિષયાદિ કે અન્ય કોઈ પણ પ્રકારની સામગ્રી નથી, એટલે ત્યાંનું અતીન્દ્રિય સુખ જુદા પ્રકારનું અને ઉચ્ચ કોટીનું છે. ઇન્દ્ર વગેરેને જે સુખ છે તે તો કષાયભાવોથી ઉત્પન્ન થનાર, આકુળતારૂપ છે, તેથી પરમાર્થે તેઓ દુઃખી છે; જ્યારે મોક્ષમાં તો કષાયરહિત અનાકુળ સુખ છે.

મુક્તાત્માનું સુખ સાદિ અનંત કાળ ટકે એવું અવિનાશી, કોઈથી પણ બાધા-પરાભવ ન પામે એવું અવ્યાબાધ, જેને જગતના કોઈ પણ પદાર્થની ઉપમા આપી ન શકાય એવું અનુપમ છે. સમસ્ત વિશ્વમાં એવો કોઈ પદાર્થ નથી કે જેની સાથે મોક્ષસુખને સરખાવી શકાય, માટે મોક્ષસુખ અનુપમ છે. જે રૂપી પદાર્થો સુખનાં

'जं च कामसुहं लोए जं च दिव्यमहासुहं । वीदरागसुहस्सेदे णंतभागंपि णग्धंदि ।।'

२- જુઓ : सिद्धांतथक्रवर्ती श्री नेभिशंद्रक्षकृत, 'त्रिલोक्सार', गाधा ५६० 'चिक्किकुरुफणिसुरेंदेसहमिंदे जं सुहं तिकालभवं । तत्तो अणंतगुणिदं सिद्धाणं खणसुहं होदि।।'

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી વટ્ટકેરજીકૃત, 'મૂલાચાર', ગાથા ૧૧૪૬

સાધનો કહેવાય છે, તેવા કોઈ પણ પદાર્થનો તેની સાથે મુકાબલો થઈ શકતો ન હોવાથી સિદ્ધ જીવનું સુખ નિરુપમ છે. સંપૂર્ણ સંસારમાં મુક્ત જીવના સુખ જેવું અન્ય સુખ નથી, એટલે તે સુખ નિરુપમ છે. મોક્ષના સુખને સંસારના કોઈ પણ સુખની ઉપમા આપી શકાય તેમ નથી, માટે તે અનુપમ છે.

કોઈ પણ વસ્તુની ઉપમા આપીને તેની સરખામણી કરી શકાય તેમ ન હોવાથી મોક્ષસુખનું વર્ણન કરવા કોઈ મોટા વિદ્વાન પણ સમર્થ નથી. મોક્ષસુખ અતીન્દ્રિય હોવાથી અવર્ણનીય છે. તેનું વર્ણન કરવું અશક્ય છે. તેનું વર્ણન કરવા માટે કોઈ પણ શબ્દ સમર્થ નથી. મુક્તાત્માને જે આનંદ અનુભવાય છે તેનું સ્વરૂપ યથાર્થ ભાવે કહેવા માટે જગતનો શાબ્દિક વ્યવહાર અસમર્થ છે. મુક્તાત્માનું સુખ દર્શાવવા માટે એક પણ શબ્દ છે જ નહીં. તર્ક ત્યાં સુધી પહોંચી શકતો નથી, કલ્પના પણ ત્યાં સુધી જઈ શકતી નથી. મોક્ષસુખ શબ્દથી પર જ છે, માટે તે અવાચ્ય છે.

મોક્ષમાં અનિર્વયનીય આનંદ છે. સિદ્ધ ભગવાનનું સુખ અનુભવગોચર તેમજ વચન-અગોચર છે. આ જગતમાં કેટલીક વસ્તુઓ એવી છે કે જેને જીવ જાણતો હોવા છતાં પણ તે તેને કહી શકતો નથી, જેમ કે ઘીનો સ્વાદ. જો કે આ ભૌતિક વસ્તુઓ સંપૂર્ણ શાશ્વત અને અનંત ભેદવાળી નથી, તોપણ તે કહી શકાતી નથી; તો પછી સંપૂર્ણ શાશ્વત અને અનંત ભેદવાળા સિદ્ધના સુખને કઈ રીતે કહી શકાય?

મોક્ષસુખ જાણી શકાય છે, પણ કહી શકાતું નથી. તેને ભોગવવાવાળા અનુભવે તો છે, પણ કહી શકતા નથી. પાંત્રીસ અતિશયસંપન્ન વાણી ધરાવનાર ખુદ તીર્થંકર ભગવંત પણ એને વર્ણવી શકતા નથી. મોક્ષસુખ ભગવાનને પ્રત્યક્ષ અનુભવાય છે, છતાં પણ તેને કહેવા માટે તીર્થંકર ભગવાન વચનથી સમર્થ નથી, તે છતાં જગતના જીવોને તેના પ્રત્યે રુચિ ઊપજે તે માટે દિશાસૂચનરૂપે કાંઈક કહે છે. મોક્ષમાં ભોગવાતા સુખને ઉપમા આપવા યોગ્ય કોઈ પદાર્થ આ જગતમાં છે જ નહીં, તેમ છતાં વાણી દ્વારા તેના પ્રત્યે કાંઈક સંકેત કરવામાં આવે છે.

અહીં કોઈ શંકા કરે કે મુક્તને અનંત અવર્શનીય સુખ છે તે વાત બરાબર નથી. તેનું કારણ એ છે કે પુષ્યથી સુખ અને પાપથી દુઃખ થાય છે. જે સુખ-દુઃખ છે તે પુષ્ય-પાપકૃત છે. કારણના નાશથી કાર્યનો પણ નાશ થાય છે. જેમ તેલનો નાશ થવાથી દીવો નાશ પામે છે, તેમ સર્વ કર્મથી રહિત એવા સિદ્ધ જીવને કારણરૂપ પુષ્ય-પાપનો નાશ થયો હોવાથી, તેના નિમિત્તે ઉત્પન્ન થતાં સુખ-દુઃખ નાશ પામે છે. માટે મુક્તાત્મા સુખ-દુઃખ બન્નેથી રહિત સાબિત થાય છે. મુક્તાત્મામાં તો સર્વ કર્મનો નાશ થયો હોવાથી પુષ્ય કે પાપ બન્નેમાંથી કશું જ નથી, તેથી મુક્તાત્મામાં આકાશની જેમ સુખ કે દુઃખ કશું જ ન હોવું જોઈએ.

આ શંકાનું સમાધાન એમ છે કે પુષ્ટયના ફળને સુખ કહેવામાં આવે છે એ જ સૌથી મોટો ભ્રમ છે. વસ્તુતઃ પુષ્ટ્યનું ફળ સુખ નથી. પુષ્ટયનું ફળ પણ દુઃખ જ છે, કારણ કે તે કર્મના ઉદયથી પ્રાપ્ત થાય છે, અર્થાત્ તે કર્મજન્ય છે. પુષ્ટયનું ફળ કર્મજન્ય હોવાથી દુઃખરૂપ જ છે. જે જે કર્મજન્ય હોય તે તે પાપના ફળ જેવું જ હોય. તેમાં સુખ હોઈ જ ન શકે, તે માત્ર દુઃખરૂપ જ હોય.

આની સામે એમ દલીલ કરવામાં આવે કે તો પછી પાપના ફળની બાબતમાં પણ વિરોધી અનુમાન આપી શકાય કે પાપનું ફળ પણ વસ્તુતઃ સુખરૂપ જ છે, કારણ કે તે કર્મના ઉદયથી થાય છે. જે કર્મના ઉદયથી થાય છે તે પુણ્યના ફળની જેમ સુખરૂપ જ હોય છે. પાપનું ફળ પણ કર્મોદયજન્ય છે, તેથી તે પણ સુખરૂપ હોવું જોઈએ. વળી, પુણ્યના ફળનું સંવેદન જીવને અનુકૂળ ભાસે છે, તેથી તે સુખરૂપ છે, છતાં તેને દુઃખરૂપ કહેવું એ વાત તો પ્રત્યક્ષવિરુદ્ધ પણ છે. ધન, પદ આદિની પ્રાપ્તિ વગેરે સ્વસંવેદ સુખને દુઃખ કહેવું તે તો પ્રત્યક્ષવિરુદ્ધ છે. જે સ્વસંવેદન-પ્રત્યક્ષથી સુખરૂપે અનુભવમાં આવે છે તેને દુઃખરૂપ કહેવું એ પ્રત્યક્ષથી વિરુદ્ધ હોવાથી અયુક્ત છે.

આ દલીલનો પ્રત્યુત્તર આ પ્રમાણે છે - સંસારી જીવ જેને સુખનું પ્રત્યક્ષ કહે છે તે અભ્યાંત નથી, યથાર્થ પ્રત્યક્ષ નથી; પણ ભાંત છે, અયથાર્થ પ્રત્યક્ષ છે. તેથી સંસારી જીવે માની લીધેલા પ્રત્યક્ષ સુખને દુઃખરૂપ કહેવામાં પ્રત્યક્ષ વિરોધ નથી. વળી, સંસારી જીવ જેને પ્રત્યક્ષ સુખ કહે છે તે હકીકતમાં તો સુખ નથી પણ દુઃખ જ છે. ખરી વાત એ છે કે સંસારમાં રચ્યાપચ્યા રહેનાર જીવને કશે પણ સાચું સુખ મળી શકતું નથી. જેને તે સુખ કહે છે તે તો દુઃખનો પ્રતિકાર છે.

મોહવશ જીવને વિષયભોગની ઉત્સુકતા જાગે છે, તેથી જ્યાં સુધી વિષયભોગ નથી થતો ત્યાં સુધી મનમાં અરતિ રહ્યા કરે છે. જ્યારે વિષય ભોગવાય છે ત્યારે વિષયભોગની ઉત્સુકતાના કારણે જાગેલી અરતિનો થોડા સમય માટે અભાવ થાય છે. આમ, શબ્દાદિ સાધનો સુખ નથી આપતાં, કિંતુ જાગેલી અરતિનો માત્ર પ્રતિકાર કરે છે. તેથી જીવોને અરતિરૂપ દુઃખનો અભાવ થાય છે. આ દુઃખના અભાવમાં સુખનો ઉપચાર કરવામાં આવે છે.

દા.ત. ખુજલીવાળા મનુષ્યને ચળ આવે છે ત્યારે તેને શરીરને ખણવાની ઇચ્છા થાય છે. જો એ પોતાના શરીરને ખણે નહીં તો તેના મનમાં અરતિ - ઉદ્વેગ ઉત્પન્ન થાય છે. આથી શરીરને ખણીને તે અરતિનો પ્રતિકાર કરે છે, છતાં તે કહે છે કે 'શરીરને ખણવાથી મને સુખનો અનુભવ થાય છે.' પરંતુ એક નીરોગી માણસ તો શરીરને ખંજવાળતો નથી, જ્યારે ખુજલીવાળો માણસ પોતાના શરીરને ખંજવાળીને દુઃખ દૂર કરવા પ્રયત્ન કરે છે, તો એ બેમાં સુખી કોશ? જો ખંજવાળવાથી વાસ્તવિક સુખ ઉત્પન્ન થતું હોય તો જે નથી ખંજવાળતો તે દુઃખી હોવો જોઈએ, પણ વાસ્તવમાં તેમ નથી. નીરોગી માણસ સુખી છે, જ્યારે ખુજલીવાળો દુઃખી. ખુજલીવાળાને ખંજવાળવાથી ઉત્પન્ન થતું સુખ વાસ્તવિક સુખ નથી, કિંતુ અરિતનો પ્રતિકાર હોવાથી, તેમજ દુઃખના અભાવમાં સુખનો ઉપચાર કરવામાં આવતો હોવાથી તે ઔપચારિક સુખ છે. વળી, તે માણસને શરીર ખંજવાળતાં જે અનુભવ થાય છે તે વસ્તુતઃ સુખ નથી, પણ સુખાભાસ છે. ખંજવાળવાથી તો ખંજવાળ વધે જ છે એ સૌનો અનુભવ છે, એટલે જેના પરિશામમાં દુઃખ હોય તે સુખ નહીં પણ દુઃખ જ છે.

તે જ પ્રમાણે એક અશક્ત માણસ પુષ્ટ થવા વ્યવનપ્રાશ, કેશરિયા દૂધ આદિ વાપરીને સુખ મેળવે છે, જ્યારે એક માણસ અત્યંત નીરોગી હોવાથી કુદરતી રીતે જ હષ્ટપુષ્ટ છે, તેથી ચાલુ ખોરાક વાપરે છે. આ બેમાં સુખી કોણ? અહીં અશક્ત માણસને નવું સુખ મળે છે કે દુઃખ દૂર થાય છે? વાસ્તવમાં તેને નવું સુખ મળતું નથી, પણ નબળાઈનું ઉપાધિજન્ય દુઃખ દૂર થાય છે. એ જ પ્રમાણે વિષયસુખનાં શબ્દાદિ સાધનો વડે વિષયભોગની ઉત્સુકતાથી ઉત્પન્ન થયેલું અરતિરૂપ દુઃખ દૂર થાય છે, તેથી તેમાં સુખનો ઉપચાર કરવામાં આવે છે. આથી શબ્દાદિથી ઉત્પન્ન થતું સુખ એ ઔપચારિક સુખ છે, વાસ્તવમાં તો એ દુઃખરૂપ જ છે.

જેમ વિષમિશ્રિત દૂધપાક મીઠાશનો અને ક્ષુધાશમનનો ક્ષણિક આનંદ આપતો હોવા છતાં મૃત્યુરૂપી મોટા દુઃખનું મૂળ હોવાથી સુખરૂપ નથી, તેમ વિષયસુખ વ્યાધિથી ઉત્પન્ન થયેલાં દુઃખના પ્રતિકારરૂપ છે માટે સુખરૂપ નથી. ભૂખનું દુઃખ ઊભું થયું હોય તો જ ભોજન મીઠું લાગે છે, તૃષાથી હોઠ સુકાતા હોય ત્યારે જ પાણી પીવું ગમે છે, દૃદય કામાગ્નિથી સંતપ્ત થયું હોય ત્યારે જ મૈથુનસેવનની ઇચ્છા જાગે છે; આ બધું જણાવે છે કે ખાવા-પીવા આદિનાં સુખ તે વ્યાધિના પ્રતિકારરૂપે છે અને વ્યાધિના પ્રતિકારરૂપે ઔષધને સુખ માનવું એ તો ભ્રમ જ છે.

વિષયજન્ય સુખ એ દુઃખ જ છે, કારણ કે તે દુઃખના પ્રતિકારરૂપ છે. જે જે દુઃખના પ્રતિકારરૂપ હોય છે, તે તે કુષ્ઠાદિ રોગના પ્રતિકારરૂપ એવી ક્વાથપાનાદિ ચિકિત્સાની જેમ દુઃખરૂપ જ હોય છે. માટે પુષ્યના ફળને તત્ત્વતઃ દુઃખ જ માનવું જોઈએ. પુષ્યનું ફળ દુઃખરૂપ જ છે. પુષ્યકર્મના ઉદયના કારણે મળતાં વૈષયિક - ભૌતિક સુખો વસ્તુતઃ તો દુઃખ જ છે. પુષ્યથી પ્રાપ્ત થતું સર્વ પ્રકારનું સુખ કર્મોદય- ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાથધિંગમ સૂત્ર'ની આચાર્યશ્રી પૂજ્યપાદ- સ્વામીકૃત ટીકા, 'સર્વાથસિદ્ધિ', અધ્યાય ૭, સૂત્ર ૧૦ની ટીકા

^{&#}x27;न तत्सुखम्; वेदनाप्रतीकारत्वात्कच्छूकण्डूयनकत ।'

જનિત હોવાથી પરમાર્થથી દુઃખ જ છે. તે આભાસી સુખ દુઃખના પ્રતિકારરૂપ હોવા છતાં મૂઢ જીવો તેને સુખરૂપ માને છે.^૧

વિષયસુખ દુ:ખના પ્રતિકારરૂપ હોવાથી દુ:ખરૂપ હોવા છતાં પણ ઉપચારથી સુખરૂપ કહેવાય છે. હકીકતમાં તો તે સુખ નથી, સુખાભાસ છે, માત્ર ઉપચારથી તેને સુખ કહેવાય છે. સુખ ન હોવા છતાં પણ ઉપચારથી તેને સુખ કહેવાય છે અને સુખનો ઉપચાર પણ તો જ ઘટી શકે, જો ક્યાંક સાચા સુખનું અસ્તિત્વ હોય. એટલે મુક્ત જીવના સુખને પારમાર્થિક - સાચું સુખ માનવું જોઈએ અને વિષયજન્ય સુખને ઔપચારિક સુખ માનવું જોઈએ. ઉપચારરહિત સત્ય સુખ એકમાત્ર મોક્ષમાં જ છે. મોક્ષમાં મુક્તાત્માનું સુખ સર્વ દુ:ખના ક્ષયથી ઉત્પન્ન થયેલું સુખ છે. મુક્તાત્માના સુખની ઉત્પત્તિ સર્વ દુ:ખના ક્ષયથી ઉત્પન્ન થયેલું સુખ છે. મુક્તાત્માના સુખની ઉત્પત્તિ સર્વ દુ:ખના ક્ષયના કારણે થતી હોવાથી તે સુખ સ્વાભાવિક છે, અર્થાત્ એ સુખની ઉત્પત્તિ બાહ્ય વસ્તુના સંસર્ગથી નિરપેક્ષ છે, તેથી માત્ર વ્યાધિના પ્રતિકારરૂપે ઉત્પન્ન થનાર સંસારનાં સુખની જેમ મુક્તાત્માનું સુખ નિષ્પ્રતિકારરૂપે ઉત્પન્ન થાય છે, માટે તે મુખ્ય - સાચું સુખ છે અને સાંસારિક સુખ જે પ્રતિકારરૂપ છે, તે ઔપચારિક સુખ છે; અર્થાત્ વસ્તુતઃ તે દુ:ખ જ છે.

વૈષયિક સુખ ક્ષણિક છે. પુદ્ગલપદાર્થના આધારે મળતું સુખ નાશવંત છે, કૃત્રિમ છે, કર્મ બંધાવનાર છે. સુખસામગ્રી, ઐશ્વર્ય, ભોગવિલાસ પુષ્યજન્ય હોવાથી તે સર્વ આત્માને તો બંધનરૂપ જ છે. સાંસારિક સુખ, પૌદ્ગલિક સુખ પુષ્યજન્ય હોવા છતાં પણ દુઃખદાયક છે, કારણ કે તે દુઃખ-દુર્ગતિના કારણરૂપ છે. સાંસારિક સુખ પણ દુઃખ જ છે એ દર્શાવતાં પંડિત રાજમલજી 'પંચાધ્યાયી'માં લખે છે કે લોકમાં જેની દુઃખના નામથી પ્રસિદ્ધિ છે, તે તો દુઃખ છે જ. એ વાત તો નક્કી થઈ જ ગયેલી છે. તે બાબતમાં વિશેષ તો કહેવાનું જ શું હોય? પરંતુ લોકમાં જે સુખના નામથી પ્રસિદ્ધ છે, તે પણ વાસ્તવમાં દુઃખ જ છે. તે દુઃખ પણ કોઈ કોઈ વાર થનારું નહીં પણ નિરંતર છે. તે ઇન્દ્રિય સંબંધી વિષયોમાં આ જીવને તીવ લાલસારૂપી રોગ લાગેલો છે, તેથી જ તેને તે દુઃખ સદા ટકી રહે છે. ર

१- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ६, શ્લોક ६૩ 'सर्वपुण्यफलं दुःखं कर्मोदयकृतत्वतः । तत्र दुःखप्रतीकारे विमूहानां सुखत्वधीः ।।'

२- शुओ : पंडित श्री राष्ठभलक्षकृत, 'पंचाध्यायी', उत्तरार्ध, श्लोक रपउ,२४४ 'यहुखं लौकिकी रूढिस्तन्न का कथा । यत्सुखं लौकिकी रूढिनिणीतेस्तत्सुखं दु:खमर्थतः ।। कादाचित्कं न तद्दःखं प्रत्युताच्छित्रधारया । सन्निकर्षेष् तेषुच्चैस्तष्णातङ्कस्य दर्शनातु ।।'

ઇન્દ્રિયવિષયોના સેવનમાં આતુરતા તથા આકુળતા રહેલી છે. પાંચ ઇન્દ્રિયના વિષયો સુખનાં કારણ નથી, પણ તે આકુળતા ઉત્પન્ન કરનાર હોવાથી દુઃખનાં કારણ છે. પંચેન્દ્રિયના વિષયોના સેવનથી સુખ નથી મળતું, પણ ત્યાં આકુળતાના અભાવરૂપ સુખ છે; તેથી તે દુઃખ છે. વાસ્તવમાં નિરાકુળપણું જ સુખનું મૂળ છે. સુખનું કારણ અનાકુળતા છે. અનાકુળતામાં જે સુખ છે, તે એકમાત્ર આત્મામાંથી જ ઉત્પન્ન થયેલું હોય છે.

સુખ પૌદ્દગલિક પદાર્થોમાં નથી. સુખનો આધાર તો એકમાત્ર જ્ઞાનમય નિજ આત્મા છે. સુખ એ આત્માનો સ્વભાવ છે. આત્માનું સુખ વાસ્તિવિક સુખ છે. સાંસારિક સુખો, વૈષ્યિક સુખો, પૌદ્દગલિક સુખો એ સાચાં સુખ નથી. નિર્મળ આત્મજ્યોતિમાંથી પ્રકાશતો જે સ્વાભાવિક આનંદ છે, તે જ ખરેખર પરમાર્થ સુખ છે. આત્મા સ્વયંમાં એકાગ્ર થઈ જે સુખ વેદે છે, અનુભવે છે તે જ વાસ્તિવિક સુખ છે, સાચું સુખ છે. જેમાં ઇન્દ્રિયવૃત્તિ નથી એવું ધ્યાનસમાધિજન્ય સુખ જ ઉપશમસુખ છે અને તે જ માત્ર નિરુપયરિત સુખ છે.

આત્મિક સુખ ક્લેશ, કષાય, કર્મવિપાકરહિત છે. તે વિનાશી નથી પણ અવિનાશી છે. તે પ્રશમ રસનું સુખ નથી પરાધીન કે નથી વિનાશી. વિષયસુખની સામગ્રીઓ ચોરાઈ શકે છે, પરંતુ આત્માનો આનંદ કદી પણ લૂંટાઈ શકતો નથી. તે આનંદ સિદ્ધ ભગવંતમાં પરિપૂર્ણ સ્વરૂપે વિદ્યમાન છે. સાચું, શાશ્વત અને પરિપૂર્ણ સુખ સિદ્ધ પરમેષ્ઠીને હોય છે. આત્મિક સુખ પરિપૂર્ણપણે સિદ્ધ પરમાત્માને હોય છે, જ્યારે જ્ઞાનીઓને તેનો થોડો અંશ ઉપલબ્ધ થયો હોય છે.

સ્વરૂપમાં સ્થિત જીવોને સાચા સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે. જેઓ સમસ્ત વિકલ્પોથી રહિત થઈને પરમ સમાધિને પ્રાપ્ત કરે છે, તેઓ જ સાચા સુખનું વેદન કરે છે. જેમણે અહંકાર, કામ, મોહ આદિને જીતી લીધાં છે; જેમને કોઈ પણ આશા કે ઇચ્છા રહી નથી; જેઓ મન, વચન, કાયાથી રહિત છે; તેવા જીવોને સંપૂર્ણપણે સાચા સુખની અનુભૂતિ હોય છે. આવરણરૂપ કર્મોના સર્વથા નાશથી આત્મા પરિપૂર્ણ સુખ અનુભવે છે. જ્યારે સર્વ કર્મનો નાશ થાય છે ત્યારે સકલ, પરિપૂર્ણ, નિરુપચરિત અને નિરુપમ એવું સ્વાભાવિક અનંત સુખ સિદ્ધમાં પ્રગટ થાય છે.

અહીં કોઈ દલીલ કરે કે સંસારનાં સુખ પુણ્યરૂપ કારણથી જન્ય છે, તેથી તે સ્વાભાવિક નથી. મોક્ષમાં તો પુંદ્રયકર્મ છે જ નહીં, તો કારણનો અભાવ હોવાથી કાર્યસુખનો પણ સિદ્ધ ભગવંતમાં અભાવ જ માનવો જોઈએ. આનો જવાબ આ પ્રમાણે છે - સુખ સ્વાભાવિક છે, છતાં જો એવો આગ્રહ રાખવામાં આવે કે તે કારણજન્ય જ છે અને સિદ્ધમાં કારણનો અભાવ હોવાથી સુખનો પણ અભાવ છે, તો એમાં

દલીલકર્તા ભૂલ કરે છે. સકલ કર્મનો ક્ષય એ સિદ્ધ ભગવંતના સુખનું કારણ છે, એટલે કારણનો અભાવ છે એમ તો કહી શકાય જ નહીં. જીવમાં સકલ કર્મનો ક્ષય થવાથી તે જેમ સિદ્ધત્વ પરિણામને પામે છે, તે જ પ્રમાણે સંસારમાં અનુપલબ્ધ એવું અને વિષયજન્ય સુખથી વિલક્ષણ એવું નિરુપમ સુખ પણ તેઓ સકલ કર્મના ક્ષયના કારણે પામે છે. આ પ્રમાણે પુષ્યકર્મ ન હોવા છતાં મુક્ત જીવ સુખી છે.

અત્રે કોઈ એમ દલીલ કરે કે બીજી રીતે પણ મુક્તાત્મામાં સુખ-દુ:ખનો અભાવ સિદ્ધ થાય છે. તે આ પ્રમાણે - દેહ જ સુખ કે દુ:ખની ઉપલબ્ધિનો આધાર છે અને મુક્તને તો દેહ કે ઇન્દ્રિયો કશું જ હોતું નથી, તેથી તેમાં પણ આકાશની જેમ સુખ કે દુ:ખ ન હોવાં જોઈએ. દેહ વિના સુખની ઉપલબ્ધિ થતી નથી, દેહ એ જ સુખનો આધાર છે અને સિદ્ધને દેહ તો છે નહીં, તેથી સુખનો અનુભવ તેને થઈ શકે નહીં. સિદ્ધને શરીર-ઇન્દ્રિયો નહીં હોવાથી સુખ પણ નથી. સુખનો અનુભવ કરવા માટે જે શરીર, ઇન્દ્રિયો આદિ સાધન હતાં, તે હવે મોક્ષમાં - અશરીરી અવસ્થામાં રહ્યાં નથી; તો પછી સિદ્ધને અનંત સુખ કઈ રીતે હોઈ શકે? શરીર, ઇન્દ્રિયો વિના મુક્તાત્માને સુખ કેવી રીતે સંભવે? અને તે પણ અનંત સુખ તો કેવી રીતે સંભવી જ શકે?

આ શંકાનું સમાધાન આ પ્રમાણે છે. ઉપર્યુક્ત ચર્ચા ઉપરથી એ સિદ્ધ થઈ ગયું છે કે લોકરૂઢિથી જે પુણ્યના ફળને શાતા - સુખ સમજવામાં આવે છે તે વસ્તુતઃ દુઃખ જ છે અને પાપનું ફળ તો અશાતા - દુઃખ છે જ; એટલે શરીર-ઇન્દ્રિયોથી જેની ઉપલબ્ધિ થાય છે તે તો કેવળ દુઃખ જ છે. આ દુઃખ સંસારનો અભાવ થયા પછી હોતું નથી, એટલે ખરું સુખ તો એકમાત્ર સિદ્ધ ભગવંતને જ હોય છે. આના ઉપરથી એમ ફલિત થાય છે કે શરીર-ઇન્દ્રિય વગેરે સાધનોથી જેની ઉપલબ્ધિ થાય છે તે માત્ર દુઃખ જ છે.

જે લોકો સંસારાભિનંદી છે, મોહમૂઢ છે, તેઓ પરમાર્થ સમજી શકતા નથી અને તેથી વિષયજન્ય સુખ, જે તેમને શરીર-ઇન્દ્રિય વડે ઉપલબ્ધ થાય છે, તેને જ તેઓ સુખ માને છે. પરંતુ સાચું સુખ તો આત્મામાં રહ્યું છે. આનંદ અંતરમાં છે અને તેનો અનુભવ કરવા માટે, સાંસારિક સુખની જેમ શરીર આદિની અપેક્ષા હોતી જ નથી. ઇચ્છાના અભાવથી સત્સુખ પ્રાપ્ત થાય છે અને તેના માટે શરીરાદિ કોઈ બાહ્ય સામગ્રીની અપેક્ષા રહેતી નથી. ઇન્દ્રિયોનાં સહાય વિના જ આ સુખ મળી શકે છે. એક ક્ષણ માટે પણ જીવ જો રાગ-દ્રેષરહિત થઈ આત્મામાં લીન થાય તો આ વાત પ્રત્યક્ષ અનુભવથી સિદ્ધ થાય છે.

મુક્તાત્માને પોતાના સ્વરૂપનું અકૃત્રિમ અને સ્વાભાવિક સુખ હોય છે. તેમને ઇન્દ્રિયથી ભિન્ન અલૌકિક સુખ વિદ્યમાન હોય છે. તેમનું સુખ ઇન્દ્રિયજન્ય નથી પણ અતીન્દ્રિય હોય છે. તેમને ઇન્દ્રિયવિલાસ નથી, છતાં નિરુપમ સુખ ઉપલબ્ધ છે. કોઈ પણ ભોગ વિના તેઓ પરમ સુખી છે. જ્યાં ખાવા-પીવાનું નથી, હરવા-ફરવાનું નથી, પહેરવા-ઓઢવાનું નથી, રમત-ગમત નથી, વેપાર-ધંધો નથી, વિષય-કષાય વગેરે કાંઈ જ નથી; તેવી સ્થિતિમાં પણ સિદ્ધ પરમેષ્ઠી પરમ સુખી છે. મોક્ષમાં તેમણે શરીર ધારણ કરીને ખાઈ-પીને, હરી-ફરીને સુખ ભોગવવાનું હોતું નથી. તેઓ તો શરીર વિના જ પોતાના આત્માનું સ્વચ્છ, અવિનાશી અને અપરિમિત સુખ ભોગવે છે. નિજના અનંત આનંદમાં અનંત કાળ માટે તરબોળ રહે છે.

આ પ્રમાણે કોઈ પણ કર્મનો ઉદય ન હોય તોપણ અને શરીર, ઇન્દ્રિય આદિ ન હોવા છતાં પણ મોક્ષમાં જીવને સર્વશ્રેષ્ઠ સુખ પ્રાપ્ત થાય છે. સુખ તો આત્માનો સ્વાભાવિક ગુણ છે, પરંતુ મોહાદિ કર્મોના ઉદયકાળમાં તેનું સ્વાભાવિક પરિણમન ન થતાં દુઃખરૂપ વૈભાવિક પરિણમન થાય છે. મુક્ત જીવોને આ મોહાદિ કર્મોનો સર્વથા અભાવ હોય છે, માટે તેમના સુખ ગુણનું સ્વાભાવિક પરિણમન થાય છે અને તેઓ અનંત સુખી હોય છે.

સિદ્ધનું સુખ પરાધીન નથી, પણ સ્વાધીન છે. શરીર, ઇન્દ્રિયો અને મન વડે ભોગવાતાં સુખો પરાધીન છે, પૌદ્દગલિક પદાર્થો ઉપર આધારિત છે. સંપત્તિ આદિના સંયોગથી જે સુખ થાય છે તે પરાધીન છે, તેથી જ્યાં સુધી તેને અનુરૂપ એવો પુષ્યનો ઉદય રહે છે, ત્યાં સુધી તે સુખ રહી શકે છે. પુષ્યોદય પૂરો થતાં સુખ પણ નષ્ટ જ થઈ જાય છે. વિષયસુખ પરાધીન અને અસ્થિર હોવાથી દુઃખરૂપ છે. પરંતુ સિદ્ધને જે સુખ છે તે સ્વાધીન છે, અવિનાશી છે, શાશ્વત છે. સિદ્ધ પરમાત્મામાં સ્વાધીન સુખ સંપૂર્ણપણે પ્રગટ છે, તેથી તેઓ મહાસુખી છે.

પરપદાર્થની અપેક્ષા દુઃખરૂપ છે. આત્માથી અન્ય કોઈ પણ વસ્તુની અપેક્ષા જ દુઃખરૂપ છે. મોક્ષ પામેલા જીવને કોઈ પરપદાર્થની અપેક્ષા રહેતી નથી. મુક્તાત્માને સર્વ પરપદાર્થ સંબંધી અભિલાષા અત્યંત નિવૃત્ત થઈ હોય છે. સિદ્ધ જીવને અન્ય પદાર્થ પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છાનો પ્રપંચ દૂર થયો હોય છે અને તેથી નિરભિલાષપણું પ્રાપ્ત થયું હોય છે, આત્માથી અન્ય પદાર્થમાં નિરપેક્ષપણું પ્રાપ્ત થયું હોય છે; તેથી જ તેમને સર્વોત્કૃષ્ટ સુખ હોય છે. આત્માથી અન્ય પૌદ્દગલિક વસ્તુની અપેક્ષાથી સર્વથા રહિત થવાથી તેઓ પરમાનંદમાં હોય છે. ઉત્સુકપણાની અત્યંત નિવૃત્તિ થવાથી સિદ્ધ જીવને નિરુપમ સુખની સિદ્ધિ થઈ હોય છે. દુઃખ તો ત્યારે જ હોય કે જ્યારે કંઈક ઇચ્છા હોય. સિદ્ધ ભગવાનને મિથ્યાત્વનો અભાવ હોવાથી અતત્ત્વની શ્રદ્ધાનો અભાવ છે. અતત્ત્વની શ્રદ્ધાનો અભાવ હોવાથી ઇચ્છાનો અભાવ છે. તેમને ઇચ્છા તો બિલકુલ છે જ નહીં. ઇચ્છા અને ઇચ્છાનાં કારણોનો સર્વથા અભાવ થવાથી તેઓ સર્વ દુઃખથી

રહિત નિરાકુળ અનંત સુખ અનુભવે છે.

સિદ્ધ ભગવાનને કષાયોનો સંપૂર્ણ અભાવ છે. તેમને ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, હાસ્ય, રતિ, અરતિ, ભય, શોક, જુગુપ્સા, પુરુષવેદ, સ્ત્રીવેદ, નપુંસકવેદ આદિ વિભાવભાવમાંથી કાંઈ જ હોતું નથી. ભગવાનને કંઈ અનિષ્ટ લાગતું જ નથી: તો ભગવાન કોના ઉપર ક્રોધ કરે? સિદ્ધ ભગવાનથી ઉત્કૃષ્ટ કોઈ છે નહીં. ઇન્દ્રો પણ તેમને નમે છે અને ઇષ્ટ ફળ પામે છે. ભગવાનને બીજાને નીચા બતાવી પોતાને ઊંચા બતાવવાનું કોઈ કારણ જ નથી અને ભગવાનને સર્વ જીવો દ્રવ્યસ્વભાવે પોતાની સમાન જ જણાય છે; તો ભગવાન શા માટે અભિમાન કરે? ભગવાનને અન્ય કોઈ ઇષ્ટ નથી કે અન્યનું કોઈ પ્રયોજન નથી; તો ભગવાન શા માટે માયા કરે? ભગવાનને સર્વ પદાર્થો પ્રત્યક્ષ ભાસે છે, સર્વ પ્રયોજન સિદ્ધ થયાં છે, કરવા યોગ્ય કોઈ કાર્ય બાકી નથી રહ્યા; તો સંપૂર્ણ કૃતકૃત્ય ભગવાન કોઈ વસ્તુનો પરિગ્રહ કરી શા માટે લોભ કરે? સંપૂર્ણ જગતના જાણનહાર ભગવાન માટે કોઈ વસ્તુ આશ્ચર્યકારક પણ નથી અને સોહામણી પણ નથી; તો ભગવાન શા માટે હાસ્ય કરે? ભગવાનને કોઈ પરપદાર્થમાં પ્રીતિ નથી; તો ભગવાનને રતિ શા માટે થાય? સિદ્ધ ભગવાનને કોઈ સંયોગ દુઃખદાયક નથી; તો ભગવાન અરતિ શા માટે કરે? કોઈ કોઈનું બૂરું કરી શકે એમ નથી; તો ભગવાનને ભય શાનો? કોઈ ઇપ્ટ વિયોગ કે અનિષ્ટ સંયોગ નથી; તો ભગવાન કોનો શોક કરે? ભગવાનને સર્વ વસ્તુઓ પોતપોતાના સ્વભાવ સહિત પ્રત્યક્ષ ભાસે છે, પરંતુ ભગવાન માટે તે કોઈ સૂગ કે અણગમાનું કારણ નથી; તો ભગવાનને જુગુપ્સા શા માટે હોય? અવેદી તેમજ અશરીરી સિદ્ધ ભગવાનને કામવાસનાનો અભાવ હોવાથી તેમને સ્ત્રી સાથે, પુરુષ સાથે કે સ્ત્રી-પુરુષ બન્ને સાથે રમવાનું કોઈ પ્રયોજન નથી; તો ભગવાનને પુરુષવેદ, સ્ત્રીવેદ કે નપુંસકવેદરૂપ ભાવ ક્યાંથી હોય? આ રીતે બધા કષાય અને કષાયનાં કારણોનો નાશ થયો હોવાથી, સિદ્ધ પરમાત્માને દુઃખનો તથા દુઃખનાં કારણોનો સર્વથા અભાવ હોવાથી તેઓ અનુપમ અખંડિત સર્વોત્કૃષ્ટ આનંદ સહિત અનંત કાળ પર્યંત સિદ્ધાલયમાં બિરાજે છે. ભગવાનને દઃખ અને દઃખનાં કારણોનો નાશ થયો છે, તો પછી આવા ભગવાન સંપૂર્ણ સુખી શા માટે ન હોય?

અન્ય રીતે પણ સિદ્ધાત્મામાં અનંત સુખની સિદ્ધિ થઈ શકે છે. મુક્તના અનંત સુખની સિદ્ધિ માટે અનુમાનપ્રયોગ આ પ્રમાણે છે - ઉપશમસુખનો ક્યાંક અત્યંત પ્રકર્ષ હોવો જોઈએ, કારણ કે તે સુખમાં તરતમતા એટલે ન્યૂનાધિકપશું જોવા મળે છે. જે તરતમતાવાળું હોય છે, તેની ચરમ સીમા - તેનું ઉત્કૃષ્ટપશું પણ હોય જ છે. જેમ કે બોર, લીંબુ, સફરજનમાં પરિમાણ તરતમતાવાળું છે અને ઉત્તરોત્તર પ્રકર્ષ પામતું છે. તો પરિમાણનો ક્યાંક - ગગનમાં અત્યંત પ્રકર્ષ પણ રહેલો જ છે. તેમ ઉપશમસુખનું

પણ તરતમપણું જોવા મળે છે. જુદી જુદી વ્યક્તિઓના ઉપશમસુખમાં તરતમતા - ઓછાવત્તાપણું જોવા મળે છે. આના ઉપરથી જણાય છે કે કોઈ સ્થળ એવું પણ હશે કે જ્યાં ઉપશમસુખનો અત્યંત પ્રકર્ષ - તેની અત્યંત અધિકતા હોય. ઉપશમસુખનો પ્રકર્ષ - સર્વથી અધિકપણું ક્યાંક તો હોવું જ જોઈએ, ઉપશમસુખની પરાકાષ્ઠા ક્યાંક તો હોવી જ જોઈએ. આ સ્થિતિ તે જ મોક્ષ છે. જ્યાં પરાકાષ્ઠાના ઉપશમસુખનું સંવેદન હોય તે જ મોક્ષ છે. જ્યાં સૌથી ઉત્કૃષ્ટ ઉપશમસુખ છે એને જ મોક્ષ કહેવાય છે.

ઉપશમસુખને આવરણ કરનારાં જીવના રાગાદિ દોષો અને કર્મરૂપ આવરણોની હાનિ પણ જુદા જુદા જીવમાં તરતમતાવાળી જોવા મળે છે. જેની હાનિ તરતમભાવે રહી હોય તો ક્યાંક તેની સર્વથા હાનિ પણ હોય જ છે. જેમ કે સૂર્ય ઉપર વાદળાંના આવરણની અથવા નેત્રદોષની. તેમ જ્યાં રાગાદિ દોષો તથા કર્મરૂપ આવરણની સર્વથા હાનિ છે; અને તે હાનિથી અનંત ઉપશમસુખનું પ્રગટવું છે તે જ પરમપદ છે, તે જ મોક્ષ છે. એક દેશે – અંશે વિષયોનો ત્યાગ કરનારાઓને એકદેશ આત્મોત્થ સુખ પ્રાપ્ત થાય છે, તો સંપૂર્ણપણે સંસારના ભોગો ત્યાગ કરનારા તથા વીતરાગ નિર્વિકલ્પ સ્વસંવેદન જ્ઞાનમાં નિરંતર રક્ત રહેનાર મુક્તાત્માને સંપૂર્ણ આત્મોત્થ અતીન્દ્રિય સુખ હોય જ એમ બનવું સ્વાભાવિક છે.

મુક્ત જીવને અકૃત્રિમ, મિથ્યાભિમાનથી રહિત એવું સ્વાભાવિક પ્રકૃષ્ટ સુખ હોય છે, કારણ કે તેઓ સર્વજ્ઞ છે અને તેમને કોઈ પણ જાતની બાધા નથી. મુક્તાત્મા પ્રકૃષ્ટ સુખી છે, કારણ કે તેમને પ્રકૃષ્ટ જ્ઞાન હોવા ઉપરાંત જન્મ, જરા, વ્યાધિ, મરણ, ઇષ્ટ વિયોગ, અરતિ, શોક, ક્ષુધા, પિપાસા, શીત, ઉષ્ણ, કામ, કોધ, મદ, તૃષ્ણા, રાગ, દેષ, ચિંતા, ઔત્સુક્ય આદિ સકલ બાધાનો અભાવ છે. કાષ્ઠાદિ જડ પદાર્થોમાં પણ જન્માદિ બાધા હોતી નથી છતાં તેને સુખી ન કહી શકાય, કારણ કે તેને જ્ઞાન નથી; પણ મુક્તાત્મામાં તો જ્ઞાન અને બાધાવિરહ બન્ને ઉત્કૃષ્ટ છે, તેથી તેમને સુખ પણ ઉત્કૃષ્ટ હોય છે. મુક્તાત્મા પરમ જ્ઞાની છે, કારણ કે તેમને જ્ઞાનનાં આવરણોનો સર્વથા અભાવ છે. આવરણનો સર્વથા અભાવ એટલા માટે છે કે જ્ઞાનાવરણના જે હેતુઓ છે, તેનો તેમનામાં સર્વથા અભાવ છે. મુક્તાત્મામાં જન્મ-જરાદિ બાધાનો પણ અભાવ છે, કારણ કે બાધાના હેતુભૂત એવાં વેદનીય આદિ બધાં કર્મોનો મુક્તાત્મામાં અભાવ છે. પરમ જ્ઞાની એવા મુક્ત જીવને જન્મ-મરણ ઇત્યાદિ બાધા હોતી નથી, માટે સિદ્ધ અવસ્થામાં તેઓ પરમ સુખી હોય છે. બાધાનો અભાવ એ જ જ્ઞાતાનું પરમ સુખ છે.

આમ, મોક્ષમાં પરમ સુખ છે. સિદ્ધ પરમાત્માને પરમ આહ્લાદરૂપ, નિરુપાધિક, અતીન્દ્રિય, અવિનાશી સુખ પ્રગટ્યું હોય છે. સર્વ કર્મબંધનોથી મુક્ત થયેલા તેઓ સર્વોત્તમ, અનંત, અતીન્દ્રિય સુખમાં બિરાજતાં સદા જયવંત વર્તે છે. અનંત સુખ આદિ અનંત ગુણ સહિત સર્વ સિદ્ધાત્માઓ મોક્ષમાં સદાકાળ રહે છે. મોક્ષ અખંડ અને અવિનાશી આનંદ આપે છે, માટે સિદ્ધાત્માઓ તેમાં નિરંતર નિવાસ કરે છે. જો મોક્ષ સર્વોત્તમ આનંદકારી ન હોત તો ત્યાં જીવ સિદ્ધ પરમાત્મા તરીકે સદા રહે નહીં. મોક્ષમાં જો પરમાનંદ ન હોય તો સિદ્ધ પરમાત્માઓ તેને સદાકાળ શા માટે સેવે? ત્યાં અનંત અપાર સુખ છે, તેથી તેઓ મોક્ષને સેવે છે.

અતીન્દ્રિય જ્ઞાન અને અતીન્દ્રિય સુખ એ આત્માનો સ્વભાવ છે. આ સ્વભાવનું પૂર્ણ પ્રગટવું તે જ મોક્ષ છે. કર્મનાં આવરણનો અભાવ થવાથી સ્વાભાવિક જ્ઞાન અને સુખ પૂર્ણપણે પ્રગટ થાય છે. સિદ્ધ ભગવાનનાં જ્ઞાન અને સુખ બન્ને અનંત અને અવિનાશી છે. સિદ્ધ ભગવાનનાં અતીન્દ્રિય જ્ઞાન અને સુખ વિષે આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવ લખે છે –

'જ્યમ આભમાં સ્વયમેવ ભાસ્કર ઉષ્ણ, દેવ, પ્રકાશ છે । સ્વયમેવ લોકે સિદ્ધ પણ ત્યમ જ્ઞાન, સુખ ને દેવ છે ।।'^૧

જેમ સૂર્યને આકાશમાં રહેવા માટે કોઈ થાંભલાના ટેકાની જરૂર પડતી નથી, તેને ઉષ્ણતા માટે અથવા પ્રકાશ માટે કોઈ કોલસા કે તેલની જરૂર પડતી નથી, પોતાના તેવા સ્વભાવથી જ તે નિરાલંબપણે ઉષ્ણતા અને પ્રકાશ સહિત આકાશમાં રહેલો છે; તેમ સુખ અને જ્ઞાન જેનો સ્વભાવ છે એવા આત્માને અતીન્દ્રિય જ્ઞાન અને આનંદરૂપ પરિણમવા માટે કોઈ ઇન્દ્રિયવિષયોની પરાધીનતા નથી. તે બધાની અપેક્ષા વગર સ્વભાવથી જ પોતે સ્વયમેવ દિવ્ય જ્ઞાન-આનંદની શક્તિવાળો છે. સિદ્ધ ભગવંતો કોઈના અવલંબન વગર સ્વયમેવ પૂર્ણ અતીન્દ્રિય જ્ઞાન અને સુખરૂપે પરિણમનારા દિવ્ય સામર્થ્યવાળા આત્મા છે.

અહીં કોઈને શંકા થાય કે સિદ્ધનાં જ્ઞાન અને સુખ ચેતનધર્મ હોવાથી રાગ આદિની જેમ અનિત્ય હોવાં જોઈએ. તેમનાં જ્ઞાન અને સુખને નિત્ય માનવાં અસંગત છે. આ શંકાનું સમાધાન એ છે કે જ્ઞાન અને સુખનો જો સિદ્ધમાં નાશ થતો હોય તો જ તેમનાં જ્ઞાન અને સુખને અનિત્ય માની શકાય. જ્ઞાનની હાનિ જ્ઞાનાવરણીયના ઉદયથી થાય છે અને સુખનો નાશ અશાતા વેદનીયના ઉદયથી જે બાધા થાય છે તેના કારણે થાય છે. પરંતુ સિદ્ધ ભગવંતમાં સહજ જ્ઞાન અને સુખના નાશનાં ઉક્ત બન્ને કારણોનો અભાવ જ છે, તેથી તેમનાં જ્ઞાન અને સુખનો નાશ થતો જ નથી; તો તેને અનિત્ય કેમ કહેવાય? વળી, જે ચેતનધર્મ હોય તે રાગ આદિની જેમ અનિત્ય જ હોવો જોઈએ એવો કોઈ નિયમ નથી. દ્રવ્યત્વ-અમૂર્તત્વ આદિ ચેતનધર્મો છે છતાં તે નિત્ય ૧- આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'પ્રવચનસાર', ગાથા ૬૮નો ગુર્જરાનવાદ

છે, માટે સિદ્ધનાં જ્ઞાન અને સુખ નિત્ય છે.

આના ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે મોક્ષ છે, તે કાયમ રહે છે તથા મોક્ષમાં જીવને અનંત, અવિનાશી, અતીન્દ્રિય જ્ઞાન અને સુખ હોય છે. આ અનંત જ્ઞાન-સુખમય શાશ્વત પદ વિષે અન્ય દર્શનોના મત ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારના છે. સિદ્ધદશા અનંત જ્ઞાન-સુખમય અને શાશ્વત છે. અન્ય દર્શનો આ અભિપ્રાયથી વિરુદ્ધ માન્યતા ધરાવે છે. તેઓ મોક્ષસ્વરૂપનું અન્યથા પ્રરૂપણ કરે છે. તે આ પ્રમાણે —

ન્યાય-વૈશેષિક દર્શન પ્રમાણે મુક્ત અવસ્થામાં જીવાત્મામાં જ્ઞાનાદિ ગુણ નથી હોતા. તેના મત પ્રમાણે બુદ્ધિ, સુખ, દુઃખ, ઇચ્છા, દ્વેષ, પ્રયત્ન, ધર્મ, અધર્મ અને સંસ્કાર - એ આત્માના નવ વિશેષ ગુણો છે, જેનો નાશ થતાં મુક્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે. યદ્યપિ જ્ઞાન આદિ આત્માના ગુણ છે, કિંતુ એ ગુણ આત્માથી ભિન્ન છે અને સમવાય સંબંધથી આત્મામાં રહે છે. જ્યાં સુધી સંસાર છે ત્યાં સુધી જ આ ગુણોનો આત્મામાં સદ્ભાવ છે અને મોક્ષમાં આ ગુણોનો પૂર્ણપણે અભાવ થઈ જાય છે.

ન્યાય-વૈશેષિક દર્શન ગુણ અને ગુણીમાં સર્વથા ભેદનો સ્વીકાર કરે છે. તેના મત પ્રમાણે ગુણીમાં ગુણ સમવાય સંબંધથી રહે છે. તે સમવાય નિત્ય, વ્યાપક અને એક છે. નૈયાયિકો-વૈશેષિકો આત્માને તેના જ્ઞાન-સુખાદિ ગુણોથી ભિન્ન માને છે અને આત્મામાં જ્ઞાનાદિની ઉત્પત્તિ શરીરાશ્રિત માને છે. તેથી જ, તેમના મત પ્રમાણે મુક્તિમાં શરીરનો અભાવ થઈ જતો હોવાથી, મુક્તાત્મામાં જ્ઞાન-સુખાદિ ગુણોનો પણ અભાવ માનવો જ પડે છે.

ન્યાય-વૈશેષિક દર્શનના મત અનુસાર મોક્ષમાં આત્મા મન અને દેહથી અત્યંત વિમુક્ત થઈ જાય છે અને સત્માત્ર રહે છે. તેના મત મુજબ મોક્ષ એ આત્માની અચેતન અવસ્થા છે, કારણ કે ચૈતન્ય એનો એક આગંતુક ધર્મ છે, એનું સ્વરૂપ નહીં. આત્મા પોતાના તાત્ત્વિક સ્વરૂપમાં ચેતન નથી, ચૈતન્ય આત્માનો આગંતુક ધર્મ છે. ચેતના તેનું સ્વરૂપ નથી, એ તેનો આકસ્મિક ગુણ છે. જ્ઞાન એ કંઈ આત્માનો સ્વભાવ નથી, તેથી આત્મા અચેતન અથવા જડસ્વરૂપી છે. નૈયાયિકો-વૈશેષિકોએ આત્માનો જ્ઞાનાદિ ગુણ સાથે સમવાય સંબંધ સ્વીકાર્યા પછી પણ એનું જડત્વરૂપે સ્વતંત્રપણું સ્વીકાર્યું છે. તેઓ માને છે કે આત્મામાં ચેતનાનો સંચાર ત્યારે જ થાય છે કે જ્યારે તેનો મન જોડે, મનનો ઇન્દ્રિયો જોડે અને ઇન્દ્રિયોનો બાહ્ય વસ્તુઓ જોડે સંપર્ક થાય છે. આવો સંપર્ક જો ન થાય તો આત્મામાં ચૈતન્યનો ઉદય જ થાય નહીં. તેથી જ આત્મા જ્યારે શરીરથી મુક્તિ મેળવે છે ત્યારે તેમાં જ્ઞાનનો અભાવ થઈ જાય છે.

નૈયાયિકો-વૈશેષિકોના મત પ્રમાણે મોક્ષ એ દુઃખના આત્યંતિક ઉચ્છેદની અવસ્થા

છે. મોક્ષ અવસ્થામાં ૨૧ પ્રકારનાં દુઃખોનો પૂર્ણતયા વિનાશ થઈ જાય છે, જેના કારણે પુનઃ દુઃખ ઉત્પન્ન થવાની સંભાવના જ રહેતી નથી. દુઃખની આત્યંતિક નિવૃત્તિ સાથે જ સુખની પણ આત્યંતિક નિવૃત્તિ થાય છે. ન્યાય-વૈશેષિક દર્શનમાં મોક્ષની સ્થિતિને સુખરહિત શૂન્ય જેવી કલ્પી છે. દુઃખનો અભાવ હોવાથી સુખનો પણ અભાવ કલ્પ્યો છે. તેમના મત મુજબ સુખ અને દુઃખ, એ બન્નેથી પર હોવું તે મોક્ષ અવસ્થા છે. આત્માને મુક્તિ મળે ત્યારે બુદ્ધિ વગેરે ગુણોનો સર્વથા ઉચ્છેદ થાય છે, એટલે મુક્તિને સુખમય માની શકાય નહીં એમ નૈયાયિકો-વૈશેષિકો કહે છે.

ન્યાય-વૈશેષિક દર્શનના ઉક્ત મત ઉપર વિચાર કરતાં તે અસંગત પ્રતીત થાય છે. તેમનો મત યુક્તિસંગત નથી. તે ચૈતન્યને આત્માનો આકસ્મિક ધર્મ માને છે, પરંતુ ચૈતન્ય એ આત્માનો આનુષંગિક ગુણ હોઈ શકે નહીં, આત્મા ચૈતન્યસ્વરૂપી જ હોઈ શકે, કારણ કે પોતાનો આત્મા જ્ઞાનસ્વરૂપ છે એ તો દરેક જીવ સ્વાનુભવથી જાણી શકે જ છે, એટલે કે સ્વાત્માની જ્ઞાનસ્વરૂપતા સ્વસંવેદનપ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે જ. સર્વનો અનુભવ છે કે જો ઇન્દ્રિયોનો વ્યાપાર બંધ પડી જાય તોપણ આત્મા ઇન્દ્રિયો દ્વારા ઉપલબ્ધ પદાર્થનું સ્મરણ કરી શકે છે અને ક્યારેક ઇન્દ્રિયવ્યાપારો હોવા છતાં પણ અન્યમનસ્કતાના કારણે પદાર્થનું જ્ઞાન થઈ શકતું નથી. આના ઉપરથી આત્મા જ્ઞાનસ્વભાવી છે એમ સિદ્ધ થાય છે.

ન્યાય-વૈશેષિક દર્શનનું કહેવું છે કે બુદ્ધિ આદિ ગુણ આત્માથી ભિન્ન છે. આત્મા નિત્ય છે એટલે તેનો ક્યારે પણ ઉત્પાદ કે નાશ નથી થતો, કિંતુ ગુણ ઉત્પન્ન અને નષ્ટ થાય છે; માટે બન્નેમાં સ્વભાવભેદ છે. પરંતુ આમ માનવામાં આવે તોપણ જ્ઞાનાદિને આત્માથી સર્વથા ભિન્ન માની શકાતાં નથી. જ્ઞાનાદિની ઉત્પત્તિ અને નાશ પર્યાયની અપેક્ષાએ જ થાય છે, સર્વથા નહીં. જ્ઞાન આત્માનો સ્વભાવ છે, એટલે આત્મા કદી પણ જ્ઞાનથી શૂન્ય થઈ શકતો નથી. જે પ્રકારે અગ્નિ ક્યારે પણ ઉષ્ણતાને છોડી શકતો નથી, તે જ પ્રકારે આત્મા પણ જ્ઞાનશૂન્ય થઈ શકતો નથી. જ્ઞાન આદિ ગુણોને આત્માથી સર્વથા ભિન્ન માનવાં પણ યોગ્ય નથી, કારણ કે ગુણ અને ગુણીમાં હંમેશાં તાદાત્મ્ય હોય છે. ગુણ અને ગુણીમાં સર્વથા ભેદ માનવો યોગ્ય નથી, કારણ કે તેમ માનવાથી આત્મા જ્ઞાનાદિ ગુણ રહિત હોવાના કારણે સ્વરૂપથી જડ (અચેતન) સિદ્ધ થાય છે, જે ક્યારે પણ સંભવતું નથી; માટે આત્માને જ્ઞાનાદિ ગુણોથી અભિન્ન માનવો જોઈએ. જો આત્મા જ્ઞાનાદિ ગુણોથી અભિન્ન હોય અને મુક્તાવસ્થામાં જ્ઞાનાદિ ગુણોનો નાશ સ્વીકારવામાં આવે તો આત્માનો પણ નાશ સ્વીકારવો પડે. પરંતુ તે પણ નૈયાયિકો-વૈશેષિકોને માન્ય નથી.

જ્ઞાન અને સુખ આત્માના નિજગુણો છે. ગુણોનો કદી નાશ થતો નથી. આત્મા

જ્ઞાનાદિ ગુણોથી અભિન્ન છે, તેથી જ્ઞાનાદિ ગુણોનો નાશ માનવો તે આત્માનો - ગુણીનો જ નાશ માનવા બરાબર છે. જો ગુણોનો જ નાશ થઈ જાય તો દ્રવ્યનો પણ નાશ થઈ જાય અને દ્રવ્યનો નાશ થવાથી શૂન્યતાનો પ્રસંગ આવે. તેથી એમ માનવું ઘટે છે કે ગુણોના સમૂહરૂપ એવું દ્રવ્ય સદા ટંકોત્કીર્ણવત્ રહે છે. આત્મા મુક્ત થાય છે ત્યારે પણ ગુણોનો નાશ થતો નથી.

ન્યાય-વૈશેષિક દર્શન મુક્ત આત્માને જ્ઞાન, સુખાદિ રહિત જડવત્ માને છે; પરંતુ તેનો આ સિદ્ધાંત અયથાર્થ છે, કારણ કે તેના મત અનુસાર તો મુક્તિનો અર્થ છે - સ્વરૂપનો નાશ થવો. સંસારમાં પ્રાણીઓ સંસારનાં દુઃખોથી છૂટીને સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ કરવા માટે જ મુક્તિને ઇચ્છે છે. જો મુક્તિમાં પોતાના સ્વરૂપને ગુમાવીને પથ્થર સમાન બની જવાનું હોય તો એવી મુક્તિને કોણ ઇચ્છશે? મુક્તાવસ્થામાં જો આત્મા સુખસંવેદનથી રહિત થઈ જતો હોય તો એની અને જડ પથ્થરની વચ્ચે કોઈ તફાવત નહીં રહે. તેથી મોક્ષનો આ ખ્યાલ ઉત્સાહવર્ધક નથી.

ન્યાય-વૈશેષિક દર્શનનો મોક્ષ સંબંધી મત સંતોષપ્રદ નથી. નૈયાયિકો-વૈશેષિકો મોક્ષમાં જ્ઞાનનો જ ઉચ્છેદ કહે છે, તેમાં તેઓ સ્ખલના કરે છે. મોક્ષમાં ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનનો ઉચ્છેદ હોય છે, પણ આત્મસ્વભાવભૂત અતીન્દ્રિય જ્ઞાનનો ઉચ્છેદ અસંભવિત છે, તેથી તેમનો અભિપ્રાય બરાબર નથી. મુક્તિમાં ઇન્દ્રિય વડે તેમજ કર્મના ક્ષયોપશમથી થવાવાળાં જ્ઞાન, સુખ આદિની જ નિવૃત્તિ થાય છે; કાંઈ કર્મોના ક્ષયથી થવાવાળાં અતીન્દ્રિય જ્ઞાન, સુખ આદિની નિવૃત્તિ થતી નથી. ઇન્દ્રિયોથી થતું જ્ઞાન કે વિષયોથી મળતું સુખ મુક્તાત્માને ન હોય એમ માનવા સામે કોઈ જ વિરોધ આવતો નથી. મુક્તિમાં જ્ઞાન આદિ ગુણોનો નાશ થતો નથી, ઊલટું અનંત જ્ઞાન આદિની પ્રાપ્તિનું નામ જ મોક્ષ છે.

જ્ઞાનનો અન્વય-વ્યતિરેક આત્મા સાથે છે, ઇન્દ્રિયો સાથે નથી. માટે ઇન્દ્રિયો હોય તો જ જ્ઞાન થાય અને મુક્તાત્માને ઇન્દ્રિયો નથી માટે તેમને જ્ઞાનનો અભાવ છે એમ માની ન શકાય. ઇન્દ્રિયાદિ કરણોથી ભિન્ન એવો આત્મા જ જ્ઞાન કરે છે. જેમ ઘરની બારીમાંથી દેવદત્ત જુએ છે, તેમ અજ્ઞાની આત્મા ઇન્દ્રિયોરૂપી બારીમાંથી જ્ઞાન કરે છે. પરંતુ જો ઘરનો ધ્વંસ થઈ જાય તો દેવદત્તના જ્ઞાનનો વિસ્તાર વધી જાય છે, તેમ આત્મા ઉપર રહેલાં આવરણોનો નાશ થવાથી ઇન્દ્રિયો વિના જ મુક્ત આત્મા નિર્બાધપણે સમસ્ત વસ્તુઓનું જ્ઞાન કરવા સમર્થ બને છે. જેમ પ્રકાશમાન એવા દીપકને છિદ્રવાળા આવરણથી ઢાંક્યો હોય તો, પોતાનો પ્રકાશ તે છિદ્રો દ્વારા ફેલાવતો હોવાથી તે કિચિત્માત્ર પ્રકાશ ફેલાવી શકે છે; તેમ પ્રકાશસ્વરૂપ આત્મા ઉપર પણ આવરણો ક્ષયોપશમ સ્વરૂપે હોવાથી ઇન્દ્રિયછિદ્રો દ્વારા તે પોતાનો બહુ જ થોડો પ્રકાશ

ફેલાવી શકે છે. પરંતુ જેમ દીષક ઉપરનું તે છિદ્રવાળું આવરણ દૂર કરવામાં આવે તો તે પોતાના પૂર્ણ રૂપમાં પ્રકાશે છે, તેમ આત્મા પણ તેનાં ઉપરનાં સર્વ આવરણો દૂર થવાથી સંપૂર્ણ સ્વરૂપે પ્રકાશે છે. મુક્તાત્મામાં આવરણનો સર્વથા અભાવ હોવાથી તે સર્વજ્ઞ બની જાય છે.

નિષ્કર્ષ એ છે કે જ્ઞાન અને સુખ આત્માના સ્વતઃસિદ્ધ ગુણો છે. ભલે તે આત્મા સંસારમાં હોય કે મુક્તિમાં હોય, ગુણોનું ઉલ્લંઘન કશે પણ થઈ શકતું નથી. સંસારપર્યાયમાં આત્માને સાધારણ ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાન અને સુખ હોય છે અને મુક્ત થતાં જ તે આત્માને નિરાવરણ જ્ઞાન અને સુખ હોય છે. મુક્તિમાં જ્ઞાન અને સુખની પૂર્ણતા છે. જ્ઞાન અને સુખ આત્માના નિત્ય ગુણ છે. મુક્તાત્મા અનંત અવ્યાબાધ જ્ઞાન, સુખ આદિથી યુક્ત હોય છે. જો આમ ન માનવામાં આવે તો મુક્તાત્મા અને જડ પદાર્થમાં કોઈ જ ફરક રહે નહીં.

મીમાંસા દર્શનના આત્મા તથા મોક્ષ અંગેના વિચાર ન્યાય-વૈશેષિકને મળતા આવે છે. તે પણ એમ માને છે કે ચેતના એ આત્માનો સ્વભાવ નહીં પણ આગંતુક ગુણ છે. આત્મા સ્વભાવથી અચેતન છે, પરંતુ મન અને ઇન્દ્રિયોના સંસર્ગમાં આવવાથી તેમાં ચૈતન્ય ઉત્પન્ન થાય છે. સુષુપ્ત અવસ્થામાં આ સંયોગનો અભાવ હોવાથી તે જ્ઞાનશૂન્ય બની જાય છે. એ જ રીતે મોક્ષ અવસ્થામાં પણ આત્મા આ બધા વિશેષ ગુણોથી રહિત થઈ જાય છે.

મુક્તાત્માને જ્ઞાન નથી એમ મીમાંસકોનું કહેવું ન્યાયયુક્ત નથી, કારણ કે જ્ઞાન એ તો આત્માનું સ્વરૂપ છે. જેમ પરમાણુ કદી રૂપાદિથી રહિત હોય નહીં, તેમ આત્મા પણ જ્ઞાનરહિત હોઈ શકે જ નહીં. એટલે 'આત્મા છે' અને 'તે જ્ઞાનરહિત છે' એમ કહેવું તે પરસ્પર વિરુદ્ધ વાત છે. જો સ્વરૂપ ન હોય તો સ્વરૂપવાનની સ્થિતિ જ ન હોય. જીવ જો જ્ઞાનરહિત બની જાય તો તે જડ બની જાય, પરંતુ જીવ અને જડ એ તો પરસ્પર અત્યંત વિલક્ષણ જાતિવાળાં દ્રવ્યો છે અને કોઈ પણ દ્રવ્ય કદી વિલક્ષણ જાતિના પરિણામને પામતું જ નથી; તેથી જીવ કદી જડ બની શકે નહીં, અર્થાત્ કદી પણ જ્ઞાનનો અભાવ જીવમાં થઈ શકે જ નહીં.

મીમાંસકમત પ્રમાણે આત્મા સ્વભાવથી સુખ અને દુઃખથી અતીત છે અને મોક્ષ આત્માની સ્વાભાવિક અવસ્થાની પ્રાપ્તિ છે, જેમાં સુખ અને દુઃખનો અત્યંત વિનાશ થઈ જાય છે. મોક્ષ દુઃખના આત્યંતિક અભાવની અવસ્થા છે, પણ તેમાં આનંદની અનુભૂતિ હોતી નથી. જ્યાં સુધી વાસનાદિ સર્વ આત્મગુણ ઉચ્છેદ થતા નથી, ત્યાં સુધી આત્યંતિક દુઃખનિવૃત્તિ થતી નથી. સુખ-દુઃખનો સંભવ ધર્મ અને અધર્મના નિમિત્તથી થાય છે, ધર્મ-અધર્મનો ઉચ્છેદ થતાં તેના કાર્યરૂપ શરીરનો નાશ થાય છે

અને આત્માને સુખ-દુ:ખ રહેતાં નથી અને તેથી જ તે જીવ મુક્ત કહેવાય છે એમ મીમાંસકો કહે છે. પરંતુ આત્મા પોતે જ સુખસ્વરૂપ છે અને પદાર્થનું જે સ્વરૂપ હોય તેનો અત્યંત ઉચ્છેદ સંભવતો નથી, કેમ કે એ રીતે તો સર્વત્ર અવ્યવસ્થા થઈ જાય. જો મોક્ષમાં સુખનો અભાવ હોય તો તે પ્રાપ્ત કરવા માટે કરવામાં આવેલા સર્વ પ્રયત્ન પણ અર્થ વગરના થઈ જાય.

સાંખ્ય દર્શનના મત અનુસાર ચૈતન્યમાત્ર આત્માનું સ્વરૂપ છે અને તેમાં સ્થિત થવું તે જ આત્માનો મોક્ષ છે. પ્રકૃતિ તથા પુરુષમાં ભેદજ્ઞાન ન હોવાથી બંધ થાય છે અને પ્રકૃતિ તથા પુરુષમાં ભેદજ્ઞાન થઈ જવાથી પુરુષ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપ ચૈતન્યમાત્રને પ્રાપ્ત કરી લે છે, આનું જ નામ મોક્ષ છે. સાંખ્ય દર્શન મોક્ષમાં પુરુષની ચિન્માત્ર-અવસ્થિતિ માને છે. આ અવસ્થામાં પુરુષ સુખ અને દુઃખથી સર્વથા અતીત હોય છે, કારણ કે સુખ અને દુઃખ તો માત્ર બુદ્ધિની વૃત્તિઓ છે.

સાંખ્યમત મુજબ વિશુદ્ધ ચૈતન્ય જ મુક્તાવસ્થામાં શેષ રહે છે. જ્ઞાન-સુખાદિ એ નૈયાયિકમત પ્રમાણે આત્માના ગુણ હોવા છતાં તેની ઉત્પત્તિ શરીરાશ્રિત હતી; તેથી શરીરના અભાવમાં જેમ તેણે તે ગુણોનો અભાવ માન્યો છે, તેમ સાંખ્યમત પ્રમાણે પણ જ્ઞાન, સુખાદિ પ્રાકૃતિક ધર્મો હોવાથી પ્રકૃતિનો વિયોગ થતાં એ ગુણો મુક્તાત્મામાં રહેતા નથી અને પુરુષ માત્ર શુદ્ધ ચૈતન્યરૂપ જ રહે છે; એટલે પુરુષને જ્યારે કૈવલ્ય-લાભ થાય છે ત્યારે તે માત્ર શુદ્ધ ચૈતન્યરૂપ રહે છે એમ સાંખ્યોએ માન્યું છે.

સાંખ્યમત અનુસાર જ્ઞાન અને ચૈતન્યમાં ભેદ છે. જ્ઞાન પુરુષનો ધર્મ કે ગુણ નથી, કિંતુ પ્રકૃતિનું કાર્ય છે, અર્થાત્ જ્ઞાન અચેતન પ્રકૃતિનું કાર્ય હોવાથી તે પ્રકૃતિરૂપ જ છે. પુરુષનું સ્વરૂપ તો ચૈતન્યમાત્ર છે. સાંખ્યનો આ મત ન્યાયયુક્ત નથી, કારણ કે પદાર્થોને તે જ જાણી શકે છે કે જે ચેતન હોય. એક ઘટને બીજો ઘટ જાણી શકતો નથી, કારણ કે ઘટ અચેતન છે; તેથી જ્ઞાન અચેતન પ્રકૃતિનો ધર્મ સિદ્ધ થતો નથી, કિંતુ ચેતન આત્માનો ધર્મ સિદ્ધ થાય છે. જ્ઞાન, દર્શન આદિ આત્માના ગુણોનું સંવેદન પ્રત્યક્ષ થાય છે. તેનાથી પણ એમ સિદ્ધ થાય છે કે જ્ઞાન આદિ અચેતન નથી, પણ ચેતન છે. સાંખ્યોનું કહેવું છે કે યદ્યપિ જ્ઞાન સ્વયં ચેતન નથી, પણ ચેતન આત્માના સંસર્ગથી ચેતન જેવું પ્રતીત થાય છે; જેમ અગ્નિના સંસર્ગથી લોખંડનો ગોળો પણ અગ્નિ જેવો પ્રતીત થવા લાગે છે. પરંતુ જો ચેતનના સંસર્ગથી અચેતન વસ્તુ પણ ચેતન થઈ જતી હોય તો શરીર પણ ચેતન થવું જોઈએ, કારણ કે ચેતન આત્માનો સંસર્ગ શરીરની સાથે પણ છે જ. તેથી જ્ઞાન આદિ અચેતન નથી, પણ આત્માનો સ્વભાવ કે ધર્મ છે.

આત્મા અને ચૈતન્ય ગુણી-ગુણ હોવાથી અભેદ જ છે અને તે ચૈતન્ય જ્ઞાનથી

જરા પણ ભિન્ન હોય એમ કોઈ પણ યુક્તિથી સિદ્ધ થઈ શકતું નથી. યથાર્થપણે વિચારવામાં આવે તો જણાય છે કે ચૈતન્ય તે જ જ્ઞાન છે અને જ્ઞાન તે જ ચૈતન્ય છે; એમ બન્ને અભેદ હોવાથી ઘાતી કર્મનો ક્ષય થતાં તરત જ, જે સમસ્ત દ્રવ્યોને તેનાં સર્વ ગુણ-પર્યાય સહિત સર્વદા અવગાહી રહેલું છે એવું કેવળજ્ઞાન પ્રગટે છે. તે આત્માને જો કે અઘાતી કર્મોનો સંગ રહે છે, તેથી દેહયુક્ત અવસ્થા હોય છે; છતાં પણ ઘાતી કર્મોના ક્ષયથી કેવળજ્ઞાન પ્રગટે છે અને દેહાદિ સંયોગોનો આત્યંતિક વિયોગ થયા પછી સિદ્ધ અવસ્થામાં પણ તે અનંત જ્ઞાનાદિ ટકી રહે છે.

અામ, મોલમાં જ્ઞાન તથા સુખ નથી એમ ન્યાય-વૈશેષિક, મીમાંસા, સાંખ્ય દર્શનો કહે છે; પરંતુ આ પૂર્ણશુદ્ધ કૃતકૃત્ય દશામાં અનંત જ્ઞાન અને અતીન્દ્રિય સુખ અવશ્ય છે. સિદ્ધદશામાં પ્રત્યેક સમયે અનંત સુખનો ભોગવટો છે. સદેહદશામાં પણ જ્ઞાની નિજાનંદની મસ્તી માણતા હોય છે, તો પૂર્ણપવિત્ર શુદ્ધ નિરાવરણ સિદ્ધ અવસ્થા પ્રગટ્યા પછી જીવ જો અલૌકિક આનંદ અનુભવે નહીં તો એ સિદ્ધદશા શું કામની? જો પોતાના જ્ઞાન ગુણથી વિખૂટા પડી જડ બની જવાનું હોય તો એવો કયો ડાહ્યો માણસ તે માટે પુરુષાર્થ કરે? જ્ઞાન અને આનંદશૂન્ય જીવન એ તો ખરેખર દુર્ભાગ્યમય જીવન છે. મુક્ત અત્માનું જીવન જ જ્ઞાનાનંદમય હોય છે. આ તથ્યને શ્રીમદે પ્રસ્તુત ગાથામાં 'નિજ અનંત સુખભોગ' દ્વારા દર્શાવી અત્યંત સરળ અને સુગમપણે મુક્તાવસ્થામાં જ્ઞાન, આનંદાદિનો અભાવ માનનારા ન્યાય આદિ દર્શનોની માન્યતાનું નિરસન કર્યું હોવાનું જણાય છે. તે જ પ્રમાણે શ્રીમદે 'સિદ્ધ મોક્ષ શાશ્વત પદે' દ્વારા આત્માની શાશ્વત મોક્ષસ્થિતિનો નિર્દેશ કરી, અદ્ભુત કૌશલ્યથી મોક્ષાવસ્થામાં જીવનો સર્વથા અભાવ માનનારા બૌદ્ધ દર્શનના મતનું નિરસન કર્યું હોવાનું જણાય છે.

બૌદ્ધ દર્શન અનુસાર નિર્વાણ નિરોધરૂપ અવસ્થા છે. તૃષ્ણાદિ ક્લેશોનો નિરોધ થઈ જવો તે જ નિર્વાણ છે. નિર્વાણ પછી વ્યક્તિત્વનો સર્વથા અભાવ થઈ જાય છે. જે પ્રકારે આગની પ્રજ્વલિત જ્વાળાઓ બુઝાઈ ગયા પછી આગનું અસ્તિત્વ હોતું નથી, તે જ પ્રકારે નિર્વાણ પ્રાપ્ત થયા પછી જીવનું અસ્તિત્વ હોતું નથી. જે પ્રકારે દીપક ત્યાં સુધી જ બળતો રહે છે, જ્યાં સુધી તેનામાં તેલ અને દિવેટની સત્તા છે અને તેનો નાશ થતાં જ લળતો રહે છે, જ્યાં સુધી તેનામાં તેલ અને દિવેટની સત્તા છે અને તેનો નાશ થતાં જીવ ત્યાં સુધી જ રહે છે, જ્યાં સુધી તૃષ્ણા અને ક્લેશો છે અને તેનો નાશ થતાં જીવ શાંત થઈ જાય છે; અને આ જ નિર્વાણ છે. આમ, બૌદ્ધમતમાં નિર્વાણને દીપકના બુઝાવા સમાન બતાવવામાં આવ્યું છે. જેમ દીપક બુઝાઈ જવાથી કંઈ શેષ રહેતું નથી, તે જ પ્રકારે નિર્વાણ પ્રાપ્ત થયા પછી પણ કંઈ અવશિષ્ટ રહેતું નથી.

બૌદ્ધોએ આપેલ દીપનિર્વાણનું દષ્ટાંત ન્યાયયુક્ત નથી, કારણ કે દીપકનો સર્વથા

ઉચ્છેદ થતો નથી. બૌદ્ધોએ માન્યું છે કે દીપનિર્વાણની જેમ મોક્ષમાં જીવનો નાશ થઈ જાય છે, પરંતુ વાસ્તવમાં તો દીપના અગ્નિનો પણ સર્વથા નાશ થતો નથી. દીવો પણ પ્રકાશપરિણામને છોડીને અંધકારપરિણામને ધારણ કરે છે, જેમ દૂધ દહીંરૂપ પરિણામને ધારણ કરે છે અને ઘડાનાં ઠીકરાં અને ઠીકરાંની ધૂળ બને છે. દૂધ દહીંરૂપે પરિણામે છે ત્યારે દૂધનો સર્વથા નાશ થતો નથી, માત્ર દૂધનું રૂપાંતર થાય છે. ઘડો ફૂટી જતાં તે ઠીકરાંરૂપે અને પછી ધૂળરૂપે પરિણામે છે, પરંતુ ઘડાનો સર્વથા નાશ થતો નથી. આ તો કેવળ પર્યાયનું પરિવર્તન છે. તત્ત્વનો સર્વથા ઉચ્છેદ માનવો એ તો અવૈજ્ઞાનિક છે. એટલે દીપની જેમ જીવનો પણ સર્વથા નાશ માની શકાય નહીં.

અહીં કોઈને પ્રશ્ન થાય કે દીપનો જો સર્વથા નાશ ન થતો હોય તો તે બુઝાઈ ગયા પછી સાક્ષાત્ કેમ દેખાતો નથી? તેનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે - બુઝાઈ ગયા પછી તે અંધકારપરિશામને પામે છે અને તે તો પ્રત્યક્ષ છે જ. અંધકાર નથી દેખાતો એમ તો ન જ કહેવાય, કારણ કે 'આ ઓરડામાં તો સાવ અંધારું છે' એમ જે કહેવામાં આવે છે તે શેના આધારે કહેવાય છે? આંખ વડે જોઈને જ કહેવામાં આવે છે, એટલે આંખ વડે અંધારું દેખાય છે એ વાત સાચી છે. છતાં પણ દીવો બુઝાઈ ગયા પછી તે દીવારૂપે કેમ નથી દેખાતો? આનો ખુલાસો એ છે કે દીવો ઉત્તરોત્તર સૂક્ષ્મ-સૂક્ષ્મતર પરિશામોને ધારણ કરે છે, તેથી વિદ્યમાન છતાં તે દેખાતો નથી. જેમ કાળાં વાદળાં જ્યારે વીખેરાઈ જાય છે ત્યારે તેનાં સૂક્ષ્મ પરિશામના કારણે તે વિદ્યમાન છતાં આકાશમાં દેખાતાં નથી અને જેમ સુરમો ડબીમાં હોય ત્યારે દેખાય છે, પરંતુ જો હવાના કારણે ઊડી જાય તો તે વિદ્યમાન છતાં પણ તેની સૂક્ષ્મ રજના કારણે દેખાતો નથી; તેમ દીપ પણ બુઝાઈ ગયા પછી સૂક્ષ્મ પરિશામના કારણે વિદ્યમાન છતાં દેખાતો નથી. તે અસત્ હોવાના કારણે નહીં પણ સૂક્ષ્મ હોવાના કારણે દેખાતો નથી. આથી દીપનો સર્વથા નાશ માની શકાય નહીં; તો પછી તેના દષ્ટાંતથી નિર્વાણમાં જીવનો સર્વથા અભાવ સિદ્ધ થઈ શકે નહીં.

આ રીતે દીપ જ્યારે બુઝાઈ જાય છે ત્યારે તે પરિણામાંતરને પામે છે, પરંતુ તે સર્વથા નષ્ટ થતો નથી; તેમ જીવ પણ જ્યારે પરિનિર્વાણને પામે છે ત્યારે સર્વથા નષ્ટ થઈ જતો નથી, પણ તે નિરાબાધ સુખરૂપ પરિણામાંતરને પામે છે. આથી દુઃખના ક્ષયવાળી એવી જીવની વિશેષ અવસ્થાને જ નિર્વાણ માનવું જોઈએ. દીપકનું બુઝાઈ જવું એટલે તેની જ્યોતનું નષ્ટ થવું નહીં પણ તેનું રૂપાંતર અથવા પરિણામાંતર થવું, કારણ કે જે અસ્તિત્વ ધરાવે છે તે નષ્ટ થઈ શકતું નથી. આ રીતે જ જીવનું નિર્વાણ પામવું એટલે નષ્ટ થવું, અસ્તિત્વહીન થવું એમ નહીં પણ અવ્યાબાધ સુખરૂપ સ્વાભાવિક પરિણતિ પ્રાપ્ત કરવી.

બૌદ્ધ દર્શન માને છે કે નિર્વાણ થતાં આત્માનો વિલય થઈ જાય છે, અસ્તિત્વ સમાપ્ત થઈ જાય છે. આત્માનું પોતાનું કોઈ અસ્તિત્વ રહેતું નથી. આ પ્રકારના નિર્વાણની કલ્પના અસંગત છે. મુક્ત થયા પછી અસ્તિત્વ સમાપ્ત થઈ જાય છે એ વાત જૈન દર્શન સ્વીકારતું નથી. તે આવી મુક્તિ સાથે સમ્મત નથી. કર્મનો આત્યંતિક નાશ થવાનું ફળ જો અજરામર જ્ઞાનાનંદમય સ્થિતિની પ્રાપ્તિ ન હોય તો તેવું ફળ જૈન દર્શનને સમ્મત નથી. જૈન દર્શનને એવો આત્મવાદ જ સમ્મત છે કે જેમાં આત્માનું નિત્યાનિત્ય સ્વરૂપ બતાવી આત્માને જ વ્યવહારથી કર્મનો કર્તા-ભોક્તા માન્યો છે અને કર્મનો નાશ થવાથી આત્માની ત્રિકાળ મુક્તિ માની છે તથા જેમાં મુક્ત આત્માની આત્મા તરીકેની વ્યક્તતા નાશ પામતી નથી. આવું સ્વરૂપ નય, નિક્ષેપ, સપ્તભંગી આદિ વડે જૈન દર્શને યુક્તિપુરઃસર પુરવાર કર્યું છે. તે કહે છે કે જો મોક્ષમાં આત્માનું અસ્તિત્વ રહેતું જ ન હોય તો પછી સર્વ કિયાઓ કરી તેને કર્મ આદિથી મુકાવાની વાતનો કોઈ જ અર્થ સરતો નથી. જે કરણીનું ફળ આત્માના અસ્તિત્વનો જ નાશ હોય તે કરણી નિરુપયોગી છે.

જેનાથી પોતાની જ સત્તા નાશ થાય એવા કાર્યને ઉપાદેય કઈ રીતે માની શકાય? પોતાનો જ અભાવ કોણ ઇચ્છે? ધારો કે કોઈ વ્યક્તિ એમ જાહેર કરે કે 'આ ફાંસીના માંચડે જે લટકી જશે તેને એક લાખ રૂપિયાનું ઇનામ આપવામાં આવશે', તો બધા લોકો તો હસીને ચાલતા જ થશે. પરંતુ માનો કે કોઈ એક માણસ એવો નીકળે કે જે એક લાખ રૂપિયાનું ઇનામ લેવા ફાંસીને માંચડે લટકે અને તે મરી જાય. આમ, એ લટકીને મરી પણ ગયો, પરંતુ હવે એ ઇનામ કોણ લેશે? ઇનામ લેનારનું અસ્તિત્વ જ ન રહ્યું તો ઇનામનું પ્રયોજન શું? શું બૌદ્ધોનો મોક્ષનો ખ્યાલ પણ આવો જ નથી? મોક્ષ માટે જેણે અપાર સાધના કરી, તકલીફ ઉઠાવી, તે અંતે પોતાનું અસ્તિત્વ જ ખોઈ બેસે! મોક્ષને માનવો અને પોતાની સમાપ્તિને પણ માનવી એ એક નવાઈભરી વાત છે.

આમ, ન્યાય આદિ કેટલાંક દર્શનો મોક્ષને જ્ઞાન, સુખ આદિ ગુણોના અભાવરૂપ કહે છે, જેનો અત્રે 'નિજ અનંત સુખભોગ' દ્વારા નિષેધ કરી શ્રીમદે જણાવ્યું છે કે મોક્ષમાં ઇન્દ્રિયજનિત જ્ઞાન, સુખ આદિ ગુણોનો અભાવ છે; પણ કેવળજ્ઞાન, અવ્યાબાધ સુખ આદિ અનંત ગુણોનો ત્યાં અભાવ નથી. મોક્ષ જ્ઞાન તથા સુખથી રહિત નથી. મોક્ષમાં અનંત જ્ઞાન અને અનંત સુખ છે. બૌદ્ધ દર્શનની માન્યતા મુજબ દીપનિર્વાણ સમાન જીવના અભાવરૂપ મોક્ષ નથી; પરંતુ જીવની વિશુદ્ધિરૂપ મોક્ષ છે, જે શાશ્વત એમ શ્રીમદે 'શાશ્વત પદે' દ્વારા જણાવ્યું છે. આમ, શ્રીમદે આ ગાથાની બીજી પંક્તિ 'સિદ્ધ મોક્ષ શાશ્વત પદે, નિજ અનંત સુખભોગ' દ્વારા મોક્ષ થયા પછી જીવનું

સ્વતંત્ર અસ્તિત્વ રહેતું નથી, એનો જ્ઞાનવ્યાપાર બંધ થઈ જાય છે, મુક્તાત્મામાં સુખનો અભાવ છે ઇત્યાદિ મિથ્યા માન્યતાઓનું નિરસન કર્યું છે. મોક્ષનો અભાવ, મોક્ષ અવસ્થામાં જીવનો સર્વથા નાશ અને મુક્ત અવસ્થામાં સુખનો સર્વથા અભાવ; આ બધા અભાવો માનવા મિથ્યા છે એમ શ્રીમદે પ્રસ્તુત ગાથામાં દેહાદિ સંયોગોના આત્યંતિક વિયોગરૂપ મોક્ષ, મોક્ષમાં શુદ્ધ જીવની શાશ્વત સ્થિતિ અને મુક્તાત્માને નિરૂપમ અનંત સુખની પ્રાપ્તિની વાત દ્વારા સ્પષ્ટ કર્યું છે.

આ પ્રમાણે ન્યાય આદિ દર્શનો દ્વારા અભિમત મોક્ષનું સ્વરૂપ યુક્તિથી વિરુદ્ધ છે એમ બતાવી, જૈન દર્શન દ્વારા નિરૂપિત મોક્ષસ્વરૂપ યથાર્થ છે એમ બતાવ્યું, કારણ કે તેમાં કોઈ પ્રમાણથી વિરોધ આવતો નથી. આ વિષે શ્રીમદ્ લખે છે –

'બંધ, મોક્ષની યથાર્થ વ્યવસ્થા જે દર્શનને વિષે યથાર્થપણે કહેવામાં આવી છે, તે દર્શન નિક્ટ મુક્તપણાનું કારણ છે; અને એ યથાર્થ વ્યવસ્થા કહેવાને જોગ્ય જો કોઈ અમે વિશેષપણે માનતા હોઈએ તો તે શ્રી તીર્થકરદેવ છે.'⁹

જૈનમત મોક્ષનું સ્વરૂપ બતાવતાં કહે છે કે દેહાદિનો આત્યંતિક વિયોગ તે મોક્ષ છે. સર્વ કર્મનો સર્વથા ક્ષય થાય છે ત્યારે જીવ સિદ્ધ થાય છે અને મોક્ષરૂપ શાશ્વત પદમાં પોતાનાં અનંત સહજાત્મસુખનો અનુભવ કરે છે. સિદ્ધદશામાં દેહાદિ સંયોગ અને સંસારનાં દુઃખોનો સદાને માટે અંત આવે છે અને આત્માનાં અનંત સુખનો સદાને માટે ભોગવટો થાય છે. અનાદિ-સાંતના ભાંગે સંસારદુઃખનો ક્ષય થાય છે અને સાદિ-અનંતના ભાંગે આત્મસુખ પ્રાપ્ત થાય છે. સિદ્ધદશા વિષે શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ લખે છે —

'આ સિદ્ધદશા એ જીવની છેલ્લામાં છેલ્લી પૂર્ણ શુદ્ધ, પવિત્ર અને મુક્ત અવસ્થા છે. આ સિદ્ધપદ, મોક્ષપદ શાશ્વત છે, અનંત છે અને ત્રણે કાળ ટકી રહે એવું છે અને એ દશામાં અનંત આત્માનંદ, અવ્યાબાદ્ય અખંડસુખ ભોગવાય છે; આત્માનો પોતાનો અનંત, અક્ષય અને અવ્યાબાદ્ય સુખગુણ, સહજાનંદ સ્વરૂપ, શુદ્ધ ભાવ પૂર્ણતાએ પ્રગટ્યો હોવાથી તેને ભોગવાય છે. અહીં પૂર્ણશુદ્ધ ક્તક્ત્ય દશા છે, એથી કાંઇ કરવાપણું રહેતું નથી અને કંઇ કરવાપણું બાકી રહેતું નહીં હોવાથી અખંડ નિરાફુળતા છે, નિર્વિકલ્પતા છે અને નિરાફુળતા તે જ સુખ છે. આથી સિદ્ધદશામાં નિરંતર દરેક ક્ષણે અનંત સુખનો ભોગવટો છે.'?

આમ, પ્રસ્તુત ગાથામાં શ્રીગુરુ જણાવે છે કે સંસારની ઘટમાળમાં વિવિધ પ્રકારે ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૧૪ (પત્રાંક-૩૨૨)

ર- શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ, 'આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર (વિશેષાર્થ સહિત)', ચોથી આવૃત્તિ, પૃ.૨૫૬

દેહાદિનો સંયોગ અને વિયોગ થયા કરે છે. દેહાદિના આત્યંતિક વિયોગ અર્થે, અર્થાત્ એક વાર વિયોગ થયા પછી ફરી કદી સંયોગ ન થાય એવી સ્થિતિ અર્થે જીવ પ્રબળ પુરુષાર્થ કરે તો ફરી નવો દેહ ધારણ કરવાનો રહેતો નથી અને આત્મા મોક્ષપદ પામે છે. દેહાદિ સર્વ પરદ્રવ્યથી આત્મા સર્વથા મુક્ત થાય ત્યારે તે મોક્ષપદને પામે છે, જે શાશ્વત સુખરૂપ છે. શરીરાદિ સંયોગનો જ્યારે આત્યંતિક વિયોગ થાય છે ત્યારે, જ્યાં અનંત કાળ સુધી જીવને નિજસુખનો ભોગવટો છે એવી શાશ્વત મુક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે. આ પ્રમાણે 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'ની આ ગાથામાં શ્રીગુરુએ દ્રવ્યમોક્ષનું વર્ણન કરી, તેનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ કર્યું છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'દેહાદિક સંચોગનો, ટળે મૂળથી રાગ; મળે તરત નિજ આત્મનો, અનુભવ સુખનો લાગ. દ્રવ્ય, ભાવ, નોકર્મનો, આત્યંતિક વિચોગ; થતાં સ્વરૂપની સિદ્ધિનો, મળે અનુપમ ભોગ. અખંડ અવ્યાબાધ જ્યાં, સમાધિનું સુખ પૂર્ણ; સિદ્ધ મોક્ષ શાશ્ચત પદે, કેવળજ્ઞાન પ્રપૂર્ણ. જન્મ મરણ જેને નથી, નથી રોગ ને યોગ; અશરીરી અવિચળ લહે, નિજ અનંત સુખભોગ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૬-૨૩૭ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૬૧-૩૬૪)

ખંડ - ૨

પ્રકરણ - ૧૦

ષષ્ઠમ પદ - 'મોક્ષનો ઉપાય છે'

(ગાથા ૯૨ - ૧૧૮)

रोने इराका मेरीयह, नार आदिशेष दक्षि, इमेर इराक अनंतनां, शासा की दो कारे?

'મોક્ષપદ' સંબંધી શ્રીગુરુ દ્વારા થયેલા સમાધાન ઉપર વિચાર કરતાં શિષ્યના અંતરમાં તે પરત્વે કોઈ શંકા રહેતી નથી અને તેને મોક્ષપદની દઢ પ્રતીતિ થાય છે. મોક્ષપદનો યથાર્થ નિર્ણય થયા પછી તેના અંતરમાં મોક્ષને પ્રાપ્ત કરવાનો ઉપાય સમજવાની ભાવના જાગે છે.

મોક્ષના સ્વરૂપ વિષેની યથાર્થ સમજણથી તથા મોક્ષની પ્રાપ્તિથી થતા લાભની સમજણથી જીવને મોક્ષ મેળવવાની ઇચ્છા પ્રગટે છે. મોક્ષ મેળવવાની ઇચ્છાથી તેના ઉપાયને જાણવાની ઇચ્છા થાય છે. જેને મોક્ષની યથાર્થ સમજણ ન હોય તેને મોક્ષ મેળવવાની ઇચ્છા ન થવાથી મોક્ષમાર્ગને જાણવાની ઇચ્છા પણ થતી નથી. જો જીવ મોક્ષને સમજે તો તેની પ્રાપ્તિ માટે તે ઉદ્યમ કરવા પ્રેરાય. શિષ્યને મોક્ષનો સ્વીકાર થયો હોવાથી મોક્ષને પ્રાપ્ત કરવાનો ઉપાય જાણવાની તેને તીવ્ર જિજ્ઞાસા થઈ છે. શિષ્ય આત્માર્થી છે, છૂટવાનો અભિલાષી છે, ભવકટી કરવાની ભાવનાવાળો છે. વિવિધ ગતિઓમાં ધરેલા અનંત ભવોમાં સહન કરવા પડેલાં અનંત દુઃખોથી હવે તેને નિવર્તવું છે અને સંસારરૂપી સમુદ્રથી પાર પામી અનંત સ્વાધીન સુખમય મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરવી છે, તેથી તે તીવ્ર જિજ્ઞાસા અને અદમ્ય ઉત્સાહ સહિત મોક્ષપ્રાપ્તિની યથાર્થ વિધિ સમજવા માગે છે.

સમ્યગ્દર્શનના નિવાસનાં સર્વોત્કૃષ્ટ સ્થાનકરૂપ એવાં આત્માનાં છ પદોમાંનું અંતિમ પદ છે - 'મોક્ષનો ઉપાય છે', અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગની સિદ્ધિ. આ પદ માટે શ્રીમદે ૨૭ ગાથાઓ(૯૨-૧૧૮)ની રચના કરી છે. તેમાં પહેલી પાંચ ગાથાઓ(૯૨-૯૬)માં વિનીત શિષ્ય મોક્ષના ઉપાયરૂપ છજ્ઞા પદ વિષે પોતાની શંકાઓ રજૂ કરે છે. મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરનારા અનુપાયવાદીઓની પ્રચલિત દલીલો શિષ્યના મુખે જિજ્ઞાસારૂપે મૂકી છે અને તે પછી શ્રીગુરુના મુખે તે શંકાનું સમાધાન ૨૨ ગાથાઓ (૯૭-૧૧૮) સુધીમાં આપ્યું છે. તેમાં શિષ્યની શંકાનું અયથાર્થપણું બતાવી, આત્માનું શ્રેય થાય તે માટે મોક્ષનો ઉપાય સિદ્ધ કરી આપ્યો છે.

મોક્ષના ઉપાય વિષે પોતાની મૂંઝવણ રજૂ કરતાં શિષ્ય કહે છે –

'હોય કદાપિ મોક્ષપદ, નહિ અવિરોધ ઉપાય; કર્મો કાળ અનંતનાં, શાથી છેદાં જાય?' (૯૨) અર્થ મોક્ષપદ કદાપિ હોય તોપણ તે પ્રાપ્ત થવાનો કોઈ અવિરોધ એટલે યથાતથ્ય પ્રતીત થાય એવો ઉપાય જણાતો નથી, કેમકે અનંત કાળનાં કર્મો છે, તે આવા અલ્પાયુષ્યવાળા મનુષ્યદેહથી કેમ છેદ્યાં જાય? (૯૨)

કદાપિ આત્માની પૂર્શ શુદ્ધ અવસ્થારૂપ મોક્ષ થતો હોય તોપણ તે મોક્ષ-પદની પ્રાપ્તિ માટેનો કોઈ અવિરોધ ઉપાય, અર્થાત્ કોઈનો તર્ક એને ઉથલાવી ન શકે, સર્વને માન્ય હોય એવો યથાતથ્ય ઉપાય જણાતો નથી. જો ઉપાય ન હોય તો અનાદિનાં કર્મો કઈ રીતે છેદી શકાય?

જીવ નિરંતર કર્મ બાંધે છે. પ્રતિસમયે બંધાતાં કર્મોના ઢગલેઢગલા થયેલા છે. અનંત કાળથી બાંધેલાં અનંત કર્મો અલ્પ આયુષ્યવાળા મનુષ્યભવમાં કઈ રીતે ટાળી શકાય એ વિષે શિષ્યને શંકા રહે છે. તેથી મોક્ષનો સ્વીકાર થયો હોવા છતાં, સર્વ કર્મો અલ્પ કાળમાં ક્ષય થાય એવા અચૂક ઉપાય વિષે તે અજાણ હોવાથી, પોતાની મૂંઝવણ રજૂ કરી તે શ્રીગુરુ પાસે સમાધાનની યાચના કરે છે.

વિશેષાર્થ મોક્ષપદને માનનારા કેટલાક લોકો મોક્ષના ઉપાયને નથી માનતા. તેઓ મોક્ષનો તો સ્વીકાર કરે છે, પરંતુ મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરે છે. તે અનુપાયવાદીઓનું એવું મંતવ્ય છે કે ઉપાય વિના જ મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે, કશા પણ હેતુ વિના અકસ્માત મોક્ષ થઈ જાય છે, તેથી મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે કોઈ બુદ્ધિપૂર્વકનો પુરુષાર્થ કરવાની આવશ્યકતા નથી. આચરી શકાય તેવો મોક્ષનો કોઈ ઉપાય છે એવું તેઓ માનતા નથી. મોક્ષના ઉપાયનું ખંડન કરવા તેઓ વિવિધ દલીલો રજૂ કરે છે. તેમાંની મખ્ય દલીલો આ પ્રમાણે છે —

(૧) કોઈ કહે છે કે મોક્ષ માત્ર નિયતિથી જ સાધ્ય છે. જ્યારે મોક્ષ થવાનો હશે ત્યારે જ થશે, એ પહેલાં લાખ ઉપાયો કરવાથી પણ નહીં થાય. 'નિયતિ' એટલે નિશ્ચિત સમય. જે દ્રવ્યમાં જ્યારે, જે સમયે, જે પ્રકારે કાર્ય થવાનું હોય છે; તે દ્રવ્યમાં ત્યારે, તે સમયે, તે પ્રકારે કાર્ય નિશ્ચિતરૂપથી થાય જ છે. નિયતિવાદી નિયતિ સિવાય બીજા કશાને કારણ ન માનતાં પોતાના પક્ષની પુષ્ટિ માટે કહે છે કે જે થવાનું હોય તે થાય છે; ન થવાનું થતું નથી અને થવાનું અન્યથા થતું નથી. બધું માત્ર નિયતિને આભારી છે. ગમે તેટલા પ્રયત્ન કરીએ તોપણ જે બનવાનું હોય તે જ અને જ્યારે બનવાનું હોય ત્યારે જ બને છે, તેથી મોક્ષ પણ થવાનો હશે ત્યારે જ થશે. મોક્ષ થવામાં નિશ્ચિત કાળની મર્યાદા છે. તે કાળની મર્યાદા પૂર્ણ થતાં જ મોક્ષ થશે, તેથી મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવા માટે કોઈ બુદ્ધિપૂર્વકનો પ્રયત્ન કરવાની જરૂર નથી. એવો કોઈ ઉપાય છે જ નહીં કે જે કરવાથી અવશ્ય મોક્ષ થાય. તેઓ ધર્માનુષ્ઠાનો કરનારાઓને કહે છે, 'ભલે ગમે તેટલાં તપ-ત્યાગ કરો, મોક્ષ તો જ્યારે સર્જાયો હશે

ત્યારે જ મળશે. માટે તે ઉપાયોનાં કષ્ટ વેઠવાં વ્યર્થ છે.' આમ, નિશ્ચિત અવધિએ જ મોક્ષ થાય છે એમ માનતા હોવાથી, મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે યત્ન કરવો અનાવશ્યક છે એમ તેઓ કહે છે.

- (૨) મોક્ષનો કોઈ ઉપાય છે જ નહીં એવું માનનારાઓ એમ પણ કહે છે કે મોક્ષનો ઉપાય માનવામાં અનવસ્થા દોષ આવે છે. એક વસ્તુ બીજી વસ્તુના આશ્રયની અપેક્ષા રાખે અને તે બીજી વસ્તુ અન્ય વસ્તુના આશ્રયની અપેક્ષા રાખે અને તે વળી અન્યના આશ્રયની અપેક્ષા રાખે - આ પ્રકારે જ્યાં ઉત્તરોત્તર અન્ય-અન્ય આશ્રયની અપેક્ષા રાખવામાં આવતી હોય તેને અનવસ્થા દોષ કહેવાય છે. ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ 'સમ્યક્ત્વ ષટ્સ્થાન ચઉપઇ'માં અનુપાયવાદીઓની દલીલ રજૂ કરતાં કહે છે કે જો સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રને મોક્ષનો ઉપાય કહેશો તો પ્રશ્ન થાય કે એ ત્રણે ગુણોની પ્રાપ્તિ જીવને ઉપાયપૂર્વક થાય છે કે ઉપાય વિના જ? જો ઉપાયપૂર્વક કહેશો તો એ ઉપાયની પ્રાપ્તિ પણ ઉપાયપૂર્વક જ થાય છે કે અન્યથા? તેને પણ ઉપાયપૂર્વક માનશો તો પાછા તેના ઉપાયો. વળી પાછા તેના ઉપાયો - એમ અનવસ્થા ચાલશે. આ અનવસ્થા અટકાવવા કોઈ પણ સ્થાને અટકીને એમ કહેશો કે તે ઉપાયો તો જીવના પોતાના ઉપાયો વિના જ, ભવિતવ્યતાના બળે તેને પ્રાપ્ત થાય છે; તો આટલી લાંબી ઉપાયોની પરંપરા માન્યા પછી પણ અંતે ઉપાયો વિના જ, ભવિતવ્યતાના બળે જ તે માનો છો, તો એના કરતાં પહેલેથી જ સમ્યગ્દર્શન આદિ ઉપાયો ભવિતવ્યતાના બળો જ સ્વીકારોને! જો આ સમ્યગ્દર્શનાદિ ગુણો પણ ઉપાય વિના ભવિતવ્યતાથી જ મળી જાય છે તો એ રીતે તો મોક્ષ પણ ભવિતવ્યતાના બળે મળી જશે, અર્થાત્ ભવિતવ્યતાથી જ મોંક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ જશે. તેથી સમ્યગ્દર્શનાદિને મોક્ષના ઉપાય માનવાની જરૂર નથી. આમ, આ યુક્તિથી અનુપાયવાદીઓ મોક્ષ ઉપાયશુન્ય છે એમ સિદ્ધ કરે છે. ધ
- (૩) મોક્ષોપાયનો નિષેધ કરનાર પોતાના પક્ષનું સ્થાપન કરવા દષ્ટાંતો આપે છે કે મરુદેવી માતા નિગોદમાંથી વનસ્પતિકાયમાં આવ્યાં અને ત્યાંથી નીકળીને સીધાં મનુષ્ય-ભવમાં આવ્યાં અને તપશ્ચર્યાદિ કોઈ પણ ઉપાય કર્યા વિના કેવળી થયાં હતાં. ભરત ચકવર્તી પણ દીક્ષા લીધા વિના જ અરીસાભવનમાં કેવળજ્ઞાન પામ્યા હતા. જેમ માટી ધડાનું કારણ છે તો માટીની વૃદ્ધિથી ઘડાનો વિકાસ થાય છે, તેમ જો ક્રિયાકષ્ટ વગેરે ઉપાયો મોક્ષનું કારણ હોય તો તેની વૃદ્ધિથી મોક્ષનો વિકાસ થવો જોઈએ. પરંતુ ક્રિયાની વૃદ્ધિથી મોક્ષનો વિકાસ થતો હોય એમ જોવામાં આવતું નથી, કેમ કે ભરત ચક્રવર્તી વગેરે અભાવતુલ્ય કષ્ટે મોક્ષે ગયા, જ્યારે ગજસુકુમાર વગેરે મરણાંત કષ્ટે

'દર્શન જ્ઞાન ચરણ શિવ હેત કહો તો સ્થો પહલો સંકેત । ગુણ વિણ ગુણ જો પહિલા લહ્યા તો ગુણમાં સ્શું જાઓ વહ્યા?।।'

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'સમ્યક્ત્વ ષટ્સ્થાન ચઉપઇ', ગાથા ૯૯

મોક્ષે ગયા. આ કષ્ટોના પ્રકાર, સમયાવિધ વગેરેમાં ફરક હોવા છતાં તેમના મોક્ષમાં કોઈ ફરક નથી. વળી, કેટલાક જીવો ક્રિયાકષ્ટ કરીને ઘણા કાળના પ્રયાસે મોક્ષે જાય છે, જ્યારે કેટલાક જીવો અલ્પ કાળમાં જાય છે. જેમ કે શ્રી મહાવીરસ્વામીને સાડાબાર વર્ષ લાગ્યાં અને શ્રી મલ્લિનાથ ભગવાનને એક અહોરાત્રિ. માટે ક્રિયાકષ્ટને મોક્ષના ઉપાય તરીકે માનવું યોગ્ય નથી. જે જીવની જેવી ભવિતવ્યતા હોય તે પ્રમાણે તેને મોક્ષપ્રાપ્તિ થાય છે. આમ, કષ્ટ વિના મુક્તિ, અલ્પ કષ્ટે મુક્તિ, ઘણાં કષ્ટો પછી મુક્તિ વગેરે વિવિધતા અને વિચિત્રતા પુરવાર કરે છે કે મોક્ષ જ્યારે અને જેવી રીતે સર્જાયો હશે ત્યારે અને તેવી રીતે જ મળશે.

(૪) મોક્ષના ઉપાયના નિષેધના સમર્થનમાં દલીલ કરતાં કેટલાક એમ પણ કહે છે કે સર્વજ્ઞના જ્ઞાનમાં જેમ પ્રતિભારયું છે તે પ્રમાણે નિયમથી તેમ જ થાય છે, તેમાં કાંઈ હીનાધિક થતું નથી. જે જીવને, જે દેશમાં, જે કાળમાં, જે વિધાનથી; જન્મ-મરણ, સુખ-દુઃખ, મોક્ષ આદિ થવું સર્વજ્ઞદેવે જાણ્યું છે, એ જ પ્રમાણે નિયમથી થવાનું છે અને જે પ્રમાણે થવા યોગ્ય છે તે પ્રાણીને, તે જ દેશમાં, તે જ કાળમાં, તે જ વિધાનથી નિયમથી થાય છે; તેને ઇન્દ્ર, નાગેન્દ્ર કે જિનેન્દ્ર કોઈ પણ અટકાવી શકતા નથી. અનુપાયવાદીઓ કહે છે કે 'કેવળજ્ઞાનીએ જેવું જોયું હોય તેવું થાય', અર્થાત્ કેવળજ્ઞાનીએ જે જીવના જેટલા ભવ જોયા હોય તેમાં કોઈ હાનિ-વૃદ્ધિ થતી નથી. કેવળજ્ઞાનીએ જેટલા ભવ જોયા છે તે ભવોમાં ભોગવિલાસાદિ પાપક્રિયાઓ કરવાથી અધિક ભવ થતા નથી અને તપાદિ ધર્મક્રિયાઓ કરવાથી ઓછા ભવ થતા નથી. તેથી તપ-ત્યાગાદિ કરવાં વ્યર્થ છે. જેઓ તપાદિને મોક્ષના ઉપાય સમજીને કરશે તેને અને જેઓ તપાદિ નહીં કરે તેને પણ જ્ઞાનીએ જેટલા ભવો જોયા હશે તેટલા જ થવાના છે, ઓછાવત્તા નહીં. આચાર્યશ્રી સિદ્ધસેન દિવાકરજીએ 'નિયતબત્રીસી'માં આ દલીલ રજ કરતાં કહ્યું છે કે કોના કેટલા ભવ છે એ અંગેનું કેવળીઓનું જ્ઞાન જો યથાર્થ હોય તો તપાદિ કરી કષ્ટ કરવું વ્યર્થ છે. કારણ કે એ કર્યા પછી પણ ભવ તો એટલા જ રહેવાના છે. જો એમ કહેવામાં આવે કે મોક્ષના ઉપાયભત ધર્મક્રિયાઓ કરવામાં આવે તો જ્ઞાનીએ જોયેલા ભવમાં ઘટાડો થાય છે, અર્થાત્ ઓછા ભવોમાં મુક્તિ થાય છે; તો તો કેવળીના જ્ઞાનમાં અયથાર્થતા આવે અને મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરનાર યથાર્થ ઠરે, કેમ કે તપાદિને મોક્ષના ઉપાય તરીકે સિદ્ધ કરવા જે પ્રયત્ન થાય છે તે પણ કેવળીના જ્ઞાનને પ્રમાણ તરીકે સ્વીકારીને જ થાય છે અને તે જ્ઞાન તો મુળથી જ ઉપર્યક્ત ન્યાય વડે અપ્રમાણ ઠરી જાય છે. ધું આ રીતે અનુપાયવાદીઓ 'કેવળજ્ઞાનીએ જે સમયે મારો મોક્ષ થશે એમ જાણ્યું છે તે સમયે જ મારો મોક્ષ થશે' એમ તર્ક કરીને ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી સિદ્ધસેન દિવાકરજીકૃત, 'દ્વાત્રિંશદ્દ દ્વાત્રિંશિકા', ષોડશી નિયતદાત્રિંશિકા,

^{ા :} આવાપત્રા સિદ્ધસન ૧૮માક૨જીકૃત, હાાત્રસદ્ હાાત્રાસકા , પાડસા ૧૧મતહાાત્રાસક ૫.૩૯૭–૪૧૭

મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરે છે.

આમ, અનુપાયવાદીઓ મોક્ષપદનો સ્વીકાર કરવા છતાં મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરે છે. પ્રસ્તુત ગાથામાં જોવા મળે છે કે સુશિષ્યને પૂર્ણ શુદ્ધ અવસ્થારૂપ મોક્ષનો યથાર્થ નિર્ણય થયો છે, પરંતુ મોક્ષનો અવિરોધ ઉપાય હજુ લક્ષમાં આવ્યો નથી. તેથી તે કહે છે કે કદાપિ મોક્ષની પ્રાપ્તિ સંભવતી હોય તોપણ તેને પામવાનો કોઈ યથાતથ્ય ઉપાય જણાતો નથી. તેના અંતરમાં રહેલી શંકાના સમર્થનમાં દલીલ રજૂ કરતાં તે કહે છે કે અનંત કાળથી કર્મબંધ થતો આવ્યો હોવાથી અનંત કર્મોનો પુંજ એકઠો થયો છે. તે પુંજ આ મનુષ્યભવના સીમિત આયુષ્યમાં કોઈ ઉપાયથી નષ્ટ થઈ શકે છે એમ માની શકાતું નથી. શિષ્યના અંતરમાં રહેલી શંકાને સમજાવતાં ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા લખે છે કે —

'સમયે સમયે જીવ અનંત કર્મબંધન કરી રહ્યો છે. અને તેમ કર્મ કરતાં કરતાં અનંત કાળ વ્યતીત થયો છે. એટલે અનંત કર્મોનો રાશિ સંચિત થતો થતો મેરુ જેવો મહારાશિ મહાપર્વત બની ગયો છે. તે અનંત કર્મરાશિને અનંતકાળની અપેક્ષાએ જે ક્ષણ માત્ર એવા અલ્પ આયુષ્યસ્થિતિવાળા મનુષ્યદેહથી - 'બહુ પુણ્યકેરા પુંજથી, શુભદેહ માનવનો મળ્યો' - એવા માનવદેહથી કેમ - કેવા પ્રકારે - શી રીતે છેદતાં છેદતાં પણ છેદાં જાય?'ર

શિષ્યના મનમાં એવી શંકા છે કે જીવે કર્મ બાંધવામાં અનંત કાળ કાઢ્યો છે, તો એટલો જ કાળ તેને છેદવા માટે પણ જોઈએ. આત્મા ઉપર કર્મો તો અનાદિ કાળથી જ લાગેલાં છે. ભૂતકાળમાં આ જીવ અનંત કર્મો કરતો જ રહ્યો છે અને આ મનુષ્યભવનું આયુષ્ય તો એટલું અલ્પ છે કે આટલા અલ્પ આયુષ્યમાં અનાદિ કાળનાં એકઠા કરેલાં અનંતાનંત કર્મોનો નાશ શી રીતે થઈ શકે? મનુષ્ય ગમે તેટલો પુરુષાર્થ કરે તોપણ અનાદિ કાળનાં બાંધેલાં કર્મો અલ્પ કાળમાં સંપૂર્ણપણે નાશ થઈ શકે એવો કોઈ અચૂક ઉપાય હોય એમ જણાતું નથી. શિષ્ય મોક્ષના અચૂક ઉપાયનો નિર્ણય કરી શકતો નથી. તેથી તે પોતાની આ મુશ્કેલી રજૂ કરી, જો મોક્ષનો કોઈ અવિરોધ ઉપાય હોય તો તે સમજાવવા શ્રીગુરુને વિનંતી કરે છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'હોય	કદાપિ	મોક્ષપદ,		સિદ્ધસ્વરૂપી		ભાવ;
ધણું	પરોક્ષપશે	રહ્યું ,	મળે	કેમ	એ	દાવ.

૧- આ ચાર દલીલોનું સમાધાન ગાથા ૯૯ના વિવેચનમાં કરવામાં આવ્યું છે.

૨- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', પૃ.૩૧૦

વિચારતાં ભાસે મને, નિ અવિરોધ ઉપાય; રાગ દ્વેષ અજ્ઞાન એ, કેમ કરી કાઢ્યાં જાય. અનાદિથી સંચય કર્યો, સેવી વિવિધ પ્રકાર; કર્મો કાળ અનંતનાં, એનો છે નહીં પાર. પુદ્દગલ અનુભવ રસભરી, કર્મની ક્રિયા કરાય; તેવાં કર્મ અનંત તે, શાથી છેલાં જાય?

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૭ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૬૫-૩૬૮)

अभिवा भग ११ विषयातां, इटे विषये अने हे, तेमा भग राम्ये हेमें , अने न और विषये. ભૂમિકા ગાથા ૯૨માં શિષ્યે કહ્યું કે જો કદી મોક્ષ અવસ્થા પ્રાપ્ત થઈ શકતી હોય તોપણ તેનો કોઈ અવિરોધ ઉપાય જણાતો નથી, કેમ કે અનંત કાળનાં કર્મો આવા અલ્પ આયુષ્યવાળા મનુષ્યદેહથી કઈ રીતે છેદી શકાય?

આમ, મોક્ષનો કોઈ અવિરોધ ઉપાય, અર્થાત્ અચૂક કાર્ય કરે એવો યથાતથ્ય ઉપાય નથી એવી પોતાની શંકાના સમર્થનમાં શિષ્યે પોતાની દલીલ રજૂ કરી. તે જ શંકાના સમર્થનમાં બીજી દલીલ રજૂ કરતાં તે કહે છે –

ગાથા 'અથવા મત દર્શન ઘણાં, કહે ઉપાય અનેક; તેમાં મત સાચો કયો, બને ન એહ વિવેક.' (૯૩)

અથવા કદાપિ મનુષ્યદેહના અલ્પાયુષ્ય વગેરેની શંકા છોડી દઈએ, તોપણ મત અને દર્શન ઘણાં છે, અને તે મોક્ષના અનેક ઉપાયો કહે છે, અર્થાત્ કોઈ કંઈ કહે છે અને કોઈ કંઈ કહે છે, તેમાં કયો મત સાચો એ વિવેક બની શકે એવો નથી. (૯૩)

ભાવાર્થ સર્વને માન્ય થાય એવા મોક્ષના ઉપાય સંબંધી નિર્ણય કરવામાં નડતી મુશ્કેલી દર્શાવતાં શિષ્ય કહે છે કે પૂર્વે બાંધેલાં અનંત કર્મોને તોડવા માટે આ મનુષ્યભવની જિંદગી ટૂંકી પડે, અર્થાત્ આટલા અલ્પ આયુષ્યકાળમાં તે ન તોડી શકાય - આ દલીલને ધારો કે જતી કરીએ તોપણ મોક્ષના ઉપાય વિષેની પ્રરૂપણામાં ભિન્તા હોવાથી કયો માર્ગ સાચો અને કલ્યાણકારી છે તેનો નિર્ણય થવો અત્યંત મુશ્કેલ છે.

આ જગતમાં ભિન્ન ભિન્ન દર્શનો પ્રવર્તે છે અને તે દર્શનો આત્મતત્ત્વ, મોક્ષ વગેરેનાં સ્વરૂપ માટે જુદા જુદા અભિપ્રાય ધરાવે છે. તેથી મોક્ષના ઉપાય વિષે તેમની માન્યતા જુદી જુદી હોય એ સ્વાભાવિક છે. મોક્ષના ઉપાય સંબંધી જુદા જુદા અભિપ્રાયોથી શિષ્યની મતિ મૂંઝાઈ ગઈ છે. કોઈ દર્શન અમુક ઉપાયથી મોક્ષ બતાવે છે, જ્યારે બીજું દર્શન અન્ય ઉપાયથી મોક્ષ બતાવે છે, તેથી મોક્ષનો અવિરોધ ઉપાય કયો છે તેનો નિર્ણય તે કરી શક્તો નથી. મોક્ષના યથાર્થ ઉપાયનો નિર્ણય કરવાની વિવેકશક્તિનો પોતાનામાં અભાવ છે એનો એકરાર કરી, સુશિષ્ય શ્રીગુરુ પાસે મોક્ષનો અવિરોધ ઉપાય સમજવાની અભિલાષા સેવે છે.

તત્ત્વજ્ઞાનીઓએ જીવ (આત્મા), જગત (વિશ્વ) અને જગદીશ(પરમાત્મા)નાં સ્વરૂપ તથા તે ત્રણે વચ્ચેનો સંબંધ સમજાવવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે. આ તત્ત્વમીમાંસાના આધારે તેમણે આચારમીમાંસાનું ચણતર કર્યું છે. તત્ત્વજ્ઞાનના આધારે તેમણે જીવનનાં ગૂઢ રહસ્યો ઉકેલવાનો પ્રયત્ન જુદી જુદી અનેક રીતે કર્યો છે. પરિણામે વિવિધ દર્શનો અને ધર્મમતો અસ્તિત્વમાં આવ્યા.

આમ, અનેક સદીઓથી વિવિધ દર્શનો અને ધર્મમતો વિકાસ પામતા રહ્યા છે. તેઓ દરેક મુક્તિ માટે જુદા જુદા ઉપાયો બતાવે છે. તત્ત્વજ્ઞાનીઓએ તાત્ત્વિક સિદ્ધાંતના આધારે પોતપોતાની દષ્ટિએ મોક્ષમાર્ગનું નિરૂપણ કર્યું છે. ભારતમાં પ્રચલિત મુખ્ય દર્શનો તથા ધર્મમતોના મોક્ષના ઉપાય સંબંધીના અભિપ્રાય હવે સંક્ષેપમાં જોઈએ —

જૈન દર્શન અનુસાર રાગ-દ્વેષાદિ સમસ્ત વિકારો, જ્ઞાનાવરણીયાદિ જડ કર્મો અને દેહાદિ નોકર્મોથી મુક્ત થવાય ત્યારે મોક્ષપદ પ્રગટે છે. તે જીવાદિ નવ તત્ત્વના બોધ-પૂર્વક અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, બહ્મચર્ય અને પરિગ્રહ એ પંચ મહાવત, અનશનાદિ બાર તપ તથા ક્ષમાદિ દસ ધર્મના પાલનને મોક્ષમાર્ગ માને છે. આમ, જ્ઞાન અને ક્રિયાના સમન્વયથી સુખરૂપ એવા મોક્ષપદની પ્રાપ્તિ થાય છે એમ તે કહે છે.

બૌદ્ધ દર્શન દુઃખોના અંતની અવસ્થાને, અર્થાત્ દુઃખનિરોધને નિર્વાશ કહે છે. તેના મત અનુસાર અષ્ટાંગ માર્ગથી નિર્વાશની પ્રાપ્તિ થઈ શકે છે. સમ્યક્ દષ્ટિ, સમ્યક્ સંકલ્પ, સમ્યક્ વાણી, સમ્યક્ કર્મ, સમ્યક્ આજીવિકા, સમ્યક્ પુરુષાર્થ, સમ્યક્ સ્મૃતિ અને સમ્યક્ સમાધિ - આ અષ્ટાંગ માર્ગના પાલનથી સકલ વાસનાઓની નિવૃત્તિ તથા શૂન્યરૂપ નિર્વાશનો આવિભાવિ થાય છે.

ન્યાય-વૈશેષિક દર્શન આત્યંતિક દુઃખનિવૃત્તિને અપવર્ગ અથવા મોક્ષ કહે છે. તેના મત અનુસાર તત્ત્વજ્ઞાન થતાં દુઃખના પૂર્ણ અભાવની અવસ્થા પ્રાપ્ત થાય છે. તે માટે ધર્મગ્રંથોમાં આપેલ આત્મા વિષેના ઉપદેશનું શ્રવણ, મનન અને નિદિધ્યાસન કરવું જોઈએ. તત્ત્વચિંતન દારા મિથ્યાજ્ઞાનનું નિવારણ થાય છે. મિથ્યાજ્ઞાન કે અવિદ્યા દૂર થતાં દોષો, પ્રવૃત્તિઓ આદિ આપોઆપ દૂર થાય છે અને જીવ જન્મ-મરણથી મુક્ત થાય છે.

સાંખ્ય દર્શન અનુસાર પુરુષ અને પ્રકૃતિનો તફાવત સમજાતાં વિવેકજ્ઞાન થાય છે અને તેથી પુરુષનો પ્રકૃતિથી વિયોગ થાય છે. તેના મત પ્રમાણે વિવેકજ્ઞાનના પરિણામે અવિવેકજ્ઞાનનો નાશ થતાં દુઃખપરિણામરૂપ ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ થાય છે અને છેવટે વિવેકજ્ઞાનરૂપ ચિત્તવૃત્તિનો પણ નિરોધ થાય છે. તેના ફળસ્વરૂપે પુરુષમાં ચિત્તનું પ્રતિબિંબ પડતું બંધ થઈ જાય છે અને પુરુષ પોતાના સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત થાય છે. તેનો પ્રકૃતિ સાથેનો સંયોગ છૂટી જાય છે. આ સ્થિતિ તે મોક્ષ છે.

યોગ દર્શન અનુસાર સર્વ ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ થતાં ભોગ સમાપ્ત થઈ જાય છે અને મોક્ષરૂપ પુરુષાર્થ સિદ્ધ થાય છે. તેના મત મુજબ મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે યોગનાં આઠ અંગનું પાલન થવું જોઈએ. તે આઠ અંગ છે - યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ, પ્રત્યાહાર, ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ. આ આઠ અંગનું પાલન થતાં શરીર અને મન અંકુશમાં આવે છે અને ચિત્તની એકાગ્રતા વધતાં નિર્વિકલ્ય એવસ્થા પ્રાપ્ત થાય છે.

પૂર્વ મીમાંસા દર્શન અનુસાર વેદવાક્યો મુજબ યજ્ઞ તથા ક્રિયાકાંડ કરવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેના મત મુજબ મોક્ષપ્રાપ્તિનું પ્રધાન કારણ કર્મ છે. વૈદિક કર્મકાંડ એ જ ધર્મ છે. વેદના આદેશો પ્રમાણે જીવવું એ જ ઉત્તમ જીવન છે. આમ, તેના મત પ્રમાણે ભવબંધનથી છૂટવા અને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવા મનુષ્યે નિષ્કામ ભાવે વેદવિહિત કર્મો કરવાં જોઈએ.

ઉત્તર મીમાંસા દર્શન, અર્થાત્ વેદાંત દર્શનમાં અનેક શાખાઓનો જન્મ થયો છે. બહ્ય, જીવ, જગત, મુક્તિ, મુક્તિના ઉપાય વગેરે વિષયોમાં આચાર્યોએ 'વેદાંતસૂત્ર'ના આધારે જે વ્યાખ્યા કરી તેમાં ઐક્યમતતા નથી. 'વેદાંતસૂત્ર'ના તાત્પર્યાર્થને દર્શાવનાર આચાર્યો એક એક સંપ્રદાયના પ્રવર્તક બની ગયા. આવા આચાર્યોમાં શ્રી શંકરાચાર્ય, શ્રી રામાનુજાચાર્ય, શ્રી મધ્વાચાર્ય, શ્રી વલ્લભાચાર્ય તથા શ્રી નિંબાર્કાચાર્ય મુખ્ય આચાર્યો તરીકે ગણાવી શકાય. મુક્તિના ઉપાય સંબંધી તેમનો મત સંક્ષેપમાં જોઈએ.

શ્રી શંકરાયાર્યના મત અનુસાર આત્મા અને બહાના અભેદનો સાક્ષાત્કાર થવો એ જ મોક્ષ છે. તેમના મત પ્રમાણે ભક્તિ અને કર્મથી ચિત્તશુદ્ધિ થાય છે, પણ મોક્ષ મેળવવાનું સાક્ષાત્ સાધન તો જ્ઞાન જ છે. ચાર મહાવાક્યનાં શ્રવણ, મનન અને નિદિધ્યાસનથી અવિદ્યાનો નાશ થતાં બહાએક્ય સધાય છે.

શ્રી રામાનુજાચાર્યના મત અનુસાર મોક્ષનું એકમાત્ર સાધન ભક્તિ છે. ભક્તિના કારણે જ પ્રભુની કૃષાના પાત્ર બની શકાય છે. પ્રપત્તિ (ઈશ્વરચરણમાં જાતનું સંપૂર્ણ નિવેદન) સિવાય બીજો કોઈ માર્ગ નથી. કર્મ અને જ્ઞાનનું પ્રયોજન પણ ભક્તિ જ છે. આ મતને અનુસરનારા લક્ષ્મી અને વિષ્ણુનું પૂજન કરે છે. કપાળમાં ઊર્ધ્વ પુંડ્ર કરે છે અને વચ્ચે કંકુની ઊભી લીટી કરે છે.

શ્રી મધ્વાચાર્યના મત અનુસાર મોક્ષની પ્રાપ્તિ વિષ્ણુના પ્રસાદથી થાય છે. તેઓ એકમ, નામકરણ અને ભજન એ ત્રણ પ્રકારની સેવા બતાવે છે. શરીર ઉપર નારાયણનાં આયુધો આંકવા તે પ્રથમ સેવા, પુત્રનું પ્રભુનામસ્મરણાર્થે કેશવાદિ નામ પાડવું તે દિતીય સેવા અને શરીર વડે દાનાદિ કરવા, વાણીથી સત્ય બોલવું, મન વડે ભજન- ભક્તિની સ્પૃહા રાખવી એ તૃતીય સેવા છે. આ પ્રમાણે વિષ્ણુની ભક્તિથી મનુષ્ય

સંસારથી મુક્ત થાય છે અને વિષ્ણુની સમીપે આનંદથી રહે છે. આ મતના અનુયાયી ગોપીચંદનનું ઊર્ધ્વ પુંડ્ર કરે છે, વચ્ચે બાળેલી સોપારીની ઊભી લીટી કરે છે અને તેની નીચે હળદરનો ચાંદલો કરે છે.

શ્રી વલ્લભાયાર્યના મત અનુસાર પ્રેમભક્તિ એ જ એક મુક્તિનું કારણ છે. તેમણે પ્રવર્તાવેલ સંપ્રદાયને પુષ્ટિમાર્ગ કહેવામાં આવે છે. પાપના કારણે મનુષ્યનો આત્મા ક્ષીણ અને દુર્બળ બન્યો છે. એને આધ્યાત્મિક પોષણની જરૂર છે. આ આધ્યાત્મિક પોષણ ઈશ્વરકૃપા જ આપી શકે છે. શ્રીકૃષ્ણપ્રીતિ જ્યારે ઉત્કૃષ્ટ બને છે ત્યારે ભક્ત જ્યાં ત્યાં સર્વત્ર શ્રીકૃષ્ણને જ જુએ છે. પરિણામે સૌની સાથે તે તાદાત્મ્ય સાધે છે. આ મતના અનુયાયીઓનું અંતિમ લક્ષ્ય મુક્તિ નહીં પણ સતત શ્રીકૃષ્ણસેવન અને વૃંદાવનમાં ચાલતી હરિની લીલાનું દર્શન કરવું તે છે.

શ્રી નિંબાર્કાચાર્યના મત અનુસાર પણ ભક્તિ એ મુક્તિનું પ્રધાન કારણ છે. તેમના મત મુજબ અવિદ્યાપ્રેરિત કર્મ દ્વારા જીવાત્માની વિશુદ્ધતા આચ્છાદિત થાય છે. ઈશ્વરની કૃપા વડે આ અવિદ્યાનો નાશ કરી શકાય છે અને ઈશ્વરની કૃપા ભક્તિ દ્વારા પ્રગટ થાય છે. તેઓ દૈતાદૈતની ચર્ચામાં ઊતરવાની વાતને નિરર્થક માને છે અને રાધા-કૃષ્ણનાં ભજનકીર્તનને જ પ્રાધાન્ય આપે છે.

શૈવ સંપ્રદાયમાં પાશુપત, શ્રૈવ, પ્રત્યભિજ્ઞ અને રસેશ્વર એ ચાર મુખ્ય મત છે. પાશુપતમતવાળા હઠયોગને ઐશ્વર્યપ્રાપ્તિનું કારણ માને છે. તેઓ લલાટ, છાતી આદિ જગ્યા ઉપર શિવલીંગ કરે છે. કાપાલિક અને અઘોરીઓનો મત અને આ મતમાં ઘણું સામ્યપણું છે. શૈવમતવાળા શિવતત્ત્વની પ્રાપ્તિ માટે વિદ્યા, ક્રિયા અને યોગ ઉપર ભાર મૂકે છે. પ્રત્યભિજ્ઞમતવાળા પ્રતિપત્તિપૂર્વક જ્ઞાન વડે શિવતત્ત્વની પ્રાપ્તિ માને છે. રસેશ્વરમતમાં શરીરને આદ્ય ધર્મસાધન ગણવામાં આવે છે અને અપમૃત્યુ વગેરે દૂર કરવા માટે રસપાનની પ્રશંસા કરે છે. રસ તરીકે પારાના પાનનું વિધાન છે. પારાના દર્શન, ભક્ષણ, દાન અને પૂજનથી અનેક લાભ માનવામાં આવ્યા છે. તેમના મત મુજબ રસ અને રસાયન વડે દેહનું રક્ષણ કરવું જોઈએ. આ શરીર હર અને ગૌરીથી ઉત્પન્ન થયેલું છે. પારાના પાનથી તેની સાથે તાદાત્મ્ય થાય છે. દિવ્ય શરીર ન હોય ત્યાં સુધી મોક્ષ મળવો અસંભવિત છે, તેથી પારાનું પાન કરવું આવશ્યક માને છે. પારાનું વિધિપૂર્વક પાન કરવાથી આ શરીરમાં જ અજર-અમરપણું પ્રાપ્ત કરી શકાય છે. આમ, આ મતવાળા આ લોકમાં જ મોક્ષપ્રાપ્તિ થાય છે એમ માને છે અને તેના ઉપાય તરીકે વિધિપૂર્વક પારાનું પાન કરવાનું વિધાન કરે છે.

આમ, મોક્ષના ઉપાય સંબંધી અનેક મતભેદ છે. બૌદ્ધ, ન્યાય, વૈશેષિક, સાંખ્ય, શાંકરવેદાંત આદિ દર્શનો જ્ઞાનને મોક્ષનું કારણ માને છે. મીમાંસા દર્શન કર્મને મોક્ષનું કારણ માને છે. ભક્તિસંપ્રદાયોમાં મુખ્ય એવા રામાનુજ, મધ્વ, વલ્લભ અને નિંબાર્ક એ બધાના મત પ્રમાણે ભક્તિ એ જ શ્રેષ્ઠ ઉપાય છે. શૈવો જ્ઞાન-કર્મને સમુચ્ચયપણે મોક્ષના કારણ તરીકે સ્વીકારે છે. જૈન દર્શન પણ જ્ઞાન-કર્મ, અર્થાત્ જ્ઞાન અને ક્રિયાને સમુચ્ચયપણે જ મોક્ષના કારણ તરીકે માને છે. આમ, જગતમાં અનેક મત-દર્શનો પ્રવર્તે છે અને તેઓ સહુ મોક્ષનો ભિન્ન ભિન્ન ઉપાય બતાવે છે. શ્રીમદ્ લખે છે —

'આ જગતીતળ પર અનેક પ્રકારથી ધર્મના મત પડેલા છે. તેવા મતભેદ અનાદિકાળથી છે, એ ન્યાયસિન્દ્ર છે. પણ એ મતભેદો કંઇ કંઇ રૂપાંતર પામ્યા જાય છે. એ સંબંધી કેટલોક વિચાર કરીએ.

કેટલાક પરસ્પર મળતા અને કેટલાક પરસ્પર વિરુદ્ધ છે; કેટલાક કેવળ નાસ્તિકના પાથરેલા પણ છે. કેટલાક સામાન્ય નીતિને ધર્મ કહે છે. કેટલાક જ્ઞાનને જ ધર્મ કહે છે. કેટલાક અજ્ઞાન એ ધર્મમત કહે છે. કેટલાક ભક્તિને કહે છે; કેટલાક કિયાને કહે છે; કેટલાક વિનયને કહે છે અને કેટલાક શરીર સાચવવું એને ધર્મમત કહે છે.

એ ધર્મમતસ્થાપકોએ એમ બોધ કર્યો જણાય છે કે, અમે જે કહીએ છીએ તે સર્વજ્ઞવાણીરૂપ અને સત્ય છે. બાકીના સઘળા મતો અસત્ય અને કુતર્કવાદી છે; પરસ્પર તેથી તે મતવાદીઓએ ચોગ્ય કે અચોગ્ય ખંડન કર્યું છે. વેદાંતના ઉપદેશક આ જ બોધ છે; સાંખ્યનો પણ આ જ બોધ છે. બુદ્ધનો પણ આ જ બોધ છે; ન્યાયમતવાળાનો પણ આ જ બોધ છે; વૈશેષિકનો આ જ બોધ છે; શક્તિપંશીનો આ જ બોધ છે; વૈષ્ણવાદિકનો આ જ બોધ છે; ઇસ્લામીનો આ જ બોધ છે; અને કાઇસ્ટનો આ જ બોધ છે કે આ અમારું કથન તમને સર્વસિદ્ધિ આપશે. ત્યારે આપણે હવે શો વિચાર કરવો?'

આમ, મોક્ષનો સ્વીકાર કરનાર અનેક દર્શનો અને ધર્મમતો પ્રવર્તે છે અને સહુ પોતપોતાની માન્યતા અનુસાર તેનો ઉપાય બતાવે છે. જ્ઞાનમાર્ગને માનવાવાળા કહે છે કે જ્ઞાનમાર્ગ જ સાચો માર્ગ છે, અર્થાત્ શાસ્ત્રોનું શ્રવણ, મનન, નિદિધ્યાસન કરવાથી જ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. આ મતવાળાઓ શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ તથા તેની ચર્ચા કરતાં જોવામાં આવે છે. ક્રિયામાર્ગને માનવાવાળાઓનું કહેવું છે કે જ્ઞાનમાર્ગ કઠિન માર્ગ છે, દુરારાધ્ય છે, તે માર્ગે પડવાનાં ઘણાં સ્થાનકો છે. સંદેહ, વિકલ્પ, સ્વચ્છંદતા, અતિપરિણામીપણું એ આદિ કારણો જીવને ઊર્ધ્વભૂમિકા પ્રાપ્ત થવા દેતાં નથી; તેથી ક્રિયામાર્ગ જ સર્વસુલભ માર્ગ છે. તેમના મત પ્રમાણે બાહ્ય દૈહિક ક્રિયાઓરૂપ તપનો

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૯૯-૧૦૦ (મોક્ષમાળા, શિક્ષાપાઠ-૫૮)

જ આશ્રય કરવો યોગ્ય છે, કારણ કે તપથી કર્મની નિર્જરા થતાં મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. આ મતવાળાઓ દેહદમન તથા ચીવટપૂર્વક દૈહિક ક્રિયાઓ કરતાં જોવામાં આવે છે. ભક્તિમાર્ગવાળાઓ એમ કહે છે કે ભક્તિ એ મોક્ષનો સરળ માર્ગ છે. ક્રિયામાર્ગ અસદ્દ-અભિમાન, વ્યવહાર-આગ્રહ, સિદ્ધિમોહ, પૂજા-સત્કારાદિ યોગ અને દૈહિક ક્રિયામાં આત્મનિષ્ઠાદિ દોષોનો સંભવ રહે છે તથા જ્ઞાનમાર્ગ અત્યંત દુરારાધ્ય છે, તેથી ભક્તિ એ જ શ્રેષ્ઠ માર્ગ છે. તેમના મત મુજબ પ્રભુના ચરણોમાં અનુરક્ત રહેવું, તેમનાં ગુણગાન કરવા અને પોતાનું સર્વસ્વ અર્પણ કરવું એ ભક્તિ છે. આ મતવાળાઓ અન્ય સર્વ માર્ગના નિષેધપૂર્વક પ્રભુનું પૂજન, અર્ચન, કીર્તન, સ્તવન કરતાં જોવામાં આવે છે.

આમ, ભિન્ન ભિન્ન ધર્મમતો મોક્ષનો ભિન્ન ભિન્ન ઉપાય બતાવતા હોવાથી મોક્ષના યથાતથ્ય ઉપાયનો નિર્ણય કરી શકાતો નથી. ધર્મમતોની અનેકતા અને તેમના બતાવેલા ઉપાયોમાં ભિન્નતા તો છે, તે ઉપરાંત અન્ય મતના નિષેધપૂર્વક પોતાના મત અનુસાર પ્રવર્તન કરવાથી જ મોક્ષપ્રાપ્તિ છે, અન્યથા નહીં - એમ દરેક મત આગ્રહપૂર્વક કહે છે, તેથી અવિરોધ ઉપાયનો નિર્ણય કરવામાં જિજ્ઞાસુને અત્યંત મુશ્કેલી નડે છે. અધ્યાત્મયોગી શ્રી આનંદઘનજી મહારાજ કહે છે —

'અભિનંદનજિન દરિશણ તરસીએ, દરિશણ દુર્લભ દેવ; મત મત ભેદે રે જો જઈ પૂછીએ, સહુ થાપે અહમેવ.'^૧

અહીં જણાવ્યું છે તેમ જુદા જુદા ધર્મમતના અનુયાયીઓને મોક્ષના ઉપાય વિષે પૂછતાં તેઓ કહે છે કે 'અમારા મત પ્રમાણે વર્તવાથી જ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થશે.' સહુ પોતપોતાના મતની વિશેષતાનું સ્થાપન કરતાં કહે છે કે 'અમારું દર્શન, અમારો મત તે જ મોક્ષપ્રાપ્તિનો અચૂક માર્ગ છે.' પોતાની માન્યતા સ્થાપવા માટે તેઓ પોતાની વાતને જ સાચી કહે છે અને બીજાની વાત સાચી છે જ નહીં એમ કહે છે. મતાઅહથી તેમની વિચારશક્તિ કુંઠિત થઈ જાય છે, પરિણામે તેઓ એ સ્વીકારવા તૈયાર જ થતા નથી કે અન્ય મતમાં પણ સત્ય હોઈ શકે. તેઓ પોતાનાં મત-દર્શન દ્વારા નિર્દિષ્ટ ક્રિયાકાંડ કે સાધનાપદ્ધતિનો આગ્રહ સેવી અન્યને પણ તે માર્ગે દોરવાનો પ્રયત્ન કરે છે. અધ્યાત્મયોગી શ્રી આનંદધનજી મહારાજ એક પદમાં કહે છે —

'જોગીએ મિલીને જોગણ કીધી, જતીએં કીધી જતણી; ભગતેં પકડી ભગતાણી કીધી, મતવાસી કીધી મતણી.

રામ ભણી રહેમાન ભણાવી, અરિહંત પાઠ પઠાઈ; ઘર ઘરને હું દાંદો વિલગી, અલગી જીવ સગાઈ.

૧- શ્રી આનંદઘનજીરચિત, શ્રી અભિનંદન ભગવાનનું સ્તવન, કડી ૧

કોઇએ મુંડી કોઇએ લોચી, કોઇએ કેશ લપેટી; કોઇ જગાવી કોઇ સુતી છોડી, વેદન કિણહી ન મેટી.

કોઈ થાપી કોઈ ઉથાપી, કોઈ ચલાવી કોઈ રાખી; એકમનો મેં કોઈ ન દીઠૌ, કોઈનો કોઈ નવિ સાખી.'^૧

અનેક જોગીઓએ એકત્ર થઈને મને મહામાયા બનાવી, સંન્યાસી પરિવાજકોએ મને પરિવાજિકા બનાવી, ભક્તિમાર્ગના ઉપાસકોએ મને ભગતડી બનાવી અને મસ્તાન યોગીઓએ મને તેમના મતમાં આસક્ત બનાવી. મને રામ નામ જપાવ્યું, રહેમાનની બંદગી કરાવી તેમજ અરિહંતનો પાઠ ભણાવ્યો અને આ રીતે અનેક જાતની રીત અજમાવી, પણ કોઈએ આત્માની ઓળખાણ કરાવી નહીં. કોઈએ મારું મસ્તક મૂંડાવ્યું, કોઈએ લોચ કરાવ્યો, કોઈએ વાળ વડે મને વીંટી દીધી, કોઈએ જગાડી, કોઈએ ઊંઘતી ત્યજી દીધી, પણ કોઈએ મારા અંતરની વેદના મટાડી નહીં. કોઈએ મને સ્થાપી, કોઈએ ઉત્થાપી, કોઈએ રાખી અને કોઈએ રવાના કરી, પરંતુ એકસરખા અભિપ્રાયવાળા કોઈ ન મળ્યા.

આમ, જગતમાં વિદ્યમાન દર્શનો અને ધર્મમતો મોક્ષના ઉપાય માટે જે પ્રરૂપણા કરે છે તેમાં એકતા અને અવિરુદ્ધતા દેખાતી નથી. તેઓ વચ્ચે વિચાર-ઐક્યતા જોવા મળતી નથી. મતાનુયાયીઓમાં સત્ય સમજવાની તૈયારીનો અભાવ, સ્વમતસ્થાપન માટે અનેક પ્રકારના અયથાર્થ પ્રયાસ, સહિષ્ણુતાની ખામી અને ક્યારેક તો પરસ્પર વૈમનસ્ય જોવા મળે છે. આવી સ્થિતિમાં મોક્ષનો વાસ્તવિક ઉપાય કયો છે તેનો નિર્ણય કરવો અત્યંત કઠણ થઈ પડે છે.

પ્રસ્તુત ગાથામાં શિષ્ય શ્રીગુરુ સમક્ષ આ મૂંઝવણ રજૂ કરે છે. શિષ્ય પરમાર્થ-પ્રાપ્તિનો ઇચ્છુક અને ગવેષક છે, તેથી તે મોક્ષના ઉપાય સંબંધી ઊંડી વિચારણા કરે છે. તત્ત્વ સમજવાની તેની અદમ્ય ઇચ્છા તથા જુદાં જુદાં મત-દર્શનોનો તેનો અભ્યાસ, પૂર્વના પાંચ પદ સંબંધી તેણે કરેલી દલીલો ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાય છે. તેથી જ્યારે તે મોક્ષના ઉપાય સંબંધી વિચારણા કરવા બેસે છે ત્યારે તેના મનમાં ભિન્ન ભિન્ન મત-દર્શનના અભિપ્રાયોના વિકલ્પો ચમકી ઊઠે છે. ભિન્ન ભિન્ન દર્શનો અને ધર્મમતોમાં મોક્ષમાર્ગની જુદી જુદી કેડીઓ જોઈ તે મૂંઝાઈ જાય છે અને સાચો માર્ગ કયો છે તેનો નિર્ણય કરી શકતો નથી. ડૉ. તરુલતાબાઈ મહાસતીજી કહે છે —

'શિષ્યે બધાં જ દર્શનોનો અભ્યાસ કર્યો છે. અનેકની વાતો સાંભળી છે. તેથી તે મૂંઝવણમાં મુકાઈ ગયો છે કે આટલા બધા માર્ગમાંથી કયો માર્ગ સાચો! વળી એકાદ માર્ગને સાચો માની તેના પર ચાલવા માંડીએ અને જો એ માર્ગ ખોટી મંઝિલે ૧- શ્રી આનંદધનજીરચિત, ૫૯ ૪૮, કડી ૨-૫ ('શ્રી આનંદધનજીનાં ૫દો', ભાગ-૧, ૫.૪૫૬-૪૫૭)

પહોંચાડે તો ત્યાંથી પાછું ફરવું ભારે જ પડે. માટે હવે કયા માર્ગને ગ્રહણ કરવો? સાચા અને ખોટા માર્ગનો વિવેક કેમ કરવો? અને જો એ વિવેક ન થતો હોય તો પછી કયા માર્ગને આરાધવો.'^૧

અનેક મત-દર્શનો મોક્ષનો ભિન્ન ભિન્ન ઉપાય બતાવે છે, જેમાં કેટલાંક તો પરસ્પર વિરોધી પણ છે. તે સર્વની તુલના કરી અમુક મત, પંથ કે સંપ્રદાય સાચો છે અથવા અમુક ક્રિયાકાંડ કે સાધનાપદ્ધતિ સાચી છે એવો નિર્ધાર સામાન્ય જીવથી થવો દુષ્કર છે, કારણ કે તે તુલના કરવાની ક્ષયોપશમશક્તિ અને વિવેકશક્તિ સર્વ જીવમાં હોતી નથી. અહીં શિષ્ય એકરાર કરે છે કે તેનામાં યથાર્થ વિવેક કરવાની શક્તિ પ્રગટી નથી. એક બાજુ ભિન્ન ભિન્ન મત-દર્શનોનો અભ્યાસ છે અને બીજી બાજુ વિવેકશક્તિનો અભાવ છે. અનેક મત-દર્શનાના ભિન્ન ભિન્ન અભિપ્રાયોથી થતી મૂંઝવણ દૂર કરીને મોક્ષના અવિરોધ માર્ગનો નિર્ણય તે કરી શકતો નથી.

શિષ્યમાં વિવેકશક્તિ પ્રગટી નથી, છતાં પણ તે સત્ય સ્વરૂપનો ખોજક છે અને મોક્ષપ્રાપ્તિનો અદમ્ય ઉત્સાહી છે. પૂર્વોક્ત પાંચ પદનું યથાર્થ સમાધાન તેને શ્રીગુરુ પાસેથી પ્રાપ્ત થયું છે, તેથી સત્ના જાણકાર અને ઉપાસક એવા આત્માનુભવી શ્રીગુરુ પાસેથી મોક્ષનો અવિરોધ, અચૂક, યથાતથ્ય માર્ગ સમજવાની તે અભિલાષા રાખે છે; પોતાની મૂંઝવણ રજૂ કરી, સમાધાનની વિનંતી કરે છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે -

'અથવા મત દર્શન દાશાં, ભિન્ન ભિન્ન કહે ધર્મ; તેમાં પણ નાસ્તિક કહે, ધર્મ બધાએ ભર્મ. જે તે ધર્મના સ્થાપકો, કહે ઉપાય અનેક; જુદા જુદા પંથની, જુદી જુદી ટેક. ભિન્ન ભિન્ન કાને સુણી, મૂંઝવણનો નહીં પાર; તેમાં મત સાચો કચો, જેમ કરું નિરધાર. એક કહે જ્ઞાન જ વડું, એક ક્રિયાની ટેક; રાખો એમાં સત્ય શું? બને ન એહ વિવેક.'ર

* * *

૧- ડૉ. તરુલતાબાઈ મહાસતીજી, 'હું આત્મા છું', ભાગ-૨, પૃ.૧૮૨

૨- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૭ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૬૯-૩૭૨)

द्वेपी काणिमां मादि छ द्वेपा देवमां मादि।, भेगो निकार गा अने, अ(ण केट को होव. ભૂમિકા ગાથા ૯૩માં શિષ્યે કહ્યું કે જગતમાં અનેક પ્રકારનાં ધર્મમતો અને દર્શનો પ્રવર્તે છે અને તે દરેક મોક્ષના વિવિધ ઉપાયો બતાવે છે, તેમાં કયો ઉપાય યથાર્થ છે તેનો નિર્ણય તે કરી શકતો નથી.

વિચારવંત શિષ્ય અનેક ધર્મ, મત, પંથ, સંપ્રદાયનો અભ્યાસી છે. તેમનાં અભિપ્રાયો તથા વિવિધ મતમતાંતરોનો તેને ખ્યાલ છે. તેઓ દ્વારા ઉપદિષ્ટ મોક્ષના ઉપાયોમાં રહેલી ભિન્નતાથી તે મૂંઝાયો છે અને તેથી મોક્ષનો કોઈ અવિરોધ ઉપાય નથી એમ તેને ભાસે છે. પોતાની આ શંકાના સમર્થનમાં ત્રીજી દલીલ રજૂ કરતાં તે કહે છે –

जाथा। 'કઈ જાતિમાં મોક્ષ છે, કયા વેષમાં મોક્ષ; એનો નિશ્ચય ના બને, ઘણા ભેદ એ દોષ.' (૯૪)

અર્થ બ્રાહ્મણાદિ કઈ જાતિમાં મોક્ષ છે, અથવા કયા વેષમાં મોક્ષ છે, એનો નિશ્ચય પણ ન બની શકે એવો છે, કેમકે તેવા ઘણા ભેદો છે, અને એ દોષે પણ મોક્ષનો ઉપાય પ્રાપ્ત થવા યોગ્ય દેખાતો નથી. (૯૪)

જગતમાં જાતિ-વેષ અંગે અનેક મતમતાંતર પ્રવર્તે છે, તેથી કઈ જાતિથી મોક્ષ પમાય છે અને કયા વેષથી મોક્ષ પમાય છે એનો નિશ્ચય થવો અત્યંત વિકટ છે. બાહ્મણ, ક્ષત્રિય, વૈશ્ય અને શૂદ્ર એ ચાર જાતિમાંથી કોઈ માત્ર બાહ્મણને મોક્ષ યોગ્ય માને છે, તો કોઈ ચારે જાતિને મોક્ષ યોગ્ય માને છે, તો કોઈ શૂદ્રને મોક્ષ મોટે સર્વથા અનધિકારી માને છે. અહીં જાતિનો અર્થ પુરુષ, સ્ત્રી અને નપુંસક પણ કરી શકાય, કારણ કે કોઈ સ્ત્રી તથા નપુંસકનો મોક્ષ નથી સ્વીકારતા, અર્થાત્ પુરુષને જ મોક્ષ યોગ્ય માને છે. જેમ મોક્ષ યોગ્ય જાતિ માટે અનેક મતભેદ છે, તેમ વેષ માટે પણ અનેક મતભેદ પ્રવર્તે છે. કોઈ સાધુ વેષ વિના ગૃહસ્થવેષમાં પણ મોક્ષ સ્વીકારે છે, તો કોઈ સાધુવેષ વિના મોક્ષને ત્રણે કાળ અસંભવિત ગણે છે. વળી, સાધુના વેષ વિષે પણ અનેક મતભેદ પ્રવર્તી રહ્યા છે. કોઈ ભગવાં કપડાં, તો કોઈ લાલ કપડાં, તો કોઈ ધોળાં કપડાં, તો કોઈ નગ્નતારૂપ બાહ્ય લિંગ દ્વારા મોક્ષને સ્વીકારે છે. પોતે પ્રતિપાદિત કરેલી અથવા સ્વીકૃત કરેલી ધર્મિકેયા કરતા હોય તથા પોતાને માન્ય બાહ્ય લિંગ ધરાવતા હોય તે જ મોક્ષના અધિકારી છે એમ તેઓ માનતા હોય છે. તેઓ અન્ય વેષ ધરણ કરનાર ધાર્મિક

જીવોની અને તેમની ધાર્મિક ક્રિયાઓની ઠેકડી ઉડાવે છે અથવા તો ઘૃશાની નજરથી જુએ છે.

આમ, ભિન્ન ભિન્ન મત, પંથ અને સંપ્રદાયો મોક્ષનો ઉપાય ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારે બતાવે છે. જો મોક્ષનો ઉપાય કદાપિ હોય તો બધાએ તેને એકરૂપે જ બતાવવો જોઈએ, પરંતુ જાતિ-વેષ સંબંધી સૌ ભિન્ન ભિન્ન વાત કરે છે અને પોતપોતાના અભિપ્રાયને જ સાચા ઠેરવવા મથે છે. પરસ્પર વિરોધી વાતોથી શિષ્ય મૂંઝાઈ ગયો છે અને તેથી મોક્ષનો કોઈ અવિરોધ ઉપાય છે જ નહીં એમ તેને લાગે છે.

વિશેષાર્થ ભારતમાં પુરાણકાળથી જાતિભેદની વ્યવસ્થા ચાલી આવે છે. જીર્ણ અને આથમતી ગણવ્યવસ્થાના અસ્તકાળે ચતુર્વર્ણ વ્યવસ્થાનો ઉદય થયો હતો. પહેલાં તો યજ્ઞના મંત્ર-તંત્રની અનેક જિટલ વિધિ કરનારા અને લડાઈમાં નેતૃત્વ કરનારા એવા સમાજના બે સ્પષ્ટ વિભાગ સાકાર થવા લાગ્યા. આ બે વર્ગ હતા બાહ્મણ અને ક્ષત્રિય. તેની સાથે પશુપાલન અને ખેતી કરનારા સમાજનો એક વિભાગ પણ ઉદ્દભવ્યો. એ વર્ગ હતો વૈશ્યનો. આર્યોએ જે સ્થાનિક લોકોને પોતાના વર્ચસ્વમાં લીધા, તે સ્થાનિક લોકો ઉપર બાહ્મણ, ક્ષત્રિય અને વૈશ્યની સેવા કરવાની ફરજ પાડવામાં આવી. તેવા લોકો શૂદ્ર તરીકે ઓળખાયા અને આર્યસંસ્કૃતિનું તેઓ એક અંગ બની ગયા. કેટલીક સદીઓ વીતતાં, વેપારની વૃદ્ધિ થતાં વૈશ્ય લોકો ફક્ત વેપાર કરવા લાગ્યા, તેથી શૂદ્રોને સેવા કરવાની સાથે ખેતીનું અને પશુપાલનનું કામ પણ સોંપાયું. આમ, ચતુર્વર્ણ વ્યવસ્થા નિર્માઈ.

ગણસમાજમાંથી ચતુર્વર્ણ વ્યવસ્થાનું નિર્માણ થયું એ મૂળ તો એક વર્ગીય ઘટના હતી. બાહ્મણ ધર્મના, ક્ષત્રિય રાજસત્તાના અને વૈશ્ય ધન-સંપત્તિના ઇજારદાર હતા. શૂદ્રો મહેનત-મજૂરી કરનારા હતા. વ્યવસ્થિત સામાજિક જીવનપ્રણાલી અર્થે આ વિભાજન થયું હતું, પણ કાળના પરિવર્તન સાથે ધીરે ધીરે તે મૂલ્યો ઘસાતાં ગયાં. વર્ગીય સમાજમાં વિષમતા અને પરસ્પર વેરભાવના વધતી ગઈ. આરામપ્રિય શોષક વર્ગ તથા અન્યાય અને કષ્ટ ભોગવનારા શોષિત વર્ગ વચ્ચે સંઘર્ષની શરૂઆત થઈ. ચાતુર્વર્ણ્યના પ્રસ્થાપકોનો મૂળ ઉદ્દેશ તો શ્રમનું એક આદર્શ વિભાજન કરવાનો હતો, પરંતુ તેના મૂળભૂત સિદ્ધાંતો વીસરાઈ જતાં તેમાં વિકૃતિ પ્રવેશી ગઈ.

પ્રાચીન ભારતમાં સામાજિક તથા આર્થિક પરિવર્તનથી જે વિશિષ્ટ સ્વરૂપ ઉદ્દ્ભવ્યું, તેની અસર ધાર્મિક ક્ષેત્રમાં પણ જોવા મળે છે. સરળતાથી વ્યવસ્થિત જીવન જીવી શકાય તે માટે ચતુર્વર્ણ વ્યવસ્થા થઈ હતી, પરંતુ મળેલ મોટાઈને પચાવવાની તાકાત ન રહી અને પરસ્પર સંઘર્ષ શરૂ થયો. બાહ્મણો માટે હળ ચલાવવું કે કારીગરીનું કામ કરવું એ પ્રતિબંધિત ગણાયું અને બીજી બાજુ શૂદ્રો માટે જ્ઞાન મેળવવું પ્રતિબંધિત

ગણાયું. વેદનું અધ્યયન તો દૂર રહ્યું, વેદનું પઠન પણ તેઓ સાંભળે તો એ ગુના માટે તેમને દેહાંતદંડ સુધીની સજા આપવામાં આવતી. શાંકરભાષ્યના 'અપશૂદ્રાદિ' અધિકરણમાં તો ત્યાં સુધી લખવામાં આવ્યું છે કે જો શૂદ્ર વેદ સાંભળે તો તેના કાનમાં ઉકાળેલું સીસું રેડવું, બોલે તો જીભ કાપવી અને વેદ ધારણ કરે તો હૃદય તોડી નાખવું, કારણ કે શૂદ્ર તો સાક્ષાત્ સ્મશાન જ છે. શૂદ્રો માટે વેદાભ્યાસ એ પાપકાર્ય ગણાવા લાગ્યું. શૂદ્રો માટે પુષ્યસંચય કરવાનો એક જ માર્ગ હતો - કશા પણ વિરોધ વિના ચૂપચાપ ઉચ્ચ વર્ણોની સેવા કરવી. એ પુષ્યસંચયથી આવતા જનમમાં ચાતુર્વષ્યની સીડી ચડીને ઉપર જવાય. એવાં અનેક પગથિયાં ચડતાં ચડતાં આખરે મોક્ષપ્રાપ્તિ થાય. તે વખતના ધર્માચાર્યો વડે આવા પ્રકારની માન્યતાઓનો પ્રચાર કરવામાં આવતો હતો. તે વખતમાં રચાયેલાં શાસ્ત્રો પણ આ જ વાતની પુષ્ટિ કરતાં હતાં આના પરિણામે કટ્ટર બાહ્મણવાદ ઉત્પન્ન થયો. બાહ્મણવાદનો ફૂર પંજો બાકીની પ્રજાનું શોષણ કરતો રહ્યો. બધા જ ધાર્મિક અધિકારો એકમાત્ર બાહ્મણો પૂરતા જ સીમિત બનાવી દેવાયા. શૂદ્રો પ્રત્યે અસહ્ય ઉપેક્ષા તથા તિરસ્કાર ઊભા કરવામાં આવ્યાં. શૂદ્રો અને સ્ત્રીઓને હડધૂત કરવામાં આવ્યાં.

આમ, બાહ્મણો પોતાને મોક્ષના અધિકારી માનવા લાગ્યા અને અન્ય જાતિને મોક્ષ નથી એવી માન્યતાનું પ્રચલન થવા લાગ્યું. વળી, ક્ષત્રિયો પોતાને શૂરવીર અને ધર્મરક્ષા કરવામાં સમર્થ માનીને પોતાને મોક્ષમાર્ગના સાચા અધિકારી માનવા લાગ્યા અને વૈશ્યાદિ જાતિનો મોક્ષ નથી એમ કહેવા લાગ્યા. આગળ કહ્યું તેમ શૂદ્રને મોક્ષનો અધિકારી તો ગણવામાં ન આવ્યો, પરંતુ શાસ્ત્રશ્રવણનો હક પણ આપવામાં ન આવ્યો. વળી, કોઈ મત સ્ત્રીનો મોક્ષ નથી એમ પ્રતિપાદન કરવા લાગ્યા, જ્યારે અન્ય મત સ્ત્રીના મોક્ષનો સ્વીકાર કરવા લાગ્યા. આમ, જાતિને પ્રધાનતા અપાતાં ભિન્ન ભિન્ન ધર્મમતો ભિન્ન ભિન્ન મોક્ષમાર્ગ બતાવવા લાગ્યા. આથી શિષ્યના મનમાં પ્રશ્ર થયો છે કે કઈ જાતિમાં જન્મ લેવાથી મોક્ષ મળે?

વળી, વેષના સંબંધમાં પણ એવો જ કદાગ્રહ જોવામાં આવે છે. કેટલાક ધર્મમતો ગૃહસ્થવેષ તથા મુનિવેષ બન્ને દ્વારા મોક્ષ સંભિવત માને છે, તો કેટલાક ધર્મમતો માત્ર મુનિવેષે જ મોક્ષ છે એમ જણાવે છે. તેમના અભિપ્રાય મુજબ રાગાદિના ત્યાગ વિના મોક્ષ સંભવે નહીં અને બાહ્ય પરિગ્રહ તે અંતરંગ રાગાદિ પરિગ્રહનું દ્યોતક છે. તેથી સંસારની પ્રવૃત્તિનો ત્યાગ કરી, સાધુવેષ ગ્રહણ કરે નહીં ત્યાં સુધી મુક્તિ થઈ શકે નહીં. વળી, સાધુવેષે મોક્ષ માનનારાઓમાં પણ અનેક ભેદ પ્રવર્તે છે. જુદા જુદા રંગનાં કપડાંઓ, જાતજાતનાં ઉપકરણો, વિવિધ ક્રિયાકાંડો વગેરેનો તેઓ આગ્રહ રાખે છે. પોતે માનેલ બાહ્ય લિંગ સિવાય અન્ય વેષે મુક્તિ નથી એમ તેઓ

દઢપણે માને છે અને 'અમારો વેષ જ મોક્ષસાધક છે' એવો પ્રચાર પણ કરે છે. તેથી કયા વેષમાં મોક્ષ છે એનો નિર્ણય શિષ્યથી થઈ શક્તો નથી. ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા લખે છે –

'કયા વેષમાં મોક્ષ - ધોળા, પીળા, લીલા, કાળા, રાતા - કયા વેષમાં મોક્ષ છે? શ્વેતાંબર, પીતાંબર, નીલાંબર, કૃષ્ણામ્બર, રક્તામ્બર, દિગંબર એવા કયા વેષમાં - બાહ્ય લિંગમાં મોક્ષ છે? 'એનો નિશ્ચય ના બને' - એનો નિશ્ચય - નિર્ધાર - નિર્ણય પણ ન બની શકે એવો - સંભવી ન શકે એવો છે. કેમ કે તેવા તેવા પ્રકારના - તથાપ્રકારના ઘણા ભેદો, ભિશ્ન ભિશ્ન પ્રકારો છે.'

આમ, મોક્ષના ઉપાય સંબંધી અનેક મતભેદો જોવામાં આવે છે અને તેથી સાચો અને કલ્યાણકારી ઉપાય કયો તેનો નિર્ણય થઈ શકતો નથી. બધા જ ધર્મમતો એક જ પ્રકારનો માર્ગ માનતા નહીં હોવાથી મોક્ષને સિદ્ધ કરી આપનાર કોઈ અવિરોધ ઉપાયનો નિર્ણય કરવામાં શિષ્ય મુશ્કેલી અનુભવે છે, તેથી મોક્ષની પ્રાપ્તિમાં કારણભૂત એવાં જાતિ-વેષનો નિર્ણય તે શ્રીગુરુ દ્વારા કરવા ઇચ્છે છે.

પ્રકારાંતરે આ ગાથાનો અર્થ માત્ર જૈન દર્શન સંબંધી પણ થઈ શકે છે. તે આ પ્રમાણે –

જગતમાં અનેક દર્શનો પ્રવર્તે છે. તેમાં મુખ્ય છ દર્શન છે. એમાં કયા દર્શનનો અભિપ્રાય સાચો છે એ નિર્ણય થવો કઠિન છે. પાંચ પદની પોતાની શંકાનાં સમાધાન મેળવતી વખતે જૈનેતર પાંચ દર્શનના અભિપ્રાયોમાં રહેલી ત્રુટિઓ સમજાતાં શિષ્યને અન્ય દર્શનની શ્રદ્ધા રહી નથી. તેને પવિત્ર જૈન દર્શન જ સર્વાંગ પ્રતીતિ યોગ્ય લાગ્યું છે અને તેમાં શ્રદ્ધા થઈ છે. પરંતુ જૈન દર્શનમાં પણ જાતિ-વેષ સંબંધી ઘણા મતભેદો પ્રવર્તે છે. દરેક મતવાળા મોક્ષપ્રાપ્તિમાં કારણભૂત એવાં જાતિ-વેષ માટે ભિન્ન ભિન્ન અભિપ્રાય ધરાવે છે. વળી, 'અમે કહીએ છીએ એમ જ ભગવાન સર્વજ્ઞે કહ્યું છે' એમ તેઓ કહે છે. તેથી તેમાં કયો મત સાચો છે તે નક્કી થઈ શકતું નથી, માટે શિષ્યને લાગે છે કે મોક્ષનો ઉપાય હાથ આવવો કઠિન છે.

જૈન ધર્મમાં મુખ્ય બે મત છે - દિગંબર અને શ્વેતાંબર. દિગંબરમતમાં તેરાપંથી, વીસપંથી, ગુમાનપંથી, તારણપંથી વગેરે અનેક ભેદો છે. શ્વેતાંબરમતમાં મૂર્તિપૂજક, સ્થાનકવાસી, તેરાપંથી વગેરે અનેક ભેદો છે. દિગંબર અને શ્વેતાંબરના સમન્વયરૂપ યાપનીય સંપ્રદાય પણ નીકળ્યો હતો. આ બધા જ સંપ્રદાયો આત્માનાં અસ્તિત્વ, નિત્યત્વ, કર્તૃત્વ, ભોક્તૃત્વ અને મોક્ષની જે વાત કરે છે તેમાં ફરક આવતો નથી. ૧- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', પૃ.૩૧૨

પરંતુ મોક્ષપ્રાપ્તિના ઉપાય સંબંધી તેમની માન્યતામાં ફરક આવે છે. સહુ પોતપોતાની માન્યતાનો આગ્રહ રાખે છે અને તેથી પોતે બતાવેલ જાતિ અને વેષને જ મુક્તિસાધક માને છે. અહીં જાતિ એટલે પુરુષ, સ્ત્રી આદિ જાતિ. દિગંબરમત સ્ત્રીનો તથા નપુંસકનો મોક્ષ સ્વીકારતો નથી, જ્યારે શ્વેતાંબરમત તેમનો મોક્ષ સ્વીકારે છે. વેષ એટલે બાહ્ય લિંગ. તે વિષે પણ બન્ને વચ્ચે મતભેદ પ્રવર્તે છે. દિગંબરમત વસ્ત્રરહિતતાને એટલે કે નગ્નતાને જ સાધુપણાના મુખ્ય અંગ તરીકે સ્વીકારે છે, જ્યારે શ્વેતાંબરમત સફેદ કપડાં સાથે સાધુપણું સ્વીકારે છે. વળી, શ્વેતાંબરો ગૃહસ્થવેષે તથા અન્ય લિંગે, અર્થાત્ અન્ય દર્શનના અનુયાયીનો પણ મોક્ષ માને છે. જ્યારે દિગંબરો જૈન દિગંબર સાધુ સિવાય બીજા કોઈનો મોક્ષ સ્વીકારતા જ નથી. આ બન્ને સંપ્રદાયોની જાતિ-વેષ વિષયની માન્યતા તથા તેના સમર્થનમાં તેઓ જે દલીલ કરે છે તે હવે વિસ્તારથી વિચારીએ કે જેથી શિષ્યની મૂંઝવણ અને શ્રીગુરુનું સમાધાન (ગાથા ૧૦૭) યથાર્થપણે સમજી શકાય.

'કઇ જાતિમાં મોક્ષ છે' (સ્ત્રીમુક્તિ વિષે મતાંતર)

દિગંબરોની એવી માન્યતા છે કે પુરુષનો જ મોક્ષ ઘટે છે, સ્ત્રી તથા નપુંસકનો નહીં. શ્વેતાંબરોની એવી માન્યતા છે કે પુરુષ, સ્ત્રી તથા નપુંસક ત્રણેની તે જ ભવે મુક્તિ સંભવિત છે. પોતાના મતના સમર્થન અર્થે બન્ને સંપ્રદાયો તર્કયુક્ત દલીલો કરે છે. અહીં વિચારણા અર્થે ત્રણ ત્રણ દલીલો આપવામાં આવી છે. શ્વેતાંબરમતના વિભાગમાં દિગંબરમતની માન્યતા આપી શ્વેતાંબરો તે દલીલને કઈ રીતે અયથાર્થ ઘટાવે છે તે દર્શાવ્યું છે. તે જ પ્રમાણે દિગંબરમતના વિભાગમાં શ્વેતાંબરમતની માન્યતા આપી દિગંબરો તે દલીલને કઈ રીતે અયથાર્થ ઘટાવે છે તે દર્શાવ્યું છે.

શ્વેતાંબરમત

(૧) દિગંબરમતની માન્યતા મુજબ સ્ત્રીને ચારિત્ર (સંયમવ્રતરૂપ દીક્ષા) હોતું જ નથી, કારણ કે આચેલક્ય(નિર્વસ્ત્રપણા)રૂપ મૂળ ગુણ વિના ચારિત્ર ન સંભવી શકે અને સ્ત્રી તો અચેલક થઈ શકે જ નહીં. આનો ઉત્તર આપતાં શ્વેતાંબરો કહે છે કે –

જો એમ કહીએ કે સ્ત્રીને લજ્જા મટતી નથી, માટે તે અચેલક ન થઈ શકે, તેથી તેને ચારિત્ર હોય નહીં; પરંતુ એમ કહેવું યોગ્ય નથી, કારણ કે ફક્ત નગ્નતા એ જ ચારિત્રનું અંગ નથી. જો વિધિપૂર્વક ધર્મોપકરણોને ધારણ કરવામાં આવે તો ચારિત્રનો ભંગ થતો નથી.^૧

જો એમ કહીએ કે સ્ત્રીના શરીરમાં બહુ સૂક્ષ્મ જીવોની ઉત્પત્તિ થાય છે, તેના ૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'શ્રી અધ્યાત્મ મત-પરીક્ષા', શ્લોક ૧૬૩ કાંખ, યોનિ, સ્તન આદિ અવયવોમાં બહુ સૂક્ષ્મ જીવોની ઉત્પત્તિ થતી હોવાથી સ્ત્રીનું શરીર હિંસા થવાનું સ્થાન છે, માટે તેને ચારિત્ર હોય નહીં; તો એમ બોલવું અયથાર્થ છે, કારણ કે પ્રમાદયોગે થતી હિંસાને હિંસા ગણવામાં આવે છે. જ્યાં હિંસા થતી અટકાવવી શક્ય ન હોય તે હિંસા ગણાય નહીં.

જો સ્ત્રીને ચારિત્ર - સંયમવતરૂપ દીક્ષા - સાધ્વીપણું ન માનીએ તો સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક, શ્રાવિકા એ ચતુર્વિધ સંઘ કઈ રીતે સંભવે? અને જો વેષધારિણી શ્રાવિકાને જ સાધ્વી કહીએ તો ચારિત્રવંત થયા વિના વેષ ધારણ કરવો એ તો મોટી વિડંબના કહેવાય.^૧

આમ, સ્ત્રીને ચારિત્ર હોય નહીં એમ કહેવું તે માત્ર કદાગ્રહ જ છે, કારણ કે અધ્યવસાયવિશેષથી પુરુષની જેમ સ્ત્રીને પણ ચારિત્રનો ઉત્કર્ષ હોય છે. એમાં કોઈ વિરોધ નથી.

(૨) દિગંબરમતની માન્યતા મુજબ પુરુષ કરતાં સ્ત્રી હીન છે, માટે તેનો મોક્ષ સંભવતો નથી. આનો ઉત્તર આપતાં શ્વેતાંબરો કહે છે કે –

સ્ત્રીને પુરુષથી હીન કહી છે તે કઈ અપેક્ષાએ કહી છે? જો વિશિષ્ટ 'પૂર્વ' જ્ઞાનની અપેક્ષાએ સ્ત્રીને હીન કહીએ તોપણ તેનો મોક્ષ સંભવે, કારણ કે તથાવિધ જ્ઞાન વિના પણ ગુરુપરતંત્રતાએ શિવભૂતિ (માષતુષ) મુનિ આદિ ચારિત્ર પાળી મોક્ષે ગયા છે. જો લબ્ધિની અપેક્ષાએ કહીએ તોપણ કંઈ હરકત નથી, કારણ કે તથાવિધ લબ્ધિ વિના પણ ઘણા જીવો કૃતકૃત્ય થયા છે. જો ઋદ્ધિની અપેક્ષાએ કહીએ તોપણ એ અપેક્ષા પ્રતિકૂળ નથી, પણ અનુકૂળ જ છે, કારણ કે તીર્થંકરાદિની અપેક્ષાએ ગણધરાદિને અલ્પ ઋદ્ધિ છે છતાં તેઓ મુક્ત થયા છે. જો શારીરિક બળની અપેક્ષાએ કહીએ તો તે વાત પણ વાંધાજનક બનતી નથી, કારણ કે સ્ત્રી કરતાં નિર્બળ એવા જે પંગુ વગેરે અધ્યવસાયવિશેષથી મુક્તિ પામે છે. ચારિત્ર યથાશક્તિ આચરણારૂપ છે, માટે તે સ્ત્રીને પણ સંભવે છે. જો ક્રિયાવિશેષની અપેક્ષાએ સ્ત્રીને હીન કહી ક્રિયાવિશેષ વિના તેને વિશિષ્ટ નિર્જરા ન થાય એમ કહેવું તે પણ બરાબર નથી, કારણ કે ફળનો આધાર ભાવ ઉપર હોય છે અને ક્રિયા વિના ભાવ ન હોય એવું એકાંતે નથી. ર

(૩) દિગંબરમતની માન્યતા મુજબ જેમ સ્ત્રીને સાતમી નરકે જવાયોગ્ય તીવ્ર અશુભ

૧- જુઓ ઃ ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'દિક્પટ ૮૪ બોલ', બોલ ૪૪ (ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજે 'દિક્પટ ૮૪ બોલ'માં દિગંબરમતના ૮૪ બોલોનું ખંડન કર્યું છે. તેમાં સ્ત્રીલિંગસિદ્ધિ માટે ચાર કડી ૪૪-૪૭ લખી છે.)

૨- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'શ્રી અધ્યાત્મ મત-પરીક્ષા', શ્લોક ૧૬૪

પરિણામ થતાં નથી, તેમ મુક્તિને પામવા યોગ્ય તીવ્ર વિશુદ્ધ પરિણામ પણ થતાં નથી. માટે સ્ત્રીને મુક્તિનો સંભવ નથી. આનો ઉત્તર આપતાં શ્વેતાંબરો કહે છે કે –

સાતમી નરકમાં જવા યોગ્ય અશુભ મનોવીર્ય સ્ત્રીને નથી, માટે બીજી બાજ તેને મુક્તિ મેળવવા યોગ્ય તથાવિધ મનોવીર્ય થાય નહીં - આમ કહેવું યથાર્થ નથી, કારણ કે એવો નિયમ નથી કે અધોગતિએ જવાનો જેટલો અધ્યવસાય થાય તેટલો જ અધ્યવસાય ઊર્ધ્વગતિએ જવાનો થાય: તેના કરતાં વિશેષ અધ્યવસાય ન થઈ શકે. ભુજપરિસર્પ ઉત્કૃષ્ટથી બીજી નરક સુધી અધોગતિમાં જાય છે. પક્ષી ત્રીજી નરક સુધી જાય છે, ચતુષ્પદ ચોથી નરક સુધી જાય છે, ઉરગ પાંચમી નરક સુધી જાય છે, સ્ત્રી છક્રી નરક સુધી જાય છે અને પુરુષ તથા મત્સ્ય સાતમી નરક સુધી જાય છે. તે છતાં સ્ત્રી તથા પુરુષ સિવાયના પૂર્વોક્ત સર્વ પ્રાણીઓ ઉત્કર્ષથી આઠમા સહસ્ત્રાર દેવલોક સુધી અને સ્ત્રી તથા પુરુષ તો તેના કરતાં પણ આગળ જઈ શકે છે. આના ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે અધોગતિને અનુરૂપ જ પરમોત્કર્ષ હોવો જરૂરી નથી. જેવી કારણની ઉત્કર્ષતા હોય તેવી જ કાર્યની ઉત્કર્ષતા હોય એવો નિયમ છે. સ્ત્રી વિષે પણ જો યુદ્ધાદિ મહારંભરૂપ કારણનો સંભવ હોય તો તે પણ સાતમી નરક સુધી જઈ શકે. પરંતુ સ્ત્રીને તેવું કારણ વિદ્યમાન નથી હોતું, માટે સ્ત્રી સાતમી નરક સુધી જઈ શકતી નથી, પણ છઠ્ઠી નરક સુધી જાય છે. જ્યારે પુરુષ તથા મત્સ્યમાં સાતમી નરકે જવાય તેવાં કારણ વિદ્યમાન હોવાથી તેઓ સાતમી નરક સુધી જાય છે. આમ, અધોગતિએ જવા માટે પુરુષ તથા સ્ત્રીનાં કારણોની વિલક્ષણતા હોવાથી સરખું ગમન થતું નથી, પરંતુ ઊર્ધ્વગતિમાં જવા માટેના બન્નેનાં કારણો સરખાં હોવાથી સરખું ગમન થવાનો સંભવ અવશ્ય છે. જેમ પુરુષમાં શીલાદિ ગુણરૂપ ઊર્ધ્વગમનનાં કારણ હોય છે. તેમ સ્ત્રીમાં પણ હોય છે.^૧

દિગંબરમત

(૧) શ્વેતાંબરમતની માન્યતા મુજબ પુરુષની જેમ સ્ત્રીઓમાં પણ ચારિત્ર (સંયમવ્રતરૂપ દીક્ષા) સંભવે છે. રત્નત્રયરૂપ મોક્ષનું અવિકલ કારણ સ્ત્રી પ્રાપ્ત કરી શકતી હોવાથી તેનો પણ મોક્ષ સંભવે છે. એનો ઉત્તર આપતાં દિગંબરો કહે છે કે –

સ્ત્રીઓમાં નિર્ગ્રથ સંયમ(મુનિદીક્ષા)નો અભાવ હોવાથી તે અવિકલ કારણની પ્રાપ્તિ કરવામાં સમર્થ નથી. સ્ત્રી(આર્યિકા)^રનો સંયમ ગૃહસ્થની જેમ પરિગ્રહયુક્ત સંયમ છે. ગૃહસ્થસંયમથી પણ જો મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો હોય તો પછી દીક્ષાગ્રહણ વ્યર્થ સાબિત

૧- જુઓ ઃ ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'શ્રી અધ્યાત્મ મત-પરીક્ષા', શ્લોક ૧૬૬

૨- દિગંબર સંપ્રદાયમાં ગૃહવાસ ત્યજી, શ્વેત વસ્ત્ર ધારણ કરી, પીંછી-કમંડલ સાથે વિચરનારી બ્રહ્મચારિણી સ્ત્રીઓને આર્યિકા કહેવામાં આવે છે.

થાય છે. સ્ત્રી(આર્યિકા)નો સંયમ નિર્ગથસંયમ કહી શકાય નહીં, કારણ કે તે સવસ્ત્ર-સંયમ હોવાથી પરિગ્રહયુક્ત સંયમ ઠરે છે.^૧

સ્ત્રી (આર્યિકા) વસ્ત્રાદિ જે બાહ્ય પરિગ્રહ ગ્રહણ કરે છે, તે તેના અભ્યંતર રાગાદિ પરિગ્રહને દર્શાવે છે; વસ્ત્રાદિ પરિગ્રહ હોવાથી અંતરમાં મોહવિકાર છે એમ સિદ્ધ થાય છે. આમ, બાહ્ય અને અભ્યંતર પરિગ્રહ હોવાથી સ્ત્રી (આર્યિકા) સગ્રંથ છે, નિર્ગ્રંથ નથી. તેનો સંયમ ગૃહસ્થ સમાન છે. જેમ ગૃહસ્થસંયમથી મોક્ષ નથી, તેમ આર્યિકાસંયમથી પણ મોક્ષ નથી.²

(૨) શ્વેતાંબરમતની માન્યતા મુજબ આગમપ્રમાણ છે કે અનેક વીરાંગનાઓએ ઉત્કૃષ્ટ પુરુષાર્થ કરીને મોક્ષ પ્રાપ્ત કર્યો છે, જેમ કે માતા મરુદેવી, ચંદનબાળા, મૃગાવતી આદિ. ઓગણીસમા તીર્થંકર શ્રી મલ્લિનાથ ભગવાન પણ સ્ત્રીપર્યાયમાં મોક્ષ પામ્યા છે. આનો ઉત્તર આપતાં દિગંબરો કહે છે કે –

શ્વેતાંબર શાસ્ત્ર કલ્પિત છે, કારણ કે જેને કષાય હોય તેણે રચેલ શાસ્ત્ર કલ્પિત હોય છે. વસ્ત્રાદિ હોય તેને શ્રાવકધર્મ તો કહ્યો જ છે, છતાં શ્વેતાંબરમાં તેને મુનિ-ધર્મ કહે છે, તેથી તેઓ નીચી ક્રિયામાં પણ ઉચ્ચ પદ માને છે. તે માન્યતા જ તેમનું કષાયીપણું છતું કરે છે. વસ્ત્રાદિ રાખવા છતાં પણ પોતાને મુનિ માનતા હોવાથી તેમણે માન કષાય પોષ્યો. આમ, કષાયવાન થઈને વસ્ત્રાદિ હોવા છતાં પણ મુનિપણું કહ્યું છે, તેથી તે કલ્પિત વચન છે. સચેલ(સવસ્ત્ર)સંયમ હોય તોપણ મુક્તિ સંભવે છે એવું પ્રતિપાદન કરનાર આગમ અસિદ્ધ ઠરે છે. સ્ત્રીનો સવસ્ત્રસંયમ મોક્ષના અવિકલ કારણરૂપ નહીં હોવાથી સ્ત્રીમુક્તિનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે.

સ્ત્રીપર્યાયમાં જીવને ચક્રવર્તી આદિના મહા ઐશ્વર્ય પ્રાપ્ત થતાં નથી. જે સ્ત્રીને ચક્રવર્તી આદિ પદની પ્રાપ્તિ થતી નથી, તેને ઇન્દ્ર, ધરણેન્દ્ર અને ચક્રવર્તી જેને પૂજ્ય માને છે તથા જે મોક્ષના અદિતીય કારણથી યુક્ત છે એવું તીર્થંકરપદ પ્રાપ્ત હોય છે એમ કહેવું ન્યાયસંગત નથી.³

(૩) શ્વેતાંબરમતની માન્યતા મુજબ પુરુષની જેમ અધ્યવસાયવિશેષથી સ્ત્રીને પણ ચારિત્રનો ઉત્કર્ષ હોય છે. આનો ઉત્તર આપતાં દિગંબરો કહે છે કે –

જેનાથી સાતમી નરકગમન યોગ્ય પાપ ન થઈ શકે, તેનાથી મોક્ષકારણરૂપ શુદ્ધ

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'પ્રવચનસાર'ની આચાર્યશ્રી જયસેનજીકૃત ટીકા, 'તાત્પર્યવૃત્તિ', ગાથા ૨૨૫

૨- જુઓ : આચાર્યશ્રી નરેન્દ્રસેનજીકૃત, 'સિદ્ધાંતસારસંગ્રહ', અધ્યાય ૪, શ્લોક ૨૨૦

૩- જુઓ : એજન, શ્લોક ૨૪૦,૨૪૧

ભાવ ન હોઈ શકે, કારણ કે જેના ભાવ દઢ હોય તે જ ઉત્કૃષ્ટ અધર્મ કે ધર્મ ઉપજાવી શકે છે. સ્વભાવથી શિથિલપરિણામી હોવાથી જેમ પાપનો પ્રકર્ષ સ્ત્રીમાં નથી થતો. શ્વેતાંબરોનું કહેવું છે કે સ્ત્રીમાં માયાપ્રકર્ષ છે, તેથી સ્ત્રીમાં પાપનો પ્રકર્ષ છે. દિગંબરોને આ વાત માન્ય નથી. તેઓ કહે છે કે સ્ત્રીમાં માયાની બહુલતા છે, પ્રચુરતા છે; એટલે કે માયા અધિક છે, પણ માયાનો પ્રકર્ષ સ્ત્રીમાં નથી હોતો, પુરુષમાં જ તે હોય છે. આમ, પાપપ્રકર્ષ સ્ત્રીમાં ન હોવાથી રત્નત્રયરૂપ અવિકલ કારણોનો પ્રકર્ષ પણ હોતો નથી, તેથી જેમ સાતમી નરકમાં સ્ત્રીની ગિત નથી, તેમ સ્ત્રીને મોક્ષપ્રાપ્તિને યોગ્ય ઉત્કૃષ્ટ પરિણામ પણ સંભવતાં નથી. જ્ઞાનનો પ્રકર્ષ કે જે મોક્ષપ્રાપ્તિમાં કારણભૂત છે તે સ્ત્રીઓમાં નથી. વળી, પ્રત્યેક માસમાં રક્તસાવ વિદ્યમાન હોવાની શંકા રહેવાથી સ્ત્રીને ધ્યાન સંભવતું નથી, તેથી સ્ત્રીની મુક્તિ સંભવિત નથી.

'કયા વેષમાં મોક્ષ' (મુનિપણા વિષે મતાંતર)

દિગંબરોની એવી માન્યતા છે કે વસ્ત્રગ્રહણ કરવાની ઇચ્છા સંયમમાં બાધારૂપ હોવાથી મુનિને વસ્ત્રનો પરિગ્રહ હોય નહીં. તેઓ નગ્નતાને મોક્ષનો હેતુ કહે છે. આ વિષે શ્વેતાંબરોની એવી માન્યતા છે કે મુનિ વસ્ત્રાદિ ગ્રહણ કરતા હોવા છતાં તેઓ સગ્રંથ નથી, કારણ કે મુનિ વસ્ત્રાદિને માત્ર શરીરની રક્ષા માટે ગ્રહણ કરે છે. વસ્ત્રાદિમાં તેમને લેશમાત્ર મમત્વ કે મૂચ્છા નહીં હોવાથી પરમાર્થે તેઓ વસ્ત્રાદિરહિત જ કહેવાય છે. પોતાના મતના સમર્થન અર્થે દિગંબર તેમજ શ્વેતાંબર બન્ને તર્કયુક્ત દલીલો રજૂ કરે છે. અહીં વિચારણા અર્થે પાંચ પાંચ દલીલો આપવામાં આવી છે. શ્વેતાંબરમતના વિભાગમાં દિગંબરોની માન્યતા આપી શ્વેતાંબરો તેને કઈ રીતે અયથાર્થ ઘટાવે છે તે દર્શાવ્યું છે.

શ્વેતાંબરમત

(૧) દિગંબરમતની માન્યતા મુજબ જેવી દશામાં બાળકનો જન્મ થયો હોય એવી નૈસર્ગિક દશા હોય, અર્થાત્ નગ્ન દશા હોય તો જ નિર્પ્રથ મુનિપસું કહેવાય છે. વસ્ત્રની વિદ્યમાનતા કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિને બાધ કરનાર છે. જ્યાં સુધી વસ્ત્રરૂપ ઉપાધિ હોય ત્યાં સુધી અધ્યાત્મની સર્વથા સિદ્ધિ ન થાય. આનો ઉત્તર આપતાં શ્વેતાંબરો કહે છે કે –

જો વસ્ત્રરૂપ ઉપાધિ કેવળજ્ઞાનને આવરણ કરનાર છે, તો જેણે વસ્ત્ર પહેર્યા ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'સૂત્રપાહુડ', ગાથા ૨૬ નથી એવા મૃગાદિનો મોક્ષ થવો જોઈએ, કારણ કે તમે વસ્ત્રરહિતતાને મોક્ષનું નિશ્ચિત કારણ માન્યું છે. પરંતુ સર્વ નગ્ન જીવોનો મોક્ષ તો તમને પણ માન્ય નથી, માટે વસ્ત્રરહિતતા એ મોક્ષનું નિશ્ચિત કારણ સિદ્ધ થતું નથી.^૧

જો માત્ર વસ્ત્રની વિદ્યમાનતા જ કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિને બાધ કરનાર હોય તો તો વસ્ત્રને કેવળજ્ઞાનને આવરણ કરનાર જ્ઞાનાવરણીય કર્મ જેવું ગણવું જોઈએ. આ પ્રમાણે વસ્ત્રાવરણ સિદ્ધ થાય તો કોઈ પુરુષ કેવળીના મસ્તક ઉપર વસ્ત્ર મૂકે તો તેથી કરીને પણ તેમનું કેવળજ્ઞાન નાશ પામવું જોઈએ, કારણ કે તેઓ ફરીને વસ્ત્રાવરણથી આવૃત થાય છે.^ર

માત્ર રાગ કે દેષ વિના બીજું કાંઈ પણ મોક્ષને પ્રતિકૂળ નથી. આ વાત જો અંગીકાર નહીં કરો તો લોકમાં સર્વત્ર ધર્માસ્તિકાયાદિ પરદ્રવ્યો ભર્યાં છે તે બધાં દ્રવ્યો પ્રતિકૂળ કહેવાશે. રાગ-દ્રેષ જ મોક્ષને પ્રતિકૂળ છે, એ વિના બીજું કોઈ પણ પરદ્રવ્ય પ્રતિકૂળ નથી.³

(૨) દિગંબરમતની માન્યતા મુજબ વસ્ત્રગ્રહણ ઇચ્છા વિના થાય નહીં, તેથી જ્યાં સુધી શરીર ઉપર વસ્ત્ર છે ત્યાં સુધી ઇચ્છાનો સદ્ભાવ છે અને ઇચ્છા મોક્ષમાં બાધક છે. વસ્ત્રાદિ બાહ્ય પરિગ્રહ અંતરંગ રાગાદિ પરિગ્રહને સિદ્ધ કરે છે, તેથી જ્યાં સુધી જીવ વસ્ત્રાદિ પરિગ્રહથી રહિત થાય નહીં ત્યાં સુધી મોક્ષ થાય નહીં. આનો ઉત્તર આપતાં શ્વેતાંબરો કહે છે કે –

જો વસ્ત્રાદિને અહણ કરવાની ઇચ્છા જ મોક્ષપ્રાપ્તિને બાધ કરનારી હોય તો હસ્ત, પાદ વગેરેની જેમ, ઇચ્છા વિના જ અહણ કરેલા વસ્ત્રાદિનું અહણ શરીરાદિને વિષે માત્ર આધારરૂપે રહેતું હોવાથી મુનિને કોઈ પણ બાધ થતો નથી.^૪

જો એમ કહેશો કે પરિગૃહીત પરદ્રવ્ય મોક્ષનું વિરોધી છે અને અપરિગૃહીત પરદ્રવ્ય મોક્ષનું વિરોધી નથી, તો શરીરરૂપ દ્રવ્ય પરિગૃહીત છતાં કેવળજ્ઞાન કેમ ઉત્પન્ન થાય છે? જો એમ કહેશો કે શરીર ધર્મનું કારણ છે, તેથી મોક્ષનો વિરોધ નથી, તો પછી વસ્ત્રાદિ પણ ધર્મનાં સાધન હોવાથી - ચારિત્રધર્મના રક્ષણાર્થે હોવાથી મોક્ષનાં વિરોધી નથી.

(૩) દિગંબરમતની માન્યતા મુજબ વસ્ત્રાદિ રાખવાથી મૂર્ચ્છા થાય છે. તેનાં ગ્રહણ તથા

૧- જુઓ ઃ ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૬, શ્લોક ૧૮૪

ર- જુઓ ઃ એજન, શ્લોક ૧૮૬,૧૮૭

૩- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'શ્રી અધ્યાત્મ મત-પરીક્ષા', શ્લોક ૪

૪- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૬, શ્લોક ૧૮૫

ત્યાગથી આરંભ થાય છે. તેના સંરક્ષણ આદિ વિકલ્પથી રૌદ્રધ્યાન થાય છે, તેથી તે મોક્ષમાં બાધક નીવડે છે. આનો ઉત્તર આપતાં શ્વેતાંબરો કહે છે કે –

જો એમ કહેશો કે 'ધર્મોપકરણથી પરદ્રવ્યમાં રતિ થતી હોવાથી આત્મામાં રતિ થતી નથી', તો પછી શરીર પણ પરદ્રવ્ય હોવાથી તેમાં અવશ્ય રતિ થવી જ જોઈએ.

જો એમ કહેશો કે વસ્ત્રાદિના અહણ-ત્યાગથી આરંભ થાય છે, તો શરીરના હાથ-પગ આદિની ક્રિયા કરવાથી પણ આરંભ થાય છે. જો હાથ, પગ આદિની ક્રિયા જયણાથી થઈ શકે છે તો ઉપકરણને લેવા-મૂકવાની ક્રિયા પણ જયણાથી થઈ શકે છે.

જો વસ્ત્રાદિ ઉપાધિના સંરક્ષણભાવરૂપ રૌદ્રધ્યાન થઈ શકે તો શરીરના કારણે પણ તે સંભવે છે, કેમ કે સર્પ, ચોર, કંટક આદિથી શરીરની રક્ષા કરવાનાં પરિણામ ઘણાને વિષે જોવામાં આવે છે, એને તો તમે રૌદ્રધ્યાન કહેતા નથી. જો એમ કહેશો કે સાધુને શરીર ઉપર રાગ હોતો નથી, છતાં સર્પાદિથી પોતાની રક્ષા માત્ર ધર્મસાધનને માટે કરે છે, તેથી તેમનાં પરિણામ અશુભ હોતાં નથી; તેવી જ રીતે શરીરની જેમ ધર્મોપકરણ ઉપર સાધુને રાગ હોતો નથી, તેમ છતાં તેઓ ધર્મસાધનને અર્થે તેની રક્ષા કરે છે. આમ, શરીરના જેવાં જ વસ્ત્રાદિ ઠરે છે, તેથી તેની ઉત્થાપના કરવી યોગ્ય નથી.

(૪) દિગંબરમતની માન્યતા મુજબ મુનિને વસ્ત્રગ્રહણ કરવા યોગ્ય નથી, કારણ કે તે અનાચાર છે. મુનિએ સર્વ પરિગ્રહનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. વસ્ત્રાદિ પરિગ્રહનું ગ્રહણ કરવું તે ઉત્સર્ગ માર્ગ કે અપવાદ માર્ગ નથી પણ અનાચાર છે, તેથી મુનિ તેમ આચરી શકે નહીં. આનો ઉત્તર આપતાં શ્વેતાંબરો કહે છે કે –

ઉપકરણો સાધનામાં સહાયકારી હોવાથી તે પરિગ્રહ કહેવાય નહીં. જેમ ક્ષુધાની વેદનાને મટાડવા અર્થે, વૈયાવચ્ચ કરવાને અર્થે, સંયમ પાળવાને અર્થે, પ્રાણ ધારવાને અર્થે તથા સ્વાધ્યાયપ્રમુખ ધર્મકાર્યને અર્થે સાધુ આહાર કરે છે; પણ બળ વધારવા તથા રૂપાદિના અર્થે તેઓ આહાર કરતા નથી. શિયાળાની ઋતુમાં ઠંડી સહન ન થવાથી અગ્નિના તાપ વગેરેની ઇચ્છા થાય અને તેથી આર્ત્તધ્યાન ઉત્પન્ન થાય છે. તે મટાડવા અર્થે તેઓ વસ્ત્ર ધારણ કરે છે. જો વસ્ત્ર ગ્રહણ ન કરે તો ઉપર્યુક્ત પરિસ્થિતિ વખતે સંયમનો નિર્વાહ થઈ શકે નહીં. આહાર કરવામાં આજ્ઞાનું અતિક્રમણ ન માનવું અને વસ્ત્ર ગ્રહણ કરવામાં આજ્ઞાનું અતિક્રમણ ન માનવું એ વસ્ત્ર ગ્રહણ કરવામાં આજ્ઞાનું અતિક્રમણ કહેવાય નહીં, તો પછી સાપેક્ષતાથી વસ્ત્રાદિ ગ્રહણ કરવાં એ પણ કેવી રીતે અયોગ્ય કહેવાય નહીં, તો પછી સાપેક્ષતાથી વસ્ત્રાદિ ગ્રહણ કરવાં એ પણ કેવી રીતે અયોગ્ય

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'શ્રી અધ્યાત્મ મત-પરીક્ષા', શ્લોક ૭

હોઈ શકે?^૧

વળી, વસ્ત્રથી સચિત્ત પૃથ્વીકાય, ઓસ, આદિની રક્ષા થાય છે. જો વસ્ત્ર ન હોય તો ઉઘાડા શરીરની ગરમીની બાફથી તે જીવોને દુઃખ ઉત્પન્ન થાય છે. આમ, વસ્ત્રથી અન્ય જીવોની પણ રક્ષા થતી હોવાથી તે ધર્મારાધનમાં ઉપકારી છે.

(૫) દિગંબરમતની માન્યતા મુજબ સંયમી હોવાથી મુનિને લજ્જા અને દુર્ગછાને દૂર કરવા માટે વસ્ત્ર ગ્રહણ કરવાની આવશ્યકતા રહેતી નથી. લજ્જાદિ પરિષહ સહન કરવામાં મુનિ તો સાહસવંત હોવો જોઈએ. જેણે લજ્જાદિને જીત્યાં ન હોય તેને ચારિત્રનો અધિકાર નથી. આનો ઉત્તર આપતાં શ્વેતાંબરો કહે છે કે –

પુરુષવેદના ઉદયાદિ વર્જવાને માટે ચોલપટો રાખવો જરૂરી છે. નગ્નતાથી પોતાને કે અન્યને લજ્જા ઉત્પન્ન થઈ શકે છે, મનમાં ક્ષોભ ઉત્પન્ન થઈ શકે છે અને તેથી પરિણામોમાં અસ્થિરતા ઉત્પન્ન થઈ શકે છે. માટે સ્વ-પર પરિણામોની રક્ષા માટે પણ વસ્ત્ર જરૂરી છે.^ર

દિગંબ૨મત

(૧) શ્વેતાંબરમતની માન્યતા મુજબ શરીરની સ્થિતિ અર્થે તથા સંયમના નિર્વાહ અર્થે મુનિ વસ્ત્રાદિ રાખે છે, પણ તેમાં મમત્વ નથી, માટે તેને પરિગ્રહ કહેવાતો નથી. તેથી સાધુ વસ્ત્ર સહિત હોવા છતાં પણ નિર્ગ્રથ છે. આનો ઉત્તર આપતાં દિગંબરો કહે છે કે –

શ્રદ્ધાનમાં તો જ્યારથી સમ્યગ્દષ્ટિ થયો ત્યારથી જ સર્વ પરદ્રવ્યમાં મમત્વનો અભાવ થયો છે, એટલે એ અપેક્ષાએ તો ચોથા ગુણસ્થાને જ પરિગ્રહરહિત થયો; તથા પરિણામમાં જો મમત્વ નથી તો વસ્ત્ર ગ્રહણ ધારણ આદિ પ્રવૃત્તિ કેવી રીતે કરે છે? તેથી વસ્ત્રાદિ ગ્રહણ-ધારણ છૂટશે ત્યારે જ તે નિષ્પરિગ્રહી થશે.³

મુનિપદનાં મહાવત અંગીકાર કરતી વખતે નવ પ્રકારના પરિગ્રહનો ત્યાગ કરવામાં આવે છે. નવ પ્રકારના પરિગ્રહમાં વસ્ત્રાદિને પણ પરિગ્રહ ગણવામાં આવે છે. જો સર્વ પરિગ્રહનો ત્યાગ કર્યો હોય તો શા માટે વસ્ત્રનો ત્યાગ નહીં? નહીં તો માત્ર સુવર્ણાદિને જ પરિગ્રહ ગણવા યોગ્ય છે!

શ્વેતાંબરોની દલીલ છે કે જો વસ્ત્ર મોક્ષને બાધારૂપ હોય તો નિર્ગથ મુનિ ઉપર

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'શ્રી અધ્યાત્મ મત-પરીક્ષા', શ્લોક ૩૪,૩૫

૨- જુઓ : એજન, શ્લોક ૩૦

૩- જુઓ ઃ પંડિત શ્રી ટોડરમલજીકૃત, 'મોક્ષમાર્ગ પ્રકાશક', ગુર્જરાનુવાદ, સાતમી આવૃત્તિ, અધિકાર ૫, પૃ.૧૪૮

વસ્ત્ર નાખવાથી તેને આવરણ થવું ઘટે તે યથાર્થ નથી, કારણ કે ત્યાં તેમને બુદ્ધિપૂર્વક મમત્વનો અભાવ છે.^૧

(૨) શ્વેતાંબરમતની માન્યતા મુજબ કોઈ પણ પરદ્રવ્યનો સંગ જીવને મોક્ષ માટે બાધારૂપ થતો નથી, પરંતુ રાગાદિ પરભાવો જ મોક્ષપ્રાપ્તિને બાધક છે. તેથી મમત્વ-રહિત વસ્ત્રાદિ ગ્રહણ મોક્ષને બાધક નથી. આનો ઉત્તર આપતાં દિગંબરો કહે છે કે –

જે વસ્ત્રાદિ બાહ્ય પરિગ્રહ તેમણે ગ્રહણ કર્યો છે તે તેમના અભ્યંતર રાગાદિ પરિગ્રહનો દ્યોતક છે, અર્થાત્ ઇચ્છારૂપ વિકાર વિના વસ્ત્રાદિનું ગ્રહણ સંભવતું નથી.^ર

વસ્ત્ર સૂક્ષ્મ જંતુઓની ઉત્પત્તિનું કારણ છે તથા મૂર્ચ્છા-મમત્વનું પણ કારણ છે. હિંસાના કારણ એવાં વસ્ત્ર પંચમહાવ્રતધારી મહાત્માઓ દ્વારા કેવી રીતે ગ્રહણ થાય? વળી, વસ્ત્ર માટે યાચના કરવી, વસ્ત્રને ગ્રહણ કરવું, રાખવું, સીવવું અને સ્વચ્છ રાખવા પાણીથી ધોવું વગેરે દોષ વસ્ત્ર ધારણ કરવાથી ઉત્પન્ન થાય છે. આ બધા દોષ અહિંસાદિ વ્રતોને બાધક છે. જે મહાવ્રતધારક છે તેમને તો વસ્ત્ર ધારણ કરવાની ઇચ્છાના કારણે સૌથી પહેલાં મનમાં ક્ષોભ ઉત્પન્ન થાય છે.

(૩) શ્વેતાંબરમતની માન્યતા મુજબ વસ્ત્રાદિ કોઈ લઈ જાય તો ક્રોધ ન કરે, ક્ષુધાદિ લાગતાં તેને વેચે નહીં કે તેને પહેરી પ્રમાદ કરે નહીં, પણ તેના વડે પરિણામોની સ્થિરતા કરી ધર્મ જ સાધે છે, તેથી વસ્ત્ર મોક્ષને બાધક નથી. આનો ઉત્તર આપતાં દિગંબરો કહે છે કે –

બાહ્ય ક્રોધ ભલે કરો કે ન કરો, પરંતુ જેના ગ્રહણમાં ઇષ્ટ બુદ્ધિ હોય તેના વિયોગમાં અનિષ્ટ બુદ્ધિ થઈ જ જાય. જો ઇષ્ટ બુદ્ધિ ન હોય તો તેના અર્થે યાચના શા માટે કરવામાં આવે છે? વળી, તેઓ વસ્ત્રને વેચતા નથી, કારણ કે તે વેચવાથી પ્રાપ્ત થતું ધન રાખવાથી પોતાની હીનતા થશે એમ જાણી વેચતા નથી. લોકમાં જેમ ધનાદિ સખવામાં આવે છે, તેમ વસ્ત્રાદિ પણ રાખવામાં આવે છે. પરિગ્રહના ઇચ્છુક જીવોને એ બન્નેની ઇચ્છા છે, તેથી ચોરાદિના ભયાદિ કારણમાં એ બન્ને સમાન છે. વળી, પરિશામોની સ્થિરતા વડે ધર્મ સાધવાથી જ પરિગ્રહપણું ન થતું હોય તો કોઈ ઘણી શીત લાગતાં રજાઈ રાખીને પરિશામોની સ્થિરતા કરે અને ધર્મ સાધે, તો તેને પણ નિષ્પરિગ્રહી કહો? અને એમ કરવામાં આવે તો ગૃહસ્થધર્મ કરતાં મુનિધર્મમાં ક્યાં કોઈ વિશેષતા રહી? જેને પરિષહ સહેવાની શક્તિ ન હોય તે પરિગ્રહ રાખી ધર્મ સાધે

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'સમયસાર'ની આચાર્યશ્રી જયસેનજીકૃત ટીકા, 'તાત્પર્યવૃત્તિ', મળ ગાથા ૪૧૪

ર- જુઓ : આચાર્યશ્રી નરેન્દ્રસેનજીકૃત, 'સિદ્ધાંતસારસંગ્રહ', અધ્યાય ૪, શ્લોક ૨૨૧

૩- જુઓ ઃ એજન, શ્લોક ૨૨૮

તે ગૃહસ્થધર્મ અને જેનાં પરિણામ નિર્મળ થયાં હોય તથા જે પરિષહથી વ્યાકુળ ન થતા હોય તે પરિગ્રહ ન રાખી ધર્મ સાધે તે મુનિધર્મ. આટલો જ તો આ બન્ને ધર્મનો ભેદ છે.^૧

(૪) શ્વેતાંબરમતની માન્યતા મુજબ જો વસ્ત્ર ન હોય તો ઠંડી કે ગરમી લાગે અને તેથી ચારિત્રભંગરૂપ આર્ત્તધ્યાન ઉત્પન્ન થાય, તેથી તે મટાડવા અર્થે વસ્ત્ર ધારણ કરવાં જોઈએ. મુનિ જેમ ક્ષુધા અર્થે આહાર અહણ કરે છે, તેમ શીત-ઉષ્ણાદિ અર્થે વસ્ત્ર અહણ કરે છે, તેથી વસ્ત્ર સંયમનિર્વાહ અર્થે હોવાથી પરિગ્રહ નથી. આનો ઉત્તર આપતાં દિગંબરો કહે છે કે –

મુનિપદ અંગીકાર કરતાં આહારનો ત્યાગ કર્યો નથી, પણ પરિગ્રહનો ત્યાગ કર્યો છે. અન્નાદિનો સંગ્રહ કરવો એ તો પરિગ્રહ છે, પરંતુ ભોજન કરવા જાય એ પરિગ્રહ નથી. વસ્ત્રાદિનો સંગ્રહ કરવો એ પરિગ્રહ જ છે.

શ્વેતાંબરોનું કહેવું છે કે દિગંબર મુનિ શાસ્ત્ર, પીંછી આદિ રાખે છે, પરંતુ તે સંયમનિર્વાહ અર્થે હોવાથી પરિગ્રહ નથી ગણાતો. તેમ વસ્ત્ર પણ સંયમ અર્થે હોવાથી પરિગ્રહ નથી: પણ શ્રેતાંબરોનું આમ માનવું મિથ્યા છે. કારણ કે જેનાથી ઉપકાર થાય તેનું નામ ઉપકરણ છે. શીતાદિ વેદના દૂર કરનાર વસ્ત્રને જો ઉપકરણ ઠેરવવામાં આવે તો સર્વ પરિત્રહસામગ્રી ઉપકરણ નામ પામે. ખરેખર તો ધર્મમાં તેનું કશું પ્રયોજન નથી. એ તો પાપનું કારણ છે. ધર્મમાં તો જે ધર્મને ઉપકારી થાય તેનું જ નામ ઉપકરણ છે. શાસ્ત્ર જ્ઞાનનું, પીંછી દયાનું તથા કમંડલ શૌચનું કારણ છે; તેથી એ તો ધર્મસાધનામાં ઉપકારી થયાં, પણ વસ્ત્રાદિ કેવી રીતે ધર્મમાં ઉપકારી થાય? એ તો કેવળ શરીરના સુખને અર્થે જ ધારવામાં આવે છે. હા, મુનિ જો શાસ્ત્ર રાખી મહંતતા બતાવે, પીંછી વડે વાસીદું કાઢે તથા કમંડલ વડે જલાદિ પીવે કે મેલ ઉતારે તો એ સર્વ પણ પરિગ્રહ જ છે; પણ મુનિ એવાં કાર્ય કરે જ નહીં. ધર્મના સાધનને પરિગ્રહસંજ્ઞા હોતી નથી, પણ ભોગના સાધનને પરિગ્રહસંજ્ઞા હોય છે. અહીં કોઈ કહે કે 'કમંડલથી તો શરીરનો મળ જ દૂર કરવામાં આવે છે', તો તેનું સમાધાન એ છે કે મળ દૂર કરવાની ઇચ્છાથી મુનિ કમંડલ રાખતા નથી. શાસ્ત્રવાંચનાદિ કાર્ય કરે ત્યારે મલલિપ્ત હોય તો અવિનય થાય, આશાતના થાય અને લોકનિંઘ થાય, તેથી તેઓ કમડંલ રાખે છે. એ જ પ્રમાણે પીંછી આદિને ઉપકરણ સંજ્ઞા સંભવે છે, પરંતુ વસ્ત્રાદિને ઉપકરણસંજ્ઞા સંભવતી નથી. કામ-અરતિ આદિ મોહના ઉદયથી વિકાર પ્રગટ થાય તથા શીતાદિ સહન થાય નહિ, તેથી વિકારને ઢાંકવા માટે કે શીતાદિ ૧- જુઓ : પંડિત શ્રી ટોડરમલજીકૃત, 'મોક્ષમાર્ગ પ્રકાશક', ગુર્જરાનુવાદ, સાતમી આવૃત્તિ, અધિકાર ૫, પૃ.૧૪૯

મટાડવા માટે વસ્ત્રાદિ રાખી માનના ઉદયથી પોતાની મહંતતા ઇચ્છે છે, તેથી કલ્પિત યુક્તિ દ્વારા તેને ઉપકરણ ઠરાવવામાં આવે છે.^૧

જંતુઓના ઘાત ટાળવા માટે વસ્ત્ર પ્રહણ કરો છો એમ કહેશો તો નિર્વસ્ત્રસંયમ ધારણ કરનાર તીર્થકરોને હિંસાનો દોષ લાગતો હતો એવું માનવું પડશે. તીર્થકરોએ વસ્ત્રોનો ત્યાગ કર્યો હતો, એટલે તેમના ખુલ્લા અવયવોની ઉષ્ણતાથી જીવનાશ થવાથી તેઓ હિંસક હતા એવું માનવું પડશે, જે માનવું શ્વેતાંબરોને પણ અનિષ્ટ લાગશે.^ર

વળી, શ્વેતાંબરોના કથન અનુસાર વસ્ત્ર ગ્રહણ કરવામાં આવે તોપણ એનાથી સર્વ અવયવ આચ્છાદિત થતા નથી. હાથ, પગ, આંખો, નાક, કાન, મસ્તક આદિ અવયવો ખુલ્લા રહે જ છે અને એની ઉષ્ણતાથી પ્રાણીઓની હિંસા થાય જ છે.³

(૫) શ્વેતાંબરમતની માન્યતા મુજબ નગ્નતાથી પોતાને તથા સ્ત્રીઓને લજ્જા ઉત્પન્ન થાય છે અને મનમાં ક્ષોભ ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી મુનિઓએ નગ્નતા ધારણ કરવા યોગ્ય નથી. આનો ઉત્તર આપતાં દિગંબરો કહે છે કે –

મુનિઓને પોતાને લજ્જા ઉત્પન્ન થતી નથી, કારણ કે તે વીતરાગ હોય છે. અનંતાનુબંધી આદિ ત્રણ ચોકડીઓનો ઉદય નહીં હોવાથી અન્યની જેમ વ્યાકુળતા હોતી નથી. વળી, જેમનું શરીર મલિન છે તથા ગ્લાનિ ઉત્પન્ન કરવાવાળું છે, જેમનું મસ્તક કેશલોચથી યુક્ત છે એવા કૃશ શરીરવાળા નગ્ન સાધુને જોઈને સ્ત્રીના મનમાં ક્ષોભ તથા લજ્જા ઉત્પન્ન થતાં નથી.

જે મુનિ લજ્જાદિથી પીડિત છે તેમને નગ્નતા સુખદાયક નથી લાગતી, પરંતુ જે મુનિ લજ્જાદિ સહન કરી શકે છે, જે સ્ત્રીપરિષહથી ભગ્ન નથી થતા, તેમને આ નગ્નતાની યોગ્યતા જ્ઞાત હોવાથી તેઓ એને પૂર્ણતાથી નિભાવે છે. જો નગ્નતા દુઃખદાયક હોવાથી ત્યાજ્ય હોય તો જે જે પદાર્થો વગર પીડા થાય છે તે પદાર્થો અહણ કરવા જોઈએ અને તેમ હોય તો પછી સુખ અર્થે મદિરાદિ પદાર્થોને પણ અહણ કરવા જોઈએ, કારણ કે તેના વિના પણ દુઃખ થાય છે.

આમ, એક જ આપ્ત પુરુષને અનુસરતા હોવાનો દાવો કરનારા એક જ ધર્મના જુદા જુદા સંપ્રદાયો પરસ્પર વિભિન્ન માન્યતા ધરાવતા હોય તો મોક્ષમાર્ગનો નિર્ણય

૧- જુઓ : પંડિત શ્રી ટોડરમલજીકૃત, 'મોક્ષમાર્ગ પ્રકાશક', ગુર્જરાનુવાદ, સાતમી આવૃત્તિ, અધિકાર ૫, ૫,૧૫૦

૨- જુઓ : આચાર્યશ્રી નરેન્દ્રસેનજીકૃત, 'સિદ્ધાંતસારસંગ્રહ', અધ્યાય ૪, શ્લોક ૨૨૩

3- જુઓ : એજન, શ્લોક ૨૨૫ ૪- જુઓ : એજન, શ્લોક ૨૩૪ કરવો અત્યંત વિકટ થઈ પડે છે. પ્રભુ વીરને અનુસરનારા દિગંબર અને શ્વેતાંબર (મૂર્તિપૂજક, સ્થાનકવાસી, તેરાપંથી વગેરે) દરેક એમ જ માનતા હોય છે કે અમે શ્રી મહાવીર પ્રભુએ બતાવેલા પંથે ચાલી રહ્યા છીએ. છતાં બધાની માન્યતા અને પ્રવૃત્તિ એકબીજાથી કેટલી જુદી પડે છે! એક શ્રી જિનમૂર્તિનાં દર્શન-પૂજન કર્યા વિના અન્ન-જળ મોઢામાં ન નાખવાની ટેકથી યોતાને ધાર્મિક માને છે, તો બીજો જિનમૂર્તિનું અવલંબન લેવાની ઘસીને ના પાડે છે, તો કોઈ એનાથી પણ આગળ વધીને ધર્મના પ્રથમ સોપાનતુલ્ય અનુકંપાનો પણ ઉચ્છેદ કરે છે! શ્રી જિનમૂર્તિનું અવલંબન લેનારમાંથી પણ એક શ્રી જિનમૂર્તિને આભૂષણોથી શણગારીને રાજી થાય છે, તો બીજો નિર્વસ્ત્ર જિનબિંબને જ વંદનીય-પૂજનીય માને છે અને દેહ સાથેના વસ્ત્રના સંસર્ગ-અસંસર્ગ સાથે જ મુક્તિને જોડી દે છે! પરસ્પર વિરોધી આ માન્યતાઓમાંથી કઈ માન્યતા શ્રી જિનાજ્ઞા અનુસાર સમજવી? એનો નિશ્વય કરવો એ અલ્પજ્ઞ જીવ માટે ખરેખર અત્યંત વિંકટ છે.

આ પ્રમાશે મોક્ષનો ઉપાય ભિન્ન ભિન્ન મત-પંથોમાં ભિન્ન ભિન્ન બતાવ્યો છે. વળી, એક જ ધર્મમતમાં પણ અનેક ભેદો પડી ગયા છે. આ કારણે સાચો કાર્યકારી માર્ગ કયો છે તેનો નિર્ણય સુશિષ્ય કરી શકતો નથી, તેથી પોતાની મૂંઝવણ શ્રીગુરુ પાસે રજૂ કરી, કઈ જાતિમાં તથા કયા વેષમાં મોક્ષ પ્રાપ્ત થઈ શકે એમ છે એ સમજાવવા તે શ્રીગુરુને વિનંતી કરે છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

કઇ જાતિમાં મોક્ષ છે, મોક્ષ મળે કયે દેશ; કયો કાળ છે મોક્ષનો, એ સમજાવો વિશેષ. કયા લિંગમાં મોક્ષ છે, કચા વેષમાં મોક્ષ; શું વત કરીએ તો મળે, મોક્ષ સ્થાન અપરોક્ષ. જોતાં વિવિધ પ્રકારનાં, ભેદ અનેક વિચિત્ર; એનો નિશ્ચય ના બને, શું છે પરમ પવિત્ર. ગોથા ખાતું ચિત્ત આ, પામે નહીં સંતોષ; વાદી પ્રતિવાદી ત્રશાં, ઘણાં ભેદ એ દોષ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૭ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૭૩-૩૭૬)

नेश क्लेस क्लाम छे, में उपदार के शिक्षे

ગાથા ૯૪માં શિષ્યે કહ્યું કે કઈ જાતિમાં મોક્ષ થાય અને કયા વેષમાં મોક્ષ ભૂમિકા થાય એનો નિર્ણય તેનાથી થઈ શકતો નથી, કેમ કે એમાં ઘણા ભેદો છે, જે અલ્પ બુદ્ધિથી સમજવા મુશ્કેલ પડે છે.

આમ, સમ્યગ્દર્શનના નિવાસનાં સર્વોત્કૃષ્ટ છ સ્થાનકોમાંનું અંતિમ પદ 'મોક્ષનો ઉપાય' અંગે ઊઠેલી શંકાના સમર્થનમાં શિષ્યે ત્રણ દલીલો (ગાથા ૯૨-૯૩-૯૪) રજૂ કરી. પોતાની શંકાના કારણે મોક્ષના ઉપાય સંબંધી તેને જે નિર્ણય થયો છે તે જણાવતાં કહે છે –

'તેથી એમ જણાય છે, મળે ન મોક્ષ ઉપાય; ગાથા જીવાદિ જાણ્યા તણો, શો ઉપકાર જ થાય?' (૯૫)

તેથી એમ જણાય છે કે મોક્ષનો ઉપાય પ્રાપ્ત થઈ શકે એવું નથી, માટે જીવાદિનું સ્વરૂપ જાણવાથી પણ શું ઉપકાર થાય? અર્થાત્ જે પદને અર્થે જાણવાં જોઈએ તે પદનો ઉપાય પ્રાપ્ત થવો અશક્ય દેખાય છે. (૯૫)

જિજ્ઞાસુ શિષ્ય શ્રીગુરુને જણાવે છે કે પોતે અગાઉ રજૂ કરેલી ત્રણ દલીલો ઉપર વિચાર કરતાં તેને એમ લાગે છે કે મોક્ષનો કોઈ અવિરોધ ઉપાય છે નહીં. જુદા જુદા ધર્મમત, પંથ, સંપ્રદાય મોક્ષના જુદા જુદા ઉપાય બતાવે છે, તેથી મોક્ષ ઉપાયના પ્રતિપાદનમાં અનેક પ્રકારની વિભિન્નતા પ્રવર્તતી હોવાથી, મોક્ષનો કોઈ એક યથાતથ્ય ઉપાય હોય એમ જણાતું નથી અને જો મોક્ષનો કોઈ સુનિશ્ચિત કલ્યાણકારી તથા કાર્યકારી ઉપાય ન હોય તો પછી આત્માનાં અસ્તિત્વાદિ પાંચ પદનું જ્ઞાન ઉપકારક થઈ શકે નહીં.

જીવાદિનું સ્વરૂપ જાણવાનું પ્રયોજન મોક્ષપ્રાપ્તિ છે અને મોક્ષના અવિરુદ્ધ ઉપાયના અભાવે જો મોક્ષ ન થઈ શકે એમ હોય તો જીવાદિની ચર્ચા વ્યર્થ છે. શિષ્ય મોક્ષપ્રાપ્તિની રુચિવાળો હોવાથી તેણે આ ચર્ચા વાદવિવાદ કે વાક્પટુતા વધારવા માટે નથી કરી, પણ મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવા માટે કરી છે. તે દઢપણે માને છે કે જો આત્માની પૂર્ણ શુદ્ધ અવસ્થારૂપ મોક્ષ થવાનો કોઈ ઉપાય ન હોય તો આત્માનાં અસ્તિત્વાદિ પાંચ પદ જાણવાનો કોઈ અર્થ રહેતો નથી. પોતાની મૂંઝવણ શ્રીગુરુ પાસે રજૂ કરી તે તેનું નિરાકરણ ઇચ્છે છે. વિશેષાર્થ અનંત અનંત કાળમાં મનુષ્યપશું મળવું મોંઘું છે. તેમાં આર્યખંડમાં, સુસંસ્કારી શ્રાવકકુળમાં જન્મ થવો એ તેનાથી પણ દુર્લભ છે. જ્ઞાનીનાં વચનોનું શ્રવણ મળવું મહાદુર્લભ છે, સાંભળ્યા પછી બુદ્ધિમાં તેનું ગ્રહણ થવું એ તો તેના કરતાં દુર્લભ છે. ગ્રહણ થયા પછી તેની ધારણા થવી એ તો તેનાથી પણ દુર્લભ છે. શ્રવણ-ગ્રહણ-ધારણા કરીને, અંતરમાં મંથન કરીને, તત્ત્વનો નિર્ણય કરવો એ મહા મહા દુર્લભ છે. અનંત કાળથી જીવે ક્યારે પણ તત્ત્વનિર્ણય કર્યો નથી અને જ્યાં સુધી યથાર્થ સમજણ ન આવે ત્યાં સુધી એ તરફની રુચિ પણ ઉત્પન્ન થતી નથી. માટે વસ્તુવ્યવસ્થાને યથાર્થપણે સમજી, વસ્તુનું સ્વરૂપ જેવું છે તેવું યથાર્થ જાણી, તેનું શ્રદ્ધાન કરવું અત્યંત આવશ્યક છે. તત્ત્વનિર્ણય કરવો એ આત્માર્થી જીવનું મુખ્ય કર્તવ્ય છે. આત્માર્થીએ તત્ત્વનિર્ણયમાં ઉપયોગ લગાવવાનો પુરુષાર્થ કરવો ઘટે છે. ખરી જિજ્ઞાસાથી તત્ત્વનિર્ણયમાં ઉપયોગ લગાવવાનો પુરુષાર્થ કરવો ઘટે છે. ખરી જિજ્ઞાસાથી તત્ત્વનિર્ણયમાં જ પ્રયત્ન કરવા યોગ્ય છે.

નિજકલ્યાણનો અભિલાષી એવો મુમુક્ષુ જીવ પ્રબળ પ્રયત્નપૂર્વક તત્ત્વનિર્ણયનો ઉદ્યમ કરે છે. તેનું લક્ષ પોતાની આંતર પ્રકૃતિ ઉપર વિજય મેળવી, પોતાનાં વિકારો, વાસનાઓ અને તૃષ્ણામાંથી મુક્ત થવાનું હોય છે. એ લક્ષ સિદ્ધ કરવા માટે જરૂરી માર્ગદર્શનાર્થે અને પ્રેરણાર્થે તે શ્રવણ, વાંચન, પૃચ્છના, ચર્ચા વગેરે કરે છે. 'મને આત્મહિતનાં સર્વ નિમિત્તો મળ્યાં છે, માટે હું હવે તત્ત્વ અવધારીને મારા આત્માનો ઉદ્ધાર કરુંં એમ વિચારીને તત્ત્વનિર્ણયનો ઉદ્યમ કરે છે. સત્સમાગમ અને સ્વાધ્યાય દ્વારા એ નિર્ણય કરવામાં તે પોતાની સંપૂર્ણ શક્તિ લગાવી દે છે. જ્ઞાની પાસેથી તત્ત્વનો યથાર્થ ઉપદેશ સાંભળતાં તેને બહુમાન આવે છે કે 'અહો! આ વાતની તો મને ખબર જ નથી. આવી વાત તો મેં પૂર્વે કદી સાંભળી જ નથી.' જ્ઞાની પાસેથી સાંભળેલા ઉપદેશનો તે જાતે ઉદ્યમ કરીને નિર્ણય કરે છે. જાતે વિચાર કરીને તત્ત્વનિર્ણયમાં પોતાની શક્તિ લગાવવામાં ન આવે તો યથાર્થ પ્રતીતિનો લાભ થાય નહીં. પોતે જે ઉપદેશ સાંભળ્યો હોય તેનો મુમુક્ષુ જીવ એકાગ્રતાપૂર્વક વિચાર કરી, યુક્તિ, અનુમાન, પ્રત્યક્ષ આદિ પ્રમાણથી ઉપદેશાયેલાં તત્ત્વોનો જેમ છે તેમ જ નિર્ણય કરે છે. આમ, મુમુક્ષુ જીવ જ્ઞાનીનો ઉપદેશ સાંભળે છે, યાદ રાખે છે, વિચાર કરે છે અને તેના આધારે તત્ત્વનો યથાર્થ નિર્ણય કરે છે.

મુમુક્ષુ જીવની આ સર્વ જ્ઞાનપ્રવૃત્તિનો લક્ષ એકમાત્ર મોક્ષપ્રાપ્તિ હોય છે. તેનાં શ્રવણ, વાંચનાદિનો ઉદ્દેશ સ્વાત્મકલ્યાણ જ હોય છે. તે દાર્શનિક માન્યતાઓનું પરિશીલન વસ્તુવ્યવસ્થાના યથાર્થ નિર્ણય તથા તત્ત્વદષ્ટિની પરિપક્વતા અર્થે કરે છે, નહીં કે વાદવિવાદ માટે કે ખંડન-મંડન અર્થે. તે માત્ર માહિતી માટે કે વાક્પટુતા અર્થે

અધ્યયનાદિ નથી કરતો, પરંતુ પોતાના આત્મવિકાસ માટે કરે છે. તે બૌદ્ધિક વિકાસને જરૂરી તો ગણે છે, પણ એને સર્વોપરી નથી માનતો, કારણ કે તેને સમજાય છે કે જ્યાં સુધી આધ્યાત્મિક ચેતનાનો વિકાસ થતો નથી, ત્યાં સુધી જીવનનું જે પરમ સાધ્ય છે તે ઉપલબ્ધ થતું નથી; તેની ઝાંખી પણ પ્રાપ્ત થઈ શકતી નથી. બૌદ્ધિક વિકાસનો સંબંધ મગજ સાથે છે. કર્મશાસ્ત્રની પરિભાષામાં કહેવામાં આવે તો બૌદ્ધિકતાનો વિકાસ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી થાય છે. જ્ઞાનાવરણીય કર્મનું આવરણ જેટલું ખસે તેટલી બૌદ્ધિક ક્ષમતા વિકસે છે. આધ્યાત્મિક ચેતનાના વિકાસનો સંબંધ મોહના વિલય સાથે છે. કર્મશાસ્ત્રની પરિભાષામાં કહેવામાં આવે તો મોહનીય કર્મ જ્યારે ઉપશાંત થાય છે અથવા ક્ષીણ થાય છે ત્યારે આધ્યાત્મિક ચેતનાનો વિકાસ થાય છે. બુદ્ધિનો વિકાસ થવો એ અનુચિત કાર્ય નથી. તે વિકાસનો ઉપયોગ આધ્યાત્મિક વિકાસ અર્થે કરવામાં આવે તો તે આધ્યાત્મિક વિકાસમાં સહાયકારી બની શકે છે. પરંતુ માત્ર બૌદ્ધિક વિકાસને જ પોતાનો વિકાસ માનવો અથવા તે બૌદ્ધિક વિકાસને જ સર્વોપરી માનવો તે ખોટું છે. કેટલાક માત્ર બૌદ્ધિક વિકાસની ચિંતા કરે છે અને બુદ્ધિને વિકસાવવાનો પુરુષાર્થ કરે છે. તેઓ બુદ્ધિનો વિકાસ તો પુષ્કળ કરે છે, પરંતુ પોતાની આધ્યાત્મિક ચેતનાનો વિકાસ સાધવાનું લક્ષ્ય ન હોવાથી તેઓ નિજહિત સાધી શકતા નથી. આત્માર્થે પ્રયાસ કરતા ન હોવાથી તેમની સર્વ વિદ્વત્તા આડંબરમાં પરિણત થઈ જાય છે. આવા વિદ્વાનો ઘણું બાહ્ય જ્ઞાન ધરાવતા હોવા છતાં અને વિદ્યાદિમાં ખૂબ પારંગત હોવા છતાં પણ અશાંત અને દુઃખી જ રહે છે. શ્રીમદ્ પ્રકાશે છે –

'સાચી વિદ્ધતા તે કે જે આત્માર્થે હોય, જેથી આત્માર્થ સરે, આત્મત્વ સમજા<mark>ય,</mark> પમાય.'^૧

આત્માર્થનો લક્ષ ન હોય તો બૌદ્ધિક સ્તરની મહાન વિદ્વત્તા હાંસિલ કરવા છતાં આધ્યાત્મિક ચેતનાનો વિકાસ નથી થઈ શકતો. જીવમાં સુપાત્રતા પ્રગટે છે ત્યારે જ તેનામાં આધ્યાત્મિક ચેતનાનો વિકાસ થાય છે. વૈરાગ્યાદિ ગુણો દ્વારા ચિત્તશુદ્ધિ અને જીવનશુદ્ધિ થઈ હોય તો જ તેની જ્ઞાનપ્રવૃત્તિ સાર્થક થાય છે. તત્ત્વનિર્ણય કરવામાં માત્ર કોરો તર્ક અસમર્થ છે. એકલા તર્કથી કોઈ વાતના તંતનો અંત આવી શકતો નથી. ચિત્તશુદ્ધિ વિનાનું એકલું તર્કકૌશલ્ય તત્ત્વનિર્ણયમાં વિફળ રહે છે, એટલું જ નહીં તે મિથ્યા અભિમાનને પણ પોષે છે. પાંડિત્ય અર્થે તત્ત્વજ્ઞાનનો અભ્યાસ કરવો

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૬૭૦ (ઉપદેશનોંધ-૨૦)

૨- જુઓ ઃ (૧) આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજીકૃત, 'યોગદષ્ટિ સમુચ્યય', શ્લોક ૧૪૭

^{&#}x27;न चैतदेवं यत्तरमात्शुष्कतर्कग्रहो महान् । मिथ्याभिमानहेतुत्वात्त्याज्य एव मुमुक्षुभिः।।'

હોય તો લાયકાત તરીકે બુદ્ધિની કુશાગ્રતા અને તર્કની નિપુણતા પુરતી ગણાય, પરંતુ આત્માના વિકાસ અર્થે કે મોક્ષ માટે જ્ઞાનપ્રવૃત્તિ કરવી હોય ત્યારે કુશાગ્ર બુદ્ધિ અને તર્કકૌશલ્ય ઉપરાંત બીજી યોગ્યતાઓ પણ અપેક્ષિત છે. જૈન શાસ્ત્રો અનસાર આધ્યાત્મિક ક્ષેત્રે શમ, સંવેગ, નિર્વેદ, અનુકંપા અને આસ્થાયુક્ત તત્ત્વચર્ચા કે તત્ત્વ-અધ્યયન જ ઉપયોગી મનાયાં છે તથા વેદાંત ગ્રંથ અનુસાર સાધનચતુષ્ટય એટલે કે વિવેક, વૈરાગ્ય, ષટ્સંપત્તિ (શમ, દમ, ઉપરતિ, તિતિક્ષા, શ્રદ્ધા અને સમાધાન) અને મુમુક્ષતા આવશ્યક મનાયાં છે. આવી પાત્રતા પ્રગટી ન હોય તો માર્ગની સઝ પડતી નથી, ચિત્ત વિક્ષુબ્ધ રહે છે અને સ્વચ્છંદ-શિથિલતાદિ દોષોને ઉત્તેજન મળે છે. જ્યાં સુધી સંસારી પ્રસંગો અને પ્રકારોમાં જીવને વહાલપ લાગતી હોય. તીવ્રવિષયાસક્તિ વર્તતી હોય, આરંભ-પરિગ્રહનું અલ્પત્વ થયું ન હોય, ત્યાં સુધી તેને જ્ઞાનીપુરુષોનો આશય પકડાતો નથી. માટે જીવે તત્ત્વનિર્ણય કરવાની પાત્રતા કેળવવા પ્રથમ અસદ્-વૃત્તિઓનો નિરોધ અવશ્ય કરવા યોગ્ય છે. તે નિરોધ અર્થે દઢતાથી અને પ્રમાદ-રહિતપણે વૈરાગ્ય-ઉપશમનું બળ વધારવાનો પુરુષાર્થ નિરંતર કર્તવ્ય છે. વૈરાગ્ય-ઉપશમ પ્રગટતાં જીવમાં જ્ઞાનીપુરુષોનો બોધ ઝીલવાની પાત્રતા પ્રગટે છે. તેને તત્ત્વનિર્ણય કરવાની આંતરિક રૂચિ તથા જિજ્ઞાસા ઉત્પન્ન થાય છે અને તે ઉત્સાહપૂર્વક મોક્ષ-પ્રાપ્તિનો પુરુષાર્થ કરે છે. તે તત્ત્વ સં<mark>બં</mark>ધી જ્ઞાનીપુરુષોએ કરેલા નિર્ણયનું રહસ્ય સમજવા સમર્થ બને છે. આમ, વૈરાગ્ય અને ઉપશમની ભૂમિકા આવ્યા પછી જ યથાર્થ પરિણમન શક્ય બને છે. માટે જીવે વૈરાગ્ય-ઉપશમનાં ધારણ-પોષણ દ્વારા પોતાની પાત્રતા કેળવવાનો પ્રયત્ન કરવો શ્રેયસ્કર છે.

પાત્રતા વિનાનો શાસ્ત્રાભ્યાસ કેટલીક વાર બાધક અને ઘાતક પણ નીવડે છે. કોરી શાસ્ત્રચર્ચા સંસારવૃદ્ધિમાં પરિણમે એ પણ સંભવિત છે.^ર આત્મલક્ષના અભાવમાં

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'દ્વાત્રિશત દ્વાત્રિશિકા', દ્વાર ૨૩, શ્લોક ૧૩

'शीलवान् योगवानत्र श्रद्धावांस्तत्त्वविद्धवेत् ।'

सरभावो : 'श्रीभद् भगवद्गीता', अध्याय ४, श्लोङ उट 'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।'

૨- જુઓ ઃ (૧) ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મોપનિષદ્', શાસ્ત્રયોગશુદ્ધિ અધિકાર, શ્લોક ૭૨

> 'पुत्रदारादि-संसारः, धनिनां मूढ-चेतसाम् । पण्डितानां तु संसारः, शास्त्रमध्यात्मवर्जितम् ।।'

(२) ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૧, શ્લોક ૨૩ 'धनिनां पुत्रदारादि यथा संसारवृद्धये । तथा पांडित्यद्रप्तानां शास्त्रमध्यात्मवर्जितम् ।।' પ્રાપ્ત થયેલી શાસ્ત્રની જાણકારીને જ્ઞાન માની લેવામાં આવે છે. શાસ્ત્રની જાણકારી તો માત્ર ઉધાર લીધેલા શબ્દો છે. શાસ્ત્રો સત્ય તરફ માત્ર ઇશારો કરે છે. શાસ્ત્રો જાણ્યા એટલે સત્ય જાણ્યું એમ ન કહેવાય. તે તો કેવળ શબ્દો છે. શાસ્ત્રનો ઇશારો પકડી લઈ પોતામાં રહેલું સત્ય જાણે તો જ તે શબ્દો સાર્થક છે. સત્યને જાણવાને બદલે જ્યારે શાસ્ત્રાભ્યાસના જ પ્રયત્નો કરી સંતોષ માની લેવામાં આવે છે, ત્યારે બધી બાજી અવળી મંડાય છે. જો સત્યને જાણવાની ઇચ્છા હોય તો માત્ર શબ્દોથી જ સંતોષ ન મનાવો જોઈએ. 'પાણી' બોલવામાત્રથી કે વાંચવામાત્રથી તરસ મટે એવું કદી જોવા મળતું નથી. જો એમ તરસ મટી જાય તો તે સાચી તરસ હોય જ નહીં! આત્માની વાતોથી આત્મજ્ઞાનની પિપાસા વધવી જોઈએ, ઝૂરણા વધવી જોઈએ. શાસ્ત્રમાંથી આત્મજ્ઞાન મળતું નથી, આત્મજ્ઞાન તરફ પ્રયાણ કરવાનો ઇશારો અને પ્રેરણા મળે છે. તેથી શબ્દોમાં અટકી ન રહેતાં તે દ્વારા સત્યમાં પદાર્પણ થવું જોઈએ. શાસ્ત્રાભ્યાસથી તૃપ્ત ન થતાં તેના વડે આત્મપ્રાપ્તિની તૃષા જાગવી જોઈએ. પરંતુ જીવની પિપાસા શાસ્ત્ર વાંચવા–સાંભળવાથી છિપાઈ જાય છે. જડ શબ્દોની ચાતુર્યપૂર્ણ અભિવ્યક્તિને જ તે જ્ઞાનની આરાધના માની લે છે.

જીવ સિદ્ધાંતો ગોખી લે છે, આત્મા વિષે વાંચી લે છે અને પછી વિશિષ્ટ જાશકારની અદાથી, અધિકારપૂર્શ રીતે તેની વાત પણ કરે છે. સિદ્ધાંત આદિ યાદ રહી જાય એટલે તે પોતાની જાતને કંઈક સમજવા લાગે છે અને ભૂલી જાય છે કે વાસ્તવમાં તે આત્મા વિષે કાંઈ જ જાણતો નથી. તેણે તો ઉધાર મેળવેલા જ્ઞાનને પોતાનું જ્ઞાન માની લીધું છે. તેની આંખો હજી બંધ છે અને તે જે સત્યની ચર્ચા કરે છે તે તેની પોતાની આંખે નહીં, પણ કોઈ બીજાની આંખે જોવાયેલું સત્ય છે. બીજાએ જોયેલું એ સત્ય બીજાએ કરેલા ભોજન જેવું જ છે, જે અન્યને કદી પણ તૃપ્ત કરી શકે નહીં. સત્યની અનુભૂતિ અત્યંત વ્યક્તિગત અને સ્વસીમિત અનુભૂતિ છે. તેને ચોરીથી પ્રાપ્ત કરવાનો કે દાનમાં મેળવવાનો કોઈ માર્ગ છે જ નહીં. તે સંપત્તિ નથી, સ્વત્વ છે, તેથી તે બીજાને આપી પણ નથી શકાતું. સત્યને પ્રાપ્ત કરવાની માત્ર વિધિ દર્શાવી શકાય છે. પરંતુ જીવ આ તથ્યને ભૂલી, પોતે સત્યને જાણે છે એમ માની તેની ચર્ચા કરતો રહે છે. વળી, તેમાં કોઈ તેની પ્રશંસા કરે કે તેની સાથે સહમત થાય તો પોતાની 'વાહ! વાહ!' સાંભળીને તેને દઢ વિશ્વાસ થઈ જાય છે કે 'હું સત્ય વિષે ઘણું જાણું છું, હું જ્ઞાની છું.'

શાસ્ત્રની બાહ્ય જાણકારીથી આવું મિથ્યાભિમાન પ્રગટે છે, જે ઘણું ઘાતક નીવડે છે. કાર્ય જાણે પૂરું થઈ ગયું હોય એવી ભ્રાંતિજન્ય તૃપ્તિ તે અનુભવે છે. જેને સાચું જ્ઞાન ઉપલબ્ધ કરવું છે, સમ્યગ્જ્ઞાની થવું છે, તે તો ખંતીલો અને ધૈર્યવંત બની સ્વયંની શોધ કરે છે, અંતરમાં ઊંડો ઊતરે છે; પરંતુ પોપટિયો જ્ઞાની તો ચિત્તપરિવર્તન થયા પહેલાં પોતે સમ્યગ્જ્ઞાની છે એવી કલ્પનામાં રાચવા માંડે છે. તે શાસ્ત્રમાં આપેલી માહિતી મુખપાઠ કરે છે, પરંતુ વાસ્તવમાં તે કશું જ જાણતો નથી. જે સ્વયંને જાણતો ન હોય તે બીજું શું યથાર્થપણે જાણી શકવાનો હતો? તે આત્માની વાતો કરે છે, પણ તેનું દર્શન તેને થયું હોતું નથી. તે પોતાની અંદર જરાક ડોકિયું કરે તો તેને સમજાય કે પોતામાં તો કંઈ જ્ઞાન છે જ નહીં! બધું ખાલીખમ છે! પરંતુ પુસ્તકિયા જ્ઞાનને પકડીને બેઠો હોવાથી તેને એવો ભ્રમ રહે છે કે 'હું ઘણું બધું જાણું છું.' આ 'હું જાણું છું, હું સમજું છું' એવો ભ્રમ ધૂળની જેમ તેના મનના દર્પણને ઢાંકી દે છે. પછી એમાં સત્યનું દર્શન ક્યાંથી થાય? જે તત્ત્વને તે ઓળખતો નથી, પણ જેના વિષે માત્ર સાંભળ્યું છે, વાંચ્યું છે, તે અંગેની ગોખેલી માહિતીને જ તે જ્ઞાન માની લે છે; પરંતુ તે વિભાવભાવમાં રાચી રહ્યો હોવાથી તેનું સર્વ જાણપણું અજ્ઞાન જ છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

'જે વાંચવાથી, સમજવાથી તથા વિચારવાથી આત્મા વિભાવથી, વિભાવનાં કાર્યોથી અને વિભાવનાં પરિણામથી ઉદાસ ન થયો, વિભાવનો ત્યાગી ન થયો, વિભાવનો કાર્યોનો અને વિભાવનાં ફળનો ત્યાગી ન થયો, તે વાંચવું, તે વિચારવું અને તે સમજવું અજ્ઞાન છે.'^૧

ધર્મ કોઈ વૈચારિક શોધ નથી પણ આત્મચિકિત્સા છે, સ્વયંનો ઉપચાર છે. ધર્મ કોઈ તત્ત્વજ્ઞાનની શુષ્ક વાતો નથી પણ અંતઃચક્ષુને ખોલવાનો માર્ગ છે. ધર્મ આંખ ઉઘાડવાની વિધિ છે. આંખ ઊઘડી જાય તો જે છે તેનું સહેજે દર્શન થાય છે. માત્ર સિદ્ધાંતોને સ્ટવાથી આંખ નથી ઊઘડતી, તે માટે ચિત્તનું આમૂલ પરિવર્તન આવશ્યક છે. પોતાના અંતરના ઊંડાણમાં જતાં જ્ઞાનનો સ્રોત પ્રાપ્ત થાય છે. શાસ્ત્ર જે દિશા ચીંધે તે તરફ મુખ કરીને, શબ્દો જેની પ્રેરણા આપે તે તરફ પ્રયાણ કરવામાં આવે તો જ ધર્મ કર્યો કહેવાય.

આમ, સત્ય ઉપરછલ્લા વિચારથી નહીં પણ આત્મપ્રાપ્તિની પ્રજ્વલિત તૃષાથી જ મળે છે. પિપાસાથી જ્યારે પ્રાણ વ્યાકુળ બને છે ત્યારે જ સત્યની પ્રાપ્તિનો અવસર આવે છે. જ્યાં ઊંડી તરસ છે, ઉત્કટ ઝંખના છે, પ્રબળ અભીપ્સા છે, ત્યાં જ પ્રાપ્તિ થાય છે. કુતૃહલમાં સત્ય પ્રાપ્ત કરાવવાની શક્તિ નથી. કૌતુકમાં એવું જોમ નથી કે તે પ્રાણને હોડમાં મૂકી શકે, પણ અભીપ્સા હોય તો બધું હોડમાં મૂકી શકે છે. જ્યાં સુધી સત્યની કિંમત પ્રાણથી અધિક નથી અંકાતી, જ્યાં સુધી તેને માટે પોતાનું બલિદાન નથી અપાતું, ત્યાં સુધી તેનો દાવો પણ કઈ રીતે કરી શકાય? જો સત્ય ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.પદ્-પદ્ (પત્રાંક-૭૪૯)

કરતાં કોઈ પણ ચીજ અધિક લાગતી હોય તો હજી સત્યની પ્યાસ જ નથી લાગી, હજી તેની શોધનું શુભ મુહૂર્ત પણ નથી આવ્યું. તેથી પોતાના પ્રાણની બાજી લગાવી શકે એટલી તૃષા ઉત્પન્ન કરવી ઘટે છે અને તો જ પરમ તૃપ્તિનો આસ્વાદ મળે છે. કિંમત ચૂકવતી વખતે જે અચકાય છે તે પ્રાપ્તિથી વંચિત રહી જાય છે.

જીવ શાસ્ત્રો વાંચે છે. પ્રવચનો સાંભળે છે. છતાં તે સત્ય તરફ વળતો નથી. તેનું વાંચવું-સાંભળવું એ માત્ર બૌદ્ધિક ધાંધલ જ રહે છે. અભીપ્સાના અભાવમાં તે પોતાની શક્તિઓને જગાડી શકતો નથી. બૌદ્ધિક ઘોંઘાટ એટલો ઉપરછલ્લો હોય છે કે તેનાથી અંતરની સુષ્પ્ત શક્તિઓ જાગત નથી થતી. તેની શક્તિ એકત્રિત થઈ સર્જક નથી બની શકતી. બૌદ્ધિક ધાંધલથી સંતોષાઈ જવાથી 'હું જે માનું છું એ જ સત્ય છે' ઇત્યાદિ દુરાગ્રહાદિ ભાવો પોષાય છે. તેને પોતાની સમજણનું અભિમાન રહે છે. દુરાગ્રહના કારણે એકાંત પકડાઈ જાય છે તથા શુષ્કતા, અતિપરિણામીપણં, સ્વચ્છંદાદિ દોષો ઉત્પન્ન થઈ ઉગ્રતાને પામે છે. દાર્શનિક માન્યતાઓનાં ખંડન-મંડનમાં તેની શક્તિ વેડફાઈ જાય છે. વૈરાગ્યાદિ ગુણો દઢ થયા પહેલાં દર્શનોની ચર્ચામાં પડવાથી ચિત્તનું સમાધાન થવાને બદલે વિક્ષેપ વધે છે અને તત્ત્વનો યથાર્થ નિર્ધાર થઈ શકતો નથી. ઘાંચીના બળદની જેમ વાદવિવાદ તેને કશે પણ લઈ જતો નથી.^૧ ખંડન-મંડન આદિ બૌદ્ધિક કુશળતામાં જીવન વ્યર્થ વહી જાય છે. આ રીતે જ્યાં સુધી જીવમાં અભીપ્સા નથી જાગતી ત્યાં સુધી કંઈ જ સક્રિય નથી થતું, કોઈ ગતિ નથી થતી; ઊલટું ક્યારેક અનિષ્ટ પરિણામ પણ પ્રાપ્ત થાય છે. જે માત્ર વિચારને જ સ્પર્શે છે. તેનાથી સત્ય અસ્પર્શ્ય જ રહી જાય છે. તે શાબ્દિક જ્ઞાન વડે વિદ્વાન કે વક્તા બની શકે છે, પણ સાધક કે જ્ઞાની બની શકતો નથી. સત્ય માટેની અભીપ્સા હોય તો જ સત્યની અપૂર્વ યાત્રા શરૂ થાય છે.

પ્રસ્તુત ગાથા ઉપરથી એમ જણાય છે કે શિષ્યમાં આવું આત્માર્થીપશું છે. તે સ્વાનુભવની અદમ્ય ટુચિ ધરાવે છે. તે તત્ત્વની માત્ર બૌદ્ધિક સમજથી સંતુષ્ટ નથી થઈ જતો. તે શ્રીગુરુ સાથે જે ચર્ચા કરે છે તેનું પ્રયોજન વાદવિવાદ કે માહિતી ભેગી કરવાનું નથી, પરંતુ તે દારા તેશે આત્મિક લાભ મેળવવો છે, અર્થાત્ મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવો છે. તે મોક્ષપ્રાપ્તિને જ લાભ ગણે છે, માત્ર બાહ્ય જાણકારીને લાભ ગણતો નથી, કારણ કે તે જાણે છે કે જાણકારી તો સાધન છે, સાધ્ય નહીં. તે માને છે કે મોક્ષનો ઉપાય જાણ્યા વિના માત્ર પાંચ પદનું સ્વરૂપ જાણવાથી કોઈ લાભ નથી.

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજીકૃત, 'યોગબિન્દુ', શ્લોક ૬૭

^{&#}x27;वादांश्च प्रतिवादांश्च, वदन्तो निश्चितांस्तथा । तत्त्वान्तं नैव गच्छन्ति, तिलपीलकवद् गतौ ।।'

તેને શ્રીગુરુના ન્યાયયુક્ત સમાધાનથી જીવનું સ્વરૂપ અર્થાત્ જીવનું હોવાપશું, ત્રિકાળ ટકવાપશું, કર્મનું કરવાપશું, કર્મફળનું ભોગવવાપશું તથા કર્મથી મુક્ત થવાપશું - એ પાંચ પદનું સ્વરૂપ સમ્યક્ પ્રકારે જણાયું છે. પરંતુ મોક્ષના ઉપાયનો નિર્ણય કરવામાં હજી તેને મુશ્કેલી પડે છે. મોક્ષના ઉપાયના મતભેદોમાં ગૂંચવાઈ ગયો હોવાથી તે કોઈ સાચા કલ્યાશકારી ઉપાયનો નિર્ણય કરી શકતો નથી, માટે તે મૂંઝાઈને શ્રીગુરુને વિનંતીપૂર્વક કહે છે કે જીવાદિનું જ્ઞાન તો મોક્ષપ્રાપ્તિમાં ઉપકારક નીવડતું હોય તો જ તે કાર્યકારી છે, તેથી કૃષા કરીને મને મોક્ષનો ઉપાય સમજાવો. શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ લખે છે કે —

'આ ગાથામાં ભવ્ય જિજ્ઞાસુ શિષ્યની મોક્ષમાર્ગ સમજવાની ઉત્કંઠા કેટલી પ્રળળ છે, તે સહજતાએ પ્રગટ થાય છે, કારણ તેનામાં અત્યારે કોઇ મન-રોગ નથી, તેમજ ઇફલોક, પરલોક સંબંધી સુખનો કોઇ વિકલ્પ નથી, પરંતુ માત્ર મોક્ષઅભિલાષ વર્તે છે. શિષ્યનું ઉપાદાન વધુ ને વધુ બળવત્તર થતું જાય છે, તે સ્પષ્ટ દેખાય છે અને જયારે જીવની આ પ્રકારની દશા હોય, ઉત્કૃષ્ટ મુમુસુતા હોય, ત્યારે જ શ્રીગુરુની દેશનારૂપ અમૃતતુલ્ય વાણીથી બોધબીજની પ્રાપ્તિનો લાભ થાય છે.'

આમ, શિષ્યને આત્મકલ્યાણની ઉત્કંઠા છે, સ્વરૂપ પ્રત્યે પ્રેમ છે. તેને મોક્ષની યાત્રામાં જોડાવું છે, તેથી તે ઉત્સાહપૂર્વક મોક્ષના ઉપાયનો નિર્ણય કરવા પ્રયત્નશીલ છે. તે આત્માર્થીના ગુણોથી યુક્ત છે, અર્થાત્ તેનામાં જે કપાયની ઉપશાંતતા છે તે તેના મતાગ્રહરહિતતા, મધ્યસ્થતા, વિનય, સરળતા વગેરે ગુણો દ્વારા પ્રગટ થાય છે. મોક્ષપ્રાપ્તિના ઉપાય માટેની તેની તાલાવેલી તથા સંસારથી છૂટવાની તેની કામના દ્વારા તેનો સંવેગ-નિર્વેદ પ્રગટ થાય છે. શ્રીગુરુ પાસે પોતાની મૂંઝવણ રજૂ કરવી અને તેના સાચા સમાધાનની શ્રીગુરુ પાસે યાચના કરવી એ તેની શ્રીગુરુ પ્રત્યેની આસ્થા પ્રગટ કરે છે. જેમ દીકરી મોટી થતાં તેના માટે સારાં વર-ઘર શોધવાની વિચારણા અને ચિંતામાં મા-બાપને ઊંઘ ન આવે, તેમ પોતાની ચિત્તવૃત્તિને સ્વરૂપરૂપી વર-ઘર પ્રાપ્ત થયું ન હોવાથી શિષ્યને ચિંતા જાગી છે. તે અજ્ઞાન અને અજ્ઞાનજન્ય દુઃખને સદંતર નિર્મૂળ કરવા માંગે છે, તેથી તે દઢ લગનીથી તત્ત્વના યથાર્થ નિર્ણયની દિશામાં પ્રયત્નો કરતો રહે છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

તેથી એમ જણાચ છે, આ સંસાર અપાર; તરી શકાએ કેમ એ? એવો થાય વિચાર.

૧- શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ, 'આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર (વિશેષાર્થ સહિત)', ચોથી આવૃત્તિ, પૃ.૨૬૩

યથામતિ સમજાય છે, મળે ન મોક્ષ ઉપાય; મહા વિકટ આ કાર્ય તે, કયા પ્રકારે થાય. અને કદી જો થાય નહીં, જીવનું સિદ્ધસ્વરૂપ; જીવાદિ જાણ્યા તણો, શાનો મહિમા અનુપ. કર્તા ભોક્તાદિ બધાં, સ્થાનક પાંચ મનાય; પણ ઉપાય જાણ્યા વિના, શો ઉપકાર જ થાય?'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૮ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૭૭-૩૮૦)

पांचे उत्तर था भेगें, रामाधान रावांगः, रामलं मोधा उपामनों, उदम उद्देशकारे. ગાથા ૯૫માં શિષ્યે કહ્યું કે પૂર્વે ૨જૂ કરેલ ત્રણ દલીલો વિચારતાં એમ લાગે છે કે મોક્ષનો ઉપાય મળે તેવો નથી અને તેથી જીવાદિનું સ્વરૂપ જાણવાનો કોઈ લાભ નથી.

આમ, ગાથા ૯૨ થી ૯૪માં મોક્ષના ઉપાયની પોતાની શંકાના સમર્થનમાં ત્રણ દલીલ ૨જૂ કરી, શિષ્યે ગાથા ૯૫માં મોક્ષનો અવિરોધ ઉપાય સમજવાની અગત્યતા દર્શાવી. હવે આ છજ્રા પદની શંકાની અંતિમ ગાથામાં મોક્ષનો ઉપાય સમજવાની તીવ ઉત્કંઠા દર્શાવતાં શિષ્ય કહે છે –

'પાંચે ઉત્તરથી થયું, સમાધાન સર્વાંગ; આથા સમર્જુ મોક્ષ ઉપાય તો, ઉદય ઉદય સદ્ભાગ્ય.' (૯૬)

અાપે પાંચે ઉત્તર કહ્યા તેથી સર્વાંગ એટલે બધી રીતે મારી શંકાનું સમાદાન થયું છે; પણ જો મોક્ષનો ઉપાય સમજું તો સદ્ભાગ્યનો ઉદય-ઉદય થાય. અત્રે 'ઉદય' 'ઉદય' બે વાર શબ્દ છે, તે પાંચ ઉત્તરના સમાધાનથી થયેલી મોક્ષપદની જિજ્ઞાસાનું તીવ્રપણું દર્શાવે છે. (૯૬)

આત્મલાભની તીવ્ર જિજ્ઞાસાવાળા જીવનો વ્યવહાર કેવો હોય, અર્થાત્ પાત્ર જીવનાં લક્ષણ કેવાં હોય એ આ ગાથા ઉપરથી જણાઈ આવે છે. પ્રથમ પાંચ પદ સમજાયાં છે એમ શિષ્ય સ્વીકાર કરે છે તથા મોક્ષનો ઉપાય સમજવાની ઇચ્છા દર્શાવે છે. તે કહે છે કે 'આત્મસ્વરૂપ સંબંધી ઘણી શંકાઓ હતી, પણ આત્માનાં પાંચ પદની – અસ્તિત્વની, નિત્યત્વની, કર્મકર્તૃત્વની, કર્મફળભોક્તૃત્વની તથા મોક્ષત્વની શંકાઓનું આપે જે સચોટ સમાધાન આપ્યું તે વિષે અંતરથી વિચારતાં પાંચે પદ સર્વ પ્રકારે સમજાયાં છે અને તેની અંતરમાં દઢ પ્રતીતિ પણ થઈ છે. એ પાંચ પદમાં હવે કોઈ શંકા રહી નથી.'

પાંચે પદનાં શ્રીગુરુએ કરેલાં ન્યાયયુક્ત સમાધાનના કારણે શિષ્યના અંતરમાં એવી પ્રતીતિ થાય છે કે મોક્ષના ઉપાય સંબંધી શંકાનું સમાધાન પણ અવશ્ય થશે અને મોક્ષનો અવિરોધ ઉપાય અવશ્ય પ્રાપ્ત થશે. એટલે શિષ્ય આનંદમાં આવીને કહે છે કે 'જો મોક્ષનો ઉપાય સમજીશ તો મારા સદ્ભાગ્યનો ઉદય થયો છે એમ માનીશ.' ગાથામાં બે વાર 'ઉદય ઉદય' શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે, જે સુશિષ્યની જિજ્ઞાસાની

પ્રબળતા તેમજ અંતરમાં ઊછળી રહેલાં ઉલ્લસિત પરિણામો દર્શાવે છે.

જ્ઞાનપ્રાપ્તિની ભિન્ન ભિન્ન ભમિકાઓ છે. જ્ઞાનની પ્રથમ ભૂમિકામાં જીવને સંસારની નિઃસારતા તથા પોતાની અલ્પજ્ઞતા સમજાય છે અને સંસારના નાશના ઉપાયોની જાણકારી માટે જીવ સતૃશાસ્ત્ર તથા અનુભવી ગુરૂ તરફ વળે છે. આમ, આ ભૂમિકા આગમપ્રધાન છે. જ્ઞાનની બીજી ભૂમિકામાં જ્ઞાની ગુરુનો સત્સંગ, સદાચારમાં પ્રવત્તિ અને શ્રવણ-વાંચનની સાથે સાથે ચિંતન-મનન પણ હોય છે. આ ભુમિકામાં વિચારની મુખ્યતા છે. આ ભૂમિકાએ રહેલો સાધક સત્યની વ્યાપક ખોજ કરે છે. જ્ઞાનની ત્રીજી ભમિકામાં શ્રવણ અને મનન સાથે યોગાભ્યાસ ભળે છે. નિજ અધિકારીપણં વર્ધમાન કરતો કરતો સાધક પ્રયોગની ભુમિકા ઉપર આવે છે. જ્ઞાયકનો અભ્યાસ, સ્વરૂપનું અનુસંધાન, સ્વભાવની જાગૃતિ માટે પ્રયોગો કરતાં કરતાં સમત્વનો વિકાસ થાય છે. ચિત્તમાં ઊઠતાં વિચારવમળો શાંત થઈ જાય છે, સંકલ્પ-વિકલ્પની અલ્પતા થાય છે, અશુભ ભાવ મંદ પડે છે અને કર્મકૃત વ્યક્તિત્વ સાથેનો પોતાનો એકતારૂપી 'અહં' ઓગળતો જાય છે. આમ, સ્વાનુભવ માટેની ભૂમિકા તૈયાર થાય છે. રુચિપૂર્વકના શ્રવણનું ચિંતનમાં અને પરિપક્વ ચિંતનનું ભાસનમાં પરિવર્તન થતાં સાધના ઝડપથી આગેક્ચ કરે છે અને જીવ અનુભૂતિનાં દ્વાર સુધી આવી પહોંચે છે. જ્ઞાનની ચોથી ભૂમિકામાં આત્માનું સંવેદન થાય છે. શુભાશુભ ભાવથી ઉપર ઊઠી તે ધન્યાત્મા શુદ્ધ ભાવમાં સ્થિત થાય છે. પ્રારંભમાં અલ્પકાલીન, ક્વચિત્ અને કદાચિત્ પ્રાપ્ત થતો આ અનુભવ અંતર્મુખી વીતરાગી સાધના દ્વારા વધુ સુલભ અને વધુ સ્થાયી. દીર્ઘજીવી બનતો જાય છે.

આમ, જ્ઞાનપ્રાપ્તિના ક્રમમાં પ્રથમ શ્રવણ તથા વાંચન દ્વારા આત્માનું પરોક્ષ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે, પછી એનાં ચિંતન-મનન દ્વારા તેનો દઢ નિર્ણય થાય છે. શ્રીગુરુના ઉપદેશ ઉપર વિચાર કરવાથી સાધકને જાત અને જગત સંબંધી અફર નિર્ણય થાય છે. પરંતુ આ ભૂમિકા હજી બૌદ્ધિક સ્તરની છે. કેવળ બૌદ્ધિક નિર્ણય કરવાથી કાર્યસિદ્ધિ થતી નથી. યથાર્થ ચિંતનશ્રેણી સાધકને સંસારથી પરાક્ષુખ કરી સ્વસન્મુખ અવશ્ય કરે છે, પરંતુ સ્વના સાક્ષાત્કાર માટે તેના કરતાં પણ આગળ વધવું ઘટે છે. સિદ્ધાંતને બૌદ્ધિક સ્તરે યોગ્ય રીતે સમજીને, તેને પ્રયોગ દ્વારા જીવનમાં વણવા ઘટે છે. ધર્મને જીવનમાં ધારણ કરવાથી જ સફળતા પ્રાપ્ત થાય છે, માટે યથાર્થ અભ્યાસ કરવો જરૂરી છે. યોગાભ્યાસ તથા અંતર્મુખી વીતરાગી સાધના દ્વારા પ્રાપ્ત થતી ચિત્તની નિર્મળતા તથા એકાગ્રતાની કેળવણી દ્વારા આત્મતત્ત્વનું પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે. આમ, આગમથી અર્થાત્ અનુભવીઓનાં વચન દ્વારા જે જાણવા મળે તેને તર્ક દ્વારા વિશદતાથી સમજવા પ્રયત્ન થાય તથા યોગાભ્યાસથી તેની પ્રતીતિ મેળવાય તો

અતીન્દ્રિય તત્ત્વ સુધી પહોંચી શકાય છે. આગમ, અનુમાન અને યોગાભ્યાસ એ ત્રણ વડે પોતાની બુદ્ધિને કેળવીને સાધક ઉત્તમ તત્ત્વ પામી શકે છે.^૧

પ્રસ્તુત ગાથામાં શિષ્ય કહે છે કે પોતે કરેલા પ્રશ્નોના શ્રીગુરૂએ આપેલા જવાબ દ્વારા આત્માના હોવાપણા વિષે, તેના ત્રિકાળ ટકવાપણા વિષે, તેના કર્મ કરવાપણા વિષે, તેના કર્મફળ ભોગવવાપણા વિષે તથા કર્મથી સર્વથા છૂટવાપણા વિષે યથાર્થ સમજુણ મળી છે, જેનાથી તે પદો સંબંધી સર્વ પ્રકારના સંશયનું સંપૂર્ણપણે સમાધાન થયું છે અને પાંચે પદની શ્રદ્ધા દઢ થઈ છે. તે સંબંધી તેને કોઈ વિકલ્પ રહ્યો નથી. આત્મવિષયક અનેક શંકાઓનાં સમાધાન અર્થે તે નમ્રતાથી શ્રીગુર્ને પ્રશ્નો પૂછે છે. સદ્દગુરુ દ્વારા કરાતા સમાધાનનું ઉત્સાહથી અને રસપૂર્વક શ્રવણ કરી પોતાના ચંચળ મનને શાંત કરે છે અને ઉલ્લાસપૂર્વક સદ્દગુરુના ઉપદેશનું ગ્રહણ કરે છે. અવધારિત રહસ્યનું તે પુનઃ પુનઃ ચિંતન કરે છે. શ્રીગુરુના બોધની ઊંડી વિચારણાથી તેને પ્રશ્નાર્થચિહ્ન કે વિકલ્પ વગરની શ્રદ્ધા પ્રગટે છે. શ્રીગુરુએ આપેલ પાંચ પદનાં યથાર્થ સમાધાનનાં શ્રવણ-મનન દારા શિષ્યની તે સંબંધી સર્વ શંકાઓ સમગ્રપણે ટળી ગઈ હોવાથી તે શંકા ફરીથી ઉદય પામતી નથી. જો શ્રવણ કરેલા વિષયની વિચારણા થાય નહીં, અર્થાત્ શ્રીગુરુના ઉત્તર ઉપર ચિંતન-મનન થાય નહીં તો પુનઃ પુનઃ એ જ પ્રશ્નો ઊઠ્યા કરે. પરંતુ શિષ્ય વિચારવાન હોવાથી પ્રાપ્ત થયેલ સમાધાન ઉપર ચિંતન કરીને એની પ્રતીતિ કરે છે અને પોતાનું હિત સાધે છે. મોક્ષપદની શ્રદ્ધા થતાં તેને મોક્ષપદની પ્રાપ્તિ માટે પરમ કલ્યાશના પંચે પ્રયાશ કરવાની ભાવના જાગે છે.

મોક્ષનો ઉપાય સમજવો, તેનો ઉદ્યમ કરવો તે જ સુખનો ઉપાય છે એવી પ્રતીતિ થઈ હોવાથી, મોક્ષનો અચૂક ઉપાય જણાવવા માટે શિષ્ય શ્રીગુરુને વિનંતી કરે છે. મોક્ષમાં રુચિ થઈ હોવાથી તેને એના જ વિચાર આવે છે, મોક્ષનો મહિમા જાગ્યા પછી એનો જ રસ ઘોળાયા કરે છે, તેથી મોક્ષનો ઉપાય સમજવાનું જ લક્ષ રહ્યા કરે છે. દિવસ-રાત ઉપયોગ એમાં ને એમાં જ જોડાયેલો રહે છે. તેને મોક્ષના ઉપાયની પ્રાપ્તિ માટે અદમ્ય તાલાવેલી અને તીવ્ર ઝૂરણા પ્રગટી છે. તેને માટે મોક્ષના ઉપાયની ખોજ એક સમસ્યા જ નહીં પણ વેદના બની ગઈ છે. જિજ્ઞાસા જ્યારે સમસ્યપણે વ્યાકુળતામાં પલટાઈ જાય છે ત્યારે એ વ્યાકુળતા એક નવી જ યાત્રાનો પ્રારંભ કરાવે

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજીકૃત, 'યોગદષ્ટિ સમુચ્ચય', શ્લોક ૧૦૧

'आगमेनानुमानेन योगाभ्यासरसेन च । त्रिधा प्रकल्ययन्प्रज्ञां लभते तत्त्वमुत्तमम् ।।'

સરખાવો : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'શ્રીપાલરાજાનો રાસ', ખંડ ૪, ઢાળ ૭, કડી ૧૩ 'આગમ ને અનુમાનથી, વલી ધ્યાન ૨સેં ગુણ ગેઢ ૨ે; કરે જે તત્ત્વ ગવેષણા, તે પામે નહિં સંદેઢ ૨ે.' છે કે જેના ફળરૂપે આત્મસાક્ષાત્કાર થાય છે.

મોક્ષનો ઉપાય સમજવાની આવી ઉત્કંઠા અને તૈયારી સહિત તે શ્રીગુરના બોધને વારંવાર વાગોળતાં વિચારે છે કે 'આત્મા અનંત જ્ઞાનાદિ ગુલોનો દરિયો છે. પોતે પોતાના ગુણોની ઉત્કૃષ્ટ વિરાધના કરે તો નિગોદની પ્રાપ્તિ થાય અને આરાધના કરે તો મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય. આત્માનું હિત કરવા માટે અત્યારે જ આ સમયે આરાધનાનું સ્વરૂપ કેવું છે તે સમજી લેવું જોઈએ. સમજવાનો અવસર મળ્યો છે. તે વ્યતીત થઈ ગયો તો ફરી આવો અવસર મળવો મહાદુર્લભ છે. આ મનુષ્યદેહ અનંત કાળ પછી મને મળ્યો છે. તે ચિંતામણિ રત્ન જેવો છે. આ ભવને પૈસા રળવામાં અને ભોગમાં જ વેડફી નાખું અને મોક્ષના ઉપાયની સમજણ ન કરું તો મારી ચેષ્ટા કાગડો ઉડાડવા માટે ચિંતામણિ રત્નનો ઘા કરનાર મૂરખ જેવી ગણાય. માર્રુ અત્યાર સુધીનું જીવન તો મેં સંસારનાં કાર્યોમાં વેડફ્યું છે, પણ સંસારની અસારતા હવે મને સમજાઈ છે. મારે હવે જન્મ-મરણ જોઈતાં નથી.' તે શ્રીગુરુને વિનયપૂર્વક વિનંતી કરે છે કે 'મારા અંતરમાં ભવભ્રમણનો ત્રાસ લાગ્યો છે. મુક્તિ મેળવવાની મને તીવ અભિલાષા છે. પાંચે પદ સંબંધી શંકાઓના ઉત્તર આપવાનો આપે લીધેલો શ્રમ સફળ થયો છે, કારણ કે તે વિષે મને નિઃશંક પ્રતીતિ થઈ છે, સર્વાંગે સમાધાન થયું છે; પરંતુ મોક્ષના ઉપાય વિષે હજી મને શંકા રહે છે, તેથી કૃપા કરી મને એવો સચોટ ઉપાય બતાવો કે શીઘ્ર હું મારા શ્રેયને સાધી શકું. આપ મને મોક્ષમાર્ગની આરાધના કઈ રીતે કરવી તે સમજાવો કે જેથી અલ્પ સમયમાં મારો બેડો પાર થઈ જાય. આપનાં માર્ગદર્શન અને આશીર્વાદથી હું ધન્ય થઈ જઈશ.'

આત્મહિત કરવાની ખરી લગની લાગી હોવાથી શિષ્ય બીજાં બધાં જ કાર્યોની પ્રીતિ છોડીને, સંસારના મોહની પ્રવૃત્તિ છોડીને, અનાદિના વિરાધક ભાવને તજીને આરાધનાનું સ્વરૂપ સમજવાનો ઉદ્યમ કરે છે. મોક્ષની શ્રદ્ધા થવાથી તેને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાની તાલાવેલી જાગી છે, પરંતુ મોક્ષના ઉપાય સંબંધી યથાર્થ નિર્ણય ન થવાના કારણે તે યથાર્થ પુરુષાર્થ કરી શકતો નથી. મોક્ષના ઉપાયનો વિચાર કરતાં, તે સંબંધી ભિન્ન ભિન્ન મત જોઈને તે મૂંઝાઈ જાય છે અને મોક્ષનો ઉપાય કદાપિ પ્રાપ્ત થશે નહીં એવું તેને લાગ્યું હતું, પરંતુ શ્રીગુરુએ આપેલ પાંચ પદનાં સમાધાનથી ઉત્પન્ન થયેલી શ્રીગુરુ પ્રત્યેની આસ્થાના કારણે તેને શ્રીગુરુ દ્વારા મોક્ષનો ઉપાય પ્રાપ્ત થશે એવી શ્રદ્ધા જન્મે છે.

શિષ્યની શ્રીગુરુ પ્રત્યેની શ્રદ્ધા, મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાની તાલાવેલી અને મોક્ષનો ઉપાય સમજવાની તત્પરતા એટલી પ્રબળ થઈ છે કે તે ઉલ્લાસમાં આવી જઈને કહે છે કે 'જો શ્રીગુરુ દ્વારા મને મોક્ષનો ઉપાય યથાર્થપણે સમજાશે અને તેની નિઃશંક પ્રતીતિ અંતરમાં અનુભવાશે તો હું મારા સદ્ભાગ્યનો ઉદય થયો એમ માનીશ.' પોતાનું ભાગ્ય ઊઘડશે તેની ખુશાલીરૂપે શિષ્ય 'ઉદય ઉદય' એમ બે વાર ઉદય શબ્દનો પ્રયોગ કરે છે. આ પુનરુચ્ચારણ પાંચ પદની શંકાઓનાં સર્વાંગ - સંપૂર્ણ સમાધાનથી થયેલી મોક્ષ-પ્રાપ્તિની ઝંખનાની તીવ્રતા દર્શાવે છે તથા મોક્ષનો ઉપાય સમજવાની ધગશ પ્રગટ કરે છે. આત્માની પૂર્ણ, શુદ્ધ દશા પ્રગટ કરવાના ઉપાયની પ્રાપ્તિને શિષ્ય પરમ સૌભાગ્ય સમજે છે.

શિષ્યના અંતરમાં રહેલો મોક્ષના ઉપાયનો અપૂર્વ મહિમા અહીં છતો થાય છે. સંસારી જીવો લક્ષ્મી અને અધિકાર પ્રાપ્ત કરવામાં પોતાનું સદ્દભાગ્ય માને છે, જ્યારે સુશિષ્ય તો મોક્ષના ઉપાયની સમજણ પ્રાપ્ત થવાને પોતાનું સદ્ભાગ્ય માને છે. સંસારી જીવોને પોતાના અતીન્દ્રિય સુખની પ્રતીતિ ન હોવાથી, તેઓ બાહ્ય સંયોગોમાં સુખ શોધે છે. પરદ્રવ્યમાં મૂર્ચ્છા કરી સ્વાધીન, શાશ્વત સત્સુખથી વિમુખ થાય છે. તેઓ ભોગસામગ્રીને સુખસામગ્રી માને છે અને તે પ્રાપ્ત થતાં સુખ મળ્યું એમ સમજે છે, તેથી તેમનો પ્રયત્ન પણ તે મેળવવા પ્રત્યે રહે છે. તેમની દેષ્ટિએ 'સુખ કઈ રીતે પ્રાપ્ત કરાય?' એનો અર્થ થાય છે - 'ભોગસામગ્રી કઈ રીતે પ્રાપ્ત કરાય?' તેમનાં અંતરમાં 'સાચું સુખ શું છે?' એવો પ્રશ્ન જ ઊઠતો નથી, કેમ કે તેમનું અંતર્મન એમ માની બેઠું છે કે ભોગમય જીવન એટલે જ સુખી જીવન; અર્થાત્ ભોગેચ્છાની પૂર્તિવાળું જીવન જ સુખી જીવન છે. આવી મનોવૃત્તિ હોવાથી તેઓ બાહ્ય સામઝીથી જ સદ્ભાગ્યનું ધોરણ આંકે છે. તેઓ કંઈ ને કંઈ મેળવીને સુખ પ્રાપ્ત કરવા ઇચ્છે છે, તેથી તેઓ હંમેશ વધુ ને વધુ મેળવવા ઝંખે છે. વધુ મેળવવાની ઝંખનામાં પોતાની પાસે જે હોય છે એને માણવાનું પણ તેઓ ચૂકી જાય છે. તેમને હંમેશાં પ્રાપ્ત પરિસ્થિતિમાં કોઈ ને કોઈ ખામી દેખાય છે, તેથી તેમને અસંતોષ રહે છે અને અન્ય પરિસ્થિતિની ઇચ્છા જાગે છે. અન્ય પાસે કેટલાં પ્રકારનાં સુખ છે એનો તેઓ હિસાબ રાખે છે અને પોતાની પાસે જે નથી એનો અફસોસ કરે છે. તેઓ ધાર્મિક ક્રિયાઓ કરીને પણ અનુકૂળ સંયોગોની કામના કરે છે. ધાર્મિક ક્રિયાઓના ફળરૂપે ધન-ધાન્યની પ્રાપ્તિ, રાજ્યાદિ સંપદા, સુંદર સ્ત્રી, આજ્ઞાકારી પુત્ર, સેવકો, કોર્ટ-કચેરી તથા પરીક્ષામાં સફળતા, શત્રુ ઉપર વિજય વગેરેની તેઓ આકાંક્ષા રાખે છે. વત, પૂજા, પ્રભાવના પાછળ પણ તેઓ આવો આશય રાખે છે. પૈસાની રેલમછેલ હોય તો તેઓ પોતાને સુખી માને છે. રૂપ, બળ, કુળ, સત્તાદિની અધિકતા હોય તો તેઓ હરખના હિલોળે ચઢે છે અને પોતાના સદ્ભાગ્યનો ઉદય થયો છે એવું માને છે. આમ, બહિર્દષ્ટિ જીવો સંયોગાશ્રિત સુખથી પોતાને ભાગ્યશાળી માને છે.

આથી વિષરીત, આત્માર્થી જીવને પોતાના અવ્યાબાધ અનંત સુખધામ આત્મ-

સ્વરૂપનો નિર્ણય થયો હોવાથી તેને ભૌતિક સુખની મહત્તા હોતી નથી. તેને પરિગ્રહનું કોઈ પ્રયોજન હોતું નથી. તે જાણે છે કે સુખી જીવનનું રહસ્ય છે - અપરિગ્રહ. પોતાની પાસે શું શું છે એ સમૃદ્ધિનું માપ નથી, પણ પોતાને શેના શેના વગર ચાલે છે એ ખરી સમૃદ્ધિનું માપ છે. સંસારમાં બધું અનિત્ય હોવાથી શાશ્વત સુખના ઇચ્છુક એવા આત્માર્થીને તે પ્રત્યે મોહ થતો નથી. તેને સંસારનાં કાર્યોમાં વહાલય વર્તતી નથી. તેની આસક્તિ મોળી પડતી જાય છે. તેના રાગ-દ્વેષના તાંતણા લાંબા ખેંચાતા નથી. વિષયમાં લાભ નહીં પણ એકાંતે નુકસાન છે એવું સમજાયું હોવાથી પંચ ઇન્દ્રિયના વિષયો પ્રત્યેનું આકર્ષણ ઘટી જાય છે. તેને તે પ્રત્યે વૈરાગ્ય જાગે છે, નીરસપણું લાગે છે. વિષયોની અસારતા અને સંયોગોની નશ્વરતા દઢ થઈ હોવાથી પર પ્રત્યે તે ઉદાસીન થાય છે. દુર્લભ પણ ક્ષણભંગુર એવા મનુષ્યદેહમાં એકમાત્ર આત્માનો અનુભવ જ તેને કર્તવ્યરૂપ લાગે છે. તેનો પોકાર હોય છે કે 'મને મોક્ષ સિવાય કંઈ પણ જોઈતું નથી. ધન-ધાન્ય, ઘર, સ્ત્રી, પુત્ર, મિત્ર, વિષયસામગ્રી આદિ કંઈ જોઈતું નથી. ત્રણ લોકના પ્રલોભનો પણ મારા અંતરમાંથી ઊઠેલા આ અવાજને દાબી શકશે નહીં.' તેનું મનોબળ એવું તો દઢ હોય છે કે તેને વૈભવ, સંપદાદિ પ્રાપ્ત થયાં હોય તોપણ તે પ્રત્યે ઉપેક્ષા જ વર્તે છે. તેને તેની પ્રાપ્તિમાં સદ્ભાગ્ય નથી લાગતું. દુર્લભ મનુષ્યભવ પામીને ધન-સંપત્તિ મેળવવામાં કે પદ-પ્રતિષ્ઠા મેળવવામાં તેને ધન્યતા નથી લાગતી. એકાંત દુઃખથી ભરેલા વિષમ સંસારમાં શ્રીગુરુના બોધનું શ્રવણ કરવા મળે એને જ તે પોતાનું સદ્ભાગ્ય માને છે. મોક્ષના ઉપાયની સમજણ મળતાં તે ધન્યતા અનુભવે છે. તે બીજી બધી ચિંતા છોડીને મોક્ષના ઉપાયના ચિંતનમાં જ રત રહે છે.

બહિર્દેષ્ટિ જીવને પાંચે ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં, કીર્તિ આદિમાં પ્રેમ છે, તેથી તે સઘળું મળતાં પોતાને ભાગ્યશાળી માને છે. સંસારમાં જેની કિંમત છે તેની વાત કરવા-સાંભળવામાં તેને ઉમળકો આવે છે. તેવી વાત તે ઊછળી ઊછળીને કરે છે. પોતાના શરીરના, લક્ષ્મીના, માલ-મિલકતના, મોટાઈના, સત્તાના કોઈ વખાણ કરે તો તેને પ્રેમથી સાંભળે છે. તેમાં રુચિ હોવાથી પોતાના વખાણ સાંભળતાં તે કંટાળતો નથી, પણ તે હોંશ સહિત સાંભળે છે અને તેમાં તેને મીઠાશ લાગે છે. પરંતુ આત્માર્થી શિષ્યને મોક્ષમાં રુચિ હોવાથી તેને ધન, દેહ, સ્ત્રી, પુત્રાદિની વાતોમાં રસ પડતો નથી. તે મોક્ષના ઉપાયની સમજણ મળવાથી પોતાને ભાગ્યશાળી માને છે, તેથી મોક્ષનો ઉપાય સમજવા તે વારંવાર શ્રીગુરુના બોધનું શ્રવણ-મનન કરે છે. તે વિચારે છે કે 'આત્મ-કલ્યાણનો માર્ગ બતાવનાર શ્રીગુરુનો અતિ દુર્લભ સમાગમ મળ્યો છે અને તેમાં પણ જો મને ભવબંધનથી મુક્ત થવાના ઉપાયનું શ્રવણ કરવા મળે તો તેના જેવું સૌભાગ્ય શું?' આમ, કલ્યાણવાંછુ શિષ્ય મોક્ષના ઉપાયની સમજણથી પોતાના સદ્ભાગ્યનો ઉદય થશે એમ માને છે.

'સદ્ભાગ્ય' શબ્દનું અર્થઘટન કરતાં ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા લખે છે –

''સદ્ભાગ્ય' - સૌભાગનો સદ્ગુરુ ભગવાન શાસ્ત્રકારના પરમાર્થસખા સાક્ષાત્ પરમશિષ્ય મહાભાગ્ય સુભાગ્યનો ઉદય ઉદય થાય. અથવા જે કોઈ આત્મા શિષ્યભાવે આ પરમકૃપાળુ શ્રીમદ્ પરમ સદ્ગુરુ ભગવાનની અમૃતવાણી શ્રવણ કરે -મનન કરે, તે સદ્ભાગ - સદ્ભાગ્યવાન આત્માનો આત્મકલ્યાણરૂપ આત્મલાભનો ઉદય ઉદય - ઉત્તરોત્તર ચઢતી કળારૂપ પરમ આત્મલાભ થાય, અવશ્ય પામે.'

શ્રીમદે પ્રસ્તુત ગાથામાં સુશિષ્યની સત્પાત્રતા બતાવી છે. સુશિષ્યને મોક્ષપ્રાપ્તિની એવી તરસ લાગી છે કે તેને માટે અન્ય સર્વ ગૌણ થઈ જાય છે. તરસ બે પ્રકારે હોય છે. એક તરસ કે જે પોતાને અંદરથી અનુભવાય છે. તેવી તરસ લાગે ત્યારે આખું જગત ગૌણ બની જાય છે. તે જ સાચી તરસ છે. બીજી તરસ તરસ નથી, માત્ર તરસનો આભાસ છે. તે ખોટી તરસ છે. આવી ખોટી તરસથી પ્રેરાયેલી શોધ પણ નિષ્ફળ નીવડે છે. ખોટી તરસમાં લક્ષ્મી-અધિકારાદિનો મહિમા ગૌણ થયો ન હોવાથી મોક્ષની શોધ તરફ શક્તિનો પ્રવાહ વહી શકતો નથી. જીવને જ્યાં સુધી અંતરથી છૂટવાની તાલાવેલી જાગતી નથી, ત્યાં સુધી તે સાધનાપથ ઉપર આરૂઢ જ થતો નથી. જીવ પ્રિયતમાના મિલન માટે, ધન-કીર્તિની પ્રાપ્તિ માટે આતુરતા બતાવે છે, પણ આત્મસાક્ષાત્કાર માટે આતુરતા નથી બતાવતો. ઘરના દુઃખ માટે, પ્રિયજનના વિયોગ માટે, સહેજ આપત્તિ આવે તો તે માટે તે રડી પડે છે, આંસુ સારે છે, પણ આત્મ-પ્રાપ્તિ નથી થઈ તેની વેદના પણ તેને થતી નથી. જે દિવસે એ વેદના થાય છે એ દિવસથી જીવની સાધના શરૂ થાય છે.

પાત્ર જીવ આત્માને એવો ઝંખે છે કે જેવી રીતે ખેડૂત વરસાદને અને બાળક માને ઝંખે. આવી અદમ્ય ઝંખનાના કારણે આત્મામાં તેનો રસ વધતો જાય છે. તેને આત્માની એવી ધૂન લાગે છે કે 'કોઈ પણ પ્રકારે મારા આત્માને અનુભવી લઉં. તે સિવાય બીજે કશે પણ શાંતિ થવાની છે જ નહીં. અત્યાર સુધી હું પોતે પોતાને ભૂલીને વ્યથિત થયો, પણ હવે મોક્ષ સાધવાનો આ અવસર હાથ આવ્યો છે. મારે મુક્તિ જોઈએ જ છે. તેનાથી ઓછું તથા બીજું કશું મને ખપે નહીં. અત્યારે જ, આ સમયે પણ હું મોક્ષસ્વરૂપ જ છું. શ્રીગુરુની કૃપાથી હું મારું મોક્ષસ્વરૂપ પર્યાયમાં પ્રગટ કરીને જ દેખાડીશ.' આવો દઢ સંકલ્પ, આવો અફર વિશ્વાસ, આવી અણનમ ખુમારી હોવાથી તેના કદમ મોક્ષપ્રાપ્તિની દિશામાં મંડાય છે. કંટાળ્યા વિના તે સતત ઉપ પુરુષાર્થ કરે છે. ધ્યેયને એકનિષ્ઠાથી અને મક્કમતાથી વળગી રહેનાર અવશ્ય ઇચ્છિત સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરે છે. ધ્યેય ગમે તેટલું ઉચ્ચ હોય, તે પાર પાડવાનું કાર્ય ગમે ૧- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', પૃ.૩૧૩

તેટલું મુશ્કેલીભર્યું હોય, પરંતુ મક્કમ નિર્ણય કરીને આગળ વધનારને ચોક્કસ સફળતાની પ્રાપ્તિ થાય છે. મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાની ધગશવાળા આત્માને મોક્ષની પ્રાપ્તિ અવશ્ય થાય છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'પાંચે ઉત્તરથી થયું, નિરાકરણ મનમાંહી; પણ તે મોક્ષ ઉપાયને, જાણવા છે ઉત્સાહ. પાંચે શંકા ટળી જતાં, સમાધાન સર્વાગ; થયું તોય પણ એક આ, ઉપાય સાચું અંગ. યથાર્થ આપ બતાવશો, તો આવે વિશ્વાસ; સમજું મોક્ષ ઉપાય તો, થાય સત્ય શિવવાસ. અહો પ્રભુ કરુણાનિધિ, કરો ભલો આ લાગ; સહજ મળે સદુપાય તો, ઉદય ઉદય સદ્ભાગ્ય.'

* * *

૧- 'સજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૮ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૮૧-૩૮૪)

पांचे उत्तरमा १८८, कारमादिये अतात, भारी मेरिहोपारेमा, २१८० आहेत को राग 'મોક્ષનો ઉપાય નથી' એ શંકાના સમર્થનમાં ગાથા ૯૨ થી ૯૪માં શિષ્ય ભૂમિકા ત્રણ દલીલો ૨જૂ કરે છે. આવા વિકલ્પોના કારણે તે મોક્ષના ઉપાય વિષે નિ:શંક થઈ શકતો નથી. જીવાદિનું યથાર્થ સ્વરૂપ સમજાયું હોવા છતાં જો મોક્ષપ્રાપ્તિનો યથાર્થ ઉપાય ન મળે તો આ સર્વ જાણવું નિરર્થક છે એમ તે નમ્ન ભાવે ગાથા ૯૫માં જણાવે છે. ગાથા ૯૬માં તે શ્રીગુરુને નિવેદન કરે છે કે 'આપે આપેલા પાંચે પદનાં સમાધાનથી મને આત્માની સર્વાંગે યથાર્થ પ્રતીતિ થઈ છે. જો આપ મોક્ષનો ઉપાય જણાવશો તો મારા ઉપર મહદ્ ઉપકાર થશે અને એ મારો મહદ્ ભાગ્યોદય હશે.'

શ્રીગુરુ દ્વારા થયેલ પાંચે પદનાં સમાધાનથી શિષ્યમાં મોક્ષનો ઉપાય જાણવાની તાલાવેલી જાગી છે - માત્ર સમજવાની જ નહીં, પણ યથાર્થપણે સમજી તેને આચરણમાં મૂકવાની પણ! તીવ્ર મોક્ષાભિલાષા સહિત તે શ્રીગુરુ સમક્ષ હાજર થયો છે. શ્રીગુરુ પણ શિષ્યની યોગ્ય ભાવનાનો એવો જ યોગ્ય પ્રતિસાદ આપે છે.

મોક્ષનો ઉપાય જાણ્યા વગરનું સર્વ જ્ઞાન નિરર્થક ઠરતું હોવાથી છઠ્ઠું પદ અત્યંત મહત્ત્વનું છે, જેથી તે અંગેના સમાધાનનો વિસ્તાર ૨૨ ગાથા સુધી થયો છે. શિષ્યની દલીલોનું ક્રમસર સમાધાન આપવાનું શરૂ કરતાં પહેલાં તેને હૈયાધારણ આપતાં શ્રીગુરુ કહે છે –

'પાંચે ઉત્તરની થઈ, આત્મા વિષે પ્રતીત; ગાથા થાશે મોક્ષોપાયની, સહજ પ્રતીત એ રીત.'(૯૭)

પાંચે ઉત્તરની તારા આત્માને વિષે પ્રતીતિ થઈ છે, તો મોક્ષના ઉપાયની પણ એ જ રીતે તને સહજમાં પ્રતીતિ થશે. અત્રે 'થશે' અને 'સહજ' એ બે શબ્દ સદ્વુરુએ કહ્યા છે તે જેને પાંચે પદની શંકા નિવૃત્ત થઈ છે તેને મોક્ષોપાય સમજાવો કંઈ કઠણ જ નથી એમ દર્શાવવા, તથા શિષ્યનું વિશેષ જિજ્ઞાસુપણું જાણી અવશ્ય તેને મોક્ષોપાય પરિણમશે એમ ભાસવાથી (તે વચન) કહ્યાં છે; એમ સદ્વુરુનાં વચનનો આશ્ય છે. (૯૭)

શિષ્યની વિનય ભરેલી વિનંતીનો સ્વીકાર કરી, શ્રીગુરુ આશીર્વાદ આપતાં કહે છે કે 'જેમ આત્માનાં પાંચ પદનાં સમાધાનથી પાંચ પદ સંબંધી તારી સર્વ શંકા નિવૃત્ત થઈ અને તે પાંચે પદ સાચાં છે, ન્યાયયુક્ત છે અને સંદેહરહિત છે

એવો નિશ્ચય થયો છે, અર્થાત્ 'આત્મા છે', 'તે નિત્ય છે', 'છે કર્તા નિજકર્મ'; 'છે ભોક્તા', વળી 'મોક્ષ છે', એમ પાંચ પદ સંબંધી નિશ્ચયાત્મક પ્રતીતિ થઈ છે તેમ 'મોક્ષ ઉપાય છે' એવા છકા પદની પણ એ જ સુલભતાથી તને પ્રતીતિ થશે.'

અહીં 'સહજ' શબ્દના પ્રયોગથી શ્રીગુરુ એમ સૂચવે છે કે જેને આત્માનાં પાંચ પદનો યથાર્થ નિશ્ચય થયો છે, તેને છકા પદની પ્રતીતિ થવી પણ સુલભ જ છે. આવા વિચક્ષણ અને વિલક્ષણ શિષ્ય માટે મોક્ષનો ઉપાય સમજવો ખૂબ સહેલો છે. તેને તેમાં બહુ શ્રમ નહીં પડે. 'થાશો' શબ્દનો પ્રયોગ કરીને, શ્રીગુરુએ શિષ્યને મોક્ષના ઉપાયની પ્રતીતિ અવશ્ય થશે એવી મહોર મારી શિષ્યના ઉત્સાહને વધાર્યો છે. તેમણે શિષ્યને આશીર્વાદ આપ્યા છે કે 'તને મોક્ષનો ઉપાય સહેલાઈથી સમજાશે અને તારું પરમ કલ્યાણ થશે.'

ચિશેષાર્થી રિષ્યને આત્મકલ્યાણની સાચી ખેવના જાગી છે. તે શ્રીગુરુનો સમાગમ કરે છે અને પોતાના અંતરમાં ઊઠેલા ષટ્પદવિષયક પ્રશ્નોનું સમાધાન યાચે છે. તે સાચી લગનથી સદ્પુરુનો બોધ સાંભળે છે અને એને સમજવાનો પ્રયત્ન કરે છે. શ્રીગુરુએ આપેલ પાંચ પદનાં સમાધાન ઉપર વિવેકપૂર્વક, શાંત ભાવે વિચાર કરતાં તેને આત્માનાં પ્રથમ પાંચ પદની સમજણપૂર્વક શ્રદ્ધા થાય છે, જેનો એકરાર કરતાં તે ગાથા ૯૬માં કહે છે કે 'પાંચે ઉત્તરથી થયું, સમાદાન સર્વાગ'. આ વાતનો પ્રતિસાદ આપતાં શ્રીગુરુ પ્રસ્તુત ગાથામાં કહે છે કે 'પાંચે ઉત્તરની થઇ, આતમા વિષે પ્રતીત'.

અહીં શ્રીગુરુએ 'પ્રતીત' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે, જે એમ સૂચવે છે કે શિષ્યે શ્રીગુરુએ આપેલાં પાંચ પદનાં સમાધાન વિચારપૂર્વક સમજીને શ્રદ્ધાનમાં ઉતાર્યા છે. શિષ્ય કેવળ તર્કવાદી નથી, તેમજ અંધશ્રદ્ધાળુ પણ નથી. શ્રવણ કરેલા બોધ ઉપર વિચાર કરીને તેણે તે જ્ઞાનને સુદઢ બનાવ્યું છે. શ્રીગુરુએ આપેલાં સમાધાનનો સ્વીકાર પોતાના અંતરાત્મામાં થયા પછી જ તેણે કબૂલાત કરી છે. આથી વિપરીત, કેટલાક લોકો બહારથી 'હા હા' તો કહી દે છે, પણ સમજવા માંગતા નથી. આંધળૃકિયાં કરી માનવાને બદલે, જે કહેવામાં આવ્યું હોય તેને શાંતિથી સાંભળી, વિચારી, સમજવાનો પ્રયત્ન કરવો ઘટે છે. આત્માની પ્રાપ્તિ માટે વિચારથી પણ ઉપર ઊઠવાનું છે, વિચારની ભૂમિકાથી આગળ વધી નિર્વિચાર થવાનું છે. પરંતુ તેનો અર્થ એમ નથી કે વિચાર કરવો જ નહીં અથવા વિચાર કરવાનું બંધ કરી માત્ર અંધવિશ્વાસ કરી લેવો. અંધવિશ્વાસ તો વિચારની ભૂમિકા કરતાં પણ નીચી ભૂમિકા છે. અંધવિશ્વાસ તો વિચાર જ પેદા થવા દેતો નથી. અંધવિશ્વાસથી મૂઢતા ટળતી નથી, માત્ર તેને છુપાવવામાં આવે છે. મૂઢતા ટાળવી હોય તો વિચારનો આશ્રય એ જ એક અમોઘ ઉપાય છે, તેથી

વિચાર કરવા યોગ્ય છે. પરંતુ વિચારમાં જ રોકાઈ જવાનું નથી, વિચારમાં જ ખોવાઈ જવાનું નથી. વિચારની સીમા જાણવાની છે. વિચારની ભૂમિકાનું અતિક્રમણ થાય ત્યારે જ સત્યની પ્રાપ્તિ થાય છે. જે માત્ર વિચારમાં જ પ્રયાણ કરે છે, તે વિકલ્યોની અંતહીન શૃંખલામાં અટવાય છે, તેની યાત્રા ક્યારે પણ પૂરી થતી નથી. પરંતુ જે વિચાર કર્યા વિના જ અંધવિશ્વાસમાં રોકાઈ જાય છે, તેની તો યાત્રા હજુ શરૂ પણ થઈ નથી. તેથી જીવે નિર્ણય વિચારપૂર્વક જ કરવો ઘટે છે. જ્ઞાનીપુરુષોના બોધને મનન, ચિંતન, ભાવન વડે આત્મસાત્ કરવામાં આવે તો જ તે લાભનું કારણ બને છે. સત્પુરુષનાં વચનો કંઠસ્થ નહીં પણ હૃદયસ્થ કર્યા હોય, શાસ્ત્રવાંચન માત્ર બૌદ્ધિક જાણકારીરૂપ નહીં પણ અંતરની માન્યતારૂપ બન્યું હોય તો જ ઉદયપ્રસંગે તે ઉપસ્થિત રહે છે. ભાડાનું માહિતીજ્ઞાન નહીં પણ સમજણપૂર્વકની પ્રજ્ઞા જ ઉદયપ્રસંગે બચાવે છે. સમજ્યા વિના માની લેવાથી, વિચાર્યા વિના સ્વીકારી લેવાથી સિદ્ધિ થતી નથી. માત્ર ગતાનુગતિકતાથી સ્વીકાર્યું હોય અને વિચારપૂર્વક સ્વીકાર્યું ન હોય તો તે માન્યતા તૂટતાં વાર લાગતી નથી. વિચારપૂર્વક મોક્ષના ઉપાયનો સ્વીકાર કર્યો હોય તો જ લાભ થાય છે. શ્રીમદ્દ કહે છે –

'મોક્ષનો ઉપાય છે. ઓઘભાવે ખબર હશે, વિચારભાવે પ્રતીતિ આવશે.'૧

શિષ્ય મોક્ષપ્રાપ્તિનો ઇચ્છુક હોવાથી તેશે શ્રીગુરુનાં વચનોનું એકાઅતાપૂર્વક શ્રવણ કરી, તેના ઉપર ચિંતન-મનન કરી, તેની દઢતાપૂર્વક પ્રતીતિ કરી છે. પાંચે ઉત્તરથી તેને આત્મા વિષે પ્રતીતિ થઈ છે. પાંચ પદની સમજણપૂર્વકની શ્રદ્ધા પ્રગટી છે. તેને તે સંબંધી કોઈ વિકલ્પ કે સંશય રહ્યા નથી. આ સ્થિતિ શિષ્યની ઉચ્ચ પાત્રતાની દ્યોતક છે. શિષ્ય અદમ્ય ઉત્સાહવાળો, કડક વીર્યવાળો અને તીવ ધગશવાળો છે. આત્મકલ્યાણ સાધવા અર્થે તે ઉત્સાહપૂર્વક શ્રીગુરુ સમક્ષ પોતાની શંકાઓ રજૂ કરી તેમના બોધ દ્વારા આત્મસ્વરૂપનો નિર્ણય કરે છે. કોઈ સામેથી બધું બતાવે, સમજાવે, તૈયાર કરી આપે એની રાહ જુએ એવો મંદ ઉત્સાહ હોય તો નિજકાર્ય સધાતું નથી. શિષ્ય તો ઉમંગસભર છ પદની સમજણના અભ્યાસમાં રત રહે છે. તેની બુદ્ધિ ખીલેલી છે, અહણશક્તિ સારી છે, તર્ક દ્વારા તત્ત્વવિશ્લેષણ કરવાની અને મધ્યસ્થપણે પૃથક્કરણ કરવાની સમર્થતા તેનામાં છે અને તેથી તે શ્રીગુરુએ આપેલ સમાધાન અનુસાર યથાર્થ માન્યતા કરી શક્યો છે.

શ્રીગુરુના ઉત્તરથી શિષ્યને પાંચ પદની પૂર્ણ પ્રતીતિ થઈ છે. અનંત કાળમાં જે સમજાયું ન હતું તે અપૂર્વ તત્ત્વ તેને સમજાયું છે. આ જોઈને શ્રીગુરુને પ્રમોદ આવે છે. પાંચ પદ સંબંધી પોતાના બોધને પ્રતીતિરૂપ થયેલો જોઈને, પોતાના ઉદ્યમને સાર્થક ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૬૯૯ (ઉપદેશછાયા-૬) થયેલો નિહાળીને તથા શિષ્યની સત્પાત્રતા જોઈને તેમનું અંતઃકરણ પ્રસન્નતા અનુભવે છે. તેમના મુખમાંથી શિષ્ય માટે આશીર્વચન સરી પડે છે કે 'જેવી રીતે તને પાંચ પદની પ્રતીતિ થઈ, તેવી જ રીતે મોક્ષના ઉપાયની પ્રતીતિ પણ તને સુલભતાથી થશે. તારામાં ભવ્યતાનો તથાપ્રકારનો પરિપાક થયો હોવાથી, ભદ્રિક અને જિજ્ઞાસુ વૃત્તિ ઉત્પન્ન થઈ હોવાથી, મોક્ષની તમના જાગી હોવાથી, આધ્યાત્મિક દષ્ટિ ખીલી હોવાથી તને સહજપણે મોક્ષનો ઉપાય પણ સમજાશે.' શિષ્યની તત્ત્વજિજ્ઞાસા એટલી બધી પ્રબળ છે કે તેને મોક્ષનો ઉપાય સમજવામાં જરા પણ કઠિનતા નહીં અનુભવાય, તેથી 'તને મોક્ષનો ઉપાય સહજતાથી અવશ્ય પ્રતીત થશે' એમ કહી શ્રીગુરુ તેને ઉત્સાહિત કરે છે.

શ્રીગુરુ આ રીતે નિષ્કારણ કરુણાથી શિષ્યને ધીરજ બંધાવે છે, પ્રેરણા આપે છે. જ્યાં સુધી શિષ્યનું કાર્ય પૂર્ણતાને ન પામે ત્યાં સુધી શ્રીગુરુ દરેક પ્રકારે સહાય કરતા જ રહે છે. તેઓ શિષ્યને ડગલે ને પગલે અમૂલ્ય માર્ગદર્શન આપે છે, થાકી જાય ત્યારે ટેકો આપે છે, નિરાશા ઘેરી વળે ત્યારે પ્રોત્સાહિત કરે છે, પડી ભાંગે ત્યારે હૂંફ આપે છે. આ રીતે શિષ્યને અધ્યાત્મયાત્રામાં નિરંતર આગળ વધવાની પ્રેરણા અને શક્તિ શ્રીગુરુ આપતા જ રહે છે. શ્રીગુરુનો કેવો ઉપકાર! કેવી અસીમ કૃપાધારા! તેઓ શિષ્યને સમજાવે છે કે 'મોક્ષમાર્ગ અનાદિથી અનભ્યસ્ત હોવાથી વિકટ ભાસે છે, પરંતુ તું ઉત્સાહથી કાર્ય કરતો રહે. ઉત્સાહને મંદ ન કર. તારી અમાપ શક્તિને કામે લગાડ. ઉત્સાહ અને ધૈર્યથી મોક્ષના ઉપાયનું રહસ્ય સમજવા આગળ વધ. અનંતો ઉત્સાહ અને અનંતી ધીરજ, અનંતો ઉમંગ અને અનંતી પ્રતીક્ષા સહિત સતત જાગૃત રહી અભ્યાસ ચાલુ રાખશે તો અવશ્ય સફળતા મળશે જ.'

આમ, આત્માનાં પ્રથમ પાંચ પદોની શંકાઓનાં સમાધાન થયા પછી શિષ્યના અંતરમાં પ્રગટેલી નિઃશંકતા જોઈને શ્રીગુરુને ખાતરી થાય છે કે આ ભવ્ય જીવ છે, તેની કાળલબ્ધિ પાકી છે, તે મંદકષાયી થયો છે, તેને માત્ર મોક્ષની અભિલાષા હોવાથી તે લક્ષે જ તે સર્વ સમાધાન સાંભળે છે, તેને દેશનાલબ્ધિ પ્રગટી છે, તેને કર્મની લઘુતા પણ થઈ છે. આ બધા સમવાય ભેગા થયા છે, માટે શિષ્યને મોક્ષના ઉપાયની પ્રતીતિ થવાની નિશ્ચિતતા છે એમ શ્રીગુરુને લાગ્યું હોવાથી તેમણે શિષ્યને આશીર્વાદ આપતાં 'થાશો' એમ કહ્યું છે. આ શબ્દના પ્રયોગથી શિષ્યની પરમાર્થમાર્ગ પામવાની તાલાવેલી અને ઉપાદાનની યોગ્યતા પ્રગટ થાય છે. આવા રુચિપૂર્વકના શ્રવણથી માત્ર મોક્ષના ઉપાયની પ્રતીતિ જ નહીં, સાક્ષાત્ મોક્ષ થાય છે. જીવ રુચિપૂર્વક શ્રવણ કરે તો તે ચોક્ક્સ મોક્ષ પ્રાપ્ત કરે છે. આચાર્યશ્રી પદ્મનંદિસ્વામી 'પદ્મનંદિ પંચવિંશિતઃ'માં જણાવે છે કે —

'ચૈતન્યની પ્રીતિ થકી એની કથા જે સુણતા; તે ભવ્ય જીવ ચોક્કસ અહો નિર્વાણ શીદ્ર જ પામતા.'^૧

અહીં જણાવ્યા પ્રમાણે જેણે ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માની વાર્તા પ્રીતિપૂર્વક, પ્રસન્ન ચિત્તથી તથા પરમ ઉલ્લાસભાવથી સાંભળી છે. તે ભવ્ય જીવ ભાવિનિર્વાણનું નિશ્ચયથી ભાજન થાય છે. અલ્પ કાળમાં તે અવશ્ય મોક્ષ પામે છે. અહીં શાસ્ત્રકારે શરત મકી છે કે જીવ ચૈતન્યના પ્રેમ સહિત ઉલ્લાસથી આત્માની વાત સાંભળે તો તે ચોક્કસ મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે. પરંતુ જો જીવ રૂચિ વિના શ્રવણ કરે તો તેને ગમે તેટલો બોધ પ્રાપ્ત થાય છતાં તેની દશા બદલાતી નથી. તેને પરિભ્રમણની વેદના, મક્તિની ઝંખના જાગી જ નહીં હોવાથી તેને બોધનું માહાત્મ્ય ભાસતું નથી. તે અનાદિથી અજ્ઞાનરૂપી અંધકારમાં અટવાયેલો હોવાથી, સંસારના બંધનથી ગ્રસ્ત હોવાથી, દેહાત્મબુદ્ધિમાં રાચી રહ્યો હોવાથી પોતાના શદ્ધ આત્મસ્વભાવની વાત સાંભળે છે છતાં તેને એનું ભાસન થતું નથી. સંસારમાં જ રસ હોવાથી જ્ઞાની દ્વારા વચનામૃતના જે ઘા પડે છે તે રૂઝાઈ જાય છે. સત્પુરુષના વચનનો ઘા એવો લાગવો જોઈએ કે તે કદી પણ રૂઝાય નહીં અને સદા તાજો જ રહે. કેવળજ્ઞાન થતાં સુધી તે રૂઝાવો ન જ જોઈએ. બીજા બધા સંસારના ઘા ભલે રૂઝાઈ જાય. પણ સત્પરૂષે મારેલો વચનામૃતરૂપી ઘા હૃદયમાં એટલો ઊંડો ઊતરી જવો જોઈએ કે કેવળજ્ઞાન થાય ત્યાં સુધી તે ભુલાય જ નહીં. વચનામૃત-રૂપી કલ્યાણકારી, ચાબખાથી જે ઘા લાગ્યા હોય તે ઘા દ્વારા આત્માના સ્વરૂપનો નિર્ણય કરે તો જીવ ભવદ:ખથી મક્ત થાય. સત્પરુષનાં વચનો વાચવાં-સાંભળવાં મળે તે પૂર્વપુષ્યનું ફળ છે. વર્તમાન પુરુષાર્થથી તે વચનોથી પડેલો ઘા જરા પણ રૂઝાવા દેવો નહીં, એટલે કે તેને તાજો રાખીને સમ્યક્ત્વ પામવાનો ઉદ્યમ કરવો ઘટે છે.

કામ, ભોગ અને બંધનની કથા તો સર્વ જીવોએ પૂર્વે અનંત વાર સાંભળી છે, પરિચયમાં લીધી છે; પણ આત્માની - મોક્ષના યથાર્થ ઉપાયની વાત પૂર્વે કદી સાંભળી નથી, સાંભળી હોય તોપણ પરિચયમાં લીધી નથી. અનંત વાર જ્ઞાનીની વાણીનું શ્રવણ કર્યું હોવા છતાં પણ મોક્ષની તાલાવેલી વિના સાંભળ્યું હોવાથી તેને યથાર્થ શ્રવણ કહેવાતું નથી. માત્ર શબ્દ કાને પડવા તેને શ્રવણ નથી કહ્યું, પણ રુચિપૂર્વક સાંભળવાને જ યથાર્થ શ્રવણ કહ્યું છે.

શ્રીગુરુના બોધનું પરમ પ્રેમે શ્રવણ કરી, ઉપદેશનું ચિત્તમાં સ્થિરીકરણ કરતાં ૧- આચાર્યશ્રી પદ્મનંદિસ્વામીકૃત, 'પદ્મનંદિ પંચવિંશતિઃ', અધિકાર ૪, શ્લોક ૨૩નો ગુર્જરાનુવાદ (અનુવાદક : બ. વૃજલાલ ગિરધરલાલ શાહ), જુઓ : મૂળ શ્લોક

'तत्प्रतिप्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता । निश्चितं स भवेद्धव्यो भाविनिर्वाणभाजनम् ।।' ત્વરાથી અને સુગમતાથી લક્ષ્યભેદ થાય છે. જે જીવને સ્વરૂપનો અનુભવ કરવો છે તે વિષય-કષાયો અને ઘર-ધંધાનો પાપરસ છોડીને ચૈતન્યનો રસીલો થાય છે. તે વિકથા છોડીને આત્માની કથા સાંભળવા હોંશે હોંશે સદ્દ્ગુરુનો સંગ કરે છે. તેમની પાસે જઈને આત્માના અનુભવની વાર્તા સાંભળે છે. તેનો જ અપાર મહિમા હૃદયમાં સ્થિર કરે છે. સત્સંગમાં એકની એક વાત વારંવાર કહેવામાં આવે તોપણ તેને જરા પણ કંટાળો નથી આવતો. આત્મસ્વભાવની વાત વારંવાર સાંભળતાં જો કંટાળો આવતો. હોય તો તે આત્માની અરચિ અને ભવભ્રમણની રચિ દર્શાવે છે. મોક્ષાભિલાષી જીવ જાણે છે કે વારંવાર સ્વરૂપભાવના ભાવતાં જ સ્વરૂપ તરફ પ્રયાણ થાય છે, તેથી વારંવાર આત્મસ્વભાવની વાત સાંભળવામાં તેને જરા પણ અણગમો નથી થતો, પરંતુ સ્વભાવની દઢતા જ થાય છે. તે થાક્યા વિના, અત્યંત રુચિપૂર્વક સદ્દગુરુ જે બોધ પ્રકાશે છે તેના શ્રવણમાં લાગેલો રહે છે. સદ્દગુરૂનાં અનુભવાત્મક વચનામૃત સાંભળતાં તેના રોમેરોમ ઉલ્લસી જાય છે. આત્માની અપૂર્વ વાત, ગુરૂગમે કરવા યોગ્ય અભ્યાસ, અલ્પ કાળમાં મોક્ષ લેવાનાં ટાણાં - એનો મહિમા સાંભળતાં જ તે હર્ષથી ઊછળે છે અને ખુમારીથી કહે છે કે 'હં પણ બે ઘડીમાં કેવળજ્ઞાન લઉ એવા પૂર્ણસામર્થ્યવાળો છું.' તે સદ્દુરુના બોધને શ્વાસે શ્વાસે સ્થાયી કરે છે. સૂતાં કે જાગતાં પ્રાણે પ્રાણમાં એને ઘોષિત કરે છે. એ બોધના બાશ ચેતનાના અત્યંત ઊંડાશ સુધી પહોંચતાં હોવાથી તેને તે બોધની અવિચ્છિન્ન સ્મૃતિ રહે છે. આવું રૂચિપૂર્વકનું શ્રવણ અવશ્ય કાર્યકારી થાય છે. તેને જરૂર સ્વાનુભવ થાય છે અને ભવસાગરનો કિનારો આવે છે. આમ, જે જીવ તીવ્ર ઉત્કંઠા સહિત ઉપયોગને જ્ઞાનીપુરૂષના બોધમાં એકાગ્ર કરીને શ્રવણ કરે છે, તે જીવ જરૂર આત્માની પ્રતીતિ તથા તેમાં લીનતા કરીને મુક્તિ પામે છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

'જ્ઞાનીનાં વાક્ચના શ્રવણથી ઉલ્લાસિત થતો એવો જીવ, ચેતન, જડને ભિભ્નસ્વરૂપ યથાર્થપણે પ્રતીત કરે છે, અનુભવે છે, અનુક્રમે સ્વરૂપસ્થ થાય છે.'^૧

મોક્ષપ્રાપ્તિથી જ જીવને સર્વોત્તમ સુખ મળતું હોવાથી, પરમાનંદની પ્રાપ્તિ થાય એવા ઉપાયની વાત જ્ઞાની પાસે સાંભળતાં આત્માર્થીને અંતરમાં હોંશ અને ઉલ્લાસ આવે છે. બંધનથી છટવાના અવસરે તો પશુઓ પણ હોંશથી નાચે છે. બંધાયેલા વાછરડાને પાણી પીવા માટે છોડવામાં આવે છે ત્યારે તે છૂટવાના હરખમાં કુદાકૂદ કરવા માંડે છે. બંધનથી છૂટવાની તક મળતાં જેમ વાછરડાને પાણી પીવાની, ખુલ્લી હવામાં ફરવાની અને મક્તિની મોજ માણવાની હોંશ આવે છે: તેમ અનાદિ કાળથી અજ્ઞાનભાવે સંસારબંધનમાં બંધાયેલા જીવને જ્યારે તે બંધનથી છૂટવાનાં સત્સમાગમરૂપ

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૬૪૨ (પત્રાંક-૯૦૧)

અવસર મળે છે ત્યારે આનંદ થાય છે, બંધનમુક્ત થવાની હોંશ આવે છે. તે તો આત્માના આનંદમાં લીન થવાની, મુક્તદશા પામવાની ભાવના ભાવે છે. તે બાહ્ય સંયોગાદિની સર્વ તૃષ્ણાની આગને બુઝાવીને આત્મપ્રાપ્તિ કરવાનો, ક્ષણિક જીવનથી ઊઠીને શાશ્વતનાં દર્શન કરવાનો સંકલ્પ કરે છે. ધ

તે આસન્નભવ્ય જીવ પોતાના આત્માને અહર્નિશ હિતશિક્ષા આપે છે કે 'હે ચેતન! તું તો જ્ઞાન, દર્શન, સુખથી ભરેલો છે. તે તરફ નજર નથી કરતો અને બહારના વિષયોમાં નજર કરીને ક્લેશ શા માટે ભોગવે છે? બહારના વિષયો કે જ્યાં તારું અસ્તિત્વ જ નથી ત્યાં તું સુખ માને છે અને તારું અસ્તિત્વ કે જ્યાં અનંત સુખ ભરેલું છે, તેની સામે પણ તું જોતો નથી, તો પછી તને સુખ ક્યાંથી મળે? બાહ્ય વિષયોમાં જ્યાં તું સુખ માને છે ત્યાં ખરેખર સુખ નથી, પણ દુઃખ છે, ક્લેશ છે. તારા સ્વભાવમાં નજર કર તો વિષયોના ક્લેશ વગરનું અતીન્દ્રિય સહજ શાંત સુખ ભરેલું છે. પૂર્ણ જ્ઞાન અને પૂર્ણ સુખનું અચિંત્ય ઐશ્વર્ય તારામાં ભરેલું જ છે. તેમાં પરના અવલંબનની કોઈ જરૂર નથી. પરની ઓથની કે પરના ટેકાની કોઈ આવશ્યકતા નથી. તારા સ્વભાવની જ ઓથે આત્મસખનો અનભવ થાય એવં તારં અસ્તિત્વ છે. તેથી તું આ વિષય-કષાયાદિની દુષ્ટ પ્રવૃત્તિ છોડીને સ્વરૂપના અભ્યાસમાં રસપૂર્વક લીન થા. તન, ધન, સ્ત્રી, પુત્ર, પરિવાર આદિમાં આસક્તિ ન રાખ. 'આ બધી વસ્તુઓ મારી છે અને હું તેનો કર્તા-ભોક્તા છું' એવું મિથ્યા અભિમાન ધારણ ન કર. બધા પ્રાપ્ત સંયોગો ક્ષણિક છે. સંયોગમાં એકતા કરીને તું તારા શુદ્ધ સ્વરૂપને વીસરી ગયો છે અને તે શુદ્ધ સ્વરૂપના વિસ્મરણના કારણે જન્મ-જરા-મરણાદિનાં અનંત દુઃખોની પરંપરા તારે ભોગવવી પડે છે. માટે હે જીવ! હવે તું શ્રીગુરૂના બોધામૃતનું પાન કરી રાગ-દ્વેષાદિ વિભાવવિષને દૂર કર અને તારા પૂર્ણ શુદ્ધ સ્વભાવને પ્રગટ કર. સંસારમાં અનાદિથી પરિભ્રમણ કરી રહેલા જીવોને મનુષ્યપણું મળવું દુર્લભ છે. આ દુર્લભ મનુષ્ય-અવતારમાં ચૈતન્યતત્ત્વની પ્રાપ્તિ એ જ તારું કર્તવ્ય છે. અખૂટ રસપૂર્વક એની પાછળ લાગશે તો જરૂર તને આત્માનો અનુભવ થશે. અત્યાર સુધી તો ભૂલ્યો, પણ હવે જાગી જા. ગુરૂકુપાથી વીતરાગધર્મનો પરિચય પામ્યો છે તો સંસારનાં બીજાં કામોની ચતુરાઈ અને હોંશ છોડી એક આત્માને સાધવાના કામમાં જ લાગી જા. નિરંતર એનું જ શ્રવણ, સ્મરણ, રટણ, મનન અને ભાવન કર.'

આત્માર્થી જીવને સ્વરૂપની સમજણ પ્રાપ્ત થઈ હોવાથી તેને નિજાત્મસ્વરૂપનો ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી યોગીન્દુદેવકૃત, 'પરમાત્મપ્રકાશ', અધિકાર ૨, ગાથા ૫ 'उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ, उत्तमु मुक्खु ण होइ । तो किं इच्छिं बंधणिह बद्धा पसुय वि सोइ।।'

એવો મહિમા વર્તે છે કે પરની રુચિ તેને રહેતી નથી, સંયોગોની કામના તેને થતી નથી. સરોવરમાં કમળો ખીલેલાં હોવા છતાં હંસલો પોતાની હંસલીની પ્રીતિ છોડીને કમળ ઉપર પ્રીતિ કરતો નથી, તેમ આત્માર્થી પોતાના આત્માની પ્રીતિ છોડીને લક્ષ્મી, અધિકાર વગેરેની પ્રીતિ કરતો નથી. ધન, પ્રતિષ્ઠા વગેરેની પ્રાપ્તિના પુરુષાર્થમાં તેને રુચિ રહેતી નથી. આથી વિપરીત, બહિર્દષ્ટિ જીવો આત્માનો મહિમા ન હોવાથી બહાર રખડે છે. લક્ષ્મી હોવા છતાં પણ આનંદ મળતો નથી એમ જાણવા છતાં તેઓ લક્ષ્મી મેળવવા માટે જિંદગી વેડફી નાખે છે. સત્તા હોવા છતાં પણ શાંતિ નથી મળતી એમ અનુભવવા છતાં સત્તા માટે ફાંફાં મારે છે. જે ખાડાઓમાં બીજા પડ્યા, તે જ ખાડા તરફ તેઓ ચાલે છે. સંસારનો ભય કે થાક લાગ્યો ન હોવાથી તેમને સ્વરૂપ સમજવામાં કંટાળો આવે છે. સ્વની વાતો સાંભળવામાં રસ પડતો નથી. પરંતુ શિષ્ય આત્માર્થી હોવાથી તેને સ્વરૂપની વાતમાં હર્ષ-ઉત્સાહ-આનંદ ઊભરાય છે. તે અત્યંત રુચિપૂર્વક છ પદ સમજવા શ્રીગુરુનો સત્સંગ કરે છે. સત્સંગ કરતાં કરતાં કરતાં ક્ષણે ક્ષણે તેને આત્મા વિશેષ ને વિશેષ રુચતો જાય છે. શબ્દે શબ્દે નિજતત્ત્વની રુચિ વધતી જાય છે અને શાસે શાસે તેને આત્માની જ મુખ્યતા રહે છે.

શિષ્યને આત્મપ્રાપ્તિ માટે ઉત્કટ તૃષા જાગી છે. આ તરસ જાગ્યા વિના આત્માની પ્રાપ્તિ થવી અસંભવિત છે. તરસ ન લાગી હોય તો પાસેનું સરોવર પણ દેખાતું નથી. તરસ ન હોય તો પાણીની કિંમત થતી નથી. જો પોતાને આત્મપ્રાપ્તિની તરસ ન લાગી હોય અને બીજાના કહેવાથી કે દેખાદેખીથી આત્માને શોધવા નીકળે તો આત્મપ્રાપ્તિ થવી સંભવતી નથી. જેને આત્મપ્રાપ્તિના રસ્તામાં વચ્ચે પર્વતો દેખાય છે, તેને જ્વલંત પિપાસા જ જાગી નથી. રસ્તાની અડચણો અભીપ્સાના અભાવની સૂચક છે. જ્યાં પિપાસા હોય ત્યાં વિરાટ પહાડ પણ દૂર થઈ જાય છે. જ્યારે જીવ પૂરી ત્વરાથી, પૂરી લગનીથી પ્રાણપૂર્વક પોતાની જાતને, પોતાના સમગ્ર અસ્તિત્વને દાવ ઉપર લગાવી દે તો કઈ ચીજની તાકાત છે તેને અટકાવવાની? સમગ્રતાથી જીવનને દાવ ઉપર લગાડનારની સામે ન કદી કંઈ આવ્યું છે, ન કંઈ આવી શકે છે. અભીપ્સા સર્વ અંતરાયોનો અંત લાવે છે. શિષ્યને આત્મપ્રાપ્તિની પિપાસા એટલી તીવ જાગી છે કે તેની બધી શક્તિ કાર્ય કરવા માટે એકઠી થઈ ગઈ છે.

પ્રસ્તુત ગાથામાં શિષ્યની પાત્રતાનો શ્રીગુરુએ કરેલો સ્વીકાર પ્રગટ થાય છે. શિષ્યને શુદ્ધાત્માની પ્રાપ્તિની તાલાવેલી લાગી છે. તેને પરિભ્રમણથી છૂટવાની ચિંતા જાગી છે. તેથી તે પોતાનો સમઅ પુરુષાર્થ તત્ત્વનિર્ણય કરવામાં લગાડે છે. તે મુક્તિની યુક્તિ જાણવાનો પ્રયત્ન કરે છે. તે શ્રીગુરુને પૂછે છે કે યથાર્થ મોક્ષમાર્ગ શું છે? તેનું સ્વરૂપ શું છે? સંસારનું મૂળ કારણ દૂર કરવાનો ઉપાય શું છે? સર્વસમ્મત મોક્ષમાર્ગ જેવું કંઈ છે કે નહીં? આત્માર્થી શિષ્યની મોક્ષનો ઉપાય સમજવાની આવી હોંશ અને ધગશ જોઈને શ્રીગુરુ તેને આશીર્વાદ આપે છે કે 'પાંચ પદની જેમ મોક્ષના ઉપાયની પ્રતીતિ પણ તને સહજતાથી થશે.' શિષ્યની મોક્ષના ઉપાય વિષેની મૂંઝવણ દૂર કરવા તેઓ તેને ધીરજ બંધાવી કુનેહથી કામ લે છે. મોક્ષના અવિરોધ ઉપાયની સંક્ષિપ્ત છતાં સંપૂર્ણ દેશના ગ્રહણ કરવા માટે તેને ઉત્સાહિત કરે છે. નિષ્કારણ કરુણાળુ શ્રીગુરુ પાસેથી આવું હૈયાધારણ પ્રાપ્ત થતાં શિષ્યની મનોદશા કેવી થાય તેની કલ્પના કરતાં શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ લખે છે કે —

'જેમ કોઇ ગાઢ, વિકટ અને નિળિડ અરણ્યમાં ભૂલા પડેલા મનુષ્યને સદ્ભાગ્યે પુણ્યના ઉદયથી કોઇ માર્ગનો જાણનાર ભોમિયો મળી જતાં જે આનંદ થાય અથવા લાંબા કાળની દરિદ્રતાથી અત્યંત અત્યંત પીડિત એવા જનને પ્રારબ્ધયોગે કોઇ રત્નનિધિ હાથ લાગી જાય, કોઇ રત્નચિંતામણિની પ્રાપ્તિ થાય અને આનંદનો અનુભવ થાય, તેવો જ વચનાતીત આનંદ મોક્ષનો ઉપાય જાણવાને અતિ ઉત્સુક એવા જિજ્ઞાસુ શિષ્યને શ્રીગુરુનાં ઉપર્યુક્ત વચનામૃતથી થાય છે અને તેનું હૃદય આભારનાં અશ્રુથી છલકાઇ જાય છે.'

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'પાંચે ઉત્તરની થઇ, શ્રદ્ધા પરિણતિ સત્ય; શંકા મળ દૂરે જતાં, પ્રકાશશે નિજ તત્ત્વ. જો પાંચે સ્થાનક તણી, આત્મા વિષે પ્રતીત; થઈ હવે તો સરળતા, થયે નિ:શંક ખચીત. જે આત્માર્થે ઉદ્યમી, ચિત્ત નહિ જો વ્યચ; થાશે મોક્ષોપાયની, શ્રદ્ધા પરિણતિ શીદ્ધ. પ્રથમ અવંચક યોગ તો, ક્રિયા અવંચક રીત; કળ શિવ ઉપાયથી મળે, સહજ પ્રતીત એ રીત.'

* * *

૧- શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ, 'આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર (વિશેષાર્થ સહિત)', ચોથી આવૃત્તિ, પૃ.૨૬૮

ર- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૮ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૮૫-૩૮૮)

इर्भ-स्माप्ट आसराम छे, भेर है स्माप्ट किन्द्रास,

ભૂમિકા ગાથા ૯૭માં શ્રીગુરુએ શિષ્યને કહ્યું કે જેમ પાંચે પદોના સમાધાનથી તારા આત્મામાં તે પદોની શ્રદ્ધા થઈ, એવી રીતે મોક્ષના ઉપાયની શ્રદ્ધા પણ તને સહેલાઈથી થશે. આમ, મોક્ષનો ઉપાય સમજવાની તીવૃ ઉત્કંઠાવાળા સુશિષ્યને ઉત્સાહિત કરી, હવે શ્રીગુરુ મોક્ષના ઉપાય સંબંધી તેની શંકાના સમર્થનમાં તેણે કરેલી દલીલોનું એક પછી એક સચોટ અને હૃદયસ્પર્શી સમાધાન કરે છે.

ગાથા ૯૨માં શિષ્યે એવી દલીલ કરી હતી કે 'હોચ ક્દાપિ મોક્ષપદ, નિહ અિંદિગેઇ ઉપાય; કર્મો કાળ અનંતનાં, શાથી છેદાં જાય?', અર્થાત્ કદાપિ મોક્ષ હોય તોપણ તેનો અિવરોધ ઉપાય જણાતો નથી અને વળી, કર્મો પણ અનંત કાળનાં છે, તો તે આ અલ્પ આયુમાં શી રીતે છેદી શકાય તે સમજાતું નથી. આ દલીલનું સાંગોપાંગ સમાધાન શ્રીગુરુએ ગાથા ૯૮ થી ૧૦૪ સુધીમાં કર્યું છે. તેમાં ગાથા ૯૮ થી ૧૦૧ સુધીમાં પરમાર્થ મોક્ષમાર્ગનું સંક્ષિપ્ત કથન કરી, ગાથા ૯૨ની પ્રથમ પંક્તિનું સમાધાન આપ્યું છે અને ગાથા ૧૦૨ થી ૧૦૪ સુધીમાં કર્મછેદનનો ઉપાય બતાવી, ગાથા ૯૨ની દિતીય પંક્તિનું સમાધાન આપ્યું છે.

મોક્ષના અવિરોધ ઉપાય સંબંધી સંશયના સમાધાનનું ઉદ્ઘાટન કરતી પ્રથમ ગાથામાં સંપૂર્ણ મોક્ષમાર્ગનું દર્શન કરાવતાં શ્રીગુરુ કહે છે –

ગાથા 'કર્મભાવ અજ્ઞાન છે, મોક્ષભાવ નિજવાસ; અંધકાર અજ્ઞાન સમ, નાશે જ્ઞાનપ્રકાશ.' (૯૮)

કર્મભાવ છે તે જીવનું અજ્ઞાન છે અને મોક્ષભાવ છે તે જીવના પોતાના અર્થ સ્વરૂપને વિષે સ્થિતિ થવી તે છે. અજ્ઞાનનો સ્વભાવ અંધકાર જેવો છે. તેથી જેમ પ્રકાશ થતાં ઘણા કાળનો અંધકાર છતાં નાશ પામે છે, તેમ જ્ઞાનપ્રકાશ થતાં અજ્ઞાન પણ નાશ પામે છે. (૯૮)

ભાવાર્થ અનાદિ કાળથી જીવને પોતાના સ્વરૂપ વિષે ભાંતિ છે અને તેથી પોતાના ભાવાર્થ શુદ્ધ, ચિદાનંદ, અકષાયી, નિર્મળ સ્વરૂપને ભૂલી જઈ કર્મના ઉદયે પ્રાપ્ત થતી અવસ્થાને પોતાનું સ્વરૂપ માને છે. કર્મના ઉદયે પ્રવર્તતી સ્થિતિને પોતાનું સ્વરૂપ માનવું એ કર્મભાવ છે. કર્મકૃત અવસ્થાઓમાં 'હું' અને 'મારા'પણાનો ભ્રમ એ જ અજ્ઞાન છે અને 'દેહાદિ સંયોગો તથા રાગાદિ વિકારોથી હું ભિન્ન છું' એવું ભાન એ

જ જ્ઞાન છે. ધ્રુવ, નિત્ય, શાશ્વત, નિર્મળ એવા નિજસ્વભાવ સાથે એકતા કરીને તે ભાવોને પોતારૂપ જાણવા તે મોક્ષભાવ છે. પોતાના કર્મકૃત વ્યક્તિત્વ ઉપરથી નજર હટાવી લઈને જે જીવ પોતા તરફ - આત્માના શુદ્ધ, શાશ્વત સ્વરૂપ તરફ વળે છે, તે જીવ આત્મિક ઐશ્વર્ય - મોક્ષને પામી શકે છે અને જે જીવ ઔદયિક ભાવમાં રચ્યોપચ્યો રહે છે, તે જીવ કર્મબંધ કરી સંસારભ્રમણ કરે છે.

કર્મ સાથે એકતા કરાવનાર અજ્ઞાનભાવને અંધકાર સાથે સરખાવ્યો છે. જેમ અંધકારમાં એકને બદલે બીજું દેખાય છે, ભ્રમ થાય છે, ભૂલ થાય છે, ભય લાગે છે; તેમ અજ્ઞાનના કારણે પરમાં એકતા થવાથી જીવને પદાર્થોનું મૂળ સ્વરૂપ વિપરીત જણાય છે, રાગ-દેષ થાય છે અને સંયોગ-વિયોગનો ભય ઉપસ્થિત થાય છે. જેમ પ્રકાશ થતાં અંધકાર સત્વર વિલીન થાય છે અને વસ્તુ જેમ છે તેમ દેખાતાં જ સર્વ ભ્રમ ભાંગી જાય છે, ભય ટળી જાય છે; તેમ જ્ઞાન થતાં અજ્ઞાન નાશ પામે છે, પોતાના મૂળ સ્વરૂપનું દર્શન થતાં દેહ અને રાગ સાથેની એકતા ટળી જાય છે. કર્મકૃત અવસ્થાઓથી ભિન્ન થઈ પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવના ભાનપૂર્વક સ્વરૂપમાં ઠરવાનો પુરુષાર્થ તે મોક્ષમાર્ગ છે અને અખંડપણે સ્વરૂપમાં ઠરવું તે મોક્ષ છે. આમ, આ ગાથામાં વિભાવપરિણમન અને સ્વભાવપરિણમનને સમર્થ દેષ્ટાંત દ્વારા સમજાવી, ભેદજ્ઞાનની પ્રક્રિયા દ્વારા સહજ સ્વરૂપમાં સ્થિતિ થવારૂપ મોક્ષનો અવિરોધ ઉપાય સંક્ષેપમાં બતાવ્યો છે. પછીની ત્રણ ગાથાઓ(૯૯-૧૦૧)માં આ વિષયનો વિસ્તાર કર્યો છે.

બાત્મહિત ઇચ્છનારાઓએ આત્મભાવોની બરાબર ઓળખ કરવી જોઈએ. ઉપશમાદિ પાંચ પ્રકારના ભાવો દ્વારા આત્મવસ્તુને યથાર્થપણે સમજી શકાય છે. અત્માનું સહજ ત્રિકાળી ધ્રુવ સ્વરૂપ કેવું છે? આત્મવિમુખ પરિણતિરૂપ જીવની અપરાધી દશા કેવી છે? અપરાધ ટાળવા આત્માભિમુખ બની મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવર્તન કરવાથી જીવને કેવી કેવી દશાઓ પ્રગટે છે? આ બધાનું જ્ઞાન આત્માના પાંચ ભાવો સમજવાથી થાય છે. આ પાંચ ભાવોને સંક્ષેપમાં વિચારીએ —

- (૧) પારિશામિક ભાવ આત્માનો સહજ સ્વભાવ. ઉત્પાદવ્યયનિરપેક્ષ, ધ્રુવ, એકરૂપ રહેવાવાળો ભાવ તે પારિશામિક ભાવ છે.
- (૨) ઔદયિક ભાવ પુરુષાર્થની નબળાઈના કારણે કર્મોના ઉદયકાળે આત્મામાં વિભાવરૂપ પરિણમન થવું તે ઔદયિક ભાવ છે, અર્થાત્ કર્મોદયના નિમિત્તે જે વિકારભાવ આત્મા કરે છે તે ઔદયિક ભાવ છે. આ વ્યાખ્યા આત્માની મુખ્યતાએ કરવામાં આવી છે. કર્મની મુખ્યતાએ આ પ્રમાણે કરી શકાય કર્મોના ઉદયથી થતા

૧- આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર', અધ્યાય ૨, સૂત્ર ૧

^{&#}x27;औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ।'

ભાવો ઔદયિક ભાવ કહેવાય છે.

- (3) ઔપશમિક ભાવ આત્માના સ્વસન્મુખ પુરુષાર્થરૂપ શુદ્ધ પરિજ્ઞામથી જીવની અશુદ્ધતાનું પ્રગટ ન થવું, અર્થાત્ તેના દબાઈ જવારૂપ ઉપશામક ભાવ હોય છે તેને ઔપશમિક ભાવ કહેવાય છે. કર્મોની મુખ્યતાએ આ પ્રમાણે સમજાવી શકાય કર્મોના ઉપશમથી આત્મામાં પ્રગટ થતા ભાવો ઔપશમિક ભાવ કહેવાય છે. ઉપશમ એટલે કર્મો વિદ્યમાન હોવા છતાં થોડા સમય માટે તેના ઉદયનો સર્વથા અભાવ. જેમ ડહોળા પાણીમાં ફટકડી નાખવાથી કચરો નીચે શમી જતાં જળ નિર્મળ દેખાય છે, તેમ કર્મોનો ઉપશમ થવાથી આત્મા નિર્મળ બને છે. કચરાવાળા નિર્મળ પાણીમાં કચરાનો સર્વથા અભાવ નથી થયો, કિંતુ કચરો નીચે બેસી ગયો છે, તેથી પાણી નિર્મળ દેખાય છે; પણ પાણીને હલાવવાથી પુનઃ પાણી ડહોળું બની જાય છે. એ પ્રમાણે કર્મોના ઉપશમમાં કર્મોનો સર્વથા અભાવ નથી થતો, કિંતુ થોડા સમય માટે તેનો ઉદય સ્થગિત થઈ જાય છે. તત્પશ્ચાત્ પુનઃ કર્મોનો ઉદય શરૂ થવાથી તે નિર્મળતા રહેતી નથી.
- (૪) ક્ષાયિક ભાવ આત્માના સ્વસન્મુખ પુરુષાર્થ વડે કોઈ ગુણની અવસ્થામાં અશુદ્ધતાનો સર્વથા ક્ષય થવો, અર્થાત્ પૂર્ણ શુદ્ધ અવસ્થા પ્રગટ થવી તે ક્ષાયિક ભાવ છે. કર્મોની મુખ્યતાએ આ પ્રમાણે સમજાવી શકાય કર્મોના ક્ષયથી પ્રગટ થતા ભાવો ક્ષાયિક ભાવ કહેવાય છે. ક્ષય એટલે કર્મોનો સર્વથા નાશ. જેમ જળમાંથી કચરો નીકળી જતાં જળ નિર્મળ બને છે, તેમ આત્મામાં રહેલાં કર્મોનો સર્વથા ક્ષય થતાં આત્મા નિર્મળ બને છે. કર્મોના ઉપશમથી પ્રગટ થતી નિર્મળતા ક્ષણિક છે, જ્યારે ક્ષયથી પ્રગટ થતી નિર્મળતા સદાકાળ રહે છે. કર્મોના ક્ષયથી પ્રગટ થતી નિર્મળતા અનંત કાળ સુધી રહે છે.
- (૫) ક્ષાયોપશિમિક ભાવ આત્માના ગુણની અવસ્થામાં આંશિક શુદ્ધતા અથવા ઉઘાડ હોય તેને ક્ષાયોપશિમિક ભાવ કહેવાય છે. આત્માનાં જ્ઞાન, દર્શન, વીર્ય વગેરેના આંશિક વિકાસ તથા આંશિક અવિકાસને જ્ઞાન, દર્શન, વીર્ય વગેરેનો ક્ષાયોપશિમિક ભાવ કહેવાય છે. કર્મની મુખ્યતાએ આ પ્રમાણે સમજાવી શકાય ઉપશમ અને ક્ષય એ બન્નેના મિશ્રણથી ઉત્પન્ન થતા ભાવો ક્ષાયોપશિમિક ભાવ કહેવાય છે. ક્ષયોપશમ એટલે અમુક ભાગનાં કર્મોનો ઉપશમ અને અમુક ભાગનાં કર્મોનો ક્ષય, અર્થાત્ અધિક રસવાળાં કર્મોના ઉદયના અભાવરૂપ ઉપશમ અને અલ્પ રસવાળાં કર્મોનો ઉદય દારા ક્ષય તે ક્ષયોપશમ. આ ક્ષયોપશમથી જે ભાવો પ્રગટ થાય તે ક્ષાયોપશિમિક ભાવ કહેવાય છે. જેમ કોદ્રવને પાણીથી ધોવાથી અમુક અંશે મદશક્તિ નાશ પામે છે અને અમુક અંશે રહે છે, તેથી કોદ્રવમાં શુદ્ધિ-અશુદ્ધિનું મિશ્રણ હોય છે; તેમ ક્ષાયોપશિમિક ભાવથી આત્મામાં શુદ્ધિ-અશુદ્ધિનું મિશ્રણ હોય છે.

પારિણામિક ભાવનું સ્વરૂપ જાણવાથી એમ સમજાય છે કે જીવ અનાદિ-અનંત, શુદ્ધ, ચૈતન્યસ્વભાવી છે. ઔદયિક ભાવનું સ્વરૂપ જાણવાથી એમ સમજાય છે કે અનાદિ-અનંત, શુદ્ધ, ચૈતન્યસ્વભાવ હોવા છતાં પણ જીવની અવસ્થામાં વિકાર છે. જડ કર્મની સાથે એને અનાદિ કાળથી સંબંધ છે. કર્મના કારણે વિકાર થતો નથી, પરંતુ જીવ સ્વયં પોતાના જ્ઞાતાસ્વભાવને છોડીને કર્મને વશ થાય છે, તેથી તેની અવસ્થામાં વિકાર ઉત્પન્ન થાય છે. જીવ પોતાનું સ્વરૂપ યથાર્થપણે સમજીને જ્યારે ત્રિકાળી પારિણામિક ભાવનો આશ્રય કરે છે ત્યારે ઔદયિક ભાવ દૂર થવાનો પ્રારંભ થાય છે એમ ઔપશમિક ભાવ સિદ્ધ કરે છે. અવિરત પુરુષાર્થ વડે પારિણામિક ભાવનો આશ્રય અતિશય બળવાન થતાં વિકારનો સંપૂર્ણ નાશ થાય છે એમ ક્ષાયિક ભાવ સિદ્ધ કરે છે. ક્ષાયોપશમિક ભાવથી એમ જણાય છે કે જીવ અનાદિ કાળથી વિકાર કરતો હોવા છતાં પણ જડ થઈ જતો નથી. એનાં જ્ઞાન, દર્શન, વીર્યનો આંશિક ઉઘાડ તો હંમેશાં રહે છે અને સાચી સમજણ મળ્યા પછી તે જેમ જેમ સત્ય પુરુષાર્થ વધારતો જાય છે, તેમ તેમ તેનો ક્ષયોપશમ વધતો જાય છે.

ઔદયિક ભાવ વિકાર છે, તેથી સાધક માટે તે હેય છે, આશ્રય કરવા યોગ્ય નથી. ઔપશિમક ભાવ તથા સાધકદશાનો ક્ષાયોપશિમક ભાવ સાદિ-સાંત છે અને તે એક સમયની પર્યાય છે, ક્ષાયિક ભાવ સાદિ-અનંત છે અને પર્યાયરૂપ છે, તેથી તે ભાવો ઉપર લક્ષ કરવામાં આવે તો ત્યાં એકાગ્રતા થઈ શક્તી ન હોવાથી તે આશ્રય કરવા યોગ્ય નથી. ભાવો પ્રગટ કરવાની અપેક્ષાએ તે ઉપાદેય છે, પરંતુ આશ્રય કરવા યોગ્ય નથી. પારિણામિક ભાવ કે જે અનાદિ-અનંત છે, તે એક જ આશ્રય કરવા યોગ્ય છે. આશ્રય કરવાની અપેક્ષાએ તે પરમ ઉપાદેય છે. સારાંશ એ છે કે જેણે ધર્મ કરવો હોય તેણે ઔદયિકાદિ ચારે ભાવો ઉપરથી દષ્ટિ ઉઠાવી લઈને માત્ર પરમ પારિણામિક ભાવરૂપ ત્રિકાળી જ્ઞાયકસ્વભાવનો આશ્રય લેવો ઘટે છે, કેમ કે તેના આશ્રય વડે જ ધર્મની ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ, વૃદ્ધિ અને પૂર્ણતા થાય છે. જે જીવ પોતાની વર્તમાન પર્યાયને પોતાના ત્રિકાળી પારિણામિક ભાવ તરફ વાળે છે, તે જીવની સ્વરૂપના વિસ્મરણથી થયેલી કર્મયુક્ત સમળદશા ટળતી જાય છે અને કમશઃ જીવ સંપૂર્ણપણે વિમળ દશારૂપ પરિણમે છે, અર્થાત્ તે સહજ સ્વરૂપે સ્થિતિ થવારૂપ મોક્ષને પ્રગટાવે છે. શ્રીમદ્ લખે છે કે —

- '૧. સહજસ્વરૂપે જીવની સ્થિતિ થવી તેને શ્રી વીતરાગ 'મોક્ષ' કહે છે.
- ર. સહજસ્વરૂપથી જીવ રહિત નથી, પણ તે સહજસ્વરૂપનું માત્ર ભાન જીવને નથી, જે થવું તે જ સહજસ્વરૂપે સ્થિતિ છે.
 - 3. સંગના યોગે આ જીવ સહજસ્થિતિને ભૂલ્યો છે; સંગની નિવૃત્તિએ સહજ-

સ્વરૂપનું અપરોક્ષ ભાન પ્રગટે છે.'

અજ્ઞાની જીવ પરના સંગે પોતાના સહજ સ્વભાવરૂપ પારિણામિક ભાવને ભૂલી ગયો છે. તેને પોતાના મૂળ સ્વરૂપનું ભાન નથી. અનાદિ કાળથી જીવ કર્મના નિમિત્તે જુદા જુદા દેહ ધારણ કરે છે. જ્ઞાનધારક એવો આત્મા અને અનંત પુદ્દગલપરમાણુઓનું બનેલું શરીર - આ બન્ને તેને એક પિંડરૂપ જણાય છે. હાથીની સામે લાડવા અને ધાસને એકસાથે મૂકવામાં આવે તો હાથી જેમ સ્વાદનો વિવેક કર્યા વગર તે બન્નેને ભેગા ખાઈ લે છે, તેમ અજ્ઞાની જીવ પણ આત્મા અને શરીરનો વિવેક કર્યા વગર તે બન્નેને એકપણે અનુભવે છે. પોતે જ્ઞાનસ્વભાવી હોવા છતાં અને પુદ્દગલપરમાણુઓનો બનેલો દેહ વર્ણાદિ સ્વભાવવાળો હોવા છતાં, સ્વ-પરના વિવેકના અભાવે તે પોતાને દેહરૂપ માને છે. વળી, સ્વરૂપવિસ્મૃતિના કારણે તેને પોતાના ત્રિકાળ શુદ્ધ સ્વરૂપ અને ક્ષણિક વિકારી અવસ્થા વચ્ચે ભેદ પણ ભાસતો નથી અને તે ક્રોધાદિ વિકારી ભાવો તથા જ્ઞાનાદિની અધિકતા-હીનતારૂપ અવસ્થા સાથે એકત્વ કરે છે. કર્મકૃત અવસ્થાઓને અને ભાવોને પોતારૂપ માનવા તે જ કર્મભાવ છે, અજ્ઞાન છે. જેમ કે મનુષ્ય ગતિ નામ કર્મના ઉદયથી જીવ મનુષ્યદેહ ધારણ કરે છે. દેહ મનુષ્યનો છે છતાં પોતાને મનુષ્ય સમજવું એ અજ્ઞાન છે, તેમજ કષાયચારિત્રમોહનીયના ઉદયથી થતા ક્રોધાદિ વિકારી ભાવોને પોતાના ભાવો સમજવા તે પણ સ્વસ્વરૂપનું અજ્ઞાન જ છે.

આમ, સ્વસ્વરૂપના અજાણપણાના કારણે જીવ પરદ્રવ્યોની સ્વસ્વરૂપમાં ભેળસેળ કરે છે, જડની ચેતનમાં ખતવણી કરે છે. આ ભૂલના કારણે તેને પરમાં અહં-મમબુદ્ધિ વર્તે છે. પરથી તેને સુખ મળે છે એમ તે માને છે, તેથી તે પરનો કર્તા-ભોક્તા થાય છે અને કર્મ ઉપાર્જન કરી સંસારની વૃદ્ધિ કરે છે. જેમ ઊંધા ઘડા ઉપર બીજા ઘડા ગોઠવીએ તો તે બીજા બધા ઘડા પણ ઊંધા જ ગોઠવાય, તેમ જીવની ઊંધી માન્યતાના કારણે તેનું બધું વર્તન ઊંધું થવાથી તે જીવનો સંસાર અનંત કાળ સુધી લંબાય છે. જો જીવ પોતાનો ભ્રમ ટાળીને સાચું ભાન પ્રગટાવે કે કર્મકૃત વ્યક્તિત્વ તથા કર્મકૃત ભાવ તે પોતાનું - આત્માનું મૂળ સ્વરૂપ નથી, આત્મા તો દેહાદિ પરસંયોગ તથા રાગાદિ પરભાવોથી સર્વથા ભિન્ન શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વભાવી છે; તો જ તેનું સંસારપરિભ્રમણ અટકે. ચિત્તવૃત્તિપ્રવાહ સાંયોગિક, ક્ષણિક અને ઉપાધિવાળી અવસ્થામાં ન જોડાતાં અસંયોગી, ત્રિકાળી અને ઉપાધિરહિત આત્મસત્તામાં જોડાય તો મોક્ષ થાય.

જીવની ત્રિકાળી તાત્ત્વિક સત્તાને 'તે' અને કર્મકૃત ક્ષણિક વ્યાવહારિક સત્તાને 'આ' દ્વારા અભિવ્યક્ત કરી, એક પ્રતીકાત્મક શૈલીમાં વસ્તુસ્થિતિ સમજવાનો પ્રયત્ન કરીએ. સમ્યગ્જ્ઞાન થવા માટે 'આ' અને 'તે' બન્નેનું જ્ઞાન જરૂરી છે. બેમાંથી એકને ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૪૬૯ (પત્રાંક-૬૦૯)

જ જાણે તો તે યથાર્થ જ્ઞાન નથી. જેની તરફ ઇશારો કરી શકાય, જેને આંગળીથી જણાવી શકાય તે 'આ' છે અને જે જોઈ-જણાવી શકાતું નથી, પણ જેની સત્તા છે, જે જાણી શકાય છે તે 'તે' છે. દેહાદિ અવસ્થાઓ કે ક્રોધાદિ અવસ્થાઓ 'આ' છે અને આત્માનું શુદ્ધ ચેતનત્વ 'તે' છે. 'આ'ની સાથે મા, બાપ, સ્ત્રી, પુત્ર, પદ, સંપ્રદાય, ભાષા, દેશ ઇત્યાદિ જોડાયેલાં છે. આ બધાં 'આ'ના હિસ્સેદાર છે, 'તે'ના નહીં. 'તે' કોઈની સાથે જોડાયેલ નથી. 'તે' કોઈનો જ સંબંધી કે સગો નથી. 'તે' એકલો છે.

'તે' કેન્દ્ર છે અને 'આ' પરિઘ છે. કેન્દ્ર એક બિંદુરૂપ છે અને પરિઘ અંતહીન વર્તુળ છે. જ્ઞાનીપુરુષો કહે છે કે જો 'આ'નું અતિક્રમણ કરવામાં આવે તો 'તે' હાથવેંત છે. કેન્દ્ર ઉપર જવું હોય તો પરિઘને ઉલ્લંઘવો પડે જ. અનાદિથી પરિઘ ઉપર દોટ લગાવી છે, પણ કેન્દ્ર સુધી પહોંચાયું નથી. ત્યાં પહોંચવા માટે તો કેન્દ્ર તરફ મુખ કરી એક છલાંગ લગાવવી પડે છે. જ્યારે જીવ નિર્વિકલ્પ અવસ્થામાં હોય છે ત્યારે તે 'તે'માં છે અને જ્યારે વિચારયુક્ત છે ત્યારે તે 'આ'માં છે, કારણ કે જ્યારે જીવ વિચારમાં છે ત્યારે તે આત્મામાં નથી. જેમ જેમ વિચારની દિશા 'તે' તરફ વળતી જાય છે, તેમ તેમ જીવ 'આ'થી દૂર થતો જાય છે અને 'તે'ની નજીક આવતો જાય છે. 'આ' દૂર ને દૂર હડસેલાતો જાય છે અને 'તે'નું આકર્ષણ વધતું જાય છે. 'તે'નો અનુભવ થતાં 'આ'નું આકર્ષણ મટી જાય છે અને સર્વત્ર 'તે'નાં જ દર્શન થાય છે. 'આ'થી દૂર જવું છે અને 'તે' રૂપ રહેવું છે – આવી ભાવનાવાળી વ્યક્તિ મુમુક્ષુ કહેવાય છે.

જો જીવ પોતાનું સુખ, સલામતી અને અસ્તિત્વ 'આ'માં જ માનતો રહેશે તો તેનું દુ:ખ ક્યારે પણ નહીં ટળે અને જો તે પોતાનું સુખ, સલામતી અને અસ્તિત્વ 'તે'માં માનશે તો દુ:ખી હોવાનું કે થવાનું કોઈ કારણ નથી. ઉદાહરણ તરીકે - નાટકમાં ઊતરનાર વ્યક્તિ 'તે' છે અને જે પાત્રનો તે અભિનય કરે છે તે 'આ' છે. અભિનય કરતી વખતે પણ તેને ખબર છે કે પોતે કોણ છે. 'આ'ને નાટકમાં જે લાભ-હાનિ, યશ-અપયશ, જીવન-મરણ થાય છે, તેનાથી 'તે'ને કોઈ લાભ-હાનિ કે સુખ-દુ:ખ નથી થતાં, કારણ કે તેણે પોતાની જાતને 'તે'માં સ્થાપિત કરી છે. તેને માટે 'તે' નજીક છે અને 'આ' દૂર છે. ધારો કે અભિનેતા અભિનય કરતી વખતે પોતાના મૂળ રૂપને ભૂલી જાય અને નાટકમાં ભજવવાના પાત્રને પોતાનું રૂપ માની લે તો તે ચૂકી જાય છે. તે દુ:ખી થવા લાગે છે. જો અભિનય કરતારને તેના અસલી રૂપની ખાતરી કરાવી દેવામાં આવે તો તે અભિનય કરતો રહે છતાં અંદરથી દુ:ખી થતો અટકી જશે. આ જ સાચો ઇલાજ છે. નાટકના પાઠ બદલવાથી તેનું દુ:ખ મટશે નહીં, પરંતુ પોતાના મૂળ સ્વરૂપની જો પાકી ખાતરી હશે તો ગમે તે પાઠ ભજવશે

તોપણ તે દુઃખી થશે નહીં.

જીવ નિરંતર કર્મવિપાક અનુસાર નાટકોના પાઠ કરી રહ્યો છે. સારાં કર્મોનો સંચય કરે તો તેને દેવ, રાજા, ધનવાન આદિના પાઠ કરવા મળે છે અને ખરાબ કર્મો કરે તો તેને નારક, તિર્યંચ, ગરીબ, રોગી, મૂર્ખ આદિના પાઠ કરવા પડે છે. 'હું શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મા છું' એવી સમજના અભાવે આ પાઠોને તે પોતાનું સ્વરૂપ માની સુખી-દુ:ખી થાય છે. કર્મોદયથી તેની ઇચ્છાનુસાર પાઠ મળી જાય તો તે પોતાને સુખી માને છે અને પોતાને ગમતો પાઠ ન મળે તો તે પોતાને દુ:ખી માને છે. તે પ્રાપ્ત થયેલાં સગાં, પરિવાર, સંપત્તિ આદિમાં મારાપણાનો ભાવ કરે છે. જ્યારે આવી ચેતન-અચેતન ગમતી વસ્તુઓનો વિયોગ થાય છે અથવા અણગમતી વસ્તુઓનો સંયોગ થાય છે ત્યારે તે દુ:ખીં થાય છે. દુ:ખથી છૂટવા તત્કાલીન અવસ્થા પલટાય એવું તે ઇચ્છે છે અને એ બદલવાનો પ્રયત્ન પણ કરે છે. પોતે ઇચ્છેલા સંયોગો અને સામગ્રી મળતાં તે પોતાને સુખી માને છે અને તેને સાચવવાની ચેષ્ટા કરે છે. પ્રાપ્ત અવસ્થાઓ પૂર્વસંચિત કર્મોના કારણે છે. આ તથ્યથી અજાણ જીવ સંયોગોની અનુકૂળતા મળી જાય તો અહંકાર કરે છે અને પ્રતિકૂળતા મળતાં વિષાદ કરે છે. અહંકાર અને વિષાદયુક્ત પરિણામો દ્વારા તે નવાં નવાં કર્મોનું ઉપાર્જન કરી, ફરી ફરી નવા નવા દેહ ધારણ કરે છે. આ ચક્ર અનંત કાળથી ચાલ્યા જ કરે છે.

આ ચક્ર તૂટે તો શાશ્વત સુખની પ્રાપ્તિ થાય એવું ભાન ન હોવાથી જીવે આ ચક્ર તોડવાનો ઉપાય કદી વિચાર્યો નથી અને તેનો વિચાર કર્યો હશે તોપણ તેને અમલમાં મૂકવાનો પ્રયત્ન કર્યો નથી. 'પોતે કોણ છે' તે જાણવાની ચેષ્ટા પણ તેણે કરી નથી. જો તે પોતાને જાણી લે તો પછી કર્મના કારણે મળેલી પર્યાયોમાં તેને અહંભાવ કે મમત્વભાવ થતા નથી, ગમે તેવી બાહ્ય અવસ્થા હોય પણ તે દુઃખી થતો નથી. નાટકના પાત્રનો જો અભિનય જ કરવાનો છે, તો પછી ગમે તે પ્રકારનો પાઠ ભજવવાનો આવે તેમાં શું ફરક પડે? ભિખારીનો વેશ હોય કે શ્રીમંતનો વેશ હોય, પણ એ તેને સુખી કે દુઃખી કરી શકે નહીં, કારણ કે તે પોતે જાણે છે કે આ તો માત્ર અભિનય જ છે - વેશ જ છે, પોતે એ વેશથી ભિન્ન છે; તેથી તેને સુખ-દુઃખ, રાગ-દેષ થતાં નથી અને પરિણામે નવાં કર્મોનો બંધ થતો નથી, જૂનાં કર્મો તેનું ફળ આપી ખરી પડે છે અને તે આત્મા પોતાના અસલી રૂપમાં આવી જાય છે.

આમ, જ્યાં સુધી જીવ પોતાની સાચી ઓળખાણ કરતો નથી ત્યાં સુધી તૃષ્ણા નિર્મૂળ થઈ શકતી નથી; ભય, લોભ, સંતાપ આદિથી ચિત્ત અસ્ત રહે છે અને તેથી સમતા રહેતી નથી. ચિત્તવૃત્તિનું નિરીક્ષણ કરતાં જણાશે કે જ્યારે અવિકારી, શુદ્ધ, જ્ઞાયકસ્વરૂપ સાથે જીવનું અનુસંધાન હોય છે ત્યારે બહારનાં બનાવો, પરિસ્થિતિઓ, ઘટનાઓ વગેરેના આઘાત-પ્રત્યાઘાત ચિત્તમાં ઘેરા નથી પડતા; પરંતુ જીવ જ્યારે દેહ અને કર્મકૃત વ્યક્તિત્વ સાથે એક્ય અનુભવે છે ત્યારે ચિત્તમાં ભય, ચિંતા, દીનતા, મદ, તુષ્ણા રમતાં હોય છે. સ્વરૂપની વિસ્મૃતિ થતાં ચિત્તમાં મોહજનિત વૃત્તિઓ ઊમટી આવે છે અને અહંકાર-મમકારનું સામાજ્ય વ્યાપે છે. જીવ સ્વરૂપને વીસરી કર્મકૃત વ્યક્તિત્વ ઉપર જ પોતાનું ધ્યાન કેન્દ્રિત કરે છે. જે રૂપાકૃતિ ઉપર તે મોહ પામે છે તે તો પુદ્દગલનો જ એક વિકાર છે, નાશવંત છે. જે ક્ષણભંગુર છે તેના ઉપરથી દષ્ટિ ખસેડી લઈ. શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપ કે જે શાશ્વત તત્ત્વ છે તેનું અનુસંધાન રાખે, અર્થાત્ શુદ્ધ જ્ઞાન અને પૂર્ણ આનંદ એ જ મારૂં સાચું સ્વરૂપ છે અને અત્યારે પ્રાપ્ત થયેલું સમગ્ર વ્યક્તિત્વ ભવનાટકના મંચ ઉપર કર્મના નિર્દેશન મુજબનો ક્ષણવાર પુરતો એક અભિનયમાત્ર છે - એમ જો શુદ્ધ સ્વરૂપની જાગૃતિ રાખે તો જ ચિત્તમાં સમત્વનું અવતરણ થઈ શકે. પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપની જાગૃતિ જેટલી દઢ, તેટલો ક્લેશ ઓછો થાય છે. પોતાના ચૈતન્યસ્વરૂપના આશ્રયે જીવ સર્વ દુઃખનો અભાવ કરી શકે છે. મનુષ્યાદિ શરીરનો સંબંધ તથા ક્રોધાદિ વિકારોની ઊપજ તો માત્ર ચૈતન્યતત્ત્વની વૈભાવિક અવસ્થા છે. તેનાથી ભિન્ન એવા પોતાના અસલી રૂપને ઓળખે તો જીવ દુઃખી થાય નહીં. પરંતુ જીવે પોતાને ઓળખ્યો નથી અને કર્મકૃત અવસ્થાઓને પોતાની અવસ્થા માની હોવાથી તે દઃખી થાય છે.

આમ, સર્વ ક્લેશથી અને સર્વ દુઃખથી મુક્ત થવાનો ઉપાય એકમાત્ર આત્મજ્ઞાન જ છે. જીવ પરથી વિરક્ત થઈ સ્વ તરફ વળે તો તે આત્મજ્ઞાન પામે, નિજસ્વરૂપમાં સ્થિત થાય. કર્મકૃત ભાવમાં વાસ કરવો તે અજ્ઞાનભાવ છે, કર્મભાવ છે; અને જ્ઞાનદર્શન-ચારિત્રસ્વરૂપ આત્મામાં વાસ કરવો તે જ્ઞાનભાવ છે, મોક્ષભાવ છે. જેને નિજ ઘર મળી ગયું છે, અર્થાત્ ઉપયોગ ત્રિકાળી જ્ઞાયકસ્વભાવમાં સ્થિર થયો છે, તેને અપાર શાંતિ વર્તે છે, તેને દુઃખનો કોઈ અનુભવ થતો નથી. હોળીના દિવસે ઘરની બહાર નીકળે તો રંગાઈ જાય, પણ જો તે ઘરની બહાર જ ન નીકળે તો કેવી રીતે રંગાય? તેમ જો ઉપયોગ નિજજ્ઞાયકઘરમાં રહે તો દુઃખથી મુક્ત થઈ અલૌકિક સુખ ભોગવે છે. પોતાના સ્વભાવમાં ઠરે તો અપાર શાંતિ અનુભવે છે. જ્યારે આત્મા જડમાં સુખ માની તે લેવા ઘરની બહાર નીકળે છે ત્યારે મન 'આ સાર્ડુ, આ નઠાર્ડુ, આ માર્ડુ, આ પારકું, આ જોઈએ, આ ન જોઈએ' ઇત્યાદિ અનેક રાગ-દેષવાળા વિકલ્પોની જાળ ઊભી કરીને તેને એ જાળમાં ફસાવે છે. જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાપણે રહેવારૂપ પોતાનો ધર્મ ભૂલી, કર્તા-ભોકતારૂપે બનેલો આત્મા વધારે ને વધારે ગૂંચવાતો જાય ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'સમયસાર', ગાથા ર

^{&#}x27;जीवो चरित्तदंसणणाणद्विउ तं हि ससमयं जाण । पुग्गलकम्मपदेसद्वियं च तं जाण परसमयं।।'

છે. આખરે શક્તિ ગુમાવી, ભાન ભૂલી, આ વિકલ્પવમળમાં તે ગોથાં ખાધા કરે છે. પણ જો આત્મા પોતાના સ્વરૂપમાં રહે તો તે પોતાના સ્વરૂપમાં આનંદ કરે છે.

આમ, કર્મકૃત અવસ્થામાં ઉપયોગનું જોડાણ તે કર્મભાવ છે, અજ્ઞાનભાવ છે, પરવાસ છે અને તેનો પ્રતિપક્ષ - આત્મામાં ઉપયોગનું જોડાણ તે મોક્ષભાવ છે, જ્ઞાનભાવ છે, નિજવાસ છે. ભેદજ્ઞાનના અભાવે પરદ્રવ્ય અને પરભાવમાં એકતા થવી તે બંધમાર્ગ છે અને ભેદજ્ઞાનના બળ વડે પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી વ્યાવૃત્ત થવું તે મોક્ષમાર્ગ છે. 'સમસ્ત પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી હું ભિન્ન છું' એવું ઘોલન તે ભેદજ્ઞાન છે. દેહાદિ નોકર્મ, જ્ઞાનાવરણીયાદિ દ્રવ્યકર્મ અને રાગાદિ ભાવકર્મરૂપ ઉપાધિનો જે જ્ઞાન વડે ભેદ કરાય છે તેને ભેદજ્ઞાન કહેવાય છે. ભેદજ્ઞાન અનાદિથી અપ્રાપ્ય એવા અત્મિક સુખની પ્રાપ્તિ કરાવનાર છે, તેથી આત્મકલ્યાણની ઈચ્છાવાળા જીવે ભેદજ્ઞાનનો અભ્યાસ કરવો આવશ્યક છે.

જે જીવ આત્મકલ્યાણ કરવા તૈયાર થયો છે, તેણે 'હું કાંઈ જાણતો નથી' એવો નિર્ણય કરીને સત્પુરુષના ચરણે જવું જોઈએ અને તેમના અવલંબનથી આત્મસ્વરૂપની રુચિ વધારી, સ્વરૂપાનુસંધાન સાધી આત્મહિત કરવું જોઈએ. સદ્ગુરુના બોધ દ્વારા જ્ઞાનસ્વભાવી આત્માનો નિર્ણય થતાં સર્વ પરદ્રવ્યોથી સ્વદ્રવ્યની ભિન્નતા સમજાય છે અને પરદ્રવ્યો ઉપરનું લક્ષ છૂટી, સ્વદ્રવ્યના વિચારમાં આવવું થાય છે. સ્વદ્રવ્યનાં બે પાસાં છે. એક પાસામાં ત્રિકાળી અખંડ પરિપૂર્ણ ચૈતન્યસ્વભાવ છે અને બીજા પાસામાં વર્તમાન અવસ્થાના દોષ છે, વિકાર છે. વિકારી પર્યાય ઉપરનું લક્ષ છોડી ત્રિકાળી ચૈતન્યસ્વ૩૫ ઉપર દુષ્ટિ કરતાં સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે. જેમ હીરાની 'રફ' (કાચો હીરો) ઘાટઘૂટ વગરની હોવાથી સુંદર કે મૂલ્યવાન દેખાતી નથી, છતાં ઝવેરી તો તે 'રફ' જોઈને તેમાંથી બનનાર હીરાને ઓળખીને તેનું મૂલ્ય પારખે છે, ખરીદે છે; તેને વિવિધ પ્રક્રિયાઓમાંથી પસાર કરે છે અને તેથી તેને હીરાનું તેજ, સૌંદર્ય તથા મૂલ્ય પ્રાપ્ત થાય છે: તેમ જે જીવ વિભાવપરિણતિ વખતે દ્રવ્યદેષ્ટિ કરી, આત્માના શુદ્ધ જ્ઞાયકસ્વભાવને પકડી લઈ ત્રિકાળી ધ્રુવ ચૈતન્યને પારખે છે, તેનો વિશ્વાસ તથા મહિમા લાવી તેમાં એકાગ્ર થાય છે, તેને અવશ્ય શુદ્ધ જ્ઞાનસ્વભાવની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેથી સત્પુરુષના અવલંબને સંયોગો અને વિકારોની વચ્ચે પણ શુદ્ધ સ્વભાવનો નિર્ણય અને નિશ્ચય કરી, ઉપયોગને પરપદાર્થોમાંથી ખેંચીને આત્મસન્મુખ કરી, નિજસ્વરૂપના નિદિધ્યાસનમાં રહેવાનો પુરુષાર્થ સતત કરવાનો છે. સત્પુરુષના સમાગમમાં નિરંતર સ્વરૂપસ્મૃતિ, ભેદવિજ્ઞાનની જાગૃતિ વધારતાં જવાનું છે. આ જાગૃતિનું સાતત્ય નીપજતાં આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ સહજપણે થાય છે. યથાર્થ લક્ષ્ય થતાં લક્ષ્યવાન લક્ષિત થાય છે. યથાર્થ મહિમા આવતાં મહિમાવાન અનુભવાય છે.

જ્ઞાનીપુરુષો અનંતી કરુણા કરી જીવને વસ્તુસ્થિતિનું દર્શન કરાવે છે. તેઓ જીવને સ્વદ્રવ્ય અને પરદ્રવ્યની ભિન્નતાનું ભાન કરાવે છે. જેમ પિતા મિલકતના બે ભાગલા પાડીને પત્રને સમજાવે કે 'જો ભાઈ! આ તારો ભાગ. તારો ભાગ તું લઈ લે અને રાજી થા.' તેમ ચૈતન્યદ્રવ્ય અને પુદ્દગલદ્રવ્ય એવા બે ભાગ પાડીને જ્ઞાનીઓ જીવને સમજાવે છે કે 'ચૈતન્યદ્રવ્ય નિત્ય ઉપયોગસ્વભાવ3પ છે અને એ તારો ભાગ છે. નિત્ય ઉપયોગસ્વભાવ સિવાયનું બીજું બધું જ પુદ્દગલદ્રવ્યનો ભાગ છે. હે જીવ! હવે તું તારો ભાગ લઈ લે અને રાજી થા. ઉપયોગસ્વભાવ - જ્ઞાયકસ્વભાવ વિના બીજા બધામાંથી આત્મબુદ્ધિ છોડીને એક જ્ઞાયકભાવનો જ તારા સ્વરૂપપણે અનુભવ કર, તેમાં જ એકાએ થા. તું અનાદિથી પોતાને શરીરરૂપ માની રહ્યો છે. જે જે સ્થળે જે જે શરીર પ્રાપ્ત થયું, ત્યાં ત્યાં તેં માન્યું કે 'આ શરીર તે જ હું છું, હું મનુષ્ય છું, હું સ્ત્રી છું, હું સ્વરૂપવાન છું' ઇત્યાદિ. આવી માન્યતાઓ કરી તું તારું અસલી સ્વરૂપ ભૂલી ગયો. સ્વરૂપના અજ્ઞાનમાં તેં 'હું ચૈતન્યચમત્કાર માત્ર છું' એવું જાણ્યું નહીં, શ્રદ્ધશું નહીં, અનુભવ્યું નહીં. તેથી સાવધાન થઈને એમ જાણ કે 'અહો! હું તો ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મા છું. પૂર્વે પણ હું ચૈતન્યસ્વરૂપ જ હતો. શરીર સદા મારાથી અત્યંત ભિન્ન જ છે. આત્મા અને દેહના ગુણધર્મોમાં આકાશ-પાતાળ જેવો ભેદ છે. આત્મા અવિનાશી ચૈતન્યપદાર્થ છે, જ્યારે દેહ જડ પુદ્દગલપરમાણુઓના સંયોગથી બનેલ ક્ષણભંગુર પદાર્થ છે. આત્મામાં જ્ઞાન ગુણની મુખ્યતા છે, દેહમાં જડત્વની મુખ્યતા છે. જ્ઞાન એ આત્માનું લક્ષણ છે, પુદ્દગલમાં જડત્વ હોવાથી આ ગુણ એનામાં નથી. એનામાં વર્ણ, ગંધ, રસ, સ્પર્શાદિ ગુણો છે. સડવું, પડવું, વીખરવું, મળવું એ એનો સ્વભાવ છે. આત્મા અને પુદ્દગલ વચ્ચે સદૈવ ભિન્નતા જ છે. જીવ કદી પુદ્દગલરૂપ થતો નથી અને પુદ્દગલ કદી જીવરૂપ થતું નથી. અનાદિથી અજ્ઞાનવશ પુદ્દગલ સાથે એકક્ષેત્રાવગાહે રહ્યો હોવા છતાં તારું ચૈતન્યસ્વરૂપ સદૈવ જડથી ભિન્ન શુદ્ધ જ રહ્યું છે, એમ જાણીને આનંદમાં આવ. 'હું ચૈતન્ય પરમેશ્વર છું' એમ સમજી તારું ચિત્ત ઉજ્જ્વળ કર. તારા ચૈતન્યસ્વરૂપને ઓળખતાં જ તને અંતરમાં અપૂર્વ પ્રસન્નતા થશે. અંતરમાં ઊતરી ચૈતન્યસ્વરૂપ તરફ તારી પરિણતિને વાળ તો તું ઉપયોગસ્વરૂપ જીવદ્રવ્યને જ સ્વદ્રવ્યપણે અનુભવશે. તેથી તેમાં જ તારી પરિણતિને એકાકાર કર અને પરદ્રવ્યમાં એકાકાર થવાનું છોડ.'

આત્મા અને પરદ્રવ્ય વચ્ચેની ભિન્નતાનું ભાન કરાવવાની સાથે જ્ઞાનીપુરુષ સ્વભાવ અને વિભાવ વચ્ચેની ભિન્નતા પણ સમજાવે છે. જેમ ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને અને જડને એકતા નથી પણ અત્યંત જુદાપશું છે, તેમ ચૈતન્યસ્વરૂપને રાગાદિ વિભાવ સાથે પણ એકતા નથી. ચૈતન્યસ્વભાવ વિભાવથી પણ જુદો છે. સ્વભાવ અને વિભાવને ક્યારે પણ એકમેકપશું થયું જ નથી. શુભાશુભ મલિન વિભાવ તથા સહજ શુદ્ધ સ્વભાવ

વચ્ચે ભેદજ્ઞાન કરવાની રીત સમજાવતાં જ્ઞાનીપુરુષો કહે છે - આત્મા ત્રિકાળી, પૂર્ણ, જ્ઞાન, આનંદસ્વરૂપે છે. તે રાગાદિ ઉપાધિરૂપે નથી. જડ કર્મના નિમિત્તને આધીન થતાં આત્માની અવસ્થામાં રાગાદિ થાય છે, પણ તેથી કાંઈ આત્માનો સ્વભાવ રાગાદિરૂપ થતો નથી. તે વિકાર વર્તમાન અવસ્થા પૂરતો જ છે. તે વિકારનો નાશ કરવાની તાકાત દરેક ક્ષણે આત્મામાં છે. આ તથ્ય દેષ્ટાંત વડે સ્પષ્ટ થશે. પાણી સ્વભાવે શીતળ છે, છતાં પોતાની યોગ્યતાના કારણે અગ્નિનું નિમિત્ત મળતાં પાણીની વર્તમાન અવસ્થા ઉષ્ણ બને છે. આ અવસ્થા પાણીની જ છે, છતાં એ તેનો સ્વભાવ ન હોવાના કારણે આ અવસ્થા ટળી શકે છે. તેમ આત્મા સ્વભાવે શુદ્ધ છે, છતાં પોતામાં રહેલી તથારૂપ યોગ્યતાના કારણે તથા કર્મોદયના નિમિત્તે આત્માની વર્તમાન અવસ્થા અશુદ્ધ છે. એ અશુદ્ધ અવસ્થા આત્માની જ છે, છતાં એ તેનો સ્વભાવ ન હોવાના કારણે તે ટળી શકે છે. જેમ પાણીની ઉષ્ણ અવસ્થા વખતે પણ પાણીનો શીતળ સ્વભાવ વિદ્યમાન છે, તેમ આત્માની અશુદ્ધ અવસ્થા વખતે પણ આત્માનો શુદ્ધ સ્વભાવ વિદ્યમાન છે. આ તથ્ય બે પ્રકારે સિદ્ધ થઈ શકે છે —

- (૧) અગ્નિ ગમે તેટલો ઉગ્ર હોય છતાં તેના ઉપર ઉષ્ણ પાણી નાખવામાં આવે તો તે પાણી અગ્નિ વડે જ ઉષ્ણ થયું હોવા છતાં અગ્નિને જ ઠંડો કરી નાખે છે. તેથી અગ્નિને ઓલવી નાખવાને સમર્થ એવો પાણીનો શીતળ સ્વભાવ નાશ પામતો નથી એમ સ્પષ્ટતઃ જાણી શકાય છે. તેવી જ રીતે આત્માનો સ્વભાવ વિકારને પુષ્ટિ આપવાનો નથી, પણ વિકારને નાશ કરવાનો જ છે. આત્મસ્વભાવમાં એકાગ્ર થવાથી વિકારનો નાશ થાય છે.
- (૨) પાણીની ઉષ્ણ અવસ્થા સ્વાભાવિક નથી, કારણ કે અગ્નિના નિમિત્તે તે ઉષ્ણ થાય છે. ઉષ્ણ અવસ્થા ઉત્પન્ન કરવા માટે અગ્નિરૂપ પરસંયોગની અપેક્ષા રહે છે. ઉષ્ણતાનું નિમિત્ત દૂર ખસેડતાં પાણી આપોઆપ ઠંડું થઈ જાય છે. તેવી જ રીતે આત્માની વિકારી અવસ્થા સ્વાભાવિક નથી, કારણ કે આત્મા કર્મોદયમાં જોડાય ત્યારે જ વિકાર થાય છે. પરનિમિત્તમાં જોડાણ કર્યા વિના વિકાર ઉત્પન્ન થતો નથી. વિકાર ઉત્પન્ન કરવા માટે પરના અવલંબનની અપેક્ષા રહે છે. જો કે નિમિત્ત કાંઈ જીવને રાગ, દેષ કે મોહ કરાવતું નથી, પણ આત્મા પોતે નિમિત્તને આધીન થઈ વિકાર કરે છે. જો તે નિમિત્ત તરફ લક્ષ ન આપે અને સ્વલક્ષ કરે તો વિકાર ઉત્પન્ન થાય નહીં.

જેમ પાણીની વર્તમાન અવસ્થા ઉષ્ણ હોવા છતાં તે પાણીનો વાસ્તવિક સ્વભાવ નથી, તેના સ્વભાવમાં તો ત્રિકાળી શીતળતા જ છે; તેમ વર્તમાન અવસ્થામાં આત્મા અશુદ્ધ હોવા છતાં તે અશુદ્ધિ આત્માનો વાસ્તવિક સ્વભાવ નથી, તેના સ્વભાવમાં તો ત્રિકાળી શુદ્ધતા જ છે. પાણીના સ્વભાવમાં ખરેખર ઉષ્ણતા પ્રવેશી નથી, માત્ર તેની અવસ્થા ઉષ્ણ થઈ છે. તે વખતે પણ તેનો સ્વભાવ તો એકાંત શીતળતારૂપ જ છે, કારણ કે પાણી જો ખરેખર સ્વભાવથી જ ઉષ્ણ હોય તો તે ઠંડું થઈ શકે જ નહીં. પાણીની ઉષ્ણ અવસ્થા અગ્નિરૂપ પરસંયોગથી થઈ છે અને તે ઉષ્ણતા ટળી શકે છે એમ ન માનનારને પાણીના વાસ્તવિક શીતળ સ્વભાવનું ભાન નથી. પાણીને ઉષ્ણ જ માનનાર તેને ઠંડું કરવાનો ઉપાય પણ નહીં કરે. તેવી જ રીતે આત્માની અશુદ્ધ અવસ્થા કર્મોદયના નિમિત્તે થઈ છે અને તે ટળી શકે છે એમ ન માનનારને આત્માના પૂર્ણ શુદ્ધ સ્વભાવનું ભાન નથી. આત્માને અશુદ્ધ જ માનનાર તેને શુદ્ધ કરવાનો ઉપાય પણ નહીં કરે.

જેમ પાણીનો શીતળ સ્વભાવ ઉષ્ણતા વખતે પણ ટકી રહે છે એમ જાણનાર અિનના સંયોગે થયેલ વર્તમાન ઉષ્ણ અવસ્થાનું લક્ષ ગૌણ કરીને, શીતળ સ્વભાવ ઉપર દષ્ટિ કરી ઉષ્ણ પાણીને ઠારે છે અને ત્યારે પાણીનો શીતળ સ્વભાવ અવસ્થામાં પ્રગટ થાય છે. તેમ વિકારી અવસ્થા વખતે પણ અખંડ, જ્ઞાયક, નિર્વિકારી સ્વભાવ ટકી રહેનાર છે એમ જાણનાર કર્મોદયના નિમિત્તે થયેલ વર્તમાન અશુદ્ધ અવસ્થાનું લક્ષ ગૌણ કરીને, શુદ્ધ સ્વભાવને જાણીને તેમાં જ ઠરે છે અને સહજાનંદની પ્રાપ્તિ કરે છે.

જ્ઞાનીઓ આ પ્રકારે ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માની પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી ભિન્નતા સમજાવે છે. તેઓ ચૈતન્યનો મહિમા ગાઈને જીવને તે પ્રાપ્ત કરવાની પ્રેરણા કરે છે કે - 'ચૈતન્યસ્વભાવની પ્રભુતા જો, આત્માની અનંત શક્તિઓ જો. આત્મા અગાધ ગુણોથી ભરેલો છે. પાણીનો સમુદ્ર તો મર્યાદિત છે, જ્યારે આત્મા તો જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર, આનંદ આદિ અનંત અનંત અગાધ ગુણોથી ભરેલો અમર્યાદિત મહાન સમદ્ર છે. તેનું ક્ષેત્ર ભલે શરીરપ્રમાણ - અસંખ્યાતપ્રદેશી છે, તોપણ તેની ગણગંભીરતા અપાર છે. તે સમસ્ત વિભાવરહિત તથા કર્મના ઉદય કે ક્ષય આદિની અપેક્ષા વિનાનો નિરપેક્ષ, ત્રિકાળ, પવિત્ર, શુદ્ધ, પરમ પારિણામિક ભાવ છે. તે ક્ષણિક પર્યાય જેટલો નથી, પરંતુ ત્રિકાળ, નિત્ય, ધ્રુવ, અખંડ, જ્ઞાયક, પરમ ભાવ છે. આવા જ્ઞાનસ્વભાવને લક્ષમાં લીધા વિના તેં અનંતી વાર બાહ્ય ક્રિયા અને શાસ્ત્રાભ્યાસ કર્યાં, પણ તું સંસારથી છૂટ્યો નથી. જેમ ગાડાનું ધોંસરું ઉપાડવા ટેવાયેલો બળદ ધોંસરું ઊંચું થતાં જ ત્યાં પોતાની ડોક નાંખે છે, તેમ પરના કર્તાપણાથી ટેવાયેલો અજ્ઞાની કર્મોદયનં નિમિત્ત મળતાં જ પરમાં એકતા કરીને પરિણમતો હોવાથી સંસારરૂપી ધોંસરામાં પોતાને સતત જોડેલો રાખે છે. પરના કર્તાપણાનો અનાદિ કાળથી ચાલ્યો આવતો અધ્યાસ ભેદજ્ઞાનના વારંવારના અભ્યાસ વડે છૂટી શકે છે. ભેદજ્ઞાન કરવાથી પર સાથેની એકતાબુદ્ધિ તૂટશે અને પરની રુચિ પણ છુટશે. પરદ્રવ્ય અને વિભાવથી ભિન્ન એવા ચૈતન્યસ્વરૂપનું જ્ઞાન કરીને જો તું સ્વરૂપલક્ષ અને સ્થિરતા કરશે તો જરૂર તારી દશામાં સમ્યગ્દર્શન પાકશે, આનંદ પાકશે, અનંત નિર્મળતાઓ ફાલી નીકળશે. તેથી પરમાં ભટકવાનું છોડ અને ભેદજ્ઞાન વડે ચૈતન્યનો અનુભવ કર.'

ભેદજ્ઞાનની પ્રક્રિયામાં સૌ પ્રથમ બુદ્ધિપૂર્વક પ્રયાસ ચાલુ થાય છે. અહીં પ્રયાસનો અર્થ છે - પોતે માત્ર જાણનારો છે એમ જ્ઞાયકનો જ્ઞાયકપણે અભ્યાસ, હર્ષ-શોકના પ્રસંગે આંતર નિરીક્ષણ કરતાં સ્પષ્ટ સમજાય છે કે પોતાના જ્ઞાનમાં ખરેખર કંઈ વધ-ઘટ થઈ જ નથી. અર્થાત હર્ષના પ્રસંગે પોતાને કંઈ મળ્યું નથી, તેમજ શોકના પ્રસંગે પોતામાંથી કંઈ ગયું નથી. આ પ્રકારે ભેદજ્ઞાનના અભ્યાસથી સમજાય છે કે 'દેહાદિ પરદ્રવ્ય અને રાગાદિ પરભાવ મારા ઉપર કંઈ અસર પહોંચાડી શકતાં નથી. અનંત કાળથી રાગાદિ ભાવોની અસર તળે અનેકવિધ વિકારપરિશામ વચ્ચે રહેવા છતાં મારં જ્ઞાનસ્વરૂપ સદા નિર્લેપ જ રહેલું છે.' કાર્યે કાર્યે, પ્રસંગે પ્રસંગે, સ્વહિતમાં ઉત્સાહિત વીર્યથી વર્તતો સાધક પોતાનું સ્વરૂપ પર્યાયદેષ્ટિથી ન નીરખતાં દ્રવ્યદેષ્ટિથી નીરખતો હોવાથી તેને નિજસ્વરૂપ સમસ્ત પરદ્રવ્યથી ભિન્ન પરમેશ્વર સમાન ભાસે છે. પથ્થરની શિલા પડી હોય તો સામાન્ય માણસને તો એ શિલારૂપ દેખાય, પણ શિલ્પીને તેમાં મર્તિનાં દર્શન થાય. પોતાની કલાથી તે પારખી લે છે કે પથ્થરના કયા ભાગમાંથી મૂર્તિનું કયું અંગ નીકળશે. પોતાનાં છીણી-ટાંકણાથી પથ્થરના અનાવશ્યક ભાગને તે કાઢી નાખે છે અને પરિણામે સુંદર મૂર્તિનું નિર્માણ થાય છે. તેવી જ રીતે સાધકને વર્તમાન વિભાવદશામાં પણ પોતાનામાં ભગવાન આત્માનાં દર્શન થાય છે. પરભાવાદિ જે અન્ય અંશો છે, તેને તે પ્રજ્ઞાછીણીથી કાઢી નાંખે છે અને પરિણામે સ્વભાવના લક્ષે નિજપદને પામે છે. ભેદજ્ઞાનનો અભ્યાસ સ્વસન્મુખતાના સહજ પુરુષાર્થને ઉત્પન્ન કરે છે, જે વૃદ્ધિગત થતાં કોઈ અપૂર્વ પરાક્રમથી જીવને આત્માનો અતીન્દ્રિય અનુભવ થાય છે. પરમાર્થપ્રાપ્તિની તીવ્ર અભિલાષામાં વર્તતા મુમુક્ષુને ભેદજ્ઞાનનો પ્રયાસ સહજપણે સકળ થાય છે.

આમ, ભેદજ્ઞાનના બળ વડે દેહાદિ સંયોગો અને રાગાદિ વિકારોથી પોતાની ભિન્નતાનો ભાવ આસ્વાદ્યો હોવાથી કર્મકૃત અવસ્થાને પોતાની નહીં જાણતાં, હિતરૂપ નહીં માનતાં, પોતારૂપ નહીં અનુભવતાં, પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી અત્યંત ભિન્ન રહી ભેદવિજ્ઞાની પોતાના જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપને જ પોતાનું સ્વરૂપ જાણે છે, હિતરૂપ માને છે અને પોતારૂપે અનુભવે છે. ભેદજ્ઞાનનો આવો અપૂર્વ મહિમા છે. ચંદનના જંગલમાં ઘણા સાપ હોય છે. તે બધા ચંદનના ઝાડને વીંટળાયેલા જ રહે છે, પણ ગરુડ આવે કે બધા ભાગમભાગ કરવા માંડે છે. તેવી રીતે ભેદજ્ઞાનરૂપ ગરુડ આવે કે રાગાદિ વિભાવરૂપ સાપોમાં ભાગમભાગ મચી જાય છે! જેમ જેમ ભેદજ્ઞાનની જાગૃતિ વધતી જાય છે, તેમ તેમ રાગાદિ વિભાવોનો વિલય થતો જાય છે. ભેદજ્ઞાનનો મહિમા ગાતાં

ભટ્ટારક શ્રી જ્ઞાનભૂષણજી 'તત્ત્વજ્ઞાનતરંગિણી'માં લખે છે કે 'છીણી જેમ લોખંડના ગોળાના બે જુદા જુદા ટુકડા કરી દે છે, સોય જેમ કાંટાને કાઢી નાંખે છે, કરવત જેમ કાષ્ટને વહેરીને બે ભાગમાં વહેંચી દે છે, પવન જેમ ધૂળના ઢગને ઉડાડી મૂકે છે, સીસું જેમ સોના-ચાંદીમાંથી મેલ જુદો કરે છે, અગ્નિ જેમ સુવર્ણાદિનો મેલ દૂર કરી શુદ્ધ કરે છે, કાલુ જેમ શેરડીનો રસ અને કૂચા જુદા કરી દે છે, પાણી જેમ વસ્ત્ર, વાસણ આદિના મેલને દૂર કરે છે, કતકફલ (ફટકડી) જેમ મેલા પાણીમાં નાખવાથી કચરો અને નિર્મળ જળ જુદાં પડે છે, હંસ પક્ષી જેમ જળમિશ્રિત દૂધમાંથી જળને છોડી દૂધને અહણ કરે છે, છરી જેમ વસ્તુના બે ભાગ કરે છે, પરશુ જેમ પદાર્થના ભિન્ન ટુકડા કરી નાખે છે, ટાંકણું જેમ પથ્થરમાંથી સુંદર પ્રતિમા ઘડી કાઢે છે, તરવાર જેમ શત્રુના શિરને જુદું કરી દે છે તથા મંથનદંડ (રવૈયો) જેમ છાશમાંથી માખણ જુદું પાડી દે છે; તેમ પ્રજ્ઞારૂપ સુવિચારણા - ભેદજ્ઞાન જેને પ્રગટે છે તેને દેહાદિથી ભિન્ન પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપની ઉપલબ્ધિ થાય છે.' '

પ્રજ્ઞાવંત ભેદજ્ઞાની પરથી ભિન્ન પોતાના શુદ્ધાત્મસ્વરૂપને સાક્ષાત્ અનુભવે છે. અપૂર્વ આત્મજ્ઞાનને પામી નવીન કર્મો આવવાનો માર્ગ અટકાવે છે અને પૂર્વકૃત કર્મોને તોડે છે. સંવર-નિર્જરાના ફળરૂપે આત્માનો સર્વ કર્મના ક્ષયરૂપ મોક્ષ થાય છે. વજ જેમ પર્વતના ચૂરેચૂરા કરી નાખે છે, તેમ ભેદજ્ઞાનરૂપી વજના બળ વડે કર્મરૂપ પર્વત ભેદાઈ જાય છે. માટે મુમુક્ષુએ મોક્ષવૃક્ષના બીજરૂપ ભેદજ્ઞાનને સદા અંતરમાં ભાવવું જોઈએ. મોક્ષનું અનન્ય કારણ એવા ભેદજ્ઞાનને પામી, તેના બળે નિજ ઐશ્વર્ય પ્રગટ કરી, શુદ્ધ સહજાત્મસ્વરૂપરૂપ મોક્ષને પામી પરમ કૃતાર્થ થવું જોઈએ. ભેદજ્ઞાન વિના જીવ દયા-દાન-ભક્તિ આદિ અનેક સાધનો કરે તોપણ તેનું સંસારપરિભ્રમણ ટળી શકે નહીં. ભેદજ્ઞાનના અભ્યાસ વિના જીવનું જ્ઞાન પરના આશ્રયમાં જ રોકાય છે. તેને પર સાથે એકતાબુદ્ધિપૂર્વકના રાગ-દેષ થાય છે. તે પરવસ્તુનું કાંઈ કરી શકતો ન હોવા છતાં પરનું કરવાનું અભિમાન કરે છે. પરની કર્તાબુદ્ધિ હોવાથી પરનો આશ્રય છોડીને સ્વભાવનો આશ્રય કરતો નથી અને તેથી ધર્મ થતો નથી. ભેદજ્ઞાન દ્વારા જ્ઞાનસ્વભાવનો આશ્રય કરવો તે જ ધર્મ છે. જીવ જો ભેદજ્ઞાનનો અભ્યાસ કરે તો જ સંસારપરિભ્રમણ ટળે છે. કોઈ પણ કાર્ય સિદ્ધ કરવું હોય તો તેમાં એક સાધન મુખ્ય હોય છે કે જેના વિના ચાલી શકે જ નહીં, જ્યારે બીજાં અનેક સાધનો ગૌણતાએ

૧- જુઓ : ભટ્ટારક શ્રી જ્ઞાનભૂષણજીરચિત, 'તત્ત્વજ્ઞાનતરંગિણી', અધ્યાય ૮, શ્લોક ૧

'छेत्रीसूचिक्रकचपवनैः

सीसकाग्न्यूषयंत्रै-

स्तुल्या

पाथः कतकफलबद्धं सपक्षिस्वभावा ।

शस्त्रीजायुरवधितिसदृशा

टंकवैशाखवद्रा

प्रज्ञा यस्योद्भवति हि भिदे तस्य चिद्रूपलब्धिः ।।'

મદદગાર હોય છે. પરમાર્થમાર્ગમાં બીજાં અનેક મદદગાર સાધનો હોવા છતાં મુખ્ય સાધન એવા ભેદજ્ઞાન વિના મોક્ષપ્રાપ્તિ ન થાય. જે કોઈ સિદ્ધ થયા છે તે ખરેખર ભેદવિજ્ઞાનથી જ સિદ્ધ થયા છે અને જે કોઈ સિદ્ધ થશે તે પણ ભેદવિજ્ઞાનથી જ સિદ્ધ થશે. તાત્પર્ય કે આજ સુધીમાં જે કોઈ મુક્તિરમણીને વર્યા છે તે સૌ ભેદજ્ઞાન વડે જ; અને જે કોઈ બંધાય છે, સંસારસમુદ્રમાં ડૂબે છે તે સર્વ ભેદજ્ઞાનના અભાવે જ. ધ

આમ, ભેદજ્ઞાન મોક્ષનં અનન્ય કારણ છે. કોલસાની કાળાશ કાઢવા કોઈ સાબુ સમર્થ નથી, એને ધોળો બનાવવો હોય તો એક જ ઉપાય છે. એને અગ્નિમાં નાંખીએ તો એ રાખ બની ધોળો થઈ જાય છે. ચિત્તને રાગાદિ વિકારોની કાળાશથી મુક્ત કરવાનો એકમાત્ર ઉપાય છે - ચિત્તને ભેદજ્ઞાનરૂપી અગ્નિમાં હોમી દેવું. ભેદજ્ઞાન દ્વારા જીવ વિભાવપરિશમન વખતે જ પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી ભિન્ન એવા સ્વભાવની પકડ કરી શકે છે. આત્માની સર્વ અવસ્થાઓમાં જ્ઞાનપરિણતિ વર્તતી જ હોય, પરંતુ તેને પકડવા માટે ઉપયોગ સૂક્ષ્મ કરવો પડે અને તો જ આત્મસ્વભાવનું ગ્રહણ થઈ આત્મ-રમણતા નીપજે. જેમ હાથીને જોવા માટે સ્થૂળ દેષ્ટિ ચાલે, પણ કંથવાને જોવા માટે દષ્ટિને સૂક્ષ્મ કરવી પડે; તેમ વિભાવપરિણમન દરમ્યાનનો રાગ તો સ્થૂળ ઉપયોગથી પકડમાં આવી જાય, પરંતુ તે જ સમયે વર્તતી જ્ઞાનપરિણતિને પકડવા ઉપયોગને સૂક્ષ્મ કરવો પડે. સદગરના બોધ દ્વારા ભેદજ્ઞાનના નિરંતર અભ્યાસથી સ્વભાવની પકડ થાય છે. જ્ઞાનસ્વરૂપની પકડ કરવાથી જે જ્ઞાનસ્વરૂપી નથી એવા દેહાદિ સંયોગ તથા રાગાદિ વિકારોથી જ્ઞાન છૂટું પડી જાય છે અને શુદ્ધ સ્વભાવ પ્રગટ થાય છે. કર્મકૃત અવસ્થામાં તાદાત્મ્યબુદ્ધિરૂપ અજ્ઞાનભાવ દૂર થાય છે અને જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપી આત્મામાં નિવાસરૂપ મોક્ષભાવની પ્રાપ્તિ થાય છે. શ્રીમદે પ્રસ્તુત ગાથામાં આ અજ્ઞાનભાવને અંધકારની અને જ્ઞાનભાવને પ્રકાશની ઉપમા આપી છે.

અજ્ઞાન અંધકાર સમાન છે અને જ્ઞાન પ્રકાશ સમાન છે. અંધકાર દૂર કરવાનો ઉપાય કોઈ શસ્ત્ર કે લાકડી નથી. તે માટે તો દિવસ હોય તો બારીઓ ખોલો અને રાત્રિ હોય તો દીવો કરો; અર્થાત્ જેમ પ્રકાશ વડે જ અંધકાર દૂર થાય છે, તેમ જ્ઞાન વડે જ અજ્ઞાન દૂર થાય છે. અંધારા ઓરડામાં જઈને જોતાં બધી ચીજો એક જેવી લાગે છે, તેમાં કોઈ ફરક જણાતો નથી, પરંતુ પ્રકાશ થતાં સઘળી ચીજો જે પ્રકારે

'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन । अस्यैयाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ।।'

સરખાવો : પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૪, કડી ૮ 'જે પૂરવ શિવ ગયે, જાહિં અરુ આગે જૈહૈં; સો સબ મહિમા જ્ઞાનતની, મુનિનાથ ક્ટેં હૈં.'

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવકૃત, 'સમયસારકલશ', કલશ ૧૩૧

હતી તે પ્રકારે જુદી જુદી જણાય છે; તેમ અજ્ઞાન-અંધકારના કારણે જડ-ચેતનની ભિન્નતા જણાતી નથી, પરંતુ જ્ઞાનપ્રકાશ પ્રગટતાં આત્મા સર્વ પરસંયોગથી અને વિકારોથી પ્રગટ ભિન્ન ભાસે છે. નિર્મળ જ્ઞાનજ્યોતિ ઉત્પન્ન થતાં જ અજ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થયેલી પરમાં એકતારૂપ ભાંતિ અદશ્ય થઈ જાય છે. આત્મજ્ઞાનરૂપ અનુપમ દીપકથી મહામોહરૂપ અંધકાર દૂર થાય છે અને શુદ્ધ ચિદ્રપનાં દર્શન થાય છે.

અંધકાર અનાદિથી હોય તોપણ પ્રકાશનું એક કિરણ તેનો તરત નાશ કરી દે છે. એક ઓરડામાં હજારો વર્ષ જૂનું અંધારું હોય અને ત્યાં જો દીવો પ્રગટાવવામાં આવે તો તે અંધારું તત્ક્ષણ નષ્ટ થઈ જાય છે. પ્રકાશ માટે તરતના થયેલા કે જૂના અંધકારમાં કોઈ ફરક નથી પડતો. એક દિવસનો અંધકાર હોય કે કોટી વર્ષનો અંધકાર હોય તોપણ પ્રકાશ તેને તત્ક્ષણ ટાળી દે છે. પ્રકાશનું એક કિરણ પણ અંધકારને દૂર કરી દે છે. અજ્ઞાન પણ અંધકાર જેવું જ છે. તે કેટલું પણ ગાઢ હોય અને તે ગમે તેટલું જૂનું હોય તોપણ જ્ઞાનના એક કિરણ સામે તે ટકી શકતું નથી.

જ્ઞાનીપુરુષો કહે છે કે 'અજ્ઞાન ગમે તેટલું ગહન હોય પણ તેના ગહનપણાની ચિંતા ન કરો. તમારામાં અનંત પ્રકાશની સંભાવના છે, અનંત પ્રકાશ પ્રગટાવવાની ક્ષમતા છે. અમારામાં પણ પૂર્વે અજ્ઞાન હતું. અમે સત્પુરુષોનાં વચન ઉપર શ્રદ્ધા રાખી તેમણે દર્શાવેલી વિધિ અનુસાર પ્રયત્ન કર્યો અને અમારો અજ્ઞાનાંધકાર દૂર થયો. એ જ સંભાવના તમારામાં પણ છે. જે જ્ઞાનજ્યોતિ અમારામાં પ્રગટી છે, તે તમારામાં પણ પ્રગટી શકે એમ છે. સર્વ જીવની વિરાટતા તો સરખી જ છે. તમે હાલ વટવૃક્ષનું નાનકડું બી છો, પણ વર્તમાન અપૂર્ણ અવસ્થાનું લક્ષ છોડી વટવૃક્ષના વિરાટ સ્વરૂપનું મનન કરો. તમારા આત્યંતિક ઊંડાણમાં આ પળે પણ તે જ છે જે તમારી આત્યંતિક ઊંચાઈમાં કોઈ દિવસ પ્રગટ થશે. તેથી પર્યાયમૂઢતા ટાળો, તમારી જ્ઞાનજ્યોતિ પ્રગટાવો. જ્ઞાનપ્રકાશ દારા અજ્ઞાન-અંધકાર હટાવી પૂર્ણતા પ્રાપ્ત કરો અને તે માટે આત્યવિશ્વાસ કેળવી ઉત્સાહથી સ્વકાર્યમાં લાગી જાઓ.'

સાધક સ્વને જાણવા પોતાના વાસ્તવિક સ્વરૂપની સમજણ મેળવી, ભેદજ્ઞાનના પ્રયોગ વડે તે સ્વ અને પરનું ભિન્નપણું સ્પષ્ટપણે જાણે છે. તે સ્વરૂપ સાથે અનુસંધાન જોડતો-વધારતો જાય છે. જે પર છે તેનાથી તે દૂર થવા લાગે છે અને જે સ્વ છે તેમાં ક્રમે ક્રમે તે પ્રતિષ્ઠિત થતો જાય છે. પછી કોઈ ક્ષણે જ્યારે સાધનાનું તાપમાન વરાળબિંદુ સુધી પહોંચી જાય છે ત્યારે વિસ્ફોટ થાય છે અને કર્મકૃત અવસ્થાઓ અને ભાવો સાથેની એકતારૂપ અજ્ઞાનનો અનાદિનો ઘોર અંધકાર દૂર થાય છે અને અપૂર્વ જ્ઞાનપ્રકાશનો અનુભવ થાય છે. આ પ્રકાશમાં જે જણાય છે તે સત્ય છે. આમ, જ્ઞાનના એક ક્ષણના પ્રકાશથી જન્મોજન્મનો અજ્ઞાન-અંધકાર ઓગળી જાય છે. ઉપાધ્યાય

શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ લખે છે -

'નાણ પરમ ગુણ જીવનો, નાણ ભવજ઼વ પોત; મિથ્યામતિ તમ ભેદવા, નાણ મહા ઉદ્દ્યોત.'^૧

જ્ઞાન એ જીવનો પ્રધાન ગુણ છે, જ્ઞાન એ ભવસાગર પાર કરવા માટે વહાણ સમાન છે, જ્ઞાન એ મિથ્યાત્વરૂપ મહા અંધકારનો નાશ કરવા માટે મહાન પ્રકાશ છે.

આત્મસ્વરૂપનું અભાન, દેહમાં 'હું'બુદ્ધિ એ જ તત્ત્વથી અજ્ઞાન છે. એ અજ્ઞાન ટાળી આપે તે જ્ઞાન. આ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યા વિના બધું જાણેલું નિષ્ફળ છે. આત્મજ્ઞાન વિના જન્મોજન્મની દોડ રેતી ઉપર દોરેલી લીટીની જેમ વ્યર્થ છે. આત્માને જાણ્યા વિના સુખ, શાંતિ અને સલામતી નથી મળતાં. જ્ઞાનપ્રકાશ વિના જીવ દુઃખી, ભયભીત રહે છે. જેવી રીતે રાત્રિના અંધકારમાં દોરડું સર્પ જેવું લાગતાં એ દોરડું ચિત્તમાં ભય જન્માવે છે. અનેક પ્રકારના પ્રતિભાવ એકસાથે ઉદ્દભવે છે. છાતીમાં ફડક પેસી જાય છે, નાડી તેજ ચાલવા માંડે છે, શાસોચ્છ્વાસ વધી જાય છે, પરસેવો રેલાવા માંડે છે. ગળામાંથી ચીસ નીકળી પડે છે. એ વખતે 'આ સર્પ નથી, ડરવાની જરૂર નથી' વગેરે સમજાવટથી એ ભય નિર્મળ નથી થતો. પણ દીપક લાવીને એ 'સર્પ' ઉપર ધરતાં જ્યારે દોરડું દેખાય છે અને ખબર પડે છે કે એ સર્પ નથી, ત્યારે બધો ભય દૂર થઈ જાય છે. તેવી જ રીતે માત્ર બુદ્ધિ વડે તત્ત્વાર્થનો સ્વીકાર કરવાથી અનાત્મમાં આત્મબુદ્ધિ કે પરમાં સુખબુદ્ધિ નાશ થતી નથી, પરંતુ અનુભવની નિર્મળ જ્ઞાનજ્યોતિમાં આત્માનં શદ્ધ સ્વ3પ પ્રત્યક્ષ અનભવતાં એ ભ્રમ ભાંગી જાય છે અને તેથી જ એકમાત્ર જ્ઞાનજ્યોતિને પ્રગટાવવાનો પુરુષાર્થ કરવો જોઈએ. તે વિના જીવનમાં અંધારું જ રહે છે. શાસ્ત્રમાં અનુભવીઓનું જે જ્ઞાન સંગૃહીત છે, તે પુરુષાર્થ કરીને સ્વાનુભવના સ્તરે ઉતાર્યા વિના માત્ર મુખપાઠના સ્તરે અટકાવી દેવાથી કોઈ પારમાર્થિક લાભ થતો નથી. તેવી શબ્દોની ચોરીથી અજ્ઞાન-અંધકાર દૃર થતો નથી. પ્રકાશ થાય તો અંધકાર ટકે નહીં, પણ પ્રકાશનો ભ્રમ હોય તો અંધકાર ન જ ટળે. કોઈ વ્યક્તિ ઓલવાયેલો દીવો લઈ અંધારામાં ઊભી રહે તો તેથી કંઈ અંધકાર નાશ ન પામે. જીવે દઢ સંકલ્પ કરી, પોતાની બધી શક્તિ એકત્રિત કરીને આત્મજ્ઞાન પ્રગટાવવાનો પુરુષાર્થ કરવો ઘટે છે. આત્મજ્ઞાન જ વિશ્રામનું સાચું સ્થળ છે. તૃષ્ણાતાપથી તપેલા અને અજ્ઞાનયાત્રાથી થાકેલા સાધકયાત્રીને ત્યાં જ વિશ્રાંતિ અને છાયા મળે છે. તે સ્થળ મેળવવું જ જોઈએ. તેની દિશામાં પગલાં ઊપડવાં જ જોઈએ.

આના ઉપરથી એ તથ્ય સ્પષ્ટ થાય છે કે 'જ્ઞાન' શબ્દ દારા અહીં અનુભવાત્મક બોધ, આત્મામાં વસવારૂપ જ્ઞાનપરિણમનરૂપ દશા અભિપ્રેત છે. આત્મા સંબંધીની ૧- ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયનો રાસ', ઢાળ ૧૫, દુહો ૮ માહિતીની ગણના જ્ઞાનમાં કરી નથી. વાચાજ્ઞાનની ગણના તો અજ્ઞાનમાં થાય છે. જ્ઞાનસ્વભાવરૂપી આત્મામાં વાસ કરવો તે જ પરમાર્થદ્રષ્ટિએ જ્ઞાન છે. જેમાં નિજ-વાસરૂપ ઉત્કટ આત્મવૃત્તિ વર્તે છે એવી જીવન્મુક્તદશા તે જ્ઞાનદશા છે.

શાસ્ત્રથી મેળવેલું જ્ઞાન પરોક્ષ છે. મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે તો આત્માનું અપરોક્ષ જ્ઞાન મેળવવું જોઈએ. વ્યવહારમાં પણ ડૉક્ટરે કે વકીલે કેટલાં પુસ્તક વાંચ્યાં છે એ નથી જોવાતું, પરંતુ રોગનું સાચું નિદાન કરનાર તથા યોગ્ય દવા વડે રોગ મટાડી આપનાર ડૉક્ટર કે અચૂકપણે કેસ જીતી આપનાર વકીલ જ માન્ય થાય છે; તેમ આત્માનું કર્ણોપકર્ણથી પ્રાપ્ત થયેલું નહીં પણ પોતીકું, નિર્મળ, સ્પષ્ટ જ્ઞાન જ કર્મ સામે જીત અપાવે છે. આવું જ્ઞાન મેળવવા આત્માનું 'પ્રત્યક્ષ દર્શન' - સ્વાનુભૂતિ આવશ્યક છે. આત્મતત્ત્વનું આવું અપરોક્ષ જ્ઞાન જ આધ્યાત્મિક ક્ષેત્રે જ્ઞાન તરીકે ગણના પામે છે.

સ્વાનુભૂતિ સુધી પહોંચવા માટે પ્રારંભમાં અનુભવીઓના વચનથી નિભાવવું રહ્યું. જેમ ભારતની બહાર કદી પગ ન મૂક્યો હોય તોપણ અમેરિકા જઈ આવેલી વ્યક્તિની વાતો સાંભળતાં કે તેની પ્રવાસનોંધ વાંચતાં અમેરિકાનાં વાહનવ્યવહાર, લોકો, જીવન-પદ્ધતિ, રીતરિવાજ, રહેણીકરણી આદિનું જ્ઞાન મેળવી શકાય છે; તેમ શાસ્ત્રો દ્વારા જગતનાં જડ-ચેતન દ્રવ્યો, પરિસ્થિતિઓ અને ભાવો વિષે જ્ઞાનીઓને પ્રાપ્ત થયેલાં દર્શનનો અને સાધનામાર્ગના તેમના અનુભવોનો લાભ મેળવી શકાય છે. પ્રારંભમાં એ જ્ઞાન સાધકે શાસ્ત્રો દ્વારા મેળવવું રહ્યું કે જેથી જીવાજીવની સાચી ઓળખાણથી પોતાના સ્વરૂપનું યથાર્થ ભાન થાય. સ્વભાવદશામાં અથવા એની વધુમાં વધુ નજીક રહેવામાં એ જ્ઞાન અવશ્ય સહાયભૂત થાય છે.

વીતરાગશ્રુતના સ્વાધ્યાય દ્વારા જીવે પોતાનાં પરિશામોનું અવલોકન કરવું જોઈએ. અવલોકન થયા વિના પોતાનાં પરિશામમાં ઉત્પન્ન થતા વિભાવરસને જીવ પોતે સમજી શકતો નથી. સિદ્ધાંતના કેવળ બૌદ્ધિક શિક્ષણથી અંતરનું પરિવર્તન થઈ શકતું નથી. તત્ત્વનું શ્રવશ-વાંચન કરે, પણ આત્મસ્વભાવની રુચિનો અભાવ હોય તો પરિશમન ક્યાંથી થાય? રુચિ વગર સત્ય ધર્મ થાય નહીં, વૃત્તિસુધારણા થાય નહીં. આત્મકાંતિ માટે તો સાધનાની જ દિશા પકડવી રહી. ધર્મની દિશા તે ઉપચારની દિશા છે. સિદ્ધાંતોને માત્ર મુખપાઠ કરવાને ધાર્મિકતા સમજી લેવામાં આવે છે, પરંતુ તે ધર્મ નથી, આંતરિક પરિવર્તન લાવવું એ ધર્મ છે. જેમ પાઠ્યપુસ્તકની પાછળ આપેલા ગણિતના કોયડાઓના ઉત્તરો મોઢે કરવાથી ગણિતની પરીક્ષામાં કોઈ લાભ થતો નથી, તે માટે તો દાખલાની વિધિ શીખવી પડે; તેમ સિદ્ધાંતોને કેવળ કંઠસ્થ કરવાની કોઈ કિંમત નથી. જે વિધિથી આત્મજ્ઞાન થાય એ વિધિને જાણી, તે પ્રમાણે વર્તી, અંતર્દષ્ટિ કેળવી જ્ઞાનપ્રકાશની પ્રાપ્તિ કરવી જોઈએ.

આમ, પરલક્ષી શ્રુતાભ્યાસ આત્માને ઉપયોગી થઈ શકતો નથી. સ્વલક્ષી શ્રુતાભ્યાસ જ સ્વરૂપપ્રતીતિ કરાવી શકે છે. પરલક્ષી શ્રુતાભ્યાસ વિપરીત શ્રદ્ધાને સુલટાવવા સમર્થ નથી. સ્વલક્ષી શ્રુતાભ્યાસ ભાવના ઊંડાણમાં જાય છે, જેથી જીવમાં સ્વભાવ અને વિભાવની પરખ કરવાની ક્ષમતા આવે છે; જ્યારે પરલક્ષી શ્રુતાભ્યાસ સ્થૂળપણે ઉપર ઉપર પ્રવર્તીને માત્ર ધારણારૂપે રહે છે. સ્વલક્ષી શ્રુતાભ્યાસથી થયેલો આત્મસ્વરૂપનો નિર્ણય સ્વરૂપની અનન્ય રુચિ, સ્વરૂપનો અચિત્ય મહિમા અને અંતર્મુખી પુરુષાર્થનું જોર ઉત્પન્ન કરે છે; જ્યારે પરલક્ષી શ્રુતાભ્યાસથી થયેલો નિર્ણય સ્વરૂપનો મહિમા, તેની રુચિ તથા તેનો પુરુષાર્થ જાગૃત કરી શકતો નથી. આ રીતે સ્વલક્ષી શ્રુતાભ્યાસ જ સ્વરૂપસ્થિરતાનું કારણ થઈ શકે છે.

સાધકનું સ્વલક્ષી જ્ઞાન શ્રવણ, વાંચન, મનન અને નિદિધ્યાસનના ક્રમે આગળ વધતાં સ્વાનુભવ સુધી પહોંચે છે. આ જ્ઞાનભાવમાં જ પરમાર્થજીવન છે. પોતાના નિર્મળ જ્ઞાનાનંદધામમાં વાસ કરવારૂપ પવિત્ર જીવન તે સાચું જીવન છે. આવા જીવનની પ્રાપ્તિ માટે સાધક સ્વરૂપની રુચિ અને ઉલ્લાસપૂર્વક સર્વ પરભાવથી રહિત એવા શુદ્ધાત્મામાં દષ્ટિ સ્થાપે છે. તેનું પરિણમન વેગથી સ્વભાવસન્મુખ થાય છે. ચેતનથી અન્ય જે પરભાવ તે બધાને ભેદજ્ઞાન વડે પોતાથી જુદા કરી તે પોતાના સહજ સ્વરૂપમાં સ્થિત થાય છે. ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા લખે છે કે –

'આવી નિજવાસરૂપ – કેવલ જ્ઞાન પરિણતિરૂપ જ્ઞાનમય ભાવથી કર્મમય અજ્ઞાનભાવ નાશ પામે, તત્ક્ષણ વિલય પામી જાય, એ સ્પષ્ટ સમજાય એવી સિદ્ધ હકીકત છે, નિશ્ચય સિદ્ધાંત છે. જેમ પ્રકાશ થતાં 'ઘણા કાળનો' અંધકાર તત્ક્ષણ નાશ પામે છે, તેમ મોક્ષભાવરૂપ નિજવાસમય જ્ઞાનજ્યોતિનો પ્રકાશ થતાં કર્મભાવરૂપ અજ્ઞાન અંધકાર તત્ક્ષણ નાશ પામે છે. આ સમર્થ દેષ્ટાંત પરથી અનંત કાળના કર્મ પણ કેવી સુગમતાથી છેદાય છે – સર્વનાશ પામે છે, તે સિદ્ધાંત સમજવો સુગમ પડે છે.'

અંધકાર ભલે ગમે તેટલાં વર્ષોનો હોય, પરંતુ પ્રકાશ આવતાં તે તત્ક્ષણ દૂર થાય છે; તેમ અજ્ઞાન ભલે અનાદિ કાળનું હોય, પરંતુ જ્ઞાન પ્રગટતાં તે તત્ક્ષણ દૂર થાય છે. જેટલો કાળ અજ્ઞાનમાં ગયો તેટલો કાળ અજ્ઞાન દૂર થવામાં નથી લાગતો, કેમ કે વિકાર કરતાં સ્વભાવ તરફનું વીર્ય અનંતું છે; તેથી તે અલ્પ કાળમાં જ જ્ઞાનભાવને સાધે છે. ભોગભૂમિ, સ્વર્ગલોક, વિદ્યાધરોની ભૂમિ, નાગલોકની ભૂમિ આદિ પ્રાપ્ત કરવા જીવને ખૂબ પરિશ્રમ કરવો પડે છે અને ત્યાંનાં સુખ તો ક્ષણભંગુર અને ખરેખર દુઃખનાં જ રૂપાંતર છે; જ્યારે શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માની પ્રાપ્તિ અતિ ૧- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', પૃ.૩૧૫-૩૧૬

સુગમ છે. મનુષ્ય, દેવ, વિદ્યાધર, નાગકુમારદેવ આદિ તો જીવની વિભાવ અવસ્થા છે. આવી વિભાવ અવસ્થા માટે અનેક પ્રયત્ન કરવા પડે છે, પરંતુ સ્વભાવની પ્રાપ્તિ સ્વાધીન હોવાથી, આંતર લક્ષથી થતી હોવાથી તે સુગમ છે. તે માટે પરવસ્તુના અવલંબનની કે તેની પરાધીનતા સ્વીકારવાની જરૂર નથી. વૃત્તિને સર્વ પરમાંથી પાછી વાળી, શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપમાં જોડવાથી, પરભાવમય અશુદ્ધ દશા દૂર થતાં સ્વભાવમય સંપૂર્ણ શુદ્ધ મોક્ષદશા પ્રાપ્ત થાય છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે કે -

'કર્મભાવ અજ્ઞાન છે, અનાદિનો તે અસત્ય; જાણી ત્યજવો તેહ તે, આદરવો સત્ તત્ત્વ. મુક્તપણું આત્મા તણું, મોક્ષભાવ નિજવાસ; ધ્યાતાં કરતાં પરિશમે, નિજ પરિશતિ અભ્યાસ. જડ ચેતનના ભેદનું, જ્ઞાન રવિ પ્રગટાય; અંધકાર અજ્ઞાન સમ, તરત વિલય થઈ જાય. જેથી નિશ્ચય આત્મનો, નિજ સ્વભાવ અવિનાશ; કર્મભાવ અજ્ઞાન તમ, નાશે જ્ઞાનપ્રકાશ.'

* * *

१- शुओ : लिहारङ श्री ज्ञान्तभूषश्राश्चरित, 'तत्त्वज्ञान्तरिविधी', अध्याय ४, श्लोङ २ 'दुर्गमा भोगभूः स्वर्गभूमिर्विद्याधरावनिः । नागलोकधरा चातिसुगमा शुद्धचिद्धरा ।।'

૨- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૮-૨૩૯ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૮૯-૩૯૨)

के के द्वावरा अंधिकां, तेर व्यंधके पंदे! ते द्वावरा केदद्वार, अर्थन-पंदे काल्यकांत. ગાથા ૯૮માં શ્રીગુરુએ કહ્યું કે કર્મભાવ અજ્ઞાન છે અને પોતાના સ્વરૂપમાં રહેવું તે મોક્ષભાવ છે. અજ્ઞાન અંધકાર જેવું છે, જે સાચા જ્ઞાનના પ્રકાશથી ટળી જાય છે. કર્મકૃત અવસ્થા અને ભાવોમાં ઉપયોગની સંધિ કરવી તે બંધભાવ છે અને જ્ઞાનસ્વભાવમાં ઉપયોગની સંધિ કરવી તે મોક્ષભાવ છે - એમ સૂત્રાત્મક શૈલીથી બન્ને ભાવોની ભિન્તતા બતાવી, શ્રીગુરુએ સંક્ષેપમાં મોક્ષનો ઉપાય દર્શાવ્યો. આ જ તથ્યનો વિસ્તાર કરી હવે શ્રીગુરુ મોક્ષમાર્ગનું સૂક્ષ્મતાથી દર્શન કરાવશે.

મોક્ષપ્રાપ્તિની સુવિધિ બતાવતી 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'ની ત્રણ ગાથાઓમાંથી^૧ પ્રથમ ૯૯મી ગાથામાં બંધમાર્ગ અને મોક્ષમાર્ગનું સૂચન કરતાં શ્રીગુરુ કહે છે –

'જે જે કારણ બંધનાં, તેહ બંધનો પંથ; તે કારણ છેદક દશા, મોક્ષપંથ ભવઅંત.' (૯૯)

એ જે કારણો કર્મબંધનાં છે, તે તે કર્મબંધનો માર્ગ છે; અને તે તે અર્થ કારણોને છેદે એવી જે દશા છે તે મોક્ષનો માર્ગ છે, ભવનો અંત છે. (૯૯)

કર્મબંધનાં જે જે કારણો છે, તે તે કારણોના સેવનથી જીવને કર્મનો બંધ થાય છે અને એ જ સંસારનું કારણ છે; અર્થાત્ કર્મબંધનાં કારણો તે બંધમાર્ગ છે, જેના કારણે સંસારપરિભ્રમણ થાય છે. આથી સ્પષ્ટ થાય છે કે તે બંધનાં કારણોને છેદે એવી જે આત્માની દશા તે મોક્ષમાર્ગ છે, એટલે કે તે સંસારનિવૃત્તિનો માર્ગ છે, ભવનો અંત લાવવાનો ઉપાય છે. ન્યાયનો સામાન્ય નિયમ એ છે કે જે કારણ હોય તે કારણના સેવનથી તે કાર્ય થાય અને તેનાથી વિપરીત કારણના સેવનથી તે કાર્ય થાય અને તેનાથી વિપરીત કારણના સેવનથી વિપરીત કારણના સેવનથી વિપરીત કારણ હોય, તે તે કારણથી વિપરીત કારણને સેવવાથી મોક્ષરૂપ કાર્ય થાય; અર્થાત્ જે ભાવના કારણે બંધ થાય તે ભાવથી મોક્ષ ન થાય, પણ તેનાથી

૧- 'જે જે કારણ બંધનાં, તેહ બંધનો પંથ; તે કારણ છેદક દશા, <u>મોક્ષપંથ ભવઅંત</u>.' ('શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર', ગાથા-૯૯) 'રાગ, દ્વેષ, અજ્ઞાન એ, મુખ્ય કર્મની ગ્રંથ; થાય નિવૃત્તિ જેહથી, <u>તે જ મોક્ષનો પંથ</u>.' ('શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર', ગાથા-૧૦૦) 'આત્મા સત્ ચૈતન્યમય, સર્વાભાસ રહિત;

જેથી કેવળ પામિથે, <u>મોક્ષપંથ તે રીત</u>.' ('શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર', ગાથા-૧૦૧)

વિપરીત ભાવથી મોક્ષ થાય.

આત્મા કર્મ બાંધી શકે એવાં આસવનાં પ૭ દ્વાર છે, જે બધાં કર્મબંધનાં કારણો છે. તેમાં પાંચ મિથ્યાત્વ, બાર અવિરતિ, પચ્ચીસ કષાય અને પંદર યોગ આવે છે. આ પ૭ કારણોનું જીવ જેટલું વધારે સેવન કરે તેટલાં વધારે કર્મો બાંધે છે. આ બંધનો માર્ગ છે. જેમ જેમ તે કારણોને જીવ છેદતો જાય છે, તેમ તેમ તેના સંસારનો અંત નિકટ આવતો જાય છે. આ પ૭ કારણો છેદાતાં જતાં અધિક અધિક ગુણોવાળી દશા પ્રાપ્ત થતી જાય છે. કર્મબંધનાં આ કારણોને રોકીને આત્મસ્વરૂપમાં વર્તે એવી જે દશા તે સંવર અથવા મોક્ષનો માર્ગ છે અને મોક્ષમાર્ગમાં વર્તતાં સંસારનો ક્ષય થાય છે.

ગાથા ૯૨માં શિષ્યે મોક્ષના અવિરુદ્ધ ઉપાય વિષે જે દલીલ કરી હતી, તેનું સમાધાન શ્રીગુરુ ગાથા ૯૯ થી ૧૦૪ દ્વારા કરે છે. આ ગાથાઓમાં શ્રીગુરુ મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાની સુવિધિ બતાવે છે, અર્થાત્ મોક્ષના યથાર્થ ઉપાયનું નિરૂપણ કરે છે. મોક્ષનો ઉપાય શું છે તેની વિચારણા કરતાં પહેલાં મોક્ષના ઉપાયના અસ્તિત્વની સિદ્ધિ થવી જોઈએ. પ્રસ્તુત ગાથાની વિસ્તૃત વિચારણા કરતાં પહેલાં 'મોક્ષઉપાય'ની સિદ્ધિ વિષે પ્રાસ્તાવિક વિચારીએ.

મોક્ષના અનુપાયવાદીઓ એમ કહે છે કે મોક્ષસ્થાનક કદાપિ સંભવતું હોય તોપણ તેને પામવાનો કોઈ ઉપાય સિદ્ધ થતો નથી. ગાથા ૯૨ના વિવેચનમાં મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરનાર પક્ષની અમુક દલીલો દર્શાવી હતી. તે દલીલોની કઈ રીતે નિરર્થકતા છે તે અહીં જોઈએ –

<u>દલીલ ૧</u> – મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરનાર પક્ષની એક દલીલ એ છે કે મોક્ષ માત્ર નિયતિથી જ સાધ્ય છે. તે જ્યારે થવાનો હશે ત્યારે જ થશે. તે પહેલાં અનેક ઉપાય કરવામાં આવે તોપણ મોક્ષ થઈ શકે નહીં. નિયતિવાદીઓ મોક્ષનો સ્વીકાર કરતા હોવા છતાં મોક્ષનો ઉપાય સ્વીકારતા નથી.

સમાધાન ૧ – અનુપાયવાદીઓ સંસાર ટળવાથી પ્રાપ્ત થનાર મોક્ષને કાર્યભૂત માને છે અને તેના કારણને માનતા નથી. આ માન્યતા સ્વપ્રવૃત્તિનો જ વ્યાઘાત કરનારી છે. કાર્ય સ્વીકારવું અને કારણ ન સ્વીકારવું તે ન્યાયયુક્ત નથી. સર્વ કાર્યો કારણથી જ ઉત્પન્ન થાય છે, કેમ કે કારણ વિના કાર્યની ઉત્પત્તિમાં વિરોધ આવે છે. દરેક કાર્યનાં કારણો હોય છે અને તેથી કાર્યાર્થી જીવ કારણમાં પ્રવૃત્તિ કરી તે જ કાર્યને સિદ્ધ કરે ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી વીરસેનજીકૃત, 'ધવલા', પુસ્તક દ, ખંડ ૧, ભાગ ૯, સૂત્ર ૯, ગાથા દ, પુ.૪૨૧

'उप्पञ्जमाणं सन्दं हि कञ्जं कारणादो चेव उप्पञ्जदि, कारणेण विणा कञ्जुपत्तिविरोहादो ।'

છે. જો કારણ વગર પણ કાર્ય થઈ જતું હોય તો સુજ્ઞજન કારણમાં પ્રવૃત્તિ કરે નહીં. જો કે તેઓ ચારિત્રાદિને મોક્ષનું કારણ માની તે કારણમાં પ્રવૃત્ત થાય છે, તેથી જણાય છે કે કારણ-કાર્યભાવ એ સાચો ભાવ છે, અર્થાત્ દરેક કાર્યનું કારણ હોય છે.

આ વિષે અનુપાયવાદીઓ એમ કહે છે કે ચારિત્રાદિ પામેલો જીવ મોક્ષ પામે છે એ તો કાકતાલીય ન્યાય જેવું છે, અર્થાત્ જેમ કોઈ વૃક્ષ ઉપર બેઠેલો કાગડો ઊંડે ત્યારે તે વૃક્ષની કોઈ ડાળી તૂટે તો તે કાગડાના ઊડવાને ડાળના તૂટી પડવાનું કારણ કહેવાતું નથી; તેમ કોઈ જીવ ચારિત્ર લઈને મોક્ષ પામે એટલામાત્રથી કાંઈ ચારિત્રને મોક્ષનું કારણ કહેવાય નહીં. આ વાત યથાર્થ નથી, કેમ કે સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર અને મોક્ષ વચ્ચે કારણ-કાર્યન્યાય છે, કાકતાલીય ન્યાય નથી. વળી, 'જેવું સર્જ્યું હશે એવું થશે' એવું જો કહીએ તો સઘળી બાબતોમાં સંદેહ જ ઊઠ્યા કરે કે 'શું સર્જ્યું હશે?' 'હું આમ કરીશ અને સર્જાયું કાંઈ બીજું હશે તો?' આવો સંદેહ ઊપજવાથી કોઈ પ્રવૃત્તિ જ થઈ શકશે નહીં, પણ પ્રવૃત્તિ તો થાય છે અને તે પણ ઇષ્ટ સાધનતાના નિશ્ચયથી થાય છે; અર્થાત્ પોતાને જે કાર્ય ઇષ્ટ છે તેનું આ સાધી આપનાર કારણ - સાધન છે એવા નિશ્ચયથી જ તે કારણમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે.

'જે સર્જ્યું હશે તે થશે' એવું જે જીવ બોલ્યા કરે છે, તેને ઘટાદિ કાર્યના અવ્યભિચારી કારણભૂત દંડાદિ અંગે કેમ વાંધો પડે? તે અંગે પણ તે 'જે સજર્યું હશે તે થશે' એમ શા માટે બોલતો નથી? અને ધટાદિ બનાવવા હોય ત્યારે એવું બોલીને બેસી રહેવાને બદલે દંડાદિને શોધવા શા માટે નીકળી પડે છે? 'સર્જ્યું હશે તે જ થાય છે, એને માટે આપણે કાંઈ કરવાની જરૂર નથી' એવું જો માને છે તો ભૂખ લાગે ત્યારે ભોજન માટે શું કામ દોડધામ કરે છે? 'ભોજન જો સર્જ્યું હશે તો મળી જશે' એમ વિચારીને એક ખૂણામાં છાનોમાનો કેમ બેસી રહેતો નથી? આવાં ભોગકાર્યોમાં 'મહેનત કર્યા વગર તો શી રીતે મળે?' એમ બોલીને ઉદ્યમને આગળ કરે છે. સંસારનાં કાર્યો. જેવા કે પૈસા રળવા વગેરે આરંભ-સમારંભ કરવામાં 'જે સર્જ્યું હશે તે થશે' એવા કતર્કો લગાડતો નથી અને ધર્મની બાબતમાં જ ગળિયો બળદ બની જાય છે અને ત્યાં આવા કતર્કો લગાડે છે. જો તે લૌકિક કાર્યોમાં પુરુષાર્થ કરતો હોય તો તેને 'નિયતિ' ઉપર શ્રદ્ધા છે એમ કેવી રીતે કહી શકાય? નિયતિ ઉપર ખરી શ્રદ્ધા હોય તેને તો લૌકિક કે અલૌકિક બન્ને દિશામાં કંઈ પણ કરવાનો વિકલ્પ ન ઊઠે. જે લૌકિક કાર્યોમાં પોતાની કલ્પના અનુસાર પરિવર્તન કરવાનો પુરુષાર્થ કરતો હોય તેને નિયતિ ઉપર વિશ્વાસ જ નથી અને પાછો કહે છે કે મોક્ષમાર્ગ તો નિયતિને આધીન છે. મોક્ષમાર્ગને નિયતિ ઉપર છોડવો અને સંસારમાર્ગે પુરુષાર્થ કરવો તે સ્પષ્ટપણે સંસારનો પક્ષપાત અને ધર્મનો દેષ સુચવે છે. તે સંસારક્ષેત્રે શત્રુ, ચોર, વ્યભિચારી વગેરે પ્રત્યે 'સર્જ્યું હશે તેમ થશે' એ સિદ્ધાંત છોડીને ગુસ્સો કરે છે અને મિથ્યાત્વ તથા ક્રોધાદિ કષાયોરૂપ આંતર શત્રુઓને હટાવવાને બદલે 'સર્જ્યું હશે તો મિથ્યાત્વાદિ જશે અને સમ્યક્ત્વાદિ મળશે' એવી માન્યતા કરે છે. તેણે એવી માન્યતા છોડી આંતર શત્રુઓનો પ્રતિકાર કરવા ઉદ્યમશીલ બનવું જોઈએ. દૈનિક બાબતોમાં 'જે સર્જ્યું હશે તે થશે' એમ બોલવું નથી અને ત્યાં કારણતા માનવી છે, તો પછી સમ્યગ્દર્શન આદિમાં મોક્ષકારણતા શા માટે નથી માનતો? અર્થાત્ માનવી જોઈએ.

<u>દલીલ ર</u> — મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરનાર પક્ષની અન્ય એક દલીલ એ છે કે મોક્ષપ્રાપ્તિમાં કારણ-કાર્યન્યાય સ્વીકારવામાં આવે તો અનવસ્થા દોષ ઉપસ્થિત થાય. મોક્ષરૂપી કાર્યનું કારણ સમ્યગ્દર્શન આદિ હોય તો સમ્યગ્દર્શન આદિરૂપ કાર્યનું કારણ શું? અને વળી તે કારણનું કારણ શું? જો અનવસ્થા દોષ ટાળવા અર્થે એમ કહેવામાં આવે કે સમ્યગ્દર્શન આદિ ગુણો ભવિતવ્યતાના બળે જ પ્રાપ્ત થાય છે, તો જેમ સમ્યગ્દર્શન આદિ ગુણો ભવિતવ્યતાથી જ મળી જાય છે, તેમ મોક્ષ પણ આ સમ્યગ્દર્શનાદિ વિના ભવિતવ્યતાથી મળી જવો જોઈએ. મોક્ષ પ્રત્યે તે સમ્યગ્દર્શનાદિને કારણ માનવાની જરૂર નથી, અર્થાત્ મોક્ષનો ઉપાય કરવાની આવશ્યકતા નથી.

<u>સમાધાન ર</u> — પાકા ઘડારૂપી કાર્યનું કારણ કાચો ઘડો છે. કાચા ઘડાનું કારણ શું? વળી તેનું કારણ શું? જો એમ કહેવામાં આવે કે તેનું કારણ સુયોગ્ય લક્ષણવાળી માટી છે, તો આમ કહેવાથી કંઈ બાકીના કારણ-કાર્યભાવોનો લોપ થઈ નથી જતો. તેવી જ રીતે ભવિતવ્યતાને સમ્યગ્દર્શનાદિ ગુણોની પ્રાપ્તિમાં કારણભૂત ગણવામાં આવતાં અન્ય કારણ-કાર્યભાવોનો લોપ થતો નથી. ભવિતવ્યતાથી સમ્યગ્દર્શનાદિ ગુણો પ્રગટ થાય છે અને સમ્યગ્દર્શનાદિથી મોક્ષ થાય છે. આ વસ્તુસ્થિતિ છે ત્યારે મોક્ષની પ્રાપ્તિમાં આવશ્યક સમ્યગ્દર્શનાદિની અપેક્ષાને શી રીતે ટાળી શકાય?

ભવસ્થિતિપરિપાકના કારણે જીવ જ્યારે અંતિમ પુદ્દગલપરાવર્તન કાળમાં આવે છે, ૧- પુદ્દગલપરાવર્તન કાળ : દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવથી મપાય છે. અહીં ક્ષેત્ર પુદ્દગલપરાવર્તન કાળનો ઉપયોગ કરવાનો છે, માટે તેનો જ વિચાર કરીશું.

ચૌદ રાજલોકમાં આવેલા આકાશના અસંખ્યાત પ્રદેશોને જીવ ક્રમપૂર્વક મૃત્યુ પામવા દ્વારા સ્પર્શે ત્યારે એક ક્ષેત્ર પુદ્ગલપરાવર્તન કાળ થાય. અર્થાત્ કોઈ એક જીવ હમણાં મૃત્યુ પામે ત્યારે એ વખતે જે આકાશપ્રદેશમાં મૃત્યુ પામે તે પહેલો આકાશપ્રદેશ ગણવો. હવે જ્યારે તે જીવ તેની તદ્દન બાજુના જ આકાશપ્રદેશમાં મૃત્યુ પામે ત્યારે તે બીજો આકાશપ્રદેશ ગણવો. આ બન્ને વચ્ચે તે જીવ બીજા જે જે આકાશપ્રદેશમાં મૃત્યુ પામ્યો હોય તે તે ગણતરીમાં લેવા નહીં, પછી ભલે અનંત મરણ થયા હોય કે અનંત કાળ વ્યતીત થયો હોય. તે પછી બીજા આકાશપ્રદેશની તદ્દન બાજુના આકાશપ્રદેશમાં મૃત્યુ પામે ત્યારે ત્રીજો આકાશપ્રદેશ ગણવો. આ રીતે જીવ સર્વ આકાશપ્રદેશને મરણસમયે સ્પર્શે ત્યારે એક ક્ષેત્ર પુદ્દગલપરાવર્તનનો કાળ ગણાય.

ત્યારે તેનો સહજ ભાવમલ હ્રાસ પામે છે. આ કાળમાં પ્રવેશ્યા પછી તીવ્ર મિથ્યાત્વ-ભાવમાં મંદતા આવતી જાય છે. જેમ જેમ મિથ્યાત્વ ભાવ મંદ થતો જાય છે, તેમ તેમ જીવનો વિકાસ થતો જાય છે. કેટલીક વાર એવું બને છે કે અમુક હદ સુધી મિથ્યાત્વ-ભાવમાં મંદતા આવ્યા પછી પાછી એમાં તીવ્રતા પણ આવી જાય છે. વળી પાછી મંદતા આવે છે. આમ, અનેકાનેક વાર મંદતા-તીવ્રતા આવે છે અને જાય છે. જ્યારે જ્યારે મિથ્યાત્વભાવ તીવ્ર બની જાય છે, ત્યારે ત્યારે જીવ એવું મોહનીય કર્મ બાંધે છે કે જેનાં પરમાણુ આત્મા ઉપર ૭૦ કોડાકોડી સાગરોપમ સુધી રહેવાની યોગ્યતા ધરાવતાં હોય છે. આવી ઉપ્ર સ્થિતિવાળા મોહનીય કર્મનો એ જીવ પુનઃ પુનઃ બંધ કરતો હોય છે. તે પછી એક વાર એવી સ્થિતિ આવે છે કે એ જીવને પોતાના ભાવિના સમગ્ર સંસારકાળમાં બે જ વાર તીવ્ર મિથ્યાત્વભાવ પામવાની શક્યતા રહે છે, ત્યારે તે જીવ દિર્બંધક કહેવાય છે. એ જીવ જયારે એક વાર એવી ઉપ્ર સ્થિતિ બાંધી લે છે ત્યારે તેને ફરી એક જ વાર એવી ઉપ્ર સ્થિતિનો બંધ થવાનો બાકી રહે છે, એટલે તેને સકૃતબંધક કહેવાય છે. વળી, એ એક વારની મોહનીય કર્મની ઉપ્ર સ્થિતિ પણ બંધાઈ ગયા પછી એ જીવ કયારે પણ ૭૦ કોડાકોડી સાગરોપમની સ્થિતિવાળું મોહનીય કર્મ બાંધી જ ન શકે એવી યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરે છે ત્યારે એ જીવ અપુનર્બધક કહેવાય છે.

મોહનીય કર્મની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ ન બંધાય એટલો આત્મવિકાસ કરનારા એવા અપુનર્બંધક જીવને સંસાર પ્રત્યે તીવ્ર આસક્તિ રહેતી નથી અને તેનાં વિચાર, વાણી અને વર્તન ઔચિત્યપૂર્ણ હોય છે. આવો જીવ પાપ કરે છે પણ તેમાં રાગ-દેષની તીવતા નથી હોતી, સંસાર ભોગવે છે પણ તેનો આદર નથી હોતો. તે લૌકિક, કૌટુંબિક, ધાર્મિક ન્યાયયુક્ત મર્યાદાઓને પાળે છે. તેનાં મિથ્યાગ્રહ, સ્વચ્છંદ, વિષય-કષ્પાય, તૃષ્ણા આદિ મંદતાને પામે છે. દીન-દુઃખી પ્રત્યે તેના અંતરમાં દયા હોય છે. યમ, નિયમ, સત્સંગ, સ્વાધ્યાય, ભક્તિ, તીર્થયાત્રા વગેરેમાં તેને પ્રેમ હોય છે. આવા નિકટ મોક્ષગમનવાળા (અપુનર્બંધક) જીવનું વિમલ મન મોક્ષમાર્ગમાં આગળ વધવા તત્પર જણાય છે, કારણ કે તેનું મન સમક્તિ વગેરે ઉત્તરોત્તર ચઢતા ગુણસ્થાનકના નિકટપણા વડે યમ-નિયમ વગેરે અનુષ્ઠાનોમાં દઢ આસક્તિવાળું હોય છે. આવો જીવ જ સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ માટે યોગ્ય પાત્ર છે.

ભવસ્થિતિના પરિપાકથી પ્રાપ્ત થયેલ આ અપુનર્બંધક અવસ્થા અને તે અવસ્થા-વર્તી ગુજાો - માર્ગાનુસારીના ગુજાો મોક્ષપ્રાપ્તિનાં નિયત પૂર્વવર્તી કારણ થઈ શકતાં નથી,

'मुक्तिमार्गपरं युक्त्या, युज्यते विमलं मनः । सद्बुद्ध्यासन्नभावेन, यदमीषां महात्मनाम् ।।'

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજીકૃત, 'યોગબિન્દુ', શ્લોક ૯૯

અર્થાત્ મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે તે ગુણો કરતાં પણ વિશેષ શક્તિશાળી એવા સમ્યગ્દર્શન આદિ ગુણો પ્રાપ્ત કરવા આવશ્યક છે. પૂર્વસેવા એટલે કે એવી ક્રિયા જે સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થયા પહેલાં સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિમાં હેતુરૂપ થાય. તે ક્રિયા મોક્ષને સાધનારી થઈ શકતી નથી, કારણ કે તે મૃદુ છે. સકળ કર્મને નિર્મૂળ કરવામાં અસમર્થ એવી કોમળ હોવાથી તે મોક્ષના સાધનરૂપ ક્રિયા બની શકતી નથી. તે સ્થૂળ લક્ષતાવાળી હોવાથી દોષોને કંઈક મંદ કરીને માત્ર સમ્યક્ત્વાદિને પ્રાપ્ત કરાવવા જેટલી જ સમર્થતા તેનામાં હોય છે. જેમ બળવાન શત્રુના સૈન્યને નાશ કરવા સામાન્ય યોદ્ધાઓ સમર્થ નથી હોતા, તેમ સમગ્ર કર્મસમૂહને નાશ કરવા માટે પૂર્વસેવા સમર્થ નથી. સૂક્ષ્મ કર્મોને હણવાની તીવ્ર શક્તિ ધરાવનાર સમ્યગ્દર્શનાદિ ત્રણ રત્નરૂપ વ્યાપાર જ મોક્ષ સાધવામાં સમર્થ છે. મોક્ષની સાધનામાં તો અત્યંત બળવાળી ક્રિયા જોઈએ, જે માત્ર રત્નત્રયની આરાધના જ છે. પૂર્વસેવાદિ ક્રિયાઓથી જ મોક્ષ પ્રાપ્ત થઈ શકે એમ છે એ વાત ઉચિત નથી. માર્ગાનુસારીની ક્રિયા સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિમાં કારણભૂત છે, પણ મોક્ષને સાધવામાં અસમર્થ છે; જ્યારે દઢ એવી સમ્યક્ત્વાદિ ક્રિયા મોક્ષસાધનને વિષે સમર્થ છે, તેથી સમ્યગ્દર્શન આદિની પ્રાપ્તિનો ઉદ્યમ કર્તવ્ય છે.

'તથાભવ્યત્વના કારણે અથવા કર્મના લાઘવ(હાનિ)થી સમ્યગ્દર્શનાદિ ગુણો પ્રગટ થઈને વૃદ્ધિ પામે છે અને પછી મોક્ષ થાય છે, તેથી સમ્યગ્દર્શનાદિને મોક્ષના હેત માનવાની જરૂર નથી, સમ્યગ્દર્શનાદિ ગુણોને ખેંચી લાવનાર તથાભવ્યત્વ જ મોક્ષનં કારણ છે, પુરૂષાર્થની જરૂર નથી' એમ માનવું મિથ્યા છે. તથાભવ્યતા એટલે તથા = પોતપોતાના પાકવા યોગ્ય ક્રમાગત કાળને પામીને પાકવાના સ્વભાવવાળી + ભવ્યતા = મોક્ષગમનની યોગ્યતા. દરેક જીવની મોક્ષ પામવાની વ્યક્તિગત યોગ્યતા એટલે જ તે જીવનું તથાભવ્યત્વ. દરેક ભવ્ય જીવમાં મોક્ષગમનની યોગ્યતા તો સરખી છે, પણ તે યોગ્યતા સર્વ જીવની સમકાળે પરિપક્વ થતી નથી. ભવ્યતા કાળ આદિના ભેદથી જુદા જુદા જીવોને વિષે જુદા જુદા પ્રકારે હોય છે. દરેક જીવની મોક્ષ પામવાની વ્યક્તિગત યોગ્યતા જુદી જુદી હોવાથી દરેકનું તથાભવ્યત્વ પણ જુદું જુદું હોય છે. જેમ કે કોઈ આંબાના ઝાડમાં ૫૦૦ કેરીઓ છે. તે દરેક કેરીમાં પાકવાની યોગ્યતા છે, છતાં તે બધી કેરીઓ એકસાથે પાકતી નથી. અમુક કેરીઓ પાંચ દિવસે પાકે છે, અમુક કેરીઓ છ દિવસે પાકે છે, તો કોઈ કેરીઓને પાકતાં તેથી પણ વધારે દિવસો લાગે છે. કોઈ કેરીઓ ઝાડ ઉપર જ પાકી જાય છે, તો અમુક કેરીઓ ઘાસમાં પાકે છે. તે જ પ્રમાણે દરેક જીવમાં તથાભવ્યત્વ ભિન્ન ભિન્ન હોય છે. કોઈ જીવ આદિનાથ ભગવાનના શાસનમાં મોક્ષ પામે છે, તો કોઈ જીવ અન્ય તીર્થંકરના શાસનમાં મોક્ષ પામે છે. કોઈ જીવ ઉત્સર્પિણી કાળમાં, તો કોઈ જીવ અવસર્પિણી કાળમાં મોક્ષ પામે છે. કોઈ તીર્થંકરરૂપે, કોઈ ગણધરરૂપે, કોઈ સામાન્ય કેવળીરૂપે મોક્ષ પામે છે. આમ, ભિન્ન

ભિન્ન રીતે મોક્ષ પામવામાં કારણરૂપ એવું તે તે જીવનું પોતાનું આગવું તથાભવ્યત્વ છે. જે જીવનું જેવા પ્રકારનું તથાભવ્યત્વ હોય તે જીવને તે રીતે મોક્ષના સાધનભૂત સમ્યગ્દર્શન આદિ ગુણોની અને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. જો યોગ્યતાનો ભેદ ન સ્વીકારવામાં આવે અને સર્વ પ્રકારે એકસરખી જ યોગ્યતા માનવામાં આવે તો સર્વ ભવ્ય જીવોને એકી વખતે જ ધર્માદિ પ્રાપ્ત થાય; અને તેથી મોક્ષપ્રાપ્તિ પણ તેમને સમકાળે થાય. માત્ર એકલી ભવ્યતાનો જ જો મોક્ષહેતુપણે સ્વીકાર કરવામાં આવે તો તેમ થાય, પણ તેવું તો બનતું નથી. માટે બીજાં સાધનોની પણ અપેક્ષા હોવી જોઈએ. વીર્ય, ઉત્સાહ વગેરે ગુણો પણ મોક્ષનાં સાધન છે. તથાભવ્યતા, વીર્ય, ઉત્સાહ, સમ્યગ્દર્શન વગેરે એકત્ર થઈને જ કાર્ય કરતાં હોવાથી એ સર્વે મોક્ષનાં સાધક છે. જેમ ઘટકાર્યને ઉત્પન્ન કરવામાં દંડ, ચક્ર, ચક્રનું ફરવું વગેરે પરસ્પર સહકારી કારણો છે; તે જ પ્રકારે તથાભવ્યતા વગેરે કારણો મોક્ષકાર્યને ઉત્પન્ન કરવામાં અન્યોન્ય સહકારી હોવાથી તે સર્વ મોક્ષના હેતુ છે. જેમ ઘટ બનાવવામાં દંડથી ઉત્પન્ન થતા ચાકડાના ભ્રમણની કારણતાનો ઇન્કાર ન કરી શકાય, તેમ મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવામાં તથાભવ્યત્વાદિથી ઉત્પન્ન થતાં સમ્યગ્દર્શનાદિની કારણતાનો ઇન્કાર કરી શકાય નહીં.

દલીલ 3 — મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરનાર પક્ષની બીજી એક દલીલ એ છે કે કિયાકષ્ટને મોક્ષનું કારણ માનવામાં વ્યતિરેક વ્યભિચાર છે, કેમ કે ભરત ચક્રવર્તી, મરુદેવી માતા વગેરે કિયાકષ્ટ વિના જ મોક્ષે ગયાં, જ્યારે ગજસુકુમાર વગેરે મરણાંત કપ્ટે મોક્ષે ગયા. કપ્ટમાં ફેરફાર હોવા છતાં તેમના મોક્ષમાં ફરક નથી. વળી, કેટલાક જીવો ક્રિયાકષ્ટ કરીને ઘણા કાળે મોક્ષે જાય છે, જ્યારે બીજા કેટલાક જીવો અલ્પ કાળમાં જાય છે; જેમ કે શ્રી મહાવીર સ્વામીને સાડા બાર વર્ષ લાગ્યા અને શ્રી મલ્લિનાથ ભગવાનને એક અહોરાત્રિ. માટે ક્રિયાકષ્ટને મોક્ષનો ઉપાય માનવા યોગ્ય નથી.

સમાધાન ૩ – ક્રિયાકષ્ટરૂપ મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરનાર અનુપાયવાદીઓ ભરત આદિનાં દેષ્ટાંત ટાંકે છે. પરંતુ ભરત વગેરે ક્રિયાકષ્ટ વિના જ મુક્તિ પામ્યા તે દેષ્ટાંત મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ નથી સૂચવતાં, પણ એટલું જ સૂચવે છે કે તેઓ અપવાદમાર્ગે મુક્તિને પામ્યા છે, બાકી રાજમાર્ગ તો નિર્ગ્રંથ ક્રિયાનો જ છે. વ્યવહારમાં પણ કોઈ સૂમસામ માર્ગે જવા છતાં લૂંટાયો ન હોય તો લોકો ભીડવાળા રસ્તાને છોડીને સૂમસામ માર્ગ પકડતા નથી. તાત્પર્ય એ કે ભરત વગેરેનું અવલંબન લઈ મોક્ષના રાજમાર્ગનો ઉચ્છેદ કરવો યોગ્ય નથી. ગુણોની વૃદ્ધિ માટે તથા પ્રાપ્ત ગુણોથી સ્ખલના ન થઈ જાય તે માટે ક્રિયા કરવી આવશ્યક છે. શ્રી વીતરાગજિનનું સંયમસ્થાન એવું છે કે ત્યાં સંપૂર્ણ ગુણ પ્રગટ થયા છે, તેથી ગુણવૃદ્ધિ કે સ્ખલન દ્વારા ગુણપતનનો સંભવ જ નથી, તેથી તપ કે ક્રિયાની જરૂર વીતરાગજિનને નથી, જ્યારે અન્ય જીવોને તે બન્નેની

આવશ્યકતા રહે જ છે.^૧

વળી, કેટલાક જીવો કિયાકષ્ટ કરીને ઘણા કાળે મોક્ષે જાય છે, જ્યારે બીજા કેટલાક જીવો અલ્પ કાળમાં જાય છે. તેનું કારણ એ છે કે જેમ ઘણું પાણી ઉકાળવા માટે અગ્નિ ઘણો સમય લગાડે છે, જ્યારે ઓછા પાણી માટે ઓછો; તેમ મોક્ષમાં કારણભૂત એવાં જ્ઞાનાદિ અંગે જાણવું. જે જીવનાં કર્મ ક્રમે કરીને બહુ કાળે ખપે એવાં હોય તો તે જીવનાં કર્મને ખપાવતાં જ્ઞાનાદિ સાધનને બહુ કાળ લાગે છે અને જો અલ્પ કાળમાં ખપી શકે એવાં કર્મ હોય તો તેને ખપાવતાં અલ્પ કાળ લાગે છે.

અહીં કોઈને પ્રશ્ન થાય કે કર્મોને ભોગવ્યા વિના તો છૂટકારો થતો નથી, તો જ્ઞાનાદિ વડે નવું શું થાય છે કે તેનાથી કર્મો ખધી જાય છે? જ્ઞાનાદિ ન હોત તોપણ કર્મો ક્રમશઃ ભોગવાઈને ખપવાનાં હતાં અને એ છે તોપણ કર્મને ભોગવીને જ ખપાવવાનાં છે. આનું સમાધાન આ પ્રમાણે છે - બધાં કર્મોને ભોગવીને જ ખપાવવાનાં હોય તો તો કોઈ જીવ મોક્ષે જઈ શકે જ નહીં. ચરમશરીરી જીવ ચરમ ભવમાં પણ અપૂર્વકરણ ગુણસ્થાનક સુધી આવે તે પહેલાં અંતઃકોડાકોડી સાગરોપમ સ્થિતિવાળા સાત કર્મો નિરંતર બાંધે છે. આ બધાંને જો ક્રમશઃ ભોગવીને જ ખપાવવાનાં હોય તો આ ભવમાં તો બધાં કર્મ ખપે નહીં અને તેથી બીજા દેવાદિ ભવો કરવા પડે, જેના કારણે પાછી ભવપરંપરા ચાલુ જ રહે. તેથી સિદ્ધ થાય છે કે વિપાકરૂપ ભોગવટા વગર પણ કર્મો ખપી શકે છે અને તે ખપાવવા માટે જ્ઞાનાદિ ત્રણ અમોઘ સાધન છે. બાંધેલાં કર્મો ભોગવ્યા વિના છુટકારો થતો નથી એવો જે નિયમ છે તે પ્રદેશભોગ માટે છે. વિપાકભોગ માટે નહીં. કર્મના ઉદયના સમયે તેનો રસ. તેનો પડછાયો જીવની પરિણતિમાં પડે, અર્થાતુ કર્મની ફલદાનશક્તિ અનુસાર જીવની પરિણતિ થાય તેને વિપાકભોગ કહેવાય છે. કર્મવિધાકનો ચિત્તવૃત્તિ ઉપર કોઈ પ્રભાવ ન પડે, અર્થાત્ પોતાનો રસ (ફળ) આપ્યા વિના કર્મ આત્મપ્રદેશ ઉપરથી ખરી જાય તેને પ્રદેશભોગ કહેવાય છે. જ્ઞાનાદિ સાધન વડે વિપાકભોગ પ્રદેશભોગમાં પલટાઈ જાય છે અને જીવ વિપાકને ભોગવ્યા વિના કર્મથી મુક્ત થાય છે અને તેથી કતનાશાદિ દોષો પણ રહેતા નથી, અર્થાત્ જે કર્યું છે તે ભોગવવું જ પડે છે એ નિયમને બાધા આવતી નથી. માટે યથોચિત કર્મને જ્ઞાનાદિ સાધન વડે યથાયોગ્ય અલ્પ, મધ્યમ કે અધિક કાળમાં ખપાવીને જીવ મોક્ષે જાય છે એ વાતની શ્રદ્ધા કરવી જોઈએ.

વળી, કેટલાક તીર્થંકર બનીને સિદ્ધ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે, જ્યારે કેટલાક ૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'જ્ઞાનસાર', ક્રિયાષ્ટક, શ્લોક ૭ 'ગુणवृद्धचै ततः कुर्यात् क्रियामस्खलनाय वा ।

एकं तु संयमस्थानं जिनानामवतिष्ठते ।।'

તીર્થંકર બન્યા વગર સિદ્ધ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે; પણ એટલામાત્રથી એમ ન કહી શકાય કે રત્નત્રય તે મોક્ષનું વ્યભિચારી કારણ છે. કોઈ ઘડો વજનમાં હલકો હોય, કોઈ ભારે; કોઈ પાણીને વિશેષ પ્રકારે ઠારનારો હોય, કોઈ સામાન્ય પ્રકારે ઇત્યાદિ એમ જુદા જુદા ઘડાઓમાં જુદી જુદી વિશેષતાઓ જોવા મળે છે, પણ એટલામાત્રથી અમુક ઘડા દંડાદિ કારણોથી પેદા થયા છે અને અમુક તે વિના જ - એવું હોતું નથી; અને તેથી દંડાદિ ઘટાદિનાં અવ્યભિચારી કારણ કહેવાય છે. આ જે ભેદ, અર્થાત્ વિશેષતાઓ જુદા જુદા ઘડામાં ઊભી થાય છે તે તો તેના ઉપાદાનકારણભૂત માટીની વિશેષતાઓના કારણે હોય છે. આ રીતે સિદ્ધ થયેલા જીવોમાં કેટલાક તીર્થંકર બનીને સિદ્ધ થયા અને કેટલાક તીર્થંકર બન્યા વગર સિદ્ધ થયા ઇત્યાદિ જે વિશેષતા ઊભી થઈ છે તે, સિદ્ધ અવસ્થાના ઉપાદાનકારણભૂત એવા તે તે જીવના તથાભવિતવ્યતાના ભેદના કારણે થાય છે. પણ એટલામાત્રથી એમ ન કહી શકાય કે રત્નત્રયી વ્યભિચારી કારણ છે. રત્નત્રયી વિના જ મોક્ષપ્રાપ્તિ થઈ જાય એવું ક્યારે પણ બનતું નથી.

<u>દલીલ ૪</u> – મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરનાર પક્ષની અન્ય એક દલીલ એ છે કે 'જ્ઞાનીએ જેવું દીઠું હોય તેવું થાય' તેથી જ્ઞાનીએ જે જીવનો જેટલો સંસારકાળ જોયો હોય તેમાં હાનિ-વૃદ્ધિ થતી નથી. જો તપાદિ કરવાથી સંસારકાળ ઘટી જાય તો કેવળીનું જ્ઞાન અયથાર્થ ઠરે અને જો ક્રિયાકષ્ટ કરવાથી સંસારકાળમાં ફેરફાર ન થતો હોય તો ક્રિયાકષ્ટ કરવાં વ્યર્થ છે.

સમાધાન ૪ – 'કેવળજ્ઞાની વડે જે જેવું જોવાયું હોય તે રીતે તે વિપરિણામ પામે છે, અર્થાત્ તે પ્રમાણે કાર્ય થાય છે.' આ શાસ્ત્રવચન કંઈ મોક્ષના ઉપાયનો નિષેધ કરતું નથી. અહીં કેવળીના કેવળજ્ઞાનને તે તે કાર્યના કારણ તરીકે નથી કહ્યું, કેમ કે તેવું હોય તો તો બાહ્ય સઘળાં કારણો તેનાથી અન્યથા સિદ્ધ થઈ જાય; પણ તેને વ્યાપક કારણ કહ્યું છે, અર્થાત્ ઘટાદિ દરેક કાર્યનું કેવળજ્ઞાનીને જ્ઞાન હોય છે. તે તે ઘટાદિ કાર્યો દંડાદિ કારણપૂર્વક જ થવાં સર્જાયેલાં છે અને કેવળીએ ઘટાદિ કાર્યોને દંડાદિ કારણપૂર્વક જ થવા સર્જાયેલો છે અને કેવળીથી એમ જ દેખાયેલો છે. વસ્તુનું પરિણમન કંઈ ભગવાનના જ્ઞાનને આધીન નથી. જે રૂપે વસ્તુ સ્વયં પરિણમી હતી, પરિણમી રહી છે અને પરિણમશે; ભગવાને તો તેને તે રૂપે માત્ર જાણી છે. વસ્તુનું પરિણમન તો સ્વતંત્રપણે પોતાના જ કારણે થાય છે. જ્ઞાન તો વસ્તુના પરિણમનમાં કોઈ પણ પ્રકારનો હસ્તક્ષેપ કર્યા વિના માત્ર તેને જાણે છે, તેથી જ્ઞાનાદિને મોક્ષનાં કારણ તરીકે સ્થાપવામાં આવે છે.

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'સમ્યક્ત્વ ષટ્સ્થાન ચઉપઇ', ગાથા ૧૦૫ 'સરજ્યું દીઠું સઘલૈ કહે તો દંડાદિક કિમ સદ્દહૈ? ! કારણ ભેલી સરિજીત દીઠ કહિતાં વિઘટઇ નવિ નિજ ઇટ્ટ !!'

વળી, કેવળીએ જીવનો જેટલો સંસારકાળ જોયો છે તેમાં ફેરફાર થતો નથી, તેથી પુરુષાર્થ કરવો વ્યર્થ છે - આ વાત યથાર્થ નથી, કારણ કે નિયત સમયની પહેલાં કોઈ કામ પૂરું કરવામાં જ પુરુષાર્થની સાર્થકતા નથી, પરંતુ નિયત સમયમાં કામનું પૂરું થવું એ જ પુરુષાર્થની સાર્થકતાનું સૂચક છે. શું ફેરફાર કર્યા વિના કાંઈ કરવાનું હોતું જ નથી? શું જેવું ન થવાનું હોય તેવું કરવું તેને જ કરવું કહે છે? જે થવાનું હોય તેવું કરવું તે શું કરવું નથી? જેમ ખેડૂત યોગ્ય સમયે ઘઉં વાવે છે અને ખૂબ શ્રમપૂર્વક ખેતી કરે છે અને તેથી નિયત સમયે ઘઉં પાકીને તૈયાર થાય છે. તો શું ખેડૂતનો પુરુષાર્થ વ્યર્થ કહેવાશે? માટે જ સમય નિયત હોવાથી પુરુષાર્થ વ્યર્થ જવાની શંકા યથાર્થ નથી. ભવિષ્યમાં જીવનું જે થવાનું છે તે જ થશે, અર્થાત્ જીવ પુરુષાર્થપૂર્વક તે જ કરશે. આમાં પુરુષાર્થ પણ નથી ઊડતો અને ક્રમ પણ નથી તૂટતો. પુરુષાર્થની કશે પણ ઉપેક્ષા નથી કે હીનતા નથી. પુરુષાર્થ વિના કોઈ પણ કાર્ય સંપન્ન થતું નથી. બધે જ પુરુષાર્થનું સામાજ્ય છે. મોક્ષના ઉપાયની ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ, વૃદ્ધિ અને પૂર્ણતામાં પુરુષાર્થનું મહત્ત્વપૂર્ણ સ્થાન છે.

આમ, મોક્ષનો ઉપાય નથી એવું કહેનાર અનુપાયવાદીની દલીલોનું નિરાકરણ થયું. એ વાત નિશ્ચિત છે કે મોક્ષ છે, તેનો ઉપાય છે; અને તે ઉપાય છે દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્રરૂપ રત્નત્રય. આ ઉપાય વડે સંસારનો નાશ થાય છે, માટે તેનો નિષેધ કરનારું વાક્ય મિથ્યાત્વની વૃદ્ધિ કરનાર હોવાથી તજવા લાયક છે. મોક્ષના સાધનરૂપ જ્ઞાનાદિ ગુણોમાં હેતુતાનો સંશય કરવા યોગ્ય નથી. જેમને રત્નત્રયી અંગે મોક્ષના ઉપાયત્વનો નિશ્ચય વર્તે છે, તેઓ રત્નત્રયીમાં પ્રવૃત્ત થઈ અવશ્ય મોક્ષ પ્રાપ્ત કરે છે. જેઓ આજ સુધી મોક્ષે ગયા છે, વર્તમાનમાં જાય છે અને ભવિષ્યમાં જશે; તે બધા રત્નત્રયરૂપ મોક્ષમાર્ગની આરાધનાથી જ મોક્ષે ગયા છે, જાય છે અને જશે.

શ્રીમદ્ મોક્ષના ઉપાયનું પ્રતિપાદન કરતાં છ પદના પત્રમાં લખે છે –

'જો કદી કર્મબંધ માત્ર થયા કરે એમ જ હોય, તો તેની નિવૃત્તિ કોઈ કાળે સંભવે નહીં; પણ કર્મબંધથી વિપરીત સ્વભાવવાળાં એવાં જ્ઞાન, દર્શન, સમાધિ, વૈરાગ્ય, ભક્ત્યાદિ સાધન પ્રત્યક્ષ છે; જે સાધનના બળે કર્મબંધ શિથિલ થાય છે, ઉપશમ પામે છે, ક્ષીણ થાય છે. માટે તે જ્ઞાન, દર્શન, સંયમાદિ મોક્ષપદના ઉપાય છે.'

આ જીવ અનાદિ કાળથી પોતાના અજ્ઞાન તથા અસંયમના ભાવને આધીન થઈને

'ज्ञानदर्शनचारित्राण्युपायास्तद्भवक्षये ।

एतन्निषेधकं वाक्यं त्याज्यं मिथ्यात्ववृद्धिकृत् ।।'

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૯૫ (પત્રાંક-૪૯૩, 'છ પદનો પત્ર')

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૪, શ્લોક ૧૪૬

કર્મબંધનાં કારણો સેવે છે અને તેથી તેને નવો કર્મબંધ થયા જ કરે છે. જીવને જે કર્મબંધ થાય છે તે જો થયા જ કરે તો જીવ નિર્બંધ થઈ શકે જ નહીં, અર્થાત્ મોક્ષદશાને પામી શકે નહીં; પણ તે તે બંધનાં કારણોથી વિરુદ્ધ પ્રકારના ભાવો સેવવાથી તે કર્મબંધનો નિરોધ થઈ શકે છે અને ક્રમે કરીને જીવ મોક્ષદશાને પામી શકે છે. જે જે ભાવો સેવવાથી કર્મબંધ મંદ પડે, ક્ષીણ થાય તે સર્વે મોક્ષનાં સાધન છે. મોક્ષપદની પ્રાપ્તિના ઉપાયરૂપ મુખ્ય પાંચ ભાવો આ પ્રમાણે છે —

- (૧) જ્ઞાન સમ્યગ્જ્ઞાન. સ્વ-પરનો વિવેક, ભેદજ્ઞાન. સદ્ગુરુ તથા સત્શાસ્ત્ર દારા આત્માને 'સ્વ'રૂપે જાણવો અને દેહાદિ પદાર્થોને પરરૂપે જાણવા તે વ્યવહાર સમ્યગ્જ્ઞાન છે અને નિજ આત્મસ્વરૂપને અનુભવપૂર્વક જાણવું તે નિશ્ચય સમ્યગ્જ્ઞાન છે. તેનાથી કર્મ બંધાતાં અટકે છે.
- (૨) દર્શન સમ્યગ્દર્શન. પરપદાર્થોથી ભિન્ન એવા સ્વસ્વરૂપની શ્રદ્ધા. જીવાદિ પદાર્થોનું સ્વરૂપ જેમ ભગવાને કહ્યું છે તેમ માનવું તે વ્યવહાર સમ્યગ્દર્શન છે અને આત્મ-સ્વરૂપની અનુભવપૂર્વકની પ્રતીતિ તે નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન છે. આવી શ્રદ્ધાયુક્ત નિર્મળ દૃષ્ટિથી કર્મ આવતાં રોકાય છે.
- (૩) સમાધિ સમ્યક્ચારિત્ર. આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિરતા. હિંસાદિ પાંચ પાપોના ત્યાગ-પૂર્વક જગતના પદાર્થો પ્રત્યેના વિષમ ભાવોનો અભાવ થાય તે વ્યવહાર સમ્યક્ચારિત્ર છે અને આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિરતા થવી તે નિશ્ચય સમ્યક્ચારિત્ર છે. તેને સમાધિ પણ કહે છે. યારિત્રથી કર્મબંધ થતો અટકે છે.
- (૪) વૈરાગ્ય આસક્તિરહિતપશું. સંસાર, દેહ અને ભોગના પદાર્થો પ્રત્યે અનાસક્ત બુદ્ધિનું ઊપજવું તે વૈરાગ્ય. સમ્યક્ બોધપૂર્વક રાગનો અભાવ તે વૈરાગ્ય છે. વૈરાગ્યથી ચિત્ત લૌકિક વિષયોથી વિમુખ થઈ અંતરમાં નિમગ્ન થાય છે. દેહાદિ પ્રત્યે નીરસતા થવાથી નવો કર્મબંધ થતો રોકાય છે.
- (૫) ભક્તિ પરમાત્મા અને સદ્દ્ગુરુ પ્રત્યે તેમના ગુણોની સાચી ઓળખાણપૂર્વકનો અનુરાગ કરવો તે ભક્તિ છે. સત્પુરુષના અનંત ઉપકારનું ચિંતન-ભાવન કરતાં તેમના પ્રત્યે ભક્તિ જાગે તે સ્વાભાવિક છે. તેના જુદા જુદા અનેક પ્રકાર છે નામભક્તિ, આજ્ઞાભક્તિ, પ્રેમભક્તિ, શ્રુતભક્તિ, સેવાભક્તિ, પરાભક્તિ, અભેદભક્તિ ઇત્યાદિ. જ્ઞાનીપુરુષનો આશ્ચય કરવારૂપ ભક્તિમાર્ગ આરાધવાથી જ્ઞાનદશા સુલભપણે પ્રાપ્ત થાય છે એમ જ્ઞાનીઓએ કહ્યું છે. સત્પુરુષની આજ્ઞાએ વર્તતાં, ઉત્કૃષ્ટ ભાવોમાં રમણતા થવાથી કર્મબંધ થતો અટકે છે.

બંધનાં કારણોથી વિપરીત સ્વભાવવાળા આ મુખ્ય પાંચ ભાવો સેવવાથી કર્મબંધ

અટકે છે અને ક્રમે કરીને મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે.

છ પદના પત્રમાં મોક્ષના ઉપાયનું જે સૂચન છે તે પ્રસ્તુત ગાથામાં સ્પષ્ટપણે જોવા મળે છે. આ બે વચ્ચે રહેલું સામ્ય આ ગાથાને ઊંડાણથી વિચારતાં સ્પષ્ટ થશે. જેમ છ પદના પત્રમાં જણાવ્યું છે, તેમ આ ગાથામાં પણ જણાવ્યું છે કે જે જે કારણથી, અર્થાત્ જે જે ભાવથી કર્મનો બંધ થાય છે તે તે બંધમાર્ગ છે અને બંધભાવથી વિપરીત ભાવ, અર્થાત્ કર્મબંધના કારણને છેદનારા ભાવ - છેદક દશા તે મોક્ષનો માર્ગ છે. તેનાથી ભવનો અંત થાય છે. આ તથ્યને દષ્ટાંત દ્વારા સમજાવતાં ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા લખે છે કે –

'સૂત્રનું - દોરાનું કોકડું ગૂંચવાયેલું હોય, તેનાથી ઊલટી રીતે કરે એટલે સૂત્ર ઊખેળાય - સૂત્રની આંટી પડી તેનાથી ઊલટી રીતે કરવાથી આંટી છૂટે - ઊકેલાય. આંગળીના આંકડિયા વાળ્યા હોય તેનાથી ઊલટી રીતે કરે તો આંકડિયા છૂટે -આંગળી સીધી થાય. એ જ પ્રકારે જે જે કારણથી જીવ બંધાયો હોય, તે તે કારણથી વિપરીતપણે વર્તે, તે તે કારણો છોડે, તો જીવ બંધથી છૂટે - બંધનમોચન - મોક્ષ થાય આ ન્યાયસિલ્દ વસ્તુ છે.'^૧

આમ, કારણયોગે જીવ બંધાય છે અને કારણ છોડવાથી તે મુક્ત થાય છે. શાસ્ત્રપરિભાષામાં આને અનુક્રમે આસવ અને સંવર નામ અપાયેલ છે. આ ગાથાને સમજવા આસવ-બંધનું સ્વરૂપ તથા આસવ-બંધને છેદનારા સંવરનું સ્વરૂપ સમજવા યોગ્ય છે. જેવી રીતે વહાણમાં છિદ્ર પડવાથી તેમાં પાણી આવવા લાગે છે, તેવી રીતે મિથ્યાત્વાદિ છિદ્રો દ્વારા આત્મામાં કર્મ આવવા લાગે છે. તેને આસવ કહે છે. જેવી રીતે છિદ્ર દ્વારા પાણી નૌકામાં ભરાઈ જાય છે, તેવી રીતે કર્મપરમાણુ આત્માના પ્રદેશો સાથે એકક્ષેત્રાવગાહે સ્થિત થાય છે. તેને બંધ કહે છે. જેમ અનેક રત્નોથી ભરેલું વહાણ પણ જો છિદ્રવાળું હોય તો તેમાં જળ પ્રવેશીને ભરાઈ જતાં તે સમુદ્રમાં ડૂબી જાય છે, સમુદ્રના કિનારા સુધી પહોંચી શકતું નથી; તેમ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપ અમૂલ્ય રત્નોથી ભરેલું જીવરૂપી વહાણ, તેમાં મિથ્યાત્વાદિ આસવરૂપી છિદ્રો દ્વારા કર્મરૂપી જળ પ્રવેશીને ભરાઈ જતાં તે સંક્રતરૂપી

'કારણજોગે હો બંધે બંધને રે, કારણ મુક્તિ મુકાય; આસ્ત્રવ સંવર નામ અનુક્રમે રે, હેય ઉપાદેય સુણાય.'

3- અહીં કોઈને પ્રશ્ન થાય કે આસવ અને બંધમાં શું તફાવત છે? તો તેનું સમાધાન એ છે કે પ્રથમ સમયમાં કાર્મણ વર્ગણાનું જે આગમન છે તે આસવ છે અને આગમન પછીના કાળમાં જીવના પ્રદેશોમાં તે સ્કંધોનું રહેવું તે બંધ છે.

૧- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', પૃ.૩૨૨

૨- જુઓ : શ્રી આનંદધનજીરચિત, શ્રી પદ્મપ્રભુ ભગવાનનું સ્તવન, કડી ૪

સમુદ્રકિનારા સુધી પહોંચી શકતું નથી. જેવી રીતે છિદ્ર બંધ કરવાથી નૌકામાં પાણીનું આવવું રોકાઈ જાય છે, તેવી રીતે શુદ્ધભાવરૂપ ગુપ્તિ વગેરેના કારણે આત્મામાં કર્મોનું આવવું રોકાઈ જાય છે. તેને સંવર કહે છે. આસવને રોકવું તે સંવર છે. જેવી રીતે છિદ્ર બંધ થઈ જવાથી, તેમાં પાણીનો પ્રવેશ ન થવાના કારણે વહાણમાં નિર્વિઘ્ને સમુદ્રકિનારા સુધી પહોંચી જાય છે; તેવી રીતે જીવરૂપી વહાણમાં આસવરૂપી છિદ્રો બંધ થતાં, કર્મરૂપી જળનો પ્રવેશ તેમાં ન થવાથી નિર્વિઘ્નપણે મુક્તિરૂપ સમુદ્રકિનારે પહોંચી જાય છે. સંવર દ્વારા જીવ આસવ-બંધથી છૂટી શકે છે.

શ્રી જિનેશ્વરદેવે બંધનું સ્વરૂપ બે પ્રકારે કહ્યું છે - ભાવબંધ અને દ્રવ્યબંધ. જ્ઞાતા-દ્રષ્ટારૂપ પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવથી સ્ખલિત થઈને રાગ, દ્વેષ, અજ્ઞાન વગેરે વિકારી ભાવોમાં રોકાઈ જવું તે 'ભાવબંધ' છે અને તે સમયે જીવના વિકારી ભાવોના નિમિત્તથી કર્મયોગ્ય પુદ્દ્ગલનું જીવની સાથે એકક્ષેત્રાવગાહે બંધાવું તે 'દ્રવ્યબંધ' છે. કર્મબંધનાં પાંચ કારણો છે - મિથ્યાદર્શન, અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને યોગ. 3

- (૧) મિથ્યાદર્શન ઊંધી માન્યતા, વિપરીત શ્રદ્ધા, વિરુદ્ધ અભિપ્રાય. પદાર્થસ્વરૂપ જેવું છે તેવું શ્રદ્ધાન ન હોવું, અર્થાત્ પદાર્થસ્વરૂપ જેવું ન હોય તેવું માનવું તેને મિથ્યા-દર્શન કહેવામાં આવે છે. જીવાદિ તત્ત્વોના વિપરીત શ્રદ્ધાનને મિથ્યાત્વ કહે છે. દેહમાં તથા રાગાદિ ભાવોમાં 'હું'બુદ્ધિ અને દેહથી સંબંધ ધરાવતા પદાર્થોમાં મમબુદ્ધિ તે મિથ્યાત્વ છે. મિથ્યાત્વના અગૃહીત અને ગૃહીત એમ બે પ્રકાર છે. નિજાત્મતત્ત્વનું અજ્ઞાન તે અગૃહીત મિથ્યાત્વ છે અને કુદેવને સુદેવ માનવા, કુધર્મને સુધર્મ માનવો આદિ ગૃહીત મિથ્યાત્વ છે. ગૃહીત મિથ્યાત્વના એકાંત આદિ પાંચ પ્રકાર છે. સર્વ પ્રકારનાં બંધનું મૂળ કારણ મિથ્યાત્વ છે અને તેથી જ તે સૌથી પહેલાં ટાળવું જોઈએ. મિથ્યાત્વ ટળ્યા વગર અવરિતિ આદિ બંધનાં અન્ય કારણો ટળી શકતાં નથી, માટે સૌથી પહેલાં મિથ્યાત્વ ટાળવું જોઈએ.
- (૨) અવિરતિ અવ્રતપરિણામ, હિંસાદિ પાપોમાં તથા પાંચ ઇન્દ્રિય અને મનના વિષયોમાં પ્રવૃત્તિ કરવી. પોતાના શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વભાવમાં ન ટકતાં શરીર, ઇન્દ્રિયો તથા

૧- જુઓ ઃ આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર', અધ્યાય ૯, સૂત્ર ૧ 'आस्रविनरोधः संवरः ।'

२- જુઓ : સિદ્ધાંતચક્રવર્તી શ્રી નેમિચંદ્રજીરચિત, 'દ્રવ્યસંગ્રહ', ગાથા ૩૨ 'बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो ।

कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरी ।।'

3- જુઓ : આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર', અધ્યાય ૮, સૂત્ર ૧ 'मिथ्यादर्शना-ऽविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ।'

- તેના વિષયો વગેરે પરવસ્તુઓમાં આસક્તિ સહિત ટકવાથી પરિણામો અવિરમણરૂપ થવાં તે અવિરતિ છે. અવિરતિને અસંયમ પણ કહે છે. પાંચ ઇન્દ્રિય તથા મન એમ છના વિષયો અને પાંચ સ્થાવર તથા એક ત્રસ એમ છની હિંસા આમ, કુલ બાર પ્રકારના ત્યાગરૂપ ભાવ ન થવા તે બાર પ્રકારની અવિરતિ છે. જેને મિથ્યાત્વ છે તેને અવિરતિ હોય જ છે; પરંતુ મિથ્યાત્વ છૂટી જાય પછી પણ અવિરતિ તરત છૂટી જ જાય એવો નિયમ નથી. મિથ્યાત્વ છૂટ્યા પછી પણ તે હોઈ શકે છે. સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ્યા પછી દેશચારિત્રના બળ વડે અણુવ્રત ધારણ કરે તેને એકદેશવિરતિ કહે છે અને સકળ ચારિત્રના બળ વડે મહાવત ધારણ કરે તેને સર્વદેશવિરતિ કહે છે. મિથ્યાત્વ છૂટ્યા પછી તરત અવિરતિનો પૂર્ણ અભાવ કરી, મહાવત અંગીકાર કરીને મુનિદશા પ્રગટ કરે એવા જીવો તો વિરલા જ હોય છે.
- (3) પ્રમાદ શુદ્ધ આત્માના અનુભવથી ચલિત થવું, વતમાં અસાવધાની રાખવી, ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મોમાં ઉત્સાહ ન રાખવો, અનાદરબુદ્ધિ રાખવી, અસાવધાની રાખવી, આળસ રાખવી તેને સર્વજ્ઞદેવ પ્રમાદ કહે છે. ચાર વિકથા, ચાર કષાય, પાંચ ઇન્દ્રિયના વિષયો, નિદ્રા અને સ્નેહ એમ પ્રમાદના પંદર પ્રકારો છે. જેને મિથ્યાત્વ અને અવિરતિ હોય અથવા માત્ર અવિરતિ હોય, તેને તો પ્રમાદ હોય જ છે; પરંતુ મિથ્યાત્વ અને અવિરતિ ટળ્યા પછી પણ પ્રમાદ તરત ટળી જ જાય એવો નિયમ નથી. તેથી અવિરતિ પછી પ્રમાદ કહ્યો છે. સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થતાં જ પ્રમાદ ટાળીને અપ્રમત્તદશા પ્રગટ કરે એવા જીવો વિરલા જ હોય છે.
- (૪) કષાય આત્મદશામાં ક્ષોભ ઉત્પન્ન કરનાર કોધાદિ વિભાવભાવો. પોતાના શુદ્ધ, પિવિત્ર, જ્ઞાનાનંદસ્વભાવમાં સ્થિર ન રહેતાં કર્મના ઉદયનો આશ્રય કરી, મિલન ઉપયોગમાં રોકાવું તે કષાય છે. કષાયના પચ્ચીસ પ્રકાર છે. કોધ, માન, માયા, લોભ; તે દરેકના અનંતાનુબંધી આદિ ચાર પ્રકાર એ રીતે સોળ તથા હાસ્ય આદિ નવ નોકષાય મળીને કુલ પચ્ચીસ પ્રકારના કષાય છે અને તે બધામાં આત્માના ગુણોનો ઘાત કરવાનું સામર્થ્ય છે. મિથ્યાત્વ, અવિરતિ અને પ્રમાદ એ ત્રણે, અથવા અવિરતિ અને પ્રમાદ એ ત્રણે, અથવા અવિરતિ અને પ્રમાદ એ બે, અથવા તો પ્રમાદ જ્યાં હોય ત્યાં તો કષાય અવશ્ય હોય જ છે; પણ એ ત્રણે ટળી જવા છતાં પણ કષાય હોઈ શકે છે.
- (૫) યોગ મન, વચન, કાયાના નિમિત્તથી આત્મપ્રદેશનું પરિસ્પંદન. શુદ્ધ ચૈતન્ય-ભાવ નિષ્કંપ છે. તેમાં સ્થિર ન થતાં કંપન થવું તે યોગ છે. યોગ તે બંધનું ગૌણ કારણ છે. કર્મબંધનું મુખ્ય કારણ મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, પ્રમાદ અને કષાય છે. મન, વચન અને કાયા એમ યોગના ત્રણ પ્રકાર છે. તેના ઉત્તર ભેદ પંદર છે. મિથ્યાત્વ-દશાથી તેરમા ગુણસ્થાન સુધી યોગ તો રહે જ છે. અગિયારમા, બારમા અને તેરમા

ગુણસ્થાને મિથ્યાત્વાદિ ચારનો અભાવ થયો હોવા છતાં યોગનો સદ્ભાવ છે. યોગ પ્રકૃતિબંધ તથા પ્રદેશબંધનું કારણ છે.

જીવનાં મિથ્યાત્વાદિ પાંચ પ્રકારનાં વિકારી પરિણામોનું નિમિત્ત પામીને આત્માના એક એક પ્રદેશે અનંતાનંત કાર્મણ વર્ગણાનાં પુદ્ગલપરમાણુઓ કર્મરૂપે એકક્ષેત્રાવગાહે બંધાય છે. કર્મબંધનાં આ કારણો અધુવ છે, અનિત્ય છે, અશરણ છે, અશુચિમય છે, અપવિત્ર છે, આકુળતા ઉપજાવનાર છે. તે વર્તમાનમાં દુઃખમય છે અને ભાવિમાં પણ દુઃખના જ હેતુરૂપ છે. તે વિકારોથી થતા કર્મબંધના કારણે જીવ સંસારમાં પરિભ્રમણ કરે છે. આ બંધદશા જે દ્વારા છેદાય તે જ મોક્ષનો માર્ગ છે. જે ચૈતન્યપરિણામોનાં નિમિત્તથી કર્મો આવતાં હતાં, તે પરિણામોને તેનાં પ્રતિપક્ષી પરિણામો દ્વારા રોકવાથી કર્મબંધ રોકાઈ જાય છે. મિથ્યાદર્શન આદિ પૂર્વોક્ત આસવના હેતુઓનો નિરોધ થવાથી નૂતન કર્મોનું આવવું રોકાઈ જાય છે, કેમ કે કારણના અભાવથી કાર્યનો અભાવ થાય છે. બંધના યથોક્ત કારણ છેદાય એવી બંધછેદકદશા પ્રગટાવવાથી મોક્ષ થાય છે. બંધનાં કારણો અને તેને છેદનારાં કારણોની માત્ર વિચારણાથી મોક્ષ થતો નથી, પણ તે બંધને છેદવાથી, બંધનાં કારણ છેદવાથી, બંધભાવથી વિપરીત ભાવ કરવાથી મોક્ષ પ્રગટે છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

'બંધાયેલાને જે પ્રકારે બાંધ્યો તેથી ઊલટી રીતે વર્તો એટલે છૂટશે.'ર

બંધનાં કારણ મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને યોગ જે કમથી આપ્યાં છે; તે જ કમથી તે ટળે છે. પૂર્વનું કારણ વિદ્યમાન હોય અને ત્યારપછીનું કારણ ટળી જાય એ રીતે ક્રમભંગ થતો નથી. તેના ટળવાનો ક્રમ આ પ્રમાણે છે –

	બંધકારણ	ગુણસ્થાનક	છેદકદશા
૧	મિથ્યાત્વ	ચોથું	સમ્યક્ત્વદશા
૨	અવિરતિ	પાંચમું-છઠ્ઠું	સંયમદશા
Э	પ્રમાદ	સાતમું	અપ્રમત્તદશા
8	કષાય	બારમું	વીતરાગદશા
પ	યોગ	ચૌદમું	અયોગીદશા

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર'ની આચાર્યશ્રી અકલંકદેવકૃત ટીકા, 'તત્ત્વાર્થવાર્તિકમૃ', અધ્યાય ૧૦, સૂત્ર ૨

'मिथ्यादर्शनादीनां पूर्वोक्तानां कर्मास्रवहेतूनां निरोधे कारणाभावात् कार्याभाव इत्यभिनव-कर्मादानाभावः।' २- 'श्रीमह् राष्ठ्यंद्र', छडी आवृत्ति, पृ.१२ (आंड-૫, બोधवयन ૯૮) આના ઉપરથી ફલિત થાય છે કે મિથ્યાદેષ્ટિ(ગુણસ્થાન-૧)ને મિથ્યાત્વાદિ બંધનાં પાંચે કારણ હોય છે, સાસ્વાદન સમ્યગ્દેષ્ટિ (ગુણસ્થાન-૨), સમ્યક્-મિથ્યાદેષ્ટિ (ગુણસ્થાન-૩) અને અસંયત સમ્યગ્દેષ્ટિ(ગુણસ્થાન-૪)ને મિથ્યાત્વ સિવાયના અવિરતિ આદિ ચાર કારણો હોય છે, દેશસંયમી(ગુણસ્થાન-૫)ને અંશે અવિરતિ તથા પ્રમાદાદિ ત્રણ કારણો હોય છે, પ્રમત્તસંયમી(ગુણસ્થાન-૬)ને મિથ્યાત્વ અને અવિરતિ સિવાયના પ્રમાદાદિ ત્રણ કારણો હોય છે, અપ્રમત્તસંયમી(ગુણસ્થાન ૭ થી ૧૦ સુધી)ને કષાય અને યોગ એ બે જ કારણો હોય છે. અગિયારમા, બારમા અને તેરમા ગુણસ્થાને એકમાત્ર યોગનો સદ્ભાવ છે અને ચૌદમા ગુણસ્થાને યોગ નહીં હોવાથી એકે પ્રકારના બંધનું કારણ નથી. ત્યાં અબંધદશા હોવાથી સંપૂર્ણ સંવર છે. અંતમાં અસિદ્ધત્વ નામનો ઔદયિક ભાવ જતાં સિદ્ધદશા પ્રગટે છે. શ્રીમદ્ પ્રકાશે છે —

'સિદ્ધમાં સંવર કહેવાય નહીં, કેમકે ત્યાં કર્મ આવતું નથી, એટલે પછી રોકવાનું પણ હોય નહીં. મુક્તને વિષે સ્વભાવ સંભવે, એક ગુણથી, અંશથી તે સંપૂર્ણ સુધી. સિદ્ધદશામાં સ્વભાવસુખ પ્રગટ્યું. કર્મનાં આવરણો મટ્યાં એટલે સંવર, નિર્જરા હવે કોને રહે? ત્રણ યોગ પણ હોય નહીં. મિચ્ચાત્વ, અવ્રત, પ્રમાદ, કષાય, યોગ બધાથી મુકાણા તેને કર્મ આવતાં નથી; એટલે તેને કર્મ રોકવાનાં હોય નહીં. એક હજારની રકમ હોય; અને પછી થોડે થોડે પૂરી કરી દીધી એટલે ખાતું બંધ થયું, તેની પેઠે. પાંચ કારણો કર્મનાં હતાં તે સંવર, નિર્જરાથી પૂર્ણ કર્યા એટલે પાંચ કારણોરૂપી ખાતું બંધ થયું; એટલે પછી ફરી કોઈ રીતે પ્રાપ્ત થાય જ નહીં.'

સંવર-નિર્જરારૂપ ધર્મની શરૂઆત સમ્યગ્દર્શનથી થાય છે, અર્થાત્ પંચાસવમાંથી સૌ પ્રથમ મિથ્યાત્વનો સંવર થતાં ધર્મ પ્રગટે છે. કર્મબંધનું સૌથી મહત્ત્વનું તેમજ પ્રબળ કારણ તો મિથ્યાત્વ જ છે. મિથ્યાત્વ ટાળ્યા વિના અવિરતિ આદિ બંધનાં કારણો ટળે જ નહીં એવો અબાધિત સિદ્ધાંત છે. મિથ્યાત્વનો સંવર કર્યા વિના અવિરતિનો કે કપાયનો સંવર કરવાના પ્રયત્નમાં આત્માએ અનંત કાળ ગુમાવ્યો, પણ તે પ્રયત્ન સફળ થયો નહીં. આત્મા અને બંધ વચ્ચે ભેદ જાણ્યા વગર જીવે અનંત વાર રાજપાટ છોડી, દ્રવ્યલિંગી સાધુ થઈને, નવમી ઐવેયકે લઈ જાય તેવાં ચારિત્ર પાળ્યાં અને કપાય એવા તો મંદ કર્યા કે તેને બાળી મૂકે તોપણ ક્રોધ ન કરે, છતાં નથી તેનો એક પણ ગુણ શુદ્ધ થયો કે નથી તેની એકે બંધદશાનો છેદ થયો; અને તેથી તેનો કર્મબંધ પણ અટક્યો નથી. મિથ્યાત્વના સદ્દભાવમાં તેને કદી સાચો સંવર પ્રગટતો નહીં હોવાથી તેને વિકારી ભાવો થયા જ કરે છે. મિથ્યાત્વના આસવનું અવલંબન એટલે ચતુર્ગતિ-પરિભ્રમણરૂપ સંસારનાં અનંત દુ:ખોનું અવલંબન. તેથી જ સૌથી પહેલાં મિથ્યાત્વનો ૧- 'શ્રીમદ્દ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૭૨૩-૭૨૪ (ઉપદેશછાયા-૧૧)

સંવર કરવાનો લક્ષ રાખવા યોગ્ય છે. સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થતાં મિથ્યાત્વભાવ અટકે છે. સમ્યગ્દર્શન તે જ પ્રથમ સંવરદશા છે. મિથ્યાત્વના સંવરરૂપ સમક્તિ પ્રગટ્યા પછી જ ક્રમે કરીને અવિરતિ, પ્રમાદ, ક્ષાય અને યોગનો સંવર થઈ શકે છે. આત્મવિકાસનો આ જ ક્રમ છે.

જીવે સૌ પ્રથમ મિથ્યાત્વના સંવરનો પુરુષાર્થ કરવો જોઈએ. જીવ સુદેવની ભક્તિ, સુગુરુની ઉપાસના, સત્શાસ્ત્રનો સ્વાધ્યાય, તપ, જપ, શીલ, સંયમ, દાનાદિ અનેક ધાર્મિક પ્રવૃત્તિઓ કરે છે; પણ મિથ્યાત્વના સંવર વિના, ધાર્મિક પ્રવૃત્તિ કરવા છતાં તેને કર્મબંધ થયા કરે છે. જો કે તેને અશુભ બંધ અલ્પ અને શુભ બંધ વિશેષ પ્રમાણમાં થાય છે, તોપણ તે છે તો બંધમાર્ગમાં જ. તે બાહ્યથી ગમે તેટલાં આકરાં વત-તપાદિ વિધિ સહિત પાળતો હોય, છકાય જીવની રક્ષા કરતો હોય, પરિષહ સ્થિર રહી વેદતો હોય, ઉપસર્ગ કરનાર તેના દેહની ચામડી ઉતારીને ખાર છાંટે તોપણ તેની આંખનો ખૂણો લાલ ન થાય એવી રીતે ઉપસર્ગ સહન કરતો હોય, પરંતુ મિથ્યાત્વનો સદ્ભાવ હોવાથી તેનો મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ થતો નથી. સમ્યગ્દર્શન વિના તે સાક્ષાત્ મોક્ષમાર્ગમાં પદાર્પણ કરી શકતો નથી.

ભવાંતકારી સમ્યગ્દર્શન મહાદુર્લભ છે. સદ્ગુરુના અનુગ્રહે ધર્મનું સાચું સ્વરૂપ સમજી કોઈક મહાભાગ્યશાળી સમ્યગ્દર્શનની આરાધનામાં જોડાય છે. તે દેહાદિ પરપદાર્થો અને ક્ષણવર્તી પર્યાયથી ભેદજ્ઞાન કરી, નિજભગવાન ધ્રુવ આત્મામાં પોતાપશું સ્થાપી સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ કરે છે. આ જ ધર્મનો આરંભ છે, ભગવાન બનવા માટેનું પ્રથમ પગલું છે, સમસ્ત દુઃખોને દૂર કરી અનંત અતીન્દ્રિય આનંદને પ્રાપ્ત કરવાનો એકમાત્ર ઉપાય છે. સમક્તિ થતાં સિદ્ધસુખની વાનગીનો આંશિક સ્વાદ આવે છે.

સમ્યગ્દર્શનનું આવું અદ્ભુત માહાત્મ્ય હોવાથી જિનાગમમાં મિથ્યાદેષ્ટિ દ્રવ્યલિંગી સાધુની તુલનામાં અવિરતિ સમ્યગ્દષ્ટિને વિશિષ્ટ ઊંચી ભૂમિકાના સ્વામી ગણ્યા છે. પંચ મહાવ્રત અને ઉત્ર કાયક્લેશાદિ તપ પણ સમ્યગ્દર્શનના અભાવમાં બાળવ્રત અને બાળતપની સંજ્ઞા પામે છે, કારણ કે ત્યાં આહારાદિ છૂટવા છતાં આહારાદિમાં રહેલી સુખબુદ્ધિ છૂટી નથી. આચારમાં આહારાદિનો ત્યાગ છતાં શ્રદ્ધામાં આહારાદિનું ચહણ છે. આથી વિપરીત, અવિરતિ સમ્યગ્દષ્ટિને નિજસ્વરૂપમાં સુખની પ્રતીતિ થઈ હોવાથી તેમને બાહ્ય પદાર્થોમાંથી સુખબુદ્ધિ નીકળી ગઈ હોય છે. તેમને પોતાના નિત્ય સ્વાધીન સ્વરૂપનું યથાર્થ ભાન થયું હોવાના કારણે બાહ્ય કોઈ પણ પ્રકારનો ત્યાગ ન હોવા છતાં શ્રદ્ધામાં સર્વ પરનો ત્યાગ નિરંતર વર્તી રહ્યો છે.

બહારથી બીજાઓને ભલે ત્યાગી દેખાય, તપસ્વી દેખાય, પણ જેવાં અંતરંગ પરિણામ હોય તેવું જ ફળ મળે છે. પરિણામશૂન્ય શરીરની ક્રિયા ફળદાયક નથી. જો ઉપવાસાદિ ઘણી ક્રિયા કરતાં ઘણી નિર્જરા થતી હોય તથા થોડી ક્રિયા કરતાં થોડી નિર્જરા થતી હોય તો બે સમસ્યા નડે. એક તો નિર્જરાનું મુખ્ય કારણ ઉપવાસાદિ ક્રિયા જ ઠરે અને તેથી શરીરની શક્તિ ઉપવાસાદિ ક્રિયામાં જેટલી વધુ પ્રવર્તે તેટલું મોક્ષે જલદી જવાય એમ ઠરે, પરંતુ ખરેખર એમ બનતું નથી. શરીરની ક્રિયાથી આત્માનો મોક્ષ સંભવિત નથી. બીજું, ક્રોધાદિથી અશુભ પરિણામ થવા છતાં પણ ઉપવાસાદિ કરવાથી નિર્જરા સંભવે, પરંતુ એમ તો ક્યારે પણ બને નહીં. તિર્યચાદિ પણ ભૂખ-તરસ આદિ કપ્ટ સહન કરે છે અને કષાય થવા છતાં, માત્ર કપ્ટ સહન કરવાથી નિર્જરા થતી હોય તો સર્વ તિર્યંચાદિનો મોક્ષ થાય, પરંતુ એમ બનતું નથી. આમ, માત્ર શરીરની ક્રિયાથી જીવનો મોક્ષ થઈ શકે નહીં. શરીરાદિ જડમાંથી મોક્ષમાર્ગ મળી શકે નહીં.

મોક્ષમાર્ગની પરિણતિમાં પરસન્મુખ થવાનો અવકાશ હોતો નથી. સ્વદ્રવ્યની સન્મુખ થઈને મોક્ષમાર્ગ પ્રાપ્ત કરવા માંગે તો જરૂર મોક્ષમાર્ગે પ્રયાણ થાય. સ્વદ્રવ્યસન્મુખ થતાં આત્મા પોતે જ મોક્ષમાર્ગરૂપ પરિણમીને મોક્ષ આપે છે. આત્માનો સ્વભાવ જ તેની સર્વજ્ઞતાનું સાધન છે, પરંતુ ચૈતન્યના ભાનરહિત અજ્ઞાની જીવને ખબર નથી કે મોક્ષનું સાધન અંતરમાં છે, બહાર નહીં. તેથી તે અંતરમાં પોતાના સ્વભાવનું અવલંબન લઈને તેને મોક્ષનું કારણ બનાવવાના બદલે બાહ્ય ક્રિયા કરવાની વ્યગ્નતામાં રહે છે. મોક્ષ-માર્ગનું સાધન થવાની શક્તિ તો આત્મામાં જ છે. આવા આત્માને જે જાણે છે તે પોતાનું સાધન બહાર શોધે નહીં. પોતાના સ્વભાવસન્મુખ થઈને તેને જ તે પોતાનું સાધન બનાવે છે. સ્વદ્રવ્યસન્મુખ થવું તે જ મોક્ષમાર્ગે પ્રયાણ છે.

આમ, મોક્ષમાર્ગની પ્રાપ્તિ માટે અનંત જ્ઞાનીઓએ સ્વભાવસન્મુખતાની આવશ્યકતા દર્શાવી છે. જે જીવ સ્વભાવના સામર્થ્યને ભૂલીને માત્ર શરીરની ક્રિયાથી પોતાને લાભ થાય છે એમ માને છે, માત્ર શરીરની ક્રિયાથી મોક્ષ માને છે તેને મિથ્યાત્વરૂપી મોટો રોગ છે. તે તો ધર્મના નામે જડ-ચેતનની એકતાબુદ્ધિનું મિથ્યાત્વ સેવી રહ્યો છે. મિથ્યાત્વ તે જ સૌથી મોટું પાય છે અને તેનું ફળ સંસાર છે. તેથી સૌ પ્રથમ તેનો ત્યાગ કરવો જોઈએ.

પરપદાર્થમાં ફેરફાર કરવો તે વસ્તુના સ્વભાવમાં છે જ નહીં, છતાં મિથ્યાદષ્ટિ મુનિ પરવસ્તુને 'હું અહી શકું અને છોડી શકું' એમ માને છે. તે પરવસ્તુને ત્યાગવાનું અભિમાન કરે છે. ખોટી માન્યતાપૂર્વકના તેના આવા પ્રત્યાખ્યાનભાવને દુઃપ્રત્યાખ્યાન કહેવામાં આવે છે. આવા દુઃપ્રત્યાખ્યાનથી તેનો સંસાર છેદાતો નથી. તેને સમસ્ત પર-દ્રવ્યોથી ભિન્ન એવા આત્માનું ભાન નહીં હોવાથી મિથ્યાત્વનું પાપ છૂટતું નથી. જ્યારે આત્માનો સ્વભાવ જાણીને તે શુદ્ધજ્ઞાનપણે પરિણમશે ત્યારે જ બંધ અટકશે અને ત્યારે જ સાચી નિર્જરા પણ થશે. અવિરતિ સમ્યગ્દષ્ટિને પરથી ભિન્ન એવા આત્માનો

અનુભવ થયો હોવાથી તેમને પરમાં કર્તાપણાની મિથ્યા બુદ્ધિ થતી નથી.

આમ, 'હું આ પરદ્રવ્યને છોડું' એ માન્યતાના સદ્ભાવમાં, મિથ્યાદેષ્ટિને મુનિપશું હોવા છતાં પરદ્રવ્યની કર્તાબુદ્ધિરૂપ મહાન પાપ પળે પળે બંધાય છે અને તેનું કળ સંસાર જ છે; જ્યારે અવિરતિ સમ્યગ્દેષ્ટિ બહારથી ત્યાગી ન હોય છતાં અંતરમાં સાચી સમજણ વિદ્યમાન હોવાના કારશે તેમને મિથ્યાત્વનો ત્યાગ વર્તે છે, જેનું ફળ મોક્ષ જ છે. શ્રીકૃષ્ણ તથા શ્રેણિક મહારાજાએ જ્ઞાનીપુરુષોનો ઉપદેશ સાંભળી, તત્ત્વ વિચારી સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કર્યું હતું. તેમણે એક પણ વ્રતનું પાલન કર્યું ન હતું છતાં પણ ત્રણ ભવમાં જ મુક્તિ પામશે, જ્યારે દ્રવ્યલિંગી સાધુ પુષ્કળ વ્રત-તપ કરીને પણ માત્ર નવમી ઐવેયક પ્રાપ્ત કરે છે. આનો અર્થ એવો નથી થતો કે શુભ છોડી અશુભમાં પ્રવૃત્ત થવું જોઈએ. સદ્ગુરુના બોધ દ્વારા આત્મતત્ત્વને બરાબર સમજી, મિથ્યાત્વ ગાળી સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ કરવું જોઈએ.

આત્માર્થી તો આગળ વધવા માટે ઉપદેશ ગ્રહણ કરે છે. જ્ઞાનીના જ્ઞાનમાં જે સત્ય ભાસ્યું છે તેનો સ્વીકાર કરી, તેનું જ અનુસરણ કરે છે. તે સત્યને સમજી, તે અનુસાર પોતાના દોષો ધટાડવાનો પુરુષાર્થ કરે છે. તે વર્તાદ છોડી પાપ નથી કરવા લાગતો, કેમ કે પાપ તો અશુભ ભાવ છે. તે અશુભ ભાવને છોડવા શુભ ક્રિયામાં જોડાય છે, પણ તે શુભ ક્રિયા કરવામાત્રને ધર્મ માનતો નથી. તે જાણે છે કે સમ્યગ્દર્શન વિનાની શુભ ક્રિયા નિષ્ફળ છે, પણ તેનો અર્થ એ નથી કે શુભ ક્રિયા છોડી પાપ કરવું. લીંબોળી કડવી છે એમ કહેવામાં આવે તેનો અર્થ એવો નથી કે લીંબોળી ન ખાવી, પણ તાલકૂટ ઝેર ખાવું. શુભ ક્રિયા કરવામાત્રથી ધર્મ નથી થતો એમ કહેવામાં આવે તો તેનો અર્થ એમ નથી થતો કે અશુભ ક્રિયા કરવી. પાપ તો તાલકૂટ ઝેર છે, માટે તે તો દરેક જીવે છોડવું જ જોઈએ. આત્મસ્વરૂપ સમજી, વ્રતનું સ્વરૂપ સમજી વ્રત અંગીકાર કરવાં યોગ્ય છે. વ્રત-તપ થતાં રહે પણ પરિણામ સ્વલક્ષી ન બને તો ત્યાં ઊલટો ક્રમ સેવાય છે. 'ગાડું આગળ ને બળદ પાછળ' જેવી હાલત થાય છે. તેથી જીવનું પહેલું કર્તવ્ય એ છે કે તે સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિનો ઉદ્યમ કરે, અર્થાત્ પ્રથમ તેણે મિથ્યાત્વના ત્યાગનો ઉદ્યમ કરવો જોઈએ. પંડિત શ્રી ટોડરમલજી લખે છે કે —

'જૈનધર્મમાં તો એવી આમ્નાચ છે કે – પહેલાં મોટું પાપ છોડાવી પછી નાનું પાપ છોડાવવામાં આવે છે. તેથી એ મિથ્યાત્વને સાત વ્યસનાદિથી પણ મહાન પાપ જાણી પહેલાં છોડાવ્યું છે. માટે જે પાપના ફળથી ડરતો હોય, તથા પોતાના આત્માને દુઃખસમુદ્રમાં ડુબાવવા ન ઇચ્છતો હોય, તે જીવ આ મિથ્યાત્વપાપને અવશ્ય છોડે.'

૧- પંડિત શ્રી ટોડરમલજીકૃત, 'મોક્ષમાર્ગ પ્રકાશક', ગુર્જરાનુવાદ, સાતમી આવૃત્તિ, અધિકાર ૬, પૃ.૧૮૯

જીવે મિથ્યાત્વને પ્રથમ છોડવું જોઈએ. જેમ જેમ મિથ્યાત્વ મોળું પડશે, તેમ તેમ મિથ્યાત્વના કારણે થતો જીવનવ્યવહાર પલટાઈ જશે. મિથ્યાત્વ જશે એટલે હિંસાદિ છૂટી જશે. હિંસાદિ સર્વ પાપોનું મૂળ છે મિથ્યાત્વ, અર્થાત્ પરમાં સુખબુદ્ધિ. મિથ્યાત્વ રહે અને બીજાં બધાં પાપો જાય એ કદાપિ સંભવે નહીં. હિંસા, પરિગ્રહ, ઈર્ષ્યા, તૃષ્ણા એ બધાં તો રોગનાં બાહ્ય લક્ષણો છે, મૂળ બીમારી નથી. મૂળ બીમારી તો મિથ્યાત્વ છે. એ ટળશે તો આ લક્ષણો શૂન્યરૂપ બની અદશ્ય થઈ જશે. પ્રથમ નિદાન થવું જોઈએ, પછી ચિકિત્સા; પરંતુ અશસમજુ તો મૂળ બીમારીને ભૂલી તેનાં લક્ષણોની જ સારવાર કરવા લાગી જાય છે, તેથી તેની સારવાર રોગમુક્તિનું ફળ પ્રદાન કરી શકતી નથી. હિંસાદિ પરિણામ તો સંદેશા છે. તેને વાંચવા જોઈએ. આ હિંસાદિ પરિણામ એક જ કારણ તરફ ઇશારો કરે છે અને તે છે મિથ્યાત્વ.

તેથી સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિનો પુરુષાર્થ એ જ મૂળભૂત સાધના છે. સમ્યગ્દર્શન પ્રગટશે તો અનાચાર સમ્યક્ આચારમાં પરિવર્તિત થશે જ. સમ્યગ્દર્શનના પરિણામે અંતરની સમસ્ત અપવિત્રતાનો નાશ થઈ ક્રમે ક્રમે બાહ્યાંતર વિરતિ પ્રગટે જ છે. સમ્યક્ આચાર સમ્યગ્દર્શનનું આચાર સમ્યગ્દર્શનનું સહજ પરિણામ છે. સમ્યગ્દર્શન બીજ છે, સમ્યક્ આચાર તેનો સહજ અંકુર છે. પરંતુ સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિનો પુરુષાર્થ કર્યા વિના જેઓ બાહ્ય ત્યાગાદિમાં પ્રવર્તે છે, તેઓ પોતાની આ ભાંતિપૂર્ણ માન્યતાના કારણે આત્મકલ્યાણથી દૂર રહે છે. સમ્યગ્દર્શન વિના તેમનું બધું જ્ઞાન અજ્ઞાન અને સમસ્ત આચરણ મિથ્યાચારિત્રરૂપે જ રહે છે. તેથી જીવે સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરવા પ્રયત્ન કરવો જોઈએ.

જીવથી જો સમ્યગ્દર્શનપૂર્વક ચારિત્રદશા પ્રગટ થઈ શકે તો તો ઉત્તમ છે અને એ જ કરવા યોગ્ય છે; પણ જો તેનાથી ચારિત્રદશા પ્રગટ ન થઈ શકે તો આત્મસ્વભાવની યથાર્થ શ્રદ્ધા તો જરૂર કરવી જ જોઈએ. આત્મતત્ત્વની શ્રદ્ધામાત્રથી પણ તેનું કલ્યાણ અવશ્ય થશે, સમ્યગ્દર્શનમાત્રથી તેનું આરાધકપણું ચાલુ રહેશે; પરંતુ દર્શનને શુદ્ધ કર્યા વિના ચારિત્રને શુદ્ધ કરવાની ગમે તેટલી કોશિશ તે કરે તોપણ તેનું કાર્ય નહીં થાય. તેના બધા પ્રયત્ન નિરર્થક નીવડશે. જે જીવને મિથ્યાત્વનો લોપ થયો ન હોય, તેને અન્ય અવિરતિ આદિનો લોપ માનવો અયોગ્ય છે. શ્રીમદ્દ્ કહે છે –

'મિથ્યાત્વની હાજરી હોય ત્યાં સુધી અવિરતિપણું નિર્મૂળ થતું નથી, એટલે જતું નથી; પરંતુ જો મિથ્યાત્વપણું ખસે તો અવિરતિપણાને જવું જ જોઇએ એ નિ:સંદેહ છે; કારણ કે મિથ્યાત્વસહિત વિરતિપણું આદરવાથી મોહભાવ જતો નથી. મોહભાવ કાયમ છે ત્યાં સુધી અભ્યંતર વિરતિપણું થતું નથી; અને પ્રમુખપણે રહેલો એવો જે મોહભાવ તે નાશ પામવાથી અભ્યંતર અવિરતિપણું રહેતું નથી, અને બાહ્ય જો વિરતિપણું આદરવામાં ન આવ્યું હોય તોપણ જો અભ્યંતર છે તો સહેજે બહાર આવે છે.'^૧

અનાદિ કાળથી અનંતાનંત જીવોની વલઝાર બંધમાર્ગે ચાલી જાય છે. કડક ક્રિયાઓ પાળનાર આત્મલક્ષવિહીન, મિથ્યાદષ્ટિ સાધુઓ પણ એ બંધમાર્ગે ચાલતી વલઝારમાં જ છે. અગિયાર અંગ અને નવ પૂર્વના જાણવાવાળા આત્મલક્ષવિહીન, મિથ્યાદષ્ટિ સાધુઓ પણ એ વલઝારમાં જ ચાલ્યા જાય છે. તે બધાંનું મુખ બંધ તરફ જ છે. કોઈ વિરલ જીવ સત્ય પુરુષાર્થ દારા સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરી લે છે. તે જીવે અનંતાનંત જીવોની બંધમાર્ગે ચાલી જતી વલઝારમાંથી છૂટા પડી, પોતાનું મુખ ફેરવી નાખી મોક્ષમાર્ગે પ્રયાણ આદર્યું છે. તેમની જાતિ મોક્ષમાર્ગીની છે.

સમ્યગ્દિષ્ટે જીવને સદા સ્વરૂપજાગૃતિ વર્તતી જ હોય છે. સમ્યગ્દર્શન થયા પછી ગમે તેવા પ્રસંગમાં પ્રવર્તતા હોવા છતાં તેમને સ્વરૂપની અનાકુળતાનું અંશે વેદન તો રહે જ છે. કોઈ પણ પ્રસંગમાં વિભાવપરિણામનો વેગ એવો નથી હોતો કે જેથી નિરાકુળ સ્વભાવના વેદનને તદ્દન ઢાંકીને એકલી આકુળતાનું જ વેદન રહે. તેમને પ્રતિક્ષણે નિરાકુળ સ્વભાવ અને આકુળતા વચ્ચે ભેદજ્ઞાન વર્તે છે અને તેના ફળરૂપે તેઓ પ્રતિક્ષણે નિરાકુળ સ્વરૂપનું અંશે વેદન કરે છે. બાહ્ય ક્રિયા ઉપરથી આ સ્વરૂપજાગૃતિનું માપ કાઢી શકાતું નથી. બાહ્ય ક્રિયા સાથે સ્વરૂપજાગૃતિને સીધો સંબંધ નથી. ધાર્મિક ક્રિયા કરતી વખતે સ્વરૂપજાગૃતિ હોય જ અને સાંસારિક ક્રિયા કરતી વખતે સ્વરૂપજાગૃતિ હોય જ અને સાંસારિક ક્રિયા કરતી વખતે સ્વરૂપજાગૃતિનું માપ કાઢવામાં આવે તો તે બાળચેષ્ટારૂપ છે. સ્વરૂપજાગૃતિનો સંબંધ શરીરની ક્રિયા સાથે નથી.

મિથ્યાદસ્ટિ જીવ બહારથી શાંત દેખાય છતાં અંતરમાં તો તે વિકારમાં જ તન્મયપણે વર્તતો હોવાથી તેને સ્વરૂપજાગૃતિ હોતી નથી અને તેથી તે આકુળતા જ ભોગવે છે. કોઈ જીવને કષાયોની પ્રવૃત્તિ થોડી હોય, પણ જો તેને અંતરંગ કષાયશક્તિ ઘણી હોય તો તે તીવકષાયી છે તથા કોઈ જીવને કષાયોની પ્રવૃત્તિ ઘણી હોય, પણ જો તેની અંતરંગ કષાયશક્તિ થોડી હોય તો તે મંદકષાયી છે. વિપરીત માન્યતા સહિત કરવામાં આવેલી પ્રવૃત્તિને તીવકષાયપ્રવૃત્તિ ગણી છે, પછી ભલે એ પ્રવૃત્તિ નાની કે અલ્પ દોષવાળી દેખાતી હોય. તેથી ઊલટું, વ્યાપાર આદિ પ્રવૃત્તિ દરમ્યાન પણ જો સ્વતત્ત્વનું ભાન વર્તતું હોય તો તે પ્રવૃત્તિને મંદકષાયપ્રવૃત્તિ ગણી છે, કારણ કે ત્યાં મિથ્યાત્વનો અભાવ છે.

ગમે તે બાહ્ય પ્રવૃત્તિમાં પણ સમ્યગ્દેષ્ટિ જીવની વૃત્તિ તે પ્રવૃત્તિ તરફ નથી ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છઢી આવૃત્તિ, પૃ.૭૪૮ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૧૦૫) હોતી, પરંતુ સ્વસંવેઘતત્ત્વ તરફ જ હોય છે. અતીન્દ્રિય આનંદના આસ્વાદી એવા સમ્યગ્દેષ્ટિ જીવને શરીરના નિભાવ માટે ભોજનનો વિકલ્પ ઊઠે છે તો ભોજન વાપરી લે છે, પણ અંતરમાં તે ભોજન પ્રત્યે સન્મુખતા નથી હોતી. સન્મુખતા તો એક નિજજ્ઞાયક તરફ જ હોય છે. તેઓ બોલે ત્યારે બોલવા તરફ ઝુકાવ નથી હોતો, પણ સ્વભાવ તરફ હોય છે. તેમને વિકલ્પ કે વાણીની રુચિ નથી, પણ નિર્વિકલ્પની રુચિ હોય છે. વિકલ્પ વખતે પણ રુચિ તો નિર્વિકલ્પની જ પોષાય છે.

'આત્મામાં અનંતો આનંદ છે' એવી આત્મદ્રવ્યની શ્રદ્ધા થઈ હોવાથી તેમને વિષયમાં સુખબુદ્ધિ રહેતી નથી. આત્મા સિવાય કશે પણ સુખ લાગતું નહીં હોવાથી પંચ ઇન્દ્રિયના વિષયોથી તેઓ ઉદાસ થઈ જાય છે. જેમ જુવાન દીકરો મરી ગયો હોય તો તેની માતાને કશે પણ ચેન પડે નહીં, તેને ખાવું-પીવું પણ ગમે નહીં, કેમ કે તેને અંતરમાં ઘા પડી ગયો છે; તેમ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને અંતરમાં ઘા પડી ગયો હોવાથી વિષયોમાં ગમતું નથી. આત્માનંદમાં તેઓ એવા લીન થઈ જાય છે કે ત્યારે તેઓ બીજો કોઈ પણ વિકલ્પ કરતા નથી. તેમને પુષ્યોદયના કારણે ઇન્દ્રપદ અને ઇન્દ્રાણીનો સંયોગ કે ચક્રવર્તીપદ અને ૯૬૦૦૦ રાણીઓનો સંયોગ મળે છતાં તે વૈભવમાં તેઓ કશે પણ આનંદ માનતા નથી. તેઓ તેને વિષ્ટા સમાન જાણે છે. જેમ વિષ્ટા છોડવા લાયક છે, તેમ વિષયભોગો તરફનું લક્ષ છોડવા જેવું છે એમ તેઓ જાણે છે.

સમ્યગ્દેષ્ટિ જીવને શરીરની કાંતિ રાખ સમાન લાગે છે, લગ્નાદિ પ્રસંગો બાણની અણી સમાન દુઃખદાયી લાગે છે, કુટુંબનાં કાર્ય કાળ સમાન લાગે છે, પ્રશંસા ગાળ સમાન લાગે છે, આબરૂ-કીર્તિ નાકના મેલ સમાન લાગે છે. આત્માના આનંદનિધાનની દેષ્ટિ-ટુચિ થઈ હોવાથી તેમને બહાર કંઈ પણ આનંદદાયક લાગતું નથી, તેમાં રાજીપો થતો નથી. પુદ્ગલ અને પુદ્ગલની કોઈ પણ અવસ્થામાં સુખ લાગતું નથી. મિથ્યા-દેષ્ટિ જીવને અનુકૂળ સામગીની હોંશમાં 'આમ કરીશું, તેમ કરીશું' એવો ભાવ આવે છે. સમ્યગ્દેષ્ટિ જીવને તેમાં રુચિ પણ થતી નથી. પૌદ્ગલિક પદાર્થો સુખના અભાવરૂપ ભાસતા હોવાથી તેમને એવા પદાર્થોમાંથી સુખ પ્રાપ્ત કરવાની સ્પૃહા થતી નથી.

સમ્યગ્દેષ્ટિ જીવનું બાહ્ય જીવન, પૂર્વપ્રારબ્ધયોગ અનુસાર અનેક પ્રકારના ચિત્ર-વિચિત્ર ઉદયપ્રસંગો વચ્ચે પણ વૈરાગ્ય સહિત જ હોય છે. તેમને સર્વ બાહ્ય પ્રસંગોમાં સહજ વિરક્તિ જ રહે છે. કર્મના ઉદય અનુસાર તેઓ સાંસારિક પ્રસંગો વચ્ચે દેખાતા હોવા છતાં પણ તે પ્રત્યે તેઓ નીરસ પરિણામથી પ્રવર્તતા હોય છે. તેઓ વિષય-ભોગમાં પ્રવૃત્ત હોય કે લડાઈના મેદાનમાં હોય, પરંતુ દેષ્ટિ એક ધ્રુવ આત્મસ્વભાવ ઉપરથી ખસતી નથી. પોતાની પર્યાય ઉપર પણ દેષ્ટિ જતી નથી તો શરીરાદિ બાહ્ય પદાર્થોની અવસ્થા ઉપર તો દેષ્ટિ ક્યાંથી જાય? પોતાની પર્યાયનો પણ આદર નથી તો પરની પર્યાયનો આદર ક્યાંથી હોય?

સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને ક્રોધાદિ વિકારનો સદ્ભાવ હોય તે સમયે પણ અક્રોધી સ્વભાવની જાગૃતિ વર્તે છે કે આ સમયવર્તી ક્રોધવિકારયુક્ત પર્યાયની નીચે, અત્યારે પણ દ્રવ્યદળ તો હંમેશની જેમ પરિપૂર્ણ શુદ્ધ જ રહ્યું છે. આ ભેદવિજ્ઞાનમાં જ તેમની નિર્જરાની ચાવી છે. ત્રિકાળ શુદ્ધ સ્વભાવની અસ્તિ અને એક સમયના વિકારની સ્વભાવમાં નાસ્તિનો સ્વીકાર તે ધર્મ છે. તેમને આવો સ્વીકાર હોવાથી મુખ્યપણે નિર્જરા વર્તે છે. તેમને બંધનાં પાંચ કારણોમાંથી પ્રથમ કારણ એવા મિથ્યાત્વનો લોપ થયો હોવાથી એટલા પ્રમાણમાં સંવર-નિર્જરા થાય છે અને જે અસ્થિરતાવશ ક્રોધ. હિંસાદિ પરિણામ થાય છે તેને અનુરૂપ અલ્પ બંધ પડે છે. ચારિત્ર અપેક્ષાએ તેમને હિંસાનાં પરિણામ હોવા છતાં શ્રદ્ધા-જ્ઞાન અપેક્ષાએ તેમને અહિંસા વર્તે છે. મિથ્યાદષ્ટિ મુનિ વ્રતાદિનાં પરિણામને પોતાનાં માને છે. પર્યાયમાં વિદ્યમાન શુભ ભાવ જેવો અને જેટલો આત્મા છે એમ માને છે. તેને શુભાશુભ ભાવરહિત શુદ્ધ આત્મસ્વભાવનું ભાન નથી હોતું. તે જીવ બાહ્યમાં દયા પાળતો હોય, છતાં પણ તેને પોતાના નીરાગી ચૈતન્યસ્વભાવનો અનાદર હોવાથી તે પોતાની હિંસા કરે છે અને બંધદશાને પામે છે. આથી વિપરીત, લડાઈ દરમ્યાન પણ સમ્યગ્દેષ્ટિ જીવ શ્રદ્ધા-જ્ઞાનની અપેક્ષાએ અહિંસક છે. તેમનાં જ્ઞાન-દર્શન સદૈવ છૂટાં રહે છે. જ્ઞાન-દર્શનની શુદ્ધિને ચારિત્રની ગમે તેવી અશુદ્ધિ પણ ભ્રષ્ટ કરી શકતી નથી. તેનું સુખદ પરિણામ એ આવે છે કે જ્ઞાન-દર્શન તો મુક્ત અને શુદ્ધ રહે છે અને સાથે સાથે ચારિત્ર ગુણની અશુદ્ધિ પણ ક્રમશઃ ઘટતી જઈ અંતે પર્શતઃ ક્ષય પામે છે.

મિથ્યાત્વના સંવરનું આવું મહત્ ફળ છે. સાધક જ્યારે ચૈતન્યનું અનુસંધાન કરે ત્યારે મૂઢતાનું પ્રગાઢ વર્તુળ તૂટવા લાગે છે અને કર્મનો પ્રભાવ મંદ પડવા લાગે છે, લુપ્ત થવા લાગે છે. ત્યારપછી ક્રમે કરીને મિથ્યાત્વનો સંવર (સમ્યક્ત્વ) થાય છે, અવિરતિનો સંવર (વિરતિ) થાય છે, પ્રમાદનો સંવર (અપ્રમત્તતા) થાય છે, ક્ષાયનો સંવર (વીતરાગતા) થાય છે અને ત્યારપછી અંતિમ શિખર આવે છે યોગના સંવરનું (અયોગ). યોગનો સંવર ઘટિત થતાં આત્મા સાથે બંધાયેલા સર્વ પૌદ્ગલિક સંબંધ એકીસાથે છૂટી જાય છે. જ્યાં જીવના તમામ સંબંધ કપાઈ જાય છે ત્યાં પૂર્ણ વિકાસ થાય છે. આમ, સમ્યગ્દર્શન થતાં મિથ્યાત્વનો સંવર થાય છે અને શુદ્ધોપયોગની કિલાકા જાગે છે. ભેદજ્ઞાનની પરિણતિ સતત રહેતી હોવાથી બંધભાવથી વિપરીત અબંધ-પરિણામ રહે છે. ચારિત્રની કચાશથી જેટલો રાગ રહે છે તેટલી બંધદશા છે, પરંતુ મિથ્યાત્વની અપેક્ષાએ અબંધદશા છે. શુદ્ધોપયોગની કિલાકા વધતાં જ્યારે સમગ્ર અશુદ્ધિ ટળી જાય છે ત્યારે કેવળજ્ઞાન થાય છે અને છેવટે આત્મપ્રદેશના કંપનથી થતો

આસવ પણ નષ્ટ થતાં તે જીવ સિદ્ધ થઈ જાય છે.

જે રસ્તેથી નીચે જવાયું છે તે જ રસ્તેથી ઉપર અવાય છે. જવાનો અને આવવાનો માર્ગ એક જ છે. ફરક માત્ર દિશાનો છે. અવળી દષ્ટિ એ બંધમાર્ગ છે અને સવળી દેષ્ટિ એ મોક્ષમાર્ગ છે. જેમ મુંબઈ-આગા રોડ એક જ છે, પરંતુ જો કોઈને પૂછવામાં આવે કે આ રસ્તો ક્યાં જાય છે, તો મુખની દિશા અનુસાર ભિન્ન ભિન્ન ઉત્તર મળે છે. કોઈ કહે છે કે આ રસ્તો મુંબઈ જાય છે. તો કોઈ કહે છે કે આ રસ્તો તમને આગા લઈ જશે. તેમ જીવનો ઉપયોગ એક છે. પણ તેને જે તરફ વાળવામાં આવે તે અનુસાર જીવની દશા થાય છે. અનાદિથી ઉપયોગ બહિર્મખ રહ્યો છે. હવે તેને સ્વ તરફ વાળવાનો છે. આત્માના ઉપયોગને અંદર વાળવો તે જ સ્વાશ્ચિત મોક્ષમાર્ગ છે. અંતર્મુખ પરિણતિ તે જ વીતરાગનો માર્ગ છે. પરિણતિ સ્વસન્મુખ કરવાનો પ્રયત્ન કરવો એ જ વીતરાગી પુરુષાર્થ છે. પરિણામની દિશા ગલાંટ ખાઈ સ્વ તરફ વળે એ જ ધર્મ છે, મોક્ષને સાધવાનો રસ્તો છે. ભવનો અંત કરવાનો ઉપાય છે. બંધભાવથી વિપરીત એવા અબંધપરિણામથી જ મોક્ષ થાય છે. બંધકારણોને છેદનારી દશા તે સંવર છે. સંવર થતાં જે અશુદ્ધિ ટળી અને શુદ્ધિ વધી તે નિર્જરા છે. જે સમયે શદ્ધ ઉપયોગ પ્રગટે તે જ સમયે નવો અશુદ્ધ ઉપયોગ અટકે તે સંવર છે અને તે જ સમયે જૂની અશુદ્ધિ અંશે ટળે અને અંશે શુદ્ધતા વધે તે નિર્જરા છે. પૂર્ણ શુદ્ધિ તે જ મોક્ષ છે. આમ, મોક્ષમાર્ગ સંવર-નિર્જરારૂપ છે એમ આ ગાથામાં શ્રીમદે ગર્ભિતપણે બતાવ્યં છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'જે જે કારણ બંધનાં, મિથ્યાત્વાદિ અનેક; જીવ વિભાવે પરિશમે, એ મોટો અવિવેક. અન્ય ભાવમાં આત્મભાવ, તેહ બંધનો પંથ; અનાત્મ વસ્તુ પારકી, મમત્વ તે મહાગ્રંથ. બાહ્યાભ્યંતર ભેદ છે, હેતુ અહં મમકાર; તે કારણ છેદક દશા, મોક્ષપંથ નિરધાર. દ્રવ્ય ભાવ સંયમ વડે, બાહ્યાંતર ભવઅંત.' ભાવ વડે સ્થિર આત્મનો, મોક્ષપંથ ભવઅંત.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૯ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૯૩-૩૯૬)

भाग तिन्द्रास कराया को मुक्ट द्वर्मना अपेष,

ભૂમિકા ગાથા ૯૯માં શ્રીગુરુએ કહ્યું કે કર્મબંધનાં જે જે કારણો છે તેનું સેવન કરવાથી બંધ થાય છે, તેથી એ બંધનો માર્ગ છે - સંસારનો માર્ગ છે અને તે તે કારણોને છેદે એવી જે દશા છે તે મોક્ષનો માર્ગ છે. તેનાથી ભવનો નાશ થાય છે. હવે આ ગાથામાં તેઓ કર્મબંધનાં મુખ્ય કારણો કયાં છે તે બતાવી, વિશેષ સ્પષ્ટતાપૂર્વક પરમાર્થ મોક્ષમાર્ગને પ્રકાશે છે.

જે કારણોના સેવનથી બંધના પંથે આગળ વધાય છે તથા જે કારણોની નિવૃત્તિથી મોક્ષના પંથે આગળ વધાય છે તે બતાવતાં શ્રીગુરુ કહે છે –

'રાગ, દ્વેષ, અજ્ઞાન એ, મુખ્ય કર્મની ગ્રંથ; થાય નિવૃત્તિ જેહથી, તે જ મોક્ષનો પંથ.' (૧૦૦)

રાગ, દ્વેષ અને અજ્ઞાન એનું એક્ત્વ એ કર્મની મુખ્ય ગાંઠ છે; અર્થાત્ એ વિના કર્મનો બંધ ન થાય; તેની જેથી નિવૃત્તિ થાય તે જ મોક્ષનો માર્ગ છે. (૧૦૦)

ભાવાર્થ સમસ્ત સંસાર રાગ અને દેષના પ્રવાહમાં વહે છે. તે પ્રવાહનું મૂળ કારણ અજ્ઞાન છે. સ્વસ્વરૂપના અજ્ઞાનના કારણે જીવને પરવસ્તુમાં અહં-મમબુદ્ધિ ઉપજે છે અને આ પરવસ્તુ સાથેનો એકત્વ અધ્યાસ જ રાગ-દેષ ઉત્પન્ન કરવાનું મૂળ અને મુખ્ય કારણ છે. 'દેહ તે હું' એવી દેહમાં અહંબુદ્ધિ એ જ સંસારનું મૂળ કારણ છે. તેના કારણે સ્ત્રી, પુત્ર, ઘર આદિમાં મમબુદ્ધિ ઊપજે છે; તેમનાં રક્ષણાદિ અર્થે કષાયો ઊપજે છે અને તેથી મન-વચન-કાયાના યોગરૂપ ગરનાળામાંથી આવતો કર્મરૂપ પાણીનો ધોધ આત્મપ્રદેશને તરબોળ કરી આત્માને સંસારસમુદ્રમાં ડુબાડે છે. આમ, દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ મૂળ ભૂલના કારણે બીજી ભૂલોની પરંપરા ચાલે છે અને તેથી સંસારચક્ર ધૂમ્યા જ કરે છે.

'પરનું હું કરી શકું', 'પરને હું ભોગવી શકું' એવી ભ્રમણારૂપ ખોટું જ્ઞાન, પરવસ્તુથી લાભ થાય એવી માન્યતાપૂર્વકની પ્રીતિ અને પરવસ્તુથી નુકસાન થાય એવી માન્યતાપૂર્વકની અપ્રીતિ કર્મની મૂળ ગાંઠ છે. આત્મજ્ઞાન થતાં નિજના નિરુપાધિક સહજ જ્ઞાનાનંદના સામર્થ્યની ઝલક મળે છે અને 'દેહાદિથી ભિન્ન હું જ્ઞાન-આનંદનો પિંડ છું' એવો અનુભવ થાય છે. એ અપૂર્વ અનુભવથી જાત અને જગત પ્રત્યેની દિષ્ટિમાં અકલ્પ્ય પરિવર્તન આવે છે. ત્યારપછી પહેલાં જેવા તીવ્ર રાગ-દેષ થતા નથી. દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ અજ્ઞાનગ્રંથિ દૂર થતાં રાગ-દેષની આધારશિલા જ ઊથલી પડે છે, અર્થાત્ રાગ-દેષની નિબિડ ગ્રંથિ ભેદાઈ જાય છે. તે પછી બાકી રહેલા અલ્પ રાગ-દેષરૂપ બંધનાં કારણો પણ દૂર થતાં જાય છે. કારણોનો અભાવ થવાથી બંધ નાશ પામે છે અને બંધનો નાશ થવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. આમ, રાગ, દેષ અને અજ્ઞાનની નિવૃત્તિ થવી એ જ મોક્ષમાર્ગ છે અને જેનાથી તેની નિવૃત્તિ થાય તે જ મોક્ષનો ઉપાય છે.

વિશેષાર્થી જ નજરે પડે છે. વિશ્વમાં પ્રત્યેક પ્રાણી સુખ ચાહે છે અને તે માટે તે પ્રયત્નશીલ છે, પણ સુખના સાચા સ્વરૂપની સમજ વિના તેના તે પ્રયત્નો યથાર્થ હોતા નથી અને તેથી દુઃખ સિવાય બીજું કાંઈ મળતું જ નથી. રાગ-દેષ સાથે દુઃખને સીધો સંબંધ છે. જ્યાં રાગ-દેષ છે ત્યાં ચોક્કસ દુઃખ છે; જ્યાં વિશેષ રાગ-દેષ છે ત્યાં દુઃખના વેદનની અધિકતા જોવામાં આવે છે; જ્યાં અલ્પ રાગ-દેષ છે ત્યાં દુઃખના વેદનની અધિકતા જોવામાં આવે છે; જ્યાં અલ્પ રાગ-દેષ છે ત્યાં દુઃખના વેદનની અધિકતા જોવામાં આવે છે; જ્યાં અલ્પ રાગ-દેષ છે ત્યાં દુઃખના વેદનની ન્યૂનતા છે અને જ્યાં રાગ-દેષનો લોપ થાય છે, અર્થાત્ સ્વાભાવિક પરિણતિ નીપજે છે, ત્યાં જીવને દુઃખનું વેદન બિલકુલ થતું નથી; માત્ર સુખ, સુખ અને સુખ જ અનુભવાય છે. તેથી દુઃખનું કારણ રાગ-દેષ છે. જે વ્યક્તિમાં કોધ, માન, માયા, લોભ વગેરેની અધિકતા હોય છે, તે બાહ્ય અનેકવિધ અનુકૂળ સામગ્રી હોવા છતાં રાગ-દેષની તીવતાના કારણે હંમેશાં દુઃખી જ રહે છે. જ્યાં રાગ-દેષ ઓછા હોય છે ત્યાં બાહ્ય અનુકૂળતાના અભાવમાં પણ સુખ અનુભવાય છે. આ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે દરેક વ્યક્તિ રાગ-દેષના કારણે દુઃખી છે, બહારના સંજોગોના કારણે નહીં.

અજ્ઞાની સુખ અને દુઃખ બન્નેનાં કારણ બહારમાં - પરમાં જ જુએ છે અને શોધે છે, પરંતુ પરમાં જણાતું સુખ અને દુઃખ બન્ને મનની કલ્પનામાત્ર છે. સુખ જીવના સ્વભાવમાં પડેલું છે અને દુઃખ તો જીવની વૈભાવિક પરિણતિ સિવાય જગતમાં બીજે કશે પણ અસ્તિત્વ ધરાવતું નથી. વૈભાવિક પરિણતિ તે જ દુઃખ છે. સ્વયં સ્વતંત્રપણે કરેલ રાગ-દ્વેષરૂપ વૈભાવિક પરિણમનથી ઉત્પન્ન થતી વ્યાકુળતાનું વેદન એ જ દુઃખ છે, તેથી દુઃખ દૂર કરવા અથવા સુખ પ્રાપ્ત કરવા સંજોગોમાં ફેરફાર કરવાને બદલે રાગ-દેષને ઘટાડવાની મહેનત કરવી જોઈએ. અનંત કાળથી આ જીવે સુખી થવા માટે બાહ્ય અનુકૂળતાઓ એકત્રિત કરવા આકાશ-પાતાળ એક કર્યા છે, પણ સાચા સુખનો ઉપાય તેણે જાણ્યો જ ન હોવાથી અત્યાર સુધી તેણે રાગ-દેષનો નાશ કરવાનો પુરુષાર્થ કર્યો નથી; તેથી પુણ્યમય કાર્યોનાં ફળરૂપે બાહ્ય સામગ્રી ભરપૂર મળવા છતાં પણ તે સુખી થયો નથી. જો રાગ-દેષનો અભાવ કરવા મથ્યો હોત તો જેટલા રાગ-દેષ

ઘટત, તેટલા પ્રમાણમાં આત્મા સુખ અનુભવત. આમ, રાગ-દેષ એ જ દુઃખ છે અને તેનો અભાવ એ સુખ છે. જેટલા પ્રમાણમાં રાગ-દેષનો અભાવ થાય તેટલા પ્રમાણમાં સુખ પ્રગટે છે. રાગ-દેષના અભાવનો ઉપાય તે ધર્મ છે.

ધર્મની વ્યાખ્યા મુખ્યત્વે ચાર પ્રકારે જોવા મળે છે - (૧) સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રની એકતા ધર્મ છે. (૨) વસ્તુસ્વભાવ ધર્મ છે. (૩) ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ લક્ષણ ધર્મ છે. (૪) અહિંસા પરમ ધર્મ છે. આ ચાર વ્યાખ્યામાં રાગ-દેષનો અભાવ, અર્થાત્ વીતરાગતાનું લક્ષ જ ગૂંથાયેલ છે. જુઓ –

- (૧) રાગ-દ્રેષ આત્માની અશુદ્ધિ છે. આ અશુદ્ધિને વિકાર માની તેના અભાવરૂપ સ્વભાવની શ્રદ્ધા કરવી તેને સમ્યગ્દર્શન કહે છે. રાગ-દ્રેષથી ભિન્ન ચૈતન્યસ્વભાવ જાણવો તેને સમ્યગ્જ્ઞાન કહે છે અને પોતાના ચૈતન્યસ્વભાવમાં સ્થિરતા કરવી તેને સમ્યક્ચારિત્ર કહે છે. સ્વભાવમાં જેટલી સ્થિરતા તેટલો રાગ-દ્રેષનો અભાવ અને તેટલો ધર્મ. સ્વભાવમાં પૂર્ણપણે સ્થિર થતાં સમસ્ત રાગ-દ્રેષનો અભાવ થાય છે. તે સમ્યક્ ચારિત્રની પૂર્ણતા છે અને તે ધર્મની પણ પૂર્ણતા છે. આ પ્રકારે રાગ-દ્રેષનો અભાવ એ જ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રની એકતારૂપ ધર્મ છે.
- (૨) વસ્તુનો સ્વભાવ તે ધર્મ. આત્માને સ્વભાવમાં ધારી રાખે, તેને સ્વભાવમાંથી પરભાવમાં જવા ન દે એને ધર્મ કહ્યો છે. જેમ જળનો સ્વભાવ શીતળતા છે, અગ્નિનો સ્વભાવ ઉષ્ણતા છે, તેમ જીવવસ્તુ જ્ઞાન-દર્શનમય ચેતનાસ્વરૂપ છે. તે ચેતના શુદ્ધ સ્વરૂપે પરિણમે તે ધર્મ છે. જ્યાં રાગ-દ્વેષની પુષ્ટિ થતી હોય અને શુદ્ધ ભાવની પુષ્ટિ થતી ન હોય ત્યાં ધર્મ નથી. જીવ ધર્મસ્થાનકોમાં અને ધર્મક્રિયાઓ કરવામાં કલાકો ગાળતો હોય, પણ જો પરભાવમાં રમણતા હોય તો ત્યાં ધર્મ નથી. રાગ-દેષરૂપ સંક્લેશપરિણામના અભાવરૂપ, વીતરાગભાવરૂપ શુદ્ધ પરિણામને શ્રી જિનેશ્વરદેવે ધર્મ કહ્યો છે. તાત્પર્ય કે આત્મા રાગ-દેષાદિરૂપ ન પરિણમે અને પોતાના સ્વભાવમાં સ્થિત રહે તે ધર્મ છે.
- (૩) ક્રોધ કષાયનો અભાવ તે ક્ષમા છે, માનનો અભાવ તે માર્દવ છે, માયાનો અભાવ તે આર્જવ છે અને લોભનો અભાવ તે સંતોષ છે. આ રીતે ધર્મનાં દસ લક્ષણો દ્વારા કષાયોના અભાવને, અર્થાત્ રાગ-દેષના અભાવને ધર્મ કહ્યો છે.
- (૪) રાગ-દેષ આત્માના વીતરાગસ્વભાવના ઘાતક છે, રાગ-દેષની હયાતી જ આત્મસ્વભાવનો ઘાત કરે છે, તેથી તે આત્માની હિંસા છે. રાગ-દેષના અભાવમાં આત્મસ્વભાવનો ઘાત થતો નથી, તેથી તેને અહિંસા કહે છે. જીવઘાત એ બાહ્ય હિંસા છે અને તે પણ અંતરમાં રાગ-દેષ હોવાના કારણે થાય છે. રાગ-દેષની તીવ્રતામાં અસાવધાનીથી -

પ્રમાદ સહિત પ્રવૃત્તિ થાય ત્યારે અન્ય જીવ મરે કે ન મરે તોપણ ત્યાં અવશ્ય હિંસા છે જ. બહારની ક્રિયાઓ તો તેનાં પ્રતિફળ છે. તાત્પર્ય એ છે કે રાગ-દ્વેષનું થવું તે હિંસા છે અને રાગ-દ્વેષના મટવાને અહિંસા ધર્મ કહેવામાં આવે છે.

આમ, વિભિન્ન દષ્ટિકોણથી નિરૂપાયેલી ધર્મની વ્યાખ્યાઓને સૂક્ષ્મ દષ્ટિથી જોતાં તે સર્વ એકાર્થવાચક જણાય છે. તે સર્વ વ્યાખ્યાઓ રાગ-દેષના અભાવ પ્રત્યે સંકેત કરે છે. ધર્મની વિવિધ વ્યાખ્યાઓમાં રાગ-દેષનો અભાવ એટલે કે વીતરાગતાનું લક્ષ જ દેખાય છે. આ રાગ-દેષના અભાવરૂપ ધર્મથી જ જીવ આત્મકલ્યાણ સાધી શકે છે. રાગ-દેષના અભાવરૂપ ધર્મ થરમ અમૃતસ્વરૂપ છે. તે ધર્મ સર્વ દુઃખનો નિઃસંશય આત્યંતિક ક્ષય કરે છે. નિરંતર ભય, ક્લેશ અને સંતાપથી ભરેલા આ સંસારમાં તે એક જ સારરૂપ છે, સુખરૂપ છે. તે ઉત્તમ શરણરૂપ ધર્મ સર્વત્ર છવાયેલી અનંત અશરણતાનો એકમાત્ર ઉપાય છે. એના વિના ભવાટવીભ્રમણમાં પ્રાણીને કોઈ સહાયરૂપ નથી. ધર્મ જીવને સંસારપરિભ્રમણથી છોડાવી ઉત્તમ સુખની પ્રાપ્તિ કરાવે છે, માટે સુખી થવું હોય - સર્વ ક્લેશથી છૂટવું હોય તો સર્વ રાગ-દેષની ક્ષીણતારૂપ ધર્મ અંગીકાર કરવો જોઈએ, આરાધવો જોઈએ. શ્રી જૂઠાભાઈ ઉપરના એક પત્રમાં શ્રીમદ્ લખે છે —

'જ્યાં ત્યાંથી રાગ-દ્રેષ રહિત થવું એ જ મારો ધર્મ છે.'૧

અહીં પ્રશ્ન થાય કે રાગ-દેષની ઉત્પત્તિનું કારણ શું છે? તો તેના ઉત્તરમાં જ્ઞાનીઓ કહે છે કે પરદ્રવ્ય અને પરભાવમાં તાદાત્મ્યપશું ભાસવું તે રાગ-દેષની ઉત્પત્તિનું મૂળ કારણ છે. ઉપયોગ જો પરવસ્તુની તન્મયતા છોડી આત્મામાં સ્થિર થાય, અર્થાત્ આત્મા આત્મારૂપે પરિશમે તો સંપૂર્ણ રાગ-દેષનો અભાવ થતાં મોક્ષ થાય. આ વિષે શ્રીમદ્ લખે છે —

'અન્ય સંબંધી જે તાદાત્મ્યપણું ભાસ્યું છે, તે તાદાત્મ્યપણું નિવૃત્ત થાય તો સહજસ્વભાવે આત્મા મુક્ત જ છે; એમ શ્રી ઋષભાદિ અનંત જ્ઞાનીપુરુષો કહી ગયા છે, યાવત્ તથારૂપમાં શમાયા છે.'^ર

જીવ પોતે જ્ઞાયકસ્વભાવી છે, પરંતુ અજ્ઞાની સ્વયંને જ્ઞાનરૂપ નથી જાણતો પણ શરીરરૂપ જાણે છે. તે શરીરમાં હુંપણું માને છે. તેને દેહમાં આત્મબુદ્ધિ હોવાથી દેહમાં થતા ફેરફારને તે પોતાના ફેરફાર માને છે. દેહના ધર્મને પોતાનો ધર્મ માનતો હોવાથી દેહને અનુકૂળ સામગ્રીમાં તે રાગ કરે છે અને પ્રતિકૂળ સામગ્રીમાં દેષ કરે છે. શરીરને પોતારૂપ માનવાથી તથા શરીર સંબંધી અનેક પદાર્થોને પોતાના માનવાથી તે

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૧૭૦ (પત્રાંક-૩૭)

ર- એજન, પૃ.૪૩૮ (પત્રાંક-૫૪૩)

બધામાં તેને અહંકારનો ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે. અહંકારને થોડી પણ ચોટ લાગતાં કોધ ઊપજે છે. અહંકારની પુષ્ટિ કરવા અનેક જડ તથા ચેતન પદાર્થોનો સંગ્રહ કરવાની ઇચ્છાથી લોભ ઊપજે છે. પોતાની ઇચ્છા મુજબ ઉપાયો ફળીભૂત ન થતાં માયારૂપ - કપટરૂપ પરિણામ જાગે છે અને તે પ્રમાણે પ્રવૃત્તિ થાય છે. આમ, શરીરને પોતારૂપ માનવાથી સર્વ કષાયો ઉદ્ભવે છે.

વળી, તે આ ઔદયિક (કર્મકૃત) ભાવોને પોતાના ભાવ માને છે. શુભાશુભ ભાવો કે જે રાગ-દ્વેષરૂપ છે તેને પોતાના સ્વભાવરૂપ માને છે. જેમ શરીરના એક ભાગમાં ગૂમડું થયું હોય અને જો આખા શરીરને ગૂમડારૂપે જ માની લેવાય તો તે માન્યતા ખોટી છે, તેમ અનંતગુણસ્વરૂપ આત્મા અનંત શક્તિથી ત્રિકાળ ટકનારો છે, તેને વર્તમાન એકેક સમય પૂરતો કે વિકાર જેટલો માની લેવામાં આવે તો તે ભૂલ છે. શુભાશુભ ભાવ ગૂમડાં જેવાં છે. આત્મસ્વભાવ તે રૂપ નથી. આત્મસ્વભાવ રાગાદિ વિકારરહિત છે, શુદ્ધ છે, સુખથી ભરપૂર છે, અતીન્દ્રિય ગુણોની બેહદ મીઠાશથી છલોછલ ભરેલો છે. જેમ શક્કરકંદ ઉપરની ઝીણી લાલ છાલ કડવી છે, પણ તે તો ઉપરનું સ્તર છે, અંદર તો મીઠાશનો પિંડ છે; તેમ વિનાશી શુભાશુભ ભાવ લાલ છાલ જેવા છે, તે ઉપરટપકે છે, અંદર તો જ્ઞાનાનંદરૂપ અમૃતરસનો પિંડ છે. સ્વભાવના ભાન વડે તેમાં એકાગ્ર થવાથી તે પ્રગટ અનુભવમાં આવે છે. પરંતુ અજ્ઞાની એક સમયની પર્યાયના રાગ-દેષમાં અટકી જાય છે, તેથી માત્ર કડવાશ પામે છે. તે કડવાશની પાછળ રહેલા જ્ઞાનાનંદસ્વભાવનો અનુભવ તે ચૂકી જાય છે. તે રાગ-દેષને સ્વભાવરૂપ માનતો હોવાથી રાગ-દેષનો અભાવ કરવાનું તેને સૂઝતું નથી.

આમ, કર્મકૃત અવસ્થાઓ અને કર્મકૃત ભાવોમાં એકતા એ જ રાગ-દેષરૂપ વૃક્ષનું મૂળ છે. જો જીવ શરીર અને વિકાર સાથેની એકાત્મતાની મિથ્યા માન્યતા છોડી દે, પોતાના સ્વભાવને સમજીને તેનું ઘોલન કરે, વારંવાર સ્વભાવ પ્રત્યે દેષ્ટિ કરે તો અવશ્ય આત્માનું દર્શન થાય અને આખું જીવન બદલાઈ જાય. માટે આવશ્યકતા છે પરમાં પોતાપણાની માન્યતા મટાડવાની.

પરમાં હુંપણું નષ્ટ કરવા જીવે પોતાના આત્મા પ્રત્યે પરમ પ્રેમ પ્રગટાવી, નિજ ભગવાન આત્માને જાણવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. જે પોતાના હિતનો વાંછક હોય તેણે સૌથી પહેલાં યથાર્થ તત્ત્વનિર્ણય કરવો જોઈએ કે 'હું શરીર નથી, શુભાશુભ ભાવો મારા નથી, હું તો સર્વથી તદ્દન ભિન્ન એવો શુદ્ધ જ્ઞાનનો પિંડ છું. આ કાયા-મન-વાણી એ મારું સ્વરૂપ નથી અને એનાથી ભોગવાતા વિષયો તેમજ સર્વ ઔદયિક ભાવો પણ મારા નથી.' આ પ્રકારે પરદ્રવ્યો અને પરભાવોમાંથી પોતાપણું છોડીને ઉપયોગ-સ્વરૂપી શુદ્ધ ભગવાન આત્મામાં પોતાપણાની દઢ ભાવના કરવી એ જ આત્માના

અનંત, અતીન્દ્રિય આનંદની પ્રાપ્તિનો માર્ગ છે. શરીરાદિ સંયોગો અનેક પ્રકારના છે અને તે સદા એકસરખા રહેતા નથી, માટે તેનો આશ્રય કરવા જતાં જ્ઞાન સ્થિર થઈ શકતું નથી, એટલે તેના આશ્રયે આત્માને સુખ પ્રાપ્ત થતું નથી; પરંતુ આત્માનો જે અસંયોગી ચૈતન્યસ્વભાવ છે તે હંમેશાં એકરૂપ રહે છે, તેની રુચિ અને વિશ્વાસ કરીને તેનો આશ્રય કરવામાં આવે તો તેમાં જ્ઞાન સ્થિર થાય છે અને આનંદ પ્રગટે છે. 'હું ન તો નામ છું, ન રૂપ છું, ન દશ્ય છું. બલ્કે આ ત્રણેથી પાર જે અનામી છે, અરૂપી છે, દ્રષ્ટા છે, શાશ્વત છે તે મારી સત્તા છે' એવી દઢ શ્રદ્ધા થતાં શરીરાદિ પરવસ્તુ પ્રત્યેના રાગ-દેષ છૂટતા જાય છે અને જેટલા અંશે રાગ-દેષ ઓછા થતા જાય છે તેટલા અંશે આનુભવ કરે છે.

ઉપર્યુક્ત વિચારણાથી ફલિત થાય છે કે દુઃખનું કારણ રાગ-દેષ છે અને રાગ-દેષનું કારણ અજ્ઞાન છે. અહીં મિથ્યાત્વ સહિતના જ્ઞાનને 'અજ્ઞાન' કહ્યું છે. અજ્ઞાન બે પ્રકારનું છે. એક, જ્ઞાનના અભાવરૂપ અજ્ઞાન અર્થાત્ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ઉદયથી થતું અજ્ઞાન; અને બીજું, વિપરીત જ્ઞાનરૂપ અજ્ઞાન અર્થાત્ દર્શનમોહનીય કર્મના ઉદયથી થતું સંશય-વિભ્રમ-વિમોહરૂપ અજ્ઞાન. પ્રસ્તુત ગાથામાં બીજા પ્રકારનું અજ્ઞાન વિવક્ષિત છે. આ વિષે શ્રીમદ્ના બે પત્ર મનનીય છે —

''અજ્ઞાન' શબ્દનો સાધારણ ભાષામાં 'જ્ઞાનરિક્ત' અર્થ થાય છે. જેમ જડ જ્ઞાનથી રહિત છે તેમ; પણ નિર્ગ્રથ પરિભાષામાં તો મિથ્યાત્વસહિત જ્ઞાનનું નામ અજ્ઞાન છે; એટલે તે દષ્ટિથી અજ્ઞાનને અરૂપી કહ્યું છે.

એમ આશંકા થાય કે જો અજ્ઞાન અરૂપી હોય તો સિદ્ધમાં પણ હોવું જોઈએ; તેનું સમાધાન આ પ્રમાણે છે :— મિથ્યાત્વસહિત જ્ઞાનનું નામ 'અજ્ઞાન' કહ્યું છે, તેમાંથી મિથ્યાત્વ જતાં બાકી જ્ઞાન ૨૯ે છે, તે જ્ઞાન સંપૂર્ણ શુદ્ધતાસહિત સિદ્ધ ભગવંતમાં વર્તે છે. સિદ્ધનું, કેવળજ્ઞાનીનું અને સમ્યક્દષ્ટિનું જ્ઞાન મિથ્યાત્વરહિત છે. મિથ્યાત્વ જીવને ભ્રાંતિરૂપે છે. તે ભ્રાંતિ યથાર્થ સમજાતાં નિવૃત્ત થઇ શકવા યોગ્ય છે. મિથ્યાત્વ દિશાભ્રમરૂપ છે.'

'જ્ઞાન જીવનું રૂપ છે માટે તે અરૂપી છે, ને જ્ઞાન વિપરીતપણે જાણવાનું કાર્ય કરે છે, ત્યાં સુધી તેને અજ્ઞાન કહેવું એવી નિર્ગ્રથ પરિભાષા કરી છે, પણ એ સ્થળે જ્ઞાનનું બીજું નામ જ અજ્ઞાન છે એમ જાણવું.

ज्ञाननुं બીજું નામ અજ્ઞાન હોય તો જેમ જ્ઞાનથી મોક્ષ થાય એમ કહ્યું છે, તેમ અજ્ઞાનથી પણ મોક્ષ થવો જોઈએ; તેમ જ મુક્ત જીવમાં પણ જ્ઞાન કહ્યું છે; તેમ ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૫૯૭ (૫ત્રાંક-૭૬૮) અજ્ઞાન પણ કહેવું જોઈએ; એમ આશંકા કરી છે, તેનું આ પ્રમાણે સમાધાન છે :--

આંટી પડવાથી ગૂંચાયેલું સૂત્ર અને આંટી નીકળી જવાથી વગર ગૂંચાયેલું સૂત્ર એ બન્ને સૂત્ર જ છે; છતાં આંટીની અપેક્ષાથી ગૂંચાયેલું સૂત્ર, અને વગર ગૂંચાયેલું સૂત્ર એમ કહેવાય છે, તેમ મિચ્ચાત્વજ્ઞાન તે 'અજ્ઞાન' અને 'સમ્યગ્જ્ઞાન' તે 'જ્ઞાન' એમ પરિભાષા કરી છે, પણ મિચ્ચાત્વજ્ઞાન તે જ અને સમ્યગ્જ્ઞાન તે ચેતન એમ નથી. જેમ આંટીવાળું સૂત્ર અને આંટી વગરનું સૂત્ર બન્ને સૂત્ર જ છે, તેમ મિચ્ચાત્વ- જ્ઞાનથી સંસારપરિભ્રમણ થાય અને સમ્યગ્જ્ઞાનથી મોક્ષ થાય. જેમ અત્રેથી પૂર્વ દિશા તરફ દશ ગાઉ ઉપર એક ગામ છે, ત્યાં જવાને અર્થે નીકળેલો માણસ દિશાભ્રમથી પૂર્વને બદલે પશ્ચિમ તરફ ચાલ્યો જાય, તો તે પૂર્વ દિશાવાળું ગામ પ્રાપ્ત ન થાય, પણ તેથી તેણે ચાલવારૂપ કિયા કરી નથી એમ કહી ન શકાય; તેમ જ દેહ અને આત્મા જુદા છતાં દેહ અને આત્મા એક જાણ્યા છે તે જીવ દેહબુદ્ધિએ કરી સંસાર-પરિભ્રમણ કરે છે, પણ તેથી તેણે જાણવારૂપ કાર્ય કર્યું નથી એમ કહી ન શકાય.'

મિથ્યાત્વ સહિતના જ્ઞાનરૂપ અજ્ઞાનથી જીવને અનેક મિથ્યા માન્યતા થાય છે, તત્ત્વનું વિપરીત શ્રદ્ધાન થાય છે. જેમ કે કર્મકૃત અવસ્થાઓને - દેહની અવસ્થાઓને પોતાની માનવી, અર્થાત્ અજીવતત્ત્વને જીવતત્ત્વ માનવું; શુભ ભાવને ધર્મ માનવો, અર્થાત્ આસવતત્ત્વને સંવરતત્ત્વ માનવું ઇત્યાદિ.^ર

વિપરીત સમજણવાળો જીવ સુખ શોધવા માટે બહાર દોડે છે. 'બહારમાં ફેરફાર કરીશ તો મને સુખ મળશે' – આવી માન્યતાથી તે પરમાં ફેરફાર કરવાની વૃત્તિ-પ્રવૃત્તિ આદરે છે. દ્રવ્યસ્વતંત્રતાની સમજણ ન હોવાથી તે પરદ્રવ્ય પોતાને આધીન છે એમ માની પ્રવર્તે છે. તે એમ માને છે કે મારા કારણે જ પરદ્રવ્યમાં કાર્ય થાય છે. તે પોતાને પરનો કર્તા માને છે. પરંતુ આ તેની અજ્ઞાનજન્ય ભ્રાંતિ છે. પરમાં કર્તા બુદ્ધિની આવી ઊંધી માન્યતા એ જ મહા અધર્મ છે. જીવ પોતાનો અકર્તા-જ્ઞાયકસ્વભાવ ઓળખે તો તેની પરદ્રવ્ય અંગેની કર્તાબુદ્ધિ ટળે અને જ્ઞાન પોતાના સ્વભાવરૂપ થાય. આનું નામ ધર્મ છે. 'હું પરનો કર્તા છું' એવી મિથ્યા માન્યતા છોડી, રાગથી જુદો પડી, અસંયોગી-અવિકારી સ્વભાવમાં એકાગ્ર થાય તો તેને સ્વાનુભવ થઈ સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થાય.

પરવસ્તુથી તો સગવડ પણ નથી અને અગવડ પણ નથી, પરવસ્તુ માત્ર જાણવા

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૫૯૭-૫૯૮ (૫ત્રાંક-૭૭૦)

ર- જુઓ : પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૨, કડી પ

^{&#}x27;તન ઉપજત અપની ઉપજ જાન, તન નશત આપકો નાશ માન; રાગાદિ પ્રગટ ચે દુઃખદેન, તિનહી કો સેવત ગિનત ચૈન.'

<mark>લાયક જ્ઞેયપદાર્થ છે. છતાં</mark> અજ્ઞાની જીવ કોઈ પરવસ્તુથી પોતાને સગવડ મળે છે અને કોઈથી અગવડ થાય છે એમ કલ્પના કરે છે. અનુકૂળ વસ્તુની પ્રાપ્તિ માટે તે પ્રયત્ન કરે છે અને તે મળતાં તે હર્ષથી વિભોર થઈ જાય છે. પરવસ્તુથી તે સુખ અનુભવે છે, પરંતુ આ સુખ કંઈ પરવસ્તુમાંથી નથી આવતું. આત્મા પરવસ્તુને ભોગવી શકતો પણ નથી. પરવસ્તુમાં અજ્ઞાનવશ સ્થાપેલ ઇષ્ટ બુદ્ધિ અને તત્સંબંધી ઇચ્છાની પૂર્તિ પ્રત્યેનો રાગ જ અજ્ઞાની ભોગવે છે. જો લાડુમાંથી સુખ મળતું હોય તો જેમ વધારે લાડુ ખાય તેમ વધુ સુખ ઊધજવું જોઈએ, પરંતુ એમ તો ક્યારે પણ બનતું નથી. ધનથી સુખ મળતું હોય તો સમાજમાં સધનતા હોય ત્યાં સુખ અને નિર્ધનતા હોય ત્યાં દુઃખ હોવું જોઈએ, પરંતુ એવું કંઈ હંમેશ જોવામાં આવતું નથી. આકિંચન્યવતધારી મુનિભગવંતને ધનનો લેશ પણ યોગ ન હોવા છતાં તેમને સુખની અધિકતા જોવામાં આવે છે. એ જ પ્રમાણે શરીરની સુખાકારીને પણ સુખ સાથે સાંકળી શકાતી નથી. સંસારમાં રોગી-નીરોગી સર્વ મનુષ્યોમાં દુઃખનો સદ્ભાવ જણાય છે. પદાર્થનો સંયોગ કે અનુકૂળતાની પ્રાપ્તિ થતાં પણ સુખની પ્રાપ્તિ થતી નથી, તેથી સુખ બાહ્ય પદાર્થાદિમાં નથી. અજ્ઞાની જીવ પર પ્રત્યેની મૂર્ચ્છાના કારણે પરપદાર્થોમાંથી સુખ મેળવવાની મથામણ કરે છે. તેને સગવડમાં જરાક ઊણપ હોય તો ચાલતું નથી. પરાશ્રયની પકડ આડે તે જરા પણ ધીરજ રાખી શકતો નથી. પ્રાપ્ત પરિસ્થિતિમાં નિરંતર અસંતુષ્ટ રહેતો હોવાથી પર અંગે ફરિયાદ તથા પરમાં ફેરફાર કરવાની વૃત્તિ-પ્રવૃત્તિમાં તે રચ્યો-પચ્યો રહે છે. કર્મના વિપાકમાં જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા રહેવાને બદલે તેને ફરિયાદ રહે છે અને તે પરમાં ફેરફાર કરવાનાં ફાંફાં મારે છે. વારંવાર અપેક્ષા અને ક્લેશની પરંપરામાંથી પસાર થવા છતાં તે પરમાં ફેરફાર કરવાના પ્રયત્ન છોડતો નથી. આ કાર્ય દરમ્યાન તે વિષમ રાગાત્મક-દ્વેષાત્મક ભાવોમાં તન્મય બની જાય છે અને પારાવાર દુઃખનો અનુભવ કરે છે. આથી વિપરીત, જે જીવ પરવસ્તુમાં સુખ-દુઃખની કલ્પના છોડી, સુખસ્વરૂપ આત્મામાં અનુસંધાન કરે છે, તે સર્વ દુઃખથી મુક્ત થાય છે. પોતાના જ્ઞાન-સ્વભાવનો આશ્રય કરી, પરમાં ઠીક-અઠીકપજ્ઞાના ભાવથી નિવર્તે તો દુઃખની ઉત્પત્તિ થતી નથી. તત્ત્વ-અભ્યાસના બળ વડે પરપદાર્થોમાંથી ઇપ્ટ-અનિષ્ટબુદ્ધિ દૂર થતાં સ્વરૂપનું પરમ સુખ પ્રત્યક્ષ અનુભવમાં આવે છે. તેથી સુખ માટે પરિસ્થિતિ બદલવાની ચેષ્ટા નહીં કરતાં દેષ્ટિ બદલવાના પ્રયત્ન કરવા જોઈએ. સુખ સાચી દેષ્ટિનું પરિણામ છે. દુઃખ ભાંતદ્રષ્ટિનું પરિણામ છે. પોતામાં રહેલ વિષર્યાસ ટળતાં દુઃખ નાશ પામે છે. અજ્ઞાની જીવને પોતાની દષ્ટિમાં રહેલી ભૂલનું ભાન ન હોવાથી પરપદાર્થો ઇષ્ટ-અનિષ્ટ ભાસતા રહે છે અને તેથી દુઃખની ઉત્પત્તિ થતી જ રહે છે. તે પરવસ્તુમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટ બુદ્ધિ કરી, તેનો આદર-અનાદર કરી, રાગી-દ્વેષી થઈ, વિપુલ કર્મોપાર્જન કરી અનંત દુઃખોનું ભાજન બને છે.

પોતાનાં આ દુ:ખો માટે જીવ પોતે જ જવાબદાર છે, અન્ય કોઈ નહીં. કોઈ અન્ય પદાર્થ જીવને રાગ-દ્રેષ કરાવતું નથી કે દુ:ખી કરતું નથી. જીવ સ્વયં રાગ-દ્રેષ કરી દુ:ખી થાય છે. પરંતુ તે બીજા ઉપર આરોપ કરે છે કે 'બીજા મને ક્રોધ કરાવે છે, બીજા મને દુ:ખી કરે છે.' પોતાનું સંચાલન જીવ પોતે જ કરે છે. તે પોતે જ કોધ કરી પોતાને દુ:ખી કરે છે. જે દિવસે જીવ પોતાના કાર્યના કર્તા તરીકે પોતાને સ્વીકારશે, તે દિવસે તેના સુધરવાની શરૂઆત થશે. 'મારી હોડીનું સુકાન મારા હાથમાં જ છે' એમ નિર્ણય થતાં જ જીવ પોતાની હોડીની દિશા અને ગતિ બદલી શકે છે. જીવે પોતે જ કચરો એકઠો કર્યો છે, માટે તેને કાઢવો પણ પોતે જ પડશે. બહુ બહુ કાળ પર્યંત જીવ બહિર્મુખ રહ્યો છે. દુ:ખમાંથી મુક્ત થવું હોય તો તેણે સ્વસન્મુખ થવું જ પડશે અને તેમ કરવાનું સામર્થ્ય જીવમાં છે જ. ભૂલ અને વિકાર ટાળવાની તાકાત પ્રત્યેક સમયે દરેક આત્મામાં છે. વર્તમાન ઊંધી માન્યતાની ભૂલ ક્ષણિક અવસ્થા પૂરતી છે. સ્વભાવે તો તે જ્ઞાન-આનંદધન પરમાત્મા છે. તે સ્વાધીન, સ્વતંત્ર, પૂર્ણ પ્રભુતા ધરાવનાર છે. 'હું બેહદ સામર્થ્યવંત, ચિદાનંદઘન, કૃતકૃત્ય, પૂર્ણ જ્ઞાયકપરમાત્મા છું' એવા ભાન વડે ભૂલ ટળતાં સહજ મોક્ષદશા પ્રગટ થાય છે.

આમ, મિથ્યાદર્શન અને મિથ્યાજ્ઞાનના કારણે અજ્ઞાનીને પરપદાર્થ પ્રત્યે ઇષ્ટ- અનિષ્ટબુદ્ધિ થાય છે. પુષ્ય-પાપનાં ફળમાં પોતાને લાભ-નુકસાન થાય છે એમ તે માને છે. પુષ્ય-પાપનાં ફળ અનુસાર પદાર્થોના સંયોગ-વિયોગ થતાં પ્રાપ્ત સંયોગોને અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ માનીને તેનાથી 'હું સુખી-દુઃખી છું' એવી કલ્પના વડે રાગ-દેષ કરે છે. ધન, સાનુકૂળ સ્ત્રી, આજ્ઞાંકિત પુત્રાદિના સંયોગ થતાં રાગ કરે છે; નિર્ધનતા, કકશા સ્ત્રી, સ્વચ્છંદી પુત્રોનો સંયોગ થતાં દેષ કરે છે. આ રાગ-દેષ તે જ મિથ્યાચારિત્ર છે. મિથ્યાદર્શન, મિથ્યાજ્ઞાન અને મિથ્યાચારિત્ર એ જ મુખ્યપણે કર્મની ગાંઠ છે. આ સઘળા વિકારો મોક્ષમાર્ગના અવરોધક છે. તેની સત્તા રહે ત્યાં સુધી કોઈ પણ વ્યક્તિ પૂર્ણતા પામી શકે નહીં. એ વિકારોની નિવૃત્તિ સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રથી થાય છે. તત્ત્વપ્રતીતિના આધારે ઉપયોગને જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપી આત્મામાં જોડવો એ જ મોક્ષનો માર્ગ છે.

સ્વરૂપનો નિર્ણય-નિશ્ચય કરીને સ્વરૂપસ્થ થવું એ જ મુક્તિનો માર્ગ છે. શરીર આદિ રચના પૌદ્ગલિક છે. ઇન્દ્રિયોથી જે અનુભવાય છે તે બધું જ પુદ્દગલ છે, પર છે, આત્માથી ભિન્ન છે. પુદ્દગલ જડ છે. તેમાં જાણપશું નથી, સુખ-દુઃખની લાગણી નથી. પુદ્દગલ એટલે જેમાં પ્રતિસમય વધ-ઘટ ચાલી રહી છે તેવું દ્રવ્ય. પુદ્દગલની સ્વતંત્ર શક્તિની જેને ખબર નથી તેને એમ લાગે છે કે જીવના કર્યા વિના જડ પુદ્દગલની ક્રિયા થઈ શકે નહીં. આ માન્યતા મિથ્યા છે, દષ્ટિની ભૂલ છે અને તે

અનાદિથી ચાલી આવી છે. જો પુદ્દગલની ક્રિયા કોઈ અન્ય દ્રવ્ય દ્વારા થઈ શકે એમ હોય તો પુદ્દગલ પરાધીન ઠરે. વસ્તુ સત્ છે, તે પોતાની શક્તિ વિનાની કોઈ કાળે હોય નહીં. પુદ્દગલ કોઈને આધીન વર્તતું નથી, તે સ્વતંત્રસ્વભાવી છે. તેનું કાર્ય અન્ય કોઈ કરી આપતું નથી - કરી શકતું પણ નથી. પુદ્દગલ પોતે પોતાની અવસ્થા સ્વતંત્રપણે બદલે છે. તેની પર્યાયોમાં - ક્ષણે ક્ષણે પલટાતી અવસ્થાઓમાં આસક્તિ રાખવી અને એના જવા-આવવાથી હર્ષ-શોક કરવા, રાગ-દેષ કરવા એ કર્મબંધનું કારણ છે. માટે પુદ્દગલના પરિવર્તનથી અને જવા-આવવાથી હર્ષ-શોક ન કરતાં સતત જાગૃતિ રાખવી કે 'એ મારાથી ભિન્ન છે, એમાં થઈ રહેલ પરિવર્તનથી મને નથી કોઈ લાભ કે નથી કશું નુકસાન. હું તો એનો માત્ર જ્ઞાયક છું. ' ભેદજ્ઞાનથી પ્રાપ્ત થતી આ જાગૃતિ જ મુક્તિનો પરમ ઉપાય છે. દેહ તથા મનની પલટાતી અવસ્થાઓ સાથે તાદાત્મ્ય ન અનુભવતાં સાધક જેટલા પ્રમાણમાં તેને માત્ર પોતાના જ્ઞાનના વિષય તરીકે જોયા કરે, તન-મનમાં થઈ રહેલ પરિવર્તનને રાગ-દેષ વિના, માત્ર એક નિર્લેષ્ પ્રેક્ષકની જેમ સાક્ષીભાવે જોયા કરે, તેટલા પ્રમાણમાં તે અહીં જ મુક્તિનો સ્વાદ પામી શકે છે.

ઇન્દ્રિયોથી ભાસ્યમાન થતું સત્ય, જે પર છે, તેમાં 'હું' અને 'મારું' એવી બુદ્ધિ કરીને હર્ષ-શોકરૂપ પ્રતિક્રિયા કરવી એ ભવનું બીજ છે. ભાસ્યમાન દેશ્ય જગતમાં થઈ રહેલ પરિવર્તન પ્રતિ ઉત્તરોત્તર વધુ ને વધુ ઉદાસીન તેમજ અનાસક્ત થતો જઈ, તેની સાથેની તાદાત્મ્યની ભ્રાંતિમાંથી બહાર આવવામાં જ જીવનની સાર્થકતા છે. જેમ જેમ સ્વરૂપનું અનુસંધાન થાય છે, તેમ તેમ પરમાં રહેલી લાભ-હાનિની માન્યતા છૂટતી જાય છે અને પરિણામે જીવન પ્રતિક્રિયારહિત થતું જાય છે. ગમે તેટલો વરસાદ વરસે તોપણ ઘરના છાપરાતળે રહેલો માણસ ભીંજાય નહીં, કેમ કે વરસાદ છાપરાની અંદર પેસી શકે નહીં, ઘરની અંદરના માણસને ભીંજવી શકે નહીં; પણ જો તે માણસ ઘરની અંદર રહેવાને બદલે બહાર નીકળે તો તે ભીંજાઈ જાય. તેમ જીવ જો સ્વરૂપના ભાનમાં જ રહે તો તેને રાગ-દેષ થતા નથી, પરંતુ જો તે સ્વરૂપમર્યાદા ઉલ્લંઘે તો તે રાગ-દેષથી ભીંજાઈ જાય છે.

જ્યારે માત્ર દ્રષ્ટા રહેવાનો પ્રયત્ન થાય છે ત્યારે ત્યાં કર્તા-ભોક્તાભાવનો ઉચ્છેદ થતો જાય છે અને તેથી બાહ્ય સંજોગોમાં ફેરફાર કરવાને બદલે તેનો શાંત ભાવે સ્વીકાર થતો જાય છે. વર્તમાન ક્ષણે જે સ્થિતિ હોય તેને બદલવાની કે ટાળવાની કોઈ મથામણમાં પડ્યા વિના તેમાંથી પસાર થઈ જાય, જે કંઈ બને તેને આવકાર્યા વિના ૧- જુઓ : પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૪, કડી ૯

> 'પુણ્ય-પાપ ફલમાહિં, હરખ વિલખૌ મત ભાઈ; ચહ પુદ્દગલ પરજાય, ઉપજિ વિનર્સ ફિર થાઈ.'

કે તેનો તિરસ્કાર કર્યા વિના, તટસ્થ રહી તેના પ્રતિ જાગૃત રહે - આવી પ્રતિકારમુક્ત કેવળ જાગૃતિ, અર્થાત્ બાહ્ય સંજોગોનો સ્વીકાર કરી શાંત રહેવું, વિકલ્પોથી નિવૃત્ત થવું, શુદ્ધ ભાવમાં ઠરવું એ જ મુક્તિપથ છે. કર્મના ઉદયે જે સંગ-પ્રસંગ પ્રાપ્ત થાય છે તેમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટની કલ્પના કર્યા વિના, કોઈ પણ પ્રકારની રાગાત્મક કે દ્વેષાત્મક પ્રતિક્રિયા વિના, ધુવ સ્વભાવના અવલંબને જે ટકે છે તે જ સાચો ધર્માત્મા છે.

પદાર્થવિજ્ઞાનનો એક નિયમ છે કે ક્રિયાની સાથે પ્રતિક્રિયા અનિવાર્ય છે. વિશ્વમાં ક્રિયા-પ્રતિક્રિયાનું ચક્ર હંમેશાં ચાલતું જ રહે છે, પરંતુ તેમાં એક અપવાદ નોંધાયો છે. પદાર્થની વિભિન્ન અવસ્થાઓના નિરીક્ષણના પ્રયોગોમાં તાપમાનને ઘટાડતાં ઘટાડતાં, તેને પરમ શૂન્ય - 'Absolute Zero' (-273·15°C) સુધી લઈ જતાં વૈજ્ઞાનિકોએ એક અદ્ભુત ઘટના જોઈ. તેમણે જોયું કે પરમ શૂન્યની નજીક પહોંચતાં એકાએક પદાર્થની પ્રતિરોધકશક્તિ અદશ્ય થઈ જાય છે! ભૌતિક વિજ્ઞાનના આ પરમ શૂન્યના ચમત્કારની પ્રતિરોધકશક્તિ અઘ્યાત્મિક જગતમાં પણ જોવા મળે છે. સાધના દ્વારા સ્વરૂપાનુસંધાનનો અભ્યાસ કરી સાધક જેમ જેમ નિર્વિકલ્પ અવસ્થારૂપ 'શૂન્ય'ની નજીક પહોંચતો જાય છે, તેમ તેમ તે પ્રતિક્રિયાથી પર થતો જાય છે. પછી કર્મનાં બંધન એના ઉપર પકડ જમાવી શકતાં નથી અને એનાં જ્ઞાન તથા આનંદને મર્યાદિત કરનારી પાંખો પણ તૂટી પડે છે.

આમ, જીવનની પરિસ્થિતિ જે પણ હોય એના પ્રત્યે નહીં રાગ કે નહીં દ્વેષ, અર્થાત્ અનુકૂળને વળગી રહેવાની તેમજ પ્રતિકૂળને દૂર હડસેલવાની અનંત જન્મોથી પોષાતી આવેલી વૃત્તિને પોષવાને બદલે પ્રાપ્ત સ્થિતિનો શાંત સ્વીકાર કરવાના અભ્યાસ વડે નવાં કર્મોની ઉત્પત્તિનું બીજ જ નષ્ટ થઈ જાય છે. વર્તમાન પરિસ્થિતિ પ્રત્યે સમત્વમંડિત સાક્ષીભાવ, શાંત સ્વીકારનો અભિગમ જીવને ક્ષણે ક્ષણે મુક્તિની નિકટ લઈ જાય છે. પોતાની આજુબાજુ આકાર લેતી સર્વ પ્રિય-અપ્રિય ઘટનાઓનો શાંત સ્વીકાર એ જ સાધનાનો સાર છે. પ્રતિપળ પ્રતિક્રિયારહિતની જાગૃતિ એ જ ધર્મ છે. સમગ્ર ક્રિયાઓ - વત, તપ, યમ, નિયમ, જપ, યાત્રા, ભક્તિ, શાસ્ત્રાભ્યાસ આદિ આ જ જાગૃતિ કેળવવા અને ટકાવવા અર્થે છે. શ્રી ચિદાનંદજી મહારાજ પણ 'પરમાત્મ છત્રીસી'માં કહે છે –

'કાહેકું ભટકત ફિરે, સિદ્ધ હોનેકે કાજ; રાગ દ્વેષકું ત્યાગ દે, વો હી સુગમ ઇલાજ. તપ જપ સંજમ સબ ભલે, રાગ-દ્વેષ જો નાંહિ; રાગ-દ્વેષકે જાગતે, એ સબ ભએ વૃથા હિ.'

૧- શ્રી ચિદાનંદજીરચિત, 'પરમાત્મ છત્રીસી', ગાથા ૧૯,૨૨

ધર્મના પંથે ચઢી આંતરિક શાંતિ પ્રાપ્ત કરવી હોય તો જે અશાંતિ અને દુઃખ પ્રિય નથી, તેના કારણરૂપ વિકારનો ત્યાગ કરવો ઘટે છે. રાગાદિ વિકારભાવ ટાળી ચિત્તને વિકારરહિત સ્વચ્છ બનાવવું ઘટે છે. અશાંતિનો જનક એવો વિકારભાવ જન્મે છે પ્રતિકારમાંથી. બહિર્મુખી જીવ કેવળ સાક્ષી નથી રહી શકતો. વસ્તુ, વ્યક્તિ અને પરિસ્થિતિમાં માનેલા ઇષ્ટ-અનિષ્ટ તત્ત્વ પ્રત્યે તેનું ચિત્ત સદૈવ પ્રતિકાર આપતું રહે છે. પ્રિય અથવા અપ્રિય ઘટનાનો પ્રતિકાર મનમાંથી નિરંતર ઊઠતો રહે છે. અવચેતન મનમાં સંગૃહીત જન્મ-જન્માંતરના સંસ્કારો અનુસાર તે જીવ જગતની ઘટનાઓ પ્રત્યે પ્રતિક્રિયા દર્શાવતો જ રહે છે. પાંચ ઇન્દ્રિયો તથા મન સાથે તેના સંબંધિત વિષયો સંપર્કમાં આવે છે કે તરત જ ત્વરિત ગતિએ જાણવાનું, ઓળખવાનું, મૂલ્યાંકન કરવાનું, સંવેદનશીલ થવાનું અને પ્રતિક્રિયા આપવાનું કાર્ય થાય છે. સુખદ સંવેદના થતાં એ પ્રિય લાગે છે, એના પ્રતિ રાગ જાગે છે. દુઃખદ સંવેદના થતાં એ અપ્રિય લાગે છે, એના પ્રતિ દ્વેષ જાગે છે. અનુકૂળતા માટે તેને પ્રતિક્રિયા થાય છે - 'જોઈએ છે, વધુ જોઈએ છે.' પ્રતિકૃળતા માટે તેને પ્રતિક્રિયા થાય છે - 'નહીં જોઈએ, બિલકુલ નહીં જોઈએ.' તે સદૈવ આમ જ કરતો રહે છે. તેની પ્રતિક્રિયાની પરંપરા સતત ચાલુ રહે છે. જીવનમાં જે પણ પ્રસંગો આવે, તેને જ્ઞાયકભાવે જોવાને બદલે અજ્ઞાની જીવને ખુશાલીના (રાગાત્મક) અને વસવસાના (દ્વેષાત્મક) ભાવ રહે છે. 'વાહ વાહ, બહ મઝા આવી, ફરીથી મળવું જોઈએ, ફરીથી કરવું જોઈએ, જેથી ફરીથી આટલી મઝા આવે અને જીવનમાં આનંદ આનંદ રહે', એવો ખુશાલીનો ભાવ; અથવા તો 'આ થાય છે તે ખોટું થાય છે, ન થયું હોત તો સારું થાત; મારે આમ કરવું જોઈતું હતું, આમ કહેલું જોઈતું હતું' એવો વસવસાનો ભાવ આવી જાય છે. સુખના પ્રસંગની ખુશી અને દુઃખના પ્રસંગનો અફસોસ - બન્ને જીવનમાં વિક્ષેપ નાખે છે, અધ્યાત્મમાર્ગે આગળ વધવામાં વચ્ચે નડે છે અને કર્મબંધનં કારણ બને છે.

વિશ્વવ્યવસ્થાના કારણે અન્ય વસ્તુ, વ્યક્તિ કે પરિસ્થિતિને જીવ બદલી શકે એમ જ નથી, પરંતુ તે પ્રત્યેનો પોતાનો દિષ્ટિકોણ બદલવા તે અવશ્ય સ્વાધીન છે. જેમ વરસાદને રોકવાની આશા રાખવી કે તથારૂપ ચેષ્ટા કરવી તે મૂર્ખતા છે, જળવૃષ્ટિથી બચવા માટે છત્રીનો ઉપયોગ કરવામાં બુદ્ધિમત્તા છે; જેમ કેડી ઉપર પુષ્કળ કાંટાળી વનસ્પતિ પથરાયેલી હોય તો બધા કાંટાને સાફ કરવા કરતાં ચંપલ પહેરવાં વધુ ડહાપણભર્યો ઉપાય છે; તેમ સુખી જીવન જીવવા માટે બાહ્ય પરિસ્થિતિમાં પરિવર્તન લાવવાને બદલે જીવે પોતાની અંદર જ પરિવર્તન લાવવું ઘટે છે. તેણે પરની સ્થિતિ બદલવાની નથી, પરંતુ પરથી પોતાની ભિન્નતાનું જ્ઞાન અને તથારૂપ શ્રદ્ધા કરીને દષ્ટિને તેના ઉપરથી હટાવી લેવાની છે. પરની જે સ્થિતિ છે, તે સ્થિતિએ તે ભલે રહે, પરંતુ પોતાની વૃત્તિને તેનાથી છૂટી પાડવાની છે. તે માટે 'પરથી મને કોઈ લાભ

નથી, નુકસાન નથી' એવું અંતરમંથન કરીને નક્કી કરવું ઘટે છે. 'પરદ્રવ્યથી મને લાભ-નુકસાન છે' એવું જે જીવ માને છે તેની વૃત્તિ તેનાથી જુદી પડી નથી શક્તી. એ માન્યતાને વશ થઈ તે પરમાં ફેરફાર કરવાની જ ચેષ્ટા કરે છે. કર્તાબુદ્ધિના મિથ્યા અભિમાનના કારણે તે કહે છે કે 'અન્ય દ્રવ્યોનું મારી ઇચ્છાનુસાર પ્રવર્તન કરાવીશ.' પરંતુ એવું કદાપિ થઈ શકતું જ નથી. પરમાં કંઈ પણ કરવાની ઇચ્છા થાય એટલે દુઃખ જ મળે છે. જે જીવ જ્ઞાનીના બોધનો આશ્રય કરી પોતાના સ્વરૂપનો ભરોસો કરે છે અને કર્તાબુદ્ધિનો લોપ કરે છે, તે જ્ઞાયકની ટેકરી ઉપર ચઢી સુરક્ષિત રહે છે. ગમે તેવા કર્મોદયમાં તે તણાઈ જતો નથી, પણ સાક્ષીભાવે રહી સુરક્ષિતતા અને સુખ પ્રાપ્ત કરે છે. જ્ઞાનાનંદસ્વભાવનો જ્ઞાતા બનતાં તેના અંતરમાં આનંદ ઊછળે છે. તેથી જીવે પરમાં પરિવર્તન લાવવાના વ્યર્થ પ્રયત્નો કરવાને બદલે દિષ્ટમાં પરિવર્તન લાવવું યોગ્ય છે. સુખ પાછળ દોડવાનો કે દુઃખથી દૂર ભાગવાનો પ્રયાસ કરવાને બદલે વિકારનો નાશ કરવો ઘટે છે.

અજ્ઞાન અવસ્થામાં નિરંતર થતી રાગ-દ્વેષરૂપ પ્રતિક્રિયાઓથી જીવે વિવિધ વસ્તુ, વ્યક્તિ અને પરિસ્થિતિ માટે જાતજાતની ગ્રંથિ બાંધી લીધી છે. તેણે આત્માને ગ્રંથિઓનું એક પોટલું (a bundle of knots) બનાવી દીધું છે. તત્ત્વશ્રદ્ધાન દારા આ પોટલું ખોલવાનું છે. આત્માને નિર્પ્રંથ બનાવવાનો છે. વસ્તસ્વરૂપનું સમ્યક જ્ઞાન કરી જગત, દેહ તથા ચિત્તમાં થતાં પરિવર્તનોને કરિયાદ કે કેરકાર કર્યા વગર જોયા કરવાનાં છે. અવચેતન મનમાં રહેલી ભૂતકાળની સ્મૃતિઓના આધારે યાંત્રિકપણે ઊઠતી પ્રતિક્રિયાઓને આધીન થઈ વર્તવાનું નથી પણ વર્તમાન ક્ષણ પ્રત્યે સજાગ બનવાનું છે. ભૂતકાળની સ્મતિઓ અને ભવિષ્યની કામનાઓ જીવને વર્તમાન ક્ષણ પ્રતિ સજાગ રહેવા દેતી નથી. ભૂતકાળના સમગ્ર સંસ્કારોથી અને ભાવિની આકાંક્ષાઓથી મુક્ત થયા વિના વર્તમાન ક્ષણના માત્ર જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા રહેવું શક્ય નથી. ભૂત-ભવિષ્યની સુખદ કે દુઃખદ આશંકાઓ અને આશાઓ જીવને વર્તમાનથી દૂર લઈ જાય છે. વર્તમાનથી વિમુખ થયેલું આવું સારહીન જીવન ક્લેશોથી છવાઈ જાય છે અને તે ક્લેશ જ આકુળતા, વ્યથા અને પીડાને જન્મ આપે છે. જેમ જેમ જીવ વર્તમાન ક્ષણનું યથાર્થ દર્શન કરવા લાગે છે. તેમ તેમ તેને ક્લેશોથી સ્વાભાવિક રીતે મુક્તિ મળવા લાગે છે. સઘળી સાધના વર્તમાન ક્ષણની જાગૃતિ માટે જ કરવાની છે. પ્રત્યેક ક્ષણ બીજ વાવવાની ક્ષણ છે. કેવું બીજ રોપવું એ જીવે નક્કી કરવાનું છે. વર્તમાન ક્ષણે કયો સંસ્કાર નાખવો તે જીવના પોતાના હાથની વાત છે. જો રાગ અને દ્વેષનું બીજ વાવશે તો પોતા માટે દુઃખની પરંપરા ઉત્પન્ન કરશે અને જાગૃત રહેશે તો મુક્તિપંથે ગમન કરશે. જે વ્યતીત થઈ ગયું છે તેના ઉપર પોતાનો કોઈ અધિકાર નથી, પરંતુ જે વર્તમાન ક્ષણે તે જાગત રહે છે, તે વર્તમાન ક્ષણનો તે માલિક બને છે.

જેણે પોતાનું વર્તમાન સુધારી લીધું છે તેને ભવિષ્યની ચિંતા કરવાની જરૂર રહેતી નથી. તેનું ભવિષ્ય આપોઆપ સુધરી જાય છે. તેને સુરક્ષાનો અનુભવ નિરંતર થયા કરે છે. આવું વર્તમાનમાં જીવવું એ જ યથાર્થ જીવવું છે, કારણ કે વીતેલી ક્ષણ અત્યારે વિદ્યમાન નથી. એનું માત્ર સ્મરણ થઈ શકે, એમાં જીવન જીવી ન શકાય. એ જ રીતે આવનારી ક્ષણ હજી ઉત્પન્ન થઈ નથી, તેની તો કલ્પના કે કામના જ થઈ શકે છે, યથાર્થ દર્શન નહીં. તેથી સાચો સાધક વર્તમાનમાં જ જીવવા ઇચ્છે છે. વર્તમાનમાં જીવવું એટલે આ ક્ષણે જે કંઈ અનુભવ થઈ રહ્યો છે તેના પ્રત્યે જાગૃત થઈને જીવવું - ન ફરિયાદ, ન ફેરફાર, પ્રતિક્રિયારહિત કેવળ જાગૃતિ.

આમ, સાધકે પ્રતિક્રિયા કર્યા વિના પ્રસંગોને જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવે જોવાનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ. કર્મકૃત સંગ-પ્રસંગમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટના વિકલ્પ ઊઠે કે તરત જ તેનો નાશ કરવો ઘટે. કર્મના વિપાકને જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવે નિહાળવાના આ અભ્યાસથી નવા સંસ્કાર નંખાતા નથી અને જૂના સંસ્કારને પોષણ ન મળવાથી, એનો આધાર તૂટી જવાથી એ પણ ક્ષીણ થઈ જાય છે. તેથી સાધકે પ્રસંગોથી પ્રભાવિત થયા વિના, તેનાથી અલિપ્ત રહેવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. તેણે પોતાની વૃત્તિને દર્પણ જેવી બનાવવી જોઈએ. વીતરાગવૃત્તિનો અભ્યાસ એટલે દર્પણ જેવા બનવાની સાધના.

દર્પણનો ધર્મ છે - 'સ્વાગત બધાનું પણ સંગ્રહ કોઈનો નહીં.' તેથી જો દર્પણ જેવા બનવાની સાધના કરવી હોય તો પ્રત્યેક વસ્તુ-વ્યક્તિ-પરિસ્થિતિ જેમ છે તેમ માત્ર જોવી-જાણવી. તેના પ્રત્યે સારા-ખરાબનું મૂલ્યાંકન થવા ન દેવું. કોઈ પણ પ્રકારની પ્રતિક્રિયા થવા ન દેવી. દર્પણની સામે ગમે તે આવે, તેનું માત્ર સ્વાગત થાય છે તેનો સંગ્રહ નહીં. તેમ જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવે રહેવાથી સંસ્કારરૂપે સંગ્રહ થતો નથી. કિંતુ ધૂળ જેમ દર્પણને ઢાંકી દે છે, તેના સહજ ધર્મને આવરિત કરી દે છે; તેમ કોઈ પણ વસ્તુ-વ્યક્તિ-પરિસ્થિતિ પ્રત્યે પૂર્વનિર્ધારિત વિચાર કે તેના વિષે બાંધેલા અભિપ્રાયાદિ ધૂળની જેમ ચિત્તપટ ઉપર આવી તેને આવરિત કરી દે છે. વિચારોનો ખૂબ પરિગ્રહ હોય, ચિત્ત ગ્રંથિઓથી બંધાયેલું હોય તો દર્શન શુદ્ધ થઈ શકતું નથી. તેથી સાધક માટે અત્યંત આવશ્યક છે કે ઇષ્ટ-અનિષ્ટ કલ્પનાઓને તજવી અને વસ્તુ-વ્યક્તિ-પરિસ્થિતિનાં સ્વરૂપ સંબંધી વિવેક પ્રગટાવવો. 'પર ઇષ્ટ નથી કે અનિષ્ટ નથી, પર તો મારા જ્ઞાનનો વિષયમાત્ર છે' - આવી જ્યાં જાગૃતિ હોય છે ત્યાં જીવને રાગ-દ્રેષ ઊપજતા નથી અને માત્ર જ્ઞાયકભાવે રહેવાનું થાય છે.

આમ, પ્રાપ્ત પરિસ્થિતિને રાગ-દ્વેષ કર્યા વિના જ્ઞાયકભાવે વેદી લેવાથી નવા કર્મનું બીજ નષ્ટ થાય છે, અર્થાત્ સંવર સધાય છે અને સાથે સાથે જૂના કર્મની નિર્જરા પણ થતી રહે છે. અગ્નિનો એક તણખો પડતાં જૂના ઘાસની ગંજી ભડભડ સળગી ઊઠીને થોડી જ ક્ષણોમાં રાખ બની જાય છે, તેમ અનેક જન્મોથી સંચિત થયેલો કર્મરાશિ સમતાયુક્ત અધ્યવસાયનો સંપર્ક થતાં પળવારમાં નિર્જરી જાય છે. તેથી જ જ્ઞાની ભગવંતોએ વારંવાર ઉપદેશ્યું છે કે 'સમત્વભાવનો અભ્યાસ કરો. વસ્તુ-વ્યક્તિ-પરિસ્થિતિ પ્રત્યે ન રાગ કરો, ન દેખ; ન અપેક્ષા, ન ઉપેક્ષા; માત્ર તટસ્થતાથી તેને જાણો. વૃત્તિઓ અંગે નિરંતર જાગૃત રહો. પોતાની વૃત્તિઓનું અવલોકન કરો. જેવી અશુદ્ધ વૃત્તિ જાગે કે તરત જ તેનું પ્રતિક્રમણ કરી લો, તેનું પ્રત્યાખ્યાન લો. જો તાત્કાલિક આમ નહીં થાય તો તે અશુદ્ધ વૃત્તિ કાં તો અભિવ્યક્ત થઈ જશે કાં તો અવયેતન મનમાં સંગૃહીત થઈ જશે. માટે જેવી વૃત્તિ ઊઠે કે તરત જ અવલોકન-પ્રતિક્રમણ-પ્રત્યાખ્યાન કરી લેવાં. સ્વરૂપની જાગૃતિ ટકાવી રાખવી. આમ કરવાથી નવીન કર્મોનું આવવું અટકે છે તથા પૂર્વસંચિત કર્મપુદ્દ્ગલોનો જથ્થો હાનિ પામતો જાય છે.' આ પ્રકારે કર્મના ઉદયમાં ઉપયોગની સંધિ ન કરતાં રાગ-દેખરહિત સાક્ષીભાવમાં રહેવું એ માત્ર સંવરનું જ નહીં, નિર્જરાનું પણ પ્રબળ સાધન છે. પ્રસ્તુત ગાથાના વિવેચનમાં બહ્મચારીજી શ્રી ગોવર્ધનદાસજી આ જ તથ્યને સરળ ભાષામાં સમજાવતાં કહે છે –

'કર્મ તો પૂર્વે બાંધેલાં ઉદય આવે પરંતુ આત્મા જો તેમાં તન્મયપણે ન પરિણમે, પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિર રહે, જુદો રહે, રાગદ્વેષ ન કરતાં સમભાવમાં વર્તે તો જૂનાં કર્મની ગાંઠ છૂટી જાય ને નવા બંધ ન પડે.'^૧

સ્વરૂપજાગૃતિથી કર્મની નવી ગાંઠો બંધાતી નથી અને જૂની ખૂલવા લાગે છે. નવાં કર્મ બંધાતાં નથી અને જૂનાં ખરી જાય છે; પરંતુ જેઓ ઘોર મિથ્યાત્વવશ પર પ્રત્યેની અહં-મમબુદ્ધિમાં રાચે છે, તેઓ નિરંતર કર્મોનો આસવ કરતા રહે છે, કર્મોને આવવાનાં દ્વાર ખોલતા રહે છે. જો મોહની વૃત્તિઓ શાંત થાય, ઓછી થાય, તો કર્મોનું દબાણ આપોઆપ ઓછું થવા લાગે; અને તેથી વિભાવપરિણામ દૂર હટે, સ્વરૂપદષ્ટિનું બળ રહે-વધે તથા અજ્ઞાનની નિવૃત્તિ થઈ આત્મજ્ઞાન પ્રગટે. આનંદસ્વરૂપ વ્યક્ત થતાં અવિદ્યાની શૃંખલા, તૃષ્ણાનું મૂળ, વ્યાકુળતાનું કારણ, દુઃખનો પહાડ યૂરેયૂરો થઈ સમાપ્ત થઈ જાય. અજ્ઞાનનું નિવારણ થવાથી આખું જીવન બદલાઈ જાય અને સંસાર મૃતઃપ્રાય બનીને રહી જાય.

આત્મજ્ઞાનના કારણે વ્યક્તિ એટલી બધી રૂપાંતરિત થઈ જાય છે કે પહેલાંની વ્યક્તિ અને આત્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત થયા પછીની વ્યક્તિ એક નથી રહેતી. તેના વ્યક્તિત્વમાં આમૂલ પરિવર્તન આવી જાય છે. પોતે કેવળ જ્ઞાયક હોવા છતાં પૂર્વે ભ્રાંતિના કારણે દેહ, વાણી વગેરે પરપદાર્થોમાં અને વિકારોમાં ખોવાઈ ગયો હતો; તેણે શ્રદ્ધાનમાં નિજસ્વરૂપમાં પરની અને વિભાવની ભેળસેળ કરી લીધી હતી; પરંતુ હવે તે પોતાની ૧- બ્રહ્મચારીજી શ્રી ગોવર્ધનદાસજી, 'આત્મસિદ્ધિ વિવેચન', બીજી આવૃત્તિ, પૃ.૭૩

જાતને દેહ અને મનની પલટાતી અવસ્થાઓથી તથા સમસ્ત દેશ્ય જગતથી તદન ભિન્ન અનુભવે છે. પોતે નામરૂપાત્મક શરીરથી ભિન્ન છે, વિચારો અને મનથી પણ જદો છે. ક્ષણે ક્ષણે પલટાતા ભાવોથી પણ પૃથકુ છે - એમ પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી ભિન્ન એવા પોતાના સહજાત્મસ્વરૂપની અનુભવ સહિતની પ્રતીતિ પ્રગટી હોવાથી જ્ઞાની કર્મકૃત વ્યક્તિત્વથી ઉપર ઊઠે છે. સમસ્ત પરદ્રવ્યથી ભિન્ન, સંયોગોથી જુદા, કર્મના ઉદયવિપાકોથી જદા, રાગાદિ ભાવોથી જુદા, એક જ્ઞાયકસ્વભાવનું જ તેમને સતત ભાન વર્તે છે. તેમના અંતરમાં જ્ઞાયકની જે પકડ છે તે એક પળ પણ છૂટતી નથી. બાહ્ય પરિવર્તનો વચ્ચે તેઓ એક અખંડ સત્તારૂપે અચળ રહે છે અને તેથી તેનાથી અપ્રભાવિત રહે છે. સંયોગોની ભીડમાં તેમનું જ્ઞાન ભીંસાઈ જતું નથી, જ્ઞાન તેનાથી જુદું ને જુદું જ રહે છે. 'કર્મનો વિપાક તે મારો સ્વભાવ છે જ નહીં' એમ કર્મોદયને પોતાથી ભિન્ન અનુભવે છે. એવી સહજ જ્ઞાનદશા વડે જ જ્ઞાની ઓળખાય છે અને એ જ્ઞાનદશા જ જ્ઞાનીની દશા માપવાનું 'થર્મોમીટર' છે. બાહ્યમાં પુણ્યનો ઉદય હોય કે પાપનો, જ્ઞાનીપુરૂષને એ ઉદય સ્પર્શતો જ નથી. જેમ ફરતી ઘંટી ઉપર બેઠેલી માખી, સંજોગદૃષ્ટિએ જોનારને ફરતી લાગે, પણ માખી તો સ્થિર બેઠી છે; તેમ જ્ઞાનીપુરુષના ઉદયને લક્ષમાં રાખીને કોઈ તેમની અંતરંગ દશા પારખવા જાય તો તે ગૂંચવાઈ જાય છે. તે તેમની દશા ઓળખવામાં ભૂલ કરી બેસે છે. બાહ્ય દષ્ટિ છોડી તેમનું અંત:કરણ નિહાળે તો ખબર પડે કે બાહ્યના તીવ્ર સારા-નરસા ઉદયમાં પણ તેઓ તો પોતાના આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિર છે.

જ્ઞાનીપુરુષોને તો એકમાત્ર સ્વરૂપસ્થિરતાનું જ પ્રયોજન છે. સ્વરૂપસ્થિરતાને સાધવામાં જ તેમને લાભ દેખાય છે. વીતરાગતા વધે તેવી જ રીતે તેઓ વર્તે છે. સ્વભાવની સન્મુખતા કદી છૂટે નહીં એવી જાગૃતિ તેમને સદા રહે છે. અસ્થિરતાવશ કંઈક રાગ આવી જાય તોપણ તેને ભલો ન જાણતાં એક આત્મસ્વભાવને જ હિતરૂપ જાણે છે. ચારિત્રમોહનીય કર્મના ઉદયથી હજી અસ્થિરતા વર્તતી હોવાથી જે અલ્પ રાગાદિ થાય છે તેને પણ ભેદવિજ્ઞાનની જાગૃતિ વડે દૂર કરી, તેઓ અવિરતપણે સ્વરૂપસ્થિરતાના પુરુષાર્થમાં લાગેલા રહે છે. પૂર્વકર્મના ઉદય અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવી પડે તો તે કરે છે, પણ તેમને રુચિ તો સ્વભાવમાં સ્થિર થવાની જ રહે છે. વારંવાર નિર્વિકલ્પ ધારામાં રહેવાની – જ્ઞાયકસ્વભાવમાં રમવાની રટણા વર્તે છે. 'હું પૂર્ણ છું'ની ખુમારી વર્તે છે અને સાથે સાથે તે પૂર્ણ સ્વરૂપમાં પૂર્ણપણે ઠરવાની ભાવના પણ વર્તે છે. તેમને એક સ્વરૂપરમણતા સિવાય કશું ઉપાદેય લાગતું નથી. શુભ ભાવ હોય કે અશુભ ભાવ, પુણ્યનું ફળ ભોગવાતું હોય કે પાપનું - તેમના આત્મપ્રત્યયી વલણથી તે સર્વ પ્રત્યેના વલણમાં ધરખમ ફેરફાર આવી જાય છે. તેઓ બધેથી જુદા ને જુદા જ રહે છે. આત્માની પકડ એવી તો થઈ જાય છે કે જાણે શુભાશુભ ભાવ અને શુભાશુભ રહે છે.

ફળની પકડ ક્યારે પણ હતી જ નહીં! જો કે જ્ઞાનીનું ઉદયાનુસાર વર્તન જોઈને અજ્ઞાનીને તો એમ લાગે છે કે 'અમે પણ શુભ-અશુભ ભાવ કરીએ છીએ અને અમારી જેમ આ જ્ઞાની પણ શુભાશુભ ભાવ કરી રહ્યા છે', પણ જ્ઞાનીની પરિણતિ અંતરમાં રાગથી ભિન્ન રહીને કંઈક જુદું જ કામ કરી રહી હોય છે.

જ્ઞાનીએ પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવને સમસ્ત શુભાશુભ ભાવોથી ભિન્ન જાણ્યો છે, એટલે તેમનો પ્રયત્ન રાગને મટાડવાનો છે, રાગને વધારવાનો નહીં. તેમને 'રાગનો રાગ' કદાપિ હોય નહીં. 'રાગનો રાગ' અનંતાનુબંધીનો પ્રકાર છે કે જે અજ્ઞાની જીવને જ હોય છે. અજ્ઞાની રાગને પોતાપણે અનુભવે છે. તે રાગમાં પોતાનું બળ માને છે. તેણે રાગથી ભિન્નતાનું ભાન કર્યું ન હોવાથી તે રાગને ટાળી શકતો નથી. જે રાગને પોતાના સ્વભાવમાં ખતવે તે તેને કેમ ટાળી શકે? જ્ઞાનીએ રાગથી ભિન્ન જ્ઞાનસ્વભાવના વીતરાગી આનંદનો અનુભવ કર્યો છે, એટલે તે આનંદ સાથે સરખાવતાં રાગ તેમને રોગ જેવો લાગે છે – હળાહળ ઝેર જેવો લાગે છે અને તેથી શુદ્ધતાના પરિણમન વડે તે રાગને તેઓ મટાડવા માંગે છે. અજ્ઞાનીને તો રાગ અને પોતાની ભિન્નતાનું ભાન નથી, વીતરાગી આનંદની ખબર નથી, તો તે રાગને કોની સાથે સરખાવશે? તે તો અશુભ કરતાં શુભ રાગને સારો માને છે, પરંતુ શુભ રાગમાં પણ આનંદ નથી, તેમાં પણ આકુળતા જ છે એની તેને ખબર નથી. રાગાદિ અશુદ્ધ ભાવપણે જ તે પોતાને અન્ભવે છે.

રાગાદિ અશુદ્ધ ભાવપણે જ પોતાને જે અનુભવે છે તેનો મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ થતો નથી. અનાદિ કાળથી જીવ જ્ઞાનાનંદસ્વભાવ તથા રાગાદિ વિભાવોની એકતામાં ગૂંચવાઈ ગયો છે. આ એકત્વની આંટી ઊકલે નહીં ત્યાં સુધી જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થતી નથી. આ આંટી ઉપર અંતરના જોરથી પ્રજ્ઞાછીણી પટકવાથી જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય છે. આત્માનો સહજ જ્ઞાયકભાવ અને રાગાદિ અશુદ્ધ ભાવો કિંચિત્ પણ એકમેક નથી, પણ જુદા સ્વભાવવાળા છે. અત્યંત જાગૃતિપૂર્વક બે વચ્ચે 'હું માત્ર જ્ઞાયક છું. જ્ઞાયક સિવાયનું બીજું બધું ભિન્ન છે' એવું ભેદજ્ઞાન પ્રગટાવતાં શુદ્ધાત્માનો અનુભવ થાય છે. જેમ પાણી અને કાદવ સર્વથા એક નથી, તેથી ઔષધિ વડે તેને જુદા પાડી શકાય છે; તેમ ભેદજ્ઞાનરૂપી પરમ ઔષધિ વડે આત્માને અને રાગાદિ અશુદ્ધ ભાવોને ભિન્ન કરીને શુદ્ધાત્માનો અનુભવ થઈ શકે છે. ભેદજ્ઞાન કરીને શુદ્ધ આત્માનો અનુભવ કરનારા જીવો વિરલા છે.

જ્ઞાયકનું સહજ અસ્તિત્વ લક્ષમાં લીધું હોવાથી, માત્ર જ્ઞાયકભાવ જ રુચતો હોવાથી જ્ઞાનીને વિભાવભાવ હોય તોપણ તે રુચતો નથી. રાગ વખતે પણ 'રાગ તે હું નહીં' એવી જાગૃતિ વડે તેઓ રાગનો નાશ કરે છે. જેમ કોઈ પાડોશીના છોકરા પોતાના ઘરના આંગણે રમવા માટે આવી ગયા હોય, તોપણ તેમને જોઈને મારાપણાની માન્યતા થતી નથી, પરંતુ 'આ મારા છોકરા નથી' એમ જાણી તેમને કાઢી મૂકવામાં આવે છે; તેમ જ્ઞાનીને ચૈતન્યમૂર્તિ આત્મામાં રાગ-દેષની જે મલિન વૃત્તિ દેખાય છે તેનો તેઓ પૂર્ણ સ્વભાવ પ્રત્યેની દષ્ટિના બળ વડે અભાવ કરે છે.

આમ, જ્ઞાનીને રાગ વખતે પણ તે રાગનો નિષેધ કરનાર સમ્યક્ શ્રદ્ધા-જ્ઞાન સતત વર્તે છે. ચારિત્રની કચાશથી જે રાગ ઉત્પન્ન થાય છે તે શ્રદ્ધા-જ્ઞાનને મિથ્યા કરી શક્તો નથી. જ્ઞાનીનાં શ્રદ્ધા-જ્ઞાન દ્રવ્યસામાન્યને વળગીને રહે છે, બન્નેની સ્વભાવ ઉપર મજબૂત પકડ હોય છે. ચારિત્રની પકડ ચુકાઈ જાય તોપણ શ્રદ્ધા-જ્ઞાનથી દઢપણે ત્રિકાળી ધ્રુવ દ્રવ્યને અહી રાખેલ હોવાથી જ્ઞાનીને ઊની આંચ પણ નથી આવતી. રાગની વિદ્યમાનતામાં પણ તેનો સતત નિષેધ જ થતો રહે છે. રાગાદિ ભાવો થાય છે તે જ્ઞાનમાં જણાય છે, પણ તેમનું જ્ઞાન તે ઉદયભાવથી લેવાઈ જતું નથી. રાગ વખતે જ રાગને રાગ તરીકે જાણી લીધો હોવાથી તે રાગને જાણનાડું જ્ઞાન રાગથી જુદું રહે છે અને આત્મા સાથે એકતા કરે છે. જ્ઞાની જ્ઞાનને પોતાપણે અંગીકાર કરે છે અને રાગને બંધનપણે જાણીને તેને છોડી દે છે. રાગ વખતે પણ આ રાગ જણાય છે તે મારા જ્ઞાનનું સામર્થ્ય છે, રાગનું સામર્થ્ય નથી' એમ રાગથી ભિન્ન જ્ઞાનસામર્થનું ભાન હોવાથી તેમને એકલું જ્ઞાતાપણું રહી જાય છે અને પરિણામે રાગ ટળતો જાય છે. ગમે તેવા પ્રસંગ વખતે પણ સમયે સમયે સ્વભાવમાં જ્ઞાનની એકતા વધતી જાય છે અને રાગ તૂટતો જાય છે. આમ, આત્મજ્ઞાનના બળ વડે બધા જ રાગાદિનો પ્રાંતે નાશ થઈ જાય છે. શ્રીમદ્દ લખે છે —

'રાગાદિની નિવૃત્તિ એક આત્મજ્ઞાન સિવાય બીજા કોઇ પ્રકારે ભૂતકાળમાં થઇ નથી, વર્તમાનકાળમાં થતી નથી, ભવિષ્યકાળમાં થઇ શકે તેમ નથી. એમ સર્વ જ્ઞાનીપુરુષોને ભારસું છે.'^૧

જડ કર્મના ઉદય વખતે થતાં રાગાદિ ભાવો આસવતત્ત્વ હોવાથી જ્ઞાનતત્ત્વથી તે ભિન્ન છે એવા ભેદજ્ઞાનપૂર્વક જ્ઞાની તે ઉદયભાવોને છોડે છે અને 'હું તો એકમાત્ર જ્ઞાયકભાવ છું' એમ અનુભવે છે. આવા અનુભવના કારણે તેમને સંવર થાય છે. નવીન કર્મનું બંધન થતું નથી અને સાથે સાથે નિર્જરા પણ થાય છે. જેમ સોનું કાદવના સંયોગમાં હોય કે અગ્નિના સંયોગમાં હોય, સોનું તો સોનું જ રહે છે, તેમ કર્મના અનેકવિધ સંયોગમાં પણ જ્ઞાનીનું જ્ઞાન તો જ્ઞાન જ રહે છે. ભોગોપભોગના કાળ વખતે પણ આવું ભેદજ્ઞાન જ્ઞાનીને વર્તતું હોવાથી તેમને ક્ષણે ક્ષણે અનંત કર્મોની નિર્જરા થયા જ કરે છે. તેમને અલ્પ રાગાદિ ભાવ અને અલ્પ કર્મબંધન છે, પણ તે

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૩૧ (પત્રાંક-૩૭૫)

રાગ અને કર્મ બન્નેથી ભિન્નપણે જ, માત્ર જ્ઞાયકભાવરૂપે જ્ઞાની પોતાને અનુભવે છે. તેઓ પોતાને રાગપણે કે કર્મપણે અનુભવતા નથી, માટે જ્ઞાનરૂપે જ પરિણમતા જ્ઞાનીને ખરેખર બંધન નથી.

અજ્ઞાન જેમનું નિવૃત્ત થયું છે તેમને આવી અદ્ભુત આત્મદશા પ્રગટે છે. તેમની પ્રત્યક્ષ દશા જ બોધરૂપ છે. તે મહત્પુરુષોને ધન્ય છે. સમ્યક્ત્વ પ્રગટાવ્યા પછી તેમને સતત શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વભાવનું અનુસંધાન હોવાથી તેમને રાગ-દેષનું કર્તા-ભોક્તાપણું નથી, પણ એકમાત્ર જ્ઞાતાપણું છે અને તેથી તેમને બંધન, દુઃખ કે સંસાર હવે રહેતાં નથી. સત્તામાં પડેલાં શેષ કર્મો આત્મસ્વરૂપનાં યથાર્થ શ્રદ્ધા-જ્ઞાન-રમણતાનાં પરિણામે ખરવા લાગે છે, દૂર થવા લાગે છે. આધ્યાત્મિક વિકાસ ક્રમશઃ પરિપૂર્ણતાને પામતો જાય છે અને અંતે આત્મા સાથે એકક્ષેત્રાવગાહે રહેલ સર્વ કર્મપુદ્દગલો જ્યારે નિર્જરી જાય છે ત્યારે સર્વ પ્રકારે પૂર્ણતા-શુદ્ધતા-શ્રેષ્ઠતાને પ્રાપ્ત થયેલ તે પરમાત્મા ઊર્ધ્વગમન કરી સિદ્ધાલયમાં બિરાજે છે.

આમ, કર્મની મુખ્ય ગાંઠ એવાં રાગ-દેષ-અજ્ઞાનના નાશથી અબંધદશા પ્રાપ્ત થાય છે તથા પૂર્વકર્મની વિપુલ નિર્જરા થઈ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે; માટે રાગ-દેષ-અજ્ઞાનરહિત થવું તે જ મોક્ષનો ઉપાય છે, ધર્મ છે. આ ધર્મસાધનાનું યથાર્થ સ્વરૂપ જાણી-સમજી તેની સમ્યક્ આરાધના કરવી જોઈએ. રાગ-દેષનો નાશ કરવા માટે સૌ પ્રથમ તેના આધારરૂપ અજ્ઞાનનો નાશ કરવો જોઈએ. દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ અજ્ઞાનમંથિ દૂર થતાં રાગ-દેષનાં મૂળ જ નષ્ટ થઈ જાય છે. જીવનાં વિકારી પરિણામને મિથ્યા અભિપ્રાયનો બળવાન આધાર રહેતો હોવાથી તે પરિણામને મટાડવાં દુષ્કર બને છે. જો અભિપ્રાય સમ્યક્ થાય તો વિભાવભાવ લાંબા સમય સુધી જીવિત રહી શકતો જ નથી, બલ્કે તે અલ્પ કાળમાં વિલય પામે છે. જેમ મૂળમાંથી ઊખડેલ વૃક્ષનાં પાંદડાં-ડાળ વગેરે થોડો વખત સુધી જીવંત જ્ણાય છે, પણ પોષણના અભાવથી તે પાંદડાં-ડાળખાં વહેલાં-મોડાં સુકાઈ જ જાય છે; તેમ જેમના સંસારવૃક્ષનું અજ્ઞાનરૂપી મૂળ નાશ પામ્યું છે, તેમનાં રાગ-દેષરૂપ પાંદડાં થોડા કાળ સુધી તો લીલાંછમ જણાય છે, પણ તેને પોષણ મળતું ન હોવાથી સર્વ રાગ-દેષ વહેલા-મોડા સમેટાઈ જાય છે.

સંસારનો મૂળ આધાર એવું અજ્ઞાન નાશ પામ્યું હોવાથી અન્ય દોષો પણ નષ્ટ થઈ જાય છે. સ્વસ્વરૂપ અંગેની અજ્ઞાનરૂપ અનાદિ મૂળ ભૂલ ભાંગી હોવાથી અન્ય ભૂલોનાં પણ ઊઠમણાં થાય છે. તેમની સ્વરૂપરમણતા વધતી જાય છે અને રાગ-દેષનો પૂર્ણ વિલય કરી અંતે તેઓ શુદ્ધ સ્વભાવમાં પૂર્ણપણે સ્થિત થઈ જાય છે. આમ, દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ અજ્ઞાનમ્રંથિનો છેદ થતાં, અર્થાત્ મંથિભેદ થતાં અનંતાનુબંધી પ્રકારના તીવ રાગ-દેષ થતા નથી અને તેથી જન્મ-મરણની પરંપરા નભી શકતી નથી, ભવ- ભ્રમણનો કાળ મર્યાદિત બની જાય છે. રાગ-દ્વેષરહિત થવાના પુરુષાર્થ વડે તેઓ મોક્ષને બનતી ત્વરાએ પ્રાપ્ત કરી લે છે. શ્રીમદ્દ્ કહે છે –

'કોઇ જીવ પ્રબળ પુરુષાર્થ કરી, નિમિત્ત કારણનો જોગ પામી કરેડિયાં કરી ગ્રંથિભેદ કરી, આગળ વધી આવે છે, અને જ્યારે ગ્રંથિભેદ કરી આગળ વધ્યો કે ચોથામાં આવે છે, અને ચોથામાં આવ્યો કે વહેલોમોડો મોક્ષ થશે, એવી તે જીવને છાપ મળે છે.'^૧

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'રાગ, દ્વેષ, અજ્ઞાન એ, કર્મગ્રંથિ કઠોર; ઘણી આકરી તેહથી, જીવનું ચાલે ન જોર. મહા મોહનીરૂપ એ, મુખ્ય કર્મની ગ્રંથ; ભવસ્થિતિ પાક્યા વિના, થાય ન તેનો અંત. ભવસ્થિતિ પરિપાકથી, સદ્પુરુ સેવા યોગ; થાય નિવૃત્તિ જેઢથી, જિન દર્શન અનુયોગ. ભાવદયા નિજભાવથી, અનંત ચતુષ્ટયવંત; સેવે અનુભવ આત્મનો, તે જ મોક્ષનો પંથ. 'ર

* * *

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૫૨ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૧૪૦)

ર- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૯ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૩૯૭-૪૦૦)

क्या रूप्य प्रमिन म्हिपंष ते शत

ગાથા ૧૦૦માં શ્રીગુરુએ નાસ્તિરૂપે મોક્ષમાર્ગ પ્રકાશતાં કહ્યું કે રાગ, દ્વેષ અને અજ્ઞાન એ આત્માનું વૈભાવિક પરિણમન છે, અર્થાત્ આત્માની અશુદ્ધ અવસ્થા છે; જેનાથી આત્માની આ અશુદ્ધ અવસ્થાની નિવૃત્તિ થાય તે જ મોક્ષનો પંથ છે. તેના અનુસંધાનમાં આ ગાથામાં આત્માના શુદ્ધ સ્વરૂપની પ્રાપ્તિરૂપ સ્વાભાવિક પરિણમન જે રીતે થાય તે મોક્ષનો પંથ છે એમ બતાવી, શ્રીગુરુએ સુગમમાં સુગમ છતાં અત્યંત પરમાર્થગંભીર શબ્દોમાં અસ્તિરૂપે મોક્ષમાર્ગનું પ્રકાશન કર્યું છે.

ગાથા ૧૦૦-૧૦૧માં અત્યંત મહત્ત્વનો મર્મ પ્રતિપાદિત કર્યો છે. રાગ, દ્વેષ અને અજ્ઞાનની જેટલા અંશે નિવૃત્તિ થાય તથા શુદ્ધ સ્વરૂપમાં જેટલા અંશે સ્થિરતા સધાય તેટલું મોક્ષમાર્ગે પ્રયાણ થયું ગણાય. આમ, ગાથા ૧૦૦માં શ્રીગુરુએ વ્યતિરેકથી રાગાદિ-નિવૃત્તિલક્ષણરૂપ મોક્ષમાર્ગ પ્રકાશ્યો અને તેના ફ્લિતાર્થરૂપે આ ગાથામાં શુદ્ધાત્મપ્રવૃત્તિ-લક્ષણરૂપ મોક્ષમાર્ગનું કથન કરતાં તેઓ કહે છે –

ાથા 'આત્મા સત્ ચૈતન્થમય, સર્વાભાસ રહિત; જેથી કેવળ પામિયે, મોક્ષપંથ તે રીત.' (૧૦૧)

'સત્' એટલે 'અવિનાશી', અને 'ચૈતન્યમય' એટલે 'સર્વભાવને પ્રકાશવા– રૂપ સ્વભાવમય' 'અન્ય સર્વ વિભાવ અને દેહાદિ સંયોગના આભાસથી ૨હિત એવો', 'કેવળ' એટલે 'શુદ્ધ આત્મા' પામીએ તેમ પ્રવર્તાય તે મોક્ષમાર્ગ છે. (૧૦૧)

ભાવાર્થ એ ગાથામાં શ્રીગુરુએ આત્માના શુદ્ધ સ્વરૂપનો નિશ્ચય કરાવી, તે સ્વરૂપ જે માર્ગે પામી શકાય તે માર્ગને મોક્ષનો પંથ કહ્યો છે, અર્થાત્ શુદ્ધાત્માનો અનુભવ અને તેમાં જ સ્થિરતા જે રીતે થાય તે જ મોક્ષનો ઉપાય છે એમ જણાવ્યું છે. આત્મા 'સત્' છે, એટલે કે તે વિદ્યમાન છે. આત્મા વાસ્તવિક પદાર્થ છે. તે ભૂતોમાંથી પ્રગટેલો પદાર્થ નથી, પણ સ્વતંત્ર પદાર્થ છે. તે કદી નાશ ન પામે એવો, ત્રણે કાળ રહેવાવાળો, અવિનાશી પદાર્થ છે. આત્માનું લક્ષણ 'ચૈતન્યતા' છે, અર્થાત્ તે જ્ઞાનસ્વરૂપ છે. ત્રણે કાળ જાણ્યા કરવું એ જ તેનો સ્વભાવ છે. આત્મા જ્ઞાયકસ્વભાવી હોવાથી જ્ઞાન સિવાયની અન્ય કોઈ ક્રિયા તેની સ્વાભાવિક ક્રિયા નથી, અર્થાત્ રાગાદિ ભાવ એ તેનું સ્વાભાવિક પરિણમન નહીં પણ વૈભાવિક પરિણમન છે. બાહ્ય દષ્ટિએ જોતાં આત્મા દેહાદિરૂપે કે રાગાદિરૂપે દેખાય છે, પણ તે માત્ર આભાસ છે. તે તેનું સાચું સ્વરૂપ નથી. આત્મા 'સર્વ આભાસથી રહિત' છે, અર્થાત્ સમસ્ત પ્રકારના પર-

સંયોગ તથા પરભાવથી રહિત એવું શુદ્ધ ચૈતન્યદ્રવ્ય છે. દેહાદિ સંયોગ અને વિભાવ-પરિશામથી તે સર્વ પ્રકારે રહિત છે.

પોતાના જ આધારે ત્રિકાળ ટકવાવાળો, અસ્ખલિત જાણ્યા કરવાના સ્વભાવવાળો અને કર્મકૃત અવસ્થાઓ તથા કર્મકૃત ભાવોથી ભિન્ન એવો શુદ્ધાત્મા જે રીતે પમાય તે જ મોક્ષમાર્ગ છે. જે વડે આવા શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપનો લક્ષ થાય અને તેમાં સ્થિરતા થાય તે મોક્ષનો ઉપાય છે એમ આ ગાથામાં પ્રતિપાદિત કર્યું છે.

શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપમાં અખંડપણે સ્થિર થવું તે મોક્ષ છે. તેથી શુદ્ધ આત્મ- સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ અને સ્થિરતાનો પુરુષાર્થ તે જ મોક્ષનો ઉપાય છે, મોક્ષ- માર્ગની વિધિ છે. મુક્તિનો માર્ગ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રની એકતારૂપ છે. સમ્યગ્દર્શન એટલે સાચી બ્રાંધ અને સમ્યક્યારિત્ર એટલે સાચું આચરણ. નિશ્ચયથી તો ત્રણે આત્મારૂપ જ છે, અર્થાત્ આત્માની શુદ્ધ પર્યાયો જ છે. પરપદાર્થોથી ભિન્ન એવા પોતાના આત્માના વાસ્તવિક સ્વરૂપમાં પોતાપણાની શ્રદ્ધા કરવી તે સમ્યગ્દર્શન, પરપદાર્થોથી ભિન્ન એવા પોતાના આત્માની યથાર્થ ઓળખાણ કરવી તે સમ્યગ્દ્યાન અને પરપદાર્થો તેમજ પરભાવોથી ભિન્ન એવા પોતાના જ્ઞાન-સ્વભાવી આત્મામાં લીન થવું તે સમ્યક્ચારિત્ર છે. આ ત્રણેની અવિરુદ્ધ એકતા એ જ સાચો મોક્ષમાર્ગ છે. આત્માના શુદ્ધ સ્વરૂપની યથાર્થ ઓળખાણ કરી તેની પ્રાપ્તિ કરવી તે જ મોક્ષમાર્ગની આરાધના છે. તેથી શ્રીમદે પ્રસ્તુત ગાથામાં આત્માના શુદ્ધ સ્વરૂપની ઓળખાણ કરાવી, જે રીતે તેની પ્રાપ્તિ થઈ શકે એવી મોક્ષમાર્ગની વિધિ દર્શાવી છે, અર્થાત્ મોક્ષનો ઉપાય દર્શાવ્યો છે.

આત્મસ્વરૂપની ઓળખાણ કરાવતાં શ્રીમદે સૌ પ્રથમ આત્માને 'સત્' કહી, આત્મા એક અવિનાશી દ્રવ્ય છે, અદ્રવ્ય કે કલ્પના નથી એમ તેના સાધારણ ગુણ દ્વારા તેની ઓળખાણ કરાવી છે; પછી આત્માને 'ચૈતન્યમય' કહી, તે એક જ્ઞાનધારક પદાર્થ છે, જડ કે અજીવ નથી એમ તેના અસાધારણ ગુણ દ્વારા તેની ઓળખાણ કરાવી છે; પછી આત્માને 'સર્વાભાસ રહિત' કહી તેનું સ્વરૂપ સર્વ પ્રકારની અશુદ્ધિઓથી રહિત છે, અર્થાત્ દેહાદિ સંયોગો અને રાગાદિ વિકારોથી રહિત છે એમ કહી તેના શુદ્ધ સ્વરૂપની ઓળખાણ કરાવી છે. તેમણે 'સત્' શબ્દ દ્વારા આત્માના દ્રવ્યપણાનું, અર્થાત્ અદ્રવ્યથી ભિન્તતાનું; 'ચૈતન્યમય' શબ્દ દ્વારા આત્માના ચૈતન્યપણાનું, અર્થાત્ જડ દ્રવ્યથી ભિન્તતાનું અને 'સર્વાભાસ રહિત' શબ્દ દ્વારા આત્માના શુદ્ધ સ્વરૂપનું, અર્થાત્ પરદ્રવ્ય-પરભાવથી ભિન્તતાનું કથન કર્યું છે. આમ, માત્ર ત્રણ શબ્દોમાં શ્રીમદે આત્મ-સ્વરૂપનું યથાર્થ દર્શન કરાવી તેમની અદ્ભુત શૈલીનો પરિચય આપ્યો છે. આત્મસ્વરૂપ સંબંધી શ્રીમદે દર્શાવેલ ત્રણ તથ્યોને વિશેષતાથી વિચારીએ —

(૧) આત્મા **'સત્'** છે.

'સત્' એટલે સત્તા, અસ્તિત્વ, હોવાપશું. અસ્તિત્વ ગુણના કારણે દ્રવ્યનો કદી નાશ નથી થતો. દરેક દ્રવ્યમાં અસ્તિત્વ ગુણ હોવાથી દરેક દ્રવ્ય અવિનાશી છે, સદાકાળ સ્થાયી રહેનાર શાશ્વત પદાર્થ છે. જે વર્તમાનમાં વિદ્યમાન છે તે ત્રણે કાળમાં વિદ્યમાન છે, કારણ કે જે વસ્તુ વિદ્યમાન હોય તે ત્રણે કાળ હોય અને જે વિદ્યમાન ન હોય તે ત્રણે કાળમાં ક્યારે પણ ન હોય. જગતમાં જે પદાર્થોનું અસ્તિત્વ નથી તે પદાર્થ ક્યારે પણ ઉત્પન્ન થઈ શકે નહીં અને જે પદાર્થ સત્ છે - અસ્તિત્વવાન છે તેનો કદી નાશ થઈ શકે નહીં.

આત્મા પણ દ્રવ્ય છે, તેથી તે ત્રિકાળી છે. આત્મદ્રવ્ય સ્વતઃસિદ્ધ છે. તે સ્વાભાવિક પદાર્થ છે. કોઈ સંયોગોથી તેની ઉત્પત્તિ થતી નથી. તેનો ક્યારે પણ વિનાશ થતો નથી. તેની વિદ્યમાનતા તથા રક્ષા માટે અન્ય કોઈ દ્રવ્યની જરૂર પડતી નથી. શરીરાદિ તેને ટકાવતાં નથી, અર્થાત્ શરીર, આહાર, પૈસા, પ્રાણ ઇત્યાદિના આધારે તેનું ટકવાપણું નથી. પોતાની અનંત શક્તિ વડે તે સ્વયંરક્ષિત છે. તેણે અન્ય કોઈ પણ ચેતન કે જડ દ્રવ્ય ઉપર આધાર રાખવાની જરૂર નથી. આમ, અનુત્પન્ન અને અવિનાશી એવા આત્માની સ્વરૂપસત્તા સદાકાળ સ્વતંત્રપણે રહે છે. આત્માનું આવું ત્રિકાળીપણું શ્રીમદે 'સત્' શબ્દ દારા દઢ કરાવ્યું છે.

'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર'માં દ્રવ્યનાં લક્ષણ ત્રણ પ્રકારે બતાવ્યાં છે^૧ –

(१) 'सद्द्रव्यलक्षणम् ।'

દ્રવ્યનું લક્ષણ સત્ (અસ્તિત્વ) છે.

(२) 'उत्पाद-व्यय-धौव्ययुक्तं सत् ।'

જે ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રૌવ્ય સહિત હોય તે સત્.

(3) 'गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ।'

ગુણ-પર્યાયવાળું દ્રવ્ય છે.

પ્રથમ સૂત્રમાં દ્રવ્યનું લક્ષણ 'સત્' બતાવ્યું, અર્થાત્ જેનું જેનું અસ્તિત્વ છે તે તે દ્રવ્ય છે. આ અસ્તિત્વ ગુણના કારણે વિશ્વમાં જીવદ્રવ્ય અને પુદ્દગલાદિ પાંચ અજીવદ્રવ્યો ૧- આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર', અધ્યાય ૫, સૂત્ર ૨૯,૩૦,૩૮ નોંધ : પ્રથમ સૂત્ર માત્ર દિગંબર પરંપરાના 'તત્ત્વાર્થ સૂત્ર'માં જોવા મળે છે. બીજાં બે સૂત્ર શ્વેતાંબર-દિગંબર બન્ને પરંપરાનાં 'તત્ત્વાર્થ સૂત્ર'માં જોવા મળે છે. શ્વેતાંબર પરંપરાના 'તત્ત્વાર્થ સૂત્ર'માં તેનો આંક ૩૦ને બદલે ૨૯ અને ૩૮ને બદલે ૩૭ છે.

અનાદિ-અનંત સ્વયંસિદ્ધ છે. આ દ્રવ્યોને કોઈએ ઉત્પન્ન કર્યા નથી, કોઈ તેની રક્ષા કરતું નથી કે કોઈ તેનો સંહાર કરી શકતું નથી. પરની સહાયથી તે ટકતાં નથી, તે કોઈને ટકાવતાં નથી અને પર દ્વારા તેનો નાશ પણ નથી તેમજ તે પરનો નાશ કરી શકતાં નથી. પોતાનું અસ્તિત્વ ટકાવવા માટે તે કોઈની અપેક્ષા નહીં રાખતાં હોવાથી તે સ્વતંત્ર છે. આમ, સર્વ દ્રવ્યોનું ત્રિકાળ હોવાપણું સિદ્ધ થાય છે.

દ્રવ્યમાં અનંત ગુણો, ધર્મો, શક્તિઓ હોય છે. તેમાં અમુક ગુણને સામાન્ય ગુણ કહેવામાં આવે છે, કારણ કે તે સર્વ દ્રવ્યોમાં જોવામાં આવે છે અને અમુક ગુણને વિશેષ ગુણ કહેવામાં આવે છે, કારણ કે તે સર્વ દ્રવ્યોમાં ન વ્યાપતાં અમુક જ દ્રવ્યમાં વ્યાપે છે. સામાન્ય ગુણ મુખ્યતઃ છ છે - અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, દ્રવ્યત્વ, અગુરુલઘુત્વ, પ્રમેયત્વ અને પ્રદેશત્વ. અસ્તિત્વ ગુણ આ છ સામાન્ય ગુણોમાં મુખ્ય ગુણ છે, કારણ કે તેના વડે દ્રવ્યનું હોવાપણું નક્કી થાય છે. જો દ્રવ્ય હોય તો બીજા ગુણો હોઈ શકે; માટે સત્ તે દ્રવ્યનું મુખ્ય લક્ષણ છે.

સત્ ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રૌવ્યથી સંયુક્ત હોય છે. ઉત્પાદ એટલે મૂળ સ્વભાવ નષ્ટ થયા વગર દ્રવ્યમાં નવીન અવસ્થાનું પ્રગટ થવું તે. વ્યય એટલે મૂળ સ્વભાવ નષ્ટ થયા વગર દ્રવ્યમાં પૂર્વ અવસ્થાનો વિનાશ થવો તે. ધ્રૌવ્ય એટલે અનાદિ-અનંત કાળ ટકી રહેવાનો મૂળ સ્વભાવ કે જેમાં ઉત્પાદ કે વ્યય થતો નથી તે. આ ત્રણ જેનામાં ન હોય તે અસત્ છે, તે આ જગતમાં વિદ્યમાન હોઈ ન શકે. 'સત્'વસ્તુમાં ઉત્પાદ આદિ ત્રણે અવશ્ય હોય છે. દરેક વસ્તુ પ્રતિસમય અવસ્થારૂપે ઉત્પન્ન થાય છે અને નાશ પામે છે તથા દ્રવ્યરૂપે સ્થિર પણ રહે છે. પ્રત્યેક વસ્તુમાં નવી અવસ્થા ઉત્પન્ન થાય છે અને ઉત્પન્ન થયેલી અવસ્થાનો નાશ થાય છે, છતાં દ્રવ્ય એવું ને એવું ત્રિકાળી ધ્રુવ રહે છે. આવી સમય સમયની બદલાતી અવસ્થાઓ તે દ્રવ્યની પોતાની જ શક્તિથી થાય છે, જે સર્વ દ્રવ્યોનું ત્રિકાળ સ્વાધીનપણું દર્શાવે છે.

આમ, વસ્તુમાં બે ભાવ છે - (૧) ત્રિકાળી ભાવ (૨) વર્તમાન બદલાતો અવસ્થારૂપ ભાવ. દ્રવ્યનો સ્વભાવ ગુણ-પર્યાયરૂપ છે. દ્રવ્યના પૂરા ભાગમાં અને તેની બધી હાલતમાં જે રહે, દ્રવ્યથી કદી પૃથક્ ન થાય, નિરંતર દ્રવ્યની સાથે રહે તે ગુણ છે અને ગુણના જ વિશેષ કાર્યને, અવસ્થાને પર્યાય કહે છે. ગુણ-પર્યાયનો જ્યાં નિરંતર વાસ છે એવી વસ્તુ નિત્ય પરિણમનશીલ છે. સર્વ દ્રવ્યોની પર્યાય પ્રત્યેક સમયે, અંતર પડ્યા વિના નિરંતર બદલાતી રહે છે. પરંતુ આ બદલવા સાથે દ્રવ્યનું કાયમપણું પણ છે. દરેક વસ્તુનું સ્વરૂપ 'ટકીને બદલવું' (permanency with a change) છે. જેમ સોનું તે તત્ત્વ છે. તેની પીળાશ, ચીકાશ અને વજન તે તેના ગુણ છે, જે કાયમ રહે છે; અને તેનાં કુંડલ, કડાં, વીંટી થાય તે તેની અવસ્થા - પર્યાય છે જે અનિત્ય

છે. તેમ દ્રવ્ય ગુણની અપેક્ષાએ સ્થિર, ત્રિકાળી, નિત્ય છે અને પ્રતિસમય ઊપજતી અને વ્યય પામતી પર્યાયની અપેક્ષાએ અનિત્ય છે. તેથી સિદ્ધ થાય છે કે દ્રવ્ય કદી નાશ પામતું નથી, માત્ર તેની અવસ્થાનો નાશ થાય છે. જે સત્ છે તેનો કદી નાશ થતો નથી. શ્રીમદ્ લખે છે –

'સત્તાસ્વરૂપે સર્વ પદાર્થ એકત્વવાળા છે. તે સત્તા અનંત પ્રકારના સ્વભાવ-વાળી છે; અનંત ગુણ અને પર્ચાચાત્મક છે. ઉત્પાદવ્યયદ્યુવત્વવાળી સામાન્ય વિશેષાત્મક છે.

પોતાના સદ્ભાવ પર્ચાયને દ્રવે છે, તે તે ભાવે પરિણમે છે તે માટે દ્રવ્ય ક્હીએ છીએ, જે પોતાની સત્તાથી અનન્ય છે.

દ્રવ્યનું લક્ષણ સત્ છે, જે ઉત્પાદવ્યયદ્યુવતાસહિત છે; ગુણ પર્યાયના આશ્રયરૂપ છે, એમ સર્વજ્ઞદેવ કહે છે.

દ્રવ્યની ઉત્પત્તિ અને વિનાશ થતો નથી; તેનો 'અસ્તિ' સ્વભાવ જ છે. ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રુવત્વ પર્યાયને લઈને છે.

પર્યાચથી રહિત દ્રવ્ય ન હોય, દ્રવ્ય વિના પર્યાય ન હોય, બન્ને અનન્યભાવથી છે એમ મહામુનિઓ કહે છે.

દ્રવ્ય વિના ગુણ ન હોય, અને ગુણ વિના દ્રવ્ય ન હોય; બક્ષેનો – દ્રવ્ય અને ગુણનો અભિન્ન ભાવ તેથી છે.'^૧

(૨) આત્મા 'ચૈતન્યમય' છે.

દરેક દ્રવ્યમાં અનેક ગુણો રહ્યા છે. દ્રવ્યમાં રહેલા ગુણો બે પ્રકારના છે - સાધારણ અને અસાધારણ. જે ગુણો પ્રત્યેક દ્રવ્યમાં હોય તે સાધારણ ગુણો કહેવાય છે. જે ગુણો અમુક જ દ્રવ્યમાં હોય, અન્ય દ્રવ્યમાં ન હોય; તે ગુણો જે દ્રવ્યના હોય તે દ્રવ્યના તે અસાધારણ ગુણો કહેવાય છે. દરેક દ્રવ્ય તેના અસાધારણ ગુણથી ઓળખાય છે. અસાધારણ ગુણ તે દ્રવ્યનું લક્ષણ કહેવાય છે. આત્મદ્રવ્યમાં એક વિશિષ્ટ અને અસાધારણ ગુણ છે, જેના વડે આત્મા અન્ય સર્વ પરદ્રવ્યોથી જુદો પડી જાય છે. આ ગુણ પ્રસ્તુત ગાથામાં 'ચૈતન્થમથ' શબ્દથી શ્રીમદે દર્શાવ્યો છે. આત્મા અવિનાશી અસ્તિત્વભૂત વસ્તુ છે તે 'સત્' શબ્દ દારા સમજાવ્યું અને આ ત્રિકાળી વસ્તુ કેવી છે તે આ 'ચૈતન્થમથ' શબ્દ દારા સમજાવ્યું એ. આત્મા ચૈતન્યતાના લક્ષણે લક્ષિત છે.

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૫૮૭ (આંક-૭૬૬, ૮-૧૩, આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવરચિત 'પંચાસ્તિકાય'નો અનુવાદ)

આત્મસ્વરૂપની યથાર્થ ઓળખાણ તેના જ્ઞાન ગુણ દ્વારા થઈ શકે છે. આ ગુણ આત્મા સિવાય અન્ય દ્રવ્યમાં નથી. બાકીનાં પાંચ અજીવદ્રવ્ય સત્ છે, પણ ચૈતન્યમય નથી. અજીવદ્રવ્ય જડત્વ સ્વભાવથી પરિપૂર્ણ ભરેલું છે અને ચૈતન્યત્વથી નિતાંત શૂન્ય છે. આત્મદ્રવ્ય ચૈતન્યત્વથી પરિપૂર્ણ ભરેલું છે અને જડત્વથી નિતાંત શૂન્ય છે. આત્મા ચિતિશક્તિવાળો છે, માટે જડ નથી. ચિતિશક્તિ એટલે ચૈતન્યશક્તિ. ચિતિશક્તિ સ્વયં ચેતનરૂપ પરિણમે છે, ક્યારે પણ જડ ભાવે પરિણમતી નથી.

યૈતન્ય શબ્દ 'चित्' ધાતુ ઉપરથી નિર્માણ થયેલ છે. 'ચિત્' એટલે જાણવું અને એના ઉપરથી ચેતના, ચેતન, ચૈતન્યતા આદિ શબ્દો બનેલા છે. આત્મા ચૈતન્યમય - જ્ઞાનમય વસ્તુ છે. તે ચૈતન્યમૂર્તિ છે, અર્થાત્ જ્ઞાન ગુણથી પરિપૂર્ણ ભરેલ છે. મીઠાના ગાંગડામાં જેમ સર્વ પ્રદેશે કેવળ લવણરસનો જ અનુભવ થાય છે, તેમ આત્માના સર્વ પ્રદેશે કેવળ ચૈતન્યરસનો જ અનુભવ થાય છે. જેમ સુવર્ણ ધાતુ સર્વ પ્રદેશે સુવર્ણ, સુવર્ણ અને સુવર્ણમય જ છે, તેમ અરૂપી એવું આત્મદ્રવ્ય સર્વ પ્રદેશે ચૈતન્ય, ચૈતન્ય અને ચૈતન્યમય જ છે. અહીં આત્માને 'ચૈતન્યવાળો' ન કહેતાં 'ચૈતન્યમય' કહીને ગુણ-ગુણીના ભેદથી પર એવા અખંડ આત્માની વાત કરી છે. ગુણ અને ગુણી એક જ છે, જુદી જુદી વસ્તુ નથી. ગુણીથી ગુણ જુદો પડી શકતો નથી. જેમ સાકરનો ગાંગડો છે તે 'ગુણી' છે અને મીઠાશ છે તે ગુણી છે. 'ગુણી' એવી સાકર અને 'ગુણ'રૂપ મીઠાશ તે બન્ને સાથે જ રહે છે, મીઠાશ કંઈ સાકરથી અલગ પડતી નથી.

ચૈતન્યમય એટલે જગતનાં સમસ્ત દ્રવ્યો અને તેના ભાવોને જે સદા પ્રકાશે છે એવો જેનો સ્વભાવ છે તે. જ્ઞાન ગુણના વર્તમાન પરિણમન(પર્યાય)માં હીનતા કે અધિકતા હોઈ શકે, અર્થાત્ જ્ઞાન ગુણ જેટલો ખૂલ્યો હોય તેટલું જ્ઞાન થાય, અધિક ખૂલ્યો હોય તો અધું જ્ઞાન થાય; તેમ છતાં ત્રિકાળી દ્રવ્યદળમાં જે જ્ઞાન ગુણ રહેલો છે તે પરિપૂર્ણ છે, તેમાં વધ-ઘટ થતી નથી. તે અનાદિ કાળથી જેવો છે તેવો ને તેવો જ રહ્યો છે, તેમાં કાંઈ વધ્યું નથી કે ઘટયું નથી. નવો કોઈ અંશ તેમાં પ્રવેશ્યો નથી કે કોઈ અંશ છૂટો પડ્યો નથી. આત્મા આવા જ્ઞાન ગુણથી ભરેલો છે.

१- शुओ : आयार्धश्री अमृतयंद्रदेवहृत, 'सभयसारडवश', डवश १४ 'अखंडितमनाकुलं ज्वलदनंतमंतर्बहि-र्महः परमस्तु नः सहजमुद्धिलासं सदा । चिदुच्छलनिर्भरं सकलकालमालंबते यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम् ।।

જેની એક સમયની અવસ્થામાં અનંત પદાર્થોને જાણવાની તાકાત છે એવા જ્ઞાન ગુણના અપાર સામર્થ્યનું શું કહેવું? ચારે બાજુ અમાપ, જેનો કોઈ અંત નથી એવું અનંત બેહદ આકાશ, તેને પણ એક સમયમાં જે પ્રત્યક્ષ કરી લે છે અને એના કરતાં પણ અનંતગણું જાણવાનું જેનું સામર્થ્ય છે એવી જ્ઞાનની શક્તિ છે, તો એનો મહિમા કેટલો? જેના એક અંશમાં આટલી શક્તિ છે એવા અનંત અંશના સમૂહરૂપ જ્ઞાન ગુણ છે. આત્મા આવા જ્ઞાનસામર્થ્યથી ત્રિકાળ ભરપૂર છે. આમ, શ્રીમદે આત્માને 'ચૈતન્થમય' કહી આત્મા સ્વપરપ્રકાશક છે, જ્ઞાનસ્વરૂપ છે, જ્ઞાયકસ્વભાવી છે એમ દઢ કરાવ્યું છે. આત્માના ચૈતન્ય લક્ષણનું વિવરણ કરતાં શ્રીમદ્ લખે છે –

'સ્પષ્ટ પ્રકાશપણું, અનંત અનંત કોટી તેજસ્વી દીપક, મિણ, ચંદ્ર, સૂર્યાદિની કાંતિ જેના પ્રકાશ વિના પ્રગટવા સમર્થ નથી, અર્થાત્ તે સર્વ પોતે પોતાને જણાવા અથવા જાણવા ચોગ્ય નથી. જે પદાર્થના પ્રકાશને વિષે ચૈતન્થપણાથી તે પદાર્થો જાણ્યા જાય છે, તે પદાર્થો પ્રકાશ પામે છે, સ્પષ્ટ ભાસે છે, તે પદાર્થ જે કોઈ છે તે જીવ છે. અર્થાત્ તે લક્ષણ પ્રગટપણે સ્પષ્ટ પ્રકાશમાન, અચળ એવું નિરાબાધ પ્રકાશ્યમાન ચૈતન્ય, તે જીવનું તે જીવપ્રત્યે ઉપયોગ વાળતાં પ્રગટ દેખાય છે.'

(૩) આત્મા 'સર્વાભાસ રહિત' છે.

વસ્તુસ્વરૂપનું યથાર્થ ઓળખાણ થવા માટે તેને અસ્તિ-નાસ્તિરૂપે સમજાવવાની પૂર્વાચાર્યોની શૈલીને અનુસરતાં શ્રીમદે અહીં બન્ને અપેક્ષાએ આત્મસ્વરૂપની ઓળખાણ કરાવી છે. આત્મા 'ચેતન્યમચ' છે એમ અસ્તિથી નિરૂપણ કર્યા પછી હવે તેને 'સર્વાભાસ ટિલ્ત' કહી, તેનું નાસ્તિરૂપ કથન કર્યું છે. આ વિશ્વના સર્વ પદાર્થો અનેકાંતયુક્ત છે, વિભિન્ન ગુણધર્મો સહિત છે. જેમ સ્વની અપેક્ષાએ ભાવ (સદ્ભાવ) તે પદાર્થનું સ્વરૂપ છે, તેમ પરની અપેક્ષાએ અભાવ તે પણ પદાર્થનો ધર્મ છે. દરેક દ્રવ્યમાં સ્વની અસ્તિ છે, પરની નાસ્તિ છે. બન્ને રીતે પદાર્થનું સ્વરૂપ સમજવા યોગ્ય છે. માત્ર ભાવ જ વસ્તુનો ધર્મ નથી, અભાવ પણ તેનો ધર્મ હોવાથી તેને માન્યા સિવાય વસ્તુવ્યવસ્થાનું યથાર્થ જ્ઞાન થતું નથી. તેથી અભાવનું સ્વરૂપ પણ સમજવા યોગ્ય છે.

અસ્તિથી નિરૂપણ કરતાં શ્રીમદે આત્મા ચૈતન્યમય છે - જ્ઞાનમય છે એમ કહ્યું. આત્મા જ્ઞાનસ્વરૂપ છે. હવે નાસ્તિથી નિરૂપણ કરતાં કહે છે કે શરીરાદિ અથવા રાગાદિ આત્માનું સ્વરૂપ નથી. આત્મા પરરૂપે નથી. જડ અને રાગાદિની આત્મામાં નાસ્તિ છે. આત્મસ્વરૂપ તેનાથી તદ્દન જુદું છે. તેનો કોઈ ગુણ જડરૂપે કે રાગરૂપે નથી. નાસ્તિથી સમજણ થતાં સ્વ-પરના ભિન્નપણાનો ખ્યાલ રહે છે. આત્મામાં પરની નાસ્તિ સમજાતાં શાંતિ રહે છે. શરીર, પૈસા વગેરે ચાલ્યા જવાથી આત્મામાંથી કાંઈ ચાલ્યું જતું નથી,

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૬૮-૩૬૯ (પત્રાંક-૪૩૮)

કેમ કે આત્મામાં શરીર, પૈસા વગેરેની નાસ્તિ છે. આત્મા તો જ્ઞાનનો પુંજ છે, અર્થાત્ જેટલું જ્ઞાન તેટલો આત્મા છે. જેમ સાકર કેટલી તો કે જેટલું ગળપણ છે તેટલી, કચરો કે મેલ તે સાકર નથી; તેમ આત્મા કેટલો તો કે જેટલું જ્ઞાન તેટલો આત્મા છે, જડનો સંયોગ કે રાગાદિ મેલ તે આત્મા નથી. આત્માને સંયોગરૂપ કે રાગાદિરૂપ માનવો તે માત્ર આભાસ છે.

આભાસ એટલે જે યથાર્થ ન હોય તે. જ્યાં આભાસ છે ત્યાં યથાર્થતા નથી હોતી. રણમાં દેખાતાં ઝાંઝવાનાં જળ તે યથાર્થ નથી પણ આભાસ છે, તેથી તે કદી તૃષા છિપાવી શકે નહીં; તેમ આત્મા સર્વ દેહાદિ સંયોગ અને વિભાવના આભાસથી રહિત છે. કર્મકૃત અવસ્થા અને કર્મકૃત ભાવો તે આત્માનું યથાર્થ સ્વરૂપ નથી, આભાસ છે. તેને જો આત્માનું સ્વરૂપ માની લેવામાં આવે તો આત્માનું સત્ય સ્વરૂપ લક્ષગત થાય નહીં અને તેથી મોક્ષપ્રાપ્તિ સંભવે નહીં. આ વિષે સ્ફ્ટિકનું પ્રસિદ્ધ દેષ્ટાંત આપતાં શ્રીમદે લખ્યું છે –

'શુદ્ધ એવા સ્ફટિકને વિષે અન્ય રંગનું પ્રતિભાસવું થવાથી તેનું જેમ મૂળ સ્વરૂપ લક્ષગત થતું નથી, તેમ શુદ્ધ નિર્મળ એવું આ ચેતન અન્ય સંયોગના તાદાત્મ્યવત્ અધ્યાસે પોતાના સ્વરૂપનો લક્ષ પામતું નથી.'^૧

સ્ફટિક રત્નનો સ્વભાવ નિર્મળ હોવા છતાં જેવો સંયોગ હોય તેવો તેમાં આભાસ થાય છે. લાલ ફૂલનો સંયોગ થાય તો તે લાલ જણાય છે, પણ તે ખરેખર લાલ થઈ જતું નથી. લાલપણું તે માત્ર આભાસ છે, કારણ કે તેનો સ્ફટિકની અંદર પ્રવેશ થતો નથી, માત્ર બહારથી તેવો આભાસ થાય છે, અંતરનિર્મળતા જેવી હતી તેવી જ રહે છે. આત્મા પણ સ્ફટિક મણિ સમાન નિર્મળ અને ઉજ્જવળ છે. નોકર્મ, દ્રવ્યકર્મ અને ભાવકર્મરૂપ ઉપાધિના કારણે આત્મા તેવો ભાસે છે, પણ તે તેનું સાચું સ્વરૂપ નથી. દેહાદિ સંયોગ અને રાગાદિ વિભાવનો આત્મસ્વભાવમાં પ્રવેશ થતો નથી, માત્ર બહારથી એવો ભાસ થાય છે. આત્માની દર્શન-જ્ઞાનની અંતરશક્તિ જેવી ને તેવી જ

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૮૯ (હાથનોંધ-૧, ૧)

२- જુઓ : (૧) આચાર્યશ્રી યોગીન્દુદેવકૃત, 'પરમાત્મપ્રકાશ', અધિકાર ૨, ગાથા ૧૭૭ 'जेम सहाविं णिम्मलउ कलिहउ तेम सहाउ । भंतिए मइलुम मण्णि जिय मइलउ देक्खवि काउ ।।'

⁽૨) ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીરચિત, 'સવાસો ગાથાનું સ્તવન', ઢાળ ૨, કડી ૧૭,૧૮ 'જિમ નિરમલતા રે રતનસ્ફટિક્તણી, તિમ એ જીવ સ્વભાવ; તે જિન વીરે રે ધર્મ પ્રકાશીઓ, પ્રભલ કષાય-અભાવ. જિમ તે રાતે રે ફૂલે રાતકું, શ્યામ ફૂલથી રે શ્યામ; પાપ પુણ્યથી રે તિમ જિંગ જીવને, રાગઢેષ-પરિણામ.'

રહે છે. ફૂલના કારણે સ્ફટિકની નિર્મળતા ભલે જણાય નહીં, પણ તે પોતાની નિર્મળતાને ખોઈ બેસતું નથી. તે લાલ ફૂલના સંયોગે લાલ જણાય છે ત્યારે પણ તેની નિર્મળતા નષ્ટ થઈ જતી નથી. સામર્થ્ય અપેક્ષાએ તે નિર્મળ જ રહે છે. લાલ જણાય ત્યારે પણ સામર્થ્યરૂપ નિર્મળતા મોજુદ છે. તેવી રીતે પરદ્રવ્યના સંયોગ અને પરભાવ-રૂપ પરિણમનથી આત્માની નિર્મળતા ભલે અવરાય, પણ આત્મા સ્વભાવે નિર્મળ અને શુદ્ધ જ રહે છે. આત્મા શુભ ભાવરૂપ કે અશુભ ભાવરૂપ થાય છે ત્યારે પણ તેની શુદ્ધતા નષ્ટ થઈ જતી નથી. સામર્થ્ય અપેક્ષાએ તે શુદ્ધ જ રહે છે. શુભાશુભ દશા વખતે પણ સામર્થ્ય3પ શહતા મોજુદ છે. આત્માને અશુદ્ધ ભાવ થવા છતાં સ્વભાવમાં અશદ્ધતા નથી આવતી. આત્માનું સ્વરૂપ પોતાનો સ્વભાવ છોડીને વિકારરૂપે થાય એવું ક્યારે પણ બનતું નથી. નિર્મળ સ્ફટિકમાં લાલ ફૂલની ઝાંખી દેખાય છે તે ખરેખર તો તેની સ્વચ્છતાનું પરિણમન છે. તેમ નિર્મળ, ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માના જ્ઞાનમાં પરપદાર્થો કે પરભાવો જણાય છે, ત્યાં ખરેખર જ્ઞાનચેતના તે રૂપે થઈ નથી જતી, જ્ઞાનચેતના તો તેનાથી જુદી, નિર્મળરૂપ પરિણમે છે. સ્ફટિક મણિને લાલ થયેલો જોઈને બાળક રડવા માંડે છે કે 'અરેરે! મારો સ્કટિક મણિ સર્વથા મેલો થઈ ગયો', પરંતુ ઝવેરી લાલાશ સમયે જ તેમાં મોજૂદ રહેલી નિર્મળતાને જાણતો હોવાથી તે નિર્ભય રહે છે; તેવી રીતે દેહાદિ સંયોગ અને રાગાદિ વિભાવને જોઈને અજ્ઞાની આત્માને સર્વથા મેલો થઈ ગયેલો માનીને દુઃખી દુઃખી થઈ જાય છે, પરંતુ જ્ઞાની શુભાશુભ ભાવ સમયે જ મોજૂદ રહેલી શુદ્ધતાને જાણતા હોવાથી તેઓ નિર્ભય રહે છે. સ્વભાવની શુદ્ધતાના ભાન વિના શુદ્ધ પરિણતિ પ્રગટતી નથી. સ્ફટિક મણિ સમાન નિર્મળ આત્મસ્વભાવ ઉપર દુષ્ટિ કરવાથી પર્યાયમાં પણ નિર્મળતા પ્રગટે છે. બાહ્ય ઉપાધિથી રહિત, અર્થાત્ નામ કર્મના ઉદયથી મળેલ મનષ્યદેહાદિ તથા ચારિત્રમોહનીય કર્મના ઉદયમાં થતાં રાગાદિ પરિણમનથી પોતાનું સ્વરૂપ ભિન્ન છે એવું ભાન થવાથી સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત થાય છે અને એ જ ભાનમાં સ્થિર રહેવાથી મોક્ષપ્રાપ્તિ થાય છે.

ઉપયોગ લક્ષણ વડે લિક્ષિત તથા શરીરાદિ સંયોગો અને રાગાદિ વિકારોથી ભિન્ન એવા ચૈતન્યસ્વરૂપમાં જ કેલી કરતાં જીવ મહા આનંદિત થાય છે. તેથી પ્રથમ શરીરથી અને રાગથી ભિન્ન એવા આત્માને શોધવાનો છે. અત્યાર સુધી ઉપયોગસ્વરૂપને ભૂલીને દેહરૂપે, રાગરૂપે જ જીવે પોતાને માની પોતાની હિંસા કરી છે, તેથી ચાર ગતિમાં ભટકી ભટકીને તે દુઃખી થયો છે. તે શરીરથી અને રાગથી ભિન્ન એવા ચૈતન્યમય આત્મતત્ત્વને જાણતો નથી અને દેહરૂપે, રાગરૂપે જ પોતાને અનુભવે છે. તેણે દેહ તથા રાગથી અત્યંત ભિન્ન આત્મસ્વરૂપની ઓળખાણ અવશ્ય કરવા યોગ્ય છે. જે નિત્ય ઉપયોગસ્વરૂપ છે તે જીવ છે. ઉપયોગ એ જ આત્માનું લક્ષણ છે. ઉપયોગ સિવાય બીજા બધા સંયોગલક્ષણરૂપ ભાવો સ્વભાવની બહાર છે. તે સ્વભાવલક્ષણ નથી. રાગ

જો આત્માનું સ્વલક્ષણ હોય તો તે રાગના નાશથી આત્મા પણ નાશ પામે, પણ રાગનો નાશ થવા છતાં સિદ્ધ જીવો સાદિ-અનંત કાળ સમાધિસુખ ભોગવે છે, માટે રાગ આત્માનું લક્ષણ નથી. ઉપયોગ એ આત્માનું લક્ષણ છે, કારણ કે તે આત્માથી કદી જુદું પડતું નથી. ઉપયોગના અભાવમાં આત્માનો અભાવ હોય છે, અર્થાત્ આત્મા ઉપયોગ લક્ષણ વગરનો કદી હોતો નથી.

આત્માને પોતાના ઉપયોગસ્વરૂપમાં સદા તન્મયપશું છે. શરીરાદિમાં કે રાગાદિમાં તેને તન્મયપણું નથી. તે ઉપયોગ કોઈથી રચાયેલો નથી, પોતાની હયાતી ટકાવવા તે કોઈ ઇન્દ્રિયની કે રાગની અપેક્ષા રાખતો નથી. આત્માનું સ્વરૂપ ઇન્દ્રિયો કે રાગાદિ વગર સ્વયંસિદ્ધ છે. પોતાનું ઉપયોગપણું છોડીને આત્મા કદી પુદ્દગલરૂપ થઈ જતો નથી. જેમ અંધકારને અને પ્રકાશને એકપશું કદી નથી, પણ સદા જદાપણું જ છે: તેમ રાગાદિ ભાવોને અને ચેતનપ્રકાશરૂપ ઉપયોગને કદી એકપણું નથી, પણ સદા જુદાપણું જ છે. આત્મા સદા ઉપયોગસ્વરૂપ જ રહ્યો છે, તેનું ઉપયોગસ્વરૂપ ક્યારે પણ હણાયું જ નથી. આત્મા અને અનાત્મા બન્ને જુદા હતા, છે અને રહેશે. એ કદાપિ એકાકાર થયા નથી, પણ ભાંતિના કારણે શ્રદ્ધાનમાં એકરૂપ ભાસે છે. મિથ્યાત્વના કારણે 'હં દેહધારી છું'ને બદલે 'હું દેહરૂપ છું' એમ ભાસવાથી તેનો દેહાધ્યાસ પુષ્ટ થયો છે. 'હું દેહને જાણનારમાત્ર છું' એમ શ્રદ્ધવાને બદલે 'હું દેહ છું' એવું માની બેઠો હોવાથી શ્રદ્ધાન વિપરીત થતાં આત્મા-અનાત્મા એકાકાર થઈ ગયા છે. વાસ્તવમાં બન્ને જુદા છે. જીવ જુદો છે અને દેહ જુદો છે. તે પોતાને દેહરૂપે માને છે, પણ તે એક, શાશ્વત, જ્ઞાન-દર્શન લક્ષણયુક્ત આત્મા છે. જીવે સત્સંગના યોગે આવા સ્વતત્ત્વનું ભાન કરવા યોગ્ય છે. જો તે આત્મા-અનાત્માનું ભિન્નપણું જાણે તો જ તે શુદ્ધ ઉપયોગરૂપ ધર્મને સાધી શકે. નોકર્મ, દ્રવ્યકર્મ અને ભાવકર્મથી વિમુક્ત ઉપયોગસ્વરૂપનો અનભવ. શુદ્ધોપયોગ તે જ ધર્મ છે. ઉપયોગ લક્ષણ વડે પોતાને સમસ્ત જડથી અને રાગથી જુદો જાણી, ઉપયોગસ્વરૂપે પોતાને અનુભવમાં લેતાં અત્યંત આનંદ પ્રગટે છે. રાગાદિ ભાવો ઉપયોગથી વિપરીત છે. તેમાં આનંદ નથી, પણ ભાવમરણ છે. ચેતનાનું રાગરહિત નિર્મળ પરિશમન તે જ સાચો ધર્મ છે, કેમ કે તેમાં પોતાનો ઘાત થતો નથી, પણ આનંદમય સ્વભાવની ઉપલબ્ધિ થાય છે. ઉપયોગની શુદ્ધ અવસ્થા હોય ત્યારે તેની સાથે શાંતિ, આનંદ વગેરે સર્વ ગુણોથી આત્મા શોભી ઊઠે છે.

આમ, શ્રીમદે સૂત્રાત્મક શૈલીથી આ ગાથામાં બતાવ્યું કે આત્માનું સ્વરૂપ નોકર્મ, દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મ આદિના આભાસથી રહિત છે. જેમ તેલનાં ટીપાં ગમે તેટલો વખત પાણી સાથે રહે તોપણ પાણીના દળમાં પ્રવેશતાં નથી, ઉપર ને ઉપર જ રહે છે; તેમ પરદ્રવ્ય અને પરભાવ અનંત કાળે પણ આત્મસ્વભાવમાં પ્રવેશી શકતાં નથી, ધ્રુવતળમાં પ્રવેશી શકતાં નથી. આવા પૂર્ણ આનંદ અને પૂર્ણ જ્ઞાનસ્વરૂપ નિજ ધ્રુવ આત્મા તરફ દેષ્ટિ લક્ષગત થતાં પર્યાયદેષ્ટિ ટળે છે. નિજ શુદ્ધ સ્વભાવનું લક્ષ કરવાથી અનાદિની ભ્રાંતિ મટી આત્મજ્ઞાન થાય છે.

ચલચિત્રના પડદા ઉપર જેમ જુદાં જુદાં ચિત્રો એક પછી એક ક્ષણભર માટે ઝળકી જાય છે, પરંતુ એની કોઈ અસર પડદાને થતી નથી, ચિત્રો પલટાતાં જાય પણ પડદો તો જેવો હતો તેવો જ રહે છે; તેમ જીવની મન-વાણી-કાયાની પર્યાયો કાળના પ્રવાહ સાથે દેખાઈને વિલીન થઈ જાય છે, જ્યારે એને નીરખનાર ચેતના, પડદાની જેમ એ પ્રવાહથી અસ્પુષ્ટ અને અદશ્ય રહે છે. એ જ જીવનું અસલી સ્વરૂપ છે. પરંત જીવ એ ભૂલી ગયો છે અને શરીરાદિ પરસંયોગ સાથે તેણે તાદાત્મ્ય સ્થાપી દીધું છે. જો ચલચિત્ર જોનાર ભૂલી જાય કે પડદો અસ્પૃષ્ટ છે અને ચલચિત્રનાં દશ્યો વાસ્તવિક નથી, તો તે ચલચિત્રનાં દશ્યો અને પ્રસંગો સાથે તન્મય થઈને રાગ-દ્વેષની ચગડોળે ચડે છે; તેમ પરસંયોગોની ક્ષણભંગર રમતમાં તન્મય થઈ જીવ ભલી જાય છે કે 'આ પરસંયોગ શાશ્વત સત્ય નથી, જ્યારે હું તો શાશ્વત તત્ત્વ છું, જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા છું'; અને પરિજ્ઞામે તે હર્ષ-શોકના હિલોળે ચડીને દુઃખોની પરંપરામાં ગૂંચવાઈ જાય છે. સુખની પ્રાપ્તિ કરવી હોય તો જીવે જે સ્વ નથી તેની સાથેનું તાદાત્મ્ય છોડવું પડશે. શરીર સાથે, વિચાર સાથે, ભાવ સાથે, જેની જેની સાથે તાદાત્મ્ય હોય તે બધા સાથેના તાદાત્મ્યના સંબંધો તોડી નાખવા પડશે. અનાત્મ સાથેનું તમામ તાદાત્મ્ય છોડવાનો અભ્યાસ અવિરતપણે કરવો પડશે. અનાત્મ સાથેના અતાદાત્મ્યમાંથી જે પ્રગટશે તે જ આત્મા છે. પરિવર્તનશીલને છોડીને અપરિવર્તનશીલ તરફ જવું એ જ સાધનાની દિશા છે. જે કાંઈ પરિવર્તનશીલ છે તે 'હું' નથી એમ જાણવું. જ્ઞાનીપુરુષોના આ બોધને કેન્દ્રીભૃત કરવો કે 'પલટાતા દશ્યપર્યાય નહીં પણ એ પરિવર્તનશીલ પર્યાયધારાને જોનાર સ્થિર અદેષ્ટ તત્ત્વ એ જ હું છું' - એમ જ્ઞાનસ્વરૂપ શાશ્વત અસ્તિત્વ સાથે તાદાત્મ્ય સ્થાપવું ઘટે છે. કાળ સાથે સંબંધ ધરાવનાર આભાસિક પર્યાયને મહત્ત્વ ન આપવું જોઈએ. શરીર અને વિચાર બન્ને માટે એવું ભાન રહે કે 'તે સર્વ મારી સત્તા નથી.' સવારથી સાંજ, સાંજથી સવાર, આ વાત ઘોલન કર્યા કરવાની છે. શરીરને જ્યારે જાશો ત્યારે એમ માનવું જોઈએ કે 'આ શરીર તે હું નથી.' રાગને જ્યારે જાશો ત્યારે જાણવું જોઈએ કે 'આ રાગ તે હં નથી.'

સમ્યક્ સ્મૃતિની આ સાધનાથી ક્રમશઃ તાદાત્મ્યની મોહનિદ્રા તૂટતી જાય છે અને જાગૃતિ આવતી જાય છે. પોતાની કર્મકૃત અવસ્થાઓ સાથેનું તાદાત્મ્ય તૂટતાં અને સઘળાં પરિવર્તનોને સાક્ષીભાવે જોવાનું સામર્થ્ય કેળવવાથી કર્મકૃત અવસ્થાઓથી પર પોતાની તાત્ત્વિક સત્તાની જાગૃતિ સતત રહેતાં શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય છે. કોઈ ઘોર નિદ્રામાં સૂતું હોય અને તેને કૃતનિશ્ચયી થઈ ઉઠાડવામાં આવે તો જેવી રીતે તેની ઊંઘ ઊડી જાય છે, તેવી જ રીતે જીવે પોતાની ઊંઘ પણ કૃતનિશ્ચયી થઈને ઉડાડવાની છે. નિરંતર આ જ અભ્યાસ થાય કે 'હું પર અને પર્યાયથી ભિન્ન એવો શુદ્ધ આત્મા છું', તો એક દિવસ અવશ્ય મોહનિદ્રા ટળશે. જાગીને જોતાં બધું જુદું અને પારકું લાગશે. કર્મકૃત વ્યક્તિત્વ અને કર્મકૃત ભાવો પૃથક્ અનુભવાશે. પર અને પર્યાયથી આવું જુદાપણાનું જ્ઞાન પ્રગટવું અને તે જ્ઞાનમાં ટકી રહેવું તે મોક્ષમાર્ગ છે.

બહુ પુશ્યના પુંજથી મનુષ્યજન્મ મળ્યો છે, તો સર્વ સિદ્ધિનું મૂળ કારણ એવો જે તત્ત્વનિર્ણય છે તે અવશ્ય કરી લેવા યોગ્ય છે. સમ્યગ્દર્શન મોક્ષમાર્ગનું પ્રથમ પગિથયું છે અને સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ કરવાનો એકમાત્ર ઉપાય તત્ત્વનિર્ણય જ છે. તત્ત્વનિર્ણયમાં ઉપયોગ લગાવવાથી સમ્યક્ત્વાદિરૂપ મોક્ષના ઉપાયનો પુરુષાર્થ ઊપડે છે. તત્ત્વનિર્ણય કરીને જ જીવ સમ્યક્ત્વનો અધિકારી થાય છે. મુમુક્ષુ જીવે સૌ પ્રથમ તત્ત્વનિર્ણયની દિશામાં પ્રયત્ન કરવા યોગ્ય છે. તેણે તત્ત્વજ્ઞાનનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ. તેણે હેય-ઉપાદેય તત્ત્વોની પરીક્ષા કરવી ઘટે છે, ત્યાગવા યોગ્ય એવાં મિથ્યાત્વ અને રાગાદિ તથા ગ્રહણ કરવા યોગ્ય સમ્યગ્દર્શનાદિનાં સ્વરૂપ જેમ છે તેમ પિછાણવાં ઘટે છે. જે જાણવાથી મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવૃત્તિ થાય તે અવશ્ય જાણવા ઘટે છે. વૈરાગ્યપૂર્વક આત્મરુચિ સહિત સ્વતત્ત્વનું ચિંતન આદિ કરવા યોગ્ય છે. સ્વતત્ત્વને ઓળખતાં તે પ્રત્યે પ્રેમ જાગે છે, રસ આવે છે, મહિમા જાગે છે, ઝંખના લાગે છે અને તે તરફ પુરુષાર્થ વળે છે. તેથી સૌથી પ્રથમ જ્ઞાનીપુરુષોનાં વચનોના આધારે જ્ઞાનસ્વભાવી આત્માનો નિર્ણય કરવો જોઈએ. જ્યાં સુધી પોતાની સત્તાનો નિર્ણય ન થાય ત્યાં સુધી ધર્મ કરવાનો પ્રયત્ન એ મુષ્ટિથી અંધકારનો નાશ કરવાના પ્રયત્ન જેવી મૂર્ખતા છે.

આત્માનું યથાર્થ જ્ઞાન મેળવવા માટે મુમુક્ષુ જીવ સદ્ગુરુનો યોગ સાધે છે. પોતાનું કલ્યાલ સાધવા માટે, જેમલે પોતાનું કલ્યાલ સાધ્યું છે એવા સદ્ગુરુના આશ્રયે તે આત્મસ્વરૂપની ઓળખાલ કરવા માંગે છે. આત્મસ્વરૂપનો નિર્ણય કરવા માટે તે સત્સમાગમ કરે છે. આત્માનો સ્વભાવ કેવો છે? તે કેવી રીતે પ્રગટ થાય? જ્ઞાન-દર્શન- ચારિત્ર આદિ શુદ્ધરૂપે કેવી રીતે પરિલામે? જે અનાદિથી વિભાવપર્યાય થઈ રહી છે તે પલટાઈને સ્વભાવરૂપ પર્યાય કેવી રીતે થાય? વગેરે સમજવા તે જ્ઞાનીનો સમાગમ કરે છે. તે સમજવા પાછળ એક આત્મપ્રાપ્તિનું જ ધ્યેય રાખે છે. સ્વરૂપની રુચિપૂર્વક સત્સમાગમે આત્મસ્વરૂપનું શ્રવલ કરતાં તેને સ્વરૂપનો એવો તો રંગ લાગે છે કે 'અહો! પરિપૂર્લ આત્મવસ્તુ! આ જ ઉત્કૃષ્ટ મહિમાવંત છે!' આમ જાલીને તે પોતાના જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મા તરફ વળે છે, તેનો જ અભ્યાસ કરે છે. ઉપયોગને સૂક્ષ્મ કરીને આત્મદ્રવ્યને પકડવાનો ઉદ્યમ કરે છે.

આત્મદ્રવ્ય સૂક્ષ્મ છે, તેથી ઉપયોગને સૂક્ષ્મ કરવાથી, એટલે કે જ્ઞાનને અંતરમાં વાળવાથી તે પકડાય છે. જ્ઞાનને સૂક્ષ્મ કરી, અંતર્મુખ કરતાં આત્મદ્રવ્ય પકડાય છે. બહિર્મુખ વર્તતું જ્ઞાન સ્યૂળ છે. આત્મસ્વરૂપ અનંત ગુણોથી ભરપૂર હોવા છતાં પણ તે સૂક્ષ્મ છે. એવી નિજજ્ઞાયકવસ્તુને, ઉપયોગને સૂક્ષ્મ કરીને લક્ષમાં લેવામાં આવે તો તે અનુભવમાં આવે. જેમ હીરા-મોતી સાણસાથી પકડી ન શકાય, તેના માટે ખાસ પ્રકારનો ચીપિયો જોઈએ; તેમ આત્મા સૂક્ષ્મ છે, ઉપયોગ સૂક્ષ્મ કરીને લક્ષગત કરે તો તે પકડમાં આવે છે. જે ભવ્ય છૂટવાનો કામી છે, તેને સ્વકાર્ય કરવાની તીવ રૂચિ હોવાથી તેના ઉપયોગમાં સૂક્ષ્મતા આવે છે. પુરુષાર્થ ઉપ્પ થતાં આત્મ-આશ્રયનું બળ વધતું જાય છે. આ રીતે જ્ઞાનસ્વભાવી આત્માનો જે નિર્ણય કરે છે, તેનું પરિણમન જ્ઞાયકસ્વભાવ તરફ ઢળે છે અને તેને અલ્પ કાળમાં આત્મજ્ઞાન થાય છે. 'પરથી જુદો હું સ્વાધીન જ્ઞાનસ્વભાવી આત્મા છું' એમ જેણે નક્કી કર્યું, તે સ્વભાવનો લક્ષ કરી અલ્પ કાળમાં આત્મ-અનુભવ કરે જ છે. તે જ્ઞાનસ્વરૂપને પ્રત્યક્ષપણે વેદે છે. જ્ઞાનસ્વભાવનો બોધ આપનાર સદ્દ્યુરુ તો પવિત્ર જ છે, તેમના અવલંબને જ્ઞાનસ્વભાવનો નિર્ણય કરનાર પણ પવિત્ર થયા વગર રહેતો નથી. નિરંતર અભ્યાસથી તે સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ કરે જ છે.

આમ, આત્માનું જેવું સ્વરૂપ છે તેવું સદ્દગુરુના બોધ અનુસાર યથાર્થ જાણી, અંતર્મુખ થવાથી સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થાય છે. સ્વરૂપની આત્મલક્ષી યથાર્થ વિચારણા કરવાથી પર પ્રત્યેના રસમાં ક્ષતિ આવે છે અને સ્વરૂપરસ ઘૂંટાય છે. કદાચિત્ કશે પણ પરસ્સ તીવ્ર થઈ જાય તોપણ ત્યાં તત્ક્ષણ ક્ષોભ ઉત્પન્ન થઈ આવતાં તે રસ વૃદ્ધિ પામતો નથી અને તેવી સ્થિતિમાં દિશા બદલવાનો અવકાશ પ્રાપ્ત થાય છે. સ્વભાવના નિર્ણયના આધારે જીવ અંતર તરક વળે છે. પર તરકથી પાછો કરીને પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવ તરફ વળે છે. જે સ્વભાવનો નિર્ણય કર્યો છે તે સ્વભાવ તરફ તેનું જ્ઞાન વળે છે. 'હું તો ધુવ જ્ઞાનસ્વભાવ છું' એમ અંતસ્તત્ત્વ ઉપર જોર જતાં જ પર્યાય તે તરફ વળે છે. આત્મા જ્ઞાનસ્વભાવી જ છે. જ્ઞાનસ્વભાવમાં રાગાદિ ન આવે, જ્ઞાન-સ્વભાવમાં ઇન્દ્રિય કે મનનું અવલંબન પણ ન આવે; એટલે જ્યાં 'હું જ્ઞાનસ્વભાવી છું' એમ આત્મતત્ત્વનો નિર્ણય કર્યો ત્યાં જ્ઞાન ઇન્દ્રિયોથી તથા રાગથી પાછું વળીને જ્ઞાનસ્વભાવ તરફ ઝૂકે છે. નિર્ણયની ભૂમિકામાં જો કે હજી વિકલ્પ છે, હજી આત્મા પ્રગટ પ્રસિદ્ધ થયો નથી: અવ્યક્તપણે નિર્ણયમાં આવ્યો છે, પણ સાક્ષાત્ અનુભવમાં આવ્યો નથી. તેને અનભવમાં લેવા માટે નિર્ણય સાથે જે વિકલ્પ હોય છે. તે વિકલ્પમાં ન અટકતાં આગળ વધવાનું છે. જ્ઞાનને વિકલ્પથી ખસેડીને સ્વભાવમાં વાળવાનું છે. ઇન્દ્રિયો કે મન તરફ અટકેલું જ્ઞાન આત્માને પ્રસિદ્ધ કરી શકતું નથી, અનુભવી શકતું નથી; પણ તે પર તરફનો ઝુકાવ છોડીને જ્ઞાનને આત્મસન્મુખ કરવું તે જ આત્માની પ્રસિદ્ધિની રીત છે, એ જ અનુભવનો ઉપાય છે. બધા વિકલ્પોથી પાર થઈને આત્મસ્વભાવ તરફ જ્ઞાનનો ઝુકાવ થવો તે જ સમ્યક્ષ્યશે આત્માને અનુભવવાની રીત છે. જ્ઞાનસ્વભાવ તરફના બળ સહિત આગળ વધીને જ્ઞાનને અંતરમાં વાળતાં વિકલ્પ છૂટી જાય છે અને સ્વસંવેદન થાય છે. આ પ્રકારે સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ માટે પ્રથમ જેમનાથી યથાર્થ ઉપદેશ મળે છે એવા સદ્ગુરુ દ્વારા તત્ત્વની સમજણ પ્રાપ્ત કરી, પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવનો નિશ્ચય કરવામાં પ્રવૃત્ત થવું જોઈએ.

અનાદિથી ચૈતન્યદોરામાં ગૂંચ પડી છે. નિત્યાનંદરૂપ જ્ઞાયકપ્રભુ એવો ચૈતન્યદોરો સ્વભાવે શુદ્ધ તેમજ સરળ હોવા છતાં, અનાદિથી તેની પર્યાયમાં રાગના એકત્વની ગૂંચ પડી ગઈ છે. 'શુભ અને અશુભ રાગ તે મારું સ્વરૂપ છે' એવી અનાદિથી જે ગૂંચ- ગાંઠ પડી ગઈ છે તે ઉકેલવાની છે. અંતરમાં નિત્યપ્રકાશમાન, શુદ્ધ ચૈતન્યપ્રભુ શાશ્વત બિરાજે છે; પણ અનાદિથી પર્યાયમાં જે શુભાશુભ રાગના એકત્વની ગાંઠ પડી ગઈ છે, તેને ચૈતન્યસ્વભાવનું ભાન કરીને ધીરજપૂર્વક અંતર્મુખ પુરુષાર્થ વડે ઉકેલવાની છે.

જ્ઞાનની પર્યાય અનાદિથી જે બહાર તરફ ઢળી ગઈ છે, તેને મર્યાદામાં લાવીને સ્વભાવ તરફ લઈ જાય તો અંદર જે ચૈતન્યજ્ઞાયકપ્રભુ છે તે દષ્ટિગત થાય અને રાગ સાથેના એકત્વની અનાદિ ગૂંચ ઊકલી જાય. અનાદિ કાળથી જીવ સંયોગ અને રાગ સામે જોઈ રહ્યો છે, હવે નજર અંતરમાં વાળીને ત્રિકાળી, ધ્રુવ સત્ત્વ સામે દષ્ટિ કરવી આવશ્યક છે. વર્તમાન જે પર્યાય છે તેની સમીપે, તળમાં ઊંડે, વસ્તુનું જે સામર્થ્ય-ભરપૂર દળ પડ્યું છે તે વસ્તુનો ધ્રુવ સ્વભાવ છે. વસ્તુમાં જે ઉપર તરતો ક્ષણિક ભાવ તે પર્યાય છે. તે તરફનું લક્ષ છોડી દઈ, ધ્રુવ પરમ ભાવને ખ્યાલમાં લઈ તેનો આશ્રય કરવો જોઈએ. ધ્રુવ, અખંડ, જ્ઞાયકતત્ત્વ તરફ પર્યાયને ઢાળવી જોઈએ. પરસન્મુખ રહેલી વૃત્તિ સ્વસન્મુખ થતાં પર્યાયમાં જે અનાદિથી વિભાવની ગૂંચ પડી ગઈ છે તે નીકળી જાય છે અને સરળ સ્વભાવની, જ્ઞાયકના અનુભવની પ્રાપ્તિ થાય છે. માટે તત્ત્વનિર્ણય કરીને ધ્રુવ તત્ત્વનો આશ્રય કરવો તે જ જીવનું કર્તવ્ય છે.

તત્ત્વનિર્ણય કરવાનો આ અતિ દુર્લભ અવસર છે. ચાર ગતિનાં દુઃખોથી છૂટવાનો અને પરમ આનંદરૂપ સિદ્ધપદની પ્રાપ્તિનો આ અવસર છે. સર્વ પ્રકારની જોગવાઈવાળો અવસર આવ્યો છે. આવો દુર્લભ અવસર પામવો કઠણ છે. આવા અવસરને વૃથા ન ગુમાવવો જોઈએ. જીવે પોતાનું ભલું કરવું હોય તો અત્યારે જ સર્વજ્ઞે કહેલાં તત્ત્વનો યથાર્થ નિર્ણય કરવો જોઈએ. તત્ત્વનિર્ણય તે સર્વ મનોરથની સિદ્ધિનો ઉપાય છે. તત્ત્વનિર્ણય તે જ સર્વ સુખનું મૂળ કારણ છે. જેમ પ્રાણ વગર જીવન હોતું નથી, તેમ તત્ત્વના નિર્ણય વગર ધર્મ હોતો નથી. આવો દુર્લભ અવસર પામીને જીવની બુદ્ધિ બીજી તદન નકામી વાતોનો નિર્ણય કરવામાં પ્રવર્તે છે અને આત્મહિતના મૂળ આધાર

એવા તત્ત્વનિર્ણયમાં પ્રવર્તતી નથી એ મોટું આશ્ચર્ય છે. તેણે મિથ્યા માન્યતા, પ્રમાદ વગેરે છોડીને બુદ્ધિને તત્ત્વનિર્ણયમાં લગાવવી જોઈએ. આત્મહિત માટે તત્ત્વનિર્ણય કરવા જેટલી જ્ઞાનશક્તિ તો તેને પ્રાપ્ત થયેલી છે. શ્રીગુરુ પણ અત્યંત કરુણાથી તત્ત્વોનો ઉપદેશ કરે છે. તે ઉપદેશના આધારે તત્ત્વનિર્ણય કરવામાં જીવે પ્રવૃત્તિ કરવી જોઈએ. પોતે કોણ છે? આત્માનું સ્વરૂપ શું છે? હેય-ઉપાદેય તત્ત્વો કયાં છે? આત્મ-અનુભૂતિ કેવી રીતે થાય? ઇત્યાદિનું યથાર્થ જ્ઞાન કરવું જોઈએ. સંયોગો અને વિકારોથી ભિન્ન પોતાનું સ્વરૂપ જ્ઞાનાનંદથી ભરપૂર છે તેનો નિર્ણય કરવો જોઈએ. ઉપયોગને અંતરમાં વાળીને સ્વતત્ત્વનું અવલોકન કરવું જોઈએ.

જેને નિજજ્ઞાયકતત્ત્વની ખબર નથી, તે તો પરને જાણવામાં જ અટકી જાય છે. પોતાના નિર્ણયના અભાવમાં જીવનું જ્ઞાન પરમાં એવું તો ચોંટી જાય છે કે ત્યાંથી ઉખેડી સ્વમાં લગાવવું દુષ્કર છે. અજ્ઞાનીને જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માની પ્રીતિ નથી, માટે તે પરને જાણતી વખતે જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા રહેવાને બદલે ઇષ્ટ-અનિષ્ટ બુદ્ધિ કરે છે અને તેથી તેની જ્ઞાનશક્તિ ત્યાં સીમિત થઈ જાય છે. અનંતાનંત દ્રવ્યોની અનંતાનંત પર્યાયોને જાણવાની જ્ઞાનશક્તિ જીવમાં છે, પરંતુ પરદ્રવ્યના રાગમાં તે પોતાની અનંત શક્તિને કુંઠિત કરી દે છે. તેને પોતાની વર્તમાનમાં પ્રવર્તતી શક્તિનો પૂરો ઉપયોગ કરવાની સ્વતંત્રતા છે. જો તે પરને જાણવામાં અટકે નહીં, જાણનારને જાણે તો તેની કુંઠિત થયેલી શક્તિ અસીમ તથા અનંત રૂપમાં પ્રગટ થાય અને તે સર્વજ્ઞ બને. પરંતુ તે પોતાની શક્તિ સ્વરૂપમાં વાળવાને બદલે પરમાં વાળે છે, તેથી તેની વિશાળ શક્તિ સીમિત થઈ જાય છે.

અજ્ઞાની જીવ સ્વયંની સમૃદ્ધિને ભૂલી બહાર ફાંફાં મારે છે, દુ:ખી થાય છે. સ્વયંથી અજાણ હોવાથી પોતાને ખાલી અનુભવે છે અને પોતાને પરથી ભરવાની ચેષ્ટા કરે છે. પોતામાં અનુભવાતો અને ખૂંચી રહેલો ખાલીપો તે ધન વડે, કીર્તિ વડે, સ્ત્રી વડે ભરવા પ્રયત્ન કરે છે. કિંતુ આ બધું હોવા છતાં પણ ખાલીપો તો રહે જ છે. ઊલટું તે ખાલીપો વિશેષ પ્રમાણમાં અનુભવે છે, કારણ કે તે સ્વયંથી વધુ દૂર ગયો છે. આનો ઉપાય એક જ છે - પોતાની સમૃદ્ધિનું ભાન થવું. પોતે પૂર્ણ, શુદ્ધ, જ્ઞાનાનંદનો પિંડ છે એમ જણાય તો બહાર ભટકવાનું બંધ થાય. 'હું સ્વયંમાં પૂર્ણ છું, આનંદમય છું. મારામાં કોઈ ઊણપ કે ખોટ નથી કે જેને મારે બહારથી પૂરી કરવી પડે.' - આવું ભાન થતાં બાદશાહીની શરૂઆત થાય છે અને પરપદાર્થોની ગુલામી અટકે છે. અંતરની પૂર્ણતા ઉપર વજન જતાં પૂર્ણતાની ખુમારી પ્રગટે છે અને તે પોતાના ચૈતન્યનિધાનની માલિકી ભોગવે છે.

જેમ ગરીબ કન્યા કરોડપતિના ઘરની વહુ બનીને જાય છે ત્યારે નથી એણે એ

કરોડ રૂપિયા ગણ્યા કે નથી એનાં દર્શન કર્યાં. તોપણ રાતોરાત એનો રુઆબ ફરી જાય છે; તેમ પોતાના પૂર્શ, શુદ્ધ ચૈતન્યદ્રવ્યની ઓળખાણ થતાં જીવની ખુમારી, મસ્તી ફરી જાય છે. ઘરે પર્સ ભૂલી ગઈ હોય તોપણ એનો રૂવાબ જોતાં જ ખ્યાલ આવી જાય છે કે એ કરોડપતિના ઘરની વહુ છે; તેમ સાધકને પરપદાર્થનું દીનપણું ન થતાં ત્રિકાળી, શુદ્ધ, ચિદાનંદસ્વભાવ પ્રત્યે જ દબ્ટિ જાય છે. તેણે આત્મા જાતે જોયો નથી તેથી શં? જેમ ગર્ભવતી બનેલી સ્ત્રીને નવ મહિના પછી સંતાનનાં દર્શન થાય છે, પરંતુ એનું માતૃત્વ તો પ્રારંભથી જ જાગૃત થઈ જાય છે; તેમ ભલે સાધકે આત્માનાં દર્શન ન કર્યા હોય. પણ જ્ઞાની ભગવંત પાસે ચૈતન્યનિધિની અપૂર્વ વાતો સાંભળી હોવાથી તેને આત્માનો સાચો મહિમા જાગે છે અને ખુમારી પ્રગટે છે. પરંતુ જેમ તે ગરીબ કન્યા કરોડપતિની વહ થવા છતાં પણ જો એના ઐશ્વર્યમાં એકતા ન કરે તો એ બધે ભિખારીવેડા કરતી ફરે છે; તેમ પોતાના પૂર્ણ, શુદ્ધ જ્ઞાનાનંદસ્વભાવમાં એકતા ન કરતાં, પોતાનાં સુખ-શાંતિ બહારથી આવે છે એમ માનનાર જીવ જડ વિષયો પાસે ભીખ માંગવા જાય છે. જીવે અનંત કાળ આ રીતે ભિખારીવેડામાં જ કાઢ્યો છે અને દુઃખી થયો છે. પોતાના જ્ઞાનાનંદસ્વભાવને ભૂલીને પર સામે દેષ્ટિ કરતાં દુઃખ જ થાય છે. પર તરફ લક્ષ કરવાથી દુઃખનો અનુભવ થાય છે, પરંતુ પોતાના જ્ઞાનાનંદસ્વભાવનો આશ્રય કરતાં સ્વાભાવિક સખ પ્રગટે છે.

પોતાના ચૈતન્યપદમાં જીવે સ્થિર થવાનું છે. આત્મામાં જ પરિજ્ઞતિ જોડવાની છે અને પર સાથેની તન્મયતા તોડવાની છે. અનાદિથી જીવનો ઉપયોગ પરમાં જ અટકેલો છે. જીવ અનાદિથી પ્રત્યેક સમયે પરમાં જોડાણ કરી રાગાદિ કરતો રહ્યો છે. તે સ્વલક્ષ યૂકીને પરમાં ઠીક-અઠીકપણાની, લેવા-મૂકવાની વૃત્તિ કરે છે; પરંતુ તેનો સ્વભાવ માત્ર પરને જાણવાનો છે, પરમાં કાંઈ કરવાનો નથી. 'પરનું કરી શકું' એમ માનવું તે અજ્ઞાનતા છે. ચૈતન્યનું સ્વામિત્વ ચૈતન્યમાં છે, છતાં અજ્ઞાન અવસ્થા હોવાથી જીવે પરનું સ્વામિત્વ માન્યું છે. તે પરનું કરી શકતો નથી, છતાં પરનું કરવા મથી રહ્યો છે. પોતે ચૈતન્ય તરફ દષ્ટિ કરે તો પોતે પોતાનું કરી શકે છે. પોતાની પર્યાય શુદ્ધરૂપે પરિણમાવી શકે છે. પોતે સ્વભાવનું લક્ષ કરે તો શુદ્ધ પર્યાય પ્રગટ થાય છે.

આવું નિર્મળ પરિશમન પ્રગટાવવા જીવ સ્વાધીન છે. જીવ જો પરલક્ષ છોડી સ્વભાવમાં રહેવા ઇચ્છે તો કોઈ તેને બાધારૂપ થઈ શકતું નથી એવો તેનો અવ્યાબાધ સ્વભાવ છે. તેથી તેણે ઉપયોગને પરમાં વેડફ્વાનું બંધ કરવું જોઈએ. પરને જાણવામાંથી ઉપયોગને પાછો ખેંચી સ્વને જાણવામાં લગાડવો જોઈએ. ઉપયોગને પરમાંથી છોડાવી, સ્વરૂપમાં લગાવતાં સ્વાનુભવની પ્રાપ્તિ થાય છે. સ્વાનુભવનો ઇચ્છુક વિભાવની પ્રવૃત્તિથી નિવૃત્ત થઈ આત્મામાં જ પરિશતિ જોડવાનો અભ્યાસ કરે છે. તે પોતાના જ્ઞાનમાં

સમસ્ત પરસંયોગોનો નિષેધ કરી, જ્ઞાન-ઉપયોગ જે બહાર ભટકે છે તેને ત્યાંથી હટાવી, એટલે કે પોતાની આત્મશક્તિને શરીર, ઇન્દ્રિય, વિચાર-વિકલ્પોથી હટાવી, તેને જ્ઞાનના અખંડ પિંડની સન્મુખ કરે છે, તેમાં અભેદતા સ્થાપે છે અને પોતાની સત્તાનો અનુભવ કરે છે. તે સ્વરૂપગૃહમાં પ્રવેશ કરે છે અને અપાર આનંદ અનુભવે છે. આમ, આત્મ-સ્વરૂપની સમજણ કરી, તેમાં ઉપયોગ જોડી શુદ્ધાત્માની પ્રાપ્તિ કરવી એ જ મુક્તિનો માર્ગ છે.

શ્રીમદ્ આ પ્રકારે ગાથાની પ્રથમ પંક્તિમાં આત્મસ્વરૂપનો નિશ્ચય કરાવી, ગાથાની બીજી પંક્તિમાં કહે છે કે જે રીતથી આવા સત્, ચૈતન્યમય અને સર્વ આભાસથી રહિત શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય તે રીત એ જ મોક્ષનો માર્ગ છે. ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા આ પંક્તિનું વિવેચન કરતાં લખે છે કે –

'અત્રે આ સૂત્રમાં 'જેથી કેવળ પામીએ' એમ ત્રીજી વિભક્તિનો શબ્દપ્રયોગ કર્યો, તેનો ગર્ભાર્થ એમ થયો કે જે સાધન થકી તથારૂપ શુદ્ધ આત્મા પ્રાપ્ત થાય, તે સાધન પણ મોક્ષમાર્ગની રીતિ છે, વિધાન છે.'^૧

'જેશો' અર્થાત જે વડે શદ્ધાત્માની પ્રાપ્તિ થાય અને તેમાં જ સ્થિરતા થાય તે જ મોક્ષનો ઉપાય છે - મોક્ષમાર્ગની આરાધના છે. ગમે તે સાધન - જપ, તપ, શાસ્ત્રવાંચન, પૂજા, સામાયિક, ભક્તિ કરીને પણ જીવે સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રની આરાધના કરવી આવશ્યક છે. શુદ્ધ સ્વરૂપની રુચિ, શુદ્ધ સ્વરૂપનું જ્ઞાન અને શુદ્ધ સ્વરૂપનું વલણ - તેમાં જ ટકી રહેવું તે જ મોક્ષનો યથાર્થ માર્ગ છે. જ્ઞાનાનંદસ્વભાવી આત્મા તરફનો પુરુષાર્થ કર્યા વિના કદી પણ કોઈ પણ જીવના ભવનો અંત આવતો નથી. સ્વસન્મખતાનો આ અભ્યાસ નિત્ય, નિયમિત, રોજ થવો આવશ્યક છે. જો સ્વસન્મુખતાનો આ અભ્યાસ સીધો થઈ શકતો ન હોય તો કોઈ બાહ્ય અવલંબન (સત્સાધન) સાથે એને જોડી દેવો જોઈએ, અર્થાત્ સ્વાધ્યાય, ભક્તિ, ગમે તે કરીને પણ સ્વસન્મુખ થવાનો પ્રયત્ન સદૈવ કરતા રહેવું જોઈએ. જેટલો સ્વરૂપનો અભ્યાસ થાય તેટલો જ યથાર્થ પુરુષાર્થ થયો કહેવાય. જડ અને ચેતન તથા જડભાવ અને ચેતનભાવ વચ્ચે ભેદજ્ઞાન કરીને 'હું શુદ્ધ, પરમાત્મસ્વરૂપ, ચૈતન્યઘન આત્મા છું, આનંદસ્વભાવથી પૂર્ણ ભરેલો છું' એવી આત્મભાવનાનું નિરંતર ૨ટણ કરી, સ્વરૂપમાં તન્મય થતાં સ્વરૂપ પ્રગટ થાય છે. આત્મામાં હાલ અપ્રગટ એવા અનંત જ્ઞાન, અનંત આનંદ વગેરે ગુણોની શ્રદ્ધા કરી, તેમાં એકાગ્ર થવાથી તે પ્રગટે છે. સ્વરૂપને પ્રગટ કરવાની આ પદ્ધતિ છે. મોક્ષમાર્ગની પ્રવૃત્તિમાં અવલંબનરૂપ સત્દેવ-સત્ગુરુ-સત્ધર્મની શ્રદ્ધા કરીને, પોતાના સ્વરૂપનો નિર્ણય તથા નિશ્ચય કરી, તેનું જ સતત અનુસંધાન ૧- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', યુ.૩૪૦

કરતાં ઉપયોગ સ્વરૂપમાં સ્થિર થાય છે અને સ્વરૂપ આવિર્ભૂત થાય છે. આમ, અલ્પ શબ્દોમાં શ્રીમદે મોક્ષમાર્ગની સંપૂર્ણ વિધિ ગૂંથી લીધી છે.

સત્દેવ-સત્ગુરુ-સત્ધર્મ એ ત્રણ તત્ત્વોની પરમ ભક્તિથી ઉપાસના તે વ્યવહાર મોક્ષમાર્ગ છે અને તે ઉપાસના શુદ્ધાત્માની પ્રાપ્તિરૂપ નિશ્ચય મોક્ષમાર્ગનું કારણ છે. જે જીવ સુદેવ-સુગુરુ-સુધર્મથી વિમુખ વર્તતો હોય, તેવા જીવની વૃત્તિ આત્માની સન્મુખ થતી નથી. સુદેવ-સુગુરુ-સુધર્મની ઉપાસનાથી જીવના મિથ્યાત્વ તથા અનંતાનુબંધી કષાયોની તીવ્રતા ઓછી થાય છે, વિશુદ્ધતા વધે છે અને તેનામાં આત્માનો યથાર્થ નિર્ણય અને અંતર્મુખ ઉપયોગ માટેની ક્ષમતા આવે છે. જેમણે શુદ્ધાત્મસ્વરૂપ પ્રાપ્ત કર્યું છે તેવા સદ્ગુરુના ગુણોનું ચિંતન, તેમનાં વચનોનું મનન અને તેમની પ્રત્યેક ચેષ્ટાનાં કરી ફરી નિદિધ્યાસન દ્વારા સાધકે ચિત્તની એકાગ્રતા સાધવી જોઈએ. સદ્ગુરુના સ્વરૂપની યથાર્થ ઓળખાણપૂર્વક તેમની ભક્તિ કરવાથી, તે ભક્તિ દ્વારા પોતાના સ્વરૂપનો મહિમા વધે છે. જેમ ધનની પ્રીતિવાળો ધનવાનના ગુણગાન કરે છે, પરંતુ તે ખરેખર ધનવાનના નહીં પણ ધનના જ ગુણગાન છે; તેમ જેને અનંત ગુણમય આત્માની રુચિ થઈ છે, તે સદ્ગુરુના ગુણગાન દ્વારા પણ આત્માનો જ મહિમા ગાય છે. આ રીતે વ્યવહાર-મોક્ષમાર્ગરૂપ સાધન નિશ્ચયમોક્ષમાર્ગરૂપ સાધ્ય પ્રતિ લઈ જાય છે. '

અામ, સદ્પુરુ દારા પોતાનું સ્વરૂપ બરાબર જાણી, પરદ્રવ્યને પૃથક્ સમજી, પરભાવને ક્ષણિક વિકાર ગણી શુદ્ધ જ્ઞાનસ્વભાવ તરફ ઝૂકવું જોઈએ. સર્વ ઉપરથી દષ્ટિ ઉઠાવીને 'હું ભગવાન ધ્રુવ જ્ઞાયક આત્મા છું' એમ ધ્રુવ જ્ઞાયકમાં અહંપણે પરિણમીને જ્ઞાયકમાં દષ્ટિને સ્થાપવી જોઈએ. બીજી સર્વ જગ્યાએથી દષ્ટિને સંકેલી લઈને, અંતરમાં જે જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપ, અનાદિ-અનંત ગુણસાગર નિજજ્ઞાયક આત્મા બિરાજે છે તેને દષ્ટિમાં લઈ અનુભવગત કરવો જોઈએ. સ્વભાવનો આશ્રય કરીને એવું નવું પરિણમન - નવું સર્જન કરવું જોઈએ કે જેથી પર્યાયમાં શુદ્ધતા પ્રગટે અને શુભાશુભ ભાવરૂપ અશુદ્ધતાનો વ્યય થાય. આ જે શુદ્ધતા પ્રગટે તે મોક્ષમાર્ગરૂપ છે. સદા અનુત્યન્ન અને અવ્યય એવા નિજ ત્રિકાળી જ્ઞાયકસ્વભાવના પૂર્ણ અવલંબનથી જ મોક્ષપર્યાય પ્રગટે છે. મોક્ષ એટલે નિજ પૂર્ણાનંદની પ્રાપ્તિ. મોક્ષ એટલે સંસારનાં સર્વ દુઃખોથી સંપૂર્ણપણે છુટકારો. પરિપૂર્ણ, અતીન્દ્રિય સુખ અને શાંતિસ્વરૂપ જે આત્મલાભ તેનું નામ મોક્ષ છે.

૧- જુઓ : (૧) પંડિત શ્રી દીપચંદજી કાસલીવાલકૃત, 'અનુભવપ્રકાશ', પૃ.૪૨

^{&#}x27;એ નિશ્ચયરત્નપ્રય, પ્રથમ વ્યવહારરત્નપ્રય થતાં થાય છે; માટે વ્યવહારરત્નપ્રય સાધક છે, નિશ્ચયરત્નપ્રય સાધ્ય છે.'

⁽२) भिडारिक श्री ज्ञानभूषशिक्षरियत, 'तत्त्वज्ञानतरंगिशी', अध्याय १२, श्लोक प 'निश्चयव्यवहासभ्यां द्विधा तत्परिकीर्तितं । सत्यस्मिन् व्यवहारे तन्निश्चयं प्रकटीभवेतु ।।'

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'આતમા સત્ ચૈતન્યમય, અસંખ્યાત પ્રદેશ; સહજ અનંતા નિત્યગુણ, શુદ્ધ અખંડ સ્વદેશ. મુક્ત સર્વ પરભાવથી, સર્વાભાસ રહિત; નિજ પર્યાય રમણ સદા, વીર્ય અનંત સહિત. સદા સહજ નિજભાવનો, શુદ્ધ સ્વસમય વિલાસ; જેશી કેવળ પામિશે, એ છે શિવપંથ ખાસ. પુદ્દગલ રચના કારમી, ત્યાં નહીં જોડે ચિત્ત; આત્મભાવમાં સ્થિર કરે, મોક્ષપંથ તે રીત.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૯ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૦૧-૪૦૪)

हम अनंत स्ट्राइनां, तेमां मुध्येआत. तेमां मुध्ये भोर्स्सिन, एएग्रे ते द्वरं पर्द. ગાથા ૧૦૧માં શ્રીગુરુએ જણાવ્યું કે આત્મા ત્રિકાળી છે, ચૈતન્યસ્વરૂપ છે તથા બધા પ્રકારના વિકારી ભાવો અને દેહાદિ સંયોગોથી રહિત છે. આ ત્રિકાળી સ્વરૂપનું લક્ષ કરવાથી શુદ્ધાત્મા પ્રગટે છે. આ જ મોક્ષનો ઉપાય છે.

આમ, વિકારોની મલિનતાથી મુક્ત થવું તે જ મોક્ષપંથ છે એમ શ્રીમદે શ્રીગુરુ-મુખે જુદી જુદી રીતે ગાથા ૯૮-૧૦૧ સુધીમાં બતાવી, ગાથા ૯૨ના પૂર્વાર્ધમાં શિષ્યે રજૂ કરેલ શંકા 'નહીં અવિટોધ ઉપાય'નું સચોટ સમાધાન આપ્યું. અત્યાર સુધી ભાવકર્મ ટાળવાની મુખ્યતાએ મોક્ષપંથની રીત સમજાવી હતી. હવે ગાથા ૯૨ના ઉત્તરાર્ધમાં રજૂ થયેલ શિષ્યની દલીલ 'કર્મો કાળ અનંતનાં, શાથી છેલાં જાય?'નો પ્રત્યુત્તર ત્રણ ગાથાઓ (૧૦૨-૧૦૪) દ્વારા આપે છે, જેમાં દ્રવ્યકર્મ ટાળવાની મુખ્યતાએ કથન કર્યું છે. દ્રવ્યકર્મ સંબંધી કથન કરતી આ પ્રથમ ગાથામાં શ્રીગુરુ કહે છે –

'કર્મ અનંત પ્રકારનાં, તેમાં મુખ્યે આઠ; ^{ગાથા} તેમાં મુખ્યે મોહનીય, હણાય તે કહું પાઠ.' (૧૦૨)

કર્મ અનંત પ્રકારનાં છે, પણ તેના મુખ્ય જ્ઞાનાવરણાદિ આઠ પ્રકાર થાય છે. તેમાં પણ મુખ્ય મોહનીય કર્મ છે. તે મોહનીય કર્મ હણાય તેનો પાઠ કહું છું. (૧૦૨)

ભાવાર્થ સંસારમાં દરેક જીવ સાથે અનંતાં કર્મરૂપ પુદ્દગલપરમાણુ અનાદિ કાળથી બંધાયેલાં છે. દરેક સમયે તેમાંથી કેટલાંક પુદ્દગલપરમાણુ છૂટાં પડે છે તો કેટલાંક નવાં આવી મળે છે. આત્માના રાગાદિ ભાવોના કારણે કાર્મણ વર્ગણાનાં પુદ્દગલ આત્મા સાથે બંધાય છે. જીવ જ્યારે સ્વભાવમાં ન રહેતાં વિભાવરૂપે પ્રવર્તે છે ત્યારે કર્મબંધ થાય છે. જીવને થતા વિભાવો અનંત પ્રકારના છે અને વિભાવ પ્રમાણે કર્મબંધ થતો હોવાથી કર્મના પ્રકાર પણ અનંત છે. આ અનંત પ્રકારનાં કર્મોના મુખ્ય આઠ વિભાગ છે - જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય, મોહનીય, આયુષ્ય, નામ, ગોત્ર અને અંતરાય. જ્ઞાનાવરણીય કર્મથી જ્ઞાનને આવરણ આવે છે. દર્શનાવરણીય કર્મથી શાતા-અશાતારૂપ સંજોગ પ્રાપ્ત થાય છે. મોહનીય કર્મથી મિથ્યા શ્રદ્ધા અને કષાય થાય છે. આયુષ્ય કર્મથી જીવને શરીરમાં રોકાઈ રહેવું પડે છે. નામ કર્મથી જીવને જુદાં જુદાં પ્રકારનાં શરીર, સંસ્થાન, રૂપ વગેરે મળે છે. ગોત્ર કર્મથી જીવને ઉચ્ચ કે નીચ ગોત્રમાં જન્મ લેવો પડે છે. અંતરાય

કર્મથી જીવને દાન, લાભ, ભોગ, ઉપભોગ અને પુરુષાર્થમાં બાધા આવે છે.

આ આઠ કર્મમાં મોહનીય કર્મ મુખ્ય છે. જ્ઞાનાવરણીય આદિ ત્રણ ઘાતી કર્મો આત્માના ગુણોને માત્ર આવરણ કરે છે અથવા તે ગુણોના બળને રોધે છે, જ્યારે મોહનીય કર્મ તો તે ગુણોમાં વિકાર ઉત્પન્ન કરે છે. મિથ્યાત્વને વશ એવો આત્મા સ્વસ્વરૂપને ભૂલીને પરમાં આત્મબુદ્ધિ, સુખબુદ્ધિ, આધારબુદ્ધિ, કર્તૃત્વબુદ્ધિ, ભોક્તૃત્વબુદ્ધિ વગેરે અનેક વિપરીત માન્યતાઓ કરે છે. આ ભ્રમણાના કારણે તે કષાય સહિત વર્તી નવીન કર્મરજને અહણ કરે છે. આ અહણ કરેલો નવીન કર્મરજનો જથ્થો સાત કે આઠ કર્મપ્રકૃતિમાં વહેંચાઈ જાય છે. આમ, મોહનીય કર્મ નવીન કર્મબંધમાં કારણભૂત થાય છે, તેથી મોહનીય કર્મ આઠે કર્મનું મૂળ છે. સર્વ કર્મોમાં સૌથી વધારે બળવાન હોવાથી તે કર્મનો રાજા કહેવાય છે. તેના બળ ઉપર બીજાં કર્મનું બળ નભે છે અને તેનું બળ ક્ષીણ થતાં અન્ય કર્મનું બળ પણ ક્ષીણ થાય છે. મોહનીય કર્મ હણતાં બાકીનાં બધાં કર્મો ઉપર વિજય મેળવી શકાય છે. આમ, મોહનીય કર્મને હણવું અત્યંત અગત્યનું હોવાથી શ્રીગુરુ કહે છે, 'તેમાં મુખ્ય મોલનીય, લભાય તે કહું પાઠ', અર્થાત્ આઠે કર્મમાં મુખ્ય એવું મોહનીય કર્મ કઈ રીતે હણી શકાય તેનો ઉપાય હવે સમજાવું છું.

બિરોષાર્થ અત્માના અનંત ગુણો છે. તે અનંત ગુણો કર્મના કારણે આવરિત થયેલા છે. જેમ વાદળાં સૂર્યને આવરણ કરે છે, તેમ કર્મ આત્માના ગુણોને આવરણ કરે છે. આત્માના પ્રદેશો ઉપર કર્મરૂપી મેલ ચઢ્યો હોવાથી આત્મા મેલો બની ગયો છે. આત્મપ્રદેશો ઉપર કાર્મણ વર્ગણાની સૂક્ષ્મ રજક્શો આવીને રહેતી હોવાથી આત્માનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ ઢંકાઈ જાય છે. આમ, કર્મ આત્મગુણોને આવરણ કરે છે. શ્રીમદ્ કહે છે –

'આત્માના સ્વભાવને જે આવરણ તેને જ્ઞાનીઓ 'કર્મ' કહે છે.'૧

આત્માના અનંત ગુણોમાં મુખ્ય આઠ ગુણ છે. તે આઠ ગુણો છે - અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન, અવ્યાબાધ સુખ, અનંત ચારિત્ર, અરૂપી, અગુરુલઘુ, અક્ષય સ્થિતિ અને અનંત વીર્ય. આ મુખ્ય આઠ ગુણને આવરણ કરનારાં આઠ પ્રકારનાં કર્મો અનુક્રમે આ પ્રમાણે છે - જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય, મોહનીય, નામ, ગોત્ર, આયુષ્ય અને અંતરાય. આ આઠ કર્મો આત્મા ઉપર શું અસર કરે છે તે વિષે શ્રીમદ્ 'મોક્ષમાળા'માં લખે છે –

'જ્ઞાનાવરણીય એટલે આત્માની જ્ઞાન સંબંધીની જે અનંત શક્તિ છે તેને આસ્છાદન કરે તે. દર્શનાવરણીય એટલે આત્માની જે અનંત દર્શનશક્તિ છે તેને ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૦૯ (ઉપદેશછાયા-૮) આચ્છાદન કરે તે. વેદનીય એટલે દેહનિમિત્તે શાતા, અશાતા બે પ્રકારનાં વેદનીય-કર્મથી અવ્યાબાદ્ધ સુખરૂપ આત્માની શક્તિ જેનાથી રોકાઇ રહે તે. મોહનીયકર્મથી આત્મચારિત્રરૂપ શક્તિ રોકાઇ રહી છે. નામકર્મથી અમૂર્તિરૂપ દિવ્ય શક્તિ રોકાઇ રહી છે. ગોત્રકર્મથી અટલ અવગાહનારૂપ આત્મશક્તિ રોકાઇ રહી છે. આયુકર્મથી અક્ષય સ્થિતિ ગુણ રોકાઇ રહ્યો છે. અંતરાય કર્મથી અનંત દાન, લાભ, વીર્ય, ભોગ, ઉપભોગશક્તિ રોકાઇ રહી છે.'

આ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓની આત્માના ગુણો ઉપર અસર થવાથી આત્માની સ્થિતિ કેવી બને છે તે વિસ્તારથી જોઈએ. આત્મામાં રહેલા જ્ઞાન અને દર્શન ગુણને સમજવા માટે એ સમજવાની જરૂર છે કે દરેક વસ્તુનો બોધ સામાન્ય અને વિશેષ એમ બે પ્રકારે થાય છે. વસ્તુનો સામાન્યરૂપે બોધ તે દર્શન અને વસ્તુનો વિશેષરૂપે બોધ તે જ્ઞાન. જ્ઞાન અને દર્શન એ બન્ને બોધસ્વરૂપ જ છે. આ જ્ઞાન અને દર્શન ગુણ દારા આત્મામાં ભૂત, વર્તમાન અને ભાવિ એ ત્રણે કાળની સમસ્ત વસ્તુઓનો સામાન્યરૂપે અને વિશેષરૂપે બોધ કરવાની શક્તિ છે. પરંતુ જ્ઞાનાવરણીય અને દર્શનાવરણીય કર્મની પ્રકૃતિઓના કારણે જીવને અત્યારે ભૂત અને ભાવી કાળની વસ્તુઓની વાત તો દૂર રહી, વર્તમાન કાળની વસ્તુઓમાં પણ અમુક જ વસ્તુઓનો બોધ થાય છે અને તે પણ ઇન્દ્રિયોની અને મનની સહાયથી. જ્ઞાનાવરણીય કર્મના કારણે જીવની જ્ઞાનશક્તિ પૂર્ણ વ્યક્ત થતી નથી અને દર્શનાવરણીય કર્મના કારણે જીવની દર્શનશક્તિ પૂર્ણ વ્યક્ત થતી નથી અને દર્શનાવરણીય કર્મના કારણે જીવની દર્શનશક્તિ પૂર્ણ વ્યક્ત થતી નથી અને કર્મપ્રકૃતિઓએ આત્માની જ્ઞાન-દર્શનની શક્તિને દબાવી દીધી છે, છતાં પણ એ પ્રકૃતિઓ આત્માના જ્ઞાન-દર્શન ગુણને સર્વથા નથી દબાવી શક્તી. એ કર્મોના ક્ષયોપશમ અનુસાર જ્ઞાન-દર્શનની કિંચિત્ વ્યક્તતા હંમેશાં રહે છે.

આત્માનો ત્રીજો ગુણ અવ્યાબાધ સુખ છે. આ ગુણના પ્રભાવથી દરેક આત્મામાં સ્વાભાવિક - સહજ સુખ રહેલું છે. સુખી થવા માટે તેને ભૌતિક વસ્તુની અપેક્ષા રહેતી નથી, છતાં સંસારી જીવ દુઃખી થાય છે. જે યત્કિંચિત્ સુખ અનુભવે છે તે પણ ભૌતિક વસ્તુઓ દ્વારા થાય છે. આમાં વેદનીય કર્મ કારણભૂત છે. વેદનીય કર્મ વડે (શરીરમાં અથવા શરીરથી) બાહ્ય અનેક પ્રકારનાં સુખ-દુઃખના કારણરૂપ પરસંયોગ પ્રાપ્ત થાય છે અને તે દ્વારા તે શાતા કે અશાતા ભોગવે છે.

આત્મામાં ચોથો ગુણ સ્વભાવરમણતારૂપ અનંત ચારિત્ર છે. આત્મામાં કેવળ પોતાના જ ભાવમાં રમણતા કરવાનો ગુણ છે, છતાં મોહનીય કર્મના કારણે આ ગુણનો અભિભવ થઈ ગયો છે; એટલે આત્મા ભૌતિક વસ્તુ મેળવવી, સાચવવી, તેના પ્રત્યે રાગ-દ્વેષ કરવા વગેરે પરભાવમાં રમે છે. આ કર્મ વડે જે જીવના સ્વભાવરૂપ ૧- 'શ્રીમદ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૧૨૯ (મોક્ષમાળા, શિક્ષાપાઠ-૧૦૨)

નથી એવાં મિથ્યા શ્રદ્ધાન તથા ક્રોધાદિ કષાયોની વ્યક્તતા થાય છે.

અત્માનો પાંચમો ગુણ અક્ષય સ્થિતિ છે. આ ગુણના પ્રભાવે આત્માને નથી જન્મ કે નથી મરણ, છતાં આયુષ્ય કર્મના કારણે આત્માને જન્મ-મરણ કરવાં પડે છે. જ્યાં સુધી આયુ કર્મનો ઉદય રહે છે ત્યાં સુધી પ્રાપ્ત થયેલ શરીરનો સંબંધ છૂટી શકતો નથી. જ્યારે તે આયુ કર્મનો ઉદય પૂર્ણ થાય છે ત્યારે અનેક ઉપાય કરવા છતાં પણ પ્રાપ્ત થયેલ શરીર સાથે સંબંધ રહી શકતો નથી.

આત્માનો છકો ગુણ અરૂપીપણું છે, અર્થાત્ આત્મામાં મૂર્તતાનો અભાવ છે. આ ગુણના પ્રભાવે આત્માને નથી રૂપ, નથી ગંધ, નથી રસ કે નથી સ્પર્શ; છતાં નામ કર્મની પ્રકૃતિઓના કારણે જીવ શરીર ધારણ કરે છે, શ્યામ, શ્વેત વગેરે રૂપ તથા મનુષ્યાદિ ગતિ વગેરે પ્રાપ્ત થાય છે. નામ કર્મ વડે ગતિ, જાતિ, શરીરાદિ નીપજે છે.

આત્માનો સાતમો ગુણ અગુરુલઘુ છે. આ ગુણથી આત્મા નથી ઉચ્ચ કે નથી નીચ, છતાં અમુક જીવ ઉચ્ચ કુળમાં જન્મે છે અને અમુક જીવ નીચ કુળમાં જન્મે છે. ઉચ્ચ-નીચ કુળનો જે વ્યવહાર થાય છે તે સાતમા ગોત્ર કર્મની પ્રકૃતિના કારણે છે. ગોત્ર કર્મ વડે ઉચ્ચ-નીચ કુળની પ્રાપ્તિ થાય છે.

આત્માનો આઠમો ગુણ અનંત વીર્ય છે. આ ગુણથી આત્મામાં અતુલ અનંત શક્તિ છે, છતાં જીવને એ સામર્થ્યનો અનુભવ થતો નથી. અંતરાય કર્મની પ્રકૃતિથી આ શક્તિનો અભિભવ થઈ ગયો છે. આ કર્મના કારણે જીવની સંપૂર્ણ શક્તિ વ્યક્ત નથી થતી, પણ તેના ક્ષયોપશમ અનુસાર કિંચિત્ શક્તિ વ્યક્ત થાય છે.

આ પ્રમાણે આઠ કર્મોનો અનુક્રમે આત્માના આઠ ગુણોને દબાવીને આત્મામાં વિકૃતિ કરવાનો સ્વભાવ છે.^૧

૧- અહીં જે 'કર્મ વિકૃતિ કરે છે' એમ કહ્યું તે વ્યવહારથી છે. નિશ્વયથી તો જીવ-પુદ્દ્ગલનો નિમિત્ત-નૈમિત્તિક સંબંધ છે, કર્તા-કર્મ સંબંધ નહીં. આત્મા અને પરદ્રવ્યો તદન જુદાં છે, એકનો બીજામાં અત્યંત અભાવ છે. બંધ થવાથી જીવ અને પુદ્દ્ગલકર્મનો એકક્ષેત્રાવગાહરૂપ સંબંધ થાય છે, તે છતાં જીવ અને કર્મ ક્યારે પણ એકવસ્તુરૂપ થઈ જતાં નથી. જીવ અને કર્મ બન્ને ભેગાં થઈને આત્મામાં વિકાર કરતાં નથી, તેમજ પુદ્દ્ગલમાં પણ વિકાર કરતાં નથી. કર્મ જીવને વિકારી કરી શકે નહીં અને જીવ પુદ્દ્ગલને કર્મ તરીકે પરિણમાવી શકે નહીં. બન્ને સ્વતંત્રપણે પોતપોતાની પર્યાયના કર્તા છે. જીવમાં થતા વિકારભાવ જીવ પોતે પોતાની પુરુષાર્થની નબળાઈના કારણે કરે છે, તેમજ જીવ વિકાર કરે ત્યારે કાર્મણ વર્ગણાનાં પુદ્દગલ સ્વયં કર્મરૂપે પરિણમે છે.

શાસ્ત્રોમાં દ્રવ્યકર્મો જીવના ગુણોનો ઘાત કરે છે એવાં કથનો આવે છે, તે કથનો નિમિત્તનું જ્ઞાન કરાવવા માટે વ્યવહારનયથી કહેવામાં આવે છે. જ્યારે પદાર્થ સ્વયં કાર્યરૂપે પરિણમે ત્યારે કાર્યની ઉત્પત્તિમાં કર્તા હોવાનો આરોપ જેના ઉપર આવી શકે તેને નિમિત્તકારણ કહે છે. એનો અર્થ એ થયો કે જ્યારે આત્મા પોતે, પોતાની ભૂલથી, પોતાની પર્યાયમાં વિકાર→ આત્મામાં વિકૃતિ કરવાનો આઠ પ્રકારનાં કર્મોનો સ્વભાવ ઉપમા દ્વારા સરળતાથી સમજી શકાશે^૧ –

- (૧) જ્ઞાનાવરણીય કર્મ આંખે બાંધેલા પાટા સમાન છે. આંખે પાટો બાંધવાથી જેમ કોઈ ચીજ દેખાતી નથી, તેમ આત્માના જ્ઞાનરૂપ નેત્ર ઉપર જ્ઞાનાવરણીય કર્મરૂપ પાટો આવી જવાથી આત્મા જ્ઞાન કરી શકતો નથી. જેમ જેમ પાટો વધુ ને વધુ જાડો થતો જાય, તેમ તેમ ઓછું ને ઓછું દેખાય; તેવી રીતે જ્ઞાનાવરણીયનું આવરણ જેમ જેમ વધે, તેમ તેમ જ્ઞાન ઓછું ને ઓછું થાય અને જેમ જેમ આવરણ ઘટે, તેમ તેમ જ્ઞાન વધુ ને વધુ થાય. આત્મા સર્વથા જ્ઞાનરહિત બનતો નથી. ગમે તેટલાં ગાઢ કર્મ હોય તોપણ જીવને અલ્પ જ્ઞાન તો અવશ્ય હોય જ છે.
- (૨) દર્શનાવરણીય કર્મ પ્રતિહાર (દ્વારપાળ) સમાન છે. પ્રતિહાર રાજ્યદરબારમાં આવતી વ્યક્તિને જો રોકી રાખે તો તેના કારણે વ્યક્તિને જેમ રાજાનાં દર્શન થતાં નથી, તેમ દર્શનાવરણીય કર્મના કારણે જીવ વસ્તુનું દર્શન કરી શક્તો નથી; અર્થાત્ આ કર્મના કારણે જીવને વસ્તુનું સામાન્ય બોધરૂપ જ્ઞાન થઈ શકતું નથી.
- (3) વેદનીય કર્મ મધ વડે લેપાયેલી તલવારની તીક્ષ્ણ ધાર સમાન છે, કેમ કે તેને ચાટતાં સ્વાદ તો લાગે છે, પણ ધારના કારણે જીભ કપાતાં પીડા થાય છે; તેમ આ વેદનીય કર્મથી થતો સુખનો અનુભવ પણ પરિણામે તો દુઃખ આપનારો જ થાય છે. કરે છે; ત્યારે તેમાં અનુકૂળ થતું જે દ્રવ્યકર્મ આત્મપ્રદેશોથી ખરવા તૈયાર થયું હોય છે તે કર્મ ઉપર નિમિત્તનો આરોપ આવે છે. જીવ પોતાના પુરુષાર્થના દોષ વડે પોતાની વિકારી અવસ્થા કરે ત્યારે પૂર્વે બંધાયેલાં કર્મોના વિપાકને 'ઉદય' કહેવામાં આવે છે. તેથી એમ કહેવું યથાર્થ છે કે જ્યારે આત્મા પોતે પોતાના જ્ઞાનભાવનો ધાત કરે ત્યારે આત્માના જ્ઞાન ગુણના ધાતમાં જે કર્મનો ઉદય નિમિત્ત થાય તેને જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કહે છે. જીવ પોતાના સ્વરૂપને ભૂલીને અન્યને પોતાના સમજે અથવા સ્વરૂપાચરણમાં અસાવધાની કરે ત્યારે જે કર્મનો ઉદય નિમિત્ત હોય તેને મોહનીય કર્મ કહે છે. જ્યારે જીવ પોતાના મોહભાવ વડે આકુળતા કરે છે ત્યારે અનુફૂળતા-પ્રતિકૂળતારૂપ સંયોગ પ્રાપ્ત થવામાં જે કર્મનો ઉદય નિમિત્ત હોય તેને વેદનીય કર્મ કહે છે. એવી જ રીતે દરેક કર્મ માટે સમજવું.

જીવ પોતે પોતાના સત્ય પુરુષાર્થ વડે જો વિકાર કરે નહીં ત્યારે દ્રવ્યકર્મોના તે જ સમૂહને 'નિર્જરા' નામ આપવામાં આવે છે. આત્માનું સ્વભાવરૂપ કે વિભાવરૂપ પરિશમન અને કર્મનું પરિશમન, બન્ને પરિશમન સ્વતંત્ર જ છે. કર્મ જીવને વિકારરૂપે પરિશમાવે છે એવાં શાસ્ત્રીય કથનો નિમિત્તની મુખ્યતાથી, નિમિત્ત-નૈમિત્તિક સંબંધનું જ્ઞાન કરાવવા પૂરતાં કરાયેલાં વ્યવહાર કથનો છે. નિશ્ચયનયથી તો દ્રવ્યકર્મો જીવને કદી નુકસાન કરી શકે નહીં. એક દ્રવ્ય બીજા દ્રવ્યના કાર્યનો કર્તા થઈ શકે નહીં એવી વસ્તુસ્થિતિની મર્યાદા છે.

- ૧- જુઓ : (૧) 'શ્રી નવતત્ત્વ પ્રકરણ', ગાથા ૩૮
 - (૨) સિદ્ધાંતચક્રવર્તી શ્રી નેમિચંદ્રજીકૃત, 'ગોમ્મટસાર', અધિકાર ૧, ગાથા ૨૧

- (૪) મોહનીય કર્મ મદિરા સમાન છે. જેમ મદિરાનું પાન કરવાથી માણસ વિવેકરહિત બની જાય છે, હિતાહિતનો વિચાર પણ કરી શકતો નથી અને અયોગ્ય ચેષ્ટા કરે છે; તેમ મોહનીય કર્મના યોગે જીવ વિવેકરહિત બને છે અને પોતાના આત્મા માટે હેય શું છે? ઉપાદેય શું છે? ઇત્યાદિ વિચાર કરી શકતો નથી. પરિણામે જીવ આત્માનું અહિત કરનારી અયોગ્ય પ્રવૃત્તિ કરે છે.
- (૫) આયુષ્ય કર્મ બેડી સમાન છે. બેડીમાં બંધાયેલ જીવ અન્યત્ર જઈ શકતો નથી, તેમ આયુષ્યરૂપ બેડીથી બંધાયેલ જીવ વર્તમાન ગતિનું આયુષ્ય પૂર્ણ ન થાય ત્યાં સુધી બીજી ગતિમાં જઈ શકતો નથી.
- (૬) નામ કર્મ ચિત્રકાર સમાન છે. જેમ ચિત્રકાર માણસ, હાથી, વાઘ, સિંહ આદિની જુદી જુદી આકૃતિઓ ચીતરે છે; તેમ નામ કર્મ અરૂપી એવા આત્માનાં ગતિ, જાતિ અનુસાર શરીર વગેરેનાં રૂપો તૈયાર કરે છે.
- (૭) ગોત્ર કર્મ કુંભાર સમાન છે. કુંભાર સારા અને ખરાબ એમ બે પ્રકારના ઘડા બનાવે છે. તેમાં સારા ઘડાની કળશરૂપે સ્થાપના થાય છે અને એ ચંદન, અક્ષત, માળા આદિથી પૂજાય છે. ખરાબ ઘડાઓમાં મદ્ય આદિ ભરવામાં આવે છે, તેથી તે ઘડા લોકમાં નિંદ્ય ગણાય છે; તેમ ગોત્ર કર્મના યોગે ઉચ્ચ અને નીચ કુળમાં જન્મ પામી જીવની ઉચ્ચરૂપે અને નીચરૂપે ગણતરી થાય છે.
- (૮) અંતરાય કર્મ ભંડારી સમાન છે. જેમ દાન કરવાની ઇચ્છાવાળા રાજાને તેનો લોભી ભંડારી દાન કરવામાં વિઘ્ન કરે છે, તેમ અંતરાય કર્મ દાન આદિમાં વિઘ્ન કરે છે.

ગુણ	કર્મ	ઉપમા	ફળ	
અનંત જ્ઞાન	જ્ઞાનાવરણીય	આંખે પાટા	વિશેષ બોધ ન થાય.	
અનંત દર્શન	દર્શનાવરણીય	પ્રતિહાર	સામાન્ય બોધ ન થાય.	
અવ્યાબાધ સુખ	વેદનીય	મધથી લેપાયેલી અસિની તીશ્શધાર	સુખ-દુઃખનો અનુભવ.	
અનંત ચારિત્ર	મોહનીય	મદિરા	સાચું શ્રદ્ધાન અને આચરણ નહીં.	
અક્ષય સ્થિતિ	આયુષ્ય	બેડી	મનુષ્ય આદિ દેહમાં રહેવું પડે.	
અરૂપીપશું	નામ	ચિત્રકાર	ગતિ, જાતિ, રૂપાકૃતિ વગેરે વિકાર	
અગુરુલઘુ	ગોત્ર	કુંભાર	ઉચ્ચ-નીયનો વ્યવહાર.	
અનંત વીર્ય	અંતરાય	ભંડારી	દાન આદિમાં અંતરાય.	

કર્મ આઠ પ્રકારનાં છે. એ એની મૂળ પ્રકૃતિ છે. આ આઠ મૂળ પ્રકૃતિની ઉત્તર પ્રકૃતિઓની કુલ સંખ્યા ૧૫૮ છે. તેનું વિવરણ આ પ્રમાણે છે –

જ્ઞાનાવરણીય કર્મની પાંચ ઉત્તર પ્રકૃતિઓ છે - (૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યવજ્ઞાનાવરણીય અને (૫) કેવળજ્ઞાનાવરણીય

દર્શનાવરણીય કર્મની નવ ઉત્તર પ્રકૃતિઓ છે - (૧) ચક્ષુદર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુદર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવળદર્શનાવરણીય, (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રાનિદ્રા, (૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલાપ્રચલા અને (૯) થિણદ્ધિ અથવા સ્ત્યાનર્દ્ધિ

વેદનીય કર્મની બે ઉત્તર પ્રકૃતિઓ છે - (૧) શાતાવેદનીય અને (૨) અશાતાવેદનીય

મોહનીય કર્મની અઠ્યાવીસ ઉત્તર પ્રકૃતિઓ છે - (૧) મિથ્યાત્વ મોહનીય, (૨) મિશ્ર મોહનીય, (૩) સમ્યક્ત્વ મોહનીય એ ત્રણ દર્શનમોહનીય; (૪-૭) અનંતાનુબંધીય ક્રોધ-માન-માયા-લોભ, (૮-૧૧) અપ્રત્યાખ્યાનીય ક્રોધ-માન-માયા-લોભ, (૧૨-૧૫) પ્રત્યાખ્યાનીય ક્રોધ-માન-માયા-લોભ, (૧૬-૧૯) સંજ્વલન ક્રોધ-માન-માયા-લોભ એ સોળ કષાય; (૨૦-૨૨) સ્ત્રી-પુરુષ-નપુંસક એ ત્રણ વેદ અને (૨૩-૨૮) હાસ્ય, રિત, અરિત, શોક, ભય, જુગુપ્સા એ હાસ્યાદિ ષટ્ક એ નવ નોકષાય. આમ, કુલ મળીને મોહનીય કર્મની અઠ્યાવીસ ઉત્તર પ્રકૃતિઓ છે.

આયુષ્ય કર્મની ચાર ઉત્તર પ્રકૃતિઓ છે - (૧) દેવ, (૨) મનુષ્ય, (૩) તિર્યંચ અને (૪) નરક

નામ કર્મની ઉત્તર પ્રકૃતિઓ ૧૦૩ છે. તે આ પ્રમાણે છે –

- ગતિ
- (૪) નરક, તિર્યંચ, મનુષ્ય, દેવ
- જાતિ
- (૫) એકેન્દ્રિય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય, પંચેન્દ્રિય
- શરીર
- (પ) ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક, તૈજસ, કાર્મણ
- અંગોપાંગ
- (૩) ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક એ ત્રણનાં અંગોપાંગ
- બંધન (૧૫) ઔદારિક ઔદારિક, વૈક્રિય વૈક્રિય, આહારક આહારક, ઔદારિક તૈજસ, વૈક્રિય તૈજસ, આહારક તૈજસ, ઔદારિક કાર્મણ, વૈક્રિય કાર્મણ, આહારક કાર્મણ, ઔદારિક તૈજસ કાર્મણ, વૈક્રિય તૈજસ કાર્મણ, આહારક તૈજસ કાર્મણ, તૈજસ તૈજસ. કાર્મણ કાર્મણ, તૈજસ કાર્મણ

'શ્રી	આત્મસિદ્ધિ	શાસ્ત્ર'	_	વિવેચન
-------	------------	----------	---	--------

3	٩	?
		_

સંધાતન	(ų)	ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક, તૈજસ, કાર્મણ
સંહનન	(٤)	વજઋષભનારાચ, ઋષભનારાચ, નારાચ, અર્ધનારાચ, કિલિકા, સેવાર્ત
સંસ્થાન	(६)	સમચતુરસ્ર, ન્યગ્રોધપરિમંડળ, સાદિ, કુબ્જ, વામન, હુંડક
વર્શ	(૫)	લાલ, પીળો, કાળો, લીલો, ધોળો
ગંધ	(٤)	સુગંધ, દુર્ગંધ
રસ	(૫)	ગળ્યો, ખારો, તૂરો, કડવો, તીખો
સ્પર્શ	(८)	સુંવાળો-ખરબચડો, ઠંડો-ગરમ, હલકો-ભારે, ચીકણો-લૂખો
આનુપૂર્વી	(8)	નરક, દેવ, મનુષ્ય, તિર્યંચ
વિહાયોગતિ	(٤)	શુભ, અશુભ

ઉપર જણાવેલી ૭૫ પ્રકૃતિ તથા અગુરુલઘુ, ઉપઘાત, પરાઘાત, ઉચ્છ્વાસ, આતપ, ઉદ્યોત, નિર્માણ, જિન એ આઠ પ્રત્યેક પ્રકૃતિ; ત્રસ, બાદર, પર્યાપ્તિ, પ્રત્યેક, સ્થિર, શુભ, સુભગ, સુસ્વર, આદેય, યશઃ એ ત્રસદશક અને તેથી વિપરીત સ્થાવર, સૂક્ષ્મ, અપર્યાપ્તિ, સાધારણ, અસ્થિર, અશુભ, દુર્ભગ, દુઃસ્વર, અનાદેય, અયશ એ સ્થાવરદશક - આમ નામ કર્મની ૧૦૩ ઉત્તર પ્રકૃતિઓ છે.

ગોત્ર કર્મની બે ઉત્તર પ્રકૃતિઓ છે - (૧) ઉચ્ચ ગોત્ર અને (૨) નીચ ગોત્ર અંતરાય કર્મની પાંચ ઉત્તર પ્રકૃતિઓ છે - (૧) દાનાંતરાય, (૨) લાભાંતરાય, (૩) ભોગાંતરાય, (૪) ઉપભોગાંતરાય અને (૫) વીર્યાંતરાય

ઉપર દર્શાવેલી આઠે કર્મોની ઉત્તર પ્રકૃતિઓ સત્તા, ઉદય, ઉદીરજ્ઞા, બંધ વગેરેની દિષ્ટિએ કેટલી છે તેની શાસ્ત્રકારોએ બહુ ઝીજાવટભરી મીમાંસા કરી છે. સત્તાની અપેક્ષાએ કર્મપ્રકૃતિઓ ૧૫૮ છે. (જો નામ કર્મની ઉપર ગણાવેલ ૧૦૩ પ્રકૃતિઓમાંથી ૧૫ બંધનને બદલે પાંચ બંધન ગજાવામાં આવે તો કર્મની સત્તાની અપેક્ષાએ કર્મની ૧૪૮ પ્રકૃતિઓ થાય છે.) ઉદય અને ઉદીરજ્ઞાની અપેક્ષાએ ૧૨૨ પ્રકૃતિ છે. નામ કર્મના ૧૦૩ ઉત્તર ભેદોમાંથી પંદર બંધન, પાંચ સંઘાતન અને વર્ણચતુષ્કના ૨૦ ઉપભેદો ન ગજાતાં માત્ર ચાર ગજાવામાં આવે તો સોળ એમ ૧૦૩માંથી કુલ ૩૬ (૧૫+૫+૧૬) પ્રકૃતિઓ બાદ કરતાં નામ કર્મની ૬૭ પ્રકૃતિઓ થાય છે અને એ પ્રમાણે ઉદય અને ઉદીરજ્ઞાની અપેક્ષાએ ૧૨૨ પ્રકૃતિઓ છે. બંધની અપેક્ષાએ ૧૨૨ને બદલે ૧૨૦ પ્રકૃતિ છે. મિથ્યાત્વમોહ, મિશ્રમોહ અને સમ્યક્ત્વમોહના ત્રણ ભેદને બદલે

મિથ્યાત્વમોહનો એક ભેદ જ ગણતાં બંધની અપેક્ષાએ ૧૨૦ પ્રકૃતિ થાય છે. આનું કારણ એ છે કે બંધ તો એક મિથ્યાત્વનો જ થાય છે, પણ જીવ પોતાના અધ્યવસાયો વડે તેના ત્રણ પુંજ કરે છે - અશુદ્ધ, અર્ધવિશુદ્ધ અને શુદ્ધ; જેને અનુક્રમે મિથ્યાત્વ-મોહ, મિશ્રમોહ અને સમ્પક્ત્વમોહ કહેવાય છે. આમ, ઉદય તથા ઉદીરણાની અપેક્ષાએ ત્રણ છતાં બંધની અપેક્ષાએ એક પ્રકૃતિ ગણાય છે, તેથી બંધની અપેક્ષાએ કુલ ૧૨૦ પ્રકૃતિ છે.

આમ, કર્મ અનંત પ્રકારનાં છે. તેમાં મુખ્ય આઠ પ્રકાર છે અને તેની ઉત્તર પ્રકૃતિઓ ૧૫૮ છે. આઠ મુખ્ય કર્મમાંથી જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, મોહનીય અને અંતરાય એ ચાર ઘાતી કર્મ કહેવાય છે, કારણ કે તે આત્માના સ્વભાવભૂત ગુણોનો ઘાત કરે છે; તથા નામ, ગોત્ર, આયુષ્ય અને વેદનીય એ ચાર અઘાતી કર્મ કહેવાય છે, કારણ કે તે આત્માના સ્વભાવભૂત ગુણોનો ઘાત નથી કરતાં પણ પોતપોતાની વિશિષ્ટ શક્તિ જરૂર બતાવે છે, અર્થાત્ પોતપોતાની વિશિષ્ટ અસર જરૂર ઉપજાવે છે. ધાતી કર્મ અઘાતી કર્મ અંગે શ્રીમદે વિશદ મીમાંસા કરી છે તે જોઈએ –

'કર્મની મૂળ પ્રકૃતિ આઠ, તેમાં ચાર ઘાતિની અને ચાર અઘાતિની કહેવાય છે.

ચાર ઘાતિનીનો ધર્મ આત્માના ગુણની ઘાત કરવાનો, અર્થાત્ (૧) તે ગુણને આવરણ કરવાનો, અથવા (૨) તે ગુણનું બળવીર્ય રોધવાનો, અથવા (૩) તેને વિકળ કરવાનો છે અને તે માટે ઘાતિની એવી સંજ્ઞા તે પ્રકૃતિને આપી છે.

આત્માના ગુણ જ્ઞાન, દર્શન તેને આવરણ કરે તેને અનુક્રમે (૧) જ્ઞાનાવરણીય અને (૨) દર્શનાવરણીય એવું નામ આપ્યું. અંતરાય પ્રકૃતિ એ ગુણને આવરતી નથી, પણ તેના ભોગઉપભોગ આદિને, તેનાં વીર્ચબળને રોકે છે. આ ઠેકાણે આત્મા ભોગાદિને સમજે છે, જાણે દેખે છે એટલે આવરણ નથી; પણ સમજતાં છતાં ભોગાદિમાં વિદન, અંતરાય કરે છે માટે તેને આવરણ નહીં પણ અંતરાય પ્રકૃતિ કહી.

'तत्र घातीनि चत्वारि कर्माण्यन्वर्थसंज्ञया ।

घातकत्वाद्गुणानां हि जीवस्यैवेति वाक्स्मृतिः ।।

'ततः शेषचतुष्कं स्यात् कर्माघाति विवक्षया ।

गुणानां धातका भावशक्तरप्यात्मशक्तिमत् ।।'

નોંધ ઃ કર્મની વિસ્તૃત જાણકારી માટે જિજ્ઞાસુઓએ 'કર્મગ્રંથ', 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર', 'ષટ્ખંડાગમ', 'ગોમ્મટસાર' વગેરે ગ્રંથો અવલોકવા.

૧- જુઓ : પંડિત શ્રી રાજમલજીકૃત, 'પંચાધ્યાયી', ઉત્તરાર્ધ, શ્લોક ૧૦૦૨-૧૦૦૩

આમ ત્રણ આત્મદાતિની પ્રકૃતિ થઈ. ચોથી ઘાતિની પ્રકૃતિ મોહનીય છે. આ પ્રકૃતિ આવરતી નથી, પણ આત્માને મૂર્છિત કરી, મોહિત કરી વિકળ કરે છે. જ્ઞાન, દર્શન છતાં, અંતરાય નહીં છતાં પણ આત્માને વખતે વિકળ કરે છે, ઊંઘા પાટા બંધાવે છે, મુત્રવે છે માટે એને મોહનીય કહી. આમ આ ચારે સર્વઘાતિની પ્રકૃતિ કહી. બીજી ચાર પ્રકૃતિ જોકે આત્માના પ્રદેશ સાથે જોડાયેલી છે તથા તેનું કામ કર્યા કરે છે, અને ઉદય અનુસાર વેદાય છે, તથાપિ તે આત્માના ગુણને આવરણ કરવારૂપે કે અંતરાય કરવારૂપે કે તેને વિકળ કરવારૂપે ઘાતક નથી માટે તેને અઘાતિની કહી છે.'

આત્માના મૂળ ગુણને દાબી દેવાની શક્તિ ધરાવતાં હોવાથી ઘાતી કર્મો બળવાન છે અને એ ચાર ઘાતી કર્મોમાંથી પણ મોહનીય કર્મ સૌથી વધારે જોરાવર છે, કારણ કે તે આત્માને મૂર્છિત કરી વિકળ કરે છે. મોહનીય કર્મ આત્માના ક્ષાયિક સમક્તિ અને ક્ષાયિક ચારિત્ર ગુણને દબાવીને તેમાં મિથ્યાત્વ તથા રાગ-દેષરૂપ વિકૃતિઓ ઉત્પન્ન કરે છે. મોહનીય કર્મના ઉદયમાં જીવનો ઉપયોગ જોડાતાં જીવ સ્વ-પરની ભેળસેળ કરી બેસે છે. જે પોતે નથી તેમાં હુંપણાનો આરોપ કરે છે. પરસંયોગમાં 'આ હું છું' અને 'આ માર્ છે' વગેરે અનેક પ્રકારની મિથ્યા માન્યતાઓ કરે છે. 'હું શુદ્ધાત્મા છું' એમ માનવાને બદલે શરીરને 'હું' માને છે. નિજ શુદ્ધાત્માનું ભાન ન હોવાથી વિપરીત માન્યતા અને આચરણમાં સરી પડી કર્મ બાંધે છે. આમ, મોહનીયના કારણે સ્વરૂપભાંતિ તથા રાગાદિ વિભાવ થતાં હોવાથી તે સંસારપરિભ્રમણનું મુખ્ય કારણ થાય છે.

નવીન કર્મનો બંધ મોહનીય કર્મના કારણે થાય છે. બીજાં સાત કર્મ નવીન કર્મબંધનું કારણ થતાં નથી. જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય અને અંતરાય કર્મના કારણે ઊપજેલા ભાવોથી નવો કર્મબંધ થતો નથી. જ્ઞાન-દર્શન-વીર્ય જીવનો સ્વભાવ છે. જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, અંતરાય કર્મોના ક્ષયોપશમથી તે જેટલો પ્રગટ વર્તે છે તે જીવના સ્વભાવનો જ અંશ છે, કર્મોદયજન્ય ઔપાધિક ભાવ નથી અને એ કર્મોના કારણે જેટલો જ્ઞાન-દર્શન-વીર્ય સ્વભાવ પ્રગટ નથી, તેટલાનો તો તે કાળમાં અભાવ હોય છે. હવે સ્વભાવ વડે નવીન કર્મોનો બંધ થતો નથી, કારણ કે નિજસ્વભાવ જો બંધનું કારણ હોય તો બંધથી છૂટવું કઈ રીતે થઈ શકે? વળી, એ કર્મના ઉદયથી જેટલાં જ્ઞાન-દર્શન-વીર્ય અભાવરૂપ છે, તે વડે પણ બંધ થતો નથી, કેમ કે જ્યાં પોતે જ અભાવરૂપ છે, ત્યાં તે અભાવ અન્યનું કારણ કેવી રીતે થાય? તેથી જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય અને અંતરાય કર્મ નવીન કર્મબંધનાં કારણ થતાં નથી.

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૬૮૦-૬૮૧ (ઉપદેશનોંધ-૩૯)

મોહનીય કર્મના ઉદય વડે જીવને અયથાર્થ શ્રદ્ધાનરૂપ મિથ્યાત્વભાવ થાય છે તથા ક્રોધાદિ કષાયભાવ થાય છે. તે ભાવો જીવના અસ્તિત્વમય છે, જીવથી જુદા નથી, જીવ જ તેનો કર્તા છે અને જીવના પરિણમનરૂપ જ એ કાર્ય થાય છે; પરંતુ તે ભાવોનું હોવું મોહનીય કર્મના કારણે જ છે. મોહનીય કર્મ દૂર થતાં તેનો અભાવ થાય છે, માટે એ જીવનો સ્વભાવ નથી, પણ ઔપાધિક ભાવ છે અને તેથી એ ભાવો વડે નવીન કર્મબંધ થાય છે. આમ, મોહનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થયેલા ભાવો બંધમાં કારણભૂત છે.

અધાતી કર્મના ઉદયથી આત્માને બાહ્ય સામગ્રીનો સંયોગ થાય છે. તેમાં શરીરાદિ તો જીવના પ્રદેશો સાથે એક્ક્ષેત્રાવગાહી થઈ, એકબંધનરૂપ હોય છે તથા ઘર, ધન, કુટુંબાદિ આત્માથી ભિન્ન પ્રદેશમાં હોય છે. તે બધાં બંધનાં કારણ થતાં નથી, કારણ કે પરદ્રવ્ય બંધનું કારણ હોઈ શકે નહીં. આત્માને જે મિથ્યાત્વાદિ ભાવ થાય છે, તે જ બંધનના કારણરૂપ છે.

જીવ મોહનીય કર્મના કારણે પોતાને ભૂલી, પરમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટ કલ્પના કરી વિભાવરૂપે પરિણમન કરે છે અને તે જ કર્મબંધનું કારણ છે. જીવના વિકારી ભાવના નિમિત્તે કાર્મણ વર્ગણા (કર્મરજ) કર્મરૂપે પરિણમીને આત્માના પ્રદેશો સાથે જોડાઈ જાય છે. જીવના એક સમયના વિકારી ભાવમાં આયુષ્ય સિવાયનાં સાત કર્મના બંધમાં અને દરેક ભવમાં કોઈ એક વખતે આયુષ્ય સહિત આઠે કર્મના બંધમાં કારણભૂત થવાની તાકાત હોય છે. આયુષ્ય કર્મનો બંધ જીવનમાં એક જ વખત પડે છે, જ્યારે બાકીનાં સાત કર્મોનો બંધ સતત ચાલ્યા કરે છે. એ કેવી રીતે તે જોઈએ —

- (૧) જીવ પોતાના સ્વરૂપની અસાવધાની રાખે છે, તે મોહનીય કર્મના <mark>બંધનું નિ</mark>મિત્ત થાય છે.
- (૨) સ્વરૂપની અસાવધાની હોવાથી જીવ તે સમયે પોતાનું જ્ઞાન પોતા તરફ ન વાળતાં પર તરફ વાળે છે, તે ભાવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના બંધનું નિમિત્ત થાય છે.
- (૩) તે જ સમયે, સ્વરૂપની અસાવધાનીના કારણે જીવ પોતાનું દર્શન પોતા તરફ ન વાળતાં પર તરફ વાળે છે, તે ભાવ દર્શનાવરણીય કર્મના બંધનું નિમિત્ત થાય છે.
- (૪) તે જ સમયે, સ્વરૂપની અસાવધાની હોવાથી જીવ પોતાનું વીર્ય પોતા તરફ ન વાળતાં પર તરફ વાળે છે, તે ભાવ અંતરાય કર્મના બંધનું નિમિત્ત થાય છે.
- (પ) સ્વરૂપની અસાવધાનીના સમયે પર તરફ લક્ષ હોવાથી પરનો સંયોગ થાય છે, તેથી તે સમયનો ભાવ શરીર વગેરે નામ કર્મનું નિમિત્ત થાય છે.

- (૬) જ્યાં શરીર હોય ત્યાં ઊંચ-નીચ આચારવાળા કુળમાં ઉત્પત્તિ હોય, તેથી તે સમયનો વિકારી ભાવ ગોત્ર કર્મના બંધનું નિમિત્ત થાય છે.
- (૭) જ્યાં શરીર હોય ત્યાં શાતા-અશાતા, અનુકૂળતા-પ્રતિકૂળતા વગેરે હોય, તેથી તે સમયનો ભાવ વેદનીય કર્મના બંધનું નિમિત્ત થાય છે.
- (૮) શરીર સંયોગી વસ્તુ છે. જ્યાં સંયોગ હોય ત્યાં વિયોગ પણ હોય જ, તેથી શરીરનો પણ વિયોગ થાય છે. શરીર સાથેના સંયોગની કાળમર્યાદાને આયુષ્ય કહે છે. આયુષ્ય કર્મ બંધાવાના સમયે જીવને જેવા ભાવ થાય તેવી ગતિના આયુષ્યનો બંધ (પછીના ભવનો) પડે છે.

આત્માના આઠે ગુણને વિઘ્ન કરનાર એવા કર્મબંધમાં કારણભૂત થાય છે. બળવાનમાં બળવાન કર્મ મોહનીય હોવાથી જ્યાં મોહનીયનું બળ હોય છે ત્યાં બીજાં કર્મો પણ બળ કરે છે. જ્યાં મોહનીયનું બળ મંદ પડે છે ત્યાં બીજાં કર્મોનું બળ પણ મંદ પડે છે. બીજાં કર્મો મોહનીયનું બળ મંદ પડે છે. બીજાં કર્મો મોહનીયને આધીન છે. મોહનીય વિના બાકીનાં કર્મ પોતપોતાનાં કાર્યની ઉત્પત્તિ નથી કરી શકતાં, માટે જીવનો સાચો શત્રુ તો મોહનીય જ છે. મોહનીય કર્મરૂપ શત્રુનો નાશ થવાથી, જન્મ-મરણની પરંપરારૂપ સંસારની ઉત્પત્તિનું સામર્થ્ય શેષ કર્મોમાં નહીં રહેવાથી તે કર્મો સત્ત્વહીન થઈ જાય છે. મોહનીય કર્મનો ક્ષય થતાં સર્વ કર્મનો નાશ અવશ્ય થાય છે. શ્રીમદ્ કહે છે —

'કર્મ અનંત પ્રકારનાં છે. તેમાં મુખ્યે ૧૫૮ છે. તેમાં મુખ્ય આઠ કર્મપ્રકૃતિ વર્ણવવામાં આવી છે. આ બધાં કર્મમાં મુખ્ય, પ્રાધાન્ય એવું મોહનીય છે; જેનું સામર્થ્ય બીજાં કરતાં અત્યંત છે; અને તેની સ્થિતિ પણ સર્વ કરતાં વધારે છે.

આઠ કર્મમાં ચાર ઘનઘાતી છે. તે ચારમાં પણ મોહનીય અત્યંત પ્રબળપણે ઘનઘાતી છે. મોહનીયકર્મ સિવાય સાત કર્મ છે, તે મોહનીયકર્મના પ્રતાપથી પ્રબળપણે થાય છે. જો મોહનીય ખસે તો બીજાં નિર્બળ થઈ જાય છે. મોહનીય ખસવાથી બીજાંઓનો પગ ટકી શકતો નથી.'

જેમ રાજાને જીતતાં દળ, પુર અને અધિકાર જિતાય છે, તેમ મોહ જીતવાથી સર્વ કર્મ જિતાય છે; તેથી સૌ પ્રથમ મોહનીય કર્મનો નાશ કરવો જોઈએ. મોહનીય કર્મ સ્વરૂપપ્રતીતિ અને સ્વરૂપસ્થિરતાને વિઘ્ન કરનાર હોવાથી, નવીન કર્મબંધનું મુખ્ય કારણ હોવાથી તથા અન્ય કર્મોનો આધાર - આશ્રયદાતા હોવાથી મોહશક્તિનો નાશ કરવો અત્યંત અગત્યનું છે. કારણના નાશથી કાર્ય પણ નષ્ટ થઈ જાય છે, તેથી જીવે

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૪૩ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૬૩,૬૪)

મોહરૂપ શત્રુને જીતવા સતત પ્રયત્નશીલ રહેવું જોઈએ. મોહનીય કર્મને હણવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે કે –

'જ્ઞાનનો ઘણો ઉઘાડ હોય તો જ આત્મજ્ઞાન થાય, અને ઓછું જ્ઞાન હોય તો ન થાય એમ નથી. જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કંઈ જ્ઞાનને વિપરીત કરતું નથી. જ્ઞાનને ઉઘાડ હીન-અધિક હોય તે ગુણ-દોષનું કારણ નથી. જ્ઞાનાવરણીયનો ઉઘાડ તે નિર્જરાનું કે મોક્ષનું કારણ નથી, પણ દર્શનમોહનીયકર્મનો ઉપશમ કે ક્ષયોપશમ પુરુષાર્થ વડે કર્યે ગુણ પ્રગટે છે. તેથી મિથ્યાજ્ઞાન પલટી સુજ્ઞાન થાય છે અને મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટ થાય છે.'

જીવે મોહનીય કર્મને હણવા પુરુષાર્થ કરવો જોઈએ અને તે તેમ કરી શકે એમ છે. કોઈ મનુષ્યમાં ગમે તેટલી શક્તિ હોય પણ જો એ પરતંત્ર હોય તો તેની શક્તિ પોતાની રીતે વાપરી શકતો નથી, પરંતુ જીવ પરતંત્ર નથી. પોતાની અસાવધાનીથી પણ સ્વતંત્રપણે તે કર્મોદયથી પ્રભાવિત થાય છે, માટે તે જાગૃત થઈ બળ કરે તો અવશ્ય કર્મના પ્રભાવથી મુક્ત થઈ શકે છે.

કર્મના પ્રભાવથી જીવને રાગ-દેષાદિ થાય છે એ સત્ય છે, તથાપિ તેના કરતાં પણ મોટું સત્ય એ છે કે જીવ ઉપર કર્મનું અત્યંત પ્રબળ સામાજ્ય સ્થપાઈ જાય તોપણ તે કર્મ આત્મશક્તિને તોડવા ક્યારે પણ સમર્થ થઈ શકતું નથી. તે કર્મસામાજ્ય આત્મ-શક્તિના અખૂટ નિધાનને મિટાવી શકતું નથી. જેમ આકાશમાં વાદળોનું ગાઢ આવરણ પથરાઈ જાય, ધરતી ઉપર રાત જેવું વાતાવરણ છવાઈ જાય, તોપણ વાદળોમાં એવી તાકાત નથી કે સૂર્યને નષ્ટ કરી શકે; તેમ કર્મોનું પ્રગાઢ આવરણ હોય, આત્મા જડવત્ બનેલો દેખાય, તોપણ કર્મમાં એવું સામર્થ્ય નથી કે આત્માના ચૈતન્યસ્વભાવને નષ્ટ કરી શકે. કર્મના ગમે તેટલા પ્રબળ વંટોળથી પણ ચૈતન્યની જ્યોતિ બુઝાતી નથી. જીવની સ્વતંત્રતાની ધારા સતત પ્રવાહિત રહે છે. જો ચૈતન્યસ્વભાવ સ્વતંત્ર અસ્તિત્વ ન ધરાવતો હોત તો કર્મ જ સર્વેસર્વા હોત, પરંતુ આત્માનો સ્વભાવ ક્યારે પણ નાશ પામતો નથી અને તેથી કર્મ આત્મા ઉપર પોતાનો એકાધિકાર જમાવી શકતું નથી. કર્મ આત્મા ઉપર અનેક પ્રકારે પોતાનો પ્રભાવ પાડે છે, પરંતુ આત્માના આ ત્રિકાળી સ્વાધીન સ્વભાવના કારણે કર્મ આત્મા ઉપર એકચકી શાસન કરી શકતું નથી. જ્યારે ચૈતન્ય જાગૃત થાય છે ત્યારે કર્મની સત્તા હચમચી ઊઠે છે.

ततः स एव जेतव्यो बलवान् धीमताऽऽदरात् ।।'

૨- શ્રી કાનજીસ્વામી, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચનો', આઠમી આવૃત્તિ, પૃ.૩૪૩

૧- જુઓ : ભટ્ટારક શ્રી જ્ઞાનભૂષણજીરચિત, 'તત્ત્વજ્ઞાનતરંગિણી', અધ્યાય ૯, શ્લોક ૧૯ 'मोह एव परं वैरी नान्यः कोपि विचारणात् ।

કોઈ પણ રાષ્ટ્રમાં વિદેશીઓનું શાસન ત્યાં સુધી જ રહે છે કે જ્યાં સુધી ત્યાંની પ્રજા જાગી ન હોય, ત્યાંની પ્રજાને જગાડનાર કોઈ નેતા મળ્યો ન હોય. જ્યારે પ્રજા જાગી જાય છે, તેને જગાડનાર સમર્થ વ્યક્તિ મળી જાય છે, ત્યારપછી વિદેશી શાસન ત્યાં ટકી નથી શકતું. તેણે પોતાની સત્તા વહેલી-મોડી છોડવી જ પડે છે. તેમ આત્મા ઉપર મોહનું સામ્રાજ્ય ત્યાં સુધી જ રહે છે કે જ્યાં સુધી તે પોતાની શક્તિ પ્રત્યે જાગૃત થતો નથી, તેને મળતા નથી. આત્મજાગૃતિ આવતાં, સદ્દ્ગુરુ દ્વારા જાગૃત થતાં જ કર્મ ખરવા લાગે છે. ચૈતન્યનો આવો વિકાસ થઈ શકે છે, કારણ કે તે સ્વતંત્ર છે. જો તે સ્વતંત્ર ન હોત તો તેનો વિકાસ ક્યારે પણ શક્ય ન બનત.

પ્રમાદી જીવને આવા દ્રવ્યસ્વતંત્રતાના સિદ્ધાંતો કરતાં કર્મના સિદ્ધાંતો ખૂબ ગમે છે. કર્મસિદ્ધાંતોનું અવળું અર્થઘટન કરી તે પોતાની અધાર્મિકતા પોષે છે. તે કર્મની આડમાં પોતાનો પ્રમાદ છુપાવે છે. તે કહે છે કે 'જ્યાં સુધી કર્મો છે ત્યાં સુધી છુટકારો ન થઈ શકે.' 'જન્મોજન્મનાં કર્મો છે, તે આજે ને આજે તો પૂરાં નહીં થાય.' 'સ્વાભાવિક છે કે જેટલાં કર્મો બાંધ્યાં છે તેટલાં ભોગવવાં તો પડશે.' 'કર્મ માર્ગ આપશે ત્યારે ધર્મ થશે.' 'એકદમ કોઈ ક્રાંતિ ન થઈ શકે.' 'તત્ક્ષણ તો કંઈ મોહ ઘટશે નહીં.' 'ક્રમશઃ આત્મવિકાસ થશે.' 'ક્રમિક વિકાસ થતાં થતાં એક સમય આવશે ત્યારે કંઈક મહાન ઘટના બનશે.' આમ, તેને પુરુષાર્થ કરવાનાં પરિણામ જ ઉત્પન્ન થતાં નથી. વળી, તે દલીલ કરે છે કે જીવને જેવો જેવો કર્મનો ઉદય આવે, તેવા તેવા ભાવ તેને થાય. તે પોતાના રાગ-દ્રેષની જવાબદારી કર્મ ઉપર મૂકે છે. કર્મ આગળ પોતે લાચાર છે એમ ફરિયાદ કરે છે. તે એમ દર્શાવે છે કે તેના ભાવ કર્મના હાથમાં છે. કર્મ જ રાગ-દ્રેષ જગાડે છે અને મટાડે છે. કર્મ જ્યારે, જે રીતે, જેટલા રાગ-દ્રેષ કરાવે; ત્યારે, તે રીતે, તેટલા રાગ-દ્રેષ કરવા પડે છે. તેણે તો ફક્ત કર્મને આધીન વર્તવાનું છે. જેમ સૂરજ તપાવે ત્યારે તપી જવું, વરસાદ પડે એટલે ભીંજાઈ જવું; તેમ કર્મ રાગ-દ્રેષ કરાવે ત્યારે રાગ-દ્રેષ કરવા.

પ્રમાદી જીવ કર્મનો દોષ કાઢે છે, પરંતુ ખરેખર એ કર્મનો દોષ નથી, જીવના પોતાના પુરુષાર્થનો દોષ છે. જીવ પુરુષાર્થ કરવામાં સ્વતંત્ર છે. પોતાનાં પરિણામ કરવામાં પોતે સ્વતંત્ર છે. બહારમાં જે પણ ઉદયો આવે; જેમ કે શરીરમાં રોગ આવે, કોઈને ધન મળે, કોઈને ન મળે; તે બધા ઉદયોને જીવ ફેરવી નથી શકતો, પણ તે વખતે પોતાનાં પરિણામ કેવાં રાખવાં તેમાં તે સ્વાધીન છે. બહારના સંયોગો મળવા, પૈસા મળવા વગેરેમાં પુષ્ય-પાપ કારણ છે, પણ અંતરમાં જે રાગ-દેષ, સંકલ્પ-વિકલ્પ થાય છે તે કર્મો નથી કરાવતાં. કર્મ તેમાં માત્ર નિમિત્ત જ છે. કર્મ જબરદસ્તીથી

આત્માને વિકાર નથી કરાવતાં, જીવ સ્વયં પોતાને ભૂલીને રાગ-દેષ-અજ્ઞાનરૂપ વિકારી પરિશમન કરે છે. જો કર્મ રાગ-દેષ કરાવે તો આત્મા પરાધીન થઈ જાય, પરંતુ આત્મા સ્વતંત્ર છે, સ્વાધીન છે. રાગ-દેષમાં જોડાવું કે ન જોડાવું એ જીવના પોતાના હાથમાં છે. ગમે તેવા સંયોગો આવે તોપણ આકુળતા ન કરવી, ખેદ ન કરવો એ તેના પોતાના હાથની વાત છે. જીવ પોતે જ સ્વતંત્ર રીતે દોષ કરે છે અને તે દોષથી પોતે જ પાછો વળે છે. ગમે તે સંજોગોમાં પણ રાગ-દેષ ન કરવાનો અને શાંતિ રાખવાનો ભગવાનનો ઉપદેશ છે. જો જીવ પોતે કંઈ ન કરી શકતો હોય તો ભગવાનનો અ ઉપદેશ વ્યર્થ જાય. જો કર્મ જ બધું કરાવતું હોય તો તેઓ જીવને દોષ ન કરવાનો ઉપદેશ શા માટે આપે?

જીવને બીક છે કે જો રાગ-દેષની જવાબદારી મારા ઉપર લઈશ તો કોઈ કહેશે કે તો પછી તમે રાગ-દેષને શા માટે દૂર કરતા નથી? રાગ-દેષને જીવ દૂર કરી જ શકે છે એમ સ્વીકારતાં દોષ પોતાની જાતને જ દેવો પડે છે. સ્વીકારવું પડે છે કે કલ્યાણ-પ્રાપ્તિને ટાળનાર પોતે જ છે. તેથી તે જવાબદારી પોતાના માથેથી ઉતારી કર્મ ઉપર નાખે છે. તેને રાગ-દેષ સામે લડવું નથી, તેમાંથી છૂટવા પગલાં લેવાં નથી તે માટેનો આ માત્ર એક બચાવ છે. તે બતાવે છે કે પોતે કશું કરતો નથી, કારણ કે પોતે કશું કરી શકતો નથી, કારણ કે તેને કશું કરવું નથી, તેનામાં કાર્ય ઉપાડવાનો ઉત્સાહ નથી, કાર્યને અંત સુધી લઈ જવાની ધગશ નથી, તેથી તે બધી જવાબદારી કર્મ ઉપર ઢોળી નાખે છે.

કર્મસિદ્ધાંતનું આવું અવળું અર્થઘટન કરી જીવ આ રીતે પુરુષાર્થ કરવાનું ટાળે છે. તે કર્મસિદ્ધાંતની આડ લઈ પોતાના પ્રમાદને પોષવાની સુવિધા ઊભી કરે છે. આમ કરવાથી તેને ઘણી સગવડ રહે છે! તે જેવો છે તેવો રહી શકે છે. તે કષાય કરે છે, પ્રમાદ કરે છે અને બતાવે છે કે કોઈ ઉપાય નથી. સ્વયં રાગ-દેષ કરે છે અને કર્મોને દોષ આપે છે કે 'કર્મોએ મને પકડ્યો છે', 'કર્મો મને તંગ કરી રહ્યાં છે'; પરંતુ તેમાં કર્મોનો તો કોઈ દોષ છે જ નહીં. જીવ સ્વયં રાગ-દેષને આમંત્રણ આપે છે. તેના ઉપર કોઈની જબરદસ્તી કે દબાણ નથી. તે પોતે સ્વતંત્રપણે રાગ-દેષમાં તત્પર રહે છે અને પછી કર્મોને બદનામ કરે છે. જીવ પુરુષાર્થ કરે તો કર્મોએ સાથ છોડવો જ પડે છે. બે ઘડીમાં અનંતાં કર્મો નાશ પામે છે.

આના ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે ખરેખર તો આત્માની અવસ્થામાં ભૂલ છે. એ ભૂલમાં કર્મ નિમિત્ત છે, પણ કર્મ ભૂલ કરાવતું નથી. જીવ ભૂલ કરવાનું છોડી દે તો કર્મ ભૂલ કરાવી શકતું નથી. ભૂલ ટળતાં કર્મનો સંયોગ પણ સ્વયં ટળી જાય છે. આ ભૂલ ટાળવા જીવ પૂર્ણપણે સમર્થ છે. તે સ્વયં શક્તિનો પુંજ છે. તેથી જીવે કર્મબંધનને તોડવું હોય તો આત્માની શક્તિને સમજવી જોઈએ, એને પ્રગટાવવી જોઈએ, એનો ઉપયોગ કરવો જોઈએ. કર્મની કંઈ તાકાત નથી કે જીવનું કાંઈ બગાડી શકે. તેથી જીવે કર્મ આગળ લાચાર ન થતાં શૂરવીરતાથી કર્મની સામે પડવું જોઈએ.

ત્રૌપદીનું અપહરણ થયા પછી, પાંચ પાંડવ અને છકા શ્રીકૃષ્ણ એમ છ જણ ઘાતકી ખંડ ગયા ત્યારે શ્રીકૃષ્ણે પૂછ્યું કે 'હવે લડવા કોણ જાય છે?' ત્યારે પાંડવોએ કહ્યું કે 'અમે જઈએ છીએ, કાં તો આજે પદ્મનાભ રાજાનો જય અને કાં તો અમારો જય.' તેઓ યુદ્ધમાં હાર્યા. શ્રીકૃષ્ણે કહ્યું, 'તમે પ્રથમ શત્રુને - પરને સ્થાપેલા એટલે હાર્યા. હવે હું લડવા જાઉં છું. આજે હું જીતીશ, પદ્મનાભ નહીં.' આમ કહી શ્રીકૃષ્ણે શંખ ફૂંક્યો, યુદ્ધ થયું અને વિજય મેળવ્યો. આ જ પ્રમાણે કેટલાક કહે છે કે 'અમને કર્મ નડે છે, નહીં તો અમે કંઈનું કંઈ કરી નાખીએ.' આમ, પ્રથમથી જ કર્મના નામની પોક મૂકે છે. પહેલેથી જ પુદ્દગલને સ્થાપે છે, પછી તો હારવાનું જ રહેને! જ્યાં પોતાના અનંત સામર્થ્યનો સ્વીકાર નથી ત્યાં ધર્મનો પ્રારંભ પણ કઈ રીતે થઈ શકે? જીવ અનંત વીર્ય - અનંત શક્તિનો ધણી છે, તેના મોઢે કર્મ અને પામરતાની વાત ન શોભે.

આત્માની શક્તિ અસીમિત છે. કર્મ બાંધનાર પણ આત્મા જ છે અને કર્મને તોડનાર પણ આત્મા જ છે. જીવે બંધનને જાતે ઉત્પન્ન કરેલું હોવાથી તે તેને તોડી શકે એમ છે. અનંત જીવોએ આત્મસાધના દ્વારા તે બંધનને પોતે નષ્ટ કરી પરમાત્મ-પદ પ્રાપ્ત કર્યું છે. તેથી જીવે કર્મના બંધનને છેદવાનું લક્ષ રાખવું જોઈએ. મોહનીય કર્મ જ સર્વ કર્મોમાં મુખ્ય હોવાથી તેને હણતાં અન્ય કર્મો પણ હણાઈ જાય છે અને જીવને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. મોહનીય કર્મના નાશ વિષે શ્રીમદ્દ કહે છે —

'મોહનીચકર્મ જે મહા જોટાવર તેમ ભોળું પણ છે, તે તરત ખપાવી શકાય છે. જેમ તેની આવણી, વેગ આવવામાં જબ્બર છે, તેમ તે જલદીથી ખસી પણ શકે છે. મોહનીચકર્મનો તીવ્ર બંધ હોય છે, તોપણ તે પ્રદેશબંધ ન હોવાથી તરત ખપાવી શકાય છે.⁷⁴

મોહનીયનો નાશ એ જ મોક્ષનો ઉપાય હોવાથી શ્રીગુરુ હવે પછીની ગાથામાં તેને હણવાની વિધિ કહેશે. શ્રીગુરુ મોહનીય કર્મ હણવાનો પાઠ આપે ત્યારે તે પાઠ એકાગ્ર ચિત્તે ગહણ કરી સાધનાનું સ્વરૂપ યથાર્થપણે સમજી લેવું જોઈએ. શ્રીગુરુ પાસેથી મળેલો પાઠ પાકો કરવો જોઈએ. માત્ર પાઠનું શ્રવણ-વાંચન કર્યા કરે અને મળેલો પાઠ પાકો ન કરે તો ન ચાલે. મળેલો પાઠ પાકો કરે તો જ મોક્ષમાર્ગે આગળ વધી શકાય. મોહનીય કર્મને હણવાનો પાઠ અંગીકાર કરવાથી જ પૂર્ણ સિદ્ધિ પ્રાપ્ત ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૭૫૮ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૨૦૧)

થાય છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'કર્મ અનંત પ્રકારનાં, જીવ અનંત પ્રકાર; થયો જેહથી ભાવને, ગતિ જાતિ આધાર. કર્મરૂપ સંસાર છે, તેમાં મુખ્યે આઠ; જ્ઞાનાવરણાદિ કહ્યાં, કર્મગ્રંથમાં પાઠ. પ્રકૃતિ સ્થિતિ અનુભાગનો, પ્રદેશ બંધ સહિત; તેમાં મુખ્યે મોઢનીય, ઘોર ભવાબ્ધિ નિમિત્ત. મદિરા પાને મત્ત જે, તે ડહાપણનો દાટ; વાળે તેવું મોહનીય, હણાય તે કહું પાઠ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૩૯-૨૪૦ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૦૫-૪૦૮)

दर्भ भरे। है। क्रिक लेट प्ले, द्विन स्तावित्र नाम, एक्के प्लेट बोनवासमा, अन्ध्रे छपाम आम. ગાથા ૧૦૨માં શ્રીગુરુએ જણાવ્યું કે જડ કર્મો અનંત પ્રકારનાં છે અને ભૂમિકા તેના જ્ઞાનાવરણીયાદિ મુખ્ય આઠ પ્રકાર છે. તે આઠ પ્રકારમાં પણ મોહનીય કર્મ મુખ્ય છે, કારણ કે સર્વ કર્મના બંધનું કારણ એકમાત્ર મોહનીય કર્મ છે. મોહનીય કર્મના ઉદયમાં જોડાણ કરવાથી જીવ સ્વસ્વરૂપમાં અસાવધ થાય છે અને તેથી તેને નવીન કર્મનો બંધ થાય છે.

આમ, જ્ઞાનાવરણીયાદિ સર્વ કર્મના બંધમાં મોહનીય કર્મ નિમિત્ત બનતું હોવાથી, સર્વ કર્મના ક્ષયરૂપ મોક્ષની પ્રાપ્તિ માટે મોહનીય કર્મને હણવાનો ઉપાય જાણવો અત્યંત આવશ્યક છે. મોહનીય કર્મના નાશનો અચૂક ઉપાય બતાવતાં પ્રસ્તુત ગાથામાં શ્રીગુરુ કહે છે –

ાથા 'કર્મ મોહનીય ભેદ બે, દર્શન ચારિત્ર નામ; હણે બોધ વીતરાગતા, અચૂક ઉપાય આમ.' (૧૦૩)

તે મોહનીય કર્મ બે ભેદે છે :— એક 'દર્શનમોહનીય' એટલે 'પરમાર્થને અર્થ વિષે અપરમાર્થબુદ્ધિ અને અપરમાર્થને વિષે પરમાર્થબુદ્ધિરૂપ'; બીજી 'ચારિત્રમોહનીય'; 'તથારૂપ પરમાર્થને પરમાર્થ જાણીને આત્મસ્વભાવમાં જે સ્થિરતા થાય, તે સ્થિરતાને રોધક એવા પૂર્વસંસ્કારરૂપ કષાય અને નોકષાય' તે ચારિત્ર-મોહનીય.

દર્શનમોહનીયને આત્મબોધ, અને ચારિત્રમોહનીયને વીતરાગપણું નાશ કરે છે. આમ તેના અચૂક ઉપાય છે, કેમકે મિશ્ચાબોધ તે દર્શનમોહનીય છે; તેનો પ્રતિપક્ષ સત્યાત્મબોધ છે. અને ચારિત્રમોહનીય રાગાદિક પરિણામરૂપ છે, તેનો પ્રતિપક્ષ વીતરાગભાવ છે. એટલે અંધકાર જેમ પ્રકાશ થવાથી નાશ પામે છે, -તે તેનો અચૂક ઉપાય છે, - તેમ બોધ અને વીતરાગતા દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયરૂપ અંધકાર ટાળવામાં પ્રકાશસ્વરૂપ છે; માટે તે તેનો અચૂક ઉપાય છે. (૧૦૩)

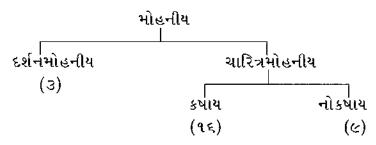
સર્વ કર્મોમાં રાજા સમાન એવા મોહનીય કર્મના કાર્યને બે પ્રકારે વિભક્ત કરી શકાય છે - શ્રદ્ધાની વિમુખતા અને ચારિત્રની વિમુખતા. બન્નેમાં વિમુખતા સામાન્ય છે, માટે તે બન્નેને અભેદપણે એક મોહનીય કર્મ તરીકે ગણી, તે બે પેટા વિભાગને 'દર્શનમોહ' અને 'ચારિત્રમોહ' કહેવામાં આવે છે. પરમાર્થને વિષે અપરમાર્થબુદ્ધિ અને અપરમાર્થને વિષે પરમાર્થબુદ્ધિ - એવી વિપરીત માન્યતા તે દર્શન-મોહ છે અને આત્મામાં સ્થિર ન થવા દે તેવા કષાય-નોકષાયમાં પ્રવર્તન તે ચારિત્ર-મોહ છે. દર્શનમોહનીય તે સંસારની જડ છે. વિપરીત સમજણના કારણે રાગદેષરૂપ વિપરીત પ્રવર્તન થાય છે અને ભવચક ગતિમાન રહે છે. અજ્ઞાનના કારણે જીવ રાગ અને દેષની ચક્કીમાં પિસાતો રહે છે. પાંચ ઇન્દ્રિયોનો તેના વિષયભૂત પદાર્થો સાથે સંસ્પર્શ થતાં તથા મનનો કલ્પનાઓ સાથે સંસર્ગ થતાં તરત જ ચિત્તમાં સંવેદના ઉત્પન્ન થાય છે. ઇષ્ટ-અનિષ્ટ મનાતા વિષયો પરત્વે રાગ-દેષ ઉત્પન્ન થાય છે અને તેથી ભવચક ચાલુ રહે છે. આ ભવચકને રોકવા માટે અંતરમાં ધર્મચક જાગૃત થવું જરૂરી છે. ધર્મચક્ર ગતિમાન કરવા અર્થે દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયનો નાશ કરવાનો અચૂક ઉપાય જાણવો અત્યંત આવશ્યક છે.

પ્રકાશ થવાથી અંધકાર નાશ પામે છે, અર્થાત્ પ્રકાશ અંધકારનો નાશ કરવાનો અમોઘ ઉપાય છે; તેમ દર્શનમોહનીય જે અજ્ઞાનરૂપ છે, તેને હણવા માટે બોધ અને ચારિત્રમોહનીય જે રાગ-દ્વેષરૂપ છે. તેને હણવા માટે વીતરાગતા એ અમોઘ ઉપાય છે. જેમણે દર્શનમોહને હણ્યો છે એવા સદ્ગુરના અજ્ઞાનહારી બોધ ઉપર સમ્યક વિચારણા કરતાં જીવને પોતાની ભૂલો સમજાય છે અને તેમણે આપેલી સમજણને અંતરંગ ઉત્સાહ સહિત પ્રયોગમાં મૂકતાં સ્વસ્વરૂપની અનુભૂતિ થાય છે. સત્યાત્મબોધ થતાં દર્શનમોહનીય કર્મ હણાય છે. સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થતાં જ મિથ્યા દર્શન(મિથ્યાત્વ)નો અભાવ થાય છે. મિથ્યાત્વ જ બધા દોષોમાં અધિક બળવાન દોષ છે અને તે જ દીર્ઘ સંસારની સ્થાપના કરે છે, તેથી તેનો નાશ થતાં સંસારનો કિનારો આવી જાય છે. જેવો મિથ્યાત્વનો નાશ થાય છે કે મૂળ કારણ રહેતું ન હોવાથી ચારિત્રમોહનીય પણ અધિક ટકતો નથી. જેમ જેમ જીવ આત્મસ્વરૂપનો ઉગ્ર આશ્રય કરે છે, તેમ તેમ વીતરાગતા વધતી જાય છે, રાગાદિ ઓછા થતા જાય છે અને ચારિત્રમોહનીય તુટતા જાય છે. આમ, શુદ્ધાત્મ-સ્વરૂપની યથાર્થ સમજણ અને સ્થિરતા એ જ મોહનીય કર્મના ક્ષયનો અચક ઉપાય છે. સાચી શ્રદ્ધા અને સાચું પ્રવર્તન થતાં, અર્થાતુ સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યક્-ચારિત્રરૂપ રત્નત્રયની પ્રાપ્તિ થતાં જીવ અનંત કાળ માટે મુક્તદશામાં અનંત ઐશ્વર્ય અને સુખમાં બિરાજમાન થઈ કૃતકૃત્ય થાય છે.

વિશેષાર્થ તાડવૃક્ષ ઘણું મોટું હોવા છતાં પણ તેની ટોચ ઉપર આવેલા તેના વિશેષાર્થ મર્મસ્થાનમાં એક સોઈ ભોંકવામાં આવે તો આખું તાડવૃક્ષ સુકાઈ જાય છે, કારણ કે તે છેદથી તે વૃક્ષને પોષણ મળવાનો માર્ગ ખંડિત થવાથી પોષક રસ મળતો અટકી જાય છે; તેમ આ સંસારવૃક્ષની ધોરી નસરૂપ મોહનીય કર્મને સમ્યક્

પુરુષાર્થરૂપી સોઈ ભોંકવામાં આવે તો સંસારવૃક્ષને પોષણ મળતું અટકી જાય છે અને તે શીઘ્ર નાશ પામે છે.^૧

મોહનીય એટલે મૂંઝવનાર. જે કર્મ શ્રદ્ધામાં કે ચારિત્રમાં મૂંઝવે, અર્થાત્ તત્ત્વાનુસારી માન્યતા ન થવા દે અથવા તત્ત્વાનુસારી પ્રવૃત્તિ ન કરવા દે તે મોહનીય કર્મ છે. તે આત્માને મૂર્છિત કરી વિકલ કરે છે, વ્યાકુળ કરે છે. આ મોહનીય કર્મના બે પ્રકાર છે - દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીય. દર્શનમોહનીય કર્મના નિમિત્તે જીવનો શ્રદ્ધા ગુણ વિકૃત બને છે અને ચારિત્રમોહનીય કર્મના નિમિત્તે જીવનો ચારિત્ર ગુણ વ્રિકૃત થાય છે. મોહનીય કર્મના આ બે મુખ્ય ભેદ છે. તેના ઉત્તર ભેદો અઠ્યાવીસ છે. તે આ પ્રમાણે –



જીવાદિ તત્ત્વોની શ્રદ્ધામાં મૂંઝવણ ઊભી કરે એટલે કે ઉત્પન્ન થયેલી શ્રદ્ધા (સમ્યક્ત્વ)માં દૂષણ લગાડે અથવા મૂળથી જ શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન ન થવા દે તે દર્શન-મોહનીય. દર્શનમોહનીયના ત્રણ પ્રકાર છે –

- (૧) મિથ્યાત્વ મોહનીય જે કર્મના ઉદયથી જીવાદિ તત્ત્વ વિષે યથાર્થ શ્રદ્ધા ન થાય અને વિપરીત માન્યતા થાય તે મિથ્યાત્વ મોહનીય.
- (૨) મિશ્ર મોહનીય જે કર્મના ઉદયથી જીવાદિ તત્ત્વ વિષે આ જ સત્ય છે એવી શ્રદ્ધા ન થાય તથા આ અસત્ય છે એવી અશ્રદ્ધા પણ ન થાય, કિંતુ મિશ્ર ભાવ રહે તે મિશ્ર મોહનીય.
- (3) સમ્યક્ત્વ મોહનીય જે કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થયેલા સમ્યક્ત્વમાં શ્રદ્ધામાં દૂષણ લાગે તે સમ્યક્ત્વ મોહનીય. આ કર્મના ઉદયથી સમ્યક્ત્વ નષ્ટ થતું નથી પણ દૂષિત થાય છે.

આત્મસ્થિરતામાં મૂંઝવણ ઊભી કરે, એટલે કે ઉત્પન્ન થયેલી સ્થિરતામાં દૂષણ ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીરયિત, 'પ્રશમરતિ', શ્લોક ૨૬૭

> 'मस्तकसूचिविनाशात्तालस्य यथा धुवो भवति नाशः । तद्धतु कर्मविनाशो हि मोहनीयक्षये नित्यम् ।।'

લગાડે કે અતિચાર લગાડે અથવા તો મૂળથી જ સ્થિરતા થવા ન દે તે ચારિત્રમોહનીય. ચારિત્રમોહનીયના મુખ્ય બે પ્રકાર છે - ક્રોધાદિ કષાય તથા હાસ્યાદિ નોકષાય. તે આ પ્રમાણે —

(i) કષાય ચારિત્રમોહનીય – કષ્ એટલે સંસાર અને આય એટલે લાભ. જેનાથી સંસારનો લાભ થાય, સંસારની વૃદ્ધિ થાય, સંસારનું પરિભ્રમણ પ્રાપ્ત થાય તે કષાય ચારિત્રમોહનીય છે. કષાયના ચાર ભેદ છે - ક્રોધ, માન, માયા, લોભ. ક્રોધ એટલે ગુસ્સો, અક્ષમા; માન એટલે અહંકાર, ગર્વ; માયા એટલે દંભ, કપટ અને લોભ એટલે તૃષ્ણા, અસંતોષ. ચંડાળ ચોકડીરૂપ આ ચારે કષાયની ચાર સ્થિતિઓ છે - તીવતમ, તીવતર, મંદ અને મંદતર. શાસ્ત્રીય પરિભાષામાં તેના ચાર નામ આ પ્રમાણે છે - અનંતાનુબંધી, અપ્રત્યાખ્યાની, પ્રત્યાખ્યાની અને સંજ્વલન.

આમ, કષાયના સોળ પ્રકાર થાય છે. (૧ થી ૪) જે કષાયના ઉદયથી જીવના સમ્યગ્દર્શનનો ઘાત થાય તે અનંતાનુબંધી કોધ-માન-માયા-લોભ કષાય કહેવાય છે. આ કષાય અનંત સંસારનો અનુબંધ કરાવતા હોવાથી અનંતાનુબંધી કહેવાય છે. (૫ થી ૮) જે કષાયના ઉદયથી જીવને દેશચારિત્ર(અશુદ્રતરૂપ ચારિત્ર)નો સંભવ ન રહે તે અપ્રત્યાખ્યાની કોધ-માન-માયા-લોભ કષાય કહેવાય છે. જીવ પ્રત્યાખ્યાનનું મહત્ત્વ સમજતો હોવા છતાં આ કષાયના ઉદયથી જીવ કોઈ પણ પ્રકારનું પ્રત્યાખ્યાન ગ્રહણ કરી શકતો નથી. (૯ થી ૧૨) જે કષાયના ઉદયથી આત્માના સકલ ચારિત્ર(મહાદ્રતરૂપ ચારિત્ર)નો ઘાત થાય તે પ્રત્યાખ્યાની કોધ-માન-માયા-લોભ કષાય કહેવાય છે. આ કષાયના ઉદયથી જીવ સર્વવિરતિ ગ્રહણ કરી શકતો નથી. (૧૩ થી ૧૬) જે કષાયના ઉદયથી આત્માના યથાખ્યાત ચારિત્રનો ઘાત થાય તે સંજ્વલન કોધ-માન-માયા-લોભ કષાય કહેવાય છે. આ કષાયના ઉદયથી આત્માના યથાખ્યાત ચારિત્રનો ઘાત થાય તે સંજ્વલન કોધ-માન-માયા-લોભ કષાય કહેવાય છે. આ કષાયના ઉદયથી ચારિત્રમાં અતિચાર લાગે છે, તેથી જિનેશરે જેવું કહ્યું છે તેવું નિરતિચાર ચારિત્ર - યથાખ્યાત ચારિત્ર પ્રાપ્ત થતું નથી, અર્થાત્ અલ્પ કષાયના કારણે આત્મસ્થિરતા અખંડપણે રહેતી નથી.

આમ, અનંતાનુબંધી આદિ ચાર પ્રકારના કષાયો અનુક્રમે સમ્યગ્દર્શન, દેશ-વિરતિ, સર્વવિરતિ અને યથાખ્યાત ચારિત્રને રોકે છે. આ ચારે કષાયોની તરતમતા સુગમપણે સમજાય તે અર્થે કર્મગ્રંથમાં કષાયના ચાર પ્રકારોને ઉપમા દ્વારા વર્ણવ્યા છે.°

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી દેવેન્દ્રસૂરીશ્વરજીવિરચિત, 'કર્મગ્રંથ', ભાગ-૧, ગાથા ૧૯,૨૦

'जल-रेणु-पुढवी-पव्वय-राइ-सरिसो-चउ-व्विहो

तिणिस-लया-कटुट्टिअ-सेल-त्थंभोवमो माणो ।।

मायाऽवलेहि-गो-मुत्ति-मिंढ-सिंग-धण-वेस-मूल-समा ।

लोहो हलिइखंजण-कद्दम-किमि-राग-सामाणो (सारिच्छो) ।।'

તે આ પ્રમાણે છે -

કષાય	ક્રોધ	માન	માયા	લોભ
અનંતાનુબંધી	પથ્થરમાં પડેલી તિરાડ સમાન	પથ્થરના થાંભલા સમાન	વાંસના મૂળ સમાન	કિરમજીના રંગ સમાન
અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ	જમીનમાં પડેલી તિરાડ સમાન	હાડકા સમાન	ઘેટાનાં શીંગડાં સમાન	ગાડાના ચક્રની કીલ સમાન
પ્રત્યાખ્યાનાવરણ	રેતીમાં પડેલી રેખા સમાન	કાષ્ઠ સમાન	ગોમૂત્રની ધાર સમાન	કાજળ સમાન
સંજ્વલન	જળમાં પડેલી રેખા સમાન	નેતરની સોટી સમાન	લાકડાની છોલ સમાન	હળદર સમાન

કોષ્ટકમાં જણાવ્યા પ્રમાણે અનંતાનુબંધી ક્રોધ પથ્થરમાં પડેલી તડ સમાન છે જે કોઈ કાળે પણ ન મટે, અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ ક્રોધ જમીનમાં પડેલી રેખા સમાન છે જે મહાકષ્ટે મટે, પ્રત્યાખ્યાનાવરણ ક્રોધ રેતીમાં પડેલી રેખા સમાન છે જે થોડા પ્રયત્નથી મટે અને સંજ્વલન ક્રોધ જળમાં પડેલી રેખા સમાન છે જે તરત જ વિલય પામે.

અનંતાનુંબંધી માન પથ્થરના થાંભલા સમાન છે જે કોઈ રીતે પણ નમે નહીં, અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ માન હાડકા સમાન છે જે મહાકષ્ટે નમે, પ્રત્યાખ્યાનાવરણ માન કાષ્ટ સમાન છે જે થોડા પ્રયત્નથી નમે અને સંજ્વલન માન નેતરની સોટી સમાન છે જે જેમ નમાવીએ તેમ નમે.

અનંતાનુબંધી માયા વાંસના મૂળ સમાન વક છે જે પોતાની કુટિલતા ક્યારે પણ છોડે નહીં, અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ માયા ઘેંટાના શીંગડા સમાન વક છે જે મહાકષ્ટે સીધી થાય, પ્રત્યાખ્યાનાવરણ માયા ગોમૂત્રની ધારા સમાન છે જે થોડા પ્રયત્નથી પોતાની વકતા છોડે અને સંજ્વલન માયા લાકડાની છોલ સમાન છે જે સહજતાથી પોતાની વકતા છોડે.

અનંતાનુબંધી લોભ કપડાને કરેલા કિરમજીના રંગ સમાન છે જેનો રંગ ક્યારે પણ ટળે નહીં, અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ લોભ ગાડાના ચક્રની કીલ સમાન છે જે મહાકષ્ટે ટળે, પ્રત્યાખ્યાનાવરણ લોભ કપડાને લાગેલા કાજળ સમાન છે જે થોડા પ્રયત્નથી ટળે અને સંજ્વલન લોભ હળદરના રંગ સમાન છે જે તરત ટળી શકે.

આ પ્રમાણે કષાય ચારિત્રમોહનીયના સોળ પ્રકાર છે.

(ii) નોકષાય ચારિત્રમોહનીય — અહીં 'નો' શબ્દના ત્રણ અર્થ થાય છે - (૧) 'નો' એટલે અલ્પ. ઉગ્રતા વગરના કષાય તે નોકષાય. (૨) 'નો' એટલે સાહચર્ય. કષાયોની સાથે રહી જે પોતાનું ફળ બતાવે તે નોકષાય. નોકષાયોના વિપાક કષાયોના આધારે હોય છે. જો કષાયનો વિપાક મંદ હોય તો નોકષાયનો વિપાક પણ મંદ હોય છે અને કષાયનો વિપાક તીવ્ર હોય તો નોકષાયનો વિપાક પણ તીવ્ર હોય છે. આમ, કષાયોના આધારે ફળ આપતા હોવાથી નોકષાયની પ્રધાનતા નથી. (૩) 'નો' એટલે પ્રેરણા. જે કષાયોને પ્રેરણા કરે, કષાયોના ઉદયમાં નિમિત્ત બને તે નોકષાય.

હાસ્યાદિ નવ નોકષાય અકષાય વેદનીય પણ કહેવાય છે. નોકષાયના નવ પ્રકાર આ પ્રમાણે છે –

- (૧) હાસ્ય નોકષાય જેના ઉદયથી જીવને હાસ્યભાવ ઉદ્દભવે.
- (૨) રતિ નોકષાય જેના ઉદયથી જીવને પરપદાર્થમાં આસક્તિ થાય.
- (૩) અરતિ નોકષાય જેના ઉદયથી જીવને પરપદાર્થમાં અણગમો થાય.
- (૪) શોક નોકષાય જેના ઉદયથી જીવને શોક થાય.
- (પ) ભય નોકષાય જેના ઉદયથી જીવને બીક લાગે.
- (૬) જુગુપ્સા નોકષાય જેના ઉદયથી જીવને જુગુપ્સા થાય અથવા સૂગ ચડે.
- (૭) પુરુષવેદ નોકષાય જેના ઉદયથી સ્ત્રીસેવનની લાલસા થાય.
- (૮) સ્ત્રીવેદ નોકષાય જેના ઉદયથી પુરુષસેવનની લાલસા થાય.
- (૯) નપુંસકવેદ નોકષાય જેના ઉદયથી સ્ત્રી-પુરુષ બન્નેના સેવનની ઇચ્છા થાય.

આ પ્રમાણે દર્શનમોહનીયના ત્રણ, કષાય ચારિત્રમોહનીયના સોળ અને નોકષાય ચારિત્રમોહનીયના નવ પ્રકાર મળીને મોહનીયના અઠ્યાવીસ ભેદ થાય છે. દર્શન-મોહનીયના નિમિત્તથી મિથ્યાત્વભાવ, અર્થાત્ અજ્ઞાન અને ચારિત્રમોહનીયના નિમિત્તથી કષાય-નોકષાયભાવ, અર્થાત્ રાગ-દ્રેષ થાય છે. માયા, લોભ એ બે કષાય તથા હાસ્ય, રતિ, ત્રણ વેદ એ પાંચ નોકષાયનો સમાવેશ રાગમાં અને કોધ, માન એ બે કષાય તથા અરતિ, શોક, ભય, જુગુપ્સા એ ચાર નોકષાયનો સમાવેશ દ્રેષમાં થાય છે. આમ, ગાથા ૧૦૦માં શ્રીમદે કહ્યું હતું કે રાગ, દ્રેષ અને અજ્ઞાનથી જીવને કર્મબંધ થાય છે, તે જ વાત આ ગાથાની પહેલી પંક્તિમાં શ્રીમદે કર્મસિદ્ધાંત અનુસાર જણાવી છે, જેથી પાઠકના હૃદયમાં સુગમતાથી સિદ્ધાંતતત્ત્વનો પ્રવેશ થાય. ત્યારપછી બીજી પંક્તિમાં આ બંધભાવોનો નાશ કરવાનો અચૂક ઉપાય દર્શાવ્યો છે. દર્શનમોહનીય અને ચારિત્ર-

મોહનીયના ક્ષયનો અચૂક ઉપાય આ ગાથાના સંદર્ભમાં હવે સમજીએ.

દર્શનમોહ

જીવ અનાદિથી સંસારમાં પરિભ્રમણ કરી રહ્યો છે. તે પરિભ્રમણનું મૂળ કારણ મિથ્યાત્વ છે. સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થવાથી તેનો નાશ થાય છે અને તેથી પરિભ્રમણનો અંત આવે છે, અર્થાત્ મોક્ષ થાય છે; તેથી જ સમ્યગ્દર્શનને મોક્ષનું મૂળ કહ્યું છે. સમ્યગ્દર્શનના પ્રતિબંધક ભાવ એવા દર્શનમોહ(મિથ્યાત્વ)ને પુષ્ટ કરનારાં પરિણામો કેવાં હોય છે? તેમજ તે મિથ્યાત્વભાવમાં રહેલી શક્તિને તોડવારૂપ પરિણામો કેવાં હોય છે? તે આત્માર્થી જીવે અવશ્ય સમજવા યોગ્ય છે.

દર્શન = આત્માની યથાતથ્ય પ્રતીતિ. દર્શનમોહ = સ્વરૂપની ભ્રાંતિ. (વિપરીત માન્યતા, મિથ્યાત્વ) દર્શનમોહના નાશનો ઉપાય = આત્મબોધ. (સમ્યગ્દર્શન તથા સમ્યગ્જ્ઞાન)

દર્શનમોહનીય કર્મના ઉદયમાં જોડાવાથી જીવને મિથ્યાત્વભાવ થાય છે, જેથી જીવ તત્ત્વનું વિપરીત શ્રદ્ધાન કરે છે. તે વસ્તુસ્વરૂપની યથાર્થ પ્રતીતિ ન કરતાં અન્યથા પ્રતીતિ કરે છે. તે જેમ છે તેમ માનતો નથી, પણ જેમ નથી તેમ માને છે. અભિપ્રાયની આ ભૂલના કારણે તેને પરમાર્થને વિષે અપરમાર્થબુદ્ધિ અને અપરમાર્થને વિષે પરમાર્થ બુદ્ધિ; ધર્મને વિષે અધર્મબુદ્ધિ અને અધર્મને વિષે ધર્મબુદ્ધિ; કલ્યાણને વિષે અકલ્યાણ- બુદ્ધિ અને અકલ્યાણને વિષે કલ્યાણબુદ્ધિ થાય છે. વિપરીત અભિપ્રાયના કારણે તેને દેહમાં આત્મબુદ્ધિ, અનિત્યમાં નિત્યબુદ્ધિ અને પરમાં સુખબુદ્ધિ થાય છે.

મિથ્યાત્વના કારણે જીવ સ્વ-પરનું ભેદજ્ઞાન કરી શકતો નથી. પોતે એક આત્મા તથા અનંતપુદ્દ્ગલપરમાણુમય શરીર - એ બન્નેના સંયોગરૂપ જે મનુષ્યાદિ પર્યાય નીપજે છે, એ પર્યાયને જ તે પોતાનું સ્વરૂપ માને છે. અમૂર્ત પ્રદેશોનો પુંજ, પ્રસિદ્ધ જ્ઞાનાદિ ગુણોનો ધારક, અનાદિ નિધાન દ્રવ્ય પોતે છે તથા મૂર્ત પુદ્દગલદ્રવ્યોનો પિંડ, પ્રસિદ્ધ જ્ઞાનાદિથી રહિત એવું શરીર કે જે પોતાનાથી સર્વથા પર છે; તે છતાં એ બન્નેના સંયોગરૂપે ઉદ્દભવેલી અનેક પ્રકારની પર્યાયોમાં તે અહંબુદ્ધિ કરે છે. શરીરમાં વર્ણાદિનું તથા પરમાણુઓનું પલટાવું અનેક પ્રકારે થયા કરે છે. એ સર્વ પુદ્દગલની અવસ્થાઓ છે, પણ તે બધાને જીવ પોતાની અવસ્થાઓ માને છે. જ્ઞાન-દર્શનની તેની પ્રવૃત્તિઓ ઇન્દ્રિય અને મન દ્વારા થાય છે, તેથી તે એમ માને છે કે 'ત્વચા, જીભ, નાસિકા, નેત્ર, કાન અને મન એ બધાં મારાં અંગ છે, એ વડે હું જોઉ-જાણું છું.' આમ, તે સ્વભાવ-પરભાવનો વિવેક કરી શકતો નથી. જ્ઞાનાદિ પોતાના ગુણો અને રાગાદિ ઔપાધિક ભાવ વચ્ચેનો ભેદ તે જાણતો નથી. વળી, પોતાનાથી પ્રત્યક્ષ ભિન્ન

એવાં ધન-કુટુંબાદિમાં તે મમત્વ કરે છે કે 'આ બધાં મારાં છે'; પણ એ સર્વે કોઈ પણ પ્રકારથી તેનાં થતાં નથી.

સ્વરૂપની ભાંતિ જીવને અનાદિથી છે. અનાદિ કાળના પરિભ્રમણમાં તેણે ક્યારે પણ સ્વનો પક્ષ લીધો નથી, સત્ની અનન્ય પ્રેમે અવિચ્છિન્ન ભક્તિ સેવી નથી. પરિણામે તેની વૃત્તિ અનાદિ કાળથી પરરૂપે પરિણામે છે. તેની ચેતના પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને છોડી સંસારી વસ્તુઓમાં અને તે વસ્તુઓ પ્રત્યેના રાગાદિ ભાવોમાં તન્મય થાય છે. દષ્ટિની વિપરીતતાના કારણે જીવ બહાર જ અટવાઈ જાય છે. અંતર્દષ્ટિની ઊણપના કારણે જે મહત્ત્વપૂર્ણ તત્ત્વ છે તેને તે જોઈ શકતો નથી. જે મહાન તત્ત્વ અંદર છે, તેને જોવાથી-અનુભવવાથી વંચિત રહી જાય છે. પ્રાપ્ત કરવા જેવો એકમાત્ર આત્મા છે તેને તે પ્રાપ્ત નથી કરતો અને લક્ષ્મી, અધિકારાદિ પાછળ પડી ખુવાર થતો જાય છે. તેણે સંસારક્ષેત્રે ગમે તેટલું પ્રાપ્ત કર્યું હોય તોપણ તે અસફળતા જ છે, કારણ કે તેનાથી તેણે બેહોશી જ વધારી છે, અંશમાત્ર જાગૃતિ કેળવી નથી. મિથ્યા માન્યતાના કારણે તેની વ્યાકુળતામાં વધારો થતો જ રહ્યો છે અને તે એને કોઈ રીતે અટકાવી શકતો નથી. એમાં તેને નિષ્ફળતા જ મળે છે.

આ પ્રમાણે દર્શનમોહના ઉદયથી જીવને વિપરીત તત્ત્વશ્રદ્ધાનરૂપ મિથ્યા ભાવ થાય છે. તે તત્ત્વોનું જેવું યથાર્થ સ્વરૂપ છે તેવી પ્રતીતિ નથી કરતો, પણ અન્યથા પ્રતીતિ કરે છે. આ મિથ્યા દર્શનરૂપ ઊંધો અભિપ્રાય તે જ મિથ્યા બોધ છે, જે સમ્યક્ બોધ વડે હણાય છે. દર્શનમોહનો નાશ સમ્યક્ બોધથી થાય છે એમ શ્રીગુરુએ કહ્યું, ત્યાં 'બોધ' શબ્દનો અત્યંત સૂચક અર્થ છે અને તેથી તેનો પરમાર્થ સમજવા યોગ્ય છે. અહીં સમ્યક્ બોધ આત્મતત્ત્વના સંબંધમાં કહેવામાં આવ્યો છે. શ્રી જિનેશ્વરદેવે પ્રતિપાદિત કરેલું આત્માનું શુદ્ધ જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપ ગુરુગમે સમજી, ચિત્તમાં અવધારી, સંશય-વિભામ-વિમોહથી ઉત્પન્ન થતી અનેક વિપરીત માન્યતાઓ ટાળી; શુદ્ધ, નિર્મળ, નિર્વિકારી, અખંડ, નિશ્વલ, જ્યોતિસ્વરૂપ આત્મા જે પ્રકારે છે તે પ્રકારે યથાર્થ જાણવો-શ્રદ્ધવો અને તે રૂપે તેનો અનુભવ કરવો એ સમ્યક્ બોધ છે અને તે બોધ મિથ્યા બોધને, અર્થાત્ દર્શનમોહને હશે છે.

અનાદિથી ચાર ગતિમાં રખડતો જીવ કષાયથી દુઃખી થઈ રહ્યો છે. દુઃખમાં રખડતાં રખડતાં તેને થાક લાગે છે અને તેને ભોગોથી પર એવા પરમ તત્ત્વની ઝંખના જાગે છે. તે સુખ-શાંતિની શોધમાં ઊપડે છે, ત્યાં મહાપુષ્યોદયે તેને સાચા દેવ-ગુરુનો ભેટો થાય છે. તે શ્રીગુરુના ચર્શોમાં સર્વસ્વ અર્પણ કરે છે, તેમની આજ્ઞા શિરોમાન્ય કરે છે. આત્મહિતની જિજ્ઞાસાથી શ્રીગુરુને વિનયપૂર્વક પૂછે છે, 'હે પ્રભુ! ચારે ગતિની રઝળપાટમાં મને કશે જરા પણ શાંતિ ન મળી. હવે આ રઝળપાટથી હું થાક્યો છું.

મને શાંતિ જોઈએ છે. તો તે શાંતિ ક્યાં છુપાયેલી છે એ મને બતાવો. આપનો આત્મા તે શાંતિને પામ્યો છે, તેથી આપ જ મને તેનો સાચો રસ્તો બતાવી શકો એમ છો.' આ પ્રમાણે શિષ્ય શ્રીગુરુને વિશ્વાસ સહિત પૂછે છે, ત્યારે શ્રીગુરુ તે ખરા જિજ્ઞાસુને તત્ત્વનો બોધ કરે છે.

શ્રીગુર તત્ત્વનો ઉપદેશ આપીને સુશિષ્યને તત્ત્વની સમજણ આપે છે, દ્રવ્યોની ભિન્નતા તથા સ્વતંત્રતાનો બોધ આપે છે. ચૈતન્યસ્વભાવી આત્માનો મહિમા દર્શાવે છે તથા અનાદિ કાળથી પરપદાર્થોને વિષય કરી, પરપણે પરિણમતી ચેતના તે જ દુઃખનું કારણ છે અને પોતાના શુદ્ધ ગુણોને વિષય કરી, સ્વરૂપાકાર થતી ચેતના એ જ સુખનો ઉપાય છે એમ સમજાવે છે. સુખપ્રાપ્તિ માટે ઉપયોગને નિજસ્વરૂપમાં એકાગ્ર કરવાની પ્રેરણા આપતાં તેઓ તેને કહે છે કે 'જગતની જડ વસ્તુઓ જડપણે રહી છે. તે ક્યારે પણ તારી થઈ નથી, તારામાં આવતી નથી. છતાં તેને હં રાખું, તેને હં કરું, તેમાંથી હું સુખ લઉં એમ તું માને છે એ તારી મૃઢતા છે. સુખ તો આત્મામાં છે. અનંત જ્ઞાન-દર્શન-સુખ-વીર્યના સ્વામી એવા નિર્મળ ચૈતન્યપ્રભુને પરપદાર્થ પાછળ ભટકાવવો તે જ તો મોટી વિડંબના છે. જે અનંત સુખ ભોગવી શકે એમ છે, તેને સુખાભાસ પાછળ ભટકાવવો એ તો ખોટનો વેપાર છે. કોલસા ખરીદવા માટે તું હીરો વેચી દે છે! તારા ઊંધા ભાવનું તને જ નુકસાન થશે, માટે એ ખોટનો ધંધો છોડ. તારા ઉપયોગને શુદ્ધાત્મામાં જોડ તો તારો વેપાર સફળ થાય. તારા જ્ઞાનોપયોગને સ્વભાવમાં લગાવ. આ વેપાર એવો છે કે જેમાં ક્યારે પણ ખોટ આવતી જ નથી. નફો જ નફો થાય છે. ધ્રુવચૈતન્યનિધિના લક્ષે વેપાર કરતાં સમ્યગ્દર્શનાદિ શુદ્ધ પર્યાયરૂપી નફો થાય છે, તેથી તારા સ્વભાવને જાણીને સ્વસન્મુખ થા. જેમ બિલોરી કાચ વડે સૂર્યનાં કિરણોને એક જગ્યાએ કેન્દ્રિત કરવામાં આવે તો અગ્નિ ઉત્પન્ન થઈ શકે છે. તેમ તારો ઉપયોગ જે પરદ્રવ્યો અને પરભાવમાં વેડફાઈ રહ્યો છે. તેને સમેટીને નિજ સ્વભાવમાં લગાવે તો સુખનું વેદન પર્યાયમાં પ્રગટશે.'

શ્રીગુરુ દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલ તત્ત્વબોધ ઉપર સુશિષ્ય ચિંતન કરી તત્ત્વનિર્ણય કરે છે. તે પોતાના સ્વરૂપનો નિશ્યય કરે છે કે 'હું આનંદનો પિંડ છું, શાંતિનું ધામ છું, સ્વયંરિક્ષત છું, તેથી મારાં સુખ-શાંતિ-સલામતી પરથી નિરપેક્ષ એવા સ્વતત્ત્વમાં છે. સુખી, શાંત અને સલામત થવા માટે મને પરની આવશ્યકતા નથી. મારામાં કોઈ અપૂર્ણતા છે જ નહીં કે મારે પરની સહાય લેવી પડે. હું તો પૂર્ણાનંદનો નાથ છું. મારી પ્રભુતાનો ઉપયોગ કરું તો પર્યાયમાં પણ આનંદનું પરિણમન થશે. મારે પર પાસે દીનતા કરવાની જરૂર નથી. પરમાં ફેરફાર કરવાની વૃત્તિ જ અજ્ઞાન છે અને તે જ દુઃખનું કારણ છે. જગતનાં બધાં દ્રવ્યો સત્ છે અને દરેકનું પલટવાપણું પોતાના

સ્વભાવથી જ છે. મારા ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવ મારી સત્તામાં જ છે અને પરના ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવ પરની સત્તામાં જ છે. બન્નેની સત્તા ભિન્ન ભિન્ન છે. એકના ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવમાં બીજો કોઈ હસ્તક્ષેપ કરી શકતો નથી, તેથી પરમાં ફેરફાર કરવાની વૃત્તિ છોડી, તેને ઇષ્ટ-અનિષ્ટપણે માનવાની વૃત્તિ છોડી મારે સ્વમાં લાગી જવું જોઈએ. પરસત્તાને મારાથી ભિન્ન જેમ છે તેમ જાણી, મારી શુદ્ધચૈતન્યસત્તાને શ્રદ્ધા-જ્ઞાન-ચારિત્રમાં અંગીકાર કરવી જોઈએ.'

આત્માર્થી જીવ શ્રીગુરુનાં વચનના અવલંબને આવો તત્ત્વનિર્ણય કરે છે. આત્માનું સ્વરૂપ શ્રીગુરુ પાસેથી જાણીને, સમજીને, વારંવાર તેનો અભ્યાસ કરીને આત્માનો મહિમા દઢ કરતો જાય છે, જેના કારણે તેને આત્મામાં લીન થવાની તલપ લાગે છે. અન્ય નિષ્પ્રયોજન વિચારોથી દૂર ખસીને સર્વ પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી ભિન્ન એવા શુદ્ધ સ્ફટિક સમાન ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મા સંબંધી જ ચિંતન કરવાથી પરિણતિ નિર્મળ થાય છે. પરિણતિ નિર્મળ થતાં અંતરંગ ઉત્સાહ અને આત્મવીર્યની જાગૃતિથી આત્માર્થી સ્વસ્વરૂપ-સન્મુખ થતો જાય છે. તે આત્માને અવ્યક્તપણે લક્ષમાં લે છે અને સ્વભાવ તરફ ઝૂકે છે. સ્વ-પરની ભિન્નતા તથા સ્વભાવ-વિભાવની ભિન્નતાનો નિર્ણય થયો હોવાથી તેનું બહિર્મુખ વલણ છૂટે છે અને તે અંતર્મુખ થાય છે.

જ્ઞાનમાં અનેક જ્ઞેયાકારો સ્વાભાવિકપણે ઊપજવાથી, તેમાં પોતાપણું કલ્પી જીવ વિભાવભાવ વડે જ્ઞેય પ્રત્યે ખેંચાઈને બહિર્મુખ ભાવે પરિજ્ઞમે છે. આમ, બહિર્મુખ થવાનું માધ્યમ પણ જ્ઞાન છે અને અંતર્મુખ થવાનું માધ્યમ પણ જ્ઞાન જ છે. જ્ઞેયાકારનું દુર્લક્ષ કરી, જ્ઞાન દ્વારા જ્ઞાનસ્વરૂપ સ્વયંનું અવલંબન લેવું એ જ અંતર્મુખ થવાની પ્રક્રિયા છે. મહા આશ્ચર્યકારી સ્વભાવવંત તેમજ અદ્ભુત સામર્થ્યવાન નિજપરમાત્મા સ્વયં જ પરિજ્ઞામને અંતર્મુખ થવામાં સર્વોત્કૃષ્ટ આકર્ષણરૂપ છે. 'હું તો ધ્રુવ પરમ સ્વભાવ છું' એમ અંતસ્તત્ત્વ ઉપર જોર જતાં પર્યાય અંતર્મુખ વળી જાય છે અને ઉપયોગ અંતરમાં ઊંડો ઊતરતો જાય છે. વારંવાર પુરુષાર્થ કરતાં ચૈતન્યરસનો મહિમા જ્યારે પરાકાષ્ઠાએ પહોંચે છે ત્યારે કોઈ પરમ ધન્ય પળે તેને આત્માનો અનુભવ થાય છે. ઉપયોગ સૂક્ષ્મ વિકલ્પથી પણ જુદો પડીને, ઇન્દ્રિયાતીત આંતર સ્વભાવમાં અભેદ થાય છે, નિર્વિકલ્પ થઈ જાય છે. જ્ઞાન સ્વયંનું વેદન કરે છે અને તે વેદન દ્વારા નિજ અસ્તિત્વનું ગ્રહણ થાય છે. નિર્વિકલ્પ અનુભૂતિમાં આત્મા પ્રસિદ્ધ થાય છે.

આ પ્રમાણે સદ્દ્ગુરુના ઉપદેશ દ્વારા જીવ આત્માના સ્વરૂપની ઓળખાણ કરે છે, તેની પ્રતીતિ કરે છે અને ઉપયોગને અંતર્મુખ કરી સ્વરૂપનો સાક્ષાત્કાર કરે છે. તે જ સમ્યક્ બોધ છે, સમ્યગ્દર્શન છે અને તેનાથી જ દર્શનમોહ નાશ પામે છે. સમ્યક્ બોધ - સમ્યગ્દર્શન તે સર્વોત્કૃષ્ટ સુખનું કારણ છે, મુક્તિનું મૂળ છે. તે પ્રગટ થતાં જ અનંત સંસારનું મૂળ છેદાઈ જાય છે. શ્રીમદ્ લખે છે -

'જગતના અભિપ્રાય પ્રત્યે જોઈને જીવ પદાર્થનો બોધ પામ્યો છે. જ્ઞાનીના અભિપ્રાય પ્રત્યે જોઈને પામ્યો નથી. જે જીવ જ્ઞાનીના અભિપ્રાયથી બોધ પામ્યો છે તે જીવને સમ્યક્દર્શન થાય છે.'^૧

અામ, જે જીવના અંતરમાં સાચી મુમુક્ષુતા જાગે છે, તે જીવ આત્માનું સ્વરૂપ તથા તેનો અગાધ મહિમા જ્ઞાની પાસેથી જાણીને લક્ષગત કરે છે અને પછી વારંવારના અભ્યાસ વડે પરિણામને તેમાં જોડીને, અંતર્મુખ ઉપયોગ વડે અનુભવ સહિત તેનું સાક્ષાત્ દર્શન કરે છે. ઉપયોગ આત્મામાં જોડાતાં અતીન્દ્રિય સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે. ગોળના રવામાં છરી મારે તો તેનો નમૂનો બહાર આવે છે, તેવી જ રીતે આત્મા ત્રિકાળી આનંદનો રવો છે. તેમાં જો ઉપયોગની છરી મારવામાં આવે તો જરૂર તેમાંથી ત્રિકાળી આનંદનો નમૂનો બહાર આવે, સિદ્ધદશાના સુખનો અંશે અનુભવ થાય. આ પ્રમાણે શ્રીગુરુના બોધનો વારંવાર વિચાર કરવાથી, તે બોધનું ભાવભાસન થવાથી, ઉપયોગ અંતર્મુખ થતાં વિપરીત અભિપ્રાયરહિત, શુદ્ધ આત્માની અનુભવ સહિતની જે પ્રતીતિ થાય છે તેનું નામ સમ્યગ્દર્શન છે.

અનાદિ કાળથી જીવે કેવળ બાહ્ય ક્રિયા અને બાહ્ય સાધનના સેવન દ્વારા સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરવાની કલ્પના કરી છે. બાહ્યદસ્ટિવાળા અજ્ઞાની જીવે અનાદિથી દેહની બાહ્ય ક્રિયાઓમાં ધર્મ માન્યો છે. તે તપાદિ દ્વારા સ્વરૂપની નિકટ આવવાને બદલે, આહાર ન ખાઈને ધર્મ કર્યાની માન્યતા કરી, તેનાથી સંતોષાઈ જાય છે. જેમ એક બાઈ કમોદ ખાંડતી હતી. દાજ્ઞા કસદાર હોવાથી ઉપર દેખાતા ન હતા, ઉપર તો કક્ત કોતરાં દેખાતાં હતાં. તે જોઈને, ચોખા મેળવવા માટે 'આ બાઈ ફોતરાં ખાંડે છે' એમ સમજીને બીજી એક બાઈ ઘરે જઈને ફોતરાંનો ઢગલો ખાંડવા બેઠી. પરંત ફોતરાં ખાંડવાથી કાંઈ ચોખા મળે? તેમ ભગવાને મનિદશામાં આત્માનભવની દશાના આનંદનું વેદન કરતાં કરતાં ચૈતન્યના પ્રતપનરૂપ તપ કર્યું હતું, તેમને આહારની ઇચ્છા સહેજે છૂટી ગઈ હતી. ભગવાનની અંતરદશા નહીં સમજનારા જીવો તો આહાર ન વાપર્યો તેને જ તપ માની લે છે અને એ રીતે પોતે પણ આહાર ન કરીને તપ કર્યું એમ માની લે છે. તેઓ ફોતરાં ખાંડવા જેવું કરે છે. અંતરની કસદાર શુદ્ધ પરિણતિને તેઓ જોતા નથી, ભગવાનને અતીન્દ્રિય આનંદનું જે વેદન હતું તેને તેઓ જોતા નથી અને આહાર ન કરીને 'અમે પણ ભગવાન જેવું તપ કરીએ છીએ' એમ માને છે. આ મોટી ભ્રમણા છે. જ્ઞાનીઓ કહે છે કે કોઈ જીવ ઘણી તપસ્યા કરે. ઘણા પરિષહ સહન કરે, ઘણા શાસ્ત્ર ભણે; પણ જો તેની દેહાત્મબુદ્ધિ ટળે નહીં તો તે

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૨૫ (પત્રાંક-૩૫૮)

ક્રિયાઓ માત્ર પુષ્ટયબંધનું કારણ થાય છે. તે ક્રિયાઓ સમ્યગ્દર્શનનું કારણ થઈ શકતી નથી. શ્રીમદ્ કહે છે –

'જ્યાં સુધી દેહાત્મળુદ્ધિ ટળે નહીં ત્યાં સુધી સમ્યક્ત્વ થાય નહીં. જીવને સાય ક્યારેય આવ્યું જ નથી; આવ્યું હોત તો મોક્ષ થાત. ભલે સાધુપણું, શ્રાવકપણું અથવા તો ગમે તે લો, પણ સાચ વગર સાધન તે વૃથા છે. જે દેહાત્મબુદ્ધિ મટાડવા માટે સાધનો બતાવ્યાં છે તે દેહાત્મબુદ્ધિ મટે ત્યારે સાચ આવ્યું સમજાય. દેહાત્મબુદ્ધિ થઇ છે તે મટાડવા, મારાપણું મુકાવવા સાધનો કરવાનાં છે. તે ન મટે તો સાધુપણું, શ્રાવકપણું, શાસ્ત્રશ્રવણ કે ઉપદેશ તે વગડામાં પોક મૂક્યા જેવું છે. જેને એ ભ્રમ ભાંગી ગયો છે, તે જ સાધુ, તે જ આચાર્ય, તે જ જ્ઞાની. જેમ અમૃતભોજન જમે તે કાંઇ છાનું રહે નહીં, તેમ ભ્રાંતિ, ભ્રમબુદ્ધિ મટે તે કાંઇ છાનું રહે નહીં.'

દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ દર્શનમોહનો નાશ કરવા માટે સ્વ અને પરના ભેદની અનુભવાત્મક પ્રતીતિ જોઈએ. શ્રવણ-વાંચન દ્વારા મળેલું સ્વ અને પરના ભેદનું જ્ઞાન ગમે તેટલું ઊંડું હોય તોપણ તે જ્ઞાન બૌદ્ધિક સ્તરનું હોવાથી તે એવી દઢ પ્રતીતિ જન્માવી શકતું નથી કે જેના વડે દર્શનમોહનીય હણાઈ શકે. સાંભળેલી-વાંચેલી વાત, નજરે દીઠેલી ઘટના જેટલી પ્રતીતિકર થોડી જ બને? વિચારથી જે પ્રતીતિ થાય એ વાત જુદી છે અને વેદનથી જે પ્રતીતિ થાય એ વાત જુદી છે. તેથી દેહ અને આત્માની ભિન્નતાનો સાક્ષાત્કાર કરાવતા અનુભવને મોક્ષમાર્ગનો પાયો કહ્યો છે. એ અનુભવની ઉપલબ્ધિ તે જ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન. આપ્તવચનના આધારે, અર્થાત્ શાસ્ત્રોના આધારે વિચારવિમર્શ કર્યા પછી બુદ્ધિ વડે થયેલા તત્ત્વના સ્વીકારને નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન ન કહી શકાય. શ્રદ્ધા આપ્તવચન આદિના આધારે પાંગરી શકે, પણ 'દર્શન' તો જાતે જોયા વિના કઈ રીતે સંભવે? પ્રતીતિ માત્ર વિચારણાથી નહીં પણ વેદનપૂર્વક થવી આવશ્યક છે. પોતાના શુદ્ધ જ્ઞાનાંદસ્વરૂપના વેદન સહિતની પ્રતીતિ તે જ સમ્યગ્દર્શન છે. આમ, આત્માના અનુભવ સહિતનો બોધ તે સમ્યક્ બોધ છે અને તે દર્શનમોહનીયના નાશનો અયૂક ઉપાય છે.

ચા<mark>રિત્રમો</mark>હ

દર્શનમોહ હણાતાં દેહાદિ પરમાં પોતાપણાની માન્યતારૂપ વિપરીત શ્રદ્ધા ટળી જાય છે. મ્યાનથી તલવાર જેમ જુદી છે, તેમ દેહથી ભિન્ન, સ્વપરપ્રકાશક એવું પોતાનું

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૭૩૨ (ઉપદેશછાયા-૧૪) સરખાવો : પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૪, કડી પ **'મુનિદ્રત દાર અનંત વાર ગ્રીવક ઉપજાઢી; પૈ નિજ આતમજ્ઞાન વિના, સુખ લેશ ન પાઢી.'** આત્મસ્વરૂપ સ્પષ્ટ જુદું ભાસે છે. દર્શનમોહ વ્યતીત થતાં જ આત્માનો અનુભવ થાય છે, પરંતુ તે જ સમયે પૂર્ણ સ્વરૂપસ્થિરતા પ્રગટતી નથી. પોતાની શિથિલતાના કારશે યારિત્રમોહનીયમાં જોડાઈ જવાથી અસ્થિરતારૂપ દોષ થાય છે. પૂર્ણ સ્થિરતા પ્રગટે ત્યાં સુધીનો કાળ સાધકદશા છે, જે કાળમાં પૂર્ણ સ્થિરતા પ્રગટાવવા માટેનો પુરુષાર્થ થાય છે. શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપમાં એકાગ્રતા અખંડપણે પ્રવર્તે તે માટે તેમાં વિઘ્નકર્તા એવા કષાય-નોકષાયરૂપ યારિત્રમોહનીય કે જેનું બળ સમ્યગ્દર્શનના પ્રભાવે મંદ તો પડી જ ગયું છે, તેને પૂર્ણતઃ ક્ષીણ કરવું રહ્યું. જેને અંતરાત્મદશા પ્રગટે છે, તે પરમાત્મદશા પ્રગટાવવા માટે ચારિત્રમોહને ક્ષીણ કરવા ઉદ્યમી રહે છે. શ્રીમદ્ લખે છે —

'દર્શનમોહ વ્યતીત થવાથી જ્ઞાનીના માર્ગમાં પરમભક્તિ સમુત્પન્ન થાય છે, તત્ત્વપ્રતીતિ સમ્યક્પણે ઉત્પન્ન થાય છે.

તત્ત્વપ્રતીતિ વડે શુદ્ધ ચૈતન્ય પ્રત્યે વૃત્તિનો પ્રવાહ વળે છે. શુદ્ધ ચૈતન્યના અનુભવ અર્થે ચારિત્રમોહ વ્યતીત કરવા યોગ્ય છે.

ચારિત્રમોહ, ચૈતન્થના - જ્ઞાની પુરુષના સન્માર્ગના નૈષ્ઠિકપણાથી પ્રલય થાય છે.'^૧

મોક્ષપ્રાપ્તિ અર્થે ચારિત્રમોહનીયનું સ્વરૂપ અને તેના નાશનો ઉપાય સમજવા યોગ્ય છે.

યારિત્ર = આત્મસ્થિરતા.

યારિત્રમોહ = રાગાદિ ભાવરૂપ વિકારી અવસ્થા.

ચારિત્રમોહના નાશનો ઉપાય = વીતરાગતા. (સમ્યક્ચારિત્ર)

જીવનો સ્વભાવ અકષાયી જ્ઞાતા-દ્રષ્ટારૂપ છે. પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવમાં સ્થિરતા થવી તે ચારિત્ર છે. શુદ્ધ નિર્વિકારી સ્વભાવમાં સ્થિર રહેવું તે ચારિત્ર છે. જેટલા અંશે સ્વભાવમાં સ્થિરતા છે, તેટલા અંશે વીતરાગતા છે. જેટલા અંશે ચારિત્રમોહનીય કર્મના ઉદયમાં જોડાવાથી અસ્થિરતા છે, તેટલા અંશે ચારિત્રમોહ છે. ચારિત્રમોહ એ આત્માના ચારિત્ર ગુણની વિકારી અવસ્થા છે. ચારિત્રમોહનીય કર્મમાં જોડાવાથી જીવ પોતાના અકષાયી, જ્ઞાતા-દ્રષ્ટારૂપ સહજ સ્વાભાવિક સ્વરૂપમાં સ્થિર ન રહેતાં રાગી-દેષી થાય છે. આ તેની વિકારી અવસ્થા છે. ક્રોધાદિ કષાયરૂપ અને હાસ્યાદિ નોકષાયરૂપ પરિણમન તે ચારિત્ર ગુણની વિકૃતિ છે. આ જે મિથ્યા પ્રવર્તનરૂપ ચારિત્રમોહનાં રાગાદિ પરિણામ છે, તે તેના પ્રતિપક્ષી એવાં શુદ્ધ વીતરાગપરિણામથી હણાય છે. સ્વરૂપના અવલંબને જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવમાં જેટલી સ્થિરતા રહે તેટલી વીતરાગતા પ્રગટે છે. જેમ જેમ વીતરાગ-૧ 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પુ.દ૪૨ (પત્રાંક-૯૦૧)

ભાવ વર્ધમાન થતો જાય છે, તેમ તેમ આત્મસ્થિરતાને રોધક એવા સત્તાગત કષાય-નોકષાયરૂપ ચારિત્રમોહનીય કર્મનો નાશ થતો જાય છે.

જેમણે દર્શનમોહનીયનો નાશ કરી આત્માનો અનુભવ કર્યો છે એવા સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને શુભાશુભ ઉપયોગ વખતે પણ શુદ્ધાત્માનું શ્રદ્ધાન તથા સ્વ-પરનું ભેદજ્ઞાન સતત વર્તી રહ્યું હોય છે. શુભાશુભમાં ઉપયોગ વર્તતો હોય ત્યારે પણ તેમની આંતર પ્રતીતિ જતી નથી. શુદ્ધ ઉપયોગ વખતે તેમને જેવી પ્રતીતિ વર્તતી હતી, તેવી જ પ્રતીતિ શુભાશુભ ઉપયોગ વખતે પણ વર્તે છે, એટલે શુભાશુભ ઉપયોગ વખતે પણ સમ્યક્ત્વમાં બાધા આવતી નથી. પરદ્રવ્ય તથા પરભાવથી પોતે ભિન્ન છે એવી પ્રતીતિ તેમને નિરંતર રહે છે. જેમ મુનિમ શેઠનાં કાર્ય સંભાળે છે, છતાં અંતરમાં ભાન છે કે 'નફા-નુકસાનનો સ્વામી હું નથી.' જો શેઠની મિલકત તે પોતાની માનીને લઈ લે તો તે ચોર કહેવાય. તેમ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવનો ઉપયોગ શુભાશુભમાં જાય છે, શુભાશુભરૂપે પરિણમે પણ છે, તોપણ અંતરમાં તે જ વખતે તેમને શ્રદ્ધાન છે કે 'આ શુભાશુભ ભાવ મારા નથી, હું તેનો સ્વામી નથી.' શુદ્ધાત્માનું અંતરંગ શ્રદ્ધાન તો તેમને એવું ને એવું વર્તે છે. સ્વ-પરનું ભેદવિજ્ઞાન તો તે વખતે પણ તેમને વર્તી જ રહ્યું હોય છે. 'આ શુભાશુભ મારો સ્વભાવ નથી, હું તો ચૈતન્યભાવ જ છું' એવી અનુભવપૂર્વકની અંતરંગ પ્રતીતિ તેમને શુભાશુભ વખતે પણ ખસતી નથી.

રાગ હોવા છતાં રાગથી પાર એવા જ્ઞાનસ્વભાવને જાણવો એ કંઈ સાધારણ વાત નથી! ભેદજ્ઞાનની અપૂર્વ વાત છે. સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ રાગ સહિત હોવા છતાં પોતાને રાગરહિતપણે અનુભવે છે. તેથી તેમને એકસાથે બે ધારા હોય છે - એક જ્ઞાનધારા અને બીજી રાગધારા. તેમાંથી જ્ઞાનધારા સ્વભાવમાં એકરૂપ થઈને મોક્ષને સાધે છે, જ્યારે રાગધારા જુદી પડી જઈ નાશ પામે છે. જ્ઞાનધારા અને રાગધારા છૂટી પડી હોવાથી જ્ઞાની રાગને માત્ર જાશે છે, તેમાં જોડાઈ જતા નથી.

જેમને શુદ્ધ સ્વરૂપનું જ્ઞાન પ્રગટે છે તેમને જ્ઞાનાનંદસ્વભાવથી તદ્દન વિપરીત ભાવોમાં તન્મયપશું થતું નથી, તેવા ભાવોની રુચિ થતી નથી, તેવા ભાવો ચિત્તમાં રાખવા ગમતા નથી. અજ્ઞાનાવસ્થામાં સંયોગબુદ્ધિના કારણે પરભાવમાં આનંદ માન્યો હતો, પરંતુ જ્યારથી જ્ઞાન થયું કે 'શુભાશુભ ભાવ તે મારો સ્વભાવ નથી. તેનાથી મારા આત્માની શોભા નથી. હું તો અનંત આનંદનો પિંડ જ્ઞાયક આત્મા છું', ત્યારથી તેમને વિભાવનો ઉમંગ હોતો નથી. તેમને અન્ય ભાવોમાં અંતરંગ રુચિ થતી નથી. તેઓ તે ભાવોને રૂડા માનતા નથી. પૂર્વે જેમાં સ્વામિત્વ માન્યું હતું, તેને પકડવાની હવે તેમને જરા પણ હોંશ રહેતી નથી. તેઓ તો પોતાના અચિત્ય આત્મવૈભવને જોઈને પરમ તૃપ્તિ અનુભવે છે. આત્માનો વૈભવ હાથમાં આવ્યો હોવાથી તેવા માહાત્મ્યવાન

વૈભવ પાસે જગતના બધા વૈભવ તેમને તુચ્છ લાગે છે. પોતાના ચિદાનંદસ્વભાવમાં જ અતીન્દ્રિય સુખ છે એમ અનુભવથી જાલ્યું હોવાથી અને તે સુખ ચાખ્યું હોવાથી તેમને બહારમાં કશે પણ સુખબુદ્ધિ થતી નથી. અંદરનો રસ ચાખતાં બહારનો બધો મહિમા ખરી પડે છે. આ પ્રમાણે સ્વ અને પરનું યથાર્થ ભાસન થતાં જગતના સમસ્ત પદાર્થો અને ભાવો પ્રત્યે તેમને સાચી ઉદાસીનતા ઊપજે છે. તે ઉદાસીનતા વિકાસ પામતી પામતી પૂર્ણપદની પ્રાપ્તિમાં સહાયકારી થતી જાય છે. જે પદાર્થોનું માહાત્મ્ય દષ્ટિમાં નથી અને જે પ્રસંગોની અગત્યતા જીવનમાં નથી, તેવા પદાર્થો કે પ્રસંગોનો પરિચય પૂર્વકર્મોદયના કારણે રહે તોપણ તે પદાર્થો અને પ્રસંગોમાં તેમને હિતબુદ્ધિ થતી નથી. તે સર્વ તેમને અનિત્ય અને અસાર, અસ્થિર અને અસુંદર જ ભાસે છે. તેઓ તેમાં લેપાતા નથી. શ્રીમદ્દ્ કહે છે —

'સમ્ચગ્દેષ્ટિ હર્ષશોકાદિ પ્રસંગમાં તદ્દન એકાકાર થાય નહીં. તેમના નિદર્વસ પરિણામ થાય નહીં; અજ્ઞાન ઊભું થાય કે જાણવામાં આવ્યે તરત જ દાબી દે; બહુ જ જાગૃતિ હોય. જેમ કોરો કાગળ વાંચતા હોય તેમ તેમને હર્ષશોક થાય નહીં. ભય અજ્ઞાનનો છે. જેમ સિંહણને સિંહ ચાલ્યો આવતો હોય અને ભય લાગતો નથી પણ મનુષ્ય ભય પામી ભાગી જાય છે; જાણે તે ફૂતરો ચાલ્યો આવતો હોય તેમ સિંહણને લાગે છે, તેવી રીતે જ્ઞાની પૌદ્દગલિક સંયોગ સમજે છે. રાજ્ય મળ્યે આનંદ થાય તો તે અજ્ઞાન. જ્ઞાનીની દશા બહુ જ અદ્દભુત છે.'

જેમને આત્મજ્ઞાન થાય તેમને સાંસારિક કિયા તે સમયથી ન જ હોય એવો કોઈ નિયમ નથી. સમ્યક્ત્વ ઉત્પન્ન થયા પછી સાંસારિક કિયા સંભવે છે, પણ તેઓ તે રસરહિતપણે કરતા હોય છે. તેમને માત્ર આત્મસ્વરૂપમાં જ રસ હોય છે, તેમાં જ ઠરવાની પ્રબળ અભિલાષા હોય છે. કર્મવશાત્ દેહની પ્રાપ્તિ થઈ હોવાથી દેહવ્યવહાર યલાવે છે, પરંતુ 'હું દેહાદિ સ્વરૂપ નથી અને દેહાદિ કોઈ પણ મારાં નથી' એમ નિશ્ચય શ્રદ્ધા થઈ હોવાથી જ્ઞાન, વીર્ય, ઉલ્લાસ, રસ બધું નિજાત્મતત્ત્વ તરફ જ વહે છે. દેહવ્યવહાર ચલાવવા છતાં તેઓ આત્માની કાળજી લેવાનું ચૂકતા નથી. જેમ પોતાનો અગત્યનો કેસ કોર્ટમાં ચાલતો હોય ત્યારે અસીલ વકીલને ત્યાં મીઠાઈ-રમકડાં વગેરે અનેક ભેટસોગાદો મોકલતો રહે છે. વકીલની પત્ની તથા તેનાં સંતાનોને લાગે કે 'આ ભાઈને અમારા ઉપર કેટલો પ્રેમ છે, અમારું કેટલું ધ્યાન રાખે છે', પરંતુ તે વકીલ જાણતો હોય છે કે આ કેસ ચાલે છે ત્યાં સુધી જ આ બાહ્ય સ્નેહસંબંધની ચેષ્ટાઓ છે. તેમ જ્ઞાનીપુરુષો પણ જ્યાં સુધી કર્મનો ઉદય હોય ત્યાં સુધી પ્રવૃત્તિ કરે છે, પણ તે કરતાં છતાં અંતરમાં તો અંશમાત્ર પણ અહં-મમભાવ નથી. તેમનું

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૬૮૭-૬૮૮ (ઉપદેશછાયા-૪)

એકમાત્ર ધ્યેય છે પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિરતા. આ ધ્યેયના કારણે જ તેમનું દરેક કાર્ય સાધના બની જાય છે. પારમાર્થિક પ્રવૃત્તિ હોય કે વ્યાવહારિક પ્રવૃત્તિ, તેઓ જે કરે તે સાધના બની જાય છે. વ્યાવહારિક પ્રવૃત્તિ કરવા છતાં તેઓ તે પ્રવૃત્તિથી અલિપ્ત રહે છે. જેમ પાણીમાં રહેલું કમળ, પાણીથી અલિપ્ત રહે છે, તેમ બાહ્ય સંયોગો વચ્ચે જ્ઞાની અલિપ્ત રહે છે.

પ્રતીતિને બાધા નહીં આવતી હોવાથી સાંસારિક કાર્યમાં પ્રવર્તતા છતાં જ્ઞાનીને પ્રતિબંધ થતો નથી. આમ હોવા છતાં આ વાત એકાંતે નથી. જ્યાં સુધી વિશિષ્ટ અભ્યાસના બળથી જ્ઞાનનું સુસ્થિતપશું અને નિષ્કંપપશું થયું હોતું નથી, ત્યાં સુધી જ્ઞાનીને પણ શુભાશુભ ઉપયોગના કારણે વિભાવનો પરિચય કરવાથી જ્ઞાનમાં શિથિલતા આવી શકે છે, કારણ કે જ્ઞાનના સંસ્કાર તો નવીન અને અલ્પ છે, જ્યારે વિભાવના સંસ્કાર તો અનાદિકાલીન અને અતિ દઢ છે. તેથી વિશેષ વિશેષ જાગૃતિ સહિત વારંવાર અભ્યાસ અને અનુપ્રેક્ષા કરવાની શ્રી જિને જ્ઞાનીને પણ આજ્ઞા કરી છે અને પ્રમાદને જરા પણ આધીન થયા વિના સતત સાવધાન રહેવાનો ઉપદેશ કર્યો છે. જ્ઞાનીને પણ વિષય-કષાયરૂપ અહિતકારી અને અશુદ્ધ ભાવોનો અનભ્યાસ, અપરિચય અને ઉપશમ કરવાની શ્રી જિને આજ્ઞા કરી છે. શ્રીમદ્ લખે છે —

'પ્રતિબંધ થતો નથી એ વાત એકાંત નથી, કેમકે જ્ઞાનનું વિશેષ બળવાનપણું જ્યાં હોય નહીં, ત્યાં પરભાવનો વિશેષ પરિચય તે પ્રતિબંધરૂપ થઇ આવવો પણ સંભવે છે; અને તેટલા માટે પણ જ્ઞાનીપુરુષને પણ શ્રી જિને નિજજ્ઞાનના પરિચય-પુરુષાર્થને વખાણ્યો છે; તેને પણ પ્રમાદ કર્ત્તવ્ય નથી, અથવા પરભાવનો પરિચય કરવા યોગ્ય નથી, કેમકે કોઇ અંશે પણ આત્મધારાને તે પ્રતિબંધરૂપ કહેવા યોગ્ય છે.'?

જેમ જેમ જીવ પુરુષાર્થના બળે વીતરાગતા વધારતો જાય છે, તેમ તેમ તેના રાગ-દ્વેષ મંદ થતા જાય છે અને ચારિત્રમોહનીય ક્ષીણ થતા જાય છે. પૂર્ણ વીતરાગતા પ્રગટતાં, અર્થાત્ જીવ પોતાના સચ્ચિદાનંદમય, અવિકારી, અકષાયી સ્વરૂપમાં અખંડપણે સ્થિર થતાં રાગ-દ્વેષનો સંપૂર્ણ ક્ષય થાય છે, ચારિત્રમોહનીયનો સંપૂર્ણ ક્ષય થાય છે. આમ, ક્રમે ક્રમે વિકસિત થતી વીતરાગ દશાને ગુણસ્થાનક આરોહણ ક્રમથી પણ સમજાવી

૧- જુઓ : પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૩, કડી ૧૫

^{&#}x27;દોષ રહિત ગુણ સહિત સુધી જે, સમ્યગ્દરશ સજે છૈં; ચરિતમોહવશ લેશ ન સંજમ, પૈ સુરનાથ જજે હૈં.

ગેહી પૈ ગૃહમેં ન રચૈં, જ્યોં જલતેં ભિન્ન કમલ હૈ;

નગરનારિકો પ્યાર યથા, કાદેમેં હેમ અમલ હૈ.'

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૪૨૧ (પત્રાંક-૫૨૫)

શકાય છે. તે આ પ્રમાણે --

અનંતાનુબંધી કષાયોનો વિલય થતાં જીવ અવિરતિ સમ્યગ્દેષ્ટિ (ચતુર્થ) ગુણ-સ્થાનકે આવે છે. આ ભૂમિકામાં સત્ય સત્યસ્વરૂપે જણાય છે. અજ્ઞાનની અવસ્થા વિલીન થઈ સત્યની ઉપલબ્ધિ થાય છે. દષ્ટિકોણ સમ્યક્ થાય છે. વસ્તુ-વ્યક્તિ-પરિસ્થિતિ જેવી છે તેવી જણાય છે. આ ભૂમિકામાં જીવને સત્ય માર્ગનું દર્શન થાય છે, પરંતુ કષાયના પ્રભાવમાં પ્રાપ્ત દર્શન પ્રમાણે તેઓ હજુ વર્તી શકતા નથી. સ્વની અનુભૂતિપૂર્વકની અંતરસૂઝથી - દિવ્ય પ્રજ્ઞાથી તેમને સમજાય છે કે શું કરવું જોઈએ અને શું ન કરવું જોઈએ; પરંતુ કષાયનો જે વર્તમાન આવેગ છે, તે હજુ એટલો મંદ નથી થયો કે જે પ્રમાણે તેમને સમજાયું છે તે પ્રમાણે તેઓ પૂર્ણપણે આચરી શકે. આનું કારણ છે કષાયની બીજી ચોકડી - અપ્રત્યાખ્યાનાવરણમાં જોડાણ. જેમ જેમ આધ્યાત્મિક ચેતનાનો વિકાસ થતો જાય છે, તેમ તેમ જીવનાં પરિણામમાંથી અપ્રત્યાખ્યાની કષાય ઓગળતો જાય છે. બોધ અને અભ્યાસના નિરંતર આશ્રયે જ્યારે આ અપ્રત્યાખ્યાની કષાય ઉપશાંત કે ક્ષીણ થાય છે ત્યારે જીવ વિરતિના રસ્તે આગળ વધે છે. આધ્યાત્મિક વિકાસમાં તેમને દેશવિરતિ (પંચમ) ગુણસ્થાનક ઉપલબ્ધ થયું ગણાય છે. આ ભૂમિકાએ તેમણે અણુવતાદિ બાર વ્રતો ધારણ કરેલા હોય છે અને અગિયાર પ્રતિમાઓને અનુરૂપ કમપૂર્વક આચરણ શરૂ થાય છે.

વિકાસક્રમમાં જ્યારે આગળ વધાય છે, અભ્યાસ કરતાં કરતાં મોહનું વર્તુળ જેમ જેમ તૂટતું જાય છે, અર્થાત્ તેનો પ્રભાવ જેમ જેમ પાતળો થતો જાય છે, તેમ તેમ ત્રીજી ગાંઠ પણ છૂટતી જાય છે. આ ગ્રંથિનું નામ છે પ્રત્યાખ્યાનાવરણ. કષાયની આ ત્રીજી ચોકડી છે. તેના તૂટવાથી સાધક વિરતિ પ્રત્યે પૂર્ણપણે સમર્પિત થઈ જાય છે. તેઓ સર્વસંગપરિત્યાગ કરે છે, સાધુ બને છે. આધ્યાત્મિક વિકાસની આ ભૂમિકાને પ્રમત્તવિરતિ (છદ્યું) ગુણસ્થાનક કહે છે. અંતરમાં જેમ જેમ રાગનો ઘટાડો થાય છે, તેમ તેમ બાહ્યમાં પરિગ્રહનો ત્યાગ સહેજે થતો જાય છે. વસ્તુનું આકર્ષણ તૂટે, પછી તે વસ્તુ હોય તો છૂટી જાય છે અને ન હોય તો તેનું ગ્રહણ થતું નથી.

પાંચમું ગુણસ્થાનક ગૃહસ્થ સાધક જીવોનું છે અને છઠ્ઠું ગુણસ્થાનક ગૃહત્યાગી સાધક જીવોનું છે. બન્ને સાધનાપથના પથિક છે. પોતાની કલ્યાણયાત્રા પરત્વે તેઓ સમર્પિત થઈ ચૂક્યા છે. એક સાધક ગૃહસ્થજીવનમાં સાધના કરે છે અને એક સાધક મુનિજીવનમાં સાધના કરે છે. ગૃહસ્થજીવનમાંથી મુનિજીવનમાં જવું એ કોઈ આકસ્મિક ઘટના નથી કે અનાયોજિત છલાંગ નથી, તેમાં નિશ્ચિત કમની વ્યવસ્થા છે. તે પાછળ મોહના આવેગોના ક્ષયનો સિદ્ધાંત કામ કરે છે. જે વ્યક્તિમાં અમુક ચોક્કસ માત્રામાં મોહ ક્ષીણ થયો છે, તે વ્રતોનું અંશતઃ ગ્રહણ કરી શ્રાવક બને છે. જે વ્યક્તિનો મોહ

વધુ પ્રમાણમાં છૂટી ગયો છે, તે વ્યક્તિ વ્રતોનું પૂર્ણતઃ અહણ કરી મુનિ બને છે અને અનુક્રમે મોહનો આવેશ ઘટતાં, તે વ્યક્તિ પૂર્ણ વીતરાગ બને છે.

આમ, જેમ જેમ ચારિત્રમોહનીય કર્મનું પ્રભુત્વ ઘટતું જાય છે, તેમ તેમ જીવ ગુણસ્થાનક આરોહણ ક્રમમાં આગળ વધતા જાય છે. દરેક ગુણસ્થાનકે આત્મસ્થિરતામાં ફરક હોય છે. ચોથા ગુણસ્થાનકે અનંતાનુબંધી કષાયરૂપ ચારિત્રમોહનીય ક્ષીણ થતાં વીતરાગતાનો આંશિક સ્વાદ પ્રાપ્ત થાય છે. આ ભૂમિકામાં આવ્યા પછી છ મહિનાની અંદર ઓછામાં ઓછો એક વખત આત્માનભવ અવશ્ય થાય છે. જો છ મહિનાની અંદર આત્માનુભવ ન થાય તો તે જીવ ચોથા ગુણસ્થાનકે ટકી શકે નહીં અને પરિણામોમાં પડતી આવવાથી ચોથા ગણસ્થાનકથી પહેલા ગુણસ્થાનકે પહોંચી જાય છે. જો તેઓ જાગૃત થઈને પોતાનાં પરિશામોને ઊર્ધ્વ ગતિએ લઈ જાય તો પુનઃ ઉપર ચડે છે. ચોર્થા ગુણસ્થાનકમાં રહેલા સાધક જ્યારે આત્માનુભવ જલ્દી જલ્દી પ્રાપ્ત કરવા પુરુષાર્થ કરે છે ત્યારે દેશસંયમરૂપ પરિણામોના વિરોધી અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાયો મંદ થવા લાગે છે. જ્યારે તેઓ પંદર દિવસમાં ઓછામાં ઓછો એક વાર આત્માનુભવ થવાની યોગ્યતાવાળા બને છે ત્યારે તેઓ પાંચમા ગુણસ્થાનકે આવે છે. આત્મબળ વધતાં આત્માનુભવની ક્ષણો વધતી જાય છે, સંયમવિરોધી પ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાય મંદ બને છે અને છેવટે તેનો અભાવ થાય છે ત્યારે તેઓ છક્કે ગુણસ્થાનકે આવે છે. હવે માત્ર સંજ્વલન કષાય બાકી રહે છે. આ ગુણસ્થાનકે તેઓ અંતર્મુહૂર્તે અંતર્મુહૂર્તે આત્માનો અનુભવ કરવાની યોગ્યતાવાળા હોય છે. મુનિ નિર્વિકલ્પ ઉપયોગમાં લીન રહે છે ત્યારે સાતમે ગુણસ્થાનકે હોય છે અને સવિકલ્પ અવસ્થામાં આવે છે ત્યારે છટ્ટા ગુણસ્થાનકે હોય છે. આત્મામાં વધતી સ્થિરતાના કારણે કર્મપ્રકૃતિઓનાં સ્થિતિ તથા અનુભાગ ક્ષીણ થતાં જાય છે અને સાધક સાતમા ગુણસ્થાનકથી આગળ વધે છે. તેમાં કેટલાક સાધક રાગાદિના પર્વસંસ્કારોનં ઉપશમન કરતા જાય છે, જ્યારે કેટલાક પૂર્ણ ક્ષય કરતા જાય છે. પહેલા પ્રકારના સાધક કષાયોનું ઉપશમન કરતાં કરતાં દસમા ગુણસ્થાનકને પાર કરી અગિયારમા ઉપશાંતમોહ ગુણસ્થાનકે આવે છે. આ ભૂમિકામાં મોહ ઉપશાંત થઈ જાય છે, પરંતુ દબાયેલા પૂર્વસંસ્કાર તેમને ત્યાં ટકવા દેતા નથી. તે દબાયેલા કષાયો ઊથલો મારતાં એવો ધક્કો લાગે છે કે અગિયારમા ગુણસ્થાનકે પહોંચેલા સાધક નીચલા ગુલસ્થાનકોમાં આવી જાય છે. બીજા પ્રકારના સાધક વિલયના માર્ગમાં છે, ઉપશમનના નહીં. તેઓ શુક્લધ્યાન દ્વારા સંજ્વલન કષાયોને ક્ષય કરતાં કરતાં આગળ વધે છે અને દસમા ગુણસ્થાનકના અંતે મોહનીયકર્મનો સર્વથા નાશ કરી કષાયરહિત - મોહરહિત એવા બારમા ક્ષીણમોહ ગણસ્થાનકમાં પ્રવેશ કરે છે. આ પ્રમાણે મોહનીય કર્મનો ક્ષય કરવા માટે આત્મબોધ તથા વીતરાગતા એ અચૂક ઉપાય છે. વિપરીત અભિપ્રાયરૂપ દર્શનમોહ અને સ્વરૂષમાં અસ્થિરતારૂપ ચારિત્રમોહ અનુક્રમે આત્મબોધ તથા વીતરાગતા કારા નષ્ટ થાય છે.

આત્મબોધ અને વીતરાગતામાં જ મોક્ષમાર્ગનું સંપૂર્ણ રહસ્ય આવી જાય છે. સ્વરૂપના સંબંધમાં થતી ભૂલ તે મિથ્યા દર્શન છે, ભૂલપૂર્વક જાણવું તે મિથ્યા જ્ઞાન છે અને તે ભૂલમાં ટકવું તે મિથ્યા ચારિત્ર છે. જેવો આત્મપદાર્થ છે તેવો તેને માનવો તે સમ્યગ્દર્શન છે, તેવો તેને જાણવો તે સમ્યગ્જ્ઞાન છે અને તેમાં ટકવું-ઠરવું તે સમ્યક્યારિત્ર છે. સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રની એકતા તે જ મોક્ષમાર્ગ છે અને તે જ સંસારથી મુક્ત થવાનો ઉપાય છે. દર્શનમોહનીયનો અભાવ થતાં સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે અને તે દ્વારા જ્ઞાન પણ સમ્યક્પણું પામે છે તથા ચારિત્રમોહનો અભાવ થતાં પૂર્ણ સમ્યક્ચારિત્ર પ્રગટે છે; માટે દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયના નાશનો ઉપાય તે જ મોક્ષનો ઉપાય છે, અર્થાત્ આત્મબોધ અને વીતરાગતા એ જ મોક્ષનો ઉપાય છે. બોધ અને વીતરાગતાની એકતા છે તે જ મોક્ષમાર્ગ છે અને તે બન્નેના પૂર્ણપણાથી મોક્ષ થાય છે. આમ, સ્વરૂપની પ્રતીતિરૂપ આત્મબોધ અને સ્વરૂપમાં ઠરવારૂપ - સ્થિરતારૂપ વીતરાગતા એ જ મોક્ષનો અર્યૂક ઉપાય છે. શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે –

'આ મોક્ષના ઉપાયની રીત છે; આ ભાવે જ અંતર્મુહૂર્તમાં કેવળજ્ઞાન પ્રગટે છે. આ અચૂક ઉપાય છે. આમાં ત્રણે કાળ બીજો મત કે પંથ નથી. આમાં અમુક વેશ, સંપ્રદાય કે કિયા કરવાનું ન આવ્યું; પણ સમજવાનું અને સમજણની સ્થિરતા એ બે ઉપાય કહ્યા. બહારનું કંઈ કરવું એમ ન આવ્યું. આત્મા આમ જ છે એવી સાચા અનુભવ સહિત પ્રતીતિ તે દર્શનમોહને ટાળે છે અને રાગ, હેષ, રતિ, અરતિ, ભય, શોક, કોધ, માન, માયા, લોભ વગેરે અસ્થિરતાને એટલે ચારિત્રમોહને ટાળનાર વીતરાગભાવની સ્થિરતા છે.'

અહીં શ્રીગુરુએ મોહનીય કર્મને દૂર કરવા અચૂક ઉપાય, અર્થાત્ ચૂકે નહીં એવો અચૂક ઉપાય બતાવ્યો છે, જેને આચરવાથી મોહનીય કર્મ અવશ્ય દૂર થાય છે. મિથ્યા બોધ તે દર્શનમોહ છે અને તેનો પ્રતિપક્ષ સત્યાત્મબોધ છે તથા રાગાદિ પરિણામ તે ચારિત્રમોહ છે અને તેનો પ્રતિપક્ષ વીતરાગતા છે. અંધકાર જેમ પ્રકાશ થવાથી નાશ પામે છે - પ્રકાશ જેમ અંધકારનો નાશ કરવાનો અચૂક ઉપાય છે, તેમ બોધ અને ૧- જુઓ : (૧) 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્કી આવૃત્તિ, પૃ.૫૯૨ (આંક-૭૬૬, ૧૦૭)

^{&#}x27;તત્ત્વાર્થની પ્રતીતિ તે 'સમ્ચક્ત્વ', તત્ત્વાર્થનું જ્ઞાન તે 'જ્ઞાન', અને વિષયના વિમૂઢ માર્ગ પ્રત્યે શાંતભાવ તે 'ચારિત્ર'.'

⁽૨) એજન, પૃ.૭૪૦ (વ્યાખ્યાનસા૨-૧, ૩૭)

^{&#}x27;પ્રયોજનભૂત પદાર્થનું જાણપણું તે 'જ્ઞાન', તેને લઇને સુપ્રતીતિ તે 'દર્શન', અને તેથી થતી ક્રિયા તે 'ચારિબ' છે.'

૨- શ્રી કાનજીસ્વામી, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચનો', આઠમી આવૃત્તિ, પૃ.૩૪૬

વીતરાગતારૂપ પ્રકાશ દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયરૂપ અંધકારને નાશ કરવાના અચૂક ઉપાય છે. વળી, આ ઉપાય એવો સચોટ છે કે એક વાર મોહનીય કર્મના સર્વથા ક્ષયરૂપ પૂર્ણ વીતરાગતા પ્રગટે છે, પછી ફરી ક્યારે પણ વિકલતા થતી નથી. કર્મનાશનો આ ઉપાય આચરવા માટે અનંત કાળની જરૂર પડતી નથી. જો આત્મા બે ઘડી પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપમાં સ્થિર રહે તો સર્વ ઘાતી કર્મોનો નાશ કરી કેવળજ્ઞાનાદિ ઉત્પન્ન કરી શકે છે. તેથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે અનંત કાળનાં કર્મો ક્ષય કરવા માટે અનંત કાળની આવશ્યકતા નથી. આમ, ગાથા ૯૨ના ઉત્તરાર્ધમાં શિષ્યે કરેલી શંકા 'કર્મો કાળ અનંતનાં, શાથી છેદાં જાચ?'નું સમાધાન પણ શ્રીગુરુએ અહીં કર્યું.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે -

'કર્મ મોહનીય ભેદ બે, ભાષ્યા જિનવર દેવ; સત્ય કરે જો માન્યતા, તો તસ કરીએ સેવ. ગુણમાં મૂંઝવે મોહ તે, દર્શન ચારિત્ર નામ; શ્રદ્ધા બગડેથી બધી, બગડે ક્રિયા તમામ. તેને પણ અનુક્રમ થકી, આત્મવીર્ય ઉલ્લસાય; હશે બોધ વીતરાગતા, અમોઘ છે જ ઉપાય. આત્મબોધથી પરતણો, સહજે રાગ તમામ; નાશ થતાં નિજ ગુણ ઠરે, અચૂક ઉપાય આમ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૦ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૦૯-૪૧૨)

इम्डिंग क्रोपादिश, एकि श्रामादि तेए.

ભૂમિકા ગાથા ૧૦૩માં શ્રીગુરુએ મોહનીય કર્મને દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીય, એમ બે પ્રકારમાં વિભક્ત કરીને તેના નાશના અચૂક ઉપાય તરીકે બોધ અને વીતરાગતા બતાવ્યાં.

મોહનીય કર્મ જે રસ્તે નાશ થાય તે જ મોક્ષપંથ છે એમ આગલી ગાથાઓ દ્વારા સ્પષ્ટ કર્યા પછી, હવે આ ગાથામાં મોક્ષના સચોઠ ઉપાયરૂપે જીવે પ્રયોગાત્મક ધોરણે શું કરવું જોઈએ તે સમજાવ્યું છે. સ્વરૂપની પ્રતીતિ અને સ્વરૂપમાં સ્થિરતા વડે કર્મબંધનું અટકવું થાય છે. આ તથ્યને સામાન્ય જનો પણ સમજી શકે એવા દષ્ટાંત દ્વારા સમજાવ્યું છે, જેથી મોક્ષમાર્ગ સંબંધીનો નિશ્ચય દઢ થાય. મોક્ષમાર્ગ સંબંધી સંદેહરહિત નિશ્ચય કરાવતાં શ્રીગુરુ કહે છે —

'કર્મબંધ કોંધાદિથી, હણે ક્ષમાદિક તેહ; પ્રત્યક્ષ અનુભવ સર્વને, એમાં શો સંદેહ?'(૧૦૪)

કોધાદિ ભાવથી કર્મબંધ થાય છે, અને ક્ષમાદિક ભાવથી તે હણાય છે; અર્થાત્ ક્ષમા રાખવાથી કોધ રોકી શકાય છે, સરળતાથી માયા રોકી શકાય છે, સંતોષથી લોભ રોકી શકાય છે; એમ રતિ, અરતિ આદિના પ્રતિપક્ષથી તે તે દોષો રોકી શકાય છે, તે જ કર્મબંધનો નિરોધ છે; અને તે જ તેની નિવૃત્તિ છે. વળી સર્વને આ વાતનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ છે, અથવા સર્વને પ્રત્યક્ષ અનુભવ થઇ શકે એવું છે. કોધાદિ રોક્યાં રોકાય છે, અને જે કર્મબંધને રોકે છે, તે અકર્મદશાનો માર્ગ છે. એ માર્ગ પરલોકે નહીં, પણ અત્રે અનુભવમાં આવે છે, તો એમાં સંદેહ શો કરવો? (૧૦૪)

કર્મબંધનો છેદ કરવા માટે પ્રથમ કર્મબંધ થવાનાં કારણો સમજવાં જોઈએ. ભાવાર્થ જે કારણોથી બંધ થાય, એનાં પ્રતિપક્ષી કારણોથી બંધ છેદાય એ વાત નિર્વિવાદ છે. ક્રોધાદિ બંધભાવ હોવાથી તેનાથી કર્મબંધ થાય છે અને ક્ષમાદિ અબંધ-ભાવ હોવાથી તેનાથી કર્મબંધનો નિરોધ થાય છે. ક્ષમાદિ વીતરાગભાવમાં રહેવાથી ક્રોધાદિ વિકારી ભાવ હણાય છે તે પ્રત્યક્ષ અનુભવની વાત છે, અર્થાત્ ક્રોધાદિ કષાય કરવાથી ઉત્પન્ન થતી વ્યાકુળતા અને ક્ષમાદિ અકષાયી ભાવથી થતી નિરાકુળતાનો અનુભવ સર્વને થાય છે. ગમે તે સંજોગોમાં ક્ષમાદિ અકષાયી ભાવ રાખવાથી ક્રોધાદિ કષાયભાવ હણાય છે. ક્ષમા રાખવાથી ક્રોધ રોકી શકાય છે. લઘુતા રાખવાથી માન રોકી

શકાય છે. સરળતા રાખવાથી માયા રોકી શકાય છે અને સંતોષથી લોભ રોકી શકાય છે. એવી રીતે રતિ, અરતિ આદિના પ્રતિપક્ષી ભાવોથી તે તે દોષો રોકી શકાય છે.

આમ, જીવ સ્વભાવની નિકટ જઈ વિભાવમાંથી પાછો ખસે, સ્વરૂપપરિણતિ પ્રગટાવી પરવૃત્તિ ટાળે તે ધર્મ છે. આત્મા આત્મભાવે પરિણમે તે ધર્મ છે, તેનાથી અન્ય જે ભાવ છે તે અધર્મ છે. સમ્યક્ ભાવ વિના ધર્મ સંભવી શકતો નથી. સમ્યક્ ભાવોથી કર્મબંધમાં કારણભૂત એવા વિકારી ભાવો રોકી શકાય છે એવો અનુભવ સર્વને થાય છે અથવા થઈ શકવા યોગ્ય છે, તેથી મોક્ષના ઉપાયનો સંદેહ કરવો અસ્થાને છે. ક્ષમાદિ ભાવોથી ક્રોધાદિ ભાવો નિષ્ફળ થાય છે એ વાત અનુભવસિદ્ધ છે, તેમાં કોઈ પણ પ્રકારે સંદેહ રાખવા યોગ્ય નથી. મોક્ષમાર્ગ સંબંધી નિઃસંદેહપણું લાવી સમ્યક્ પુરુષાર્થ કરવા યોગ્ય છે, અર્થાત્ જીવે સાચો માર્ગ સમજી, યથાયોગ્ય પુરુષાર્થ કરવો જોઈએ. આ પ્રકારે પ્રસ્તુત ગાથામાં શ્રીગુરુએ વિકારના સર્વનાશની રહસ્યચાવી સંક્ષેપમાં તેમજ સરળતાથી બતાવી છે.

આતમા જ્ઞાનનો ઘનપિંડ અને આનંદનો રસકંદ છે. તે સ્વયં પરિપૂર્ણ છે, તોપણ અનાદિથી જ તે કેટલીક વિકૃતિઓ અને નબળાઈઓથી યુક્ત છે. તે નબળાઈઓને વિભાવ કહેવામાં આવે છે. વિભાવ બહારથી નથી આવતા, તે જીવનાં પોતાનાં જ પરિણામ છે, પરંતુ તે જીવની એક સમયની ક્ષણિક અવસ્થા પૂરતા જ થાય છે. દરેક સમયે જીવ ઊંધો પુરુષાર્થ કરી વિકાર કરે છે. એ પ્રમાણે પરંપરાથી જીવ અનાદિ કાળથી દરેક સમયે જુદો જુદો વિકાર કરતો રહ્યો છે. અનાદિ કાળથી જીવની અવસ્થામાં વિકાર થવા છતાં પણ તે વિભાવભાવોનો પ્રવેશ દ્રવ્યદળમાં ક્યારે પણ થતો નથી અને જ્યારે જીવની સવળી પરિણતિ થાય છે ત્યારે તે અવસ્થામાંથી પણ વિલય થઈ જાય છે. આમ, વિભાવ ક્ષણિક હોવાથી, તેમજ નાશ થઈ શકવા યોગ્ય હોવાથી તે જીવનો સ્વભાવ નથી.

જે પદાર્થનો જે સ્વભાવ હોય છે તે સદા તે પદાર્થની સાથે રહે છે, ક્યારે પણ અલગ થઈ શકતો નથી. જો થોડી વાર માટે સાથે રહે અને પછી અલગ થઈ જાય તો તે તેનો સ્વભાવ ન હોઈ શકે. વિકાર ક્ષણભર રહીને દૂર થતો હોવાથી તે જીવનો સ્વભાવ નથી. કોઈની કોઈ વસ્તુ આપણી પાસે હોય અને થોડા દિવસ પછી તે પાછી લઈ જાય તો તે વસ્તુને આપણી કેવી રીતે કહેવાય? કદાચ તે વસ્તુ આખી જિંદગી આપણી પાસે રહે તોપણ તે આપણી કહી શકાય નહીં. તે પ્રમાણે એક વિકાર આવ્યો અને ચાલ્યો ગયો. બીજો વિકાર આવ્યો અને ચાલ્યો ગયો. આમ, વિકારની સંતિત ભલે અનાદિ કાળથી ચાલી આવતી હોય, તોપણ તેને જીવનો સ્વભાવ કહી શકાતો નથી. જેમ બેંકમાં અનેક વ્યક્તિઓનાં નાણાં આવે છે અને જાય છે, છતાં તે નાણાં

બેંકના નથી, ઉપચારમાત્રથી તે બેંકના કહેવાય છે; તેમ વિકારી ભાવ આત્માની પર્યાયમાં થતા હોવાથી અપેક્ષાએ તેને આત્માના ભાવ કહી શકાય, પણ તે આત્માનો સ્વભાવ નથી. સ્વભાવમાં તો તે વિકારી ભાવોનો ત્રણે કાળમાં અભાવ જ છે.

જીવ ત્રિકાળી, શુદ્ધ, ચૈતન્યદ્રવ્ય છે. તે ઉત્પત્તિ તથા નાશના સ્વભાવવાળી ક્ષણિક અવસ્થારૂપ નથી. જીવની વિકારરૂપ મલિન અવસ્થા સ્થાયી રહેતી નથી. આત્મામાં જ થતી હોવા છતાં તે અવસ્થા ત્રિકાળી નથી. જીવ જો તે રૂપ હોય તો તેના નાશ સાથે જીવનો પણ નાશ થઈ જવો જોઈએ, પણ તેમ થતું નથી. જે ટકે તે જ જીવનો સ્વભાવ હોય. વિકારી ભાવ તો પરના આશ્રયે ઉત્પન્ન થયેલા મહેમાનરૂપ ભાવ છે. તેને પોતાના ગણવા એ મૂર્ખતા છે. જેમ એક જ માતાની કૂખે પુત્ર અને પુત્રી બન્ને જન્મે છે, પરંતુ પુત્રીને જન્મતાવેંત 'પરાયું ધન' કે 'પારકી થાપણ' ગણવામાં આવે છે, તેની સાથે થતો વ્યવહાર પણ જુદા પ્રકારનો જોઈ શકાય છે તથા પુત્રીને આજીવન પોતાના ઘરે રાખવાનો વિચાર તો કોઈ મૂર્ખ જ કરે; તેમ જ્ઞાન અને વિકાર બન્ને આત્મપ્રદેશમાંથી જન્મે છે, પરંતુ વિકાર પરાશ્રિત ભાવ છે, વિનાશી છે, અસાર છે. તેને પોતાના ગણવાની ચેષ્ટા તો કોઈ મૂઢ જ કરે!

અજ્ઞાની જીવને ભાન નથી કે પોતે વિકારથી અલગ છે. તે ક્રોધાદિ વિકારો સાથે તદાકાર થઈ જાય છે. કોઈ તેને ગાળ આપે છે તો તેને ક્રોધ આવે છે અને એ ક્ષણે તે ક્રોધ સાથે તદાકાર થઈ જાય છે. તે ભૂલી જાય છે કે ક્ષણભર પહેલાં ક્રોધ ન હતો ત્યારે પણ પોતે તો હતો, ક્ષણભર પછી ક્રોધ ચાલ્યો જશે ત્યારે પણ પોતે તો હશે જ; તો ક્રોધ વચમાં આવેલો વિકારી ભાવ છે. ક્રોધ પોતાને ગમે તેટલો ઘેરી લીધો હોય છતાં એ પોતાનો સ્વભાવ નથી. જેમ શરીરમાં તાવ ભરાયો હોય ત્યારે શરીરનું એક એક અણુ તાવથી અભિન્ન લાગે છે, પણ તાવ કાયમ માટે રહેતો નથી અને તાવ ઊતરી ગયા પછી પણ શરીર રહે છે. એ જોતાં સમજાય છે કે બન્ને ભિન્ન જ હતા. તેમ ઘોર મિથ્યાત્વના પડળના કારણે ભલે એમ લાગે કે પોતે અને વિકાર અભિન્ન છે, પરંતુ વિકાર શમી ગયા પછી પણ પોતે તો રહે જ છે. એ જોતાં સમજાય છે કે જે આવે છે અને જે જાય છે તે પોતાનો સ્વભાવ નથી, પણ જે ત્રણે કાળ પોતાની સાથે રહે છે તે જ પોતાનો સ્વભાવ છે.

આથી નિર્જાત થાય છે કે પરભાવ જીવમાં થવા છતાં તે જીવનો સ્વભાવ નથી. શુદ્ધ આત્મા અનાદિ, અનંત, નિત્ય અને સ્પષ્ટ પ્રકાશમાન જ્યોતિસ્વરૂપ છે. તેની પર્યાયમાં શુભાશુભ ભાવ કરવાની યોગ્યતા છે, તોપણ એ શુભાશુભરૂપ આત્મસ્વભાવ નથી. જ્ઞાયકવસ્તુ શુભ અને અશુભ ભાવરૂપે થતી નથી. જ્ઞાયકભાવ પ્રકાશસ્વરૂપ છે, જ્યારે શુભાશુભ ભાવ છે તે અંધકારસ્વરૂપ છે. શુભાશુભ ભાવ આત્માના વૈભાવિક ભાવ હોવા છતાં તે જડને પ્રસિદ્ધ કરતાં હોવાથી તેને જડભાવ પણ કહેવાય છે.

વસ્તુ જેને પ્રસિદ્ધ કરે, તે વસ્તુ તેની સંજ્ઞા પામે. જેમ સંતાન માતામાંથી જન્મે છે, પરંતુ તેને ગોત્ર મળે છે પિતાનું; તેમ વિકારી ભાવ આત્મામાંથી જન્મે છે, પરંતુ પરના અવલંબને થતો હોવાથી અને પરને પ્રસિદ્ધ કરતો હોવાથી અપેક્ષાએ તે જડભાવ છે. દા.ત. ક્રોધનો ભાવ ચેતનમાં જન્મે છે, પરંતુ તે જ્ઞાયકભાવને પ્રસિદ્ધ નથી કરતો; ક્રોધ ચારિત્રમોહનીય જડ કર્મને પ્રસિદ્ધ કરે છે, તેથી અપેક્ષાએ તે જડભાવ છે. વિકારી ભાવનો ઝુકાવ જડ પ્રત્યે હોવાથી પણ તે જડભાવ કહેવાય છે. પુત્રના લગ્ન પછી માતા ફરિયાદ કરે છે કે દીકરો પત્નીનો થઈ ગયો છે. માતાએ જન્મ આપ્યો, લાલનપાલનથી મોટો કર્યો, છતાં પત્ની પ્રત્યે ઝુકાવ હોવાના કારણે તેને પત્નીનો કહ્યો. તે પ્રમાણે વિકારી ભાવ આત્મામાં ઉત્પન્ન થાય છે, છતાં તેનો ઝુકાવ જ્ઞાયકભાવથી વિમુખ અને પરસન્મુખ હોવાના કારણે પણ તે જડભાવ કહેવાય છે. આ પ્રમાણે વિકાર કોઈ જડની અવસ્થા નહીં, પણ ચેતનની જ એક અવસ્થા છે; પરંતુ તે જડને પ્રસિદ્ધ કરતો હોવાથી તથા તેનો ઝુકાવ જડ પ્રત્યે હોવાથી તેને જડભાવ કહેવાય છે.

ક્રોધાદિ ભાવ તે જડભાવો છે અને જડભાવોથી પોતાની ઓળખાણ થાય તે અત્યંત અપમાનજનક છે. જીવ પોતાને નિર્મળ સચ્ચિદાનંદ જ્ઞાનપિંડ માનતો નથી અને 'હું ક્રોધી છું', 'હું કામી છું', 'હું પાપી છું' એમ વિકારી ભાવથી પોતાની ઓળખાણ આપે છે. આ યોગ્ય નથી. લૌકિક વ્યવહારમાં એમ કહેવાય છે કે સસરાના નામે જમાઈ ઓળખાય તે શરમભરેલું છે, અપમાનજનક છે; તેમ જડભાવથી ચેતનની ઓળખાણ અપાય તે ખરેખર શરમજનક છે, કલંકભરેલું છે. જીવે 'હું પૂર્શ છું', 'હું શુદ્ધ છું', 'હું પરમાત્મા જ છું' એવી પોતાના સ્વભાવની ઓળખાણ કરવી જોઈએ અને વિકારી ભાવોને ટાળવા જોઈએ. વર્તમાનમાં વિકારી ભાવોએ તેના સ્વરૂષને આવરિત કર્યું છે, પરંતુ વિકાર એ જીવનો સ્વભાવ ન હોવાથી તેને ટાળી શકાય છે. જ્યાં સુધી અગ્નિ ધુમાડાવાળો હોય છે ત્યાં સુધી અગ્નિની ઉજ્જવળતામાં ઊરાપ જણાય છે, પણ અગ્નિનો સ્વભાવ કંઈ ધુમાડાવાળો નથી, લીલાં લાકડાંના નિમિત્તે વર્તમાન અવસ્થામાં ધુમાડો દેખાય છે, પણ તે અગ્નિનું સ્વરૂપ નથી. અગ્નિ ઉગ્ર થતાં ધમાડો ટળી જાય છે. તેમ વિકારી ભાવના કારણે આત્માનું શુદ્ધ ઉજ્જવળ સ્વરૂપ પ્રસિદ્ધ થતું નથી, પણ ચૈતન્યસ્વભાવ તો રાગ-દ્વેષરૂપી ધુમાડાથી રહિત છે. વર્તમાન અવસ્થામાં પરના નિમિત્તે શુભ કે અશુભ વૃત્તિનો ધુમાડો ઊઠે છે. પણ તે આત્માનું સ્વરૂપ નથી. શદ્ધ ચૈતન્ય-સ્વભાવમાં એકાત્ર થતાં, શુભાશુભ ભાવરૂપ ધુમાડો ટળી જાય છે. શભાશભ વૃત્તિ ઊઠે ત્યારે સ્વભાવના બળથી વિભાવનો નિષેધ કરતાં જીવ વિભાવથી હટે છે. વીતરાગી ચૈતન્યસ્વભાવનું ઉગ્ર અવલંબન લેતાં વિકાર નાશ પામે છે. અવિકારી નિત્ય સ્વભાવના

લક્ષે સવળો પુરુષાર્થ થતાં વિકાર ટળે છે.

આમ, કોઈ પણ પ્રકારનો વિકાર એ ચૈતન્યાત્માનો ત્રિકાળી સ્વભાવ નથી. વિકાર એ તો આત્માની પર્યાયમાં ઉત્પન્ન થયેલ મૂઢતા છે. જેની ઉત્પત્તિ હોય છે, તેનો નાશ અવશ્ય હોય છે. તેથી પ્રથમમાં પ્રથમ એ નક્કી કરવું કે વિભાવ ક્ષણિક છે, ટળી શકે છે. વિભાવને પોતે જ ઉત્પન્ન કર્યો છે, તેથી તેના ક્ષયનો ઉપાય પણ પોતે જ કરવાનો છે. જીવ એ વિભાવનો ક્ષય કરી શકે એમ છે અને તેણે તે અવશ્ય કરવા યોગ્ય છે. મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે તેણે વિભાવનો ત્યાગ અને સ્વરૂપનું પૂર્ણ પ્રાગટ્ય કરવું જરૂરી છે. કર્મબંધમાં કારણભૂત થતા કોધાદિ કષાયો ક્ષમાદિ નિજગુણ પ્રગટવાથી હણાય છે, માટે કર્મબંધનથી મુક્ત થવાનો એ જ પંથ છે. શ્રીમદ્ પ્રકાશે છે —

'જીવ વિભાવપરિણામમાં વર્તે તે વખતે કર્મ બાંધે; અને સ્વભાવ પરિણામમાં પ્રવર્તે તે વખતે કર્મ બાંધે નહીં. એમ સંક્ષેપમાં પરમાર્થ કહ્યો.'^૧

ગમે તેવો કર્મનો ઉદય હોય, પરંતુ તે વખતે 'કઈ રીતે વર્તવું' એમાં જીવ સ્વતંત્ર છે. જીવ ધારે તે રીતે વર્તી શકે છે. ઉદયપ્રસંગે જો જીવ વીતરાગસ્વભાવમાં ન રહે અને વિભાવમાં સરી પડે તો તે કર્મ વડે બંધાઈ જાય છે અને તેનું પરિશામ કાળાંતરે તેશે ભોગવવું જ પડે છે. તેથી જીવે જો કર્મબંધનથી છૂટવું હોય તો તેશે સ્વભાવના અવલંબનપૂર્વક વિકારનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. વિકારના નાશનો ઉપાય કોધના દેષ્ટાંત હારા સમજીએ.

ક્ષમા આત્માનો સ્વભાવ છે. ક્ષમાસ્વભાવી આત્મામાં ક્રોધના અભાવરૂપ જે શાંતિ-સ્વરૂપ પર્યાય પ્રગટ થાય છે એને પણ ક્ષમા કહે છે. આત્મા ક્ષમાસ્વભાવી છે, તોપણ અનાદિથી આત્મામાં ક્ષમાના અભાવરૂપ એવી ક્રોધકષાયરૂપ પર્યાય પ્રગટપણે વિદ્યમાન છે.^ર અંતરમાં ક્ષમાદિ અનંત શક્તિના પિંડરૂપ દ્રવ્ય સદા વિદ્યમાન છે, પણ જીવે તે

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૬૮૮ (ઉપદેશછાયા-૪)

ર- ક્ષમાની જેમ માર્દવ પણ આત્માનો સ્વભાવ છે. માર્દવસ્વભાવી આત્માના આશ્રયે માનના અભાવરૂપ જે શાંતિસ્વરૂપ પર્યાય પ્રગટ થાય છે તેને પણ માર્દવ કહે છે. આત્મા માર્દવસ્વભાવી છે, તોપણ અનાદિથી માર્દવના અભાવરૂપ માનકષાયરૂપ પર્યાય પ્રગટરૂપે વિદ્યમાન છે. આર્જવ પણ આત્માનો સ્વભાવ છે. આર્જવસ્વભાવી આત્માના આશ્રયે કપટ-માયાના અભાવરૂપ જે શાંતિ-સ્વરૂપ પર્યાય પ્રગટ થાય છે તેને પણ આર્જવ કહે છે. આત્મા સ્વયં આર્જવસ્વભાવી હોવા છતાં અનાદિથી આત્મામાં આર્જવના અભાવરૂપ માયાકષાયરૂપ પર્યાય પ્રગટપણે વિદ્યમાન છે. ક્ષમા, માર્દવ અને આર્જવની જેમ શૌચ (સંતોષ) પણ આત્માનો સ્વભાવ છે. શૌચ(સંતોષ)સ્વભાવી આત્માના આશ્રયે લોભના અભાવરૂપ જે શાંતિસ્વરૂપ પર્યાય પ્રગટ થાય છે તેને પણ શૌચ (સંતોષ) કહે છે. આત્મા સ્વયં શૌચ(સંતોષ)સ્વભાવી હોવા છતાં અનાદિથી આત્મામાં શૌચ (સંતોષ)ના અભાવરૂપ લોભકષાયરૂપ પર્યાય પ્રગટપણે વિદ્યમાન છે.

દ્રવ્યની સામે કદી દષ્ટિ કરી નથી. તે પોતાના સ્વભાવસામર્થ્યને ધ્યાનમાં લેતો નથી અને ક્રોધાદિ ક્ષણિક પર્યાય જેટલો જ પોતાને માને છે. આ પર્યાયબુદ્ધિના કારણે જ અનાદિથી તેનો સંસાર ઊભો રહ્યો છે. ત્રિકાળી ક્ષમાસ્વભાવના અવલોકનની આળસે જ તેની મુક્તિ અટકી છે. જેમ ભગવાન સામે બિરાજેલા હોય, પણ જો પોતે આંખ ઉઘાડવાની આળસ કરે તો ભગવાન ન દેખાય; તેમ આત્મા પોતે ભગવાન છે, તે પોતાની પાસે જ છે, પણ અંતરનયનની આળસે જીવ તેને જોઈ શકતો નથી, તેથી સંસારમાં રખડે છે. જીવ જો પોતાના ક્ષમાસ્વભાવને લક્ષમાં લઈને તેમાં એકાગ્ર થાય તો પર્યાયમાં તેને તે ક્ષમાસ્વભાવરૂપ નિર્મળ પરિણમન ઊછળે. ક્ષમા આત્માનો સ્વભાવ છે, તેથી તે ધર્મ છે અને ક્ષમાસ્વભાવી આત્માના આશ્રયે ઉત્પન્ન થવાવાળી ક્ષમાભાવરૂપ સ્વભાવપર્યાય પણ ધર્મ છે. પરંતુ ક્ષમાસ્વભાવી આત્મા જ્યારે ક્ષમાસ્વભાવરૂપ પરિણમન કરતાં વિભાવરૂપ પરિણમન કરે છે, ત્યારે તેના એ વિભાવરૂપ પરિણમનને ક્રોધ કહેવામાં આવે છે, જે અધર્મ છે. આમ, ક્રોધ આત્માનો વિભાવ છે અને ક્ષમાના અભાવસ્વરૂપે પ્રગટ થાય છે. પ્રત્યેક સમયે ક્રોધ નવો નવો ઉત્પન્ન થતો હોવા છતાં પ્રવાહની અપેક્ષાએ અનાદિથી છે.

ચારે કષાયોમાં કોધનો ક્રમ પહેલો છે, કારણ કે ચારે કષાયોમાં સૌથી પહેલો તથા જલ્દી ખુલ્લો પડી જનાર કષાય ક્રોધ છે અને સૌથી પહેલો જીતી શકાય તેવો કષાય પણ ક્રોધ જ છે. પોતાના ધાર્યા પ્રમાણે ન થાય ત્યારે માણસને ક્રોધ આવે છે, તેની ઇચ્છા પ્રમાણે કે તેના કહ્યા પ્રમાણે ન થાય કે તરત ક્રોધ દર્શન આપે છે. તેની અનુકૂળતા પ્રમાણે ન થાય કે ગુસ્સો ચંડે છે. પોતાના કાર્યમાં નિષ્ફળતા મળવાથી તે ગુસ્સો કરે છે. અહંને ઘા વાગવાથી તે ગુસ્સે થઈ જાય છે. સ્વબચાવ માટે ગુસ્સે થઈ આક્રમક બને છે. અવચેતન મનમાં દ્રેષ હોવાથી તે ગુસ્સો કરે છે. કોઈના ઉપર આધિપત્ય જમાવવા પણ તે ક્રોધ કરે છે. જ્યારે ક્રોધ ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે જીવ સાર-અસારનો વિવેક ભૂલી જાય છે અને ગમે તેવું અયોગ્ય વર્તન કરી બેસે છે. ક્રોધ ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે શરીરમાં અનેક વિક્રિયાઓ ઉત્પન્ન થાય છે. હૃદયના ધબકારા વધી જાય છે, ભમ્મર ચડી જાય છે, મોઢું લાલચોળ બની જાય છે, પરસેવો છૂટવા માંડે છે, અનેક પ્રકારના અપશબ્દો મોઢામાંથી નીકળવા લાગે છે, હાથ-પગ ધૂજવા લાગે છે અને જેના ઉપર ક્રોધ ચડ્યો હોય તેના ઉપર તે ક્રોધી વ્યક્તિ હાથથી, મુકીથી, લાતોથી અથવા લાકડી, છરી, તલવાર, બંદૂક આદિ શસ્ત્રોથી પ્રહાર કરવા લાગે છે. આમ, ક્રોધ તરત જ ખુલ્લો પડી જાય છે. તેને છુપાવી શકાતો નથી.

કોધનાં પરિણામ ઘણાં ભયાનક છે. ક્રોધ એ શાંતિનો ભંગ કરનાર વિકાર છે. ક્રોધી વ્યક્તિ સામાન્ય રીતે ક્રોધ અંગેના વિચારના સાતત્પમાં સપડાયેલો હોય છે. ક્રોધ અંગેનો એક વિચાર આવ્યો કે તરત જ તેના અનુસંધાનમાં તેને બીજો વિચાર આવે છે. તેમાંથી ત્રીજા વિચારની ઉત્પત્તિ થાય છે, તેમાંથી ચોથા વિચારમાં તે સરકી જાય છે. ક્રોધ અંગેની તેની વિચારધારા સતત ચાલ્યા જ કરે છે. તેનું ચિત્ત નિરંતર આકુળ-વ્યાકુળ રહે છે. ક્રોધના વિકલ્પો જીવને અશાંત અને વિહ્વળ બનાવે છે. અશાંત ચિત્તવાળી વ્યક્તિ કોઈ પણ કાર્ય યથાર્થ રીતે અને સફળતાપૂર્વક કરી શકતી નથી, તો પછી ધર્મસાધના અને આત્મ-આરાધના કરવાની વાત તો ખૂબ દૂરની વાતો છે. ક્રોધ માનસિક શાંતિનો તો ભંગ કરી જ દે છે, ઉપરાંત વાતાવરણ પણ અશાંત, કલુષિત અને પ્રદુષિત કરી દે છે. જેના પ્રત્યે ક્રોધ કરવામાં આવે છે, તે અપમાનનો અનુભવ કરે છે અને તેથી તે પણ દુઃખી થાય છે. ક્રોધથી સગાને દુભાવાય છે, સ્વજનને રિબાવાય છે, સાથીઓને પજવાવાય છે, મિત્રો ગુમાવાય છે, કડવાશ પેદા થાય છે, દુશ્મનાવટ ઊભી થાય છે. ક્રોધનાં આવાં હાનિકારક પરિણામ હોવાથી જીવે તેનો અભાવ કરવો જોઈએ.

ક્રોધને જીતવા માટે સાધકે ક્રોધરૂપ વિભાવ તથા ક્ષમારૂપ સ્વભાવનું જ્ઞાન કરી, પોતાના દૈનિક જીવનમાં ક્ષમાનો અભ્યાસ કરવો ઘટે છે. ક્રોધની ઉત્પત્તિ કયા કારણથી થાય છે તે યથાર્થપણે જણાય નહીં ત્યાં સુધી તેના નાશનો યથાર્થ ઉપાય થઈ શકે નહીં. તેથી ક્રોધની ઉત્પત્તિનું કારણ શું છે અને એનો અભાવ કેવી રીતે કરવો એ સમજવું આવશ્યક છે.

જ્ઞાનીઓ કહે છે કે પોતાનાં પરિણામોનું તટસ્થપણે અવલોકન કરતાં જણાશે કે ક્રોધભાવ માટે જીવ સ્વયં જ જવાબદાર છે. ક્રોધ એ જીવનો સ્વભાવ નથી, પરભાવ છે; પરંતુ પરભાવની સંજ્ઞાથી એમ ન માનવું કે ક્રોધનો કર્તા કોઈ અન્ય છે. પર કંઈ ક્રોધ કરાવતું નથી. જીવ પરમાં જોડાય છે ત્યારે જ અને તેટલા જ સમય પૂરતો ક્રોધનો ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે. જીવ ઇચ્છે તો તે તેને અવશ્ય ટાળી શકે છે. જીવ તેમાં પૂરેપૂરો સ્વતંત્ર છે. પોતાની પરિણતિને સ્વભાવરૂપ કે વિભાવરૂપ પરિણમાવવા જીવ સ્વતંત્ર છે. સંસારના વિવિધ પ્રસંગોમાં જો તે સ્વરૂપનું અનુસંધાન રાખે તો પરિણતિ સ્વમાં રહે છે અને જો તે સાવચેત ન રહે તો પરમાં તન્મય થઈ સ્વયં વિકારરૂપ પરિણમે છે. આત્મા આવો સ્વતંત્રસ્વભાવી છે. જો તે સાવધ રહે તો તે પરનું જોડાણ ટાળી શકે છે. ક્ષણે ક્ષણે જીવને અનેક પ્રકારના સંયોગો મળે છે, પણ જો તે એક વાર નક્કી કરી લે કે 'મારે અશુદ્ધિથી બચવું છે અને શુદ્ધિના જ પ્રયત્ન કરવા છે', તો તે અશુદ્ધિથી બચી શકે છે. જો તે પરથી પ્રભાવિત ન થાય તો ક્રોધ ઉત્પન્ન થતો નથી. પર કાંઈ તેને ક્રોધ કરાવી શકતું નથી. એક દ્રવ્ય બીજા દ્રવ્યનું કંઈ કરે નહીં તથા એક દ્રવ્યથી બીજા દ્રવ્યને કોઈ લાભ-નુકસાન થાય નહીં એ પાયાનો સિદ્ધાંત છે.

તાત્પર્ય એ છે કે પોતાના ક્રોધ માટે અન્યને દોષ આપવાને બદલે જીવે સ્વયં સઘળી જવાબદારી સ્વીકારવી જોઈએ. નિંદકો જીવની નિંદા કરી શકે, પણ તેને ક્રોધ ન કરાવી શકે. વિરોધ કરનાર અપશબ્દ બોલી શકે, વિપરીત સંજોગો સર્જી શકે, પણ તેને ગુસ્સે તો ન જ કરાવી શકે. કોઈ તેની પાસેથી પૈસા ચોરી જઈ શકે, પણ તેની સ્વસ્થતા ન છીનવી શકે. વિપરીત સંયોગો હોય, મુશ્કેલીઓ હોય, 'હેરાન કરનાર' વ્યક્તિ હોય, પણ ક્રોધ તો જીવ પોતાના વિપરીત વિચારો અને મિથ્યા વલણથી જ કરે છે. તેથી સાધકે નિર્ણય કરવો જોઈએ કે 'મારા ક્રોધ માટે અન્ય નહીં માત્ર હું જ જવાબદાર છું. હું જ ક્રોધ કર્યું છું અને હું જ એને ટાળી શકું છું. હું મારી અવસ્થામાં ગુણ-દોષ કરવા સ્વતંત્ર છું, પછી શા માટે અન્ય ઉપર જૂઠો આરોપ લગાવું?'

પોતાની જવાબદારીમાંથી છટકવા કેટલાક કહે છે કે 'મારાથી ગુસ્સો થઈ જાય છે', 'મને ગુસ્સો આવી જાય છે' એટલે કે પોતે ગુસ્સો કરતો નથી, ગુસ્સે 'થઈ જવાય છે'. પોતે ક્રોધ લાવતો નથી, ક્રોધ 'આવી જાય છે'. આ કથનમાં કશે પણ કર્તા નથી, કશે પણ કરેલી પ્રવૃત્તિની જવાબદારી નથી. 'થઈ જાય છે' એટલે એ મારું કામ નથી, માટે એનો ઉપાય પણ મારા હાથમાં નથી. 'આવી જાય છે' એનો અર્થ એ થયો કે ક્રોધ જાણે આકાશમાંથી આપોઆપ આવે છે, આક્રમણ કરે છે, મનમાં ઘૂસી જાય છે. આમ, જીવ ક્રોધ તો કરે છે અને સાથે સાથે જવાબદારીમાંથી છટકવા માટે સગવડ પણ શોધી રાખે છે.

જીવે આ જૂઠની જાળને વિસર્જિત કરી દેવી ઘટે છે. તેણે પોતાની જાતને જેવી છે તેવી સ્વીકારવી ઘટે છે. પોતાના દોષને ઢાંકવાને બદલે ઉઘાડી નાખવા જોઈએ. તેના બચાવ માટે કોઈ તર્ક શોધવા ન જોઈએ. પોતાની જવાબદારીમાંથી છટકવાની કોશિશ ન કરવી જોઈએ. જો બુરાઈઓ માટે સારા-સુંદર દેખાતા તર્કો આપવામાં આવે તો તે બુરાઈઓને કદી પણ કાઢી શકાતી નથી. ચારે તરફ ફૂલ સજાવીને કારાગૃહને ઘર જેવું બનાવી દીધું હોય, બીમારીને પણ તંદુરસ્તી સમજી બેઠા હોય તો છુટકારો થઈ શકે નહીં; તેમ તર્કથી કોધનો બચાવ કરવામાં આવે તો તેનાથી ક્યારે પણ નિવૃત્ત થઈ શકાતું નથી. તેનાથી તો કોધને સહારો તેમજ સહાય મળે છે. પછી તે કેવી રીતે નાશ થશે? કોધનો અવગુણ સ્વીકારી લીધો હોય તો તેનાથી છૂટવાનો કોઈ ઇલાજ જ નથી. 'મારામાં કોધ છે, એ મોટો અવગુણ છે' એમ નિખાલસપણે સ્વીકારી લેવામાં આવે તો જણાશે કે તેના ઉપર કેવો સરળતાથી અને શીઘતાથી વિજય મેળવી શકાય છે. માટે જીવે પોતાના કોધનું કારણ અન્યમાં ન શોધવું જોઈએ. પોતાના ક્રોધ માટે બીજાને જવાબદાર ન ગણવો જોઈએ. પોતાના અવગૃણ માટે જે બીજાને

જવાબદાર ગણે તે ધાર્મિક નથી. અધાર્મિકતાનો અર્થ છે 'જવાબદારી બીજા કોઈની છે, હું તો સારો માણસ છું, બીજા લોકો મને ખરાબ બનાવી રહ્યા છે.' ધાર્મિકતાનો અર્થ છે 'પૂરેપૂરી જવાબદારી મારી જ છે.' ક્ષણે ક્ષણે આવી ધાર્મિકતાનું સેવન કરનારને ધાર્મિક કહેવાય. તે એમ માને છે કે 'ક્રોધ થાય છે એ મારી જ નિર્બળતા છે.' તે પોતાની જવાબદારી સ્વીકારે છે અને ક્રોધમાંથી ઉપાદેયબુદ્ધિ છોડે છે.

જીવ ક્રોધને આવશ્યક અને હિતકારી માનતો હતો, પરંતુ સદ્દ્ગુરુના બોધના આધારે તેનો મિથ્યા દષ્ટિકોણ બદલાય છે અને ક્રોધમાંથી ઉપાદેયબુદ્ધિ દૂર થાય છે. તે પ્રાપ્ત પરિસ્થિતિનો શાંત સ્વીકાર કરી, ક્રોધના ઉદયને જીતી તેની કુઅસરોથી પોતાને બચાવવાનો સંકલ્પ કરે છે. ક્લેશનો અવસર ઉદ્દ્ભવે ત્યારે તેમાં સમભાવે રહેવું છે એમ દઢતાપૂર્વક નક્કી કરી રાખે છે. જીવનમાં સમયે સમયે નવી નવી પરિસ્થિતિ તો ઉદ્દભવ્યા જ કરે છે, ત્યાં જો યથાર્થ સમજણપૂર્વક જાગૃતિ ન કેળવી હોય તો ડગલે ને પગલે ભયંકર અથડામણ થયા જ કરે છે અને જીવન ક્લેશમય બની જાય છે. તેથી સાધક તત્ત્વનિર્ણયના બળ વડે દરેક સમસ્યાનું નિરાકરણ લાવે છે કે જેથી જીવનમાં સુખ-શાંતિ સ્થપાય અને કર્મબંધથી બચાય. તે જાણે છે કે 'પૂર્વે મેં પોતે જ કર્મ બાંધ્યાં હતાં, તેનું ફળ હું અત્યારે ભોગવી રહ્યો છું. પૂર્વનો હિસાબ ચૂકતે થઈ રહ્યો છે, તેમાં ક્લેશ કે સંતાપનું કોઈ કારણ નથી. સમતા રાખીશ તો સંવર-નિર્જરા થશે અને કર્મબંધનથી મુક્ત થવાશે. તેથી જ્યારે, જે સ્થળે, જે રીતે કસોટી થાય; તેમાં તે ધીરજથી, નિષ્ઠાથી, ઉત્સાહથી સ્થિર રહે છે અને સમભાવની વૃદ્ધિ કરે છે. ક્લેશ ટાળવાના પોતાના નિર્ણયમાં અટલ રહે છે, નિશ્વળ રહે છે.

કોધભાવ ઉત્પન્ન થાય તો તે તરત પોતાના ક્ષમાસ્વરૂપ આત્માનું અવલંબન લઈ સજાગ થઈ જાય છે કે 'ક્ષમા એ મારો મૂળ સ્વભાવ છે. કોધભાવ મૂળ સ્વરૂપમાં નથી. માત્ર પરના અવલંબનથી તે ઊપજે છે, તો તેવા ભાડૂતી ભાવને આત્મામાં શા માટે જગ્યા આપું? પૂર્વના કોધના ગાઢ સંસ્કારો ઉત્તેજિત થયા છે તો અત્યારે મારું કર્તવ્ય છે જાગૃત રહેવું. જો હું જાગૃતિ ચૂકીશ તો કોધનો આ સંસ્કાર ફાટશે અને તેનું ભયંકર રૂપ બતાવશે. કોધના કારણે ઘણું નુકસાન થશે. કોધ અત્યારે પણ વ્યાકુળતા તથા દુઃખ આપનારો છે અને કોધ કરવાથી જે કર્મ બંધાશે તે પાછું ઉદયમાં આવતાં ભવિષ્યમાં પણ દુઃખરૂપ બનશે. આમ, કોધ તો સર્વ રીતે મને હાનિકારક છે, તે અત્યંત અપવિત્ર છે, મારા સ્વભાવનો વેરી છે; તેથી આવા કોધભાવને છોડીને હું હવે ક્ષમાભાવમાં - સમતાભાવમાં - જ્ઞાયકભાવમાં જ રહું.'

આ પ્રમાણે સાધક ક્રોધને જીતવા માટે ક્ષમાસ્વભાવી આત્માનું અવલંબન લે છે. ક્ષમાસ્વભાવ અને ક્રોધવિકારના ભેદજ્ઞાનના પુરુષાર્થ વડે તેનામાં મહાન આત્મબળ ઉત્પન્ન થાય છે. આ આત્મબળ વડે પરમક્ષમાભાવરૂપ સમાધિભાવમાં તે ટકી શકે છે. કર્મબંધથી ન લેપાતો એવો તે સાધક પરમ શાંતિ અને પરમ શીતળતાનો અનુભવ કરે છે. ક્ષમાથી નવો કર્મબંધ થતો અટકે છે અને પૂર્વે બાંધેલાં કર્મો ખરી જવાથી આત્માની વિશુદ્ધિ થઈને શાંત દશા પ્રગટે છે. તેથી જીવે ક્ષમા ગુણને ધારણ કરવાનો ઉદ્યમ કરવો ઘટે છે. તેણે ક્ષમાસ્વભાવનું અવલંબન લઈ જાગૃતિપૂર્વક કોધને નિષ્ફળ બનાવવાનો અભ્યાસ કરવો ઘટે છે. ક્ષમાસ્વભાવના અવલંબને કોધનો નાશ થઈ ક્ષમા ગુણ પ્રગટે છે. જેમ કેરી કાચી હોય તે વખતે જ તેમાં ખટાશનો નાશ કરનાર મીઠો સ્વાદ શક્તિપણે રહેલો હોય છે, તેથી ખટાશનો અભાવ થઈ મીઠાશ પ્રગટી શકે છે; તેમ કોધ આત્માના ક્ષમા ગુણની વિકારી પર્યાય છે. કોધરૂપ વિકારી અવસ્થા વખતે જ તે વિકારનો નાશ કરનાર શક્તિ દ્રવ્યદળમાં હોવાથી, તેનું અવલંબન લેતાં કોધવિકારનો નાશ થઈ શકે છે અને અવિકારી એવો ક્ષમા ગુણ પ્રગટે છે.

ક્ષમાસ્વભાવી આત્માના આશ્રયે પર્યાયમાં ક્રોધરૂપ વિકારની ઉત્પત્તિ જ ન થવી એ સાચી ક્ષમા છે. આત્મસ્વરૂપનું અવલંબન લેવાથી કોઈ પણ પદાર્થ ઇષ્ટ કે અનિષ્ટ ભાસતો નથી, તેથી ક્રોધ ઊપજતો નથી અને તે જ સાચો ક્ષમાભાવ છે. નિમિત્તોની પ્રતિકૂળતાઓમાં પણ જે શાંત રહી શકે તે ખરેખર ક્ષમાનો ધારક છે. ગાળ સાંભળી જે થપ્પડ મારે તે કાયાની વિકૃતિવાળો છે, ગાળ સાંભળી જે ગાળ આપે તે વચનની વિકૃતિવાળો છે, ગાળ સાંભળી જે મનમાં ક્રોધ લાવે તે મનની વિકૃતિવાળો છે અને ગાળ સાંભળી જે પ્રતિક્રિયા ન કરે તે ક્ષમાધારી છે. બાહ્ય નિમિત્તોની પ્રતિકૂળતા હોવા છતાં ક્રોધની પ્રવૃત્તિ ન દેખાય તેટલામાત્રથી ક્ષમા કહી નથી. બહારમાં ક્રોધાદિની પ્રવૃત્તિ ન દેખાય એતરમાં ક્રોધ વિદ્યમાન હોય એમ પણ બની શકે. સાચી ક્ષમા તો તેને કહેવાય કે જ્યારે ક્રોધાદિનું નિમિત્ત મળે ત્યારે પણ તે ઉત્તેજિત ન થાય, તેને પ્રતિકારની વૃત્તિ જ ન થાય.

કોધની અભિવ્યક્તિ ન કરનારને વ્યવહારદષ્ટિએ ક્ષમાનો ધારક કહેવામાં આવે છે, પરંતુ પરમાર્થદષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો એમ પણ હોઈ શકે કે તે બહારથી બિલકુલ શાંત દેખાતો હોવા છતાં પણ તેના અંતરમાં તીવ્ર કોધ હોય. કોધ અભિવ્યક્ત ન થયો હોવાથી 'ક્રોધ નથી' એવો ભ્રમ ઉત્પન્ન થાય છે. 'ક્રોધ નથી' એમ જે જોવા મળે છે એ તો ક્રોધનું પ્રદર્શન ન થયાની વાત છે. પરંતુ ક્રોધના પ્રદર્શનનો અભાવ તે કંઈ વાસ્તવિક ક્ષમા નથી. આત્માના સમ્યક્ સ્વરૂપને જાણ્યા-માન્યા વિના વાસ્તવિક ક્ષમા ધર્મ પ્રગટ કરી શકાતો નથી. અજ્ઞાની જીવ ઉપર ઉપરથી ક્ષમા રાખવાનો પ્રયત્ન ભલે કરે, પણ સ્વરૂપનો નિર્ણય અંતરમાં સુસ્થિત થયો ન હોવાથી તેને નામમાત્ર ક્ષમા - દેખાવની ક્ષમા હોય છે, સાચી ક્ષમા હોતી નથી. આમ બને ત્યારે અભિવ્યક્તિના સ્તરે

વિરોધ થતો નથી, પરંતુ અવચેતન મનમાં વિરોધ નોંધાય છે. ક્રોધનો પ્રસંગ બને ત્યારે 'મારે બોલવું નથી, મારે ક્રોધ કરવો નથી' એવા નિર્ણય કરવામાં આવે, પરંતુ આ નિર્ણય પાછળ સ્વરૂપચિંતનનો આધાર ન હોવાથી તત્કાલીન તો ઉપલક ક્ષમા ટકે છે, પરંતુ અવચેતન મનમાં તે પ્રસંગ પોતાની વિપરીત અસર છોડતો જાય છે. કુસંસ્કાર દબાઈને પડ્યો રહે છે, જે ભવિષ્યમાં સાનુકૂળ સંજોગો મળતાં અનેકગણો થઈ બહાર આવે છે. ચેતન મનને પ્રયત્નપૂર્વક હટાવી લીધું હોવા છતાં અવચેતન મન સિકેય રહી ગાંઠો બાંધતું રહે છે, જેથી ભવિષ્યમાં નુકસાનની સંભાવના રહે છે. આત્માનો આશ્રય ન હોવાથી અભિપ્રાય તો વિપરીત જ રહે છે. અજ્ઞાની જીવનો અભિપ્રાય સમ્યક્ ન થયો હોવાથી તેની ક્ષમા કાર્યકારી નીવડતી નથી, તેને ક્રોધનો અભાવ થતો નથી. છતાં તે ક્રોધના પ્રદર્શનના અભાવને ક્રોધનો અભાવ સમજી બેસી પોતાને ઉત્તમ ક્ષમાનો ધારક માને છે.

નવમી ઐવેયક સુધી પહોંચવાવાળા મિથ્યાદેષ્ટિ મુનિ બહારથી તો એટલા શાંત દેખાય કે કોઈ તેમની ચામડી ઉતારીને મીઠું ભભરાવે તોપણ તેમની આંખનો ખૂશો લાલ ન થાય. બાહ્યથી આટલા શાંત હોવા છતાં પણ તેઓ ઉત્તમ ક્ષમાના ધારક નથી, કારણ કે અનંતાનુબંધી કોધ તેમનામાં વિદ્યમાન છે. બહાર જે કોધનો અભાવ દેખાઈ રહ્યો છે તે કાંઈ આત્માના આશ્રયે ઉત્પન્ન થયેલી શાંતિ નથી, પરંતુ ભય, પ્રલોભન આદિનાં કારણે થયેલો કોધનો અભાવ છે. દા.ત. તેઓ વિચારે કે 'હું સાધુ થયેલો છું, તેથી જો શાંત નહીં રહું તો લોકો શું કહેશે અથવા શાંત રહીશ તો લોકો પ્રશંસા કરશે અને પુષ્યબંધ થશે.' અપયશ આદિનો ભય કે યશાદિનું પ્રલોભન જીવની ક્ષમાનું કારણ બની રહે છે, જેથી તેની ક્ષમા લૌકિક હોય છે અને પરમાર્થથી તે કોધનો ત્યાગી ગણાતો નથી. જેમ રાજાદિના ભયથી કે મહંતપણાના લોભથી કોઈ પરસ્ત્રી સેવે નહીં તો પરમાર્થથી તેને પરસ્ત્રીગમનનો ત્યાગી કહી શકાય નહીં, તેમ મિથ્યાદેષ્ટિ ભયથી કે લોભથી કોધ કરતો નથી, માટે તે ક્રોધનો ત્યાગી નથી. તેને ક્રોધ કરવાનો અભિપ્રાય મટ્યો ન હોવાથી બાહ્યમાં કોધ ન કરતો હોવા છતાં તે ઉત્તમ ક્ષમાનો ધારક નથી.

આમ, ઉત્તમ ક્ષમા તે અકષાયી ભાવરૂપ છે, વીતરાગભાવસ્વરૂપ છે, શુદ્ધ ભાવરૂપ છે. તે કષાયરૂપ નથી, રાગભાવરૂપ નથી, શુભાશુભ ભાવરૂપ નથી; પણ તે સહુના અભાવરૂપ છે. તેથી જ પૂર્વાચાર્યોએ આભાસિક (લૌકિક) ક્ષમા અને મોક્ષસાધક (લોકોત્તર) ક્ષમા, એમ બે પ્રકારે ક્ષમાનું સ્વરૂપ બતાવ્યું છે. 'યતિધર્મ બત્રીસી', 'વિંશતિ વિંશિકા' વગેરે અંથોમાં શાસ્ત્રકારોએ ક્ષમાને પાંચ પ્રકારે બતાવી છે –

(૧) ઉપકાર ક્ષમા – 'આ વ્યક્તિએ મારા ઉપર ઉપકાર કર્યો છે, મારે માથે એનું ઋણ છે, માટે એના પ્રત્યે ક્રોધ ન કરવો કે એની સામે ન બોલવું.' એમ વિચારીને કૃતજ્ઞતાપૂર્વક ક્ષમા રાખવી તે ઉપકાર ક્ષમા.

- (૨) અપકાર ક્ષમા 'આ પ્રસંગે જો ખમી નહીં ખાઉ તો મને નુકસાન થશે, કારણ કે સામી વ્યક્તિ સત્તા, ધન કે બળ આદિમાં મારાથી ચડિયાતી હોવાથી મારા કોઈ વર્તનથી તે કોધિત થશે તો મને ઘણું નુકસાન થશે; તેથી મારે સહન કરવું જોઈએ' એમ વિચારીને ક્ષમા રાખવી તે અપકાર ક્ષમા.
- (૩) વિષાક ક્ષમા 'ક્ષમા ન રાખું તો ક્રોધાદિથી થતાં અશુભ કર્મબંધથી નરકાદિ ભવોમાં મારે એનાં કડવાં ફળ ભોગવવાં પડશે.' આવા ભયથી, અથવા તો આ મનુષ્ય ભવમાં પણ ક્રોધથી ઉત્પન્ન થયેલ કર્મોના ઉદયથી આવનાર અનર્થોના ભયથી રખાતી ક્ષમા તે વિષાક ક્ષમા.
- (૪) પ્રવચન ક્ષમા 'જ્ઞાનીઓએ મુમુક્ષુને ક્ષમા રાખવાનું કહ્યું છે માટે ક્ષમા રાખવી જોઈએ' એમ વિચારીને, શાસ્ત્રવચનને આગળ કરીને ક્ષમા રાખવી તે પ્રવચન ક્ષમા
- (૫) ધર્મ ક્ષમા 'ક્ષમા એ જ મારો ધર્મ છે. ચંદનને કાપો, બાળો કે ઘસો તોપણ સુગંધ જ આપે છે; તેમ મને કોઈ કાપે, મારે કે બોલે તોપણ સહજપણે એના ઉપર પ્રેમ અને વાત્સલ્યની વર્ષા જ વરસાવવી જોઈએ. એ જ મારો સ્વભાવ છે.' આવી સમજણપૂર્વક ક્ષમા રાખવી તે ધર્મ ક્ષમા. પ્રવચન ક્ષમાના ચિરકાળના અભ્યાસથી સ્વભાવરૂપ બની ગયેલ ક્ષમા તે ધર્મ ક્ષમા છે.

આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજી 'વિંશતિ વિંશિકા' ગ્રંથમાં ક્ષમાના પૃથ્થકરણની ચર્ચા કરતાં સ્પષ્ટ કહે છે કે ઉપકાર ક્ષમા, અપકાર ક્ષમા, વિપાક ક્ષમા, વચન ક્ષમા અને ધર્મોત્તર ક્ષમા - આ પાંચમાંની પ્રથમ ત્રણ સાપેક્ષ છે, લૌકિક છે; છેલ્લી બે નિરપેક્ષ અને લોકોત્તર છે. પ્રથમ ત્રણ ક્ષમામાં ફળ ઉપર દૃષ્ટિ છે, તે ભય કે લોભ પ્રેરિત છે, માટે તેને સાપેક્ષ અને લૌકિક કહી. આ ત્રણ ક્ષમા આત્માના આશ્રયે નથી, પણ ત્યાં રાગનો સદ્ભાવ છે, તેથી તે ખરી ક્ષમા નથી. છેલ્લી બે ક્ષમા નિરપેક્ષ અને નિષ્કામ છે. તેમાં ફળ ઉપર નજર નથી. ક્ષમાની જેમ નમ્રતા, સરળતા, સંતોષ આદિનું પણ ઉપર મુજબ પૃથ્થકરણ કરીને તે લૌકિક, અર્થાત્ સામાજિક છે કે લોકોત્તર, અર્થાત્ મોક્ષસાધક સદ્યુણ છે તે પારખવું આવશ્યક છે. ર

ર- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'યતિધર્મ બત્રીસી', ગાથા ૭ 'મદેવ, અજ્જવ, મુત્તિ, તવ, પંચ ભેદ ઇમ જાણ; તિહાં પણ ભાવ-નિચંઠને, ચરમ ભેદ પ્રમાણ.'

९- જુઓ : आयार्थश्री હरित्मद्रसूरिक्छ5ृत, 'विंशति विंशिक्ष', यतिधर्म विंशिक्ष, गाथा उ 'उवगारवगारिविवागवयणधम्मुत्तरा भवे खंती । साविक्खं आदितिगं लोगिगमियरं दुगं जइणो ।।'

ઉપર કહેલું લૌકિક અને લોકોત્તર વિષયક પૃથ્થકરણ મુમુક્ષુ જીવને ઉદેશીને છે. મુમુક્ષુ પોતાની વ્યક્તિગત સાધનાનું સાચું મૂલ્યાંકન કરી શકે અને તેની ચિત્તવૃત્તિમાં રહેલ સુક્ષ્મ અશદ્ધિને પણ સમજી-પારખીને તેને દુર કરવાની જાગૃતિ રાખી શકે તે અર્થે જ્ઞાનીઓએ ધર્મપ્રવૃત્તિનું આ વિશ્લેષણ કરી બતાવ્યું છે. કિંતુ સમષ્ટિની દ્રષ્ટિએ તો લૌકિક સદાચાર પણ વાંછનીય જ છે. હિંસા, ચોરી, જૂઠ, અનાચાર વગેરે પાપોથી જીવોને પાછા વાળવા માટે શાસ્ત્રોમાં ઠેકાણે ઠેકાણે તેના કારણે થતાં અશુભ કર્મબંધનો અને તેના ફળરૂપ પ્રાપ્ય નરકાદિ દુઃખોનો ભય બતાવ્યો જ છે. તીવ્રસંકલેશવાળા જીવોને મંદસંકલેશવાળા કરવા માટેનો એ પ્રારંભિક પ્રયાસ છે. સ્વાર્થમાં જ રત રહેનાર અતિશય મલિન આશયવાળા જીવો પાપપ્રવૃત્તિ છોડી, સદાચારમાં પ્રવૃત્ત થાય તે માટે પ્રારંભમાં તો સત્પ્રવૃત્તિથી પ્રાપ્ય પુણ્યનું પ્રલોભન અને અસત્પ્રવૃત્તિનાં કડવા ફળનો ડર આગળ કરવામાં આવે છે. અતિશય મલિન આશયવાળા જીવોનું મન માત્ર વૃત્તિની શુદ્ધિના અભ્યાસમાં તરત લાગી શકતું નથી, તેથી જેવી રીતે બાળકને દવા સાથે સાકર આપવામાં આવે છે અથવા કોઈ વ્યક્તિ કે પરિસ્થિતિનો ભય બતાવવામાં આવે છે, તેવી રીતે સ્વર્ગાદિના પ્રલોભનથી કે નરકાદિના ભયથી તેમને ધર્મમાં રૂચિ કરાવવામાં આવે છે. પ્રારંભિક ભૂમિકાએ જીવો લોભથી કે ભયથી પણ નીતિમય જીવન તરફ વળે અને વ્રત-નિયમ આદિ ધાર્મિક પ્રવૃત્તિઓ કરતા થાય તો એના દ્વારા જીવનમાંથી વિચાર-વર્તનની સ્થૂળ અશુદ્ધિઓ દૂર થવાથી, વૃત્તિની શુદ્ધિ-અશુદ્ધિ સમજતા થાય અને તેઓ લઘુકર્મી બને; આ સંભાવના લક્ષમાં રાખી જ્ઞાનીઓ પુણ્યબંધનું પ્રલોભન કે પાયબંધનો ડર બતાવીને પણ તીવસંક્લેશવાળા જીવોને ધર્મપ્રવૃત્તિમાં જોડે છે. પરંતુ જ્યાં મુમુક્ષ જીવને માર્ગદર્શન આપવાની વાત આવે છે ત્યાં તેની સામે જ્ઞાનીઓએ સ્પષ્ટ ચેતવણી ઉચ્ચારી છે કે પ્રલોભનથી કે ડરથી થતી ધર્મપ્રવૃત્તિઓ મુક્તિસાધક નથી, લૌકિક છે. લૌકિક ધર્મનું ફક્ત સમષ્ટિગત મહત્ત્વ છે. લોભથી, ભયથી, ગતાનુગતિકતાથી, કુટુંબના સંસ્કારથી. લોકલાજથી - કોઈ પણ પ્રકારે સદાચારની જાળવણી થાય એ ઇષ્ટ છે, પરંતુ તેના મળમાં સ્વાર્થ હોવાથી તે દ્વારા સ્વાર્થમુક્તિ ન લાધી શકે. પ્રારંભિક ભૂમિકાએ ભય કે પ્રલોભનથી ક્રોધાદિને અટકાવવામાં આવે તે યોગ્ય છે, પણ તે વાસ્તવિક ધર્મપથ નથી

બાહ્ય લક્ષે ક્ષમાદિ રાખે, પણ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપનો લક્ષ હોય નહીં તો તે સાચા ક્ષમાદિ ભાવ નથી. તેના ભાવો શુભ છે અને તેથી તે પુષ્યબંધરૂપ છે. જો શુભ ભાવથી લાભ માને તો કદી શુભ ભાવ છૂટી શકે નહીં. શુભ ભાવ છોડવાનો ઉપાય એક જ છે કે સ્વભાવસન્મુખ થઈ શુદ્ધજ્ઞાનરૂપે પરિણમવું. કેટલાક જીવો શુભાશુભ ભાવને તડકા-છાયાનું રૂપક આપતાં કહે કે અશુભ તે તડકો છે અને શુભ તે છાંયો છે, પણ આ વાત યોગ્ય નથી. પારમાર્થિક દષ્ટિએ રૂપક આપવું હોય તો એમ કહી

શકાય કે શુભ તે મંદ તડકો છે અને અશુભ તે તીવ્ર તડકો છે; પરંતુ બન્ને તડકા જ છે, બન્નેમાં આકુળતા છે. શાંતિની છાંયડી તો રાગ વગરના જ્ઞાનમાં છે. શુદ્ધ જ્ઞાનમાં જ સાચો છાંયો અને સાચો વિસામો છે. શુદ્ધજ્ઞાનપરિણમનમાં જ સાચી શાંતિ છે, રાગમાં તો અશાંતિ જ છે.

શુભભાવરૂપ જે ક્ષમાના ભાવ છે, તે ભાવકર્મ છે. તે કર્મનિર્જરાનું કારણ થઈ શકતા નથી. પરંતુ પોતાના સ્વભાવનું ભાન થાય કે 'ક્ષમા મારો સ્વભાવ છે. મારા જ દોષોના કારણે તે આવરિત થયો છે, પરંતુ તે મારાથી અલગ નથી; ક્ષમાસ્વભાવમાં રહેવું તે મારો ધર્મ છે.' તો આવા સાચા અભિપ્રાય દ્વારા સ્વભાવમાં સ્થિરતાના પુરુષાર્થથી ક્રોધાદિ ભાવ હણાય છે અને કર્મબંધ ટળે છે. સદ્દ્ગુરુના બોધને અહણ કરી, આત્મસ્વરૂપનો નિર્ણય કરી, પ્રયોગાત્મક અભ્યાસ કરવાથી યથાર્થ ક્ષમાભાવ પ્રગટે છે. જ્યાં સુધી જીવને સાચો આત્મબોધ થતો નથી, પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપનું જ્ઞાન થતું નથી, ત્યાં સુધી વાસ્તવિક ક્ષમા ગુણ પ્રગટતો નથી. સ્વરૂપના બોધ વિના ક્ષમાદિ નિજગુણ ઊઘડતા નથી.

'સ્વભાવથી હું અક્રોધી છું, અમાની છું, અમાયી છું, અલોભી છું, અરાગી છું, અહેષી છું; અખંડ ક્ષમા, નમ્રતા, સરળતા, સંતોષ વગેરે મારા નિત્ય ગુણો છે અને તે ગુણોમાં જ રમણતા કરવી એ મારો ધર્મ છે. પરમાં કંઈ પણ કરવાનો મારો ધર્મ નથી.' આવો આત્મલક્ષ જાગૃત થતાં આત્માના ક્ષમાદિ ગુણો પ્રગટે છે અને તે જ ભાવો મોક્ષસાધક બને છે, અર્થાત્ તે જ ભાવો કર્મબંધમાં કારણભૂત એવા ક્રોધાદિ કષાયોને હણી મોક્ષ પ્રાપ્ત કરાવે છે. ક્ષમાથી ક્રોધનો નાશ થાય છે, માર્દવથી માનનો નાશ થાય છે, સરળતાથી માયાનો નાશ થાય છે અને સંતોષથી લોભનો નાશ થાય છે. 'શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્ર'માં કહ્યું છે કે સાધક ઉપશમથી ક્રોધને હણે, મૃદુતાથી અભિમાનને જીતે, સરળ સ્વભાવથી માયાનો અને સંતોષ દ્વારા લોભનો વિજય કરે. '

પૂર્વના પ્રગાઢ સંસ્કારોને નિર્મૂળ કરવા પ્રતિપક્ષી સંસ્કારોનું રોપણ એ સફળ ઉપાય છે. ક્રોધાદિનો પ્રભાવ વિલય કરવા પ્રતિપક્ષના સંસ્કાર પુષ્ટ કરવા જોઈએ.

૧- જુઓ : 'શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્ર', અધ્યાય ૮, ગાથા ૩૮

'उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे । मायं चऽज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ।।'

સરખાવો : ગણિશ્રી દેવચંદ્રજીકૃત, 'અધ્યાત્મગીતા', કડી ૩૨

'સહેજ ક્ષમાં ગુણ શક્તિથી છેદ્યો ક્રોઇ સુભટ્ટ ા માર્દ્રવ ભાવ પ્રભાવથી ભેદ્યો માન મરફ !! માયા આર્જવ યોગે લોભ તે નિઃસ્પૃહ ભાવ ! મોહ મહા ભટ ધ્વંસે ધ્વંસ્યો સર્વ વિભાવ!!' રાજનીતિજ્ઞ વ્યક્તિ પોતાના શત્રુનો વિનાશ કરવા માટે, તેની સામે થવા કોઈ અન્ય શત્રુને ઉત્તેજિત કરીને, તેને યુદ્ધમાં ઉતારી પોતાનો હેતુ સિદ્ધ કરી લે છે. તે પ્રકારે જીવે કુસંસ્કારોનો વિનાશ કરવા માટે તેની સામે તેના વિરોધી સંસ્કારોને હાજર કરી લેવા જોઈએ, અર્થાત્ વર્તમાનમાં વિદ્યમાન ક્રોધાદિ સંસ્કારોની સામે ક્ષમાદિને કેળવવાં જોઈએ. ક્રોધને દૂર કરવો હોય તો ક્ષમા, ઉપશમ, મૈત્રી આદિના સંસ્કારોને જગાડવા જોઈએ. માનને નષ્ટ કરવા મૃદુતા, નમતા, લઘુતા આદિને પુષ્ટ કરવાં જોઈએ. માયાને દૂર કરવા ઋજુતા, સરળતા આદિના સંસ્કારને પુષ્ટ કરવાં જોઈએ. લોભને ખતમ કરવા સંતોષ આદિના સંસ્કારને વિકસિત કરવા જોઈએ. ક્ષમાદિ સંસ્કાર જેટલા સઘન થશે, તેટલા જ ક્રોધાદિ ક્ષીણ થતા જશે. તે સુસંસ્કારો જીવને મોક્ષમાર્ગે આગળ વધવામાં સહાય કરશે. અનાદિથી જે મિથ્યા પક્ષના સંસ્કારો પડ્યા છે, તેને હટાવવા તેનાથી વિપરીત એવા સમ્યક્ પક્ષના સંસ્કારોનું સુદઢપણે ઘોલન કરતા રહેવું જોઈએ.

જ્યાં સુધી પ્રતિપક્ષના સંસ્કાર પુષ્ટ નથી થતા, ત્યાં સુધી કોધાદિ પાતળા નથી પડતા, તૂટતા નથી. પ્રતિપક્ષના સંસ્કારો સઘન કરવાથી કોધાદિ શાંત થાય છે, નષ્ટ થાય છે, તેથી કર્મબંધ થાય એવા સંસ્કારોથી મુક્ત થવા પ્રતિપક્ષના સંસ્કારોને સઘન બનાવવાનો અભ્યાસ અત્યંત તન્મયપણે, ઉલ્લાસપૂર્વક, જાગૃતિપૂર્વક અને અવિરતપણે કરવો જોઈએ. કુસંસ્કારોના નાશ માટે દઢતાપૂર્વક પૂરી શક્તિ લગાવીને અધિકાધિક પુરુષાર્થ કરતા રહેવું ઘટે.

કુસંસ્કારોથી મુક્ત થવા પુરુષાર્થ વર્ધમાન કરતા રહી ધીરજપૂર્વક અભ્યાસ કરવો જરૂરી છે. નિરંતર અભ્યાસ કરવાથી પ્રકૃતિ અને રુચિ પરિવર્તન પામે છે અને ધીરે ધીરે અનુભવ થાય છે કે આ અભ્યાસ રોજ ને રોજ સરળ બનતો જાય છે. જન્મ-જન્માંતરોથી જીવ અજાગૃતિમાં જ રાચ્યો હોવાથી બેહોશી તોડતા તેને વાર લાગે છે, અનાદિના સંસ્કાર તેને પારાવાર પજવે છે; પરંતુ મક્કમતાથી, નિષ્ઠાથી અભ્યાસ કરતાં સફળતા મળે છે. સાધનાક્રમને નિરંતર અનુસરી, ધીરજપૂર્વક અભ્યાસ કરતા રહેવાથી આશ્ચર્યજનક ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે. અવિરત અભ્યાસથી જીવ અણધારી સિદ્ધિઓને વરે છે, માટે જીવે ધીરજ રાખીને અભ્યાસ કરતા રહેવું જોઈએ, તો જ પૂર્વસંસ્કારોનો નાશ થાય. પૂર્વસંસ્કારોમાંથી મુક્ત થવાનું કાર્ય કષ્ટસાધ્ય જરૂર છે, પણ અસાધ્ય નથી જ.

આ દુઃસાધ્ય અભ્યાસમાં નિષ્ઠાપૂર્વક વર્તવાનું સાચા સાધકને જ સૂઝે છે. વીતરાગમાર્ગનો જિજ્ઞાસુ દોષ જતાં વિલંબ થાય તોપણ ધીરજપૂર્વક તેનું મૂળ શોધી તેને કાઢવાના સત્પુરુષાર્થમાં લાગેલો રહે છે. તે પોતાનાં સામર્થ્ય, ભૂમિકા, પૂર્વ-સંસ્કારોની પ્રબળતા આદિને ગણતરીમાં લે છે. ઉદયોની સભાનતા રાખે છે. પોતાની સર્વ ગતિ-વિધિઓ પ્રત્યે તે સભાન હોવાથી પોતાની કઈ શક્તિ ક્યારે કામે લગાડવી

તેનું આયોજન કરે છે. શરૂઆતમાં મળતી વારંવારની નિષ્ફળતા પછી પણ ધૈર્ય અને ઉલ્લાસ ટકાવી રાખે છે. નથી તે બાહ્ય સંયોગોનો વાંક કાઢતો કે નથી પોતાના ઉત્સાહને મંદ થવા દેતો. તે શૂરવીરતાપૂર્વક પોતાના કુસંસ્કારો ઉપર વિજય મેળવે છે. યુદ્ધમાં કયું સૈન્ય જીતે; શસ્ત્રો સારાં હોય તે કે જેના યોદ્ધા સારા હોય તે? શસ્ત્રોની ગુણવત્તા કરતાં શસ્ત્રો કોણ ચલાવે છે એનું મહત્ત્વ વધારે છે. શૌર્યનો સવાલ છે, તાલીમનો સવાલ છે, કુશળતાનો સવાલ છે; એટલે કે યોદ્ધાનો સવાલ છે. સાધકનું જીવન પણ એક સંગ્રામ છે, એટલે એમાં પણ યોદ્ધાનું મહત્ત્વ છે. સાધકવૃત્તિનું મહત્ત્વ છે. શસ્ત્રો તો જાતજાતનાં મળે, એટલે કે સગવડો, પૈસા, વાતાવરણ જુદાં જુદાં મળે અને તેની અસર પણ થાય, પણ ખરી વાત અંતરની છે, મહત્તા શૌર્યની છે. સાધકમાં ભરપૂર શૂરવીરતા હોવાથી તે દઢતાપૂર્વક નવા સુસંસ્કાર નાખી, જૂના કુસંસ્કારોથી મુક્ત થાય છે. સતત પુરુષાર્થ કરતાં કરતાં પ્રતિપક્ષના સંસ્કાર ચિત્તમાં રોપાય છે અને પરિસ્થિતિ પલટાઈ જાય છે. પ્રથમ નિમિત્ત મળતાં કુસંસ્કાર જાગૃત થતા હતા, હવે તેની સાથે સુસંસ્કાર પણ જાગે છે અને તે સુસંસ્કાર કુસંસ્કાર સાથે સ્પર્ધામાં ઊતરે છે. કુસંસ્કારોનો પ્રભાવ ઉત્તરોત્તર હાનિ પામતો જાય છે, સુસંસ્કારોની જીત થતી જાય છે અને એક સમય એવો આવે છે કે કુસંસ્કારો પૂર્ણપણે ક્ષય થઈ જાય છે.

ક્ષમાદિ દ્વારા આ પ્રકારે ક્રોધાદિનો નાશ થાય છે. ક્ષમાદિ અને ક્રોધાદિ બન્ને આત્માના જ પુરુષાર્થ છે. સવળી કે અવળી આ ચૈતન્યની જ રમત છે અને તે ચૈતન્યમાં જ રમાય છે. બન્ને રમતમાં ચૈતન્યનો જ પુરુષાર્થ વપરાય છે. જેમ ગાડીને આગળ જવા માટે પેટ્રોલ જોઈએ છે, તેમ પાછળ જવા માટે પણ પેટ્રોલની આવશ્યકતા રહે છે; જેમ લિફ્ટને ઉપર જવા માટે વીજળીની જરૂર પડે છે, તેમ નીચે આવવા માટે પણ વીજળીની આવશ્યકતા રહે છે; તેમ સવળી કે અવળી બન્ને રમત માટે આત્માએ પુરુષાર્થ તો કરવો જ પડે છે. પુરુષાર્થ તો પ્રતિસમય કરવાનો જ છે, તેથી હવે જીવે જ નક્કી કરવાનું છે કે કોને અવલંબીને પુરુષાર્થ કરવો છે - સ્વને કે પરને? ઉપયોગ જ્યાં જોડાય છે, ત્યાંનો આકાર તે લઈ લે છે. જેવું અવલંબન લેવાય તેવો અનુભવ થાય. એક માર્ગ મોહની દુર્બળતાનો છે અને બીજો માર્ગ મોહની પ્રબળતાનો છે. પહેલા માર્ગે ચાલતાં આધ્યાત્મિક ચેતના વિકસતી જાય છે અને બીજા માર્ગે ચાલવામાં આવે તો આધ્યાત્મિક ચેતના મૂર્છિત થતી જાય છે. સાધકે જે માર્ગ લેવો હોય તે લેવા તે સ્વાધીન છે. ક્રોધાદિ જીવે પોતે જ ઉત્પન્ન કર્યા છે, તેથી તેને પોતે જ ટાળી શકે એમ છે. ક્ષમાદિ દ્વારા તે ક્રોધાદિને ટાળી શકે છે. ક્ષમાદિ દ્વારા ક્રોધાદિને હણવા એ જ તેની સાધનાનું કેન્દ્રબિંદુ છે.

આમ, શ્રીમદે આ ગાથામાં સૂક્ષ્મ ન્યાયથી મોક્ષનો ઉપાય કહ્યો છે. આત્મ-

લક્ષપૂર્વક ક્ષમાદિ ભાવ રાખવાથી ક્રોધાદિ વિભાવો નિવૃત્ત થાય છે એવો અનુભવ સહુને થઈ શકવા યોગ્ય છે એમ બતાવી, મોક્ષના ઉપાય વિષે નિઃસંદેહપણું સ્થાપિત કર્યું છે. શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે –

'લોકો કહે છે કે એ અગમ, અગોચર, અતીન્દ્રિય તત્ત્વ છે, તે હમણાં કાંઇ સમજાય નહિ, તેરમે ગુણસ્થાને જ્ઞાનીને ખબર પડે, આપણે હમણાં કંઇક કરીએ તો તેનું ફળ પરભવમાં કંઇ થાય; પણ લોઢાની છરીને સરાણ ઉપર ઘસનારો કારીગર ક્ષણે ક્ષણે પ્રત્યક્ષ જુએ છે, કે આ શસ્ત્ર કેટલું ઊજળું થયું, કેટલો કાટ ઊખડ્યો અને કેટલો બાકી રહ્યો. એમ તેની ત્રણે અવસ્થાને એક ક્ષણમાં જાણે છે; તેમ આત્મધર્મ છે તે રોકડિયો છે. અત્યારે સંતોષ ન થયો તો પછી પરક્ષેત્રની પરાધીનતામાં લાભ ક્યાંથી થશે?'

આત્માનો ધર્મ રોકડિયો છે. ધર્મ એ રોકડાનો વેપાર છે, ઉધારનો નહીં. ઉધારમાં શેષ છે, એટલે સતામણી છે, દુઃખ છે. રોકડામાં સુખ છે. ધર્મ કરો અને આવતા ભવમાં તેનું ફળ મળે એમ નહીં. કરવું અને મળવું બન્ને સાથે જ હોય છે. યથાર્થપણે આત્મસાધના કરવામાં આવે તો એ જ સમયે સુખ-શાંતિનું વેદન થાય છે. યથાર્થ આત્મસાધના કરતાં સુખ-શાંતિનો અનુભવ થાય છે. આ ફળદાયી પંથે પ્રત્યેક ડગ ભરતાં જીવ અનુભવે છે કે તે દુઃખ અને અશાંતિમાંથી બહાર આવી રહ્યો છે. જેટલો અભ્યાસ કરશે એટલો મેલ ઘટી રહ્યો હોવાનું અનુભવાશે. સાધકનો આ અનુભવ જ બાંહેધરી આપે છે કે તે યથાર્થ મોક્ષમાર્ગે પ્રસ્થાન કરી રહ્યો છે. તેને બીજી કોઈ બાહ્ય ખાતરીની જરૂર પડતી નથી.

વસ્તુનો સ્વભાવ જ છે કે જે કાળે, જે ભાવરૂપ જીવ થાય છે; તે કાળે જ તેનું કળ (દુઃખ અથવા સુખ) તે ભોગવે છે. જીવ જે જે ભાવ કરે છે, કષાયભાવ કે અકષાયભાવ; તેનું વેદન તે તરત જ કરે છે, તત્ક્ષણ જ કરે છે. આકુળતારૂપ કે શાંતિરૂપ પોતાના ભાવનું વેદન જીવને તે કાળે જ થાય છે. કોધ કરે તો કોધની અશાંતિનું વેદન પણ તત્ક્ષણ કરે છે અને સ્વરૂપમાં સ્થિર થાય તો શાંતિનું વેદન પણ તત્ક્ષણ કરે છે.

આમ, જીવના દરેક ભાવનું ફળ રોકડિયું છે. અધર્મ કે ધર્મ બન્ને રોકડિયા છે. જેમ ક્રોધાદિ ભાવરૂપ અધર્મ રોકડિયો છે, તેમ ક્ષમાદિ ભાવરૂપ ધર્મ પણ રોકડિયો છે. ક્રોધાદિ ભાવ થતાં અશાંતિ, વ્યાકુળતા, દુઃખનો અનુભવ પ્રત્યક્ષ છે અને ક્ષમાદિ ભાવો થતાં શાંતિ, નિરાકુળતા, સુખનો અનુભવ પણ પ્રત્યક્ષ છે. પ્રત્યક્ષ અનુભવમાં આવે છે કે કોઈના ઉપર ક્રોધ આવી જતાં જો ક્ષમાનો ભાવ ધારણ કરવામાં આવે તો ૧- શ્રી કાનજીસ્વામી, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચનો', આઠમી આવૃત્તિ, પૃ.૩૫૨ ક્રોધ શાંત થઈ જાય છે, તેથી ક્રોધાદિ ભાવોનો નાશ ક્ષમાદિ ભાવો દ્વારા થાય છે એ વાતમાં કોઈ સંદેહને સ્થાન નથી. મોક્ષમાર્ગ સંબંધી નિઃસંદેહ નિશ્ચય થવા માટે આ ગાથા અતિ બળવાન છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'કમંબંધ કોઘાદિથી, આત્મા કલુપિત થાય; અગ્નિ સંગે તાપથી, જેમ તપે આ કાય. જળથી મટે જેમ તાપ એ, હશે સમાદિક તેહ; સ્વભાવથી શીતળ ભલો, ધર્મ તત્ત્વ ગુણ ગેહ. કોધાગ્નિને જળ સમી, ક્ષમા શાંત કરનાર; પ્રત્યસ અનુભવ સર્વને, અનુભવી વિચારનાર. માર્દવ ગુણ હશે માનને, આર્જવે દંભનો છેહ; હશાય લોભ સંતોષથી, એમાં શો સંદેહ?'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૦ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૧૩-૪૧૬)

रहेरी भगरशिक गरांदे , आग्निस नेम दिश्वस. १६०१ भरति आ कार्यको, कन्म तेसका आस्ट्र ગાથા ૧૦૪માં કહ્યું કે ક્રોધાદિ ભાવોથી કર્મબંધ થાય છે અને ક્ષમાદિ ભાવોથી ક્રોધાદિ ભાવ હણાય છે. આનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ સર્વને છે અને એમાં કોઈને પણ સંદેહ પડે તેવું નથી.

આમ, ગાથા ૯૨માં શિષ્યે કરેલી શંકા, '**હોય કદાપિ મોક્ષપદ, નહિ અવિટોધ** ઉપાય; કર્મો કાળ અનંતનાં, શાથી છેદાં જાય?'નું સચોટ સમાધાન શ્રીગુરુએ ગાથા ૯૮ થી ૧૦૪ સુધીમાં કરી, અવિરોધ મોક્ષમાર્ગની પ્રતિષ્ઠા કરી. હવે ગાથા ૯૩માં મોક્ષના ઉપાયની શંકાના સંબંધમાં શિષ્યે જે બીજી દલીલ કરી હતી તેનું સમાધાન પ્રસ્તુત ગાથામાં શ્રીગુરુ કરશે.

ગાથા ૯૩માં શિષ્યે કહ્યું હતું કે 'અથવા મત દર્શન ઘણાં, કહે ઉપાય અનેક; તેમાં મત સાચો કચો, બને ન એહ વિવેક', અર્થાત્ જગતમાં ઘણાં મત અને દર્શન પ્રવર્તે છે, જે જુદા જુદા મોક્ષમાર્ગ બતાવે છે; તેમાંથી કયો માર્ગ લેતાં મોક્ષ મળશે તેનો નિર્ણય કરવો કઠિન છે. વિભિન્ન વિચારશ્રેણીવાળા અનેક ધર્મ-મત-પંથની માન્યતાઓ સાંભળી શિષ્યની મતિ મૂંઝાઈ ગઈ છે અને કયા ધર્મ-મત-પંથ દ્વારા નિર્દિષ્ટ ક્રિયાકાંડો-સાધનાપદ્ધતિ અપનાવવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય તેનો નિર્ણય તે કરી શકતો નથી. તેની આ મૂંઝવણનું સમાધાન કરતાં શ્રીગુરુ કહે છે —

'છોડી મત દર્શન તણો, આગ્રહ તેમ વિકલ્પ; ગાથા કહ્યો માર્ગ આ સાધશે, જન્મ તેહના અલ્પ.' (૧૦૫)

આ મારો મત છે, માટે મારે વળગી જ રહેવું, અથવા આ મારું દર્શન છે, માટે ગમે તેમ મારે તે સિદ્ધ કરવું એવો આગ્રહ અથવા એવા વિકલ્પને છોડીને આ જે માર્ગ કહ્યો છે, તે સાધશે, તેના અલ્પ જન્મ જાણવા.

અહીં 'જન્મ' શબ્દ બહુવચનમાં વાપર્ચો છે, તે એટલું જ દર્શાવવાને કે ક્વચિત્ તે સાધન અધૂરાં રહ્યાં તેથી, અથવા જઘન્ય કે મધ્યમ પરિણામની ધારાથી આરાધન થયાં હોય, તેથી સર્વ કર્મ ક્ષય થઇ ન શકવાથી બીજો જન્મ થવાનો સંભવ છે; પણ તે બહુ નહીં; બહુ જ અલ્પ. 'સમકિત આવ્યા પછી જો વમે નહીં, તો ઘણામાં ઘણા પંદર ભવ થાય', એમ જિને કહ્યું છે, અને 'જે ઉત્કૃષ્ટપણે આરાધે તેનો તે ભવે પણ મોક્ષ થાય'; અત્રે તે વાતનો વિરોધ નથી. (૧૦૫) કર્મબંધના કારણરૂપ એવાં રાગ, દ્વેષ અને અજ્ઞાનની જેનાથી નિવૃત્તિ થાય તથા સત્, ચૈતન્યમય, સર્વાભાસરહિત એવા આત્માની પ્રાપ્તિ જે રીતે થાય તે જ યથાર્થ મોક્ષમાર્ગ છે. દર્શનમોહ અને ચારિત્રમોહનો સત્યાત્મબોધ તથા વીતરાગતા વડે ધ્વંસ કરનારો જે સકળ કર્મક્ષયરૂપ માર્ગ છે તે જ મોક્ષમાર્ગ છે. આ ઉપર કહ્યો, અર્થાત્ ગાથા ૯૮ થી ૧૦૪માં કહ્યો તે પરમાર્થ મોક્ષમાર્ગને જે જીવ અનુસરે છે, તે અવશ્ય મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરે છે. આ પરમાર્થ મોક્ષમાર્ગને પ્રેરે તે વ્યવહાર, સાધનાપદ્ધતિ, ઉપાય સેવવા યોગ્ય છે. ભિન્ન ભિન્ન મત-દર્શનો ભિન્ન ભિન્ન ઉપાયો બતાવે છે, તેથી વ્યવહાર મોક્ષમાર્ગ ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારના છે. અજ્ઞાની જીવ પરમાર્થમાર્ગને ભૂલી, પોતાના મત-દર્શને બતાવેલ ક્રિયાકાંડ, સાધનાપદ્ધતિનો આગ્રહ કરે છે. પોતાના મત-દર્શન બતાવેલ ઉપાયથી જ મોક્ષ થાય એમ સિદ્ધ કરવા મરી મથે છે. પોતાનો મત હોવાથી તેને વળગી રહેવું અથવા પોતાનું દર્શન હોવાથી તેને યુક્તિ-પ્રયુક્તિથી, દાખલા અને દલીલોથી, ગમે તેમ કરીને પણ સિદ્ધ કરવું એવા આગ્રહમાં જ તે રાયે છે. આગ્રહને જ ઉપાદેય અને ઉપયોગી માની લીધો હોવાથી તેનું સંસારપરિભ્રમણ ઘટવાને બદલે વધે છે. આગ્રહ છોડવો જોઈએ.

મત-દર્શન પ્રત્યેના આગ્રહ તથા વિકલ્પ મૂકીને જે જીવ પરમાર્થ મોક્ષમાર્ગને આરાધે છે, તે જીવ અલ્પ ભવમાં મોક્ષ પામે છે. આગ્રહ તથા વિકલ્પ તજીને શુદ્ધાત્મસ્વરૂપને સાધતાં સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે. જો કે સમ્યગ્દર્શન થાય ત્યારે તરત જ પૂર્ણ વીતરાગતા પ્રગટતી નથી અને પૂર્ણ વીતરાગતા પ્રગટી ન હોય ત્યાં સુધી મોક્ષ થતો નથી. સમ્યગ્દર્શન થતાં રાગ-દ્વેષ અંશે તૂટી જાય છે અને ક્રમિક વિકાસ દ્વારા રાગ-દ્વેષનો પૂર્ણ નાશ થાય છે ત્યારે ચારિત્રની પૂર્ણતા થતાં મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત થયા પછી જીવ જો ઉત્કૃષ્ટ પુરુષાર્થ કરે તો તે જ ભવે રાગ-દ્વેષાદિ વિકારોનો પૂર્ણ નાશ થતાં મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે અને મંદ પુરુષાર્થ કરે તો અલ્પ ભવોમાં મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. આમ, આ ગાથામાં શ્રીગુરુએ અમુક મત કે દર્શનને માનવાથી જ મોક્ષ મળે એવા આગ્રહ અને વિકલ્પ છોડી પરમાર્થ મોક્ષમાર્ગ સાધવાની ભલામણ કરી છે.

મોક્ષ એટલે આત્માનું અત્યંત શુદ્ધપશું. રાગ-દ્વેષ-અજ્ઞાનથી છૂટી જવું અથવા સર્વ કર્મથી મુક્ત થવું તે મોક્ષ છે. સર્વથા સ્વભાવપરિણામરૂપ મોક્ષને જે પ્રાપ્ત કરાવે તે મોક્ષમાર્ગ છે – ધર્મ છે. સ્વભાવ પ્રાપ્ત કરાવનાર નિરુપમ ધર્મ બાહ્ય સંશોધનથી મળતો નથી, પરંતુ અપૂર્વ અંતરસંશોધનથી જ તે પ્રાપ્ત થઈ શકે છે. કોઈ મહાભાગ્યશાળી જીવ જ સદ્દ્ગુરુના અનુગ્રહે તથારૂપ અંતરસંશોધનના માર્ગે પ્રયાણ કરી શકે છે. તેથી મોક્ષાર્થીનું કર્તવ્ય છે કે સદ્દ્ગુરુના બોધના આશ્રયે ધર્મના

સાચા સ્વરૂપની સમજજ્ઞ પ્રાપ્ત કરી તદનુસાર સત્પુરુષાર્થ કરવો જોઈએ. સદ્દ્ગુરુના બોધના આશ્રયે ધર્મનો યથાર્થ નિર્જાય કરવામાં ન આવે તો મોક્ષપ્રાપ્તિ અર્થે કરેલા સર્વ પ્રયત્ન નિષ્ફળ નીવડે છે, માટે સૌ પ્રથમ સદ્દ્ગુરુના અવલંબને ધર્મના સ્વરૂપની સમ્યક્ સમજ મેળવી ધર્મની સન્મખ થવું જોઈએ.

ધર્મનું સાચું સ્વરૂપ જેમણે પ્રાપ્ત કર્યું છે એવા સદ્દગુરુ જીવને જ્ઞાનની પ્રજ્વલિત મશાલ આપે છે. મશાલમાં નીચે દાંડો હોય છે અને ઉપર પ્રજ્વલિત અગ્નિ. દાંડો છે તે સદ્ગુરૂએ આપેલી સાધનાપદ્ધતિ, તેમણે સૂચવેલ ક્રિયાઓનું પ્રતીક છે અને તેની ઉપરની અગ્નિ તે તેમણે પ્રગટાવેલ જ્ઞાનપ્રકાશ છે. અજ્ઞાન-અંધકારનો નાશ કરવાવાળી આ મશાલનો લાભ અનેક આત્માઓ લે છે. સદ્દ્ગુરના જ્ઞાનપ્રકાશથી આલોકિત થયેલ પંથ ઉપર તેમની આજ્ઞાનું આરાધન કરતાં કરતાં આગળ વધે છે અને પોતાની જ્ઞાન-જ્યોતિ પ્રગટાવી લે છે. ક્વચિત્ આ મશાલ બુઝાઈ જાય છે, અર્થાત્ તેઓ જ્યારે સદ્ગુરનો આશય સમજતા નથી ત્યારે તેઓ જ્ઞાનપ્રકાશનો લાભ લેવાનું ચુકી જાય છે. તેમના હાથમાં ઓલવાયેલી મશાલ, અર્થાત્ દાંડો જ રહી જાય છે અને તેથી તેઓ પોતાનો અજ્ઞાન-અંધકાર ટાળી શકતા નથી. તેઓ આશય સમજ્યા વિના ક્રિયાઓનું આંધળું અનુસરણ કરતા રહે છે. તેઓ ખોટા મૂલ્યાંકનના આધારે રૂઢિઓમાં ફસાઈ જાય છે અને તેનો આગ્રહ કરવા લાગે છે, પરિણામે તેઓ ઉચ્ચ અવસ્થાઓ પ્રાપ્ત કરી શકતા નથી. મોક્ષ અમુક ચોક્કસ પ્રકારનાં ક્રિયાકાંડ, સાધનાપદ્ધતિ, વેષભૂષાથી જ પ્રાપ્ત થાય એવા મિથ્યા આગહરૂપ વિષનું વમન કરાવી, મોક્ષમાર્ગના બાહ્ય વ્યવહાર પ્રત્યે નિરાગ્રહી વૃત્તિ રાખી, પરમાર્થમાર્ગને અનુસરવા પ્રત્યે દૃષ્ટિ કેન્દ્રિત કરાવતી આ ગાથા ખૂબ વિચારણીય છે. મત-દર્શનના આગ્રહનું સ્વરૂપ, તેની નિરર્થકતા, તેને ટાળવાની અગત્યતા વિષે આ ગાથાના સંદર્ભમાં હવે વિચારણા કરીએ.

દરેક દર્શન-મત-પંથ-સંપ્રદાય આત્મા, પરમાત્મા, મોક્ષ, મોક્ષમાર્ગ આદિ અંગે પોતપોતાનાં વિચારો અને વ્યાખ્યાઓ આપે છે. તેના આધારે જે નિર્ણય બંધાય તે જ માત્ર સત્ય છે એમ તે દર્શન-મત-પંથ-સંપ્રદાયના અણસમજુ અનુયાયીઓ માની બેસે છે અને દઢતાના નામે આગ્રહને ઉત્તેજન આપે છે. તે સર્વ પોતપોતાના અભિપ્રાયની સ્થાપના કરે છે અને અન્યના અભિપ્રાયનો વિરોધ કરે છે. ધાર્મિક પ્રવૃત્તિઓ કરનાર વ્યક્તિઓ પણ જ્યારે મત-દર્શનની વાતચીત કે ચર્ચામાં ઊતરે છે ત્યારે વિવેક ભૂલી જાય છે અને મતાગ્રહનો મોરચો જમાવવા મંડી પડે છે. સૌ પોતાની વાતને જ આગળ કરે છે. પોતે જ માત્ર સત્ય સમજ્યા છે અને પોતા સિવાય અન્ય સંપ્રદાયવાળાને સત્ય તો શું, સત્યની ઝાંખી પણ થઈ શકે એમ નથી એવો દાવો કરે છે. સત્યની ચાવી તેમની પાસે જ છે અને તેઓ જે માને છે કે સમજાવે છે તે જ સાચી વાત છે એમ

તેઓ માને-મનાવે છે. તેમનાં માથા ઉપર સાંપ્રદાયિકતાનું ભૂત સવાર થયું હોવાથી તેઓ ધર્મના બાહ્ય સ્વરૂપને જ મહત્ત્વ આપે છે, ધર્મને જીવનમાં ઉતારવું તેઓ માટે ગૌણ બની જાય છે. તેઓ ધર્મ માટે વિવાદ કરે છે, ધર્મ માટે ઝગડે છે, ધર્મ માટે મરવા પણ તૈયાર થાય છે, ધર્મ માટે બધું કરી છૂટવા તત્પર થાય છે; પરંતુ ધર્મમય જીવન જીવવા તેઓ તૈયાર થતા નથી. મત-દર્શનનો આગ્રહ તે અધર્મ છે, છતાં પોતાનાં મત-દર્શનને અનુસરવાથી જ ધર્મ થાય એમ માનતા હોવાથી તેઓ પોતાનો આગ્રહ છોડતા નથી. પોતાનાં મત-દર્શનની વાતને આગ્રહપૂર્વક પકડી રાખવામાં તેઓ ગૌરવ માને છે.

જીવ પોતાનાં મત-દર્શનની માન્યતાઓનો પક્ષપાતી બનીને, તે માન્યતાઓને ગમે તે પ્રકારે સાચી સાબિત કરવા માટે દરેક રીતે પરિશ્રમં કરે છે. પોતાની માન્યતાને દલીલો કરીને બચાવવાની વૃત્તિ થતી હોવાથી પોતાની કુવૃત્તિને પોષવા માટે તે ધર્મ-શાસ્ત્રોમાંથી અવનવાં પ્રમાણો શોધી કાઢે છે. તે પોતાનાં મત-દર્શન સર્વોપરી છે એમ સિદ્ધ કરવા મંડી પડે છે. તે અન્ય મત-દર્શન સાથે સરખામણી કરી પોતાનાં મત-દર્શન ચડિયાતાં છે એમ બતાવવાના પ્રયત્નો કરે છે. તે આ માટે અનેક ઉપાય વિચારે છે. તે પોતાનું પ્રયોજન સિદ્ધ કરવા અનેક પ્રકારનાં કપટભર્યા વચનો કહે છે, જૂઠ અને છેતરપિંડીનો આશરો લે છે. આથી કોઈ સુવિચારને માટે અવકાશ જ રહેતો નથી. તે બધાને પોતાનાં મત-દર્શનના વાડામાં બાંધવા ઇચ્છે છે. પોતાના વાડાનું એક પણ જણ તે વાડો તોડીને કોઈ બીજા વાડામાં જતું ન રહે તે અર્થે તે તેમના ઉપર પોતાનાં મત-દર્શનની માન્યતાઓનો ઊંડો કેફ ચઢાવતો રહે છે. પોતાની માન્યતાઓ માનવા માટે તેમને વિવશ બનાવે છે, ન માને તો નરકનાં દુ:ખોનો ભય બતાવે છે અને માને તો મુક્તિનું પ્રલોભન પણ આપતો રહે છે!

પોતાનો મત કે પંથ જ સાચો છે, બીજાનો ખોટો - આવું વલણ ધરાવનાર જીવ શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ કરે તોપણ તે આત્મધર્મના તાત્પર્યથી અજાણ જ રહી જાય છે. તેની વિચારધારા મિથ્યા આગ્રહના કાદવમાં ખૂંપી જાય છે. જેણે શાસ્ત્રોનું કેવળ શ્રવણ-વાંચન જ નહીં પણ ચિંતન-મનન કર્યું હોય તેને સ્વપક્ષનો આંધળો મોહ રહેતો નથી. શ્રુતની સાથે ચિંતન-મનન અને અનુભૂતિનું તત્ત્વ ભળતાં દેષ્ટિ તટસ્થ, ન્યાય-યુક્ત અને સારગ્રાહી બને છે. જે દેષ્ટિરાગથી આવૃત્ત હોય, તે પોતાના ધર્મના ગ્રંથોને સમજ્યા-વિચાર્યા વિના સત્ય માની લે છે અને બીજા ધર્મના ગ્રંથોને અસત્ય માને છે. તે ૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકત, 'અધ્યાત્મોપનિષદ', શાસ્ત્રયોગશૃદ્ધ અધિકાર, શ્લોક દ૮

'आद्ये ज्ञाने मनाक्षुंस-स्तद्रागाद्दर्शनग्रहः । द्वितीये न भवत्येष, चिन्तायोगात्कदाचन ।।' સાંપ્રદાયિકતાના વમળમાં અટવાઈ જઈ તત્ત્વથી વિમુખ રહે છે. આચાર્યશ્રી ચિરંતનજીએ 'યોગસાર'માં કહ્યું છે કે 'દેષ્ટિરાગથી મોહિત થયેલા લોકો એમ કહેતા ફરે છે કે અમારું જ દર્શન શ્રેષ્ઠ છે, અન્ય દર્શનો તો પાખંડ છે; અમારા શાસ્ત્રઅંથો જ તત્ત્વજ્ઞાનયુક્ત છે, બીજાના નિઃસાર છે; અમે જ તત્ત્વજ્ઞ છીએ, બીજા બધા ભ્રાંત છે. આવા મત્સરી માનવીઓને અને તત્ત્વને હજારો ગાઉનું છેટું છે.' ^૧

આવા આગ્રહી જીવને નિર્ભેળ સત્ય સાંપડવું અશક્ય છે. જ્યાં આગ્રહ છે ત્યાં સત્ય નથી. આગ્રહના કારણે જીવ સત્યથી વેગળો થતો જાય છે. જ્યાં આગ્રહ બંધાઈ જાય છે ત્યાં એકાંતવાદનો પ્રવેશ થાય છે. એકાંતવાદ હોય ત્યાં આંખ ઊઘડતી જ નથી, તેના જ્ઞાનચક્ષુ આડે આવરણ આવી જાય છે અને સત્યશોધનનું કામ ચુકાઈ જાય છે. પોતાની માન્યતાઓની જીદના કારણે જીવની બુદ્ધિ સંકુચિત થઈ જાય છે અને સત્યના સંશોધનના ક્ષેત્રમાં તેની પ્રગતિ થતી નથી. આગ્રહ હોય ત્યાં સત્યનું સંશોધન સંભવી શકતું નથી અને જ્યાં સત્યશોધક દશા જ ન હોય ત્યાં મોક્ષમાર્ગનું મૂળ એવું સમ્યગ્દર્શન કેવી રીતે સંભવે? શ્રીમદ્ કહે છે —

'ઢુંઢિયાપણું કે તપાપણું કર્યા કરો તેથી સમકિત થવાનું નથી; ખરેખરું સાચું સ્વરૂપ સમજાય, માંહીથી દશા ફરે તો સમકિત થાય.'^ર

મત-દર્શનની માન્યતાના આગ્રહથી જીવ જાણ્યે-અજાણ્યે સત્નો દ્રોહ કરે છે. 'મારું તે જ સાચું' એવા દેષ્ટિરાગના કારણે જીવ સત્યનું દર્શન પામી શકતો નથી. સત્યની સમજણ તો જીવનમાં શાંતિ, આનંદ, પ્રેમ, કરુણા, સહિષ્ણુતા લાવે; તેને પરમાત્માની સમીપ લઈ જાય; પરંતુ મિથ્યા આગ્રહોના કારણે જીવ પરમાત્મા સાથે તો શું પાડોશી સાથે પણ સંબંધ જોડવામાં સમર્થ નથી થતો. મિથ્યા આગ્રહ તો પાડોશીને પાડોશીથી વિખૂટા કરે છે અને જે જીવને તેના પાડોશીથી અલગ કરે, તે પરમાત્મા સાથે તેનું મિલન કરાવી શકે એ સંપૂર્ણપણે અસંભવિત છે. આગ્રહની વૃત્તિ વિરામ પામે તો જીવનો અભિગમ સવળો થાય અને તે સત્યનું દર્શન કરી શકે. તેનામાં મધ્યસ્થતા પ્રગટતાં સર્વ મત-દર્શન પ્રત્યેનું તેનું વલણ બદલાઈ જાય છે. આગ્રહવંત જીવ આંશિક સત્યને પૂર્ણ સત્ય માની અભિનિવેશરૂપ ખેંચતાણ કરે છે, જ્યારે મધ્યસ્થ જીવ અન્ય

'मदीयं दर्शनं मुख्यं पाखण्डान्यपराणि तु ।

मदीय आगमः सारः परकीयास्त्वसारकाः।।

तात्त्विका वयमेवान्ये भ्रान्ताः सर्वेऽप्यतात्त्विकाः ।

इति मत्सरिणो दूरोत्सारितास्तत्त्ववसारतः।।'

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૩૪ (ઉપદેશછાયા-૧૪)

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી ચિરંતનજીકૃત, 'યોગસાર', પ્રસ્તાવ ૨, શ્લોક ૯,૧૦

પક્ષના સત્યાંશને સ્વીકારવાની ઉદાર મનોવૃત્તિ રાખે છે. ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ 'અધ્યાત્મોપનિષદ્'માં વિનોદપૂર્ણ શૈલીથી કહે છે કે મધ્યસ્થનું મનરૂપી વાછરડું યુક્તિરૂપ ગાયને અનુસરે છે, તેની પાછળ પાછળ જાય છે અને તુચ્છ આગ્રહવંતનું મનરૂપી વાંદરું તે યુક્તિગાયને પૂંછડેથી ખેંચે છે.^૧

જેણે સાધનામાં પ્રગતિ કરવી હોય તેણે પ્રથમ આગ્રહને વિસર્જિત કરવો પડે છે. આગ્રહરૂપી સાંકળ ખોલી નાખે તો જ જીવ ચૈતન્યસરિતામાં નૌકાવિહાર કરી શકે છે. આગ્રહની સાંકળ છોડ્યા વિના તે ધાર્મિક પ્રવૃત્તિનાં ગમે તેટલાં હલેસાં મારે તોપણ તેની પ્રગતિ થતી નથી. સત્સાધનાદિ વિષે બાંધી રાખેલા આગ્રહો છોડ્યા વિના સાધના-માર્ગે આગળ વધવું અસંભવિત છે. સત્યના નામ ઉપર ચાલી રહેલી પરંપરાગત ક્ષુલ્લક વાતોના કારણે જ ધર્મ નષ્ટપ્રાય થતો ગયો છે. ધર્મની સમજણના અભાવે ધર્મના નામે અનેક વિપરીતતાઓ ચાલી રહી છે. આગ્રહના કારણે ધર્મક્રિયાઓ, ધર્મસ્થાનકો, ધર્મ-ગુરુઓ મનુષ્યને ધાર્મિક બનાવવાને બદલે ધર્મથી દૂર લઈ જનારાં નીવડે છે.

જ્ઞાનીઓ કહે છે કે જે જીવનપદ્ધતિથી કે જે ધર્મક્રિયાથી કષાયનિવૃત્તિ તથા વિષય-વિરક્તિ થતી હોય, તે જીવનપદ્ધતિ કે તે ધાર્મિક ક્રિયા મોક્ષસાધક ધર્મપથ છે. કષાયો અને ઇન્દ્રિયોને જીતી લઈ, વિકારો અને વાસનાથી ઉપર ઊઠી, શુદ્ધ જ્ઞાયકભાવમાં સ્થિત થનાર આત્મા મુક્ત થાય છે. કલિકાલસર્વજ્ઞ આચાર્યશ્રી હેમચંદ્રસૂરિજી 'યોગશાસ્ત્ર'માં લખે છે કે કષાયોથી અસ્ત ચિત્ત એ જ સંસાર છે અને કષાયનો જય એ જ મોક્ષ છે એમ મનીષીઓ કહે છે. કર્મની દીર્ઘકાલીન કારણે કર્મપરમાશુઓનો આત્મા સાથેનો સંબંધ ધનીષ્ઠ બને છે. કર્મની દીર્ઘકાલીન કે અલ્પકાલીન સ્થિતિ કષાય ઉપર આધારિત છે. કર્મના ફળની તીવતા કે મંદતાનો આધાર કષાય ઉપર રહે છે. કર્મની સ્થિતિ અને ફળદાનની શક્તિ બન્ને કષાય ઉપર નિર્ભર છે. કષાય જ કર્મસ્થિતિને વધારે છે કે ઘટાડે છે. કથાય જ ફળદાનની શક્તિમાં તીવતા કે મંદતા લાવે છે. તેથી જે વૃત્તિમાં કષાયરસ છે, તે વૃત્તિઓથી મુક્ત થવું જોઈએ. કષાયથી મુક્ત થયા પછી જે કર્મપરમાશુ આકર્ષિત થાય તે લાંબા સમય સુધી ટકતાં નથી અને પોતાનો ગાઢ પ્રભાવ જીવ ઉપર પાડી શકતા નથી. તેથી જીવ ક્રમશઃ કર્મથી મુક્ત થતો જાય છે. આમ, કષાયોથી મુક્ત થવું એ જ મુક્તિ છે. મોક્ષ એ કંઈ એવું સ્થળવિશેષ નથી કે જ્યાં ૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મોપનિષદ્ધ', શાસ્ત્રયોગશૃદ્ધિ અધિકાર, શ્લોક દ

'मनोवत्सो युक्तिगवीं, मध्यस्थस्याऽनुधावति । तामाकर्षति पुच्छेन तुच्छाग्रहमनः-कपिः।।'

२- જુઓ ઃ કલિકાલસર્વજ્ઞ આચાર્યશ્રી હેમચંદ્રસૂરિજીકૃત, 'યોગશાસ્ત્ર', પ્રકાશ ૪, શ્લોક ૫ 'अयमात्मैव संसारः, कषायेन्द्रियनिर्जितः ।

तमेव तद्विजेतारं, मोक्षमाहुर्मनीषिणः ।।'

અમુક મત-પંથની ધજાવાળાને જ પ્રવેશ મળે અને અન્યને જાકારો મળે. ગમે તે મત-પંથમાં રહીને પણ જો જીવ કષાયરહિત બને તો તે અચૂક મુક્તિ પ્રાપ્ત કરે. જે જીવ જૈન ધર્મનાં ક્રિયાકાંડ કરતો હોય કે અન્ય મત-પંથનાં ક્રિયાકાંડ કરતો હોય કે કોઈ પણ ક્રિયાકાંડ ન આચરતો હોય, પણ જો તે સ્વાર્થ, દેષ, ઈર્ષ્યા, મદ, માન, ક્રોધ, તૃષ્ણા આદિ દોષોથી ઉપર ઊઠી સરળતા, ક્ષમા, પ્રેમ, કરુણા, નમ્રતા વગેરે આત્મિક ગુણવૈભવથી સંપન્ન આત્મતૃપ્ત બને તો તે અવશ્ય મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે. સાધક શ્રેતાંબર હોય કે દિગંબર, જૈન હોય કે બૌદ્ધ, શૈવ હોય કે વૈષ્ણવ; તેને જો ઉપરોક્ત આંતરિક ગુણો પ્રાપ્ત થાય તો તેની મુક્તિ નિશ્ચિત છે એમ જ્ઞાનીઓ કહે છે.

સાધનાના બે અંશ છે - એક આંતરિક અને બીજો બાહ્ય. ક્ષમા, સરળતા, નમ્રતા, નિરીહતા વગેરે ગુણોરૂપે વ્યક્ત થતી ભાવવિશુદ્ધિ તે સાધનાનો આંતરિક અંશ છે અને એની પ્રાપ્તિ અર્થે વિધિ-નિષેધ, વ્રત, નિયમ, અનુષ્ઠાનાદિ ઉપદેશાયાં છે તે સાધનાનો બાદ્ય અંશ છે. સાધનાના બન્ને અંશનું વિવેકપૂર્ણ સમુચિત મૂલ્યાંકન થવું જરૂરી છે. સાધનાના બાદ્ય અંશને અંતિમ લક્ષ્ય માનીને તેમાં જ જીવ રોકાઈ જાય તો સાધનાના માર્ગ ઉપર આગળ વધવાનું શક્ય બનતું નથી. સાધનાનો મહત્ત્વનો અભ્યંતર અંશ અસ્પૃષ્ટ અને કમજોર રહી જાય છે. તેનો અભ્યાસ કરવો તો દૂર રહ્યો, તેને પુષ્ટ કરવાની વાત ઉપર વિચારણા પણ થતી નથી. સાધનાના અંશોનાં સાચાં મૂલ્યાંકનના અભાવે સાધનાનો સર્વાંગીણ અને સમુચિત વિકાસ થતો નથી. સાધનાના અભ્યંતર અંગની અવહેલના કરીને બાદ્ય અંગની અતિશયોક્તિ કરવામાં આવે તથા તેનો આગ્રહ કરવામાં આવે તો તે જીવ માટે ભયંકર રોગ સાબિત થાય છે. તેનાથી બચવા માટે સાધનાનાં બન્ને અંગોનો સમુચિત વિકાસ થવો આવશ્યક છે. તે અર્થે દરેક અંગનું સાચેસાચું અને યોગ્ય મૂલ્યાંકન થતું રહે એ જરૂરી છે.

કિયાકાંડ એ સાધનાનું બાહ્ય અંગ છે. તેનું અભ્યંતર અંગ ક્ષમા, દયા, પ્રેમ, કરુણા વગેરે છે. સાધનાનું બાહ્ય માળખું કેવું ઘડાય છે તેનો આધાર છે સાધકની બાહ્ય-અંતર પરિસ્થિતિ. સાધકોને પ્રાપ્ત જુદા જુદા દેશ-કાળ-સંયોગો અનુસાર તેમની સાધનાનો બાહ્ય દેહ ઘડાય છે. દેશ-કાળ-સંયોગ બદલાતા રહે છે તેમ સાધકનો બાહ્ય વ્યવહાર પણ બદલાતો જાય છે, તેથી સાધનાનું બાહ્ય સ્વરૂપ સદા સૌને માટે એકસરખું નથી હોતું. સાધનામાં અમુક જ ક્રિયાકાંડ કરવા એવું અનિવાર્ય નથી હોતું. સાધના એ તો વિવેકનો માર્ગ છે. જે ક્ષેત્રે, જે સમયે, જે યોગ્ય હોય તે; તે પ્રમાણે જાગૃત રહી સ્વલક્ષે સત્સાધન કરવું એ છે સાધનામાર્ગનું રહસ્ય.

આમ, સાધનાનું બાહ્ય કલેવર દેશ, કાળ અને પરિસ્થિતિ અનુસાર બદલાયા કરે છે. તે સંયોગો ઉપર આધારિત હોવાથી નિત્ય નથી, પરિવર્તનશીલ છે તેમજ તે ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારે છે; પરંતુ અભ્યંતર અંગ બાહ્ય પરિબળો ઉપર અવલંબિત ન હોવાથી શાશ્વત અને એકરૂપ છે, અર્થાત્ સાધનાનું આંતર તત્ત્વ સર્વ દેશ, કાળ, સંપ્રદાયમાં સમાન રહે છે. દરેક દર્શન, મત, પંથ, સંપ્રદાયનાં ક્રિયાકાંડ અલગ અલગ હોય છે. એક જ ધર્મમતના અનુયાયીઓ પણ તે ધર્મમતના અનેક પેટાભેદોમાં વહેંચાયેલા હોય છે અને તે દરેકનાં ક્રિયાકાંડ અમુક અમુક બાબતમાં એકબીજાથી જુદાં પડતાં હોય છે, પરંતુ જો તે આંતરિક વિકાસનું કારણ થતાં હોય તો તત્ત્વદષ્ટિએ તેમાં કોઈ ભેદ નથી હોતો.

સાધનાનું બાહ્ય સ્વરૂપ - ક્રિયાકાંડો, અનુષ્ઠાનો, સાધનાપદ્ધતિઓ એ આત્મવૃત્તિ જાગૃત કરવામાં સહાયક હોવાથી તેનું સાધનામાં મૂલ્ય છે. ક્રિયાકાંડો વગેરે ભિન્ન ભિન્ન હોવા છતાં જો તેના દ્વારા મોક્ષરૂપ સાધ્ય સધાતું હોય તો તે તત્ત્વદષ્ટિએ એક જ પ્રકારનું ગણાય. ક્રિયાભેદ કે ભાષાભેદ હોવા છતાં સાધ્યભેદ ન હોવાથી જ્ઞાનીઓએ તેનું સ્વરૂપ એક જ પ્રકારનું માન્યું છે. જે જેમ દેવરાજના ઇન્દ્ર, પુરંદર, શક, વજ, શચિપતિ વગેરે અલગ અલગ નામો હોવા છતાં, તેમજ તે શબ્દોના અર્થમાં પણ ભેદ હોવા છતાં વ્યક્તિભેદ નહીં હોવાથી તે અભેદ જ છે; તેમ ભિન્ન ભિન્ન મૃત-પંથનિર્દિષ્ટ સાધનાપદ્ધતિઓમાં ભિન્નપણું હોવા છતાં સાધ્યભેદ ન હોય તો તત્ત્વદષ્ટિએ તે અભેદ જ છે. તેથી કોઈ પણ મત-પંથના પક્ષકાર ન બનતાં સત્યના સમર્થક અને પ્રબોધક એવા તત્ત્વદર્શી પુરુષોએ તે સર્વને મોક્ષમાં કારણભૂત ગણી, તે સર્વ સાધનાપદ્ધતિઓને માન્ય કરી છે.

કિયાકાંડ વિભિન્ન હોવા છતાં દયા, શાંતિ, ક્ષમા આદિ સાધનાના આંતરિક પ્રકાર સર્વ ધર્મપંથને માન્ય છે. સહુ મત-પંથના આત્માર્થી સાધકો આ સદ્દ્ગુણોને પ્રાપ્ત કરી તેને પૂર્ણપણે પ્રગટાવવા મથે છે, તેથી તેઓ સહુ એક જ કલ્યાણમાર્ગ ઉપર વિહરનારા હોય છે. તેમની દાર્શનિક માન્યતાઓ અને ક્રિયાકાંડની પદ્ધતિઓ એકબીજાથી જુદી જુદી હોવા છતાં બધા ક્ષમા, સમતા, સંતોષ આદિ આંતરિક ભાવરૂપ એક ધર્મમાં જ માનનાર હોવાથી તેઓ એક જ ધર્મના ગણાવા યોગ્ય છે. તેમના મત-પંથની પ્રણાલીઓ જુદી જુદી હોવા છતાં પણ તે જુદાઈના કારણે 'ધર્મ'માં જુદાઈ નથી હોતી. આમ, ધર્મ એ સાધનાનો આંતરિક અંશ છે અને મત-પંથ એ સાધનાનો બાહ્ય અંશ છે. પંડિત સુખલાલજી લખે છે —

'ધર્મ એ ગુણજીવી અને ગુણાવલંબી હોવાથી તે આત્માના ગુણો ઉપર જ ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસ્**રિજીકૃત,** 'યોગબિન્દુ', શ્લોક ૩

> 'मोक्षहेतुर्यतो योगो, भिद्यते न ततः क्वचित् । साध्याभेदात् तथाभावे, तूवितभेदो न कारणम् ।।'

રહેલો હોય છે, જ્યારે પંથ એ રૂપજીવી અને રૂપાવલંબી હોવાથી તેનો બધો આધાર બહારના રૂપરંગ અને ડાક્ડમાળ ઉપર હોય છે.

પહેલામાં એકતા અને અભેદના ભાવો ઊઠે છે અને સમાનતાની ઊર્મિઓ ઊછળે છે, જ્યારે બીજામાં ભેદ અને વિષમતાની તરાડો પડતી અને વધતી જાય છે.....

ધર્મમાં ચારિત્ર ઉપર જ પસંદગીનું ધોરણ હોવાથી તેમાં જાતિ, લિંગ, ઉમર, ભેખ, ચિહ્નો, ભાષા અને બીજી તેવી બહારની વસ્તુઓને સ્થાન જ નથી, જ્યારે પંથમાં એ જ બાહ્ય વસ્તુઓને સ્થાન હોય છે. અને એની મુખ્યતામાં ચારિત્ર દબાઈ જાય છે.⁷⁹

આ ઉપરથી ફલિત થાય છે કે 'ધર્મ' શબ્દથી આંતરિક ગુણસમૃદ્ધિ જ અભિપ્રેત છે, નહીં કે અમુક પ્રકારના ક્રિયાકાંડ. પરંતુ ધર્મની વાત જ્યારે થતી હોય ત્યારે ઘણું કરીને મત-દર્શન, ક્રિયાકાંડ વગેરે બાબતો તરફ ધ્યાન આપવામાં આવે છે. માન્યતાઓ અને ક્રિયાકાંડોને ધર્મ ગણી લેવામાં આવે છે અને તેથી તેનો આગ્રહ થાય છે. ધર્મ એટલે મત-પંથ નહીં, પણ આત્મિક ગુણસમૃદ્ધિ - આ તથ્ય ભણી લોકોનું ધ્યાન જતું નથી. આત્મિક ગુણસમૃદ્ધિને બદલે કેવળ બાહ્ય ચર્યા, લિંગ, વેષમાં જ ધાર્મિકતા માની લઈ, તેમાં રોકાઈ જવાથી જીવ પરમાર્થથી વિમુખ રહી જાય છે.

જ્યાં સંઘ અને સમાજ હોય છે, જ્યાં સંગઠન હોય છે ત્યાં વ્યવહારની પ્રધાનતા દષ્ટિગોચર થાય છે. સાધના અંતરંગ અને બહિરંગ બન્ને પ્રકારે થતી હોય છે, પરંતુ અંતરંગ સાધના ચર્મચક્ષુથી અહ્ય થતી ન હોવાથી અને બહિરંગ સાધના તત્પ્રકારે આદ્ય થતી હોવાથી ધર્મની વ્યાખ્યા બહિરંગ ધોરણ અનુસાર નક્કી કરી લેવામાં આવે છે. ધર્મની યથાર્થ સમજ ન હોવાના કારણે જીવને પોતાના મત-પંથની ક્રિયા વડે જ ધર્મ થાય એવી માન્યતા હોય છે. તે ધર્મ અને અધર્મને પોતાના મત-પંથના ક્રિયાકાંડ વડે જ માપે છે. કોઈ પોતાના મત-પંથનાં ક્રિયાકાંડ કરતો હોય તો તે ધર્મી અને ન કરતો હોય તો તે અધર્મી; એમ તે માને છે. તે પોતાના મત-પંથની ક્રિયા વડે જ ધર્મની નિષ્પત્તિ થાય છે એમ માનતો હોવાથી, ક્રિયાના અભાવમાં પણ ધર્મ હોય એમ તે માની શકતો નથી. ખરેખર તો પોતાના મત-પંથની ક્રિયામાત્રથી ધર્મ અને એના અભાવથી અધર્મ માનનારા ન તો ધર્મને સમજ્યા છે, ન તો અધર્મને. અમુક ક્રિયા કરવામાત્રથી કોઈ ધર્મી બની જતો નથી અને તે નહીં કરવાથી કોઈ અધર્મી બની જતો નથી. પોતાના મત-પંથની ક્રિયા ન કરતો હોય તોપણ તે ધર્મી ન હોય એમ બની શકે અને તે તેવી કોઈ ક્રિયા ન કરતો હોય તોપણ તે ધર્મી હોય એમ બની શકે. જીવનાં

૧- પંડિત સુખલાલજી, 'જૈન ધર્મનો પ્રાજ્ઞ', પૃ.૧૯,૨૧

પરિણામ અનુસાર ધર્મ-અધર્મ છે.

ક્રિયાકાંડનો ક્યારે પણ નિષેધ હોય નહીં, પણ તેને જ ધર્મ માની લેવાની અને તેનો આગ્રહ રાખવાની ભૂલ સામે અહીં લાલબત્તી ધરી છે. કોઈ પણ પદ્ધતિનાં ક્રિયાકાંડ સાધકને તેની અંતરંગ સાધનામાં ઉલ્લાસ પૂરનાર બને, વેગ આપનાર બને તો તે ક્રિયાકાંડ શ્રેયસ્કર કહી શકાય. ધર્મ મુખ્ય વસ્તુ છે, જ્યારે ક્રિયાકાંડ ધર્મપાલનમાં ઉપયોગી અથવા સહાયક હોવાથી ગૌણ છે. જ્યારે ગૌણ વસ્તુને મુખ્ય વસ્તુ ગણવામાં આવે છે અથવા તો તેનું એકાંતે ગ્રહણ થાય છે ત્યારે એવી પ્રવૃત્તિ થાય છે કે જેના ફળસ્વરૂપે જીવ મોક્ષમાર્ગથી દૂર ફેંકાઈ જાય છે. સાંપ્રદાયિકતાના ઝનૂનના કારણે તે ક્યારેક તો અઘટિત કૃત્યો પણ કરી બેસે છે.

પોતાના મત-પંથ-સંપ્રદાયનાં ક્રિયાકાંડ, ચિહ્નો આદિમાં જ ધાર્મિકતા કે સંતપણું જોનાર સંકુચિત મનોવૃત્તિવાળા, કહેવાતા ધાર્મિક જનો અન્ય મત-પંથ-સંપ્રદાયના ગણીજનો કે સંતપુરુષોમાં સાચા આધ્યાત્મિક ગુણો વિદ્યમાન હોવા છતાં માત્ર એમનાં ક્રિયાકાંડ, ચિહ્નો આદિ પોતાના મત-પંથ-સંપ્રદાયથી ભિન્ન હોવાના કારણે એમને ઓળખી શકતા નથી અને કેટલીક વાર તો એમનો અનાદર કે અવહેલના પણ કરી બેસે છે. તેઓ પોતાના મત-પંથમાં કદાચ કોઈ કુગુર હોય તોપણ એમને સુગર માની ભજે છે અને અન્ય ધર્મમતના સાચા સંતોને કગુર કે મિથ્યાદ્રષ્ટિ કહી એમનો અનાદર, અપમાન કરે છે. તેઓ પોતાના સંપ્રદાયના સંતોને શ્રેષ્ઠ માનવા લાગે છે તથા પારકા સંપ્રદાયના સંતોને ઘુણાની દષ્ટિથી જોવા લાગે છે. એમના દોષો કાઢવામાં તેમની 'પ્રવીણતા' કામે લાગી જાય છે. તેમને પોતાના દોષ જોવાનાં પરિણામ જાગતાં નથી અને અન્ય મતના સંતોના દોષો જોવામાં તેમને કુત્સિત આનંદ મળે છે. એમની નિંદા કરવી તેમને સુખદ લાગે છે. આવા જીવોને માટે ચેતવણી ઉચ્ચારતાં ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ લખે છે કે દષ્ટિરાગના ઘેનમાં જાણ્યે-અજાણ્યે થતો અન્ય મત-પંથમાં રહેલ સાચા સંતોનો ઉપહાસ મિથ્યાત્વરૂપ મહાપાપને નિમંત્રણ આપે છે:^૧ ભલેને એ ભ**લ** અજ્ઞાનથી થતી હોય તો પણ એનો દંડ અવશ્ય મળે છે. 'કાયદાનં જ્ઞાન ન હતં' એવો બચાવ અદાલતમાં ચાલતો નથી, કર્મની અદાલત પણ આવો બચાવ સ્વીકારતી નથી

સાંપ્રદાયિકતાના કારણે જીવ પોતાના સંપ્રદાયની વ્યક્તિઓને મિત્ર સમજે છે અને અન્ય સંપ્રદાયની વ્યક્તિઓને શત્રુ સમજે છે. ખરાબમાં ખરાબ વ્યક્તિ પણ જો પોતાના સંપ્રદાયની હોય તો તે તેને સારી લાગે છે અને પારકા સંપ્રદાયની સારામાં સારી ૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'દ્વાત્રિંશત દ્વાત્રિશિકા', દ્વાર ૨૩, શ્લોક ૨૯ની ટીકા

'तस्य सर्वज्ञस्य प्रतिक्षेपः । भावं तत्तद्देशनानयाभिग्रायमजानतोऽयुक्तः । आर्यापवादस्याना-भोगजस्यापि महापापनिबन्धनत्वात् ।।' વ્યક્તિ તેને જોવી પણ ગમતી નથી. આવા જીવને ધર્મ સાથે લેવા-દેવા નથી. તેને માટે સંપ્રદાય જ મુખ્ય છે. સાંપ્રદાયિક આસક્તિના કારણે પોતાના સંપ્રદાયની દરેક વ્યક્તિને સજ્જન અને પારકા સંપ્રદાયની દરેક વ્યક્તિને દુર્જન માનવા લાગે છે. પરંતુ કોઈ પણ સંપ્રદાયના બધા જ લોકો સારા કે બધા જ લોકો ખરાબ હોઈ શકતા નથી. જૈન સંપ્રદાયના બધા જ જિતાત્મા હોતા નથી, બૌદ્ધ સંપ્રદાયના બધા જ લોકો બોધિસંપન્ન હોતા નથી, બાહ્મણ સંપ્રદાયના બધા જ બહ્મવિહારી હોતા નથી અને ઇસ્લામના બધા જ શાંત હોતા નથી. જૈન, બૌદ્ધ, બાહ્મણ કે મુસલમાન કહેવડાવવામાત્રથી કોઈ સજ્જન કે દુર્જન બની જતું નથી. સાંપ્રદાયિકતાના રંગીન ચશ્માં ઉતારીને જુએ તો ધર્મનું શુદ્ધ સ્વરૂપ સમજાય, નહીં તો પોતાના સંપ્રદાય સિવાય તેને બીજે કશે પણ ધર્મ જણાતો નથી, બીજો કોઈ ગુણિયલ લાગતો નથી.

કોઈ જીવની ધાર્મિકતાની કસોટી કરવી હોય તો એ ન જોવું જોઈએ કે તે કયા સંપ્રદાયનો છે? અથવા તો તે કઈ દાર્શનિક માન્યતાને અપનાવે છે? અથવા કઈ કઈ રૃઢિઓનું આચરણ કરે છે? બલ્કે એ જોવું જોઈએ કે તેનામાં આંતરિક ગુણસમૃદ્ધિ છે કે નહીં? તેનો જીવનવ્યવહાર પવિત્ર છે કે નહીં? જો ગુણ પ્રગટ્યા હોય, આચરણ પવિત્ર હોય તો તે ધર્મવાન છે. જેટલા પ્રમાણમાં ગુશો પ્રગટ્યા હોય તેટલા પ્રમાણમાં તે જીવ ધર્મવાન ગણાય. જો એમ ન હોય તો તે જીવને ધર્મ સાથે કોઈ સંબંધ નથી, ભલે તે પોતાને ગમે તે નામથી ઓળખાવે, પછી ભલે ગમે તે સંપ્રદાયનો આકર્ષક બિલ્લો લગાવે. ધર્મને નામ સાથે કે સાંપ્રદાયક બિલ્લાઓ સાથે કોઈ સંબંધ નથી.

ધર્મ નથી પોતાનો કે નથી પારકો, નથી જૂનો કે નથી નવો, નથી હિન્દુ કે નથી મુસલમાન, નથી ભારતીય કે નથી વિદેશી, ધર્મ ધર્મ છે - સદૈવ એકસરખો, સર્વત્ર એકસરખો. ધર્મને વર્ગ, સમુદાય, સંપ્રદાય, દેશ, રાષ્ટ્રની સીમાઓમાં બાંધી શકાતો નથી. માનવસમાજમાં કોઈ પણ વર્ગમાં ધર્મવાન વ્યક્તિ હોઈ શકે છે. ધર્મ ઉપર કોઈ એક ખાસ વર્ગનો ઇજારો હોતો નથી. પરંતુ જ્યારે જીવ કોરી કપોળકલ્પિત માન્યતાઓના આધારે પોતે જે કરે, સ્વીકારે તેને ધર્મ માનવા લાગે છે ત્યારે આગ્રહ ઊપજે છે. પોતાના સંપ્રદાયની ક્રિયા કે વેષથી જ મોક્ષ થાય એવો આગ્રહ તેનામાં ભરાય છે. જ્યાં આગ્રહ હોય છે ત્યાં વાદવિવાદ પણ પ્રવેશી જાય છે. ધર્મના બાહ્ય આકાર-પ્રકાર, ક્રિયાકાંડ અંગે વિભિન્ન મત-દર્શનમાં વિવાદ રહે છે. એક જ ધર્મમતના પેટાભેદોમાં પણ વિવાદ રહે છે. જેમ કે —

'એક જ પ્રભુ વીરના અનુયાયી દિગમ્બર અને શ્વેતામ્બર, શ્વેતામ્બરમાંથે મૂર્તિપૂજક અને સ્થાનકવાસી, અને તે દરેકમાંના પણ ભિન્ન ભિન્ન ગરછો, સમુદાયો અને સંઘાડાઓ વચ્ચે પણ પરસ્પર આ સ્થિતિ જોવા મળે છે! એટલું જ નહીં, તિથિ જેવી કોઈ એકાદ બાબતમાં પણ રહેલ વિચારભેદ કે ચર્ચાભેદનાં પ્રસંગે, દેષ્ટિરાગ-વિવશ, પોતાથી જુદી છાવણીમાં રહેલ જનોની અવહેલના, અનાદર, ઉપહાસ થતાં રહે એ શું હકીકત નથી? આના મૂળમાં ધર્મના પૂર્વોક્ત બે અંશનું અજ્ઞાન રહેલું છે.

માત્ર જેનોમાં જ નહિ પણ જેન, હિંદુ, બૌદ્ધ, શીખ, ખ્રિસ્તી, મુસ્લિમ વગેરે કોઇ પણ ધર્મના અનુયાયીઓ તરફ દેષ્ટિ કરતાં ત્યાં આવી સંકીર્ણ મનોદશા જોવા મળે છે. ઉદાહરણ તરીકે હિંદુ ધર્મના ત્રણ મુખ્ય સંપ્રદાયો : વૈષ્ણવ, શૈવ અને શાક્તની વાત લઇએ તો આપણને દેખાશે કે એ ત્રણમાંના પ્રત્યેકના અનુયાયીઓનો મોટો ભાગ પોતાના સંપ્રદાય કે પેટા સંપ્રદાયને અને તેમાં વિકસેલ કર્મકાંડ, વિધિ-નિષેધ તથા આચાર-વિચારની પ્રણાલીને જ સાચો ધર્મ માને છે અને અન્ય સંપ્રદાયમાં પ્રયક્ષિત અને માન્ય રહેલ જે રીતરસમ, વિચાર-વર્તન કે માન્યતાઓને તેના સંપ્રદાયે અમાન્ય કે વર્જ્ય ગણાવેલ હોય તેના પ્રત્યે તે પૂર્વગ્રહ, તિરસ્કાર અને ઉગ્ર વિરોધ સુદ્ધાં સેવે છે. જેમ કે આડું ટીલું કે, ગેરુઆ વસ્ત્રને વૈષ્ણવો વર્જ્ય ગણે છે, જ્યારે શૈવો ગેરુઆ રંગને વાસના ઉપરના વિજયનું પ્રતીક ગણી સંન્યાસીઓ માટે એ રંગના વસ્ત્રપરિધાનનો આગ્રહ રાખે છે. વૈષ્ણવો સાધ્ય માટે સફેદ અને તે બાળબ્રહ્મચારી હોય તો પીળા રંગના વસ્ત્રપરિધાનને માન્યતા આપે છે, અને તિલક ઊભી લીટીઓની ભૂમિકા પર રચે છે; જ્યારે શૈવ સંપ્રદાયો તિલક માટે આડી લીટીની ભૂમિકાનો આગ્રહ રાખે છે.....

એ જ રીતે, શીખધર્મના અકાલી અને નિરંકારી જૂથો વચ્ચે તેમજ ઇસ્લામ ધર્મના શિયા–સૂક્ષી પંથો અને તેના અવાંતર સંપ્રદાયો વચ્ચે પણ ખૂનરેજીભરી અથડામણોનો ઇતિહાસ છે. ખ્રિસ્તી ધર્મના પ્રમુખ સંપ્રદાયો - રોમન કેથોલિક, પ્રોટેસ્ટન્ટ, પ્યુરિટન, પ્રેરબીટેરિયન અને તેના સેંક્ડો પેટા સંપ્રદાયો - જૂથોમાં પણ આવાં ભાવ-વલણો પ્રચલિત રહ્યાં છે, એની સાક્ષી ઇતિહાસ પૂરે છે.'

વિવેકદષ્ટિસંપન્ન સાધકો વિભિન્ન મત-પંથના ક્રિયાકાંડોમાં વિભિન્નતા જોઈને મૂંઝાતા નથી. તેમનો લક્ષ પરમાર્થમાર્ગ પ્રત્યે હોય છે. સાધનાના આંતરિક અંશનું મહત્ત્વ હોવાથી તેઓ બાદ્ય અંશની વિભિન્નતામાં અટકી જતા નથી. પરંતુ સંકુચિત મનોવૃત્તિવાળા અને સાંપ્રદાયિકતાને જ મહત્ત્વ આપનારા જીવો ક્રિયાકાંડોની વિભિન્નતાથી મૂંઝાય છે. તેમને સાધનાના બાદ્ય અંશનું જ મહત્ત્વ હોવાથી પોતાના સંપ્રદાયનાં ક્રિયાકાંડનો આગ્રહ રાખે છે તથા અન્ય મત-પંથના ક્રિયાકાંડોનો અસ્વીકાર કે નિંદા કરે છે અને તેથી તેઓ મોક્ષમાર્ગના પરમાર્થતત્ત્વથી અજાણ રહી જાય છે.

ધર્મારાધકોને બાળ અને બુધ એમ બે વિભાગમાં વિભાજિત કરી શકાય છે. ૧- મુનિશ્રી અમરેન્દ્રવિજયજી, 'આપણે આત્મનિરીક્ષણ કરીશું?', બીજી આવૃત્તિ, પૃ.૨૭-૨૯ માત્ર બાહ્ય વેષ અને ક્રિયાકાંડમાં જ ધર્મ જોનાર બાળક સમાન છે અને કાયાની પ્રવૃત્તિ વડે ધર્મ-અધર્મનો તોલ નહીં કરનાર, પણ એ પ્રવૃત્તિ પાછળનું પ્રેરક તત્ત્વ જોનાર બુધજનો છે. આ બુધજનો જ્યાં સાધનાનું આંતર તત્ત્વ હોય છે ત્યાં આકર્ષાય છે, તેનો આદર કરવા પ્રેરાય છે, પરંતુ બાળ જીવો સાંપ્રદાયિકતામાં અટવાઈ અન્યત્ર રહેલ સાચી ધાર્મિકતાને પારખી શકતા નથી અને તેથી તેની અવહેલના કરે છે. આવા બાળ જીવો પોતાના મત-પંથનિર્દિષ્ટ ક્યાકાંડોનો આગ્રહ તથા વિકલ્ય કરી મોક્ષમાર્ગની યથાર્થ ઉપાસનાથી વંચિત રહી જાય છે. શ્રીમદ્દ્ર કહે છે –

'વાડામાં કત્યાણ નથી; અજ્ઞાનીના વાડા હોય. ઢુંઢિયા શું? તપા શું? મૂર્તિ માને નહીં ને મુમતિ બાંધે તે ઢુંઢિયા; મૂર્તિ માને ને મુમતિ ન બાંધે તે તપા; એમ તે કંઈ ધર્મ હોય! એ તો લોઢું પોતે તરે નહીં, અને બીજાને તારે નહીં તેમ. મુમતિ આદિનો આગ્રહ મૂકી દેવો.'^૧

મોક્ષને સાધવા માટે જીવે આગ્રહ મૂકીને તે જ સાધનાયદ્ધતિ, તે જ ધર્માનુષ્ઠાન, તે જ ક્રિયાકાંડ સ્વીકારવાં જોઈએ કે જે રાગ, દેષ અને અજ્ઞાનની નિવૃત્તિમાં અને શુદ્ધાત્માની પ્રાપ્તિમાં સહાયક નીવડે. દોષક્ષય અને ગુણવૃદ્ધિમાં જે ઉપકારક જણાય, તેને 'પોતાનું' અને 'પરાયું' એવા વિભાગ પાડ્યા વિના, ગુણવત્તાના ધોરણે જ અપનાવવાનો ઉપદેશ સર્વ દેશ-કાળના અને મત-પંથના આત્મજ્ઞ સંતોએ કર્યો છે.

મોક્ષપ્રાપ્તિની તીવ્ર ઉત્કંઠા ધરાવતા સાધકે કોઈ પણ સાધનાપદ્ધતિ અપનાવતાં પહેલાં એ પદ્ધતિ પોતાના મત-પંથ-સંપ્રદાય દ્વારા નિર્દિષ્ટ છે કે અન્ય મત-પંથ-સંપ્રદાય દ્વારા નિર્દિષ્ટ છે એમ જોવું જોઈએ નહીં, પરંતુ તે પોતાના અંતરંગ દોષોને શ્રીણ કરવામાં અને આત્મિક ગુણવૃદ્ધિમાં સહાયક નીવડે એમ છે કે નહીં એ માપદંડ અપનાવવો જોઈએ. 'અધ્યાત્મકલ્પદ્ધમ'માં આચાર્યશ્રી મુનિસુંદરસૂરિજીએ તો શ્રેયાર્થીઓને ભારપૂર્વક અનુરોધ કર્યો છે કે ઇષ્ટ સ્થાને પહોંચવા ઇચ્છતો માણસ, તે સ્થાને લઈ જનાર વાહનને આવકારે છે - તે પોતાનું હો કે ન હો; તેમ પોતાનું શ્રેય ઇચ્છતા મુમુક્ષુએ મોક્ષપ્રાપ્તિમાં હેતુભૂત દેવ, ગુરુ અને સાધના - આ ત્રણની પસંદગી વખતે દષ્ટિરાગનો પરિત્યાગ કરીને, અર્થાત્ 'પોતાનાં' અને 'પરાયાં'નો વિચાર બાજુએ મૂકીને તેમને ગુણવત્તાના ધોરણે અપનાવવાં જોઈએ. '

આમ, સાધનાપદ્ધતિની પસંદગી કરતી વખતે દાર્શનિક વિવાદોમાં કે સાંપ્રદાયિક

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છઠ્ઠી આવૃત્તિ, પૃ.૭૩૦ (ઉપદેશછાયા-૧૩)

२- જુઓ : आधार्यश्री मुनिसुंदरसूरिक्छकृत, 'अध्यात्मक्ष्यद्वम', अधिकार १२, श्लोक ४ 'गजाश्वपोतोक्षरथान् यथेष्टपदाप्तये भद्र! निजान् परान् वा । भजन्ति विज्ञाः सुगुणान् भजैवं, शिवाय शुद्धान् गुरुदेवधर्मान् ।।'

માન્યતાઓમાં ન ગૂંચવાતાં તે સાધનાપદ્ધતિથી રાગ-દેષ ઘટે છે કે નહીં તેની યોગ્ય ચકાસણી કરવી જોઈએ. કોઈ પૂર્વનિર્ધારિત માન્યતા કે આગ્રહ વિના તે સાધનાપદ્ધતિનું યથાર્થ મૂલ્યાંકન કરવું જોઈએ. રાગ-દેષનો નાશ થાય છે કે નહીં એ માપદંડથી 'આ સાધનાપદ્ધતિ યોગ્ય છે કે અયોગ્ય છે' તે નક્કી કરવું જોઈએ. મોક્ષમાં કારણભૂત એવા રાગ-દેષનો નાશ જે દારા થાય તે સાધનાપદ્ધતિ અપનાવવી જોઈએ. ષડ્દર્શનનું અને નય-નિક્ષેપનું ઊંડું જ્ઞાન ધરાવનાર ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજે 'ઉપદેશરહસ્ય' ગ્રંથના ઉપસંહારમાં સમગ્ર જિનાજ્ઞાનો નિષ્કર્ષ આપતાં કહ્યું છે કે 'વધારે શું કહીએ? જિનાજ્ઞા આટલી જ છે કે જે જે દ્વારા જીવ રાગ-દેષમાંથી છુટકારો મેળવી શકતો હોય એમાં એમાં તેણે પ્રવર્તવું.' શ્રી આનંદઘનજી મહારાજ મુનિસુવતસ્વામી ભગવાનના સ્તવનમાં લખે છે —

'વળતું જગગુરુ ઇશિપેરે ભાખે, પક્ષપાત સબ છંડી; રાગદ્ભેષ મોહ પખ વર્જિત, આતમશું રઢ મંડી. આતમ ધ્યાન કરે જો કોઉ, સો ફિર ઇશમેં નાવે; વાગજાલ બીજું સહુ જાણે, એહ તત્ત્વ ચિત્ત લાવે.'

અહીં તેઓ ફરમાવે છે કે મતનો સઘળો આગ્રહ છોડીને, રાગ-દેષ-મોહનો પક્ષ છોડીને, આત્માની સાથે પ્રીતિ માંડીને એટલે કે આત્મામાં લય લગાડીને આત્મધ્યાન કરવું. જે કોઈ આત્મધ્યાન કરે છે તે ફરીથી સંસારમાં આવતો નથી. આત્મધ્યાન સિવાય બીજું કંઈ ઉપયોગી નથી, માટે પ્રયોજનભૂત તત્ત્વોને મનમાં ચિંતવવાં જોઈએ અને બીજાં સઘળાંને માત્ર વાગ્જાળરૂપે જાણી તજવાં જોઈએ. આમ, તેમણે રાગ, દેષ અને મોહને તજવાની તથા આત્માનું ધ્યાન કરવાની ભલામણ કરી છે.

આત્માની ઓળખાણ કરીને તેના ધ્યાનમાં એકાગ્ર થવું તે ધર્મ છે અને આનંદ-મૂર્તિ આત્માને ભૂલી રાગ-દેષ-મોહમાં એકાગ્ર થવું તે અધર્મ છે. 'હું શરીરથી જુદો છું, શુભાશુભ લાગણી પણ મારાથી ભિન્ન છે, તે મારો સ્વભાવ નથી, હું તેને જાણનાર-જોનાર જ્ઞાનસ્વરૂપ ત્રિકાળી પરમાત્મા છું' એમ આત્માના મહિમામાં એકાગ્ર થવું તે ધર્મ છે અને આત્માનો મહિમા ભૂલીને રાગ-દેષ-મોહમાં એકાગ્ર થવું તે અધર્મ છે. સ્વમાં રહેવું એ જ ધર્મ છે અને રાગ-દેષ-મોહ કરવો એ જ અધર્મ છે. એકમાં આનંદનો ધોધ છે, બીજામાં ક્લેશનાં વમળો છે; એકમાં નર્યું સુખ છે, બીજામાં નર્યું દુઃખ છે.

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'ઉપદેશરહસ્ય', ગાથા ૨૦૧

^{&#}x27;किं बहुणा इह जह जह रागद्दोसा लहुं विलिज्जीते । तह तह पयट्टिअव्यं एसा आणा जिणिदाणं।।' २- श्री आनंध्यनक्थरयित, श्री भुनिसुवत भगवाननुं स्तवन, ४८ी ८,८

રાગ-દેષ-મોહના નાશથી જ સર્વ દુઃખ અને ક્લેશથી મુક્ત થવાય છે. તેથી અંતરમાં પડેલી રાગ, દેષ અને મોહની અંથિઓ દૂર કરીને ચિત્તને શુદ્ધ બનાવવું જોઈએ. તે જે દ્વારા થાય તે સર્વ મોક્ષના ઉપાય છે.

જેનાથી દોષ નષ્ટ થતા હોય, મોહજન્ય સંસ્કારો લય પામતા હોય અને પૂર્વકર્મની નિર્જરા થતી હોય તે સર્વ મુક્તિના ઉપાય છે. તે અનુષ્ઠાન, તે સાધનાપદ્ધતિ અન્ય મત-પંથોમાં પ્રચલિત હોય તોપણ તે સર્વજ્ઞસમ્મત જ છે. ધર્મના અનુષ્ઠાનનું બાહ્ય કલેવર શ્રી જિનેશ્વરદેવ કથિત હોય એટલામાત્રથી તે ધર્મપ્રવૃત્તિ મુક્તિપ્રદ નથી બની જતી. એનું આંતર તત્ત્વ - એનો ભાવ જો શ્રી જિનેશ્વરદેવની આજ્ઞાને અનુકૂળ હોય તો જ તે પ્રવૃત્તિ મુક્તિસાધક બને છે. જો ભાવ શ્રી જિનેશ્વરનિર્દિષ્ટ હોય તો પ્રવૃત્તિનું બાહ્ય સ્વરૂપ ભલે અન્ય દર્શન દ્વારા નિર્દિષ્ટ હોય તોપણ તે મોક્ષસાધક બને છે. જે સાધનાપદ્ધતિ જીવને રાગ-દેષથી મુક્ત કરાવનારી હોય, અર્થાત્ જિનેશ્વરદેવની આજ્ઞાને અનુરૂપ હોય, તો તે સાધના કરનાર સાધક ગમે તે મત-પંથનો હોય તોપણ ભાવથી તે શ્રી જિનનો જ અનુયાયી છે.

જિનાજ્ઞા સાથે શું સંગત છે તથા કોઈ પણ ક્રિયા-સાધના-અનુષ્ઠાન કરીને પણ મોક્ષાર્થીએ શું કરવું જોઈએ તે વાતને આ ગાથામાં શ્રીમદે અત્યંત સરળતાથી અને અત્યંત સંક્ષેપમાં બતાવી છે. મુમુક્ષુઓને પથદર્શન કરાવતાં તેમણે કહ્યું છે કે ધર્મની પ્રાપ્તિ માટે મત-દર્શનના આગ્રહ તથા વિકલ્પ છોડવા જોઈએ. આગ્રહ તથા વિકલ્પમાં હેયબુદ્ધિ થવી જોઈએ. હેયબુદ્ધિ થયા વિના તેનો અભાવ થવો સંભવિત નથી. મોહવશ જીવ પોતાનાં મત-દર્શનનાં ક્રિયાકાંડથી જ ધર્મ માનીને આગ્રહ તથા વિકલ્પમાં સપડાય છે. ધર્મના સમ્યક્ સ્વરૂપની ઓળખાણ નહીં હોવાથી તે આગ્રહ તથા વિકલ્પ કરતો રહે છે. તે આત્મિક ગુણો વિકસાવવાનો પુરુષાર્થ કરતો નથી અને અમુક પ્રકારનાં ક્રિયાકાંડથી જ ધર્મ થાય છે એમ માનીને આગ્રહ અને વિકલ્પની મોટી બેડીઓ જાતે જ પહેરી રાખે છે. આ બેડીઓ તેને નિરંતર ગ્રસિત રાખે છે. ક્રિયાકાંડ કરવા છતાં ૧- જુઓ: આચાર્યશ્રી ભદ્રબાહુસ્વામીકૃત, 'શ્રી બૃહત્ કલ્પ સૂત્ર' (ઉ. ૨, સૂત્ર ૨), નિર્યુક્તિ ગાથા ૩૩૩૧

'दोसा जेण निरुद्ध्धंति जेण खिज्जंति पुव्यकम्माइं । सो सो मोक्खोवाओं, रोगावत्थासु समणं वा।।'

૨- જુઓ : શ્રી સિદ્ધર્ષિગણિજીકૃત, 'ઉપમિતિ ભવપ્રપંચા કથા', પ્રસ્તાવ ૮, શ્લોક ૮૧૭,૮૧૮

'तथा सर्वमनुष्टानं, यद्भवेन्नाशकारणम् । सरागद्धेषमोहानां, चित्ताखिलमलात्मनाम् ।। तल्लोके सर्वतीर्थेषु, साक्षाज्जैनेऽपि वा मते । यथा तथा कृतं हन्त, ज्ञेयं सर्वज्ञसम्मतम् ।।' પણ આગ્રહ અને વિકલ્પના કારણે તેને ધર્મની પ્રાપ્તિ થતી નથી. કોટિ ઉપાય કરવા છતાં પણ આગ્રહ અને વિકલ્પ છોડે નહીં ત્યાં સુધી તેને ધર્મની પ્રાપ્તિ થતી નથી. ધર્મની પ્રાપ્તિ માટે તો 'પોતાનાં મત-દર્શનની ક્રિયાથી જ ધર્મ થાય' એવી ભાંતિ છોડીને સમ્યક્ પુરુષાર્થ કરવો જોઈએ. પોતાના મત-પંથ-સંપ્રદાય દ્વારા નિર્દિષ્ટ ક્રિયાકાંડ-ધર્માનુષ્ઠાનનો આગ્રહ તથા તે સંબંધી રાગ-દ્વેષરૂપ વિકલ્પનો ત્યાગ કરી વીતરાગી પુરુષાર્થ જ કર્તવ્ય છે. શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ લખે છે —

'દર્શનમોહનું લક્ષણ છે સ્વચ્છંદ અથવા આગ્રહ. આ મારો મત છે માટે મારે તેને વળગી રહેવું અથવા આ મારું દર્શન છે માટે ગમે તેમ મારે સિદ્ધ કરવું અને જે સ્વભાવ છે તેના લક્ષે ન રહેવું એ આદિ મત દર્શનનો આગ્રહ છે. તેવા આગ્રહથી કોઈ કલ્યાણ નથી, પણ અહિતનું કારણ જાણી છોડવા યોગ્ય છે. ચારિત્રમોહનું લક્ષણ છે શુભાશુભ રાગાદિ વિકલ્પ. આગ્રહને દેઢ કરનાર તેવા પ્રકારના અનેક વિકલ્પો હોય છે, તે પણ હિતકાર્યમાં પ્રતિબંધક છે એથી છોડવા યોગ્ય છે.'

વીતરાગસ્વભાવનું અનુસંધાન કરી, રાગ-દેષ કર્યા વિના સમભાવમાં રહેવાનો પુરુષાર્થ કર્તવ્યરૂપ છે. જીવ આગ્રહભરેલી સ્થિતિમાં ગમે તેટલી ધર્મકિયાઓ કરશે તોપણ તેના રાગ-દેષ ઘટી શકશે નહીં. તેથી ધર્મના માર્ગે જનાર જીવે આગ્રહનો ત્યાગ કરવો એ અત્યંત આવશ્યક પૂર્વભૂમિકા છે. આગ્રહને સાથે લઈને જીવ સત્ય સુધી પહોંચવા ઇચ્છે તો તે કદાપિ શક્ય નથી. જીવ જ્યાં સુધી આગ્રહના પ્રવાહમાં તણાતો રહે છે ત્યાં સુધી તેને આગ્રહની વ્યર્થતાનો ખ્યાલ નથી આવતો, પણ તે અટકીને વિચારે તો તેને આગ્રહજન્ય અશાંતિ પ્રત્યક્ષ થાય. આગ્રહથી થતા નુકસાનનું જો તેને ભાન થાય તો તે આગ્રહજન્ય અશાંતિ પ્રત્યક્ષ થાય. આગ્રહથી થતા નુકસાનનું જો તેને ભાન થાય તો તે આગ્રહનિવૃત્તિની દિશામાં પગલાં માંડી શકે છે.

સાધક આત્મનિરીક્ષણ દારા પોતાની ક્રિયાઓ પાછળ રહેલા આગ્રહને પકડવાનો પ્રયાસ કરે છે. પોતાનાં વિચારોમાં, માન્યતાઓમાં, લાગણીઓમાં રહેલા આગ્રહને શોધવાનો પ્રયત્ન કરે છે. જીવ પોતાનો આગ્રહ જેમ છે, જેટલી માત્રામાં છે અને જેવા સ્વરૂપે છે તેમ ન ઓળખે તો લાખ પ્રયત્ને પણ તે આગ્રહ ટળી શકતો નથી. ખોખલી દીવાલ ઉપર રંગરોગાન કરેલું હોય તો તેની મરામતનો વિચાર આવતો નથી, પરંતુ અંદરથી તો એ જીર્ણ થયેલી જ છે. ખોટા રંગરોગાન ઉખાડી નાખવામાં આવે તો પરિસ્થિતિ જેવી છે તેવી સ્પષ્ટ દેખાય અને સાચો ઉપાય થઈ શકે. તેવી જ રીતે આગ્રહને દેઢતા માની લીધી હોય તો તેના નાશનો વિચાર તો આવતો જ નથી, પરંતુ તે વધુ ને વધુ પુષ્ટ થતો જાય છે. જાગૃતિપૂર્વક આત્મનિરીક્ષણ કરવામાં આવે તો આગ્રહ જડી આવે છે અને તેનો સાચો ઇલાજ થઈ શકે છે. જેમ જેમ જીવ જાગે છે, ૧- શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ, 'આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર (વિશેષાર્થ સહિત)', ચોથી આવૃત્તિ, પ્રસ્ટલ્

તેમ તેમ તેને પોતાનો આગ્રહ દેખાય છે, તેનો સ્વીકાર થાય છે અને તેને છોડી દેવાના પ્રયત્ન થાય છે. પોતાના આગ્રહો અને વિકલ્પોથી તેને ખૂબ પીડા થાય છે. તે શલ્યની જેમ ખૂંચતા હોવાથી તેને કાઢવા તે ખૂબ શ્રમ ઉઠાવે છે.

આગહ અને વિકલ્પ છોડીને નિરંતર નિજતત્ત્વ ઉપર દેષ્ટિ કરવી એ જ સાચી આરાધના છે. મત-દર્શનના આગ્રહ તથા વિકલ્પથી ક્યારે પણ ધર્મ થતો નથી. ધર્મ તો પોતાના સ્વભાવના આશ્રયથી જ થાય છે. 'હું જ્ઞાનમાત્ર છું' એ જ ભાવ ઉપાદેય છે. આગ્રહ તથા વિકલ્પના ભાવ હેય છે. હેય-ઉપાદેયનો વિવેક કરી, હેયને છોડી, ઉપાદેયને ગ્રહે કરવામાં જીવે તત્પર રહેવું ઘટે છે.

મત-દર્શનના આગ્રહ તથા વિકલ્પ છોડીને કરવામાં આવતા વીતરાગી પુરુષાર્થનું ફળ બતાવતાં શ્રીમદ્ પ્રસ્તુત ગાથામાં કહે છે કે 'ક્શો માર્ગ આ સાઘશો, જન્મ તેઢના અત્ય', પરમાર્થમાર્ગને સાધતાં જીવને આત્મજ્ઞાન થાય છે. આત્મજ્ઞાન થયા પછી જીવ વધુ કાળ સંસારમાં રહેતો નથી. જો ઉગ્ર પુરુષાર્થ વડે આત્મસ્થિરતા આરાધવામાં આવે તો તે જ ભવે આત્મચારિત્રની પૂર્ણતા થઈ મોક્ષ થાય છે. પરંતુ જો ઉગ્ર પુરુષાર્થ ન હોય તો તેશે બીજા જન્મ લેવા પડે, પણ બહુ જ અલ્પ. સમક્તિ આવ્યા પછી જો વમે નહીં તો વધારેમાં વધારે પંદર ભવ થાય.

તાત્પર્ય એ છે કે –

- (૧) સમ્યગ્દર્શન ન થાય ત્યાં સુધી જીવને અમર્યાદિત સંસાર છે, અર્થાત્ અનંતાનંત ભવ છે.
- (૨) સમ્યગ્દર્શન થયા પછી જો વમી જાય તો વધારેમાં વધારે અર્ધપુદ્દગલપરાવર્તન કાળ સુધી સંસારભ્રમણ કરીને જીવ મોક્ષે જાય, અર્થાત્ તેનો અમર્યાદિત સંસાર સમ્યગ્દર્શનના પ્રભાવથી મર્યાદિત થાય છે.
- (૩) સમ્યગ્દર્શન થયા પછી જો વમે નહીં અને સમ્યક્યારિત્રનો અભાવ હોય અથવા તો તેમાં તરતમતા હોય, અર્થાત્ ચારિત્ર અખંડ ન હોય તો ઉત્કૃષ્ટમાં ઉત્કૃષ્ટ પંદર ભવે મોક્ષે જાય. ક્ષાયિક સમ્યગ્દર્શન હોય તો વધારેમાં વધારે ત્રણ કે ચાર ભવે મોક્ષે જાય.
- (૪) અખંડ સમ્યગ્દર્શનપૂર્વક અખંડ સમ્યક્ચારિત્ર હોય તો તે જ ભવે મોક્ષ પામે.

'તે જ ભવે મોક્ષ પામે' એમ જે કહ્યું તે 'આ કાળમાં મોક્ષપ્રાપ્તિ ન થઈ શકે' એવી જૈન માન્યતાને જરા પણ પ્રતિકૂળ નથી; કેમ કે અહીં તો માત્ર ઉત્કૃષ્ટ આરાધનાનું માહાત્મ્ય ગાયું છે. ઉત્કૃષ્ટ આરાધના જે સ્થળે થાય તે સ્થળે મોક્ષ પણ થવો જોઈએ. આ કાળે, આ ક્ષેત્રે અખંડ ઉત્કૃષ્ટ ચારિત્રની - યથાખ્યાત ચારિત્રની સંભાવના ન હોવાના કારણે શ્રીમદે 'જન્મ' શબ્દ બહુવચનમાં વાપર્યો હોય એમ લાગે છે. તે એમ સૂચવે છે કે જઘન્ય કે મધ્યમ પરિણામની ધારાથી આરાધના થઈ હોય તેથી સર્વ કર્મ ક્ષય થઈ ન શકવાથી અલ્પ જન્મ ધારણ કરવા પડે છે. તે અલ્પ જન્મો પણ પ્રાયઃ દેવ કે મનુષ્ય ગતિના જ હોય છે. પંડિત શ્રી દૌલતરામજી 'છ ઢાળા'માં લખે છે –

'પ્રથમ નરક વિન ષદ્મ ભૂ જ્યોતિષ વાન ભવન ષંઢ નારી; થાવર વિકલત્રય પશુમેં નાહિં, ઉપજત સમ્યક્**દારી**.'^૧

સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ આયુ પૂર્ણ થતાં જ્યારે દેહ છોડે છે ત્યારે બીજીથી સાતમી નરકના નારકી, જ્યોતિષી, વ્યંતર, ભવનવાસી, નપુંસક, સર્વ પ્રકારની સ્ત્રી, એકેન્દ્રિય, બેઇન્દ્રિય, ત્રેઇન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને કર્મભૂમિના તિર્યંચ થતા નથી; (નીચ ફળવાળા, ઓછા અંગવાળા, અલ્પાયુષવાળા અને દરિદ્રી થતા નથી;) વિમાનવાસી દેવ, ભોગ-ભૂમિના મનુષ્ય અથવા તિર્યંચ જ થાય છે. કદાચ નરકમાં જાય તો પહેલી નરકથી નીચે જતા નથી. તેથી જ કહ્યું છે કે સમ્યગ્દર્શન ત્રણ લોકમાં સુખકારી છે.

આ ગાથામાં શ્રીમદનો જે ઝોક છે તે તેમની સર્વ મત-દર્શન તરફની સહિષ્ણુતા બતાવે છે. શ્રીમદ્ની મધ્યસ્થતા, વિશાળ અંતરવૃત્તિનું વર્ણન કરી શકે એવા શબ્દો દુનિયાની કોઈ ભાષામાં અસ્તિત્વ ધરાવતા નથી. તેમની પરમ ઉદાર આત્મદશા શબ્દોમાં સમાઈ શકતી નથી. સ્વભાવદષ્ટિના કારણે જેઓ દેહ અને રાગથી પણ ભિન્ન રહેતા હોય, તેઓ મત-દર્શનના આગ્રહને આધીન તો થાય જ ક્યાંથી? જેમને નિર્વિકલ્પ થવાની જ હોંશ વર્તતી હોય તેમને મત-દર્શનના વિકલ્પમાં રસ ક્યાંથી હોય? બહિર્દષ્ટિ જીવને બાહ્ય સંયોગોની જ મહત્તા હોવાથી તેને મત-દર્શનના ભેદભાવની વાત ખૂબ મહત્ત્વની લાગે છે, પરંતુ શ્રીમદ્ જેવા જ્ઞાનીપુરુષોને સ્વભાવની જ મહત્તા હોવાથી તેઓ મત-દર્શનના ભેદભાવની વાતોને ગણકારતા નથી. તેઓ મત-દર્શનના ભેદભાવથી પર થઈ ગયા છે. શ્રીમદ્ અન્યત્ર પ્રકાશે છે —

'હું કોઈ ગચ્છમાં નથી; પણ આત્મામાં છું; એ ભૂલશો નહીં.'^ર

'જૈનના આગ્રહથી જ મોક્ષ છે; એમ આત્મા ઘણા વખત થયાં માનવું ભૂલી ગયો છે. મુક્તભાવમાં (!) મોક્ષ છે એમ ધારણા છે.'³

'છોટમ જ્ઞાની પુરુષ હતા. પદની રચના બહુ શ્રેષ્ઠ છે.'*

૧- પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૩, ગાથા ૧૬

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૧૭૦ (પત્રાંક-૩૭)

૩- એજન, પૃ.૨૧૮ (પત્રાંક-૧૨૦)

૪- એજન, પૃ.૨૮૭ (૫ત્રાંક-૨૫૦)

'આત્મદર્શન પામ્યા છતાં પણ વ્યાસજી આનંદસંપન્ન થયા નહોતા; કારણ કે હરિરસ અખંડપણે ગાયો નહોતો.'^૧

'અમને તો બ્રાહ્મણ, વૈષ્ણવ ગમે તે સમાન છે. જૈન કહેવાતા હોય, અને મતવાળા હોય તો તે અહિતકારી છે; મતરહિત હિતકારી છે.'^ર

શ્રીમદે ઠેર ઠેર આત્મકલ્યાણ માટે મથતા જીવોને સ્વાધીન અતીન્દ્રિય સુખની પ્રાપ્તિ થાય તે અર્થે મોક્ષમાર્ગના યથાર્થ સ્વરૂપનું ભાન કરાવ્યું છે અને પોતાના મત-પંથ-સંપ્રદાય દ્વારા નિર્દિષ્ટ ક્રિયાકાંડ, ધર્માનુષ્ઠાન વગેરેનો આગ્રહ છોડવાનો ઉપદેશ કર્યો છે. પ્રસ્તુત ગાથામાં પણ તેમણે મત-દર્શનનો આગ્રહ તથા વિકલ્પ છોડવાની જ વાત કરી છે. સમસ્ત રાગ-દેષાદિ વિકારોને નાશ કરી એક આત્મામાં સ્થિર થવું એ જ મોક્ષમાર્ગ છે એમ ગર્ભિતપણે દર્શાવ્યું છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'છોડી મત દર્શન તણો, પક્ષપાત અહંકાર; જેથી કોધાદિક વધે, દોષતણો ભંડાર. માટે ત્યજી પ્રયત્નથી, આગ્રહ તેમ વિકલ્પ; પછી સરલતાદિ ગુણે, મળે સત્કળ જે અનલ્પ. સત્પુરુષે પરમાર્થની, આજ્ઞા તથા પ્રકાર; કહ્યો માર્ગ આ સાધશો, તે પામે ભવપાર. સત્ની સાચી સેવના, આજ્ઞા નિર્વિકલ્પ; આરાધે સદ્ભાવથી, જન્મ તેહના અલ્પ.'

* * *

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્કી આવૃત્તિ, પૃ.૩૦૧ (પત્રાંક-૨૮૨)

૨- એજન, પૃ.૭૦૨ (ઉપદેશછાયા-૬)

^{3- &#}x27;રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૦ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૧૭-૪૨૦)

अ ५६ना अर्थां अता ते, प्रक्षां इस विकार, ते ५६ना अर्थां अता, मारीभागी निर्धार ગાથા ૧૦૫માં શ્રીગુરુએ જણાવ્યું કે પોતાનાં મત-દર્શનની માન્યતાનો આગ્રહ તેમજ વિકલ્પ છોડીને જે જીવ આગળની ગાથાઓમાં બતાવેલો પરમાર્થમાર્ગ સાધશે, તે જીવ થોડા ભવમાં મોક્ષ પામશે.

પોતાનો મતાગ્રહ છોડીને મોક્ષને સાધવા તત્પર થયેલા મંદકષાયી સુપાત્ર સમીપ-મુક્તિગામી જીવને તત્ત્વજિજ્ઞાસા થાય છે. તેને અનેક પ્રકારના પ્રયોજનભૂત પ્રશ્નો જાગે છે અને તેના સમાધાન અર્થે તે અનુભવી ગુરુને સેવી પોતાના પ્રશ્નોનું યથાર્થ સમાધાન મેળવે છે. અહીં પણ સાચી જિજ્ઞાસાપૂર્વક પ્રશ્નો પૂછી સુશિષ્ય શ્રીગુરુ પાસે તેનું યથાર્થ સમાધાન મેળવે છે. તે સંબંધી શ્રીગુરુ કહે છે –

ાથા 'ષર્પદનાં ષર્પ્રશ્ન તેં, પૂછ્યાં કરી વિચાર; તે પદની સર્વાગતા, મોક્ષમાર્ગ નિર્ધાર.' (૧૦૬)

હે શિષ્ય! તેં છ પદનાં છ પ્રશ્નો વિચાર કરીને પૂછ્યાં છે, અને તે પદની સર્વાંગતામાં મોક્ષમાર્ગ છે, એમ નિશ્ચય કર. અર્થાત્ એમાંનું કોઈ પણ પદ એકાંતે કે અવિચારથી ઉત્થાપતાં મોક્ષમાર્ગ સિદ્ધ થતો નથી. (૧૦૬)

ભાવાર્થ જેના હ્રદયમાં શુદ્ધાત્મા પ્રાપ્ત કરવાની પ્રબળ ઇચ્છા થઈ છે એવો સત્- ભાવાર્થ જિજ્ઞાસુ શિષ્ય, જેમને સત્ની પ્રાપ્તિ થઈ છે એવા અનુભવી ગુરુ પાસે પોતાની શંકાઓ નમ ભાવે રજૂ કરે છે. તેની સત્પાત્રતા જોઈને શ્રીગુરુ તેની શંકાઓનું સમાધાન કરે છે. છ પદ સંબંધી પૂછાયેલા પ્રશ્નોના સંતોષકારક ઉત્તરો આપી શ્રીગુરુ વાત્સલ્યભર્યા સંબોધનથી શિષ્યને કહે છે કે 'હે શિષ્ય! તેં છ પદના છ પ્રશ્નો બહુ વિચારીને પૂછ્યા છે. આ છ પદની સર્વાંગતામાં જ મોક્ષમાર્ગ છે એમ નક્કી માન. છએ પદનાં સર્વ પડખાં જાણવાં, સમજવાં અને તેમાં નિ:શંક થવું તે મોક્ષમાર્ગ છે. 'આત્મા છે', 'આત્મા નિત્ય છે', 'આત્મા કર્તા છે', 'આત્મા ભોક્તા છે', 'મોક્ષ છે' અને 'મોક્ષનો ઉપાય છે' - આ છએ પદોને સંપૂર્ણપણે વિચારીને જે સ્વીકારે છે તે અવશ્ય મોક્ષમાર્ગને પામે છે. છ પદની યથાર્થ પ્રતીતિ તે સમ્યગ્દર્શન છે, યથાર્થ બોધ તે સમ્યગ્રાન છે અને તે અનુરૂપ આચરણ તે સમ્યક્યારિત્ર છે.

છએ પદ એકબીજા સાથે અતૂટ સંબંધ ધરાવે છે. તેમાંથી એક પણ પદને ઓછું આંકવાથી મોક્ષમાર્ગની પ્રતીતિને ક્ષતિ પહોંચે છે. એકાદ પદમાં પણ શંકા રહે અથવા તેને એકાંતે ઉત્થાપવામાં આવે તો મોક્ષમાર્ગ પામી શકાતો નથી. છએ પદને અલગ અલગ સમજી, છ પદને એકરૂપ કરીને પોતાનું સ્વરૂપ જાણતાં, એટલે કે 'હું છું, હું નિત્ય છું, હું કર્તા છું, હું ભોક્તા છું, મારો મોક્ષ છે અને શ્રીગુરુ બતાવે છે એ મારી મુક્તિનો ઉપાય છે.' - એમ એ છ પદમાં સ્વપણું લાવતાં મોક્ષમાર્ગ પામી શકાય છે; તેથી જીવે એકાંત માન્યતાઓનો ત્યાગ કરી છએ પદની યથાર્થ શ્રદ્ધા કરવી જોઈએ. આમ, મોક્ષના ઉપાયની સમજણની પ્રાપ્તિને જે પોતાના સદ્ભાગ્યનો ઉદય માને છે તેવા વિવેકવંત સુશિષ્યને શ્રીગુરુ આ ગાથામાં કહે છે કે 'છએ પદના પ્રશ્નો તેં ઉત્તમ વિચાર કરીને પૂછ્યા છે. તે છ પદનાં સમાધાનને સમજવાં અને અનેકાંતદષ્ટિથી છએ પદ સવીંગે માન્ય કરવાં એ મોક્ષમાર્ગ છે એમ નિર્ધાર કર.'

બિશેષાર્થ મોક્ષરૂપી મહેલનું પ્રથમ પગથિયું તે સમ્યગ્દર્શન છે. સમ્યગ્દર્શન એટલે સમ્યક્ પ્રતીતિ. સમ્યગ્દર્શન વિના જ્ઞાન અને ચારિત્ર સમ્યક્પણું પામતાં નથી. સમ્યગ્દર્શન થતાં જ જ્ઞાન સમ્યક્ થાય છે અને ક્રમશઃ ચારિત્ર સમ્યક્ થાય છે. આ ત્રણની પૂર્ણતા અને અખંડતા તે જ મોક્ષ છે.

સમ્યગ્દર્શન જીવનાં પોતાનાં જ વિશુદ્ધ પરિણામો વડે પ્રગટે છે. ગુર્વાદિનો ઉપદેશ તેમાં નિમિત્તકારણ છે. પરિણામોને નિર્મળ કરવાનો પુરુષાર્થ તો જીવે જાતે જ કરવાનો છે. પોતાના કલ્યાણની જવાબદારી જીવની પોતાની જ છે. સદ્દ્ગુરુ તો મોક્ષમાર્ગ દર્શાવે છે. તે માર્ગ અહણ કરવાનો તથા તેના ઉપર ચાલવાનું તો જીવે પોતે જ કરવાનું છે. આ કાર્ય પોતાના જ પુરુષાર્થથી પોતાના જ દ્રવ્યમાં થાય છે. સ્વરૂપની યથાર્થ સમજણ દ્વારા ઉપયોગને સ્વમાં એકાઝ કરતાં સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થાય છે.

સદ્ગુરુના ઉપદેશ દ્વારા નવ તત્ત્વની, છ પદની યથાર્થ શ્રદ્ધા કરી, ઉપયોગ અંતર્મુખ કરતાં, વિકલ્પરહિત અવસ્થામાં સમ્યગ્દર્શન થાય છે. સમ્યગ્દર્શનની ઉત્પત્તિ બે પ્રકારે થાય છે –

- (૧) નિસર્ગ બાહ્ય નિમિત્ત વિના, પૂર્વસંસ્કારના બળ વડે જે સમ્યગ્દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે તેને નિસર્ગજ સમ્યગ્દર્શન કહે છે. સમ્યગ્દર્શન પ્રગટવાના સમયે ઉપદેશાદિ બાહ્ય નિમિત્ત પ્રત્યક્ષ હાજર ન હોય, પણ કર્મના ઉપશમાદિના નિમિત્તે પૂર્વસંસ્કારના બળ વડે જીવ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરે તેને નિસર્ગજ સમ્યગ્દર્શન કહેવાય છે.
- (૨) અધિગમ ગુરુ-ઉપદેશ, સત્શાસ્ત્ર, મૂર્તિ આદિ બાહ્ય નિમિત્તથી જે સમ્યગ્દર્શન થાય છે તેને અધિગમજ સમ્યગ્દર્શન કહે છે. પ્રત્યક્ષ ઉપદેશાદિ બાહ્ય નિમિત્તપૂર્વક ૧- જુઓ : પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૩, કડી ૧૭

'મોક્ષમહલકો પરથમ સીઢી, યા વિન જ્ઞાન ચરિત્રા; સમ્યક્તા ન લહે, સો દર્શન ધારો ભવ્ય પવિત્રા.' પ્રગટ થાય તે અધિગમજ સમ્યગ્દર્શન કહેવાય છે. તેમાં આત્મજ્ઞાની ગુર્વાદિના ઉપદેશનું પ્રત્યક્ષ નિમિત્ત હોય છે.

જીવને અનાદિથી પોતાના સ્વરૂપની ભ્રમણા છે. જ્યારે તે ભ્રમણા ટળે છે ત્યારે સમ્યગ્દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે. જીવ પોતાનું સાચું સ્વરૂપ સમજવાની જિજ્ઞાસા કરે, આત્મજ્ઞાની પુરુષનો ઉપદેશ સાંભળી પોતાના સ્વરૂપનો યથાર્થ નિર્ણય કરે તો તેને સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત થાય છે. આત્મજ્ઞાની પુરુષનો ઉપદેશ સાંભળીને ઉત્પન્ન થયેલા સમ્યગ્દર્શનને અધિગમજ સમ્યગ્દર્શન કહે છે. કોઈ વાર એવું બને કે જે ભવમાં સદ્દ્ગુરુનો યોગ થયો હોય તે ભવમાં તેને સમ્યગ્દર્શન પ્રગટતું નથી, પરંતુ પછીના કોઈ ભવમાં, સદ્દ્યુરુનો યોગ થયા વિના, પૂર્વના સંસ્કારના બળથી સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે. આ રીતે ઉત્પન્ન થયેલ સમ્યગ્દર્શનને નિસર્ગજ સમ્યગ્દર્શન કહે છે.

આમ, નિસર્ગજ સમ્યગ્દર્શન કર્મના ઉપશમાદિના નિમિત્ત દ્વારા પૂર્વસંસ્કારના બળે ઉત્પન્ન થાય છે, જ્યારે અધિગમજ સમ્યગ્દર્શન તત્ત્વનિર્ણયની નક્કર ભૂમિકાની અપેક્ષા રાખે છે. 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'માં શિષ્ય સમ્યગ્દર્શન અર્થે શ્રીગુરુના અવલંબને છ પદનો નિર્ણય કરવા ઇચ્છે છે. આત્માનાં છ પદ વિષે તે મૂંઝાયેલો છે. આવી પરિસ્થિતિમાં તે શ્રીગુરુ પાસેથી છ પદનું સમાધાન મેળવે છે. તત્ત્વનિર્ણય અર્થે તે છ પદની વિચારણા કરે છે. છ પદની વિચારણાનું માહાત્મ્ય તથા તેનાં ફળનો નિર્દેશ કરતાં શ્રીમદ્ લખે છે –

''આત્મા છે', 'આત્મા નિત્ય છે', 'આત્મા કર્મનો કર્તા છે', 'આત્મા કર્મનો ભોક્તા છે', 'તેથી તે નિવૃત્ત થઇ શકે છે', અને 'નિવૃત્ત થઇ શકવાનાં સાધન છે', એ છ કારણો જેને વિચારે કરીને સિદ્ધ થાય, તેને વિવેકજ્ઞાન અથવા સમ્યક્દર્શનની પ્રાપ્તિ ગણવી એમ શ્રી જિને નિરૂપણ કર્યું છે, જે નિરૂપણ મુમુસુ જીવે વિશેષ કરી અભ્યાસ કરવા યોગ્ય છે.

પૂર્વના કોઈ વિશેષ અભ્યાસબળથી એ છ કારણોનો વિચાર ઉત્પન્ન થાય છે; અથવા સત્સંગના આશ્રયથી તે વિચાર ઉત્પન્ન થવાનો યોગ બને છે.^{'વ}

આત્માર્થી જીવને તેની સુપાત્રતાના કારણે પરિભ્રમણની ચિંતના જાગે છે કે અનંત કાળના પરિભ્રમણમાં પોતે ચોર્યાસી લાખ યોનિઓમાં નિરંતર જન્મ-મરણ કર્યા છે. આ ક્લેશમય સંસારમાં પરિભ્રમણ કરતાં કરતાં તેણે અનંત દુઃખ ભોગવ્યાં છે. તેથી અનાદિ કાળનું પરિભ્રમણ હવે સમાપ્તતાને પામે એવી અભિલાષા તેને હવે જાગે છે. 'જ્યાં અનેક પ્રકારના અકથ્ય દુઃખના પ્રસંગો ઉત્પન્ન થાય છે, તે ક્ષણભંગુર અને ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૪૫૨-૪૫૩ (પત્રાંક-૫૭૦)

અશરણ સંસારસમુદ્રમાં હું હજી ડૂબી રહ્યો છું' એવું ભાન થતાં તેને વૈરાગ્ય પ્રગટે છે, તેના અંતરમાં આત્મહિતની દરકાર જાગે છે. તેને સંસારપ્રસંગોમાં સારભૂતપણું લાગતું નથી. તે મોહાસક્તિથી મૂંઝાય છે અને તેને મોક્ષનું લક્ષ બંધાય છે.

તે જીવને સમજાય છે કે આત્મજ્ઞાન વગરનું બધું નિરર્થક છે. ગમે તેટલાં શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ થયો હોય, તે મુખપાઠ પણ હોય, પરંતુ જ્યાં સુધી આત્મા જાણ્યો નથી ત્યાં સુધી 'મેં કંઈ જ જાણ્યું નથી' એવું તેના લક્ષમાં રહે છે. જેનામાં આત્માર્થિતા પ્રગટી છે તે જીવ, 'આત્મા જાણ્યો નથી એટલે કશું જ જાણ્યું નથી' એવું સહજતાથી સ્વીકારી શકે છે. તેનામાં એવી સરળતા પ્રગટી હોય છે. પોતાના અજ્ઞાનનો સ્વીકાર થયો હોવાથી આત્માર્થી જીવને પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવી આત્માને જાણવાની જિજ્ઞાસા થાય છે. તેને પોતાના અંતરંગ સ્વરૂપને ઓળખવાની આકાંક્ષા જાગે છે. ઉપલક વાંચન કે કિયાઓ તેને હવે સંતોષ આપી શકતાં નથી. સ્વરૂપના જ્ઞાન વિના તે બેચેન રહે છે. અન્ય કાર્યોમાં તેને રસ પડતો નથી. વિકથા આદિમાં તેને નીરસપણું લાગે છે. સત્કથા પ્રત્યે તેને ખૂબ પ્રેમ જાગે છે. તે આત્માની સમજણમાં રસ લઈને તેને સાધવાનો પ્રયત્ન કરે છે. તેનામાં આત્માને મેળવવાની અદમ્ય અભીપસા ઉદ્ભવે છે. આ અભીપસા જ તેને સ્વરૂપના ઊંડા સ્તરોમાં પ્રવેશ કરાવે છે.

જેમને સત્યની અભીપ્સા જાગી નથી, તેમને સત્યનો ઉપદેશ આપવામાં આવે તો તે ભીંત સાથે વાત કરવા બરાબર છે. સત્ય માટે જેમના પ્રાણ તરસતા હોય, તેમના તરફ જ સત્ય મોં કરે છે. સત્ય કેવળ તેમને માટે જ દ્વાર ખોલે છે, જેઓ પોતાની પૂરી શક્તિ અને સંકલ્પથી તેને પોકારે છે. આત્માર્થી જીવ સત્યની પ્રાપ્તિ માટે પોતાનું બધું જ - પોતાની જિંદગી, પોતાનું અસ્તિત્વ દાવ ઉપર લગાવી દે છે. આ અભીપ્સા, આ સમર્પણભાવ એ જ એની સત્પાત્રતા છે. પોતાને દાવ ઉપર મૂકવાની હિંમત તથા તૈયારી હોય એથી વિશેષ પાત્રતા બીજી શું હોઈ શકે?

આત્મસ્વરૂપની પ્રાપ્તિના અભિલાષી જીવને જ્ઞાની ગુરુની આવશ્યકતા સમજાય છે. તેને એમ ભાસે છે કે 'જીવને મોક્ષમાર્ગની પ્રાપ્તિ થવી અતિ અતિ દુર્લભ છે અને તેથી જ અનંત કાળ સંસારપરિભ્રમણમાં વીત્યો છે. હું તો માર્ગથી અજાણ છું. કોઈ માર્ગનો સુજાણ મને ભેટી જાય તો જ આ અંતહીન ચક્કર મટે. આ અફાટ સંસાર-સાગરમાં હું ડૂબી રહ્યો છું. શ્રીગુરુના માર્ગદર્શન વિના આ સંસારસમુદ્ર તરી શકાય તેમ નથી. શ્રીગુરુના આશ્રયથી જ સંસાર નાશ પામશે. બીજો કોઈ ઉપાય નથી.' આત્માર્થીને સદ્દગુરુનું ચરણ-શરણ મળે તે માટે તીવ્ર શોધક વૃત્તિ રહે છે. તે સત્સંગનો યોગ મળે તે માટે નિરંતર પુરુષાર્થ કરતો રહે છે. તેને જ્યારે પ્રત્યક્ષ સદ્દગુરુના સત્સંગની તક મળે છે ત્યારે તે તેને તરત ઝડપી લે છે. તે સ્વરૂપની સમજણ માટે સદ્દગુરુનો

સમાગમ કરે છે, તેમનું સાન્નિધ્ય સેવે છે.

પ્રસ્તુત શાસ્ત્રમાં પણ શિષ્ય આત્મસ્વરૂપની સમજણ અર્થે શ્રીગુરુનો સમાગમ સેવે છે. તે સ્વચ્છંદ, મતાગ્રહ વગેરે પરિહરીને સત્સંગ કરે છે. તે શ્રીગુરુને પોતાના પ્રશ્નોનું સમાધાન આપવા વિનંતી કરે છે. તે આત્માના અસ્તિત્વથી માંડીને મોક્ષના ઉપાય અંગેના પ્રશ્નો પૂછે છે. આ પ્રશ્નપરંપરામાં સદ્વિચારપૂર્વકની ક્રમયુક્ત શ્રેણી જણાઈ આવે છે. શિષ્યના પ્રશ્નો ઉપરથી સ્પષ્ટ માલૂમ પડે છે કે તેણે વિચાર કરીને પ્રશ્નો પૂછ્યા છે, પૂછવા ખાતર નથી પૂછ્યા. તે પ્રશ્નોમાં શિષ્યનો માત્ર પરમાર્થલક્ષ રહેલો છે એમ જણાઈ આવે છે.

શિષ્ય છ પદની શંકાના સમાધાન અર્થે પ્રશ્નો કરે છે અને શ્રીગુરુ તેનું સચોટ સમાધાન આપે છે. શિષ્ય બોધ સાંભળ્યા પછી તે બોધનું મંથન કરે છે. શ્રીગુરુ દ્વારા સમાધાન મળ્યા પછી વિચારપૂર્વક, કસોટી કરીને છ પદમાં તે પૂર્ણ શ્રદ્ધા કરે છે. શિષ્ય સમજવાનો યથાર્થ કામી છે. તેનું વજન સત્ સમજવા ઉપર છે, પોતાના મતના આગ્રહ ઉપર નહીં. તે પોતાના અભિપ્રાયનો આગ્રહ નથી કરતો. તે પોતાના હઠાગ્રહ તથા મતાગ્રહ છોડીને શ્રીગુરુએ આપેલ સમાધાન ઉપર વિચાર કરે છે અને પોતાની માન્યતામાં ક્યાં ભૂલ હતી તે પ્રત્યે તેનું ચિત્ત વળે છે. પોતાના મતના બચાવ પ્રત્યે નહીં, પરંતુ પોતે ક્યાં ભૂલ કરી હતી તે પ્રત્યે તેનું લક્ષ જાય છે. તેને પોતાની ભૂલ સમજાવનાર શ્રીગુરુ પરમ ઉપકારી લાગે છે. તેને છ પદના નિર્ણયમાં ખૂબ ઉત્સાહ આવે છે. તેનો ઉમંગ વધતો જાય છે.

શ્રીગુરુને આવા સત્પાત્ર સુશિષ્યને જોઈને પ્રમોદ થાય છે. શિષ્યના વિચાર-પૂર્વકના પ્રશ્નોથી તેમને પ્રમોદ થાય છે. પ્રસ્તુત ગાથાની પ્રથમ પંક્તિમાં શિષ્યની વિચારશક્તિનો સ્વીકાર કર્યા પછી છ પદ સંબંધી શ્રીગુરુ કહે છે કે 'આ છ પદની સર્વાંગતામાં જ મોક્ષમાર્ગ છે એમ તું નિર્ણય કર. એમાંનું કોઈ પણ પદ એકાંતે અથવા અવિચારથી ઉત્થાપવામાં આવે તો મોક્ષમાર્ગ સિદ્ધ થાય નહીં.'

આ છ પદ સાચાં છે, અત્યંત સાચાં છે, નિઃસંદેહરૂપ છે. આ છએ પદ વિચારીને, સમજીને, સર્વાગે માન્ય થાય તો જ મોક્ષમાર્ગ સિદ્ધ થાય છે. માટે આ છ પદનો સર્વાગ નિર્ણય કરવો એ મુમુક્ષુ જીવનું પરમ કર્તવ્ય છે. છએ પદમાં કશે પણ શંકા ન રહેવી જોઈએ. જો જીવ આઝહ કરી કોઈ પણ પદનો અસ્વીકાર કરે, નિષેધ કરે તો તેને મોક્ષમાર્ગની પ્રાપ્તિ થતી નથી.

આગ્રહી જીવ વસ્તુતત્ત્વને એકાંતે ગ્રહણ કરે છે. પોતાની માન્યતા પ્રમાણે જ વસ્તુસ્થિતિ છે એવો તેનો આગ્રહ હોય છે. તેને હંમેશાં પોતાના મતનો આગ્રહ હોય છે. તેની દરેક વાતમાં આગ્રહનો જ સૂર હોય છે. તેને પોતાના મતની પુષ્ટિ આપતી વાતો બહુ ગમે છે. તેનાથી જુદું કોઈ કંઈ કહે તે તેને ગમતું નથી. તે અન્યના મતનો સ્વીકાર કરી શકતો નથી. તે પોતાની બાંધેલી એકાંતિક માન્યતા છોડતો નથી. વળી, તે પોતાની માન્યતાના આગ્રહને ધર્મ સમજે છે, પણ આવા આગ્રહ વડે તો જીવ છૂટવાને બદલે બંધાઈ જાય છે અને જે ધર્મ માટે આગ્રહ કરવામાં આવ્યો હોય છે એ ધર્મ તો તેનાથી દૂર ને દૂર જ રહે છે. આગ્રહથી મુક્ત થયા વિના ધર્મ ક્યારે પણ પ્રાપ્ત થઈ શકતો નથી. એકાંતદષ્ટિયુક્ત જીવને વસ્તુસ્વરૂપનું સાચું જ્ઞાન થઈ શકતું નથી. એકાંતદષ્ટિના કારણે તે સત્નું ઉત્થાપન કરીને ઘોર અનર્થ કરી બેસે છે. શ્રીમદ્ કહે છે –

'એકાંતિકપણું ગ્રહવાનો સ્વચ્છંદ જીવને વિશેષપણે હોય છે, અને એકાંતિકપણું ગ્રહવાથી નાસ્તિકપણું થાય છે. તે ન થવા માટે આ નયનું સ્વરૂપ કહેવામાં આવ્યું છે, જે સમજવાથી જીવ એકાંતિકપણું ગ્રહતો અટકી મધ્યસ્થ ૨હે છે, અને મધ્યસ્થ ૨હેવાથી નાસ્તિકતા અવકાશ પામી શકતી નથી.'

જીવને એકાંતદેષ્ટિથી થતા નુકસાનનું યથાર્થ ભાન થાય તો તે તેનાથી છૂટવાના ઉપાય કરે. જો જીવને એક વાર ખબર પડે કે તે એક અતિ નુકસાનકારી ભાવ સાથે જીવી રહ્યો છે, તો તેને ઉખેડીને ફેંકવાનો તે અવશ્ય ઉદ્યમ કરે. તેને ઉખાડીને ફેંકવામાં એટલી જ સરળતા લાગે, જેટલી પગમાંથી કાંટો કાઢવામાં લાગે. એકાંતદિષ્ટિને ફગાવી દેવામાં એટલી જ સુગમતા લાગે, જેટલી શરીર ઉપરથી મેલને જુદો પાડવામાં લાગે. પરંતુ કોઈ માણસ જો શરીરના મેલને સોનું સમજી રહ્યો હોય તો તકલીફ ઊભી થાય. કોઈ માણસ શરીર ઉપરના મેલને આભૂષણ સમજી રહ્યો હોય તો ઘણી મુશ્કેલી થઈ જાય. જે વસ્તુ ટાળવા યોગ્ય ન લાગે પણ રાખવા યોગ્ય લાગે તો તે વસ્તુને ટાળવાનો પ્રયાસ કઈ રીતે થાય? તેથી જીવે એકાંતદિષ્ટિનું અહિતકારીપણું વિચારવા યોગ્ય છે. પોતે એકાંતદિષ્ટિમાં ફસાઈ ન જાય તે અર્થે અંતરતપાસ કરવા યોગ્ય છે.

એકાંતદષ્ટિ એક પ્રકારનો વિપર્યાસ છે. જ્યાં સુધી આ વિપર્યાસ ટળે નહીં ત્યાં સુધી આત્મસાધના શરૂ થતી નથી, માર્ગ માટેની સરળતા થતી નથી. જીવ અનંત અંશાત્મક વસ્તુના માત્ર અમુક અંશને જ સ્વીકારે તો પરમાર્થમાર્ગ હાથમાં આવતો નથી. સ્યાદ્વાદશૈલીથી નિરૂપિત થયેલા ષટ્સ્થાનવિષયક તત્ત્વપ્રકાશક જ્ઞાન દ્વારા સત્ય માર્ગ મળે છે. તેથી જ શ્રીમદે છ પદની સર્વાંગતામાં મોક્ષમાર્ગ છે એમ નિશ્ચય કરાવ્યો છે.

છ પદનો સમ્યક્ નિર્ણય અત્યંત આવશ્યક છે. છ પદ જો યથાર્થપણે સમજાય તો મોક્ષમાર્ગનું સ્વરૂપ સમજાય છે. તેથી જીવે શ્રીગુરુના બોધના આધારે પ્રથમ છ પદનો ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૭૫૦ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૧૨૩)

અફર નિર્ણય કરવો જોઈએ. એવો દઢ નિર્ણય કરવો જોઈએ કે જેથી વીર્યનો વેગ તે તરફ ઢળ્યા વિના રહે નહીં. અનંત કાળમાં નહીં કરેલ એવી અપૂર્વ રીતે, અપૂર્વ પુરુષાર્થથી છ પદનો નિર્ણય કરવો જોઈએ. છ પદથી સિદ્ધ છે એવા આત્માનો અપૂર્વ નિર્ણય કરવો એ પ્રથમ ભૂમિકા છે. શ્રીમદ્દ કહે છે –

'એટલું તો ચોક્કસપણે શ્રદ્ધવું કે જીવથી માંડી મોક્ષ સુધીના જે પાંચ પદ (જીવ છે, તે નિત્ય છે, તે કર્મનો કર્તા છે, તે કર્મનો ભોક્તા છે, મોક્ષ છે,) તે છે; અને મોક્ષનો ઉપાય પણ છે; તેમાં કાંઇ પણ અસત્ય નથી. આવો નિર્ણય કર્યા પછી તેમાં તો કોઇ દિવસ શંકા કરવી નહીં; અને એ પ્રમાણે નિર્ણય થયા પછી ઘણું કરીને શંકા થતી નથી.'

મોક્ષપ્રાપ્તિ અર્થે છ પદનું સત્ય જ્ઞાન અત્યંત પ્રયોજનભૂત છે. છ પદનું સ્વરૂપ સર્વાંગે જાણ્યા વિના સ્વરૂપનો બોધ થતો નથી. સ્વરૂપના બોધ વિના માત્ર બાહ્ય ક્રિયાઓ કરવાથી ધર્મ થતો નથી. ધર્મની શરૂઆત યથાર્થ તત્ત્વનિર્ણય વિના થતી નથી. પ્રયોજનભૂત તત્ત્વોની સ્પષ્ટ સમજણ વિના ધર્મનો યથાર્થ પ્રારંભ થઈ શકતો નથી.

તત્ત્વનિર્ણયના અભાવમાં જીવથી કાંઈ પણ સમ્યક્ થવું સંભવતું નથી. તેણે સાધેલા આચારની પરમાર્થે કાંઈ કિંમત નથી. મોહનિદ્રાની અવસ્થામાં તે સત્ય માટે જે કાંઈ પ્રયત્ન કરે છે તે સર્વ નિરર્થક જાય છે. ઘરથી દૂર ગયેલી વ્યક્તિ સ્વપ્નમાં ઘર તરફ ગમે તેટલું ચાલે તોપણ તે ઘરે ન પહોંચે! તેમ મોહનિદ્રા દૂર કર્યા વિના તે ગમે તેટલો પુરુષાર્થ કરે તોપણ તે સત્ય સુધી પહોંચી શકતો નથી. વસ્તુસ્વરૂપનું શ્રદ્ધાન ન હોવાના કારણે તેના સર્વ પ્રયાસ નિષ્ફળ જાય છે. યથાર્થ સમજણ વિના તેના સર્વ પુરુષાર્થ એળે જાય છે. આત્મતત્ત્વની ઓળખાણ ન હોવાના કારણે તેનો આત્મ-વિકાસ થતો નથી, કાર્યસિદ્ધિ થતી નથી. તેથી કાર્યસિદ્ધિ માટે સૌ પ્રથમ આત્મતત્ત્વની ઓળખાણ કરવી આવશ્યક છે.

શ્રીગુરુના બોધ દ્વારા યથાર્થ તત્ત્વનિર્ણય થાય છે ત્યારે મોક્ષમાર્ગે પ્રયાણ શરૂ થાય છે. નિર્ણય વગર પુરુષાર્થની સાચી દિશા ખૂલતી નથી. નિર્ણય એ ધર્મની નક્કર ભૂમિકા છે. વિચારપૂર્વકનો નિર્ણય આત્માનુભવનું - સમ્યગ્દર્શનનું કારણ થાય છે. જે સાધક છ પદને સેવે છે તે સમ્યક્ત્વને સેવે છે, કારણ કે સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિમાં છ પદનો બોધ મૂળભૂત છે. જે કોઈ મધ્યસ્થ થઈને આ છ પદનો વિચાર કરે છે તેને તે પદોનું અંતર્ભૂત શાશ્વત સત્ય સમજાતું જાય છે, તેના અંતરમાં વસ્તુસ્વરૂપનો નિઃશંક નિર્ધાર થતો જાય છે અને તેના હૃદયમાં વિવેકજ્ઞાનની જયોતિ જાગૃત થતી જાય છે. છ પદના યથાર્થ બોધ દ્વારા સુવિચારણાની શ્રેણીએ ચડતાં તેને પોતાના આત્માના સાચા વ- 'શ્રીમદ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૪૧ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, પ૧)

સ્વરૂપનું યથાર્થ ભાન પ્રગટે છે. આવો સાધક ક્રમે કરીને મોક્ષદશાને પ્રાપ્ત થાય છે. શ્રીમદ્ છ પદના પત્રમાં છ પદનો બોધ આપ્યા પછી પ્રકાશે છે –

'એ છ પદનો વિવેક જીવને સ્વસ્વરૂપ સમજવાને અર્થે કહ્યો છે. અનાદિ સ્વપ્નદશાને લીધે ઉત્પન્ન થયેલો એવો જીવનો અહંભાવ, મમત્વભાવ તે નિવૃત્ત થવાને અર્થે આ છ પદની જ્ઞાનીપુરુષોએ દેશના પ્રકાશી છે. તે સ્વપ્નદશાથી રહિત માત્ર પોતાનું સ્વરૂપ છે, એમ જો જીવ પરિણામ કરે, તો સહજ માત્રમાં તે જાગૃત થઇ સમ્યક્દર્શનને પ્રાપ્ત થાય; સમ્યક્દર્શનને પ્રાપ્ત થઇ સ્વસ્વભાવરૂપ મોક્ષને પામે.'

અહીં એ પ્રશ્ન થાય કે સમ્યગ્દર્શન તો તિર્યંચને પણ હોય છે, તો શું દેડકાં વગેરે તિર્યંચને પણ છ પદની સમજણ હોય? તેનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે –

સમ્યગ્દેષ્ટિ તિર્યંચને પણ છ પદનાં શ્રદ્ધા-જ્ઞાન હોય છે. શબ્દોથી ભલે તેમને આ વાત ન આવડે, પણ તેમને છ પદનું ભાવભાસન અવશ્ય હોય છે. તત્ત્વનું જ્ઞાન કાંઈ શબ્દની અપેક્ષા રાખતું નથી. સમ્યગ્દેષ્ટિ તિર્યંચ પણ યથાર્થ તત્ત્વશ્રદ્ધા ધરાવે છે. જીવ-અજીવની વિષરીત માન્યતા તેમને હોતી નથી. તેમને એવી પ્રતીતિ હોય છે કે 'આ જે આનંદનું વેદન છે, તે આનંદસ્વરૂપ જ હું છું.' તેઓ શરીરથી પોતાને સર્વથા ભિન્ન જાણે-માને છે. આમ, જીવ અને અજીવનું ભાવભાસનરૂપ જ્ઞાન તેમને વર્તે છે. આનંદ-સ્વરૂપ આત્માનું જે વેદન થયું છે, એનાથી વિરુદ્ધ ભાવો તે આત્મા નથી એ પણ તેઓ નિઃશંકપણે જાણે-માને છે. શુભ કે અશુભ વૃત્તિ ઊઠે એ તેમને દુઃખરૂપ લાગે છે, તેથી એને તેઓ છોડવા માંગે છે, એટલે કે તેઓ આસવ તથા બંધને છોડવા માંગે છે. તેઓ આનંદના વેદનરૂપ સંવર અને નિર્જરાને સેવવા માંગે છે, અર્થાત્ તેઓ સંવર-નિર્જરા-મોક્ષને ઉપાદેય માને છે. આ રીતે હેય-ઉપાદેયનો વિવેક તેમના વેદનમાં હોય છે. તેમના વેદનમાં - ભાવમાં તત્ત્વની યથાર્થ શ્રદ્ધા હોય છે. તેઓ કાંઈ એમ નથી માનતા કે 'શરીર તે હું છું અથવા રાગ સુખરૂપ છે.' તેઓ તો શરીરથી ભિન્ન, રાગથી ભિન્ન એવા આનંદસ્વરૂપે જ પોતાને અનુભવે છે અને શ્રદ્ધે છે. તિર્યંચના દેહમાં રહેલા તે સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ અંતરમાં પોતાના અતીન્દ્રિય આનંદના ભાવને પકડીને જાણે છે કે 'આવો આનંદસ્વરૂપ હું છું અને રાગાદિ કષાયભાવ તે મારું સ્વરૂપ નથી. તેનાથી મને શાંતિ મળે એમ નથી.' આવા વેદનમાં તેમને નવ તત્ત્વનો સ્વીકાર આવી જાય છે. આ રીતે પ્રયોજનભૂત તત્ત્વોને સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ બરાબર જાણે છે, શ્રદ્ધે છે. જીવ અને અજીવની ભિન્નતા તથા સુખ-દુઃખનાં કારણોનું જ્ઞાન હોવું પ્રયોજનભૂત છે અને નવ તત્ત્વમાં એ બધું જ્ઞાન આવી જાય છે.

નવ તત્ત્વની યથાર્થ શ્રદ્ધા છ પદની શ્રદ્ધાને સિદ્ધ કરે છે અને છ પદની યથાર્થ ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૯૫ (પત્રાંક-૪૯૩, 'છ પદનો પત્ર')

શ્રદ્ધા નવ તત્ત્વની શ્રદ્ધાને સિદ્ધ કરે છે. છ પદમાં પહેલું પદ છે 'આત્મા છે' અને બીજું પદ છે 'તે નિત્ય છે'. શુદ્ધ, બુદ્ધ, જ્ઞાયક, વેદકસ્વભાવી, ચેતન, ત્રિકાળી સત્ સ્વયંભૂ, અનુત્પન્ન, અવિનાશી આત્મા તે જીવ છે અને આત્માથી ભિન્ન દેહાદિ સર્વ દ્રવ્યો, જેમાં જ્ઞાયકતા-વેદકતાનો અભાવ છે - ચૈતન્યનો અભાવ છે તે જડ છે. અજીવ છે. આમ, પ્રથમ બે પદમાં 'જીવ' અને 'અજીવ' તત્ત્વોની સિદ્ધિ થાય છે. ત્રીજું પદ 'આત્મા કર્તા છે', અર્થાત્ તે કર્મનો કર્તા છે. જીવ શુભાશુભ ભાવ વડે કર્મોને ખેંચે છે. જે સમયે ખેંચે છે તે જ સમયે બાંધે છે. બન્ને એક સમયે જ થાય છે. કર્મોને ખેંચવા તે આસવ અને આત્મા સાથે કર્મોનું બંધાવું તે બંધ. આમ, કર્તાપદમાં 'આસવ' અને 'બંધ' તત્ત્વનો સમાવેશ થાય છે. ચોથું પદ 'આત્મા ભોક્તા છે', અર્થાત્ કરેલાં શુભાશુભ કર્મના ફળને આત્મા ભોગવે છે. શુભ કર્મનું ફળ પુણ્યરૂપે ભોગવાય, અશુભ કર્મનું ફળ પાપરૂપે ભોગવાય, તેથી ભોક્તાપદથી 'પુષ્ટય' અને 'પાપ' તત્ત્વની સિદ્ધિ થાય છે. પાંચમું પદ 'મોક્ષ છે', અર્થાત્ શુભાશુભ કર્મોનું સર્વથા ટળવાપણું પણ છે. પાંચમા પદમાં 'મોક્ષ' તત્ત્વનો સમાવેશ થાય છે. છકું પદ 'મોક્ષનો ઉપાય છે'. જેનાથી તે બંધાય છે, તેનાથી વિપરીત પ્રવર્તન કરવું તે મોક્ષનો ઉપાય છે. આસવ અને બંધથી જીવ બંધાય છે. સંવર કરે તો આસવ અટકી જાય છે અને નિર્જરાના બળ વડે બંધાયેલાં કર્મો ખરી જાય છે. સર્વ કર્મથી મુક્ત થવું તે મોક્ષ છે. સંવર અને નિર્જરા જીવને કર્મથી સર્વથા મુક્ત કરે છે. આમ, છકા પદથી 'સંવર' અને 'નિર્જરા' તત્ત્વની સિદ્ધિ થાય છે.

> આત્મા છે, નિત્ય છે – જીવ, અજીવ કર્તા છે – આસવ, બંધ ભોક્તા છે – પુષ્ય, પાપ મોક્ષ છે – મોક્ષ મોક્ષનો ઉપાય છે – સંવર, નિર્જરા

તિર્યંય દેહધારી એવા સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને છ પદનું - નવ તત્ત્વનું શબ્દજ્ઞાન નહીં હોવા છતાં તેનું ભાવભાસનરૂપ જ્ઞાન અવશ્ય હોય છે. તેમને છ પદ - નવ તત્ત્વના નામની ખબર ન હોય, પણ સ્વરૂપની સ્પર્શનાના કારણે તેની પ્રતીતિ અવશ્ય હોય છે. વેદનમાં તેમને છ પદ - નવ તત્ત્વનો સ્વીકાર થયો હોય છે. તેમને વસ્તુસ્વરૂપનું યથાર્થ શ્રદ્ધાન હોય છે. ધર્મ માટે વસ્તુસ્વરૂપનું શ્રદ્ધાન અત્યંત અગત્યનું છે. શ્રી વીતરાગદેવે કહેલી પદાર્થની વાસ્તવિક વ્યવસ્થા જાણ્યા વગર ધર્મ થતો નથી, તેથી જ શ્રીગુરુએ પ્રસ્તુત ગાથામાં છ પદની સર્વાંગતામાં મોક્ષમાર્ગ છે એમ નિર્ધાર કરાવ્યો છે. આ ગાથા વિષે ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા અભિપ્રાય દર્શાવે છે –

'આ સૂત્રમાં સાદામાં સાદા શબ્દોમાં સદ્દગુરુ ભગવાને કેવી અર્થગૌરવભરી તત્ત્વવાર્તા ભરી દીધી છે? "હે શિષ્ય" "તેં" એમ વાત્સલ્ય ભાવભર્યા સંબોધનથી કેવો તાદાત્ય આત્મ-સંબંધ બાંધ્યો છે? 'છ પદના છ પ્રશ્નો' તેં વિચાર કરીને પૂછ્યાં, તેના પ્રત્યે સદ્દગુરુ ભગવાને કેવી પ્રસન્નતા દાખવી છે? આ છ પદના નિશ્ચયની સર્વાગતામાં જ મોક્ષમાર્ગનો - આત્મસિદ્ધિમાર્ગનો કેવો અનન્ય નિશ્ચય કરાવ્યો છે? 'એકાંત' બદલે 'અનેકાંતથી' અને 'અવિચાર' બદલે 'સુવિચારથી' કેવું મોક્ષમાર્ગનું સમ્યગ્દર્શન કરાવ્યું છે?'

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે -

'ષર્પદનાં ષર્પ્રશ્ન તેં, મન રાખી સદ્ભાવ; સરલપશે માધ્યસ્થતા, બુદ્ધિને અનુસાર. આત્માર્થે તે સમજવા, પૂછ્યાં કરી વિચાર; એવી જો છે યોગ્યતા, તે સુકૃત્યનું સાર. પુણ્યોદયથી પામ તું, આત્માદિ પટ્સ્થાન; તે પદની સર્વાંગતા, સમજી કાર્ય કલ્યાણ. પદ પંચમના સાધ્યથી, છકે સદ્વ્યવહાર; અનુસંધાન સ્વરૂપનું, મોક્ષમાર્ગ નિર્દાર.' અનુસંધાન સ્વરૂપનું, મોક્ષમાર્ગ નિર્દાર.'

* * *

૧- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', પૃ.૩૭૬

૨- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૦-૨૪૧ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૨૧-૪૨૪)

જાિલ, લેલના જેદનાં છે. કહ્યા માર્ગ એ હોે મે, સ્તાર્મ લે ઝક્લા લહે. ઓમાં જેદ ન કો મે. ભૂમિકા ગાથા ૧૦૬માં કહ્યું કે વિચારપૂર્વક પૂછાયેલા છ પદ વિષેના છ પ્રશ્નોના ઉત્તર સંપૂર્ણપજ્ઞે સ્વીકારવામાં જ મોક્ષમાર્ગ છે, અર્થાત્ છએ પદને સંપૂર્ણપજ્ઞે સમજી-વિચારીને જે સ્વીકારે છે તે જ સાચો મોક્ષમાર્ગ પામે છે.

આમ, મોક્ષપ્રાપ્તિની તીવ્ર ઉત્કંઠાવાળા મુમુક્ષુને મોક્ષપ્રાપ્તિનો યથાર્થ ઉપાય બતાવી, હવે ગાથા ૯૪માં 'કઇ જાતિમાં મોક્ષ છે, કચા વેષમાં મોક્ષ' એવી મોક્ષના ઉપાય સંબંધી જે છેલ્લી શંકા શિષ્યે કરી હતી, તેનું સમાધાન આપતાં શ્રીગુરુ કહે છે –

ાથા 'જાતિ, વેષનો ભેદ નહિ, કહ્યો માર્ગ જો હોય; સાધે તે મુક્તિ લહે, એમાં ભેદ ન કોય.' (૧૦૭)

જે મોક્ષનો માર્ગ કહ્યો તે હોય તો ગમે તે જાતિ કે વેષથી મોક્ષ થાય, એમાં કંઇ ભેદ નથી. જે સાધે તે મુક્તિપદ પામે; અને તે મોક્ષમાં પણ બીજા કશા પ્રકારનો ઊંચનીચત્વાદિ ભેદ નથી, અથવા આ વચન કહ્યાં તેમાં બીજો કંઇ ભેદ એટલે ફેર નથી. (૧૦૭)

ભાવાર્થ તે મોક્ષમાર્ગ છે. ત્રણે કાળમાં મોક્ષમાર્ગ એક જ પ્રકારે છે. સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-યારિત્રનું એકત્વરૂપ પરિણમન એ જ મોક્ષમાર્ગ છે. શુદ્ધાત્માનું ભાન થવું તે સમ્યગ્જ્ઞાન, તેની પ્રતીતિ થવી તે સમ્યગ્દર્શન અને તેમાં રમણતા થવી તે સમ્યક્યારિત્ર. આ રત્નત્રયરૂપ મોક્ષમાર્ગની આરાધના જે જીવ કરશે તે અવશ્ય અવ્યાબાધ સુખસ્વરૂપ એવા મોક્ષને પામશે. જે જીવ સકલ મોહને હણી, પૂર્ણ વીતરાગદશા પ્રાપ્ત કરે છે તે મોક્ષને સાધે છે. શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપને પામ્યા છે એવા જ્ઞાનીપુરુષોએ પ્રતિપાદિત કરેલાં છ પદ ઉપર સર્વાંગતાએ વિચાર કરી, તેમાં નિઃશંક થઈ જે કોઈ ભવ્ય જીવ દર્શન-મોહને હણે છે તથા શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપમાં એકાગ્ર થઈ ચારિત્રમોહને હણે છે, તે જીવ ગમે તે જાતિનો હોય કે ગમે તે વેષમાં હોય, તે અવશ્ય મોક્ષને સાધે છે.

ગાથા ૯૭ થી ૧૦૪ સુધીમાં મોક્ષનો જે માર્ગ કહ્યો છે, તેના આરાધનમાં સ્ત્રી-પુરુષ કે બાહ્યણાદિ જાતિનો અથવા બાહ્ય વેષનો કોઈ ભેદ હોતો નથી, અર્થાત્ પુરુષજાતિ કે બાહ્યણજાતિમાં અથવા અમુક પ્રકારના વેષથી જ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે એવો કોઈ નિયમ નથી. પરમાર્થમાર્ગમાં શરીરાશ્રિત જાતિ કે સાંપ્રદાયિક વેષને

કોઈ સ્થાન નથી. પરમાર્થમાર્ગમાં તો વીતરાગભાવની જ મુખ્યતા છે. જ્ઞાનાનંદરૂપ આત્મામાં રાગરહિતપણે ટકી રહેવાની સાધના એ જ વીતરાગમાર્ગ છે. વીતરાગદશાવાન આત્માઓ જ મોક્ષે જઈ શકે છે. જે જીવ શુદ્ધ ભાવ પ્રગટ કરે છે તે મુક્તિને મેળવે છે, પછી તે ગમે તે જાતિ કે વેષમાં હોય. જાતિ કે વેષના આગ્રહને વળગી રહેવું એ મોક્ષમાર્ગની યથાર્થ સમજણનો અભાવ દર્શાવે છે. મોક્ષમાર્ગની યથાર્થ સમજણ આવતાં જાતિ તથા વેષ સંબંધીના વિકલ્પો વિલીન થઈ જાય છે. શ્રીગુરુએ આ ગાથામાં ભલામણ કરી છે કે ગમે તે જાતિમાં કે વેષમાં વીતરાગી પુરુષાર્થ પ્રગટતાં મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે, તેથી જાતિ-વેષનું આંધળું મમત્વ છોડી વીતરાગતા પ્રગટાવવા પ્રયત્ન-શીલ થવું ઘટે છે.

વિશેષાર્થ ત્રણે કાળમાં પરમાર્થ મોક્ષમાર્ગ એક જ છે, બે નથી. જેવો આત્માનો સ્વભાવ છે તેવો જ જાણવો, તેવો જ માનવો અને તેમાં જ તન્મય બની પરિણમી જવું તે જ વાસ્તવિક મોક્ષમાર્ગ છે. પરપદાર્થોથી ત્રિકાળ જુદા એવા નિજાત્માની અટલ પ્રતીતિ તે સમ્યગ્દર્શન, પરવસ્તુઓથી આત્માને જુદો જાણવો તે સમ્યગ્જ્ઞાન તથા પરદ્રવ્યોનું આલંબન છોડીને આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિર થવું તે સમ્યક્ચારિત્ર છે. મમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્ર કોઈ સંયોગોના અવલંબનથી પ્રગટ થતાં નથી, પણ ત્રિકાળ શુદ્ધ નિજપરમાત્મતત્ત્વના અવલંબનથી જ પ્રગટ થાય છે. તેથી 'અનાદિ કાળથી વૈભાવિક પરિણમનમાં બધું એકમેક થઈ ગયું છે, તેમાંથી પરદ્રવ્ય અને પરભાવ તે હું નથી, તેમાં હું નથી, મારી ચૈતન્યચીજમાં તે નથી, હું માત્ર જ્ઞાનસ્વરૂપ જ છું, એમ પોતાના જ્ઞાયકસ્વરૂપને જાણી, માની, તેમાં જ સ્થિર થવું ઘટે છે. જે જીવ આ રત્નત્રયની આરાધના કરે છે, તે અનાદિ કાળથી અપ્રાપ્ય એવા અખંડ આનંદરૂપ મોક્ષપદને પ્રાપ્ત કરે છે.

મોક્ષપ્રાપ્તિના ઇચ્છુક જીવે પોતાના અંતરમાં દઢ કરવું જોઈએ કે 'જેમ આત્માનું મોક્ષરૂપી કાર્ય આત્માથી જુદું નથી, તેમ મોક્ષનું સાધન પણ આત્માથી જુદું નથી. મારા મોક્ષનું સાધન પણ આત્માથી જુદું નથી. મારા મોક્ષનું સાધન મારામાં જ છે. મારા જ્ઞાનને જેટલું અંતર્મુખ કરું તેટલું જ મોક્ષનું સાધન છે.' આવા સમ્યક્ નિર્ણયના બળ વડે અંતર્મુખ પરિણમન થાય છે. સ્વભાવના મહિમા વડે જીવ સ્વદ્રવ્યમાં જેટલી એકાગ્રતા કરે તેટલી શુદ્ધતા પ્રગટે છે. શુદ્ધ દશાનું પહેલું પગથિયું શુદ્ધ સ્વભાવની પ્રતીતિ છે. સમ્યક્ પ્રતીતિપૂર્વક પુરુષાર્થ કરતાં ક્રમે ક્રમે સ્થિરતા વધે છે. અંતે પૂર્ણ સ્થિરતા વડે પૂર્ણ શુદ્ધતા પ્રગટ થતાં મુક્ત થવાય છે અને

આપરૂપમેં લીન રહે થિર, સમ્યક્ચારિત સોઈ;'

૧- જુઓ : પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૩, કડી ૨ 'પરદ્રવ્યનતેં ભિન્ન આપમેં ટુચિ, સમ્ચક્ત્વ ભલા હૈ; આપરૂપકો જાનપનોં સો, સમ્ચગ્જ્ઞાન કલા હૈ.

સિદ્ધદશામાં અક્ષય, અનંત આત્મસુખનો અનુભવ થાય છે.

આમ, મોક્ષ આત્મામાં છે, મોક્ષનો માર્ગ આત્મામાં છે અને મોક્ષનું સાધન પણ આત્મામાં જ છે. પોતાના આત્મામાં જ પોતાનો ધર્મ છે, પોતે જ આત્મધર્મનો કર્તા છે, આત્મધર્મમાં પરિણમવું એ જ પોતાનું કાર્ય છે. આત્મા પોતે જ, પોતાને, પોતા વડે, પોતાને માટે, પોતાનામાંથી, પોતાનામાં, પોતાનું કાર્ય સિદ્ધ કરવામાં સમર્થ છે. ભેદજ્ઞાનરૂપી છીણી વડે પોતાના આત્માને શરીરાદિ નોકર્મથી, જ્ઞાનાવરણીયાદિ દ્રવ્યકર્મથી અને રાગ-દ્રેષાદિ ભાવકર્મથી ભિન્ન કરીને; પોતાના આત્મામાં, આત્મા માટે, આત્મા વડે, આત્માને સ્વયં જાણે છે અને તેમાં જ ઠરે છે ત્યારે તેને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. આત્માને પરથી ભિન્નરૂપે ઓળખી, તેમાં જ એકાગ્ર થઈ જેઓ રાગ-દ્રેષાદિ ભાવોનો નાશ કરે છે તેમને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. મોક્ષનો આધાર પોતાનો આત્મા જ છે. મોક્ષ આત્માશ્રિત છે પરાશ્રિત નહીં. મોક્ષનો ઉપાય દેહાશ્રિત નથી. તેથી જ શ્રીમદ્દ્ કહે છે –

'પંદર ભેદે સિદ્ધ કહ્યા તેનું કારણ રાગ, દ્વેષ અને અજ્ઞાન જેના ગયા તેનું ગમે તે વેષે, ગમે તે જગોએ, ગમે તે લિંગે કલ્યાણ થાય તે છે.'^૧

શાસ્ત્રમાં બતાવેલ સિદ્ધના ૧૫ પ્રકાર આ પ્રમાણે છે^ર –

- (૧) જિનસિદ્ધ તીર્થંકરપદવી પામીને જે મોક્ષે જાય તે જિનસિદ્ધ. ઉદાહરણ શ્રી ઋષભદેવાદિ અરિહંત પરમાત્મા.
- (૨) અજિનસિદ્ધ તીર્થંકરપદવી પામ્યા વિના સામાન્ય કેવળી થઈને જે મોક્ષે જાય તે અજિનસિદ્ધ. ઉદાહરણ - શ્રી જંબુસ્વામી આદિ સામાન્ય કેવળી.
- (3) તીર્થસિદ્ધ શ્રી તીર્થંકર ભગવંતને કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થયા પછી દેશના અર્થે તરત મળતી પહેલી પર્ષદામાં શ્રી તીર્થંકર ભગવંત ગણધરની તથા સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકારૂપ ચતુર્વિધ સંઘની સ્થાપના કરે છે, તે શ્રી ગણધર તથા ચતુર્વિધ સંઘ તીર્થ કહેવાય છે. આ તીર્થની સ્થાપના થયા પછી એ તીર્થના પ્રવર્તન દરમ્યાન જે ૧- 'શ્રીમદ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૨૯ (ઉપદેશછાયા-૧૩)

આ પંદર ભેદોની ગણતરીનો ઉલ્લેખ 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છઠ્ઠી આવૃત્તિ, પૃ.૭૬૬, વ્યાખ્યાનસાર-રમાં જોવા મળે છે.

ર- જુઓ : 'શ્રી નવતત્ત્વ પ્રકરણ', ગાથા પપ

'जिण अजिण तित्थऽतित्था, गिहि अन्न सिलंग थी नर नपुंसा । पत्तेय सयंबुद्धा, बुद्धबोहिय इक्कणिक्का य ।।'

(નોંધ ઃ પંદર ભેદે સિદ્ધની માન્યતા શ્વેતાંબર આશ્નાય અનુસાર છે. દિગંબર આશ્નાયમાં બધા ભેદોનો સ્વીકાર નથી.) જીવ મોક્ષે જાય તે તીર્થસિદ્ધ. ઉદાહરણ - શ્રી પુંડરીક સ્વામી આદિ.

- (૪) અતીર્થસિદ્ધ આગળ કહ્યા પ્રમાણેની તીર્થસ્થાપના થયા પહેલાં જે મોક્ષે જાય તે અતીર્થસિદ્ધ. ઉદાહરણ - મરુદેવી માતા આદિ.
- (૫) ગૃહસ્થલિંગ સિદ્ધ ગૃહસ્થના વેષમાં જે મોક્ષે જાય તે ગૃહસ્થલિંગ સિદ્ધ. ઉદાહરણ - ભરત મહારાજા આદિ.
- (૬) અન્યલિંગ સિદ્ધ અન્ય દર્શનીઓના સાધુવેષમાં એટલે તાપસ, પરિવાજક આદિ વેષમાં રહ્યા છતાં જે મોક્ષે જાય તે અન્યલિંગ સિદ્ધ. ઉદાહરણ - વલ્કલચીરી આદિ.
- (૭) સ્વલિંગ સિદ્ધ શ્રી જિનેશ્વર ભગવંતે જે સાધુવેષ કહ્યો છે તે સ્વલિંગ કહેવાય, તેવા સાધુવેષમાં મોક્ષે જાય તે સ્વલિંગ સિદ્ધ. ઉદાહરણ - સ્થૂલિભદ્ર આદિ જૈન મુનિઓ.
- (૮) સ્ત્રીલિંગ સિદ્ધ સ્ત્રીઓ મોક્ષે જાય તે સ્ત્રીલિંગ સિદ્ધ. ઉદાહરણ ચંદનબાળા આદિ.
- (૯) પુરુષલિંગ સિદ્ધ પુરુષો મોક્ષે જાય તે પુરુષલિંગ સિદ્ધ. ઉદાહરણ પ્રસન્નચંદ્ર રાજર્ષિ, ઈલાચીકુમાર આદિ.
- (૧૦) નપુંસકલિંગ સિદ્ધ કૃત્રિમ નપુંસકો મોક્ષે જાય તે નપુંસકલિંગ સિદ્ધ. ઉદાહરણ - ગાંગેય મુનિ આદિ.
- (૧૧) પ્રત્યેકબુદ્ધ સિદ્ધ સંધ્યાના પલટાતા ક્ષણિક રંગ આદિ કોઈક વસ્તુ જોવામાત્રના નિમિત્તથી વૈરાગ્ય પામી મોક્ષે જાય તે પ્રત્યેકબુદ્ધ સિદ્ધ. ઉદાહરણ - રાજર્ષિ કરકંડુ આદિ.
- (૧૨) સ્વયંબુદ્ધ સિદ્ધ સંધ્યારંગ આદિ નિમિત્ત વિના તથા ગુરુ આદિના ઉપદેશ વિના પોતાની જાતે વૈરાગ્ય પામીને જે મોક્ષે જાય તે સ્વયંબુદ્ધ સિદ્ધ. ઉદાહરણ - કપિલ કેવળી આદિ.
- (૧૩) બુદ્ધબોધિત સિદ્ધ બુદ્ધ(ગુરુ)ના ઉપદેશથી બોધ પામીને જે મોક્ષે જાય તે બુદ્ધબોધિત સિદ્ધ. ઉદાહરણ - શ્રી ગજસુકુમાર આદિ.
- (૧૪) એકસિદ્ધ એક સમયમાં એક જ જીવ મોક્ષે જાય તે એકસિદ્ધ. ઉદાહરણ શ્રી મહાવીરસ્વામી ભગવાન આદિ.
- (૧૫) અનેકસિદ્ધ એક સમયમાં એકસાથે અનેક જીવ મોક્ષે જાય તે અનેકસિદ્ધ. જઘન્યથી એક સમયમાં એક જીવ મોક્ષે જાય અને ઉત્કૃષ્ટથી એક સમયમાં ૧૦૮ જીવ મોક્ષે જાય. ઉદાહરણ - શ્રી ઋષભદેવસ્વામી તેમના પુત્રો વગેરે એકસાથે મોક્ષે ગયા હતા.

ઉપર્યુક્ત પ્રકારો ઉપરથી ફલિત થાય છે કે જાતિ-વેષ મોક્ષપ્રાપ્તિમાં બાધક નથી. સ્વાત્મબોધરૂપ સમ્યગ્જ્ઞાન, સ્વાત્મપ્રતીતિરૂપ સમ્યગ્દર્શન અને સ્વાત્મરમણતારૂપ સમ્યક્ ચારિત્રની એકતારૂપ રત્નત્રયની આરાધનાથી મોક્ષપદ અચૂક પ્રાપ્ત થાય છે. એમાં કોઈ પણ પ્રકારનો ભેદ નથી. આ તથ્યને આ ગાથાના સંદર્ભમાં વિચારીએ.

'જાતિ, વેષનો ભેદ નહિ'

(૧) 'જાતિ'

જાતિવ્યવસ્થા એ સામાજિક વ્યવસ્થા છે. બાહ્મણ, ક્ષત્રિય, વૈશ્ય અને શૂદ્ર જાતિ એ સમાજને સુઘટિત રાખવા માટે કરવામાં આવેલી વ્યવસ્થા છે. માનવરૂપે જન્મ લેનારને આમાંની કોઈ ને કોઈ જાતિથી ઓળખાવું પડે છે. જે જાતિમાં જીવનો જન્મ થયો હોય તે જાતિથી તે ઓળખાય છે. જાતિ શરીરાશ્રિત છે, તેથી જાતિની ઉત્તમતાથી આત્માની ઉત્તમતા સિદ્ધ થતી નથી. અમુક જાતિમાં અમુક આત્મિક ગુણો હોય જ એવો કોઈ નિયમ નથી, માટે જાતિને મોક્ષમાર્ગમાં કારણભૂત ગણવી યોગ્ય નથી. લૌકિક ધર્મોમાં બાહ્મણ જાતિને મુખ્ય ગણી છે અને તેનાથી લૌકિક પ્રભાવ સચવાય છે, પણ લોકોત્તર મોક્ષમાર્ગ તો ભાવ અનુસાર પ્રવર્તતો હોવાથી તેમાં દેહ, જાતિ વગેરેની મુખ્યતા નથી.

મોક્ષમાર્ગને જાતિવ્યવસ્થા સાથે સંબંધ નથી. ગમે તેટલી ઉત્તમ ગણાતી જાતિમાં જન્મ થયો હોય, પરંતુ નિજસ્વભાવનું ભાન ન કરે તો તેનો મોક્ષ થતો નથી; અને ગમે તેટલી નીચી ગણાતી જાતિમાં જન્મ થયો હોય, પરંતુ નિજસ્વભાવનું ભાન કરે તો તેનો મોક્ષ અટકતો નથી. જાતિ મોક્ષમાર્ગમાં સાધક કે બાધક થઈ શકતી નથી. અમુક જાતિ હોય તો જ મોક્ષ થાય એવું છે જ નહીં. બહારમાં કોઈ પણ જાતિનો સંયોગ થયો હોય, પણ જો અંતરસ્વભાવમાં એકાગ્ર થાય તો મોક્ષ અવશ્ય થાય છે. આત્માના બેહદ સામર્થ્યરૂપ સ્વભાવભાવને રોકવા જગતની કોઈ જાતિ સમર્થ નથી. મોક્ષપુરુપાર્થમાં જાતિ ક્યારે પણ નુકસાનકર્તા નીવડી શકતી નથી. કોઈ પણ જાતિના સંયોગ વખતે આત્માનું ભાન કરી શકાય છે. જેના અંતરનાં પડળ ઊઘડી જાય, એ પછી સામાજિક દેષ્ટિએ હલકી ગણાતી જાતિમાં હોય તોપણ તે જીવ આત્માને સાધી લે છે. આચાર્યશ્રી સમંતભદ્રસૂરિજીએ 'રત્નકરંડ શ્રાવકાચાર'માં સમ્યગ્દર્શનસંપન્ન ચંડાલને દેવ સમાન કહ્યો છે. ભસ્મમાં છુપાયેલ અગ્નિની ચિનગારીની જેમ તે આત્મા ચાંડાલદેહમાં રહેલો હોવા છતાં સમ્યગ્દર્શનના પ્રતાપથી પવિત્ર થઈ ગયો છે, તેથી તે દેવ છે. ^૧

અજ્ઞાની જીવે પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવનો મહિમા જાણ્યો ન હોવાથી તે જાતિથી

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી સમંતભદ્રસૂરિજીકૃત, 'રત્નકરંડ શ્રાવકાચાર', શ્લોક ૨૮ 'सम्यग्दर्शनसम्पन्नामपि मातङ्गदेहजम् ।

देवा देवं विदुर्भरमगृद्धांगारान्तरौजसम् ।।'

મહિમા માને છે, જાતિને મોક્ષમાં કારણભૂત માને છે. તેને પોતાનો શુદ્ધ સ્વભાવ ઉપાદેયરૂપ ભાસતો નથી. તેને દેહની જ મુખ્યતા રહેતી હોવાથી મોક્ષ માટે દેહને આશ્રિત એવી જાતિનો તેને આગ્રહ રહે છે. આચાર્યશ્રી પૂજ્યપાદસ્વામીએ 'સમાધિતંત્ર'માં પ્રકાશ્યું છે કે 'જાતિ શરીરને આશ્રિત જોવામાં આવે છે અને દેહ જ આત્માનો ભવ (સંસાર) છે, તેથી જેમને મુક્તિની પ્રાપ્તિ માટે જાતિનો હઠાગ્રહ છે તેઓ સંસારથી મુક્ત થતા નથી.' 1

દેહાધ્યાસના કારણે જીવને 'હું દેહ છું' એવી ઊંધી માન્યતા ગાઢ થાય છે, જેમાંથી બીજી અનેક ઊંધી માન્યતાઓ ઉત્પન્ન થાય છે, પુષ્ટ થાય છે. 'હું ક્ષત્રિય છું', 'હું બ્રાહ્મણ છું' વગેરે અનેક ઊંધી માન્યતાઓ દઢ થતી જાય છે અને તેના આધારે પ્રવર્તન પણ ખોટું થતું રહે છે. આત્મસ્વરૂપની સમજણ અને મહિમાના અભાવે, અજ્ઞાની જીવ ધર્મને પણ દેહાશ્રિત માનવા લાગે છે. આત્માની મુખ્યતા ન હોવાથી દેહાશ્રિત જાતિને મોક્ષમાં કારણભૂત ગણી જાતિનો આગ્રહ કરવામાં ધાર્મિકતા માને છે અને તેમાં જ રત રહે છે.

જો રથમાં એક ઘોડો અને એક ગધેડો જોડવામાં આવે તો તે રથ ચાલી શકતો નથી. એવી જ રીતે કોઈ ઇચ્છે કે 'મને મોક્ષ મળે', 'શાંતિ મળે', 'સમાધિસુખ મળે'; અને સાથે તે જાતિનો આગ્રહ કરે તો તેને મોક્ષ કઈ રીતે મળે? મોક્ષ માટે તો દેહનું મમત્વ છોડવું જોઈએ, તેને બદલે તે તો દેહાશ્રિત જાતિનો આગ્રહ કરી દેહનું મમત્વ વધારે છે. જેની દષ્ટિ જાતિ ઉપર છે અને જે જાતિનો આગ્રહ કરે છે તે સ્વભાવની દષ્ટિ કરી શકતો નથી. જ્યાં સુધી સાચી માન્યતાનો સ્વીકાર કરે નહીં, જાતિથી ભિન્ન નિજ અસંયોગી સ્વભાવનો આદર કરે નહીં; ત્યાં સુધી સમ્યગ્દર્શન પામવાની યોગ્યતા પ્રાપ્ત થઈ શકતી નથી. આગ્રહના કારણે તેનું જીવન તેના જ હાથે ગાઢ અંધકારમાં ડૂબે છે. ત્રિકાળી દ્રવ્યસ્વભાવ ઉપર દષ્ટિ તે જ સુખનો માર્ગ છે. મુમુક્ષુ જીવે પોતાના શુદ્ધ આત્મસ્વભાવને જાતિ આદિ સર્વથી જુદો જાણી, તેનું અનુસંધાન કરવું જોઈએ.

જે જીવ પોતાની ચૈતન્યજાતિને ઓળખે છે તથા દેહાશ્રિત જાતિ અને કુળના વિકલ્પો છોડીને પોતાના ચૈતન્યસ્વરૂપની આરાધના કરે છે, તે જીવ અવશ્ય મોક્ષને પામે છે. શરીર અને આત્માનું ભેદજ્ઞાન પ્રગટાવનાર જીવ ગમે તે જાતિમાં હોય છતાં મોક્ષે જાય છે, પછી તે શ્રી ગૌતમસ્વામી જેવા બાહ્મણ હોય, શ્રી અભયકુમાર જેવા

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી પૂજ્યપાદસ્વામીકૃત, 'સમાધિતંત્ર', શ્લોક ૮૮

^{&#}x27;जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एवात्मनो भवः । न मुच्यन्ते भवात्तरमात्ते ये जातिकृताग्रहाः ।।'

ક્ષત્રિય હોય, શ્રી જંબુકુમાર જેવા વૈશ્ય હોય કે શ્રી હરિકેશી જેવા ચાંડાલ હોય.

આમ, દેહની અપેક્ષાએ જાતિના બાહ્મણ આદિ ચાર ભેદ પડે છે, પરંતુ આત્માની અપેક્ષાએ તો સર્વ જીવ એક ચૈતન્યજાતિના જ છે અને તે ચૈતન્યજાતિને ઓળખવાથી જ મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે. પરમાર્થથી તો બહ્ન (આત્મા) જાણે તે બાહ્મણ છે, રાગાદિ આંતર શત્રુઓનો નાશ કરે તે ક્ષત્રિય છે, આત્મહાનિ ત્યજી આત્મલાભનો વ્યાપાર કરે તે વૈશ્ય છે અને અંતરમલનું શોધન કરે તે શૂદ્ર છે.

આ જ પ્રમાણે સ્ત્રી, પુરુષ, નપુંસક વગેરે ભેદો પણ શરીરાશ્રિત છે અને મોક્ષ તો આત્માને આશ્રિત હોવાથી સ્ત્રી-પુરુષ-નપુંસક જાતિનો આગ્રહ રાખવા યોગ્ય નથી. યથાર્થ આરાધના થાય તો સ્ત્રી-પુરુષ-નપુંસક ગમે તે જાતિમાં મોક્ષ સંભવે છે, કેટલાક આ તથ્યનો સ્વીકાર નથી કરતા. તેઓ સ્ત્રી તથા નપુંસકની મુક્તિનો નિષેધ કરે છે. તેઓ માને છે કે સ્ત્રીજાતિમાં કે નપુંસકજાતિમાં મોક્ષ ન થાય, ઉત્તમ પુરુષજાતિમાં જ મોક્ષ થાય. પરંતુ જાતિ ઉપર દષ્ટિ એ તો દેહ ઉપર દષ્ટિ છે. દેહાશ્રિત જાતિને મોક્ષ-પ્રાપ્તિ સાથે જોડનાર તો દેહદષ્ટિવાળો છે. તેને સ્વસ્વરૂપનો મહિમા નથી. આત્માર્થીની દષ્ટિ શરીર ઉપર હોતી નથી. તેઓ શરીરથી ભિન્ન પોતાના અસ્તિત્વને જાણે છે, તેથી તેઓ શરીરાશ્રિત જાતિનો આગ્રહ કરતા નથી. સ્ત્રી-નપુંસકનો મોક્ષ ન થાય એવાં કથનો અનેક જૈન ગ્રંથોમાં મળે છે. તેનો પરમાર્થ સમજાવતાં શ્રી સહજાનંદઘનજી (પૂ. ભદ્રમુનિ) લખે છે કે —

'આધ્યાત્મિક ન્યાયમાં બહિરાતમા નપુંસક છે, અંતરાતમા સ્ત્રી, અને પરમાતમા પરમ પુરુષ છે. અંતરાતમાની સાવરણ છદ્મસ્થ અવસ્થા પોતાના અસલી રૂપને છુપાવીને રાખે છે. અતઃસકપટ (ક = ખરાબ, પટ = પડદો) છે તે સ્ત્રીસ્વભાવ છે. તેવી અવસ્થામાં આયુ પૂર્ણ જો થાય તો તેને મોક્ષ કઈ રીતે શક્ય છે? માટે તેની ના કહી. તો પછી નપુંસકની તો વાત જ શી? માટે પરમ પુરુષનો જ મોક્ષ સંભાવ્ય છે.'

આમ, મોક્ષનું સાચું સાધન તો રત્નત્રયરૂપ ધર્મ છે, દેહાશ્રિત એવી બાહ્મણાદિ કે પુરુષાદિ જાતિના આગ્રહથી મોક્ષ નથી. દેહાશ્રિત જાતિ એ કંઈ મોક્ષનું કારણ નથી, પણ દેહદષ્ટિ છોડીને સમ્યક્ શ્રદ્ધા, જ્ઞાન, ચારિત્રને જે આરાધે છે તે દેહાતીત મુક્તિને પામે છે. જેઓ મુક્તિ માટે જાતિનો આગ્રહ રાખે છે, જાતિને મુક્તિનું કારણ માને છે, તેઓ સંસારથી છૂટતા નથી. જાતિનો આગ્રહ મોક્ષનું કારણ નથી, પણ સંસાર-પરિભ્રમણનો હેતુ છે. તેથી જીવે જાતિ સંબંધી આગ્રહ છોડીને મોક્ષની યથાર્થ આરાધના કરવી જોઈએ.

૧- શ્રી સહજાનંદઘનજી, 'પત્રસુધા', પૃ.૧૬ (પત્રાંક-૧૩)

(5) 'du'

વેષ એ બાહ્ય ચિહ્ન છે, વ્યવસ્થા જાળવવા માટે તે જરૂરી છે. તેના વડે સાંપ્રદાયિક ઓળખાશ થઈ શકે છે, જ્યારે ચારિત્ર તો આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિરતારૂપ છે. ચારિત્રમાં વેષનો ભેદ નથી. વીતરાગમાર્ગ બાહ્ય વેષને આશ્રિત નથી. સામાન્યપણે જ્યારે ધર્મની ચર્ચા-વિચારણા કરવામાં આવે છે ત્યારે ઘણું કરીને બાહ્ય વેષને જ ચારિત્ર સમજી લેવામાં આવે છે, પરંતુ ચારિત્રનો સંબંધ કોઈ એવા મહત્ત્વપૂર્ણ તત્ત્વ સાથે છે કે જે ઉપાસ્ય હોય, આશ્રય કરવા યોગ્ય હોય, જેના આશ્રયે ધર્મ પ્રગટ થાય. જે અનંત સુખ-શાંતિનો આશ્રય બની શકે તે કોઈ મહાન ચેતનતત્ત્વ જ હોઈ શકે, જડતત્ત્વ નહીં. ચારિત્રને બાહ્ય વેષ પૂરતો મર્યાદિત કરી શકાય નહીં. તેને બાહ્ય વેષ

વાસ્તવિક ધર્મ આત્માશ્રિત છે, બાહ્ય વેષને આશ્રિત નહીં. બાહ્ય વેષ જીવને નિમિત્ત-નૈમિત્તિક સંબંધે પરિણામવિશુદ્ધિ માટે સહાયકારી છે, પરંતુ બાહ્ય વેષ અને ધર્મને કારણ-કાર્ય સંબંધ નથી. બાહ્ય વેષ અહણ કરવામાત્રથી ધર્મ થઈ જતો નથી. ધર્મનો સંબંધ પરિણામવિશુદ્ધિ સાથે હોવાથી ગમે તે વેષમાં મોક્ષ થઈ શકે છે, તેથી બાહ્ય વેષનો આગ્રહ રાખવો યોગ્ય નથી. બાહ્ય વેષ સંબંધી આગ્રહ છોડીને જીવ જ્યારે સ્વરૂપમાં ઠરે છે ત્યારે જ તેની મુક્તિ થાય છે.

આત્માર્થી જીવને મોક્ષમાર્ગનો યથાર્થ નિર્ણય થયો હોવાથી તે સાંપ્રદાયિક વેષનો આગ્રહ કરતો નથી. તે જાણે છે કે બાહ્ય વેષ એ મોક્ષનું કારણ નથી. મોક્ષનું કારણ તો માત્ર સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર છે, માટે બાહ્ય વેષનો આગ્રહ છોડીને તે રત્નત્રયની ઉપાસનામાં જ તત્પર રહે છે. પરંતુ જે જીવને મોક્ષમાર્ગની સમજણ નથી, તે ધર્મને વેષ-આશ્રિત માની બેસે છે. તે વેષને મોક્ષનું કારણ માને છે. તે અંતરમાં ચૈતન્યતત્ત્વની આરાધના તો કરતો નથી અને અમુક પ્રકારનો વેષ હોય તો જ મોક્ષ થાય એમ માની તેનો આગ્રહ કરે છે. આવી દેહદષ્ટિ સંસારનું કારણ બને છે. વેષમાં આગ્રહ કરનારને દેહભાવના રહ્યા કરે છે, તેથી કરી ફરી દેહ ધારણ કરી સંસારપરિભ્રમણ કર્યા કરે છે. આ અંગે આચાર્યશ્રી પૂજ્યપાદસ્વામી 'સમાધિતંત્ર'માં લખે છે કે 'લિંગ દેહને આશ્રિત જોવામાં આવે છે. દેહ જ આત્માનો ભવ (સંસાર) છે. તેથી જેઓ લિંગના આગ્રહી છે તેઓ સંસારથી મુક્ત થતા નથી.' 1

જટા, શ્વેત વસ્ત્ર, નગ્નપણું આદિ અમુક ચિહ્ન શરીર ઉપર ધારણ કરવાં તે

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી પૂજ્યપાદસ્વામીકૃત, 'સમાધિતંત્ર', શ્લોક ૮૭

'लिङ्ग देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः । न मुच्यन्ते भवात्तरमात्ते ये लिङ्गकृताग्रहाः ।।' બાહ્ય લિંગ છે. તે સર્વ દેહાશ્રિત છે. તેથી જેને બાહ્ય લિંગની મુખ્યતા છે તે તો દેહદષ્ટિવાળા છે. દેહદષ્ટિવાળાઓની દષ્ટિ બાહ્ય લિંગ ઉપર જ હોય છે. તેઓ વેષ આદિ બાહ્ય લિંગને જ મુક્તિનું કારણ માને છે. અમુક વેષ વિના મુક્તિ થતી જ નથી એવો એકાંત અભિપ્રાય સેવી, તેઓ કદાગ્રહી બની જાય છે. તેવા જીવો મુક્તિ પામી શકતા નથી. વેષ એ ચૈતન્યવસ્તુ નથી, તેમ છતાં તેમાં જ એકાંત નિરપેક્ષપણે ધર્મ માનનાર આગ્રહી જીવોની મુક્તિ થઈ શકતી નથી. મુક્તિ તો આંતરિક લિંગથી, અર્થાત્ ભાવવિશુદ્ધિથી પમાય છે. મુક્તિનો સંબંધ કોઈ પણ બાહ્ય લિંગ સાથે નથી, તેનો સંબંધ આંતરિક લિંગ સાથે છે. બાહ્ય લિંગ જ મુક્તિનું કારણ છે એવો જેનો પક્ષ છે તથા રત્નત્રયની સાધનારૂપ ભાવલિંગ ઉપર જેનું લક્ષ નથી તે કદાપિ સંસારથી મુક્ત થઈ શકતો નથી. ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ 'અધ્યાત્મસાર'માં લખે છે કે 'ભાવલિંગ એ જ મોક્ષનું કારણ છે, કારણ કે દ્રવ્યલિંગ એ અપ્રધાન (ગૌણ) સાધન છે; તેથી તેને આત્યંતિક ઇચ્છ્યું નથી, એટલે કે અત્યંત કારણપણે ઇચ્છ્યું જ નથી; તેમજ ઐકાંતિક પણ ઇચ્છ્યું નથી, કેમ કે કોઈને તે કારણ વિના પણ થાય છે, તેથી તે વ્યભિચારી કારણ છે.' 1

જેમને ભાવલિંગની પ્રાપ્તિ થઈ હોય છે, જેઓ આત્મામાં વિશેષપણે ઠર્યા હોય છે, તેઓ પર પ્રત્યે ઉદાસીન રહે છે. તેઓ ફક્ત આત્મરમણતામાં જ મગ્ન રહે છે, તેથી તેમનું ધ્યાન બાહ્ય લિંગ ઉપર હોતું જ નથી, તેમને વેષ સંબંધી વિકલ્પ પણ રહેતા નથી. જેમનો મૂચ્છાંભાવ સંપૂર્ણ રીતે નાશ થયો હોય અથવા ઘણી મંદતાને પામ્યો હોય, તેમણે વસ્ત્ર ધારણ કરેલ હોય તોપણ તેમને અપરિગ્રહી માનવામાં કોઈ બાધ નથી. જ્યાં સુધી મુનિ ઉચ્ચ કોટિએ પહોંચ્યા ન હોય, નગ્નત્વના પરિષહ સહન કરવાની દેહની શક્તિ ન હોય, ત્યાં સુધી તેમને માટે ભગવાને એકથી ત્રણ વસ્ત્ર રાખવાની છૂટ આપેલી છે એમ 'શ્રી આચારાંગ સૂત્ર'માં જણાવ્યું છે. આ વિષે શ્રી નગીનદાસ ગિ. શેઠ 'પરમપદ પ્રાપ્તિની ભાવના'માં શ્રીમદે રચેલ 'અપૂર્વ અવસર' કાવ્યની નવમી કડીના નગ્નભાવ શબ્દની વિચારણા કરતાં લખે છે —

'ભગવાન મહાવીરના વખતમાં વિશેષે કરીને મુનિઓ નગ્ન જ રહેતા એ વાત ખરી છે. પણ તેની સાથે એ પણ ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ કે તે કાળમાં પણ જે પહેલા બીજા સંઘયણવાળા હતા તે જ નગ્ન રહી શકતા. અને આજે તો તેવું સંઘયણ છે જ નહિ. આજે તો છેલ્લું સંઘયણ છે ત્યારે છેલ્લા સંઘયણવાળા પહેલા સંઘયણવાળાનું

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૬, શ્લોક ૧૮૩

^{&#}x27;भाविलेंगं हि मोक्षांगं द्रव्यिलेंगमकारणम् । द्रव्यं नात्यन्तिकं यस्मान्नाप्यैकान्तिकमिष्यते ।।'

અનુસરણ કરી શકે નહિ તેમ જ તેમની સ્પર્ધા પણ કરી શકે નહિ એ સમજી શકાય તેવી વાત છે.'⁹

નગ્નત્વના આગ્રહી કેટલાક દિગંબર મુનિઓ પણ યથાર્થ નગ્નત્વ પાળી શકતા નથી એ વાત સંઘયણની નિર્બળતા સિદ્ધ કરે છે. જેમ કે અચેલક મુનિને જંગલમાં રહેવાનું વિધાન છે, પરંતુ વર્તમાન કાળે શરીરસંઘયણ મજબૂત નહીં હોવાથી કેટલાક મુનિઓ જંગલમાં રહી શકતા નથી, તેથી તેઓ મંદિરમાં રહે છે અને તેમ કરવા છતાં પણ ઠંડી સહન થતી નથી ત્યારે ઓરડાનાં બારી-બારણાં બંધ કરીને બેસવાનું રાખે છે. તેમ કરતાં પણ સહન ન થાય ત્યારે ઓરડાની અંદર બીજી નાની મઢૂલી બનાવવામાં આવે છે. તે મઢૂલી એટલી નાની હોય કે અંદર ફક્ત બેસી શકાય એટલી જ જગ્યા હોય; એટલે કે તે મઢૂલી વસ્ત્રાચ્છાદાન જેવું જ કામ આપે. આમ, શરીરાદિ બળ ઘટવાથી મૂળ વિધાન પ્રમાણે વર્તી શકાતું નથી તેથી આવા કૃત્રિમ ઉપાયો અજમાવવામાં આવે છે. શરીરાદિ બળની હીનતાને લક્ષમાં રાખીને જ્ઞાનીઓએ મર્યાદિત વસ્ત્રો રાખવાની છૂટ આપી છે. આ વિષે શ્રીમદ્ લખે છે –

'શરીરાદિ બળ ઘટવાથી સર્વ મનુષ્યોથી માત્ર દિગંબરવૃત્તિએ વર્તીને ચારિત્રનો નિર્વાહ ન થઇ શકે, તેથી જ્ઞાનીએ ઉપદેશેલી મર્ચાદાપૂર્વક શ્વેતાંબરપણેથી વર્તમાન કાળ જેવા કાળમાં ચારિત્રનો નિર્વાહ કરવાને અર્થે પ્રવૃત્તિ છે, તે નિષેધ કરવા ચોગ્ય નથી. તેમ જ વસ્ત્રનો આગ્રહ કરી દિગંબરવૃત્તિનો એકાંત નિષેધ કરી વસ્ત્ર મૂર્ચ્કાદિ કારણોથી ચારિત્રમાં શિથિલપણું પણ કર્તવ્ય નથી.

દિગંબર અને શ્વેતાંબરપણું દેશ, કાળ, અધિકારીયોગે ઉપકારનો હેતુ છે. એટલે જ્યાં જ્ઞાનીએ જેમ ઉપદેશ્યું તેમ પ્રવર્તતાં આત્માર્થ જ છે.'ર

લિંગ (બાહ્ય વેષ) અને વ્રતના જે ભેદો છે તે દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ આદિ પ્રમાણે હોય છે, પણ જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્રની શુદ્ધતા તે તો ત્રણે કાળે અભેદ છે. ગમે તે દેશમાં, ગમે તે કાળમાં એ જ એક અખંડ ત્રિકાળાબાધિત મોક્ષમાર્ગ છે. આ રત્નત્રયરૂપ સાધન વડે શુદ્ધ આત્મદ્રવ્યની સિદ્ધિ કરવી તે જ પરમાર્થ મોક્ષમાર્ગ છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

> 'લિંગ અને ભેદો જે વ્રતના **ટે, દ્રવ્ય દેશ કાળાદિ ભેદ,** પણ જ્ઞાનાદિની જે શુદ્ધતા રે, તે તો ત્રણે કાળે અભેદ.'³

આમ, સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રની આરાધના તે જ મોક્ષમાર્ગ છે. વીતરાગમાર્ગમાં

૧- શ્રી નગીનદાસ ગિ. શેઠ, 'પરમયદ પ્રાપ્તિની ભાવના', પૃ.૯૭

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૬૧૨ (૫ત્રાંક-૮૦૭)

૩- એજન, પૃ.પ૨૩ (આંક-૭૧૫, કડી ૪)

બાહ્ય વેષના વિકલ્પને સ્થાન નથી. તેના આગ્રહથી મોક્ષ નથી. જે જીવ કેવળ બાહ્ય વેષને જ મોક્ષનું કારણ માને છે તે મોક્ષ પામી શકતો નથી, કારણ કે વેષ દેહાશ્રિત છે અને મોક્ષ તો આત્માશ્રિત છે. જે વેષને જ મુક્તિનું કારણ સમજે છે તે કદી સંસારથી છૂટી શકતો નથી. જે વેષનો આગ્રહી છે તે સંસારનો જ આગ્રહી છે. જે વેષના આગ્રહનો ત્યાગ કરી મોક્ષની યથાર્થ આરાધના કરે છે, તેનો ગમે તે વેષે, ગમે તે લિંગે મોક્ષ થાય છે.

હવે ગૃહસ્થલિંગે અને અન્યલિંગે મોક્ષપ્રાપ્તિનું જે વિધાન કરવામાં આવે છે તેનો વિચાર કરીએ.

ગૃહસ્થલિંગ

ભાવનિર્ગંથતાને દ્રવ્યલિંગતાની સાથે - અમુક ચોક્કસ વેષભૂષા અને ક્રિયાકાંડ સાથે કોઈ એકાંતિક કે અનિવાર્ય સંબંધ નથી એમ જૈન પરંપરાનાં શાસ્ત્રો કહે છે, અર્થાત્ સમ્યક્ચારિત્ર અમુક લિંગ-ક્રિયા સાથે બંધાયેલું નથી એમ જૈન શાસ્ત્રો શાખ પૂરે છે. જો ઓઘા-મુહપત્તિ કે કમંડલ-મોરપીંછી જ વંદનીય હોત તો તેના મેરુ જેટલા ઢગલા વ્યર્થ કેમ બતાવાયા છે? આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવ 'સમયસાર' ગ્રંથમાં સમજાવે છે કે સાધુસ્વાંગ કે ગૃહસ્થસ્વાંગ એ મોક્ષમાર્ગ નથી, કેમ કે તે શરીરાશ્રિત હોવાથી પરદ્રવ્ય છે; પરંતુ દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર જ મોક્ષમાર્ગ છે, કેમ કે તે આત્માશ્રિત હોવાથી સ્વદ્રવ્ય છે. આ કારણથી હે આત્માર્થીઓ! આગાર કે અણગારની વેષભૂષાના આગ્રહો તજી પોતાના આત્માને દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપ મોક્ષમાર્ગમાં જોડો. ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ 'અધ્યાત્મસાર'માં લખે છે કે ભાવલિંગને વિષે જેઓ આસક્ત - પ્રીતિમય ચિત્તવાળા હોય છે, તેઓ સર્વ વસ્તુધર્મના સારને એટલે કે રહસ્યને જાણે છે; તેથી તેઓ સાધુના વેષમાં રહ્યા હોય કે ગૃહસ્થવાસને વિષે રહ્યા હોય તોપણ તેઓ પાપ-મળનો નાશ કરીને સિદ્ધ થાય છે - કૃતાર્થ થાય છે. '

વળી 'પંદર ભેદે સિદ્ધ' આ આગમ કથન સુપ્રસિદ્ધ છે. પંદર ભેદોમાં જ્યાં

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'સમયસાર', ગાથા ૪૧૦-૪૧૧

'ण वि एस मोक्खमग्गो पासंडीगिहिमयाणि लिंगाणि । दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ।। तम्हा जहित्तु लिंगे सागारणगारएहिं वा गहिए । दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ।।'

२- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ६, શ્લોક ૧૮૨ 'भावलिंगरता ये स्युः सर्वसारिवदो हि ते । लिंगस्था वा गृहस्था वा सिध्यन्ति धुतकल्मषाः ।।' ગૃહસ્થલિંગ પણ સ્વીકાર્યું છે, ત્યાં સ્વલિંગમાત્રનો જ એકાંતિક આગ્રહ કેમ થઈ શકે? નાટક કરતાં કરતાં, શૃંગાર સજતાં સજતાં, લગ્નના ફ્રેરા ફરતાં ફરતાં - એમ અનેક પ્રકારની બાહ્ય પ્રવૃત્તિઓ હોવા છતાં કેવળજ્ઞાન થયાનાં અનેક દષ્ટાંતો શ્વેતાંબર સાહિત્યમાં જોવા મળે છે. કેવળજ્ઞાનની ઉપલબ્ધિ થયા પછી પણ કુર્માપુત્ર છ માસ સુધી ગૃહવાસમાં રહ્યા છે, અર્થાત્ દેખીતી બાહ્ય ચર્યા ગૃહસ્થની હોવા છતાં આંતરિક સ્તરે કુર્માપુત્ર તેરમા ગુણઠાણે હતા એની શાખ શ્વેતાંબર શાસ્ત્રોમાં મળે છે.

અહીં એ સ્પષ્ટ કરવું આવશ્યક છે કે કેટલાક જીવો યોગ્ય સમજણ વિના એમ કહે છે કે 'ગૃહસ્થવેષમાં પણ મોક્ષ છે, માટે સંસાર છોડીને સાધુ બનવાથી જ મોક્ષ મળે એવો નિશ્ચય સિદ્ધાંત નથી. ઘરમાં રહ્યા છતાં મોક્ષ મળી શકે છે. મોક્ષ સાથે વેષનો સંબંધ નથી. વેષથી ધર્મ થતો નથી, તેથી સાધુવેષ અહણ કરવાની જરૂર નથી.' આ કહેવું અયોગ્ય છે, કારણ કે આવું માનનારા તો કદી મોક્ષે જઈ નહીં શકે. સાધુવેષ અહણ કરવાની ભાવના વગર ઘરમાં રહીને મોક્ષ મેળવવા ઇચ્છનાર ગૃહસ્થ-વેષવાળા મોક્ષે જાય એવું તો શાસ્ત્રમાં કશે પણ કહ્યું નથી. કદાચિત્ સાધુવેષ અહણ કરવાની ઉત્કૃષ્ટ ભાવનાવાળા ગૃહસ્થને તીવ્ર વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થતાં તેઓ કેવળજ્ઞાન પણ પામે; અને પછી જો તેમના આયુષ્યનો કાળ અલ્પ રહ્યો હોય તો તેઓ મુનિવેશ ધારણ કર્યા વિના મોક્ષે જાય અને કાળ પૂરતો હોય તો અવશ્ય મુનિવેશ ધારણ કરે એવો શાસ્ત્રપાઠ છે.

ચક્રવર્તી રાજા ભરતને મહેલના અરીસાભુવનમાં કેવળજ્ઞાન થયું હતું, આઠ આઠ સ્ત્રીઓ સાથે હસ્તમિલાપની ક્રિયા ચાલતી હતી તે વખતે લગ્નની ચોરીમાં શ્રેષ્ઠીપુત્ર ગુણસાગરને કેવળજ્ઞાન થયું હતું, રાજસિંહાસન ઉપર બેઠાં બેઠાં રાજા પૃથ્વીચંદ્રને કેવળ-જ્ઞાન થયું હતું એ વાત સંપૂર્ણ રીતે શાસ્ત્રીય છે; પરંતુ એવું તો ક્વચિત્ કદાચિત્ કોઈકને જ બને, તેથી કાંઈ એને રાજમાર્ગ ન કહેવાય. જો એ જ રાજમાર્ગ હોય તો શા માટે ભગવાન આદિનાથ વગેરે તમામ તીર્થંકરો ગૃહત્યાગનો માર્ગ સ્વીકારે છે? ત્યાગમાર્ગ એ મોક્ષનો રાજમાર્ગ છે. વાસનાયુક્ત ચિત્તને નિર્મળ બનાવવાનો રાજમાર્ગ તો વાસનાજનક સામગ્રીઓથી દૂર રહેવામાં જ છે.

બાહ્ય ત્યાગમાં ધ્યેયને પ્રાપ્ત કરવાની અનુકૂળતાઓ વિશેષ રહેલી છે. બાહ્ય ત્યાગથી વિકલ્પો મંદ કરી શકાય છે, તેની માત્રા ઘટાડી શકાય છે અને વિકલ્પને પેલે પાર જ્યાં શાંતિ છે ત્યાં પહોંચવા સમર્થ થવાય છે. આત્મવિકાસની દરેક ભૂમિકાએ જીવને બાહ્ય ત્યાગના ભાવ થાય જ છે. જો ભૂમિકાનુસાર ત્યાગના ભાવ ન થાય તો એ ભૂમિકામાં હજુ પહોંચાયું જ નથી એમ કહી શકાય. પરિગ્રહવાંછા, તૃષ્ણાદિનાં તીવ પરિણામના કારણે જીવને ત્યાગની ભાવના ઊઠી શકતી નથી, તેથી જીવે બાહ્ય ત્યાગની

આવશ્યકતા સમજવી અને સ્વીકારવી રહી. જે વ્યક્તિ સાધુવેષથી જ મોક્ષ માની તેનો આગ્રહ કરે છે તેઓ તો ભૂલ કરે જ છે, સાથે સાથે તેઓ પણ ભૂલ કરે છે કે જેઓ બાહ્ય ત્યાગની આવશ્યકતાનો સ્વીકાર નથી કરતા. જો કે જીવે એ ધ્યાન રાખવું જોઈએ કે બાહ્ય ત્યાગ કરવામાત્રથી ધર્મ થઈ જતો નથી. અંતર્ત્યાંગ વગર પ્રયોજનની સિદ્ધિ શક્ય નથી. મુખ્યતા તો અંતર્ત્યાંગની જ છે. જેમના લક્ષ્યે રાગાદિ ભાવો થાય છે એવા સ્ત્રી-પુત્રાદિ ચેતન અને ધન-મકાનાદિ અચેતન પદાર્થોનો ત્યાગ કરવો યોગ્ય છે, પરંતુ મુખ્ય વાત તો રાગાદિના ત્યાગની જ છે.

કોઈ પણ વસ્તુને પરિહરવી તે ખરેખર ત્યાગ નથી, પરંતુ તે વસ્તુ પ્રત્યેની આસક્તિનો, તે વસ્તુમાં અનુભવાતી મીઠાશનો ત્યાગ થવો તે જ સાચો ત્યાગ છે. પરને પર જાણીને, તેના પ્રત્યેના રાગનો ત્યાગ કરવો એ જ વાસ્તવિક ત્યાગ છે. મોક્ષાર્થીએ કદાપિ ભૂલવું ન જોઈએ કે વસ્તુનો ત્યાગ કરવામાત્રથી એમ નિશ્ચિત નથી થઈ જતું કે મોહાદિ વિકારી ભાવો છૂટી જ જશે. તેણે બાહ્ય ત્યાગ કરતાં કરતાં અંતર્ત્યાંગનો લક્ષ રાખવો ઘટે છે. અંતર્ત્યાંગ જ મોક્ષનું મૂળ છે, બાહ્ય ત્યાગ તેને સહાય કરે છે. રાગાદિ ભાવ પરિગ્રહાદિનાં નિમિત્તે થતા હોવાથી પરિણામોની શુદ્ધિ માટે પરિગ્રહાદિને છોડવાં જોઈએ. તેથી જ શ્રીમદે કહ્યું કે 'ત્યાગ વિરાગ ન ચિત્તમાં, થાય ન તેને જ્ઞાન'

આવી વસ્તુસ્થિતિ હોવા છતાં ભોગરસિક જીવો શાસ્ત્રની આડ લઈને કહે છે કે મોક્ષ માટે સાધુજીવનની કોઈ જરૂર નથી, તપ-ત્યાગની કાંઈ જરૂર નથી, માત્ર ભાવ શુદ્ધ રાખવાથી મોક્ષ મળી જશે. જે દેષ્ટાંતો આગળ રાખી તેઓ આ માન્યતાને પુષ્ટ કરે છે તે વિષે તેમને પૂછવું જોઈએ - શું ભરત ચક્રવર્તી વગેરે ઘરમાં રહીને કેવળન્જ્ઞાન થઈ શકે એવી માન્યતાવાળા હતા? ભરત ચક્રવર્તીને ૯૬,૦૦૦ રાણીઓ હતી, છ ખંડનું વૈભવ-વિલાસયુક્ત સામ્રાજ્ય હતું અને સ્વર્ગના ૧૬,૦૦૦ દેવો એમની સેવામાં નિરંતર હાજર રહેતા હતા. આવા અનુકૂળ સંયોગોમાં પણ તેમને તો વૈરાગ્ય જ વર્તતો હતો. તેઓ રોજ શ્રાવકો પાસે બોલાવતા હતા કે 'હે રાજન! તમે મોહરાજાથી જિતાયેલા છો. તમારા માથે ભય વધી રહ્યો છે. ચેત ભરત ચેત, કાળ ઝપાટા દેત!' આવી ભાવનાવાળા ઘર બેઠાં કેવળજ્ઞાનની કલ્પનામાં રાચે ખરાં? શ્રેષ્ઠીપુત્ર ગુણસાગરને લગ્નની ચોરીમાં કેવળજ્ઞાન થયું પણ એ વખતે તેમને કેવી ભાવના હતી? બીજા દિવસે ઘરબાર ત્યાગવાની! રાજા પૃથ્વીચંદ્ર પણ ગૃહવાસથી કેટલા પીડાતા હતા એ એમના ચરિત્રનું વાંચન કરવાથી સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે.

ભોગરસિક જીવને પોતાની મલિનતા ઢાંકવી છે, પોતાના દોષો સંતાડવા છે, ૧- 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર', ગાથા ૭નો પૂર્વાર્ધ તેથી તે શાસ્ત્રની આડ લે છે. તેને સંસારમાં રહેવા બદલ વસવસો, ખેદ કે આત્મ-ગ્લાનિ નથી, તો તેનાથી છૂટવાના ભાવ તો હોય જ ક્યાંથી? આથી વિપરીત, મહાપુરુષોને પૂર્વકર્મવશાત્ ગૃહવાસમાં રહેવું પડે તો તે માટે તેઓ આત્મગર્હા કરે છે. વિષયસુખ ભોગવવાના દરેક પ્રસંગ વખતે તેમને પારાવાર પશ્ચાત્તાપ થાય છે. તેમને તે પ્રવૃત્તિ બોજારૂપ લાગે છે અને તેમનું ચિત્ત ત્યાગમાર્ગ તરફ ખેંચાયા કરે છે. ત્યાગમાર્ગ ડગ ભરવા માટે તેમને તીવ તાલાવેલી હોય છે. બાહ્ય પ્રવૃત્તિ ટાળવાનો સંનિષ્ઠ પુરુષાર્થ તેઓ કરતા રહે છે. તેમના અને ભોગરસિક જીવના ભાવમાં આવો જમીન-આસમાનનો ફરક હોય છે. પ્રારબ્ધવશ વ્યાપાર-વ્યવહારની ઉપાધિમાંથી છૂટી શકાય એવું ન હોય ત્યાં સમ્યગ્દષ્ટિ પુરુષો આત્મજાગૃતિપૂર્વક તે પ્રવૃત્તિ કરે છે અને પોતાનું કલ્યાણ સાધે છે.

કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે મોક્ષનો રાજમાર્ગ તો સર્વસંગપરિત્યાગનો જ છે, પરંતુ અપવાદ(કેડી)માર્ગે ગૃહસ્થ અવસ્થામાં પણ તીવ્ર વૈરાગ્યાદિ પરિણામથી કૈવલ્યની પ્રાપ્તિ થઈ શકે છે, અર્થાત્ તે વખતે બાહ્યમાં ગૃહસ્થલિંગ હોય તો એ મોક્ષપ્રાપ્તિમાં બાધક થતું નથી, તેથી દેહાશ્રિત બાહ્ય લિંગનો આગ્રહ છોડી ઉપયોગને આત્મામાં સ્થિર રાખવાનો પુરુષાર્થ જ કર્તવ્ય છે.

અન્યલિંગ

શ્રી જિનેશ્વર ભગવંતોએ કેવળ જૈનદર્શનનિર્દિષ્ટ વેષવાળા સાધુઓનો જ મોક્ષ થાય એવો પક્ષપાત કે આગ્રહ રાખ્યો નથી. અન્ય ધર્મમતના વેષમાં પણ મોક્ષપ્રાપ્તિ સ્વીકારી છે. અન્યલિંગ ધરાવતા જીવો જો સમતાયુક્ત હોય તો તેમને રત્નત્રયની પ્રાપ્તિ થવાથી ભાવથી જૈનપણું ઉત્પન્ન થયું છે અને જૈન લિંગ ધરાવતા જીવો પણ જો પરપરિણતિમાં રાચતા હોય તો તેઓ ભાવથી જૈન નથી, એમ જૈન દર્શન કહે છે. તેથી જ આચાર્યશ્રી જયશેખરસૂરિજી 'સંબોહસત્તરી'માં ફરમાવે છે કે 'શ્વેતાંબર જૈન હોય અથવા આશાંબર (દિગંબર) જૈન હોય, બૌદ્ધ દર્શનનો હોય કે બીજા કોઈ દર્શનનો હોય, પણ જો તે સમભાવ વડે ભાવિત થયેલો હોય તો તે જીવ અવશ્ય મોક્ષ પામે

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૩, શ્લોક ૫૦

'अन्यर्लिगादिसिद्धानामाधारः समतैव हि । रत्नत्रयफलप्राप्तेर्ययास्याद्धावजैनता ।।'

૨- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીરચિત, પદ ૩, કડી ૫ (ગુર્જર સાહિત્ય સંગ્રહ, ભાગ-૧, ૫.૧૫૩)

> 'પર પરિનતિ અપની કર માને, કિરિયા ગર્વે ગહિલો; ઉનકું જૈન કહો ક્યું કહિયેં, સો મૂરખમેં પહિલો; પરમ ગુરુ! જૈન કહો ક્યાં હોવે?'

એમાં કોઈ સંદેહ નથી.^૧

અન્યલિંગે સિદ્ધ થવાય છે એમ સ્વીકારીએ તો એની સાથે એ સ્વીકારવું જ રહ્યું કે અન્યલિંગમાં પણ સમ્યક્ચારિત્ર હોઈ શકે. પ્રશ્ન થાય કે અન્યલિંગમાં સમ્યક્ચારિત્ર કઈ રીતે સંભવે? તેના જવાબ માટે ચારિત્ર અને સાધુપણાની શાસ્ત્રકારોએ આપેલી વ્યાખ્યા યથાર્થ સમજવી રહી.

ઉપાધ્યાય શ્રી પદ્મવિજયજી મહારાજ 'સિદ્ધચક્ર સ્તવન'માં કહે છે –

'નિવૃત્તિ ને પ્રવૃત્તિ ભેદે, ચારિત્ર છે વ્યવહાર જી; નિજ ગુણ સ્થિરતા ચરણ તે પ્રણમો, નિશ્ચય શુદ્ધ પ્રકાર.'^ર

શ્રી ચિદાનંદજી મહારાજ 'અધ્યાત્મ બાવની'માં કહે છે –

'ચૈતનકું પરચ્ચો નહિ, ક્યા હુવા વ્રત ધાર; શાળ-વિહુણા ખેતમેં, વૃથા બનાઈ વાડ.'³

ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ 'શ્રીપાલરાજાનો રાસ'માં ફરમાવે છે –

'અપ્રમત્ત જે નિત્ય રહે, નિવ હરખે નિવ શોચે રે; સાધુ સૂધા તે આતમા, શું મૂંડે શું લોચે રે.'⁸

જેમણે પોતાની વૃત્તિ નિજસ્વભાવમાં કેન્દ્રિત કરી હોય, જેઓ શુદ્ધ દ્રષ્ટાભાવમાં જ સ્થિર હોય, મોહવશ ઊઠતી ભૂતકાળની સ્મૃતિઓ તથા ભાવીની કલ્પનાઓમાં ન ફસાતાં જેઓ હર્ષ-શોકના ઝૂલે ચડ્યા વિના પોતાની વર્તમાન પર્યાયને જ્ઞાયકભાવે વેદી રહ્યા હોય; એવા સહુ સંતો સમ્યક્ચારિત્રયુક્ત છે - પછી તે જૈન હોય કે જૈનેતર.

સમ્યક્ચારિત્રયુક્ત સંતોને સ્વરૂપનો સત્ય બોધ થયો હોવાથી તેઓ સમસ્ત દશ્ય જગતથી પોતાને સ્વતંત્ર અનુભવે છે. બાહ્ય સર્વ પરિવર્તનો, પ્રાપ્તિઓ, સંયોગો કે વિયોગોથી પોતાને કોઈ લાભ કે હાનિ નથી એમ સમજાતાં, તેઓ રાગ-દેષના વમળમાં અટવાયા વિના સમભાવમાં રહે છે. કોઈ પણ પ્રકારની ઇચ્છા-અપેક્ષાઓથી મુક્ત રહી વર્તમાન ક્ષણે જે બને તેને સમભાવે નીરખે છે. વર્તમાન સંયોગના શાંત સ્વીકારના

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી જયશેખરસૂરિજી, 'સંબોહસત્તરી', ગાથા ૨

'सेयंबरो य आसंबरो य बुद्धो अ अहव अन्नोवा । समभावभाविअप्पा, लहेइ मुख्खं न संदेहो ।।'

- ર- ઉપાધ્યાય શ્રી પદ્મવિજયજીરચિત, 'સિદ્ધચક્ર સ્તવન', ગાથા ૯
- ૩- શ્રી ચિદાનંદજીરચિત, 'અધ્યાત્મ બાવની', દોહો ૯
- ૪- ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'શ્રીપાલરાજાનો રાસ', ખંડ ૪, ઢાળ ૧૨, કડી ૬

કારણે તેમને ભૂત કે ભવિષ્યનું જોડાણ થતું નથી. તેઓ નથી ભૂતકાળને યાદ કરતા કે નથી ભવિષ્યની યોજના ઘડતા. નથી ભૂતકાળની સ્મૃતિઓ વાગોળતા કે નથી ભવિષ્યની કલ્પનાઓ કરતા. પૂર્વબદ્ધ કર્મના ઉદય પ્રમાણે પ્રાપ્ત સુખ-દુઃખ, લાભ-હાનિ, માન-અપમાન, શાતા-અશાતા, જય-પરાજયને નિર્દ્વન્દ્વભાવે વેદી લઈ, સંકલ્પ-વિકલ્પ કર્યા વિના માત્ર જ્ઞાયકભાવે રહે છે. પ્રારબ્ધપ્રાપ્ત વસ્તુ, વ્યક્તિ કે પરિસ્થિતિ પ્રત્યે રાગ કે દેષ કર્યા વિના શાંત સ્વીકાર કરી, ઘટનાપ્રવાહને ભીતી કે પ્રીતિ વિના જોયા કરે છે. તેમને એકમાત્ર આત્માનો જ મહિમા હોવાથી તેમની દષ્ટિ ત્રિકાળી સ્વભાવ તરફ જ ઝૂકેલી રહે છે.

સમ્યક્ચારિત્રયુક્ત સંતોનું ધ્યેય તો ત્રિકાળી ધ્રુવ સ્વરૂપ જ હોય છે. તેમની દર્ષ્ટિ તે ત્રિકાળી ધ્રુવ સ્વભાવ ઉપરથી જરા પણ ખસતી નથી. જેમ ખીલા સાથે બાંધેલાં બળદ કે ગાય ત્યાં ને ત્યાં રહે, ત્યાંથી ખસી શકે નહીં; તેમ સંતોએ ધ્રુવખીલા સાથે પોતાની દર્ષ્ટિ બાંધી છે, તે ત્યાંથી જરા પણ ખસતી નથી. આનંદમૂર્તિ વિજ્ઞાનઘન નિજાત્મદ્રવ્યના આશ્રયે પર્યાયમાં નિર્મળતા પ્રગટે છે. શાંતિની પર્યાય, આનંદની પર્યાય પ્રગટવા છતાં પણ સંતો એ પર્યાયમાં રોકાતા નથી. તેમની દર્ષ્ટિ તો ત્રિકાળી, ધ્રુવ વસ્તુ ઉપર છે. પરિપૂર્ણ નિજ જ્ઞાયક આત્માનું જ તેઓ અવલંબન લે છે. તેમની દર્ષ્ટિ તો સદા ધ્રૌવ્યસ્વભાવ ઉપર જ પડી હોય છે. જેમ દરિયામાં વહાણ 'ધ્રુવ' તારાના આધારે ચાલે છે, તેમ તેમને નિજસ્વભાવના લક્ષે પર્યાયમાં શુદ્ધતા પ્રગટે છે, વધે છે અને અંતે પૂર્ણતાને પ્રાપ્ત થાય છે. જેઓ આવું ચૈતન્યલક્ષી જીવન જીવે છે તેઓ જ પ્રશંસનીય છે, બાકી જેઓ ચૈતન્યના લક્ષ વગરનું જીવન જીવે છે તેઓ તો મડદાં સમાન જ છે.

રાગ-દેષરહિત આત્મામાં સમાધિસ્થ રહેવું એ સંતોનું લક્ષણ હોવાથી જ્ઞાનીઓએ એ વાત પ્રતિપાદિત કરી છે કે સાચા સાધુની ઓળખ માટે લિંગ-ક્રિયાનો માપદંડ કામ લાગતો નથી. આંતરિક ગુણોના આધારે થતી સાધુની ઓળખાણ એ જ યથાર્થ ઓળખાણ છે. બાહ્ય લિંગ-વેષ-ક્રિયાદિના આશ્રયે થતી ઓળખાણ અયથાર્થ છે. ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ લખે છે —

'લિંગ વેષ કિરિયાકું સબહી, દેખે લોક તમાસી હો; ચિન મૂરતિ ચેતન ગુન ચિહ્ને, સાચો સોઉ સંન્યાસી હો.'

આ તથ્ય નજર સામે રહે તો અન્યલિંગસ્થ મહાત્માઓમાં સમ્યક્ચારિત્રની સંભાવના સ્વીકાર્ય થાય છે અને સમ્યક્ચારિત્ર સમ્યગ્દર્શન વિના તો હોઈ શકે નહીં; તેથી અમુક ધર્મપંથના અનુયાયીઓ બધા જ મિથ્યાદષ્ટિ કે અમુક દર્શનની છાવણીમાં ૧- ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીરચિત, ષદ ૩૯, કડી ૩ (ગુર્જર સાહિત્ય સંગ્રહ, ભાગ-૧, પૃ.૧૭૫) બેઠેલા બધા જ સમ્યગ્દષ્ટિ હોય એવું નથી. વ્યક્તિ જૈન હોય કે અજૈન, મુનિ હોય કે ગૃહસ્થ, શ્વેતાંબર હોય કે દિગંબર - દેહભાવમાં જીવતો હોય તો તે મિથ્યાદષ્ટિ છે અને 'દેહાદિ સમગ્ર જડ દ્રવ્યોથી અને કર્મકૃત સર્વ અવસ્થાઓથી પર એવો હું વિશુદ્ધ ચૈતન્ય છું' એ ભાવમાં જીવનાર વ્યક્તિ સમ્યગ્દષ્ટિ છે.^૧

મુમુક્ષુ જીવ સાધુની ઓળખાશ માટે અંતરંગ પરિશતિને જ મહત્ત્વ આપે છે. જેમ ભોજન વખતે થાળમાં કચુંબર, અથાશું, શાક, ફરસાશ, મિષ્ટાન્ન વગેરે અનેક ચીજો પીરસાઈ હોય, પશ જેને ભૂખ લાગી હોય તેની દષ્ટિ તો સીધી મિષ્ટાન્નાદિરૂપ પૌષ્ટિક ચીજો ઉપર પડે છે, તેને કચુંબરાદિનું લક્ષ ગૌશ થઈ જાય છે; તેમ બાહ્ય લિંગ-વેષ-ક્રિયાદિ હોય અને અંતરંગ પરિશતિ હોય, તેમાં મોક્ષની જેને ભૂખ છે તે મુમુક્ષુની દષ્ટિ સીધી અંતરંગ પરિશતિ ઉપર પડે છે, તેને લિંગ-વેષ-ક્રિયાદિનું લક્ષ ગૌણ થઈ જાય છે.

આમ, મુક્તિપથમાં લિંગ-વેષાદિનું નહીં પણ ગુણનું, આંતરિક નિર્મળતાનું મહત્ત્વ છે. જે ભાવશ્રમણ છે તે જ શ્રમણ છે, બાકીના નામશ્રમણોને સુગતિ પ્રાપ્ત થતી નથી. મુક્તિ ભાવલિંગના આધારે, અર્થાત્ આંતરિક ગુણસંપત્તિના આધારે મળે છે. દ્રવ્યલિંગની, અર્થાત્ નામ, વેષ આદિ બાદ્ય ઓળખની મોક્ષમાર્ગમાં કોઈ ગણના નથી. તેથી જ આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજી કહે છે કે બાદ્ય લિંગ, વેષ, કથનપદ્ધતિ કે પરિભાષા જુદાં હોય એટલામાત્રથી મહાન સંતોની અવહેલના કરવી નહીં. ભિન્ન ભિન્ન દેશ, કાળ અને પરિસ્થિતિવશ તેમની બાદ્ય ચર્યા, વેષ અને દેશનાની પરિભાષા ભિન્ન હોવા છતાં તે બધા મોક્ષમાર્ગના પ્રવાસી હોય છે. માટે તેમનો અપલાય કરવાની ઉતાવળ ન કરતાં તેમનો આશય સમજવા પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. 'ભવવ્યાધિના સમર્થ ચિકિત્સક' એવા એ મહાત્માઓનો આશય સમજયા વિના તેમનો અપલાય કરવો એ મહા અનર્થને અપાયેલું નિમંત્રણ છે. 3

१- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મોપનિષદ્', જ્ઞાનયોગશુદ્ધિ અધિકાર, શ્લોક ૨૬ 'ये पयिषु निरतास्ते ह्यन्यसमयस्थिताः । आत्मस्वभावनिष्टानां, धृवा स्वसमयस्थितिः ।।'

२- જુઓ : આચાર્યશ્રી વટ્ટકેરજીકૃત, 'મૂલાચાર', ગાથા ૧૦૦૪ 'भावसमणा ह समणा ण सेससमणाण सुग्गई जम्हा ।'

3- જુઓ : आयार्धश्री हिरेलद्रसूरिक्जिकृत, 'योगहिष्टि समुश्ययं', श्लोक १३४,१३८ 'चित्रा तु देशनैतेषां स्याद्विनेयानुगुण्यतः । यस्मादेते महात्मानो भवव्याधिभिषग्वराः ।। तदभिप्रायमज्ञात्वा न ततोऽर्वाग्दृशां सताम् । युज्यते तत्प्रतिक्षेपो महानर्थकरः परः ।।' પોતાના મત-વેષાદિના અભિનિવેશના કારણે જીવ અન્ય મતના વેષધારી સંતોને પોતાના ધર્મમતના વિરોધી સમજે છે. તે તેમનો વિનય તો કરતો નથી, પણ ઊલટું તેમની નિંદા કરે છે. ધર્મની સમજણના અભાવના કારણે અન્ય મતના વેષધારી સંતોનો વિનય ન કરવામાં, તેમનો અપલાપ કરવામાં તેને ઉત્સાહ આવે છે. આવી ચેષ્ટા જીવની યોગ્યતાનો વિનાશ કરે છે અને તેમ કરીને તે પોતાનું ભવભ્રમણ વધારે છે. તેથી જીવે પોતાના કે પારકા વેષનો અભિનિવેશ મૂકીને સાચા સંતોનો વિનય કરવો જોઈએ. જીવ જો આગ્રહનો ત્યાગ કરશે તો જ તેનું કલ્યાણ થશે. શ્રીમદ્દ કહે છે –

'જે જીવ ક્દાગ્રહરહિત હોય તે શુદ્ધ માર્ગ આદરે. જેમ વેપાર ઘણા પ્રકારના હોય પણ લાભ એક જ પ્રકારનો હોય. વિચારવાનોનો તો કલ્યાણનો માર્ગ એક જ હોય. અજ્ઞાનમાર્ગના અનંત પ્રકાર છે.

વૈષ્ણવ, બૌદ્ધ, શ્વેતાંબર, ઢુંઢિયા, દિગંબર જૈનાદિ ગમે તે હોય પણ જે કદાગ્રહરહિતપણે શુદ્ધ સમતાથી પોતાનાં આવરણો ઘટાડશે તેનું જ કલ્યાણ થશે.'^૧

'અમને તો બ્રાહ્મણ, વૈષ્ણવ ગમે તે સમાન છે. જૈન કહેવાતા હોય, અને મતવાળા હોય તો તે અહિતકારી છે; મતરહિત હિતકારી છે.'^ર

આમ, આ ગાથામાં શ્રીમદ્ કહે છે કે જાતિ અને વેષ બન્ને દેહાશ્રિત છે. તેના આશ્રયે મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી. વળી, તેના આગ્રહથી તો સંસારપરિભ્રમણ જ છે. તેથી બાહ્ય જાતિ, વેષ, ઉપકરણો આદિનો આગ્રહ ન રાખવો, પણ અંતરના ખરા સાધનરૂપ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-યારિત્રને ઓળખીને તેની ઉપાસનામાં તત્પર રહેવું જોઈએ. જ્ઞાનીઓએ બતાવેલા માર્ગે પ્રયત્ન કરવાની ધગશ રાખી, જ્યાં આગ્રહ અને ક્લેશની વાત આવે ત્યાંથી ખસીને સ્વકલ્યાણમાં લાગવું જોઈએ. આ ગાથાની યોજના પાછળ શ્રીમદ્નો આશ્રય બતાવતાં શ્રી મનસુખભાઈ રવજીભાઈ મહેતા લખે છે કે —

'ગ્રંથકારની યોજના એવા પ્રકારની પણ સંભવે છે કે, જેઓ આ છ પદપૂર્વક વસ્તુને પામ્યા છે તેઓને વેષાદિ વ્યવહારમાં દુરાગ્રહબુદ્ધિ રહેવી ન જોઈએ.'³

જીવને જ્યારે ધર્મના સત્ય સ્વરૂપનું જ્ઞાન થાય છે ત્યારે જ તેને સાચી અને સ્થાયી પક્ષપાતરહિતતા પ્રગટે છે. ધર્મનું સ્વરૂપ ન સમજાયું હોય તો તેને બાહ્ય જાતિ-વેષ આદિ પ્રત્યે પક્ષપાત રહે છે. તે અમુક પ્રકારનાં જાતિ-વેષને જ મોક્ષનું કારણ માને છે અને તેનો આગ્રહ કરે છે. તે અન્ય જાતિ-વેષનો નિષેધ કરે છે. તે અન્ય

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૦૯ (ઉપદેશછાયા-૮)

૨- એજન, પૃ.૭૦૨ (ઉપદેશછાયા-૬)

૩- શ્રી મનસુખભાઈ રવજીભાઈ મહેતા, 'આત્મસિદ્ધિ', પ્રસ્તાવના, પૃ.૨૪

જાતિ-વેષવાળા સાથે ક્લેશ કરે છે. ધર્મની યથાર્થ સમજણ કરવી, આગ્રહ ન કરવો, ક્લેશિત ન થવું વગેરે તથ્યો તેવા મતાર્થી જીવને અગત્યનાં ભાસ્યાં જ નથી. તે પોતાની વિપરીત માન્યતામાં, મતના આગ્રહમાં જ રાચે છે.

અનાદિ કાળથી આ પ્રમાશે જીવ આત્માને ભૂલીને ભ્રાંતિ વડે બાહ્ય જાતિ-વેષનો આગ્રહ કરતો આવ્યો છે. અનંત કાળના પરિભ્રમણમાં જીવે જાતિ-વેષ ઉપર દષ્ટિ કરી, પણ પોતાના આત્મા ઉપર દષ્ટિ કરી નથી. બાહ્ય જાતિ-વેષમાં ધર્મ છે એમ માન્યતા કરી હોવાથી તેને અનંત આનંદના કંદ એવા આત્મતત્ત્વ ઉપર પ્રેમ આવ્યો નથી. અંતરમાં પડેલા ચૈતન્યના તેજના પૂરનો અનાદર કરી તેણે પોતાના આત્માની હિંસા કરી છે. અંતરના આનંદના સાગરને ભૂલીને, તેનો નકાર કરીને બહારમાં ધર્મ હોવાનો હકાર કર્યો છે. આવું કરી તેણે અનંત જ્ઞાનીઓનો અવિશાસ કરવાનો મહા અપરાધ આયર્યો છે.

જ્ઞાનીઓ કહે છે કે મુક્તિ અમુક જ જાતિ-વેષથી થાય એવું છે જ નહીં. ગમે તે જાતિ-વેષમાં મુક્તિ થઈ શકે છે. બાહ્ય જાતિ-વેષ એ કંઈ મુક્તિનું કારણ નથી. આત્માનો ધર્મ આત્મામાં છે, તે બહાર કશે પણ નથી કે જેથી તે બહારથી મળે. ધર્મની પ્રાપ્તિ બાહ્ય જાતિ-વેષમાંથી થાય નહીં. ધર્મ આત્માશ્રિત છે, બાહ્ય જાતિ-વેષને આશ્રિત નથી. તેથી ધર્મ કરવાની ઇચ્છાવાળા જીવોએ આત્મોન્મુખી થવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. પરસન્મુખ નજર કરવાવાળાને ધર્મની પ્રાપ્તિ થતી નથી. જો જાતિ-વેષના આશ્રયે ધર્મ થતો નથી, પણ ધર્મ આત્માના આશ્રયે ઘાય છે; તો પછી જાતિ-વેષના આગ્રહની તો વાત જ ક્યાં રહે છે? અમુક જાતિ-વેષથી જ ધર્મ થાય એવા આગ્રહને સ્થાન જ રહેતું નથી. પરંતુ જીવને ધર્મ શું છે એ સમજાયું ન હોવાથી તે આગ્રહ કરે છે. માટે મોક્ષની સાધનામાં ધર્મના યથાર્થ સ્વરૂપનો નિર્ધાર કરવો અત્યંત આવશ્યક છે.

યથાર્થ તત્ત્વનિર્ણયને પામેલા જીવને સ્વદ્રવ્યનો પરમ મહિમા આવે છે. તેને શુદ્ધાત્મા પ્રત્યે આત્યંતિક પ્રેમ પ્રગટે છે, સ્વરૂપનું ભાવભાસન થાય છે અને કોઈ ધન્ય પળે તેની અનુભૂતિ કરે છે. આમ, જે જીવને શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપ પ્રગટાવવું હોય તેણે જાતિ-વેષના આગ્રહનો ત્યાગ કરવો જોઈએ અને પોતાના ત્રિકાળી જ્ઞાનસ્વભાવનો આશ્રય કરવો જોઈએ. ત્રિકાળી જ્ઞાનસ્વભાવની શુદ્ધતા ઉપર દૃષ્ટિ કેન્દ્રિત ન કરતાં જો જીવ બાહ્ય જાતિ-વેષને મહત્ત્વ આપે તો મોહજાળમાં ફસાઈ મોક્ષસુખથી વંચિત રહે છે. જો તે પોતાના અચળ, અખંડ, અવિનાશી આત્મસ્વભાવને ગ્રહણ કરે છે તો તે અવશ્ય

'જાતિ લિંગકે પક્ષમેં, જિનકૂં હૈ દઢરાગ; મોહ જાલમેં સો પરે, ન લહે શિવસુખ ભાગ.'

૧- જુઓ : ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'સમાધિશતક', દુહો ૭૩

પરમષદને વરે છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'જાતિ, વેષનો ભેદ નહિ, દ્રવ્યાદિક સંયોગ; વિચારપૂર્વક હોય પણ, હેય હોય જડભોગ. જે આત્માના ભાવમાં, કહ્યો માર્ગ જો હોય; અનુક્રમે આરાધના કરે, તે વિરલા જોય. અસ્ખલિત આદર વડે, મોક્ષપંથ ઉપરોક્ત; સાદો તે મુક્તિ લહે, કષાયથી થઈ મુક્ત. મોક્ષમાર્ગ બે છે નહિ, અસંગ અનુભવ જોય; મોક્ષ શુદ્ધ સમભાવ છે, એમાં ભેદ ન કોચ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૧ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૨૫-૪૨૮)

इक्ष्मिन (देप शांतना, भाग भोक्ष भानिपाप, लिक्षा को तर देखा, ने डायमे किसास. ગાથા ૧૦૭માં કહ્યું કે મોક્ષનો જે માર્ગ આગલી ગાથાઓમાં દર્શાવ્યો છે, તે જો હોય તો ગમે તે જાતિ કે વેષથી મોક્ષ થાય, એમાં કંઈ ભેદ નથી. જે જીવ શુદ્ધ ભાવ પ્રગટ કરે તે જીવ મુક્તિપદને પામે. આ વાતમાં કોઈ પણ ફરક આવતો નથી.

આમ, ગાથા ૯૮ થી ૧૦૭ સુધીમાં શ્રીગુરુએ શિષ્યની મોક્ષના ઉપાય સંબંધી સર્વ શંકાઓનું સચોટ સમાધાન આપી, સર્વસમ્મત અવિરોધ મોક્ષમાર્ગનો નિશ્ચય કરાવ્યો. તેના અંતરમાં પરમાર્થમાર્ગની આરાધના કરવાની તાલાવેલી જાગે તે અર્થે શ્રીગુરુ હવે ગાથા ૧૦૮ થી ૧૧૩ સુધીમાં મોક્ષપ્રાપ્તિના માર્ગનો ક્રમ અનુપમ શૈલીથી પ્રકાશે છે.

પૂર્વોક્ત ગાથાઓમાં મોક્ષમાર્ગની પ્રતિષ્ઠા કર્યા પછી હવે મોક્ષમાર્ગનો સંપૂર્ણ સાધનાક્રમ માત્ર છ જ ગાથાઓમાં દર્શાવવામાં આવ્યો છે. તેમાં ગુણસ્થાનનો આરોહણ-ક્રમ પણ ગર્ભિતપણે સમાવેશ પામે છે. પ્રસ્તુત ગાથામાં પરમાર્થમાર્ગનો અધિકારી જીવ કેવો હોય, તેનામાં કયા ગુણો પ્રગટ્યા હોય તો તે મોક્ષમાર્ગનો જિજ્ઞાસુ કહેવાય તે દર્શાવતાં શ્રીગુરુ કહે છે –

ાથા 'કષાયની ઉપશાંતતા, માત્ર મોક્ષઅભિલાષ; ભવે ખેદ અંતર દયા, તે ક્હીએ જિજ્ઞાસ.' (૧૦૮)

કોદાદિ કષાય જેના પાતળા પડ્યા છે, માત્ર આત્માને વિષે મોક્ષ થવા અર્થ સિવાય બીજી કોઈ ઇચ્છા નથી, અને સંસારના ભોગ પ્રત્યે ઉદાસીનતા વર્તે છે; તેમ જ પ્રાણી પર અંતરથી દયા વર્તે છે, તે જીવને મોક્ષમાર્ગનો જિજ્ઞાસુ કહીએ, અર્થાત્ તે માર્ગ પામવા યોગ્ય કહીએ. (૧૦૮)

કોઈ પણ વિચારવાન જીવ પોતાનું જીવન શાંત અને નિરાકુળ બને એવું ઇચ્છે છે અને તે અર્થે જીવનશુદ્ધિ ઇચ્છે છે, કારણ કે પારમાર્થિક દષ્ટિએ જોતાં જીવનમાં શુદ્ધિ અને સુખ-શાંતિ અવિનાભાવે રહેલાં છે. જેનું જીવન મલિનભાવમય છે, તે જીવ સર્વ ભૌતિક વૈભવોથી સંપન્ન હોય તોપણ દુઃખી છે. ક્લેશમય પરિશામોને કારણે જીવ અશાંતિ ભોગવે છે, તેથી શાંતિ માટે જીવનશુદ્ધિ આવશ્યક છે. આ કારણે જીવે પોતાનામાં સદ્દ્રુણો કેળવી જીવનશુદ્ધિ કરવી ઘટે છે. જીવ સદ્દ્રુણો પ્રગટાવે તો જ તે મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ કરી શકે છે. મોક્ષમાર્ગની આરાધના અર્થે જીવમાં પ્રથમ

અધિકારીપણું પ્રાપ્ત થવું જોઈએ. શ્રીમદે મોક્ષમાર્ગના અધિકારી જીવનાં ચાર લક્ષણ દર્શાવ્યાં છે. જે જીવ આ ચાર લક્ષણથી સંપન્ન હોય તે જ જીવ મોક્ષમાર્ગ પામવાનો અધિકારી છે. એ ચાર લક્ષણ આ પ્રમાણે છે –

- (૧) 'ક્રષા**ચની ઉપશાંતતા'** ક્રોધાદિ ક્રષાયોનું મંદપશું, પાતળા પડવાપશું. ઉદય આવેલા ક્રષાયોને દઢતાપૂર્વક, સમજણ સહિત શાંત પાડી દેવારૂપ ક્રષાયની ઉપશાંતતા એ પ્રથમ લક્ષણ છે. મોક્ષમાર્ગનો અધિકારી તે છે કે જે ક્રષાયોને મોળા પાડતો હોય, ઘટાડતો હોય.
- (૨) 'માત્ર મોક્ષઅભિલાષ' કેવળ મોક્ષની જ ઇચ્છા. અવિનાશી સત્સુખની પ્રાપ્તિ પૂર્ણ શુદ્ધ દશા પ્રગટવાથી થતી હોવાથી, એકમાત્ર મોક્ષની જ અભિલાષા હોવી એ બીજું લક્ષણ છે. મોક્ષમાર્ગનો અધિકારી તે છે કે જે નિજ શુદ્ધતાની પ્રાપ્તિ સિવાય અન્ય કોઈ પણ પ્રકારની ઇચ્છા ધરાવતો ન હોય.
- (3) 'ભવે ખેદ' ભવનો થાક, અર્થાત્ સંસાર પ્રત્યે વૈરાગ્ય. સંસારના વિષયોમાં આસક્તિ રાખવાથી જે સંસારપરિભ્રમણ થયું છે, તેનો થાક લાગવો એ ત્રીજું લક્ષણ છે. મોક્ષમાર્ગનો અધિકારી તે જીવ જ છે કે જે જીવ વિષયભોગોથી વિરક્ત થવાની ભાવના કરતો હોય.
- (૪) 'અંતર દયા' દુઃખથી છૂટે એવી લાગણી. સંસારપરિભ્રમણનાં દુઃખથી પોતાને છોડાવવાની ભાવના તે સ્વદયા અને બીજા જીવો દુઃખથી મુક્ત થાય એવી ભાવના તે પરદયા. પ્રાણીમાત્ર પ્રત્યે અંતરથી આવી દયા વર્તે એ ચોથું લક્ષણ છે. મોક્ષમાર્ગનો અધિકારી તે છે જેને બંધનયુક્ત સ્વાત્માની અનુકંપા વર્તતી હોય અને અન્ય પ્રાણીઓ પ્રત્યે પણ તેવી જ દયાનો ઝરો વહેતો હોય.

ઉપર્યુક્ત લક્ષણોથી મોક્ષમાર્ગનો અધિકારી એવો જિજ્ઞાસુ જીવ ઓળખાય છે, અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગના ખોજક એવા જિજ્ઞાસુ જીવમાં આ ચાર લક્ષણો અવશ્ય વિદ્યમાન હોય છે. કષાયની ઉપશાંતતા આદિ ચાર લક્ષણોના અભાવે પરમાર્થમાર્ગનો પ્રારંભ અશક્ય છે. એ ચાર ગુણોની પ્રાપ્તિ થવાથી મોક્ષમાર્ગનો મંગળ પ્રારંભ થાય છે. મોક્ષમાર્ગના ઇચ્છુક જીવો તેને પ્રાપ્ત કરવામાં વિશેષ ઉદ્યમી થાય તે અર્થે શ્રીમદે ભારપૂર્વક તેનું 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'માં બે વખત (ગાથા ૩૮માં તેમજ પ્રસ્તુત ગાથામાં) વિવરણ કર્યું છે.

પ્રત્યેક જીવ અનંત શક્તિનો ધારક છે, પરંતુ કર્મોનું આવરણ હોવાથી તે શક્તિ પૂર્ણપણે વ્યક્ત નથી થતી. તે શક્તિ વીર્યાંતરાય કર્મના ક્ષયોપશમ અનુસાર વ્યક્ત થાય છે. પ્રત્યેક જીવ વીર્યાંતરાય કર્મના ક્ષયોપશમથી પ્રાપ્ત થયેલી શક્તિનો ઉપયોગ તો કરે જ છે, પરંતુ અજ્ઞાનાવસ્થામાં તેનો ઉપયોગ વિપરીતરૂપે થાય છે. શક્તિનું આ વિપરીત પરિશમન જીવને આત્મવિકાસમાં બાધક બને છે. જો જીવ ઇચ્છે તો તે આ શક્તિના પ્રવર્તનની દિશાને ફેરવીને બાધક બનતી શક્તિને સાધકરૂપે પરિશમાવી શકે છે.

જીવ શક્તિને જે દિશામાં વેગ આપે તે દિશામાં તેની શક્તિ ગતિ કરે છે. કઈ દિશામાં શક્તિને વેગ આપવો તેમાં જીવ સ્વતંત્ર છે. જ્યાં સુધી જીવ પૌદ્દગલિક વસ્તુઓને પોતાની માને, તેમાં આસક્ત બને, તેમાં જ કર્તા-ભોક્તાપણાનો ભાવ રાખે ત્યાં સુધી તેની શક્તિ વિપરીત દિશામાં જ ગતિ કરતી હોવાથી આત્મવિકાસમાં બાધક બને છે. જ્યારે તેને શુદ્ધ સ્વસત્તા પ્રગટ કરવાની રુચિ જાગૃત થાય છે ત્યારે તેની શક્તિ દિશાપરિવર્તન કરે છે. વિપરીત દિશામાં પ્રવૃત્ત થયેલ શક્તિની દિશા બદલાતાં જીવનો આધ્યાત્મિક વિકાસ વેગ પકડે છે.

અનાદિથી જીવની શક્તિ બાધક ભાવે પરિશામી રહી છે. જીવને જ્યારે વિવેક જાગે છે ત્યારે તે જ શક્તિનું સવળું પ્રવર્તન થાય છે અને તે સાધકરૂપ બને છે. જેમ ઉકળતા પાણીની વરાળ દાહક હોવા છતાં જો તેને યોગ્ય રીતે સંચિત અને કેન્દ્રિત કરવામાં આવે તો તે જ વરાળ દ્વારા વિરાટ કાર્યનું સર્જન કરી શકાય છે. તે રીતે અનાદિથી બાધક ભાવે પરિશામેલી શક્તિને સ્વરૂપ અનુયાયી બનાવવામાં આવે તો તે સાધકરૂપ બને છે અને મોક્ષરૂપ સ્વકાર્યની સિદ્ધિ થાય છે.

મોક્ષરૂપ સ્વકાર્યની સિદ્ધિ થઈ શકે તે માટે જીવે સૌ પ્રથમ તો મોક્ષપ્રાપ્તિની વિધિનું સ્વરૂપ સમજી લેવું જોઈએ. મોક્ષપ્રાપ્તિ અર્થે કાર્યપદ્ધતિને યથાર્થ રીતે તેને સમજીને અંગીકાર કરવી આવશ્યક છે. કાર્યપદ્ધતિનું સોથી મહત્ત્વપૂર્ણ અંગ છે કાર્ય-પદ્ધતિનો ક્રમ. કાર્યપદ્ધતિનો ક્રમ જો સાચવવામાં ન આવે તો કાર્યમાં સફળતા પ્રાપ્ત ન થાય, બલ્કે તેવી પ્રવૃત્તિમાં સમય અને શક્તિનો અપવ્યય થાય. મોક્ષમાર્ગ માટે પ્રયત્ન કરનારાઓની નિષ્ફળતાનું મુખ્ય કારણ પ્રાયઃ ક્રમભંગ હોય છે. ધ્યેયપ્રાપ્તિનો યથાર્થ ક્રમ સમજયા વિના, મતિકલ્પનાએ પ્રવર્તવાથી કાર્યસિદ્ધિ થતી નથી, તેથી અત્યંત સાવધાની-પૂર્વક આ બાબતમાં નિર્ણય થવો ઘટે છે. તે અર્થે શ્રીમદે છકા પદની પૂર્ણાહૃતિ કરતાં પહેલાં મોક્ષમાર્ગનો ક્રમ દર્શાવ્યો છે.

મોક્ષમાર્ગના ક્રમમાં શ્રીમદે પ્રથમ પાત્રતાનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. મોક્ષમાર્ગે પ્રયાણ શરૂ કરનાર જીવનાં પરિણામ કેવાં હોવાં જોઈએ તે અહીં બતાવવામાં આવ્યું છે. આત્મહિત કરવાની જેની સાચી કામના છે તેવા જીવની પ્રાથમિક દશા કેવી હોવી જોઈએ, આત્માની જિજ્ઞાસાવાળો જીવ કેવા ભાવો ધરાવતો હોવો જોઈએ, તેનું શ્રીમદે પ્રસ્તુત ગાથામાં કરેલું વિવરણ અવલોકીએ —

(૧) 'ક્ષાયની ઉપશાંતતા'

જિજ્ઞાસુ જીવને કષાયની ઉપશાંતતા હોય છે. કષાય કરવાથી આજ પર્યંત જીવે અનેક દુઃખો સહન કર્યાં છે. ક્રોધથી તાત્કાલિક મગજનો ઉકળાટ, માનભંગ વખતે મગજની બદલાતી સ્થિતિ, માયાથી દરરોજ ખોટો દેખાવ કરવાની પીડા અને લોભથી આખી જિંદગી સુધીની વેઠ આદિ અનેક દુઃખો પ્રાપ્ત થાય છે. જ્યાં સુધી મન ક્લેશિત હોય છે ત્યાં સુધી મન કોઈ પણ પ્રકારે સત્ય અને તટસ્થ નિરીક્ષણ કરી શકતું નથી. તે વખતે સ્વ-પરનું જે કાંઈ નિરીક્ષણ થાય છે તે મલિન હોય છે અને ચિત્તની સ્થિરતા માટે તે અવરોધરૂપ બને છે. તેમાંથી અનેક પ્રતિક્રિયાઓ ઊઠતી રહે છે. પ્રતિક્રિયાઓ વડે તે જીવ કોઈ પણ પરિસ્થિતિમાં ઉત્તેજના અનુભવે છે અને આકુળ-વ્યાકુળ થયા કરે છે. જે દુઃખરૂપ છે, દુઃખકારી છે અને આત્માનું અહિત કરવાવાળા છે - એવા આ કષાયભાવો હેય છે, ત્યાગવા યોગ્ય છે. કષાયની ઊપજથી સર્વને સર્વ કાળે દુઃખ અને કષાયના અભાવથી સર્વને સર્વ કાળે સુખ થાય છે. છતાં અજ્ઞાનાવસ્થામાં જીવ કષાય-સેવનથી સુખ માને છે. આચાર્યશ્રી મુનિસુંદરસૂરિજી 'અધ્યાત્મકલ્પદ્રુમ'માં ફરમાવે છે કે 'હે જીવ! કષાયસેવનથી તને જે સુખ થાય અને કષાયના ક્ષયથી તને જે સુખ થાય, તેમાં વધારે સુખ કયું છે અથવા તો કષાયનું અને તેના ત્યાગનું પરિણામ કેવું આવે છે તેનો વિચાર કરીને, તે બન્નેમાંથી સારું હોય તે આદરી લે.' '

જિજ્ઞાસુ જીવ કષાયનું અને કષાયત્યાગનું પરિજ્ઞામ વિચારીને કષાયનો ત્યાગ કરવાનો દઢ નિશ્ચય કરે છે. 'ગમે તે સંયોગોમાં પણ મારે કષાય નથી કરવો' એવા નિશ્ચયબળ સહિત તે કષાયને ટાળવાનો ઉદ્યમ કરે છે. અનર્થકારી કષાયો કયાં કારણોથી ઉત્પન્ન થાય છે અને તેને શાંત કરવાના ઉપાયો કયા છે? તે સંબંધી વિચાર કરીને તે પોતાનાં મન, વચન અને કાયાથી કષાય ઉત્પન્ન થવાના હેતુઓનો ત્યાગ કરે છે અને તેને ઉપશમાવવાના હેતુઓનું સેવન કરે છે. તે કષાયની વૃત્તિ ઊઠે ત્યારે ત્યાંથી પાછો ફરે છે. પુનઃ કષાયભાવ ન જાગે તે સંબંધી વિચાર કરી દઢ સંકલ્પપૂર્વક શાંત ભાવમાં રહેવાનો પ્રયત્ન કરે છે. તે પોતાની ભાવદશા પ્રત્યે જાગૃત રહે છે. તે નિરંતર કષાયને નિયંત્રિત કરવાનો પ્રયાસ કરતો રહે છે.

જિજ્ઞાસુ જીવ કષાય માટેની પોતાની જવાબદારી સ્વીકારે છે. પહેલાં તે એમ માનતો હતો કે કષાય બીજાના કારણે થાય છે, માટે તે વસ્તુ, વ્યક્તિ કે પરિસ્થિતિને દોષ આપતો હતો; પરંતુ હવે તે સમજે છે કે કષાય થવામાં પોતે જ જવાબદાર છે. ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી મુનિસુંદરસૂરિજીકૃત, 'અધ્યાત્મકલ્પદ્ધમ', અધિકાર ૭, શ્લોક દ

'यत्कषायजनितं तव सौख्यं, यत्कषायपरिहानिभवं च । तद्विशेषमथवैतदुदर्कं, संविभाव्य भज धीर विशिष्टम् ।।' પર પોતાને કષાય કરાવતું નથી, પરંતુ જ્યારે પરનું અવલંબન લઈ પોતે સ્વયં રાગ-દેષરૂપ પરિશમન કરે છે ત્યારે કષાય થાય છે. પોતાના કષાયનું કારણ પોતે જ છે, અન્ય નથી. જિજ્ઞાસુ નિજદોષ ઉપર દષ્ટિ કેન્દ્રિત કરે છે. કષાય ઉત્પન્ન થતાં જિજ્ઞાસુ જીવ કષાયના બાહ્ય નિમિત્ત ઉપર લક્ષ નથી આપતો, પરંતુ પોતામાં ઉત્પન્ન થયેલ દોષનું નિરીક્ષણ કરે છે. જિજ્ઞાસુ જીવ પોતાના દોષનો સ્વીકાર કરીને પોતાના કષાય ઓછા કરવાનો પ્રયત્ન કરે છે. તે જાશે છે કે શાંત થવું તે જ દ્વાદશાંગીનો સાર છે, માટે તે સદૈવ શાંત ભાવમાં રહેવાનો પુરુષાર્થ કરે છે. શ્રીમદ્ લખે છે —

'સનાતન આત્મધર્મ તે શાંત થવું, વિરામ પામવું તે છે; આખી દ્વાદશાંગીનો સાર પણ તે જ છે. તે ષડ્દર્શનમાં સમાચ છે, અને તે ષડ્દર્શન જૈનમાં સમાચ છે.'

જિજ્ઞાસુ જીવ કષાયના અભાવ માટે પ્રાપ્ત પરિસ્થિતિનો શાંત સ્વીકાર કરે છે. પ્રાપ્ત પરિસ્થિતિમાં તે જાગૃત રહે છે કે જેથી તે વિચલિત થવા ન પામે. અભ્યાસ કરીને તે એવી સ્થિતિમાં પ્રવેશ કરે છે કે પ્રાપ્ત પ્રસંગમાં તેના મન ઉપર તનાવ થતો નથી. શાંત સ્વીકારપૂર્વક હસતે મુખે તે તેમાંથી પસાર થઈ જાય છે. તે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભના પ્રસંગોમાં ક્ષમા, માદવ, આર્જવ અને સંતોષનું સેવન કરી ઉદયને નિષ્ફળ બનાવે છે. આ પ્રકારે તેના કષાયના સંસ્કારો છૂટતા જાય છે. આમ, શ્રીમદે 'કષાયની ઉપશાંતતા'રૂપ જિજ્ઞાસુનું પ્રથમ લક્ષણ બતાવ્યું.

(૨) 'માત્ર મોક્ષઅભિલાષ'

જિજ્ઞાસુ જીવને એકમાત્ર મોક્ષની અભિલાષા હોય છે. તેના અંતરમાં સતત મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાનું લક્ષ હોય છે. તેનું જીવન આત્મલક્ષી હોય છે. તેનું ધ્યેય પોતાના શાંત સ્વરૂપમાં સ્થિર થવાનું જ હોય છે. તે પૂર્ણ શુદ્ધ આત્મદશા પ્રગટ કરવા માંગે છે. તેને નિશ્ચય થયો હોય છે કે 'પૂર્ણ ચિદાનંદસ્વરૂપ મારો આત્મા છે, પરંતુ સંસારમાં રખડતાં અનંત વાર મનુષ્યદેહ પામીને પણ મેં મારા આત્માને ઓળખ્યો નથી. અનંત કાળમાં કદી આત્માનું ધ્યાન કર્યું નથી. આત્માને ભૂલીને બાદ્ય પદાર્થોની ઇચ્છામાં જ રખડ્યો છું. અત્યાર સુધીનો અનંત કાળ આત્માના ભાન વગર ભ્રાંતિમાં જ ગયો છે. અનંત જન્મોમાં આત્માનું કલ્યાણ કર્યું નથી. હવે મારું આત્મકલ્યાણ સાધી આ જન્મારો હું સફળ કરીશ. હવે આત્મપ્રાપ્તિના પુરુષાર્થ વગર એક ક્ષણ પણ ગુમાવવી નથી. પૂર્ણસ્વરૂપની સાધના કરીને હું પરમાત્મદશા પ્રગટ કરીશ, સિદ્ધપદને અવશ્ય પ્રાપ્ત કરીશ.' આમ, તેને માત્ર મોક્ષપ્રાપ્તિ જ કર્તવ્યરૂપ લાગે છે. શ્રીમદૃ લખે છે —

'અનંત વાર દેહને અર્થે આત્મા ગાળ્યો છે. જે દેહ આત્માને અર્થે ગળાશે તે ૧- 'શ્રીમદ્ રાજ્યંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૬૫ (વ્યાખ્યાનસાર-૨, ૪-૧૮) દેહે આત્મવિચાર જન્મ પામવા યોગ્ય જાણી, સર્વ દેહાર્થની કલ્પના છોડી દર્ઘ, એક માત્ર આત્માર્થમાં જ તેનો ઉપયોગ કરવો, એવો મુમુક્ષુ જીવને અવશ્ય નિશ્ચય જોઈએ.'^૧

જિજ્ઞાસુ જીવના અંતરમાં અહર્નિશ મોક્ષની ભાવનાનું રટણ ચાલતું હોય છે. 'અહો! મારું મોક્ષરૂપી કાર્ય કઈ રીતે થાય? મને મારા આત્માનો અનુભવ કેવી રીતે થાય?' એવી ભાવના તે નિરંતર ભાવે છે. આ ભાવનામાં પણ તેને ખૂબ આનંદ વેદાય છે. તે મોક્ષની યાત્રાની તૈયારીમાં જ ધન્યતા અનુભવે છે. યાત્રાધામ ઘણું દૂર છે, યાત્રા લાંબી છે, હજુ ઘણું ચાલવાનું છે; પણ અત્યારથી જ અંતરમાં આનંદ છે, ઉત્સાહ છે. તે વિચારે છે કે 'અત્યારે આટલો આનંદ છે તો મોક્ષધામમાં પહોંચતાં તો કેટલો હશે! પ્રતીક્ષામાં આટલો આનંદ છે તો પ્રાપ્તિમાં કેટલો હશે! સાધનામાં આટલો ઉમંગ છે તો સિદ્ધિમાં કેટલો હશે! મોક્ષની ભાવનામાં જો અંતર ઝૂમી ઊઠે છે તો મોક્ષ મળશે ત્યારે કેવું મહાસુખ પ્રાપ્ત થશે!' જિજ્ઞાસુને મોક્ષ ક્યારે પ્રાપ્ત થશે એની ખબર નથી, પણ એ પ્રાપ્ત થશે એ વિચારમાત્રથી તેનું હૃદય નાચી ઊઠે છે. તેને મોક્ષ પાટે અત્યંત આતુરતા થાય છે. મોક્ષ ક્યારે મળશે એની ઝંખના થાય છે. તેને મોક્ષ વિના ચાલે એમ નથી. જિજ્ઞાસુના હૃદયમાં મોક્ષ માટે આવો ઉમંગ હોય છે.

એકમાત્ર મોક્ષની જ અભિલાષા હોવાથી જિજ્ઞાસુ જીવને બીજા કશાની અભિલાષા હોતી નથી. જિજ્ઞાસુ જીવને મોક્ષપ્રાપ્તિની ઇચ્છા હોય છે, પણ કોઈ પણ પ્રકારના ભોગોની અભિલાષા નથી હોતી. તેને સાંસારિક ફળની આકાંક્ષા નથી હોતી. તેને સંસારની કોઈ પણ સિદ્ધિની કામના રહેતી નથી. કોઈ ઊંચા હોદ્દા આદિની તેને ખેવના રહેતી નથી. તે સમૃદ્ધિ, સામાજ્ય આદિ સાધવા નથી માંગતો, પણ સ્વરૂપને સાધીને શિવપુર સાધવા માંગે છે. તેને ધનાદિ ઇષ્ટ સંયોગોની પ્રાપ્તિ પ્રયોજનભૂત નથી લાગતી. લક્ષ્મી-અધિકાર વગેરે જગતની જંજાળથી તે દૂર રહેવા ઇચ્છે છે. જગતની જંજાળની ચિંતા આડે જેને આત્માના વિચારનો પણ અવકાશ નથી તેનું જીવન નકામું ચાલ્યું જાય છે; પરંતુ જિજ્ઞાસુ જીવને જગતની જંજાળની ચિંતાનો વળગાડ છૂટીને, લક્ષ્મી વગેરે પરિગ્રહની તૃષ્ણા છૂટીને માત્ર મોક્ષની અભિલાષા વર્તતી હોય છે. તે જગતની બધી ઇચ્છાઓ, તૃષ્ણાઓ છોડી મોક્ષની અભિલાષામાં જ સદા રત રહે છે.

વિશ્વમાં શું સારું છે, સાચું છે, ઉપાદેય છે તે જિજ્ઞાસુને સમજાઈ ગયું હોવાથી તેની પ્રાપ્તિના માર્ગે ચાલીને પોતાનું કલ્યાણ સાધવાની ઉત્કટ અભિલાષા સેવે છે. મોક્ષપ્રાપ્તિ જ તેનું એકમાત્ર ધ્યેય છે અને સ્વાભાવિક રીતે જ તેને તે ધ્યેયને વરેલા એવા મોક્ષપ્રાપ્ત આત્માઓ તેમજ મોક્ષપ્રાપ્તિના પ્રયત્નમાં ઉદ્યમવંત આત્માઓ પ્રત્યે પ્રીતિ-ભક્તિ હોય છે. મોક્ષ તેમજ મોક્ષપ્રાપ્ત અને મોક્ષકામી આત્માઓ પ્રત્યેના આ ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૫૫૮ (પત્રાંક-૭૧૯)

વેગે દોડતા પ્રેમપ્રવાહને શાસ્ત્રીય પરિભાષામાં સંવેગ કહેવાય છે. પંડિત શ્રી રાજમલજી કહે છે કે ધર્મમાં તથા ધર્મના ફળમાં આત્માના પરમ ઉત્સાહને સંવેગ કહેવાય છે અથવા ધાર્મિક પુરુષોમાં અનુરાગ તથા પંચ પરમેષ્ઠીમાં પ્રીતિ રાખવાને પણ સંવેગ કહેવાય છે. આમ, મોક્ષ પ્રત્યે ગમન કરવાના અદમ્ય ઉત્સાહરૂપ 'માત્ર મોક્ષઅભિલાષ' તે જિજ્ઞાસુનું બીજું લક્ષણ છે.

(૩) 'ભવે ખેદ'

જિજ્ઞાસુ જીવને ભવનો ખેદ હોય છે. જીવ અનાદિ કાળથી સંસારમાં પરિભમણ કરી રહ્યો છે. અનંત કાળનું અજ્ઞાન, અનંત જીવનનો વ્યાઘાત, અનંત મરણ, અનંત શોક સહિત જીવ ભવચકમાં ભમ્યા કરે છે. જન્મ, જરા, મરણ, સંયોગ, વિયોગ વગેરે અનેક પ્રકારનાં દુઃખોની બહુલતા જોઈને જિજ્ઞાસુ જીવના અંતરમાં ભવનો ઉદ્દેગ જાગી ચૂક્યો હોય છે. સ્વરૂપના ભાન વિના ક્ષણે ક્ષણે પરભાવમાં રાચવારૂપ ભવભ્રમણનો તેને થાક લાગે છે અને આ ભવભ્રમણનો અંત લાવવાની તેને તીવ્ર ઇચ્છા રહે છે. શ્રીમદ્ લખે છે —

'આ આત્માએ સંસારસમુદ્રમાં પર્યટન કરતાં કરતાં સર્વ ભવ કીધા છે. એ સંસારી જંજીરથી હું ક્યારે છૂટીશ? એ સંસાર મારો નથી; હું મોક્ષમથી છું;'^ર

જિજ્ઞાસુ જીવને ભૌતિક જીવનની પોકળતા અને નિઃસારતા સમજાઈ હોવાથી સંસાર, દેહ અને ભોગ પ્રત્યેના તેના અભિગમમાં પલટો આવે છે. તેને સંસાર પ્રત્યે વૈરાગ્ય જાગે છે. તેને સત્ તરફ રુચિ થવાથી સમસ્ત સંસાર તરફની રુચિ ઊડી જાય છે. સંસારના સ્વરૂપનું વિચારપૂર્વક નિરીક્ષણ કરતાં તેને એમાં જરા પણ સુખ-સમાધિ આદિ લાભ નથી દેખાતો, પણ જન્મ, જરા, મરણ, રોગ, શોક વગેરેથી તથા આધિ-વ્યાધિ-ઉપાધિથી સંપૂર્ણપણે વ્યાપક હોવાથી દુઃખના ધામરૂપ એવો સંસાર અસાર જણાય છે. તેને સંસાર અનંત દુઃખમય, અનંત ખેદમય, અવ્યવસ્થિત, ચળ-વિચળ તથા અનિત્ય ભાસે છે. તેને સંસારવાસ ભાલાની અણી સમાન લાગે છે. તે જાણે છે કે શરણ અને નિર્ભયપણાથી નિરંતર રહિત એવા આ સંસારને વિષે એક પછી એક પ્રાણી મરતાં જ જાય છે. મરણ પાસે પ્રાણીને કોઈ શરણરૂપ નથી. તેથી તે જે ભાવથી જન્મ-મરણ મળે છે તે ભાવને જ ટાળી દેવા માંગે છે. તે સ્વભાવનું શરણ સ્વીકારી વિભાવને ટાળવા માંગે છે. તે પોતાના અવિનાશી આત્માનું શરણ અંગીકાર કરે છે. તે અશરણ

'संवेगः परमोत्साहो धर्मे धर्मेफले चितः । सधर्मेष्वनुरागो वा प्रीतिर्वा परमेष्टिषु ।।'

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૫ (ભાવનાબોધ, ઉપોદ્ઘાત)

૧- જુઓ : પંડિત શ્રી રાજમલજીકૃત, 'પંચાધ્યાયી', ઉત્તરાર્ધ, શ્લોક ૪૩૧

સંસારમાં એક ક્ષણ પણ રહેવા ઇચ્છતો નથી.

દેહના સ્વરૂપનું ચિંતન કરતાં જિજ્ઞાસુ જીવને દેહમાંથી આસક્તિ ઘટે છે. આત્મા સાથે દેહ સંયોગ સંબંધે જોડાયેલો છે અને તે સંયોગ ક્ષણભંગુર હોવાથી જિજ્ઞાસુને દેહમાં મમત્વ કરવા જેવું કાંઈ લાગતું નથી. તે જાણે છે કે દેહ રોગનો ભંડાર છે. તેના સાડા ત્રણ કરોડ રોમમાં, પ્રત્યેક રોમે પોણા બે રોગ વસેલા છે. ચામડીના કારણે તે ઉપરથી રૂપાળો લાગે છે, પણ તેનું બંધારણ તો મળ, મૂત્ર, હાડ, માંસ, લોહી, પરુ અને શ્લેષ્મથી બનેલું છે. નિંદનીય વસ્તુઓનો સમુદાય હોવાથી જિજ્ઞાસુ જીવને તે અપવિત્ર અને અરમણીય ભાસે છે. તે વિચારે છે કે 'આ દેહ તો કૃતઘ્ન છે. આ દેહની ગમે તેટલી સેવા કરીએ તોપણ તે રોગ-દુઃખ વગેરે ઉપજાવનાર છે. દેહ વિનાશી છે, હું અવિનાશી છું. બન્નેમાં અત્યંત વિલક્ષણતા છે. હું એનો નથી અને એ મારો નથી. આવા દેહમાં શું મમતા કરવી? હવે તો મને કદી પણ દેહ ન મળો એવી જ મારી ઇચ્છા છે.' જિજ્ઞાસુ જીવ શરીરની અપાવન કેદમાંથી આઝાદ થઈ અશરીરી થવા માંગે છે. તેને તો બીજું શરીર ધારણ કરવું જ હોતું નથી.

જિજ્ઞાસુ જીવનું વલણ ભોગાભિમુખ ન રહેતાં આત્માભિમુખ બને છે. ભોગ-સંપત્તિ તો વીજળી અને ઇન્દ્રધનુષ સમાન ચંચળ છે. આવું ક્ષણિક સુખ મેળવવા જતાં અનંત આત્મિક સુખ પ્રાપ્ત કરવાનું રહી જાય છે. ભોગસામગ્રીથી પ્રાપ્ત થતું સુખ ઇન્દ્રિયજન્ય, પરાધીન, આકુળતાયુક્ત, અતૃપ્તિકારક, અસ્થિર અને નાશવંત છે; જ્યારે આત્મિક સુખ તો અતીન્દ્રિય, સ્વાધીન, નિરાકુળ, સંતોષકારક, સ્થિર અને અવિનાશી છે. લક્ષ્મી, કુટુંબ, પરિવાર, અધિકાર વધવાથી આત્માનાં સુખમાં કોઈ પણ પ્રકારે વૃદ્ધિ થતી નથી; પરંતુ આ સર્વ પ્રત્યેના મોહથી ચોર્યાસી લાખ યોનિમાં જન્મ-મરણના ફેરાની વૃદ્ધિ થાય છે, માટે જિજ્ઞાસુ જીવને ભોગસામગ્રી પ્રત્યે રુચિ રહેતી નથી. તેને વૈભવ આદિમાં સુખ ભાસતું નથી. તેને નિશ્ચય થઈ ગયો છે કે સુખ પરમાંથી આવતું નથી. સુખ તો પોતાના આત્મામાં જ છે.

આ પ્રમાણે, જિજ્ઞાસુ જીવને સંસાર, દેહ અને ભોગ પ્રત્યે વૈરાગ્ય પ્રગટે છે. તેને ભવનો ખેદ વર્તે છે. તેને ભવભ્રમણનો થાક લાગે છે. ભવના દુઃખથી ઉદ્વિગ્ન થવાથી તેને ભવનો અંત કેવી રીતે આવી શકે એ માટે જિજ્ઞાસા થાય છે. આત્માર્થી જીવ સમસ્ત સંસારપ્રવૃત્તિઓની પાર પહોંચીને નિર્વિકાર અને પરમાનંદસ્વરૂપ નિજ પરમાત્મામાં સ્થિત થવાની ઇચ્છા કરે છે. આને શાસ્ત્રીય પરિભાષામાં નિર્વેદ કહેવાય

१- જુઓ : आयार्थश्री पद्मनंदिस्वामीकृत, 'पद्मनंदि पंचविंशतिः', अधिकार ८, श्लोक १७ 'संप्रत्येतदशेषजन्मजनकव्यापार पारस्थितं स्थातुं वाञ्छति निर्विकारपरमानन्दे त्विय ब्रह्मणि ।।' છે. ^૧ આમ, શ્રીમદે '**ભવે ખેદ'**રૂપ જિજ્ઞાસુનું ત્રીજું લક્ષણ બતાવ્યું.

(૪) 'અંતર દયા'

જિજ્ઞાસુ જીવને અંતરદયા હોય છે. કષાયોના ઉપશમનના કારણે પરિણામ કોમળ થવાથી જિજ્ઞાસુ જીવને એકેન્દ્રિયથી માંડીને પંચેન્દ્રિય પર્યંતના સર્વ જીવો માટે અંતરથી દયા પ્રગટે છે. તેને સર્વ જીવો પ્રત્યે અનુકંપા જાગે છે. તે પોતાનાં મન-વચન-કાયાથી કોઈ પણ પ્રાણીને દુઃખ ન થાય એવી કાળજી રાખે છે. દુઃખથી પીડિત જીવોને જોઈને તેના અંતરમાં એમના પ્રત્યે સહાનુભૂતિ પ્રગટે છે અને એમને દુઃખથી મુક્ત કરવાની ભાવના જાગે છે તથા તે માટે તે યથાશક્તિ પ્રયત્ન પણ કરે છે. પાત્રતાની ખીલવણી માટે દયાના આવા ભાવ થવા આવશ્યક છે. મોક્ષમાર્ગે પ્રયાણ આદરવા માટે જીવમાં દયાનાં પરિણામ જાગવાં જરૂરી છે.

જિજ્ઞાસુ જીવને સ્વદયા અને પરદયા બન્ને હોય છે. સ્વદયા એટલે અનાદિ કાળથી બંધનઅસ્ત રહેલા સ્વાત્માની દયા. અનંત કાળથી અજ્ઞાન અને અજાગતિના કારણે આત્માએ અનંત પ્રકારનાં દુઃખો સહન કર્યાં છે. ચારે ગતિમાં અનંત વાર જન્મ-મરણ કરી અનંત દુઃખ ભોગવ્યાં છે. પોતાનું આત્મસ્વરૂપ ભૂલી પરમાં અહં-મમબુદ્ધિ કરી, પરની ચિંતા કરી, રાગાદિ પરભાવોમાં નિમગ્ન રહી, સ્વરૂપ સખનો નિરંતર વિયોગ રહે તેવાં ભયંકર ભાવમરણમાં પ્રત્યેક પળે તે રાચી રહ્યો છે અને તેથી આત્માના અનંત જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર આદિ ગણોનો ઘાત થઈ રહ્યો છે. જ્યાં ચૈતન્ય-પ્રાણનો ઘાત છે ત્યાં ચોક્કસ હિંસા છે. જ્યાં સગાદિ કષાયવશ પ્રમાદવૃત્તિ છે. ત્યાં અન્ય જીવ મરે કે ન મરે તોપણ ચોક્કસ હિંસા છે: કેમ કે કષાય વડે પ્રથમ પોતે પોતાના ચૈતન્યપ્રાણને તો હણે જ છે, પછી ભલે બીજા જીવોની હિંસા થાય કે ન થાય. પોતાના કષાયભાવથી જ હિંસા થાય છે. પરમાર્થદેષ્ટિએ તો જીવમાં રાગાદિ ભાવોની ઉત્પત્તિ ન થવી તે જ અહિંસા છે અને રાગાદિ ભાવોની ઉત્પત્તિ થવી તે જ હિંસા છે. આ જિનાગમનો સાર છે. જીવ જો પોતાને જાણે તો જ તેનું જીવન સાર્થક છે. સ્વનો પરિચય ન કરે, સ્વને પ્રાપ્ત કરવાનો પુરુષાર્થ ન કરે અને પરને જાણવા, બદલવા. જીતવામાં લાગેલો રહે તો એ પોતાને માટે ખાડો જ ખોદી રહ્યો છે. એનો શ્રમ જ સંસાર બનીને ઊભો રહી જાય છે. આ તો નરી આત્મહત્યા જ છે.

જિજ્ઞાસુ જીવ સ્વાત્માનો ઘાત રોકવા માટે સૂક્ષ્મ વિચારોમાં ઉદ્યમવંત થાય છે. તેને સ્વને ભાવમરણથી બચાવવાની ભાવના જાગે છે. તે સ્વ માટે અપાર દુઃખ ૧- 'માત્ર મોક્ષાભિલાષ'રૂપ સંવેગ અને 'ભવે ખેદ'રૂપ નિર્વેદ એ બન્નેમાં માત્ર વિવક્ષાભેદ જ છે. સંવેગ વિધેયાત્મક છે અને નિર્વેદ નિષેધાત્મક છે. સંવેગમાં મોક્ષની પ્રાપ્તિનો ભાવ છે અને નિર્વેદમાં ભવભ્રમણથી નિવૃત્તિનો ભાવ છે.

અનુભવે છે કે 'અહો! મેં મારા આત્માને આટલો બધો દુઃખી કર્યો છે. મારા આત્માને મેં જ અનાદિ કાળથી વિષય-કષાયની આગમાં દઝાડ્યો છે; નરક, નિગોદ આદિમાં રઝળાવી તેને બેસુમાર ત્રાસ આપ્યો છે અને અનંત કાળ પર્યંત અનંતું દુઃખ આપ્યું છે. પોતાના આત્માની દયા પ્રગટતાં તે પોતાના આત્માનો ભીષણ અને ભયંકર ભવાબ્ધિથી ઉદ્ધાર કરવાના પ્રયત્નમાં લાગે છે. તે સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર પ્રગટાવી પોતાના આત્માનું રક્ષણ કરવાનો પુરુષાર્થ કરે છે. જિજ્ઞાસુ જીવને આવી સ્વદયા વર્તતી હોય છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

'આ આત્મા અનાદિકાળથી મિથ્યાત્વથી ગ્રહાયો છે, તત્ત્વ પામતો નથી, જિનાજ્ઞા પાળી શકતો નથી, એમ ચિંતવી ધર્મમાં પ્રવેશ કરવો તે 'સ્વદયા'.'^૧

જિજ્ઞાસુ જીવને જેમ પોતાના આત્માને બંધનમાંથી છોડાવવાનાં પરિજ્ઞામ હોય છે, તેમ તેને અન્ય આત્મા પણ કર્મબંધનથી મુક્ત થઈ પોતાનું કલ્યાણ કરે એવી ભાવના હોય છે. શારીરિક, માનસિક વગેરે અનેક પ્રકારની દુઃખરાશિ જીવોને સતાવી રહી છે. મિથ્યાદર્શન, અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને અશુભ યોગથી જે ઉત્પન્ન કર્યું હતું તે કર્મ ઉદયમાં આવીને જીવોને દુઃખ આપે છે. તેઓ કર્મવશ દુઃખ ભોગવી રહ્યા છે. તેમનાં દુઃખથી દુઃખી થવું તે કરૂણા છે. સંસારી જીવોએ ઉપાર્જન કરેલાં કર્મોના કારણે તેમને અનેક પ્રકારનાં દુઃખો ભોગવતાં જોઈને જિજ્ઞાસુ જીવને તેઓ પ્રત્યે દયા જાગે છે. તેઓ મિથ્યાત્વાદિથી મુક્ત થઈ, ધર્મસન્મુખ થાય એવી સદ્ભાવનાપૂર્વક તે યથાશક્તિ અને યથામતિ એ દિશામાં પ્રયાસ કરે છે. તેના અંતરમાં એવા ભાવ જાગે છે કે 'અહો! બધા જીવો આત્મસ્વરૂપને અનુભવો. બધા જીવો આત્માના શાંત રસમાં મગ્ન થાઓ. બધા જીવો આત્માના આનંદરસના સમુદ્રમાં તરબોળ થાઓ.' આ પ્રકારે તેને પોતાની અને પરની સાચી દયા હોય છે. આમ, શ્રીમદે 'અંતર દયા'રૂપ જિજ્ઞાસુનું ચોથું લક્ષણ બતાવ્યું.

મોક્ષમાર્ગના અધિકારી માટે જે સદ્દ્ગુણોની મૂડી જોઈએ, તેનો ખ્યાલ શ્રીમદે ઉપર્યુક્ત ચાર લક્ષણો દ્વારા આપ્યો છે. મુમુક્ષુતા માટે આ ચાર સદ્દ્ગુણો આવશ્યક છે. જીવમાં આ ચાર સદ્દ્ગુણો જેટલા પ્રમાણમાં ખીલ્યા હોય તેટલા પ્રમાણમાં તેની મુમુક્ષુતા ખીલી ગણાય. જે જીવમાં આ સદ્દ્ગુણો બિલકુલ પ્રગટ થયા નથી તે જીવમાં

'शारीरं, मानसं, स्वाभाविकं च दुःखमसह्यमाप्नुवतो दृष्ट्वा हा वराका मिथ्यादर्शनेनाविरत्या कषायेणाशुभेन योगेन च समुपार्जिताशुभकर्मपर्यायपुद्रलस्कंधतदुदयोद्भवा विषदो विवशाः प्राप्नुवन्ति इति करुणा अनुकंषा ।'

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૬૪ (મોક્ષમાળા, શિક્ષાપાઠ-૯)

૨- જુઓ : આચાર્યશ્રી શિવકોટિજીકૃત, 'ભગવતી આરાધના', ગાથા ૧૬૯૬ની ટીકા

જરા પણ મુમુક્ષુતા નથી. મુમુક્ષુતા શાસ્ત્રવાંચન, ભક્તિ, પૂજા, દાન, વ્રત, તપ કરવા માત્રથી ઉત્પન્ન થઈ જતી નથી. જો ઉપરોક્ત ચાર ગુણો પ્રગટ થાય તો મુમુક્ષુતા ઉત્પન્ન થઈ ગણાય. એ પ્રકારની અંતરપ્રવૃત્તિ થાય તો જ મુમુક્ષુતા ઉત્પન્ન થાય અને તો જ કાર્યસિદ્ધિ થાય. મુક્તિપથનો યાત્રિક ઉપરોક્ત ભાવોથી ઓછાવત્તા અંશે વાસિત હોવો જ જોઈએ. આ ભાવોથી જે અપરિચિત છે, જેના જીવનમાં આ ભાવો વણાયા નથી, તેને ધર્મની પ્રાપ્તિ થવી સંભવિત નથી. ઉપર્યુક્ત ગુણો આવ્યા વિના પરમાર્થ-માર્ગ યથાર્થપણે સમજી શકાતો નથી. શ્રીમદ્ લખે છે –

'મુમુસુ જીવમાં શમાદિ કહ્યા તે ગુણો અવશ્ય સંભવે છે; અથવા તે ગુણો વિના મુમુસુતા ન કહી શકાય. નિત્ય તેવો પરિચય રાખતાં, તે તે વાત શ્રવણ કરતાં, વિચારતાં, ફરી ફરીને પુરુષાર્થ કરતાં, તે મુમુસુતા ઉત્પન્ન થાય છે. તે મુમુસુતા ઉત્પન્ન થયે જીવને પરમાર્થમાર્ગ અવશ્ય સમજાય છે.'

જીવ અનાદિ કાળથી પોતાના સ્વરૂપને ભૂલી સંસારમાં રખડી રહ્યો છે. જીવને ધર્મ પામવાનો મુખ્ય અવસર મનુષ્યપણામાં મળે છે. મનુષ્યભવ એ સમ્યગ્દર્શન પામીને ભવભમણનાં દુઃખોથી છૂટવાનો એક મહાન અવસર છે. જીવ જો મનુષ્યભવમાં ઉત્કૃષ્ટ પુરુષાર્થ કરે તો ફરીથી શરીર પ્રાપ્ત ન થાય, કર્મોની પરાધીનતા દૂર થાય અને આત્મા સ્વાધીન થાય. મનુષ્યશરીર મલિન અને ક્ષણભંગુર હોવા છતાં જો પોતાના આત્માનું હિત કરવામાં આવે તો મનુષ્યશરીરમાં રહેલો આત્મા પોતાની બહુ ઉન્નતિ કરી શકે છે. મનુષ્યજીવનને ધર્મસાધનામાં જોડવામાં આવે તો એનાથી ઘણાં ઉત્તમ ફળોની પ્રાપ્તિ થઈ શકે છે અને જો એને ભોગોમાં લગાડવામાં આવે તો બધું વ્યર્થ જાય છે. મનુષ્ય-અવતારને વેડફી નાંખવામાં આવે તો તિર્યંચ-નરક ગતિમાં જવું પડે છે, તેથી જીવે સર્વ પ્રકારે જાગૃત થઈને અત્યંત દુર્લભ એવા મનુષ્યદેહનો આત્મહિતાર્થે પૂરેપૂરો સદુપયોગ કરવો જોઈએ. તેની પળે પળનો પૂર્ણ લાભ ઉઠાવવો જોઈએ.

મહાદુર્લભ માનવજીવનની કિંમત સમજી, સાવધાન થઈ જીવે આત્મહિતનું કાર્ય કરવું જોઈએ; પરંતુ મનુષ્યભવ પામીને પણ ઘણા જીવો ધર્મની આરાધના કરતા નથી. તેઓ મળેલ માનવભવને પ્રમાદાદિમાં વેડફી નાખે છે. તેઓ મનુષ્યભવનો અમૂલો અવસર એમ ને એમ ચાલ્યો જવા દે છે અને ભવની વૃદ્ધિ થાય એવા પ્રપંચોમાં રાચે છે. મનુષ્યભવની દરેકે દરેક ક્ષણમાં ભવના અભાવનું કાર્ય કરવાને બદલે તેઓ પાપનાં કાર્યો કરી ભવ વધારે છે. તેઓ ધર્મ કરવા ઇચ્છતા નથી, ધર્મની રુચિ પણ કરતા નથી. કદાચ ધર્મ કરવા જાય તોપણ અનેક પ્રકારની મિથ્યા માન્યતાથી ધર્મના નામે અધર્મ જ સેવે છે. કુદેવ-કુગુરુ-કુધર્મમાં જ ફસાયેલા રહે છે. ક્યારેક મહાભાગ્યથી ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૩૬૧ (પત્રાંક-૪૨૨)

તેમને સુદેવ-સુગુરુ-સુધર્મ મળે છે, પરંતુ પોતાની પાત્રતા નહીં હોવાના કારણે તે યોગ પણ નિષ્ફળ જાય છે. મુમુક્ષુતાના અભાવના કારણે સુયોગ સાંપડ્યા પછી પણ તેમને સમ્યગ્દર્શન થતું નથી અને તેથી સંસારચક્રમાં રખડે છે.

મુમુક્ષુતાના અભાવના કારણે અનેક સાધનો કરવા છતાં પણ જીવનાં જન્મ-મરણ ટળ્યાં નથી. જીવની અનેક ભૂલોમાંથી મુમુક્ષુતાનો અભાવ એ જ એક મુખ્ય ભૂલ છે. જીવને મોહનું પોષણ કરવામાં મૂંઝવણ નથી અનુભવાતી, બલ્કે મીઠાશ લાગે છે. જ્યારે વૈરાગ્ય-ઉપશમ પ્રગટે, વિષય-કષાય મંદ થાય, સુદેવ-સુગુરુ પ્રત્યે અત્યંત પ્રેમ-બહુમાન આવે ત્યારે જ ધર્મ પામવાની ભૂમિકા તૈયાર થઈ ગણાય. મુમુક્ષુતા પ્રગટતાં ઉત્સાહપૂર્વક સંનિષ્ઠ અને પ્રામાણિક પુરુષાર્થ શરૂ થાય છે.

કષાયની ઉપશાંતતા, માત્ર મોક્ષની અભિલાષા, ભવનો ખેદ અને અંતર દયા એ ચાર સદ્ગુણો પ્રાપ્ત થતાં ધન, સંપત્તિ, ઐશ્વર્ય, વૈભવવિલાસ પાછળની આંધળી દોડ અટકી જાય છે; તેમજ સમાજમાં પ્રતિષ્ઠા કે પદપ્રાપ્તિ અર્થેની લાલસા, યશકીર્તિ વિસ્તારવાની કામના કે જગતમાં પોતાનું નામ મૂકી જવાની ખેવના આદિ તૃષ્ણાઓ અંતરમાંથી ઓસરી જાય છે. આમ, નિર્ધક અને અશુભ સંકલ્પ-વિકલ્પની જાળથી મુમુક્ષુનું ચિત્ત બહુધા મુક્ત રહેતું હોવાથી વિક્ષેપ વિના તે એકાગ્રતાપૂર્વક સત્સાધનમાં પ્રવૃત્ત રહે છે.

કષાયની ઉપશાંતતાદિ ચાર લક્ષણોથી સંપન્ન એવા મુમુક્ષુને સ્વરૂપજિજ્ઞાસા ઉત્પન્ન થાય છે. 'મારું મૂળ સ્વરૂપ કેવું છે એ ઓળખવું મારે જરૂરી છે' એવી સ્વરૂપની અંતરજિજ્ઞાસા ઉત્પન્ન થાય છે. તે સ્વતત્ત્વનો વિચાર કરે છે કે 'હું કોણ છું? હું મારી જાતને શું સમજું છું? જે હું દેખાઉં છું તે શું ખરેખર હું છું? મારામાં શું થઈ રહ્યું છે? મારી દશામાં દુઃખ અને અશાંતિ કેમ છે? તે ટાળીને સુખ-શાંતિ પ્રાપ્ત કરવા માટે મારે શું કરવું જોઈએ? દુઃખમાંથી તો કાંઈ સુખ ન આવે, તો દુઃખ વગરનું એવું કયું તત્ત્વ છે કે જેમાંથી મને સુખ મળે? મારામાં એવું શું છે કે જેની સન્મુખ જોતાં દુઃખ ટળે અને સુખ પ્રગટે? મારા આત્મસ્વભાવમાં એવું શું છે કે જેના એક ક્ષણના અવલોકનથી અનંત કાળનું દુઃખ અને અનંત કાળનો થાક મટી જાય છે? સ્વરૂપમાં એવું તો શું છે કે જેથી કેવળી ભગવાનનો ઉપયોગ એક વાર અંદર જાય છે પછી તે બહાર આવતો જ નથી? કયા ઉપાયથી સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય? શું કરવાથી આ પ્રાપ્ત થયેલ મોંઘો માનવભવ સાર્થક થાય? અનંત કાળના પરિભ્રમણથી કઈ રીતે મુક્ત થવાય?'

જિજ્ઞાસા પ્રગટી હોવાથી આવા અનેક પ્રશ્નો તેને સહેજે ઊઠે છે. આ પ્રશ્નો તેના ઊંડાણમાં પ્રતિધ્વનિત થાય છે. આ જિજ્ઞાસાના પરિણામે તેનામાં એક અપૂર્વ જાગૃતિ આવે છે અને તેથી આત્માનુભૂતિની પુરોગામી એવી તત્ત્વમંથનની વૈચારિક પ્રક્રિયામાં જિજ્ઞાસુ જીવનો પ્રવેશ થાય છે. તે પ્રશ્નો અંતરની વેદના સાથે ઊઠતા હોવાથી તેને તેના સમાધાન માટે તાલાવેલી જાગે છે. તેને બીજું કાંઈ સૂઝતું નથી. તે કોઈ પણ હિસાબે પોતાને ઉઠેલા પ્રશ્નોના ઉત્તર મેળવવા માંગે છે. એના માટે તેને ઘણી ઉત્કંઠા અને ઝૂરણા હોય છે. એ જવાબ માટે તે પોતાનું સર્વસ્વ દાવ ઉપર લગાવવા તૈયાર થઈ જાય છે. આવી જેની તાલાવેલી હોય તે અવશ્ય સ્વરૂપની ઓળખાણ કરી સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ કરે છે.

જેમ કોઈ ચોર એક ઓરડીમાં બેઠો છે. રાતનો સમય છે અને તે એકલો છે. બાજુની ઓરડીમાં સોનાના દાગીનાનો ડબ્બો પડેલો છે એ તે જાણે છે. વચ્ચે ફક્ત એક પાતળી દિવાલ છે. તો શું ચોરને ઊંઘ આવશે? તે નિરાંતે લાંબો થઈને ઊંઘી જશે? ના. તેનું મન એ સોનાના દાગીનામાં છે, માટે તે એનો જ વિચાર કરશે, એને ચોરી જવાની યોજના ઘડશે, દિવાલમાં ક્યાં ખાતર પાડી શકાય એની તપાસ કરશે અને કોઈને ખબર ન પડે એ રીતે કેમ છટકી જવાય એનો રસ્તો શોધશે. ચોરનું દિલ સોનામાં છે અને સોનું પાસે જ છે, પછી ચોરને ઊંઘ આવે કઈ રીતે? તેવી જ રીતે આત્મા પાસે જ છે. જ્ઞાનીપુરુષો સ્વાનુભવના આધારે વારંવાર બોધ આપે છે કે 'તારી અંદર અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત સુખ અને અનંત વીર્ય પડ્યાં છે. તેના ભોગવટા આડે અજ્ઞાનની એક પાતળી દિવાલ જ નડે છે.' આવો બોધ મળ્યા પછી સાધકને ઊંઘ આવે જ કઈ રીતે? અને ઊંઘ આવે તો એ સાચો સાધક નથી. ચોરને સોનાની પ્રાપ્તિ માટે જેવી તાલાવેલી લાગે છે, તેવી તાલાવેલી ધર્મની નિધિ માટે સાધકને લાગે છે. તે અંધિનો ભેદ કરી નિજસ્વરૂપમાં સ્થિર થવા તડપતો હોય છે.

સ્વરૂપને જાણવા માટે તીવ્ર જિજ્ઞાસા જોઈએ. જો જિજ્ઞાસા ન હોય તો સાધનામાં પ્રગતિ થવી સંભવતી નથી. એક ધ્યેયપૂર્ણ યાત્રાથી, એક દિશા તરફ સમગ્ર જીવન-ધારાને લઈને ચાલવાના શ્રમથી મંજિલ પ્રાપ્ત થાય છે. જો જીવને દઢ જિજ્ઞાસા ઉત્પન્ન થાય તો તેને સત્યની મંજિલ અવશ્ય પ્રાપ્ત થાય છે. દઢ જિજ્ઞાસા બધી શક્તિઓને જાગૃત કરે છે. જિજ્ઞાસા દ્વારા શક્તિઓ પ્રગટ થતાં જીવ સંસારમાંથી નીકળી સત્ય તરફ વિહાર કરે છે. જિજ્ઞાસા વડે સંસારમાંથી નીકળી સત્ય તરફ જવાય છે અને કાર્ય શીદ્રમેવ સિદ્ધ થાય છે.

સાધકની જિજ્ઞાસા એટલી તીવ્ર હોય છે કે 'ગમે તે થાય, મારે કાર્ય સાધવું જ છે. મારે ગમે તે ભોગે સ્વરૂપસુખ જોઈએ જ છે.' જ્યાં આવી તીવ્ર ટુચિ હોય ત્યાં કોઈ પ્રતિકૂળતા આવે તોપણ નડતરરૂપ બનતી નથી. વ્યવહારમાં પણ જોવા મળે છે કે જેને ખરેખર ઊંઘ આવતી હોય તે બહારની કોઈ અનુકૂળતા-પ્રતિકૂળતા જોવા-વિચારવા અટકતો નથી, ગમે તે સ્થળે - ગમે તેવા સંજોગોમાં પણ તે સૂઈ શકે છે; પરંતુ જેને

ઊંઘ ન આવતી હોય તેને હજાર નખરાં સૂઝે છે. જેમ સાચી ઊંઘવાળાને બહારની પ્રતિકૂળતા નડતી નથી, તેમ આત્મહિતની સાચી રુચિવાળા જીવને બાદ્યની પ્રતિકૂળતા અટકાવી શકતી નથી. તે જાશે છે કે 'મારે જે કંઈ કાર્ય કરવાનું છે તે અંતરમાં કરવાનું છે અને આ તમામ પ્રતિકૂળતાઓ તો બહાર રહેલી છે. સ્વરૂપપ્રાપ્તિના કાર્યમાં તો રુચિનો અભાવ એ જ એકમાત્ર પ્રતિકૂળતા છે, માટે હું પ્રતિકૂળતાની ચિંતા છોડી સ્વપ્રયોજનની સિદ્ધિમાં મંદી પડું.'

આત્માને મેળવવા માટે કોઈ સંયોગની જરૂર નથી, જરૂર છે રુચિની. આત્માને મેળવવા માટે સ્થાનની જરૂર નથી, જરૂર છે સંકલ્પની. સંકલ્પથી સાધનાનું સાતત્ય જળવાઈ રહે છે. સંકલ્પની દઢતા જેટલી વધુ, સાધનાનું સાતત્ય એટલું વધારે. સાધના નિરંતર હોવી જોઈએ. જેમ પર્વત ઉપરથી સતત પડતો પાણીનો ધોધ તળેટીના પથ્થરને પણ તોડી નાખે છે, તેમ સાધક અજ્ઞાનરૂપી પથ્થર તોડવાનો પ્રયત્ન કરે તો એક દિવસ તે પથ્થર રેતી બનીને રસ્તો આપી દે છે. રસ્તો તો ચોક્ક્સ મળે છે, પણ એ રસ્તો તૈયાર નથી હોતો. તેને પુરુષાર્થના સાતત્ય વડે તૈયાર કરવો પડે છે; અને તે માટે દઢ સંકલ્પની, તીવ્ર જિજ્ઞાસાની આવશ્યકતા રહે છે.

જિજ્ઞાસા હોય તો જ જીવ સ્વરૂપમાં પ્રવેશી શકે છે. જીવે બાહ્ય પદાર્થોની ઝંખના છોડી, બહાર ભટકવું છોડી પોતાના આત્માની જિજ્ઞાસા કરવી જોઈએ. તેણે નિજાત્માની શોધ કરવી જોઈએ કે જે મેળવ્યા પછી કંઈ પણ મેળવવાનું બાકી રહેતું નથી. તેના અંતરાત્મામાંથી એવો અવાજ ઊઠવો જોઈએ કે 'હું એ પ્રાપ્ત કરવા ઇચ્છું છું કે જે પ્રાપ્ત થયા પછી કાંઈ જ પ્રાપ્ત કરવાનું બાકી રહેતું નથી.' આવી સર્વોત્કૃષ્ટ આત્મવસ્તુ પાછળ જ જીવન લગાવી દેવાનો અંતરમાં ભાવ જાગવો જોઈએ.

જો આત્માને પામવો હોય તો નાના નાના પ્રયાસ કામ નહીં આવે. તે માટે તો સમગ્ર જીવન જ પ્રયાસ બની જવું જોઈએ, રતીએ રતી દાવ ઉપર લગાવી દેવી જોઈએ. સંપૂર્ણ દાવ ઉપર લગાવવામાં આવે તો જ સફળ થવાય છે. મહાન કાર્ય કરવું હોય તો મહાન ઉદ્યમ કરવો પડશે. ધગશપૂર્વક શ્રમ કરવો પડશે. જીવ જાગૃત થઈ કમર કસશે અને પોતાની પૂરી શક્તિ લગાવશે તો તેને વિજય મળશે જ. જીવ જો પાત્રતા પ્રગટાવી પુરુષાર્થ કરશે તો તે અવશ્ય સિદ્ધિ મેળવશે.

આમ, જેને આત્મકલ્યાણની ભાવના હોય તેણે કષાયની ઉપશાંતતાદિ ચાર ગુણોરૂપ પાત્રતા અવશ્ય કેળવવી જોઈએ. મોક્ષમાર્ગની રુડી આરાધના અર્થે આ ચાર ગુણો અતિ ઉપયોગી હોવાથી શ્રીમદે પુનરુક્તિના ભોગે પણ આ પવિત્ર 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'માં તેનું ત્રણ વાર આલેખન કર્યું છે. ગાથા ૩૨માં તેનું નાસ્તિથી આલેખન કરવામાં આવ્યું હતું. ગાથા ૩૮માં આત્માર્થીનાં લક્ષણો દર્શાવતાં જે ગુણો કહેવામાં આવ્યા હતા, તે જ ગુણો માત્ર થોડા શાબ્દિક ફેરફાર સાથે અહીં ફરીથી કહેવામાં આવ્યા છે. ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા લખે છે —

'મુમુસુતાની યોગ્યતા માટે ચાર યથોક્ત મુમુસુલસણ અંત્રે સ્પષ્ટ ઉપદેશ્યાં છે. આ જ વસ્તુ મુમુસુ માટે અતીવ ઉપયોગી હોવાથી અંત્ર આત્મસિદ્ધિશાસ્ત્રમાં ડિંડિમ નાદથી ત્રણ વાર ઉદ્દાષી છે; આ ચાર લક્ષણ સંપન્ન મુમુસુને મોક્ષમાર્ગનો ખરો જિજ્ઞાસુ કહ્યો છે.'^૧

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે -

'કષાયની ઉપશાંતતા, થાય જ્ઞાન બળયોગ;
મટે અનાદિ કાળનો, રાજસ, તામસ રોગ.
સુર નર સુખ વાંછા તજી, માત્ર મોક્ષઅભિલાષ,
વિષય વાસના સર્વથા, જવા શ્રેષ્ઠ અભ્યાસ.
ઘણું કર્યું થાક્યો હવે, વિરામ લેવા હેત;
ભવે ખેદ અંતર દયા, સાચી આત્મસંકેત.
સદ્ગુરુ વચનામૃત તણો, પાકો પૂર્ણ વિશ્વાસ;
પડે નહીં મોહ પાસમાં, તે ક્ઢીએ જિજ્ઞાસ.'

* * *

૧- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', પૃ.૩૮૮

૨- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૧ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૨૯-૪૩૨)

ते किरा से अपने, भाग राष्ट्रिशिंद,

ગાથા ૧૦૮માં શ્રીગુરુએ સાચા જિજ્ઞાસુ જીવની પાત્રતા કેવી હોય તે દર્શાવતાં કહ્યું કે ક્રોધાદિ કષાયો જેના મંદ પડ્યા છે, જેને એક મોક્ષપદની પ્રાપ્તિ સિવાય બીજી કોઈ અભિલાષા નથી, સંસાર ઉપર ઉદાસીનભાવ વર્તે છે તથા સર્વે જીવો માટે અંતરમાં દયા વર્તે છે તે જિજ્ઞાસુ જીવ કહેવાય, અર્થાત્ આવા ગુણવાળો જે જીવ છે તે જ મોક્ષમાર્ગ પામવા લાયક છે.

આમ, મોક્ષમાર્ગનો સાચો અધિકારી એવો જિજ્ઞાસુ જીવ કયા ગુણોથી યથાર્થપણે ઓળખી શકાય તે સચોટપણે દર્શાવી, આવા દશાવાન જીવને સદ્દ્ગુરુનો યોગ થયા પછી માર્ગના ક્રમમાં તે કેવી રીતે આગળ વધે છે એ બતાવતાં શ્રીગુરુ કહે છે –

ાથા 'તે જિજ્ઞાસુ જીવને, થાય સદ્દગુટુબોધ; તો પામે સમકિતને, વર્તે અંતરશોધ.' (૧૦૯)

र्में ते જિજ્ઞાસુ જીવને જો સદ્દગુરુનો ઉપદેશ પ્રાપ્ત થાય તો તે સમક્તિને પામે, અને અંતરની શોધમાં વર્તે. (૧૦૯)

ભાવાર્થ જિજ્ઞાસાં ગુણ પ્રગટ્યો હોવાથી તેના અંતરમાં તત્ત્વ સંબંધી નિરંતર મંથન યાલ્યા કરે છે. 'હું કોણ છું?', 'પૂર્ણ સુખ શેમાં છે?', 'હું સુખ કેવી રીતે પ્રાપ્ત કરું?', 'શાંત દશા કેવી રીતે પ્રાપ્ત થાય?' ઇત્યાદિ તાત્ત્વિક મૂળભૂત પ્રશ્નોની વૈચારિક પ્રક્રિયા તેના અંતરમાં ઊઠ્યા કરે છે અને તેને તેના સમાધાનની તીવ ઉત્કંઠા રહે છે. પોતાની તત્ત્વજિજ્ઞાસા સંતોષવાની ખૂબ આતુરતા હોવાથી તે તત્ત્વગવેષણા કરે છે અને સત્ય સમજવા માટે વ્યાપક ખોજ આદરે છે. આ ખોજ દરમ્યાન તેને શાસ્ત્ર અને બુદ્ધિની મર્યાદાનું ભાન થાય છે અને તેથી પોતાના સાધનામાર્ગમાં આત્મજ્ઞ સંતોના માર્ગદર્શનને તે સ્વીકાર્ય અને આદેય ગણે છે. 'શાસ્ત્ર ઘણા મતિ થોડલી, શિષ્ટ કહે તે પ્રમાણ' એવી સમજ તેના અંતરમાં પ્રગટી હોવાથી તે શિષ્ટજનને પરમપ્રમાણરૂપ સ્વીકારી, તેમના બોધને મનનીય અને માનનીય ગણે છે.

શમ, સંવેગ, નિર્વેદ, અનુકંપા આદિ ગુણો જેનામાં પ્રગટ્યા છે એવા જિજ્ઞાસુ જીવને આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ અર્થે જ્ઞાનીપુરુષના પરમોપકારી સમાગમની તીવ ઇચ્છા રહ્યા કરે છે. પૂર્વના પરમાર્થપુષ્ટયનો ઉદય થવાથી, કોઈ ધન્ય પળે તેને શુભૠ્રણાનુબંધી

જ્ઞાનીપુરૂષના સમાગમનો સુયોગ થાય છે. સમાગમની ઝંખના પ્રબળ હોવાથી તે જીવ જ્ઞાનીપુરુષને ગુણ-લક્ષણથી ઓળખી લે છે અને તેમના પવિત્ર ચરણકમળનો આશ્રય સ્વીકારે છે. શ્રીગુરૂ શિષ્યની સત્યાત્રતા જોઈ, છુટવાનો કામી જાણી નિષ્કારણ કરણાથી તેને સત્પથદર્શન કરાવે છે, તત્ત્વબોધ આપે છે, તેમજ તત્ત્વ પામવા માટે સાધનાપદ્ધતિ અને તેનું રહસ્યમય સ્વરૂપ સમજાવે છે. સદ્ગુરુના બોધ દ્વારા તેને તત્ત્વ સંબંધી દઢ નિર્ણય થાય છે તથા સુખદાયક એવી સુવિચારદશા પ્રગટે છે અને તેથી તત્ત્વાર્થનું શ્રદ્ધાન, સ્વ-પરનું શ્રદ્ધાન, આત્મશ્રદ્ધાન થવાથી તેને વ્યવહાર સમક્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે. એકમાત્ર આત્મહિતના લક્ષે તત્ત્વની સમજણ કરનાર જિજ્ઞાસુ પોતાની સમજણને પ્રયોગમાં મૂકી અંતરની શોધમાં પ્રવર્તે છે. અનંત કાળથી નિરંતર બહિર્ભાવમાં વર્તતા જીવનું વલણ અંતરશોધ દ્વારા અંતર્મુખી થાય છે. અંતરશોધમાં પોતાની પરિણતિનું અવલોકન, ભેદજ્ઞાન અને સ્વરૂપસન્મુખતાનો અભ્યાસ સમાવેશ પામે છે. અંતરશોધમાં વર્તતા જિજ્ઞાસુ જીવને પરસંયોગની રુચિ ઘટતી જાય છે અને સ્વરૂપની રુચિ વધતી જાય છે. દિન દિન પ્રત્યે, પ્રસંગે પ્રસંગે અને પ્રવૃત્તિએ પ્રવૃત્તિએ સદ્દગુરૂના બોધનો વિચાર કરતાં તેના અનાદિના અધ્યાસનું બળ ઘટે છે, દર્શનમોહનો અનુભાગ મંદ પડે છે, સ્વરૂપના અભ્યાસમાં તીવ રુચિ જાગે છે અને સ્વાનુભૂતિ (નિશ્વય સમકિત) માટેની યોગ્યતા પ્રાપ્ત થાય છે.

વિશેષાર્થ પિશે અત્મા પરિણમે તે કેવળ ઉપયોગે, તન્મયાકાર, સહજ સ્વભાવે, નિર્વિકલ્પ-પણે આત્મા પરિણમે તે કેવળજ્ઞાન છે. તથારૂપ પ્રતીતિપણે પરિણમે તે સમ્યક્ત્વ છે. મુદ્દેવ-સુગુરુ-સુશાસ્ત્ર(સુધર્મ)ની શ્રદ્ધા થતાં તત્ત્વની શ્રદ્ધા થાય છે અને જીવ પોતાના ત્રિકાળી અખંડ ચૈતન્યસ્વરૂપ તરફ વળે છે, ત્યારે વિકલ્પોનો સંબંધ ટળતાં તેને સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે. વિકલ્પાત્મક અવસ્થામાં સુદેવ-સુગુરુ-સુશાસ્ત્ર(સુધર્મ)માં શ્રદ્ધા હોવી, તે દ્વારા છ દ્રવ્ય, નવ તત્ત્વને જાણી તેનું શ્રદ્ધાન કરવું તે વ્યવહાર સમ્યગ્દર્શન છે અને નિર્વિકલ્પ અવસ્થામાં સ્વસંવેદન કરવું, અર્થાત્ વિકલ્પોનો અભાવ કરી, પોતાના શુદ્ધાત્માની અનુભૂતિ કરવી તે નિશ્યય સમ્યગ્દર્શન છે.

આમ, સ્વાનુભૂતિ માટે અખંડ, ત્રિકાળી, ધ્રુવ ચૈતન્યતત્ત્વની શ્રદ્ધા કરવી આવશ્યક છે. સ્વમાં સ્વપશું માનવારૂપ આત્મશ્રદ્ધાન માટે પરનું પરરૂપ શ્રદ્ધાન પણ થવું ઘટે છે. સ્વની ઓળખાણ માટે પરને પરરૂપે જાણવું જરૂરી છે, કેમ કે પરને પરરૂપે ન જાણે તો તેમાં સ્વપશું સ્થપાઈ જવાનો સંભવ છે. પરથી વિભક્ત થવા અને સ્વમાં એકત્વ થવા માટે સ્વ-પરની ભિન્નતાનું શ્રદ્ધાન કરવું આવશ્યક છે. સ્વ-પરની સમજમાં જીવ-અજીવના સંયોગાદિથી થતી આસવાદિની પર્યાયોનું સ્વરૂપ સમજાય તો જ સ્વ-પર ૧- જુઓ : 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૭૨૦ (ઉપદેશછાયા-૧૦)

યથાર્થપણે સમજાય. આસવાદિની સમજણ વિના આત્માની શુદ્ધ-અશુદ્ધ અવસ્થા સમજાતી નથી. આસવ-બંધના શ્રદ્ધાન વિના તે પૂર્વ અવસ્થાને શા માટે છોડે? સંવર-નિર્જરાનું શ્રદ્ધાન થયા વિના, રાગાદિથી રહિત થઈ પોતાના સ્વરૂપમાં ઉપયોગ લગાવવાનો ઉદ્યમ કેવી રીતે થાય? જો આસવાદિનું શ્રદ્ધાન હોય તો આસવ-બંધનો અભાવ કરી, સંવર-નિર્જરારૂપ ઉપાયથી મોક્ષપદને પામે. આ રીતે આસવાદિના યથાર્થ શ્રદ્ધાન સહિત સ્વપરનું જાણવું કાર્યકારી છે. સાત કે નવ તત્ત્વને તેના યથાર્થ સ્વરૂપે જાણવાથી અને પ્રતીતિ કરવાથી મૂળ ભૂલ ટળે છે, તેથી પરથી આત્માના અત્યંત ભિન્નપણાનું શ્રદ્ધાન થાય છે તથા એકરૂપ, ત્રિકાળી, ધ્રુવ, શુદ્ધ ચૈતન્યમાં અહંપણું સ્થપાય છે. માટે જ પૂર્વાચાર્યોએ તત્ત્વાર્થના શ્રદ્ધાનને સમ્યગ્દર્શન કહ્યું છે. આ તત્ત્વાર્થનું શ્રદ્ધાન સદ્દગુરુ અને સત્યાસ્ત્રના શ્રદ્ધાનથી થાય છે. શ્રીમદ્દ્ કહે છે –

'સાત તત્ત્વ અથવા નવ પદાર્થના શ્રદ્ધાનને શાસ્ત્રમાં સમ્યક્દર્શન કહ્યું છે. પરંતુ દોષરહિત શાસ્ત્રના ઉપદેશ વિના સાત તત્ત્વનું શ્રદ્ધાન કેવી રીતે થાય? નિર્દોષ આપ્ત વિના સત્યાર્થ આગમ શી રીતે પ્રગટ થાય? તેથી સમ્યક્દર્શનનું મૂળ કારણ સત્યાર્થ આપ્ત જ છે.'^ર

આપ્તપુરુષ તત્ત્વોનું સ્વરૂપ જેમ છે તેમ યથાર્થપણે સમજાવે છે. તેઓ જીવ, અજીવ, આસવ, બંધ, સંવર, નિર્જરા અને મોક્ષ એ સાત (અથવા પુષ્ય તથા પાપ ઉમેરતાં નવ) તત્ત્વોના અર્થનું જ્ઞાન કરાવે છે. તેઓ જીવ-અજીવ તત્ત્વોની યથાસ્વરૂપે ઓળખાણ કરાવે છે. આસવ-બંધ આત્માનું અહિત કરનાર છે, માટે ત્યાગવા યોગ્ય છે તથા આસવ-બંધનો નાશ સંવર-નિર્જરા દ્વારા થવાથી પરમ હિતરૂપ મોક્ષ પ્રગટ થાય છે, માટે સંવર-નિર્જરા-મોક્ષ આદરવા યોગ્ય છે એમ તેઓ હેય-ઉપાદેયનો વિવેક કરાવે છે અને તે તત્ત્વો સંબંધી રહેલી વિપરીત માન્યતાને ટાળી તત્ત્વોનું સમ્યક્ શ્રદ્ધાન કરાવે છે. આમ, સાચા દેવ-ગુરુ-શાસ્ત્ર દ્વારા નવ તત્ત્વનું હાર્દ સમજાય છે, માટે આપ્તપુરુષ પ્રત્યેની શ્રદ્ધાને પણ જ્ઞાનીઓએ સમ્યગ્દર્શન કહ્યું છે. શ્રીમદ્ લખે છે —

'આપ્તપુરુષના વચનની પ્રતીતિરૂપ, આજ્ઞાની અપૂર્વ રુચિરૂપ, સ્વચ્છંદનિરોધપણ આપ્તપુરુષની ભક્તિરૂપ, એ પ્રથમ સમક્તિ કહ્યું છે.'³

આપ્તપુરુષની તથા તેમનાં વચનની પ્રતીતિ થતાં, એટલે કે સત્દેવ-સત્ગુરુ-સત્શાસ્ત્રનું શ્રદ્ધાન થતાં જીવનું ગૃહીત મિથ્યાત્વ ટળે છે. આપ્તપુરુષના બોધ દ્વારા તે ૧- જઓ : આયાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર', અધ્યાય ૧, સૂત્ર ર

'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यन्दर्शनम् ।'

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૭૬૧ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૨૨૨)

૩- એજન, પૃ.૫૭૦ (પત્રાંક-૭૫૧)

તત્ત્વનું શ્રદ્ધાન કરે છે, સ્વ-પરનું ભેદજ્ઞાન કરે છે, ચૈતન્યભાવ અને રાગભાવની ભિન્નતાનો ઊંડો વિચાર કરે છે, નોકર્મ-દ્રવ્યકર્મ-ભાવકર્મથી રહિત એવા શુદ્ધ ચૈતન્ય-સ્વરૂપ આત્માને લક્ષમાં લે છે અને તેની નિરંતર ભાવના કરતાં કોઈ ધન્ય પળે આત્મામાં ઉપયોગ સ્થિર થતાં તેને સ્વાનુભવ થાય છે.

આ પ્રકારે આપ્તપુરુષની શ્રદ્ધા તથા તેમના ઉપદેશ દ્વારા થતી તત્ત્વશ્રદ્ધા તે સ્વાનુભૃતિનું કારણ છે. આચાર્યશ્રી જયસેનજીએ કહ્યું છે કે નવ પદાર્થનું વિષયભૂત વ્યવહાર સમ્યક્ત્વ શુદ્ધ જીવાસ્તિકાયની રુચિરૂપ છે. તે નિશ્ચય સમ્યક્ત્વનું તથા છબસ્થ અવસ્થામાં આત્મવિષયક સ્વસંવેદનજ્ઞાનનું પરંપરાએ બીજ છે. આમ, તત્ત્વશ્રદ્ધા એ સ્વાનુભૃતિરૂપ સમ્યગ્દર્શનનું કારણ હોવાથી કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને તેને પણ સમકિત કહેવામાં આવે છે. પ્રસ્તુત ગાથામાં આ કારણ (વ્યવહાર) સમકિતનો ઉલ્લેખ છે. જિજ્ઞાસુ જીવ વ્યવહાર સમકિતની પ્રાપ્તિ કઈ રીતે કરે છે તથા પરમાર્થ સમકિત (સ્વાનુભવ) તરફ કઈ રીતે આગળ વધે છે તે હવે જોઈએ.

મોક્ષમાર્ગના અધિકારી સુષાત્ર જીવના કષાયો મંદ થયા હોય છે, તેને પોતાના ત્રિકાળી, શુદ્ધ ચૈતન્યતત્ત્વની પ્રાપ્તિની જ અભિલાષા હોય છે અને પુણ્ય આદિ કોઈ પણ પરવસ્તુની ઇચ્છારૂપ પરાધીનતા નથી હોતી. સંસારનાં સુખો અનિત્ય અને અસાર જણાવાથી તેને તેના પ્રત્યે વૈરાગ્ય હોય છે અને તેના અંતરમાં સ્વપરદયા વર્તે છે. મોહાસક્તિથી મૂંઝાયો હોવાથી તેમાંથી મુક્ત થવા માટે જ હવે જીવવું છે એવું લક્ષ તેને બંધાયું હોય છે. બહારમાં કંઈ પણ ફેરફાર કર્યા વિના અંતરમાં દષ્ટિ પલટાવવાની જ વૃત્તિ થાય છે. તેને આત્માની જિજ્ઞાસા જાગે છે. જિજ્ઞાસા જાગવી એ મોક્ષમાર્ગમાં ખૂબ મહત્ત્વપૂર્ણ છે. આત્મપ્રાપ્તિ માટે દઢ જિજ્ઞાસાની જરૂર છે. જિજ્ઞાસુ જીવને જ સત્યની ઉપલબ્ધિ થઈ શકે છે.

જિજ્ઞાસુ જીવને આત્મસ્વરૂપને જાણવાની અભિલાષા જાગે છે અને તે અર્થે તેને સદ્ગુરુની આવશ્યકતા સમજાય છે. તેને સમજાય છે કે પોતાનું સાચું સ્વરૂપ, જે અનંત કાળથી જીવને નથી સમજાયું, તે પોતાની મતિકલ્પનાએ સમજી શકાશે પણ નહીં. જીવ અનાદિ કાળથી પોતાના ડહાપણે અને પોતાની ઇચ્છાએ ચાલ્યો છે. સદ્ગુરુની ઉપાસના વિના નિજકલ્પનાએ આત્મસ્વરૂપનો નિર્ધાર કરીને તેણે પોતાના સ્વચ્છંદને જ ગાઢ કર્યો છે. સદ્ગુરુ પ્રત્યે આશ્રયભક્તિ જાગ્યા વગર, અર્પણતા આવ્યા વગર આત્મસ્વરૂપ ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'પંચાસ્તિકાય'ની આચાર્યશ્રી જયસેનજીકૃત ટીકા, 'તાત્પર્ય- વૃત્તિ', ગાથા ૧૦૭

'इदं तु नवपदार्थविषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं । किंविशिष्टं । शुद्धजीवास्तिकायरुचिरूपस्य निश्चय-सम्यक्त्वस्य छद्मस्थावस्थायां आत्मविषयस्वसंवेदनज्ञानस्य परंपरया बीजं ।' યથાર્થપણે સમજાતું નથી. જીવને સદ્દ્ગુરુ પ્રત્યે પ્રેમ અને શ્રદ્ધા જાગે, તેમના બોધનું અહણ કરે, તેમના બોધનું સતત ઘોલન કરે, તેમની સર્વ આજ્ઞાને પૂર્ણપણે માન્ય કરે, તન-મન-ધનની આસક્તિનો ત્યાગ કરી તેમની ભક્તિમાં એકલયપણે જોડાય ત્યારે કાર્ય થાય. તેથી આત્મસ્વરૂપ સમજવા સદ્દ્ગુરુનું અવલંબન લેવું ઘટે છે. સદ્દ્ગુરુના આશ્રયે નિજસ્વરૂપ સરળતાથી સમજાય છે. શ્રીમદ્ લખે છે —

'હવે એવો નિશ્ચય કરવો ઘટે છે, કે જેને આત્મસ્વરૂપ પ્રાપ્ત છે, પ્રગટ છે, તે પુરુષ વિના બીજો કોઇ તે આત્મસ્વરૂપ યથાર્થ કહેવા યોગ્ય નથી; અને તે પુરુષથી આત્મા જાણ્યા વિના બીજો કોઇ કલ્યાણનો ઉપાય નથી. તે પુરુષથી આત્મા જાણ્યા વિના આત્મા જાણ્યો છે, એવી કલ્પના મુમુક્ષુ જીવે સર્વથા ત્યાગ કરવી ઘટે છે.'

નિજકલ્પનાએ શાસ્ત્રવાંચન, ઉપવાસ, જપ, તપાદિ અનંત કાળ પર્યંત કરીને પણ જીવ જે ધ્યેયની પ્રાપ્તિ કરી શકતો નથી, તે ધ્યેયની પ્રાપ્તિ પ્રત્યક્ષ સદ્દ્ગુરુના એકાદ મહિમાવંત શબ્દથી જીવ ક્ષણવારમાં કરી શકે છે. સદ્દ્ગુરુના સત્સંગની પ્રત્યેક ક્ષણ અત્યંત પ્રભાવશાળી હોય છે. જ્ઞાની ગુરુના પ્રત્યક્ષ સમાગમથી મુમુક્ષુ જીવને અનેક પડખાંથી આત્માર્થનું પોષણ મળે છે. સ્વરૂપમર્યાદામાં કેલી કરનાર બાહ્યભાવનિરપેક્ષ સદ્દ્ગુરુના ગુણાતિશયપણાથી, સમ્યક્ ચરણથી, પરમ જ્ઞાનથી, પરમ શાંતિથી, પરમ નિવૃત્તિથી જીવની આધ્યાત્મિક ચેતનાનો વિકાસ થાય છે.

સદ્ગુરુના સાન્નિધ્યથી સંસારના પ્રસંગો અને પ્રકારોમાંથી જીવની વૃત્તિ પાછી વળે છે. કદી કુવૃત્તિઓનું જોર વધી જાય અને શિષ્યની સાધનાની ભૂમિમાં જબરદસ્ત ધરતીકંપ થાય ત્યારે સદ્ગુરુ તેની પડખે ઊભા રહી, તેનામાં આત્મવિશ્વાસ જગાડે છે અને વૃત્તિઓ સામેનો સંગ્રામ જીતવા માટે પ્રેરણા કરે છે. તેમના બોધના આશ્રયે જીવની અશુભ વૃત્તિઓ પરિવર્તન પામી, શુભ બની, સ્વરૂપ પ્રત્યે વળતી જાય છે અને પ્રાંતે સ્વરૂપસ્થિતિ થાય છે. શ્રીમદ્ કહે છે –

'જેનાં વચન સાંભળવાથી આત્મા સ્થિટ થાય, વૃત્તિ નિર્મળ થાય તે સત્પુરુષનાં વચન શ્રવણ થાય તો પછી સમ્યક્ત્વ થાય.'^ર

જિજ્ઞાસુ જીવને સદ્ગુરુનું આવું મહત્ત્વ સમજાયું હોય છે. તેના અંતરમાં એવો નિર્ણય વર્તે છે કે શાશ્વત, સ્વાધીન સુખને પ્રાપ્ત કરવા માટે, જેમના આશ્રયમાં એ પ્રાપ્ત થઈ શકે એવા યોગ્ય પુરુષની ખોજ કરવી જોઈએ. મહત્ પુણ્યના યોગે જ્યારે તેને સદ્દ્ગુરુનો યોગ થાય છે ત્યારે તેના જીવનમાં અપૂર્વ ઉત્સાહ જાગે છે. સંસાર-

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૭૨ (પત્રાંક-૪૪૯)

૨- એજન, પૃ.૭૧૮ (ઉપદેશછાયા-૧૦)

સમુદ્રમાં પોતે ડૂબી રહ્યો છે એવું ભાન થયું હોવાથી, આપમેળે બચી શકાય એમ નથી એવી પ્રતીતિ થઈ હોવાથી, સદ્ગુરુ મળતાં અને પોતાના આત્મા ઉપર તેમનો પ્રભાવ અનુભવાતાં તેને સદ્ગુરુ સાક્ષાત્ ભગવાન જ લાગે છે.

જિજ્ઞાસુ સુશિષ્ય સદ્દગુરના સમાગમમાં અધ્યાત્મવાત સાંભળવાની આકાંક્ષા રાખે છે. તેની પાત્રતા જોઈને સદ્ગુરુ તેને તત્ત્વબોધનું દાન કરતાં જણાવે છે કે - જગતમાં સર્વ દ્રવ્યોનું ત્રિકાળ ભિન્નપણું છે. કોઈ એક દ્રવ્યની સત્તા બીજા દ્રવ્યમાં નથી. સર્વ દ્રવ્યો પોતપોતાની સ્વરૂપમર્યાદામાં વર્તી રહ્યાં છે. કોઈ પણ દ્રવ્ય પોતાની સ્વરૂપ-મર્યાદાને ઉલ્લંઘીને પરમાં જતં નથી. પોતાના સ્વ3પની મર્યાદા ઓળંગીને જીવ પરમાં જતો નથી અને પરદ્રવ્યો જીવની સ્વ3પમર્યાદામાં આવતાં નથી. જીવાદિ છએ દ્રવ્યો અનાદિથી પોતપોતાનાં ગુણ-પર્યાય સહિત પોતપોતાના સ્વભાવમાં જ રહેલાં છે. છએ દ્રવ્યો એકબીજાથી નિરપેક્ષ રહેલાં છે. કોઈ દ્રવ્ય અન્ય દ્રવ્યની અપેક્ષા રાખતું નથી. અનાદિ-અનંત એવા પોતાના અસ્તિત્વને ટકાવી રાખી, દરેક દ્રવ્ય પ્રત્યેક સમયે પોતાની અવસ્થાઓ પલટાવતું રહે છે. કોઈ દ્રવ્ય એક સમય માટે પણ નિવૃત્ત થતું નથી. ચેતન-અચેતન સર્વ દ્રવ્યો નિરંતર પરિશમે છે. ચેતન ચેતનરૂપે પરિશમે છે, અચેતન અચેતનરૂપે પરિણમે છે. અનંતાનંત દ્રવ્યો એક જ સાથે, એક જ સમયે પોતપોતાનું પરિણમન કર્યા જ કરે છે. છતાં ક્યારે પણ કોઈ દ્રવ્ય બીજા દ્રવ્યના પરિણમનમાં હસ્તક્ષેપ કરતું નથી. દરેક દ્રવ્ય એકબીજાના પરિણમનમાં કોઈ પણ પ્રકારે સહાયરૂપ કે બાધારૂપ નહીં થતાં, નિરંતર પોતપોતાનું પરિણમન કરતાં રહે છે. પોતામાં, પોતાથી, પોતાનું પરિશમન સ્વતંત્રપશે થાય છે. વિશ્વનું પ્રત્યેક દ્રવ્ય સમયે સમયે સ્વતંત્રતાથી પોતપોતામાં પરિણમન કરતું જ રહે છે. પરનાં ગુણ-પર્યાયોમાં પરિણમન કરવાનું અશક્ય હોવાથી કોઈ પણ દ્રવ્ય પરના પરિણમનમાં કાંઈ કરતું નથી. ન તે પરની ક્રિયા કરે છે, ન પર પાસે પોતાની ક્રિયા કરાવે છે. દરેક દ્રવ્ય પોતાની પ્રયોજનભૂત ક્રિયા અન્યની સહાય વિના પોતે જ કરે છે. આ જ દ્રવ્યનો નિજધર્મ છે. આ જ વિશ્વની વ્યવસ્થા છે. બધાં જ દ્રવ્યો પોતપોતાના સ્વભાવમાં જ પરિણમન કરતાં રહી, અનાદિ-અનંત વિશ્વની વ્યવસ્થા બનાવી રાખે છે.

શ્રીગુરુ કહે છે કે 'પરમાં તું કંઈ પણ કરવા સમર્થ નથી. તેનો અર્થ એમ નથી કે તું લાચાર છે. વાસ્તવમાં તને પરની કોઈ જરૂર જ નથી. તું તારામાં પરિપૂર્ણ છે. તારે પરની ગુલામી કરવી પડે કે પરમાં ફેરફાર કરીને જ તું સુખી થઈ શકે એવું તારું સ્વરૂપ નથી. માત્ર એક તારા સ્વરૂપનું અવલંબન લેતાં અનંત સુખ પ્રગટે એવો તારો સ્વભાવ છે. અંતરસ્વભાવ તો શાંત રસનો સમુદ્ર છે. તું યથાર્થ નિર્ધાર કર કે સુખ, શાંતિ અને સલામતી સ્વભાવમાં છે, બહાર નથી. જગતના બાહ્ય પદાર્થોનાં પરિણમનથી

તને કોઈ લાભ-નુકસાન નથી, કારણ કે સ્વદ્રવ્ય અને પરદ્રવ્ય બન્ને સ્વતંત્ર છે. સ્વભાવના અવલંબન વિના બીજેથી સુખ-શાંતિ આવવાના નથી અને સ્વભાવના અવલંબને જે સુખ-શાંતિ પ્રગટે છે તે બીજા કોઈ પરિબળથી હાનિ પામવાનાં નથી.'

'હે જીવ! આ જગતમાં તું જ સર્વોત્કૃષ્ટ પદાર્થ છે. તું આનંદસ્વરૂપ છે, શાંતિનું ધામ છે, જ્ઞાનનો પિંડ છે, કૃતાર્થ છે, તારામાં અધૂરાપશું નથી. તું બધાં જ દ્રવ્યોથી વિલક્ષણ, અસાધારણ ચૈતન્યસ્વભાવવાળો, અર્થાત્ સ્વ અને પરને જાણવારૂપ અચિંત્ય સામર્થ્યવાન સ્વભાવનો ધારક છે. તું તારા અચિંત્ય સામર્થ્યવાન સુખ, શાંતિ આદિ અનંત ગુણોની મહાન સંપદા સહિત, અનાદિ-અનંત જગતનાં બધાં જ દ્રવ્યોથી મહાન છે. તું તારા ત્રિકાળી સ્વભાવનું લક્ષ કરશે તો પર્યાયમાં સ્વભાવનું વેદન થયા વિના રહેશે નહીં. દ્રવ્યની પૂર્ણતા અને શુદ્ધતા પર્યાયમાં વ્યક્ત થશે. ત્રિકાળી સ્વભાવના લક્ષે પર્યાયમાં વિકાર ઉત્પન્ન થશે નહીં. શુદ્ધ ચિદાનંદસ્વભાવની સન્મુખ થતાં તું વિકારથી વિમુખ થતો જશે. રાગાદિ પરભાવરૂપ ઉપાધિ છૂટતાં કર્મબંધની અનાદિની પરંપરા તૂટી જશે. રાગપરિણતિથી કર્મનું બંધન, તે કર્મના ઉદય વખતે ફરી રાગપરિણતિ, તેનાથી ફરી કર્મબંધન - આવી પરંપરા અનાદિથી અતૂટ છે; પણ સ્વભાવ તરફ તારી પરિણતિ વળતાં પૂર્વની તે રાગાદિ પરિણતિ છૂટી જશે, કર્મબંધની પરંપરા પણ તૂટી જશે અને છેવટે સમસ્ત કર્મોથી તું મુક્ત થશે.'

શિષ્યનું વીર્ય જાગૃત કરવા શ્રીગુરુ નિષ્કારણ કરુણાવશ કહે છે કે 'હું શુદ્ધ છું, પૂર્ણ છું, ધ્રુવ છું, નિત્ય છું એમ તારા અશરીરી, અવિકારી, અનાદિ-અનંત, પૂર્ણ, ચિદાનંદઘન સ્વભાવની હા પાડ. તારા સ્વરૂપના અમે જે ગુણગાન કરીએ છીએ, એ ગુણગાનમાં ઉત્સાહથી હકાર લાવ; હા બોલી તેનો સ્વીકાર કર, હા બોલવાની લત લગાવ તો જરૂર જલદીથી જ તારી હાલત બદલાઈ જશે. અમે તને તારો આનંદ-સ્વભાવ બતાવીએ છીએ. તેને જાણીને તું પ્રસન્ન થા, આનંદિત થા. અનંતો કાળ અજ્ઞાનનાં દુ:ખમાં વીતાવ્યો છતાં સ્વભાવમાં આનંદનો સાગર ભરેલો છે. અંતર્મુખ થતાં તેનું સંવેદન પ્રગટે છે. આનંદસાગરમાં નજર કરતાં એક ક્ષણમાં જ અનંત કાળનાં દુ:ખ દૂર થાય છે અને અપૂર્વ આનંદનું વેદન થાય છે. ચારે ગતિનાં દુ:ખોથી છૂટવાનો અને પરમ આનંદરૂપ સિદ્ધિની પ્રાપ્તિનો આ અવસર છે, માટે ઉપયોગને અંતરમાં વાળીને તારા ચૈતન્યને નિહાળ. તું અંતર્મુખ થઈને તારા આનંદને તારા અંતરમાં જ શોધ. આનંદસ્વભાવનો વિશ્વાસ કરી, તેમાં એકાગ્રતા કરવાથી અનુપમ, અવર્ણનીય, અતીન્દ્રિય આનંદ અવશ્ય પ્રગટશે.'

જિજ્ઞાસુ જીવ સદ્ગુરુના બોધનું શ્રવણ અત્યંત રુચિપૂર્વક, વિનયપૂર્વક અહોભાવ સાથે કરે છે. તે સત્પાત્રતાયુક્ત હોવાથી તેને સદ્ગુરુનો બોધ પરિણમે છે. તે સદ્ગુરુનાં વચનામૃત પ્રેમથી સાંભળે છે, શ્રદ્ધાથી સ્મૃતિમાં ધારણ કરે છે, સુવિચારણાથી હાર્દ સમજી એને અંતરથી અંગીકાર કરે છે. સદ્ગુરુ જ્ઞાયકસ્વભાવની ખુમારીનાં ગાણાં ગાય, આત્માનાં સુખ-શાંતિ-સામર્થ્યનો બોધ વરસાવે અને જો જીવ સ્વભાવ તરફ દોટ ન મૂકે તો સદ્ગુરુનાં વચનોનું શ્રવણ ફળદાયી ન થાય. જિજ્ઞાસુ જીવ તો, તરસ્યાને શીતળ જળનો ઘડો બતાવવામાં આવે અને તે જેવી રીતે તે તરફ ધસે, તેવી રીતે સદ્ગુરુનો બોધ સાંભળીને સ્વભાવ તરફ દોટ મૂકે છે. જેમ મકાન ઉપર ત્રાંબાનો તાર ગોઠવીને તે તાર જમીનમાં ઉતાર્યો હોય તો, જ્યારે ઉપરથી વીજળી પડે છે ત્યારે વીજળી તે તાર કારા સીધી જમીનમાં ઊતરી જાય છે; તેમ જિજ્ઞાસુ જીવને ચૈતન્યની રુચિરૂપ તાર આત્મા સાથે જોડાયો છે, તેથી તેના ઉપર જ્યારે સદ્ગુરુના બોધરૂપી વીજળી પડે છે ત્યારે તે બોધ રુચિરૂપ તાર કારા તરત જ આત્મામાં ઊતરી જાય છે. આવો સત્પાત્રદશાવાન જીવ સદ્ગુરુશરણમાં અલ્પ પ્રયાસે સિદ્ધિને વરે છે.

અપરંપાર કરુણામાંથી પ્રવહેલ સદ્ગુરુનો બોધ શ્રવણ કરતાં જિજ્ઞાસુ જીવને પોતાના આત્મસ્વરૂપની સમજ પ્રાપ્ત થાય છે. અંતરની સાચી લગનીપૂર્વક તે સદ્ગુરુના બોધની યથાર્થ વિચારણા કરે છે. તે પોતાના મિથ્યા અભિપ્રાયોને સવળા કરે છે. મુમુક્ષુની ભૂમિકા, અભિપ્રાયને બદલવાની ભૂમિકા છે. જેટલા પણ વિપરીત અભિપ્રાયો છે તે મુમુક્ષુની ભૂમિકામાં બદલાય છે અને યથાર્થતાને પામે છે. જિજ્ઞાસુ જીવના વિપરીત અભિપ્રાયો સદ્ગુરુના બોધની વિચારણાથી મોળા પડે છે, ઢીલા પડે છે.

જિજ્ઞાસુ જીવ અભિપ્રાયમાં એક દ્રવ્યને બીજા દ્રવ્ય સાથે ભેળવતો નથી. જીવાદિ છ દ્રવ્યની ભિન્નતા અને સ્વતંત્રતા તેના નિર્ણયમાં દઢ થાય છે. તેને દઢ નિર્ધાર થાય છે કે 'હું શુદ્ધ જ્ઞાયક છું. આ શરીરાદિ કંઈ જ મારું નથી. હું સર્વથી ભિન્ન છું. નોકર્મ-દ્રવ્યકર્મ-ભાવકર્મથી સર્વથા પ્રકારે હું મુક્ત છું. હું મારાં દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવથી પૂર્ણ છું અને પરવસ્તુનાં દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવ સાથે મારે કોઈ સંબંધ નથી. મારી સત્તા મારા સ્વયતુષ્ટયમાં છે. મારી સત્તામાં કોઈનો પ્રવેશ કે હસ્તક્ષેપ નથી, થઈ શકે એમ પણ નથી. હું તથા સર્વ પરદ્રવ્ય સ્વતંત્ર છીએ. પરદ્રવ્યનું હું કાંઈ કરી શકું એમ નથી, તેમજ પરદ્રવ્ય મને કોઈ લાભ-નુકસાન કરી શકે એમ નથી. પરથી મને સુખ-દુઃખ નથી. પર મારા માટે જ્ઞેયમાત્ર છે. જગતનાં સર્વ દ્રવ્યો સાથે મારો કોઈ સંબંધ ન હોવાના કારણે મારા માટે જ્ઞેયમાત્ર છે. જગતનાં સર્વ દ્રવ્યો સાથે મારો કોઈ સંબંધ ન હોવાના છો અને હું તેમાં ફેરફાર કરી શકવા સમર્થ નથી, તો પછી શા માટે મારે તેના કર્તાપણાના ખોટા ભાવ કરી કરીને દુઃખી થયા કરવું? માટે એ જ યોગ્ય છે કે હું કર્તાભાવ છોડી દઈ માત્ર જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા રહું. હું કેવળ જ્ઞાયક છું. હું તો જ્ઞાનમાત્ર છું. હું નિર્વિકાર, નિર્મળ, જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપ છું. મહિન પર્યાય જેવો અને જેટલો હું નથી.

પર્યાયમાં વિષમતા હોવા છતાં મારા દ્રવ્યદળમાં કોઈ અશુદ્ધિ કે અપૂર્ણતા નથી. મારું આત્મતત્ત્વ અનંત શક્તિસંપન્ન છે. જે સકળ નિરાવરણ, અખંડ, એક, પ્રત્યક્ષ, અવિનશ્વર, શુદ્ધ, પરમાત્મદ્રવ્ય તે હું છું. હું મારા આ સામર્થ્યવાન સ્વતત્ત્વ સાથે તાદાત્મ્ય સ્થાપું અને શ્રી સદ્ગુરુદેવે બોધેલ નિજસિદ્ધપદને સાધું.'

જિજ્ઞાસુ જીવ આ પ્રકારે સદ્ગુરુના બોધના આધારે પોતાના અકર્તાજ્ઞાનસ્વભાવની શ્રદ્ધા કરે છે. તેને પરથી ભિન્નતાના ભાવ દઢ થતા જાય છે અને ચૈતન્ય પ્રત્યેનો પ્રેમ વધતો જાય છે. તેનું તત્ત્વનું જ્ઞાન એટલું બધું સ્પષ્ટ અને દઢ થયેલું હોય છે કે તેમાં હવે ભૂલ થતી નથી. તેને છ દ્રવ્ય, નવ તત્ત્વનો યથાર્થ નિર્ણય થાય છે. તે પોતાના મૂળ આત્મતત્ત્વ સંબંધી ચિંતન-મનન કરી તત્ત્વશ્રદ્ધાન કરે છે. મિથ્યાત્વોદયજનિત વિપરીત અભિનિવેશરહિત પંચાસ્તિકાય, ષડ્દ્રવ્ય, જીવાદિ સાત પદાર્થોનું જે શ્રદ્ધાન તે વ્યવહાર સમ્યક્ત્વ છે. 9

પરથી પોતાને કોઈ લાભ-નુકસાન નથી એવી દ્રવ્યસ્વતંત્રતા અંતરમાં સ્પષ્ટપશે પ્રતીત થાય છે ત્યારે જીવને વ્યવહાર સમ્યગ્દર્શન થાય છે. હજી જે એમ માનતો હોય કે પરને કારણે મને લાભ-નુકસાન થાય છે, તો તેને આત્માની યથાર્થ વિચારણા જ થઈ નથી અને તેથી તેને તો વ્યવહાર સમ્યગ્દર્શન પણ નથી. પરદ્રવ્યથી મને સુખ-દુ:ખ થાય છે એવી માન્યતા હોય ત્યાં મિથ્યાત્વ મંદ પડ્યું નથી. પરથી પોતાની સ્વતંત્રતાની શ્રદ્ધાને શ્રી વીતરાગદેવે વ્યવહાર શ્રદ્ધા કહેલ છે. જિજ્ઞાસુ જીવને સદ્દગુરુના બોધ દ્વારા અતૂટ શ્રદ્ધા થઈ હોવાથી તેને વ્યવહાર સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થાય છે.

સ્વરૂપનો યથાર્થ નિર્ણય થયો હોવા છતાં, સ્વાનુભવ થયો ન હોવાથી તેને તેની ખટક રહ્યા કરે છે. સ્વભાવનો મહિમા લાગ્યો હોવાથી આત્માના અનુભવ માટે તે વ્યાકુળ રહે છે. આત્મા પ્રાપ્ત કર્યા વિના તેને ચેન પડતું નથી. આત્માના વિયોગમાં તેને પોતાનું આયુષ્ય ભોગવવું કપરું થઈ પડે છે. સ્વરૂપપ્રાપ્તિ વિનાની એક ક્ષણ પણ વ્યતીત કરવી તેને આકરી થઈ પડે છે. તેના હૃદયમાં આત્મપ્રાપ્તિ માટે જબરદસ્ત તાલાવેલી જાગે છે. સદ્દ્યુના બોધના આધારે આત્માનો મહિમા અંતરમાં યથાર્થપણે અવધારી, 'મારે આ સંસારમાંથી કંઈ જ જોઈતું નથી. મારે તો બસ એક નિજદ્રવ્ય જ જોઈએ છે' એવો નિશ્વય કર્યો હોવાથી તેને આત્માની પ્રાપ્તિ આડે કોઈ વિઘ્ન નડતાં ૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'પંચાસ્તિકાય'ની આચાર્યશ્રી જયસેનજીકૃત ટીકા, 'તાત્પર્ય-વૃત્તિ', ગાથા ૧૦૭

'मिथ्यात्वोदयजनितविपरीताभिनिवेशरहितं श्रद्धानं । केषां संबन्धि । भावाणां पंचास्तिकायषड्-द्रव्यविकत्यरूपं जीवाजीवद्धयं जीवपुद्रलसंयोगपरिणामोत्पन्नास्रवादिषदार्थसप्तकं चेत्युक्तलक्षणानां भावानां जीवादिनवपदार्थानां । इदं तु नवपदार्थविषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं ।' નથી. ઉપર ચડી રહેલ વેલાના માર્ગમાં જે અવરોધ આવે છે તેના ઉપર વીંટળાઈને તે આગળ વધે છે; વહેતા પાણીના માર્ગમાં અવરોધ આવે છે ત્યારે તે તેને તોડીને અથવા તો રસ્તો બદલીને આગળ વધે છે; ઊડી રહેલો ગરુડ તોફાની પવન ફૂંકાવા માંડે ત્યારે ગડથોલું ખાઈ જવાને બદલે વધારે ઊંચે જઈને ઊડવાનું ચાલુ રાખે છે; તેમ જિજ્ઞાસુ જીવ સદા ઉત્સાહવંત રહી, દરેક સમસ્યાનો સામનો કરી આત્મપ્રાપ્તિના મહાન કાર્યમાં આગળ ધપે છે. તેનો પુરુષાર્થ ઉગ્નપણે ઊપડે છે. તેને એવી ધૂન ચડે છે કે આત્મા સિવાય અન્ય બધું ગૌણ થઈ જાય છે. તેને એક આત્મા માટે જ સ્નેહ આવે છે. માથું પાણીમાં હોય ત્યારે શ્વાસ માટે જેવી ઉત્કંઠા હોય, એવી ઉત્કંઠા જિજ્ઞાસુ જીવને આત્માને પામવા માટે જાગે છે. આવી દશા જ્યારે આવે છે ત્યારે આત્મપ્રાપ્તિ બહુ નિકટ હોય છે. આવી તાલાવેલી જાગે ત્યારે આત્મપ્રાપ્તિ જરૂર થાય છે.

'કોઈ પરપદાર્થની મને લાલસા નથી, મારે માત્ર આત્મા જ જોઈએ છે', એવી જેને તીખી તમના જાગે તેને માર્ગ મળે જ છે. જગતની તમામ સ્પૃહા છોડી, 'મારે માર્ડું અસ્તિત્વ જ જોઈએ' એવી અંદર જવાની તીખી તમના જાગે તો આત્મા પ્રાપ્ત થાય જ, પ્રગટ થાય જ. પાણી વગર માછલીને જેવો તરફડાટ થાય, એવો તરફડાટ જ્યારે સંસારમાં થાય ત્યારે આત્મજ્ઞાનની ઉપલબ્ધિ સત્વરે થાય છે, સત્નું અનાવરણ થઈને જ રહે છે. સત્ની આડે રહેલાં સર્વ પડળ હટી જાય છે. સર્વ દ્વાર તેના માટે ખૂલી જાય છે.

જિજ્ઞાસુ જીવને સ્વરૂપ પ્રાપ્ત કરવાની તીવ્ર ઝંખના હોવાથી તે સદ્ગુરુ દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલ બોધને માત્ર વિચારની મર્યાદામાં બાંધી ન રાખતાં શીઘતાથી પ્રયોગની સરાશે ચડાવે છે. સ્વરૂપપ્રાપ્તિની તીવ્ર ભાવનાના કારણે સદ્ગુરુનો બોધ માત્ર બૌદ્ધિક સ્તર પૂરતો સીમિત ન રાખતાં હવે તે પ્રયોગપદ્ધતિ અપનાવે છે. આ જ યથાર્થ કાર્યપદ્ધતિ છે. વિચારથી આગળ વધીને પ્રયોગ કરતાં પુરુષાર્થ ઊપડે તો જ્ઞાનદશા પ્રાપ્ત થાય તેવો ક્રમ છે. માત્ર વિચારમાં રોકાવાથી કાર્ય સધાતું નથી, પ્રયોગ પણ થવો જોઈએ. જિજ્ઞાસુ જીવને સ્વકાર્ય કરવાનો ઉત્સાહ હોવાથી સદ્ગુરુનો બોધ માત્ર વિચારની મર્યાદામાં ન રહેતાં પ્રયોગમાં આવે છે. આત્મરુચિના કારશે સ્વરૂપ પ્રત્યેનું આકર્ષણ રહ્યા કરે છે, પરિણામે પ્રયોગની પ્રધાનતા પ્રવર્તે છે. નિર્ણયમાં વસ્તુ પરોક્ષ રહે છે, પરંતુ વેદનમાં પ્રત્યક્ષપણે સ્વરૂપનું અહણ થાય છે, તેથી જિજ્ઞાસુ જીવ નિજ અસ્તિત્વને વેદવા, અર્થાત્ સ્વરૂપને વેદન દ્વારા પ્રહણ કરવા અંતરશોધ કરે છે. હવે અંતરજાગૃતિપૂર્વક તે નિજ અવલોકન કરતો રહે છે અને ભેદજ્ઞાનના પુરુષાર્થપૂર્વક જ્ઞાનમાત્રમાં સાવધાની રાખે છે.

જિજ્ઞાસુ જીવ પ્રયોગાત્મક અભ્યાસની રુચિવાળો હોવાથી તે નિજભાવોનું સૂક્ષ્મપણે

અવલોકન કરે છે. તે જાણે છે કે માત્ર શાસ્ત્ર-અધ્યયન કરવાથી કાર્યસિદ્ધિ થતી નથી. શબ્દો વંચાય પણ પોતાના ભાવો ન વંચાય તો યથાર્થ લાભ થતો નથી. નિજ અવલોકન દ્વારા પોતાના ભાવો વાંચવાના છે. તે શાસ્ત્રાધ્યયન કરે છે ત્યારે તેને શબ્દો ઉકેલવા સાથે પોતાના ભાવો ઉકેલવાનું લક્ષ પણ મોજૂદ હોય છે. તે તપાસે છે કે વર્તમાન ઉદયમાં સુખ વેદાય તેવા અહિતકારી ભાવોમાં પરિણમવું શા માટે થાય છે? સ્વરૂપપ્રાપ્તિની ભાવનાને એ ભાવો પ્રતિકૂળ હોવા છતાં તેનું શમન શા માટે થતું નથી? તે વખતે જાગૃતિનો અભાવ શા માટે રહે છે? પોતે જ્ઞાન-સુખાદિ અચિંત્ય શક્તિનું નિધાન છે તે જાણવા છતાં અન્ય સુખની વાંછા શા માટે રહે છે?

સુખ આત્મામાં છે એમ સમજવું તે એક વાત છે અને પોતામાં સુખ ભાસવું એ જુદી વાત છે. નિજસ્વરૂપનું ભાવભાસન થાય તો જ પોતામાં સુખ ભાસે છે. દરેક જીવને સુખનું જ પ્રયોજન હોવાથી જ્યાં સુખ ભાસે ત્યાં જ તેની વૃત્તિ જાય છે. જીવ જ્યારે અંતરશોધ કરે છે ત્યારે પૌદ્રગલિક સુખ પ્રત્યેની વૃત્તિનું વલણ બદલાય છે, અર્થાત્ વૃત્તિનું વલણ આત્મિક સુખ પ્રત્યે થાય છે. હવે તેની વૃત્તિ સુખ માટે પર તરફ ન વળતાં સ્વ તરફ વળે છે. માત્ર ઉપરછલ્લી સમજ દ્વારા અનાદિની વૃત્તિના વલણમાં કોઈ જ ફરક પડતો નથી. ઉપલક સમજથી વિષયોનાં સુખનું આકર્ષણ મટતું નથી અને તેથી તે આત્મઘાતી ઝેર હોવા છતાં પણ ઉદયકાળે તેનો રસ લેવાઈ જાય છે. આત્મશાંતિની તીવ્ર જરૂર ન લાગે ત્યાં સુધી વર્તમાન જાણપણામાં માનસિક શાંતિ પ્રાપ્ત થાય છે, તેમાં ઠીકપણું લાગે છે અને તેમાં જાણ્યે-અજાણ્યે સંતોષ વર્તે છે. પરંતુ જિજ્ઞાસુને માત્ર જાણપણાનો સંતોષ કે ઠીકપણું ન હોવાથી તેનું જાણપણું કાર્યગત થઈ પરિણમનરૂપ થાય છે.

પ્રયોગનો પ્રારંભ તત્ત્વજ્ઞાનની સમજ્શને ઉદયકાળે લાગુ કરવાથી થાય છે. તે ઉદયગત કાર્યોમાં જરા પણ રસ ન લેવાઈ જાય એવી જાગૃતિ સહિત તેમાં પ્રવર્તે છે. પરની મીઠાશ ચૈતન્યરસ ઊપજવામાં અત્યંત વિઘ્નરૂપ થાય છે એવું તે ગંભીરપણે લક્ષમાં રાખે છે. જો એક ચૈતન્યસ્વભાવ સિવાય બીજે કશે પણ મીઠાશ-રસ-મહિમા રહે તો ચૈતન્યરસ ઉત્પન્ન થઈ શકે નહીં. પરમાં રહી ગયેલી મીઠાશ એક એવી પરિણતિ છે કે જે ઉદય વખતે હાજર થઈ જાય છે અને તેથી તે મીઠાશ વધુ પુષ્ટ થતી જાય છે. અંતરશોધના પ્રયોગમાં આ પ્રકાર ખાસ બાધક છે. જિજ્ઞાસુ આને મોટું નુકસાન સમજતો હોવાથી જાગૃત રહે છે. વ્યવસાય આદિમાં જોડાવું પડતું હોય ત્યારે તેમાં ઉત્સાહ-રસ ન વધે તેવી જાગૃતિ તે રાખે છે, જેથી તેને તે ઉદયભાવનો રસ નડે નહીં. જ્યાં જ્યાં ઉદયમાં પોતાને મમત્વ વર્તતું હોય, ત્યાં પોતાનાં મમત્વપરિણામોને તપાસી મોળાં પાડે છે. ઉદયકાળે તીવ રસ ઉત્પન્ન ન થાય તેનું ખાસ ધ્યાન રાખે છે. તેને

જ્યારે તીવ્ર રસ સહિત પરમાં સ્વપશું થઈ જાય ત્યારે અંતરમાં એવી અરેરાટી થાય છે કે જાણે બહુ મોટો ગુનો થઈ ગયો હોય.

કોઈ પણ ઉદયપ્રસંગમાં તીવ રસ સહિત પ્રવર્તન ન કરવું તે જ્ઞાનીના માર્ગમાં પ્રવેશવાનું દ્વાર છે. એ દ્વારમાં પ્રવેશ ત્યારે જ થઈ શકે કે જ્યારે સર્વ ઉદયપ્રસંગો અત્માથી હીન તેમજ ભિન્ન નિશ્ચિત થયા હોય અને પરની કિંમત અભિપ્રાયમાંથી નીકળી ગઈ હોય; નહીં તો ઉદયભાવનો રસ ઊપજ્યા વિના રહેતો નથી કે જે અત્મરસનો પ્રતિબંધક છે. વિભાવરસની તીવ્રતાના કારણે જીવની સત્ય સમજવાની યોગ્યતા હાનિ પામે છે અને જ્ઞાન તેની સૂક્ષ્મતા, શાંતિ, ગંભીરતા ગુમાવે છે. નિજ અવલોકનના કારણે વિભાવરસની માત્રા અલ્પ પણ વધી તો શકતી જ નથી, સાથે સાથે તે ઘટતી પણ જાય છે. તેનો રસ મંદ પડતો જાય છે. જ્યારે આત્મલક્ષે વિભાવરસ ગળે છે ત્યારે આત્માનુભૂતિની પૂર્વભૂમિકા તૈયાર થાય છે. આંતર અવલોકનના કારણે રાગરસ ફિક્કો પડતાં સ્વભાવની જાગૃતિ રહે છે, તેનાં રસ-રુચિ વૃદ્ધિ પામે છે અને પરિણામે સ્વદ્રવ્યના ગ્રહણની તક સુલભ થાય છે. તેથી જિજ્ઞાસુ જીવ વિભાવરસને તીવ્ર બનતો અટકાવવા આંતર અવલોકન કરે છે.

આંતર અવલોકન કરતાં જિજ્ઞાસુ જીવ તપાસે છે કે પોતાને અનુકૂળ સંયોગોની અપેક્ષા કેટલી રહે છે? તેની પ્રાપ્તિ થતાં પ્રીતિ, ઉત્સાહ, રસ વર્તે છે કે નહીં? તેમાં પહેલાં કરતાં કંઈ ફરક પડ્યો છે કે નહીં? પ્રતિકૂળ સંયોગોની સંભાવનાથી કેટલું ભયભીત અને ચિંતિત થવાય છે? તેની પ્રાપ્તિ થતાં મનમાં આકુળતા-વ્યાકુળતા થાય છે કે નહીં? પહેલાં કરતાં તેનું કંઈ અલ્પત્વ થયું છે કે નહીં? આમ, ઉદય સાથેના પોતાના જોડાણનું તથા એ દોષ કયા વિપરીત અભિપ્રાયના કારણે થયો છે તેનું તે અવલોકન કરે છે. પોતાના ધ્યેયમાં નડતરરૂપ બનતા પોતાના દોષોનું સૂક્ષ્મતાથી અવલોકન કરે છે.

નિજ અવલોકનથી જિજ્ઞાસુ જીવમાં પોતાના દોષો પ્રત્યે એક નવીન જાગૃતિ આવે છે. જેમ કોઈ છાપરાના કાજ્ઞામાંથી પ્રકાશનું કિરણ બંધ ઓરડામાં પ્રવેશે છે ત્યારે એ તેજરેખામાં હજારો ધૂળનાં કણ ઊડતાં દેખાય છે. એ ધૂળનાં કણ અંધારાના કારણે પહેલાં દેખાતાં ન હતાં અને હવે તેજોમય પ્રકાશના કિરણમાં તે દેખાવા લાગે છે. તેમ દોષોના અસ્તિત્વ પ્રત્યે અજાગૃતિ હોવાથી તે દેખાતા નથી. નિજ અવલોકન એ તેજરેખા છે. તે તેજરેખામાં પહેલાં ન દેખાતા દોષો દેખાય છે. નિજ અવલોકનથી દોષોની ઓળખ એટલી બધી સ્પષ્ટ થાય છે કે તે દોષોની બધી સૂક્ષ્મ વિગતો તથા તેની પાછળ રહેલ અભિપ્રાયનું બળ પકડાવા લાગે છે, વિભાવની શક્તિ મોળી પડે છે અને ક્રમશઃ આત્મવિકાસ સધાતાં સધાતાં અંતે પૂર્ણપ્રકાશમય એવા નિજપદની પ્રાપ્તિ

થાય છે.

નિજ અવલોકનથી પુષ્કળ લાભ થતો હોવા છતાં પણ બહિર્દષ્ટિ જીવ પોતાના અંતરનું અવલોકન કરતો નથી. એવું નથી કે તેની પાસે અવલોકન કરવાની શક્તિનો અભાવ છે અને તેથી નિજ અવલોકન થઈ શકતું નથી. અવલોકન કરવાની શક્તિ તો સર્વ જીવમાં છે, પણ બહિર્દષ્ટિ જીવ તેનો ઉપયોગ વિપરીત દિશામાં કરે છે. દૂરબીન તો તેની પાસે છે જ, પરંતુ તેની દિશા તે ઊલટી રાખે છે. દૂરબીનને પર તરફ તાકીને રાખેલું છે, તેથી તે દ્વારા તેને પરનું જ દર્શન થાય છે. તેનો ઉપયોગ બહારની તરફ કેન્દ્રિત છે, પરમાં લાગેલો છે. અવલોકનની શક્તિ આવે છે તો ભીતરમાંથી જ, પરંતુ ધ્યાન બહારની વસ્તુઓ પર છે, એટલે ભીતરમાં અંધારું છે. ભીતરનું ભાન નથી અને જગતનો જાણકાર થઈને ફરે છે. જીવે બીજાની ફિકર છોડીને પોતાની ભીતરમાં જવું જોઈએ. દષ્ટિ સ્વ તરફ કેન્દ્રિત કરવી જોઈએ. અવલોકનના દૂરબીનને અંતર તરફ વાળવું જોઈએ કે જેથી ભીતરમાં શું છે તે જોવાનું શરૂ થાય. જેમ જેમ પોતાના દોષોને જોવાનો પ્રયાસ વધતો જાય છે, તેમ તેમ તે પ્રયાસમાં સૂક્ષ્મતા આવતી જાય છે. તેની દષ્ટિ સંજોગો પ્રત્યે ન જતાં પોતાની ભૂલ પ્રત્યે જાય છે. તે આત્મનિરીક્ષણ દ્વારા સ્વદોષને પકડે છે, તેનો સ્વીકાર કરે છે.

દોષનો અપક્ષપાતપણે સ્વીકાર થતાં તેને તે દોષથી છૂટવાની તાલાવેલી જાગે છે. તે વિચારે છે કે 'મેં આવું કાર્ય કેમ કર્યું? હવે શુદ્ધિ કેવી રીતે કરું? કઈ રીતે તે દોષોને દૂર કરું? મારે હવે તે દોષો પુનઃ કરવા નથી.' તે પોતાનાં વિરાધક પરિણામોનો ખરા અંતઃકરણથી પશ્ચાત્તાપ કરી, પુનઃ ન કરવાની પ્રતિજ્ઞા કરે છે. 'દોષનો એક કણ પણ કલંકરૂપ છે, તે મને ન જોઈએ' એવો દઢ નિશ્ચય કરે છે. પોતાની વર્તમાન અવસ્થામાં રહેલા દોષો તેને અત્યંત ખૂંચે છે અને એ દોષોને દૂર કરવાનો ઉગ્ર પુરુષાર્થ તે આદરે છે.

અપક્ષપાતપૂર્વકના નિજ અવલોકનના આવા અભ્યાસથી જીવની યોગ્યતા વધતી જાય છે, કારણ કે દર્શનમોહનો રસ મોળો પડે છે. ચારિત્રમોહના દોષ અત્યંત સ્થૂળ હોવાના કારણે બધાને સમજાય છે, દેખાય છે; જ્યારે દર્શનમોહનો દોષ મોટો હોવા છતાં પણ સૂક્ષ્મ હોવાના કારણે બીજાની સમજમાં આવતો નથી. સામાન્ય રીતે લોકો દર્શનમોહ ઘટાડવાનો પ્રયત્ન કરતા નથી અને ચારિત્રમોહનો દોષ ઘટાડવાના પ્રયત્નમાં લાગેલા રહે છે, તેથી તેમનો દર્શનમોહ બળવાન થતો જાય છે અને તેથી તેઓ મોક્ષમાર્ગે એક ડગલું પણ ભરી શકતા નથી. મોક્ષમાર્ગની યાત્રાનું મંડાણ દર્શનમોહને ટાળવાથી થાય છે. નિજ અવલોકનથી ક્રમશઃ દર્શનમોહની બળવત્તરતા ઘટે છે અને જીવ આત્મદશાની ઊંચી ને ઊંચી પાયરીએ ચઢતો જાય છે. જેમ જેમ નિજ અવલોકન

વધે છે, તેમ તેમ જાગૃતિ વિશેષ થતી જાય છે. આત્મસ્વરૂપની અપૂર્વ જિજ્ઞાસા તથા સ્વકાર્યની લગનીના કારણે સર્વ ઉદયપરિણામોમાં નીરસતા વધતી જાય છે અને અંતરંગ નિર્મળતા પણ વૃદ્ધિગત થતી જાય છે. તેને અંતરથી વિભાવરસ પ્રત્યે જુગુપ્સા ભાવ જાગે છે અને તેથી વિભાવરસ તૃટતો જાય છે.

જે વિભાવભાવો પૂર્વે વિચારપદ્ધતિએ સમજાયા હતા, તે હવે નિજ અવલોકનથી અનુભવપદ્ધતિએ સમજાય છે. સત્સંગ દ્વારા એને દેષ્ટાંત, તર્કાદિથી સિદ્ધ થયું હતું કે કોધાદિ પરિણામ અપવિત્ર અને દુઃખદાયક છે, પરંતુ ક્રોધાદિ ભાવમાં દુઃખનો અનુભવ થયો ન હતો. દોષભાવમાં દુઃખ ભાસવું તે અનુભવનો વિષય છે, વિચારનો નહીં. તર્ક, યુક્તિ અને ન્યાયના વિકલ્પમાં રહીને દુઃખની જે સમજણ નથી આવતી, તે અનુભવ દ્વારા આવે છે. અવલોકન દ્વારા દોષના કારણે વ્યાકુળતાનું વેદન થાય છે, વિભાવનું ઊંડાણ જણાય છે તથા તે પાછળના અભિપ્રાયનું બળ પકડાય છે અને તેથી અનુભવ-પૂર્વક નક્કી થાય છે કે ક્ષણે ક્ષણે પલટાતા-પજવતા આ સર્વ વિભાવભાવ ખરેખર અપવિત્ર અને એકાંત દુઃખરૂપ જ છે. હવે તો તેનાથી છૂટવું જ છે.

સતત અંતર-અવલોકનનો પ્રયોગ કરતાં પોતાના સૂક્ષ્મ ભાવોનો પરિચય થવા લાગે છે. પ્રથમ પોતાનાં વિભાવપરિણામ સાથે તાદાત્મ્ય અધ્યાસ હતો, પણ તેનો પરિચય ન હતો. તે વિભાવનો સાચો પરિચય નિજ અવલોકનથી થાય છે. જેમ જેમ પરિચય વધે છે, તેમ તેમ તે ભાવની જાતિની ઓળખ થાય છે. પોતાથી વિરુદ્ધ જાતિના એવા વિજાતીય ભાવોથી પોતાના નિર્મળ જ્ઞાનસ્વભાવની પૃથક્તા તેને સ્પષ્ટપણે સમજાય છે. 'હું જ્ઞાનસ્વરૂપ છું' એ ભાવ અવલોકન સાથે જોડાય છે. તેને રાગાદિ વિભાવભાવો દુઃખરૂપે, આકુળતારૂપે, મિલનતારૂપે અને પોતાથી વિપરીતરૂપે અનુભવાય છે અને જ્ઞાન સુખરૂપે, નિરાકુળતારૂપે, પવિત્ર ભાવે અને સ્વપણે જણાય છે. નિજ દોષનું અપક્ષપાતપણે અવલોકન થતાં થતાં 'આ વિભાવરસ છે અને હું તો ત્રિકાળી શુદ્ધ, જાણનાર પદાર્થ છું' એવું ભેદજ્ઞાન સહજપણે નીપજે છે.

નિજ અવલોકનના યથાર્થ અભ્યાસ વિના ભેદજ્ઞાન સુધી પહોંચી શકાતું નથી. ભેદજ્ઞાનની પ્રક્રિયા, રાગ તેમજ પરથી ભિન્ન એવા જ્ઞાનસ્વભાવી આત્માને ગ્રહણ કરવાની સૂક્ષ્મ અંતરંગ કાર્યપદ્ધતિ છે. અનાદિથી ભાસતું સ્વભાવ અને વિભાવ વચ્ચેનું એકત્વ શા કારણે છે તે શરૂઆતમાં સમજી શકાતું નથી, તેથી ભેદજ્ઞાન દુર્ગમ લાગે છે, પરંતુ અવલોકનનો અભ્યાસ થવાથી સૂક્ષ્મતા આવતી જાય છે. તેને વિભાવ તથા જ્ઞાનસ્વભાવ વચ્ચેની સૂક્ષ્મ સંધિ જણાય છે અને તેથી તેનામાં ભેદજ્ઞાન કરવાની ક્ષમતા આવે છે.

આમ, નિજ અવલોકનથી ભેદજ્ઞાનનું કાર્ય સધાય છે. પોતાના ભાવોનું અવલોકન

કરતાં જ્ઞાન અને રાગ વચ્ચેનો ભેદ સમજાય છે અને ભેદજ્ઞાનનો પુરુષાર્થ શરૂ થાય છે. ભેદજ્ઞાન એ વર્તતા વિભાવના નિષેધપૂર્વક પ્રગટ સ્વભાવનો આદર છે. વાંચન આદિ બાહ્ય કિયા છે, ભેદજ્ઞાન અંતરિક્રિયા છે અને કોઈ પણ પ્રકારના બાહ્ય અવલંબન વિના તે સતત થઈ શકે છે. તેથી ભેદજ્ઞાનના પ્રયોગ માટે ઉત્સુક એવો જિજ્ઞાસુ જીવ દરેક કાર્ય વખતે પોતાના ઉપયોગમાં રહેલી જ્ઞાનની વ્યાપકતાને અવલોકે છે, તપાસે છે, જેથી રાગાદિથી ભિન્ન એવા જ્ઞાનરૂપે પોતે પોતાને અનુભવે છે. 'હું કોધાદિ કષાય નથી, રાગાદિ વિભાવ તે હું નથી, હું માત્ર જ્ઞાયકસ્વભાવી છું' એમ ભેદજ્ઞાન થવાથી વિભાવ અત્યંત મંદ પડતો જાય છે. શેરડીમાં રસ છે, પણ કૂચાના સંયોગના કારણે રસ પ્રત્યક્ષ જુદો દેખાતો નથી; છતાં 'રસ અને કૂચા જુદાં છે' એવા જ્ઞાનના આધારે રસ અને કૂચા જુદા પાડવામાં આવે છે; તેમ પુદ્દગલકર્મના સંયોગથી જે વિકારભાવ થાય છે તે આત્માનું સ્વરૂપ નથી. આત્મા તો પૂર્ણ, અવિકારી, ધ્રુવ, અખંડસ્વભાવી છે. 'વર્તમાન અવસ્થામાં ક્ષણિક રાગાદિ વિકાર થતા હોવા છતાં આત્મા તો ત્યારે પણ અવિકારી જ છે' એવા ભેદજ્ઞાનના બળ વડે રાગાદિ વિકાર ટળતા જાય છે.

સ્વરૂપની અપૂર્વ જિજ્ઞાસા સાથે નીકળેલો મુમુક્ષુ જીવ સદ્દ્ગુરુના બોધને વારંવાર સ્મતિમાં લાવીને સ્વભાવ-વિભાવ વચ્ચે ભેદજ્ઞાન કરતાં કરતાં સ્વભાવ તરફનું વલણ વધારતો જાય છે. હવે તે સ્વરૂપસન્મુખતાની ભૂમિકામાં આવે છે, સ્વસન્મુખ પુરુષાર્થના અપૂર્વ તબક્કામાં પ્રવેશ કરે છે. ઉદયપ્રસંગે લક્ષ પૂર્વે પરપદાર્થ પ્રત્યે જતું હતું, તે હવે યથાર્થ નિજ અવલોકનના બળથી પોતાના ભાવો ઉપર જવા માંડે છે અને ભેદ-જ્ઞાનના બળ વડે ઉપયોગ અંતર તરફ - ત્રિકાળી આત્મસ્વભાવ તરફ વળે છે. નિજ અવલોકનથી ભેદજ્ઞાન અને ભેદજ્ઞાનથી સ્વરૂપસન્મુખતા સધાય છે. બહિર્મુખ ઉપયોગ માત્ર પરનો અભ્યાસ કરતો હતો, તે ઉપયોગ નિજ અવલોકન થતાં પર્યાયનો અભ્યાસ કરે છે, દોષનું વેદન થાય છે અને સ્વરૂપસન્મુખતાના તબક્કામાં ઉપયોગ પૂર્ણ નિર્દોષ સ્વભાવ તરફ વળે છે કે જ્યાં પૂર્ણ શુચિ જ છે, જ્યાં અશુચિનો પ્રવેશ ક્યારે પણ થયો જ નથી. જિજ્ઞાસુ જીવ ચારે બાજુથી પોતાના ઉપયોગને સંકેલી લઈને સ્વરૂપ-સન્મુખ થાય છે. સર્વનું લક્ષ છોડી, તે એક નિરપેક્ષ ત્રિકાળી ચૈતન્યસ્વરૂપનો આશ્રય કરે છે. તે કેવળ શુદ્ધાત્માનું અવલંબન લે છે. તે પોતાનાં વિષય, આશ્રય અને આલંબન તરીકે - જેમાં કોઈ ભેદ નથી, જેમાં કોઈ પરિણમન નથી એવા અભેદ, એકરૂપ, નિર્વિકારી, ધ્રુવ જ્ઞાયકપ્રભુને ગ્રહણ કરે છે. તે પોતાના ચિદાનંદસ્વભાવનું અનુસંધાન કરે છે, સ્વરૂપજાગૃતિ કેળવે છે.

તે જિજ્ઞાસુ જીવને સ્વભાવનો અચિંત્ય મહિમા આવે છે. સ્વભાવમાં જ તેને રસ લાગે છે. અન્ય સર્વ તેને નીરસ લાગે છે. આત્મસાધનાના પંથે તેનો વિકાસ હવે વેગ પકડે છે. તે કોઈ પુશ્યોદયમાં લેપાતો નથી અને જગતની કોઈ પણ પ્રતિફૂળતાથી ભય પામતો નથી. તે અનુકૂળતામાં લીન થતો નથી અને પ્રતિફૂળતામાં દીન થતો નથી. તેને અનુકૂળતામાં ઠીકપણાની અને પ્રતિફૂળતામાં અઠીકપણાની લાગણી થતી નથી. સ્વના અભ્યાસમાં દક્ષતા આવતાં કોઈ પણ પરિસ્થિતિ તેને અનુકૂળ-પ્રતિફૂળ લાગતી નથી. બહારના સંયોગો તેને સુખી કે દુ:ખી કરી શકતા નથી. કોઈ પણ પરિસ્થિતિમાં તે સુખ-દુ:ખ અનુભવતો નથી. તેનાથી તે અપ્રભાવિત જ રહે છે. જે પણ પરિસ્થિતિ આવે તેને જીવનની સ્વાભાવિક ઘટમાળ ગણીને તે સ્વીકારી લે છે. તે પરનો માત્ર જ્ઞાતા રહેવાનો અભ્યાસ કરે છે. પોતાના આવા વિશિષ્ટ અભિગમના કારણે તે ગમે તેવા સંજોગોમાં પણ પોતાનો આત્મવિકાસ સાધે છે. તે સંજોગો પ્રત્યે લક્ષ ન કરતાં રાત-દિવસ ચૈતન્યપદને જ ચાહે છે. જેમ જેમ સ્વરૂપદષ્ટિનું બળ વધતું જાય છે, તેમ તેમ આનંદનું ધામ તેને પોતાની અંદર જ વધુ ને વધુ નજીક દેખાતું જાય છે. સ્વસન્યુખ પુરુષાર્થ આગળ વધીને સ્વાનુભવમાં પરિણમે છે અને તેને સ્વાધીન આનંદની ઉપલબ્ધિ થાય છે. અંતરસંશોધનના અભ્યાસથી નિશ્વય સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થઈ અનંત પરિભ્રમણનો છેદ ઊડી જાય છે.

આમ, જિજ્ઞાસુ જીવ સદ્ગુરુના નિરંતર તથા વિશેષ સમાગમના આશ્રયે બોધ પ્રાપ્ત કરી સ્વરૂપની સમજણ કરે છે. સદ્ગુરુના સદુપદેશને અનુસરી તત્ત્વનિર્ણય કરી તે વ્યવહાર સમકિતની પ્રાપ્તિ કરે છે. સદ્ગુરુના બોધનો આશ્રય કરી તે અંતરશોધનની કળામાં પારંગત થાય છે. આધ્યાત્મિક ચેતનાના વિકાસમાં આ મહત્ત્વનો તબક્કો છે. અનાદિથી જે વિકારભાવ ક્ષીણ થતો ન હતો તે નિજ અવલોકનથી પકડાય છે, સ્વભાવ-વિભાવ વચ્ચે ભેદજ્ઞાન થાય છે; પરિણામે ઉપયોગનું જોડાણ ચૈતન્યસત્તામાં થઈ વિકારનો નાશ થાય છે. જિજ્ઞાસુ જીવ આ પ્રકારે અપૂર્વ અંતરસંશોધનથી ક્રમે કરીને નિશ્ચય સમકિતની પ્રાપ્તિ કરે છે. જેમ પાતાળકૂવો ખોદતાં, જ્યારે પથ્થરનું છેલ્લું પડ તૂટીને તેમાં કાશું પડે છે ત્યારે તેમાંથી ઊડેલા પાણીની સેરની ઊંચાઈ જોતાં, પાતાળમાં રહેલા પાણીના જોરનો અંદાજ આવે છે; તેમ સૂક્ષ્મ ઉપયોગ વડે ઊંડાણમાં ચૈતન્ય-તત્ત્વના તળિયા સુધી પહોંચી જતાં, નિશ્ચય સમકિત પ્રગટતાં જે આંશિક શુદ્ધ પર્યાય ફૂટે છે, તે પર્યાય વેદતાં આત્મતત્ત્વનું અનંત ધ્રુવ સામર્થ્ય અનુભવમાં - સ્પષ્ટ ખ્યાલમાં આવે છે. શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે કે —

'આગળ કહ્યા તેવા આત્માર્થી સુલક્ષણવાન જીવને, સદ્દગુરુનો જે ઉપદેશ પ્રાપ્ત થાય છે તેને સત્ શ્રવણ કહેવાય છે, તે સદ્દગુરુનો ઉપદેશ થતાં પોતાને અંતરમાં બેસે કે આત્માનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ આમ જ છે, એવો નિઃસંદેહ ભણકાર આવે છે, તેને અવ્યક્તપણે કારણ પ્રગટ થાય છે, અને દઢ રુચિ વધે છે, તેને "વર્તે અંતરશોધ" એવા આત્મસ્વરૂપનો આદર થાય છે. પૂર્ણ પવિત્ર સ્વાધીન સત્ શું, એવા એક જ લક્ષને વળગીને તે અંતરની શોધમાં વર્તે છે, અને તેથી આ ચૈતન્થમૂર્તિ પવિત્ર જ્ઞાનસ્વરૂપ જે નિરુપાધિક તત્ત્વ છે, તેનું ભાન તે મુમુક્ષુ અવશ્ય પામે છે.'

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે -

'તે જિજ્ઞાસુ જીવને, લાગી લગન જે એક; છોડાવે છૂટે નહીં, એવી સાચી ટેક. એવા સરળ સ્વભાવીને, થાય સદ્ગુરુબોધ; તેલ બિંદુ જળ વિસ્તરે, તેમ આત્મ અવિરોધ. તત્ત્વાતત્ત્વ વિચારથી, ઊપજે સહજ વિવેક; તો પામે સમક્તિને, જેના ભેદ અનેક. ભવભયના ઉદ્વેગથી, ત્રાસી ત્યજી અબોધ; એ અંતર આત્મા પછી, વર્તે અંતરશોધ.' ર

* * *

૧- શ્રી કાનજીસ્વામી, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચનો', આઠમી આવૃત્તિ, પૃ.૩૬૨

૨- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૧ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૩૩-૪૩૬)

भग १ दिश्य कार्य प्रमा निष्ठ के प्रमा के हिन प्रकार

ભૂમિકા ગાથા ૧૦૯માં કહ્યું કે જિજ્ઞાસુ જીવને જો આત્મજ્ઞાની ગુરુ દ્વારા ઉપદેશની પ્રાપ્તિ થાય તો તે સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરે છે અને પછી તે અંતરની શોધમાં વર્તે છે.

શુદ્ધાત્માનુભવરૂપ સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ પૂર્વે શુભોષયોગ જ પ્રવર્તતો હોય છે, અશુભોષયોગ ક્યારે પણ હોતો નથી. વિશુદ્ધ પરિણામો પછી જ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થાય છે. સદ્વુરુ પ્રત્યેની શ્રદ્ધા-ભક્તિરૂપ, તત્ત્વના મનનરૂપ, શુદ્ધાત્માના ચિંતનરૂપ વિશુદ્ધ પરિણામો અને સ્વાનુભવની તીવ્ર ભાવના એ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શનના હેતુ બને છે. સમ્યગ્દર્શનના હેતુભૂત આ વિશુદ્ધ પરિણામ તે વ્યવહાર સમક્તિ છે. જિજ્ઞાસુ જીવ સદ્વુરુના બોધના નિમિત્તથી વ્યવહાર સમક્તિ પામે છે અને પછી શુદ્ધ જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપ નિજાત્માની શોધમાં લાગી જાય છે. તત્ત્વ તથા તત્ત્વોપદેષ્ટાની શ્રદ્ધારૂપ (વ્યવહાર) સમક્તિની પ્રાપ્તિ થઈ ચૂકી છે એવા સુપાત્ર જીવને સ્વાનુભવરૂપ (નિશ્ચય) શુદ્ધ સમક્તિની પ્રાપ્તિ કઈ રીતે થાય છે તે બતાવતાં શ્રીગુરુ હવે કહે છે –

ંમત દર્શન આગ્રહ તજી, વર્તે સદ્દગુટુલક્ષ; લહે શુદ્ધ સમક્તિ તે, જેમાં ભેદ ન પક્ષ.' (૧૧૦)

મત અને દર્શનનો આગ્રહ છોડી દઈ જે સદ્દગુરુને લક્ષે વર્તે, તે શુદ્ધ સમક્તિને પામે કે જેમાં ભેદ તથા પક્ષ નથી. (૧૧૦)

ભાવાર્થ જેવ અનાદિ કાળથી મોહ અને અજ્ઞાનને વશ વર્તી રહ્યો છે અને તેથી જ તે પોતાનાં મત અને દર્શનનો આગ્રહી બને છે. અસદ્વુરુ દ્વારા પ્રેરિત કે પોતાની મતિકલ્પનાએ કરેલી માન્યતાઓને જ સત્ય માની, તેને યેનકેન પ્રકારે સિદ્ધ કરવાનો તે આગ્રહ રાખે છે. આત્માર્થી જીવ આવા ખોટા આગ્રહનો ત્યાગ કરી, પોતાની સર્વ સમજણ સદ્વુરુના બોધ અનુસાર ફેરવે છે. અમુક વેષથી કે અમુક ક્રિયાથી જ મોક્ષ થાય છે, અમુક દિવસે અને અમુક પદ્ધતિએ કરેલાં ધર્માનુષ્ઠાનોથી જ સાચી આરાધના થાય છે, સત્પુરુષો આમ જ વર્તે ઇત્યાદિ મોક્ષમાર્ગ સંબંધી, સત્પુરુષના વર્તન સંબંધી, સત્નના નિર્ણય સંબંધી જે જે અભિનિવેશો તેણે ગ્રહ્યાં હોય તેનો ત્યાગ કરી, સદ્વુરુ જે બતાવે તે જ લક્ષ્યમાં પરિપૂર્ણપણે પ્રવર્તે છે.

મત-દર્શનનો આગ્રહ આત્મપ્રાપ્તિમાં બાધક હોવાથી સુપાત્ર જીવ પોતાના

પૂર્વગૃહીત અભિપ્રાયો અને માન્યતાઓનો ત્યાગ કરી, સદ્ગુરુએ સમ્મત કરેલું સર્વ સમ્મત કરી, તેમની પવિત્ર આજ્ઞાનો આરાધક બને છે અને સદ્ગુરુના માર્ગદર્શન અનુસાર આત્મસાધના કરે છે. તે સદ્દ્ગુરુના બોધનું ચિંતન-મનન કરી, આત્મસ્વરૂપનો દઢ નિર્ણય કરી, તેના અજોડ મહિમા સહિત શુદ્ધાત્માની ભાવનામાં રત રહે છે. આત્મભાવના ભાવતાં ભાવતાં આત્મસ્વરૂપમાં એવી તો રમણતા થઈ જાય છે કે સમસ્ત વિકલ્પો અસ્ત પામે છે અને ઉપયોગ નિજસ્વરૂપમાં સ્થિર થાય છે. આમ, જીવ જ્યારે સદ્ગુરુના લક્ષે સ્વસન્મુખ પુરુષાર્થમાં વર્તે છે ત્યારે કોઈ પરમ ધન્ય પળે તે નિર્મળ, નિરાકુળ, અપરિમિત આનંદમય શુદ્ધાત્માનુભવરૂપ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ કરે છે. આ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન કે શુદ્ધ સમકિત ગમે તે મત, પંથ કે સંપ્રદાયમાં, ગમે તે ક્ષેત્ર કે કાળમાં, ગમે તે સદ્ગુરુ કે સત્સાધન દ્વારા થાય; પણ ત્યાં આત્માનુભવ તો એક જ પ્રકારનો હોય છે, અર્થાત્ તેમાં કોઈ ભેદ કે પક્ષ હોતો નથી.

વિશેષાથી જે જીવના અંતરમાં સાચી મુમુક્ષુતા જાગે છે, તેને સદ્ગુરુના ચરણ-કાળની ઉપાસનાથી આત્માની પ્રીતિ-પ્રતીતિ પ્રગટે છે. તે સદ્ગુરુ પાસેથી જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપ આત્માનો અગાધ મહિમા જાણીને લક્ષગત કરે છે અને પછી વારંવાર અભ્યાસ વડે પોતાનાં પરિણામને તેમાં જોડે છે. તે બહાર ભટકતા ઉપયોગને ફેરવીને પોતાના આત્મામાં સ્થિર કરવાનો પુરુષાર્થ કરે છે. પરિણામોની વિશુદ્ધિ થતાં અને કર્મની સ્થિતિ ઘટતાં કોઈ એવો અપૂર્વ અવસર આવીને ઊભો રહે છે કે તેને આત્માનું દર્શન થાય છે. અંતર્મુખ ઉપયોગ વડે તેને આત્માનો અપરોક્ષ અનુભવ થાય છે. આ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન છે. પાત્રતાથી લઈને પ્રાપ્તિ પર્યંતની આ સમગ્ર પ્રક્રિયાને જ્ઞાનીઓએ પાંચ લબ્ધિઓ દ્વારા સ્પષ્ટ રીતે સમજાવી છે.

સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિમાં પાંચ લબ્ધિ કારણભૂત છે, અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન પ્રકાશે છે તેની પૂર્વે પાંચ લબ્ધિઓ પ્રાપ્ત થાય છે. લબ્ધિ એટલે સિદ્ધિ. તે લબ્ધિઓ આ પ્રમાણે છે - ક્ષયોપશમલબ્ધિ, વિશુદ્ધિલબ્ધિ, દેશનાલબ્ધિ, પ્રાયોગ્યલબ્ધિ અને કરણ-લબ્ધિ. કરણલબ્ધિના ત્રણ તબક્કા છે - અધઃકરણ, અપૂર્વકરણ અને અનિવૃત્તિકરણ. આ પાંચ લબ્ધિઓની પ્રાપ્તિ જીવને ક્રમપૂર્વક થાય છે. આ પાંચ લબ્ધિમાંથી પહેલી ચાર સાધારણ લબ્ધિ છે, એટલે કે તે ભવ્ય અને અભવ્ય બન્ને પ્રકારના જીવને હોઈ શકે છે. પ્રાયોગ્યલબ્ધિ સુધી ભવ્ય અને અભવ્ય બન્ને પ્રકારના જીવો પહોંચી શકે છે, અર્થાત્ અંથિપ્રદેશ સુધી બન્ને પ્રકારના જીવ પહોંચી શકે છે. પાંચમી કરણલબ્ધિ ૧- જુઓ : આયાર્યશ્રી વીરસેનજીકૃત, 'ધવલા', પુસ્તક ૬, ખંડ ૧, ભાગ ૯-૮, સૂત્ર ૩, ગાથા ૧. પ.૨૦૫

'खयउवसमिय-विसोही देसण-पाओग्ग-करणलद्धी व । चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होइ सम्मत्ते ।।' માત્ર ભવ્ય જીવને જ પ્રાપ્ત થાય છે. જેને પૂર્વની ચાર લબ્ધિ પ્રગટી ચૂકી છે તેવા ભવ્ય જીવને જ કરણલબ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે. આ લબ્ધિ ચારે ગતિનાં મંદકષાયરૂપ વિશુદ્ધપણાના ધારક અને સમ્યક્ત્વ તરફ ઝૂકેલા એવા સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય, જાગૃત, સાકાર ઉપયોગયુક્ત ભવ્ય જીવને જ હોય છે. આ લબ્ધિ પ્રાપ્ત થયા પછી સમ્યગ્દર્શન નિયમથી પ્રગટે છે. કરણલબ્ધિના અંત સમયમાં સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત થાય છે. જે ભવ્ય જીવ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરે છે તેનો આત્મવિકાસ પાંચ લબ્ધિના અનુસંધાનમાં જોઈએ –

(૧) ક્ષયોપશમલબ્ધિ

જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મોના ક્ષયોપશયની એવી સ્થિતિ કે જેમાં તત્ત્વવિચાર થઈ શકે તે ક્ષયોપશયલબ્ધ છે. ઉદયકાળને પ્રાપ્ત સર્વઘાતી સ્પર્ધકોના નિષેકોના ઉદયનો અભાવ તે ક્ષય તથા ભાવિ કાળમાં ઉદય આવવા યોગ્ય કર્મોનું સત્તારૂપ રહેવું તે ઉપશય. દેશઘાતી સ્પર્ધકોના ઉદય સહિત કર્મોની એવી અવસ્થા થવી તેનું નામ ક્ષયોપશય. તેની પ્રાપ્તિ તે ક્ષયોપશયલબ્ધ છે.

સંજ્ઞી પર્યાપ્ત જીવને આ લબ્ધિ વડે તત્ત્વવિચાર કરવાની ક્ષમતા પ્રાપ્ત થાય છે. આ લબ્ધિ વડે જીવ પોતાનાં હિત-અહિત, કલ્યાણ-અકલ્યાણ તથા સુખ-દુઃખનું યથાર્થ જ્ઞાન કરી શકે છે. સદ્દ્ગુરુના ઉપદેશને યથાર્થપણે ગ્રહણ કરી શકે તથા તે ઉપદેશને જેમ છે તેમ બરાબર સમજી શકે એવો ક્ષયોપશમ તેની પર્યાયમાં પ્રગટ થાય છે.

(૨) વિશુદ્ધિલબ્ધિ

ક્ષયોપશમલબ્ધિયુક્ત જીવનાં સંકલેશ પરિણામોની હાનિ થવી તથા શુભ પરિણામોની પ્રાપ્તિ તથા વૃદ્ધિ થવી તે વિશુદ્ધિલબ્ધિ છે. શુભ પરિણામ શાતાવેદનીય વગેરે શુભ પ્રકૃતિઓના બંધનું કારણ છે. તેવાં શુભ પરિણામની પ્રાપ્તિ થવી તે વિશુદ્ધિલબ્ધિ છે. અહીં મોહનીય કર્મનો ઉદય મંદ હોય છે, કષાયભાવ મોળા હોય છે અને પરિણામે તત્ત્વ પ્રત્યે પ્રેમ જાગે છે, તત્ત્વવિચારની રુચિ પ્રગટે છે.

આ ભૂમિકાએ જીવના કષાયો શાંત પડવા લાગે છે. તેને મુક્તિની તીવ્ર ઝંખના હોય છે, અન્ય ઇચ્છાઓ હોતી નથી. અવિનાશી, સ્વાધીન સુખનો ભોક્તા થવા માટે તે ઉત્સાહિત બને છે. તેના મનમાં જન્મ-મરણનાં દુઃખોથી ભરેલા સંસારથી છૂટવાનો દઢ નિર્ધાર થાય છે. ભવભ્રમણથી તેને થાક લાગે છે. જગતના બધા જીવો પ્રત્યે અંતરથી દયાનો ભાવ પ્રગટે છે. તેનું જીવન શાંત, નિર્મળ, સંયમિત થવા લાગે છે.

૧- જુઓ : સિદ્ધાંતચક્રવર્તી શ્રી નેમિચંદ્રજીકૃત, 'લબ્ધિસાર', ગાથા ૩૩

^{&#}x27;तत्तो अभव्वजोग्गं परिणामं वोलिऊण भव्वो हु । करणं करेदि कमसो अधापवत्तं अपुव्वमणियट्टिं ।।'

જ્યાં જોડાવાથી રાગ-દેષનાં પરિણામ થાય એવાં નિમિત્તોથી તે સહજે દૂર રહે છે. પાંચે ઇન્દ્રિયના વિષયવ્યાપાર શિથિલ થતાં જાય છે. તે આત્મકલ્યાણના પ્રયત્નોમાં લાગી જાય છે. આત્મવિકાસ અને આત્મશુદ્ધિ ઉપર તેનું લક્ષ કેન્દ્રિત થાય છે.

(૩) દેશનાલબ્ધિ

જેને ક્ષયોપશમલિબ્ધિ પ્રગટી છે અને જેનાં પરિજ્ઞામ વિશુદ્ધ થયાં છે એ દેશના-લિબ્ધને યથાર્થપણે અહણ કરી શકે છે. દેશના એટલે ઉપદેશ. આપ્તપુરુષોએ ઉપદેશેલાં તત્ત્વોનું અહણ તથા તેના ઉપર વિચાર થવો તે દેશનાલિબ્ધિ છે. પ્રત્યક્ષ સદ્ગુરુ આદિના યોગ દ્વારા તત્ત્વાર્થનાં અહણ, ધારણ તથા વિચારણાની પ્રાપ્તિ થવી તેને દેશનાલિબ્ધિ કહેવામાં આવે છે. નરકાદિ ગતિમાં જ્યાં ઉપદેશ આપનાર કોઈ નથી, ત્યાં પૂર્વભવમાં અહણ કરેલા તત્ત્વાર્થના સંસ્કારબળથી આ લિબ્ધ પ્રાપ્ત થાય છે.

સદ્ગુરુ દેશના દારા આત્મકલ્યાણનો માર્ગ બતાવે છે. તેઓ વિશ્વવ્યવસ્થા, વસ્તુ-વ્યવસ્થા, છ દ્રવ્ય, નવ તત્ત્વ, ઉપાદાન-નિમિત્ત, નિશ્ચય-વ્યવહાર આદિનું યથાર્થ સ્વરૂપ સમજાવે છે. સદ્ગુરુએ બોધેલું તત્ત્વજ્ઞાન સુપાત્ર જીવના અંતરને સુવાસિત કરે છે. તે સદ્ગુરુની દેશના સાંભળે છે અને લક્ષમાં લે છે. દેશનાનો અને દેશનાંદાતાનો પુનઃ પરિચય, તેમના પ્રત્યે અપાર પ્રીતિ, પ્રમોદ અને પ્રતીતિનું પ્રાગટ્ય તે જ દેશના-લબ્ધિની સાર્થકતા છે. તે સદ્ગુરુના તત્ત્વોપદેશનો વારંવાર અભ્યાસ કરે છે. તે તત્ત્વનો વિચાર કરે છે અને તેનું જ વારંવાર ઘોલન કરે છે. આ રીતે પ્રવર્તતાં 'મારું સ્વરૂપ આવું જ છે' એવી બુદ્ધિપૂર્વકની દઢ પ્રતીતિ તેને થાય છે. તેને સ્વરૂપ પ્રાપ્તિની તીવ તાલાવેલી જાગે છે. દેશનાલબ્ધિ એ જીવની મોક્ષયાત્રાનું અતિ મહત્ત્વનું સોપાન છે, કારણ કે કલ્યાણસ્વરૂપ સદ્ગુરુનાં વચનામૃત, મુદ્રા અને સત્સમાગમના પરમ આધારભૂત અવલંબને તે પોતાના કલ્યાણમહેલનો મક્કમ પાયો અહીં રચે છે.

(૪) પ્રાયોગ્યલબ્ધિ

સત્તાગત કર્મોની સ્થિતિ સ્વયં ઘટીને માત્ર અંતઃકોડાકોડી સાગરપ્રમાણ રહી જાય એવાં આત્માનાં પરિણામ થવાની યોગ્યતા પ્રાપ્ત થવી તે પ્રાયોગ્યલબ્ધિ છે. ઉપરોક્ત ત્રણ લબ્ધિઓને પ્રાપ્ત થયેલ જીવ વિશુદ્ધતાની વૃદ્ધિ કરે અને તેના આયુકર્મ સિવાયનાં સાતે કર્મોની સ્થિતિ ઘટીને માત્ર અંતઃકોડાકોડી સાગરોપમથી ન્યૂન કાળ થઈ જાય તેમજ તે કર્મોની ફળ આપવાની શક્તિ નિર્બળ બની જાય, નવો કર્મબંધ પણ આયુકર્મ છોડીને અંતઃકોડાકોડી સાગરોપમના સંખ્યાતમા ભાગ જેટલો થાય અને તે પણ આ લબ્ધિકાળથી માંડીને ક્રમથી ઘટતો જાય તથા કેટલીક પાપ પ્રકૃતિઓનો બંધ ક્રમથી મટતો જાય ઇત્યાદિ અવસ્થા થવી તેનું નામ પ્રાયોગ્યલબ્ધિ છે.

પ્રાયોગ્યલબ્ધિમાં રહેલો આત્મા તત્ત્વનિર્ણયના આધારે પ્રયોગાત્મક અભ્યાસ શરૂ કરે છે. તે ભેદજ્ઞાનનો અભ્યાસ કરે છે. સદ્ગુરૂએ પ્રબોધેલ આત્માના સ્વાધીન ગુણોનું ગૌરવ, પરમાત્માના પ્રકૃષ્ટ સુખની યશોગાથા, સ્વરૂપસ્થિરતાના અનંત આનંદનો અહોભાવ - આ સર્વ અંતરમાં જીવંત રાખી ભેદજ્ઞાન દ્વારા તે આગળ વધતો જાય છે. ભેદજ્ઞાનના પુરુષાર્થથી તે વિચારની ભૂમિકામાંથી ભાવભાસનની ભૂમિકામાં પ્રવેશે છે. આત્મસ્વરૂપ તથા તેના યથાર્થ ભાવ તે સુપાત્ર જીવની દેષ્ટિ સમક્ષ પુનઃ પુનઃ નૃત્ય કરે છે. જો કે તેને હજુ સ્વસંવેદન પ્રગટ્યું નથી, આત્માના અખંડ આનંદનો આસ્વાદ હજુ તેશે લીધો નથી, તથાપિ તેની ભાવનામાં 'હું જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપી, ત્રિકાળી શુદ્ધ, સિદ્ધ સમાન સ્વાધીન આત્મતત્ત્વ છું' એવા ભાવ નિરંતર ઘુંટાય છે. તેનો ઉપયોગ શુદ્ધ સ્વભાવ ઉપર કેન્દ્રિત થાય છે. તેની દૃષ્ટિ એકમાત્ર આત્મતત્ત્વ ઉપર ચોંટે છે. 'મારે મારા જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપનું વેદન કરવું જ છે' એવી તેની ભાવના સતત જાગૃત રહે છે. 'કોઈ પણ પ્રકારે સત્પુરુષાર્થ કરી, મારા શુદ્ધાત્માનો અનુભવ હું શીધ્રાતિશીધ્ર કરું' એવી યથાર્થ અભિરચિ તેની ધ્યેયપ્રાપ્તિ આડે આવતાં વિઘ્નોને દર કરવામાં પરમ સહાયભૂત થાય છે. તેનો ઉઘમ સતત ચાલુ જ રહે છે. એક અખંડ ત્રિકાળી શુદ્ધ જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપનો પિપાસુ એવો તે ભવ્યાત્મા સર્વ કલ્પનાઓ અને જલ્પનાઓને છોડીને આત્મસાધનામાં તલ્લીન થાય છે. સંસારનો રસ ઘટતો જઈ અતીન્દ્રિય આનંદના મહિમામાં તેનું હૃદય એકતાન થાય છે. તેના મિથ્યાત્વરસની માત્રા અત્યંત અલ્પ રહે છે. સદ્વરના પુષ્ટ અવલંબને અને નિજપરિણામોની ઉજ્જવળતાના સથવારે ભાવોની ઉત્તત શ્રેણી ઉપર ચડી તે હવે કરણલબ્ધિમાં પ્રવેશ કરે છે.

(૫) કરણલબ્ધિ

કરણ એટલે પરિણામ, ભાવ. કરણનો બીજો અર્થ વિશિષ્ટ સાધન પણ થાય છે. આ તબક્કામાં પ્રવેશેલા જીવનાં પરિણામોને કરણ એટલા માટે કહે છે કે એ દ્વારા નિયમથી તે જીવના મિથ્યાત્વરૂપી અંધકારનો નાશ થાય છે અને સમ્યગ્દર્શનરૂપી સૂર્યનો ઉદય થાય છે. આત્માને સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરાવે એવા ભાવોની પ્રાપ્તિ થવી તે કરણ-લબ્ધિ છે. જેનાથી કર્મોની સ્થિતિનું અને એના રસનું ખંડન કરવાની શક્તિ ઊપજે એવું આત્મસામર્થ્યવિશેષ તે કરણલબ્ધિ છે. જેને અંતર્મુહૂર્તમાં સમ્યગ્દર્શન થવાનું હોય એવા ભાગ્યશાળી જીવને જ આ કરણલબ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે. આ કરણલબ્ધિવાળા જીવનાં પરિણામ સમયે સમયે નિર્મળ ને નિર્મળ થતાં જાય છે. કમશઃ વધતી જતી નિર્મળતાથી તેના આત્મા ઉપર ચડેલ મિથ્યાત્વનાં પડળ ખરી પડે છે અને અંતર્મુહૂર્તમાં તેને સમ્યક્ત્વ પ્રગટે છે.

પ્રાયોગ્યલબ્ધિમાં પ્રગટાવેલ ભાવોની ઉજ્જવળતા કરણલબ્ધિમાં વિશેષ ને વિશેષ

વૃદ્ધિ પામતી જાય છે. કરણલબ્ધિમાં સમયે સમયે પરિણામોની ઉજ્જવળતા અનંતગણી વધતી જાય છે. તેના અંતરમાં ભાવોની એવી ઉત્કૃષ્ટ ભૂમિકા રચાય છે કે જેના પ્રભાવ વડે તે શીવ્રમેવ સમ્યક્ત્વમહેલમાં પહોંચી જાય છે. તેનાં પરિણામોની તીક્ષ્ણ અસિ સમ્યક્ત્વને બાધકરૂપ એવાં કર્મોની સેનાને હશે છે. મિથ્યાત્વમહારાજાએ અનાદિ કાળથી જીવને અજ્ઞાનમાં ડુબાડી રાખ્યો હતો, તે મિથ્યાત્વ હવે આ પ્રચંડપુરુષાર્થી આગળ બળહીન થઈ જાય છે, અનંતાનુબંધી કષાયની ચોકડી તેનાં ઉપ ભાવબાણો વડે વીંધાઈ જાય છે અને સંસાર સંબંધી સંકલ્પ-વિકલ્પ રણ છોડી ભાગી છૂટે છે. તે વીર જીવ પરમ પુરુષાર્થ દ્વારા પોતાના અનાદિ અંતરંગ શત્રુઓ ઉપર ગૌરવવંતો વિજય મેળવીને સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરે છે. તે નિજાનંદરૂપ અમૃતનો સ્વાદ લઈને પરમ તૃપ્ત થાય છે.

કરણલબ્ધિના ત્રણ ભેદ છે - (૧) અધઃકરણ (યથાપ્રવૃત્તિકરણ), (૨) અપૂર્વકરણ (૩) અનિવૃત્તિકરણ. દરેક ભેદની કાળસ્થિતિ અંતર્મુહૂર્તની છે, છતાં અનિવૃત્તિકરણનો કાળ આ ત્રણેમાં સૌથી અલ્પ હોય છે. તેના કરતાં અપૂર્વકરણનો કાળ સંખ્યાતગુણો વધુ હોય છે.

સૌ પ્રથમ અધઃકરણ અંતર્મુહૂર્ત કાળ પર્યંત થાય છે, જ્યાં જીવનાં પરિશામોનાં નિમિત્તે ચાર કાર્ય થાય છે - (i) સમયે સમયે તેનાં પરિશામોની વિશુદ્ધિ થાય છે. (ii) નવીન કર્મબંધની સ્થિતિ એક એક અંતર્મુહૂર્તથી ઘટતી જાય છે. (iii) પ્રશસ્ત પ્રકૃતિઓનો અનુભાગ સમયે સમયે અનંતગુણો વધે છે. (iv) સમયે સમયે અપ્રશસ્ત પ્રકૃતિઓનો અનુભાગ ઘટીને અનંતમો ભાગ થાય છે.

યથાપ્રવૃત્તિકરણ પછી અપૂર્વકરણ થાય છે. જેમાં પ્રત્યેક સમયે નવાં નવાં અપૂર્વ પરિણામ થાય છે તેને અપૂર્વકરણ કહેવાય છે. અપૂર્વકરણને પ્રાપ્ત થયેલો તે પુરુષાર્થી વીર્યવંત જીવ આત્મતત્ત્વના રસમાં તરબોળ હોય છે. ઉત્કૃષ્ટ પરિણામોની ધારામાં કિલ્લોલ ચાલે છે. આ અપૂર્વકરણમાં ત્રણ કાર્ય અવશ્ય થાય છે - (i) સત્તામાં સ્થિત પૂર્વકર્મોની સ્થિતિને પ્રત્યેક અંતર્મુહૂર્તમાં ઉત્તરોત્તર ઘટાડે એવો સ્થિતિકાંડઘાત (સ્થિતિ- ખંડન) થાય છે, અર્થાત્ કર્મોની સ્થિતિ ઘટી જાય છે. (ii) પ્રત્યેક અંતર્મુહૂર્તમાં પૂર્વકર્મોના અનુભાગને ઉત્તરોત્તર ઘટાડે એવો અનુભાગકાંડઘાત (અનુભાગખંડન અથવા રસઘાત) થાય છે. દા.ત. અશાતા વેદનીયાદિ પાપ પ્રકૃતિઓમાં રસ હલકો થઈ જાય કે સુકાઈ જાય. (iii) ગુણશ્રેણીના કાળમાં કમથી અસંખ્યાતગુણા પ્રમાણમાં કર્મ નિર્જરતાં હોવાથી ત્યાં ગુણશ્રેણીનિર્જરા થાય છે. આ ગુણશ્રેણીનિર્જરામાં, અસંખ્યાત સમયમાં થતી નિર્જરા એક સમયમાં થઈ જાય છે. અપૂર્વકરણનાં પરિણામોના પ્રતાપે તે જીવમાં વિશુદ્ધતાની માત્રા અધિક ને અધિક વધતી જ રહે છે.

હવે તે જીવ અનિવૃત્તિકરણમાં પ્રવેશ કરે છે. આત્માનાં ઉજ્જવળ પરિણામના નિમિત્તથી, અનિવૃત્તિકરણના કાળ પછી ઉદયમાં આવવા યોગ્ય એવા મિથ્યાત્વ કર્મના મુહૂર્ત માત્ર નિષેકનો અંતર્મુહૂર્ત પર્યંત અભાવ થાય છે અને તે પરમાણુઓ અન્ય સ્થિતિરૂપે પરિણમે છે, જેને અંતરકરણ કહેવાય છે. અંતરકરણ પછી ઉપશમકરણ થાય છે. તેમાં અંતરકરણ વડે અભાવરૂપ કરેલા નિષેકોની ઉપર જે મિથ્યાત્વના નિષેક છે તેને ઉદયમાં આવવાને અયોગ્ય કરે છે. તે સાથે જ અનંતાનુબંધી ચતુષ્કને પણ ઉદયમાં આવવાને અયોગ્ય કરે છે. અનિવૃત્તિકરણના અંતસમયના અનંતર જે મિથ્યાત્વના નિષેકોનો અભાવ થયો હતો તેનો ઉદયકાળ આવતાં તે કાળે નિષેકો ન હોવાથી મિથ્યાત્વ મોહનીયનો ઉદય થતો નથી અને તેથી તે જીવને સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે. અનિવૃત્તિકરણના ચરમસમય પછી ઉદય આવવા યોગ્ય કર્મપ્રકૃતિઓનો અભાવ હોવાથી. અર્થાત્ મિથ્યાત્વનો ઉદય ન હોવાથી તે સમયમાં જીવને સમક્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે. અનાદિ કાળથી બાહ્યમાં ભટકતો ઉપયોગ અંતર્મુખ થઈ નિજતત્ત્વમાં સ્થિત થતાં, નિશ્ચયનય અને વ્યવહારનયના ભેદાભેદ સંબંધી કોઈ પણ વિકલ્પ ઊઠતો નથી અને આત્માની નિર્વિકલ્પ અનુભૂતિ થાય છે. જે આત્મસ્વરૂપની પ્રસિદ્ધિ વિના અનંત કાળથી રખડતો હતો, તે આત્મસ્વરૂપને નિજપુરુષાર્થથી પ્રસિદ્ધ કરનાર આત્મશોધક વીર પુરુષને ધન્ય છે. સર્વ પરભાવોથી રહિત પોતાના શુદ્ધ આત્માને જે એક સમય માટે પણ અનુભવી લે છે તેને કોટિશઃ અભિવંદન છે.

ઉપરોક્ત પાંચ લબ્ધિઓની પ્રાપ્તિથી માંડીને શુદ્ધ સમકિતની પ્રાપ્તિના ક્રમને શ્રીમદે ત્રણ ગાથાઓ (૧૦૮-૧૧૦)માં ગર્ભિતપણે ગૂંથી લીધો છે. ક્ષયોપશમલબ્ધિને પ્રાપ્ત થયેલ જીવ જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મના ક્ષયોપશમથી સત્ય પુરુષાર્થ માટે પ્રયત્નશીલ થવાની ક્ષમતા ધરાવે છે. જ્યારે કષાયનું ઉપશાંતપણું થાય, માત્ર મોક્ષ સિવાય બીજી કોઈ અભિલાષા હોય નહીં, સંસાર પ્રત્યે ખેદ હોય અને અંતરમાં દયા વર્તે ત્યારે આ જીવ વિશુદ્ધિલબ્ધિને પામે છે અને ત્યારે તે જીવ મોક્ષમાર્ગનો જિજ્ઞાસુ કહેવાય છે. તે પ્રશસ્ત ભાવ ભણી વળ્યો હોવાથી સદ્વુરુ આદિ પુષ્ટ નિમિત્તનો પોતાને યોગ થાય એવાં પુષ્ય બાંધે છે. આવા વિશુદ્ધિલબ્ધિવાળા સુપાત્ર જિજ્ઞાસુ જીવને જો સદ્વુરુનો યોગ થાય, તેમનો બોધ પ્રાપ્ત થયેલ બોધથી સાચી તત્ત્વશ્રદ્ધા થતાં તેને વ્યવહાર સમક્તિની પામિ છે. સદ્વુરુ દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલ બોધથી સાચી તત્ત્વશ્રદ્ધા થતાં તેને વ્યવહાર સમક્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે. આવો દેશનાલબ્ધિને પ્રાપ્ત થયેલો વ્યવહારસમક્તિી જીવ અંતર્મુખ બની અંતરશોધ કરવા લાગે છે. દેહની અંદર રહેલા તત્ત્વની, એટલે કે આત્માની શોધ માટે તે પ્રવૃત્ત થાય છે. એનાં કર્મની સ્થિતિમાં ઘટાડો થતાં તે પ્રાયોગ્યલબ્ધિને પ્રાપ્ત કરે છે. જેમ જેમ તે અંતરશુદ્ધિ પામતો જાય છે, તેમ તેમ તેનું આત્મબળ વધતું જાય છે અને આગળ વધતાં વધતાં તે કરશલબ્ધિને પ્રાપ્ત કરે છે તથા

પ્રંથિભેદ કરી શુદ્ધ સમકિતને પ્રાપ્ત કરે છે.

જ્યાં સુધી જીવ અપૂર્વ આત્મપરિણામરૂપ ભાવોલ્લાસ પામી, અપૂર્વ આત્મપુરુષાર્થ સ્ફુરાવી, અસાધારણ પ્રયત્ન દ્વારા પોતાના સર્વ સામર્થથી પ્રંથિરૂપ દુર્ભેદા દુર્ગનો ભેદ કરવામાં પ્રવર્તતો નથી; ત્યાં સુધી તે સ્વાનુભવરૂપ કાર્યમાં સફળ થતો નથી. આ અપૂર્વ પુરુષાર્થ સ્ફુરાવવા અર્થે જીવને મૂર્તિમાન મોક્ષરૂપ સદ્ગુરુનાં વચનામૃત, મુદ્રા, સત્સમાગમ અને આજ્ઞાનું અવલંબન પરમ ઉપકારી છે. પોતાનાં મત અને દર્શનનો આગ્રહ છોડી દઈ જે જીવ સદ્ગુરુના લક્ષે આત્મસાધના કરે છે, તે કમે કમે અંતરશુદ્ધિ પામી, અપૂર્વ આત્મપરિણામરૂપ ભાવોલ્લાસ પ્રગટાવી, અપૂર્વકરણ વડે ગ્રંથિભેદ કરી શુદ્ધ સમક્તિ પામે છે.

અનંત જન્મ-મરણને છેદવાવાળું કોઈ હોય તો તે એકમાત્ર સમક્તિ જ છે. સમ્યગ્દર્શન સ્વરૂપની ભાંતિ ઉત્પન્ન થવા દેતું નથી. સમ્યગ્દર્શન એક એવો બળવાન યોદ્ધો છે કે જેના પ્રભાવથી કર્મરૂપી સર્વ યોદ્ધા દૂરથી જ પીઠ દેખાડીને ભાગવા લાગે છે. સમ્યગ્દર્શન જ અનંત ગુણોના પ્રાગટ્યનું મૂળ છે. ધર્મનું મૂળ સમ્યગ્દર્શન છે. અનંત કાળમાં, અનંત વાર, અનેક પ્રકારે સાધન કરવા છતાં તેની પ્રાપ્તિ થઈ નથી એ જ તેની દુર્લભતા સિદ્ધ કરે છે. તેથી વિચારવાન જીવે સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ કઈ રીતે થાય તેનો ઊંડાણથી વિચાર કરવો જોઈએ.

અનાદિ કાળથી આજ પર્યંત યમ, નિયમ, સંયમ, શાસ્ત્રાધ્યયન આદિ સાધનો અનંત વાર કરવા છતાં સમ્યગ્દર્શન તો થયું નહીં, ઊલટાં તે સર્વ સાધનો બંધનરૂપ નીવડ્યાં, કારણ કે તે સાધનો સદ્દ્ગુરુની આજ્ઞાએ થયાં ન હતાં. જે જીવ પ્રત્યક્ષ સદ્દ્ગુરુનું અવલંબન લેતો નથી, તે જીવની બધી જ કરણી નિષ્ફળ જાય છે અને તે સંસારમાં અનંત કાળ પર્યંત પરિભ્રમણ કરે છે. પરમાર્થસ્વરૂપને યથાર્થ રીતે નહીં સમજનારો અજ્ઞાની જીવ પોતાની રીતે ધર્મ કરવા ઇચ્છે છે અને તે પોતાની મતિ-કલ્પનાથી મોક્ષમાર્ગને કલ્પી વિવિધ ઉપાયોમાં પ્રવર્તન કરે છે. તે બાહ્ય ધર્મપ્રવૃત્તિઓમાં સ્વચ્છંદથી વર્તે છે અને બહિભવિ પ્રવર્તતો હોવા છતાં તેમાં પરમાર્થ-આરાધનની કલ્પના કરે છે. આ તેની મોટી ભ્રાંતિ છે. જીવ જેનાથી અનાદિથી અજાણ છે તેવા પરમાર્થના વિષયમાં મતિકલ્પનાથી આગળ વધી શકાતું નથી. નિજકલ્પનાથી અંતર્મુખ પરિણમન થતું નથી. સદ્દગુરુની આજ્ઞા વિના સ્વચ્છંદે કરેલું કોઈ પણ સાધન કાર્યકારી થતું નથી. શ્રીમદ્દ પ્રકાશે છે —

'સ્વચ્છંદે, સ્વમતિકલ્પનાએ, સદ્દગુરુની આજ્ઞા વિના ધ્યાન કરવું એ તરંગરૂપ છે અને ઉપદેશ, વ્યાખ્યાન કરવું એ અભિમાનરૂપ છે.'^૧

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૬૭૭ (ઉપદેશનોંધ-૩૫)

સદ્ગુરુની આજ્ઞામાં એકતાન થયા વિના પરમાર્થમાર્ગની પ્રાપ્તિ સંભવિત નથી. જીવને સદ્ગુરુનો મહિમા જાગે, તેમની આજ્ઞાનું માહાત્મ્ય સમજાય, તેમની ભક્તિમાં લીનતા આવે તો તેને સર્વ સાંસારિક પ્રસંગો અને પ્રકારોમાં ઉદાસીનતા વર્તે અને આ પરિણામોના બળ વડે તે મોક્ષમાર્ગનો અધિકારી બને. આપ્તપુરુષના વચનની પ્રતીતિ, આજ્ઞાની અપૂર્વ રુચિ, સ્વચ્છંદનિરોધપણે આપ્તપુરુષની ભક્તિ એ નિર્વિકલ્પ પરમાર્થ અનુભવરૂપ શુદ્ધ સમક્તિનું કારણ છે. શુદ્ધ સમક્તિમાં કારણભૂત સદ્ગુરુની ભક્તિરૂપ પ્રથમ સમક્તિનું મૂળભૂત કારણ છે સદ્દ્ગુરુની યથાર્થ ઓળખાણ. સદ્ગુરુની ઓળખાણ વિના પ્રથમ સમક્તિનું ઉદ્ભવવું સંભવિત નથી.

સદ્ગુરુની ઓળખાણ થવી એ શુદ્ધ સમકિતના કારણનું બીજ છે, તેમ છતાં અનાદિ કાળથી વર્તમાન સુધી અનંત કાળમાં જીવે સદ્ગુરુની ઓળખાણ કરી નથી. જીવને અનેક વાર સદ્ગુરુનો યોગ થયો છે, પરંતુ તેમની યથાર્થ ઓળખાણ કદાપિ થઈ નથી, અન્યથા તેની સ્થિતિ આવી ન હોત. તેથી સદ્દગુરુની ઓળખાણ થવામાં કયા પ્રકારના ભાવો પ્રતિબંધક હોય છે તે સમજી, તેનો અભાવ કરવો ઘટે છે. સદ્દગુરુની ઓળખાણ કર્યા સિવાય આત્મસ્વરૂપની ઓળખાણ થઈ શકતી નથી. પોતાનું આત્મસ્વરૂપ શક્તિરૂપ અપ્રગટ તત્ત્વ છે, જ્યારે સદ્દગુરુમાં આત્માનું શુદ્ધ સ્વરૂપ પ્રગટપણે વ્યક્ત થયું છે. વ્યક્તની ઓળખાણ થવી અસંભવિત છે, માટે આત્મપ્રાપ્તિ માટે આત્માની શુદ્ધતા જ્યાં પ્રગટેલી છે તેવા સદ્દગુરુની યથાર્થ ઓળખાણ અનિવાર્ય છે.

સદ્ગુરુની જ્ઞાનદશાની ઓળખાણ જીવને દઢ મુમુક્ષુતા આવ્યા પછી થાય છે. જ્ઞાનદશા એ આત્માની દશા છે. તે કંઈ દૈષ્ઠિક સ્વરૂપ તથા દૈષ્ઠિક ચેષ્ટાનો વિષય નથી કે ઇન્દ્રિયોથી પકડી અથવા અનુભવી શકાય. તે આંતરિક દશા મંદદશાવાન જીવના અનુભવ કે અનુમાનનો વિષય ન હોવાથી તેને સદ્ગુરુની ઓળખાણ થતી નથી. દઢ મુમુક્ષુ જીવને સત્સમાગમના યોગથી તેમની ઓળખાણ થાય છે. સદ્ગુરુની ઓળખાણથી મુમુક્ષુ જીવને તેનાં પોતાનાં પરિણામોમાં ફેરફાર અનુભવાય છે અને તેથી તેના કારણરૂપ એવા સદ્ગુરુમાં પરમેશ્વરબુદ્ધિ જાગે છે.

જ્યારે મુમુક્ષુ જીવને સજીવનમૂર્તિની ઓળખ થાય છે ત્યારે તેનાં પરિણામમાં અનેક પ્રકારના ફેરફાર થાય છે. વાસ્તવિકતાનો એક અટળ અને સર્વને અનુભવગોચર થાય એવો સિદ્ધાંત છે કે જેવું પરિણમન પોતે જુએ છે તેવું પરિણમન સહજપણે પરિણમન જોનારમાં આવિર્ભાવ થાય છે. જેમ બીજાનાં હર્ષ-શોકનાં પરિણામોને જોવાથી, જોનારને પણ હર્ષ-શોકના ભાવો સહજ આવી જાય છે, કોઈની શાંતિ જોવાથી પોતાની અંદર પણ શાંત પરિણામ થાય છે; તેમ સદ્દ્યુરુની ઓળખાણ થતાં, તેમના

અંતરમાં રહેલાં ઉજ્જવળ પરિણામ પકડાતાં તે મુમુક્ષુ જીવનાં પોતાનાં પરિણામ પણ ઉજ્જવળ થાય છે. તેનાં અનંતાનુબંધી ક્રોધ, માન, માયા, લોભ મોળાં પડતાં જાય છે. કષાયની વિદ્યમાનતા હોવા છતાં એમાં પૂર્વ જેવી તન્મયતા નથી રહેતી, અનંત સંસાર વધારનારી તીવતા નથી રહેતી. હવે તેને સદ્ગુરુ પ્રત્યે વિરોધ, સ્વચ્છંદ, માયાચાર કે સાંસારિક કામનાનાં મલિન પરિણામ થતાં નથી. પોતાના દોષ જોવા તરફ તેનું ચિત્ત વળ્યા કરે છે. વિકથા આદિમાં તેને નીરસપણું લાગે છે. અનિત્યાદિ ભાવના ચિંતવવા પ્રત્યે, બળવીર્ય સ્ફૂરવા વિષે જે પ્રકારે જ્ઞાનીપુરુષ સમીપે સાંભળ્યું હોય કે શાસ્ત્રમાં વાંચ્યું હોય, તેના કરતાં પણ વિશેષ બળવાન પરિણામ દ્વારા તે સંયોગો પ્રત્યે અનિત્યતા, અશરણતા અને અસારતાના ભાવને દઢ કરે છે. હવે તે સંસારને સ્પષ્ટ પ્રીતિથી સેવતો નથી. સદ્ગુરુને ઓળખ્યા પહેલાં પ્રાપ્ત સંયોગ અને પંચ વિષયાદિ પ્રત્યે જે પ્રકારે રસવાળાં પરિણામ હતાં, તેવાં પરિણામ હવે તેને રહેતાં નથી અને તેને યથાર્થ વૈરાગ્ય જાગે છે. સદ્ગુરુનો અપૂર્વ પ્રભાવ તેના અંતરમાં ઝળકે છે. તેને સદ્ગુરુ પ્રત્યે અપૂર્વ સ્નેહ જાગે છે. અપૂર્વ સ્નેહના કારણે તેઓશ્રીનો અલ્પ વિયોગ પણ તેને મૃત્યુથી વધુ પીડા આપી જાય છે. તેનો અનન્ય ભક્તિભાવ તેને સદ્ગુરુથી એક પળ પણ અળગો થવા દેતો નથી.

સદ્ગુરુ પ્રત્યે અવિચળ શ્રદ્ધા જાગતાં જીવને તેમના પ્રત્યે પરમેશ્વરબુદ્ધિ જાગે છે. સદ્ગુરુનાં અંતરપરિજ્ઞામોનું અવલોકન કરતાં તેમની જ્ઞાનદશાના અપૂર્વ ભાવો તેને પકડાય છે. તેમણે અલૌકિક પુરુષાર્થ દ્વારા નિજપરમાત્માનું અવલંબન લીધું હોવાથી આ અવલંબનથી પ્રગટતા સર્વ ભાવ પરમાત્મભાવ કહેવાય છે. જીવને આ ભાવનું ગ્રહણ થતાં સદ્ગુરુમાં પરમાત્મતત્ત્વનાં દર્શન થાય છે અને તેના કારણે તેને સદ્ગુરુમાં પરમેશ્વરબુદ્ધિ ઉત્પન્ન થાય છે. તે બુદ્ધિ તે મુમુક્ષુ જીવને સર્વ પ્રકારના પ્રતિબંધથી મુક્ત કરે છે. આમ, ક્રમે કરીને તે મુમુક્ષુ, જેમનાં ચરણારવિંદ તેણે સેવ્યાં છે તેમની દશાને પામે છે.

સદ્ગુરુ પ્રત્યેનાં અચળ પ્રેમ અને સમ્યક્ પ્રતીતિના બળ વડે મુમુક્ષુતાની વૃદ્ધિ થાય છે. સદ્ગુરુના સાન્નિધ્યમાં તેને આત્મહિતની નિઃશંકતા ઊપજે છે. તે સર્વાર્પણ- બુદ્ધિએ સત્સંગને આરાધે છે. પરમપ્રેમાર્પણભાવ રહેવાથી પરિણામોની નિર્મળતા આવતી જાય છે. તેને સ્વકાર્યમાં એવી તાલાવેલી અને લગની જાગે છે કે પરિપૂર્ણ નિર્દોષ થવાનો નિર્ધાર સહેજે દઢ થાય છે. નિષ્પક્ષપણે નિજાવલોકનનો પ્રયોગ ચાલુ થાય છે અને આ પ્રયોગ દરમ્યાન તેના વિપરીત અભિપ્રાય મટતા જાય છે અને સમ્યક્ અભિપ્રાય ઘડાતા જાય છે. આ પ્રકારે સર્વ પડખેથી યથાર્થતા ઉત્પન્ન થાય છે.

આ પ્રકારના યથાર્થ પરિણમનમાં માત્ર વિચારપદ્ધતિએ નહીં પણ ભાવભાસન-

પૂર્વક સ્વરૂપનો નિર્ણય સ્પષ્ટપણે થાય છે. તેને આત્માનો અચિત્ય મહિમા આવે છે. અનંત મહિમાવંત પરમ પદાર્થ એવા નિજપરમાત્મતત્ત્વનું ઉત્કૃષ્ટ માહાત્મ્ય પ્રગટ થતાં ઉપયોગ સ્વસન્મુખ થાય છે. આમ, તે જીવ સમ્યક્ત્વસન્મુખ થાય છે અને કોઈક ધન્ય પળે આત્મતત્ત્વનો સાક્ષાત્કાર થાય છે. સદ્ગુરુ પ્રત્યે, તેમના અગણિત ઉપકારો પ્રત્યે તેને અંતરથી વારંવાર અહોભાવ ઊઠે છે, કારણ કે તેને અનુભવથી સમજાયું છે કે સદ્ગુરુના દિવ્ય સત્સમાગમ અને અપૂર્વ પ્રેરણા વિના પોતે કંઈ જ કરી શકવા સમર્થ ન હતો.

સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ પછી તે જીવની દશા જગતથી નિરાળી હોય છે. કોઈ કોઈ વાર તેઓ સ્વરૂપમાં નિર્વિકલ્પપણે ઠરી જાય છે. સ્વરૂપમાં લીન થાય ત્યારે આત્માના અચિંત્ય અનંત ગુણપરિણમનનાં તરંગોને વેદે છે. એમ થતાં થતાં, સાધકધારા વધતાં વધતાં મુનિપણું આવે છે અને કમે કરી શ્રેણી માંડીને કેવળજ્ઞાન પ્રગટાવે છે. આમ, સદ્ગુરુની પ્રીતિ અને પ્રતીતિ એ મોક્ષમાર્ગનું બીજભૂત કારણ છે. તે આવ્યા પછી જીવને આત્મસ્વરૂપની ઓળખાણ અને લક્ષ થાય છે અને તે દ્વારા પરમાર્થની સ્પષ્ટ અનુભવાંશે પ્રતીતિ થાય છે. આનાથી નિર્વિકલ્પ પરમાર્થ-અનુભવરૂપ સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ અલ્પ કાળમાં થાય છે અને ત્યારે જીવનાં અનંત પરિભ્રમણનો અંત આવે છે.

સદ્દગુરુની ઉપાસનાનું આવું મહત્ ફળ છે, છતાં જીવ જો પોતાનાં મત-દર્શનનો મિથ્યા આગ્રહ છોડે નહીં તો સદ્દગુરુનો યોગ થવા છતાં તે આત્મકલ્યાણ સાધી શકતો નથી. અનાદિ અધ્યાસના કારણે જીવ જેના પ્રત્યે મમત્વ હોય તેનો પક્ષ લે છે. સામાન્ય વાતમાં પણ પોતાને જે વ્યક્તિ માટે મારાપણાનો ભાવ હોય તેનો પક્ષ ખેંચ્યા વગર જીવ રહી શકતો નથી; તો પછી પોતાનાં મત-દર્શન કે જેના માટે જીવને ખૂબ મમત્વ છે, જેમાં જીવને ધર્મબુદ્ધિ છે, એનો પક્ષ તો તે સહેજે લેવાનો જ, એનો આગ્રહ તો તે કરવાનો જ. આવા આગ્રહથી તેની મિથ્યા માન્યતાઓ દઢ થાય છે. જેમ રેશમના દોરાની ગાંઠ તેલવાળી થયા પછી એવી મજબૂત થઈ જાય છે કે તે ખોલવી અઘરી પડે છે, તેમ મિથ્યા માન્યતાની ગાંઠ આગ્રહરૂપી તેલથી એવી દઢ થઈ જાય છે કે તે આત્મકલ્યાણ સાધી શકતો નથી.

મત-દર્શનના આગ્રહથી જીવને અનેક પ્રકારે નુકસાન થાય છે. આગ્રહથી સિદ્ધાંત માટેની પ્રીતિ, વિદ્યા, વિવેક, વિનય, વિશુદ્ધિ, ઉદારતા, સરળતા, મધ્યસ્થતા આદિ ગુણો નાશ પામે છે. આગ્રહથી જીવના મનમાં ખોટા તરંગો ઊપજે છે. તેના ચિત્તની શાંતિ ડહોળાય છે. તે વિભ્રમદશામાં પડે છે. આગ્રહ સાચી સમજણનો ઉપઘાત કરતો હોવાથી બોધનું ગ્રહણ થઈ શકતું નથી. જેમ રોગથી શરીરની શક્તિ ક્ષીણ થાય છે તથા ભારે ખોરાક પચી શકતો નથી, તેમ આગ્રહથી જીવની ચિંતનશક્તિ કુંઠિત થઈ

જાય છે અને તે ઉત્તમ બોધરૂપ પરમાન્ત પચાવી શકતો નથી. જેમ ખોરાક પચતો ન હોવાથી અજીર્ણ થાય છે, તેમ આગ્રહથી સદ્દ્ગુરુ અને આગમ ઉપરની શ્રદ્ધામાં ભંગાણ પડે છે. આગ્રહના કારણે સદ્દ્ગુરુ તથા સત્શાસ્ત્રનાં આશાતના, અનાદર, અવિનયાદિ થાય છે. મત-દર્શનના આગ્રહરૂપી શલ્યના કારણે તેને સદ્દ્ગુરુની વાતનો સ્વીકાર નથી થતો તથા તેમની આજ્ઞાનું યથાર્થ પાલન થતું નથી. તે સદ્દ્ગુરુ પાસે જાણતાં-અજાણતાં પોતાના આગ્રહોનું સમર્થન મેળવવા જ જતો હોય છે. તેને પોતાની આગ્રહયુક્ત સમજણનું મિથ્યાભિમાન હોય છે.

આગ્રહ જીવના પરમાર્થમાર્ગનો મોટો રિપુ છે. શત્રુ જેમ સર્વનાશ કરવા સદા તત્પર હોય છે, તેમ જીવનો આ આગ્રહરૂપ ભાવશત્રુ ચિત્તશુદ્ધિનો દ્રાસ કરી સર્વનાશ કરવા સદા તત્પર રહે છે. આગ્રહના સદ્દભાવમાં મુમુક્ષુતા ટકી શક્તી નથી. આગ્રહ અને મુમુક્ષુતામાં અંધકાર અને પ્રકાશ જેવો ભેદ છે. જેમ અંધકાર હોય ત્યાં પ્રકાશ હોઈ જ ન શકે, તેમ આગ્રહ હોય ત્યાં મુમુક્ષુતા સંભવી શકે જ નહીં. જ્યાં આગ્રહ હોય ત્યાં મુમુક્ષુતા આવી શક્તી જ નથી. આગ્રહ જીવનું પારાવાર અકલ્યાણ કરે છે. આગ્રહના કારણે જીવ આત્મપ્રાપ્તિને યોગ્ય એવાં શુભ નિમિત્તો મળવા છતાં મોક્ષ પામવાને બદલે સંસારપરિભ્રમણ જ કરતો રહે છે.

અનાદિ કાળના સંસારપરિભ્રમણ દરમ્યાન જીવે અનંત વાર તીર્થંકર ભગવાનની દેશના સાંભળી છે, છતાં પણ પોતાના આઝહના કારણે ત્યાંથી કોરોધાકોડ પાછો આવ્યો છે. તીર્થંકર ભગવાન પાસે પણ તેણે પોતાની મિથ્યા માન્યતા અકબંધ જાળવી રાખી છે. ત્રણ લોકના નાથની દિવ્ય ધ્વનિ વહે ત્યારે સ્વરૂપાનંદી મુનિ ભગવંતો એમનો પડ્યો બોલ ઝીલી લે, તેવા સ્થળે પણ તે પોતાની મિથ્યા માન્યતા ટકાવી રાખે છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

'મતનો આગ્રહ મૂકી દેવો. આત્માનો ધર્મ આત્મામાં છે. આત્મત્વપ્રાપ્તપુરુષનો બોધેલો ધર્મ આત્મતામાર્ગરૂપ હોચ છે. બાકીના માર્ગના મતમાં પડવું નહીં.

આટલું થતાં છતાં જો જીવથી સત્સંગ થયા પછી કદાગ્રહ, મતમતાંતરાદિ દોષ ન મૂકી શકાતો હોય તો પછી તેણે છૂટવાની આશા કરવી નહીં.'⁴

અજ્ઞાની જીવને આગ્રહ લાભદાયક લાગતો હોવાથી, આગ્રહને ધર્મની દઢતા માનતો હોવાથી તે આગ્રહ ટાળવાનો ઉપચાર તો કરતો નથી અને ઉપરથી તેને પોષે છે. આગ્રહથી લાભ થાય છે, ધર્મ સધાય છે એવી ભ્રાંતિના કારણે તે આગ્રહરૂપ દોષને પોષે છે. જ્યારે જીવને આગ્રહની કુરૂપતા ઓળખાઈ જાય છે ત્યારે તે એને ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૮૨ (પત્રાંક-૪૬૬)

તત્લાણ છોડી દે છે. પણ જીવને આગ્રહ દુઃખદાયક લાગ્યો જ નથી, તેના કારણે ઉત્પન્ન થતી અશુદ્ધિ સમજાઈ જ નથી, તેથી જ આગ્રહ ટકી શક્યો છે. તે જેમ જેમ આગ્રહને વળગતો જાય છે, તેમ તેમ તે વધારે ને વધારે બંધાતો જાય છે. જો જીવે આત્મહિત સાધવું હોય તો તેણે આગ્રહનું હાનિકારક સ્વરૂપ ઓળખીને આગ્રહ સર્વથા છોડી દેવો જોઈએ. તેણે આગ્રહને ટાળી, સિદ્ધપદના સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાયરૂપ સદ્દ્ગુરુઆજ્ઞાનું આરાધન કરવું જોઈએ. આગ્રહનો ત્યાગ કરી સદ્દ્ગુરુના ચરણની સમુપાસના કરતાં શુદ્ધ સમકિતની પ્રાપ્તિ થાય છે.

સત્યનો સાક્ષાત્કાર કર્યો છે એવા જ્ઞાનીપુરુષોનાં માર્ગદર્શનનો, જેમ કહ્યું તેમ અમલ કરતાં જીવને સત્યની ઉપલબ્ધિ થાય છે અને આનંદમય દશાની પ્રાપ્તિ થાય છે. જિજ્ઞાસુ જીવ સત્યનો ઇચ્છુક હોવાથી સદ્વુરુની આજ્ઞાના આરાધનમાં આત્માર્થનો ઉચ્છેદ કરનારા મત-દર્શનના કદાગ્રહોને વચ્ચે લાવતો નથી. તે આગ્રહને આત્માર્થનો વિરોધી અને મોક્ષમાર્ગનો પ્રતિપક્ષી જાણી તેનો ત્વરાથી તૃણની જેમ ત્યાગ કરે છે. તે પોતાના ઇષ્ટ પ્રયોજનની સિદ્ધિમાં વિઘ્નકર્તા એવા આગ્રહથી દૂર જ રહે છે અને સદ્વુરુલક્ષે પ્રવર્તે છે.

જિજ્ઞાસુ જીવ આજ્ઞાના દઢ આરાધનમાં પ્રીતિવંત અને ઉદ્યમી હોય છે. તે જાણે છે કે પોતાની ઇચ્છાએ પ્રવર્તતાં જીવ અનાદિ કાળથી રખડ્યો છે. સદ્દ્ગુરુની આજ્ઞા અનુસાર પુરુષાર્થ કરનારને જ સ્વરૂપપ્રાપ્તિ થાય છે, તેથી જિજ્ઞાસુ પોતાના સર્વ અભિપ્રાયનો ત્યાગ કરે છે અને નિત્ય સદ્દ્ગુરુની આજ્ઞા ઉપાસવાનો નિર્ણય કરે છે. 'ભવમાં જવાને આડા પ્રતિબંધ જેવી આજ્ઞાને પાળીને મારે સર્વ દોષથી છૂટવું જ છે' એવું અપૂર્વ નિશ્ચયબળ તેને પ્રગટે છે. 'ગમે તેવી પ્રતિકૂળતા આવવા છતાં આજ્ઞા-પાલનમાં ઢીલાશ નહીં આવવા દઉં' એવો અફર નિશ્ચય તે કરે છે. આજ્ઞાપાલન માટે આવી અડગતા હોય તો જ મોક્ષ મળે છે. આજ્ઞારાધન વડે આત્મા ઉપરનાં આવરણનો ક્ષય થતાં સિદ્ધસુખ પ્રાપ્ત થાય છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

'આત્માને સત્પુરુષનો નિત્ય આજ્ઞાંકિત રહેવામાં જ કલ્યાણ છે.....

સત્પુરુષની આજ્ઞામાં વર્તવાનો જેનો દઢ નિશ્ચય વર્તે છે અને જે તે નિશ્ચયને આરાધે છે, તેને જ જ્ઞાન સમ્ચક્**પરિણામી થાય છે, એ વાત આત્માર્થી જીવે અવ**શ્ય લક્ષમાં રાખવા યોગ્ય છે.^{'ર}

ર- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૫૫૮ (પત્રાંક-૭૧૯)

સદ્ગુરુએ સમ્મત કરેલું હોય તે સર્વ સત્યસ્વરૂપ જ હોય છે અને તેથી તે માન્ય કરવાથી તથા તેમની આજ્ઞા આરાધવાથી ગુણ પ્રગટે છે અને આત્મદશા વર્ધમાન થતી જાય છે. સન્માર્ગના અનુભવી પ્રત્યક્ષ સદ્ગુરુની આજ્ઞા સેવતાં જીવ પોતાના અનેક દોષોમાંથી છૂટી શકે છે. અજ્ઞાન, માન, લોભાદિ સર્વ દોષો ટાળવા માટે આજ્ઞાપાલન એક પ્રબળ કારણ છે. પ્રત્યક્ષ સદ્ગુરુની આજ્ઞામાં જ બધાં સાધનો સમાઈ જાય છે. આખો મોક્ષમાર્ગ તેમની આજ્ઞામાં સમાય છે. તેમની પ્રત્યેક આજ્ઞા કલ્યાણકારી છે. સદ્ગુરુની આજ્ઞાનો આવો મહિમા હૃદયગત થયો હોવાથી જિજ્ઞાસુ જીવ પોતાના સર્વ ભાવ અર્પણ કરી દઈ, એકનિષ્ઠાથી આજ્ઞારાધન કરતો હોય છે. તેને જીવનમાં એ જ એકમાત્ર કરવા જેવું લાગે છે. તે મોહની મૂચ્છીમાં એક ક્ષણ પણ ગુમાવવા ઇચ્છતો નથી. ચૈતન્યસ્વરૂપી આત્માનો અનુભવ કરવા માટે તે પોતાની વૃત્તિને સદ્ગુરુની આજ્ઞામાં એકતાન કરે છે.

બોધ અને આજ્ઞા દ્વારા સદ્ગુરુ જિજ્ઞાસુ જીવને સ્વરૂપ પ્રત્યે જાગૃત કરે છે. જેમ દરમાં રહેલી ઈયળ આગળ ભમરી ગુંજારવ કરી તેને પોતાના જેવી બનાવે છે, તેમ સદ્ગુરુ જિજ્ઞાસુને તેના સ્વરૂપનું ભાન કરાવી, તે સ્વરૂપ પ્રાપ્ત કરવા માટે તેને જાગૃત કરે છે. સ્વરૂપપ્રાપ્તિ માટે ઉત્સુક જિજ્ઞાસુ એકનિષ્ઠાએ આજ્ઞાનું આરાધન કરતો હોવાથી તે સદ્ગુરુનાં વચનોમાં રહેલાં પારમાર્થિક રહસ્યોને સમજી શકે છે. તે ઉત્તમ કોટીની મુમુક્ષુતામાં વર્તતો હોવાથી સદ્ગુરુની વાણીનો આશય સમજી શકે છે અને તેથી તેને તત્ત્વનો દઢ નિર્ણય થાય છે.

સદ્ગુરુની દશાના નિરંતર અવલોકન દ્વારા જિજ્ઞાસુ જીવ તેમની અંતરપરિણતિ પકડે છે. તે સદ્ગુરુની પરમ વીતરાગ પ્રશમરસમય મુદ્રાના અવલોકન દ્વારા વિચાર કરે છે કે 'શાંતિમાં નિત્ય સ્નાન કરી રહેલા સદ્ગુરુની મુખમુદ્રા કેવી સુંદર લાગે છે! તેમની વીતરાગી આકૃતિ કેવી શાંત અને સૌમ્ય છે! તેઓ કેવા પરમ શાંત, પ્રસન્ન, નિરાકુળ દેખાય છે! તેઓ અંતરના અનંત વૈભવનો કેવો સુંદર પરિચય આપી રહ્યા છે! જ્ઞાનોપયોગની ભેટ મળતાં તેમને કેવું સહજ સુખ પ્રગટ્યું છે! મારે તેમની જેમ શાંતિ અને સુખનો અનુભવ કરવો જ છે.' જિજ્ઞાસુ જીવ સદ્ગુરુની મુદ્રાનું અવલોકન કરી શાંત અને સ્થિર થવાના પ્રયત્ન કરે છે. સદ્ગુરુના કર્મોદયને તે જોતો નથી, બલ્કે તેની દષ્ટિ ઉદય વખતના તેમના અંતરંગ પુરુષાર્થ પ્રત્યે રહે છે. તેને સદ્ગુરુના નેત્રોમાં વીતરાગતા, અંતર્મુખતા, નિર્લેપતા આદિ ભાવો વંચાય છે. સદ્ગુરુની દશાનો નિર્ધાર થવાથી અને ઉદયપ્રસંગે તેનું સ્મરણ થવાથી તેનાં પરિણામોમાં રહેલ રસ અને ચીકાશ ઘટે છે. પોતાની ભાવદશા ઉપર તે સદ્ગુરુની દશાનો પ્રભાવ સ્પષ્ટપણે અનુભવે છે.

સદ્ગુરુના બોધનો વિચાર અને સદ્ગુરુની દશાનું અવલોકન કરતાં તેનું જીવન આત્મમય બનતું જાય છે અને તે પોતાના આત્મસ્વરૂપમાં લીન થવા તત્પર બને છે. જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપની ઉપાસના કરી સમ્યગ્દર્શનરૂપી અણમોલ રત્ન પામું એવી ભાવનાનું તે નિરંતર ધોલન કરે છે અને પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવનો અગાધ મહિમા ચિંતવે છે. તેને આત્માની જ ઇચ્છા તથા ઝંખના વર્તે છે. આત્માની રુચિ એવી તીવ થઈ જાય છે કે સંસાર તરફ તેની દષ્ટિ જતી નથી. પરની રુચિ ઘટતાં અને આત્માનો મહિમા અંતરમાં વધતાં તેનું વીર્ય ઊછળે છે.

સ્વરૂપની આવી ખુમારી સહિત આત્મસ્વરૂપને સાધવા નીકળેલો જિજ્ઞાસુ જીવ આત્મસાધનાના પંથે ઝડપથી આગળ વધે છે. કર્મના ઉદય અનુસાર જે સંગ-પ્રસંગ આવે, વસ્તુ, વ્યક્તિ કે પરિસ્થિતિનો જે પણ સંયોગ પ્રાપ્ત થાય, તેમાં તે આત્મ-સ્મરણપૂર્વક રહેવાનો - ટકવાનો યથાર્થ અભ્યાસ કરે છે. આત્મસ્વભાવને લગતા અનેક પ્રકારના વિચારો વડે તે સ્વભાવના મહિમાને વધારે ને વધારે પુષ્ટ કરતો જાય છે. ક્યારેક પોતે જ્ઞાનસ્વરૂપ છે એવા વિચાર હોય, તો ક્યારેક સિદ્ધ જેવું પોતાનું આત્મ-સ્વરૂપ છે એવા વિચાર હોય, તો ક્યારેક સિદ્ધ જેવું પોતાનું આત્મ-સ્વરૂપ છે એવા વિચાર હોય, તો ક્યારેક આત્માની અનંત શક્તિના વિચાર હોય, તો ક્યારેક સદ્દ્ગુરુની આત્મદશાના વિચાર હોય. કોઈ પણ પ્રકારે પોતાના સ્વભાવ તરફ વળવાના વિચાર જિજ્ઞાસુ જીવને હોય છે. નિરંતર આતમભાવના ભાવતાં પરનો રસ તૂટીને ચૈતન્યનો રસ ઘૂંટાય છે, એટલે કે તેની પરિણતિ સ્વભાવ તરફ ઉલ્લસતી જાય છે.

પ્રત્યેક પ્રસંગમાં ભેદજ્ઞાન પ્રગટાવી પરદ્રવ્ય-પરભાવથી આત્મસ્વભાવની ભિન્નતાના સંસ્કાર તે સિંચે છે. એ સંસ્કારથી અનાદિના મિથ્યાત્વ ઉપર હથોડા પડતા જાય છે. 'હું અનંત ગુણોના પિંડરૂપ એક ચૈતન્યતત્ત્વ છું, પુદ્દગલપિંડ અને રાગાદિ ભાવો સાથે મારો મેળ નથી. હું તેનાથી ભિન્ન નિત્ય શાશ્વત જ્ઞાયક આત્મા છું. પુદ્દગલાદિ તો પ્રગટ જડ છે અને હું તો ગુપ્ત ચેતન છું. જડ તો પ્રગટ ઇન્દ્રિયગોચર છે અને હું તો અતીન્દ્રિય ચેતન છું. તેલ અને પાણીની જેમ તેની અને મારી વચ્ચે સર્વથા ભિન્નતા છે. મારી ચેતનામાં આનંદ વગેરે અનંત ગુણો સમાય છે, પણ રાગાદિ કોઈ પરભાવો તેમાં સમાતા નથી. તે તો ચેતનાથી જુદા જ સ્વરૂપવાળા છે.' આવા વિચારો વડે ભેદ-જ્ઞાનની દઢતા વધતી જાય છે.

સ્વરૂપાનુસંધાનની સાધનામાં પ્રથમ 'હું શરીરવાળો, કર્મવાળો, રાગવાળો નથી' એમ નાસ્તિથી આત્મસ્વરૂપની તે ભાવના કરે છે. સર્વ સંયોગ અને સંયોગી ભાવથી ભિન્નતાના વિચારથી પરિજ્ઞામને સ્થિર કર્યા પછી તેને પરના વિચાર છૂટીને નિજ સ્વરૂપના વિચાર રહે છે. નાસ્તિના વિચારો ગૌષ્ય થઈને 'હું એક, અભેદ, અસંગ, નિર્વિકલ્પ, પરમ શુદ્ધ, ચિદ્ધાતુ છું; જ્ઞાન અને આનંદ જેનો સ્વભાવ છે એવો હું

શુદ્ધ ચૈતન્ય છું; નિરંજન વીતરાગ સહજાનંદરૂપ સુખની હું અનુભૂતિમાત્ર છું; હું સ્વસંવેદન જ્ઞાન વડે સ્વસંવેદ્ય છું, જાણવા યોગ્ય છું, પ્રાપ્ત થવા યોગ્ય છું' - આવા અસ્તિસ્વભાવના વિચારની મુખ્યતા વર્તે છે.

જિજ્ઞાસુ જીવ સ્વરૂપના ચિંતનમાં તલ્લીન થતો જાય છે. જેમ જેમ તેની વિચાર- ધારા લંબાતી જાય છે, તેમ તેમ જ્ઞાનસ્વભાવ તરફનું તેનું બળ વધતું જાય છે. તે સ્વભાવના અત્યંત મહિમાપૂર્વક સ્વસન્મુખ થતો જાય છે. તે બહિર્મુખતા ટાળી અંતર તરફ વળે છે. પરસંયોગ અને પરસંયોગના લક્ષે થતા ભાવોની અપેક્ષા છૂટતી જાય છે. સ્વભાવનું સાક્ષાત્ વેદન કરવા માટે તે એવો ઓતપ્રોત બની જાય છે કે કોઈ પણ સંયોગોમાં કે પરભાવોમાં તેને ચેન પડતું નથી. આત્માની અનુભૂતિ સિવાય બહાર બીજે કશે પણ તેનું લક્ષ ચોંટતું નથી. સ્વાનુભવ કરવા તે સંયોગો ઉપરથી લક્ષ હટાવીને, ક્ષણિક અવસ્થાઓ ઉપરથી લક્ષ હટાવીને ત્રિકાળી ધ્રુવ ચૈતન્ય ઉપર દષ્ટિનો દોર લગાવી દે છે, પોતાની દષ્ટિનો દોર ચૈતન્ય સાથે બાંધી દે છે. સંયોગો, વિકલ્પો વગેરે બધું ક્ષણિક છે અને પોતે ત્રિકાળી, શુદ્ધ ચૈતન્યતત્ત્વ છે - આવા ધ્રુવ તત્ત્વમાં તે પોતાની દષ્ટિનો દોર બાંધે છે. પલટાતી વસ્તુમાં જોડાઈ જતી પોતાની પરિણતિને આ દષ્ટિના બળ વડે તે છૂટી પાડે છે. પોતાની દષ્ટિ ધ્રુવ જ્ઞાયકસ્વભાવમાં ટકે એવી આત્મજાગૃતિ રાખે છે.

તેની દર્ષ્ટિ ધ્રુવ જ્ઞાયક સિવાય કોઈને સ્વીકારતી નથી. જ્ઞાયક સિવાય કોઈને ગણકારતી નથી. તે જ્યાં જુએ ત્યાં નિજજ્ઞાયકદેવ જ દેખાય છે. પ્રથમ તો 'હું જ્ઞાયક છું' એમ ઉપલકપણે અભ્યાસ શરૂ થયો હતો, પણ પછી એમાં ઊંડાણ વધતાં જ્ઞાયક સિવાય બીજું કંઈ રહે નહીં એવી દશા થાય છે. તેનો પુરુષાર્થ ઉપ્રપણે ઊપડે છે. ઉપ્રપુરુષાર્થમાં સાતત્ય અને સહજતા રહે છે. તેને જ્ઞાયકનો બોધ નિરંતર જાગૃત રહે છે. દરેક કાર્ય કરતાં 'હું જ્ઞાયક છું' એવું લક્ષ સતત રહે છે. ખાતાં, પીતાં, ચાલતાં, બોલતાં, વિચારતાં તેને સતત જ્ઞાયકનું લક્ષ રહે છે. કોઈ કાળ કે ક્ષેત્રની મર્યાદા તેને નડતી નથી. તેને સમય કે સ્થળ બાધા પહોંચાડી શકતાં નથી. તેને જ્ઞાયકનું જોર એક ક્ષણ પણ ખસતું નથી. અંતરમાં જ્ઞાયકદ્રવ્ય ઉપર જોર આવતાં, આશ્રયમાં નિજજ્ઞાયકદ્રવ્યની જ અધિકતા રહેતાં નિર્મળતા વધતી જાય છે. આત્માના ચિંતનમાં તેનો ઉપયોગ એવો સૂક્ષ્મ થતો જાય છે કે બીજી કોઈ વસ્તુમાં તો તેને રસ નથી પડતો, પરંતુ સૂક્ષ્મ વિકલ્પો રહે તેમાં પણ ચેન નથી પડતું; તે વિકલ્પોથી છૂટીને સ્વભાવમાં જ એકમેક થવા માટે ઉપયોગને ફરી ફરીને અંતરમાં ઉતારવા મથે છે.

આત્માનુભૂતિ માટે સર્વ વિકલ્પોનો ત્યાગ કરવો આવશ્યક છે. આત્મસ્વરૂપ વિકલ્પરહિત છે. વિકલ્પ સહિત ત્યાં પ્રવેશ નથી. નિર્વિકલ્પ સ્વરૂપમાં પ્રવેશ કરવા માટે ઉપયોગે પણ એવું જ સૂક્ષ્મ સ્વરૂપ ધારણ કરવું પડે છે. પરિણતિ જ્યારે સજાતીય બને છે ત્યારે જ તે નિજઘરમાં પ્રવેશી શકે છે. જેણે પોતાની બુદ્ધિ વડે આત્માને જાણી લીધો તે જીવ સ્વભાવને આંગણે આવી ગયો છે, પરંતુ આંગણે આવ્યા પછી પણ સ્વઘરમાં પ્રવેશીને સ્વભાવનો અનુભવ કરવા માટે અપૂર્વ પુરુષાર્થ અપેક્ષિત રહે છે. આત્મસ્વરૂપનો નિર્ણય કરવો તે સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિનું કારણ છે, પરંતુ જ્યાં સુધી જીવ વિકલ્પોમાં અટકે ત્યાં સુધી અભેદ અનુભૂતિ થતી નથી. મેલા કપડાને ચોખ્ખું કરવા તેને સાબુ લગાડવામાં આવે છે, પછી તે સાબુને ધોવામાં આવે છે. જો સાબુ ધોવામાં ન આવે તો કાર્યસિદ્ધિ થાય નહીં. તેમ વિકલ્પ દ્વારા આત્માનો નિર્ણય કરવામાં આવે, મહિમા જગાડવામાં આવે અને પછી તમામ વિકલ્પોને શમાવવામાં આવે તો જ ચૈતન્યનો સ્વાદ લઈ શકાય છે. વિકલ્પ ચાલુ રહે તો ચૈતન્યનો સ્વાદ લઈ શકાતો નથી. જે જીવ વિકલ્પમાં જ અટકી રહે છે તેને અનુભવ થતો નથી. વિકલ્પો છૂટે ત્યારે જ અનુભૂતિ થાય છે.

સ્વાનુભૂતિ પ્રાપ્ત કરવાનો માર્ગ એ નિરંતર તત્ત્વમંથનની પ્રક્રિયા છે, પરંતુ માત્ર તત્ત્વમંથનરૂપ વિકલ્પોથી પણ આત્માનુભૂતિ પ્રાપ્ત થતી નથી, કારણ કે કોઈ પણ વિકલ્પ એવો નથી કે જે આત્માનુભૂતિ પ્રાપ્ત કરાવી શકે. વિકલ્પના આશ્રયે નિર્વિકલ્પ સ્વાનુભૂતિ થતી નથી. વિકલ્પ વગરનું આત્મસ્વરૂપ વિકલ્પ વડે અનુભવમાં આવતું નથી, તેથી જિજ્ઞાસુ આત્મસ્વરૂપના વિકલ્પમાં પણ ન અટકતાં નિર્વિકલ્પ થઈને અભેદ ચૈતન્યનો અનુભવ કરવાનો અપૂર્વ પુરુષાર્થ કરે છે. અંતરની કોઈ અદ્ભુત ધારા ઉપ્રપણે ઉપડે છે ત્યારે સર્વ પ્રકારના વિકલ્પો શાંત થતા જાય છે અને ચૈતન્યરસ ઘૂંટાતો જાય છે. તે વખતે વિશુદ્ધિનાં અતિ સૂક્ષ્મ પરિણામોની ધારા વડે અંતરમાં ત્રણ કરણ થાય છે. એ ત્રણ કરણ દરમ્યાન જીવનાં પરિણામ સ્વરૂપમાં વધુ ને વધુ મગ્ન થતાં જાય છે. સર્વ વિકલ્પો છૂટતાં છૂટતાં અંતે 'હું જ્ઞાયક છું' એવો વિકલ્પ પણ સહેજે થંભી જાય છે અને નિર્વિકલ્પ દશા પ્રગટે છે. વિકલ્પને ઓળંગીને ઉપયોગ શુદ્ધ સ્વરૂપમાં લીન થઈ જાય છે. વિકલ્પોથી અત્યંત રિક્ત થઈ, જ્ઞાનસ્વભાવમાં તન્મયપણ પરિણમી તે પોતાને પરમાત્માપણે અનુભવે છે અને શુદ્ધ સમક્તિની પ્રાપ્તિ કરે છે.

સ્વાનુભવમાં આત્મા જેવો છે તેવો સમ્યક્ સ્વરૂપે ખીલી ઊઠે છે. સ્વાનુભવની એ ધન્ય પળે જીવ અતીન્દ્રિય આનંદ અને નિરાકુળ શાંતિનું વેદન કરે છે. આત્માની અનુભૂતિ થતાં પોતાને આત્માના અદ્ભુત આનંદરસનો અનુભવ થાય છે. અનંત કાળમાં નહીં અનુભવેલો એવો રાગ વગરનો અપૂર્વ આત્મિક આનંદ તેમાં અનુભવાય છે. પહેલાં તે દુઃખના ભડકામાં બળતો હતો. હવે દુઃખના એ ભડકામાંથી છૂટીને અપાર શાંતિ અનુભવે છે. તેને ચૈતન્યનો પરમ આનંદ મળે છે. એ આનંદના કારણે

દુઃખના દાવાનળથી દાઝવાપણું રહેતું નથી. તેને અનંત ગુણના સ્વાદથી ગર્ભિત એવી અપૂર્વ ચૈતન્યશાંતિ સ્વસંવેદનમાં આવે છે. જેની ગંભીરતા અનંતા સ્વયંભૂરમણ સમુદ્રથી અધિક છે, જેની ગંભીરતા એકમાત્ર અતીન્દ્રિય જ્ઞાનમાં જ સમાઈ શકે છે, એવો અમાપ-અગાધ શાંત ચૈતન્યરસનો સમુદ્ર તે અનુભૂતિમાં ઉલ્લસે છે. આત્મા પોતાના શાંત રસના દરિયામાં એવો ડૂબી જાય છે કે જ્યાં આકુળતાનું નામનિશાન પણ નથી રહેતું. શાંતસ્વરૂપ આત્મામાં એકત્વરૂપે પરિણમન થતાં તે શાંત થઈ જાય છે. આમ, 'મારે મારો આત્મા પામવો જ છે' એવું જે જ્ઞાને નક્કી કર્યું હતું, તે જ્ઞાન અંતરમાં વળીને સ્વસંવેદનમાં અપૂર્વ આનંદ અને શાંતિની પ્રાપ્તિ કરે છે.

આત્માના નિર્વિકલ્પ સ્વસંવેદન સાથે શ્રદ્ધા ગુણની જે નિર્મળ પર્યાય પ્રગટે છે તે નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન છે. સ્વાનુભૂતિ વિના શુદ્ધ સમિકત, અર્થાત્ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન હોતું નથી. શુદ્ધ સમિકત થવાથી એકસાથે અનંત ગુણોનું નિર્મળ પરિણમન શરૂ થાય છે. અરિહંત ભગવાન જે અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત વીર્ય અને અનંત સુખની પૂર્ણતાને અનુભવે છે તે સર્વ ગુણો તેનામાં અંશે પ્રગટે છે. અનુભવમાં આત્મા પોતાના સ્વરૂપના આનંદને અંશે વેદે છે અને તે આનંદના અંશના પ્રાગટ્યની સાથે જ સંપૂર્ણ આનંદ પ્રગટવાનાં બી વવાઈ જાય છે. જ્ઞાન-આનંદરૂપ બીજનો ચંદ્રમાં ઊગે છે અને તેની કળા વધતાં વધતાં અનંત આનંદરૂપ પૂર્ણિમા થશે - કેવળજ્ઞાન થશે તે નિશ્ચિત થઈ જાય છે.

આ શુદ્ધાત્માનુભૂતિરૂપ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન એક જ પ્રકારનું હોય છે. તેમાં કોઈ પણ પ્રકારનો ભેદ હોતો નથી. જ્યારે સમક્તિને આવરણ કરનારી સાત પ્રકૃતિઓનો (મિથ્યાત્વ મોહનીય, મિશ્ર મોહનીય અને સમ્યક્ત્વ મોહનીય એ ત્રણનો તથા અનંતાનુબંધી ક્રોધ-માન-માયા-લોભ એ ચારનો) ઉપશમ, ક્ષયોપશમ કે ક્ષય થાય ત્યારે આત્માનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ થાય છે અને તેને નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન થયું કહેવાય છે. સત્તામાં કર્મ ઓછાંવત્તાં હોય તે અપેક્ષાએ સમક્તિના ઔપશમિક, ક્ષાયોપશમિક અને ક્ષાયિક એ ત્રણ ભેદ પાડવામાં આવે છે, પરંતુ સમ્યગ્દર્શનમાં કોઈ ભેદ હોતો નથી. ક્ષાયિક સમક્તિમાં સમ્યગ્દર્શન ગુણ પ્રગટ્યા પછી પાછું આવરણ આવી શકતું નથી, કારણ કે મિથ્યાત્વ મોહનીયાદિ સાત પ્રકૃતિઓના સંપૂર્ણ ક્ષયથી તે પ્રગટ થયું હોય છે, તેથી તેને અવગાઢ સમ્યક્ત્વ કહ્યું છે. તે જ ક્ષાયિક સમક્તિને તેરમા ગુણસ્થાનકે પરમાવગાઢ કહ્યું છે, કારણ કે ત્યાં બીજા ત્રણ ગુણો (અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત વીર્ય) પણ પ્રગટેલા છે. જો કે ચોથાથી તેરમા ગુણસ્થાન પર્યતના ક્ષાયિક સમ્યગ્દર્શનમાં કોઈ ભેદ હોતો નથી. આત્માના અનુભવમાં કોઈ ફરક હોતો નથી. શ્રીમદ્દ કહે છે —

'ચોથા ગુણસ્થાનકથી તેરમા ગુણસ્થાનક સુધી આત્મઅનુભવ એક્સરખો છે;

પરંતુ જ્ઞાનાવરણીય કર્મની નિરાવરણતાનુસાર જ્ઞાનની વિશુદ્ધતા ઓછી અદકી હોય છે, તેના પ્રમાણમાં અનુભવનું પ્રકાશવું કહી શકે છે.'

ચોથા ગુણસ્થાનકે શુદ્ધાત્માનુભૂતિરૂપ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે ત્યારે જીવ પરમ ઉપાદેય એવા નિજ સચ્ચિદાનંદી તત્ત્વમાં લીન થાય છે. આત્માના અનુભવમાં નથી નિશ્ચયનયનો પક્ષ કે વિચાર, કે નથી વ્યવહારનયનો પક્ષ કે વિચાર; આત્માનુભૂતિ તો નયાતીત અને પક્ષાતીત છે; તેમાં કોઈ ભેદ કે પક્ષ હોતો નથી, ત્યાં તો માત્ર નિર્વિકલ્પ સ્વસંવેદન હોય છે. બ્રહ્મચારીજી શ્રી ગોવર્ધનદાસજી લખે છે કે —

'વ્યવહાર સમક્તિમાં ભેદ હોય છે કેમકે જુદા જુદા જ્ઞાનીનું અવલંબન હોય, તેમનાં વચનો પણ ભિન્ન ભિન્ન હોય, તેમણે કરેલી આજ્ઞા પણ વ્યક્તિગત ભિન્ન હોય, ભક્તિના ભેદ પણ જુદા જુદા હોય એમ અપેક્ષાએ ભેદ હોય છે. પરંતુ નિશ્ચય સમક્તિમાં તો આત્માનો અનુભવ કરવાનો હોય છે એટલે તેમાં ભેદ પડતો નથી. શ્વેતાંબર, દિગંબર ગમે તે તીર્થમાં કે કાળમાં જો આત્માનો યથાર્થ અનુભવ થાય તો તે સરખો જ છે. તેથી નિશ્ચય સમક્તિમાં ભેદ નથી. આત્માનો અનુભવ થવારૂપ જે ધર્મ છે ત્યાં કંઈ ભેદ નથી.'?

જેમાં કોઈ ભેદ કે પક્ષ નથી એવા શુદ્ધ સમકિતનો મહિમા અપરંપાર છે. સમ્યગ્દર્શનથી જ મોક્ષમાર્ગનો પ્રારંભ થાય છે. સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત થતાં જ્ઞાન અને ચારિત્ર પણ સમ્યક્ થાય છે. સમ્યગ્દર્શન એ મોક્ષરૂપી વૃક્ષનું અદિતીય બીજ છે. સમ્યગ્દર્શન જ મોક્ષપુરીનું પ્રવેશદાર છે, સિદ્ધપ્રાસાદનું પ્રથમ સોપાન છે. જેમ શરીરનાં સર્વ અંગોમાં મસ્તક પ્રધાન છે અને મસ્તકમાં નેત્ર પ્રધાન છે; તેમ મોક્ષને પ્રાપ્ત કરવા માટે સર્વ ધર્મોમાં સમ્યગ્દર્શન જ મુખ્ય છે.

અનંત કાળથી જીવ સમ્યગ્દર્શનના અભાવે સંસારમાં રખડે છે. અનાદિ કાળથી જીવ સમ્યગ્દર્શન વગર અનંત જન્મ-મરણ કરે છે. તેણે એક વાર પણ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત નથી કર્યું. જો તે સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિનો પુરુષાર્થ કરે તો જન્મ-મરણની અવિરત ઘટમાળમાંથી છૂટે. જો તે યથાર્થ આરાધના કરી સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ કરે તો તેનું સંસાર-પરિભ્રમણ અવશ્ય અટકે. જે જીવ સમ્યગ્દર્શન વડે પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ કરે છે તે અવશ્ય મોક્ષને પામે છે. આ અંગે શ્રીમદ્ તેમની વિશિષ્ટ શૈલીથી પ્રકાશે છે કે –

૧- 'શ્રીમદ્દ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૩૬ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૨)

૨- બ્રહ્મચારીજી શ્રી ગોવર્ધનદાસજી, 'આત્મસિદ્ધિ વિવેચન', બીજી આવૃત્તિ, પૃ.૮૩-૮૪

³⁻ જુઓ : आयार्यश्री पद्मनंदिस्वामीકृत, 'पद्मनंदि पंचविंशितः', अधिકार १, श्लोङ ७७ 'जयित सुखनिधानं मोक्षवृक्षैकबीजं सकलमलविमुक्तं दर्शनं यद्विना स्यात् । मतिरिप कुमतिर्नु दुश्चरित्रं चरित्रं भवित मनुजजन्म प्राप्तमप्राप्तमेव ।।'

'सम्यक्त्य अन्योक्त रीते पोतानुं हूषण जतावे छे :— 'मने ग्रहण करवाथी ग्रहण करनारनी छच्छा न थाय तोपण मारे तेने पराणे मोक्षे वर्ध જવો पडे छे; मारे मने ग्रहण करवा पहेवां से विचार करवो के मोक्षे जवानी छच्छा इरववी हशे तोपण काम आववानी नथी; मने ग्रहण करवा पछी नवमे समये तो मारे तेने मोक्षे पहोंचाडवो जोईसे. ग्रहण करनार कहाय शिथिव थर्ध जाय तोपण जने तो ते ज मवे, सने न जने न जने तो वधारेमां वधारे पंहर मवे मारे तेने मोक्षे पहोंचाडवो जोईसे. कहाय मने छोडी हर्ष माराथी विदुद्ध आयरण करे अथवा प्रजजमां प्रजज सेवा मोहने धारण करे तोपण अर्धपृद्गवपरावर्तननी संहर मारे तेने मोक्षे पहोंचाडवो से मारी प्रतिज्ञा छे'! सर्थात् सहीं सम्यक्त्वनी महत्ता जतावी छे.'

સમ્યગ્દર્શન થતાં અનંત સંસારનો અંત આવી જાય છે અને અનંત મોક્ષસુખનો પ્રારંભ થાય છે. સંસારરૂપી મોટી વેલને સમ્યગ્દર્શન મૂળમાંથી ઉખેડી નાખે છે અને દુર્ગતિનાં દ્વાર બંધ કરે છે. જગતમાં જે દાનાદિ કરે તેને ધન્ય કહે છે, યુદ્ધમાંથી પાછો ન કરે તેને શૂરવીર કહે છે, ઘણાં શાસ્ત્રો ભણે તેને પંડિત કહે છે; પણ જ્ઞાનીઓના મત પ્રમાણે તો મોક્ષમાં કારણભૂત એવું સમ્યગ્દર્શન જેના હૃદયમાં પ્રકાશે છે અને જેણે સ્વપ્નાવસ્થામાં પણ તેને મલિન નથી કર્યું; તે જ ધન્ય છે, તે જ કૃતાર્થ છે, તે જ શૂરવીર છે, તે જ પંડિત છે, તે જ મનુષ્ય છે. *

ત્રણે લોકમાં ત્રણે કાળમાં સમ્યક્ત્વ સમાન જીવનું કોઈ શ્રેય નથી અને મિથ્યાત્વ સમાન કોઈ અશ્રેય નથી. મિથ્યાત્વના દોષથી પરાશ્રય વડે જીવ પોતાનું અમયંદિત અકલ્યાણ કરે છે. સમ્યંગ્દર્શન મિથ્યાત્વનો નાશ કરે છે. સર્વ કલ્યાણનું તે મૂળ કારણ હોવાથી તે કલ્યાણમૂર્તિ છે. આ કલ્યાણમૂર્તિ સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિથી સમ્યગ્દિષ્ટે પુરુષોને પરમ આનંદોલ્લાસ ઊપજવાથી તેમણે તેનો અપરંપાર મહિમા ગાયો છે. શ્રીમદે પણ હર્ષોલ્લાસથી સમ્યગ્દર્શનને નમસ્કાર કરતાં લખ્યું છે કે —

'અનંત કાળથી જે જ્ઞાન ભવહેતુ થતું હતું તે જ્ઞાનને એક સમયમાત્રમાં જાત્યાંતર કરી જેણે ભવનિવૃત્તિરૂપ કર્યું તે કલ્યાણમૂર્તિ સમ્યગ્દર્શનને નમસ્કાર.'³

'હે સર્વોલ્ફ્પ્ટ સુખના હેતુભૂત સમ્યક્દર્શન! તને અત્યંત ભક્તિથી નમસ્કાર હો.

આ અનાદિ અનંત સંસારમાં અનંત અનંત જીવો તારા આશ્રય વિના અનંત

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૪૩ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૬૬)

૨- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'મોક્ષપાહુડ', ગાથા ૮૯

^{&#}x27;ते धण्णा सुकयत्था ते सूरा ते वि पंडिया मणुया । सम्मत्वं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं।।'

૩- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૬૨૫ (પત્રાંક-૮૩૯)

अनंत हुःभने अनुभवे छे.

તારા પરમાનુગ્રહથી સ્વસ્વરૂપમાં રુચિ થઈ. પરમ વીતરાગ સ્વભાવ પ્રત્યે પરમ નિશ્ચય આવ્યો. ક્તકૃત્ય થવાનો માર્ગ ગ્રહણ થયો.'^૧

સંસારથી થાકેલાને જ આ સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થાય છે. જીવમાં જિજ્ઞાસુનાં લક્ષણો પ્રગટે, સદ્વુરુનો યોગ થાય, બોધ મળે અને સદ્વુરુના લક્ષે વર્તે તો જીવને શુદ્ધ સમક્તિની પ્રાપ્તિ થાય. સદ્વુરુની નિશ્રામાં સ્વરૂપનો બોધ થયા પછી, યથાર્થ તત્ત્વનિર્ણય અને ઉપયોગની અંતર્મુખતાના અભ્યાસથી સ્વાનુભૂતિ થાય છે. સદ્વુરુના લક્ષે મિથ્યાત્વનાં દળિયાં ખસે છે અને આત્મસાક્ષાત્કાર થાય છે. એક ક્ષણ પણ આત્માનું સ્વસંવેદન થાય તો જીવનો અમર્યાદિત સંસાર મર્યાદિત થઈ જાય છે. ગાયના શિંગડાની અણી ઉપર રાઈનો દાણો જેટલો કાળ રહી શકે, એટલા અલ્પ કાળ માટે પણ જો આત્માનો અનુભવ થાય તો પછી મોક્ષ વિશેષ દૂર નથી.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'મત દર્શન આગ્રહ તજી, જે અસદાગ્રહ સ્થાન; અંધ પરંપર જ્યાં રહે, માયા શલ્ય નિદાન. મિથ્યાપક્ષ દૂરે ત્યજી, વર્તે સદ્ગુરુલક્ષ; ભાવ અવંચક યોગથી, શુદ્ધ આત્માનો પક્ષ. મૈત્ર્યાદિક શુભ ભાવથી, જેનું નિર્મળ ચિત્ત; લહે શુદ્ધ સમક્તિ તે, સાચી આત્મ પ્રતીત. દશમાં નવનો આંક જેમ, અભેદ છે પ્રત્યક્ષ; લક્ષ શુદ્ધ ગુણ આત્મનો, જેમાં ભેદ ન પક્ષ.' સ્

* * *

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૮૨૪ (હાથનોંધ-૨, ૨૦)

ર- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૧-૨૪૨ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૩૭-૪૪૦)

दर्शिक र-दलादमां, अवलद्धि नता, द्दिरादरे निकलादमां, दर्भाके रामग्रीत ગાથા ૧૧૦માં શ્રીગુરુએ કહ્યું કે મત અને દર્શનનો આગ્રહ છોડી દઈ જે સદ્ગુરુના લક્ષે વર્તે છે તે શુદ્ધ સમક્તિ પામે છે, જેમાં કોઈ ભેદ તથા પક્ષ નથી.

આમ, જિજ્ઞાસુ જીવ સદ્ગુરુના આશ્રયે સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિનો પુરુષાર્થ ઉપાડે છે. તે ત્રિકાળી, અભેદ, જ્ઞાયકસ્વરૂપ, ચૈતન્યમૂર્તિ આત્માનો આશ્રય કરે છે. સ્વભાવમાં એકાપ્ર થતાં નિર્વિકલ્પતા થવાથી તે જિજ્ઞાસુને શુદ્ધાત્માનુભવ થાય છે, શુદ્ધ સમક્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે. સ્વાનુભૂતિનો આસ્વાદ જેણે માણ્યો છે એવા સાધકની દશા કેવી હોય તે બતાવતાં શ્રીગુરુ હવે આ ગાથામાં કહે છે –

ંવર્તે નિજસ્વભાવનો, અનુભવ લક્ષ પ્રતીત; વૃત્તિ વહે નિજભાવમાં, પરમાર્થે સમક્તિ.' (૧૧૧)

અાત્મસ્વભાવનો જ્યાં અનુભવ, લક્ષ, અને પ્રતીત વર્તે છે, તથા વૃત્તિ આત્માના સ્વભાવમાં વહે છે, ત્યાં પરમાર્થે સમક્તિ છે. (૧૧૧)

ભાવાર્થી પૂર્વક શ્રદ્ધવો તે નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન છે. એને પરભાવોથી પ્રત્યક્ષ જુદો અનુભવ-પૂર્વક શ્રદ્ધવો તે નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન છે. એને પરમાર્થ સમક્તિ પણ કહે છે. જ્યારે પૂર્ણાનંદસ્વરૂપ એવા નિજાત્માનું ભાન થાય છે, તેનું પ્રત્યક્ષ વેદન થાય છે ત્યારે પરમાર્થ સમક્તિ પ્રગટે છે. આત્મસ્વરૂપને પ્રત્યક્ષ વેદતાં સ્વરૂપની નિશ્ચય પ્રતીતિ થાય છે. સ્વસંવેદનમાં અતીન્દ્રિય આનંદ હોય છે, શાંત વિશ્વામ હોય છે, આત્મસ્થિરતા હોય છે, નિરાકુળતા હોય છે, આત્મતૃપ્તિ હોય છે, સમભાવ હોય છે. આત્માનુભવનો મહિમા જ એવો છે કે એકાંત સુખસ્વરૂપ અનુભવકાળ વીત્યા પછી પણ તેનું વિસ્મરણ થતું નથી. તે દિવ્ય અનુભૂતિનું સ્મરણ સતત રહ્યા કરે છે. કરીથી તે આનંદાનુભવમાં લીન થવાની જ વૃત્તિ સદા રહ્યા કરે છે. પૂર્વબદ્ધ કર્મના ઉદય અનુસાર સાધકને સંસારનાં કાર્યો કરવાં પડે છે અને તેના કારણે આનંદની અવિચ્છિન્ન ધારામાં ટકી શકાતું નથી, ત્યારે પણ તેમનો લક્ષ તો આત્મતત્ત્વ તરફ જ રહે છે. અન્ય કાર્યોમાં પ્રવર્તવા છતાં તેમની વૃત્તિ તો સ્વરૂપમાં સ્થિત થવાની જ રહે છે. ગમે તેવા ઉદયમાં પણ તેમની નજર નિશાન ઉપર જ હોય છે, પછી તે લગ્નપ્રસંગ હોય કે યુદ્ધ હોય. પૂર્વબદ્ધ કર્મના ઉદય વખતે તેઓ સંસારકાર્યોમાં જોડાય ત્યારે પણ તેમનું લક્ષ, તેમનું ધ્યેય, તેમની ભાવના એવી હોય છે કે 'હું મારા આત્મામાં સંપૂર્ણપણે સ્થિર થઈ જાઉં, રાગ-દેષરૂપ

વિભાવભાવોથી દૂર થઈ જાઉ, મારા અકષાયી આત્મસ્વરૂપમાં સમાઈ જાઉ. માત્ર આત્મસ્વરૂપ જ મારી વસ્તુ છે અને તેમાં સ્થિર થવું એ જ મારું કાર્ય છે. અન્ય સર્વ ભાવો વિડંબનારૂપ છે.' આવી તેમની ભાવના હોવાથી, સંસારમાં રહ્યા છતાં પણ તેઓ પોતાનું આત્મલક્ષ ચૂકતા નથી. કદાચિત્ સંસારના કોઈ કાર્યમાં એકાગ્ર થઈ જતાં આત્માનો લક્ષ વીસરી જવાય તોપણ પોતાને જે શુદ્ધાત્માનુભૂતિ થઈ છે તેની પ્રતીતિ તો તેમને સદા રહે જ છે. ઊંઘમાં કે કોઈ અન્ય પ્રસંગે કદાચ બુદ્ધિપૂર્વક આત્માનો લક્ષ ન રહે તોપણ આત્માની પ્રતીતિ તો સદા રહે જ છે.

આમ, સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ, તેનું લક્ષ અને તેની પ્રતીતિ રહે છે તથા તેમની વૃત્તિનો પ્રવાહ, એટલે કે તેમની પરિણતિ અને રુચિ આત્મામાં સ્થિર થવાના જ વલણવાળી હોય છે. ચારિત્રમોહનીયના ઉદયના નિમિત્તથી ચારિત્ર ગુણનું વિકારી પરિણમન હોય છે, તેથી અખંડપણે નિર્વિકલ્પ અનુભવધારામાં રહી શકાતું નથી; અર્થાત્ ઉદયના નિમિત્તથી આત્મસ્થિરતાનો ભંગ થાય છે, તોપણ તેમની વૃત્તિ તો સ્વસ્વરૂપમાં ઠરવાની જ હોય છે. તેમને આત્મસ્વભાવ સિવાય બીજું કાંઈ રુચતું નથી. જ્યાં આત્મસ્વભાવમાં જ વૃત્તિ વર્તે છે ત્યાં જ ખરેખર પરમાર્થથી સમક્તિ હોય છે.

ુદુઃખથી છૂટવા અને સાચું સુખ પામવા જિજ્ઞાસુ જીવ આત્મપ્રાપ્તિ કરવાનું ધ્યેય બાંધે છે. આ ધ્યેયપૂર્તિનો માર્ગ બતાવનારા જ્ઞાનીનો તેને યોગ થાય છે ત્યારે તે તેમનો ઓળખાણપૂર્વક સમાગમ કરે છે. તેમના અપૂર્વ બોધની પ્રાપ્તિ થતાં, બોધનો વારંવાર વિચાર કરી તે તત્ત્વનિર્ણય કરે છે. તત્ત્વની યથાર્થ સમજણ દ્વારા 'આ દેહ અને કર્મનાં રજક્શોથી ભિન્ન; પુણ્ય અને પાપના ભાવોથી ભિન્ન; હું શુદ્ધ છું, અભેદ છું અને અખંડ છું એવા વિકલ્પથી પણ ભિન્ન; સહજ. શાંત. પરિપૂર્ણ જ્ઞાયકતત્ત્વ હું છું' એમ પોતાના જ્ઞાયકસ્વભાવનો દઢ નિશ્ચય કરે છે. સ્વરૂપવિષયક સૂક્ષ્મ, ઊંડી અને રુચિપૂર્વકની વિચારણાનો વારંવાર અભ્યાસ થતાં તેની આત્મભાવના પુષ્ટ બને છે. તેની દેષ્ટિ આત્મસ્વભાવ ઉપર રહે છે. તે દ્રવ્યદળનું જ અવલંબન લે છે; અને જ્યારે પર્યાયની કોઈ અશુદ્ધિ પકડાય છે ત્યારે તેને એવં જબરદસ્ત શૌર્ય ઊપડે છે કે 'આ અશુદ્ધિ ઉત્પન્ન થઈ જ કેવી રીતે? તેનો તત્કાળ ક્ષય કરું!' એમ અડગતાથી તેનો નાશ કરીને જ જંપે છે. તે વધુ ને વધુ અંતર્મુખ થતો જાય છે. ઉપયોગ અંતરમાં વળતાં, સર્વ વિકલ્પો ટળી જતાં, શદ્ધ સ્વભાવમાં લીનતા થતાં સ્વાનુભવ થાય છે અને તેને સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થાય છે. એમ થતાં કદી નહીં અનુભવાયેલી એવી અપૂર્વ આત્મશાંતિ તે પામે છે અને નિરાકુળતાનું વેદન કરે છે. આમ, સદ્દુરુનાં બોધ-આજ્ઞાના બળ વડે જે સ્વતત્ત્વનો આશ્રય કરી સ્વસંવેદન વડે

પોતાના જ્ઞાયકસ્વભાવને વેદે છે, તેને પરમાર્થ સમકિત સંપ્રાપ્ત થાય છે. પરમાર્થ સમકિતની વ્યાખ્યા કરતાં શ્રીમદ્દ્ લખે છે –

''આત્મા' જે પદાર્થને તીર્થકરે કહ્યો છે, તે જ પદાર્થની તે જ સ્વરૂપે પ્રતીતિ થાય, તે જ પરિણામે આત્મા સાક્ષાત્ ભાસે ત્થારે તેને પરમાર્થસમ્ચક્**ત્વ છે, એવો શ્રી** તીર્થકરનો અભિપ્રાય છે.'^૧

આત્માના સ્વભાવની અંતરમાં શ્રદ્ધા કરીને તેનો આશ્રય કરતાં પૂર્ણાનંદ આત્મ- પ્રભુ પર્યાયમાં - વર્તમાન અવસ્થામાં પ્રગટ થાય છે. અનંત નિધાનવાળો જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મા અનુભવમાં આવે છે. જેના સેવનથી સમ્યગ્દર્શનથી માંડીને સિદ્ધપદ પર્યંતનાં સર્વ પ્રયોજન સિદ્ધ થાય છે એવો સિદ્ધિસંપન્ન ચૈતન્યદેવ પોતામાં જ દેખાય છે. અનંત શક્તિની પરમેશ્વરતા પોતામાં જ છે એવી નિજપ્રભુતાની તેને ખાતરી થાય છે. 'હું અનંત અનંત અપરિમિત શક્તિઓથી ભરપૂર સ્વાધીન પદાર્થ છું. પરદ્રવ્ય કે પરભાવ અંશમાત્ર મારાં નથી, તેનાથી ભિન્ન એવા મારા સ્વરૂપના અનુભવથી જ હું પ્રતાપવંત છું' - ચૈતન્યના આવા અગાધ ચમત્કારનો તેને સાક્ષાત્કાર થાય છે અને તે પોતાના શાંત રસમાં નિમગ્ન થાય છે. તે અવર્ણનીય શીતળતાનું વેદન કરે છે. આત્મામાં અંદર અવિકારી, અતીન્દ્રિય, શીતળ સ્વભાવની બરફ જેવી શીતળ પાટ પડી છે, જે વેદનમાં પ્રત્યક્ષ થાય છે.

આત્માનાં અનુભવનો મહિમા અપાર છે. તે અનુભૂતિમાં અનંત ગુણની ગંભીરતા ભરેલી છે, તેમાં અનંત ગુણોનો સ્વાદ એકીસાથે વેદાય છે. આત્મા અનંત શક્તિસંપન્ન જ્ઞાયકસ્વભાવરૂપે પ્રસિદ્ધ થાય છે. 'હું જ્ઞાનસ્વભાવી છું' એમ પ્રત્યક્ષ અનુભૂતિપૂર્વક તેનું જ્ઞાન નિઃશંક થઈ જાય છે. તે અનુભવપૂર્વક જાણે છે કે તેનું જ્ઞાન રાગાદિથી મેલું નથી, પરાધીન નથી, દુઃખી નથી; પરંતુ તે તો વિશ્વના શિરતાજ સમાન છે, વીતરાગરસથી ઘોવાયેલું ઉજ્જવળ છે, અદ્ભુત છે, સ્વાધીન છે, મહા આનંદરૂપ છે, મોક્ષને સાધનારું છે. પરમાર્થતત્ત્વને પામીને, તેનો આશ્રય કરીને, તેમાં તદૂપ થઈને જ્ઞાન પોતે જ પરમાર્થરૂપ બની જાય છે. જ્ઞાન જ્યારે અંતર્મુખ થઈને પરિણમે છે ત્યારે જ્ઞાન સાથે સુખશક્તિ પણ ઊછળે છે. આત્મદ્રવ્ય તો ત્રિકાળ સુખરૂપ છે અને તેનો સ્વીકાર કરીને તેની સન્યુખ થતાં પર્યાય પણ સુખરૂપ થઈ જાય છે. આ રીતે સમ્યગ્દર્શન સર્વોત્કૃષ્ટ સુખમાં કારણભૂત છે અને તે પ્રગટ થતાં જ સંસારનું અનંત દુઃખ છેદાઈ જાય છે. ર

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૩૬૪ (પત્રાંક-૪૩૧)

૨- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'રયણસાર', ગાથા ૧૫૩

^{&#}x27;सम्मद्दंसणसुद्धं, जाव दु रूभदे हि ताव सुही । सम्मद्दंसण सुद्धं, जाव ण रुभदे हि ताव दुही ।।'

જ્યારે સ્વસંવેદન પ્રગટે છે ત્યારે નિર્વિકલ્પ દશા જ હોય છે, ઉપયોગ અંતરમાં થંભી ગયો હોય છે; પણ એવી નિર્વિકલ્પ દશા લાંબો કાળ ટકતી નથી, એટલે ફરીથી સવિકલ્પ દશા આવે છે. સમ્યગ્દિષ્ટિનાં પરિણામ નિર્વિકલ્પ અને સવિકલ્પ એમ બન્ને દશારૂપ થઈને પ્રવર્તે છે. સવિકલ્પ દશામાં આવે ત્યારે અનેક ઉદયપ્રસંગોમાં ઘેરાયેલા હોવા છતાં તેમને સ્વરૂપનું લક્ષ તો રહે જ છે. તેઓ જ્યાં જાય ત્યાં તેમને પોતાના ત્રિકાળી સ્વરૂપની સંધિ તૂટતી નથી, અખંડ જ રહે છે. જીવ જો કોઈ વસ્તુમાં અતિ મમત્વથી વળગ્યો હોય તો તે જીવનાં પરિણામમાં તે વસ્તુ પ્રત્યે રહેલો સર્વસ્વપણાનો ભાવ પ્રદર્શિત થાય છે, તેવી રીતે નિજ અસ્તિત્વમાં રહેલ અનંત જ્ઞાન, દર્શન આદિ ગુણસંપત્તિરૂપ પોતાનું સર્વસ્વ એક વાર ભાસ્યમાન થતાં આત્મા ત્યાંથી ખસી શકતો નથી. જેમ નજરબંધી કરી હોય તો તેની નજર બીજે જઈ શકતી નથી, તેમ નિજ અસ્તિત્વ નજરાય છે, અર્થાત્ લક્ષમાંથી લક્ષ્ય ખસતું નથી. તેથી જ શ્રીમદ્દ્ કહે છે કે –

'આજ સુધી અસ્તિત્વ ભારચું નથી. અસ્તિત્વ ભાસ થવાથી સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત થાય છે. અસ્તિત્વ એ સમ્યક્ત્વનું અંગ છે. અસ્તિત્વ જો એક વખત પણ ભાસે તો તે દેષ્ટિની માફક નજરાય છે, અને નજરાયાથી આત્મા ત્યાંથી ખસી શકતો નથી.'

સમ્યગ્દર્શન થતાં જે અપૂર્વ આનંદ અનુભવમાં આવ્યો, અંદર અદ્ભુત આત્મ-શાંતિનું જે વેદન થયું, તેનું તેમને વિસ્મરણ થતું નથી અને તેમાં જ ફરી ફરી લીન થવાની ભાવના રહે છે. તેમને આત્માનુભવના વિરહની વેદના થાય છે, તેથી તેમને સ્વરૂપમાં પાછા જવાનો ઉત્સાહ તેમજ તાલાવેલી હોય છે. જેમ કોઈ મનુષ્ય જંગલમાં ગયો હોય અને પાંચ કરોડનો ચરુ મળી આવે, પરંતુ ઉપાડીને લઈ જવાની શક્તિ કે અનુકૂળતા ન હોય તો કોઈ જોઈ ન જાય એમ ચરુને ઢાંકીને તે પાછો ગામમાં આવે, પણ તેનું લક્ષ તો ત્યાં જ હોય કે 'ક્યારે હું એ ચરુ કાઢીને લઈ આવું'; તેમ જ્ઞાનીએ અનંત ગુણોનો નિધાન એવો પોતાનો સ્વભાવ જોઈ લીધો છે અને 'હું જ અનંત ગુણોનો રાશિ છું' એવી શ્રદ્ધા અને જ્ઞાન વર્તતાં હોવાથી જ્ઞાનીનું લક્ષ તો એક જ છે કે 'હું ક્યારે મારા સ્વભાવમાં એકાગ્ર થઈને નિધાન ખોલી નાખું.' આમ, તેઓ આત્મસન્મુખ રહે છે.

જ્ઞાનીને ક્યારેક આત્માનો લક્ષ ન હોય તોપણ તેમને સ્વરૂપપ્રતીતિ તો સતત વર્તે જ છે. ઉદય અનુસાર સર્વ બનતું રહે છે, પરંતુ અંતરમાં નિજ પરમાત્મસ્વરૂપની પ્રતીતિ સતત રહે છે. 'હું આ સર્વથી નિરાળો, એક ચૈતન્યસ્વરૂપી છું' એવી પ્રતીતિ નિરંતર રહે છે. લોકોને પોતાના નામની પ્રતીતિ સદા રહે છે. ગમે તેટલા કોલાહલની વચમાં પણ જો કોઈ તેના નામની બૂમ મારે તો તરત તેનું ધ્યાન ત્યાં જાય છે. બાહ્ય ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છઢી આવૃત્તિ, પૃ.૭૬૦ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૨૨૦)

પ્રવૃત્તિમાં ગમે તેટલો રચ્યોપચ્યો હોય, પોતાના નામનું રટજા પજા ન કરતો હોય, પોતાના નામનો વિકલ્પ પજા ન કરતો હોય, છતાં પજા પોતાના નામની પ્રતીતિ સદા હોય છે. એવી રીતે જ્ઞાનીને દરેક કાર્ય વખતે 'હું આત્મા છું' એવો વિચાર ન પજા હોય, છતાં પજા આત્માની પ્રતીતિ તો તેમને નિરંતર રહે જ છે. પંડિત શ્રી ટોડરમલજી લખે છે કે –

'જેમ કોઇ રોગી પુરુષને એવી પ્રતીતિ છે કે - 'હું મનુષ્ય છું, તિર્ચંચાદિ નથી, મને આ કારણથી રોગ થયો છે, અને હવે એ કારણ મટાડી રોગને ઘટાડી નીરોગી થવું જોઇએ;' હવે તે જ મનુષ્ય જ્યારે અન્ય વિચારાદિરૂપ પ્રવર્તે છે, ત્યારે તેને એવો વિચાર હોતો નથી, પરંતુ શ્રદ્ધાન તો એમ જ રહ્યા કરે છે; તેમ આ આત્માને એવી પ્રતીતિ છે કે - 'હું આત્મા છું - પુદ્દગલાદિ નથી, મને આસ્ત્રવથી બંધ થયો છે પણ હવે સંવર વડે નિર્જરા કરી મોક્ષરૂપ થવું.' હવે તે જ આત્મા અન્ય વિચારાદિરૂપ પ્રવર્તે છે ત્યારે તેને એવો વિચાર હોતો નથી, પરંતુ શ્રદ્ધાન તો એવું જ રહ્યા કરે છે.'

જેમ મેઘલી ઘનઘોર રાતે મા સૂતી હોય, બાળક તેના પડખામાં સૂતું હોય, વાદળનો ગડગડાટ થતો હોય, તોપણ તે ગડગડાટથી મા જાગતી નથી; પરંતુ બાળક જરાક પણ સળવળે, જરા અમથું રડે તો મા જાગી જાય છે. જેને વીજળીનો કડકડાટ જગાડી શકતો નથી, તેને બાળકનું આછું હલન-ચલન પણ જાગૃત કરી દે છે, કારણ કે નિદ્રા અવસ્થામાં પણ માના અસ્તિત્વનો એક અંશ બાળકને યાદ રાખે છે. ઊંઘમાં પણ માનું હૃદય સંતાન તરફ ઢળેલું હોય છે. બાળક પ્રત્યેની આ પ્રેમધારામાં કોઈ પણ કારણ અલ્પ પણ વિચ્છિન્નતા લાવી શકતું નથી. તેવી જ રીતે જ્ઞાનીને નિદ્રામાં પણ સ્વરૂપની પ્રતીતિ રહે છે. 'હું જ્ઞાયક છું' એવી પ્રતીતિ નિદ્રામાં પણ સતત રહે છે. નિદ્રામાં પણ તેઓ મૂર્છિત થતા નથી. તેઓ સુષ્યિનમાં પણ જાગૃત હોય છે, તેથી જ જ્યારે બધા સૂઈ જાય છે ત્યારે પણ જ્ઞાની તો જાગતા જ રહે છે. તેઓ નિદ્રામાં પણ 'જાગૃત' હોય છે. તેઓ ઉજાગર અવસ્થામાં સ્થિર હોય છે. તેઓ આત્માની પ્રતીતિમાંથી બહાર નીકળતા જ નથી.

આમ, જે જીવ સદ્ગુરુના ઉપદેશથી જાગે છે, સ્વસન્મુખ થઈને સમ્યગ્દર્શન પામે છે, તેનું આખું જીવન બદલાઈ જાય છે. પૂર્વે ક્યારે પણ અનુભવ્યો ન હોય તેવો અપૂર્વ આનંદ પ્રગટે છે. એક વાર નિર્વિકલ્પ શુદ્ધોપયોગી થઈને મહા આનંદનો અનુભવ કર્યો હોવાથી વિકલ્પમાં આવવા છતાં પણ આત્માનું લક્ષ રહે છે. વિકલ્પથી ભિન્ન જ્ઞાન-આનંદની પરિણતિમાં જ તેઓ રમે છે. 'અહાહા! આવો અખંડ આનંદમય ૧- પંડિત શ્રી ટોડરમલજીકત, 'મોક્ષમાર્ગ પ્રકાશક', ગુર્જરાનુવાદ, સાતમી આવૃત્તિ, પ્.૩૦૯

આત્મા હું છું'નું એક ક્ષણ માટે પણ તેમને વિસ્મરણ થતું નથી. ભેદજ્ઞાનની અપૂર્વ કળાથી તેઓ પોતાને અને પરને બરાબર જુદા જાણે છે. દેહભાવ છૂટી ગયો હોવાથી તેમને અપૂર્વ આત્મભાવ જાગે છે અને તેથી સર્વ પરથી જુદાપણાની પ્રતીતિ તેમને ચોવીસે કલાક રહે છે.

પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ ઊપજ્યો હોવાથી જ્ઞાની નિઃશંક અને નિર્ભય હોય છે. પોતાની ચૈતન્યલક્ષ્મી આત્મામાં એવી અભેદ છે કે કોઈ તેને લૂંટી શકે નહીં, કોઈ તેનો નાશ કરી શકે નહીં એમ અનુભવતા હોવાથી તેઓ નિઃશંક અને નિર્ભય હોય છે. પોતાની સ્વાધીન શાંતિનો અનુભવ કર્યો હોવાથી તેમને કોઈ ભય નથી. તેમને અનુભવપૂર્વકનો નિર્ણય થયો હોય છે કે 'મારાં સુખ-શાંતિ-સલામતી તો મારી પાસે જ છે. મારી શાંતિ મારી અંતરગુફામાં સુરક્ષિત છે, પછી તે ચોરાઈ કે લૂંટાઈ જવાનો ભય શા માટે? કોઈ અકસ્માતાદિનો ભય પણ શા માટે? મારી રક્ષા માટે અન્યની શી આવશ્યકતા છે? લૌકિક કોઈ પણ શક્તિ કદાચિત્ કોઈક અપેક્ષાએ આ શરીરને બાધા પહોંચાડી શકે, પરંતુ મારી શાંતિને બાધા પહોંચાડી શકે તેમ નથી. મને બાધા પહોંચાડી શકે તેવું સામર્થ્ય મારા પોતાના સિવાય કોઈમાં નથી. બાહ્ય કષ્ટથી શું ગભરાવું? એ તો બાહ્ય પદાર્થોનું પરિણમન છે, મારામાં કોઈ કષ્ટ છે જ નહીં. અમૂર્ત જ્ઞાનમાત્ર આત્મામાં ક્યાંથી કષ્ટ આવે? તેમાં કોઈ કષ્ટ છે જ નહીં. કષ્ટ તો સ્વથી ચલિત થાઉં તો જ છે. હું કષ્ટોથી રહિત મારા આનંદધામ સ્વરૂપમાં સ્થિત છું.' આવો નિર્ણય તેમને સર્વ સંયોગોમાં નિરાકુળતાનો અનુભવ કરાવે છે.

જ્ઞાનીપુરુષ એટલા જ્ઞાનબલી છે કે અશુભ કર્મોદય વખતે ક્વચિત્ રોગાદિની તીત્ર વેદના આવવા છતાં કાયર થયા વિના તેને ઘણા ધૈર્યથી અને સમતાપૂર્વક વેદે છે. તેમને રોગાદિ જનિત કષ્ટ કે વેદનાની ચિંતા થતી નથી. દેહને જે આત્મસ્વરૂપ માને છે તેઓ વ્યાધિથી ભયભીત થાય છે, પણ દેહથી નિરાળી અમૂર્ત ચેતનાને જે આત્મારૂપ માને છે તેઓ કદી વ્યાધિથી ભયભીત થતા નથી. પોતાને દેહથી નિરાળો જોતા હોવાથી દેહની પીડા તેઓ સુગમતાથી વેદી શકે છે. જ્યાં ભેદવિજ્ઞાન પ્રબળ છે અને આત્મસ્વરૂપ તરફ અભિમુખતા છે, ત્યાં પીડા વેદવાનું ઘણું સરળ બને છે. જેમ પારકા છોકરાને કોઈ ધમકાવે, મારે, સતાવે; તો તે જોઈને એટલી બધી વિહ્વળતા નથી થતી, કારણ કે તેના માટે પોતાપણાનો ભાવ નથી હોતો; તેમ દેહમાં રોગાદિ થાય તો જ્ઞાનીને દેહ માટે પોતાપણાનો ભાવ ન હોવાથી તેઓ વિહ્વળ નથી થતા. તેઓ એમ જાણે છે કે 'જે કંઈ થઈ રહ્યું છે તે મારાથી ભિન્ન એવા દેહને - બીજાને થઈ રહ્યું છે.' જેમ છાપામાં કોઈ ત્રાહિતના અકસ્માત કે મરણાદિના સમાચાર વાંચતાં કાંઈ થતું નથી, તેમ જ્ઞાની ભગવંત ઉપર પણ શરીરની રોગી અવસ્થાનો કોઈ પ્રભાવ પડતો

નથી. તેઓ જાણે છે કે દેહમાં પરિણમન થઈ રહ્યું છે, આત્મામાં નહીં. 'દેહની જે પણ અવસ્થા થાય છે તે દેહના પોતાના કારણે થાય છે. તેનાથી મને કોઈ જ લાભ- હાનિ થતાં નથી. જો પ્રારબ્ધવશાત્ આ શરીરમાં છ કરોડ રોગોનો પ્રકોપ એકીસાથે જ્વાલારૂપે ભભૂકી ઊઠે તોપણ મને તેની સાથે કાંઈ લેવા-દેવા નથી. મારી જ્ઞાન- સમૃદ્ધિમાં કોઈ બાધા પહોંચી શકે એમ નથી. મારે દેહ સાથે કશી નિસ્બત નથી, હિતાહિત સંબંધ નથી. શરીર માત્ર મારું જ્ઞેય અને હું તેનો જ્ઞાતા - ફક્ત આટલો જ સંબંધ છે. તે સિવાય મારો તેની સાથે કોઈ સંબંધ નથી. જ્ઞાનીપુરુષને આવી જાગૃતિ સતત રહે છે. પ્રથમ દેહમાં એકત્વબુદ્ધિ હતી, પરંતુ હવે ભેદજ્ઞાનનો અભ્યાસ પરિપક્વ થયો હોવાથી પોતાની અને દેહની વચ્ચે માત્ર જ્ઞાતા-જ્ઞેય સંબંધ જ પ્રતીત થાય છે. વેદનાકાળે પણ તેઓ દેહથી દૂર અને સ્વરૂપની સમીપ રહે છે.

અવિનાશી આત્માને અનુભવ્યા પછી જ્ઞાનીને મરણનો ભય નથી રહેતો. અજ્ઞાનથી અને સ્વસ્વ3પ પ્રત્યેના પ્રમાદથી અજ્ઞાનીને મૃત્યુની ભાંતિ હોય છે. તે જ ભાંતિ નિવૃત્ત કરી, શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપમાં પરમ જાગૃત થઈ જ્ઞાનીપુરુષ સદા નિર્ભય જ હોય છે. તેઓ ભયભીત નથી થતા. કારણ કે તેઓ જાણે છે કે 'હું તો જ્ઞાનશરીરી છું. મારું શરીર તો જ્ઞાનમય છે. મારું જ્ઞાનશરીર અવિનાશી છે. કોઈ પણ ભંજક વડે ભેદી ન શકાય એવો મારો ચૈતન્યદેહ છે. વજપાત થાય તોપણ તેનો નાશ થતો નથી. હું અજર, અમર અને અવિનાશી છું. હું જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપે શાશ્વત છું. હું પરિપૂર્ણ શાશ્વત દ્રવ્ય છું, પછી મૃત્યુનો ડર શા માટે? પુદ્દગલમય આ શરીર મારું નથી. પુદ્દગલથી બનેલું આ શરીર તો વિનાશી, સંયોગી સ્વભાવવાળું જ છે, તેનો નાશ થાય તેમાં મારે શું? જડ શરીરની મારે શી ચિંતા? જડ શરીરના વિનાશથી મારો વિનાશ નથી. જેમ વસ્ત્ર જાડું હોય કે પાતળું હોય; તેનો રંગ બદલાય, મેલું થાય, જીર્ણ થાય કે ફાટી જાય; તોપણ તેના કારણે શરીરને કાંઈ જ થતું નથી; તેમ દેહ અને મારા સંબંધમાં છે. દેહની અવસ્થા ગમે તેવી વિપરીત થાય તોપણ તેની મને પરવા નથી. આ દેહનો સંબંધ છૂટી જાય, મારાથી અલગ થઈ જાય, તો તેમાં મને કાંઈ હર્ષ કે શોક નથી, કારણ કે પ્રત્યેક પદાર્થની ક્રિયા સ્વતંત્ર છે અને તે ક્રિયા તે પદાર્થનો સ્વભાવ છે. દેહ રહે તો તેના કારણે અને છટી જાય તોપણ તેના કારણે. હું તો તેની બધી અવસ્થાનો માત્ર જાણનાર-જોનાર છં.' આમ જાણીને તેઓ નિર્ભયપણે પોતાના જ્ઞાનસ્વરૂપની આરાધનામાં નિમગ્ન રહે છે.

આત્મજ્ઞાન થયા પહેલાં જે દષ્ટિએ પરજ્ઞેયોને જોતા હતા, તેના કરતાં જુદી જ -અપૂર્વ દષ્ટિએ જ્ઞાની પરજ્ઞેયોને જુએ છે, કેમ કે પરને ખરેખર પરરૂપે પહેલાં કદી જાણ્યું ન હતું. હવે તેઓ પરદ્રવ્યમાં અહંબુદ્ધિ કરતા નથી, પોતાના જ્ઞાનાદિ સ્વભાવને જ પોતાનો માને છે. પરમાં રહેલી મમત્વબુદ્ધિની ભ્રાંતિ તેમને ટળી ગઈ છે. વળી, તેમને હવે પરમાં કર્તાબુદ્ધિ કે આધારબુદ્ધિ થતી નથી. તેમને પરપદાર્થો જેવા છે તે રૂપે યથાર્થપણે જણાય છે. પરદ્રવ્યોને ઇષ્ટ-અનિષ્ટ માની તેમાં રાગ-દ્વેષ કરતા નથી. પરને જાણતા છતાં તેનાથી વિરક્ત રહે છે. તેઓ તેનાથી પ્રભાવિત થતા નથી. પરવસ્તુઓ આવે છે, ચાલી જાય છે; તેને તેઓ જાણે છે, પણ તેમાં મય થતા નથી.

જે કંઈ પણ બને છે તેના જ્ઞાની તો દ્રષ્ટા રહે છે. તેમને હંમેશાં શાંત સ્વીકારનો ભાવ રહે છે. કોઈ ફરિયાદ નહીં કે ફેરફાર કરવાની વૃત્તિ નહીં. તેમના એક શ્વાસમાં પણ ફરિયાદનો સૂર હોતો નથી. તેમના એક રોમમાં પણ ફરિયાદનો સૂર હોતો નથી. તેમના એક રોમમાં પણ ફરફાર કરવાની વૃત્તિ જાગતી નથી. પૂર્ણ સ્વીકૃતિનો ભાવ હોય છે. ભૂત-ભવિષ્યની સ્મૃતિ કે કલ્પના નહીં, હર્ષ પણ નહીં અને શોક પણ નહીં. બહારનું માત્ર જોવાનું અને અંદરમાં આનંદિત રહેવાનું, સામે માન આવે કે અપમાન, શત્રુ આવે કે મિત્ર - બધા દૃંદ્ધોથી પર થઈને જ્ઞાયકભાવે જોવાનું-જાણવાનું. કોઈ માણસ તેમના ઉપર ફૂલ ફેંકી જાય કે કોઈ તેમના ઉપર પથ્થર ફેંકી જાય, બન્ને વાતો તેમને એકસરખી રીતે જ સ્વીકૃત બનતી હોય છે, કોઈ જ ભેદ નથી રહેતો.

જે કંઈ પણ બને, જ્ઞાની તો પોતામાં મસ્ત રહે છે - આનંદમાં જ રહે છે. પરથી લાભ-નુકસાન થશે એવી ઊંધી માન્યતા ન હોવાથી કોઈ પરિસ્થિતિ તેમને દુઃખ આપી શકતી નથી. તેમને કોઈ પરિસ્થિતિ દુઃખરૂપ લાગતી જ નથી. કોઈ માણસના ઘરમાં ગમે તેટલું અંધારું હોય, પણ જો ત્યાં દીવો લઈને જવામાં આવે તો અંધારું ટકી શકતું નથી. તે માણસ અંધારું બતાવવા ઇચ્છે તોપણ બતાવી શકતો નથી. જ્યાં પ્રકાશ છે ત્યાં અંધારું નથી અને જ્યાં અંધારું છે ત્યાં પ્રકાશ નથી. તેમ જ્ઞાની પાસે સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપી પ્રકાશ હોવાથી ત્યાં અજ્ઞાનરૂપી અંધકાર ટકી શકતો નથી, તેથી જે પરિસ્થિતિ સંસારી જનને દુઃખરૂપ, સમસ્યારૂપ, સંકટરૂપ ભાસે છે, તે પરિસ્થિતિને તેઓ સમ્યક્ દેષ્ટિથી નિહાળતા હોવાથી તેમને તે દુઃખરૂપ નથી લાગતી. તેમને કશે પણ દુઃખ અનુભવાતું નથી. જગતમાં જે કંઈ પણ બની રહ્યું હોય, એનાથી અન્ય કંઈ પણ થાય એવી કોઈ આકાંક્ષા તેમના મનમાં નથી હોતી. આવી પરિપૂર્ણ સ્વીકૃતિ તો માત્ર પૂર્ણ સ્જાગતામાં જ થઈ શકે છે. આવી સ્વીકૃતિનો ભાવ તેમના અંતરમાં પ્રગટ્યો હોવાથી તેમના જીવનમાં આનંદનું નૃત્ય શરૂ થઈ જાય છે. તૃપ્તિ અને આનંદમાં નિરંતર તેમનો વાસ હોય છે.

જ્ઞાનીનો ઉપયોગ પરને જાણવામાં રોકાયો હોય તોપણ કાંઈ તેમની શ્રદ્ધા કે જ્ઞાન મિથ્યા થઈ જતાં નથી. હજી પૂર્ણ વીતરાગ થયા નથી ત્યાં સુધી પોતાના પુરુષાર્થની નબળાઈના કારણે તેઓ અંતરમાં વિશેષ ટકી શકતા નથી, તેથી તેમનો ઉપયોગ બહાર આવે છે અને શુભાશુભ પરિજ્ઞામ પણ થાય છે; પરંતુ તેમનાં સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યગ્જ્ઞાન દૂષિત થતાં નથી. જ્ઞાનીને કોઈ કોઈ વાર શુદ્ધોપયોગ હોય છે અને ભૂમિકાનુસાર વિષય-કષાયાદિ અશુભ પરિજ્ઞામ તેમજ ભક્તિ, સ્વાધ્યાય, તીર્થયાત્રા આદિ શુભ પરિજ્ઞામ હોય છે, પણ શુભાશુભ પરિજ્ઞામ વખતે પણ તેમના અંતરમાં એક શુદ્ધાત્મા જ વસ્યો હોય છે. સમ્યગ્દષ્ટિ મહાત્માએ ધ્રુવ જ્ઞાયકભાવ ઉપર પોતાની દષ્ટિનો દોર લગાવી દીધો હોવાથી વિકલ્પ ઊઠે ત્યારે પણ તેમની દષ્ટિ તો તેમના ધ્રુવ સ્વભાવ ઉપર જ હોય છે. તે ત્યાંથી ખસતી જ નથી. જેમ કોઈ પતંગ ઉડાડે ત્યારે તેનો દોર પોતાના હાથમાં રાખે છે, તેમ શુભાશુભ વિકલ્પો વખતે પણ પોતાની દષ્ટિનો દોર તેમણે ધ્રુવ જ્ઞાયકમાં બાંધી દીધો હોય છે, તેથી શુભ-અશુભ પરિજ્ઞામ વર્તતાં હોય છે ત્યારે પણ તેમનો ઝુકાવ ઉદય તરફ નથી હોતો, સ્વરૂપ પ્રત્યે જ હોય છે.

જ્ઞાનીને રાગભાવ પૂર્ણતઃ મટ્યો નથી, કારણ કે હજી પૂર્ણ સ્વરૂપાચરણ નથી; પરંતુ સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ્યું હોવાથી તે રાગભાવ અભિપ્રાયમાંથી તો ટળી જ ગયો છે. રાગભાવ અસ્થિરતારૂપે આવે તો છે, પરંતુ અભિપ્રાયમાં તો રાગ ઝેર છે એમ જ તેઓ માને છે. જેમ કોઈ મનુષ્ય હાથમાં પકડાઈ ગયેલા સર્પને ફેંકી દેવા જેવો જ સમજે છે, તેમ અસંયમના જે રાગાદિ ભાવ સમ્યગ્દષ્ટિને થાય છે, તે ભાવને તેઓ સર્પ જેવા - છોડવા જેવા જ માને છે, તેથી તેને પોષતા નથી. રાગને સ્વરૂપની દષ્ટિના આધારે ઝેરી નાગ જેવો માનતા હોવાથી રાગ આવે તોપણ તે રાગથી તેઓ ન્યારા રહે છે. તેમને રાગ થાય છે, છતાં તેનાથી તેઓ જુદા રહે છે, તેના ઉપર તેમનું લક્ષ હોતું નથી. તેમની રુચિમાં રાગનો આદર હોતો નથી.

જ્ઞાની રાગનું એકત્વ કે સ્વામિત્વ કરતા નથી: દ્રવ્યદેષ્ટિના સામર્થથી રાગથી જુદા રહે છે. તેઓ જ્ઞાન અને રાગની સંધિ કરતા નથી, પરંતુ ભેદજ્ઞાનરૂપી છીણીથી તે બન્નેને છેદીને જુદાં જુદાં અનુભવે છે. જ્ઞાન અને રાગની ભિન્નતાનું ભાન રાગ વખતે પણ ખસતું નથી. જ્ઞાનપરિણામ અને રાગાદિ પરિણામ જુદાં જુદાં જ રહે છે; બન્નેની ધારા જુદી રહે છે. તેમને જ્ઞાનધારા અને રાગધારા સાથે સાથે ચાલે છે. તેઓ રાગની ધારાને પરજ્ઞેય તરીકે જાણે છે. તેઓ રાગને પોતાથી ભિન્નપણે જાણે છે. તેઓ પોતાની જ્ઞાનધારામાં જ તન્મય રહે છે. આત્માનુભૂતિયુક્ત જ્ઞાનપરિણતને ધ્રુવ સ્વભાવનું જ્ઞાન થયું હોવાથી જ્ઞાનધારા હંમેશાં પ્રવર્તે છે. તેમની પરિણતિમાં હજુ રાગાદિ હોય છે, પરંતુ રાગથી ભિન્ન એવો જ્ઞાનભાવ પણ તેમને કાયમ વર્તે છે.

આમ, સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને પર્યાયમાં કંઈક અશુદ્ધિ હોય છે, પરંતુ સમ્યગ્દષ્ટિનો જ્ઞાનભાવ તે અશુદ્ધિથી જુદો જ રહ્યો હોય છે. જ્ઞાન અને રાગનું એક્ત્વ હોતું નથી. રાગ વખતે પણ રાગ સાથે એકતા થતી નથી. રાગ સાથે તેઓ એકરૂપ થતા નથી. તેમની ભેદજ્ઞાનધારા રાગને અડતી નથી. આવું ભેદજ્ઞાન થયું હોવાથી જે રાગ છૂટો પડ્યો છે તે હવે બહુ સમય સુધી સાથે રહી શકતો નથી. તે રાગ ક્ષણવર્તી પર્યાયમાંથી પણ ચાલ્યો જ જાય છે. જ્ઞાનભાવે પરિણમતા સમ્યગ્દષ્ટિ ધર્માત્મા પોતાના પુરુષાર્થ વડે રાગધારાને તોડતા અને જ્ઞાનધારાને વધારતા ચાલે છે અને અંતે તેમની રાગધારા નષ્ટ થઈ જાય છે અને એકલી જ્ઞાનધારા રહી જાય છે.

રાગ વખતે પણ જ્ઞાનીની જ્ઞાનધારા તો એવી ને એવી જ વર્તે છે અને તેથી જ તે વખતે પણ મોક્ષ સાધવાનું તેમનું કાર્ય ચાલુ જ રહે છે. જ્ઞાનધારા કાયમ રહેતી હોવાથી જ્ઞાનીનો રાગનો રસ તૂટી ગયો હોય છે. સામાન્યપણે રસનું સ્વરૂપ એવું છે કે જ્ઞાનમાં જે જ્ઞેય આવે તેમાં જ્ઞાન તદાકાર થાય, અર્થાત્ તેમાં લીન થઈ જાય અને અન્ય જ્ઞેયની ઇચ્છા પણ ન રહે. જ્ઞાનીને જ્ઞાનમાં એકાકાર થઈ જવારૂપ રસ હોય છે અને અજ્ઞાનીને જ્ઞેયમાં એકાકાર થઈ જવારૂપ રસ હોય છે. રાગ અને પરમાં એકાકાર થઈને રસ લેવાનું જ્ઞાનીને ગોઠતું નથી.

જ્ઞાનીનો ઉપયોગ બહાર જાય છે, પણ એ ઉપયોગ રસ વિનાનો હોય છે. સ્વરૂપમાં સ્થિર ન રહી શકાતું હોવાથી ઉપયોગ બહાર આવે તોપણ બધું ફોતરાં જેવું, અર્થાત્ રસકસ વિનાનું લાગે છે. જ્ઞાનાનંદ એ પોતાનું સ્વરૂપ છે, આ રાગાદિ તો ફોતરાં સમાન નિઃસાર છે - એવી જાગૃતિ તેમને કાયમ વર્તે છે. સક્કરકંદ અંદરથી મીઠાશનો પિંડ છે, જે એનો કસ છે અને ઉપરની છાલ તો કસ વિનાની નિઃસાર છે; તેમ જ્ઞાનીને નિજાત્માનાં જ્ઞાન, આનંદ અને ધ્રુવ સ્વભાવમાં જ રસ લાગે છે અને રાગાદિ તેમજ બહારના સંયોગ કસ વિનાનાં, નિઃસાર લાગે છે. તેમને બહાર કસ દેખાતો નથી, માટે તેમાં રસ રહેતો નથી. રસકસ તો માત્ર આત્મામાં છે. જેમ એક મ્યાનમાં બે તલવાર રહી શકે નહીં, તેમ જેને આત્માનો રસ હોય તેને રાગાદિનો રસ ઊડી જાય અને રાગાદિનો રસ હોય તેને આત્માનો રસ હોય તેને રાગાદિનો સસ આત્માનો રસ હોવાથી રાગનો તથા બાહ્ય વિષયોનો રસ છૂટી જાય છે.

આત્માના અપરિમિત આનંદનો સ્વાદ જેમને અનુભવમાં આવ્યો છે એવા જ્ઞાનીને તો તે આનંદદશા છોડીને બહાર કશે પણ ગમતું નથી. ચૈતન્યસુખનો અનુભવ કર્યા પછી વિષયસુખ તુચ્છ લાગે છે. અંતરના ચૈતન્યસુખ પાસે વિષયસુખ આકુળતારૂપ લાગે છે. ચૈતન્યસુખનો સ્વાદ ચાખી લીધો હોવાથી સ્વપ્નમાં પણ પરમાં સુખબુદ્ધિ થતી નથી. આત્માના પ્રેમ સિવાય બીજે કશે પણ પ્રેમ આવતો નથી. આત્માના અચિત્ય મહિમા આગળ જગતની કોઈ વસ્તુનો મહિમા લાગતો નથી. પોતાના અનુભવજ્ઞાન વડે શુદ્ધ સ્વરૂપનો અપરંપાર મહિમા જાણ્યો હોવાથી તેમનું ચિત્ત હવે જગતના કોઈ પદાર્થ

પ્રત્યે લલચાતું નથી. સર્વોત્કૃષ્ટ પુષ્યરૂપ સંયોગો આવે તોપણ તેમાં તેમને આકર્ષણ થતું નથી. પોતાના અચિંત્ય આત્મવૈભવના અનુભવથી તેઓ હવે પરમ તૃપ્તિ અનુભવે છે. સ્વતત્ત્વનું અદ્ભુતપશું અન્ય કોઈ પદાર્થની અપેક્ષા રાખતું નહીં હોવાથી તેઓ પોતે પોતામાં તૃપ્તપશે વર્તે છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

'જેને બોધબીજની ઉત્પત્તિ હોય છે, તેને સ્વરૂપસુખથી કરીને પરિતૃપ્તપણું વર્તે છે, અને વિષય પ્રત્યે અપ્રયત્ન દશા વર્તે છે.

જો જીવને પરિતૃપ્તપણું વર્ત્યા કરતું ન હોય તો અખંડ એવો આત્મબોધ તેને સમજવો નહીં.^{'૧}

જ્ઞાનીએ પોતાનો સ્વભાવ જાણ્યો છે. આત્માનો સ્વભાવ સંપૂર્શ સ્વતંત્ર, પોતાથી જ પોતામાં પરિપૂર્લ સુખરૂપ છે, તેને કોઈ પણ સંયોગોની અપેક્ષા નથી એમ જ્ઞાની જાણતા હોવાથી, તેઓ કદી પણ પોતાના સુખ માટે પરાશ્રયની જરૂર માનતા નથી. અજ્ઞાની પોતે પોતાના સ્વભાવને જાણતો ન હોવાથી ઊંધી માન્યતા કરીને પરની ગુલામી સ્વીકારે છે, પરંતુ જ્ઞાની સ્વભાવના જોરે પરાશ્રયરૂપ ગુલામીના બંધનને સર્વથા છેદીને, સંપૂર્ણ સ્વતંત્ર દશામાં બિરાજે છે. સ્વતત્ત્વનું બળ જ એવું હોય છે કે બીજી બધી બાબતોમાં તેમને ઉદાસીનતા જ વર્તે છે, તેઓ ઉદાસીન થઈ નિશ્વલ વૃત્તિને ધારણ કરે છે. તેઓ વિષયોની પ્રવૃત્તિમાં પ્રવર્તે છે ત્યારે પણ વિષયાકાંક્ષાથી નથી પ્રવર્તતા, પરંતુ પૂર્વકર્મના ઉદયાનુસાર પ્રવર્તે છે.

જ્ઞાનીને તો આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિર રહેવામાં જ રસ હોય છે, પરંતુ પૂર્વબદ્ધ કર્મના ઉદયના યોગમાં તેમને ઉપાધિના પ્રસંગો આવી પડે છે. જો કે ઉદયાધીનપણે વર્તતાં પણ તેમને આત્મપ્રતીતિ તો વર્તે જ છે. સંસારકાર્યોમાં પણ તેમને પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપની પ્રતીતિ તેમજ જ્ઞાન વર્તે છે. તેઓ ગૃહસ્થપણામાં રહ્યા હોય અથવા ગમે તેવા ઉપાધિપ્રસંગમાં પ્રવર્તતા હોય, તોપણ તેમનાં શ્રદ્ધા-જ્ઞાન ઘેરાઈ જતાં નથી. તેઓ પૂર્વબદ્ધ કર્મના ઉદયરૂપી મોજાંથી આઘાપાછા થતા જણાય, પણ પોતાના લંગર નાખેલા સ્થાનથી તેઓ જરા પણ હટતા નથી, અર્થાત્ સ્વરૂપલક્ષ ચૂકતા નથી.

તેમને ઉદયપ્રસંગોમાં કશે પણ ગમતું નથી, ઉદયભાવમાં બળ કે ઉત્સાહ આવતો નથી. તેમને ઉદયકાર્યો બોજારૂપ લાગે છે, પ્રવૃત્તિ કરવી પડે તેમાં ત્રાસ તથા થાક લાગે છે અને તેથી ઉદયજનિત પરિણામનું બળ પણ ઘટતું જાય છે. તેમની પ્રવૃત્તિ તપેલા લોખંડ ઉપર પગ મૂકવા જેવી હોય છે. જેમ તપેલા લોખંડ ઉપર પગ મૂકતાં તરત જ આંચકો અનુભવાય છે, પગ ત્યાં બહુ સમય સુધી ટકી શકતો નથી, તરત જ ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૩૨૬ (પત્રાંક-૩૬૦)

પગ પાછો ખેંચી લેવાય છે; તેમ પૂર્વકર્મના નિમિત્તે સંસારપ્રવૃત્તિ કરવી પડે તો તેઓ એકદમ આંચકો અનુભવે છે, તેમાં લાંબો વખત સ્થિતિ કરતા નથી, ત્યાંથી તરત પાછા વળી જાય છે. જે પ્રવૃત્તિ કરવી પડે તે પણ તેઓ અત્યંત નીરસપણે - અંતરંગ ખેદ સહિત કરે છે. તે તેઓ આત્મજ્ઞાનથી ભિન્ન કોઈ કાર્યને લાંબા સમય સુધી પોતાની બુદ્ધિમાં ધારણ કરતા નથી. જો પ્રયોજનવશાત્ વચન-કાયાથી કંઈ પણ કરવાનો વિકલ્પ કરે તોપણ તે અનાસક્ત થઈને કરે છે. ?

અજ્ઞાનીની મિથ્યા અભિપ્રાયપૂર્વકની ક્રિયા-વર્તના હોય છે, જ્યારે જ્ઞાનીની મિથ્યા અભિપ્રાયથી રહિત, કેવળ ઉદયાધીન ક્રિયા-વર્તના હોય છે. પ્રથમ પ્રકારમાં સાંસારિક ક્રિયાને સારી માનીને કાર્ય કરવામાં આવે છે, જ્યારે બીજા પ્રકારમાં આત્મગ્લાનિ સહિત કાર્ય કરવામાં આવે છે. જ્ઞાની ગૃહસ્થદશામાં હોય ત્યારે ઇચ્છા ન હોવા છતાં કર્મોદય-વશ જે ક્રિયા કરવી પડે છે, તે વીતરાગશ્રદ્ધાનપૂર્વક કરે છે અને તે માટે નિંદાના ભાવ હોય છે. નિરુપાય પ્રસંગમાં તેઓ કંપતા ચિત્તે, પશ્ચાત્તાપપૂર્વક, ન છૂટકે પ્રવર્તે છે. તેઓ અંતરમાં તો સર્વ સાંસારિક પ્રસંગોથી નિવર્તવાની જ ભાવના રાખે છે અને જે કાર્ય કરવું પડે તે ઉપલક રીતે કરે છે, તન્મય થઈને નથી કરતા. શ્રીમદ્દ કહે છે –

'સમ્ચગ્દેષ્ટિ પુરુષો, કર્યા વિના ચાલે નહીં એવા ઉદયને લીધે લોકવ્યવહાર નિર્દોષપણે લજ્જાયમાનપણે કરે છે. પ્રવૃત્તિ કરવી જોઇએ તેથી શુભાશુભ જેમ બનવાનું હશે તેમ બનશે એવી દેઢ માન્યતાની સાથે ઉપલક પ્રવૃત્તિ કરે છે.'³

સંસારપ્રવૃત્તિ કરતાં કરતાં પણ જ્ઞાનીને અપૂર્વ જાગૃતિ રહે છે. પોતાના સ્વરૂપ પ્રત્યે જાગૃત રહી તેઓ ઉદયથી ઉપયોગને છૂટો પાડે છે. તેઓ મન-વચન-કાયાની પ્રવૃત્તિઓમાં ઉપયોગનું તન્મયપણે જોડાણ નથી કરતા. તેમનો ઉપયોગ આત્મમય રહે છે. તેઓ જાગૃત હોવાથી નિરંતર ઉપયોગપરિણામી રહીને પ્રવૃત્તિ કરે છે અને અબંધ-પરિણામે ઉદયને ભોગવી લે છે. તેઓ કોઈ પણ પ્રસંગમાં સ્વરૂપજાગૃતિ નથી ચૂકતા. ભોજન કરતાં, દુકાન ઉપર બેસતાં 'હું માત્ર દ્રષ્ટા છું' એવી જાગૃતિ રાખે છે. પોતાને જે સંગ-પ્રસંગ પ્રાપ્ત થાય તેની સાથે તેઓ એકત્વ નથી કરી બેસતા, તેમાં ખોવાઈ

'अतोऽन्यदुत्तराखस्मात पाषे कर्मागसोऽपि हि ।

तप्तलोहमदन्यासतुल्या वृत्तिः क्वचिद्यदि।।'

ર- જુઓ : આચાર્યશ્રી પૂજ્યપાદસ્વામીકૃત, 'સમાધિતંત્ર', શ્લોક ૫૦

'आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम् ।

कुर्यादर्थवशात्किंचिद् वाक्कायाभ्यामतत्वरः ।।'

૩- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૭૮૫ (વ્યાખ્યાનસાર-૨, ૩૦-૧૫)

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજીકૃત, 'યોગદષ્ટિ સમુચ્ચય', શ્લોક ૭૦

નથી જતા. પતિ હોવું, પત્ની હોવું, પિતા હોવું, દુકાનદાર હોવું, ગ્રાહક હોવું - કર્મના ઉદયે જે ફરજ આવી પડે તેને સારી રીતે સાક્ષીભાવે નિભાવે છે. તેઓ સંસારની ફરજોનું પાલન કરવા છતાં તેમાં લેપાતા નથી. વિષય-કષાયની પ્રવૃત્તિમાં હોવા છતાં તેઓ જળકમળવત્ રહે છે.^૧

જેમણે સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કર્યું છે તેઓ આ રીતે સાંસારિક પ્રવૃત્તિમાં પણ અનાસક્ત રહે છે. તેઓ બાહ્યથી સંસારને ભજતા દેખાય તોપણ તે પ્રવૃત્તિમાં આત્મ-ભાવ, આદર, આસક્તિનો અભાવ હોય છે. તેમની દષ્ટિ તો નિજાત્મા ઉપર જ રહે છે. મત્સ્યવેધ વખતે અર્જુનની આંખ નીચે પાણીમાં સ્થિર થઈ હતી. માત્ર વિચક્ષણ જન જ પકડી શકે કે અર્જુનની આંખ નીચે મંડાઈ હોવા છતાં એની દષ્ટિ તો માથા ઉપર ફરી રહેલ માછલી ઉપર જ ચોંટેલી હતી. તેવી જ રીતે જ્ઞાની સાંસારિક ક્રિયાઓ કરતા દેખાય, પરંતુ તેમની દષ્ટિ તો શુદ્ધાત્મારૂપી માછલી ઉપર જ સ્થિર હોય છે. સંસારમાં રહેવા છતાં તેમની દષ્ટિ શુદ્ધાત્મામાં જ સ્થિર થઈ હોય છે.

સ્વરૂપના ભાનમાં રહેતા હોવાથી સાંસારિક પ્રસંગમાં તેમને કેવળ અજાગૃતતાને પામવા યોગ્ય હર્ષ-શોક થતા નથી, પણ જ્ઞાનના તારતમ્યમાં ન્યૂનપણું હોય તો કંઈક હર્ષ-શોક થાય છે. ઉદય અનુસાર તેવા ભાવ થવા છતાં ભેદજ્ઞાનની પ્રક્રિયાના કારણે તે ઉદયભાવ ક્ષીણ કરવા પ્રત્યે જ્ઞાનીનાં પરિણામ વર્તે છે. શુદ્ધાત્મા પ્રત્યે જાગૃત હોવાથી તેઓ ઔદયિક ભાવને નિષ્ફળ બનાવે છે અને નિજભાવમાં સ્થિત થવાનો પુરુષાર્થ કરે છે. શ્રીમદ્ લખે છે —

'વાયુફેર હોવાથી વહાણનું બીજી તરફ ખેંચાવું થાય છે, તથાપિ વહાણ ચલાવનાર જેમ પહોંચવા યોગ્ય માર્ગ ભણી તે વહાણને રાખવાના પ્રયત્નમાં જ વર્તે છે, તેમ જ્ઞાનીપુરુષ મન, વચનાદિ યોગને નિજભાવમાં સ્થિતિ થવા ભણી જ પ્રવર્તાવે છે; તથાપિ ઉદયવાયુયોગે યર્લ્કિંચિત્ દશાફેર થાય છે, તોપણ પરિણામ, પ્રયત્ન સ્વધર્મને વિષે છે.'²

આ પ્રકારે પૂર્વકર્મોદયના કારણે સંસારની અનેક પ્રવૃત્તિઓ કરતાં કરતાં પણ જ્ઞાનીપુરુષની વૃત્તિ તો નિજભાવમાં જ રહે છે. જેમ પતિવ્રતા સ્ત્રીનું મન ઘર સંબંધી કામ કરતાં કરતાં પણ પતિને વિષે જ લીનપણે, પ્રેમપણે, સ્મરણપણે, ધ્યાનપણે, ઇચ્છાપણે વર્તે છે; તેમ ઉદયકાર્યો વખતે પણ સમ્યગ્દષ્ટિની વૃત્તિ તો અનુભવમાં આવેલ

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'ભાવપાહુડ', ગાથા ૧૫૪

^{&#}x27;जह सिललेण ण लिप्पइ कमिलिणिपत्तं सहावपयडीए । तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो ।।'

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્કી આવૃત્તિ, પૃ.૪૬૭ (પત્રાંક-૬૦૩)

અચિંત્ય નિજ ચૈતન્યતત્ત્વમાં જ હોય છે. તેઓ પોતાના જ્ઞાયકસ્વભાવને જ સ્વતત્ત્વપણે અનુભવતાં તેનો વિસ્તાર કરે છે અને તેને પર્યાયમાં અખંડપણે પ્રસિદ્ધ કરવા પ્રયત્ન-શીલ રહે છે.

જીવમાંથી અજ્ઞાન ટળી જતાં જીવનમાં આવું પરિવર્તન આવે છે. ઉપરથી જોતાં જીવનમાં કોઈ ફરક ન લાગે તોપણ અંદરથી તે સમગ્રપણે બદલાઈ જાય છે. એક રીતે જોઈએ તો બધું તે જ હોય છે જે પહેલાં હતું, પરંતુ બીજા અર્થમાં પૂર્વ અવસ્થામાંનું કશું જ રહેતું નથી. દોરીને જમીન ઉપર ગોઠવીને બાળવામાં આવતાં દોરી તો બળી જાય છે, પણ તેની આકૃતિ પહેલાં જેવી જ રહે છે. આકૃતિની દષ્ટિએ કોઈ પરિવર્તન આવ્યું ન હોવા છતાં દોરીપણું તો સમુળગું નાશ પામ્યું હોય છે. જે દોરી પહેલાં બાંધવાના કામમાં આવતી હતી, તે બળી ગયા પછી, દોરીની આકૃતિએ રહેલી રાખ બાંધવાના કામમાં આવતી નથી. જ્ઞાનીપુરુષનું જીવન આવું હોય છે. જ્ઞાનાગ્નિમાં જ્યારે અજ્ઞાન બળી જાય છે ત્યારે માત્ર સંસારની આકૃતિ જ બાકી રહે છે. તેમની સંસાર-પ્રવૃત્તિ બંધનનું કારણ થઈ શક્તી નથી. બાહ્યમાં તેમની પ્રવૃત્તિ ઉદયાધીન હોય છે, પણ દર્શનમોહરૂપી દોરી બળી ગઈ હોવાથી ભાવની અપેક્ષાએ સઘળું બદલાઈ ચૂક્યું છે. એક સાધારણ માણસની જેમ જ તેઓ જીવે છે. બહારથી કોઈ વિશેષતા તેમણે ધારણ કરી નથી હોતી, પણ તેમના જેવું અસાધારણ જીવન શોધ્યું નથી મળતું. તેઓ ખાય છે, પીએ છે, હસે છે, ચાલે છે; પણ ખરેખર તો ખાતા નથી, પીતા નથી, હસતા નથી, ચાલતા નથી. આ કશામાં તેઓ જાણે છે જ નહીં. તેમની વૃત્તિ નિજભાવમાં જ વહે છે. ગમે તે અવસ્થામાં તેમનું સમ્યગ્દર્શન અખંડ રહે છે.

સમ્યક્ત્વ ભાવ જીવંત હોવાથી જ્ઞાનીપુરુષનું મોક્ષમાર્ગે થતું પ્રયાણ, ગમે તેવા વિષમ કર્મોદયમાં પણ અટકતું નથી. શુદ્ધ આત્મતત્ત્વમાં એકત્વબુદ્ધિરૂપ નિર્વિકલ્પ શ્રદ્ધા વર્તે છે અને ચૈતન્યના વેદનનું પરમ સુખ પણ આત્માની અખંડ આરાધનામાં વર્તી રહ્યું હોય છે. અનંત ગુણોના નિર્મળ અંશથી ભરેલી અનુભૂતિ ઉપયોગરૂપે કે લબ્ધિરૂપે નિરંતર વર્તે છે. શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે –

'.... સ્વરૂપનું ભાન થઇ ગયું તેને, તેનું જ્ઞાન અંદરમાં લબ્ધરૂપે ટકી રહે છે. જેવું પૂર્ણ સ્વરૂપ માન્યું છે, જાણ્યું છે, અને જે આનંદનું ભાન થયું છે, તેનું લક્ષ અને પ્રતીત અખંડ રહે છે. પોતાનું વલણ, ઉત્સાહ, રુચિ તે શુદ્ધ આત્માના અખંડ જ્ઞાયક-સ્વભાવમાં અવિચ્છિષ્ન ધારાથી વહે છે. ત્યાં પરમાર્થે સમક્તિ છે. જે વખતે આત્માનો આનંદ પ્રત્યક્ષ નથી તે વખતે, ભાવશ્રુતજ્ઞાનના ઉદ્યાડમાં લબ્ધરૂપે એટલે પ્રાપ્તિપણે છે, તથા સ્વાનુભવ વખતે આનંદ પ્રત્યક્ષ પણ છે.'

૧- શ્રી કાનજીસ્વામી, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચનો', આઠમી આવૃત્તિ, પૃ.૩૬૩

આત્માનુભૂતિની સાથે જ નિશ્ચય (પરમાર્થ) સમકિત પ્રગટે છે. નિર્વિકલ્પ દશાનો સ્પર્શ કર્યા વિના નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન હોતું નથી. પરંતુ આ નિર્વિકલ્પ દશા, અર્થાત્ ઉપયોગાત્મક આત્માનુભૂતિ સતત રહે જ એવો નિયમ નથી. સમ્યગ્દર્શન તો રહે જ, પણ ત્યારે ઉપયોગાત્મક સ્વાનુભૂતિ ન પણ હોય, એટલે કે પુનઃ સવિકલ્પદશા પ્રવર્તે; કારણ કે ઉપયોગાત્મક આત્માનુભૂતિ છદ્મસ્થ અવસ્થામાં અખંડ હોતી નથી, એટલે કે જે ઉપયોગ આત્મામાં સ્થિર થયો હતો તે ફરીથી અન્યત્ર ન જાય એવો કોઈ નિયમ નથી. માત્ર સર્વજ્ઞ ભગવંતોની ઉપયોગાત્મક આત્માનુભૂતિ અખંડ છે. છદ્મસ્થ અવસ્થામાં દરેક પળે ઉપયોગાત્મક સ્વાનુભૂતિ ન હોય, પરંતુ જે પરમાર્થ સમકિત પ્રકાશ્યું હતું તેનું સાતત્ય જળવાઈ રહે છે. જ્યાં સુધી સમ્યગ્દર્શન પ્રકાશી રહ્યું છે ત્યાં સુધી લબ્ધ્યાત્મક સ્વાનુભૂતિ અવશ્ય રહે છે. જ્યાં સુધી સમ્યગ્દર્શન પ્રકાશી રહ્યું છે ત્યાં સુધી લબ્ધ્યાત્મક સ્વાનુભૂતિ અવશ્ય રહે છે. જ્યાં સુધી સમ્યગ્દર્શન પ્રકાશી રહ્યું છે ત્યાં સુધી લબ્ધ્યાત્મક સ્વાનુભૂતિ અવશ્ય રહે છે. જ્યાં સુધી સમ્યગ્દર્શન પ્રકાશી અને ઉપયોગાત્મક સ્વાનુભૂતિ ક્વચિત્ હોય અને ક્વચિત્ ન હોય, પણ લબ્ધ્યાત્મક આત્માનુભૂતિ (લક્ષ અને પ્રતીતિરૂપે) નિરંતર વર્ત્યા કરે છે.

જ્ઞાનીપુરૂષની આવી અદ્ભુત દશા સહિતની જ બધી રહેણીકરણી હોય છે. પરથી નિરાળા શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપ એવા પોતાના આત્માનો અનુભવ જેમને થયો છે, તે જ્ઞાનીપુરૂષ પોતાના શુદ્ધ ચિદ્ધપમાં મગ્ન રહે છે. તેના જ અનુભવમાં એકાગ્ર હોય છે. પૂર્વકર્મનો ઉદય વેદતા હોવાથી અનુભવમાં સ્થિર નથી રહી શકતા, પરંતુ લક્ષ તો નિરંતર અનુભવનો જ રહે છે. આત્મામાં ક્યારે લીન થાઉં એવી જ ભાવના ઘૂંટાયા કરે છે. પૂર્વકર્મનું બળ વિશેષ હોય તો ત્યાં અનુભવ કે લક્ષ ન પણ હોય, છતાં તે શુદ્ધ ચિદ્ધપની અંતરંગ પ્રતીતિ તેમને નિરંતર વર્તે જ છે. લક્ષ તેમજ પ્રતીતિની અવસ્થામાં, કારણમાં કાર્યનો આરોપ ગણીને તેમને ત્યાં પણ સ્વરૂપમગ્ન કહ્યા છે. આત્માની ઓળખાણ સહિત આત્માનો ઉપયોગ ઘાત ન પામે તેવી સ્વરૂપમગ્નતામાં જ્ઞાનીપુરૂષ નિરંતર ઝૂલતા હોય છે. જો કે પૂર્વકર્મનું બળ વિશેષ હોય ત્યારે તેઓ આત્મસ્મરણમાં પ્રમાદી જણાય, છતાં તેઓ ત્યારે પણ સ્વરૂપમગ્ન જ છે. ર

સ્વરૂપમગ્નતા જેવી બીજી કોઈ મગ્નતા નથી. સ્વરૂપમગ્નતાના કારણે જીવનમાં અદ્ભુત મસ્તી આવે છે. આ મસ્તી અત્યંત અલગ પ્રકારની હોય છે. તે મસ્તી શાંતિ, તૃપ્તિ અને આહ્લાદનો અપૂર્વ આસ્વાદ કરાવે છે. બધાની વચ્ચે છતાં બીજી દુનિયામાં

૧- જુઓ : પંડિત શ્રી રાજમલજીકૃત, 'પંચાધ્યાયી', ઉત્તરાર્ધ, શ્લોક ૪૦૭

'हेतुस्तत्रापि सम्यक्त्वोत्पत्तिकालेस्त्यवश्यतः । .

तज्ज्ञानावरणस्योच्चैरस्त्यवस्थान्तरं स्वतः ।।'

૨- જુઓ : ભટ્ટારક શ્રી જ્ઞાનભૂષણજીરચિત, 'તત્ત્વજ્ઞાનતરંગિણી', અધ્યાય ૨, શ્લોક ૨૪

'मग्ना ये शुद्धचिद्रूपे ज्ञानिनो ज्ञानिनोऽपि ये ।

प्रमादिनः स्मृतौ तस्य तेऽपि मग्ना विधेर्वशात् ।।'

હોય એવી જ્ઞાનીની મસ્તી હોય છે. સ્વરૂપમગ્નતાનો રસ કદી સુકાતો નથી. તે દિન-પ્રતિદિન વધતો જાય છે. તે રસધારા શાશ્વત છે. જેઓ તેમાં ખોવાઈ ગયા, જેઓ તેનાથી છલકાઈ ગયા, જેમના રોમ રોમમાં સ્વરૂપમગ્નતા સમાઈ ગઈ, તેઓ જ સુખી છે, સફળ છે, જ્ઞાની છે. લક્ષ અને પ્રતીતિરૂપ સ્વરૂપમગ્નતામાં ચારિત્રાવરણરૂપ પૂર્વકર્મોદય ઉત્તરોત્તર મંદ થતાં, ક્ષીણ થતાં, ફરીથી આત્માનુભવરૂપ આત્મમગ્નતા પ્રગટે છે અને આ પ્રકારનો અભ્યાસ વારંવાર થતાં, ચારિત્રાવરણ કર્મનો પૂર્ણ ક્ષય થઈ વીતરાગદશા પ્રગટે છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'વર્તે નિજસ્વભાવનો, વિશ વસા વિશ્વાસ; જેથી તત્ત્વ પદાર્થનો, વિપર્યાસનો નાશ. થતાં નિજ શુદ્ધ આત્મનો, અનુભવ લક્ષ પ્રતીત; અંશે અવિનાશીપશું, હોય સમાધિ સહિત. આત્મભાવની સ્વસ્થતા, હોય જેથી મન સ્થિર; વૃત્તિ વઢે નિજભાવમાં, અહંભાવ ન શરીર. લય લાગી અવિચ્છિનપશે, અખંડ શિવપદ સ્થિત; નિર્વિકલ્પ પરમાર્થમાં, પરમાર્થે સમક્તિ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', યૃ.૨૪૨ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૪૧-૪૪૪)

ब्दर्भ भाग नामश्रेत क्या, राष्ट्रे भिष्टमाना, इर्म भाम न्यादिनमो, स्वत्रात्राष्ट्रकारी, ભૂમિકા ગાથા ૧૧૧માં શ્રીગુરુએ કહ્યું કે જ્યાં આત્મસ્વભાવનો અનુભવ, લક્ષ અને પ્રતીતિ વર્તે છે તથા જ્યાં વૃત્તિ આત્મસ્વભાવમાં વહે છે ત્યાં પરમાર્થ સમક્તિ છે.

આમ, શ્રીગુરુએ ગાથા ૧૦૯ થી ૧૧૧ સુધીમાં વ્યવહાર સમકિત અને નિશ્ચય સમકિતનાં સ્વરૂપનું વર્ણન કર્યું અને સાથે સાથે સમ્યગ્દિષ્ટિ જીવની અંતરંગ દશા કેવી હોય તે પણ દર્શાવ્યું. પરમાર્થ સમકિતનું જે વીતરાગદશારૂપ ફળ છે તે કેવી રીતે પ્રાપ્ત થાય તે સમજાવતાં શ્રીગુરુ હવે આ ગાથામાં કહે છે –

ંવર્ધમાન સમકિત થઈ, ટાળે મિથ્થાભાસ; ગાથા ઉદય થાય ચારિત્રનો, વીતરાગપદ વાસ.' (૧૧૨)

તે સમકિત વધતી જતી ધારાથી હાસ્ય શોકાદિથી જે કંઈ આત્માને વિષે મિથ્યાભાસ ભાસ્યા છે તેને ટાળે, અને સ્વભાવ સમાધિરૂપ ચારિત્રનો ઉદય થાય, જેથી સર્વ રાગદ્વેષના ક્ષયરૂપ વીતરાગપદમાં સ્થિતિ થાય. (૧૧૨)

ભાવાર્થ જ ઠરવું છે' એવો દઢ નિશ્ચય કરનાર જિજ્ઞાસુ જીવ યથાર્થ પુરુષાર્થ કરી સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરે છે. સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થતાં તે જિજ્ઞાસુ જીવ યથાર્થ પુરુષાર્થ કરી સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરે છે. સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થતાં તે જિજ્ઞાસુ જીવને પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપની અનુભવાત્મક પ્રતીતિ થાય છે, શરીર તથા રાગમાં રહેલી એકત્વબુદ્ધિ છૂટે છે અને પોતાના સ્વભાવનો અનુભવ થાય છે. 'આત્મા જ્ઞાનમાત્ર છે, પરનું કંઈ કરવાનો આત્માનો સ્વભાવ નથી, રાગ-દ્રેષ કરવાનો પણ આત્માનો સ્વભાવ નથી' – એવી આત્મપ્રતીતિ તેમને નિરંતર રહે છે. રાગ વખતે પણ તેમના સમ્યક્ત્વાદિ ભાવ જીવંત રહે છે. સમક્તિની ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધિ થતાં, અર્થાત્ આત્માનુભવની વધતી જતી ધારાથી ચારિત્રના ઘાતક એવા અપ્રત્યાખ્યાની તથા પ્રત્યાખ્યાની કષાયોરૂપ મિથ્યાભાસ ટળે છે અને સ્વભાવસમાધિરૂપ ચારિત્રનો ઉદય થાય છે. જેઓ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાનપૂર્વક, શુદ્ધોપયોગના સામર્થ્યથી ચારિત્રદશા પ્રગટ કરીને મુનિ થયા છે, તેમનો આનંદ અકથ્ય છે, વચનાતીત છે. જેઓ અવિરતિ સમ્યગ્દષ્ટિ છે, તેમણે તે આનંદ ચાખ્યો છે, પરંતુ સર્વવિરતિધર મુનિવરો જેટલો પ્રચુર આનંદ તેમને નથી હોતો. ચોથા ગુણસ્થાનકે નિર્વિકલ્પ શુદ્ધોપયોગરૂપ ધ્યાનદશા લાંબા કાળે આવે છે અને તે પણ પાછી વિશેષ ટક્તી નથી, પાંચમા ગુણસ્થાનકે તે થોડા થોડા કાળે આવે છે અને તે ચોથા ગુણસ્થાનક

કરતાં વિશેષ ટકે છે, પણ મુનિવરો તો વારંવાર, અંતર્મુહૂર્તમાં જ શુદ્ધોપયોગમાં ચાલ્યા જાય છે અને તેમને સ્થિરતા પણ વિશેષ રહે છે. તેઓ આનંદમાં અતિશય એકાગ્રતા વડે સ્વરૂપમાં જ સ્થિર રહે છે. શુદ્ધોપયોગ વડે સ્વરૂપના ધ્યાનમાં લીન એવા મુનિરાજ જ્યારે શુક્લધ્યાન વડે શુદ્ધતાની શ્રેણીએ ચડે છે ત્યારે તેમના આનંદના વેદનનું પ્રમાણ સમયે સમયે વધતું જાય છે અને અંતર્મુહૂર્તમાં તો તેઓ મોહનો ક્ષય કરીને વીતરાગ થાય છે અને કેવળજ્ઞાનના દરવાજા ખોલી નાંખે છે.

અામ, સમ્યગ્દેષ્ટિ જીવ જ્ઞાનમાં સતત એકત્વનો વીતરાગી પુરુષાર્થ કરતા હોવાથી શુભાશુભ ભાવોનો વિશેષ ને વિશેષ અભાવ થતાં તેમનો વીતરાગભાવ વર્ધમાન થાય છે અને એક સમય એવો આવે છે કે જ્યારે સમસ્ત રાગ-દેષનો અભાવ થતાં તેમનો આત્મા પૂર્ણ વીતરાગ-પરિણતિરૂપ પરિણમી જાય છે. ચિદાનંદસ્વરૂપ આત્માનું ઉપ્ર પુરુષાર્થથી અવલંબન લેતાં ઉપયોગ આત્મામાં સંપૂર્ણપણે એકાકાર થઈ જાય છે અને તેઓ પરમજાગૃતસ્વભાવને ભજે છે. પછી ઉપયોગ કરી બહાર આવતો નથી અને સદાકાળ માટે આત્મામાં જ સ્થિર થઈ જાય છે. આ પ્રકારે પરમાર્થસમક્તિસંપન્ન એવા જ્ઞાનીના સમક્તિની વધતી અખંડ ધારાથી હર્ષ-શોક આદિ મિથ્યાભાસ આત્મામાંથી દૂર થાય છે, સ્વભાવરમણતારૂપ ચારિત્રનું પ્રગટવું થાય છે અને ક્રમે ક્રમે આગળ વધીને તે જીવ વીતરાગદશાને પ્રાપ્ત કરે છે.

વિશેષાર્થી જુવ જ્યારે અંતર્મુખ થઈ પરિણમે છે ત્યારે મોક્ષમાર્ગ પ્રગટ થાય છે. બહિર્મુખ પરિણામ ત્યાગીને જીવ જ્યારે અંતર્મુખ થાય છે ત્યારે ધર્મ પ્રગટ થાય છે. અંતર્મુખતા બાહ્ય ક્રિયાઓ સાથે નહીં પણ અંતરવલણ સાથે સંકળાયેલ છે. લક્ષ્યપૂર્વક કરવામાં આવતો બાહ્ય વ્યવહાર લાભકારી થાય છે, પરંતુ સાચી ક્રાંતિ તો ત્યારે જ થઈ ગણાય કે જ્યારે અંતરમાં કંઇક પરિવર્તન સર્જાયું હોય, અંતર પલટાયું હોય. જ્યારે અંદરથી આવી ક્રાંતિ ઉત્પન્ન થાય છે, અર્થાત્ પરિણામ અંતર્મુખ થાય છે ત્યારે વાસ્તવિક ધર્મારાધના થઈ ગણાય છે. સાધક પોતાની બહિર્મુખતાને ઓળખીને, તેને નિર્મૂળ કરીને અંતર્મુખ થવા માંગે છે. બહારના પદાર્થો સાથેનું અનુસંધાન તોડી તે પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપનું અનુસંધાન કરવા ઇચ્છે છે.

જીવ અનાદિ કાળથી પોતાના ઉપયોગને બહાર જ ભમાવતો રહ્યો છે. બહિર્મુખ જીવની ચેતના બહારમાં જ ભમે છે. સંયોગોમાં ફેરફાર કરવાથી પરમાંથી સુખ પ્રાપ્ત થશે એવી વૃત્તિ-પ્રવૃત્તિમાં જ તે રાચે છે. ધર્મની રુચિ જાગતાં તે શુભ નિમિત્તોની સન્મુખ થાય છે. સદ્ગુરુના ઉપદેશથી ધર્મનું સ્વરૂપ સમજાતાં તે દેવ-ગુરુ-ધર્મના આશ્રયે પોતાના અચિત્ય સામર્થ્યવંત આત્મતત્ત્વનો નિર્ણય કરે છે. આત્માની યથાર્થ સમજ આવતાં સ્વરૂપનો મહિમા અત્યંત વધે છે અને ત્યારે અંતર્મુખતા સહજ બને છે. તેનાં

પરિણામ સ્વરૂપને અવલંબીને - ત્રિકાળી દ્રવ્યના આશ્રયપૂર્વક અંતર્મુખ થાય છે અને તે જીવ સમ્યક્ત્વને યોગ્ય બને છે.

અંતર્મુખી જીવને સ્વાનુભવ સિવાય કોઈ પણ ઇચ્છા નથી હોતી. પંચેન્દ્રિયના વિષયોમાં આસક્તિ અને રસનાં તેનાં પરિણામ ફિક્કાં પડી ગયાં હોય છે. 'અણુમાત્ર પણ જગતનો કોઈ પદાર્થ મારો નથી. જગતના પદાર્થોનું જેમ બનવાનું હોય તેમ બનો, મારે તો મારા આત્મહિતનો જ પ્રયત્ન કરવો છે. મારે એક શુદ્ધાત્માનુભૂતિ જ કરવી છે' - આવી દઢ વૃત્તિ તેને પ્રગટી હોય છે. જે જીવને સ્વરૂપની પ્રાપ્તિની અપૂર્વ ભાવના અંતરના ઊંડાણમાંથી જાગી હોય છે, તે જીવ સંવેગપૂર્વક પોતાના ધ્યેય પ્રત્યે પૂરી લગનીથી લાગેલો રહે છે. તેની આ લગની જ કાર્યને સિદ્ધ કરી આપે છે. તેની પર્યાયદેષ્ટિ છૂટતી જાય છે અને દ્રવ્યદેષ્ટિ ઘૂંટાતી જાય છે. પર્યાય દ્રવ્ય તરફ ઝૂકવા લાગે છે, દ્રવ્યને ભેટવા આતુર બને છે. પોતાને નિહાળવાનો રસ વધે છે અને અનુક્રમે સ્વમાં લીનતા સધાતાં સ્વાનુભૂતિ થાય છે.

સ્વાનુભવ થતાં જીવ પોતાના અખૂટ વૈભવને ભોગવે છે. આત્મા જ્ઞાન, દર્શન, વીર્ય વગેરે અનંત ગુણોનો પિંડ છે. સ્વાનુભૂતિમાં સર્વ ગુણોનું અંશે નિર્મળ પરિણમન થાય છે. સ્વાનુભવમાં તે અનુપમ શાંતિનું વેદન કરે છે. અત્યાર સુધી રાગ-દેષને વેદી રહેલો આત્મા હવે અતીન્દ્રિય આનંદને વેદે છે. જ્ઞાન જ્યારે સ્વને જાણ્યા વિના માત્ર પરને જાણે છે ત્યારે આનંદ ગુણની વિપરીત અવસ્થા થવાથી વ્યાકુળતા વેદાય છે, પરંતુ જ્ઞાન જ્યારે સ્વને એટલે કે પોતાના આત્માને જાણે છે ત્યારે આકુળતાનો અભાવ થઈ અતીન્દ્રિય આનંદનું વેદન થાય છે. તે આનંદ સ્વાધીન, નિરપેક્ષ, બાધારહિત હોય છે. આત્માનો સ્વભાવ આવા ત્રિકાળી, શાશ્વત સુખથી ભરેલો છે, તેમાં દુઃખનો એક અંશ પણ નથી. આત્મા સુખ વડે રચાયેલો છે. તે પૂર્ણ સુખમય છે, તે સ્વયં સુખસ્વરૂપ છે. તેથી આત્માની અનુભૂતિ થતાં જ સુખની અનુભૂતિ થાય છે. અતીન્દ્રિય આનંદનો કંદ, જ્ઞાનાદિ ગુણોનું ગોદામ એવા આત્મામાં તે એવો ઊંડો ઊતરી જાય છે કે ત્યાંથી બહાર નીકળવું ગમતું જ નથી.

સ્વાનુભવ થતાં અદ્ભુત અંતરંગ દશા પ્રગટે છે. સમ્યગ્દર્શન થતાં તે જીવને પાકી ખાતરી થાય છે કે 'હવે હું મોક્ષના માર્ગમાં છું, મારા ભવનો છેડો આવી ગયો છે. સિદ્ધ ભગવાનની નાતમાં હું ભળી ગયો છું.' શુદ્ધ આત્મદ્રવ્યની શ્રદ્ધા થવા છતાં તેમને હજી સાંયોગિક અવસ્થા રહે છે, અર્થાત્ દેહાદિ સંયોગો સમ્યગ્દર્શન થતાં તરત છૂટા પડી જતા નથી. જેમ સગપણ થયા પછી પિયરમાં રહેતી દીકરીને પિતાના ઘર માટે 'આ મારું ઘર છે' એવી ભાવના રહેતી નથી, તેમ જીવને સમકિત થયા પછી દેહાદિ સંયોગો પ્રત્યે મારાપણું રહેતું નથી. તેમને સ્વ-પરની અનુભવપૂર્વકની ઓળખાણ

થઈ હોવાથી, 'પરની આ બધી પર્યાયો તે હું નથી' એમ મનાતાં પર સાથેની એકત્વ-બુદ્ધિનો નાશ થાય છે. 'પરની પર્યાયો મારી નથી' એમ અનુભૂતિપૂર્વક સમજાતાં મમત્વ-બુદ્ધિ જતી રહે છે. 'પરની પર્યાયોનો કર્તા પર સ્વયં છે, હું નથી, હું તો નિમિત્તમાત્ર છું' એવો સ્વાનુભવપૂર્વકનો નિર્ણય થતાં કર્તૃત્વબુદ્ધિનો અંત આવે છે. 'પરની આ પર્યાયોનો હું કેવળ જાણનારો છું, ભોગવવાવાળો નથી. તે પર્યાયો મારાં સુખ-દુઃખનું કારણ નથી, મેં પોતે જ તેમાં સુખ-દુઃખની કલ્પના કરી હતી.' આવી રીતે સ્વાનુભૂતિ-પૂર્વક જણાતાં ભોક્તૃત્વબુદ્ધિનો અભાવ થાય છે. આમ, સમ્યગ્દર્શન થતાં પરપદાર્થો પ્રત્યે સેવેલી એકત્વબુદ્ધિ, મમત્વબુદ્ધિ, કર્તૃત્વબુદ્ધિ, ભોક્તૃત્વબુદ્ધિ આદિ ભ્રાંતિઓ તૂટી જાય છે.

સંયુક્ત કુટુંબમાં રહેતી વ્યક્તિ જ્યારે જુદા થવાનું નક્કી કરે છે, પોતાનું નવું ઘર લેવાઈ જાય છતાં, રહેવા જવાને વાર હોય તો તે જૂના જ ઘરમાં રહે છે, પણ હવે તેને તેમાં પોતાપણાની ભાવના થતી નથી. તેમ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને શરીરમાં હવે પોતાપણું એટલે એકત્વબુદ્ધિ રહેતી નથી. જેમ નવું ઘર પૂર્ણપણે સજાવેલું હોય તો સ્વાભાવિક છે કે જૂના ઘરમાંથી કંઈ લઈ જવાનું મન પણ ન થાય, તેમ સ્વમાં જ સુખ, શાંતિ, સલામતી, શુદ્ધતા, સંપૂર્ણતા આદિ અનુભવાયાં હોવાથી સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને જડ કે જગત પાસે કોઈ અપેક્ષા રહેતી નથી. આત્માનો વૈભવ હવે અનુભવમાં આવી ગયો હોવાથી તે વૈભવ પાસે જગતના બધા વૈભવ તેમને તુચ્છ લાગે છે.

જ્ઞાની સદા પોતામાં તૃપ્ત, પ્રસન્ન અને પ્રશાંત રહે છે. જ્ઞાનના પ્રતાપે હવે તેમનું ચિત્ત ચંદન સમાન શીતળ રહે છે. તેઓ ગૃહસ્થાવાસમાં હોય, પરિવાર સહિત હોય, છતાં તેઓ તેમાં લેપાતા નથી. તેઓ તે બધાંથી અનાસક્ત રહે છે અને તેથી કર્મબંધથી છૂટતા જાય છે. સંસાર તરફનું પરિણમન છૂટીને મોક્ષ તરફનું પરિણમન થાય છે. નિજસ્વભાવ પ્રત્યેનું તેમનું પરિણમન વધતું જાય છે. મોક્ષમાર્ગમાં આનંદ સહિત કેલી કરતાં કરતાં તેઓ આગળ વધે છે. તેમના આત્મામાંથી કર્મો 'જાઉ જાઉ' થઈ રહ્યાં હોય છે અને ક્ષણે ક્ષણે તેમની આત્મદશા વર્ધમાન થતી જાય છે. સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને આત્માની એવી પ્રતીતિ હોય છે કે તેઓ અલ્પ કાળમાં કર્મથી મુક્ત થઈ જાય છે. ' સમ્યગ્દર્શનનો એવો પ્રભાવ છે કે જે જીવ તેને ધારણ કરે તે જીવ ક્રમે ક્રમે શુદ્ધતા વધારીને, ચારિત્રદશા પ્રગટાવીને મુક્ત દશા પામે છે. આચાર્યશ્રી ગુણભદ્રજી લખે છે કે વ્યવહારમાં માલ ખરીદવાનો સોદો કરતી વખતે, અમુક સમયમાં માલ આપવાની

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી યોગીન્દુદેવકૃત, 'પરમાત્મપ્રકાશ', અધિકાર ૧, ગાથા ૭૬

^{&#}x27;अपिं अपु मुणंतु जिउ सम्मादिट्टी हवेइ । सम्माइट्टिउ जीवडउ लहु कम्मइँ मुच्चेइ ।।'

શરત કરી, એ સોદા પેટે વેચનાર વેપારીને પહેલા બાનાની રકમ (ડીપોઝીટ) આપવામાં આવે છે. ત્યારપછી માલની બાકીની રકમ ભરપાઈ કરવાથી, વેચનાર વેપારી નિશ્ચિત કરેલા સમયમાં, નિશ્ચિત કરેલો માલ સુપ્રત કરે છે. એ રીતે જે ભવ્ય જીવ મોક્ષરૂપી માલ મેળવવા ઇચ્છે છે, તે જીવે પહેલાં બાનારૂપી સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરી લેવું જરૂરી હોય છે. સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત થયા પછી વધુમાં વધુ અર્ધપુદ્દગલપરાવર્તન કાળમાં જીવને મોક્ષ સુપ્રત કરવાની શરત છે. આ અર્ધપુદ્દગલપરાવર્તન કાળ દરમ્યાન જીવે મોક્ષરૂપી માલની બાકીની કિંમત, એટલે કે પૂર્ણ સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરી દેખાડવાથી તેને મોક્ષ સુપ્રત કરવામાં આવે છે. 1

સમ્યગ્દિષ્ટિ જીવને દર્શનમોહનો અભાવ હોવાથી તેંમને સત્ય શ્રદ્ધાન, સત્ય જ્ઞાન પ્રગટ હોય છે અને મિથ્યાત્વની સાથે અનંતાનુબંધી કષાયનો પણ અભાવ હોવાથી, સ્વરૂપાચરણરૂપ ચારિત્ર પણ અંશે હોય છે. ચતુર્થ ગુણસ્થાનકે તેમને અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય તથા પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કપાયના ઉદયના કારણે હજી સંયમાયરણ પ્રગટ્યું નથી, પરંતુ 'દેહાદિ તથા રાગાદિનો એક અંશ પણ મારો નથી, હું જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા જ છું' એવી જાગૃતિ તેમને કાયમ રહે છે. તેઓ પોતાને સદા દેહાદિ તથા રાગાદિથી ભિન્નપણે જ અનુભવે છે, વિકારપણે કે વિકારના ફળપણે કદી અનુભવતા નથી. જેમને સ્વભાવનું ભાન કે લક્ષ નથી એવા અજ્ઞાની મૃઢાત્માઓ પોતાને રાગના અને જડના સ્વામી માને છે, તેથી તેઓ પોતાને સદા વિકારપણે તથા દેહપણે જ અનુભવે છે, પોતાને સ્વભાવ-પશે ક્યારે પણ અનુભવતા નથી; પરંતુ જ્ઞાની પોતાને જ્ઞાનસ્વભાવપણે જ અનુભવે છે. જ્ઞાનીને સમસ્ત દેહાદિ સંયોગો અને રાગાદિ વિકારોથી ભિન્ન એવા પોતાના શુદ્ધ, પૂર્શ, નિત્ય, ધ્રુવ સ્વભાવનો આદર હોય છે. તેમને દેહાદિ પરદ્રવ્ય તથા રાગ-દ્વેષાદિ કર્મજનિત પરભાવથી દઢ ભેદજ્ઞાન થયું હોવાથી તેમની આત્મબદ્ધિ પોતાના જ્ઞાન-સ્વભાવમાં જ રહે છે. તેમને સ્વપ્નમાં પણ પરમાં આત્મબુદ્ધિ થતી નથી. પરભાવોથી વિમુખ થઈ તેઓ સ્વસન્મુખ રહે છે. તેઓ પરદ્રવ્ય તેમજ પરભાવથી ભિન્ન એવા ચેતનસ્વભાવમાં જ લીન થવા ઇચ્છે છે.

સત્ય શ્રદ્ધા અને સત્ય જ્ઞાનના બળથી સમ્યગ્દેષ્ટિ જીવ આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિર થવાનો સતત પ્રયત્ન કરે છે. પોતાને જે શાંત સ્વભાવનું વેદન થયું છે, તેમાં જ સ્થિર થવાનો તેઓ પુરુષાર્થ કરે છે. તેમને શુદ્ધોપયોગપૂર્વક સ્વરૂપનું વેદન થયું છે તે ભુલાતું નથી. ફરી ફરી તેવા નિર્વિકલ્પ ઉપયોગ માટે તેમને ભાવના રહ્યા કરે

૧- જુઓ ઃ આચાર્યશ્રી ગુણભદ્રજીવિરચિત, 'આત્માનુશાસન', શ્લોક ૨૩૪

^{&#}x27;मङ्क्षु मोक्षं सुसम्यक्त्वसत्यंकारस्वसात्कृतम् । ज्ञानचारित्रसाकल्यमूल्येन स्वकरे कुरु ।।'

છે. 'મારે મારા આત્મામાં જ લીન થવું છે. આત્મામાં લીન થઈને, સર્વસંગપરિત્યાગ કરીને મારે નિર્જંથતાને આત્મસાત્ કરવી છે. મુનિધર્મની સાધના કેવળ આ મનુષ્ય-શરીરથી જ થઈ શકે છે. પશુ વધુમાં વધુ શ્રાવકધર્મની સાધના કરી શકે છે, દેવ અને નારકી તો શ્રાવકના સંયમને પણ પાળી શકતા નથી, તેઓ કેવળ વ્રતરહિત સમ્યગ્દષ્ટિ જ થઈ શકે છે; તો આવા ઉપકારી મનુષ્યજન્મમાં સંયમ ધારણ કરીને, આત્મસાધના કરીને, સર્વ કર્મોને બાળીને મારા આત્માને મુક્ત કરું, જન્મ-મરણરહિત થાઉ તથા મારા આત્માને સિદ્ધપદમાં પહોંચાડું. આ દુર્લભ ભવની સફળતા તેમાં જ છે તેથી ક્યારે હું બાહ્યાંતર સર્વ બંધનોથી મુક્ત થઈ, ચારિત્રદશા પ્રગટાવી મુનિ થાઉ અને સ્વરૂપમાં એકાત્ર થઈ, પૂર્ણવીતરાગી થઈ અનંત અનંત સુખ ભોગવું.' - આવી અંતરંગ ભાવના તેમનામાં નિરંતર હોય છે. સમ્યક્ચારિત્ર અંગીકાર કરવાની ઇચ્છા તેમને અત્યંત તીવપણે હોય છે. શ્રીમદ્ લખે છે કે —

'હે સમ્ચક્દર્શની! સમ્ચક્**ચારિત્ર જ સમ્ચક્**દર્શનનું ફળ ઘટે છે, માટે તેમાં અપ્રમત્ત થા.'^૧

સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ શ્રદ્ધામાં પોતાને પૂર્શ શુદ્ધ વીતરાગ જ માને છે અને જગતના કોઈ પણ જ્ઞેયને જાણતી વખતે આ શ્રદ્ધા તેમની સાથે ને સાથે જ રહે છે. તેઓ રાગરહિત સ્વભાવની શ્રદ્ધાપૂર્વક રાગરહિત ચારિત્રદશા પ્રગટ કરીને સ્વરૂપમાં ઠરવા ઇચ્છે છે. સમ્યગ્દર્શન થયા પછી તેમને બે પ્રકારના ભાવ હોય છે - એક રાગ વગરના અને બીજા રાગવાળા. સમ્યગ્દર્શન રાગ વગરનો ભાવ છે અને સમ્યગ્જ્ઞાન પણ રાગ વગરનું હોય છે. ચારિત્રપરિણતિમાં હજી કેટલોક રાગ બાકી છે. પણ જ્ઞાનનો ઉપયોગ જ્યારે સ્વમાં જોડાય ત્યારે બુદ્ધિપૂર્વક રાગનું વેદન તે ઉપયોગમાં હોતું નથી. તે ઉપયોગ સ્વરૂપાનંદ વેદવામાં જ મગ્ન છે, એટલે તે વખતે અબુદ્ધિપૂર્વકનો જ રાગ હોય છે; અને જ્યારે ઉપયોગ બહાર હોય ત્યારે તે સવિકલ્પદશામાં જે રાગ હોય છે તે બુદ્ધિપૂર્વકનો છે, છતાં તે વખતે પણ સમ્યગ્દર્શન તો રાગ વગરનું જ હોય છે. તે કાંઈ રાગવાળું થઈ જતું નથી. આમ, સમ્યગ્દર્શનનાં પરિણામ જુદાં છે અને રાગનાં પરિણામ જુદાં છે. બન્ને સ્પષ્ટ ભિન્ન હોય છે. એક જ ભૂમિકામાં રાગ અને સમ્યક્ત્વ બન્ને સાથે હોવાથી તેને 'સરાગ સમ્યક્ત્વ' કહ્યું છે. ચોથા ગુણસ્થાનનું સમ્યગ્દર્શન ખરેખર તો વીતરાગભાવવાળું જ છે અને તે વીતરાગભાવ જ મોક્ષનું સાધન થાય છે. રાગભાવ કંઈ મોક્ષનું સાધન થતું નથી. સરાગદશામાં પણ શ્રદ્ધા ગુણની અપેક્ષાએ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ વીતરાગી જ છે અને ચારિત્રપરિણતિમાં પૂર્ણ શુદ્ધ વીતરાગધારા પ્રગટાવવા પ્રત્યે જ તેમનો પુરુષાર્થ હોય છે.

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૮૧૯ (હાથનોંધ-૨, ૭)

યારિત્રદશા પ્રગટાવવા માટે જ્ઞાની સમ્યગ્દર્શનના બળ વડે મિથ્યાભાસ ટાળવાનો પૂર્ણ પ્રયત્ન કરે છે, અર્થાત્ બાકી રહેલાં ચારિત્રમોહનીયના નાશનો પુરુષાર્થ કરે છે. તેઓ ચારિત્રમોહનો વિલય કરવાનો, આવેગોને પૂરેપૂરા ક્ષીણ કરી દેવાનો પ્રબળ પ્રયાસ કરે છે. તેઓ બંધવૃત્તિઓને નષ્ટ કરી, તેનાથી નિવર્તવાનો જાગૃતિપૂર્ણ ઉદ્યમ કરે છે. તેના અભિપ્રાયમાં વિકારનો નિષેધ વર્તતો હોય છે. તેઓ પોતાને જે વિકાર ઊંઠે છે તેનાથી જ્ઞાનને જુદું જ જાણે છે, તે બન્નેની એકતા કરી એકબીજામાં ભેળવતા નથી. રાગ અને જ્ઞાન વચ્ચે એવી મોટી તિરાડ પડી ગઈ હોય છે, એવો જબરદસ્ત ભેદ પડી ગયો હોય છે કે તે બન્ને એક થતા નથી. તેમનું જ્ઞાન રાગાદિ પરભાવોથી છૂટું ને છૂટું જ રહે છે, કદી રાગાદિરૂપ થતું નથી. તેમનું જ્ઞાન સ્વભાવને સ્પર્શતું હોવાથી તે જ્ઞાન રાગથી ભિન્ન રહે છે.

સમ્યગ્દષ્ટિ જીવે જ્ઞાન અને રાગને જુદાં અનુભવ્યાં હોવાથી તેઓ રાગમાં મય ન થતાં તેના જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા રહે છે. તેમણે રાગને છોડી જ્ઞાન સાથે એકતા સાધી હોવાથી રાગાદિ વિકારભાવને સતત પોતાનાથી ભિન્ન રાખી તેઓ સ્વરૂપમાં એકતાન રહે છે. આત્મા સિવાય બીજે કશે પણ તેમનું મન ઠરતું નથી. તેમને શુભ કે અશુભ ભાવો આવે છે, પરંતુ આત્મશાંતિ તો જ્ઞાનભાવમાં જ છે એવો તેમને અખંડ નિશ્વય રહે જ છે. ચૈતન્યની શાંતિ પાસે કષાયનું બળ તૂટી જાય છે. ચૈતન્યની અકષાયી શાંતિના વેદનપૂર્વક અનંતાનુબંધી કષાયભાવનો અભાવ થઈ ગયો હોવાથી તેમને કોઈ પ્રસંગે કષાયભાવની તીવતા તો હોતી નથી, પરંતુ કષાયભાવ નિરંતર ઘટતા જાય છે. શુદ્ધોપયોગની પ્રાપ્તિ થઈ હોવાથી, તેના બળ વડે તેઓ ચારિત્રમોહના ભૂક્કા કરી નાખે છે. શ્રીમદ્ લખે છે કે —

'શુદ્ધ ઉપયોગની જો પ્રાપ્તિ થઇ તો પછી તે સમયે સમયે પૂર્વોપાર્ષિત મોહનીયને ભસ્મીભૂત કરી શકશે. આ અનુભવગમ્ય પ્રવચન છે.'^૧

ચારિત્રમોહના સદ્ભાવ અનુસાર જ્ઞાનીને જે ઉદયભાવ થાય છે, તેના નાશના ઉદ્યમમાં તેઓ પ્રવર્તે છે. ત્રિકાળી વીતરાગસ્વરૂપ નિજચૈતન્યસ્વભાવનો આશ્રય કરતાં વિકારનો ક્ષય થતો જાય છે. પર્યાયે પર્યાયે તેમનું જ્ઞાન રાગથી જુદું રહીને મોક્ષને સાધે છે. આત્માને વિષે જે મિથ્યા આભાસ છે તે ટળતો જાય છે. તેમની ભેદજ્ઞાનની નિર્મળ ધારા આગળ વધતાં, અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય અને પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કર્મ હટતાં શુદ્ધ ચારિત્રનો ઉદય થાય છે. સમકિતની વધતી જતી દશાથી વિભાવ ટળતાં સ્વસ્વરૂપમાં સ્થિરતારૂપ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થાય છે. સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ સમ્યગ્દર્શન-સમ્યગ્જ્ઞાનના બળ વડે આગળ ને આગળ વધતા જાય છે અને પરભાવને તજીને શુદ્ધ ભાવમાં રમણતારૂપ ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પ્.૧૯૬ (આંક-૭૮, ૧)

ચારિત્રદશા હાંસિલ કરે છે.^૧

રાગભાવમાં ઘટાડો થયો હોવાથી તેમને પરવસ્તુનો સંયોગ પણ ટળતો જાય છે. જીવના ભાવને અને પરવસ્તુને નિમિત્ત-નૈમિત્તિક સંબંધ છે. રાગભાવમાં ઘટાડો થતાં એ પ્રકારના બાહ્ય સંયોગો પણ સહેજે છૂટતા જાય છે અને રાગભાવમાં વધારો થતાં તત્સંબંધી સંયોગો પ્રત્યે બાહ્યમાં ચેષ્ટા થાય છે એવો નિમિત્ત-નૈમિત્તિક સંબંધ છે. ખરી રીતે આત્મા પરવસ્તુને અહી કે છોડી શકતો નથી. પરવસ્તુ કાંઈ આત્મામાં પેસી ગઈ નથી કે તેનો ત્યાગ થઈ શકે, પણ પરવસ્તુ ઉપરનાં રાગ અને અવલંબન જીવ જ્યારે તોડે છે ત્યારે પરવસ્તુનો સંયોગ સહેજે ટળે છે. જીવનો રાગભાવ ઘટતાં તેનું ફળ બહારમાં પણ દેખાય છે. ચારિત્રદશા પ્રગટાવનાર મહાત્મા બાહ્યાભ્યંતર સંગથી વિરામ પામી એક અસંગભાવને જ ભજે છે અને પરમ સ્વભાવસમાધિ અનુભવે છે. ઊંચા ચિદાકાશને વિષે ઊડતા વિહગ જેવા આ અપ્રતિબદ્ધ મહાત્મા પરદ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવથી કશે પણ પ્રતિબંધ પામતા નથી. તેઓ તો સ્વદ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવમાં સ્થિત હોય છે. તેઓ પરમાનંદસુખરસના આસ્વાદથી તૃપ્ત થઈ, નિજ સહજાત્મસ્વરૂપમાં જ વારંવાર સ્થિર થવા પ્રયત્ન કરે છે.

આ પ્રકારે જેઓ ચારિત્રદશા પ્રગટાવી સ્વરૂપની રમણતામાં વારંવાર લીન થાય છે, તેઓ મુનિ છે. વારંવાર નિજસ્વરૂપમાં રમણતા કરતા હોવાથી સમ્યગ્દષ્ટિ ગૃહસ્થ કરતાં તેમની મોક્ષ તરફની ગિત તીવ્ર વેગવાળી હોય છે. ગૃહસ્થ અને મુનિ વચ્ચે શુદ્ધાત્માની શ્રદ્ધામાં કોઈ ભેદ નથી. સમ્યગ્દર્શન વડે ગૃહસ્થે પણ મોક્ષનો દરવાજો ખોલી નાખ્યો છે, પરંતુ સ્થિરતારૂપ ચારિત્રમાં ફરક હોવાથી ગૃહસ્થને મુનિ જેટલું ઉપ્ર મોક્ષસાધન નથી હોતું. સમ્યગ્દષ્ટિ ગૃહસ્થ સમ્યક્ સમજણના બળ વડે ક્રમે ક્રમે સ્વરૂપની એકાગ્રતાને સાધવાનો પ્રયત્ન કરે છે, જ્યારે મુનિદશામાં તો ઉપયોગને વારંવાર સ્વમાં એકાગ્ર થવાનો ઘણો અવકાશ રહે છે. એકીસાથે અંતર્મુહૂર્ત કરતાં વધારે લાંબો કાળ તેમનો ઉપયોગ પરમાં રહેતો નથી. ચોથા-પાંચમા ગુણસ્થાને રહેલા સમકિતી જીવને નિર્વિકલ્પ આનંદની અનુભૂતિ ક્યારેક ક્યારેક થાય છે, જ્યારે મુનિદશામાં તો ઉપયોગ બહુ ટૂંકા સમયાંતરે સ્વ તરફ વળતો હોવાથી નિર્વિકલ્પ આનંદનો અનુભવ વારંવાર થયા કરે છે.

મુનિ સ્વરૂપમાં શીઘ્ર ડૂબકી મારી શકે છે. તેમણે સ્વરૂપનો આશ્રય લઈને ઉગ્ર પુરુષાર્થથી અંતરમાં ચારિત્ર પ્રગટાવ્યું છે. તેમના અંતરમાં પળે પળે શુદ્ધિ ઝરે છે.

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી યોગીન્દુદેવકૃત, 'પરમાત્મપ્રકાશ', અધિકાર ૨, ગાથા ૩૦ 'जाणवि मण्णवि अणु परु जो परभाउ चएइ ।

सो णिउ सुद्धउ भावडउ णाणिहिं चरणु हवेइ ।।'

તેઓ પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવમાં જ ચર્યા કરતા હોય છે. તેઓ પોતાના સ્વરૂપમાં જ તન્મય હોય છે. તેમને બીજા કશાનું લક્ષ હોતું નથી. તેઓ ઇન્દ્રિયોથી પાર, દેહથી પાર, રાગથી પાર, અતીન્દ્રિય ચૈતન્યપ્રાણરૂપ જીવન જીવે છે. તેમને અતીન્દ્રિય ચૈતન્ય-જીવનની જ્યોત પ્રગટી છે, તેથી તેઓ દેહાતીત એવું ચૈતન્યજીવન - જ્ઞાનાનંદથી ભરેલું આત્મજીવન જીવે છે.

મુનિની દશા વિદેહી હોય છે. તેમને દેહનું વેદન નથી હોતું, પરંતુ સ્વભાવનું વેદન વર્તી રહ્યું હોય છે. આનંદધામ જ્ઞાયકના ઉત્ર અવલંબનના બળે તેમને પ્રચુર સ્વસંવેદન પ્રગટે છે. દ્રવ્યસામાન્ય ઉપર દષ્ટિ કરતાં અતીન્દ્રિય આનંદનું પ્રચુર વેદન, વીતરાગી આનંદનું અતિશય સંવેદન થાય છે. નિજાત્માનું પ્રચુર સંવેદન, અતીન્દ્રિય આનંદમાં રમણતા, અતીન્દ્રિય આનંદ જે સ્વભાવમાં છે તેની અધિકાધિક વ્યક્તતા તે મુનિનું અંતરલક્ષણ છે.

મુનિરાજને નિજાનંદમાં વિહારપૂર્વકનું ચારિત્ર વર્તે છે. તેઓ ગુણના અગાધ દરિયાના તિળયે પહોંચી ગયા છે. તેઓ અંતર્મુહૂર્તે અંતર્મુહૂર્તે આનંદપૂર્ણ સ્વભાવમાં ડૂબકી મારે છે અને અતિશય આનંદનો અનુભવ કરે છે. વસવાટ માટે તેમને અંતરનો મહેલ મળી ગયો હોવાથી, ત્યાંથી તેમને બહાર આવવું ગમતું નથી. તેઓ નિજ સ્વરૂપમાં પૂર્ણપણે સ્થિર થવા તલસે છે. સ્વરૂપમાં પૂર્ણપણે ઠરવા સિવાય તેમને બીજું કાંઈ જોઈતું નથી. જ્ઞાનને સ્વરૂપમાં સ્થિર કરીને, વીતરાગભાવ પ્રગટાવીને, સ્વભાવ સાથે સંપૂર્ણ એકતા કરવા સિવાય તેમને બીજું કાંઈ કરવા જેવું લાગતું નથી. રાગમાં આવવું એ તેમને પરદેશ જવા જેવું લાગે છે. જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર, આનંદ, વીર્ય આદિ અનંત ગુણનું ધામ એ તેમનો દેશ છે. ત્યાં તેમના સર્વ ગુણોનો પરિવાર વસે છે. તેઓ વિભાવ તજી સ્વદેશ જવા તલસે છે. વહેલી તકે નિજવતનમાં જઈ ત્યાં કાયમ માટે વસવાની તેમને તાલાવેલી જાગી છે.

બહારથી જોતાં મુનિરાજ આત્મસાધના માટે નિર્જન વનમાં એકલા વસે છે, પણ તેમના અંતર તરફ દષ્ટિ કરીએ તો તેઓ એકલા પણ નથી અને વનમાં પણ નથી. સહજ જ્ઞાન અને સહજ આનંદ આદિ ગુણોથી ભરેલા નિજસ્વરૂપનગરમાં મુનિરાજ વસે છે. બહારથી જોતાં તેમને ભૂખ-તરસ હોય કે ઉપવાસ હોય, પણ અંતરમાં તેઓ આત્માના આનંદામૃતને આસ્વાદી રહ્યા છે, અતીન્દ્રિય આનંદના ભોજનથી તૃપ્ત અને પુષ્ટ છે. અજ્ઞાનીને એમ લાગે કે ઘનઘોર મેઘલી રાતે મુનિરાજ ભયંકર અંધકારમાં વસે છે, પરંતુ તેમને તો અંદર આત્મજ્ઞાનનાં અજવાળાં પથરાઈ ગયાં છે. બહાર ભલે અંધકાર હોય, પણ તેમની દષ્ટિ જ્યાં છે ત્યાં અનુપમ તેજ છે, તેથી તેમને સર્વત્ર પ્રકાશ છે. અજ્ઞાનીને એમ લાગે કે સૂર્યના પ્રચંડ તાપમાં મુનિરાજ બળી રહ્યા છે, પણ

વાસ્તવમાં તેઓ સ્વરૂપરમણતારૂપ કલ્પવૃક્ષની શીતળ છાયામાં બિરાજી રહ્યા છે. અહા! મુનિરાજની અંતરંગ દશા ખરેખર અદ્ભુત છે! અંતરંગ પરિણતિની ધારામાં તો સુખ અને શાંતિનાં પૂર ઉમટ્યાં છે અને સાથે સાથે બાહ્ય શારીરિક અવસ્થા ઉપર પણ ઉપશમરસનો ઢોળ ચડ્યો છે. શરીરનો દેખાવ પણ શાંત, અત્યંત શાંત, જિનપ્રતિમા સમાન જણાય છે.

મુનિરાજે જ્ઞાનને સ્વભાવમય પરિણમાવ્યું છે, તેથી તેઓ સદા જાગૃત રહે છે. આત્મદ્રવ્યના ઉગ્ર આશ્રયે પ્રગટેલી ચારિત્રદશાની શુદ્ધિ, તેમના સ્વસન્મુખતાના પુરુષાર્થથી સમયે સમયે વધતી જાય છે. ગમે તેવા અનુકૂળ કે પ્રતિકૂળ સંયોગો આવે, તેનાથી પોતાને ભિન્ન જાણીને, સ્વભાવમાં નિઃશંક અને નિર્ભય રહીને તેઓ ક્ષણે ક્ષણે આત્મશાંતિની વૃદ્ધિપૂર્વક વીતરાગમાર્ગે પ્રગતિ કરે છે. અનુકૂળ કે પ્રતિકૂળ સંયોગો તેમને સ્વરૂપ સાધવામાં નડતા નથી. અનુકૂળ કે પ્રતિકૂળ સંયોગોની પ્રાપ્તિ થવી તે તો પૂર્વનાં પુણ્ય-પાપ અનુસાર છે. તેનો કર્તા આત્મા નથી, પણ સંયોગની અને વિકારની રુચિનો નાશ કરીને પોતાના સ્વભાવમાં વળવું તે તો પુરુષાર્થને આધીન છે. પુરુષાર્થ કરવામાં કોઈ નિમિત્ત કે સંયોગ નડતા નથી. કોઈ બાહ્ય સંયોગો સ્વરૂપ સાધવામાં રોકતા નથી. મુનિને અનુકૂળ કે પ્રતિકૂળ, ગમે તે સંયોગોમાં સ્વભાવની સાધના તો નિરંતર સધાતી જ હોય છે.

મુનિને પુષ્યની કે અનુકૂળ સંયોગોની રુચિ નથી હોતી, પરંતુ આત્માની રુચિ હોય છે. જેને પુષ્યની રુચિ છે, અનુકૂળ સંયોગોની રુચિ છે, તેને આત્માના સ્વભાવની રુચિ નથી. જેને દેવપદની હોંશ છે, તેને ધર્મની રુચિ નથી. મુનિ દેવપદથી આત્માની મોટપ નથી માનતા. દેવપદ તો શુભરાગરૂપ વિકારનું ફળ છે અને દેવપદનું શરીર - દેવપદનો વૈભવ તો જડ છે. વિકારથી અને જડથી આત્માની શોભા નથી. મુનિને તો પોતાની મોટપ પોતાના સ્વભાવથી જ લાગે છે. તેમને સ્વભાવની રુચિ હોય છે અને દેવપદ આદિ પ્રત્યે ઉદાસીનતા પ્રવર્તે છે.

મુનિ પ્રતિકૂળતામાં આકુળ-વ્યાકુળ થઈ જતા નથી, કોઈ પણ પ્રતિકૂળ પ્રસંગમાં વિક્ષુબ્ધ થતા નથી. જંગલમાં મુનિ આત્મધ્યાનમાં બેઠા હોય અને ત્યાં વાઘનું ટોળું આવીને તેમને ઘેરી વળે તોપણ મુનિ મનમાં ક્ષોભ નથી પામતા કે 'આ વાઘનું ટોળું મારો નાશ કરશે.' 'હું તો અરૂપી જ્ઞાનસ્વરૂપ છું, જ્ઞાનથી ભિન્ન બીજું કાંઈ મારું નથી. મારું જ્ઞાનતત્ત્વ, જે મેં પ્રતીતમાં લીધું છે તે કદી અન્યથા થવાનું નથી. જગતમાં એવી કોઈ વસ્તુ નથી કે જે મારા જ્ઞાનસ્વરૂપને અન્યથા કરી શકે. મારું જ્ઞાન અવધ્ય છે, કોઈથી હણાય તેમ નથી, એટલે આ વાઘનું ટોળું મારો નાશ કરવા સમર્થ નથી.' આમ નિઃશંકપણે વર્તતા હોવાથી તેઓ પોતાના જ્ઞાનસ્વરૂપમાં સ્થિર રહે છે. કોઈ દેવ

ધ્યાન ધરતા મુનિના પગ પકડી, જેમ ધોબી કપડાં પછાડે તેમ પર્વત ઉપર તેમને પછાડે તોપણ તેઓ સ્વરૂપમાં એકાગ્ર રહે છે. તેઓ આવી આવી ઉગ્ર પ્રતિફૂળતા વખતે પણ વિચલિત થતા નથી. દેહને પર્વત સાથે પછાડે તોપણ મુનિને તેનું કાંઈ પણ દુઃખ થતું નથી. જેને શરીર ઉપર મોહ છે, તે પોતાના રાગના કારણે શરીરમાં કાંઈક થતાં દુઃખી થાય છે. શરીર એ દુઃખનું કારણ નથી, પણ શરીર પ્રત્યેનો પોતાનો રાગ એ જ દુઃખનું કારણ છે. મુનિને શરીર ઉપર દષ્ટિ ન હોવાથી શરીરને હાનિ પહોંચતાં તેમને દુઃખ થતું નથી. તેમના અંતરમાં અનુભવાતા આનંદને કોઈ પ્રતિફૂળતા સ્પર્શી શકતી નથી.

પુષ્ય કે અનુકૂળતાની મીઠાશમાં, પાપ કે પ્રતિકૂળતાની કટૂતામાં અટવાયા વગર તેઓ તો શૂરવીરતા સહિત ઉદ્યમી થઈને આત્માના આનંદના અનુભવમાં રમણતા કરે છે. અંતરમાં એકાગ્ર થઈને ત્રિકાળી ચૈતન્યપ્રવાહરૂપ આત્મામાં મગ્ન થાય છે. સ્વભાવની લીનતા વડે પ્રગટાવેલી શાંતિને જગતના ગમે તેવા પ્રબળ વાયરા પણ ડગાવી શકતા નથી. વીતરાગતાના પંથે વિહરતા મુનિરાજને જગતની કોઈ અનુકૂળતા કે પ્રતિકૂળતા લેશ પણ હલાવી શકે તેમ નથી. સત્સ્વરૂપના મહિમા પાસે સંસારની કોઈ અનુકૂળતા કે પ્રતિકૂળતા કે પ્રતિકૂળતા કે પ્રતિકૂળતા રકતી નથી. ચૈતન્યતત્ત્વ પરમાનંદનું ધામ છે, ત્યાં સદા અનુકૂળતા જ છે. અંતર્મુખ થઈને ચૈતન્યગુફામાં પ્રવેશ થાય પછી બાહ્ય અનુકૂળતા શું કે પ્રતિકૂળતા શું? ચૈતન્યસિંહરૂપી જ્ઞાયકવીરની શૂરવીરતા સામે અનુકૂળતા કે પ્રતિકૂળતા તો ટકી શકતી જ નથી, પરંતુ પરભાવો પણ નથી ટકી શકતા. ચૈતન્યસિંહરૂપી જ્ઞાયકવીર પોતાના પરાક્રમથી જ્યાં જાગ્યો ત્યાં તેના વિકાસને કોઈ રોકી શકતું નથી.

મુનિરાજની આત્મસ્થિરતા એટલી બધી સઘન હોય છે કે ચારિત્રમોહના સૂક્ષ્માતિ-સૂક્ષ્મ અંશનું બળ પણ નથી ચાલતું. ચારિત્રમોહનો હવે સંપૂર્ણ નાશ કરવા માટે તેઓ ઉત્ર પુરુષાર્થ કરે છે, પરિણામે વીતરાગચારિત્ર પ્રત્યે તેમનું વીર્ય અધિક ને અધિક ઉલ્લસતું જાય છે અને સંપૂર્ણ શુદ્ધ દશા પામવાના પંથે તેઓ વેગપૂર્વક આગળ ધપતા જાય છે. તેઓ છકા 'પ્રમત્ત સંયત' ગુણસ્થાનકથી આગળ વધે છે.

છજ્ઞા ગુણસ્થાનકે કષાયની ત્રીજી ચોકડી એવા પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કષાયોનો અભાવ થયો હોવાથી આત્મગુણની નિર્મળતા ઘણી વૃદ્ધિ પામી હોય છે, અંતરંગ સ્થિરતાની વૃદ્ધિ થઈ હોય છે. સ્વરૂપસાધનામાં સંજવલન ચારિત્રમોહના ઉદયથી પ્રમાદ થાય છે, તેથી આ ગુણસ્થાનકને 'પ્રમત્ત સંયત' કહે છે. જ્યારે તે સંયત મહાત્મા પ્રમાદને વશ થાય છે ત્યારે તેઓ પોતાની શાંતિમાં બાધા થઈ હોવાનો અનુભવ કરે છે, તેથી આવા પ્રમાદને નષ્ટ કરવાનો તેઓ ઉગ્ર પુરુષાર્થ કરે છે અને તેમાં સફળ થતાં સાતમા 'અપ્રમત્ત સંયત' ગુણસ્થાનની અવસ્થાને પામે છે. છઢા 'પ્રમત્ત સંયત' ગુણસ્થાન અને સાતમા 'અપ્રમત્ત સંયત' ગુણસ્થાનમાં આ મુનિ મહાત્મા અનેક વાર ઝૂલતા હોય છે, અર્થાત્ છક્કેથી સાતમે અને સાતમેથી છકે આવાગમન કરતા હોય છે. કોઈ વાર મંદ રાગમાં જોડાઈ છકા પ્રમત્ત ગુણસ્થાને હોય છે, તોપણ અંતર્મુહૂર્તમાં ફરીથી સ્થિર થતાં - અપ્રમત્ત થતાં સાતમા ગુણસ્થાને આવે એવી અદ્ભુત તેમની ચારિત્રદશા હોય છે. આ સ્થિતિને 'સ્વસ્થાન અપ્રમત્ત સંયત' અથવા 'નિરતિશય અપ્રમત્ત' કહે છે. સાતમા ગુણસ્થાને સંજ્વલન કષાય તેમજ નોકષાયનો ઉદય મંદ હોવાથી સંપૂર્ણ સંયમયુક્ત આ મુનિરાજને વ્યક્ત તેમજ અવ્યક્ત પાંચે પ્રકારના પ્રમાદનો અભાવ હોય છે. જ્યારે તે અપ્રમત્ત સંયત મહાત્મા – છકા ગુણસ્થાને નહીં ઊતરતાં અંતર્મુહૂર્ત પર્યંત સાતમા ગુણસ્થાને જ સ્થિર થાય છે, ત્યારે તેઓ શ્રેણીસન્મુખ થાય છે. આ સ્થિતિને 'સાતિશય અપ્રમત્ત સંયત' કહેવાય છે. ^૧

જ્યારે સાતમા ગુણસ્થાનવર્તી અપ્રમત્તસંયત મહાત્મા પ્રત્યેક સમયે પરિણામોની અનંતગુણી વિશુદ્ધિ કરીને અપૂર્વકરણ જાતિનાં પરિણામોને કરે છે, ત્યારે તે શ્રમણ મહાત્માને 'અપૂર્વકરણ' નામના આઠમા ગુણસ્થાનવર્તી કહે છે. 'અપૂર્વ' એટલે પૂર્વે નહીં થયેલા એવાં અને 'કરણ' એટલે પરિણામ. આ આઠમા ગુણસ્થાને કષાય અને નોકષાયનો અત્યંત મંદ ઉદય થતાં, પૂર્વે જે પરિણામોને કદી અનુભવ્યાં ન હતાં એવાં અપૂર્વ, પરમ આહલાદમય અને આનંદમય આત્મપરિણામોને તેઓ ધારણ કરે છે. આ ગુણસ્થાને પ્રતિસમય ભાવોની અનંતગુણી વિશુદ્ધિ, પૂર્વબદ્ધ કર્મસ્થિતિમાં અસંખ્યાત-ગુણ ઘાત, અસંખ્યાતગુણ ન્યૂન સ્થિતિનો નવો કર્મબંધ, પૂર્વે બંધાયેલાં પાપકર્મના રસ(અનુભાગ)નું અસંખ્યાતગુણ ખંડન, અર્થાત્ રસઘાત તથા અસંખ્યાતગુણ કર્મવર્ગણાની નિર્જરા અને પાપપ્રકૃતિઓનું પુણ્યપ્રકૃતિઓમાં સંક્રમણ થાય છે. આઠમા ગુણસ્થાનથી આ મુનિ મહાત્મા શ્રેણી ઉપર આરૂઢ થઈ અધિક વિકાસ તરફ પ્રયાણ કરવા સમર્થ બને છે. તેઓ ઘાતી કર્મોનો સંપૂર્ણ ક્ષય કરવા ઉદ્યમવંત થાય છે અને ક્રમશઃ મોહનીય વગેરે કર્મપ્રકૃતિઓનો ક્ષય કરે છે તેથી શ્રેણી ઉત્પન્ન થાય છે. શ્રેણી બે પ્રકારની છે - ક્ષપકશ્રેણી અને ઉપશમશ્રેણી. ક્ષપકશ્રેણીથી ચઢનાર જીવ મોહનો ક્ષય કરે છે અને ઉપશમશ્રેણીથી ચઢનાર જીવ મોહનો ઉપશમ કરે છે. કષાયોને નિર્મળ કરનાર ક્ષપકમુનિ મહાત્મા દશમા ગુણસ્થાનકથી સીધા બારમા ગુણસ્થાનકે જાય છે. જ્યારે કષાયોને ઉપશમાવનાર જીવ દશમા ગુણસ્થાનકથી અગિયારમા 'ઉપશાંતકષાય વીતરાગ છદ્મસ્થ' ગુણસ્થાનક સુધી ચઢે છે અને પછી કષાય ઊછળી આવતાં અવશ્ય પતન પામે છે. તે પતન કાળક્ષયથી, એટલે કે ગુણસ્થાનનો કાળ પૂર્ણ થવાથી અથવા ૧- જુઓ ઃ સિદ્ધાંતચક્રવર્તી શ્રી નેમિચંદ્રજીકૃત, 'ગોમ્મટસાર'ની આચાર્યશ્રી અભયચંદ્રદેવકૃત ટીકા,

'भंदप्रजोधिंडा', જીવકાંડ, ગાથા ४५ 'स्वस्थानाप्रमत्तः सातिशयाप्रमत्तश्चेति हो भेटौ ।' ભવક્ષયથી, એટલે કે આયુષ્યનો ક્ષય થવાથી એમ બે રીતે થાય છે. ક્ષપકશ્રેણી ઉપર આરૂઢ થયેલા શ્રમણ મહાત્મા આ શ્રેણી ચઢવા પછી કદી પણ પાછા વળતા નથી કે અપૂર્ણ શ્રેણીએ તેમનું આયુષ્ય પણ પૂરું થતું નથી.

ક્ષપકશ્રેણી ઉપર આરૂઢ શ્રમણ મહાત્મા મહા ઉત્રપુરુષાર્થી બની મોહનીય કર્મની પ્રકૃતિઓનો જડમૂળથી ક્ષય કરતા જાય છે અને આ રીતે પોતાનાં પરિણામો વિશુદ્ધ કરતાં કરતાં નવમા 'અનિવૃત્તિ બાદર સંપરાય' ગુણસ્થાનકે પહોંચે છે. આ ગુણસ્થાને રહેલા દરેક જીવના અધ્યવસાયો એકસરખા જ હોય છે, અર્થાત્ અધ્યવસાયોની શુદ્ધિમાં નિવૃત્તિતરતમતા હોતી નથી. 'બાદર' એટલે સ્થૂળ અને 'સંપરાય' એટલે કષાય. આ ગુણસ્થાને સ્થૂળ કષાયોનો ક્ષય થાય છે અને જીવ દશમા 'સૂક્ષ્મ સંપરાય' ગુણસ્થાનકે આવે છે. આ ગુણસ્થાનકવર્તી શ્રમણ મહાત્મા સૂક્ષ્મ લોભ કષાયથી યુક્ત હોવાથી તેમને યથાખ્યાત ચારિત્ર પ્રગટવામાં થોડીક ન્યૂનતા રહે છે. અંતે મોહનીયની છેલ્લી પ્રકૃતિ સૂક્ષ્મ લોભ કષાયનો પણ ક્ષય કરી આ શ્રમણ મહાત્મા સીધા બારમા 'ક્ષીણકષાય વીતરાગ છદ્મસ્થ' ગુણસ્થાને આવે છે. આ ગુણસ્થાનને 'ક્ષીણમોહ' ગુણસ્થાન પણ કહે છે, કારણ કે મોહનો સંપૂર્ણ ક્ષય થયો હોય છે.

જેમના કષાયો ક્ષીણ થઈ ગયા છે, અર્થાત્ સંપૂર્ણતઃ ક્ષય પામી ગયા છે તે આત્મા 'ક્ષીણકષાયી' છે. તેમનામાં મોહકર્મરૂપી કાલિમાનો અંશ પણ રહ્યો નથી. તેમના કષાયોનો સર્વથા ક્ષય થયેલો હોવાથી, એટલે કે તેમના રાગ-દેષભાવ સર્વથા નષ્ટ થઈ ગયા હોવાથી, હવે તેઓ 'વીતરાગ' કહેવાય છે. હજુ જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય તથા અંતરાયનો ઉદય હોવાથી તેઓ છદ્મસ્થ છે. આ ગુણસ્થાનમાં સમકિત અને ચારિત્ર બન્ને ક્ષાયિક ભાવે રહે છે અને અહીં ક્ષયકશ્રેણી પૂર્ણ થાય છે. વીતરાગતાના અવરોધક એવા મોહનીય કર્મનો ક્ષય થતાં તેઓ વીતરાગપદમાં વાસ કરે છે. મોહનીય કર્મ નષ્ટ થતાં અંતર્મુહૂર્તમાં બાકીનાં ત્રણ ઘાતી કર્મો - જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય અને અંતરાય કર્મો એકસાથે બારમા ગુણસ્થાનના અંત સમયે નાશ પામે છે અને કેવળજ્ઞાન પ્રગટ થાય છે. બાકીનાં ચાર અઘાતી કર્મો પણ તે જ ભવમાં હણાઈ જતાં આત્મા સર્વ દુઃખથી મુક્ત થઈ સિદ્ધપદ સંપ્રાપ્ત કરે છે. શ્રીમદ્ લખે છે કે –

'જેમ જેમ સમ્યક્દર્શન શુદ્ધ થતું જાય છે, તેમ તેમ સમ્યક્ચારિત્ર પ્રત્યે વીર્ચ ઉલ્લસતું જાય છે; અને ક્રમે કરીને સમ્યક્ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થવાનો વખત આવે છે, જેથી આત્મામાં સ્થિર સ્વભાવ સિદ્ધ થતો જાય છે, અને ક્રમે કરીને પૂર્ણ સ્થિર સ્વભાવ પ્રગટે છે; અને આત્મા નિજપદમાં લીન થઇ સર્વ કર્મકલંકથી રહિત થવાથી એક શુદ્ધ આત્મસ્વભાવરૂપ મોક્ષમાં પરમ અવ્યાબાદ્ય સુખના અનુભવસમુદ્રમાં સ્થિત થાય છે.'

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.પ૭૭ (પત્રાંક-૭૫૫)

સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ કરનાર ધન્યાત્મા પોતાને પોતાના શરીરથી સદૈવ ભિન્ન જાશે છે, અનુભવે છે અને આત્મામાં વધુ ને વધુ સ્થિર થવાનો વારંવાર પ્રયત્ન કરે છે. વધતી જતી આત્મસ્થિરતાના કારણે તેઓ ક્રમશઃ શ્રાવક અને મુનિ અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરે છે. વધુ લીનતા થતાં, કષાયોનો અભાવ થતાં વીતરાગ બને છે. ત્યારે ચાર ઘાતી કર્મોનો પૂર્ણ અભાવ થાય છે અને પૂર્ણ શુદ્ધ આત્માનો અનુભવ સતત રહે છે. શેષ ચાર અઘાતી કર્મોની સ્થિતિ પૂર્ણ થતાં તે ધન્યાત્મા શરીરરહિત એવા સિદ્ધ ભગવાન થાય છે.

આમ, જેઓ સાધનારૂપી નૌકામાં બેસીને, અંતર્મુખ થઈને પૂર્ણ, શુદ્ધ ચૈતન્ય-સ્વભાવી જ્ઞાયક અત્માની દષ્ટિ અને એકાગ્રતા કરે છે, તેઓ ચારિત્રદશા પ્રગટ કરી, વીતરાગદશા પ્રગટ કરી, ભવસાગર તરી જાય છે અને નિર્વાણને પામે છે. તેથી જીવે મુક્તિ પ્રાપ્ત કરવા જ્ઞાયક આત્માની દષ્ટિ તથા એકાગ્રતા કરવી ઘટે છે. 'હું ચૈતન્યમૂર્તિ આત્મા છું. વાતવલયમાં બિરાજેલા સિદ્ધ પ્રભુ જેવો જ હું છું, પણ અત્યારે શરીરપ્રમાણ છું. શરીરમાં રહેલો હોવા છતાં હું શરીરથી જુદો છું. મારા આત્મસ્વભાવમાં રાગ-દેષનો અંશ પણ નથી.' આમ, પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવની ઓળખાણ કરી, ઉપયોગને અંતર્મુખ કરતાં, મિથ્યાત્વનો નાશ થઈ, આત્મતત્ત્વની અનુભવપૂર્વકની શ્રદ્ધા પ્રગટે છે. આત્માનું સમ્યક્ શ્રદ્ધાન થયા પછી જ્ઞાની ઉપયોગને સ્વદ્રવ્યમાં જ એકાગ્ર કરવાનો પુરુષાર્થ કરે છે. તેઓ ઉપયોગને પરમાંથી છોડાવી સ્વદ્રવ્યમાં લીન કરે છે. તેઓ સ્વભાવમાં સ્થિર થાય છે. તેઓ શુદ્ધોપયોગ વડે પર્યાયમાંથી રાગ-દેષને અંશે છોડે છે અને કમશઃ રાગ-દેષનો પૂર્ણ અભાવ કરી મુક્તિ પામે છે. સ્વભાવની દષ્ટિ અને એકાગ્રતાથી તેઓ રાગ-દેષ-અજ્ઞાનથી સર્વથા છૂટી જાય છે અને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરે છે.

આ જ સાચો ધર્મ છે. આ જ સાચું સત્સાધન છે. આ જ કર્મબંધનના નાશનો અને મુક્તિનો ઉપાય છે. મોક્ષનો માર્ગ એક જ છે અને તે એ કે પોતાના સહજ સ્વરૂપને જાણવું અને એમાં જ સ્થિર રહેવું. આત્મસ્વરૂપનો ઉપ્ર આશ્રય લેતાં કર્મો ખરવા લાગે છે, વિશુદ્ધિ વધે છે અને વીતરાગતા પ્રગટ થાય છે. બે ઘડી સુધી આત્મામાં સ્થિરતા થતાં યથાખ્યાત ચારિત્રદશા પ્રગટે છે. બ્રહ્મચારીજી શ્રી ગોવર્ધનદાસજી લખે છે કે –

'આત્માનું બળ વધતાં એક સાથે બે ઘડી સુધી આત્મામાં સ્થિર રહી શકે અને શ્રેણી માંડે તેમાં સત્તામાં રહેલાં ઘાતિયાં કર્મ ખપી જાય. ચારિશ્રમાં સ્થિરતા કરતાં

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'મોક્ષપાહુડ', ગાથા ૮૩

'णिच्छयणयस्स एवं अणा अपम्मि अपणे सुरदो । सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहड़ णिब्बाणं।।' કરતાં, વિભાવમાંથી સ્વભાવમાં આવતાં આવતાં ફરી વિભાવમાં જવાનું ન રહે. સદાને માટે આત્મામાં સ્થિરતા થાય તે યથાખ્યાત ચારિત્ર અથવા વીતરાગ દશા છે.'^૧

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'વર્ધમાન સમક્તિ થઇ, યોગ ચપળતા ત્યાગ; થતાં સહજ સ્થિરતા થકી, ટળે વિભાવિક રાગ. જે સંસારનું મૂળ તે, ટાળે મિથ્યાભાસ; ભાંતિ મટે શાંતિ મળે, આત્મભાવ સુવિલાસ. સમ્યક્ રત્નત્રય અભેદ, નિજ ગુણ સ્થિરતા રૂપ; ઉદય થાય ચારિત્રનો, શ્રી સહજાત્મસ્વરૂપ. પરમ પુરુષને સહજથી, પરમ ભાવ ઉલ્લાસ; આરાધન નિર્મળપણે, વીતરાગપદ વાસ.'

* * *

૧- બહ્મચારીજી શ્રી ગોવર્ધનદાસજી, 'આત્મસિદ્ધિ વિવેચન', બીજી આવૃત્તિ, પૃ.૮૬

૨- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૨ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિશાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૪૫-૪૪૮)

देवल जिन्द-दल्लद्यं, काणंड क्केरान, दार्थे देवल सात के, हेर छनं जिन्हें एः ગાથા ૧૧૨માં શ્રીગુરુએ કહ્યું કે સમકિતની વધતી જતી ધારા હાસ્ય-ભૂમિકા શોકાદિરૂપ મિથ્યાભાસને - ચારિત્રના દોષોને ટાળે છે અને સ્વભાવ-સમાધિરૂપ ચારિત્રનું પ્રગટવું થાય છે, જેથી સર્વ રાગ-દેષના ક્ષયરૂપ વીતરાગપદમાં સ્થિતિ થાય છે.

સાધકદશાના પ્રારંભથી લઈને પૂર્ણતા સુધીની આત્મદશાનો કઈ રીતે વિકાસ થાય છે તેનું ક્રમબદ્ધ નિરૂપણ ગાથા ૧૦૮થી શ્રીગુરુ કરી રહ્યા છે. ગાથા ૧૦૮માં શ્રીગુરુએ જિજ્ઞાસુ જીવનું નિરૂપણ કર્યું. ગાથા ૧૦૯ થી ૧૧૧ સુધીમાં તેમણે વ્યવહાર તેમજ નિશ્ચય સમક્તિનું સ્વરૂપ દર્શાવી સમ્યક્ત્વદશાનું નિરૂપણ કર્યું. સમક્તિ વર્ધમાન થતાં, ચારિત્રદશાનો ઉદય થઈ સાધક વીતરાગપદમાં નિવાસ કરે છે એમ ગાથા ૧૧૨માં કહ્યું. હવે આ ગાથામાં વીતરાગદશાના ફળરૂપ એવી કૈવલ્યદશાનું નિરૂપણ કર્યું છે.

નિર્મળ, પવિત્ર, અખંડ, પૂર્ણ દશાનું એટલે કે કેવળજ્ઞાનના સ્વરૂપનું અપૂર્વ રહસ્ય પ્રકાશતાં શ્રીગુરુ કહે છે –

'કેવળ નિજસ્વભાવનું, અખંડ વર્તે જ્ઞાન; ગાથા કહીએ કેવળજ્ઞાન તે, દેહ છતાં નિર્વાણ.' (૧૧૩)

સર્વ આભાસરહિત આત્મસ્વભાવનું જ્યાં અખંડ એટલે ક્યારે પણ ખંડિત ન થાય, મંદ ન થાય, નાશ ન પામે એવું જ્ઞાન વર્તે તેને કેવળજ્ઞાન કહીએ છીએ. જે કેવળજ્ઞાન પામ્યાથી ઉત્કૃષ્ટ જીવન્મુક્તદશારૂપ નિર્વાણ, દેહ છતાં જ અત્રે અનુભવાય છે. (૧૧૩)

ખાવાર્થ પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવનું અખંડપણે જ્ઞાન વર્તે તે કેવળજ્ઞાન છે. જ્ઞાયક પણ આત્મા હોય અને જ્ઞેય પણ આત્મા રહે, વચમાં જ્ઞેય બદલાય નહીં તે કેવળજ્ઞાન છે. સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત થતાં વૃત્તિ શુદ્ધ સ્વભાવમાં વહેતી થઈ હોય છે, પરંતુ હજી જ્ઞેય બદલાતું રહે છે. સાધકને નિર્વિકલ્પ દશામાં તેમજ સવિકલ્પ દશામાં મતિ-શ્રુતજ્ઞાન કામ કરે છે. મતિ-શ્રુતજ્ઞાન ત્યાં ક્ષયોપમશમ ભાવે છે, એટલે એકવખતે એક જ્ઞેયને જાણવામાં તે પ્રવર્તે છે – કાં તો સ્વને જાણવામાં ઉપયોગ હોય, કાં પરને જાણવામાં ઉપયોગ હોય. ક્ષયોપશમ જ્ઞાનની શક્તિ જ એટલી મંદ હોય છે કે એક વખતે એક જ્ઞેય તરફ જ તેની પ્રવૃત્તિ હોય છે. કેવળજ્ઞાનમાં તો ત્રણે કાળના સ્વ-પરને

એકસાથે જાણવાનું સામર્થ્ય પ્રગટે છે, પણ ક્ષયોપશમ જ્ઞાનમાં એવું સામર્થ્ય હોતું નથી; એટલે જ્યારે સ્વને જાણવામાં ઉપયોગ હોય ત્યારે પરને જાણવામાં ઉપયોગ ન હોય; અને જ્યારે પરને જાણવામાં ઉપયોગ હોય ત્યારે સ્વને જાણવામાં ઉપયોગ ન હોય. જો કે જ્ઞાનીને જ્યારે સ્વને જાણવામાં ઉપયોગ હોતો નથી ત્યારે જ્ઞાન કંઈ અજ્ઞાન થઈ જતું નથી, કેમ કે સ્વસંવેદન વખતે જે જ્ઞાન થયું હતું, તે જ્ઞાન લબ્ધિરૂપે તો પરને જાણતી વખતે પણ વર્તે જ છે. આમ, ધ્યેય તો આત્મા જ હોય છે, પણ જ્ઞેય બદલાય છે. જો બે ઘડી સુધી જ્ઞેય પણ આત્મા જ રહે તો કેવળજ્ઞાન પ્રગટે છે. અસ્થિરતા અને રાગ-દેષની વૃત્તિ સંપૂર્ણપણે ટળવાથી નિજસ્વભાવનું અખંડ જ્ઞાન પ્રગટે છે, જેને કેવળજ્ઞાન કહેવાય છે.

જ્યારે કોધાદિ કષાય તથા હાસ્યાદિ નોકખાયરૂપી મિથ્યા આભાસો આત્મામાંથી સંપૂર્ણપણે નીકળી જાય છે ત્યારે માત્ર શુદ્ધ આત્મસ્વભાવમાં જ રમણતાસ્વરૂપ અખંડ જ્ઞાન પ્રગટે છે. આ જ્ઞાન ત્રણે કાળમાં કદાપિ નષ્ટ થતું નથી, ચાલ્યું જતું નથી, ખંડિત થતું નથી, મંદ થતું નથી, ઓછું થતું નથી. આવું શાશ્વત સ્થિતિરૂપ શુદ્ધ નિર્મળ ક્ષાયિક ભાવનું જે જ્ઞાન પ્રગટ થાય છે તેને કેવળજ્ઞાન કહેવાય છે. જ્યારે આ કેવળજ્ઞાન પ્રગટ થાય છે ત્યારે આત્મા હજુ દેહના સંયોગમાં હોય છે, તે છતાં પણ તે પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપના અનુભવાત્મક નિર્વાણપદને ભોગવે છે. શેષ રહેલ ચાર અઘાતી કર્મના નિમિત્તે હજી દેહધારીપણું છે, પરંતુ સ્વભાવનું સામર્થ્ય પૂર્ણપણે ઊઘડી ગયું હોવાથી દેહ છતાં ઉત્કૃષ્ટ જીવન્મુક્તદશારૂપ નિર્વાણ અનુભવાય છે, તેથી આ સ્થિતિને ભાવમોક્ષ પણ કહેવાય છે.

વિશેષાર્થ કેવળજ્ઞાનની પરલક્ષી વ્યાખ્યાને ગૌણ કરી, સ્વલક્ષી વ્યાખ્યાને પ્રધાન કરી શ્રીમદે કેવળજ્ઞાનના તાત્ત્વિક - પારમાર્થિક સ્વરૂપનું રહસ્ય આ ગાથામાં પ્રગટ કર્યું છે. સર્વ કાળના સર્વ મુમુક્ષુઓને આ રહસ્ય પરમ ઉપકારી, અપૂર્વ માર્ગદર્શન આપનારું થાય એવું છે.

કેવળજ્ઞાનના પારમાર્થિક સ્વરૂપ અંગે પ્રશ્નો કરી^૧ શ્રીમદ્દ્ શ્રી સૌભાગ્યભાઈ, શ્રી ડુંગરશીભાઈ આદિ મુમુક્ષુઓને ઊંડી વિચારજ્ઞા અર્થે મંથન કરવા પ્રેરતા અને તેનું યથાયોગ્ય સમાધાન^ર પણ આપતા. કેવળજ્ઞાનના સ્વરૂપ અંગે અપાતા સમાધાનની વિશેષતા એ છે કે તેની વ્યાખ્યા એવા પ્રકારે અપાઈ છે કે જેથી શાસ્ત્રમર્યાદાને બાધ આવ્યા વિના, તેની આત્મહિતકારી વ્યાખ્યા પ્રત્યે મુમુક્ષુઓનું લક્ષ કેન્દ્રિત થાય. શ્રીમદે કેવળજ્ઞાનની વ્યાખ્યા એવા પ્રકારની કરી છે કે જેથી શાસ્ત્રીય વ્યાખ્યાનો પરમાર્થ આશ્ય

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પત્રાંક ૬૧૫, ૬૧૭, ૬૨૮, ૬૨૯ ઇત્યાદિ.

૨- એજન, પત્રાંક ૬૭૯, ૬૯૪ ઇત્યાદિ.

સુગમપણે સમજાય. આ પરમાર્થ આશય સમજ્યા વગર, આશયાંતરથી રુઢિગતપણે કેવળ-જ્ઞાનની જે વ્યાખ્યા કરવામાં આવે છે તેમાં અને યથાર્થ પરમાર્થ આશય સમજીને જે વ્યાખ્યા કરવામાં આવે છે તેમાં ઘણું અંતર છે. વર્તમાન રુઢિ-અર્થમાં કેવળજ્ઞાનની મુખ્ય વ્યાખ્યાને ગૌણ અને ગૌણ વ્યાખ્યાને મુખ્ય કરવામાં આવી છે. શ્રીમદે કેવળજ્ઞાનની રુઢિગત વ્યાખ્યાપ્રણાલિકાથી જુદી જ તરી આવે એવી મૂળભૂત અને મૌલિક પરમાર્થ-વિચારણાથી શાસ્ત્રીય વ્યાખ્યાનો અપૂર્વ પરમાર્થ આશય બતાવી, કેવળજ્ઞાનના સ્વરૂપ ઉપર અલૌકિક પ્રકાશ નાખ્યો છે. આ ગાથામાં શ્રીમદે પ્રકાશેલા કેવળજ્ઞાનના સ્વરૂપ અંગે વિચારણા કરીએ.

આત્માર્થીએ કેવળજ્ઞાન પ્રગટ કરવા અર્થે પહેલાં રાગથી આત્માની ભિન્નતાની તથા જ્ઞાન સાથે આત્માની એકતાની શ્રદ્ધા કરવી જોઈએ અને પછી જ્ઞાનને સ્વરૂપમાં સ્થિર કરી, વીતરાગભાવ પ્રગટ કરી, સંપૂર્ણ એકતા કરવી જોઈએ. પોતાના રાગરહિત શુદ્ધ જ્ઞાયકસ્વભાવના લક્ષે રાગ-દ્વેષ છૂટે છે અને કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થાય છે. પોતાના રાગરહિત ચૈતન્યસ્વભાવનો વિશ્વાસ કરતાં પર્યાયમાંથી પણ રાગ ટળવા માંડે છે. જીવને પોતાના દોષથી પરલક્ષે રાગ રહે છે, સ્વલક્ષે કદી રાગ-દ્વેષ થતા નથી. દેષ્ટિ પર તરફથી હટાવી સ્વ તરફ વાળતાં જ નવીન રાગ ઊપજતા અટકી જાય છે. આ જ મોક્ષનો માર્ગ છે. આ જ દુ:ખ ટાળવાનો યથાર્થ ઉપાય છે.

જીવે કદી પણ પોતા તરફ જોવાની દરકાર જ કરી નથી. તે વિચારતો નથી કે રાગ સ્વભાવમાં છે કે તેનાથી જુદો છે? આ રાગ પ્રત્યેક સમયે નવો થાય છે કે એક ને એક જ અનાદિ કાળથી ચાલ્યો આવે છે? જ્ઞાનીપુરુષો કહે છે કે આત્માનો સ્વભાવ ત્રિકાળી શુદ્ધ છે, તેમાં કશે પણ રાગ નથી. આત્માના સ્વભાવમાં રાગ છે જ નહીં. રાગાદિ પરિણામ સદાકાળ ટકી રહેતાં નથી. તે અનિત્ય છે. રાગ પર્યાયમાં થાય છે, તેથી તેનો કાળ માત્ર એક સમયનો જ છે. એક પર્યાયનો રાગ લંબાઈને બીજી પર્યાયમાં આવી શકતો નથી. એક સમયની ભૂલ પછી બીજા સમયે જીવ સ્વતંત્ર છે કે તેણે સ્વભાવમાં રહેવું કે વિભાવમાં જવું. રાગરહિત આત્મસ્વભાવ પ્રત્યે દેષ્ટિ નહીં હોવાથી અજ્ઞાની જીવ બીજા સમયે મળેલી આ સ્વતંત્રતાને પરભાવના જોશમાં ખોઈ બેસે છે. પ્રત્યેક સમયે તે ઊંધો પુરુષાર્થ કરી, નવીન નવીન રાગ ઉત્પન્ન કરતો રહે છે અને આ રીતે રાગ લંબાતો રહે છે.

રાગમાં એકત્વબુદ્ધિ થઈ હોવાથી અજ્ઞાની જીવ રાગને પોતાનું સ્વરૂપ માને છે. તે એક સમયની લાગણી જેટલું જ પોતાનું સ્વરૂપ માને છે. રાગ તો એક સમયની વિકૃત અવસ્થા છે. તે વખતે શુદ્ધ જ્ઞાનસ્વભાવ પણ વિદ્યમાન છે જ; પરંતુ મિથ્યાદષ્ટિ જીવને એકલો રાગ જ ભાસે છે, પોતાનો જ્ઞાયકસ્વભાવ નથી ભાસતો. જેને સ્વભાવનું

બળ ન ભાસતાં વિકારનું બળ ભાસે છે, તેને સ્વભાવનો મહિમા અને વિશ્વાસ નથી હોતા. તેને સ્વભાવનો અનાદર તથા વિકારનો આદર છે અને તે જ તેનાં દુ:ખનું મૂળ છે. જ્યાં સુધી જીવ મિથ્યા માન્યતા સેવે છે, ત્યાં સુધી ક્લેશ અને દુ:ખ રહ્યા જ કરે છે, માટે તેણે પોતાની ઊંધી માન્યતા પલટાવવી જોઈએ. તેણે નક્કી કરવું ઘટે કે 'રાગ તો મારા ઊંધા પુરુષાર્થથી પર્યાયમાં એક સમય પૂરતી નવીન ઊપજ છે. મારા સ્વભાવમાં રાગ છે જ નહીં. મારું સ્વરૂપ તો ત્રિકાળ શુદ્ધ છે.' પોતાના સ્વભાવની આવી ઓળખાણ કરી જો તે સ્વભાવ તરફ ઢળે તો અવશ્ય રાગથી ભિન્ન સ્વભાવનો તેને અનુભવ થાય. આમ, રાગમાં કરેલું એકત્વ છોડી, જ્ઞાનસ્વભાવમાં એકત્વબુદ્ધિ સ્થાપે તો કાર્ય થાય.

જ્ઞાન અને રાગને નિકટતા છે, પણ એકતા નથી. બન્નેનાં લક્ષણ જુદાં છે. જ્ઞાન અને રાગ બન્ને એક જ પર્યાયમાં વર્તતા હોવા છતાં બન્ને કદી એક થયાં નથી, બન્ને પોતપોતાનાં સ્વલક્ષણમાં ભિન્ન ભિન્ન છે. આ લક્ષણભેદ વડે તેને જુદાં ઓળખીને, તેની સૂક્ષ્મ અંતઃસંધિમાં પ્રજ્ઞારૂપી છીણીને પટકવાથી તે અવશ્ય જુદાં પડે છે. આત્મા અને રાગભાવ બન્નેનાં લક્ષણોને ભિન્ન ભિન્ન જાણીને, પ્રજ્ઞાછીણી વડે તે બન્નેની સંધિ તોડી નાખતાં આત્મા અને રાગ જુદા થઈ જાય છે.

આત્મા અને રાગભાવની દરેક સંધિ છેદવા માટે ભેદજ્ઞાનરૂપી પ્રજ્ઞાછીણી જ સર્વોત્તમ સાધન છે. પ્રજ્ઞા એટલે વિશેષ જ્ઞાન - તીક્ષ્ણ જ્ઞાન - સૂક્ષ્મ જ્ઞાન. તેના વડે આત્મા અને રાગ બન્નેનાં લક્ષણો ભિન્ન ભિન્ન જાણીને તેને જુદા પાડી શકાય છે. જેમ પથ્થરની સાંધને લક્ષમાં લઈને તે સાંધમાં સુરંગ ફોડતાં તેના કટકા થઈ જાય છે, તેમ આત્મા અને રાગ વચ્ચેની સૂક્ષ્મ સાંધને લક્ષમાં લઈને, સાવધાનપણે તેમાં ભગવતી પ્રજ્ઞારૂપી સુરંગ ફોડતાં આત્મા રાગથી જુદો થઈ જાય છે. તે બન્નેને જુદા કરીને ભગવતી પ્રજ્ઞા આત્મા સાથે એકરૂપ થઈ જાય છે અને રાગને પોતાથી જુદો જ રાખે છે. રાગ જુદો થઈ જતાં આત્મા રાગથી છૂટો થઈ જાય છે. આ રીતે ભગવતી પ્રજ્ઞા રાગને છેદીને આત્માને મુક્તિ પમાડે છે. આવું ભેદજ્ઞાન કરનારી ભગવતી પ્રજ્ઞા

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવકૃત, 'સમયસારકલશ', કલશ ૧૮૧

'प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमि निपुणैः पातिता सावधानैः सूक्ष्मेऽन्तःसंधिबंधे निपतित रभसादात्मकर्मोभयस्य । आत्मानं मग्नमंतः स्थिरविशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे बंधं चाज्ञानभावे नियमितमिभतः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ।।'

સરખાવો : પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૬, કડી ૮ 'જિન પરમ પૈની સુબુધિ છૈની, ડારિ અંતર ભેદિયા; વરણાદિ અરુ રાગાદિતેં, નિજ ભાવકો ન્યારા કિયા.' જ મોક્ષનું સાધન છે.

આત્માર્થી જીવ અત્યંત સાવધાનીપૂર્વક પ્રજ્ઞાછીશી વડે જ્ઞાન અને રાગને ભિન્ન ભિન્ન કરી નાંખે છે. પોતાના સર્વ પ્રયત્ન વડે આખા જગતથી પાછા વળીને, ચૈતન્ય તરફ વળવાના ઉદ્યમ વડે, અત્યંત જાગૃતિપૂર્વક જ્ઞાન અને રાગની સંધિની વચ્ચે પ્રજ્ઞા- છીણી ચલાવે છે અને બન્નેને જુદાં કરે છે. પ્રજ્ઞા આત્મા તરફ વળીને એકાગ્ર થતાં રાગથી જુદી પડી જાય છે. જ્ઞાન અને રાગને ભિન્ન જાણ્યાં પછી તેની સાથેનો એકતાનો ભ્રમ રહેતો નથી, એટલે કે જ્ઞાન રાગમાં એકત્વભાવે પરિણમતું નથી, પણ રાગથી ભિન્ન એવા મોક્ષભાવે પરિણમે છે. નિર્મળ ભેદજ્ઞાન વૃત્તિઓને તોડતું તોડતું, સ્વરૂપની એકાગ્રતા વધારતું વધારતું, મોક્ષમાર્ગ પૂર્ણ કરીને મોક્ષરૂપે પરિણમી જાય છે.

રાગથી જુદું રહેનાર જ્ઞાન મોક્ષ પામે છે અને રાગમાં અટકી જનારું જ્ઞાન બંધાય છે. અજ્ઞાનીને રાગ અને જ્ઞાન વચ્ચે અભેદબુદ્ધિ - એક્ત્વબુદ્ધિ હોય છે, જ્યારે જ્ઞાનીએ રાગ અને જ્ઞાનને જુદાં ઓળખ્યાં હોય છે. જ્ઞાનીને ગમે તેવા પ્રસંગમાં પણ સમયે સમયે સ્વભાવમાં જ્ઞાનની એકતા વધતી જાય છે અને રાગ તુટતો જાય છે. જ્ઞાનીનાં પરિણામનો પ્રવાહ ચૈતન્યસ્વભાવ તરફ જ વહે છે. રાગ તરફ વહેતો નથી. નિર્મળ પરિણામ3પે પરિણમેલા જ્ઞાની રાગમાં તન્મયપણે પરિણમતા નથી, પણ રાગને પોતાથી ભિન્નપણે જાણે છે. ભેદજ્ઞાન વડે તેમણે રાગને જ્ઞાનથી અત્યંત ભિન્ન કરી નાખ્યો છે. જેમ હંસ દૂધ અને પાણીને અલગ કરે છે. તેની ચાંચમાં એવો ગુણ છે કે જેવી તે દૂધ-પાણીના મિશ્રણને અડે કે તરત જ દૂધ અને પાણી અલગ થઈ જાય; તેમ પોતાના શ્રદ્ધાનમાં રાગ અને જ્ઞાનની એકતા થઈ ગઈ હતી, તે એકતા ભેદજ્ઞાનના બળ વડે છુટી જતાં જ્ઞાનીને હવે જ્ઞાન અને રાગ જુદાં જણાય છે. તેઓ જ્યારે શુદ્ધોપયોગમાં ન હોય ત્યારે તેમને રાગ થાય છે, પણ રાગના સ્વામીપણાના નકાર વડે, દઢતાપૂર્વક તેઓ રાગને તોડી નાખે છે. જે રાગાદિ વૃત્તિ આવે તેને જાગૃતિપૂર્વક પકડીને પુરુષાર્થ વડે તેનો નાશ કરે છે. જ્યારે સર્વથા સર્વ પ્રકારે રાગનો ક્ષય થાય ત્યારે કેવળજ્ઞાન પ્રગટે છે. જ્યાં કેવળજ્ઞાન છે ત્યાં રાગ નથી અથવા જ્યાં રાગ છે ત્યાં કેવળજ્ઞાન નથી. કેવળજ્ઞાન એટલે માત્ર જ્ઞાન જ અને તે સિવાય બીજું કંઈ જ નહીં. કેવળજ્ઞાનની વ્યાખ્યા કરતાં શ્રીમદ્દ લખે છે –

'આત્મા જ્યારે અત્યંત શુદ્ધ જ્ઞાનસ્થિતિ ભજે, તેનું નામ 'કેવળજ્ઞાન' મુખ્યપણે છે, સર્વ પ્રકારના રાગદ્વેષનો અભાવ થયે અત્યંત શુદ્ધ જ્ઞાનસ્થિતિ પ્રગટવા યોગ્ય છે, તે સ્થિતિમાં જે કંઈ જાણી શકાય તે 'કેવળજ્ઞાન' છે; અને તે સંદેહ યોગ્ય નથી.'^૧

૧- 'શ્રીમદ્દ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૪૯૮ (પત્રાંક-૬૭૯)

કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત થતાં આત્મામાં અખંડપણે તન્મયતા હોવાથી તથા કષાયરહિત-પશું હોવાથી જ્ઞાન એવું તો નિર્મળ થાય છે કે જેથી તેમાં અલોકાકાશ સહિત ત્રણ લોક અને ત્રણ કાળના સર્વ પદાર્થો તેની સર્વ પર્યાયો સહિત એકીસાથે ઝળકે છે. કેવળજ્ઞાનની શક્તિ સર્વ દ્રવ્ય અને સર્વ પર્યાયોને જાણે છે. જગતમાં રહેલાં સમસ્ત દ્રવ્યો તથા પ્રત્યેક દ્રવ્યની ત્રિકાળવર્તી અનંતાનંત પર્યાયો કેવળજ્ઞાનમાં એક જ સમયમાં ઇન્દ્રિયોની સહાયતા વગર પરિપૂર્ણરૂપે જ્ણાય છે. સમસ્ત જગતમાં જે કાંઈ સર્જાયું હતું, સર્જાઈ રહ્યું છે અને ભવિષ્યમાં સર્જાવાનું છે, એ બધું કેવળજ્ઞાનમાં વર્તમાન ક્ષણે, વર્તમાનની જેમ જ સ્પષ્ટ જણાય છે. જગતમાં એવી કોઈ વસ્તુ કે એવો કોઈ ભાવ નથી કે જે કેવળજ્ઞાનથી જાણી ન શકાય. આથી જ કેવળજ્ઞાનીને સર્વજ્ઞ કહેવામાં આવે છે. સર્વજ્ઞ એટલે સઘળું જાણનાર. જે સર્વને જાણે તે સર્વજ્ઞ.

જેમ અરીસામાં વસ્તુનું પ્રતિબિંબ પડે છે, તેમ કેવળજ્ઞાનમાં ત્રણ કાળની સર્વ વસ્તુઓનું અને તેની સર્વ પર્યાયોનું પ્રતિબિંબ પડે છે અને તેથી કેવળજ્ઞાની ભગવંત જગતનાં સર્વ દ્રવ્યોને અને તેની ત્રણે કાળની સર્વ પર્યાયોને જાણી શકે છે. ભીંત સામે રહેલી વસ્તુનું પ્રતિબિંબ ભીંતમાં પડતું નથી, પણ તે વસ્તુ અરીસા સામે હોય તો તેનું પ્રતિબિંબ પડે છે, કારણ કે પદાર્થોને પ્રતિબિંબિત કરવાનો ગુણ ભીંતમાં નથી, અરીસામાં છે; તેથી અરીસાની સામે આવતી વસ્તુ તેમાં પ્રતિબિંબિત થાય છે. જો કે અરીસામાં કેવળ રૂપ-રંગ જ પ્રતિબિંબિત થાય છે, પણ કેવળજ્ઞાનરૂપી દર્પણ તો એવું વિલક્ષણ છે કે તેમાં રૂપી પદાર્થોનાં સ્પર્શ, રસ, ગંધ, વર્ણ તો ઝળકે જ છે, પણ અરૂપી અને સૂક્ષ્મ બાબતો તેમજ સમીપવર્તી કે દૂરવર્તી બધાં દ્રવ્યોની ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યકાલીન પર્યાયો તથા કેવળી ભગવાનનાં પોતાનાં પણ અનંત ગુણ-પર્યાયો તેમાં જણાય છે.

કેવળજ્ઞાનનું સામર્થ્ય અદ્ભુત છે. વિશ્વમાં અનંતાનંત જીવો છે, તેના કરતાં અનંતાનંતગુણા પુદ્દ્ગલો છે, તેના કરતાં અનંતગુણા ત્રણ કાળના સમયો છે અને તેના કરતાં અનંતગુણા ત્રણ કાળના સમયો છે અને તેના કરતાં અનંતગુણા લોકાલોકના આકાશપ્રદેશો છે. આ બધું કેવળજ્ઞાનની એક સમયની પર્યાયમાં એકસાથે ઝળકે છે. કેવળજ્ઞાનનું આવું અચિત્ય સામર્થ્ય છે. કેવળજ્ઞાનનું સામર્થ્ય દર્શાવતાં અન્ય રીતે કહેવાય છે કે વિશ્વમાં અનંતાનંત જીવો છે. એક એક જીવના અનંત ગુણો છે. તેની સમય સમયની અનંત પર્યાયો છે. એક એક ગુણના

१- প্তুઓ : આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી तत्त्वार्થाधिगम सूत्र', अध्याय १, सूत्र ૩૦ 'सर्वद्रव्यपयिषु केवलस्य ।।'

સરખાવો : પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૪, કડી ૪ 'સકલ દ્રવ્યકે ગુન અનંત, પરજાય અનંતા; જાને એક કાલ, પ્રગટ કેવલિ ભગવન્તા.' અસંખ્યાત પ્રદેશો છે. એવા એક એક પ્રદેશે અનંત કાર્મણ વર્ગણા છે. એક એક કાર્મણ વર્ગણા મધ્યે અનંત અનંત પુદ્દગલપરમાશુઓ છે. એક એક પુદ્દગલપરમાશુ અનંત ગુણ અને અનંત પર્યાય સહિત છે. આ સર્વ એક જ સમયમાં કેવળજ્ઞાનમાં પ્રત્યક્ષ યુગપદ્દ ઝળકે છે. કેવળજ્ઞાનના સૂક્ષ્મતમ સ્વરૂપની મીમાંસા કરતાં શ્રીમદ્ લખે છે —

'કાળનો સૂક્ષ્મમાં સૂક્ષ્મ વિભાગ 'સમય' છે, રૂપી પદાર્થનો સૂક્ષ્મમાં સૂક્ષ્મ વિભાગ 'પરમાણુ' છે, અને અરૂપી પદાર્થનો સૂક્ષ્મમાં સૂક્ષ્મ વિભાગ 'પ્રદેશ' છે. એ ત્રણે એવા સૂક્ષ્મ છે કે અત્યંત નિર્મળ જ્ઞાનની સ્થિતિ તેનાં સ્વરૂપને ગ્રહણ કરી શકે; સામાન્યપણે સંસારી જીવોનો ઉપયોગ અસંખ્યાત સમયવર્તી છે, તે ઉપયોગમાં સાક્ષાત્પણે એક સમયનું જ્ઞાન સંભવે નહીં; જો તે ઉપયોગ એક સમયવર્તી અને શુદ્ધ હોય તો તેને વિષે સાક્ષાત્પણે સમયનું જ્ઞાન થાય. તે ઉપયોગનું એક્સમયવર્તીપણું કષાયાદિના અભાવે થાય છે, કેમકે કષાયાદિ યોગે ઉપયોગ મૂઢતાદિ ધારણ કરે છે, તેમ જ અસંખ્યાત સમયવર્તીપણું ભજે છે; તે ક્ષાયાદિને અભાવે એક્સમયવર્તીપણું થાય છે; અર્થાત ક્ષાયાદિના યોગે તેને અસંખ્યાત સમયમાંથી એક સમય જુદો પાડવાનું સામર્થ્ય નહોતું તે કષાચાદિને અભાવે એક સમય જુદો પાડીને અવગાહે છે. ઉપયોગનું એક્સમયવર્તીપણું, કષાયરહિતપણું થયા પછી થાય છે; માટે એક સમયનું, એક પરમાણનું, અને એક પ્રદેશનું જેને જ્ઞાન થાય તેને 'કેવળજ્ઞાન' પ્રગટે એમ કહ્યું છે. તે સત્ય છે. કષાયરહિતપણા વિના કેવળજ્ઞાનનો સંભવ નથી, અને કષાય-રહિતપણા વિના ઉપયોગ એક સમયને સાક્ષાત્પણે ગ્રહણ કરી શકતો નથી. માટે એક સમયને ગ્રહણ કરે તે સમયે અત્યંત કષાયરહિતપણું જોઈએ, અને જ્યાં અત્યંત કષાયનો અભાવ હોય ત્યાં 'કેવળજ્ઞાન' હોય છે; માટે એ પ્રકારે કહ્યું કે : એક સમય, એક પરમાણુ અને એક પ્રદેશનો જેને અનુભવ થાય તેને 'કેવળજ્ઞાન' પ્રગટે. જીવને વિશેષ પુરુષાર્થને અર્થે આ એક સુગમ સાધનનો જ્ઞાનીપુરુષે ઉપદેશ કર્યો છે. સમયની પેઠે પરમાણુ અને પ્રદેશનું સૂક્ષ્મપણું હોવાથી ત્રણે સાથે ગ્રહણ કર્યા છે. અંતર્વિચારમાં વર્તવાને અર્થે જ્ઞાનીપુરૂષોએ અસંખ્યાત યોગ કહ્યા છે. તે મધ્યેનો એક આ 'વિચારયોગ' કહ્યો છે એમ સમજવા યોગ્ય છે.^{'૧}

સમય, પરમાણુ, પ્રદેશ એ સર્વ સૂક્ષ્મતમ ભાવોને પૂર્ણ શુદ્ધ ઉપયોગ જ અહણ કરી શકે છે. ઉપયોગનું એકસમયવર્તીષણું કષાયાદિના પૂર્ણ અભાવે જ અહણ થાય છે અને કષાયાદિના સંપૂર્ણ અભાવે જ કેવળજ્ઞાનનું પ્રગટવાપણું થાય છે. તેથી જ શાસ્ત્રોમાં કેવળજ્ઞાનની વ્યાખ્યા કરતાં કહ્યું છે કે જે જ્ઞાન ત્રણ કાળ અને લોકાલોકવર્તી સર્વ પદાર્થ(અનંત ધર્માત્મક સર્વ દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયો)ને પ્રત્યેક સમયમાં યથાસ્થિત, પરિપૂર્ણ ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પ્.૪૯૭ (પત્રાંક-૬૭૯)

રૂપથી સ્પષ્ટ અને એકસાથે જાણે છે તેને કેવળજ્ઞાન કહેવાય છે.

અહીં એ સમજવું અત્યંત અગત્યનું છે કે સર્વજ્ઞના જ્ઞાનનું આવું સામર્થ્ય હોવા છતાં સર્વજ્ઞને પરને જાણવાની ઇચ્છા, વિકલ્પ કે લક્ષ હોતાં નથી; પરંતુ અત્માનો સ્વભાવ સમસ્ત જ્ઞેયોને એક જ સમયમાં જાણવાનો હોવાથી, જ્યારે આત્માના જ્ઞાન ગુણની પૂર્ણ વિકસિત શુદ્ધ પર્યાય - કેવળજ્ઞાન પ્રગટ થાય છે ત્યારે એમાં સમસ્ત લોકાલોક સહજપણે પ્રતિબિંબિત થાય છે. આત્મા વિશ્વનાં બધાં તત્ત્વોથી ભિન્ન તો છે જ, તેમજ બધાથી શ્રેષ્ઠ પણ છે, કારણ કે એ તમામને એક સમયમાં જાણવાની શક્તિ એકમાત્ર આત્મામાં છે. તેનામાં પોતાના અસ્તિત્વને તથા અન્ય પદાર્થોનાં અસ્તિત્વને જાણવાનું સામર્થ્ય હોવાથી આત્મા જ એક ઉત્કૃષ્ટ મહિમાવાન પદાર્થ છે. આ જગતમાં જાણવાવાળો પદાર્થ ન હોત તો લોકમાં રહેલાં દ્રવ્યોનાં અસ્તિત્વની પ્રસિદ્ધિ કોણ કરત? મૂલ્યવાન અને મહત્તાવાન પદાર્થ એ જ છે કે જે સર્વનાં અસ્તિત્વની પ્રસિદ્ધિ કરે. જે પ્રકાશ વડે આ વિશ્વ જણાય છે, તે પ્રકાશ ફક્ત ચૈતન્યરત્નનો જ છે.

આત્મા સ્વયં સ્વપરપ્રકાશક છે એટલે કેવળજ્ઞાનમાં લોકાલોકવર્તી સમસ્ત દ્રવ્યો સમસ્ત પર્યાય સહિત એક સમયમાં સ્પષ્ટ જજ્ઞાય છે. સ્વ-પરને જાજ્ઞનારા ચૈતન્યપ્રકાશથી સમગ્ર વિશ્વનું દર્શન થાય છે. કેવળજ્ઞાનથી સર્વ પરપદાર્થનું જે પ્રકાશકપણું છે તે સમજાવતાં એક પત્રમાં શ્રીમદ્ લખે છે –

'જેમ દીવો જ્યાં જ્યાં હોય છે, ત્યાં ત્યાં પ્રકાશકપણે હોય છે, તેમ જ્ઞાન જ્યાં જ્યાં હોય છે ત્યાં ત્યાં પ્રકાશકપણે હોય છે. દીવાનો સહજ સ્વભાવ જ જેમ પદાર્થપ્રકાશક હોય છે, તેમ જ્ઞાનનો સહજ સ્વભાવ પણ પદાર્થપ્રકાશક છે. દીવો દ્રવ્યપ્રકાશક છે, અને જ્ઞાન દ્રવ્ય, ભાવ બન્નેને પ્રકાશક છે. દીવાના પ્રગટવાથી તેના પ્રકાશની સીમામાં જે કોઈ પદાર્થ હોય છે તે સહજે દેખાઈ રહે છે; તેમ જ્ઞાનના વિદ્યમાનપણાથી પદાર્થનું સહેજે દેખાવું થાય છે. જેમાં યથાતથ્ય અને સંપૂર્ણ પદાર્થનું સહેજે દેખાઈ રહેવું થાય છે, તેને 'કેવળજ્ઞાન' કહ્યું છે.'

સર્વજ્ઞ ભગવાન વિશ્વના સમસ્ત પદાર્થો અને તેના ત્રિકાળી ભાવોને જાણે છે, તેનું કારણ છે આત્માની સ્વપરપ્રકાશક શક્તિની નિર્મળતા. સર્વને જાણવાના સામર્થ્યરૂપે પરિણમેલો સર્વજ્ઞનો આત્મા પોતે પોતાને જાણતો હોવા ઉપરાંત સર્વ જ્ઞેયોને પણ જાણે છે. ઓરડામાં રહેલી કોઈ એક વસ્તુને શોધવા માટે દીવો કર્યો હોય તો દીવાની પ્રકાશક શક્તિથી અન્ય વસ્તુ પણ પ્રકાશિત થાય છે, અર્થાત્ ત્યાં રહેલી બીજી વસ્તુઓ પણ દેખાય છે. તેવી જ રીતે આત્માનો પુરુષાર્થ માત્ર નિજસ્વરૂપની સંપૂર્ણ અનુભૂતિ માટે જ હોય છે અને એ જ લક્ષે પુરુષાર્થ કરવાથી કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે.

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૪૬૦ (પત્રાંક-૫૮૭)

સર્વને જાણવાની ઇચ્છા કરવાથી અથવા તો તે અર્થે પ્રયત્ન કરવાથી કોઈને કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકતું નથી. અન્ય સર્વથી લક્ષ હટાવી લઈ જે એકમાત્ર શુદ્ધાત્માનો આશ્રય લે છે, તે જ કેવળજ્ઞાન પામે છે. કેવળજ્ઞાનમાં સ્વ આત્મા તો ઝળકે જ છે અને સાથે સાથે પરપદાર્થો પણ ઝળકે છે. જે આત્માને જાણે છે તે સર્વને જાણી લે છે. નિજ ચૈતન્યદ્રવ્ય શેયપણે સતત અને સહજ ટકે છે ત્યારે લોકાલોકનાં સમસ્ત દ્રવ્યની સર્વ ત્રિકાળવર્તી પર્યાયોનું યુગપદ્ જ્ઞાન સહજપણે થાય છે.

લોકાલોકને જાણવા છતાં સર્વજ્ઞનું જ્ઞાન પરસન્મુખ થતું નથી. તેમના ઉપયોગને પર-ઉપયોગ કહેવાતો નથી, કારણ કે સર્વજ્ઞને પર વિષે કિંચિત્માત્ર રતિ-અરતિપણું નથી. કેવળી ભગવંતને વિશ્વના સર્વ પદાર્થો જણાય છે અને સર્વ જણાવા છતાં ત્યાં રાગાત્મક કે દેષાત્મક પ્રતિક્રિયાનો અભાવ છે. તેઓ કેવળ જ્ઞાતા છે. તેઓ પૂર્ણવીતરાગી છે. કેવળી ભગવંત અને અજ્ઞાની બન્ને પરને જાણે છે, પરંતુ બન્નેના જાણવામાં મોટો ફરક છે. સર્વજ્ઞ ભગવાનને સંપૂર્ણપણે પર જણાતું હોવા છતાં રાગ-દેષ-મોહનો છાંટો પણ નથી, પરંતુ અજ્ઞાની જીવ પરવસ્તુને જાણે છે ત્યારે તેનું જ્ઞાન રાગ-દેષ-મોહથી મિશ્રિત-કલુષિત-દુષિત હોય છે. અજ્ઞાનીનો જ્ઞાનોપયોગ પાંચ ઇન્દ્રિય દ્વારા પરપદાર્થને જાણે છે ત્યારે પરને જાણવાના આ કાર્યમાં, પૂર્વસંસ્કારવશ ઇષ્ટ-અનિષ્ટની કલ્પના ભળી જવાથી રાગાત્મક અને દેષાત્મક પ્રતિક્રિયાઓ થાય છે.

પરને જાણતી વખતે અજ્ઞાની જીવ પોતે માત્ર જાણનારો છે એમ ધ્યાનમાં ન લેતાં, 'તે જ્ઞેય વસ્તુ એટલે હું, તે જ્ઞેય વસ્તુ મારી, તે જ્ઞેય વસ્તુનો હું કર્તા, તે જ્ઞેય વસ્તુમાં હું ફેરફાર કરનારો, તે જ્ઞેય વસ્તુઓને હું ભોગવનારો' - એવી ભૂલભરેલી માન્યતા કરે છે અને તેથી જ્ઞેયો સંબંધીનું તેનું જ્ઞાન દુષિત થાય છે. જેમ કે શરીર એ જ્ઞેય છે, પરંતુ 'શરીર એટલે હું' એવું અજ્ઞાની માને છે એ એકત્વબુદ્ધિ છે. સ્ત્રી-પુત્ર, ધન-સંપત્તિ ઇત્યાદિ જ્ઞેય છે, પરંતુ 'આ બધાં મારાં છે' એવું તે માને છે એ મમત્વબુદ્ધિ છે. છોકરાઓ મોટા થાય અથવા ધનનો સંયોગ થાય, તે સર્વ જ્ઞેય હોવા છતાં 'મેં છોકરાઓને મોટા કર્યા, હું ધન કમાયો' એવું તે માને છે એ કર્તૃત્વબુદ્ધિ છે. તેમજ પરપદાર્થોનો સંયોગ થતાં તે એમાં સુખ માને છે અને વિયોગમાં દુઃખ માને છે એ ભોક્તૃત્વબુદ્ધિ છે. તે એકત્વ, મમત્વ, કર્તૃત્વ અને ભોક્તૃત્વની માન્યતાઓથી યુક્ત હોવાથી જ્ઞેયો સંબંધીનું તેનું જ્ઞાન વિપરીત હોય છે. તે પોતાના જ્ઞાનસ્વરૂપને ભૂલીને, પરના લક્ષે વિકારરૂપે પરિણમી, દુઃખી થાય છે.

અજ્ઞાની જીવ પરના આશ્રયથી દુઃખી થાય છે, પરંતુ જ્ઞાની પોતાની સ્વભાવ-દેષ્ટિથી પરના જ્ઞાતા રહેતા હોવાથી સુખી હોય છે. જ્ઞાનીપુરુષે જ્ઞાયક આત્માનું સ્વસંવેદન કર્યું હોય છે. તેમને પોતાના સ્વરૂપ અને પરજ્ઞેય વચ્ચે ભેદજ્ઞાન થયું હોય છે. તેઓ પરપદાર્થોને જાણે છે ત્યારે પણ તેમનું હુંપણું માત્ર સ્વ આત્મામાં જ રહે છે. પરપદાર્થોમાં તેમને અહં-મમનો ભાવ રહેતો નથી. પરપદાર્થોને જાણવામાત્રથી દોષ થતો નથી, પરંતુ તેને પોતાના જાણવાથી, નિજરૂપ જાણવાથી, તેમાં નિજબુદ્ધિ કરવાથી જ મિથ્યાત્વનો દોષ લાગે છે. જ્ઞાનીને મિથ્યાત્વની નિવૃત્તિ થઈ હોવાથી તેઓ પોતાને નિજરૂપે જાણે છે અને પરજ્ઞેયને પરરૂપે જાણે છે. તેમને પરમાં ફેરફાર કરવાનો અભિપ્રાય તૂટી ગયો હોય છે. આત્માને પરથી ભિન્ન જાણ્યો હોવાથી પરદ્રવ્યોને ભોગવવાની રુચિ તેમને થતી નથી.

સ્વાધીન ચૈતન્યનો અનુભવ કર્યો હોવાથી તેમને દઢ નિર્ણય થયો હોય છે કે 'પર મારા જ્ઞાનનું માત્ર જ્ઞેય છે. તે સિવાય તેની સાથે મારે કોઈ સંબંધ નથી. ભલે જગત આખાનું ગમે તે થાઓ, તેને અને મારે કોઈ સંબંધ નથી. હું કેવળ જ્ઞાતા છું. જે કાંઈ થઈ રહ્યું છે તે મારામાં નથી થઈ રહ્યું, કેવળ મારી સામે થઈ રહ્યું છે. હું જગતનો સાક્ષીમાત્ર, જગતથી ભિન્ન, મારામાં અચળ, એકરૂપ, શાશ્વત જ્ઞાતા છું.' આવી દઢ શ્રદ્ધા થઈ હોવાથી તેમને પરજ્ઞેયો પ્રત્યે ઉત્સાહ નથી હોતો. પરજ્ઞેયનું પરિણમન જે પ્રકારે થાય છે, તેનો તેઓ જ્ઞાનમાં સ્વીકાર કરે છે. પરવસ્તુના પરિણમનમાં 'આ આમ કેમ?' એવો વિકલ્પ તેમને થતો નથી. તેમને સહજ, શાંત સ્વીકાર થાય છે. આના ફળસ્વરૂપ તે સંબંધી આકુળતા ઊભી થવાનો અવકાશ નથી રહેતો અને પરિણામમાં અત્યંત શાંતિ હોય છે. અજ્ઞાની જીવને આવો સ્વીકાર ન હોવાથી તે પરમાં ફેરફાર કરીને સુખી થવા જાય છે, પણ અંતે મળે છે તો દુઃખ જ. જ્ઞાનીને પોતાના સ્વરૂપના આશ્રયે જ્ઞાતા-દ્રષ્ટારૂપ અવસ્થા ઊપજી હોય છે, તે છતાં તેમને કિંચિત્ અસ્થિરતા હોય છે; જ્યારે કેવળીને પરને જાણતાં અલ્પ પણ અસ્થિરતા થતી નથી. તેઓ રાગ-દ્રેષ-અજ્ઞાનના સંપૂર્ણ અભાવ સહિત પરને જાણે છે.

કેવળજ્ઞાની ભગવંત પરનાં પરિવર્તનોના માત્ર જાણનાર છે; કરનાર, ફેરવનાર કે અટકાવનાર નથી. તેઓ પરને માત્ર જાણે છે, પરિણમાવતા નથી. વસ્તુનું પરિણમન તેમના જ્ઞાનને આધીન નથી હોતું. જે વસ્તુ સ્વયં પરિણમી હતી, પરિણમી રહી હોય છે અને પરિણમશે; તેને ભગવાને તો તે સ્વરૂપે માત્ર જાણી છે. જ્ઞાને તો વસ્તુના પરિણમનમાં કોઈ પણ પ્રકારનો હસ્તક્ષેપ કર્યા વગર જ માત્ર તેને જાણ્યું છે. કેવળી ભગવાન પણ વસ્તુના કાર્યમાં કોઈ પણ પ્રકારનો હસ્તક્ષેપ, ફેરફાર કે વધ-ઘટાદિ કરવા સમર્થ નથી. તેમને જે ક્ષાયિક જ્ઞાન પ્રગટ્યું છે તેનો અચિત્ય મહિમા છે, પરંતુ તે બધો મહિમા પોતાને પૂર્ણપણે જાણવા-વેદવાના કારણે છે, કંઈ પરના કારણે નથી. જ્ઞાન તો સ્થિરસ્વભાવી છે. તે પોતામાં ઠરે છે અને નિજાનંદને ભોગવે છે. કેવળજ્ઞાન સાથે તેમને અનંત વીર્ય પ્રગટ્યું છે, પણ તે અનંત સ્વબળ કાંઈ પરનું કોઈ કાર્ય નથી

કરતું. પોતાની સર્વ શક્તિ પોતામાં કામ કરે છે, પરમાં તે જરા પણ કામ નથી કરતી. એક પરમાશુમાં પણ ફેરફાર કરવાનું કોઈ સામર્થ્ય આત્મામાં નથી, છતાં આત્માનો સ્વભાવ સ્વયંમાં પૂર્ણ છે. દરેક દ્રવ્યનું સ્વતંત્ર પરિણમન પોતપોતાને કારણે થાય છે. દરેક દ્રવ્ય પોતપોતાનું કાર્ય સહજ રીતે, પોતાના ક્રમ પ્રમાણે કરતાં રહે છે અને એમાં જ બધાંની સુંદરતા છે અને એ જ આ વિશ્વની વ્યવસ્થા છે. વિશ્વ અને કેવળી ભગવાન વચ્ચે માત્ર જ્ઞેય-જ્ઞાતારૂપ સંબંધ છે. કેવળી ભગવાન પરના પરિણમનમાં કાંઈ કરતા નથી. પર તેમના જ્ઞાનનું જ્ઞેયમાત્ર છે. આમ, કેવળી ભગવંતને આત્માનું અખંડ જ્ઞાન વર્તે છે અને તેની સાથે સમસ્ત પદાર્થોનું જ્ઞાન પણ વર્તે છે, પરંતુ તેઓ પરજ્ઞેયમાં લુબ્ધ નથી થતા કે પરના પરિણમનમાં કાંઈ હસ્તક્ષેપ નથી કરતા. કેવળી ભગવાન પોતાના નિજસ્વભાવના વેદનમાં મગ્ન હોય છે.

માત્ર નિજસ્વભાવનું અખંડ જ્ઞાન વર્તે છે તેને કેવળજ્ઞાન કહેવા યોગ્ય હોવા છતાં, 'અનંત જ્ઞેય પદાર્થોને જાશે તે કેવળજ્ઞાન' અથવા 'ભૂત, ભવિષ્ય તથા વર્તમાન કાળના વ્યવસ્થિત ભાવ જેમાં પ્રગટ થાય તે કેવળજ્ઞાન' એવી કેવળજ્ઞાનની પરલક્ષી વ્યાખ્યા જ લોકસમૂહને વિષે પ્રચલિત છે; અને તેનું કારણ એ છે કે જગતના બહિર્દષ્ટિ જીવોને લોકાલોક જાણવામાં જ કેવળજ્ઞાનનો મહિમા ભાસે છે. લોકાલોકને જાણવું તે કેવળજ્ઞાન અથવા ભૂત-ભવિષ્યને જાણવું તે કેવળજ્ઞાન એ કથન વ્યવહારથી છે, ઉપચારથી છે, નિમિત્તથી છે. મૂળ વસ્તુને બતાવનાર નિશ્ચયનય છે, વ્યવહારનય તો પરના આધારે વસ્તુને બતાવે છે. સ્વરૂપમાં નિરંતર રહેવારૂપ જે કેવળજ્ઞાનની વ્યાખ્યા છે એમાં સ્વવસ્તુ ઉપર લક્ષ કરવામાં આવે છે, જ્યારે લોકાલોકને જાણવારૂપ જે કેવળજ્ઞાનની વ્યાખ્યા છે તેમાં પરવસ્તુ ઉપર લક્ષ કરવામાં આવે છે. સર્વ આભાસથી રહિત આત્મસ્વભાવનું જ્યાં અખંડ જ્ઞાન વર્તે તે કેવળજ્ઞાનની મુખ્ય, યથાર્થ, નિશ્ચયનયથી કરેલી વ્યાખ્યા છે. જ્ઞાનની નિર્મળતા થતાં તેની સ્વપરપ્રકાશક શક્તિના કારણે પરવસ્તુ સહેજે જણાય છે. 'કેવળી ભગવંતને ત્રણ કાળ અને ત્રણ લોકવર્તી સમસ્ત પદાર્થો જણાય' - તે કેવળ-જ્ઞાનની ગૌણ, ઉપચારથી, વ્યવહારનયથી કરેલી વ્યાખ્યા છે.

નિશ્ચય-વ્યવહારની વાતમાં નિશ્ચયની વાત મુખ્ય હોવા છતાં વર્તમાનમાં તે લગભગ ભુલાઈ ગયા જેવી થઈ ગઈ છે. સામાન્ય જનો તો પ્રાયઃ લોકાલોકના જ્ઞાનને જ કેવળજ્ઞાન સમજે છે. કેવળજ્ઞાનના નામે લોકાલોકના જ્ઞાનને જ મહત્ત્વ આપવામાં આવે છે, તેનાં જ ગીત ગવાય છે. સામાન્યપણે વર્તમાન પ્રરૂપણામાં જ્ઞેય એવા જગતને અનુલક્ષીને જ કેવળજ્ઞાનની વ્યાખ્યા કરવામાં આવે છે. આ જ્ઞેયલક્ષી વ્યાખ્યા તો પરલક્ષી છે, તે સત્ય હોવા છતાં આત્મલક્ષને પુષ્ટિ આપતી નથી; જ્યારે જ્ઞાયકલક્ષી વ્યાખ્યા, જે સ્વલક્ષનું નિરૂપણ કરે છે, તે જ આત્મહિતકારી છે અને તેથી તે પ્રધાન

ગણવા યોગ્ય છે. આ વિષે શ્રીમદ્ લખે છે –

'જેમ બને તેમ જગતના જ્ઞાન પ્રત્યેનો વિચાર છોડી સ્વરૂપજ્ઞાન થાય તેમ કેવળજ્ઞાનનો વિચાર થવા અર્થે પુરુષાર્થ કર્તવ્ય છે. જગતનું જ્ઞાન થવું તેનું નામ 'કેવળજ્ઞાન' મુખ્યાર્થપણે ગણવા યોગ્ય નથી. જગતના જીવોને વિશેષ લક્ષ થવા અર્થે વારંવાર જગતનું જ્ઞાન સાથે લીધું છે; અને તે કંઈ કલ્પિત છે એમ નહીં, પણ તે પ્રત્યે અભિનિવેશ કરવા યોગ્ય નથી. 'આત્માને વિષેથી સર્વ પ્રકારનો અન્ય અધ્યાસ ટળી સ્ફટિકની પેઠે આત્મા અત્યંત શુદ્ધતા ભજે તે 'કેવળજ્ઞાન' છે, અને જગતજ્ઞાનપણે તેને વારંવાર જિનાગમમાં કહ્યું છે, તે માહાત્મ્યથી કરી બાહ્યદૃષ્ટિ જીવો પુરુષાર્થમાં પ્રવર્તે તે હેતુ છે.''

શ્રીમદ્દ અહીં કહે છે કે કેવળજ્ઞાનનું માહાત્મ્ય બાહ્ય વસ્તુઓથી નહીં પણ નિજ સ્વભાવની અખંડ જાગૃતિના કારણે છે; અને આ પરમાર્થવ્યાખ્યા જ પુરુષાર્થપ્રેરક છે. જો કે તે અપૂર્વ વિષયનું ગ્રહણ સામાન્ય જીવોથી થવું અશક્ય છે એમ જાણીને શાસ્ત્રમાં આ જગતલક્ષી વ્યાખ્યાનું કથન કરવામાં આવ્યું છે, જેથી જગતના જ્ઞાન ઉપર વિચાર કરતાં કરતાં આત્મસામર્થ્ય સમજાય. જિનાગમમાં કેવળજ્ઞાનની જે વ્યવહાર વ્યાખ્યા કરવામાં આવેલ છે, તેની પોતાની પણ એક ઉપયોગિતા છે, તેનું પણ એક મહત્ત્વ છે. જેવી રીતે મ્લેચ્છને મ્લેચ્છ ભાષા વિના સમજાવી ન શકાય, તેમ જગતના જીવોને વ્યવહાર વિના પરમાર્થનો ઉપદેશ આપી શકાતો નથી અને તેથી જિનવાણીમાં વ્યવહારનું કથન આવે છે.

બહિર્દિષ્ટિ જીવોને કેવળજ્ઞાનનો મહિમા જગાડવા અર્થે આ વ્યવહાર વ્યાખ્યાનું મૂલ્ય છે, પણ જ્યાં આત્મસાક્ષાત્કારનું પ્રયોજન છે ત્યાં પરલક્ષી વ્યાખ્યા ગૌણ બની જાય છે. શુદ્ધાત્મસ્વરૂપની પ્રાપ્તિ માટે તેને ગૌણ કરવા યોગ્ય છે. દવાની બાટલી ઉપર દવાનું નામ છાપવામાં આવે છે, પણ એ તો માત્ર દવાનો સંકેત કરે છે, ખરી દવા તો બાટલીની અંદર હોય છે. જેમ દવાની બાટલીની બહાર લગાવેલી નામની કાપલીને ચાટવાથી દવાનો લાભ મળતો નથી, તેમ વ્યવહારનાં કથનનો આશ્રય કરવાથી પરમાર્થ સધાતો નથી. ગંગા નદીની લંબાઈ, પહોળાઈ, ઊંડાઈ વગેરે સંબંધી ભૌગોલિક માહિતી તો નકશામાંથી મળી જાય છે, પણ તેનાથી કોઈની તરસ છિપાતી નથી. વ્યવહારનાં કથનો પણ નકશાની નદી જેવાં છે. તે દ્વારા વસ્તુસ્થિતિને સમજી તો શકાય છે, પણ તેના આશ્રયથી આત્માનુભવ કરી શકાતો નથી. શુદ્ધાત્માની પ્રાપ્તિ માટે શુદ્ધ સ્વભાવનો લક્ષ આવશ્યક બને છે. બહાર જતી વૃત્તિઓને અંતર્મુખ કરવાનું પ્રયોજન હોય ત્યાં નિશ્ચયને મુખ્ય કરવાનો હોય છે. જ્યાં શુદ્ધાત્માની પ્રસિદ્ધિનું પ્રયોજન હોય ત્યાં શુદ્ધાત્માનું

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૪૯૮ (પત્રાંક-૬૭૯)

નિરૂપણ કરનાર નિશ્ચયનો આશ્રય કરવાનું જ્ઞાનીપુરુષોએ કહ્યું છે. નિશ્ચયને મુખ્ય રાખી નિરૂપણ કરનાર કથનપદ્ધતિ તે અધ્યાત્મપદ્ધતિ છે. પ્રયોજન અનુસાર કથનપદ્ધતિનો ઉપયોગ થાય તો પ્રયોજન સિદ્ધ થાય. મોક્ષમાર્ગનું જેને પ્રયોજન હોય તે અધ્યાત્મ-પદ્ધતિને અનુસરે તો તે મોક્ષપદ પ્રાપ્ત કરી શકે છે.

જેને સ્વની પ્રાપ્તિનું પ્રયોજન સિદ્ધ કરવું છે, તેણે યથાર્થ સમજણના આધારે પોતાના માટે અધ્યાત્મલક્ષી વ્યાખ્યાને મુખ્ય કરી સાધના કરવી ઘટે છે. આ વાત કેવળજ્ઞાન ઉપરાંત સમ્યગ્દર્શન, શ્રાવકદશા, મુનિદશા વગેરેને પણ લાગુ પડે છે. સામાન્યપણે જીવાદિ નવ તત્ત્વોની બૌદ્ધિક સમજણને સમ્યગ્જ્ઞાન માની લેવામાં આવે છે. શ્રાવકના બાર વ્રતો સ્વીકારવામાં આવે એટલે શ્રાવકત્ત્વ - દેશવિરતિની પ્રાપ્તિ થઈ એમ મનાય છે. પાંચ મહાવત સ્વીકાર કરવામાં આવે એટલે મુનિદશા - સર્વવિરતિની પ્રાપ્તિ થઈ એમ મનાય છે. પરંતુ વાસ્તવમાં તો માત્ર જીવાદિ તત્ત્વોના જ્ઞાનથી નહીં પણ આત્માનો નિર્વિકલ્પ અનુભવ થવાથી જ સમ્યગ્જ્ઞાન ઉપલબ્ધ થાય છે. આત્મામાં થોડી સ્થિરતા થાય ત્યારે શ્રાવકદશાની પ્રાપ્તિ થાય છે. જ્યારે અંતર્મુહૂર્તે અંતર્મુહૂર્તે આત્માનો અનુભવ થાય ત્યારે મુનિપદની પ્રાપ્તિ થાય છે. આત્માર્થી આ અધ્યાત્મલક્ષી વ્યાખ્યાઓને જ મહત્ત્વ આપે છે. તેનું ધ્યેય આત્મામાં અખંડ સ્થિરતા કરવાનું હોવાથી, નિજસ્વભાવનું અખંડ જ્ઞાન વર્તે તે કેવળજ્ઞાન - એ વ્યાખ્યાને જ તે મુખ્ય કરે છે.

સમ્યગ્દર્શન થયા પછી આત્મા ધ્યેયરૂપે તો સતત હોય છે, પણ જ્ઞેયરૂપે સતત નથી હોતો. નિજસ્વભાવનું વેદન હોય છે, પણ તે સતત - નિરંતર - અખંડપણે નથી હોતું. ગુણસ્થાન અનુસાર સ્વરૂપસ્થિરતામાં તરતમતા રહે છે. અખંડ અને એકસરખી આત્મદશા રહેતી નથી. તેમાં ચડતી-પડતી થયા કરતી હોવાથી અખંડિતતા જળવાતી નથી. કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિરૂપ તેરમું ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત થતાં અખંડ અને એકસરખી જ્ઞાનદશા રહે છે. ઉપયોગ નિજસ્વરૂપમાં પૂરો પ્રવેશી જાય છે અને પછી અનંત કાળમાં પણ તે કદી બહાર આવતો નથી. તે અનંત કાળ સુધી સ્વરૂપમાં જ લીન રહે છે. શ્રીમદ્ લખે છે —

'કેવળ અને સહજ અંતર્મુખ ઉપયોગ તો મુખ્યતાએ કેવળ ભૂમિકા નામે તેરમે ગુણસ્થાનકે હોય છે.'^૧

વળી અન્યત્ર લખે છે -

'આત્માપણે કેવળ ઉજાગર અવસ્થા વર્તે, અર્થાત્ આત્મા પોતાના સ્વરૂપને વિષે કેવળ જાગ્રત હોય ત્યારે તેને કેવળજ્ઞાન વર્તે છે એમ કહેવું યોગ્ય છે, એવો શ્રી ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પ્.૫૯૬ (પત્રાંક-૭૬૭)

તીર્થકરનો આશય છે.'^૧

આમ, કેવળજ્ઞાનની મુખ્ય વ્યાખ્યા સ્વલક્ષી છે, આત્મલક્ષી છે, જ્ઞાયકલક્ષી છે; અને ગૌણ વ્યાખ્યા પરલક્ષી છે, જગતલક્ષી છે, જ્ઞેયલક્ષી છે. બહિર્દષ્ટિ જીવો શાસ્ત્રના મુખ્ય પરમાર્થ આશ્યને નહીં સમજતા હોવાથી તેમણે મુખ્ય વ્યાખ્યાને ગૌણ અને ગૌણ વ્યાખ્યાને મુખ્ય કરી છે. દશ્ય પદાર્થની અપેક્ષાએ આ કાળમાં કેવળજ્ઞાનની જે વ્યાખ્યા પ્રચલિત છે તે અપૂર્ણ છે. તેની સાથે સ્વની અપેક્ષાએ વ્યાખ્યા મેળવીએ ત્યારે જ તે સંપૂર્ણ થઈ ગણાય. કેવળજ્ઞાનની પ્રચલિત વ્યાખ્યાઓમાં ખૂટતી કડીને જોડવા માટે શ્રીમદે આ ગાથામાં સ્વની - નિજસ્વભાવની અપેક્ષાએ કેવળજ્ઞાનની વ્યાખ્યા આપી છે. શ્રીમદે આ ગાથા દ્વારા જ્ઞેયલક્ષી થયેલા લોકોનું લક્ષ જ્ઞાયકલક્ષી એવી મુખ્ય પરમાર્થવ્યાખ્યા ઉપર કેન્દ્રિત કર્યું છે. આ ગાથામાં કેવળજ્ઞાન સંબંધી અતિ સૂક્ષ્મ મીમાંસા જોઈ, આનંદ અને આશ્ચર્ય થવા સાથે શ્રીમદ્ની ઉન્નત પ્રજ્ઞાનો તથા પરિપક્વ આધ્યાત્મિકતાનો વાચકને પરિચય થાય છે.

શ્રીમદે વર્તમાનમાં ભુલાઈ ગયેલી પરમાર્થવ્યાખ્યાને પુનઃ પ્રકાશિત કરી સાધક જીવો પ્રત્યે અમાપ ઉપકાર કર્યો છે. આ કાળમાં, આ ક્ષેત્રે કેવળજ્ઞાનનું મૂળ સ્વરૂપ સ્પષ્ટપણે પ્રકાશી તેમણે અપૂર્વ ઉપકાર કર્યો છે. કેવળજ્ઞાનના મર્મ દર્શાવનારાં તેમનાં વચનામૃત જીવને કેવળજ્ઞાનના સ્તર સુધી પહોંચાડવા માટે અત્યંત સમર્થ છે. તેમનાં સ્વાનુભવરસ ઝરતાં વચનામૃત અનંત મહિમાવંત છે. તેમનાં વચનામૃત અનેક અતિશયોથી ભરેલાં છે, આત્મામાં અપૂર્વ સ્વરૂપપરિણતિ પ્રગટાવનારાં છે. અનંત ભાવોથી ભરેલાં, જ્ઞાનના અનંત ભેદ પ્રકાશનારાં અને અનંત નય-નિક્ષેપો સહિતનાં તેમનાં વચનામૃત જગતના જીવોના મોહને નિર્મૂળ કરનારાં છે. તેમનાં અમોઘ અને અનુપમ વચનામૃત ભવસાગર તરવાનું કારણ છે તથા મોક્ષ પ્રાપ્ત કરાવનારાં છે. દિવ્ય વચનામૃત વડે કેવળજ્ઞાનનું ગૂઢ રહસ્ય પ્રકાશી તેમણે જગતના જીવો ઉપર અપાર કરુણા વરસાવી છે. કેવળજ્ઞાનની આવી જ્ઞાયકલક્ષી વ્યાખ્યાને મુખ્ય કરવાથી જે પરમાર્થલાભ થાય છે તે સમજાવતાં ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા લખે છે —

'આ વ્યાખ્યાનો પરમાર્થઆશય ઘણો ઘણો મહાન છે. તે તો જેમ જેમ ઊંડા ઊતરી અવગાહન કરાય તેમ તેમ સમજાય છે, પણ આ વ્યાખ્યા લક્ષમાં રાખવાથી સામાન્થપણે એટલું તો અવશ્ય થાય જ છે કે – આપણા પરમ આરાધ્ય કેવળજ્ઞાની ભગવાન પોતે મુખ્યપણે તો જ્ઞાયકભાવમાં જ સુસ્થિત સતા સકલ ફોયને દેખે છે, માટે અમારે ફોયલક્ષી દેષ્ટિ પ્રત્યે ન જતાં મુખ્યપણે જ્ઞાયકલક્ષી દેષ્ટિ જ કરવા યોગ્ય છે, જ્ઞાયક એવા આત્મા પ્રત્યે જ દેષ્ટિ કેન્દ્રિત કરવા યોગ્ય છે, કે જેથી સર્વ ફોય ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છઠી આવૃત્તિ, પૃ.૩૬૪ (પત્રાંક-૪૩૧) આપોઆપ એમાં જણાશે. જ્ઞેચલક્ષી દેષ્ટિમાં બુદ્ધિ બહિર્મુખ થઇ બ્હાર દોડે છે, જ્ઞાયકલક્ષી દેષ્ટિમાં બુદ્ધિ અંતર્મુખ થઇ અંતરાત્મામાં જોકે છે. માટે પરમ આત્મદ્રષ્ટા શ્રીમદે દર્શાવેલી આ આરાધ્ય દેવની શુદ્ધ આત્મદશા દર્શાવતી કેવળજ્ઞાનવ્યાખ્યા પરમ પરમ ઉપકારી છે એમ કોઇપણ સદ્દબુદ્ધિ મુમુક્ષુ આત્માર્થીનો અંતરાત્મા પોકારી ઊઠે છે.'

પરમાર્થલાભ ઇચ્છતા જીવે પોતાની દષ્ટિ જ્ઞેય ઉપરથી હટાવીને જ્ઞાયક ઉપર કેન્દ્રિત કરવી જોઈએ. આત્મા જ્ઞાયક છે. તે જ્ઞાન-દર્શનમય છે. તેનું કાર્ય છે જાણવું, જાણવું ને જાણવું. દરેક સમયે, રાત-દિવસ તે જાણવાનું કામ કરતો જ હોય છે. આ જાણવાનું કામ તે પોતાના જ્ઞાન ગુણ દ્વારા કરે છે. જો કે અજ્ઞાની જીવનું સંપૂર્ણ લક્ષ જાણવામાં આવનાર વાત તરફ, એટલે કે જ્ઞેય પદાર્થો તરફ વળેલું હોય છે. તેનું લક્ષ તે જ્ઞેયને જાણનાર જ્ઞાયક ઉપર હોતું નથી. તેનું જ્ઞાન જ્ઞેય પદાર્થો તરફ જ કેન્દ્રિત થયેલું હોય છે. તેને પદાર્થ દેખાય છે, પવન વાય તો તેનો સ્પર્શ જણાય છે, અવાજનું જ્ઞાન થાય છે, ફૂલની ગંધ આવે છે - આ બધી બાબતો તેના જ્ઞાનમાં આવે છે, એટલે કે જ્ઞેય તેના જ્ઞાનમાં આવે છે, પરંતુ 'આ બધાને જાણનારો હું જ્ઞાયક છું, હું મારા જ્ઞાન દ્વારા આ બધી વાતો જાણું છું' એમ જ્ઞાયક તરફ તે કદી ધ્યાન જ નથી આપતો. જ્ઞેય ઉપર દષ્ટિ હોવાથી તેને જ્ઞાયકનો ખ્યાલ જ નથી આવતો.

જીવ પરજ્ઞેયને જાણવામાં હોં સિયાર છે, પણ જરૂર છે સ્વજ્ઞેયને, અર્થાત્ જ્ઞાયકને જાણવાની. જીવની જાણવાની કિયા માત્ર જ્ઞેયને જ પ્રસિદ્ધ નથી કરતી, પરંતુ જ્ઞાયકની પણ પ્રસિદ્ધિ કરતી હોય છે. જેમ અજંટા-ઈલોરાની ગુફાઓમાં અંધારું હોવાથી તેમાં કરેલું કોતરકામ, મૂર્તિઓ દેખાતાં નથી, પણ ગાઈડ જ્યારે ટોર્ચ દ્વારા તેના ઉપર પ્રકાશ ફેંકે છે ત્યારે તે દેખાય છે. તે મૂર્તિઓ તો પહેલેથી ત્યાં જ છે, પણ પ્રકાશ પડતાંની સાથે જ તે દેખાવા માંડે છે. જો કે ત્યારે માત્ર તે મૂર્તિઓ જ પ્રસિદ્ધ થતી નથી, તે સાથે પ્રકાશ - ટોર્ચ પણ પ્રસિદ્ધ થાય છે. મૂર્તિઓ સાથે પ્રકાશનું - ટોર્ચનું અસ્તિત્વ પણ સિદ્ધ થાય છે. તેમ જ્ઞેયને જાણતાં માત્ર જ્ઞેય પ્રસિદ્ધ થતું નથી, એને જાણનાર - જ્ઞાન-જ્ઞાયક પણ પ્રસિદ્ધ થાય છે; પરંતુ તે તરફ અજ્ઞાની જીવનો લક્ષ ન હોવાથી તે માત્ર જ્ઞેયને જ પ્રાધાન્ય આપે છે.

જે જણાય છે તે જ્ઞેય, જે જાણે છે તે જ્ઞાયક, જે દ્વારા જણાય છે તે જ્ઞાન અને જાણવાની ક્રિયા - આ ચારે બાબતો દરેક પ્રસંગમાં ઉપસ્થિત હોય છે. જેમ કે ચિત્ર જોયું ત્યાં ચિત્ર તે જ્ઞેય, જેણે જાણ્યું તે જ્ઞાયક, જેના દ્વારા જાણ્યું તે જ્ઞાન અને જાણવું તે ક્રિયા એમ ચાર બાબતો વિદ્યમાન હોય છે. જ્યાં જ્યાં જાણવાનું કાર્ય થાય છે,

૧- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', પૃ.૪૪૯

ત્યાં ત્યાં જોય, જ્ઞાતા, જ્ઞાન અને જાણવાની કિયા એ ચાર બાબતો હાજર હોય છે. જ્ઞાયક જ્ઞાન દ્વારા જ્ઞેયને જાણે છે. આ ચારે બાબતો હાજર હોવા છતાં જીવનું સંપૂર્ણ ધ્યાન માત્ર જ્ઞેય ઉપર જ હોય છે. જીવે તેનું ધ્યાન જ્ઞેય ઉપરથી હટાવી જ્ઞાયક તરફ વાળવું જોઈએ. દરેક કાર્ય વખતે 'હું જ્ઞાયક છું, જ્ઞેય મારાથી ભિન્ન છે, હું મારા જ્ઞાન દ્વારા તેને જાણું છું' એવી જાગૃતિ કેળવવી જોઈએ. વારંવાર આવો અભ્યાસ કરવાથી સ્વ તરફ ઝૂકવાની - સ્વ તરફ ધ્યાન લઈ જવાની ટેવ પડવા લાગે છે. જ્ઞેયની લુબ્ધતા મટી જ્ઞાયકમાં એકત્વ થવા લાગે છે. જ્ઞાયકભાવ કેળવાતો જાય છે, પુષ્ટ થતો જાય છે.

જીવ જ્યારે પરજ્ઞેયને માત્ર જ્ઞાયકભાવથી જુએ છે ત્યારે તે પરજ્ઞેયમાંથી રસ લેતો નથી, તેમાં આસક્ત થતો નથી. તેનો આ જ્ઞાયકભાવ પરજ્ઞેયની આસક્તિને ઝાંખી કરતો જાય છે અને એવી એક ક્ષણ આવે છે જ્યારે ચેતના પરજ્ઞેય વગરની રહી જાય છે. કોઈ પરજ્ઞેય, કોઈ વિષય નથી હોતો. આ જ્ઞાયકનું સ્વસંવેદન છે. જેઓ પોતાના સ્વભાવને આ રીતે ઓળખી લે છે, અંતર્મુખ અવલોકીને જેઓ અનુભવ કરી લે છે, તેઓ પાર પામી જાય છે. તેમની ચેતનાનું અગાધ ઊંડાણ સપાટી ઉપર પ્રતિબિંબિત થાય છે. તેથી હવે જ્યારે તેઓ બહારના જગતમાં પાછા કરે છે ત્યારે તેઓ એ જ નથી હોતા કે જે બહારથી અંદર જતી વખતે હતા. હવે તેમણે જ્ઞાયકનો અનુભવ કરી લીધો છે, તેથી જગતવ્યવહાર કરવા છતાં પણ તેઓ જ્ઞાયકની મસ્તીમાં જ હોય છે. તેમની આત્મસ્થિરતા વધતી જાય છે. ચોથા ગુણસ્થાન કરતાં પાંચમા ગુણસ્થાને વિશેષ આત્મસ્થિરતા હોય છે. છક્રા-સાતમા ગુણસ્થાને તેથી વિશેષ હોય છે અને તેરમા ગુણસ્થાને અખંડ આત્મસ્થિરતા હોય છે. અખંડ આત્મસ્થિરતા જ કેવળજ્ઞાન તરીકે ઓળખાય છે. કેવળી ભગવંતને સતત અને સહજ નિર્વિકલ્પ સમાધિની સિદ્ધિ હોય છે તથા દેહનો સંયોગ હોવા છતાં સંપૂર્ણ દેહાતીત દશાની સંપ્રાપ્તિ હોય છે.

આ ગાથાના અંતિમ ચરણમાં 'દે છતાં નિર્વાણ' એમ કહી શ્રીમદ્ જણાવે છે કે આવી પૂર્ણ વીતરાગદશા પ્રાપ્ત થવાથી, નિજસ્વભાવનું અખંડ જ્ઞાન વર્તે એવું કેવળજ્ઞાન પામવાથી, દેહ હોવા છતાં અત્રે જ નિર્વાણ અનુભવાય છે. નિજસ્વભાવમાં આત્મા તન્મયાકારે, સહજ સ્વભાવે, નિર્વિકલ્પપણે પરિણમે એવા આત્મગુણને વિઘ્ન કરનાર ઘાતી કર્મનો સર્વથા અભાવ થતાં કેવળજ્ઞાનદશા વર્તે છે. આ સ્થિતિને ભાવમોક્ષ પણ કહેવાય છે. અઘાતી કર્મનો અભાવ થયો નહીં હોવાથી દેહ અને આયુષ્યની સ્થિતિ બાકી રહી હોય છે, તેમ છતાં કેવળી ભગવંત દેહ સહિત જ મુક્તદશા અનુભવે છે.

જીવના દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર ગુશોની તરતમતાના આધારે તેના આધ્યાત્મિક

વિકાસને ચૌદ ગુણસ્થાનકમાં વિભાજિત કરવામાં આવે છે. આ ચૌદ ગુણસ્થાનકોમાંથી 'સયોગી કેવલી' નામના તેરમા ગુણસ્થાનકે જ્યારે જીવ પહોંચે છે ત્યારે તે કેવળી ભગવંતને મન, વચન અને કાયાનો યોગ હોય છે; તથાપિ તેમણે જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, મોહનીય અને અંતરાય એ ચાર ઘાતી કર્મોને વ્યવચ્છેદ કરી નાંખેલાં હોવાથી ભવબીજનો આત્યંતિક નાશ થયો હોય છે. વેદનીય, આયુ, નામ અને ગોત્ર એ ચાર અઘાતી કર્મો બળેલી સીંદરી જેવા સત્ત્વરહિત થઈ ગયાં હોય છે. હવે તે માત્ર આકારવત્ રહ્યાં હોય છે. આવા તેરમા ગુણસ્થાનકે વર્તતા કેવળી ભગવંત મન, વચન અને કાયાના યોગ હોવા છતાં મુક્તદશા અનુભવે છે. જ્યાં કેવળજ્ઞાન છે ત્યાં રાગ-દેષમો સર્વથા ક્ષય થયો હોય છે અને દેહનો સંયોગ હોવા છતાં, રાગ-દેષથી આત્માની મુક્તિ થઈ હોવાથી તેમને દેહ છતાં મુક્તદશા સિદ્ધ થઈ હોય છે.

આ અવસ્થાને અન્ય દર્શનમાં જીવન્મુક્તદશા કહેવાય છે. જીવન્મુક્તતા તેને કહેવાય છે કે જેમાં દેહ છતાં મુક્તિસદશપશું હોય છે. જ્યારે દેહાદિનો સર્વથા વિયોગ થાય છે ત્યારે વિદેહમુક્તદશા કહેવાય છે. આ બન્ને દશામાં ભેદ માત્ર દેહ સહિત અને દેહરહિતપશાનો છે, પણ જ્ઞાનમાં ભેદ નથી. તેરમા ગુણસ્થાને મન, વચન અને કાયાના યોગ હોય છે, જ્યારે સિદ્ધદશામાં એ યોગ પણ હોતા નથી; પરંતુ તેરમા ગુણસ્થાને અને સિદ્ધદશામાં જ્ઞાન સંબંધી સમાનતા છે, તેમની શક્તિના સંબંધમાં પણ કાંઈ ભેદ નથી, સમાનતા છે. દેહધારી કેવળી અને સિદ્ધ ભગવાન બન્નેની આત્મ-દશા સમાન છે, તેથી તેરમા ગુણસ્થાનકે વર્તતા દેહધારી કેવળીને દેહ છતાં પણ નિર્વાણ જ છે.

આવી ઉત્કૃષ્ટ જીવન્મુક્તદશારૂપ નિર્વાણ પામવા અર્થે પોતાના અવિનાશી, પૂર્લ, શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વભાવનો આશ્રય કરવો જોઈએ. સદ્ગુરુની આજ્ઞા અનુસાર જીવ ત્રિકાળી, પૂર્લજ્ઞાનઘન સ્વભાવમાં એકાકાર થાય છે ત્યારે કેવળજ્ઞાનરૂપી પાક તૈયાર થાય છે. પોતાના આત્મસ્વભાવની ભાવના કરતાં કરતાં આત્મા પોતે કેવળજ્ઞાનરૂપ થઈ જાય છે. અંતરમાં ધુવ જ્ઞાયકદ્રવ્યનું ભાન થતાં, 'અહો મારો આત્મા તો પૂર્લાનંદથી સદા ભરપૂર જ છે!' એવી આત્માના પૂર્લ સામર્થ્યની અનુભવપૂર્વકની પ્રતીતિ આવી જતાં મુક્તિની પર્યાય સહેજે મળી જાય છે. ધુવ તત્ત્વ દષ્ટિગત થતાં, ત્રિકાળી મુક્ત સ્વરૂપ નિજજ્ઞાયકદ્રવ્યદળમાં ઠરવાથી, પૂર્લ પરમાનંદદશા પ્રગટ થાય છે; માટે જીવે અંતર્મુખ થઈ નિજજ્ઞાયકદ્રવ્યને સૂક્ષ્મ ઉપયોગ દ્વારા ઓળખી લેવું જોઈએ. જેટલી ક્ષણો પોતાના સહજ જ્ઞાનસ્વરૂપ બાજુ ઝુકાવ થાય છે, એટલી જ ક્ષણો સફળ છે અને જેટલી ક્ષણો ઉપયોગ બાદ્યમાં જાય છે તે બધી ક્ષણો વ્યર્થ છે. જીવ જો ચેતશે નહીં તો જેમ તેના અનંત ભવ નિષ્ફળ ગયા છે, તેમ વર્તમાન ભવ પણ વ્યર્થ વીતી જશે. પરંતુ જીવ જો

પ્રમાદને તિલાંજિલ આપી, જાગૃત થઈ, સદ્ગુરુના બોધને આત્મસાત્ કરી, પરદ્રવ્ય તથા પરભાવથી રહિત પોતાના જ્ઞાનસ્વરૂપમાં એકાત્ર થશે તો તે શીધ રાગાદિ પરભાવથી અને પરંપરાએ સર્વ પરદ્રવ્યથી મુક્ત થશે.

આ ગાયાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'કેવળ નિજસ્વભાવનું, સર્વ વિભાવ રહિત; સહજ શુદ્ધ ઉપયોગથી, તન્મયતાએ સહિત. નિરાવરણ શુદ્ધાત્મનું, અખંડ વર્તે જ્ઞાન; આત્માકાર અલિપ્ત જે, અદિતીય જે ભાન. નિરતિશયી શાશ્વત સદા, અપ્રતિપાતી અનંત; કહીએ કેવળજ્ઞાન તે, નિરૂપમ પરમ મહંત. નિર્વિકલ્પ ઉપયોગમાં, પરિણમે આતમજ્ઞાન, કૃતકૃત્ય એ મહાપ્રભુ, દેહ છતાં નિર્વાશ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૨ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૪૯-૪૫૨)

दोरि यर्थ कं रन्यक्ष ४८, ००००० कार्न में भाषे. तेम विकास अगाहिनों, साम भनां दूर में. ગાથા ૧૧૩માં શ્રીગુરુએ કેવળજ્ઞાનનું રહસ્ય પ્રગટ કરતાં કહ્યું કે માત્ર નિજસ્વભાવનું જ્ઞાન જ્યાં અખંડપણે વર્તે છે તેને કેવળજ્ઞાન કહેવાય છે અને તે જ્ઞાન થયા પછી દેહ હોવા છતાં મુક્તદશા અનુભવાય છે. આના ઉપરથી ફલિત થાય છે કે જો જીવ સ્વભાવમાં રહે તો મુક્તિ છે અને જો તે વિભાવમાં રહે તો સંસાર છે.

જીવ અનાદિથી વિભાવમાં પ્રવર્તી રહ્યો છે. અનાદિ કાળનો વિભાવ શું કરવાથી દૂર થાય અને તે દૂર કરવામાં કેટલો કાળ વ્યતીત કરવો પડે, એનો ઉત્તર સંક્ષેપમાં એક સરળ દષ્ટાંત પ્રયોજી શ્રીગુરુ કહે છે –

'કોટિ વર્ષનું સ્વખ્ન પણ, જાગ્રત થતાં શમાય; ગાથા તેમ વિભાવ અનાદિનો, જ્ઞાન થતાં દૂર થાય.' (૧૧૪)

કરોડો વર્ષનું સ્વપ્ન હોય તોપણ જાગ્રત થતાં તરત શમાય છે, તેમ અર્થ અનાદિનો વિભાવ છે તે આત્મજ્ઞાન થતાં દૂર થાય છે. (૧૧૪)

જીવની વૈભાવિક અવસ્થા અનાદિ કાળથી ચાલી આવે છે, છતાં તે અવસ્થાને ટાળવા માટે કાંઈ એટલા જ કાળની જરૂર પડતી નથી. જેમ કરોડ વર્ષનું સ્વપ્ન પણ ઊંઘમાંથી જાગતાં તરત શમી જાય છે, તેમ અનાદિનો વિભાવ પણ આત્મજ્ઞાન થતાં તરત દૂર થાય છે. દીર્ધકાલીન નિદ્રામાં સૂતેલા માનવીને દીર્ધ કાળનું સ્વપ્ન આવ્યું હોય, સ્વપ્નકાળમાં અનેકવિધ તરંગો રચાયા હોય, પરંતુ જ્યારે તે જાગૃત થાય છે ત્યારે એ સ્વપ્ન એકદમ વિલય પામે છે. આમ, ગમે તેટલું લાંબું સ્વપ્ન પણ જાગૃત થતાં પળવારમાં અંત પામે છે, તેમ સ્વસ્વરૂપ પ્રત્યે જાગૃત થતાં જ અનાદિની વિભાવ અવસ્થા દૂર થાય છે.

અનાદિ કાળથી જીવ વિભાવરૂપી સ્વપ્ન જોઈ રહ્યો છે. તે પોતાના સ્વરૂપને ભૂલી ગયો છે. તે દેખતભૂલીમાં અટવાઈ ગયો છે. તે પરને જોઈને પોતાને ભૂલી જાય છે. પરને જોતાં તે આત્માને વિસરી જાય છે, તેથી રાગદ્વેષરૂપ વિકારો કરી કર્મબંધ કરે છે અને દુઃખી થાય છે. આ વિભાવરૂપી સ્વપ્નમાંથી મુક્ત થવું એ જ ખરી સાધના છે. વિભાવરૂપી સ્વપ્નમાંથી મુક્તિ જાગૃત થવાથી જ પ્રાપ્ત થાય છે, અર્થાત્ આત્મ-જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થવાથી થાય છે. અનાદિ કાળથી અજ્ઞાનરૂપી નિદ્રામાં સૂતેલા જીવનું

વિભાવરૂપ સ્વપ્ન આત્મજ્ઞાનરૂપી જાગૃતિ આવતાં વિલીન થાય છે. જેમ જાગૃત થતાં સ્વપ્નમાળાનો એક પળમાં અંત આવી જાય છે, તેમ આત્મજ્ઞાનનું આગમન દેહ અને કર્મકૃત વ્યક્તિત્વ સાથેના અનાદિના તાદાત્મ્યને એક ક્ષણમાં ચીરી નાંખે છે. દેહ અને શુભાશુભ ભાવ સાથે જે તાદાત્મ્ય થઈ ગયું હતું તે આત્મજ્ઞાન થતાં દૂર થઈ જાય છે. શુભાશુભ છેદતાં મોક્ષસ્વભાવ ઊપજે છે એમ જે પ્રથમ કહ્યું હતું, તેના અનુસંધાનમાં અહીં શ્રીગુરુ કહે છે કે શુભાશુભ છેદવા માટે અનંત કાળ નથી જોઈતો. જેમ કરોડ વર્ષનું સ્વપ્ન પણ જાગૃત થતાં સત્વર વિલીન થાય છે, તેમ અનાદિનો વિભાવ પણ જ્ઞાન થતાં સત્વર દૂર થાય છે.

સામાન્યપણે જાગૃતિ અને ઊંઘ એ બે અવસ્થાઓથી જીવ પરિચિત છે. જાગૃત અવસ્થામાં મન અને ઇન્દ્રિયો સક્રિય હોય છે, તેથી બહારના જગતનો બોધ થાય છે. જ્યારે જીવ જાગૃત હોય છે ત્યારે મન અને ઇન્દ્રિયો બાહ્ય જગત સાથેના સંપર્કમાં રહી તેનું જ્ઞાન કરાવે છે. ઊંઘમાં અથવા સુષુપ્ત અવસ્થામાં મન અને ઇન્દ્રિયો સક્રિય હોતાં નથી, તેથી બહારના જગતનું જ્ઞાન થતું નથી. નિદ્રામાં ઇન્દ્રિયો અને મન પોતપોતાનું કામ બંધ કરે છે, બાહ્ય જગત સાથેનો સંપર્ક કપાઈ જાય છે અને જીવ શૂન્યતામાં ખોવાઈ જાય છે. કેટલીક વાર શુન્યતામાં ખોવાઈ જવાને બદલે જીવ સ્વપ્ન જુએ છે. સ્વપ્ન અવસ્થામાં પૂર્ણ જાગૃતિ પણ નથી અને પૂર્ણ નિદ્રા પણ નથી. સ્વપ્ન અવસ્થામાં ઇન્દ્રિયો સક્રિય હોતી નથી, પણ મન સક્રિય હોય છે. સ્વપ્નાવસ્થામાં ઇન્દ્રિયો બાહ્ય જગતની નોંધ લેતી નથી, શરીર નિશ્ચેષ્ટ પડ્યું હોય છે, પરંતુ મન ગતિશીલ રહે છે. સ્વપ્નમાં બહારના જગત સાથેનો સંપર્ક તુટી જાય છે, પરંતુ પોતામાં પડેલાં જગતના પદાર્થોનાં પ્રતિબિંબનું તેને જ્ઞાન થાય છે. નિદ્રા જ્યારે ગાઢ ન હોય અને તે તંદ્રામાં પડ્યો હોય ત્યારે તેનું અવચેતન મન જાગૃત થાય છે અને અંદર પડેલા જન્મ-જન્માંતરના વિભિન્ન સંસ્કારો. એકત્રિત થયેલી વાસનાઓ ચિત્તપટ ઉપર વ્યક્ત થાય છે. આમ, દબાયેલી ઇચ્છાઓ, વાસનાઓનું નિદ્રાવસ્થામાં જે વિસ્તરણ થાય છે તેને સ્વપ્નાવસ્થા કહેવાય છે. સ્વપ્નાવસ્થામાં જીવ જાગૃતસંસાર જેવો જ એક સ્વપ્નસંસાર રચે છે.

આ સ્વપ્નસૃષ્ટિ તે અસત્કલ્પનારૂપ મિથ્યા આભાસ માત્ર છે, અર્થાત્ તે અસત્ય છે, ભામક છે, ક્ષણિક છે. સ્વપ્નાવસ્થામાં જે દેખાતું હોય છે તે, સ્વપ્ન ચાલુ હોય ત્યાં સુધી સાચું ભાસે છે. આ સ્વપ્નાવસ્થા ક્યારેક લાંબો સમય ચાલે છે તો ક્યારેક થોડો સમય ચાલે છે, પરંતુ જ્યારે જીવ નિદ્રામાંથી જાગૃત થાય છે ત્યારે તે સ્વપ્ન તરત વિલીન થઈ જાય છે. સ્વપ્ન ગમે તેટલું લાંબું હોય તોપણ તેને લય થતાં વાર લાગતી નથી. આખી રાત ચાલેલું સ્વપ્ન પણ જાગૃત થતાં ક્ષણવારમાં વિલીન થઈ જાય

છે. સ્વપ્નસૃષ્ટિની ભામકતા તથા જાગૃત થતાં થયેલી તેની તત્ક્ષણ વિલીનતા - આ બે પાસાંને મુખ્ય કરીને, આ ગાથામાં શ્રીમદે એ સિદ્ધાંતને પુષ્ટ કર્યો છે કે અનાદિ કાળથી જે વિભાવ ચાલ્યો આવે છે તે આત્મબોધ થવાથી સત્વર વિલીન થાય છે. અનાદિ કાળનો વિભાવ, જ્ઞાન થતાં સત્વર દૂર થાય છે. આ ગૃઢ સિદ્ધાંતને તેમણે અત્યંત સરળ દષ્ટાંત દ્વારા સમર્થિત કર્યો છે.

અજ્ઞાનમાં પડેલો જીવ પરવસ્તુમાં અહં-મમભાવની કલ્પનાને સત્ય માને છે, તેથી તેને હર્ષ, શોક, ભય વગેરે ઉત્પન્ન થાય છે. તેને આત્માની પ્રતીતિ હોતી નથી. પોતાના આત્મસ્વરૂપનો તેને કોઈ બોધ હોતો નથી. આત્માનું અસ્તિત્વ દેહ કરતાં ભિન્ન હોવા છતાં આત્માને ભૂલીને તે દેહમાં 'હું'બુદ્ધિ કરે છે, પોતાને દેહરૂપ સમજે છે. પરનો સંયોગ થતાં તે અનાદિ સંસ્કારના પ્રભાવવશ તેમાં લિપ્ત થઈ, પરપદાર્થ આદિ જેમ છે તેમ જોવા-માનવા-સ્વીકારવાને બદલે તત્સંબંધી ખોટા નિર્ણયો બાંધે છે. સ્વના અપરિમિત ઐશ્વર્યનું ભાન નથી તથા તેનો ભરોસો નથી, તેથી તેને પરમાં કુતૂહલ રહ્યા કરે છે. વિનાશી પદાર્થના સંયોગાદિમાં તેને ઇષ્ટ-અનિષ્ટપશું લાગે છે. બાહ્યમાંથી સુખ મળશે એવી અભિલાષામાં તે રાચે છે. પરપદાર્થમાંથી સુખ મેળવવા તે અથાક પ્રયત્ન કરે છે, પરંતુ ક્યારે પણ વિચારતો નથી કે આ વૃત્તિથી મને કેટલું નુકસાન થશે. તેને આકાંક્ષાના ચગડોળમાંથી ઊતરવાનો વિચાર સુધ્ધાં આવતો નથી અને એમાં ને એમાં જ આખી જિંદગી વેડફી નાખે છે.

સ્વરૂપનું ભાન પ્રગટાવ્યું ન હોવાના કારણે અજ્ઞાની જીવ સંસારમાં રઝળી રઝળીને જન્મારો વિતાવે છે, અહીંથી તહીં ફંગોળાતો રહે છે અને અપાર દુઃખનો અનુભવ કરે છે. જો તે પોતાની વિભાવરૂપ સ્વપ્નદશાનો નાશ કરે તો તે દુઃખી ન થાય, પણ સુખી થાય. વિભાવરૂપ સ્વપ્નદશાનો અંત આત્મજ્ઞાન પ્રગટાવવાથી થાય છે. દેહાદિ અવસ્થામાંથી પોતાનું તાદાત્મ્ય તોડવું ઘટે છે અને પોતે માત્ર જ્ઞાયક છે, તે સિવાય કાંઈ પણ નહીં - એવું દેહાદિથી પોતાની ભિન્નતાનું ભાન પ્રગટાવવું ઘટે છે. અનંત અવ્યાબાધ સુખની ઉપલબ્ધિ અર્થે સ્વસ્વરૂપ પ્રત્યે જાગૃત થવાની જરૂર છે.

અજ્ઞાનરૂપ સ્વપ્ન અવસ્થામાં જગતનું જે ભ્રામક દર્શન થાય છે તે જ્ઞાનરૂપ જાગૃત અવસ્થામાં વિલીન થાય છે. સ્વપ્નમાં દીઠેલી વસ્તુ જેમ જાગૃત અવસ્થામાં દેખાતી નથી, મિથ્યા જણાય છે; તેમ અજ્ઞાનરૂપ સ્વપ્નદશામાં દેખાતી દેહાદિમાં અહંમમબુદ્ધિરૂપ અસત્કલ્પના, આત્મજાગૃતિરૂપ જ્ઞાનદશામાં વાસ્તવિક દેખાતી નથી, મિથ્યાન્ભાસરૂપ જણાય છે. ઊંઘમાંથી જાગૃત થતાં કરોડ વર્ષનું - દીર્ઘ કાળનું સ્વપ્ન પણ તરત જ ઊડી જાય છે અને બાહ્ય જગતનું યથાર્થ દર્શન થાય છે, તેમ અજ્ઞાનરૂપી નિદ્રામાંથી ઊઠતાં, જ્ઞાનરૂપ જાગૃતદશા થતાં અનાદિનું અજ્ઞાનદશાનું સ્વપ્ન તરત જ

ઊડી જાય છે અને વસ્તુસ્વરૂપનું યથાર્થ દર્શન થાય છે. આત્મા જાગૃત થતાં દિવ્ય જીવન જીવવાની યથાર્થ દેષ્ટિની - સમ્યગ્દર્શનની તેને પ્રાપ્તિ થાય છે અને તે ક્રમશઃ મોક્ષને પામે છે. શ્રીમદે છ પદના પત્રમાં લખ્યું છે કે –

'અનાદિ સ્વખ્નદશાને લીધે ઉત્પન્ન થયેલો એવો જીવનો અહંભાવ, મમત્વભાવ તે નિવૃત્ત થવાને અર્થે આ છ પદની જ્ઞાનીપુરુષોએ દેશના પ્રકાશી છે. તે સ્વપ્નદશાથી રહિત માત્ર પોતાનું સ્વરૂપ છે, એમ જો જીવ પરિણામ કરે, તો સહજ માત્રમાં તે જાગૃત થઇ સમ્યક્દર્શનને પ્રાપ્ત થાય; સમ્યક્દર્શનને પ્રાપ્ત થઇ સ્વસ્વભાવરૂપ મોક્ષને પામે.'

અનાદિ સ્વપ્નદશાના અર્થાત્ ભાંતદશાના કારણે કર્મકૃત અવસ્થા અને ભાવોમાં તાદાત્મ્યપણું ચાલ્યું આવે છે અને તેથી અહં-મમભાવો ઉત્પન્ન થયા કરે છે. જેમ કોઈ ભિખારીને સ્વપ્નમાં મોટું રાજપાટ મળે અને તે પોતાને મોટો રાજા માને, પણ જાગૃત થતાં જ સ્વપ્ન પૂરું થાય છે અને તેને પોતાની સાચી સ્થિતિનો ખ્યાલ આવી જાય છે; તેમ અજ્ઞાનરૂપ સ્વપ્નદશાને આધીન થવાથી અજ્ઞાની જીવ પોતાના નહીં એવા વિવિધ પદાર્થોમાં હુંપજ્ઞાની અને મારાપજ્ઞાની કલ્પના કરે છે. આવી ભ્રાંતિરૂપ જે સ્વપ્નદશા, તેનો નાશ થવા માટે જ્ઞાનીપુરુષો શાશ્વત સિદ્ધાંતરૂપ છ પદનો બોધ આપે છે. જેમ જેમ તેના ઉપર વિચાર કરવામાં આવે છે, તેમ તેમ પોતાના મૂળ શુદ્ધ સ્વરૂપનું ભાન પ્રગટ થાય છે. સ્વપ્નદશાથી રહિત એવું પોતાનું સ્વરૂપ જ્ઞાનીનાં વચન દ્વારા જાણી, જીવ કર્મકૃત અવસ્થાને બદલે પોતાના સ્વરૂપમાં તાદાત્મ્ય કરે તો સમ્યગ્દર્શન થાય છે. તે પોતાના સ્વરૂપમાં અહંભાવ સ્થાપે તો જાગૃત થઈ સમ્યગ્દર્શનને પ્રાપ્ત કરે છે અને સ્વરૂપમાં સ્થિરતાની વૃદ્ધિ થતાં મોક્ષને પામે છે. જે સાધક યથાર્થ બોધથી પ્રગટેલી સુવિચારની શ્રેણીએ ચડીને અજ્ઞાનરૂપી સ્વપ્નદશાનો નાશ કરે છે, તેને પોતાના આત્માના સાચા સ્વરૂપનું ભાન પ્રગટે છે અને આવો પ્રબુદ્ધ સાધક ક્રમે કરીને પૂર્ણ શુદ્ધ દશાને - મોક્ષને પ્રાપ્ત થાય છે. જે જીવને સ્વસ્વરૂપનો યથાર્થ બોધ પ્રગટ થાય છે, સ્વરૂપની સાવધાની હોય છે, સ્વરૂપસ્મૃતિ-સ્વરૂપજાગૃતિ હોય છે, તે જીવની દશા વર્ણવતાં શ્રીમદ્દ છ પદના પત્રમાં લખે છે કે -

'કોઇ વિનાશી, અશુદ્ધ અને અન્ય એવા ભાવને વિષે તેને હર્ષ, શોક, સંયોગ, ઉત્પन્ન ન થાય. તે વિચારે સ્વસ્વરૂપને વિષે જ શુદ્ધપણું, સંપૂર્ણપણું, અવિનાશીપણું, અત્યંત આનંદપણું, અંતરરહિત તેના અનુભવમાં આવે છે. સર્વ વિભાવપર્યાયમાં માત્ર પોતાને અધ્યાસથી એક્ચતા થઇ છે, તેથી કેવળ પોતાનું ભિન્નપણું જ છે, એમ સ્પષ્ટ - પ્રત્યક્ષ - અત્યંત પ્રત્યક્ષ - અપરોક્ષ તેને અનુભવ થાય છે. વિનાશી અથવા અન્ય પદાર્થના સંયોગને વિષે તેને ઇષ્ટ-અનિષ્ટપણું પ્રાપ્ત ૧- 'શ્રીમદ્ રાજયંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૩૯૫ (પત્રાંક-૪૯૩, 'છ પદનો પત્ર') થતું નથી. જન્મ, જરા, મરણ, રોગાદિ બાધારહિત સંપૂર્ણ માહાત્મ્યનું ઠેકાણું એવું નિજસ્વરૂપ જાણી, વેદી તે કૃતાર્થ થાય છે.'^૧

સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને સ્વસ્વરૂપનો યથાર્થ બોધ થયો હોવાથી તેમના અંતરમાંથી જગતના પદાર્થોનું માહાત્મ્ય ઊડી જાય છે. તેમને જગતના સર્વ પદાર્થો નીરસ અને ફિક્કા લાગે છે, તૃણવત્ લાગે છે. ક્ષણિક સુખ આપનારા, અપવિત્ર અને પોતાના સ્વભાવથી વિપરીત લક્ષણોવાળા પરપદાર્થોને પ્રાપ્ત કરીને તેમને હર્ષ થતો નથી અથવા ઇષ્ટ પદાર્થોનો વિયોગ થવાથી તેમને શોક પણ ઊપજતો નથી. જગતના પદાર્થોની પ્રાપ્તિ-અપ્રાપ્તિમાં તેમને હંમેશાં સમભાવ જ રહે છે, વિષમ ભાવની ઉત્પત્તિ થતી નથી.

અવો સમતાભાવ જેને અંગીકાર કરવાથી પ્રગટે છે, તેવા આત્મસ્વરૂપનું નિર્મળપણું, પરિપૂર્ણપણું, નિત્યપણું અને અત્યંત આહ્લાદકપણું તેમને ભેદરહિતપણે અનુભવમાં આવે છે. નિર્વિકલ્પ દશામાં થતા આવા અનુભવથી તેમને પોતાનું સ્વરૂપ શુદ્ધ ભાસે છે. પરથી ભિન્ન એવું શુદ્ધપણું અનુભવમાં આવે છે. તે સ્વરૂપ સર્વ ગુણથી સંપન્ન હોવાથી પરિપૂર્ણ છે અને પરિપૂર્ણ હોવાથી કોઈ અન્ય દ્રવ્યની તેને અપેક્ષા હોતી નથી. આવું સંપૂર્ણપણું અનુભવાતાં બાહ્ય ઊણપથી તેઓ દીનતા અનુભવતા નથી. પરથી નિરપેક્ષ એવા પોતાના આંતર વૈભવનો અનુભવ થતાં તેમને પરની અપેક્ષાવૃત્તિ, આધારબુદ્ધિ છૂટે છે. પુદ્દગલકૃત ક્ષણભંગુર અવસ્થાઓથી, બાહ્ય પરિસ્થિતિઓથી અને સંયોગોમાં આવતાં પરિવર્તનોથી હવે તેઓ ચિંતિત કે વિચલિત થતા નથી. સ્વરૂપનું અવિનાશીપણું અનુભવમાં આવતાં બધો જ ભય, અસુરક્ષા તથા અસલામતીનાં બધાં પરિણામ વિલય પામે છે. આત્માના શાશ્વત અસ્તિત્વની પ્રતીતિ થતાં તેમને મૃત્યુનો ભય કદી સ્પર્શતો નથી. કોઈ નાશ કરી શકે નહીં એવું આનંદપણું અનુભવવાથી પરમાં સુખબુદ્ધિ, કર્તાબુદ્ધિ વગેરે ટળી જાય છે. આત્માનો નિરુપાધિક આનંદ અનુભવમાં આવ્યો હોવાથી વિષયસુખનો, ભૌતિક સુખનો ભમ ભાંગી જાય છે. અંતર-રિલ્ત - અભેદભાવે ઉપરોક્ત ગુણો તેમના અનુભવમાં આવે છે.

સર્વ વિભાવપર્યાયમાં અધ્યાસથી જે ઐક્ય અનુભવાતું હતું, અર્થાત્ અનાદિ કાળથી રાગાદિ વિકારો સાથે જે એકતા હતી, અનાદિ મિથ્યા અધ્યાસથી 'આ હું' એવો જે અનુભવ થતો હતો; તે સર્વથી કેવળ પોતાનું ભિન્નપશું જ છે એવો તેમને અનુભવ થાય છે. સ્વરૂપ સાથે ઐક્યભાવ થયો હોવાથી વિભાવ સાથેનું ભિન્નપશું સ્પષ્ટ, પ્રત્યક્ષ, અત્યંત પ્રત્યક્ષ, અપરોક્ષપશે તેઓ અનુભવે છે. તેમને સ્વભાવમાં તાદાત્મ્ય અને વિભાવથી ભિન્નતા સતત વર્તે છે.

જેમ સમુદ્ર નિત્ય છે, તેનો ઉત્પાદ પણ નથી અને વ્યય પણ નથી; પરંતુ તેમાં ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૯૫ (પત્રાંક-૪૯૩, 'છ પદનો પત્ર')

પળે પળે જે લહેર ઉત્પન્ન થાય છે તેનો ઉત્પાદ પણ છે અને વ્યય પણ છે. જો લહેર પોતા સાથે તાદાત્મ્ય કરે તો ઉત્પાદ-વ્યયના વેદનથી દુ:ખી જ રહે, પણ જો તે સમુદ્ર સાથે તાદાત્મ્ય સાધી લે તો ઉત્પાદ-વ્યય થતા હોવા છતાં નિત્ય સ્વભાવની ખુમારીથી તે સભર બની ઊઠે છે. તેમ આત્માનો જે ત્રિકાળી સ્વભાવ છે તેમાં ઉત્પાદ પણ નથી અને વ્યય પણ નથી, પરંતુ આત્મામાં સમયે સમયે જે પર્યાય ઉત્પન્ન થાય છે તેનો ઉત્પાદ પણ છે અને વ્યય પણ છે. જો પર્યાયમાં ઐક્યભાવ કરે તો આત્મા દુ:ખી જ રહે છે અને ત્રિકાળી ધ્રુવ સ્વભાવમાં ઐક્યભાવ કરે તો સમયે સમયે ઉત્પાદ-વ્યય થતા હોવા છતાં પણ ધ્રુવ સ્વભાવની ખુમારીથી તે સભર બની ઊઠે છે અને જન્મ- મરણનાં કે અન્ય સંયોગજન્ય દુ:ખોથી ઉપર ઊઠી તે પોતાના સ્વાધીન સુખને ભોગવે છે. સદ્દ્ગુરુના બોધ અને સમાગમના બળ વડે વિભાવભાવ સાથેનું અનાદિ ઐક્ય મિટાવી, તેની સાથે ભિન્તતા સધાતાં તથા નિજસ્વરૂપમાં ઐક્ય સધાતાં પર્યાય પણ પોતાને ધ્રુવ માનવા લાગે છે, અર્થાત્ ત્રિકાળી સ્વભાવના અનંત ગુણનિધાન પર્યાયમાં પ્રગટી ઊઠે છે.

જ્ઞાનીને વિભાવ સાથેનું ઐક્ય તૂટી ગયું હોવાથી, ચારિત્રમોહનીયના ઉદયના નિમિત્તે જે વિભાવભાવો ઊપજે છે, તેને તેઓ પોતાનું મૂળ સ્વરૂપ માનતા નથી. તેમને વિભાવભાવ અને સ્વભાવભાવનું ભિન્નપશું સ્પષ્ટ રહેતું હોય છે. સ્વભાવની પ્રતીતિ એવી પ્રત્યક્ષ રહે છે કે કાળાંતરે કે ભવાંતરે પણ તે ભૂંસાતી નથી. ગમે તેવા ઉદયમાં તેમની આ પ્રતીતિ કાયમ રહે છે, ઉદયપ્રસંગમાં તેમનાં શ્રદ્ધા-જ્ઞાન ઘેરાઈ જતાં નથી. શુભાશુભ ભાવો ઉદ્ભવતા હોવા છતાં પણ તે શુભાશુભ ભાવોની તેમને રુચિ નથી અને પોતાની સર્વ શક્તિથી તેઓ વિભાવભાવોથી પાછા ફરવાનો પુરુષાર્થ કર્યા જ કરે છે. શુદ્ધ ભાવની પકડના કારણે સ્વરૂપમાં સ્થિર થવાના પ્રયત્નો નિરંતર ચાલુ રહે છે. સમ્યગ્દેષ્ટિ જીવને ચિદાનંદતત્ત્વનું ભાન સતત રહેવાથી, સ્વરૂપમાં જ પ્રીતિ રહેવાથી, તેમાં જ તન્મયતા થવાથી, જગતના કોઈ પણ ક્ષણભંગુર અને તુચ્છ પદાર્થો મળવાથી કે વિખૂટા પડવાથી અંતરમાં હર્ષ-શોકના ભાવો થતા નથી. પરપદાર્થ પ્રત્યે ઇષ્ટ-અનિષ્ટપણું થતું નથી. તેઓ નિરંતર સમપરિણામે રહે છે. પરપદાર્થના માત્ર જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા રહે છે.

જન્મ, જરા, મૃત્યુ, રોગ આદિ સર્વથી અબાધિત, અનંત અનંત ઐશ્વર્યના સ્રોત-રૂપ અને સંપૂર્ણ કૃતકૃત્યતારૂપ જેનો સ્વભાવ છે તેવા નિજ શુદ્ધાત્મપદને સ્વાનુભવથી જાણી-વેદી તેઓ કૃતાર્થ થાય છે, અર્થાત્ ભવનો અંત લાવીને તેઓ કૃતાર્થ થાય છે. એક વાર આત્માનો અનુભવ થાય છે પછી તેનું ખેંચાણ વધતું જાય છે. સ્વરૂપમાં સ્થિર થવાનું અદમ્ય આકર્ષણ જાગે છે. તેમને આત્મસ્થિરતાની ભાવના ઉગ્ર થતી જાય છે. બહાર બધું લુખ્ખું લાગે છે. બહારમાં પરિણામ તન્મય થતાં નથી અને વારંવાર અંતરમાં ડૂબકી માર્યા કરે છે. અનુક્રમે શ્રાવકદશા, મુનિદશા, કૈવલ્યદશા, સિદ્ધદશા પામી તેઓ કૃતાર્થ થાય છે.

આ પ્રમાણે જેમને જ્ઞાનીપુરુષના યોગમાં સ્વસ્વરૂપનો દઢ નિશ્ચય થાય છે તેમને આનંદદાયક એવું નિજપદ પ્રગટે છે. તેઓ અવશ્ય અપાર શોકસ્વરૂપ એવા આ સંસારસમુદ્રને તરીને સર્વ માનસિક ચિંતાઓથી, શારીરિક રોગોથી અને સાંસારિક ઉપાધિઓથી ઉપર ઊઠે છે. ક્રમે કરીને તેમને સર્વ પ્રકારના બાહ્યાંતર સંગથી રહિત અને પરિપૂર્ણ જ્ઞાનાનંદના રસથી છલોછલ ભરેલું એવું પરમાત્મપદ પ્રગટ થાય છે. આ વાત ત્રણે કાળને માટે પરમ સત્ય છે.

એક ક્ષણ પણ સ્વરૂપની ઝાંખી થતાં જીવમાં આવું આમૂલ પરિવર્તન આવી જાય છે. જેમ કોઈ એક ખંડમાં રહેલા ખજાનાની વાત કોઈ જાણકાર પાસેથી સાંભળી, પોતાનું દારિદ્ર્ય દૂર કરવાની ઇચ્છાથી તે ખજાનાને પ્રાપ્ત કરવા પ્રયત્ન કરતા કોઈ માણસને, અયાનક પવનના ઝપાટાથી થોડી ક્ષણો માટે તે ખંડનો પડદો ખસ્યો હોય ત્યારે પડદા પાછળ રહેલ ખજાનાનો ખ્યાલ આવતાં તેના પુરુષાર્થમાં આમૂલ પરિવર્તન આવી જાય છે; તેમ સદ્દ્રુરુ દ્વારા આત્મસ્વરૂપની ઓળખાણ કરી પુરુષાર્થ કરનાર સાધકને એક ક્ષણ માટે પણ જો સ્વરૂપનું દર્શન થાય તો, ત્યારપછી તેનું આખું જીવન-વહેણ બદલાઈ જાય છે.

જેમ અંધારી રાતે તદ્દન અજાણ્યા સ્થાને ઊભા રહેલા મુસાફરને વીજળીના ઝબકારામાં પોતાની આજુબાજુનું દશ્ય દેખાઈ જાય છે, તેમ સ્વાનુભવથી સાધકને એક પલકારામાં પોતાના સ્વરૂપનું દર્શન લાધે છે. એક ક્ષણ માટે પોતાના અકળ, શાશ્વત, શુદ્ધ સ્વરૂપનો અનુભવ થાય છે અને પૂર્વના અજ્ઞાનનું સ્થાન આત્માનું નિર્ભાત જ્ઞાન લઈ લે છે. વર્ષોના શાસ્ત્રાભ્યાસથી જે પ્રાપ્ત ન થઈ શકે એનાથી પણ અધિક સ્પષ્ટ, નિશ્ચિત અને ઊંડાણવાળું જ્ઞાન આ થોડી જ ક્ષણોમાં તેમને થઈ જાય છે.

નિર્વિકલ્પ અનુભવ વખતે તેમને એ પણ વિકલ્પ નથી આવતો કે 'હું અનુભવ કરનારો અને આ મારી અનુભવની પર્યાય છે', તો અન્ય વિકલ્પની તો વાત જ ક્યાં રહી? આ અનુભવ અત્યંત સુખદ હોય છે અને તેનાથી તેમને વચનાતીત શાંતિ લાધે છે. શુદ્ધાત્માની અનુભૂતિ થતાં બધા ક્લેશો દૂર ભાગી જાય છે. કર્મકૃત વ્યક્તિત્વના પડની ઓથે રહેલ પોતાના તાત્ત્વિક, અવિનાશી, જ્ઞાનમય આનંદસ્વરૂપની અનુભૂતિના પરિણામે તેમના દૃદયમાં શાંત રસનું ઝરણું વહેવા લાગે છે. તેઓ શાંતિ, સ્વસ્થતા અને પ્રસન્નતાથી સભર બને છે. તેમનું જીવન દિવ્ય બને છે. તેઓ જે કાંઈ જાણે-સમજે છે તે બધું દિવ્યતાથી વ્યાપ્ત હોય છે. તેમને પરમાં રહેલાં અહં-મમત્વનો નાશ થાય

છે અને કર્તા-ભોક્તાપણાને વેદવાને બદલે હવે તેઓ જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાપણે રહેવા લાગે છે.

સર્વ દંદોનું અને વિષમતાઓનું નિષ્ફળપશું તેમના આત્મામાં અપરોક્ષાનુભૂતિથી વિદિત થાય છે. તેમની દષ્ટિમાં સુખ-દુઃખ, લાભ-હાનિ વગેરે સર્વ ભેદો ગળી જાય છે અને તેમના જીવનમાં સર્વત્ર એકરૂપ, અલૌકિક દર્શનની જ મુખ્યતા થઈ જાય છે. વિશ્વના સમસ્ત જીવોમાં પોતાના જેવી જ દિવ્ય વિભતિનાં દર્શન તેમને થવા લાગે છે. તેમણે પોતાને જાણ્યો હોવાથી તેઓ જાણી લે છે કે આવો દીવો બધામાં બળી રહ્યો છે. દરેક જીવની અંદર એક આત્મજ્યોતિ છે, જે ગુણોની દૃષ્ટિએ સમાન છે. જ્યાં સુધી જીવ પોતાને નથી જાણતો, ત્યાં સુધી તેને અન્ય જીવ શત્રરૂપે કે મિત્રરૂપે ભાસે છે, પણ પોતાને જાણી લેવાથી જીવ સમદર્શનને ઉપલબ્ધ થાય છે. પછી નથી કોઈ શત્રુ કે નથી કોઈ મિત્ર. નથી કોઈ પોતાનું અને નથી કોઈ પરાયું. તેમને સર્વ પ્રત્યે સમદર્શિતા - સર્વાત્મમાં સમદેષ્ટે રહે છે. તેમને કોઈ પ્રત્યે રાગ-દેષ થતા નથી. તેઓ નિઃસ્પૃહી હોવાથી, તેમનો સર્વ વ્યવહાર અપેક્ષાવિહીન હોવાથી, કોઈનો પણ ગમે તેવો કટુ વ્યવહાર હોય તોપણ તેઓ કોઈ પ્રતિક્રિયા કરતા નથી. અજ્ઞાનમદિરામાં મસ્ત થઈને ચાલી રહેલો કોઈ જીવ તેમની સાથે અથડામણમાં ઊતરે તોપણ તેઓ ક્રોધાદિ કરતા નથી. નુકસાન કરનારનું પણ હિત સાધવામાં તેઓ પ્રવૃત્ત હોય છે અને તે પણ સહજ રીતે. દીપ જાતે બળે છે, પણ બદલામાં વિશ્વને પ્રકાશ જ આપે છે. ધૂપ જાતે સળગે છે, પણ બદલામાં સર્વત્ર સુગંધ જ ફેલાવે છે. વૃક્ષ પોતે પથ્થરનો માર સહન કરે છે. પણ બદલામાં મારનારને ફળ જ આપે છે. આ બધું જેમ સહજ ભાવથી બને છે. તેમ જ્ઞાનીને સમતા સહજ બની ગઈ હોવાથી સ્વ-પરના કલ્યાણનો સ્રોત ખુલ્લો થઈ જાય છે. તેઓ સમસ્ત જીવોના પરમ હિતકારી મિત્ર બની જાય છે.

આત્મભાન થયા પછી સ્વરૂપમાં જ તત્પર એવા જ્ઞાનીનું ચિત્ત નિરંતર ચૈતન્ય-સ્વભાવના ભાનમાં જ રહે છે. તેમને શરીરનું લક્ષ પણ રહેતું નથી. તેમને નિશદિન પોતાના શુદ્ધાત્માનું લક્ષ વર્તે છે. તેમને સતત જ્ઞાનસ્વરૂપ આનંદમૂર્તિ આત્માનો લક્ષ હોય છે. એનો દોર તેમણે બાંધી લીધો હોય છે. જેમ કરોળિયો પાણીમાં ચાલી ન શકે, એટલે પોતાની લાળથી લાળનો દોર બાંધીને તેના ઉપર સડસડાટ ચાલ્યો જાય છે; તેમ સમ્યગ્દષ્ટિએ ચૈતન્યની રુચિનો દોર બાંધી લીધો હોવાથી મોક્ષમાર્ગે તેમનો આત્મા સડસડાટ ચાલ્યો જાય છે. પૂર્ણપદની પ્રાપ્તિના માર્ગમાં નિ:શંક થઈ, સ્વસ્થતા અને નિશ્ચિંતતાથી તેઓ આગળ વધે છે. તેઓ નિજ પરમ ઉપાદેયતત્ત્વની આરાધનામાં મગ્ન રહે છે.

આત્માનુભવનો આવો અયાર મહિમા છે. કોઈ ભયાનક સ્વપ્નથી ભયભીત બનેલ વ્યક્તિની માનસિક અવસ્થા અને તેમાંથી જાગી જઈ હળવાશ અનુભવતી વ્યક્તિની માનસિક અવસ્થા વચ્ચેના અંતર જેવું અંતર આત્માનુભવ પ્રાપ્ત કરનાર વ્યક્તિની અનુભવ પૂર્વેની અને પછીની માનસિક અવસ્થા વચ્ચે હોય છે. ઊંઘમાંથી જાગી જનારને સ્વપ્નની સૃષ્ટિ માત્ર માનસિક ભ્રમણા હતી એવું જ્ઞાન થતાં તેના માટે સ્વપ્નના બનાવોનું કોઈ મહત્ત્વ રહેતું નથી, તેમ આત્માના જ્ઞાન-આનંદમય શાશ્વત સ્વરૂપની અનુભવસિદ્ધ પ્રતીતિ થતાં તેમની ભવભ્રમણા ભાંગી જાય છે અને તેમને બાહ્ય જગત સ્વપ્ન જેવું નિઃસાર લાગે છે. આમ, સ્વરૂપજાગરણની સાથે જ જાત અને જગત જુદાં લાગવા માંડે છે. પોતાના સ્વરૂપ પ્રત્યે જાગૃત થતાં જ સ્વપ્નદશા સમાપ્ત થઈ જાય છે.

જીવ એમ માને છે કે આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ એ એક કઠિન ઉપલબ્ધિ છે, પણ આ માન્યતા સાચી નથી. ન એ કઠિન છે અને ન તો એ ઉપલબ્ધિ છે. જીવના અસ્તિત્વમાં નથી કાંઈ જોડવાનું કે નથી એમાંથી કાંઈ કાઢી નાખવાનું. જીવ જે પ્રાપ્ત કરવા ઇચ્છે છે, એ તો તે અત્યારે જ છે. તે અત્યારે એ જ છે, જે થવા ચાહે છે. તે એટલો પૂર્ણ છે જેટલો પૂર્ણ હોઈ શકે છે. આત્મજ્ઞાન માટે તેણે કશે પણ જવાનું નથી. તેણે કશેથી કંઈ પણ લાવવાનું નથી. એ તો હંમેશાં હાજર જ છે. જો તેણે કંઈ લાવવાનું હોય તો માત્ર પોતાની જાગૃતિ લાવવાની છે. આત્માને કશે પણ મેળવવા જવાનું નથી, કેવળ જાગૃત થવાનું છે. જેને જીવ ભૂલી ગયો છે, એનું ફક્ત સ્મરણ જ કરવાનું છે. પોતાના સ્વરૂપ પ્રત્યે માત્ર દષ્ટિ કરવાની છે. આત્માને પ્રાપ્ત નથી કરવાનો, કેવળ અનાવૃત કરવાનો છે. જીવે જે કાંઈ પુરુષાર્થ કરવાનો છે એ ઉપલબ્ધિ માટે નહીં પણ અનાવરણ માટે કરવાનો છે.

કોઈ ભિખારી હોય, તેની પાસે એક ખજાનો હોય જેને તે ભૂલી ગયો હોય અથવા તેને હજી સુધી ખબર પણ ન હોય કે તેની પાસે કોઈ ખજાનો છે. તે રસ્તા ઉપર ભીખ માંગી રહ્યો હોય, ત્યારે કોઈ સજ્જન આવીને તેને કહે કે 'તારા ઘરની અંદર જો. તારે ભીખ માંગવાની જરૂર નથી. તું તો આ જ ક્ષણે સમ્રાટ થઈ શકે એમ છે.' તો ભિખારી એને કહેશે, 'કેવી મૂરખ જેવી વાતો કરો છો? હું આ જ ક્ષણે સમ્રાટ કઈ રીતે બની શકું? વર્ષોથી ભીખ માંગું છું અને હજી સુધી ભિખારીનો ભિખારી જ છું. જો અનેક જન્મો સુધી ભીખ માંગું તોપણ હું સમ્રાટ બની શકું નહીં.' ભિખારીને ભરોસો જ નથી આવતો. ભીખ માંગતાં જે થોડું-ઘણું મળે, તેમાં ચલાવી લેતો હોવાથી સમ્રાટનાં સ્વપ્ન જોવાનું પણ છૂટી ગયું છે. પરંતુ જો ઘરમાં દટાયેલો ખજાનો મામૂલી ખોદકામથી, થોડી માટી હટાવવાથી મેળવે તો તે ભિખારી નહીં રહે, તે તરત જ સમ્રાટ થઈ જશે. આ જ વાત અધ્યાત્મની બાબતમાં છે. આત્મા છુપાયેલો ખજાનો છે. જીવે હજી સુધી એ ખજાનાને જાણ્યો નથી, પરંતુ એ તેની અંદર મોજૂદ જ

છે. પોતે જ ખજાનો છે અને છતાં કેવી વિડંબના છે કે તે ભીખ માંગે છે. સ્વસ્વરૂપમાં ઐક્યરૂપ ખાડો બનાવતાં અને શરીરની સાથે જે તાદાત્મ્ય કરી લીધું છે તે તાદાત્મ્યરૂપ માટીને હટાવતાં ખજાનાનો પત્તો મળી જાય છે. ભારે પ્રયત્ન વિના જીવ સમાટ થઈ શકે છે. સ્વસ્વરૂપના અનુસંધાનથી જીવને આત્મજ્ઞાન પ્રગટી શકે છે.

ભિખારી અને સમાટની વચ્ચે ઘણું જ અંતર છે. તેવી જ રીતે અજ્ઞાની અને જ્ઞાની વચ્ચે અનંત દૂરતા છે. જ્ઞાનીને સ્વરૂપનું અનુસંધાન નિરંતર હોય છે, જ્યારે અજ્ઞાનીને ફક્ત એ જ કરવાનું બાકી છે. જો તે સ્વરૂપાનુસંધાન કરે તો તે પણ શીધ્ર જ્ઞાની થઈ જાય છે. જ્ઞાની પણ અજ્ઞાનીની જેમ ક્યારેક ભિખારી હતા. સ્વરૂપાનુસંધાનથી ભિખારીપણું મટી ગયું, સમાટપણું અનાવરિત થયું અને તેઓ સ્વામી થઈ ગયા. જ્ઞાની પોતાના આંતરિક ખજાનાને પ્રાપ્ત કરી લે છે પછી તેઓ ભિખારી નથી રહેતા, સમાટ બને છે. દરેક જીવે માત્ર પોતાના ખજાના ઉપર નજર કરવાની છે. જો બહાર કશે પહોંચવાનું હોત, બહારથી કંઈક અંદર લાવવાનું હોત તો જરૂર એ કાર્ય કઠિન હોત; પરંતુ તેવું કંઈ કરવાનું નથી, માત્ર આવરણ જ દૂર કરવાનું છે.

બે વ્યક્તિ બાજુ બાજુમાં બેઠી છે. આંખની કોઈ મોટી ક્ષતિના કારણે એક વ્યક્તિ અંધ છે. બીજી વ્યક્તિ અંધ નથી, તે જોઈ શકે છે, પણ અત્યારે આંખ મીંચીને બેઠી છે. જો વર્તમાન ક્ષણમાં તે બન્નેને આસપાસનું દશ્ય દેખાડવું હોય તો અંધ વ્યક્તિના કિસ્સામાં એ કાર્ય અત્યંત કઠિન બને છે, કેમ કે તે માટે શસ્ત્રક્રિયા કરવી પડે છે; જ્યારે દેખતી વ્યક્તિએ તો માત્ર આંખ જ ઉઘાડવાની છે, માત્ર અનાવરણ જ કરવાનું છે અને તેથી એના કિસ્સામાં એ કાર્ય અત્યંત સરળ બને છે. તેવી જ રીતે સત્ પ્રાપ્ત કરવા સત્ તરફ નજર કરવાની છે અને તેથી જ સત્ સરળતાથી પ્રાપ્ત થઈ શકે છે. અગત્યનું છે માત્ર અનાવરણ. તેથી જ જ્ઞાનીઓએ કહ્યું છે કે સત્ સરળ છે, સુગમ છે, સર્વત્ર તેની પ્રાપ્તિ હોય છે.

જીવને આત્મજ્ઞાનરૂપ જાગૃતિ પ્રગટતાં પરિભ્રમણનું મૂળ કારણ એવું વિભાવ-ભાવમાં કરેલું તાદાત્મ્ય છેદાઈ જાય છે. જીવ શુભાશુભ ભાવ કરીને અનંત વાર સ્વર્ગમાં ગયો અને અનંત વાર નરકમાં પણ ગયો. શુભાશુભ ભાવ સાથે અભેદભાવની માન્યતાથી ચારે ગતિમાં અનંત કાળ રખડ્યો, પણ જ્યાં આત્મજ્ઞાનરૂપી જ્યોતિ પ્રગટ થઈ ત્યાં પરિભ્રમણ ટળી ગયું અને મુક્તિની પર્યાય અંશે પ્રગટ થઈ. 'મારો આત્મા જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા છે, વીતરાગસ્વભાવી છે' એમ સ્વીકારતી જ્ઞાનજ્યોતિ એવી તો સજ્જ થઈ કે હવે તો પૂર્ણ સ્વરૂપમાં પ્રગટ થઈને કેવળજ્ઞાન લીધે છૂટકો! જ્ઞાનજ્યોતિના ફેલાવાને કેવળજ્ઞાનમાં પરિણમતાં કોઈ રોકી શકે એમ જ નથી. તે પ્રગટી તે પ્રગટી, હવે કેવળજ્ઞાન સુધી પહોંચી જ જવાની! આવી જ્ઞાનજ્યોતિ પ્રગટાવવાની પ્રેરણા કરતાં આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવ કહે છે કે 'હે ભવ્ય! જગતના બીજા વૃથા વિવાદ કરવાથી તું અટક. શાંત થઈને, ચુપચાપ, ગુપ્ત રીતે, કેળવણી પામીને, વિનીત થઈને, વિશ્વાસુ થઈને, દઢ થઈને, નિશ્વળ થઈને, સ્થિર થઈને, એકાગ્ર થઈને અંતરમાં ચૈતન્યને અનુભવવાનો છ મહિના સુધી અભ્યાસ કર અને ખાતરી કરી જો કે આમ કરવાથી તારા હ્રદયસરોવરમાં પુદ્ગલથી ભિન્ન એવા ચૈતન્યપ્રકાશની પ્રાપ્તિ થાય છે કે નહીં? છ મહિનામાં તો જરૂર તેની પ્રાપ્તિ થશે.'

જીવે અનંત કાળથી મિથ્યા બુદ્ધિના કારણે દેહ અને રાગાદિને પોતાના માનીને તેનો અભ્યાસ કર્યો હોવાથી તેને ચૈતન્યવિદ્યા પ્રાપ્ત ન થઈ, પોતાનો આત્મા અનુભવમાં ન આવ્યો. ચૈતન્યનો અનુભવ સહજ અને સરળ હોવા છતાં, તે પોતે દુનિયાના નકામા કોલાહલમાં રોકાઈ ગયો હોવાથી તેને ચૈતન્યનો અનુભવ ન થયો. આ કોલાહલથી તેને કંઈ આત્મલાભ ન થયો. હવે તેણે દુનિયાના કોલાહલથી વિરામ પામવું જોઈએ. બાહ્ય કોલાહલને છોડીને અંતરમાં ચૈતન્યને અનુભવવાનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ. આખા જગતની દરકાર છોડીને ચૈતન્યસ્વરૂપને અનુભવવા માટે તૈયાર થવું જોઈએ. એક ચૈતન્યતત્ત્વ સિવાય બધું જ ભૂલી જવું જોઈએ. માત્ર ચૈતન્યનો જ અભિલાષી થઈને અંતરમાં ચૈતન્યને પકડવાનો અભ્યાસ કરતાં જીવ અંતરમાં ઊંડો ને ઊંડો ઊતરતો જાય છે, ક્ષણે ક્ષણે ચૈતન્યસ્વભાવની નજીક ને નજીક થતો જાય છે. આવો ને આવો ધારાવાહી અભ્યાસ ચાલુ રહેતાં જરૂર ચૈતન્યનો અનુભવ થાય છે. લગનીપૂર્વક અભ્યાસ કરતાં છ મહિનામાં જરૂર આત્માનો અનુભવ થાય છે.

છ મહિના તો વધુમાં વધુ છે. જો ઉત્કૃષ્ટ લગનીપૂર્વક જીવ પ્રયત્ન કરે તો તો માત્ર બે ઘડીમાં જ જીવને આત્માની પ્રાપ્તિ થાય છે. આત્મામાં પરનું કાંઈ કરવાનું કિંચિત્ પણ સામર્થ્ય નથી, પરંતુ તે જ આત્મામાં એવું બેહદ સ્વાધીન સામર્થ્ય છે કે તે બે ઘડીમાં આત્માની પ્રાપ્તિ કરી શકે છે. 'પરવસ્તુ આત્માને તાબે નથી, પરંતુ આત્મા સ્વયં ચિદાનંદમૂર્તિ છે' એમ સમજી-સ્વીકારી સ્વભાવમાં ઠરે તેને બે ઘડીમાં પૂર્ણ નિર્મળ કેવળજ્ઞાનદશા પ્રાપ્ત થાય છે. આત્માનો અનુભવ કરવાની જેને તાલાવેલી જાગી છે એવો મુમુક્ષુ જીવ તો ઉત્સાહથી અને ઉલ્લાસથી આ કાર્યમાં મંડી પડે છે. જ્યાં બાર મહિને પાંચ લાખ રૂપિયા મળે તેમ હોય, ત્યાં જો એક દિવસમાં તે મળી જાય તો

'विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम् । इदयसरिस पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो ननु किमनुषलब्धिर्भाति किंचोपलब्धिः।।'

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવકૃત, 'સમયસારકલશ', કલશ ૩૪

હરખના ઉછાળા આવે છે. રુચિકર વસ્તુ અલ્પ કાળમાં મળી જાય તો કેવો આનંદ થાય છે! પણ આ તો સંસારના અનુકૂળ સંયોગો છે. તેનું ફળ પરમાર્થદષ્ટિએ શૂન્ય છે, કારણ કે તેનાથી કોઈ પણ પ્રકારનો આત્મલાભ થતો નથી. પરંતુ કેવળજ્ઞાનથી તો અનંત આત્મલાભ છે અને તે બે ઘડીમાં પ્રગટી શકે છે. તેમ છતાં બહિર્દષ્ટિ જીવ 'હમણાં નહીં' એવા વાયદાઓ કરી શિથિલ થઈ જતો હોય છે અને તેથી તે આત્મજ્ઞાન પ્રગટાવી શકતો નથી.

આત્માની શુદ્ધ, પિલત્ર, નિર્મળ દશા પ્રગટાવવામાં કેટલો સમય લાગે તે જીવની ત્વરા-તીવ્રતા તથા સઘન આકાંક્ષા-અભીપ્સા ઉપર આધાર રાખે છે. જીવ કીડીની ચાલે ચાલ્યા કરે તો જન્મોના જન્મો નીકળી જાય. સામાન્યપણે પરમાર્થમાર્ગે લોકો જાનૈયાની જેમ ધીમી ગતિએ ચાલે છે. જો જીવ ધારે તો તે વિમાન કરતાં પણ તેજ ગતિએ આગળ વધી શકે એમ છે. જો તે સમગ્ર ભાવથી, પૂરા જોશથી ને પૂરા હોશથી અંદર ઝુકાવી દે, કંઈ પણ બચાવ્યા વિના જો સમગ્ર અસ્તિત્વ દાવ ઉપર લગાવી દે તો અત્યારે જ પહોંચી શકે, કારણ કે તે અર્થે તેણે કોઈ બહારની યાત્રા કરવાની નથી. આ યાત્રા તો અંદરની છે કે જ્યાં તે છે જ, કેવળ નજર ફેરવવાની વાત છે. તે ભટકતો અટકે તો જરા પણ અંતર છે જ નહીં, પણ જો નજર ફેરવવામાં તે વાર લગાડે, યાત્રાને સ્થગિત કરે અને કહે કે કાલે કરીશ, પરમ દિવસે કરીશ; તો પછી જેવી રીતે આવા અનંત જન્મો વેડફાઈ ચૂક્યા છે તેવી રીતે હજુ બીજા અનંત ભવો વેડફાઈ જવાનો સંભવ છે.

જીવની કેવળજ્ઞાનની તૈયારી તેના હાથમાં છે. તેનો વર્તમાન સમય તેના હાથમાં છે. તે સ્વતંત્ર છે. વર્તમાન સમયને, વર્તમાન વર્તતી પર્યાયને પોતાના પરિપૂર્ણ સ્વભાવ તરફ વાળવા તે સ્વતંત્ર છે. સ્વભાવમાં જ્યારે પણ જવું હોય ત્યારે તેને કોઈ સંજોગ રોકી શકે એમ નથી. આત્મામાં સંજોગોનો ત્રિકાળ અભાવ છે. તેનું સ્વરૂપ અવ્યાબાધ છે. બહારના કોઈ સંજોગમાં એવી તાકાત નથી કે જીવને પોતાના સ્વરૂપમાં જતાં રોકી શકે. જીવને અટકાવે છે તેનો પ્રમાદ. પ્રમાદ મહારિપુ છે. જે આ પ્રમાદનો જય કરે છે, તે પરમપદને પ્રાપ્ત કરે છે. 'અત્યારે જ ક્રાંતિ કરી અનંત કર્મોનો બે ઘડીમાં ક્ષય કરી શકું એવું મારું સામર્થ્ય છે' - આવી શ્રદ્ધા સહિતની કેવળજ્ઞાનની તૈયારીમાં કેવળજ્ઞાન પ્રગટે છે.

જે જીવ આત્માની ધગશપૂર્વક આગળ વધી, આત્મજ્ઞાન પ્રગટાવી, વિભાવ-ભાવોનો સર્વથા અંત લાવી કેવળજ્ઞાન પ્રગટાવે છે; તે જીવ સિદ્ધ અવસ્થામાં સાદિ-અનંત કાળ સુધી સમાધિસુખમાં બિરાજે છે. સંસારના ભૂતકાળ કરતાં સિદ્ધપદનો ભવિષ્ય કાળ અનંતગણો વધુ છે. ચૈતન્યસ્વભાવની અસંખ્ય સમયની સાધનાના ફળમાં આવું અનંત કાળનું અનંત સુખ પ્રગટે છે. મોક્ષમાર્ગે પ્રયાણ શરૂ થયા પછી મોક્ષને સાધતાં અનંત કાળ નથી લાગતો. મોક્ષમાર્ગનો સમગ્ર કાળ અસંખ્ય સમયનો જ હોય છે. તે અસંખ્ય સમયની સાધનાના ફળમાં જે મહાન સિદ્ધસુખ પ્રગટે છે તે અનંત કાળ રહેનારું હોય છે. આમ, અનાદિ કાળનો વિભાવ મટાડવા માટે અને અનંત કાળનું મોક્ષસુખ સાધવા માટે અનંત કાળ નથી લાગતો. પોતાના સ્વભાવની તાકાતથી અસંખ્યાત સમયમાં જ આત્મા સિદ્ધપદને સાધી લે છે.

આના ઉપરથી ફ્લિત થાય છે કે –

જીવ - અનાદિ-અનંત કાળ

સાધકકાળ - સાદિ-સાંત કાળ

વિભાવ - અનાદિ-સાંત કાળ

મોક્ષ - સાદિ-અનંત કાળ

જીવ અનાદિ-અનંત છે, પણ વિભાવ અનાદિ-સાંત છે. અનાદિનો વિભાવ જ્ઞાન થતાં દૂર થાય છે. વિભાવ ત્રણ પ્રકારે છે - શ્રદ્ધાનો વિભાવ, જ્ઞાનનો વિભાવ અને ચારિત્રનો વિભાવ. શાસ્ત્રમાં એને અનુક્રમે મિથ્યાદર્શન, મિથ્યાજ્ઞાન અને મિથ્યાચારિત્ર કહ્યાં છે; અને એ ત્રણે વિભાવ દૂર કરવા માટે સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રરૂપ રત્નત્રયની આરાધના એ જ એક ઉપાય છે. યથાર્થ બોધ થયા વિના યથાર્થ પ્રતીતિ જાગતી નથી અને યથાર્થ પ્રતીતિ પ્રગટ્યા વિના જ્ઞાન સમ્યક્ થતું નથી અને એ બન્ને સમ્યક્ પ્રકારને પામ્યા પછી જ આચરણનો વિભાવ દૂર થાય છે. સર્વ શુભ-અશુભથી રહિત થઈને સ્વરૂપમાં જાગૃત થતાં વિભાવ વિલીન થાય છે. આ જ વિભાવને ટાળવાની રીત છે. આ વિષે શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે –

'અહીં 'વિભાવ' શબ્દથી મુખ્યપણે દર્શનમોહનો નાશ કહ્યો છે, અને ગૌણમાં ચારિત્રમોહનો નાશ કહ્યો છે.'^૧

આમ, શ્રીમદે અનાદિનો વિભાવ ટાળવાનો ઉપાય અને તે ટાળવાનો કાળ સ્વષ્નના દષ્ટાંત વડે સમજાવી, મુમુક્ષુઓને આત્મજ્ઞાનના પુરુષાર્થ માટે પ્રેરેશા આપી છે. સ્વભાવના પ્રતિપક્ષ એવા વિભાવનું આત્મામાંથી વિસર્જન કરવાનો સદુપદેશ કર્યો છે. સર્વ જ્ઞાનીઓનો બોધ વિભાવનો વિલય કરનાર આત્મજ્ઞાનરૂપી જાગૃતિ કેળવવા અર્થે જ હોય છે. જ્ઞાનીઓ જીવને જાગૃત કરવા માટે પ્રેરેશા કરે છે કે 'હે જીવ! તું ક્યારે જાગશે? તું ક્યારે આ સ્વષ્નદશામાંથી બહાર નીકળશે? અનાદિ કાળથી તું તારા સ્વપદને ભૂલ્યો છે. હવે તારા આનંદમય સ્વપદને સંભારીને જાગી જા. માત્ર બાહ્ય ૧- શ્રી કાનજીસ્વામી, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચનો', આઠમી આવૃત્તિ, પ્રાવક્

કિયા કે કોરો શાસ્ત્રાભ્યાસ કરવાથી જાગૃતિ નહીં આવી શકે. આત્માના ભાન વિના તે પણ બધું બેહોશીમાં જ થશે. જ્યારે અંદરથી એવો ભણકાર થશે, પોકાર જાગશે કે હવે પછીનું જીવન બેહોશીમાં ગાળવું નથી, મારે જાગૃત થવું છે; ત્યારે અધ્યાત્મની યાત્રાનો પ્રારંભ થશે. સદ્ગુરુના આશ્રયે પોતાના સ્વરૂપની સાચી ઓળખાણ થશે, તેનો મહિમા જાગશે, તેનો અનુભવ થશે ત્યારે આત્મજ્ઞાનરૂપી જાગૃતિ પ્રગટશે. આવી જાગૃતિ તું શીધ્ર પ્રગટાવી લે. તું દુર્લભ મૃનુષ્યજીવન પામ્યો છે, મહાદુર્લભ એવો વીતરાગનો ઉપદેશ તને મળ્યો છે; તો હવે જાગૃત થતાં વાર કેમ? બધાં સાધન તૈયાર છે. તારી જ વારે વાર છે. હવે વાર ન લગાડ. સત્વરે આત્મજ્ઞાનથી આત્માને પ્રકાશિત કર.'

જાગૃતિમય જીવન જ સાચું જીવન છે. જીવ ભલે ગમે તેટલી બાહ્ય ક્રિયા કે ચર્ચા કરતો હોય, પણ જો વૃત્તિમાં રૂપાંતરણ ન હોય, સ્વરૂપનું ભાન ન હોય, આત્મવિકાસ થતો ન હોય તો તે નિદ્રામાં જ છે. નિદ્રાની આરંભની ક્ષણે તે જ્યાં હોય છે ત્યાં જ અંતિમ ક્ષણે પણ હોય છે. તેનો કોઈ જ વિકાસ થતો નથી. માટે જ્યાં વિકાસ નથી ત્યાં હજી નિદ્રા છે. આ મૂચ્છમાંથી જાગવું જ પડશે. આ મૂચ્છમાંથી જાગ્યા વિના પોતે જે છે, તે હોવા છતાં તે પોતાને જાણી નહીં શકે. પોતાની જ સત્તાને તે જાણી નહીં શકે. જાગૃતિ લાવશે તો જ જ્ઞાનીના માર્ગે આગળ વધી શકશે, તેથી જાગૃત થવાની જરૂર છે. જાગૃત જીવન જ વાસ્તવિક જીવન છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'કોટિ વર્ષનું સ્વપ્ન પણ, જાગે આવ્યું ભાન; ભિખારીને ખેદનું, કારણ એ અજ્ઞાન. સ્વપ્નદશાના સ્વપ્ન તે, જાગ્રત થતાં શમાય; શાળિભદ્રને ધન્ય છે, સહજે માર્ગ પમાય. દીપ પ્રગટ થતાં તરત, મટી જાય અંધકાર; તેમ વિભાવ અનાદિનો, મટે સ્વભાવ પ્રચાર. સૂર્ય ઉદયમાં રાત્રિથી, લેશ ન રહી શકાય; ક્ષમા ધર્મ હાજર થતાં, કોધથી નાશી જવાય; તેમ અન્ય પરભાવ તે, જ્ઞાન થતાં દર થાય.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૨-૨૪૩ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૫૩-૪૫૬)

લ્કુટે દેશ ધ્યારા ગો, નાર કત્તા લંકમ. નાર જોક્યા લંગેલનો, ઓબ્ય ધમનો મમ. ગાથા ૧૧૪માં શ્રીગુરુએ જણાવ્યું કે કરોડ વર્ષનું સ્વપ્ન જેમ જાગૃત થતાં તત્કાળ વિલય પામે છે, તેમ વિભાવદશા પણ જ્ઞાન થતાં સત્વર વિલીન થાય છે. આમ, વિભાવદશા જે પ્રકારે - જે માર્ગે નાશ થાય તે જ મોક્ષનો ઉપાય છે, તે જ મોક્ષનો માર્ગ છે.

શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપને પામ્યા છે એવા જ્ઞાની ભગવંતોએ સમ્યગ્દર્શનના નિવાસનાં સર્વોત્કૃષ્ટ સ્થાનક એવાં જે છ પદ કહ્યાં છે, તેમાંના અંતિમ પદને શ્રીગુરુ સમજાવી રહ્યા છે. તેમણે જન્મ-જરા-મરણનો નાશ કરવાવાળો, સ્વસ્વરૂપમાં સહજ અવસ્થાન થવારૂપ મોક્ષનો ઉપાય સમજાવ્યો છે. મોક્ષનો ઉપાય તથા તેનો ક્રમ સચોટ અને સરળ શૈલીથી સમજાવ્યા પછી હવે 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'ના નિચોડરૂપ ગણી શકાય એવી રહસ્યપૂર્ણ તથા કળશરૂપ ત્રણ ગાથાઓ (૧૧૫-૧૧૭) પ્રકાશીને શ્રીગુરુ મોક્ષના ઉપાયરૂપ અંતિમ પદની પૂર્ણાહૃતિ કરશે.

આ ત્રણ રહસ્યપૂર્ણ ગાથાઓમાંની પ્રથમ ગાથામાં ધર્મનો મર્મ પ્રકાશતાં શ્રીગુરુ કહે છે –

ગાશા 'છૂટે દેહાધ્યાસ તો, નહિ કર્તા તું કર્મ; નહિ ભોક્તા તું તેહનો, એ જ ધર્મનો મર્મ.' (૧૧૫)

હે શિષ્ય! દેહમાં જે આત્મતા મનાઈ છે, અને તેને લીધે સ્ત્રીપુત્રાદિ સર્વમાં અહંમમત્વપણું વર્તે છે, તે આત્મતા જો આત્મામાં જ મનાય, અને તે દેહાધ્યાસ એટલે દેહમાં આત્મબુદ્ધિ તથા આત્મામાં દેહબુદ્ધિ છે તે છૂટે, તો તું કર્મનો કર્તા પણ નથી, અને ભોક્તા પણ નથી; અને એ જ ધર્મનો મર્મ છે. (૧૧૫)

આ પરમાર્થગંભીર ગાથામાં ધર્મનો મર્મ, અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગનું રહસ્ય ભવ્ય જીવોનાં આત્મકલ્યાણાર્થે પ્રગટ કરવામાં આવ્યું છે. મર્મ એટલે જેમાં ગુપ્ત ભેદ રહ્યો હોય, જે સર્વસામાન્યજીવથી અપ્રગટ હોય અને જે એવી ઉત્તમ ચાવીરૂપ હોય કે જેના વડે આત્મનિધાનનાં સર્વ તાળાં ખૂલી જાય. સાંપ્રત સમાજમાં ધર્મના નામે અનેક માન્યતાઓ, ક્રિયાઓ, અનુષ્ઠાનો, સાધનાપદ્ધતિઓ ચાલે છે; પણ મૂઢ અજ્ઞાની જીવોને ધર્મ શું છે, ધર્મનું સ્વરૂપ શું છે તે ખબર નથી અને તેથી અનેક સાધનો કરવા છતાં તેમની ભવનિવૃત્તિ થતી નથી. તેથી ધર્મનું સ્વરૂપ સમજાવતાં શ્રીગુરુ કહે

છે કે દેહ સાથેનો એકતારૂપ દેહાધ્યાસ છૂટે તો જીવનું કર્તા-ભોક્તાપણું ટળે અને ક્રમે ક્રમે સર્વ કર્મબંધનથી રહિત થવાય. જ્ઞાનીઓએ સર્વ સાધનો દેહાધ્યાસ દૂર કરવા માટે જ બતાવ્યાં છે. સર્વ દુ:ખનું મૂળ એવો દેહાધ્યાસ, અર્થાત્ દેહમાં આત્મબુદ્ધિરૂપ મિથ્યા માન્યતા જીવમાં અનાદિ કાળથી પ્રવાહપણે ચાલી આવે છે. સ્વરૂપવિસ્મરણના કારણે તે પરમાં કર્તૃત્વબુદ્ધિ તથા ભોક્તૃત્વબુદ્ધિ કરે છે. 'હું પરનું કરી શકું, પરને ભોગવી શકું' એવું તે માને છે અને તેથી તેવી વૃત્તિ-પ્રવૃત્તિમાં તે અસ્ત રહે છે; પરિણામે કર્મબંધ કરી તે સંસારની વૃદ્ધિ કરે છે. ભેદજ્ઞાનના બળ વડે જ્યારે આ દેહાત્મભ્રમનો નિરાસ થાય છે ત્યારે દેહ સાથેની તાદાત્મ્યવૃત્તિ છૂટી જતાં પોતાના શુદ્ધ, પૂર્ણ, નિત્ય, ધ્રુવ તત્ત્વ સાથે તાદાત્મ્ય સ્થપાય છે. 'સર્વ પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી ભિન્ન એવો હું જ્ઞાન-સ્વભાવી આત્મા છું' એવી વિવેકજ્યોતિ જાગૃત થતાં પરિણતિ સ્વભાવ તરફ વળે છે. હવે તે જીવ સ્વભાવ તરફ વળેલા જ્ઞાનપરિણામને જ કરે છે. જ્ઞાનપરિણામ સિવાય અન્ય કોઈ ભાવના તેઓ કર્તા અને ભોક્તા થતા નથી. તેઓ સર્વ પરને પોતાથી ભિન્ન જાણીને તેના જ્ઞાતા જ રહે છે. તેમનો લક્ષરૂપ પ્રવાહ આત્મસત્તામાં જ નિરંતર વહેતો હોવાથી તેઓ સ્વભાવના કર્તા-ભોક્તા બને છે અને તેથી તેઓ કર્મના કર્તા-ભોક્તા થતા નથી.

આગમપદ્ધતિએ જોતાં તો પૂર્ણપણે કર્મનું અકર્તા-અભોક્તાપણું ચૌદમા ગુણસ્થાનકે પ્રાપ્ત થાય છે, પરંતુ અધ્યાંત્મપદ્ધતિએ વિચારતાં કર્મના ઉદયમાં કેવળ તન્મયપણે આત્મા જ્યારે પરિણમે નહીં ત્યારે તેને અકર્તા-અભોક્તા કહેવાય છે. આવી દશા ચોથા ગુણસ્થાનકથી પ્રાપ્ત થાય છે. મિથ્યાત્વ નિવૃત્ત થતાં દેહાધ્યાસ છૂટે છે, તેથી સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ કર્મના ઉદયમાં કેવળ તન્મયપણે પ્રવર્તતા નથી. જ્ઞાનીને સમ્યક્ અભિપ્રાય વર્તતો હોવાથી ઉદયમાં એકત્વબુદ્ધિ - અભેદબુદ્ધિ થતી નથી. અભિપ્રાયમાં એકતા થતી નહીં હોવાથી રાગ ટકી શકતો નથી. આ પ્રમાણે ચોથા ગુણસ્થાનકે વર્તતા જીવને અધ્યાત્મ-પદ્ધતિએ કર્મના અકર્તા-અભોક્તા કહેવાય છે, કારણ કે દષ્ટિમાંથી રાગનું કર્તા-ભોક્તાપણું સર્વથા ટળી ગયું છે. આ જ ધર્મનું રહસ્ય છે. આમ, અધ્યાત્મશૈલીથી રચાયેલ આ ગાથા અત્યંત રહસ્યપૂર્ણ છે.

વિશેષાર્થ અજ્ઞાની જીવ માત્ર સપાટી ઉપર જીવન જીવે છે. તે સાવ કિનારે કિનારે વિશેષાર્થ જીવન જીવી રહ્યો છે. તે પરિઘ ઉપર જ રહે છે, કેન્દ્રમાં ક્યારે પણ પ્રવેશતો નથી. ઇન્દ્રિયો પરિઘ ઉપર છે અને શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપ કેન્દ્ર ઉપર છે. અજ્ઞાની જીવનો ઉપયોગ કેન્દ્ર તરફ નથી હોતો, પણ ઇન્દ્રિયોમાં અટકેલો રહે છે. ઇન્દ્રિયો જીવના અસ્તિત્વની સીમા ઉપર છે, જ્યારે ઇન્દ્રિયવિષયો તો સીમા ઉપર પણ નથી. તે સીમાની પણ પાર રહેલા છે. તેનું જ્ઞાન અને વીર્ય ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં રોકાયેલાં

રહેતાં હોવાથી, તે ઇન્દ્રિયોના તળ ઉપર જીવન જીવતો હોવાથી તેને જીવનનું પરમ ફળ નીપજતું નથી.

જીવે ત્રણ તથ્ય સમજી લેવાં ઘટે છે. એક એ કે શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપ કેન્દ્ર ઉપર છે. બીજું એ કે જેના હારા ચેતના બહાર જાય છે એ ઇન્દ્રિયો પરિઘ ઉપર છે અને ત્રીજું એ કે સંસારના વિષય, જેના તરફ ચેતના ઇન્દ્રિયોના માધ્યમથી ગતિમાન થાય છે તે પરિઘની પણ પાર છે. આ વાતને બીજી રીતે પણ સમજી શકાય છે. ઇન્દ્રિયોની એક તરફ શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપ છે અને બીજી તરફ વિષયોનો સંસાર છે. ઇન્દ્રિયો બરાબર વચમાં છે. ઇન્દ્રિયો હારા બન્ને તરફ યાત્રા કરી શકાય છે. ત્યાંથી વિષયો તરફ પણ જઈ શકાય છે અને કેન્દ્રની યાત્રા પણ કરી શકાય છે. ઇન્દ્રિયોની બન્ને બાજુ દ્વાર ખૂલે છે. ત્યાંથી જીવ ઇચ્છે તો વિષયની તરફ જઈ શકે અને ઇચ્છે તો કેન્દ્રની તરફ જઈ શકે. તેને પૂરી સ્વતંત્રતા છે. તેણે નક્કી કરવાનું છે કે કયા દારનો ઉપયોગ કરી ક્યાં પહોંચવું છે. બન્ને તરફનું અંતર સરખું છે.

સંસાર અને મોક્ષ બન્ને સમાન અંતરે છે. ભલે દિશા જુદી છે, પણ બન્નેનું અંતર એકસરખું છે. મોક્ષ માટે ભીતર જવું પડે છે, જ્યારે સંસાર માટે બહાર જવું પડે છે; પરંતુ અંતર સમાન છે. જો કે આ પણ એક કથનશૈલી જ છે. નિશ્ચયથી જોઈએ તો આત્મસ્વભાવથી સંસાર અત્યંત દૂર છે. તે અલંધ્ય અંતરે છે, જ્યારે મોક્ષ તો નિકટ જ છે. જીવ પોતે જ મોક્ષસ્વરૂપી છે. મોક્ષ જીવના ક્ષેત્રમાં છે, જ્યારે વિષયો તો ભિન્ન ક્ષેત્રમાં છે; પરંતુ ભ્રાંતિવશ જીવને મોક્ષ ખૂબ દૂર લાગે છે. તે માને છે કે સંસાર ખૂબ નિકટ છે, અહીં જ છે અને મોક્ષ તો બહુ દૂર છે. સંસાર અને મોક્ષ બન્ને સમાન અંતરે છે એવું સ્વીકારવામાં તેને ઘણી તકલીફ પડે છે.

જો સંસાર અને મોક્ષ બન્ને સમાન અંતરે છે તો ઉપયોગ કેમ સંસાર તરફ અર્થાત્ ઇન્દ્રિયવિષયો પ્રત્યે વળે છે? એનું કારણ તપાસતાં જણાય છે કે જીવની ઇચ્છાઓમાંની એક પણ ઇચ્છા એવી નથી કે જેની પૂર્તિ માટે તેણે અંદર જવું પડે. અજ્ઞાની જીવની જરૂરિયાતની દરેક ચીજ બહારથી જ મળે છે. શરીર અને મનની જરૂરિયાતો એવી છે કે તેની પૂર્તિ માટે ચેતના બહાર તરફ પ્રવાહિત થતી રહે છે. ભોજન-પાણી-ઘર જોઈએ છે, અહંની પૂર્તિ કરવી છે, વાસના તૃપ્ત કરવી છે; આ બધી મહત્ત્વપૂર્ણ લાગતી જીવની આવશ્યકતાઓ માત્ર સંસારમાંથી - બહારથી મળી શકે છે. એ પૂર્ણ કરવા સંસાર તરફ જ જવું પડે છે અને તેથી ચેતના ઇન્દ્રિયોનાં દાર વડે સંસાર તરફ પ્રવાહિત થાય છે. જીવની જરૂરિયાતો બહાર જવાથી જ પૂરી થઈ શક્તી હોવાથી તે બહારની દિશામાં જ યાત્રા કરતો રહે છે.

બાહ્ય તરફની આ ગતિ અટકાવવાનો એક જ ઉપાય છે - એવી કોઈ જરૂરિયાત

પેદા કરવી કે જે પૂરી કરવા માટે જીવે પોતાની અંદર - પોતાના કેન્દ્ર તરફ જવું પડે. જ્યાં સુધી તે એવી જરૂરિયાત પેદા નથી કરતો કે જે જરૂરિયાત માત્ર ભીતર જવાથી જ તૃપ્ત થઈ શકે એમ હોય, ત્યાં સુધી તે કદી ભીતર જશે નહીં, જઈ શકશે નહીં. આજ સુધી જીવે ભીતર જવાની જરૂરિયાત જ ઉત્પન્ન નથી કરી. એક વાર જરૂરિયાત ઉત્પન્ન થઈ જાય તો બહાર જવું જેટલું સહેલું છે, ભીતર જવું પણ એટલું જ, બલ્કે તેના કરતાં પણ ઘણું વધુ સહેલું થઈ જાય છે. આ જરૂરિયાત ધર્મ સાથે સંબંધ ધરાવે છે. આ જરૂરિયાત ઉત્પન્ન કરવી અને એ પૂરી કરવા અંદર જવું એ છે ધર્મની આરાધના, કેન્દ્ર ઉપર પહોંચીને ત્યાં સ્થિર થઈ જવું તે છે મોક્ષ અને ભીતરમાં લઈ જનારી પ્રક્રિયાનું નામ છે ધર્મ.

ધર્મની આરાધના કરવી એટલે પરિઘ ઉપરથી કેન્દ્ર તરફ જવું. નજર કેન્દ્ર તરફ કરવાની છે, દેષ્ટિ અંતરમાં રાખવાની છે. જો દેષ્ટે અંતર તરફ ન વળી તો પરિવર્તન માત્ર બાહ્યમાં થાય છે, તેમજ આંતરિક રૂપાંતરણ થઈ શકતું નથી. ધર્મનો સંબંધ આંતરિક રૂપાંતરણ સાથે છે. બાહ્ય રૂપાંતરણ કરવાનો નિષેધ નથી, પરંતુ એટલી સમજ સ્પષ્ટ કરવી જરૂરી છે કે બાહ્ય રૂપાંતરણ એ આંતરિક રૂપાંતરણ નથી અને ધર્મનો સંબંધ તો આંતરિક રૂપાંતરણ સાથે છે. વાસ્તવમાં આંતરિક રૂપાંતરણ મહત્ત્વપૂર્ણ છે, અર્થપૂર્ણ છે; જ્યારે બાહ્ય તો માત્ર સહયોગી છે. જ્યાં સુધી જીવની વૃત્તિ પૂર્ણપણે સ્વરૂપમાં સ્થાપિત નથી થઈ, ત્યાં સુધી જીવ બાહ્ય પરિસ્થિતિથી પ્રભાવિત થાય છે અને તેથી જો બાહ્ય રૂપાંતરણ કરવામાં આવે તો આંતરિક રૂપાંતરણ કરવામાં સહાયક થાય છે. જો કે બાહ્ય કંઈ અંતરને બદલી શકતું નથી, પણ નિમિત્તાધીન જીવને તે દ્વારા સહયોગ અથવા બાધાનો અનુભવ થતો હોવાથી અનુકૂળ બાહ્ય રૂપાંતરણની મદદ લઈ શકાય છે.

જ્ઞાનીઓ બાહ્ય રૂપાંતરણની વિરુદ્ધમાં નથી, પણ તેઓ એમ કહે છે કે બાહ્ય ગૌણ છે, આંતરિક મુખ્ય છે. માત્ર બાહ્ય રૂપાંતરણમાં જ અટકી રહેવાથી આંતરિક રૂપાંતરણ સ્થગિત થઈ જાય છે. જે લોકો બાહ્યને મુખ્ય ગણે છે – બાહ્યમાં જ અટકી રહે છે, તેઓ કંઈ જ પામી શકતા નથી. તેઓ પોતાનું જીવન વ્યર્થ ગુમાવી દે છે. આંતરિક રૂપાંતરણના લક્ષ વિના બાહ્યમાં ગમે તેટલા ફેરફાર કરવાથી જીવને કદી સુખ પ્રાપ્ત નહીં થઈ શકે. બાહ્યને ગમે તેટલું બદલે, રંગરોગાન કરે, પરંતુ તેને શાંતિનો અનુભવ નહીં થઈ શકે. સપાટી ઉપર તે ગમે તેટલું પણ બદલશે, પરંતુ આંતરિક જરૂરિયાતની પૂર્તિ નહીં થઈ શકે અને તેનાથી એવો ભ્રમ પોષાશે કે 'મેં તો બધું બદલી નાખ્યું'; પણ મૂળ વાત બાકી રહી જવાથી – આંતરિક રૂપાંતરણ નહીં થવાથી મોક્ષ અટકેલો રહેશે. અલબત્ત બાહ્ય રૂપાંતરણની ઉપેક્ષા કરવાની જરૂર નથી, પણ માત્ર

સપાટી ઉપર ફેરફાર કરીને સંતોષ માનવાનો નથી. બાહ્ય પાસેથી જે સહાયતા લઈ શકાય તે લેવા યોગ્ય છે.

આમ, ધર્મારાધનામાં બાહ્ય રૂપાંતરણનું પણ સ્થાન છે. આંતરિક રૂપાંતરણ માટે સમ્યક્ અહાર, નિવૃત્તિક્ષેત્ર આદિ બાહ્ય રૂપાંતરણ સહાયક છે. જીવ ધર્મારાધના માટે બાહ્યને બદલે છે, પરંતુ બાહ્ય રૂપાંતરણ જ સર્વ નથી. જીવ શું ખાય છે, શું પહેરે છે એ તેની મંજિલ નથી. ખરી મંજિલ તો અંતરનું કેન્દ્ર છે. સમ્યક્ ભોજન સારું છે, પરંતુ ભોજનથી પ્રસ્ત થવું એ મૂઢતા છે. જો ભોજનની ટેવો આત્માના ઉદ્ઘાટનમાં સહાયક થતી હોય તો તે ટેવો સારી છે, પરંતુ જીવ જો વિધિ-નિષેધની આડમાં નિરંતર ભોજનનો જ વિચાર કરતો રહે તો તે મંજિલ ચૂકી જાય છે.

ભાર એ વાત ઉપર છે કે જીવનો બાહ્ય પ્રયત્ન આંતરિક રૂપાંતરણની પર્યાય ન બનવો જોઈએ. બાહ્ય એટલું મહત્ત્વપૂર્ણ ન બનવું જોઈએ કે અંતર ભુલાઈ જાય. પરિંઘને એટલું જ મહત્ત્વ આપવું જોઈએ જેટલું જરૂરી છે. બાહ્ય માત્ર સહયોગી થઈ શકે છે એમ નિર્ણય કરીને તે દ્વારા મદદ લેવાની છે, પરંતુ એ સદા સ્મરણમાં રાખવાનું છે કે એકમાત્ર અંતરને આવિષ્કૃત કરવાનું છે અને તેથી અંતરના પરિવર્તનને જ કેન્દ્રસ્થાને રાખવાનું છે. બાહ્ય પરિવર્તન અંતરને ઉઘાડવા માટે મદદરૂપ થઈ શકે છે, પરંતુ બાહ્યમાં અટકી નથી જવાનું કે બાહ્યથી અસ્ત નથી થવાનું. જ્યાં સુધી મૂળમાંથી સારવાર કરવામાં નથી આવતી ત્યાં સુધી બાહ્યમાં ગમે તેટલા વ્રત-નિયમોનું પાલન કરવામાં આવે તોપણ ધર્મની આરાધના થતી નથી. ધર્મ વિષે ઉપલક માહિતી મેળવીને જો ધર્મ સાધવા ફક્ત બાહ્યમાં ફેરફાર કરવામાં આવે તો તેનાથી કાંઈ આત્મભાંતિ નિવૃત્ત થતી નથી. અવિનાશી સુખની પ્રાપ્તિ માટે ધર્મનું સ્વરૂપ શું છે, તેનું આરાધન કઈ રીતે કરવાનું છે તેની સ્પષ્ટ સમજણ હોવી આવશ્યક છે. અન્યથા તદર્થે કરેલ તમામ પ્રયાસ નિષ્ફળ જાય છે. ધર્મનો યથાર્થ અર્થ દર્શાવતાં શ્રીમદ્ પ્રકાશે છે —

'આત્માને સ્વભાવમાં ધારે તે ધર્મ.

આત્માનો સ્વભાવ તે ધર્મ.

સ્વભાવમાંથી પરભાવમાં ન જવા દે તે ધર્મ.

પરભાવ વડે કરીને આત્માને દુર્ગતિએ જવું પડે તે ન જવા દેતાં સ્વભાવમાં ધરી રાખે તે ધર્મ.

સમ્યક્ શ્રદ્ધાન, જ્ઞાન અને સ્વરૂપાયરણ તે ધર્મ; ત્યાં બંધનો અભાવ છે. સમ્યક્જ્ઞાન, સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્ચારિત્ર એ ૨ત્નત્રયીને શ્રી તીર્થકરદેવ ધર્મ કહે છે.'^૧

ધર્મનું શુદ્ધ અને યથાર્થ સ્વરૂપ બતાવતાં અહીં કહ્યું છે કે આત્માનો સ્વભાવ તે ધર્મ છે અથવા આત્માને સ્વભાવમાં ધારે તે ધર્મ છે, અર્થાત્ શુદ્ધ જ્ઞાયકભાવ એ જ આત્માનો સ્વભાવ છે અને તેમાં વર્તવું, તેમાં સ્થિતિ કરવી, તેમાં ઠરવું તે ધર્મ છે. કર્મકૃત વ્યક્તિત્વ અને ભાવ ઉપર રહેતી નજર હટાવીને પોતા તરફ - આત્માના શુદ્ધ, શાશ્વત સ્વરૂપ તરફ વળવું તે જ ધર્મ છે. ઉપયોગને પરથી પાછો વાળી સ્વમાં જોડવો તે ધર્મ છે. પોતાના ઉપયોગને પર તરફ વાળીને જીવ ત્યાં લીન થયેલો છે, તે ઉપયોગને હવે સ્વભાવ તરફ વાળીને સ્વમાં જ લીન રાખવો તે ધર્મ છે. ઉપયોગ પરને છોડી સ્વ તરફ ન આવે ત્યાં સુધી બાહ્યની કોઈ પણ ચેષ્ટાને 'ધર્મ'નું નામ મળતું નથી. આજ સુધી જીવે પોતાના ઉપયોગને પરમાં રોકી રાખ્યો છે, આ જ અધર્મ છે. તે ઉપયોગને સ્વભાવમાં લાવવો તે ધર્મ છે. આત્માની અવસ્થામાંથી એ અધર્મન ભાવને ટાળીને ધર્મભાવ પ્રગટ કરી શકાય છે. આત્માનો ધર્મ આત્મામાં જ, અર્થાત્ આત્માની - સ્વયંની પર્યાયમાં જ થાય છે.

જ્યાં સુધી જીવને પોતાના સ્વભાવનો મહિમા ન આવે ત્યાં સુધી પરનો મહિમા ટળી શકશે નહીં અને પરથી નિવૃત્ત થઈ શકાશે નહીં. શરીરથી ભિન્ન એવા આત્માની ઓળખાણ કરવી જોઈએ, તેની શ્રદ્ધા કરવી જોઈએ, તેનું માહાત્મ્ય પ્રગટાવવું જોઈએ. પોતાનો આત્મસ્વભાવ અમૂલ્ય છે, અચિંત્ય છે, જ્ઞાનસ્વરૂપ છે, આનંદસ્વરૂપ છે. તે પરથી નિરપેક્ષ છે, એટલે કે તેને પર સાથે કોઈ સંબંધ નથી. તે પોતામાં જ પૂર્ણ છે. સ્વરૂપના આવા ભાન વિના સંસારનો અંત આવતો નથી. આત્માના ભાન વિના ધાર્મિક કિયાઓ કરતા રહેવાથી કદી પણ સંસારનો નિવેડો આવતો નથી. પોતાના આત્માનું પવિત્ર સ્વરૂપ જાણે તો અપવિત્ર ભાવોનો નાશ થઈ પવિત્ર દશા પ્રગટે. પવિત્ર સ્વભાવને જાણે તો પવિત્રતા પ્રગટે. જો આત્માને વિકારવાળો માને, શરીરરૂપે માને, જડનો કર્તા માને તો વિકાર સાથેનો કે જડ શરીર સાથેનો સંબંધ તૂટે નહીં. જડના સંયોગથી રહિત અને વિકારી ભાવોથી પણ રહિત એવા પોતાના પવિત્ર જ્ઞાનસ્વભાવને જાણવો તે જ પવિત્ર થવાનો ઉપાય છે.

ધર્મને માટે આત્માની યથાર્થ સમજણ અત્યંત આવશ્યક છે. જેઓ આત્માની યથાર્થ વાત સમજવાની દરકાર કરતા નથી અને શરીરની ક્રિયામાં જ ધર્મ માની રહ્યા છે, તેઓ સાચી ધર્મક્રિયાનો અનાદર કરે છે. તેઓ આત્માને નહીં પણ જડને માનનારા છે, તેથી તેઓ જડ શરીરની ક્રિયાને જાણે છે, પણ તેમને આત્માની ચૈતન્યક્રિયા ભાસતી જ નથી. ચૈતન્ય પરત્વે જેમને દષ્ટિ કે રૃચિ થઈ નથી એવા જીવોને ધર્મ ૧- 'શ્રીમદ્ રાજયંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૬૧ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૨૨૨)

ક્યાંથી થાય? જ્યાં સુધી આત્મા ઓળખાય નહીં, તેની અને પુદ્દગલ વચ્ચેનો તફાવત સમજાય નહીં, ત્યાં સુધી પોતાને ધર્મી માનવો નિરર્થક છે. જ્યાં સુધી આત્મા દેહાદિ સંયોગોથી જુદો છે એમ સમજાય નહીં ત્યાં સુધી સાચો ધર્મ થતો નથી. આત્માની ઓળખાણ ન થાય ત્યાં સુધી મોક્ષમાર્ગે પ્રયાણ થતું નથી.

આત્માને ઓળખીને તેને પુદ્દગલથી જુદો જાણવો બહુ જ આવશ્યક છે. જો જીવ પૂજા, વ્રત, દયા, દાન, તપ, યાત્રા, શાસ્ત્રાભ્યાસ વગેરે કરે પણ તેને સ્વરૂપની સમજણ ન હોય તો તે સાધન સાર્થક થતાં નથી. સ્વરૂપના ભાન વિનાની જપ-તપાદિ ક્રિયા નિષ્ફળ જાય છે. જીવ ગમે તેટલી ક્રિયાઓ કરે, મુનિ થઈને પંચ મહાવત પાળે, પરંતુ જો તે સર્વ આત્માના ભાન વિના કરે તો તેને ક્રિંચિત્ ધર્મ થતો નથી.

અહીં કોઈને પ્રશ્ન થાય કે આટલું બધું કષ્ટ સહન કરે તોપણ શું આત્માને લાભ નહીં થાય? ધર્મ નહીં થાય? ધર્મભાવના વિના આટલું કષ્ટ કઈ રીતે સહન થઈ શકે? આ પ્રશ્નનું સમાધાન એ છે કે જગતમાં અનેક સ્ત્રીઓ સતીત્વની ભાવનાથી, સ્વમાન ખાતર બળી મરે છે અને જરા પણ ઊંહકારો પણ કરતી નથી; તેવી જ રીતે દ્રવ્યલિંગી મુનિ પણ આત્માના ભાન વિના, અભિમાન આદિ લક્ષે કાયક્લેશાદિ સહન કરે છે, પણ તેથી તેમને મોક્ષાર્થે કોઈ લાભ થતો નથી. સ્વમાન ખાતર અગ્નિસ્નાન સહન કરનાર સ્ત્રી અને અભિમાનાદિ ખાતર કાયક્લેશાદિ સહન કરનાર દ્રવ્યલિંગી મુનિ – એ બન્નેનું 'સહન કરવું' પરમાર્થે એક જ જાતનું છે. બેમાંથી એકનું પણ કલ્યાણ થતું નથી. અજ્ઞાનીને લાગે કે એણે કેટલું સહન કર્યું! કેટલો બધો ધર્મ થયો! પણ સ્વરૂપના ભાન વિના તેને કોઈ ધર્મ થતો નથી.

જો માત્ર પૂજા કરવાથી, ભજનો ગાવાથી કે કંદમૂળાદિના ત્યાગથી ધર્મ થતો હોત તો અભવ્યને પણ ધર્મ થાત, કેમ કે તે પણ આ બધું કરે છે. પરંતુ એ બધું કરવા છતાં અભવ્ય જીવને ધર્મની પ્રાપ્તિ થતી નથી. ધર્મનો સંબંધ પોતાના સ્વભાવ સાથે છે. આત્માની સમ્યક્ પ્રતીતિ થતાં યથાર્થ ધર્મ થાય છે. આત્માના લક્ષ વિના જે પણ ભાવો થાય છે તે બધા સંસારનું જ કારણ થાય છે, તેથી જીવે સાચા પ્રયત્ન વડે પોતાના ચૈતન્યસ્વભાવને સમજવો જોઈએ. સ્વરૂપની સાચી સમજણ થતાં આત્માનો મહિમા પ્રગટે છે અને જીવ પરથી ઉદાસીન થાય છે. સ્વરૂપની સમજણ, સ્મૃતિ, ખુમારી, જાગૃતિ રહે તો પરનો કિનારો સહેજે છૂટતો જાય છે અને સ્વમાં પ્રસ્થાપિત થવાતું જાય છે.

મિથ્યાત્વનું મહાપાપ તો સાચી સમજણથી જ ટળે છે. જેમ કોઈ આંધળો દોરડું વણતો હોય અને બાજુમાં ઊભેલો વાછરડો તે ચાવી જતો હોય તો તેની બધી મહેનત વ્યર્થ જાય છે, તેમ સમજણ વિના જીવ ગમે તેટલી શુભ ક્રિયાઓ કરે પણ તેની બધી

શુભ ક્રિયાઓને મિથ્યાત્વરૂપી વાછરડો ચાવી જાય છે. મિથ્યાત્વનો ત્યાગ થયા વિના કે તેના ત્યાગના લક્ષ વિના તપાદિ બાહ્ય ક્રિયાઓનું આરાધન વ્યર્થ જાય છે. જીવ બાહ્ય ત્યાગ કરે, અનેક વ્રત-નિયમો લે, કાયક્લેશાદિ તપ આદરે; પરંતુ મિથ્યાત્વનું જે મૂળ સ્વરૂપ - અભિપ્રાયની ઊંધાઈ, માન્યતાની વિષરીતતા, મિથ્યાગ્રહ, અભિનિવેશાદિ ઓળખ્યા-છોડ્યા વગર તેની ધાર્મિક ગણાતી તમામ ચેષ્ટા મોક્ષાર્થે નિષ્કળ નીવડે છે. અનાદિથી જીવને એ ભ્રાંતિ રહી છે કે 'હું પરનું કરી શકું છું, પરથી મને લાભ-નુકસાન છે, તેથી લાભને પ્રાપ્ત કરવા અને નુકસાનને ટાળવા માટે પરમાં ફેરફાર કરવો જ રહ્યો.' તે પોતાનાં સુખ, શાંતિ અને સલામતી માટે પરવસ્તુ, વ્યક્તિ કે પરિસ્થિતિમાં ઇપ્ટ-અનિષ્ટની કલ્પના કરે છે. જ્યાં સુધી પરથી - બાહ્ય સંયોગોથી લાભ-નુકસાનની મિથ્યા ધારણા ટળે નહીં, તે ટાળવાનો સભાનતાપૂર્વક પ્રયત્ન થાય નહીં; ત્યાં સુધી ધર્મના નામે જે કોઈ પગલું ભરાય છે તે અભિપ્રાયની સુધારણાનું નહીં, પણ આચરણની સુધારણાનું જ હોય છે. સમ્યગ્દર્શન વિનાનાં જ્ઞાન અને ચારિત્રનું પરમાર્થે કોઈ મૂલ્ય નથી. સમ્યગ્દર્શનની સાધના એટલે અભિપ્રાયની સુધારણા. મિથ્યાત્વમાં જે ઊલટું પકડાયું છે, જે વિપરીતપણે ધારી લેવામાં આવ્યં છે તે સઘળ સવળં કરવું - એ છે સમ્યગ્દર્શનની સાધના. સમ્યગ્દર્શનની સાચી સાધના વિનાની ચારિત્રની સાધના માત્ર ગતિનો આભાસ જ આપે છે. તે દ્વારા કોઈ પ્રગતિ સાધી શકાતી જ નથી. ધર્મના આવા વાસ્તવિક સ્વરૂપનું જગતના મૂઢ જીવોને ભાન નહીં હોવાથી ક્રિયાની ચીલાચાલુ ઘરેડમાં તેઓ ઘુમ્યા કરે છે અને તેથી તેમને આત્મતપ્તિ થતી નથી. બાહ્ય પ્રવૃત્તિ ધાર્મિક હોવા છતાં તેમનાં અંતરમાં ભૌતિકતાની પ્રીતિ રહે છે. તેથી જ શ્રી આનંદધનજી મહારાજે કહ્યું છે કે –

> 'ધરમ ધરમ કરતો જગ સહુ ફિરે, ધરમ ન જાણે હો મર્મ; જિનેસર.'^૧

અહીં તેઓશ્રી કહે છે કે દુનિયા 'ધર્મ, ધર્મ' એમ પોકાર કરતી ચાલે છે, પણ ધર્મનો ખરો મર્મ જાણતી નથી. એ તો ધર્મની વાતો કરવામાં અને ધર્મી દેખાવામાં આનંદ લે છે, પણ ધર્મ શું છે અને તેની આરાધના કેવી રીતે થાય તે જાણતી નથી.

ધર્મનું રહસ્ય જાણ્યા વિના ધર્મી થઈ શકાતું નથી. સામાન્યજન વૃત, નિયમ, ૧- શ્રી આનંદઘનજીરચિત. શ્રી ધર્મનાથ ભગવાનનું સ્તવન, કડી ર

સરખાવો : 'સમાધિવિચાર', દુહો ૨૫૬

'ઘરમ ધરમ જગ સહુ કરે, પણ તસ ન લહે મરમ; શુદ્ધ ધરમ સમજ્યા વિના, નવિ મીટે તસ ભરમ.' ક્રિયાકાંડના આચરણ સાથે ધાર્મિકતાને સાંકળે છે. વ્યક્તિ કયા ધાર્મિક અનુષ્ઠાનો કરે છે, કેટલી માત્રામાં કરે છે અને કેવી રીતે કરે છે; તેના ઉપરથી તેઓ તેની ધાર્મિકતાનો આંક મૂકે છે. તેમની આવી ભાંતિના કારણે, વર્ષોથી વત-નિયમ, તપ-ત્યાગ, શાસ્ત્રાભ્યાસ કરતા હોવા છતાં તેઓ ચિંતા, ભય, દ્વેષ, વિષાદથી વ્યાકુળ જ રહેતા હોય છે. સહિષ્ણુતા, શાંતિ, સમતા આદિ તેમનાં જીવનમાં પ્રવેશેલાં દેખાતાં નથી. દીર્ઘ કાળની ધર્મ-આરાધના કરવા છતાં તેમનાં જીવન ધર્મના મંગલ સ્પર્શથી અસ્પૃષ્ટ રહી જાય છે. તેઓ જપ, તપ, પૂજા, વાંચન, ભક્તિ, સત્સંગ બધું કરે છે, પણ આત્મજાગૃતિ જ રહી જાય છે. જેમ કોઈ માણસના સંબંધમાં એમ કહેવામાં આવે કે એના દેહમાં બીજું બધું તો તદ્દન બરાબર છે, માત્ર પ્રાણ જ નથી; તેમ બહિર્દષ્ટિ જીવોનો 'ધર્મ' પણ એવું શરીર છે, જેમાં જાગૃતિરૂપ પ્રાણ નથી હોતો.

પોતાના અક્રિય સ્વરૂપમાં સ્થિર થવાના પ્રયત્ન કરવાને બદલે બહિર્દષ્ટિ જીવ કિયામાં જ અટવાઈ જાય છે. ધર્મસાધના વડે સ્વ સાથે સંબંધિત થવાને બદલે તે બાહ્ય કિયાઓમાં અટકી, બહારના જગત સાથે જોડાયેલો રહે છે. મુક્તિના પથ ઉપર ડગ ભરવા તે કિયા આદરે છે, પણ પછી તેના આંધળા મમત્વમાં એ કિયાનું મૂળ પ્રયોજન જ ભૂલી જાય છે. પોતાની આદરેલી કિયાઓની ભીડમાંથી બહાર આવવું-ઊગરવું ખૂબ કઠિન છે. કિયાઓથી સતત ઘેરાયેલો રહેવાના કારણે જીવ પોતાને જ ભૂલી જાય છે. તે ક્રિયાઓમાં એવો રચ્યોપચ્યો રહે છે કે તે પોતાનો જ પરિચય કરવાનું ચૂકી જાય છે. આવા પ્રકારની અજાગૃતિથી તેને પોતાના અસ્તિત્વનું ભાન થતું નથી.

જીવ બાહ્યનું બધું જાશે પણ જો તે પોતાના અસ્તિત્વથી જ અપરિચિત રહે તો તેને કાંઈ લાભ થતો નથી. તે જાણવું હકીકતમાં જાણવું નથી. પોતાની અંદર જ અંધારું હોય તો આખા જગતને પ્રકાશિત કરનાર પ્રકાશની કોઈ કિંમત નથી. જેના કેન્દ્રમાં સ્વજ્ઞાન ન હોય એવા જ્ઞાનનું કોઈ મૂલ્ય નથી. શાસ્ત્રાભ્યાસ કે ગમે તેવી ધર્મ-ક્રિયા જીવ કરી રહ્યો હોય, પણ જેના વડે સ્વનો પરિચય થતો ન હોય, તે ધર્મક્રિયા કદાપિ ધર્મ ન બની શકે. સ્વજ્ઞાનની દિશામાં જ ઊપડેલું પગલું એ ધર્મનું પગલું છે. તે જેટલા પ્રમાણમાં સ્વજ્ઞાનને ઉપલબ્ધ કરે છે, એટલા પ્રમાણમાં તેનો આત્મવિકાસ થાય છે. આત્મજ્ઞાન મેળવવું એ જ મનુષ્યજીવનની સાર્થકતા છે.

શુભ પ્રવૃત્તિ કરીને આત્મજ્ઞાનની દિશામાં આગળ વધવું, આત્માની નિકટ આવવું એ જ ધર્મ છે. અહીં એ તથ્ય ધ્યાન બહાર ન રહેવું જોઈએ કે ધાર્મિકતા માટે તપ, ત્યાગ, સંયમ વગેરે જરૂરી છે જ, કારણ તે તેમાં સહાયક થાય છે; પણ જ્યાં બાહ્ય તપ, ત્યાગ, સંયમ હોય ત્યાં ધાર્મિકતા હંમેશાં હોય જ એવો નિયમ નથી. તપ-ત્યાગયુક્ત કઠોર જીવન હંમેશાં આત્મોન્મુખ જ હોય એવું જરૂરી નથી. શુભ પ્રવૃત્તિની

સાથે આત્મજાગૃતિ રહે તો જ ધર્મ સધાય છે. આત્મોન્મુખ થયેલા જીવની દષ્ટિ ભૌતિક જીવનનાં લાભ-નુકસાનના વિકલ્પોથી મુક્ત રહે છે અને શુદ્ધ જ્ઞાયકસ્વરૂપ સાથે જોડાયેલી રહે છે.

આવી અંતરવૃત્તિ, સ્વમાં સમાઈ જવાનો પુરુષાર્થ એ જ ધર્મ છે. આ શુદ્ધ ધર્મથી સંસારનો અંત થાય છે. જીવ જો ધર્મની યથાર્થ આરાધના કરે તો સંસાર ટકી શકતો નથી. જીવે પૂર્વકાળે અનેક સાધન કર્યાં છે, પણ જો તે યથાર્થ રીતે થયાં હોત તો જીવને કદાપિ સંસારપરિભમણ રહ્યું ન હોત; પરંતુ જીવને ધર્મનું સ્વરૂપ સમજાયું ન હોવાથી તે ભવસમુદ્રથી પાર થયો નથી. જેનાથી ભવના ફેરા ટળે એવું કરવાને બદલે કંઈક જુદું જ કરીને અજ્ઞાની જીવો 'અમે ધર્મારાધન કરી રહ્યા છીએ' એ ભ્રમમાં રાચે છે, તેથી આવા જીવો મુક્તિસાધનાનો દુર્લભ અવસર ખોઈ ન બેસે તે અર્થે જ્ઞાનીઓ કરુણાબુદ્ધિથી માત્ર કોરી બૌદ્ધિક માન્યતાઓ અને બાહ્ય ફિયાઓને ધર્મ ન માની બેસવાની તેમને ચેતવણી આપે છે. તેઓ આ ચેતવણી યુગે યુગે ઉચ્ચારતાં હોય છે. આ જ કાર્ય શ્રીમદે આ ગાથા દ્વારા કર્યું છે.

શ્રીમદ્ આ ગાથામાં બુલંદ સ્વરે ધર્મનું રહસ્ય ઉચ્ચારતાં કહે છે. કે દેહાધ્યાસ છોડવો તે જ ધર્મનો મર્મ છે, અર્થાત્ આત્મસ્વરૂપનો - નિજસ્વરૂપનો નિર્ણય કરી દેહાધ્યાસ છોડવામાં જ ધર્મપ્રાપ્તિનું રહસ્ય સમાયેલું છે. આખી દ્વાદશાંગીનો સાર આ જ છે. વિશ્વના વાસ્તવિક સ્વરૂપના દ્રષ્ટા તેમજ શુદ્ધ મોક્ષમાર્ગના દાતા એવા નિર્ગ્રથ આર્ષદ્રષ્ટાઓએ જીવની ભૂમિકા આદિના આધારે ધર્મનું સ્વરૂપ વિભિન્ન ઉપદેશશૈલીથી વર્જાવ્યું છે, પરંતુ તે સર્વનું મૂળભૂત પ્રયોજન દેહાધ્યાસના ત્યાગ દ્વારા અનંત અપાર સ્વાધીન સુખ મેળવવાનો ઉપાય ચીંધવાનું જ રહ્યું છે. તેમણે આપેલી ધર્મની અનેકવિધ વ્યાખ્યાઓનો સાર છે દેહાધ્યાસનો ત્યાગ. સર્વ કાળના જ્ઞાનીઓએ એ જ તથ્યને આગળ કર્યું છે કે દેહાત્મબુદ્ધિ મોળી પાડવી તથા આત્મજાગૃતિ વધારવી. આ જ ધર્મનો મર્મ છે.

જીવે દેહાદિ પદાર્થોમાં રહેલી અહં-મમબુદ્ધિ છોડવા યોગ્ય છે. 'હું જ્ઞાનસ્વભાવી આત્મા છું, શરીરાદિનો સાક્ષીમાત્ર છું' એવી આત્મભાવના કરવા યોગ્ય છે. 'હું શરીરાદિ પરદ્રવ્યોથી ભિન્ન શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મા છું' એવી ઓળખાણ કર્તવ્યરૂપ છે. 'શરીરાદિ પરદ્રવ્યોથી ભિન્ન એવો પૂર્શાનંદી ચૈતન્યસ્વરૂપી આત્મા છું' એવું ભાન થતાં દેહાધ્યાસ છૂટતો જાય છે. 'આ શરીરના જન્મ પહેલાં પણ હું હતો અને આ શરીરના મૃત્યુ પછી પણ હું હોઈશ' એમ ત્રિકાળી તત્ત્વનું ભાન થતાં શરીરની પકડ છૂટતી જાય છે. આ દેહની પકડ છોડવી એ જ ધર્મ છે. તે દેહ ભિન્ન જ હતો અને ભિન્ન જ રહેશે. તેણે તો માત્ર અંતરમાં સ્થિત થયેલી દેહ સાથેની એકત્વબુદ્ધિ છોડવાની છે.

જપ-તપાદિ બધી ક્રિયાઓ દેહાધ્યાસ દૂર કરવા માટે જ છે. જેટલો દેહાધ્યાસ ઘટ્યો તેટલો ધર્મ પરિશમ્યો કહેવાય. તેથી જીવે તપ-ત્યાગાદિ કઈ રીતે, કયા લક્ષે કરવાં એ પ્રથમ સમજવાની જરૂર છે. તપ-ત્યાગાદિ દ્વારા દેહાધ્યાસ નહીં છૂટે તો બધું નિરર્થક નીવડશે. અનાદિથી જીવ દેહથી જ પરિચિત છે, સ્વભાવનો તેને પરિચય નથી, તેથી તેશે ધાર્મિક પ્રવૃત્તિઓ દ્વારા સ્વભાવનો પરિચય કરી દેહાધ્યાસ છોડવા યોગ્ય છે.

ધર્મ વાસ્તવમાં શું છે એની સાચી અને સ્પષ્ટ સમજણ જો જીવને પ્રાપ્ત થાય તો તેની અનાદિની ગૂંચ સ્વયં ઊકલી જાય. તેથી જ શ્રીમદે નિષ્કારણ કરુણાથી પ્રસ્તુત ગાથામાં ધર્મનું રહસ્ય જેમ છે તેમ સંક્ષેપમાં છતાં સંપૂર્ણપણે પ્રગટ કરતાં કહ્યું છે કે મિથ્યા બોધથી ઉત્પન્ન થતી દેહાત્મબુદ્ધિ છૂટી જાય અને સ્વ-પરનો ભેદ યથાર્થપણે સમજાય તો પછી જીવને કર્મના કર્તા-ભોક્તાપણાનો ભાવ રહેતો નથી. દેહાધ્યાસરૂપ મૂળ દોષ હયાત છે ત્યાં સુધી બીજા દોષો ઊભા છે અને દેહ સાથેની એકતા તૂટે ત્યાં અન્ય સર્વ દોષ જવા માંડે છે. 'હું દેહ છું' માન્યું ત્યાંથી ભૂલોનું ઊગમણું થાય છે અને 'હું શુદ્ધાત્મા છું' એ ભાન થતાં ભૂલોનું ઊઠમશું થવા માંડે છે. 'હું કોણ છું' - માત્ર આટલું જ નહીં સમજાયાથી જાતજાતની ખોટી માન્યતાઓ ઊભી થઈ છે.

પોતાના શુદ્ધ, આનંદઘન, જ્ઞાયકસ્વરૂપને ભૂલી જવાના કારણે 'હું દેહ છું' એવી દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ મિથ્યા માન્યતા અનાદિથી પ્રવાહપણે ચાલી આવી છે. અનાદિ કાળના વિપર્યાસના કારણે તેને જડ-ચેતન વચ્ચેનો ભેદ ભાસતો નથી. ઇન્દ્રિયજ્ઞાન ઉપર તે આધાર રાખતો હોવાથી તેને માત્ર શરીરાદિ જડ સંયોગો જ જ્ઞાનમાં જ્ણાય છે. શરીરાદિ પુદ્દગલદ્રવ્યોની પર્યાયો ઇન્દ્રિયો દ્વારા તેને સતત જણાતી રહે છે, તેથી 'દશ્ય-માન શરીર તે જ હું' એવી ભામક કલ્પના થાય છે. 'શરીર ગોરું, ઊંચું, પાતળું તો હું ગોરો, ઊંચો, પાતળો'; 'શરીર રોગી તો હું રોગી' - એવી વિપરીત માન્યતાઓ બંધાય છે. 'શરીરના વિયોગથી હું મૃત્યુ પામીશ' એમ માનીને તે અત્યંત ભયમાં રહે છે. જીવ મિથ્યા શ્રદ્ધાનથી શરીરના નાશને પોતાનો જ નાશ સમજીને સંક્લેશભાવથી અનંતી વાર કુમરણ આચરે છે.

જેમ સ્વ સંબંધી તેને મિથ્યા શ્રદ્ધાન પ્રવર્તે છે, તેમ પર સંબંધી પણ તેને મિથ્યા શ્રદ્ધાન પ્રવર્તે છે. તે પરમાં સુખ-દુઃખની કલ્પના કરે છે, પરથી સુખ-દુઃખની પ્રાપ્તિ થાય છે એમ માને છે, તેથી તેને પરમાં અનુકૂળતા-પ્રતિકૂળતાની ઊંધી માન્યતા પ્રવર્તે છે. આ ઊંધી માન્યતાના જ કારણે અજ્ઞાનીનો ઉપયોગ પરમાં ફેરફાર કરવા માટે તેમજ પરને ભોગવવા માટે દોડે છે. સમસ્ત દ્રવ્યોની પર્યાયો કોઈને પણ માટે અનુકૂળતા અથવા પ્રતિકૂળતા ઉત્પન્ન કર્યા વગર પોતપોતાના ક્રમ અનુસાર અનાદિ-અનંત કાળ નિર્બાધગતિપણે સ્વતંત્ર પરિણમન કરતી જ રહે છે. પુદ્દગલદ્રવ્યનાં એ અનુકૂળ અથવા

પ્રતિકૂળ દેખાતાં પરિશમનને ખબર પશ નથી હોતી કે 'હું કોઈને અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ થાઉં છું.' વસ્તુસ્થિતિ આમ હોવા છતાં બધાં દ્રવ્યનાં પરિશમન એકસાથે થતાં હોવાથી અજ્ઞાની જીવને અન્ય દ્રવ્યનું પરિશમન અનુકૂળ અથવા પ્રતિકૂળ દેખાવા લાગે છે. પરમાં અનુકૂળ-પ્રતિકૂળપણાની માન્યતા રાગ-દેખને પ્રોત્સાહન આપી જીવને તેના સ્વભાવરૂપ ધર્મમાંથી ચ્યુત કરે છે.

જ્યાં મિથ્યાત્વ વર્તે છે ત્યાં જીવ પોતાને પરનો કર્તા-ભોક્તા માને છે. જ્યાં સુધી જીવ દેહને પોતાનું સ્વરૂપ સમજે છે, રાગાદિ વિનાશી વિભાવોને પોતાના સમજે છે, ત્યાં સુધી પરનો કર્તા-ભોક્તા બની તે બંધાયા કરે છે. જડ પ્રત્યેના વલણવાળા ભાવથી જીવ પરનો કર્તા-ભોક્તા થાય છે અને કર્મબંધ ઉપાર્જન કરી સંસારની વૃદ્ધિ કરે છે, પરંતુ જ્યારે જીવ દેહાધ્યાસનું વમન કરે છે ત્યારે તે પરનો અકર્તા-અભોક્તા બને છે.

જેમ કોઈ પરુષ ધોબીના ઘરથી ભ્રમથી બીજાનું વસ્ત્ર લાવી, તેને પોતાનું જાણી. ઓઢીને સઈ જાય છે અને પોતાની મેળે જ અજ્ઞાની (આ વસ્ત્ર પારકું છે એવા જ્ઞાન વિનાનો) થાય છે; પરંતુ જ્યારે બીજો કોઈ તે વસ્ત્રનો છેડો ખેંચીને એને કહે છે. તું શીધ્ર જાગ, સાવધાન થા. આ મારું વસ્ત્ર બદલામાં આવી ગયું છે. મને મારું વસ્ત્ર આપી દે.' ત્યારે વારંવાર કહેલું તે વાક્ય સાંભળતાં તે એ વસ્ત્રનાં સર્વ ચિહ્નોની સારી રીતે પરીક્ષા કરીને, 'જરૂર આ વસ્ત્ર પારકું જ છે' એમ જાણીને વસ્ત્રને ત્યાગી દે છે. તેવી રીતે જીવ પણ ભ્રમથી દેહને પોતાનો જાણી, દેહમાં એકરૂપ થઈ સુતો છે અને પોતાની જાતે અજ્ઞાની થયો છે. જ્યારે સદ્ગુર સ્વ-પરનો વિવેક કરાવી કહે છે કે 'તું શીધ્ર જાગ, સાવધાન થા. આ તારો આત્મા ખરેખર એક જ્ઞાનમાત્ર જ છે.' ત્યારે વારંવાર કહેલું એ વાક્ય સાંભળતાં તે સમસ્ત સ્વ-પરનાં ચિહનો વડે સારી રીતે પરીક્ષા કરીને, 'જરૂર આ પર જ છે, મારું નથી' એમ જાણીને દેહનું મમત્વ છોડી દે છે. તેથી જીવે સદ્દગુરૂના બોધ દ્વારા 'આ શરીર કે શરીરની કોઈ પણ અવસ્થા સાથે મારા આત્માને કોઈ સંબંધ નથી' એમ દઢ કરવું જોઈએ. દેહ અને આત્માના ધર્મો જાણી લઈ, તેની વચ્ચેની ભિન્નતાનું સ્પષ્ટ ભાન પ્રગટાવવું જોઈએ. છ દ્રવ્યોના સમુદાયરૂપ આ લોકમાં અનંતાનંત દ્રવ્યોની ભીડમાં ખોવાયેલા નિજાત્માની ભિન્નતાને ઓળખીને, અન્ય પદાર્થોની સાથે કલ્પનાથી માની લીધેલા સંબંધોને તોડીને, પોતાની સ્વતંત્ર સત્તાનો સ્વીકાર કરવો જોઈએ.

જીવ દરેક પળે સ્વતંત્ર છે. પરનું પરિણમન પરને આધીન છે, જીવનું પરિણમન જીવને આધીન છે. જીવના પરિણમન અને પરના પરિણમનને કોઈ સંબંધ નથી. બે પ્રક્રિયા તદ્દન ભિન્ન છે. પર જીવનું કાંઈ કરતું નથી અને જીવ પરનું કાંઈ કરતો નથી. પર જીવને ભોગવતો નથી અને જીવ પરને ભોગવતો નથી. જીવે દઢ નિશ્ચય કરવો જોઈએ કે 'બન્ને દ્રવ્યો જુદાં છે, બન્નેનું પરિણમન સ્વતંત્ર છે, પરનું પરિણમન તે માત્ર મારા જ્ઞાનનું જ્ઞેય છે.' તેણે પરદ્રવ્યોમાં કાંઈ પણ ફેરફાર કરવાની, તેને ભોગવવાની વ્યર્થ માન્યતા શીઘ્ર છોડવી જોઈએ, કેમ કે તેની એ માન્યતાથી તેને પોતાને જ દુઃખ થાય છે. પરનાં કર્તા-ભોક્તાપણાની બુદ્ધિ છૂટતાં જ અનંત પરદ્રવ્યના સ્વામિત્વનો ત્યાગ થાય છે. પરમાં કર્તા-ભોક્તાપણાની માન્યતાનો ત્યાગ કર્યા પછી રાગભાવનો ત્યાગ થાય છે. અભિપ્રાય સવળો થતાં રાગાત્મક-દ્વેષાત્મક પરિણામ ઘટતાં જાય છે અને જીવ શાંતિ-નિરાકુળતા-આનંદ અનુભવે છે. માટે જીવે યથાર્થ સમજણ ઢારા પોતાની માન્યતા સવળી કરવી જોઈએ.

આત્માર્થી જીવ દેહમાં કરેલી આત્મબુદ્ધિના સંસ્કાર મટાડવા ઉગ્ર પુરુષાર્થ કરે છે. તે નિરંતર ભેદજ્ઞાનનો અભ્યાસ કરે છે. દેહાધ્યાસ છોડવા માટે ભેદજ્ઞાનનો અભ્યાસ અત્યંત આવશ્યક છે. જે જ્ઞાન વડે દેહાદિનો ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માથી ભેદ પડે અને શુદ્ધાત્માનો અનુભવ પ્રગટે તે ભેદજ્ઞાન છે. ભેદજ્ઞાનના બળ વડે જડ અને ચેતનની ભિન્તતા કરી, બન્ને દ્રવ્યને યથાર્થપણે ઓળખી શકાય છે. અંતરમાં ભેદજ્ઞાન પરિણામ પામતાં જડ અને ચૈતન્ય બન્નેને સાવ જુદાં જ જાણવારૂપ આત્મભાનની જાગૃતિ સતત રહી શકે છે. યથાર્થ ભેદજ્ઞાન કરી, 'હું અતીન્દ્રિય, દેહાતીત, અરાગી, જ્ઞાયકતત્ત્વ છું' એમ સર્વ પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી ભિન્ન એવા પોતાના સ્વરૂપનાં યથાર્થ શ્રદ્ધા-જ્ઞાન કરતાં દેહાધ્યાસ ટળી જાય છે. જેમ ચંદનવૃક્ષને વીંટળાઈ રહેલા સર્પો ગરૂડને આવેલો જોતાં જ ચંદન વૃક્ષને તજી દઈ સત્વર ભાગી જાય છે, તેમ ભેદજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થતાં જ કર્મકૃત ભાવો સત્વર દૂર થઈ જાય છે. ધ

દેહાદિ સંયોગોથી ભિન્ન એવા પોતાના આત્માનું જ્ઞાન તે જ સાચું જ્ઞાન છે. નિજસ્વરૂપમાં એકતા કરીને પરથી જુદું પડ્યું તે જ જ્ઞાન સુજ્ઞાન છે. આવા ભેદજ્ઞાન વડે જ આત્માને અનુભવીને આજ સુધી અનંત જીવો સિદ્ધ થયા છે, થાય છે અને થશે; તેથી ભેદજ્ઞાન જ ત્રણે કાળમાં મોક્ષનો ઉપાય છે અને ભેદજ્ઞાની જ મુક્તિનો પંથી છે. ભેદજ્ઞાન વડે વિષયોની ઇચ્છારૂપ ભયંકર દાવાનળ બુઝાય છે અને પરમ આત્મશાંતિ પમાય છે. ભેદજ્ઞાની ચૈતન્યસ્વભાવમાં પ્રવેશીને, દેહાદિથી ભિન્ન એવા આત્માને ગ્રહે કરે છે અને પરમ સુખને અનુભવે છે. તેથી જ જ્ઞાનીઓએ કહ્યું છે કે જે જીવ સુખને ઇચ્છતો હોય તેણે કરોડ ઉપાયથી, એટલે કે અંતરમાં મહાન અપૂર્વ

૧- જુઓ : ભટ્ટારક શ્રી જ્ઞાનભૂષણજીરચિત, 'તત્ત્વજ્ઞાનતરંગિણી', અધ્યાય ૮, શ્લોક ૨૧

^{&#}x27;आत्मानं देहकर्माणि भेदज्ञाने समागते । मुक्त्वा यांति यथा सर्पा गरुडे चंदनद्रुमं ।।'

ઉદ્યમથી સ્વ-પરનું ભેદજ્ઞાન કરીને સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવું જોઈએ.^૧

અત્માર્થી જીવ ભેદજ્ઞાનના દઢ અભ્યાસ દ્વારા, અનાદિથી પોતાને પરના કર્તા-ભોક્તા માનવાની ટેવ પાડી હતી તે છોડે છે. 'પરવસ્તુ ઉપર મારી સત્તા ચાલતી નથી, પરને હું ભોગવતો નથી, હું તો માત્ર પરનો જાણનાર-જોનાર જ છું' એવો ભાવ દઢ કરે છે, 'હું પરનો અકર્તા-અભોક્તા છું' એવો નિર્ધાર કરે છે. ઉદયપ્રસંગમાં કર્તાપણા-ભોક્તાપણાના જે વિકલ્પો થાય તેને અવરોધે છે. વિધવિધ પ્રસંગો વખતે ઉદ્દભવતી કર્તા-ભોક્તાપણાની કલ્પનાને રોકીને ઉપયોગને પરમાં તન્મય થવા દેતો નથી. સર્વ ઘટનામાં, સર્વ ક્રિયામાં 'હું માત્ર જ્ઞાયક છું' એમ અભ્યાસ કરે છે. પ્રત્યેક બનાવમાં પોતાના જ્ઞાયકસ્વરૂપની જાગૃતિ રાખે છે. પરનો કર્તા-ભોક્તા ન બનતાં તેને જ્ઞાયક-ભાવે જુએ છે.

'હું પરમાં કંઈ કરી-ભોગવી શકું નહીં, હું કેવળ તેનો જાણનાર છું' એવી જાગૃતિના બળ વડે, દરેક ક્ષણે સ્વતંત્રપણે પરિવર્તનશીલ એવી વિશ્વવ્યવસ્થાને પોતાને આધીન પરિવર્તિત કરવાનો પ્રયત્ન, જીવનની સતત વહેતી ધારાને રોકી રાખવાનો કે નિજેચ્છા અનુસાર વાળવાનો પ્રયત્ન છૂટતો જાય છે. પાણીના પરપોટાને મુકીમાં જોરથી પકડીને પોતાનો બનાવવાનો વાંઝિયો પ્રયાસ હવે કરવામાં આવતો નથી. પરિસ્થિતિની બદલાતી લહેરો ઉપર તરતાં આવડી જાય છે. જીવનમાં કુટિલતા, વિષમતા, તણાવ દૂર થવા લાગે છે. જ્ઞાયકભાવે જીવન જિવાતું હોવાથી જીવનમાં વિષાદ નથી રહેતો. જીવન એક અભિનય થઈ ગયું હોવાથી જીવનમાંથી પીડા ચાલી જાય છે.

સાધક જીવનને માત્ર એક અભિનય તરીકે જુએ છે. તેની જિંદગી અભિનય થઈ જાય છે, એક ખેલ બની જાય છે. તે હવે કર્તા-ભોક્તા નથી બનતો, અભિનેતા બની જાય છે. તે સભાનતા રાખે છે કે 'આ જે કંઈ હું કરું છું તે બધું નાટક જ કરું છું, તેમાં હું કર્તા-ભોક્તા નથી.' તે જાશે છે કે 'જે યોગ્ય છે, જે નિશ્ચિત છે તે અનુસાર બધું બરાબર થઈ રહ્યું છે. તે અંગે મારે રાગાત્મક કે કેષાત્મક પરિણામ કરવાનાં નથી. મારે માત્ર અભિનય કરવાનો છે.' અભિનેતા જેવી રીતે અલિપ્ત રહીને અભિનય કરે છે, તેવી રીતે અલિપ્ત રહીને અભિનય કરે છે, તેવી રીતે અભિનેતાની જેમ તેમાં તન્મય થયા વિના તે કરે છે. તે ઉદયાનુસાર કરવો પડતો વ્યવહાર કરે છે, પણ તેમાં પોતાપશું કરતો નથી. જે ફરજ બજાવવી પડે તે અભિનયરૂપે કરે છે. તે પિતાનો અભિનય કરે છે, દીકરાનો અભિનય કરે છે,

૧- જુઓ : પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૪, કડી ૭

^{&#}x27;તાસ જ્ઞાનકો કારન, સ્વ-પર વિવેક બખાનૌ; કોટિ ઉપાય બનાય ભવ્ય, તાકો ઉર આનૌ.'

પતિનો અભિનય કરે છે, મિત્રનો અભિનય કરે છે; પરંતુ તે તેમાં તન્મય થતો ન હોવાથી બહાર ઉદયાનુસાર અભિનય થતો હોય છે અને અંદર તે જુદા જ ભાવમાં હોય છે. જેમ અભિનેતાને દુઃખના પ્રસંગમાં આંસુ ખરતાં હોય તોપણ તેના અંતરમાં દુઃખ હોતું નથી, તેમ સાધક પણ જે અભિનય થઈ રહ્યો હોય તેનાથી પ્રભાવિત ન થતાં પોતાના જ્ઞાયકસ્વરૂપનું સ્મરણ રાખે છે. સાધક જેમ જેમ સાધનામાં પરિપક્વ થતો જાય છે, તેમ તેમ તેનો જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવનો અભ્યાસ પુષ્ટ થતો જાય છે.

જ્ઞાયકની અનન્ય રુચિપૂર્વકના આ અભ્યાસથી તેની આત્મદશા ઉત્તરોત્તર વિકાસ પામતી જાય છે. આ અભ્યાસની ગહનતાથી કર્મકૃત વ્યક્તિત્વમાં રહેલી એકત્વબુદ્ધિ વિલય પામતી જાય છે અને વાસ્તવિક સ્વસત્તા પકડાતી જાય છે. અતાદાત્યના અભ્યાસના કળસ્વરૂપે તે અકર્તા-અભોક્તા બનતો જાય છે. જ્ઞાનદશા પ્રગટ થયા પછી આ જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવ સહજ બની જાય છે. જ્ઞાની સમસ્ત બાહ્ય દશ્ય જગતથી, એટલે કે દેહની પર્યાયો અને મનની પર્યાયોથી પોતાને ભિન્ન અનુભવી, કર્મકૃત વ્યક્તિત્વ તથા ભાવથી ઉપર ઊઠે છે. તેઓ દશ્યની સાથે તાદાત્મ્ય ન અનુભવતાં માત્ર તેના દ્રષ્ટા બની રહે છે, અર્થાત્ પોતાનાં દેહ અને મનને દશ્યના એક ભાગ તરીકે જ જુએ છે. દેહની પ્રવૃત્તિઓ અને મનનાં પરિવર્તનોથી હર્ષ કે શોક ન અનુભવતાં તેના માત્ર તટસ્થ પ્રેક્ષક જ રહે છે. પહેલાં તેઓ પોતાને પરના કર્તા-ભોક્તા માનતા હતા, તે માન્યતા છૂટી ગઈ હોવાથી હવે પોતાના સહજ, શાંત, શુદ્ધ જ્ઞાનસ્વરૂપ તરફ તેમની મીટ મંડાય છે. 'મારો આત્મા જ્ઞાયકસ્વભાવી છે' એમ જ્ઞાનીએ દષ્ટિમાં લીધું હોવાથી તેમને ક્ષિણિક વિકારભાવો પોતાના સ્વભાવપણે નથી ભાસતા, પણ સ્વભાવથી ભિન્નપણે જ ભાસે છે; તેથી તેમને તે વિકારભાવોનું કર્તૃત્વ-ભોક્તૃત્વ પણ રહેતું નથી.

જ્ઞાની જ્ઞાનસ્વરૂપને જ સ્વપણે ગ્રહણ કરીને તેમાં એકતારૂપે પરિશમે છે. તેઓ જ્ઞાનમાં જ એકતારૂપે પરિશમે છે, રાગમાં એકતારૂપે પરિશમતા નથી. તેઓ રાગ સાથે એકતા કરતા નથી અને તેથી તેના તેઓ કર્તા થતા નથી. તેઓ રાગાદિમાં ક્યારે પણ અહં-મમભાવ સ્થાપતા ન હોવાથી તે બાહ્યથી તેમના હોવા છતાં તેમના ગણાતા નથી; એટલે જ રાગના સદ્દભાવમાં પણ જ્ઞાનીપુરુષો એમ કહી શકે છે કે રાગના અમે સ્વામી નથી, તેના અમે કર્તા નથી. એક માણસ શાહુકાર પાસે ગયો અને પૂછ્યું કે 'મારે તીર્થયાત્રાએ જવું છે, તમારી તિજોરીમાં મારા દાગીના મૂકશો?' શાહુકારે હા પાડી. તેની પાસેથી દાગીનાની પેટી લીધી અને પોતાના હાથે તિજોરીમાં મૂકી. ચાર મહિના પછી તે માણસે પાછા આવી દાગીના માંગ્યા. તેની દાગીનાની પેટી શાહુકારે પોતાના હાથે તિજોરીમાંથી બહાર કાઢી તેને આપી અને કહ્યું કે 'બરાબર જોઈ લેજો. મેં એને હાથ પણ લગાડ્યો નથી.' પોતાના હાથે શાહુકારે દાગીના લીધા હતા અને આપ્યા

હતા, છતાં તેણે જે કહ્યું તે પણ એટલું જ સાચું ગણાય, કારણ કે શાહુકારે ક્યારે પણ તેમાં પોતાપણું માન્યું ન હતું, તેનો સ્વામી બન્યો ન હતો. તેમ જ્ઞાનીપુરુષો પણ રાગાદિનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પોતાને તેના સ્વામી માનતા નથી. વિભાવમાં તેમને તાદાત્મ્ય થતું નથી અને તેઓ તેનાથી અપ્રભાવિતપણે રહી શકે છે. તેથી એમ કહેવાય છે કે જ્ઞાનીને રાગાદિ અડતા જ નથી.

જ્ઞાની પોતાના આત્માને ઉપયોગસ્વરૂપ જ જાણે છે, રાગસ્વરૂપ નથી જાણતા. તેમણે ભેદજ્ઞાન વડે રાગને જ્ઞાનથી અત્યંત ભિન્ન કરી નાખ્યો હોય છે. જેમ થાંભલા વગેરે પરદ્રવ્યને જ્ઞાની પોતાના જ્ઞાનથી ભિન્ન જાણે છે, તેમ રાગાદિ પરભાવોને પણ જ્ઞાની પોતાના જ્ઞાનથી ભિન્ન જાણે છે. તેઓ રાગને જાણતી વખતે રાગથી ભિન્નપણે જ પરિણમે છે. રાગથી જુદા જ્ઞાનપણે જ રહે છે. આ રીતે જ્ઞાનપણે જ ઉપજતા તે જ્ઞાનીને રાગાદિ સાથે કર્તા-કર્મપણું રહેતું નથી, માત્ર જ્ઞાતા-જ્ઞેયપણું જ રહે છે.

જ્ઞાની જ્ઞાતાપણે જ પરિણમે છે. જ્ઞાનપરિણામ અંતર્મુખ વલણના કારણે થતાં હોવાથી સ્વભાવના આશ્રયે થાય છે, જ્યારે રાગપરિણામ બહિર્મુખ વલણના કારણે થતાં હોવાથી પુદ્ગલના આશ્રયે થાય છે. આત્માના આશ્રયે થાય તેને જ આત્માનાં પરિણામ કહેવામાં આવે છે અને પુદ્દગલના આશ્રયે થાય તેને પુદ્દગલનાં પરિણામ કહેવામાં આવે છે. આત્માના આશ્રયે ઉત્પન્ન થતા સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાનરૂપ જે નિર્મળ ભાવો છે તે જ આત્માનાં પરિણામ છે. રાગની ઉત્પત્તિ આત્માના આશ્રયે થતી નથી. આત્માની અવસ્થામાં જ્યારે રાગ થાય છે ત્યારે તે રાગ માટે પરનું અવલંબન આવશ્યક છે. જો પરના અવલંબન વિના રાગ સંભવે તો રાગ આત્માનો સ્વભાવ બની જાય અને સ્વભાવ કદી ટળી શકે નહીં, માટે રાગ પણ શાશ્વત બની જાય. રાગ તો ટળી શકે છે, માટે તે આત્માનો સ્વભાવ નથી. તેની ઉત્પત્તિ આત્માના આશ્રયે થતી નહીં હોવાથી રાગ કરવો એ આત્માનું કાર્ય નથી. આવા આત્માને જ્ઞાની જાણતા હોવાથી તેઓ પોતાનાં નિર્મળ પરિણામને જ કરે છે. તેઓ ભેદજ્ઞાન વડે સ્વ અને પરને ભિન્ન ભિન્ન જાણતા હોવાથી સ્વદ્રવ્યમાં એકતા કરીને સમ્યગ્દર્શનાદિ નિર્મળ પર્યાયપણે પરિણમે છે.

સ્વરૂપના આશ્રયે પ્રગટેલી નિર્મળ પરિશતિ સુખરૂપ છે, નિર્વિકાર છે, તેમાં દુઃખ નથી, વિકારનું કર્તૃત્વ નથી કે હર્ષ-શોકનું ભોક્તૃત્વ નથી. નિર્મળ પરિશતિમાં તો સ્વાભાવિક આનંદનું જ વેદન છે. નિર્મળ પરિશતિમાં કર્મફળનો અભાવ છે. હર્ષ-શોકનું વેદન સ્વભાવમાંથી આવતું ન હોવાથી સ્વભાવદૃષ્ટિયુક્ત જ્ઞાની તેના ભોક્તા નથી. હર્ષ-શોકાદિ લાગણીઓ સાથે જ્ઞાનીનો ભોક્તા-ભોગ્ય સંબંધ નથી, પણ જ્ઞાયક-જ્ઞેય સંબંધ જ છે. જ્ઞાની એમ જાશે છે કે 'આ હર્ષ-શોકને ભોગવવાનો મારો ત્રિકાળી ધર્મ નથી, પણ ક્ષાશિક પર્યાયનો ધર્મ છે. મારો સ્વભાવ તો ચૈતન્ય છે.' આવા ભાનમાં

હર્ષ-શોકના ભાવ સાથે તેમને તેનું સાક્ષીપશું પણ સાથે ને સાથે જ વર્તે છે. જ્ઞાનીને પણ હર્ષ-શોક થાય, પરંતુ તેમને જ્ઞાતાસ્વભાવના અતીન્દ્રિય આનંદનો અનુભવ થયો હોવાથી હર્ષ-શોકના ભોગવટાની ક્ષણે જ તેમને તે હર્ષ-શોકના સાક્ષીપણારૂપ પરિણમન પણ વર્તે છે.

જ્ઞાનીને પોતાના શુદ્ધ જ્ઞાનસ્વભાવમાં તાદાત્મ્યવૃત્તિ થઈ હોવાથી તેઓ કર્મના કર્તા કે ભોક્તા થતા નથી, પરંતુ ચિદાનંદસ્વભાવને ભૂલેલો, ક્રોધાદિ આસવભાવોમાં તન્મયપણે વર્તતો એવો અજ્ઞાની જીવ ક્રોધાદિનો કર્તા-ભોક્તા થાય છે. તેના ક્રોધાદિ ભાવો નવીન કર્મબંધનમાં નિમિત્ત બને છે. પોતાના સ્વભાવને ભૂલેલો તથા કર્મ તરફ ઝુકેલો અજ્ઞાની જીવ અનાદિથી રાગ-દેષ કરે છે અને આ રાગ-દેષથી તેને નવીન કર્મબંધ થાય છે. જો કે રાગ-દ્વેષ અને કર્મબંધની પરંપરા અનાદિથી ચાલતી હોવા છતાં તે સ્વભાવભૂત નથી, પણ વિભાવરૂપ ઉપાધિ છે. આત્માર્થી જીવ પોતામાં તે ઉપાધિને અવલોકે છે. પોતાની પર્યાયમાં વિકારી ભાવો છે એમ તે જાણે છે. તે પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવનો નિશ્ચય કરે છે કે 'મારામાં જે રાગ-દ્રેષાદિ વિકારો દેખાય છે તે મારા સ્વભાવભત નથી પણ આરોપિત ભાવ છે. આ રાગ-દ્વેષ તો ઉપાધિરૂપ છે, જ્યારે મારો સ્વભાવ તો શુદ્ધ ચૈતન્યમાત્ર છે. આ રાગ-દ્વેષની પરંપરા મારા સ્વભાવના આશ્રયે નથી થઈ પણ પરના આશ્રયે થયેલી છે, તેથી હું મારા સ્વભાવના આશ્રયે નિર્મળ પર્યાયની પરંપરા પ્રગટ કરીને આ રાગ-દ્વેષની પરંપરાને તોડી નાખું.' જે ક્ષણે રાગ-દેષ વર્તે છે તે ક્ષણે જ આ વિવેકજ્યોતિના કારણે તે પોતાના નિર્પાધિક શુદ્ધ સ્વભાવ તરફ ઝુકતો જાય છે. તે રાગ-દ્વેષની પરંપરાને તોડતો જાય છે. રાગ-દ્વેષની પરંપરા તૂટતાં કર્મબંધ પણ છૂટતા જાય છે. ક્રમે કરીને તે કર્મથી મુક્ત થાય છે. જેમ સ્કંધમાં રહેલો પરમાણુ જ્યારે જઘન્ય ચીકાશરૂપે પરિણમવાની સન્મુખ થાય છે ત્યારે સ્કંધ સાથેના બંધનથી તે છૂટો પડી જાય છે, તેમ શુદ્ધ સ્વભાવ તરફ ઝૂકેલા જીવને રાગાદિ ચીકાશવાળા ભાવો અત્યંત ક્ષીણ થતા જતા હોવાથી તે કર્મબંધથી છૂટતો જાય છે અને અંતે તે સર્વ બંધનથી મુક્ત થઈ જાય છે.

આમ, જેમનો દેહાધ્યાસ છૂટી ગયો છે અને જેમને આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ છે એવા જ્ઞાની પોતાનાં નિર્મળ પરિશામને જ કરે તથા ભોગવે છે, તે સિવાય તેમને રાગાદિ ભાવ સાથે કે કર્મો સાથે કર્તા-કર્મપશું કે ભોક્તા-ભોગ્યપશું નથી. જ્યાં સુધી ભેદજ્ઞાનજ્યોતિ પ્રગટી નથી, ત્યાં સુધી જ ભ્રમના કારશે જીવને પુદ્દગલ સાથે કર્તા-કર્મપશું તથા ભોક્તા-ભોગ્યપશું ભાસે છે, જ્ઞાન તથા રાગ વચ્ચે પણ કર્તા-કર્મપશું તથા ભોક્તા-ભોગ્યપશું ભાસે છે. જ્ઞાનભાવમાં તે કર્તા-કર્મ તથા ભોક્તા-ભોગ્યપ્રવૃત્તિનો અત્યંત અભાવ છે. ભેદજ્ઞાન થતાં જીવ સકળ વિકારના કર્તૃત્વ-ભોક્તૃત્વરહિત થઈને

જ્ઞાયકપણે શોભે છે. વિકારના કર્તૃત્વ-ભોક્તૃત્વમાં તો જીવની શોભા હણાય છે, જ્યારે ભેદજ્ઞાન વડે પરનું કર્તૃત્વ-ભોક્તૃત્વ છૂટતાં આનંદમય જ્ઞાનપરિણમનથી જીવ શોભી ઊઠે છે. જ્ઞાનસ્વભાવી આત્મા પોતાના જ્ઞાનમય કાર્યથી શોભે છે. આ જ ધર્મ છે અને આ જ મોક્ષમાર્ગ છે. ધર્મનો મર્મ પ્રકાશતી આ અદ્દભુત અને રહસ્યપૂર્ણ ગાથા વિષે શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે –

'..... એવું નિ:સંદેહ તત્ત્વ શ્રીમદે જાહેર કર્યું છે તે સમજો. પોતાના સર્વજ્ઞ સ્વભાવનો મહિમા આવે ત્યારે, ચૈતન્ય ભગવાન પોતાની રક્ષા કરે છે; અને પોતાના નિત્યનિર્ભય-નિ:શંક સ્વભાવને જ જુએ છે. પરથી જુદાપણાનું ભાન થતાં આત્મા પરનો કર્તા-ભોક્તા નથી, પણ મોક્ષસ્વભાવમાં જ નિત્ય સ્થિતિ છે, તેમાં ઉપાધિનો અંશ પણ નથી એમ નિ:સંદેહપણે ભાવભાસન થાય છે. એવી સ્વરૂપસ્થિતિ તે વીતરાગતત્ત્વનો મર્મ છે. એમ ત્રણે કાળના જ્ઞાનીનું ૨હસ્ય છે. તે અનાદિનું સત્ જેમ છે તેમ અહીં કહ્યું છે.'

શ્રીમદે પ્રસ્તુત ગાલામાં દેહાધ્યાસ છૂટે 'તો' જીવ કર્તા-ભોક્તા થતો નથી એમ કહ્યું. અહીં 'તો' શબ્દ અર્થગંભીર છે. 'તો' શબ્દ દ્વારા જે તથ્ય અભિપ્રેત છે તે સંક્ષેપમાં વિચારીએ. આત્માનો સ્વભાવ જ્ઞાતાપણાનો છે. આત્મસ્વભાવમાં પરદ્રવ્યનું કર્તૃત્વ કે ભોક્તૃત્વ તો છે જ નહીં. તેનાં ગુણ અને પર્યાયમાં પણ પરદ્રવ્યનું કર્તૃત્વ કે ભોક્તૃત્વ નથી, તેથી પરદ્રવ્યનું કર્તૃત્વ તથા ભોક્તૃત્વ આત્મદ્રવ્યમાં કે તેની પર્યાયમાં નથી. જ્યારે પર્યાય સ્વરૂપનું જ્ઞાન છોડી, કર્મના ઉદયને વશ બની અજ્ઞાનભાવે પરિણમે છે ત્યારે જીવ પોતાને પરદ્રવ્યનો કર્તા-ભોક્તા માને છે. પર્યાય જો સ્વભાવસન્મુખ થાય તો દેહાધ્યાસ છૂટતાં પર્યાયનું જ્ઞાનભાવે પરિણમન થાય છે અને ત્યારપછી જીવ પોતાને ક્યારે પણ પરદ્રવ્યનો કર્તા-ભોક્તા નથી માનતો. આ પ્રકારે શ્રીમદે 'તો' શબ્દ જ્ઞાનભાવે પરિણમતી પર્યાય માટે પ્રયોજયો છે.

વળી, આત્માના દ્રવ્યસ્વભાવમાં પરભાવના કર્તૃત્વનો કે ભોક્તૃત્વનો નિતાંત અભાવ વર્તે છે. આત્માનો સ્વભાવ જ્ઞાતાપણાનો છે. પરભાવ જ્ઞાતાભાવથી ભિન્ન છે. આત્મદ્રવ્યનો સ્વભાવ પરભાવ કરવાનો નથી, તેથી આત્મા પરભાવનો કર્તા થતો નથી; તેમજ આત્માનો સ્વભાવ પરભાવ ભોગવવાનો નથી, તેથી આત્મા પરભાવનો ભોક્તા થતો નથી. આત્મદ્રવ્યમાં અને તેના ગુણોમાં વિકારી ભાવોનું અકર્તૃત્વ તથા અભોક્તૃત્વ છે છતાં પર્યાયમાં વિકારી ભાવો થાય છે, અર્થાત્ પર્યાય અજ્ઞાનભાવવશ વિકારભાવના કર્તાપણે તથા ભોક્તાપણે પરિણમે છે. પર્યાય ધ્રુવનું લક્ષ છોડી દે, ધ્રુવ સ્વભાવના ભાનમાં ન રહે અને કર્મોદય સાથે જોડાઈ તેને અવલંબે તો પર્યાય અજ્ઞાનતાથી રાગાદિ ૧- શ્રી કાનજીસ્વામી, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચનો', આઠમી આવૃત્તિ, પૃ.૩૬૯

વિકારી ભાવોના કર્તૃત્વ અને ભોક્તૃત્વમાં રોકાય છે. પરંતુ પર્યાય જો સ્વભાવને અવલંબે તો તેને જ્ઞાનભાવનું જ કર્તૃત્વ તથા ભોક્તૃત્વ છે અને વિકારી ભાવોનું અકર્તૃત્વ તથા અભોક્તૃત્વ છે. સ્વાશ્રિત પર્યાય પોતાના જ્ઞાનની કર્તા-ભોક્તા છે અને પરભાવની અકર્તા-અભોક્તા છે. આત્માનો શુદ્ધ જ્ઞાનસ્વભાવ છે, તેથી તે રાગાદિ પરભાવોનો કર્તા કે ભોક્તા નથી અને એવા ટંકોત્કીર્ણ શુદ્ધસ્વભાવી આત્મદ્રવ્યને અવલંબતી પર્યાયને જ્ઞાનનું કર્તૃત્વ-ભોક્તૃત્વ છે અને રાગાદિનું અકર્તૃત્વ-અભોક્તૃત્વ છે. અજ્ઞાનભાવે પરિણમતી પર્યાય રાગાદિની કર્તા-ભોક્તા છે અને જ્ઞાનભાવે પરિણમતી પર્યાય રાગાદિની કર્તા-ભોક્તા છે. તેથી 'તો' શબ્દ શુદ્ધજ્ઞાનસ્વભાવી આત્મદ્રવ્યને અવલંબતી પર્યાય માટે વપરાયો છે. આ ગાથામાં 'તો' શબ્દ દ્વારા જ્ઞાનભાવે પરિણમતી પર્યાયની વાત મુખ્ય કરીને જીવને કર્મનો અકર્તા-અભોક્તા કહ્યો છે.

અહીં શ્રીમદ્ની લાક્ષણિક શૈલી અને શબ્દગૂંથણીના ચાતુર્યનો પરિચય મળે છે. તેમણે સંક્ષેપમાં કિંતુ ઘણી અર્થગંભીર વાત કરી છે. જો આ ગાથાની સૂક્ષ્મ વિચારણા કરવામાં આવે તો તેમાં કેટલું ગાંભીર્ય ભર્યું છે તે સમજાય અને જો આશય સમજાય તો તેની અસર ઘણી ઊંડી પડે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'છૂટે દેહાધ્યાસ તો, ભાસે આત્મતત્ત્વ સાર; નાસે સર્વ વિકાર તે, સહજ થાય અવિકાર. અન્ય દ્રવ્ય પર્યાયનો, નહિ કર્તા તું કર્મ; તને કદી ન ત્યજી શકે, તારા જે ગુણધર્મ. આ દેહાદિ વિટંબના, રૂપ કર્મફળ જેહ; નહિ ભોકતા તું તેહનો, તું નિજ ગુણ મણિ ગેહ. જ્ઞાનામૃત ભોકતા સદા, વસ્તુ સ્વભાવ સ્વધર્મ; એ આત્મા આરાધવો, એ જ દાર્મનો મર્મ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૩ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૫૭-૪૬૦)

क्रोक धर्मक्षा मेरिके हो हो मेरिक स्पर्टेष, कार्नन हमिल क्रान हुं, का टेम आर्थ स्पर्टेष. મોક્ષના ઉપાયનું સ્વરૂપ સંક્ષિપ્તમાં બતાવતી ત્રણ રહસ્યપૂર્ણ કળશરૂપ ભૂમિકા ગાથાઓમાંની પ્રથમ ગાથા ૧૧૫માં અનંત જ્ઞાનીઓના અંતરમાં રહેલું ધર્મનું રહસ્ય બતાવતાં શ્રીગુરુએ કહ્યું કે અનાદિ કાળનો દેહાધ્યાસ છૂટી, શુદ્ધ જ્ઞાયક-સ્વભાવમાં સ્થિતિ થતાં કર્મનું કર્તાપણું તથા ભોક્તાપણું મટી જાય છે અને એ જ ધર્મનો મર્મ છે.

વિભાવભાવમાંથી સ્વભાવમાં આવવાનો પુરુષાર્થ એ જ ધર્મ છે - મોક્ષમાર્ગ છે અને તે પુરુષાર્થ દ્વારા અખંડપણે આત્મસ્વભાવમાં સ્થિરતા થવાથી મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે. આમ, આત્મસ્વરૂપના અવલંબને ધર્મ છે એમ ગર્ભિતપણે બતાવી, આત્મસ્વરૂપ કેવું છે તેનું વર્ણન હવે પછીની બે કળશરૂપ ગાથામાં શ્રીગુરુ કરે છે. તેમાંની પ્રથમ ગાથામાં કહે છે –

'એ જ ધર્મથી મોક્ષ છે, તું છો મોક્ષ સ્વરૂપ; અનંત દર્શન જ્ઞાન તું, અવ્યાબાધ સ્વરૂપ.' (૧૧૬)

એ જ ધર્મથી મોક્ષ છે, અને તું જ મોક્ષસ્વરૂપ છો; અર્થાત્ શુદ્ધ આત્મપદ એ જ મોક્ષ છે. તું અનંત જ્ઞાન દર્શન તથા અવ્યાબાધ સુખસ્વરૂપ છો. (૧૧૬)

ભાવાર્થ મેક્ષ છે', અર્થાત્ દેહાધ્યાસનો નાશ કરવારૂપ ધર્મથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે, કારણ કે દેહાધ્યાસ છૂટતાં જીવને પોતાના સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય છે અને તેથી તે પરભાવથી ઓસરતો જાય છે અને સ્વભાવમાં સ્થિત થતો જાય છે. પરભાવમાંથી ખસી સ્વભાવમાં વસવું એ જ ધર્મ છે. પરદ્રવ્ય તથા પરભાવમાં એકત્વબૃદ્ધિએ પરિણમવું એ જ અધર્મ છે અને નિજસ્વભાવમાં એકતારૂપે પરિણમવું એ જ ધર્મ છે. આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિત થવારૂપ ધર્મથી મોક્ષ થાય છે. આ પ્રમાણે શ્રીગુરુએ અહીં ધર્મની કલ્પિત માન્યતારૂપ ભૂલનો પરિહાર કરીને કહ્યું કે જેઓ પોતાના આત્મસ્વરૂપને શ્રદ્ધે છે, સમજે છે અને તેમાં સ્થિત થાય છે તેઓ મોક્ષ પ્રાપ્ત કરે છે; અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન- ચારિત્રની એકતારૂપ ધર્મથી મોક્ષ થાય છે.

આમ, સ્વભાવદશાની પ્રાપ્તિ એ જ યથાર્થ ધર્મ છે એમ કહ્યું. આત્મસ્વરૂપનો યથાર્થ નિર્ણય કરી, તેમાં વૃત્તિનું ઘોલન થતાં દેહાધ્યાસ છૂટે છે અને સ્વભાવદશાની પ્રાપ્તિ થાય છે. આત્મસ્વરૂપ કેવું છે તે બતાવતાં કહે છે કે આત્મા મોક્ષસ્વરૂપ છે, કેવળજ્ઞાનસ્વભાવી છે. તે આધિ-વ્યાધિ-ઉપાધિથી રહિત છે. તે અનંત દર્શન, અનંત જ્ઞાનનો ધારક છે અને તેનું સ્વરૂપ અવ્યાબાધ છે. અવ્યાબાધ શબ્દ દ્વારા અનંત સુખ અને અનંત વીર્ય અભિપ્રેત છે. આમ, પ્રસ્તુત ગાથાની બીજી પંક્તિમાં અનંત ચતુષ્ટય ગૂંથાઈ જાય છે. આવા સ્વભાવનું શ્રદ્ધાન કરી, તેનો અચિત્ય મહિમા લાવી, તેમાં એકાગ્ર થવું એ જ ધર્મ છે અને એ જ ધર્મથી મોક્ષ છે. અનંત દર્શન, અનંત જ્ઞાન તથા કોઈથી બાધા કે નુકસાન ન થાય એવું અવ્યાબાધ સ્વરૂપ પ્રગટ કરવાનો આ એક જ માર્ગ છે. આ ગાથામાં આત્મપુરુષાર્થમાં ઉત્સાહિત કરતું પરમભાવપ્રેરક ઉદ્બોધન 'તું'કારનો પ્રયોગ કરી શ્રીગુરુએ પરમાર્થપ્રેમથી શિષ્ય સાથે આત્મીય સંબંધ બાંધ્યો છે.

આ જીવ શુદ્ધ જ્ઞાયકસ્વભાવી છે, છતાં અશુદ્ધ અવસ્થામાં તેનો કર્મ સાથે સંબંધ છે. આ કર્મસંબંધના નિમિત્તે જીવને બાહ્યમાં શરીર મળ્યું છે અને અંતરમાં રાગાદિ વિકારી ભાવોની પ્રાપ્તિ થઈ છે. જીવને પોતાનું મૂળ સ્વરૂપ શું છે તેની ખબર નથી, એટલે તે પોતાને જાણતો-ઓળખતો નથી અને શરીરમાં જ અહંબુદ્ધિ કરી રહ્યો છે તથા રાગાદિ ભાવોને પોતાનો સ્વભાવ માની રહ્યો છે. તે શરીરના જન્મથી પોતાની ઉત્પત્તિ અને શરીરના નાશથી પોતાનો નાશ માને છે. શરીરમાં રોગ થવાથી પોતાને બીમાર અને તે રોગ મટી જતાં પોતાને નીરોગી માને છે. પણ વસ્તુસ્વરૂપ આ માન્યતાથી તદન જુદું છે. જીવાત્માનું અસ્તિત્વ અલગ છે અને શરીરનું અસ્તિત્વ અલગ છે. કર્મના સંયોગોના નિમિત્તે જીવની વિવિધ અને વિચિત્ર દશાઓ થઈ રહી છે, છતાં જીવનો મૂળ સ્વભાવ આ બધાં પરિવર્તનો અને વિકારોથી અલિપ્ત જ છે. જેમ કંચનને કાટ લાગતો નથી, અગ્નિને ઊધઈ લાગતી નથી; તેમ આત્મ-સ્વભાવમાં આવરણ, ઊણપ કે અશુદ્ધિ આવતી નથી. મૂળ તત્ત્વમાં શરીર, કર્મ કે વિકાર પ્રવેશી શકતાં નથી. જીવ પોતાના મૂળ સ્વરૂપનો આશ્રય કરે તો તેનો દેહાધ્યાસ છૂટે અને તેનો મોક્ષ થાય. પોતાના ધુવ સ્વરૂપનો આશ્રય કરવો એ જ ધર્મ છે અને એ જ ધર્મથી મોક્ષ છે. ચૈતન્યસામાન્યને ઓળખ્યા વિના ધર્મની શરૂઆત સંભવતી નથી. ચૈતન્યસામાન્યને ઓળખવા વસ્તુસ્વરૂપને સમજવું ઘટે છે.

દરેક વસ્તુ - ચેતન કે અચેતન સામાન્ય-વિશેષાત્મક છે. સામાન્ય અને વિશેષ બન્ને વસ્તુના ગુણધર્મ છે. વસ્તુની અવસ્થાઓ બદલાતી રહે છે, તે તેના વિશેષ ગુણના કારણે છે; છતાં 'ન બદલાવું'ની મૌલિકતા પણ વસ્તુમાં છે, જેને સામાન્ય ગુણ કહે છે. દાખલા તરીકે –

(૧) સોનાના મુગટને તોડી બંગડી બનાવી અને બંગડીને તોડી હાર બનાવ્યો. આમાં અવસ્થાઓ બદલાઈ, પણ બધી અવસ્થાઓમાં સોનું તો કાયમ રહ્યું. મુગટ, બંગડી આદિ અવસ્થાઓ(પર્યાયો)ને 'વિશેષ' અને સુવર્શત્વ(દ્રવ્ય)ને 'સામાન્ય' કહે છે.

- (૨) બાળપણું, કિશોરપણું, પ્રૌઢપણું અને વૃદ્ધપણું એ પર્યાયો છે, તેને 'વિશેષ' કહે છે; જ્યારે તે બધામાં કાયમ રહેનાર મનુષ્યત્વ જેવું ને તેવું જ છે, તેને 'સામાન્ય' કહે છે.
- (૩) દૂધ, દહીં, માખણ અને છેવટે ઘી આ બધી અવસ્થાઓને 'વિશેષ' કહે છે અને તે સર્વમાં રહેલા ગોરસપણાને 'સામાન્ય' કહે છે.
- (૪) વૃક્ષને કાપ્યું, લાકડાં થયાં, તે બાળ્યાં તો કોલસા થયા, તે સળગાવતાં રાખ થઈ; પણ તે સર્વમાં રહેલ પુદ્ગલત્વ તો કાયમ જ છે. આ બધી અવસ્થા 'વિશેષ' છે અને પુદ્ગલત્વ 'સામાન્ય' છે.

'સામાન્ય' અને 'વિશેષ' બન્ને એક જ વસ્તુના ગુણધર્મ હોવા છતાં તે બન્ને પરસ્પરથી ભિન્ન છે. 'સામાન્ય' એક છે અને 'વિશેષ' અનેકાનેક છે. 'સામાન્ય' અવિનાશી છે, ધુવ છે; 'વિશેષ' નાશવંત છે, પરિવર્તનશીલ છે. આ બન્નેમાં ભેદ છે છતાં બન્ને અભિન્ન છે. એ બન્નેને એકબીજાથી જુદાં કરી શકાતાં નથી. તે છતાં જ્ઞાન વડે બન્નેનું અલગ અલગ અસ્તિત્વ જાણી શકાય છે, કારણ કે બન્નેનાં સ્વરૂપ-લક્ષણ જુદાં જુદાં છે. માત્ર સામાન્ય અથવા માત્ર વિશેષ એકલાં કદી હોઈ શકતાં નથી. વસ્તતઃ એક પછી એક થનાર વિશેષો(પરિવર્તનો)માં જે સાતત્ય - એકતા - સમાનતા છે તે જ સામાન્ય (મૂળ સ્વરૂપ) છે. માટીપશું સામાન્ય છે અને માટીનું ઢેફું, ઘડો, ઠીકરાં વગેરે તેનાં વિશેષો છે. માટીયણું તે સર્વમાં સામાન્યરૂપે વ્યાપ્ત છે. વિશેષો બદલાયા કરે છે, પણ સામાન્ય કાયમી - એકરૂપ જ રહે છે. તે પ્રમાણે આત્મા ચૈતન્યરૂપે કાયમ છે, પણ તેની અવસ્થાઓ (પર્યાયો) બાહ્ય અને આંતરિક એમ બે રીતે બદલાતી રહે છે. માનવ, પશુ, દેવ, નારકી - એ બધી બહારની અવસ્થાઓ છે; જ્યારે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભરૂપી વિકારો અંતરમાં થતી અવસ્થાઓ છે. તે બધા વિકારોથી પર એક વીતરાગતારૂપ શુદ્ધ પરિણામ પણ એક આંતરિક અવસ્થા છે. પરંતુ આ બધી પરિણતિઓમાં આત્મદ્રવ્ય તો ચૈતન્યરૂપે જ સદાસર્વદા ધ્રુવ છે. તે અવિનાશી, સદાકાળ. એક3પ જ રહે છે.

દરેક વસ્તુમાં પરિવર્તન સતત થતાં જ રહે છે, કારણ કે પરિવર્તન થવું તે વસ્તુનો સ્વભાવ છે. સંસાર પરિવર્તનશીલ છે, શરીર પરિવર્તનશીલ છે, મન પરિવર્તનશીલ છે. દરેક ચીજ બદલાતી રહે છે. તેમાં પ્રતિક્ષણ ફેરફાર ચાલુ છે. કોઈ સુંદર પુસ્તકનાં પાનાં ૩૦-૪૦ વર્ષ પછી ઝાંખાં અને જૂનાં લાગે છે. તે ફેરફાર એકદમ કે અચાનક નથી થતો. નિરંતર પરિવર્તન થતું રહેવાના કારણે આમ થાય છે. સતત પરિણમનશીલ સ્વભાવના કારણે આજનું બાળક પ૦-૬૦

વર્ષ પછી વૃદ્ધ દેખાય છે. આ ફેરફાર એટલો ધીમો અને સૂક્ષ્મ છે કે તે નરી આંખે દેખાતો નથી. ખાસ્સા સમય પછી વસ્તુમાં થયેલ ફેરફાર જોવા-સમજવામાં આવે છે. સ્થૂળ પરિવર્તન પકડી શકાય છે, પરંતુ સમયે સમયે થતા સૂક્ષ્મ ફેરફાર પકડની બહાર છે. નિરંતર પરિવર્તન થતું હોવા છતાં એક વાત નક્કી છે કે પુદ્દગલ (અચેતન) કદી જીવ થનાર નથી અને જીવ કદી પુદ્દગલ થનાર નથી. પુદ્દગલનું પરિણમન પુદ્દગલરૂપ જ થાય છે અને જીવનું પરિણમન જીવરૂપ જ થાય છે. આ શાશ્વત નિયમ છે.

દરેક વસ્તુ સતત પરિવર્તનશીલ છે અને તેની સાથે અપરિવર્તનશીલ પણ છે. દરેક દ્રવ્યનાં બે પાસાં છે - એક અધ્રુવ પાસું અને બીજું ધ્રુવ પાસું. આત્મામાં પણ બે અંશ છે - એક પરિવર્તનશીલ છે જે સદા બદલાતો રહે છે અને બીજો અપરિવર્તનશીલ છે જે સદા પરિવર્તનોથી અસ્પૃષ્ટ પરિવર્તનરહિત જ રહે છે. આ બીજો અંશ તે જીવનું યથાર્થ 'સ્વ' છે.

આત્મા સામાન્ય-વિશેષયુક્ત છે, દ્રવ્ય-પર્યાયાત્મક છે; પરંતુ આત્મવસ્તુના સામાન્ય સ્વરૂપનું, તેના દ્રવ્યસ્વભાવનું જ્ઞાન ન હોવાના કારણે જીવે અનાદિ કાળથી આત્મ-વસ્તુના માત્ર વિશેષરૂપને - પર્યાયરૂપને જ જાણ્યું છે, માન્યું છે, અનુભવ્યું છે; પરિણામે શરીરાદિ સંયોગ અને રાગાદિ વિકારોમાં પોતાપર્શું, એકત્વપશું, સ્વામિત્વ થાય છે અને તેથી કર્મ તેમજ કર્મફળમાં વૃદ્ધિ થતી રહી છે.

વિશેષોમાં - પર્યાયોમાં ફસાઈ રહેવાથી તથા તે બધામાં પોતાપણાના ભાવ રાખવાથી સર્વ સંસારી જીવોને માટે ચૈતન્યસામાન્યને પકડવું દુષ્કર બની ગયું છે. જીવ પુદ્દગલોનાં સુવર્શત્વ, ગોરસત્વ, માટીત્વ વગેરે સામાન્યો તો પકડી શકે છે; પણ દેવ, માનવાદિ બાહ્ય પર્યાયોથી તથા ક્રોધાદિ અંતરંગ પરિણામોથી ભિન્ન એવા વિલક્ષણ ચૈતન્યસામાન્યને પકડવાનું તેને માટે મુશ્કેલ છે. જીવ ચારે તરફના જગતમાં એટલો તલ્લીન થઈ જાય છે, શરીર અને મનના વ્યાપારમાં એટલો અસ્ત થઈ જાય છે કે ચૈતન્યસામાન્યને બિલકુલ ભૂલી જાય છે. તે ફેરફારોની નોંધ લે છે, પણ ફેરફારોનાં વાદળાંઓથી આચ્છાદિત થયેલા એવા ચૈતન્યસામાન્યની નોંધ નથી લેતો. પરિવર્તનની નોંધ તો તે લે છે, પણ પરિવર્તનો વચ્ચે જે અપરિવર્તનશીલ ધ્રુવ તત્ત્વ છુપાયેલું છે, તે પ્રત્યે તેની દષ્ટિ જતી નથી.

આ નિત્ય તત્ત્વ - શુદ્ધ ચૈતન્ય સદૈવ જીવની સાથે ને સાથે જ છે. જીવ સ્વયં તે જ છે, અનાદિથી છે અને અનંત કાળ પર્યંત તેમ જ રહેશે; પણ જીવ તેને ચૂકી ગયો છે. તે શરીરની સંભાળ લે છે, મનની ખબર રાખે છે, કેમ કે એ બદલાતાં રહે છે. શરીરાદિ ઉપર લક્ષ આપવાના કારણે તે એમ સમજવા લાગે છે કે 'હું શરીર છું, હું મન છું' ઇત્યાદિ. તે માત્ર શરીરાદિને જ જાણે છે અને તેથી એની જ સાથે

તાદાત્મ્ય કરી લે છે. જ્ઞાનની વિપરીત અવસ્થામાં તે પોતાના અપરિવર્તનશીલ તત્ત્વ સાથે તાદાત્મ્ય સાધતો નથી અને પરિવર્તનશીલ અંશ સાથે તાદાત્મ્ય સાધે છે.

વિપરીત સમજણના કારણે તે અમુક પરિવર્તનથી લાભ અને અમુક પરિવર્તનથી નુકસાન માને છે. 'આ મને ઇષ્ટ છે' અથવા 'આ મને અનિષ્ટ છે' એમ તે માને છે. અમુક પરિવર્તન તેને ખતરનાક લાગે છે, તેથી તેને પોતાની સુરક્ષાની ફિકર થાય છે. તે મનગમતી સ્થિતિની તજવીજ કરવામાં લાગેલો રહે છે. તેનો પુરુષાર્થ અપરિવર્તન-શીલ તત્ત્વ તરફ વહેવાને બદલે બાહ્યમાં પરિવર્તન કરવામાં લાગેલો રહે છે. ક્વચિત્ પુણ્યોદયે ઇષ્ટ પરિવર્તન થયું તોપણ એમાંથી તેને સુખ, શાંતિ અને સલામતી પ્રાપ્ત થતાં નથી; કારણ કે જે પરિવર્તનશીલ છે, જે નિરંતર પલટાયાં કરે છે; તે સુખ, શાંતિ અને સલામતી આપવા સમર્થ નથી. જ્યાં સુધી બાહ્યમાં ફેરફાર કરવાની વૃત્તિ છે ત્યાં સુધી અશાંતિ જ રહે છે. તૃષ્ણા છે ત્યાં સુધી શાંતિ નથી મળી શકતી. સ્થિર તત્ત્વના વિસ્મરણના કારણે સુખ, શાંતિ આદિની પ્રાપ્તિ દૂર ને દૂર જ રહે છે. જીવ સ્થિર તત્ત્વનું અનુસંધાન કરે ત્યારે જ તે સ્થિર-શાંત થઈ શકે છે.

જે અશાંતિ, સમસ્યા કે ઉપદ્રવ ઉત્પન્ન થાય છે તે પરિવર્તનોના કારણે નથી, પણ તેમાં રહેલી તાદાત્મ્યબુદ્ધિના કારણે છે. શરીરને રોગ લાગુ પડ્યો હોય તે છતાં બીમારી જરા પણ ઉપદ્રવરૂપ નથી. ઉપદ્રવ તો એ ત્યારે બને કે જ્યારે જીવ પરિવર્તન સાથે એક્ય કરી વિચારવા લાગે કે 'હું બીમાર થઈ ગયો છું.' જો તે ધ્રુવ તત્ત્વનું અનુસંધાન કરી બીમારીનો સાક્ષી થઈ જાય, જો તે પ્રતીત કરી લે કે 'બીમારી કોઈ બીજાને થઈ રહી છે મને નહીં, હું તો એનો સાક્ષીમાત્ર છું'; તો એ બીમારી જીવનું કંઈ બગાડી શક્તી નથી. એ જ રીતે જો જીવ ધ્રુવ તત્ત્વનું અનુસંધાન કરે તો જ્યારે કર્મકૃત 'હું'નું મૃત્યુ ઘટે છે ત્યારે જીવ તેનો સાક્ષીમાત્ર બની રહે છે. દેહ સાથેની તાદાત્મ્યબુદ્ધિ જ જીવને મરણશીલ બનાવે છે. જે દેહ સાથે તાદાત્મ્ય કરે છે, તેને જ મરણનું ભોક્તૃત્વ હોય છે. જે મરણશીલ તત્ત્વને પોતાથી છૂટું કરી નાખે છે, તે મૃત્યુથી પર થઈ જાય છે. તે જાણે છે કે પોતે તે જ છે કે જે સદાથી છે અને રહેશે. અજર અમર અવિનાશી શુદ્ધ ચૈતન્ય!

જીવને દ્રવ્યસામાન્યની શ્રદ્ધા થાય તો પર્યાયવિશેષમાં જે એકત્વ-મમત્વ છે તે મટે. દ્રવ્યસામાન્યનું ભાન થતાં શરીર તો રહેશે, પણ તે વિનાશી છે, સંયોગી છે એવું ભાસશે. રાગ વગેરે થશે, પણ તે પોતાના સ્વરૂપ જેવા ન દેખાતાં વિકારરૂપ અને નાશવંત દેખાશે. રાગાદિ તથા શરીરાદિનો અભાવ થવા છતાં આત્માનો અભાવ અથવા નાશ થતો નથી એમ સ્પષ્ટપણે જણાશે. જ્યારે જીવ સ્વયંને પર્યાયરૂપ, એટલે કે શરીરાદિ તથા રાગાદિરૂપ અનુભવતો હતો ત્યારે તેનો રાગ વધતો હતો. હવે જો તે

પોતાને દ્રવ્યસામાન્યરૂપ માનવા લાગે તો રાગાદિ ઓછા થવા લાગે છે અને આત્માની પર્યાય ક્રમશઃ રાગાદિથી રહિત શુદ્ધ થતી જાય છે, સાથે સાથે શરીરાદિની ઉત્પત્તિનાં નિમિત્તરૂપ કર્મોનો પણ અભાવ થતો જાય છે.

જ્ઞાનીની દેષ્ટિ દ્રવ્યસામાન્ય ઉપર, ધ્રુવ ઉપર જ રહે છે. જ્ઞાની ત્રિકાળી, ધ્રુવ, એકરૂપ એવો જે જ્ઞાયકભાવ છે; તેના ઉપર નજર બાંધે છે - ત્યાં નજરબંધી કરે છે. જ્યાં સુધી તેઓ પૂર્ણવીતરાગી ન થાય ત્યાં સુધી રાગનો વિકલ્પ તો આવે છે, તે છતાં સમસ્ત રાગથી ભિન્ન એવા શુદ્ધ ચૈતન્ય ઉપર સતત તેમની દેષ્ટિ રહે છે. રાગ અને આત્માની એકતારૂપ માન્યતા હતી ત્યાં સુધી મિથ્યાત્વ હતું. હવે રાગથી ભિન્ન નિજદ્રવ્યસામાન્ય ઉપર દેષ્ટિ કરવાથી રાગથી ભેદજ્ઞાન થઈ જાય છે. આ ભેદજ્ઞાનની ધારા અતૂટ વહેતી રહે છે. ત્રિકાળી દ્રવ્યસ્વભાવ ઉપર તેમની દેષ્ટિ સ્થિર થઈ હોવાથી, તેમનો ઉપયોગ બહાર ગમે તે ઠેકાશે જાય તોપણ તેમને નિજાત્માનો આશ્રય તો રહે જ છે. રુચિનું જોર પરિપૂર્ણ વસ્તુ ઉપર જ રહે છે તથા રાગાદિનો નિષેધ કરતું ભેદજ્ઞાન સતત રહે છે, તેથી તે રાગાદિ કમશઃ ક્ષય પામે છે. રાગાદિ પરભાવો પ્રત્યેની વિમુખતા એ જ રાગાદિને નાશ કરનારું અમોઘ શસ્ત્ર છે. સમ્યગ્દેષ્ટિ જીવને સંસારક્રિયા કરતી વખતે પણ શુભાશુભ ભાવનો નિષેધ કરનારું દર્શન-જ્ઞાન સતત હાજર હોય છે અને તેથી જ તેઓ સર્વ રાગાદિ ભાવોનો ક્ષય કરી પૂર્ણ વીતરાગપદ - મોક્ષપદ પ્રાપ્ત કરી શકે છે.

આમ, મોક્ષપ્રાપ્તિ કરવા ઇચ્છનાર જીવે દ્રવ્યદેષ્ટિનો અભ્યાસ નિરંતર કરવાનો છે. ભૂમિકા પ્રમાણે રાગ થાય તોપણ દેષ્ટે દ્રવ્ય ઉપર રાખવાની છે. વિકારો થાય છતાં પણ દેષ્ટિનું - શ્રદ્ધાનું જોર એક નિજજ્ઞાયકદ્રવ્ય ઉપર જ રાખવાનું છે. શુભાશુભ ભાવ ઊઠે છતાં દરેકે દરેક પ્રસંગ વખતે દેષ્ટિ જ્ઞાયકવસ્તુ ઉપર જ રાખવાની છે. જેમ આકાશમાં ઊડતો પતંગ ગમે ત્યાં જાય પણ દોર હાથમાં રાખવામાં આવે છે, તેમ 'હું ધુવ જ્ઞાયક છું' એ દોર હાથમાં રાખવાનો છે. 'ચૈતન્યમય કાયમી વસ્તુ, ટક્તી વસ્તુ તે હું છું; ત્રિકાળ ટકતું તત્ત્વ, જ્ઞાયકચૈતન્ય તે હું છું' એ દોર હાથમાં રાખવાનો છે. એ દોર લક્ષમાંથી ખસવો જોઈએ નહીં.

જ્યાં કોઈ પરિવર્તન થતું નથી, પણ જે સમસ્ત પરિવર્તનોનું જ્ઞાન કરે છે ત્યાં દિષ્ટિનું સ્થાપન કરવાનું છે. તે અંશનું સદા સ્મરણ રાખવાનું છે કે જે એનો એ જ રહે છે, પરિવર્તનરહિત છે, અવિચળ છે, ધ્રુવ છે, શાશ્વત છે. પોતાના અચળ કેન્દ્રમાં પ્રતિષ્ઠિત થવાનું છે. તે અચળ કેન્દ્ર પ્રત્યે બોધપૂર્ણ બનવાનું છે અને બાહ્યમાં જે થતું હોય તે થવા દેવાનું છે. પરિવર્તનોમાં અટકવાનું નથી કે તેને અચળ બનાવવાની કોશિશ કરવાની નથી. પરિવર્તનને અટકાવવું સંભવિત નથી. પરિવર્તન એ વસ્તુનો સ્વભાવ જ

છે, જીવ તેને અચળ નહીં બનાવી શકે; તેથી પરિવર્તનોને અચળ બનાવવામાં પોતાના સમય અને જીવન-અવસરને ગુમાવવાં ન જોઈએ. માત્ર જાણવું કે તે પરિવર્તનશીલ છે. તેના સાક્ષી બની જવું જોઈએ. અપરિવર્તનશીલ એવા અંતરસ્થ કેન્દ્રની પ્રતીતિ કરવી જોઈએ. કેન્દ્ર સાથે અનુસંધાન કરતાં, તેમાં જ સ્થિર થઈ જતાં તે ભિન્ન વ્યક્તિ બની જાય છે. 'પરિવર્તનની વચ્ચે હું અચળ કેન્દ્ર છું' - આ ભાવ જ મુક્તિદાયી બની જાય છે.

ધર્મ એટલે અનિત્ય વચ્ચે નિત્યની ખોજ, પરિવર્તનની વચ્ચે શાશ્વતની શોધ. જે જીવનું કેન્દ્ર છે, જે સદાસર્વદા એનું એ જ રહે છે, તેનો આવિષ્કાર કરવો એ છે ધર્મ. નિરંતર થઈ રહેલ પરિવર્તનો પ્રત્યે તો જીવ સભાન હોય છે, પરંતુ અપરિવર્તનશીલ શાશ્વત તત્ત્વ પ્રત્યે સજાગતા આવે, તે પ્રત્યે બોધપૂર્ણ રહેવાય ત્યારે જ ધર્મ થયો લેખાય છે.

જીવ જે કોઈ પણ ધર્મક્રિયા કરે, તેનું લક્ષ ધ્રુવ તત્ત્વની સ્મૃતિ હોવું ઘટે છે. જપ-તપાદિ ક્રિયાઓનો હેતુ સ્પષ્ટ થવો જરૂરી છે. જપ-તપાદિ ધર્મક્રિયાઓ જાગૃતિ વધારવા માટે કરવાની છે. સત્ પ્રત્યે જાગૃત થવા અને પરિવર્તનોમાં થતી તન્મયતા તોડવા માટે આ ક્રિયાઓ છે. પોતાની દિવ્ય સત્તા પ્રત્યે તે ક્રિયાઓ જીવને જાગૃત કરે છે. સ્વરૂપબોધ જેટલો તીવ હોય તેટલું ભટકવાનું વિરામ પામે છે અને ત્યારે જીવ સત્યના સંબંધમાં વધારે ને વધારે સજાગ થઈ જાય છે; પરંતુ જ્યારે સ્વરૂપબોધ મંદતાને પામે છે ત્યારે જીવ ભટકવા લાગે છે, તેથી સ્વયં પ્રત્યે બોધપૂર્ણ બનવામાં ઉપયોગી જપ-તપાદિ સાધનો સેવવાં યોગ્ય છે. જેમ ઍલાર્મ ઘડિયાળ જીવને દ્રવ્ય-નિદ્રામાંથી જાગૃત થવામાં સહયોગી થઈ શકે છે, ઘડિયાળની ઘંટડી જીવને નિદ્રામાંથી બહાર આવવામાં મદદરૂપ થઈ શકે છે; તેમ જીવની ભાવનિદ્રાની અવસ્થાનો અંત લાવવા જપ, તપ, શાસ્ત્રવાંચનાદિ ઍલાર્મ ઘડિયાળ સમાન છે. આ સાધનો જીવને જાગૃત થવામાં સહયોગી બને છે.

આમ, જીવે સત્સાધન દ્વારા જાગૃત થવાનું છે, અંતરમાં ઊંડા ઊતરવાનું છે. ઊંડાણમાં જે દ્રવ્યસામાન્ય છે તેનો આશ્રય કરવાનો છે. 'એક સમયની પર્યાયમાં હું હોવા છતાં હું કાંઈ પર્યાયમાત્ર નથી. જ્યાં પર્યાય છે ત્યાં જ ઊંડે - અંદર અનંત જ્ઞાન, અનંત આનંદ એવા પૂર્ણ સ્વભાવના સમૂહથી ભરેલું દ્રવ્યદળ તે હું છું' - આવા વિશ્વાસપૂર્વક આત્મદ્રવ્યને અહણ કરવાનું છે. અનંત શક્તિઓથી પરિપૂર્ણ એવા દ્રવ્યસામાન્યનું વિશ્વાસપૂર્વક અહણ કરવાનું છે. આત્મદ્રવ્યને યથાર્થ વિશ્વાસપૂર્વક અહણ કરવાનું છે. આત્મદ્રવ્યને યથાર્થ વિશ્વાસપૂર્વક અહણ કરવાનું છે. આત્મદ્રવ્યને યથાર્થ વિશ્વાસપૂર્વક અહણ કરવાથી નિર્મળ પર્યાયો પ્રગટે છે. ચૈતન્યતિભયે જઈને એકાગ્રતા સાધતાં કેવળજ્ઞાન પ્રગટ થાય છે.

આમ, ધર્મની યથાર્થ આરાધના દ્વારા જ જીવ મોક્ષ પ્રાપ્ત કરે છે. જીવમાં મોક્ષ પામવાની શક્તિ છે, તેથી જ પોતાના સ્વરૂપની શ્રદ્ધા-એકાગ્રતા કરવાથી મોક્ષદશા પ્રગટે છે. જીવનું સ્વરૂપ કેવું છે તે વિષે શ્રીગુરુ આગળ કહે છે કે –

'તું છો મોક્ષ સ્વરૂપ'

જીવ મોક્ષસ્વરૂપ છે. ધર્મ દ્વારા તે મોક્ષ પામે છે. અત્રે કોઈને પ્રશ્ન થાય કે 'મોક્ષસ્વરૂપ છે' અને 'મોક્ષ પામે છે' એ પરસ્પર વિરુદ્ધ વાત છે. જો વર્તમાનમાં પણ મોક્ષસ્વરૂપ છે જ, તો મોક્ષ પામવાની વાત અસ્થાને છે અને ધર્મ દ્વારા મોક્ષ પામવાનો છે તો અત્યારે મોક્ષસ્વરૂપ 'છે' એમ કઈ રીતે કહી શકાય? આ સમસ્યાનું સમાધાન એક દેષ્ટાંત વડે સરળતાથી થશે.

એક ધનવાન શેઠની પત્ની ગુજરી ગઈ હતી. તેના પાંચ વર્ષના પુત્ર સિવાય તેનું કોઈ કુટુંબીજન હયાત ન હતું. એવામાં શેઠને હૃદયરોગનો હુમલો આવ્યો. તેને થયું કે 'હવે હું કેટલો વખત કાઢું એનો કોઈ ભરોસો નથી. આ કરોડોની મિલકત પુત્ર આ ઉંમરે સંભાળી શકશે નહીં અને જો પુત્રની અણસમજણનો લાભ લઈ એ સંપત્તિને કોઈ આંચકી જશે તો પુત્રનું ભવિષ્ય બગડશે.' આમ વિચારી તેણે સર્વ મિલકત વેચી, તેનાં રોકડ નાણાં પુત્રના નામે બેંકમાં ૨૦ વર્ષની ફિક્સ્ડ ડિપોઝીટમાં મૂકી દીધાં. આ વાતની તેણે કોઈને ખબર ન પડવા દીધી. પોતાના એક મિત્રને આ રહસ્ય જણાવી વચન લીધું કે ૨૦ વર્ષ પછી જ પુત્રને સાચી વિગતથી વાકેફ કરવો.

થોડા વખતમાં શેઠનો દેહાંત થઈ ગયો. ઘરમાં રહેલી વસ્તુઓ વેચી વેચીને પુત્રનું બાળપણ તો વીતી ગયું, પણ જ્યારે બધું ખલાસ થઈ ગયું ત્યારે તેણે રિક્ષા ચલાવવાનું શીખી લીધું. પોતાની રિક્ષા વસાવી શકે એમ તો હતું નહીં, તેથી બીજાની રિક્ષા ભાડે લઈ આવતો. સવારથી સાંજ બજાર અને સ્ટેશન વચ્ચે ૨-૨ રૂપિયાની બૂમ પાડી તેણે ઘરાકી શોધવી પડતી. રાત્રે માલિકને રિક્ષા પાછી આપવા જતો, ભાડું આપ્યા પછી જે બચે તેમાંથી જેમ તેમ પોતાનું ગુજરાન ચલાવતો. આ રિક્ષાવાળો કરોડપતિ છે કે તેણે કરોડપતિ થવાનું છે?

છે અને થવાનું છે! બન્ને જવાબ અપેક્ષાએ સાચા છે. હાલ તેના નામે બેંકમાં કરોડો રૂપિયા પડ્યા છે તેથી તે કરોડપતિ જ છે, પરંતુ આ દશામાં તેને કરોડપતિ મનાય પણ કેમ? કરોડપતિ બોલતાં આંખ સામે કેવું દશ્ય આવે? હૃષ્ટપુષ્ટ શરીર, સુંદર વસ્ત્રોનો ઠાઠમાઠ, આલીશાન બંગલો, નોકરચાકરની જાહોજલાલી, અવનવી ગાડીઓની ઝાકઝમાળ ઇત્યાદિ બધાંનો અહીં તોટો છે! અહીં તો દેખાય છે દૂબળું શરીર અને પરસેવાના રેલા, ફાટેલાં કપડાં અને ઝૂંપડી જેવું નાનું, તૂટ્યુંફૂટ્યું મકાન! તે કરોડપતિ

તો છે જ, છતાં તેણે યોગ્ય વિધિ દ્વારા તે દશા પ્રગટ કરવાની બાકી છે.

તે જ પ્રમાણે જીવ પરમાત્મા છે જ અને તેણે પરમાત્મા થવાનું પણ છે. તેની વર્તમાન દીન-હીન દશામાં તે પોતાને પરમાત્મા તરીકે સ્વીકારી શકતો નથી. 'પરમાત્મા' બોલતાં આંખ સમક્ષ કેવું દશ્ય ખડું થાય છે? આરસપહાણના વિશાળ મંદિરમાં વીતરાગી ભગવાન પદ્માસનમાં બિરાજમાન હોય અને તેમની પૂજા-સ્તવના થતી હોય! જ્ઞાનીપુરુષો સમજાવે છે કે પરમાત્મા બે પ્રકારે છે - એક કાર્ય પરમાત્મા, બીજા કારણ પરમાત્મા. સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રની આરાધના દ્વારા જેમણે પોતાનું પરમાત્મસ્વરૂપ પ્રગટ કર્ય છે તે છે કાર્ય પરમાત્મા. જેમણે પોતાનું પરમાત્મસ્વરૂપ પ્રગટાવ્યું નથી, પણ આવા પરમાત્મા થવાની ક્ષમતા જેઓ ધરાવે છે તે છે કારણ પરમાત્મા. અરિહંત-સિદ્ધ ભગવાન કાર્ય પરમાત્મા છે અને નિજભગવાન કારણ પરમાત્મા છે. તે સર્વ જીવોમાં છે અને દેહદેવળમાં વ્યાપ્ત છે. વળી, બન્ને પરમાત્માને સમાન માની જીવ વ્યવહાર-મઢતામાં સરી ન પડે તે માટે જ્ઞાની ભગવંતો ચેતવે પણ છે કે બન્ને પરમાત્મામાં ભેળસેળ કરશો તો લક્ષ્યસિદ્ધિ થશે નહીં. કાર્ય પરમાત્મા પુજ્ય છે, તેથી તેમનું અષ્ટ પ્રકારે કે અષ્ટ દ્રવ્યથી પૂજન કરવું જોઈએ; તથા કારણ પરમાત્મા ધ્યેય છે, માટે તેમનું એકલક્ષે ધ્યાન કરવું જોઈએ. કાર્ય પરમાત્માનો યથાર્થ આશ્રય ગ્રહતાં વ્યવહાર રત્નત્રય પ્રગટે છે તથા કારણ પરમાત્માનો આશ્રય ગ્રહતાં નિશ્ચય રત્નત્રય પ્રગટે છે. માર્ગનો ક્રમ આમ જ છે અને તેનો યથાર્થ સ્વીકાર કરી, વિધિવત અભ્યાસ કરવાથી જ કાર્યસિદ્ધિ થાય છે.

જેમ રિક્ષાવાળો કરોડપતિ છે, છતાં પણ દુઃખી છે; તેમ સર્વ જીવ મોક્ષસ્વરૂપી પરમાત્મા સમાન છે, છતાં પણ દુઃખપરંપરામાં સબડી રહ્યા છે. તેનું કારણ છે અજ્ઞાન. રિક્ષાવાળાને ખબર નથી કે પોતાના નામે બેંકમાં કરોડો રૂપિયા પડ્યા છે, તેથી તે દુઃખી છે. જો તેને પોતાના કરોડપતિ હોવાની જાણ થાય તો તેનું દુઃખ મટે. તેમ જીવને પોતાના પરમાત્મસ્વરૂપનું ભાન નથી. પોતાના સુખસ્વભાવથી અજાણ હોવાના કારણે ભિખારી થઈને કરે છે અને દુઃખી થાય છે. જો સ્વરૂપનું યથાર્થ જ્ઞાન કરી, તેમાં રમણતા કરે તો અવશ્ય સુખી થાય.

આ ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે 'હોવું' કરતાં 'જાણવું' વિશેષ મહત્ત્વનું છે. માત્ર 'કરોડપતિ હોવું' તે મહત્ત્વનું નથી, 'હું કરોડપતિ છું એમ જાણવું' એ વધુ મહત્ત્વનું છે. રિક્ષાવાળો ગર્ભશ્રીમંત છે, પણ તે પોતાની શ્રીમંતાઈ જાણતો ન હોવાથી દુઃખી છે; તેમ જીવ પરમાત્મસ્વરૂપી છે, પણ તે પોતાનું સ્વરૂપ જાણતો ન હોવાથી દુઃખી છે. તેને પોતાનું પરમાત્મસ્વરૂપ જાણવાની આવશ્યકતા છે. જિનાગમોમાં આના કરતાં પણ વિશેષ સૂક્ષ્મતાથી આ વાત પ્રતિપાદિત કરી છે. ત્યાં જાણવા કરતાં માનવાની અગત્યતા

વધુ દર્શાવી છે. 'હોવું' કરતાં 'જાણવું' તો વધુ મહત્ત્વનું છે જ, પણ 'જાણવું' કરતાં 'માનવું' તેથી પણ વધારે મહત્ત્વનું છે. ખરો મહિમા તો સમ્યગ્દર્શનનો છે. હવે પછીની વાતથી આ તથ્યની પુષ્ટિ થશે.

ફિક્સ ડિપોઝીટનાં વીસ વર્ષ પૂરાં થતાં બેંકવાળા જૂના સરનામે પત્ર મોકલે છે, પણ તે પત્ર પાછો આવતાં તે છાપામાં પિતા-પુત્રનાં નામો છપાવી જાહેરખબર આપે છે કે જો તેઓ દ્વારા એક મહિનાના સમયગાળામાં આ થાપણના નાણાંનો દાવો રજૂ કરવામાં નહીં આવે તો તે રકમ સરકારી તિજોરીમાં જમા કરાવવામાં આવશે. રિક્ષાવાળો આ જાહેરખબર વાંચે છે. તેમાં જણાવેલ નામ સાથે પોતાનું નામ, પિતાનું નામ, અટક વગેરે બધું મળતું આવે છે, તેથી એક ક્ષણ માટે તો તેના મનમાં અત્યંત હર્ષ વ્યાપી જાય છે, પણ વળતી જ પળે પોતાની દરિદ્રદશાનો ખ્યાલ આવતાં હર્ષનું સ્થાન શંકા લે છે કે 'અરે! હું ક્યાં કરોડો રૂપિયા કમાયો છું કે બેંકમાં મારા નામે તે મૂકવાની વાત આવે? આ તો મારા નામ સાથે મળતા નામવાળી કોઈ અન્ય વ્યક્તિના પૈસા હશે!' તે પોતાના મિત્રોને છાપું તો બતાવે છે, પણ મશ્કરીરૂપે કે 'જુઓ, હું કરોડપતિ થઈ ગયો!' આમ, રિક્ષાવાળાએ જાણ્યું પણ ખર્યું કે પોતાના જ નામે બેંકમાં કરોડોની થાપણ છે, પરંતુ એ હકીકત તેણે માની નહીં તો તે દુઃખી જ રહ્યો. કરોડપતિનું સુખ તો ઠીક, તેની ખુમારીથી પણ તે વેગળો જ રહ્યો.

એ રીતે જીવ પણ અકામ નિર્જરા કરતો કરતો મનુષ્યભવ પામે છે અને મહત્પુણ્યના યોગે તેના હાથમાં સત્શાસ્ત્ર આવે છે. શાસ્ત્રમાં તે વાંચે છે કે આત્મા પરમાત્મા જ છે. ત્યારે પ્રથમ તો તેના આનંદની સીમા રહેતી નથી કે 'વાહ! હું પણ પરમાત્મા છું!' પરંતુ તરત જ પોતાની પામર આત્મદશાનો વિચાર આવતાં તે શાસ્ત્રવચનમાં સંશય કરે છે કે 'આ વાત તો મહાન આત્માઓને લાગુ પડે, મારા જેવા અધમને નહીં. આવી દીન-હીન દશાવાળો હું પરમાત્મા કઈ રીતે હોઈ શકું?' તે પોતાના આત્માર્થી મિત્રો સાથે આત્મસ્વરૂપની ચર્ચા કરે છે, સત્સંગમાં બૌદ્ધિક વ્યાયામ પણ આદરે છે, પરંતુ તેના અંતરતમમાં તે એ વાતનો સ્વીકાર કરતો નથી. આમ, જીવ જાણે છે કે પોતાનું સ્વરૂપ અને પરમાત્માનું સ્વરૂપ સરખું જ છે, પરંતુ જ્યાં સુધી તે આ વાતને માનતો નથી, ત્યાં સુધી તેનામાં પરમાત્મસ્વરૂપની ખુમારી આવતી નથી અને તે દુઃખી જ રહે છે.

એક દિવસ રિક્ષાવાળો તેના પિતાના મિત્રને મળે છે. તેઓ તેનામાં વિશ્વાસ પેદા કરે છે કે 'છાપાની જાહેરખબર તારા માટે જ છે, એ કરોડપતિ તું જ છે. તારા પિતાની શરત મુજબ વીસ વર્ષની મુદ્દત સુધી તને પૈસા મળવાના ન હતા, તેથી જો હું તને આ હકીકતની જાણ પહેલાં કરત તો તને પૈસા તો ન મળત, પણ એના ગુમાનમાં તેં રિક્ષા ચલાવવાનું પણ શીખ્યું ન હોત અને એ સંજોગોમાં તારું દુઃખ ઘણું વધી જાત. હવે સમય પાકી ગયો છે. તને પૈસા પણ મળશે અને યોગ્ય વહીવટ દારા તેનો લાભ પણ તું ઉઠાવી શકશે.' રિક્ષાવાળાને પોતાની ગર્ભશ્રીમંતતાનો વિશ્વાસ બેસે છે, પરિણામે તેનું અંતર ઉત્સાહ તથા ખુમારીથી નાચી ઊઠે છે.

એમ જીવનો અનંત પુણ્યરાશિ ફળતાં તેને સદ્ગુરુનો સુયોગ સાંપડે છે. તેઓશ્રી તેને સમજાવે છે કે 'શાસ્ત્રમાં જેનાં ગાણાં ગાયાં છે એ પરમાત્મસ્વરૂપ તારું જ છે. ભલે અત્યારે તું અવસ્થામાં દુઃખી છે, પણ તારો સ્વભાવ તો પૂર્ણ અને શુદ્ધ જ છે. નિજશુદ્ધાત્માની વાત જો તને આ પૂર્વે કરવામાં આવી હોત તો તું સ્વચ્છંદી થઈ વિકારોમાં જ રમત; પરંતુ હવે તારામાં આત્માર્થીપણું પ્રગટ્યું છે; શમ, સંવેગ, નિર્વેદ, આસ્થા અને અનુકંપા તારામાં પ્રગટ્યાં છે; તારી પાત્રતા તૈયાર થઈ છે; તેથી તને કહીએ છીએ કે જે તું શોધી રહ્યો છે તે તારી અંદર જ છે. પરમાત્માનું સર્વ ઐશ્વર્ય તારામાં વિદ્યમાન છે. તેનો ભોગવટો કરીને તું તૃપ્ત થા.' સુપાત્રતાસંપન્ન જીવને સદ્ગુરુના બોધ દ્વારા પોતાના પરમાત્મસ્વરૂપની શ્રદ્ધા જાગે છે. તેના મનમાંથી હકાર ઊઠે છે, અંતરમાંથી ભણકારા વાગે છે કે 'હું આનંદનો રસકંદ છું, જ્ઞાન, દર્શન, વીર્ય આદિ અનંત ગુણોનો પિંડ છું; મારા સ્વભાવમાં કોઈ વિકાર નથી; અહોહો! હું જ પરમાત્મા છું.'; અને તેના આત્મપ્રદેશોમાં ઉલ્લાસ તથા ખુમારી વ્યાપી જાય છે.

પોતે કરોડપતિ છે એવી રિક્ષાવાળાને ખુમારી પ્રગટે છે. ત્યાં તો કોઈ ઘરાક તેની પાસે આવે છે અને તેને સ્ટેશને લઈ જવાનું કહે છે. ઘરાકને ઉતાવળ હતી, વધારે પૈસા આપવાનું કહે છે, છતાં રિક્ષાવાળો ના પાડે છે. 'હવે હું શા માટે રિક્ષા ચલાવું? હું તો કરોડપતિ છું!' ઘરાક આ સાંભળી તેનાં મલિન અને જીર્ણ વસ્ત્રો ઉપર નજર નાખતાં કટાક્ષયુક્ત હાસ્ય કરે છે. પિતાનો મિત્ર તેને સમજાવે છે કે 'હાથમાં નાણાં ન આવે ત્યાં સુધી કરોડપતિ હોવાનું બોલાય નહીં. તું જે હાલતમાં અત્યારે ઊભો છે તે બદલવા માટે કરોડપતિ હોવાની માત્ર જાણ કે ખાતરી પૂરતી નથી, તે માટે તારા કબજામાં અને ભોગવટામાં પૈસાનું હોવું પણ જરૂરનું છે.' કરોડપતિ હોવાની જાણ અને તે અંગેનો વિશ્વાસ તો ક્ષણમાં થઈ શકે, પરંતુ કરોડપતિ જેવાં વેષ, રહેણીકરણી અને માન-મરતબો મેળવવામાં થોડો સમય લાગે.

ભલે પરમાત્મસ્વરૂપનું જ્ઞાન અને શ્રદ્ધાન યથાર્થપણે થઈ ચૂક્યાં હોય, પણ જ્યાં સુધી પરિણામમાં વીતરાગતા ઝળહળે નહીં ત્યાં સુધી કાર્ય સંપન્ન ન થાય. વર્તમાન અશુદ્ધ અને અપૂર્ણ દશા ટાળવા માટે નિજપરમાત્મપદનું માત્ર જ્ઞાન કે તેની શ્રદ્ધા પર્યાપ્ત નથી, તે માટે નિજપદમાં નિરંતર રમણતા જોઈએ. સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યગ્જ્ઞાન હોય પણ જો સમ્યક્ચારિત્રની આરાધના પૂર્ણ ન થઈ હોય તો પરમાત્મસ્વરૂપ પ્રગટતું

નથી, તેથી સમ્યક્ચારિત્રની પણ આવશ્યકતા છે.

રિક્ષાવાળો હવે ખુશ છે, કરોડપતિ હોવાની ખુમારીમાં છે, પોતાની સંપત્તિ મેળવવાની તેને હોંશ છે. જો કે પૈસા માટે બેંકની વિધિ પતાવવાની છે, પણ હવે તે દુઃખી નથી. વચ્ચે કોઈ વિઘ્ન નડે તોપણ તેને વિશ્વાસ રહે છે કે 'હું કરોડપતિ જ છું અને ટૂંક સમયમાં મારું કરોડપતિપણું અવશ્ય પ્રગટ થશે.' તેમ સદ્દ્ગુરુના બોધ દારા સમ્યક્ ધર્મની ઉપલબ્ધિ કરનાર ધન્યાત્માના આત્માનંદની કોઈ અવધિ રહેતી નથી, તેઓ નિજ સ્વરૂપની ખુમારીમાં મસ્ત રહે છે. નિજનિધાન મેળવવાના તેમને કોડ છે, ઉમંગ છે. પૂર્ણ પદની પ્રાપ્તિ માટેની સર્વ વિધિ પાર પાડવાની તેમને ત્વરા છે, પણ અધીરજ નથી, ખેદ નથી, દીનપણું નથી. પૂર્ણ પદની પ્રાપ્તિ આડે કંઈ પણ અંતરાય નડે તોપણ તેમને એ શ્રદ્ધા તો અખંડ રહે છે કે 'હું પરમાત્મા જ છું અને અલ્પ સમયમાં - એક, ત્રણ કે વધુમાં વધુ પંદર ભવમાં તો મારી પર્યાયમાં પૂર્ણ પરમાત્મ-પણું અવશ્ય પ્રગટ થશે.'

ધર્મનો માર્ગ આવો અદ્ભુત છે! સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રની એકતારૂપ મોક્ષ-માર્ગની સૂક્ષ્મતા કેવી વિલક્ષણ છે! દર્શન, જ્ઞાન કે ચારિત્ર - ત્રણમાંથી એક પણ ઓછું હોય તો ન ચાલે. જીવ મોક્ષસ્વરૂપી જ છે, પણ પોતાનું સ્વરૂપ જાણતો ન હોવાથી વર્તમાનમાં તેની અશુદ્ધ અવસ્થા છે. પરસન્મુખતા સેવીને જીવે પર્યાયમાં અશુદ્ધતા ઉત્પન્ન કરી છે. સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપ મોક્ષમાર્ગ વડે આ અશુદ્ધ અવસ્થા ટાળી સ્વભાવરૂપ મોક્ષ-અવસ્થા પ્રગટ કરી શકાય છે. સદ્ગુરુનાં અનન્ય શરણ અને અખંડ આજ્ઞા-આરાધનથી નિજમોક્ષસ્વરૂપને જાણતાં, તેમાં પોતાપણું સ્થાપતાં અને તેમાં લીનતા કરતાં જીવ પર્યાયમાં મોક્ષરૂપ થાય છે.

આત્મામાં મોક્ષસ્વભાવ શક્તિરૂપે અનાદિ-અનંત હોવાથી મોક્ષદશાને જ્ઞાન, શ્રદ્ધા અને એકામતારૂપ પુરુષાર્થ વડે પ્રગટ કરી શકાય છે. ચણામાં સ્વાદ શક્તિરૂપે હોવાથી ચણા શેકાયા પછી તે સ્વાદ પ્રગટ થાય છે. કાચા ચણા મીઠા લાગતા નથી, પણ એ જ ચણા શેકાવાથી મીઠા બને છે. જો અગ્નિ, વાસણ વગેરેમાંથી મીઠાશ ચણામાં પ્રવેશી હોત તો રેતીને શેકવાથી તેનામાં પણ મીઠાશ આવવી જોઈએ. ચણામાં જે મીઠાશ શક્તિરૂપે છે, તે પ્રક્રિયા દ્વારા પ્રગટે છે; તેમ મોક્ષસ્વભાવ શક્તિરૂપે અનાદિ-અનંત છે અને તે રત્નત્રયના પુરુષાર્થ વડે પ્રગટ થાય છે. જીવના દ્રવ્યદળમાં જે શુદ્ધતા શક્તિરૂપે પડી છે, તે શુદ્ધતા ધ્રુવ સ્વભાવનું અવલંબન લેતાં પર્યાયમાં પ્રગટે છે. આમ, મોક્ષસ્વરૂપી આત્માનો આશ્રય કરવો એ જ મોક્ષનો ઉપાય છે. 'તું છો મોક્ષસ્વરૂપ' એ લબ્ધિવાક્ય દ્વારા શ્રીમદે આવા મોક્ષસ્વભાવી આત્મા પ્રત્યે જગતના જીવોનું ધ્યાન ખેંચ્યું છે. આ લબ્ધિવાક્યનું માહાત્મ્ય સમજાવતાં શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે કે —

''તું છો મોક્ષસ્વરૂપ' તે પદમાં 'તું છો' એ શબ્દ ઉપર વજન છે. પોતાનું અનંત સુખ સ્વાધીનપણે છે, તે સુખ શક્તિસ્વરૂપ છે, જીવ સુખનો નિધિ છે, સ્વભાવમાં દુઃખ કે ઉપાધિનો અંશ માત્ર નથી. એ સમજનો સ્વીકાર કર્વે અનંત આનંદને પ્રગટ કરવાનું બળ સાથે જ આવે છે, નિત્ય જ્ઞાનમય વસ્તુ સુખરૂપ જ છે, છતાં વર્તમાન દશામાં પોતાને ભૂલી દુઃખની કલ્પના કરી છે. વિકારી અવસ્થાપણે જીવ ઊંધો પડ્યો છે, તે સવળો થઇ પોતાની સ્વાધીનતાનો સ્વીકાર કરે તો શુદ્ધ થઇ શકે છે. સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રમય સાધકભાવ અને મોક્ષરૂપ સાધ્ય જેમ છે તેમ અહીં બતાવ્યાં છે, કંઇ ગોપવ્યું નથી.'

'અનંત દર્શન જ્ઞાન તું'

જેમ આત્મા મોક્ષસ્વરૂપી છે, તેમ આત્મા સ્વભાવથી જ અનંત દર્શન અને અનંત જ્ઞાનના સામર્થ્યથી સિદ્ધ છે. ત્રિકાળી સ્વભાવની દષ્ટિથી જીવ અનંત દર્શન-જ્ઞાનયુક્ત છે. દરેક જીવ અનંત દર્શન-જ્ઞાનશક્તિ સહિત છે. દર્શન-જ્ઞાનશક્તિઓની પરમ શુદ્ધ પર્યાયો પ્રગટતાં આત્મા સર્વદર્શી અને સર્વજ્ઞ થાય છે.

ઉપયોગ એ જીવનું લક્ષણ છે. વસ્તુને અહણ કરનાર ઉપયોગના બે પ્રકાર છે - દર્શનોપયોગ અને જ્ઞાનોપયોગ. દર્શનોપયોગ તે નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાનોપયોગ તે સાકાર ઉપયોગ છે. દરેક જ્ઞેય વસ્તુનો સામાન્યરૂપે અને વિશેષરૂપે બોધ થાય છે. સામાન્ય એટલે ભેદરહિત બતાવનાર અને વિશેષ એટલે ભેદ પાડીને બતાવનાર. જ્ઞેય વસ્તુનો સામાન્યરૂપે બોધ તે નિરાકાર બોધ છે, જ્યારે વિશેષરૂપે બોધ તે સાકાર બોધ છે. દર્શન એક પદાર્થથી બીજા પદાર્થને જુદા પાડતું નથી, તેથી તેને નિરાકાર ઉપયોગ કહેવાય છે, જ્યારે જ્ઞાન પદાર્થને ભેદયુક્ત જાણે છે, તેથી તેને સાકાર ઉપયોગ કહેવાય છે. દર્શન અભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે અને જ્ઞાન ભેદયુક્ત સ્વરૂપને અહણ કરનાર નિરાકાર ઉપયોગ છે.

દર્શનશક્તિ પોતાના વિષયને સામાન્યપણે અહણ કરે છે, જ્યારે જ્ઞાનશક્તિ પોતાના વિષયને વિશેષપણે અહણ કરે છે. વસ્તુનું જે સામાન્ય અહણ થાય છે તેને દર્શન કહે છે. પદાર્થનો ભેદ કર્યા વિના દર્શન વસ્તુનું અહણ કરે છે. દર્શન પ્રત્યેક પદાર્થને ભેદરૂપથી અહણ ન કરતાં સામાન્યરૂપથી અહણ કરે છે. 'આ અમુક પદાર્થ છે, આ અમુક પદાર્થ છે' ઇત્યાદિરૂપે પદાર્થોની વિશેષતા કર્યા વિના દર્શન પદાર્થોને અહણ કરે છે. આત્માની અનંત દર્શનશક્તિ લોકાલોકને દેખતી હોવા છતાં તે ભેદરહિત સર્વેને માત્ર સત્તારૂપે જ જુએ છે. દર્શન ભેદ વગર સામાન્ય સત્તાનો પ્રતિભાસ કરે છે. જડ કે ચેતન, સિદ્ધ કે સંસારી, ભવ્ય કે અભવ્ય - એવા વિશેષ ભેદો તે દર્શનનો નહીં પણ ૧- શ્રી કાનજીસ્વામી, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચનો', આઠમી આવૃત્તિ, પૃ.૩૭૧-૩૭૨

જ્ઞાનનો વિષય છે. દર્શન તો 'બધું છે' એમ માત્ર સામાન્ય સત્તાને દેખે છે, પરંતુ જગતના બધા પદાર્થો સત્તાપણે સમાન હોવા છતાં તેમનાં સ્વરૂપમાં વિશેષતા છે. કોઈ જીવ છે, કોઈ અજીવ છે; કોઈ સિદ્ધ છે, કોઈ સાધક છે, કોઈ અજ્ઞાની છે; એમ અનંત પ્રકારના જુદા જુદા ભાવો છે; તે બધાને વિશેષપણે જાણે એવી આત્માની જે શક્તિ છે તે અનંત જ્ઞાનશક્તિ છે. આ શક્તિ દૂરના કે નજીકના, વર્તમાનના કે ભૂત-ભવિષ્યના સમસ્ત પદાર્થોને વિશેષપણે જાણે છે.

આત્માની અનંત દર્શન-જ્ઞાનશક્તિઓ પરિપૂર્ણ સામર્થ્યવાન છે. તે શક્તિઓને ક્ષેત્ર કે કાળની કોઈ મર્યાદા નથી. અમુક ક્ષેત્ર સુધી જ જોઈ-જાણી શકાય કે અમુક કાળની હદ સુધી દર્શન-જ્ઞાન થઈ શકે, તેથી આગળનું કે પાછળનું દર્શન-જ્ઞાન ન થઈ શકે એવી મર્યાદા આત્માની શક્તિમાં નથી. લોકાલોકના સર્વ પદાર્થો તેની ત્રણે કાળની પર્યાય સહિત જોઈ-જાણી શકવાની સમર્થતા આ શક્તિઓમાં રહેલી છે. લોકાકાશ અસંખ્ય પ્રદેશી છે, તેનાથી અનંતગણું વિસ્તરેલું અનંતપ્રદેશી અલોકાકાશ છે. દર્શન-જ્ઞાનશક્તિ સમસ્ત લોકાકાશ અને અનંત અલોકાકાશને સંપૂર્ણપણે જોવા-જાણવા સમર્થ છે. સર્વ પદાર્થોની ભૂત-વર્તમાન-ભવિષ્ય કાળની પર્યાયોને યુગપદ્ જોવા-જાણવાનું અસીમ સામર્થ્ય દર્શન-જ્ઞાનશક્તિમાં છે.

લોકમાં અનંત જીવો છે. પ્રત્યેક જીવમાં અનંત ગુણો છે. તે પ્રત્યેક ગુણની દરેક સમયે એક પર્યાય ઉત્પન્ન થાય છે અને લય પામે છે. પ્રત્યેક જીવના અનંત ગુણો હોવાથી અને પ્રત્યેક ગુણની પર્યાય પ્રત્યેક સમયે પ્રગટતી હોવાથી પ્રત્યેક જીવની અનંત પર્યાયો દરેક સમયે પ્રગટે છે. એવા અનંત જીવોને, તેમના અનંત ગુણોને અને તેની ત્રણે કાળની સર્વ પર્યાયોને એક સમયમાં જોવા-જાણવાની શક્તિ દરેક આત્મામાં છે.

દરેકે દરેક આત્મામાં આવું મહાન સામર્થ્ય ભરેલું છે. સૂક્ષ્મ નિગોદનું શરીર અત્યંત નાનું હોય છે. એટલું નાનું કે સોયના અત્ર ભાગ ઉપર નિગોદનાં અસંખ્ય શરીર રહી જાય. એવા સૂક્ષ્મ શરીરમાં અનંતાનંત જીવો એકસાથે રહેલા હોય છે. તે જીવોના પ્રદેશો સંકોચાઈ જઈને અત્યંત નાના ક્ષેત્રમાં રહી જાય છે, છતાં તેના સ્વભાવનું સામર્થ્ય કાંઈ ઓછું થતું નથી. એ દરેક આત્મા સ્વભાવથી તો સંપૂર્ણ સામર્થ્યવાન છે. માત્ર તે સામર્થ્ય પર્યાયમાં વ્યક્ત નથી. દર્શન-જ્ઞાનશક્તિનું સામર્થ્ય તો અચિંત્ય, અપરિમિત અને અમર્યાદિત છે. દર્શન-જ્ઞાનશક્તિનું કેવું માહાત્મ્ય! આત્મામાં કેવી કેવી શક્તિઓ રહેલી છે! આત્માના ગુણોનો કેવો અચિંત્ય વૈભવ! આવી ચૈતન્યસંપદાને લક્ષમાં લે તો સંસારની સંપદા જેવી કે લક્ષ્મી, સત્તા, અધિકાર, રાજ્યપદ કે ચક્રવર્તીની લક્ષમાં લે તો સંસારની સંપદા જેવી કે લક્ષ્મી, સત્તા, અધિકાર, રાજ્યપદ કે ચક્રવર્તીની

સંપદા - એ બધું તુચ્છ ભાસવા લાગે છે. જગતના સર્વે પદાર્થો આત્માની સંપદા આગળ નિર્મૂલ્ય ભાસે છે.

દર્શન-જ્ઞાનશક્તિ દ્રવ્યદળમાં પરમશુદ્ધરૂપે જ સ્થિત છે અને ત્રિકાળી ધ્રુવ છે. તે પરમ પારિણામિક ભાવે રહેલી છે તથા ત્રણે કાળ ઉપાધિરહિત છે. તે શક્તિમાંથી જ સર્વને જોનાર-જાણનાર એવો કેવળદર્શનોપયોગ અને કેવળજ્ઞાનોપયોગ પર્યાયમાં પ્રગટે છે. દર્શન-જ્ઞાનશક્તિની પરમ શુદ્ધ પર્યાય પ્રગટતાં આત્મા સર્વદર્શી-સર્વજ્ઞ થાય છે. દર્શન-જ્ઞાનશક્તિ જ સંપૂર્ણપણે પરિણમીને સર્વદર્શીપણું-સર્વજ્ઞપણું થાય એવો તેનો સ્વભાવ છે. અનંત દર્શન-જ્ઞાનશક્તિને સંપૂર્ણપણે પ્રગટાવવાનું સામર્થ્ય આત્મામાં પડેલું જ છે. જો તેનો મહિમા અંતરમાં વસે તો પર્યાયમાં અનંત દર્શન-જ્ઞાન પ્રગટે.

અનંત દર્શન-જ્ઞાનશક્તિ આત્મદર્શન-જ્ઞાનમયી છે, એટલે કે આત્માને જોતાં- જાણતાં તેમાં ત્રણ કાળ અને ત્રણ લોક જોવાઈ-જણાઈ જાય એવી અનંત દર્શન- જ્ઞાનશક્તિ છે. લોકાલોકને જોવા-જાણવા માટે લોકાલોકની સન્મુખ થવું નથી પડતું, પણ અત્મસન્મુખ રહીને આત્માને જોતાં-જાણતાં લોકાલોકને જોઈ-જાણી શકે એવી આત્માની તાકાત છે. સામે લોકાલોક છે માટે અહીં સર્વદર્શીપણું-સર્વજ્ઞપણું છે એમ નથી. લોકાલોકના કારણે કંઈ સર્વદર્શીપણું-સર્વજ્ઞપણું નથી. લોકાલોકના કારણે કંઈ આત્માનું સર્વદર્શીપણું-સર્વજ્ઞપણું ખીલતું નથી. જો લોકાલોકથી તે ખીલતું હોય તો લોકાલોક તો અનાદિથી છે, તેથી સર્વદર્શીપણું-સર્વજ્ઞપણું પણ અનાદિથી ખીલવું જોઈએ. આત્માના અવલંબને સર્વદર્શીપણું-સર્વજ્ઞપણું ખીલે છે, માટે લોકાલોકને જોવા-જાણવા છતાં અનંત દર્શન-જ્ઞાનશક્તિ તો આત્મદર્શન-જ્ઞાનમયી જ છે. જે અનંત દર્શન-જ્ઞાન-યુક્ત નિજાત્માને જુએ-જાણે છે તે સમસ્ત વિશ્વને પણ જોઈ-જાણી લે છે. સ્વને જોતાં-જાણતાં જ પરને જોઈ-જાણી લે છે.

અનંત દર્શન-જ્ઞાનશક્તિ પરના કારણે પરિણમતી નથી, પરપદાર્થના આશ્રયે તે પ્રગટતી નથી, પણ આત્માના આશ્રયે જ પરિણમે છે. અનંત કાળ પર સામે જોયા કરે તોપણ ત્યાંથી સર્વદર્શિતા-સર્વજ્ઞતા ન પ્રગટે, પણ નિજસ્વભાવ સામે જોઈને તેમાં સ્થિર થતાં ક્ષણવારમાં સર્વદર્શિતા-સર્વજ્ઞતા પ્રગટી જાય છે. આત્માનું સર્વદર્શીપણું-સર્વજ્ઞપણું કોઈ નિમિત્તનું અવલંબન લેવાથી વિકાસ પામતું નથી. કોઈ નિમિત્તના કારણે તે દર્શન-જ્ઞાનસામર્થ્ય ખીલતું નથી. જો નિમિત્તના કારણે ખીલતું હોય તો અનંત દર્શન-જ્ઞાનશક્તિ નિમિત્તમયી થઈ જાય, તે આત્મજ્ઞાનમયી ન રહે. તે શક્તિ કોઈ નિમિત્ત વડે કે નિમિત્તની સન્મુખતાથી વિકાસ પામતી નથી, તેનો વિકાસ સ્વરૂપસન્મુખતાથી જ થાય છે. અનંત દર્શન-જ્ઞાનસામર્થ્ય જેનામાં ત્રિકાળ પડ્યું છે એવા અભેદ પરિપૂર્ણ દ્વયના લક્ષે જ સર્વદર્શી-સર્વજ્ઞપણાનો પરિપૂર્ણ વિકાસ થાય છે. કોઈ નિમિત્તમાં કે

રાગમાં એવી તાકાત નથી કે સર્વદર્શિતા-સર્વજ્ઞતા આપે. તે આપવાની તાકાત માત્ર ત્રિકાળી દ્રવ્યમાં જ છે, માટે દ્રવ્યનો આશ્રય કરીને પરિણમવું તે જ સર્વદર્શી-સર્વજ્ઞ થવાનો ઉપાય છે.

પોતાને સર્વદર્શીષણું-સર્વજ્ઞપણું પ્રગટ્યા પહેલાં 'મારો આત્મા ત્રણે કાળે સર્વદર્શિતાપણે-સર્વજ્ઞતાપણે પરિણમવાની તાકાતવાળો છે' એમ જેણે સ્વસન્મુખ થઈને નક્કી કર્યું તે જીવ અલ્પદર્શિતા કે અલ્પજ્ઞતાને, રાગને કે પરને પોતાનું સ્વરૂપ નથી માનતો. અલ્પદર્શી-અલ્પજ્ઞ પર્યાય વખતે પણ સર્વદર્શીત્વ-સર્વજ્ઞત્વશક્તિ હોવાનો જેણે નિર્ણય કર્યો તેની રુચિનું બળ અલ્પદર્શી-અલ્પજ્ઞ પર્યાય ઉપરથી ખસીને અખંડ સ્વભાવ-સન્મુખ થઈ જાય છે. ત્રિકાળી સ્વભાવના આશ્રયે સર્વદર્શિતા-સર્વજ્ઞતાની પ્રતીતિ થાય છે. પ્રતીતિ કરનાર તો પર્યાય છે, પણ તેણે દ્રવ્યનો આશ્રય લીધો છે. દ્રવ્યના આશ્રયે સર્વદર્શિતા-સર્વજ્ઞતારૂપે પરિણમન થયા વગર રહે જ નહીં.

શુદ્ધાત્મામાં જ્યારે જોવા-જાણવાની અનંત શક્તિ પ્રગટ થાય છે ત્યારે કોઈની સહાય વિના તે ત્રિલોક અને ત્રિકાળના સમસ્ત પદાર્થો અને તેની અનંત પર્યાયો એકસાથે જુએ-જાણે છે, પરંતુ વર્તમાનની તેની અશુદ્ધ અવસ્થામાં તેની શક્તિ એટલી બધી ઘટી ગઈ છે કે નેત્રાદિ ઇન્દ્રિયોની મદદથી તથા પ્રકાશાદિ બહારનાં સાધનોની સહાયતાથી તે માત્ર અમુક જ દેષ્ટ પદાર્થોને જોઈ-જાણી શકે છે. જીવનું દર્શન-જ્ઞાન ઇન્દ્રિયોને આધીન છે. આ દોષ - અપરાધ જીવનો પોતાનો જ છે, કારણ કે તેણે પોતાની શક્તિનો ઉપયોગ યોગ્ય જગ્યાએ કર્યો નથી. ખોટી જગ્યાએ તે શક્તિને વાપરવી તે દર્શન-જ્ઞાનનો દુરુપયોગ છે, જેના ફળરૂપે કર્મ-આસવમાં વધારો થાય છે અને દર્શન-જ્ઞાનમાં ઊણપ આવે છે. જીવે પોતાની શક્તિનો દુરુપયોગ કર્યો હોવાથી તેની જોવા-જાણવાની શક્તિમાં ઊણપ આવી છે. તેણે તે શક્તિને સ્વસ્વભાવમાં -સ્વમાં ન લગાવતાં કર્મમાં અને કર્મફળમાં - રાગાદિ ભાવ તથા શરીરાદિ ષદાર્થોમાં લગાવી છે. જો આત્મસ્વરૂપને જોવા-જાણવા અર્થે એ શક્તિનો સદુપયોગ થાય તો તે વધતી વધતી ઉત્કૃષ્ટ કક્ષાએ પહોંચે. તે પોતાની જોવા-જાણવાની શક્તિને પોતાના જ્ઞાતાસ્વભાવમાં લગાવે તો તે જ શક્તિ વધતાં વધતાં ચરમોત્કર્ષ ઉપર પહોંચીને કેવળદર્શન-કેવળજ્ઞાન બને છે. પરંતુ ખેદની વાત છે કે જીવ પોતાની બધી શક્તિ વિષયો અને કષાયોમાં લગાવી રહ્યો છે અને પરિણામે તેની જ્ઞાતા-દ્રષ્ટારૂપ અનુપમ શક્તિ હ્રાસ પામી રહી છે. આ દુરુપયોગ જેમ જેમ વધતો જાય છે, તેમ તેમ તે ઘટતી ઘટતી તેના છેલ્લા અંશ સુધી પહોંચી જાય છે અને તે અક્ષરના અનંતમા ભાગપ્રમાણ જ રહે છે.

સ્વને જોવું-જાણવું તે જ આત્માની દર્શન-જ્ઞાનશક્તિનો સદુપયોગ છે, પરંતુ સ્વના લક્ષ વિના પરપદાર્થને જોવા-જાણવામાં તે શક્તિનો વ્યય થાય છે. સ્વપ્રકાશકપણા વિના પરપ્રકાશકપણાની કોઈ કિંમત નથી. પુત્ર જો પાડોશીને ત્યાં જ સવાર-સાંજ જમે તો અંતે એ પાડોશીનો જ થઈ જશે. સ્વગૃહ કરતાં ખાડોશીના ઘરની બાબત જ એને વધુ સ્પર્શવા માંડશે. તેમ દર્શન-જ્ઞાન જો હંમેશાં પરને જ જોતાં-જાણતાં રહેશે તો સ્વને જોવા-જાણવાની જીવને ક્યારે પણ ઇચ્છા જ નહીં થાય. તેથી પરનો અપરિચય કેળવી, અંતર્મુખ થઈ, સ્વાધીન અતીન્દ્રિય સ્વભાવ તરફનું પ્રયાણ શરૂ કરી દેવું જોઈએ. શક્તિના વપરાશ માટેની સાચી અને ખરી જગ્યા જીવનો પોતાનો સ્વભાવ જ છે. કદાચ અનભ્યાસના કારણે જીવ તેમાં શક્તિ ન લગાવી શકે તો જે સાધનો વડે પોતાના સ્વભાવની પુષ્ટિ થતી હોય તેમાં તેને લગાવવી જોઈએ. દર્શન-જ્ઞાનશક્તિને સ્વભાવલક્ષી બનાવતાં તેનો વિકાસ થાય છે અને વિકારોનો ભારે હ્રાસ થાય છે. આ બન્ને ક્રિયા એકસાથે થાય છે. જ્યારે વિકારોનો સંપૂર્ણ અભાવ થાય છે ત્યારે વિકાસ પામતી દર્શન-જ્ઞાનશક્તિ પૂર્ણતા તરફ ધસે છે અને મોક્ષપદની પ્રાપ્તિ થાય છે.

પોતાના અખંડ, અવિનશ્વર, શુદ્ધ સ્વભાવનું અવલંબન જ અનંત દર્શન-જ્ઞાન-શક્તિના અનાદિકાલીન મોક્ષબાધક પ્રવર્તનને અટકાવી દઈ તેને મોક્ષસાધક પ્રવર્તનમાં ગતિમાન કરવાનો ઉપાય છે. જીવ પોતાનું સ્વરૂપ સમજીને પોતાના અવિનશ્વર, શુદ્ધ પારિજ્ઞામિક ભાવનો આશ્રય કરે ત્યારે શુદ્ધ પર્યાય પ્રગટે છે. જ્યારે જીવ ત્રિકાળી, ધ્રવરૂપ, અખંડ, એક, શુદ્ધ પારિણામિક ભાવ તરફ પોતાનું વલણ-લક્ષ સ્થિર ત્યારે સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે. વર્તમાન પર્યાયને આત્મસ્વભાવની સન્મુખ વાળતાં, પરમ પારિણામિક ભાવને લક્ષમાં લેતાં અને તેમાં એકાગ્રતા કરતાં સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થાય છે અને મોક્ષમાર્ગ ખૂલી જાય છે. સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થાય છે ત્યારે ચોથા ગુણ-સ્થાનકથી આરંભીને બારમા ગુણસ્થાનક સુધી જીવની શક્તિ સાધકભાવે પ્રવૃત્તિ કરે છે. સાધકભાવને પ્રાપ્ત થયેલ જીવની શક્તિ કર્મશત્રુને વિદારણ કરવામાં સંપૂર્ણ સમર્થ હોય છે. ક્રમશઃ તે શક્તિઓની પૂર્ણતા થતાં જીવ શુદ્ધ પારિણામિક ભાવે પરિણમે છે. મોક્ષમાર્ગમાં ચાલતાં, અર્થાત્ દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રની સમ્યક્ પ્રકારે ઉત્કૃષ્ટ આરાધના કરતાં અનંત દર્શનશક્તિ તથા અનંત જ્ઞાનશક્તિ સહિત આત્માની અનંત શક્તિઓ શુદ્ધ સ્વરૂપે પર્યાયમાં વ્યક્ત થાય છે. અનંત દર્શનશક્તિ અને અનંત જ્ઞાનશક્તિ પર્યાયમાં પ્રગટ થતાં જ જીવ સર્વદર્શી-સર્વજ્ઞ થાય છે. આત્માની આ બે શક્તિ સંપર્ણપણે ખીલી ઊઠતાં જીવ સમસ્ત લોકાલોકને જુએ-જાણે છે અને ત્યારે તે પર સાથે તન્મય થઈને પરને નથી જાણતો, પણ સ્વમાં તન્મય રહીને પરને જાણે છે. આદમાની શક્તિઓનં આવું અચિત્ય સામર્થ્ય છે. જે આવી શક્તિઓનું જ્ઞાન કરે છે, શક્તિના ધારક આત્માને દિષ્ટિમાં લે છે, તેની ભાવના ભાવે છે, તેનું મોક્ષરૂપી નિર્મળ કાર્ય અવશ્ય પ્રગટે છે.

'અવ્યાબાધ સ્વરૂપ'

જીવનું મૂળ સ્વરૂપ અવ્યાબાધ છે, અર્થાત્ કોઈ તેને બાધા પહોંચાડી શકે નહીં એવા સામર્થ્યથી સ્વતઃસિદ્ધ છે. જ્યાં સુધી તેનું સ્વરૂપ પૂર્ણતઃ પ્રગટ થયું નથી ત્યાં સુધી તેનામાં બાધ્ય-બાધકભાવ પડ્યો છે, પણ સ્વભાવથી તો તે અવ્યાબાધ સ્વરૂપ જ છે.

જીવ જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપી છે. તેનામાં બાહ્ય પદાર્થોનો પ્રવેશ નથી અને તે અન્ય દ્રવ્યોમાં પ્રવેશી શકતો નથી. કોઈ અન્ય દ્રવ્ય તેને બાધા પહોંચાડી શકે એમ નથી. આત્મા અને વિશ્વનાં તમામ દ્રવ્યો વચ્ચે જાશે એક વજમય દીવાલ છે, તેથી આત્મદ્રવ્યની દ્રવ્યતા કાયમ રહે છે. આત્મદ્રવ્ય બીજા દ્રવ્યરૂપે નથી પરિશમતું. એક ગુણ બીજા ગુણરૂપે નથી પરિશમતો. આત્મદ્રવ્યનું દ્રવ્યપશું તથા ગુણપશું જેવા પ્રકારે હોય છે, તેવા જ પ્રકારે કાયમ ટકીને પરિશમે છે. આત્મદ્રવ્યના અનંત ગુણ વિખરાઈને જુદા જુદા નથી થઈ જતા. આત્માના અનંત ગુણો સ્વદ્રવ્યને છોડીને, પોતાના ક્ષેત્રને છોડીને અન્ય ક્ષેત્રમાં જતા નથી. દ્રવ્યદળમાં જેટલી શક્તિ છે તે બહાર જતી નથી, પરંતુ પોતાની મર્યાદામાં જ રહે છે. ગુણના પરિશમનમાં અધિકતા કે હીનતા થાય છે, પરંતુ ગુણમાં વધ-ઘટ થતી નથી. સિદ્ધદશામાં ગુણો વધી જતા નથી કે નિગોદમાં ગુણો ઘટી જતા નથી. બન્ને દશામાં જે ફરક છે તે માત્ર પર્યાયનો છે, કાંઈ ગુણો વધ-ઘટ થતા નથી.

જ્ઞાયકસ્વભાવી નિજાત્મદ્રવ્ય સ્વથી અસ્તિરૂપ અને પરથી નાસ્તિરૂપ છે. તે બીજા અનંત પરપદાર્થેથી ભિન્ન છે, તેથી કોઈ પરપદાર્થ જીવને લાભ-નુકસાન કરી શકતો નથી. બાહ્ય પદાર્થો જીવમાં કોઈ કાર્ય બજાવી શકતા નથી. દેહમાં વ્યાધિ થાય કે પ્રતિકૂળ લાગતું કોઈ પરિવર્તન તેની અવસ્થામાં થાય, ત્યારે પણ દેહનું પરિણમન આત્માના સ્વરૂપ ઉપર પ્રભાવ પાડી શકતું નથી. દેહ અચેતન છે, પરજ્ઞેય છે. દેહના પરિણમનથી આત્મા સર્વથા ભિન્ન અને સ્વતંત્ર છે. દેહમાં વેદના આવે તો આત્મ-સ્વરૂપને હાનિ પહોંચતી નથી. દેહત્યાગનો પ્રસંગ બને તોપણ પોતાના શાશ્વત, અવ્યાબાધ સ્વરૂપમાંથી કાંઈ જ જતું નથી. તે વખતે પણ પોતે જ્ઞાયકપણે અખંડ સ્વરૂપે વિદ્યમાન જ રહે છે. પુદ્રગલ પુદ્રગલમાં અને જીવ જીવમાં રહે છે. પ્રત્યેક દ્રવ્યનાં પરિણમનનો પ્રભાવ તે દ્રવ્ય પૂરતો જ સીમિત રહે છે. પ્રત્યેક ચેતન-અચેતન પદાર્થનું પરિણમન પોતપોતાની યોગ્યતા અનુસાર સ્વતંત્રપણે થાય છે. જીવ પોતામાં પોતાની યોગ્યતાથી પરિણમન કરે છે. જીવનો પુરુષાર્થ સ્વતંત્ર છે.

કોઈ કોઈના પરિણમનમાં સાધક કે બાધક થઈ શકતું જ નથી. કોઈ એક વસ્તુ બીજી વસ્તુમાં હસ્તક્ષેપ કરી શકે અથવા બીજી વસ્તુ તે વસ્તુના પરિણમનમાં હસ્તક્ષેપ કરી શકે - એવી રીતે વસ્તુના હસ્તક્ષેપ કરવાના સામર્થ્યને જો સ્વીકારવામાં આવે તો વસ્તુવ્યવસ્થાની અખંડિતતા સમાપ્ત થઈ જાય. વસ્તુવ્યવસ્થા તો એમ છે કે દરેક વસ્તુ પોતાના સ્વભાવ અનુસાર નિરંતર નિર્બાધરૂપથી પરિણમન કરતી જ રહે છે. આ જ દરેક વસ્તુની વ્યવસ્થા છે, સ્વતંત્રતા છે.

જીવ જગતનાં સર્વ દ્રવ્યોથી ભિન્ન છે, સ્વતંત્ર છે, પૂર્ણ છે. તે પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપમાં અનંત જ્ઞાનરૂપ છે, પરંતુ શુદ્ધ સ્વરૂપ જ્યાં સુધી ન પ્રગટે ત્યાં સુધી અવસ્થામાં તે અશુદ્ધ અને અલ્પજ્ઞ છે. તે કર્મોને વશ થઈ, વિકાર ઉત્પન્ન કરી. અશુદ્ધતારૂપે તથા અલ્પજ્ઞતારૂપે પરિણમે છે ત્યારે વ્યવહારથી જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોએ જીવના અનંત જ્ઞાનના પરિણમનની શક્તિમાં બાધા પહોંચાડી એમ કહેવાય છે. શાસ્ત્રમાં નિમિત્ત-નૈમિત્તિક સંબંધ દર્શાવવા માટે જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મ તથા આત્માના વિકારી ભાવો વચ્ચે બાધક-બાધ્યભાવ સમજાવવામાં આવ્યો છે. પરંતુ નિશ્ચયથી પ્રત્યેક દ્રવ્યની પ્રત્યેક પર્યાય પોતપોતામાં જ વર્તે છે, તેથી આત્મા અને પુદ્ગલ - ભલે તે શુદ્ધ દશામાં હોય કે અશુદ્ધ દશામાં - પોતે સ્વતંત્ર રીતે જ પરિણમન કરે છે. અન્યની અપેક્ષા રાખતાં નથી. જીવ પોતે સ્વતંત્રપણે જ પરિણમે છે, અન્ય કોઈ દ્રવ્યની અપેક્ષા રાખતો નથી. તે જ પ્રમાણે દ્રવ્યકર્મ પોતે જ સ્વતંત્રપણે પરિણમે છે. અન્ય કોઈ દ્રવ્યની અપેક્ષા રાખતું નથી. બન્ને એકબીજાથી તદ્દન ભિન્ન અને નિરપેક્ષ છે. માટે નિશ્વયથી જીવનો કર્તા કર્મ નથી અને કર્મનો કર્તા જીવ નથી. બે વચ્ચે કર્તા-કર્મ સંબંધ નથી. માત્ર નિમિત્ત-નૈમિત્તિક સંબંધ છે. કર્તા-કર્મ બે ભિન્ન ભિન્ન દ્રવ્યોમાં સંભવી શકે નહીં. આત્મા પોતે સ્વરૂપભાંતિવશ વિભાવભાવમાં જોડાય છે અને કાર્મણ વર્ગણાનાં પુદ્દગલ પણ પોતાની સ્વતંત્ર શક્તિથી પરિણમે છે.

જીવની અશુદ્ધ અવસ્થામાં વ્યવહારથી બાધ્ય-બાધક ભાવ છે, પણ તેની અશુદ્ધ અવસ્થા વખતે પણ સ્વભાવમાં જરા પણ અશુદ્ધિ, મલિનતા, વિકૃતિ નથી હોતી. અનેક વાર કર્મોનું આક્રમણ થાય, અનેક વાર કર્મનાં પુદ્દગલોની પ્રક્રિયાઓનું પુનરાવર્તન થાય, તોપણ નથી આત્મસ્વભાવને વિકૃત કરી શકાતો કે નથી શક્તિહીન કરી શકાતો. કર્મના પ્રભાવના ઘોર અંધકાર વચ્ચે પણ જીવના સ્વતંત્ર અસ્તિત્વને, અનંત શક્તિવાળા ચૈતન્યસ્વભાવને લેશ પણ હાનિ પહોંચી શકતી નથી. પરમાં વર્તવાથી અવરાયો હોવા છતાં અનાદિથી અખંડસ્વરૂપી, ચિદાનંદઘન યથાવત્ જ રહ્યો છે. સ્વરૂપ અવ્યાબાધ જ છે. કર્મઘટામાં આત્મસૂર્ય છુપાઈ ગયો છે, પણ આત્મસૂર્યનો પ્રકાશ કર્મઘટાથી જરા પણ હણાયો નથી. ગમે તેટલું એ કર્મઘટાનું જોર વધી જાય તોપણ તે આત્મસૂર્યને હણી શકે નહીં. ચેતનને અચેતન કરી શકે નહીં. આ તેનું અવ્યાબાધ સ્વરૂપ સિદ્ધ કરે છે.

અનાદિથી પરનો સંયોગ થયો હોવા છતાં પણ આત્મા જેવો ને તેવો છે. પરના કારણે ગુપ્ત થયો છે, તોપણ તેનો જોવાનો સ્વભાવ ગયો નથી, જ્ઞાનભાવ ગયો નથી. જેમ એક રત્ન ઉપર રેશમી કપડું લપેટવામાં આવે, તેને દોરાથી બાંધી એક નાની

ડબ્બીમાં મૂકવામાં આવે, ડબ્બી નાની પેટીમાં મૂકવામાં આવે, નાની પેટી તિજોરીમાં મૂકવામાં આવે, તિજોરી કબાટમાં મૂકવામાં આવે, કબાટને તાળું મારવામાં આવે, કબાટ ઓરડામાં મુકવામાં આવે, ઓરડો બંધ કરવામાં આવે, ઘરને તાળં મારવામાં આવે -રત્ન ઉપર આટઆટલાં આવરણો આવે છતાં રત્ન જ્યાં છે ત્યાં, જેમ છે તેમ જ છે. નથી તેમાં ઘટાડો થતો કે નથી તેમાં ફેરફાર થતો. ગમે તેટલા લાંબા સમય સધી રત્નને આ રીતે રાખવામાં આવે તોપણ રત્ન બગડતું જ નથી. આવરણમાં રહેલું રત્ન ગુપ્ત છે, આવરણ દૂર કરવામાં આવે તો તે વ્યક્ત થાય છે. આવરણના કારણે રત્નમાં કોઈ પણ જાતનો ફેરફાર થતો નથી. ફરક એટલો જ છે કે જ્યાં સધી રત્ન ઉપર આવરણો છે ત્યાં સુધી તે ગુપ્ત છે અને તે આવરણો દૂર થતાં તે પ્રગટ થાય છે. તેમ આત્મા અનાદિથી કર્મથી આવરાયેલો છે, છુપાયેલો છે, તોપણ તેનું કાંઈ બગડ્યું નથી. કર્મના સંગથી આત્માના સ્વરૂપમાં કોઈ ફેરફાર થતો નથી. કર્મ સહિત હોવાથી તે ગુપ્ત છે, કર્મરહિત થતાં તે પ્રગટ થાય છે. 'ગુપ્ત અને પ્રગટ' માત્ર અવસ્થાભેદ છે. એ બન્ને અવસ્થામાં આત્મસ્વરૂપ તો જેવું ને તેવું જ છે. કર્મની સાથે આત્મા જોડાયેલો હતો ત્યારે તે અશુદ્ધ હતો અને કર્મથી મુક્ત થતાં તે શુદ્ધ થયો એમ નથી. બંધનમાં કે મુક્તિમાં આત્મા જેવો છે તેવો અસંગ, અબદ્ધ, મુક્ત, શુદ્ધ જ રહે છે. મુક્ત થતા<mark>ં</mark> આત્મા સત્તાગત જેવો છે તેવો જ પર્યાયમાં પ્રગટ થાય છે. પરથી અવરાયેલો હોય ત્યારે પણ આત્મા શુદ્ધ જ છે, પરિપૂર્ણ જ છે, અવ્યાબાધ જ છે એવો શ્રદ્ધાભાવ એ જ અનંત સુખનું મૂળ છે.

સાધક જાણે છે કે પોતાનું સ્વરૂપ અવ્યાબાધ છે, ત્રિકાળી પરિપૂર્ણ છે, તે સ્વરૂપમાં પરવસ્તુનો પ્રવેશ નથી. તેથી તે ભય પામતો નથી અને ચિત્તને સ્વસન્મુખ કરે છે. પોતાની સ્વતંત્રતાની આસ્થા કરી તે પર સાથેનો સંબંધ તોડવાનો અને આત્મ-સ્વભાવ સાથે એકતા કરવાનો પુરુષાર્થ કરે છે. ત્રિકાળી શુદ્ધ સ્વરૂપ પ્રત્યે દષ્ટિને સ્થિર કરે છે. તે એમ ભાવે છે કે 'હું અબાધક છું. કોઈ મને બાધા પહોંચાડી શકે એમ છે જ નહીં. કર્મનું બંધન કે રાગાદિ બાધકભાવ મારા શુદ્ધ સ્વરૂપમાં નથી. કર્મ અને કર્મનું ફળ મારા ચૈતન્યસ્વભાવમાં છે જ નહીં. ચૈતન્યસ્વભાવમાં માત્ર આનંદમય જ્ઞાન-ર્યતના છે. કર્મચેતના તથા કર્મફળયેતના - એ બન્નેથી ભિન્ન એવો હું જ્ઞાનચેતનારૂપ અબાધ્ય છું, શરીર અને મોહકલંકથી રહિત ચૈતન્યપિંડ છું. ચૈતન્યભાંડાર જ્ઞાન-દર્શન-સ્વરૂપ, નિર્મળ ઐશ્વર્યવાન, ઉત્તમ સુગુણોનો ખજાનો છું.' આવા અનંત ગુણોથી ભરપૂર સ્વભાવનો અત્યંત મહિમા લાવી, તે પ્રગટ કરવાના અત્યંત પુરુષાર્થથી શ્રદ્ધાન્ય જુઓ : પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ દ, કડી ૧૦

^{&#}x27;મૈં સાધ્ય સાધક મૈં અબાધક, કર્મ અટુ તસુ ફલનિતેં; ચિત્પિંડ ચંડ અખંડ સુગુણકરંડ ચ્યુત પુનિ કલનિતેં.'

જ્ઞાન-વીર્ય તેમાં જ એકાએ થતાં વિકલ્પો વિલીન થઈ જાય છે અને નિર્વિકલ્પ આત્મસ્થિરતા પ્રગટે છે, સ્વરૂપાચરણ ચારિત્ર પ્રગટે છે. નિર્વિકલ્પ અનુભૂતિમાં અનંત ગુણોના રસનો સ્વાદ આવે છે, મહા આનંદનું વેદન થાય છે.

મોક્ષસ્વરૂપી, અનંત દર્શન-જ્ઞાનયુક્ત, અવ્યાબાધસ્વરૂપી એવા આત્માના આશ્રયે જ વીતરાગી ધર્મ પ્રગટે છે, એના આશ્રયે જ ધર્મ વધે છે અને એના આશ્રયે જ ધર્મ પૂર્ણતા પામે છે. આત્માની સમ્યક્ શ્રદ્ધા, જ્ઞાન અને તેમાં લીનતારૂપ વીતરાગી ધર્મની આરાધનામાં શરૂઆતથી માંડીને પૂર્ણતા સુધી પોતાના શુદ્ધ આત્મદ્રવ્યનું જ અવલંબન છે. સૌથી પહેલાં આત્મસ્વભાવનો જેવો અચિંત્ય મહિમા છે તેવો ઓળખીને, તે સ્વભાવના જ અવલંબને નિર્વિકલ્પ અનુભવ થતાં સમ્યગ્દર્શનરૂપ ચોથું ગુશસ્થાન પ્રગટે છે. ત્યાંથી નિશ્ચયધર્મની શરૂઆત થાય છે, એટલે કે સાચો સાધકભાવ શરૂ થાય છે. ત્યારપછીની આગળ આગળની સાધકદશા પણ તે નિર્વિકલ્પ અનુભવની સ્થિરતાથી જ પ્રગટે છે. આત્માના શુદ્ધ સ્વભાવનું ઉપ્ર અવલંબન લેવાથી જ ગુણસ્થાનમાં વૃદ્ધિ થાય છે. ગુણસ્થાનની વૃદ્ધિ કહો, સાધકભાવની વૃદ્ધિ કહો કે ધર્મની વૃદ્ધિ કહો - તે સર્વ માટે એક જ ઉપાય છે અને તે ઉપાય છે અખંડ આત્મસ્વભાવનું અવલંબન લેવું. માટે જયાં સુધી સઘળા રાગાદિ મટીને કેવળજ્ઞાન પ્રગટ ન થાય ત્યાં સુધી શુદ્ધ સ્વભાવનો આશ્રય લેવાનો ઉપદેશ જ્ઞાનીઓએ કર્યો છે.

મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે પ્રથમ સદ્દ્ગુરુના બોધ દ્વારા બુદ્ધિના સ્તરે, પોતાનો ચેતન-સ્વભાવ શરીરથી તથા શુભાશુભ વિકારી ભાવોથી જુદો છે એવો નિર્ણય કરવાનો છે. પર અને પર્યાયથી ભેદજ્ઞાન કરી જે બાકી રહે તેમાં તાદાત્મ્ય સ્થાપવાનું છે. જેમ કોઈ વેપારી પોતાની ખાતાવહી જુએ છે, તેમાં સિલક કેટલી છે તે જાશે છે - ખ્યાલમાં લે છે, પણ તે સિલકને પોતાની પૂંજી માનતો નથી; પણ બીજા સાથે જે લેવડ-દેવડ બાકી હોય તેની ગણતરી કર્યા પછી જે શેષ બચે તેને પોતાની પૂંજી માને છે. તે મુજબ મોક્ષનો સાધક શરીરાદિ સમસ્ત પરસંયોગો તથા રાગાદિ વૈભાવિક ભાવોને બાદ કરતાં માત્ર જ્ઞાન-દર્શનનો જે પિંડ બચે તેમાં પોતાપણું - નિજતા સ્થાપે છે. તે સ્વરૂપનો નિર્ણય કરતાં વિચારે છે કે 'પંચ ભૂતોનું બનેલું શરીર તે હું નહીં; સ્પર્શ, રસ, ગંધ, વર્ણ અને શબ્દને ગ્રહણ કરનારી ઇન્દ્રિયો તે હું નહીં; શ્વાસોચ્છ્વાસ કે પ્રાણ તથા વિચાર કરતું મન તે હું નહીં; હર પળે અનુભવાતા વિકાર પણ હું નહીં. સર્વ ઉપાયિઓને બાદ કરતાં કરતાં જે તત્ત્વ રહે છે તે હું છું. હું સત્, ચિત્ અને આનંદ-સ્વરૂપી આત્મા છું.' બુદ્ધિના સ્તરે આ નિર્ણય દઢ થયા પછી, જે જ્ઞાન-ઉપયોગ બહાર ભટકે છે તેને ત્યાંથી હટાવીને, એટલે કે પોતાની આત્મશક્તિને શરીર, ઇન્દ્રિય, વિચાર અને વિકલ્પોથી હટાવીને તેને તે જ્ઞાનના અખંડ પિંડની સન્મુખ કરતો રહે છે અને

એમ કરતાં કરતાં જે ધન્ય પળે તેની સાથે અભેદતા સ્થપાય છે ત્યારે આત્માનુભૂતિ થાય છે. જેમ ચાલુ કરેલી ટોર્ચના બટનને અંદરની તરફ દબાવતાં બલ્બમાંનો પ્રકાશ હટીને સેલમાં સમાઈ જાય છે, તેમ મનરૂપી બટનને અંતર્મુખ દબાવતાં ચૈતન્યપ્રકાશ ચૈતન્યમાં સમાઈ જાય છે. તે જેટલો સમય અંદર ટકે તેટલો સમય અનુભવધારાનો ગણાય. ચૈતન્યસત્તામાં ચિત્તવૃત્તિ શમાઈ જતાં જ આનંદની અનુભૂતિ થાય છે. જેમ જેમ આત્મસ્વરૂપમાં સ્થિરતા થાય છે, તેમ તેમ કર્મની વિપુલ નિર્જરા થાય છે. ધ્યાનાગ્નિ દ્વારા કર્મના ગોટેગોટા ઊડી જતાં આત્મા મુક્ત થઈ જાય છે.

આમ, આત્મસ્વભાવનું અવલંબન તે જ મોક્ષનો ઉપાય છે. પોતામાંથી દેહાદિ સંયોગ અને રાગાદિ વિકારોને બાદ કરતાં જે બાકી રહે તે છે આત્મસ્વભાવ. શરીરાદિ સંયોગ અને રાગાદિ વિભાવ, તે બધાને આત્મામાંથી બાદ કરીને એકલો સ્વભાવ બાકી રાખવો, તે જ ખરી બાદબાકી છે. જેવો પોતાનો ગુણ છે તેવો ઓળખીને, તે ગુણના આકારે પોતાની પરિણતિ કરવી તે સાચો ગુણાકાર છે. જેણે આત્માના ગુણ-દોષ ઓળખ્યા નથી, તેને તો આત્મા સાથે કોના ગુણાકાર કરવા અને કોને બાદ કરવું એનું જ ભાન નથી. જે જીવ ભેદજ્ઞાન વડે આત્માના ગુણ-દોષને ઓળખે છે, તે જીવ ગુણની વૃદ્ધિ અને દોષની હાનિ કરતો જઈ અંતે પૂર્ણતા પ્રગટ કરે છે. ગુણની વૃદ્ધિ અને દોષની હાનિ કરતાં જેવો છે તેવો સ્વભાવ રહી જાય છે અને વિકારનો સંપૂર્ણતઃ નાશ થઈ જાય છે. આ અવસ્થાનું નામ મોક્ષ છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'એ જ ઘર્મથી મોક્ષ છે, એથી નથી તુજ ભેદ; તું કેવળ શિવરૂપ છો, નિર્મમ ને નિર્વેદ. પરમાનંદ સ્વરૂપ તું, તું છો મોક્ષ સ્વરૂપ; પરમ પૂજ્ય પરમાત્મા, અક્ષય અભય અનુપ. અનંત વીર્ય તુજમાં ભર્યું, અનંત સુખ અવિકાર; અનંત દર્શન જ્ઞાન તું, અનંત ગુણ ભંડાર. અનંત સહજ સમાધિ તું, નિજાધાર નિજરૂપ; પરમ નિધાન અમાન તું, અવ્યાબાદ સ્વરૂપ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૩ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૬૧-૪૬૪)

२३कि प्युक्त सेन्निष्टल, स्ट्यं क्रेरोति स्युप्धाः। ८१कं इत्थिने हेट्यं. इर दिस्ति ने ने पाम. ભૂમિકા ગાથા ૧૧૬માં શ્રીગુરૂએ કહ્યું કે દેહાધ્યાસ છોડી, જ્ઞાયકભાવમાં સ્થિરતા કરવારૂપ ધર્મથી પૂર્ણ શુદ્ધ દશારૂપ મોક્ષ પ્રગટે છે. આત્મસ્વરૂપને સમજવાથી તથા અંતર્મુખ થઈ તેમાં લીન થવાથી તેની પ્રાપ્તિ થાય છે. આત્મસ્વભાવનું વર્ણન કરતાં કહ્યું કે આત્મા મોક્ષસ્વરૂપ છે તથા અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન અને અવ્યાબાધસ્વરૂપી છે.

હવે આ ગાથામાં શ્રીગુરુ આત્મના ગુશોનું વર્શન કરે છે. પાંચ અદ્ભુત બોલ દ્વારા આત્મસ્વરૂપની વ્યાખ્યા કરતાં તેઓ કહે છે –

ગાથા 'શુદ્ધ ભુદ્ધ ચૈતન્થઘન, સ્વયંજ્યોતિ સુખધામ; બીજું કહીએ કેટલું? કર વિચાર તો પામ.' (૧૧૭)

તું દેહાદિક સર્વ પદાર્થથી જુદો છે. કોઇમાં આત્મદ્રવ્ય ભળતું નથી, કોઇ તેમાં ભળતું નથી, દ્રવ્યે દ્રવ્ય પરમાર્થથી સદાય ભિન્ન છે, માટે તું શુદ્ધ છો, બોધસ્વરૂપ છો, ચૈતન્થપ્રદેશાત્મક છો; સ્વયંજ્યોતિ એટલે કોઇ પણ તને પ્રકાશતું નથી, સ્વભાવે જ તું પ્રકાશસ્વરૂપ છો; અને અવ્યાબાધ સુખનું ધામ છો. બીજું કેટલું કહીએ? અથવા ઘણું શું કહેવું? ટૂંકામાં એટલું જ કહીએ છીએ, જો વિચાર કર તો તે પદને પામીશ. (૧૧૭)

ભાવાર્થ અત્માના ગુણો સંખ્યા અપેક્ષાએ અનંત છે. આકાશના પ્રદેશોની સંખ્યા કરતાં અનંતગણા ગુણો પ્રત્યેક આત્મામાં છે. લોકાકાશ અને અલોકાકાશ એમ બન્નેના મળીને અનંત આકાશપ્રદેશ છે. તેનાથી અનંતગણા ગુણ પ્રત્યેક આત્મામાં છે. આકાશમાં જેમ ક્ષેત્રથી અનંતતા છે, તેમ ગુણ અપેક્ષાએ આત્મામાં અનંતતા છે. આત્મા અનંત ગુણોના અભેદ પિંડસ્વરૂપ છે. તેનું સ્વરૂપ સમજાવતાં શ્રીગુરુ કહે છે કે આત્મા સર્વ પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી રહિત હોવાથી શુદ્ધ છે, બોધસ્વરૂપ હોવાથી બુદ્ધ છે, તે પ્રદેશે પ્રદેશે ચૈતન્યથી વ્યાપ્ત હોવાથી તથા તેનો એક પણ પ્રદેશ છૂટો પડતો નહીં હોવાથી ચૈતન્યઘન છે, સ્વયં પ્રગટ તથા સ્વપરપ્રકાશક હોવાથી સ્વયંજ્યોતિ છે, અનંત અવ્યાબાધ સુખમય હોવાથી સુખધામ છે. આવા આત્મસ્વરૂપની પ્રતીતિ થતાં, તેનો જ પક્ષ પ્રહેણ કરતાં, તેનું જ સતત લક્ષ કરતાં અને તેના જ અભ્યાસમાં દક્ષ થતાં આત્મસ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય છે.

આત્માની વિભૂતિઓ અને ગુશો અનંત છે. તેનું વર્શન કરવામાં આવે તોપશ

પાર આવે તેમ નથી. જ્ઞાની પાસેથી આત્મસ્વરૂપનો નિર્ણય કરી, તેનો અગાધ મહિમા જાણી, આત્માને લક્ષગત કરવો જોઈએ અને વારંવાર તેનો અભ્યાસ કરી, પરિણામ અંતર્મુખ કરવાં જોઈએ. વૃત્તિને આત્મસન્મુખ કરવાના નિરંતર અભ્યાસથી ચૈતન્યરસ જ્યારે પરાકાષ્ઠાએ પહોંચે છે ત્યારે ઉપયોગ નિર્વિકલ્પ થઈ જાય છે અને સ્વસંવેદન થાય છે. લીંડીપીપર બહારથી રંગે કાળી અને સ્વાદમાં તૂરી હોય છે, પણ તેની અંદર લીલાશ અને ચોસઠપહોરી તીખાશ હોય છે. તેને ઘૂંટવાથી શક્તિપણે રહેલી તીખાશ પ્રગટ થાય છે. તેમ જ્ઞાયકસ્વભાવી આત્માને દેષ્ટિમાં લઈને તેને ઘુંટવાથી, તેમાં મગ્ન થવાથી. જ્ઞાન-આનંદ આદિ અનંત ગુણો પર્યાયમાં પૂર્ણપણે પ્રગટ થાય છે; અર્થાત્ શક્તિપણે રહેલા જ્ઞાનાનંદસ્વભાવ ઉપર દેષ્ટિ કરીને સ્થિરતા કરવાથી પૂર્ણ પરમાત્મપદ પ્રગટે છે. આમ, મોક્ષ પામવાનો પંથ આત્મવિચારણાથી શરૂ થાય છે. આત્મસ્વરૂપના વિચાર વિના આત્મજ્ઞાન થવું શક્ય નથી. માટે જ આ ગાથાના અંતમાં કહ્યું કે 'કર વિચાર તો પામ', અર્થાતુ 'આનાથી વધારે તને શું કહીએ? તું આત્મસ્વરૂપનો વિચાર કર તો તું તારી શુદ્ધતા પ્રાપ્ત કરી શકીશ.' મોક્ષના ઉપાય જેવા ગહન વિષયને સરળ ભાષામાં, સંક્ષેપમાં, સામાન્ય જનને ભોગ્ય થઈ શકે અને સાધકવર્ગને માર્ગદર્શકરૂપ થઈ પડે એવી રીતે મહાપ્રજ્ઞાવંત શ્રીમદે આ ગાથામાં રજૂ કર્યો છે. આ ગાથાનું અંતિમ ચરણ ~ 'કર <mark>વિચાર તો પામ'</mark> તો મુમુક્ષુવર્ગમાં કહેવત જેવું થઈ પડ્યું છે.

વિશેષાર્થ એક બાજુ સિદ્ધપશું છે, બીજી બાજુ સંસારીપશું છે. સિદ્ધપશું એ આત્માની પૂર્શ શુદ્ધ અવસ્થા છે, સંપૂર્શ નિર્મળ પર્યાય છે; જ્યારે સંસારીપશું એ આત્માની વિકારી અવસ્થા છે, મલિન પર્યાય છે. આ બન્ને અવસ્થાની વચ્ચેની અવસ્થા છે સાધકપશું. વર્તમાન અશુદ્ધ અવસ્થામાં પણ શુદ્ધ આત્મદ્રવ્ય ઉપર દષ્ટિ રાખી, તેની પ્રાપ્તિનો પુરુષાર્થ કરવો તે સાધકપશું છે. સાધક અનંતગુણવૈભવયુક્ત એવા શુદ્ધ આત્મદ્રવ્ય ઉપર પોતાની દષ્ટિ સ્થાપે છે.

આત્મા અનંત ગુણોનો પિંડ છે. આત્મા જ્ઞાન, આનંદ આદિ અનંત અનંત ગુણોનું સંગ્રહાલય છે. મધ્યલોકમાં અસંખ્ય દ્વીપ-સમુદ્ર છે. તેમાં છેલ્લો સ્વયંભૂરમણ સમુદ્ર અસંખ્ય યોજનના વિસ્તારવાળો છે. બધા દ્વીપ-સમુદ્રોની પહોળાઈના સરવાળા કરતાં આ છેલ્લા સમુદ્રની પહોળાઈ ત્રણ યોજન વધારે છે. તેના તિળયે રેતી નથી પણ રત્નો પડેલાં છે. આત્મા પણ અનંત ગુણોથી ભરેલો ચૈતન્યરત્નાકર છે. જીવ અંદર ઊંડો ઊતરીને જુએ તો તેને અનંતાં રત્નો મળે. અનંત ગુણોના નિધાન એવા આત્મ-દ્રવ્યની જીવે કદી ઓળખાણ કરી નથી. સંયોગો અને વિકારો વગરના શુદ્ધ ચિદાનંદ-સ્વભાવને લક્ષમાં લે, તેમાં જ વૃત્તિ તન્મય કરે તો સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે. શુદ્ધ સ્વભાવની નિરંતર ભાવના કરવાથી પરમપદની પ્રાપ્તિ થાય છે. શ્રીમદે આ ગાથામાં

પાંચ બોલ વડે આત્મસ્વરૂપને સમજાવ્યું છે તે હવે જોઈએ.

- (૧) 'શુદ્ધ' આત્મા સર્વ કર્મમલથી રહિત પવિત્ર વસ્તુ છે. તે નોકર્મ, દ્રવ્યકર્મ અને ભાવકર્મથી રહિત શુદ્ધ દ્રવ્ય છે; અર્થાત્ તે સર્વ પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી રહિત ત્રિકાળ શુદ્ધસ્વભાવી છે.
- (i) કોઈ પણ પદાર્થ બીજા પદાર્થ સાથે ભેળસેળ થયો હોય તો તે પદાર્થ અશુદ્ધ ગણાય છે અને જો તે પદાર્થ કોઈ બીજા પદાર્થ સાથે ભેળસેળ થયા વગરનો હોય તો તે શુદ્ધ ગણાય છે. અનાદિ કાળથી આત્મા પરદ્રવ્યના દેહ તથા કર્મ આદિ પુદ્દગલોની સાથે એકક્ષેત્રાવગાહે રહેવા છતાં તે પુદ્દગલદ્રવ્યરૂપ થયો નથી, પરંતુ તેનાથી કેવળ ભિન્ન જ રહ્યો છે. અનંત કાળથી પુદ્દગલ સાથે એકપ્રદેશાવગાહે રહ્યો છે, તેથી સંયોગ-દષ્ટિવંત જીવને તે મલિન અશુદ્ધ દેખાય છે; પરંતુ સ્વભાવદષ્ટિએ જોતાં આત્મા સર્વ પરદ્રવ્યથી કેવળ ભિન્ન જણાય છે.

જળમાં ડૂબેલા કમળને જળના સંયોગ તરફની નિમિત્તાધીન દેષ્ટિથી જોતાં, વર્તમાન અવસ્થામાં કમળ જળને અડેલું છે એમ જણાય છે, પણ તેની સમીપ જઈને જોતાં જણાય છે કે જળથી જરા પણ નહીં સ્પર્શાવા યોગ્ય એવા કમળના નિર્લેપ સ્વભાવના કારણે તે જળને જરા પણ અડ્યું નથી. કમળને પાણીના સંયોગ તરફની સ્થૂળ - બાહ્ય દેષ્ટિથી જોતાં પાણીનું સ્પર્શવું સાચું લાગે છે, પણ સૂક્ષ્મ દેષ્ટિથી જોતાં તેનો અસ્પર્શી સ્વભાવ જણાય છે. તળાવમાં રહેલી માછલીને કમળ પાણીમાં હોય એમ લાગે છે, પણ કમળની અંદર બેઠેલા ભમરાને કમળ પાણીથી ભિન્ન જણાય છે. તે પ્રમાણે આત્માને વર્તમાન સંયોગાધીન દેષ્ટિથી જોતાં તે બંધનયુક્ત - પરાધીન જણાય છે, પણ સ્વભાવદેષ્ટિથી જોતાં તે મુક્ત, સ્વાધીન જ પ્રતીત થાય છે. વ્યવહારદેષ્ટિએ જોતાં તે દેહ, કર્મ આદિ પરસંગથી અશુદ્ધ ભાસે છે અને નિશ્ચયદેષ્ટિથી જોતાં આત્મ-સ્વરૂપ અત્યંત નિર્મળ અને શુદ્ધ લાગે છે. નિજ ત્રિકાળી આત્મવસ્તુ સ્વભાવ અપેક્ષાએ સદા નિર્લેપ જ છે, અસંગ જ છે. ત્રિકાળી આત્મસ્વભાવમાં શરીરનો, કર્મનો કોઈ લેપ નથી. આત્મા સર્વ કાળ માટે અસંયોગી તત્ત્વ છે. તેના સ્વભાવને ક્યારે પણ પુદ્દગલાદિ પરદ્રવ્યનો જરા જેટલો પણ સ્પર્શ થયો નથી. તેમાં આવરણ, અશુદ્ધિ કદી પ્રવેશમાં નથી. યથાર્થ દેષ્ટિએ જોતાં આત્મા સદા નિર્લેપ, નિઃસંગ, નિર્મળ, શુદ્ધ છે. ધ્રાવેશમાં નથી. યથાર્થ દષ્ટિએ જોતાં આત્મા સદા નિર્લેપ, નિઃસંગ, નિર્મળ, શુદ્ધ છે.

૧- જુઓ : ગણિશ્રી દેવચંદ્રજીરચિત, શ્રી અભિનંદન ભગવાનનું સ્તવન, કડી ૨,૩

^{&#}x27;પરમાતમ પરમેશ્વરુ, વસ્તુગતે તે અલિપ્ત હો મિત્ત; દ્રવ્યે દ્રવ્ય મિલે નહીં, ભાવે તે અન્ય અવ્યાપ્ત હો મિત્ત. શુદ્ધ સ્વરૂપ સનાતનો, નિર્મલ જે નિઃસંગ હો મિત્ત; આત્મવિભૂતિ પરિશમ્યો, ન કરે તે પરસંગ હો મિત્ત.'

(ii) જેમ આત્માનું સ્વરૂપ સર્વ પરદ્રવ્યથી ભિન્ન, અત્યંત નિર્મળ અને પવિત્ર છે, પરનો સ્પર્શ પણ તે શુદ્ધ સ્વરૂપને થયો નથી; તેમ આત્મા રાગ-દ્વેષરૂપ વિકારભાવથી પણ કેવળ ભિન્ન જ છે. રાગ-દ્વેષ આત્મામાં થતા હોવા છતાં તે સ્વભાવભૂત નથી, પરંતુ આરોપિત ભાવ છે.

જીવના અસ્તિત્વનાં બે પડખાં છે - દ્રવ્ય અને પર્યાય, અર્થાત્ ત્રિકાળી ભાવ અને વર્તમાન બદલાતો ભાવ. જીવમાત્રનું દ્રવ્ય ત્રિકાળ શુદ્ધ જ હોય છે. પર્યાયની અપેક્ષાએ સંસારી જીવ અશુદ્ધ છે. શુદ્ધ દ્રવ્યાર્થિક નયથી સમસ્ત જીવો શુદ્ધ જ છે, પરંતુ સંસારી અવસ્થામાં જીવોની વર્તમાન પર્યાય દ્રવ્યકર્મના ઉદયમાં જોડાવાથી રાગાદિરૂપ અશુદ્ધ છે. આમ, આત્મા સ્વભાવે ત્રિકાળી શુદ્ધ છે અને વર્તમાન અવસ્થામાં અશુદ્ધ છે. અશુદ્ધતા પરના અવલંબને થાય છે, તેથી તે ટળી શકે એમ છે. સ્વરૂપનો આશ્રય કરવાથી પર્યાયમાં રહેલી અશુદ્ધિ ટાળી શકાય છે. ક્ષિણિક અવસ્થાની અશુદ્ધતા વખતે જો આખો આત્મા તદ્દન અશુદ્ધ થઈ જાય, સ્વભાવે પણ શુદ્ધ ન રહે તો અશુદ્ધતા ટળીને શુદ્ધતા આવશે ક્યાંથી? શક્તિરૂપે શુદ્ધતા હોય તો જ તે પર્યાયમાં વ્યક્ત થઈ શકે છે.

જેમ સમુદ્રમાં કોઈ મોજું મેલું હોય તો તેનાથી કાંઈ આખો સમુદ્ર મેલો થઈ જતો નથી. ક્ષિણક મેલું મોજું આખા સમુદ્રને મેલો કરવા સમર્થ પણ નથી. મેલા મોજા વખતે પણ સમુદ્ર તો નિર્મળ છે. તેમ આ આત્મા શુદ્ધતાનો સમુદ્ર છે. તેની વર્તમાન દશામાં જે મિલનતા દેખાય છે તે ક્ષિણક છે. આખું આત્મસ્વરૂપ મેલું નથી, આત્મસ્વરૂપ શુદ્ધ એકરૂપ છે. જે ક્ષિણક વિકારભાવ થાય છે, તે ભાવ આખા શુદ્ધ સ્વરૂપને મિલન કરવા સમર્થ નથી. ક્ષિણક વિકાર વખતે પણ આત્મસ્વભાવ તો શુદ્ધ જ છે. નિર્મળ જળથી ભરેલા સમુદ્રના કિનારે આવતું મિલન મોજું એ કાંઈ આખો સમુદ્ર નથી. મૂળ સ્વરૂપે સમુદ્રને જુઓ તો તે સમુદ્ર અને તેનું પાણી એકરૂપ, ચોખ્ખાં છે. મોજાની મિલનતા તો બહારની ઉપાધિ છે. તેમ આ આત્મામાં વર્તમાન જે વિકારભાવરૂપ મિલન તરંગ દેખાય છે તેટલો જ કાંઈ આત્મા નથી. જો આત્માને મૂળ સ્વરૂપે શુદ્ધ છે. જેમ સમુદ્રનો સ્વભાવ છે કે મેલને પોતામાં રહેવા ન દે પણ બહાર ફેંકી દે, તેમ આત્મસ્વરૂપમાં વિકારભાવોનો પ્રવેશ થઈ શક્તો નથી. આત્મા અંતસ્તત્ત્વ છે અને વિકાર બહિસ્તત્ત્વ છે. અંતસ્તત્ત્વમાં બહિસ્તત્ત્વનો પ્રવેશ નથી.

આમ, જે રાગ-દ્વેષાદિ ભાવો થાય છે તે આત્માના મૂળ સ્વરૂપમાં નથી, પણ પર્યાયમાં ઉપરટપકે થનારા વિકારી ભાવો છે. તે ઉપરટપકે થનારા ભાવો જેટલો જ આત્માને ન માનીને, તેના મૂળ સ્વરૂપ પ્રત્યે દષ્ટિ કરવી જોઈએ. વિકાર જેટલો જ આત્માને માનવો તે અજ્ઞાન છે અને વિકારથી ભિન્ન શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપને જાણવું તે

સમ્યગ્જ્ઞાન છે. જે રાગાદિ વિભાવને હુંપણે માને છે તે જીવ પર્યાયદ્રષ્ટિવાળો છે. તેને ત્રિકાળી, જ્ઞાયક, ધ્રુવ સ્વભાવની દૃષ્ટિ કે રુચિ ન હોવાથી તેને પર્યાયમૂઢ કહ્યો છે. આ પર્યાયબુદ્ધિ છોડવી અને દ્રવ્યસ્વભાવમાં ઉપાદેયબુદ્ધિ કરવી એ જ મોક્ષનો ઉપાય છે.

અહીં પ્રશ્ન થાય કે જો પર્યાય વસ્તુનો સ્વભાવ છે. જો પર્યાયને ન માનવામાં આવે તો તે માન્યતા મિથ્યા છે. તો પછી પર્યાયનો સ્વીકાર કરનારને પર્યાયમૂઢ કેમ કહ્યો? પર્યાય ઉપરની દષ્ટિ છોડી દેવાને મોક્ષનો ઉપાય શા માટે કહ્યો?

તેનું સમાધાન - પર્યાયનું અસ્તિત્વ આત્મામાં છે, પણ તે માત્ર વર્તમાન ક્ષણિક અંશ છે. પર્યાયની મુદત એક સમયની છે અને કાયમી રહેનાર ધ્રુવ સ્વભાવની મુદત ત્રિકાળી છે. બદલાતા ક્ષણિક અંશમાં આખું ત્રિકાળી તત્ત્વ આવી જતું નથી. વર્તમાન અંશ ઉપર દષ્ટિ રાખતાં ત્રિકાળી આત્મતત્ત્વનો અનાદર થાય છે. જે ભાવ ક્ષણિક છે, ઉપરટપકે છે, તેટલો જ પોતાને માનવો; અર્થાત્ ત્રિકાળી આત્મસ્વભાવને ન સ્વીકારતાં માત્ર પર્યાયરૂપ પોતાને માનવો તે મિથ્યા છે, મૃઢતા છે. પર્યાયદષ્ટિથી વિકારની ઉત્પત્તિ થાય છે અને વિકારનો સંબંધ પરદ્રવ્યો સાથે હોવાથી પર્યાયદષ્ટિવાળો જીવ પરદ્રવ્યો સાથેની એકત્વબુદ્ધિના કારણે પોતાને પરદ્રવ્યોનો કર્તા માને છે. આનું જ નામ મિથ્યાત્વ છે. આ જ અધર્મ છે. તેથી દષ્ટિને ત્રિકાળી દ્રવ્ય તરફ ઢાળવી જોઈએ. પર્યાયબુદ્ધિને છોડી ત્રિકાળી ધ્રુવ તત્ત્વ તરફ દષ્ટિ કરવી જોઈએ. વસ્તુમાં પર્યાય છે, પરંતુ તેના ઉપર દષ્ટિ નથી રાખવાની, તેના ઉપર વજન નથી આપવાનું. શ્રદ્ધા, જ્ઞાન, ચારિત્ર, આનંદ વગેરે ત્રિકાળી ગુણો અને તેની વર્તમાન પર્યાયો આત્મામાં છે, પણ તે ગુણભેદ ઉપર કે વર્તમાન બદલાતી પર્યાય ઉપર જે દષ્ટિ રાખી છે, તેને છોડવાની છે. રુચિનું વજન માત્ર નિજ શુદ્ધ, ધ્રુવ દ્રવ્યસ્વભાવ ઉપર જ રાખવાનું છે.

પૂર્ણ, શુદ્ધ, ધ્રુવ આત્મસ્વભાવ જ અમૃતરૂપ છે. એની ઓળખાણ સિવાય બીજા જેટલા ભાવો કરે તે બધા જ ઝેરરૂપ છે, સંસારરૂપ છે. પોતાના આત્મસ્વભાવની ઓળખાણ કરી, તેની શ્રદ્ધા કરવી તે ધર્મ છે. આત્મસ્વભાવ ત્રિકાળ શુદ્ધ છે. જેમ નાળિયેરની છાલથી અને કાચલીથી ટોપરું જુદું છે, તેમજ ટોપરા ઉપરની રાતપ – તે પણ કાચલી તરફનો ભાગ છે, વાસ્તવિક ટોપરું નથી. માત્ર અંદર ધોળો, મીઠો ગોળો તે જ ટોપરું છે. તેમ શરીર છે તે નાળિયેરની છાલરૂપ છે, કાર્મણ શરીર છે તે નાળિયેરની કાચલીરૂપ છે. તે બન્ને આત્મા નથી. રાગરૂપી રાતપ તે પણ પર તરફની છે, આત્માની નથી. ટોપરારૂપ આત્મા તો ત્રિકાળી શુદ્ધ છે. એની શ્રદ્ધા કરવી તે ધર્મ છે. શ્રીમદ્દ અહીં ગર્ભિતપણે કહે છે કે – 'તારો શુદ્ધ સ્વભાવ જ ઉપાદેય છે. તેનો જ તું સ્વીકાર કર. એ સિવાય બીજું કાંઈ ગ્રહણ કરવા જેવું નથી. પર્યાયમાં રાગાદિ હોવા છતાં તે ગ્રહણ કરવા જેવા નથી. એકમાત્ર શુદ્ધ સ્વભાવ જ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે.'

(૨) 'ભુજ' – આત્મા બોધસ્વરૂપ - જ્ઞાનસ્વરૂપ છે. તે લોકાલોકમાં રહેલા સર્વ રૂપી-અરૂપી પદાર્થો, તેના સમસ્ત ગુણો તથા ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્ય એમ ત્રણે કાળની તેની પર્યાયો યુગપત્ પ્રત્યક્ષ જાણી શકે એવી પૂર્ણ, પવિત્ર અને સ્વાધીન જ્ઞાનશક્તિનો ધારક છે. આત્મા ઇન્દ્રિય અને મનની સહાય વિના સર્વને જાણવા સમર્થ એવા અનંત જ્ઞાનનો ધારક છે.

આત્માના ત્રિકાળી ધ્રુવ દ્રવ્યદળમાં અનંત શક્તિઓ રહેલી છે. અમૂર્તિક આત્માની અનંત શક્તિઓમાંની એક શક્તિ છે જ્ઞાનશક્તિ. આત્માની જ્ઞાનશક્તિની એવી નિર્મળતા છે કે તેમાં લોકાલોકના સર્વ પદાર્થો તેની ત્રણે કાળની પર્યાયો સહિત પ્રતિબિંબિત થઈ શકે છે. સ્વનું અને પરપદાર્થનું સ્વરૂપ જેવું છે તેવું જ જાણી શકે એવી જ્ઞાનની સમર્થતા છે. જ્ઞાન પોતાના અસંખ્યાત પ્રદેશમાં રહીને પરપદાર્થને જાણે છે, અર્થાત્ જ્ઞાન સ્વક્ષેત્રથી - આત્મપ્રદેશોથી ભિન્ન પડીને, પદાર્થને જાણવા માટે પરપદાર્થમાં જતું નથી કે પરપદાર્થ જ્ઞાનમાં પેસી જતા નથી. જેમ નેત્ર દશ્યમાન પદાર્થોથી અત્યંત ભિન્ન રહીને તેને જુએ છે, તેમ જ્ઞાન પણ જ્ઞેય પદાર્થથી અત્યંત ભિન્ન રહીને જાણવાનું કાર્ય કરે છે. વિશ્વમાં અનંતાનંત જ્ઞેય પદાર્થો છે અને તે જ વિશ્વમાં રહેલો આ આત્મા સમસ્ત જ્ઞેયોને, અર્થાત્ લોકાલોકને પોતાની જ્ઞાનપ્રભા વડે જાણી શકે છે; તેથી એમ કહેવાય છે કે આત્મા અને આત્માનું જ્ઞાન બન્ને સર્વવ્યાપી છે. આ તો વ્યવહારભાષા જ છે. નિશ્વયથી તો આત્મા અને તેનું જ્ઞાન પોતાના અસંખ્યાત પ્રદેશરૂપ સ્વક્ષેત્રમાં જ રહેલાં છે, તે જ્ઞેય પદાર્થોમાં પેસી ગયાં જ નથી.

જ્ઞાનમાં જણાતું પરપદાર્થનું પરિશમન તે જ્ઞાનની અવસ્થા છે. દર્પણમાં મયૂરનું પ્રતિબિંબ પડે છે. રંગબેરંગી મયૂરનું પ્રતિબિંબ એવું જ રંગબેરંગી દેખાય છે. તો શું આ પ્રતિબિંબ મયૂરની અવસ્થા થઈ? ના, એ મયૂરની અવસ્થા નથી. મયૂરની અવસ્થા મયૂરમાં છે, તેનું જે પ્રતિબિંબ છે તે દર્પણની અવસ્થા છે. તે અવસ્થા દર્પણમાં જ થઈ છે. મયૂર તો તેનાથી ભિન્ન છે. પરંતુ કાર્યમાં કારણનો ઉપચાર કરીને વ્યવહારમાં એમ કહેવાય છે કે મયૂર દર્પણમાં છે. મયૂર નિમિત્તકારણ છે અને તેનું પ્રતિબિંબ નૈમિત્તિક કાર્ય છે. તે જ પ્રમાણે જ્ઞાનની નિર્મળતાના કારણે, પદાર્થોના જ્ઞેયાકારોના નિમિત્તે, જ્ઞાનમાં જ્ઞાનની અવસ્થારૂપ નૈમિત્તિક કાર્ય થાય છે. તે જ્ઞાનની જ અવસ્થા છે. પદાર્થોના જ્ઞેયાકારો કાંઈ જ્ઞાનમાં પેસી ગયા નથી, પણ કાર્યમાં કારણનો ઉપચાર કરીને એમ કહેવાય છે કે પદાર્થો જ્ઞાનમાં છે. આ વ્યવહારનયનું કથન છે. નિશ્ચયથી તો જ્ઞેય અને જ્ઞાન ભિન્ન ભિન્ન ક્ષેત્રમાં રહેલાં છે. જ્ઞેય પદાર્થો જ્ઞાનમાં પેસતા જ નથી. જ્ઞાન ગુણની પર્યાય પોતાની યોગ્યતાથી અને સ્વતંત્રતાથી પરિશમે છે.

જેમની જ્ઞાનશક્તિ પર્યાયમાં સોળે કળાએ, સંપૂર્ણપણે ખીલી ઊઠી છે એવા

સર્વજ્ઞદેવ, સમસ્ત જ્ઞેય પદાર્થોનું જ્ઞાન કરવા છતાં એક પણ પરપદાર્થને ઝહણ કરતા નથી, તેને છોડતા નથી કે તે રૂપે પરિણમતા નથી. વળી, પર્યાયમાં જ્ઞાનની સંપૂર્ણ નિર્મળતા પ્રગટે છે, ત્યારપછી જ્ઞાન એક જ્ઞેયમાંથી બીજામાં કે બીજામાંથી ત્રીજામાં પલટાતું નથી. સર્વજ્ઞનું જ્ઞાન સમસ્ત જ્ઞેયોને એકસાથે જાણે છે. સર્વ જ્ઞેયો તેમના જ્ઞાનમાં એકસાથે ઝળકે છે. સમસ્ત પદાર્થોનું યથાર્થ સ્વરૂપ તેમના જ્ઞાનમાં જણાય છે.

જ્ઞાનનું સંપૂર્ણ સામર્થ્ય જ્યારે પર્યાયમાં પ્રગટે છે ત્યારે તે સૂક્ષ્મમાં સૂક્ષ્મ વસ્તુ અને તેના અતિ સૂક્ષ્મ ભાવોને જાણી શકવાનું સામર્થ્ય ધરાવે છે. જેમ કે એક સમયનું જ્ઞાન કરવું, એક પુદ્દગલપરમાણુનું જ્ઞાન કરવું, એક પ્રદેશનું જ્ઞાન કરવું તથા સમસ્ત જીવરાશિના અધ્યવસાય જે અતિ સૂક્ષ્મ હોય છે તે બધાને એકસાથે જાણી લેવા એવી જ્ઞાનની સ્વચ્છતા છે.

કર્મના ઉદયમાં એકરૂપ થવાથી રાગ-દ્વેષની મલિનતાના કારણે પર્યાયમાં સ્વચ્છતા પ્રગટી શકતી નથી. જીવ જો જ્ઞાયકભાવે ન રહે તો તે ઉદયથી પ્રભાવિત થઈ રાગાત્મક કે દ્વેષાત્મક પ્રતિક્રિયા કરે છે, જેથી પર્યાયમાં સ્વચ્છતા પ્રગટતી નથી. પરંતુ જો તે ઉદયને માત્ર જ્ઞાયકભાવે નિહાળે તો રાગાત્મક કે દ્વેષાત્મક પ્રતિક્રિયા ઉત્પન્ન થાય નહીં. તે ઘટનાથી તે જીવ અપ્રભાવિત રહે છે. જે કર્મ ઉદયમાં આવ્યાં છે તે ભોગવવાં તો પડશે. જો તેમાં મય થઈ ભોગવશે તો પર્યાયમાં મલિનતા આવશે અને જ્ઞાયકભાવે ભોગવશે તો પર્યાયમાં સ્વચ્છતા પ્રગટશે. વિવેક તો એમાં છે કે જીવ પોતાના જ્ઞાન-સ્વરૂપ અંતસ્તત્ત્વનું અવલંબન લઈ, રાગાત્મક-દેષાત્મક પ્રતિક્રિયાઓથી મુક્ત થાય અને પર્યાયમાં સ્વચ્છતા પ્રગટાવે. જીવે ઉદયાનુસાર બનતી ઘટનાના નિમિત્તે ઉત્પન્ન થતા રાગ-દેષને રોકવા જોઈએ તથા બાદ્યમાં જે કંઈ ઘટના બને તેમાં પોતાના ભાવોનું જોડાણ ન કરવું જોઈએ. વર્તમાન ઉદયને વશ ન બનતાં, તેમાં એકતા ન કરતાં જીવ તેને પોતાના જ્ઞાનનું જ્ઞેય જ માને અને પોતાના સ્વરૂપનો આશ્રય કરે તો પર્યાયમાં સ્વચ્છતા પ્રગટચા વિના રહે નહીં.

જીવમાં અનંત પદાર્થોનાં દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયને જાણવાની યોગ્યતા હોવા છતાં, પર્યાયમાં સ્વચ્છતા ન હોવાના કારણે તેણે પદાર્થનું જ્ઞાન કરવા માટે ઇન્દ્રિયો અને મનની મદદ લેવી પડે છે. જે જ્ઞાન ઇન્દ્રિય તથા મનને અવલંબીને પ્રવર્તે છે તે પરોક્ષ અને પરાધીન છે. જ્ઞાન જો સ્વરૂપ તરફ વળે તો તે અતીન્દ્રિય બને. અતીન્દ્રિય થયા વિના જ્ઞાન પોતાના સ્વભાવને પકડી શકતું નથી. સ્વરૂપસન્મુખ થયેલું જ્ઞાન ઇન્દ્રિયોના સંબંધથી જુદું પડી, અતીન્દ્રિય બની અંતરમાં દોડે છે. જ્યાં સુધી જ્ઞાન ઇન્દ્રિયોના અવલંબને બંધાયેલું હતું, ત્યાં સુધી તે અંતર્મુખ થઈ શકતું ન હતું; પરંતુ જ્યારે ઇન્દ્રિયોનું બંધન તૂટી જાય છે ત્યારે જ્ઞાન અતીન્દ્રિય થઈ સ્વરૂપમાં રમતું થાય છે, સ્વભાવમાં

ઊતરે છે અને સ્વસંવેદનમાં તે જ્ઞાન અતીન્દ્રિય થઈ પોતાના સ્વભાવને પકડી લે છે. આત્માનો આશ્રય કરતાં જ્ઞાન અતીન્દ્રિય થઈ પોતાના પરમ શુદ્ધ જ્ઞાનસ્વભાવનો અનુભવ કરે છે. જ્યારે નિજસ્વભાવનું જ્ઞાન અખંડપણે વર્તે છે ત્યારે ત્રણ કાળ, ત્રણ લોક જ્ઞાનમાં ઝળકે છે. આત્મદ્રવ્ય આવા અનંત જ્ઞાનનું ધણી છે, તે બોધસ્વરૂપ છે.

(3) 'ચૈતન્યઘન' – આત્મા ચૈતન્યપ્રદેશાત્મક છે. તેના પ્રદેશે પ્રદેશે કેવળ ચૈતન્ય જ છે. જેમ નક્કર વસ્તુમાં પરવસ્તુના પ્રવેશનો અવકાશ નથી, તેમ આત્મા પણ ચૈતન્યનો ઘન છે, નક્કર પિંડ છે, જેમાં પરદ્રવ્યના પ્રવેશનો અવકાશ નથી. તે વજના કિલ્લા સમાન છે.

આત્મા ચૈતન્યશક્તિવાળો છે, માટે તે જડ નથી. 'चિત્' એટલે જાણવું. આ ધાતુ ઉપરથી ચેતના, ચૈતન્ય આદિ શબ્દો બનેલા છે. જે ચૈતન્યમાત્ર છે અને ચૈતન્ય-પ્રાણ વડે જે જીવે છે એવું આત્મદ્રવ્ય ચેતનત્વથી પરિપૂર્ણ ભરેલું છે અને જડત્વથી નિતાંત શૂન્ય છે, જ્યારે અજીવતત્ત્વ જડત્વ સ્વભાવથી ભરેલું છે અને ચેતનત્વથી નિતાંત શૂન્ય છે. અજીવતત્ત્વના પ્રત્યેક અંશમાં જડત્વ છે. તેના ગુણો જડ છે. તેની પર્યાયો જડ છે. આ જડત્વથી વિરુદ્ધ ભાવ તે ચેતનત્વ છે. ચેતનત્વ જેનું સ્વરૂપ છે તે જ આત્મદ્રવ્ય છે, જીવતત્ત્વ છે.

આત્મા કેવળ ચૈતન્યસ્વરૂપ જ છે. તેમાં જડત્વનો અંશમાત્ર નથી. તે પૂર્ણપણે ચૈતન્યમય - જ્ઞાન-દર્શનમય છે. આત્મા અસંખ્યપ્રદેશાત્મક છે. તેના અસંખ્ય પ્રદેશે ચૈતન્ય, ચૈતન્ય ને ચૈતન્ય છે. ચારે તરફ ચૈતન્ય છે. જેમ સાકરના ગાંગડાના દરેકે દરેક કણમાં મીઠાશ છે, તેમ આત્માના દરેકે દરેક પ્રદેશમાં ચૈતન્ય છે. જેમ સાકરના ગાંગડામાં સર્વાંગે મીઠાશ છે, તેમ આત્મામાં સર્વાંગે ચૈતન્ય છે. સાકરમાં ઉપર, મધ્યે કે તળમાં જ્યાં જુઓ ત્યાં સર્વત્ર મીઠાશ છે, તેમ આત્મામાં સર્વત્ર ચૈતન્ય છે. જેમ સાકરનો ગાંગડો મીઠાશનો પિંડ છે, તેમ આત્મા ચૈતન્યનો પિંડ છે. આત્માની ચૈતન્ય-શક્તિ ચેતનરૂપે પરિણમતી હોવાથી, અર્થાત્ અજડભાવે પરિણમતી હોવાથી આત્માની અન્ય અનંત શક્તિઓ પણ ચેતનરૂપે પરિણમે છે. આત્મા અનંતી વિભૂતિઓથી ભરેલો છે. તે અનંત શક્તિઓનો રાશિ છે. આ સર્વ શક્તિઓ એકમાત્ર ચૈતન્યશક્તિના કારણે ચેતનરૂપે પરિણમે છે.

આત્મા ચૈતન્યમય હોવાથી આત્માને ચૈતન્યમૂર્તિ કહેવામાં આવે છે. સ્ફટિકની પ્રતિમાને ચારે તરફ ધૂળ લાગેલી હોવા છતાં તે ધૂળ સ્ફટિકમાં પેસી જતી નથી, તેમ શરીર અને કર્મરૂપી ધૂળની વચ્ચે ચૈતન્યમૂર્તિ આત્મા રહ્યો હોવા છતાં આત્મામાં તે પ્રવેશી શકતાં નથી. સ્ફટિકની પ્રતિમા જડ હોવાથી આંખથી દેખાય છે, હાથથી સ્પર્શાય છે, અર્થાત્ ઇન્દ્રિયો દ્વારા તે જણાય છે; પણ આત્મા અરૂપી ચૈતન્યમૂર્તિ હોવાથી

ઇન્દ્રિયો દ્વારા જણાતો નથી, એકમાત્ર અતીન્દ્રિય જ્ઞાનચક્ષુથી જણાય છે. મતિ-શ્રુતરૂપી જ્ઞાનમૂડી અતીન્દ્રિય તથા નિર્વિકલ્પ થતાં જ આત્મા જણાય છે, અનુભવાય છે, સંવેદાય છે. આત્મદ્રવ્ય તે ચૈતન્યનું અખંડ સ્વક્ષેત્ર છે. આત્માનું ક્ષેત્ર અન્ય દ્રવ્યાના ક્ષેત્રથી પૃથક્ છે, ભિન્ન છે. તેની સત્તા અન્ય દ્રવ્યોની સત્તાથી સંપૂર્ણપણે સ્વતંત્ર છે.

શરીરાકારે રહેલી આ ચૈતન્યમૂર્તિના અસંખ્ય પ્રદેશોમાંથી એક પ્રદેશ પણ છૂટો પડતો નથી. આત્મા સંકોચ-વિસ્તારના સ્વભાવવાળો છે. જે શરીર ધારણ કરે તે શરીરમાં તે સમાઈને રહે છે. હાથી જેવડું શરીર હોય તો આત્મા તે શરીરપ્રમાણ વ્યાપીને રહે અને કીડી જેવડું શરીર હોય તો તેટલા ક્ષેત્રમાં વ્યાપીને રહે. તેના અસંખ્ય પ્રદેશો ફેલાય કે સંકોચાય છતાં પણ તેના પ્રદેશો સદા જોડાયેલા જ રહે છે. તેના પ્રદેશો કદી છૂટા પડે નહીં એવો તે ઘનપિંડ છે.

અસંખ્યપ્રદેશી ચૈતન્યઘન આત્મા ક્યારે પણ ખંડિત થતો નથી. નરક ગતિમાં તેનો દેહ અનેક વાર છેદાયો-ભેદાયો, છતાં તેનો એક પણ પ્રદેશ ઓછો થયો નથી કે અલગ પડી ગયો નથી. તે એવો ઘનસ્વરૂપ જ છે. આત્મા જ્યારે અંતિમ દેહમાંથી નીકળે છે ત્યારે આત્મપ્રદેશો એ જ દેહના પ્રમાણના ²/3 જેટલા ભાગમાં દેહાકારે ઘનરૂપ થાય છે. સર્વ આત્મપ્રદેશો સઘન અવસ્થામાં રહે છે. મુક્ત અવસ્થામાં પણ તે ચૈતન્યઘન જ રહે છે. આમ, અસંખ્યપ્રદેશી ચૈતન્યઘન આત્મામાં અચેતનનો અંશમાત્ર નથી અને તેનો એક પણ પ્રદેશ ક્યારે પણ છૂટો પડતો નથી.

(૪) 'સ્વચંજ્યોતિ' – આત્મા સ્વભાવે જ સ્વપરપ્રકાશક જ્ઞાનજ્યોતિ છે. તેને કોઈ પ્રકાશતું નથી. આ જ્ઞાનજ્યોતિને પ્રગટ થવામાં કોઈની પણ મદદની જરૂર નથી. તે સ્વયં ચૈતન્યજ્યોતિરૂપ છે.

જેમ અગ્નિ જ્યોતિસ્વરૂપ છે, તેમ આત્મા પણ જ્ઞાનજ્યોતિ છે. અગ્નિ જેમ વસ્તુને પ્રકાશિત કરે છે, તેમ આત્માની જ્ઞાનશક્તિ પણ વસ્તુસ્વરૂપને પ્રકાશિત કરે છે. પ્રકાશકપણાનો સમાન ધર્મ જોઈને આત્માને જ્યોતિની ઉપમા આપવામાં આવી છે. ૧ - આત્માની જ્ઞાનશક્તિની જ્યોતિ સાથેની સરખામણીનો ઉલ્લેખ પૂર્વાથાર્યોના સંયોમાં જોવા મળે છે. આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવે 'સમયસારકલશ'માં ઠેર ઠેર ચૈતન્યજ્યોતિની સ્તુતિ કરી છે. જુઓ :

'ज्ञानज्योतिर्ज्यलितमचलं व्यक्तमंतस्तथोच्चैश्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यंतगंभीरमेतत् ।' ५५१-५५
'हेलोन्मीलत्परमकलया सार्धमारब्धकेलि

ज्ञानज्योतिः कवलिततमः प्रोज्जजृम्भे भेरण ।।' ५५१-१९२
'व्यावृत्तं परस्तपतो नियमितं सम्यक्स्वरूपे स्फुर
ज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृंभते ।।' ५५१-९२५

જો કે દીપકને તો કોઈ પ્રગટાવે તો પ્રગટે છે, જ્યારે આત્માની જ્ઞાનજ્યોતિ સ્વયં પ્રકાશે છે, અર્થાત્ સ્વભાવે કરીને જ તે જ્ઞાનજ્યોતિસ્વરૂપ છે. જેમ સૂર્યને આકાશમાં રહેવા માટે થાંભલા વગેરે કોઈ પણ આધારની જરૂર પડતી નથી, તેને પ્રકાશિત થવા માટે કોઈ કોલસા, તેલ વગેરે બળતણની જરૂર પડતી નથી, પોતાના સ્વભાવથી જ તે આકાશમાં નિરાલંબ છે, સ્વયંપ્રકાશિત છે; તેમ આત્માની જ્ઞાનજ્યોતિ સ્વભાવથી જ પ્રગટ છે. ઇન્દ્રિયો વગેરેનું અવલંબન લેવું પડે એવી તે પરાધીન નથી, અર્થાત્ બીજાની અપેક્ષા વગર સ્વભાવથી જ પોતે સ્વયમેવ જ્ઞાનજ્યોતિ છે. વળી, જેમ સૂર્યનો પ્રકાશ પોતાને અને પરને પ્રકાશિત કરે છે, તેમ આત્મા ત્રણે કાળ સ્વપરપ્રકાશક હોવાથી પોતાને તથા પરપદાર્થોને પ્રકાશિત કરે છે. પોતાથી પોતાને જાણે તે સ્વપ્રકાશક શક્તિ છે અને પોતાથી અન્ય જીવ-અજીવ, ચર-અચર પદાર્થોને જાણે તે આત્માની પરપ્રકાશક શક્તિ છે.

આત્મામાં રહેલી સ્વપ્રકાશક શક્તિથી આત્મા પોતે પોતાને પ્રકાશે છે, એટલે કે જાણે છે, સ્વાનુભવ કરી શકે છે. તેમાં પરદ્રવ્યની સહાયતા, ઇન્દ્રિયો વગેરેના અવલંબનની આવશ્યકતા નથી. આત્મા સ્પર્શ-રસ-ગંધ-વર્ણ ગુણના અભાવરૂપ સ્વભાવવાળો હોવાથી, તેમજ શબ્દપર્યાયના અભાવરૂપ સ્વભાવવાળો હોવાથી અલિંગગ્રાહ્ય છે; અર્થાત્ ઇન્દ્રિયાદિ કોઈ પણ લિંગ વડે તે ગ્રહણ થઈ શકતો નથી. તે સ્વસંવેદનપ્રત્યક્ષ છે, તેથી તે સ્વપ્રકાશક શક્તિના કારણે સ્વાનુભવમાં આવે એવો છે.

અહીં પ્રશ્ન થાય કે આત્મામાં આવી સ્વપ્રકાશક શક્તિ હોવા છતાં બધા જીવોને એ શક્તિના સામર્થ્ય વડે સ્વાનુભવ કેમ થતો નથી? આત્મા કેમ અનુભવમાં આવતો નથી? જ્ઞાનીઓ તેના રહસ્યનું ઉદ્ઘાટન કરતાં સમજાવે છે કે સર્વ જીવોને સદાકાળ અનુભવમાં આવે એવો સ્વપરપ્રકાશક સ્વભાવવાળો આત્મા છે. જ્ઞાની અનુભવથી તેને જાણે છે, જ્યારે અજ્ઞાની પણ જ્ઞાનની પર્યાયમાં તો પોતાનો આત્મા સદાકાળ જાણી શકે છે, પરંતુ તેની દષ્ટિ શરીરાદિ પરદ્રવ્યો અને રાગાદિ પરભાવોમાં જ જતી હોવાથી તે દષ્ટિ પોતાના સ્વરૂપ તરફ જતી નથી. પોતાને પોતે જાણતો હોવા છતાં દષ્ટિ અન્યત્ર - પરજ્ઞેય પ્રત્યે રહેલી હોવાથી 'આ જાણનારો અનુભવમાં આવે છે તે હું છું' એવું જ્ઞાન ઉદિત થતું નથી, તેથી તે પોતાને જાણતો નથી.

આત્મા તો આબાલગોપાલ સૌને નિરંતર અનુભવમાં આવે છે. ચૈતન્યજ્યોતિ આત્મા પ્રકાશમાન છે અને તે નિત્ય ઉદ્યોતરૂપ છે, તેથી નિરંતર સર્વના અનુભવમાં

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'પ્રવચનસાર', ગાથા ૬૮નો ગુર્જરાનુવાદ

'જ્યમ આભમાં સ્વયમેવ ભાસ્કર ઉષ્ણ, દેવ, પ્રકાશ છે; સ્વયમેવ લોકે સિદ્ધ પણ ત્યમ જ્ઞાન, સુખ ને દેવ છે.' આવે છે. અનુભૃતિસ્વરૂપ આત્મા પોતે નિરંતર અનુભવમાં આવે જ છે. ખામી માત્ર એ જ વાતની છે કે 'આ જે જ્ઞાયકરૂપે જ્ઞાનમાં આવે છે તે જ હું છું' એવું આત્મજ્ઞાન ઉદિત થતું નથી. આત્માનો અનુભવ સતત થતો હોવા છતાં અનાદિ અજ્ઞાનને વશ થઈને પર સાથેના એકત્વના કારણે મૂઢ અજ્ઞાની જીવને 'આ અનુભૃતિ તે જ હું છું' એવું આત્મજ્ઞાન ઉદય પામતું નથી. પોતાને જાણવારૂપ જ્ઞાનના અભાવના કારણે, નહીં જાણેલા એવા આત્માનું શ્રદ્ધાન પણ થતું નથી. જીવને આત્માની સિદ્ધિ કેવળ એ માટે જ અટકી છે કે આત્મા નિરંતર જાણમાં આવતો હોવા છતાં તે તેને નિજરૂપે જાણતો નથી, તેમાં પોતાપણું સ્થાપિત કરતો નથી; અને તે જ સમયે જાણમાં આવતા પર-પદાર્થોમાં અને પરભાવોમાં પોતાપણું કરે છે.

જીવ પરમાં રોકાયેલો રહે છે, તેથી તે સ્વને ભૂલી જાય છે. તે દૂરની વસ્તુઓમાં ગૂંચવાયેલો રહે છે, તેથી પાસેની વસ્તુ તેની નજર બહાર જ રહી જાય છે. જેમ ઘરે વેવાઈ જમવા આવ્યા હોય ત્યારે એમની સરભરા કરવામાં બાજુમાં બેઠેલ પતિ વિસરાઈ જતો હોય છે. પરજનને પીરસવાની દોડધામમાં સ્વજનની ઉપેક્ષા થઈ જાય છે. તેમ દશ્ય બહુ દૂર છે, દ્રષ્ટા અત્યંત નિકટ છે અને છતાં દશ્યમાં તન્મય થયેલો જીવ દ્રષ્ટાને ભૂલી બેઠો છે. તેણે પરની તલ્લીનતામાં સ્વનું વિસ્મરણ કર્યું છે. નાટકમાં કેટલાક પ્રેક્ષક દશ્યોમાં એટલા તલ્લીન થઈ જાય છે કે પોતાને પણ ભૂલી જાય છે. એવું જ અજ્ઞાની જીવ માટે બન્યું છે. જીવન પણ એક મોટી નાટકશાળા છે અને અજ્ઞાની જીવે દશ્યોની તલ્લીનતામાં દ્રષ્ટાને - સ્વયંને ગુમાવી દીધો છે. સ્વને મેળવવા બીજું કાંઈ જ કરવાનું નથી. દ્રષ્ટાની જાગૃતિ કેળવવાની છે. જીવ પોતાને વીસરી ગયો છે એ જ તેની ભૂલ છે. આ ભૂલ સુધારતાં તેનું કલ્યાણ થઈ જાય છે. આત્મા પ્રગટ જ છે, પણ જીવે તેની સાથેની એકતા નથી કરી એટલે આત્માનો અનુભવ થતો નથી; તે જો આત્મા સાથે એકત્વબુદ્ધિ કરે તો તરત આનંદની સેર ઊડે. જો જીવ આત્માની ઓળખાણ કરી તેના ઉપર દષ્ટિ સ્થાપે, તેની સાથે એકત્વબુદ્ધિ કરે તો અજ્ઞાનનો નાશ થાય અને જ્યોતિસ્વરૂપ આત્મા પ્રત્યક્ષ અનુભવી શકાય.

અનાદિથી સ્વપરપ્રકાશક સ્વભાવવાળો હોવા છતાં ઉપયોગ ઇન્દ્રિયો દારા પરને પ્રકાશવામાં જ રોકાયેલો છે. પરલક્ષી જ્ઞાનને સ્વલક્ષી બનાવવાથી સ્વપરપ્રકાશકપણું પ્રગટી શકે છે. છદ્મસ્થના ક્ષયોપશમજ્ઞાનમાં એવી શક્તિ નથી હોતી કે એકી સમયે તે બે જ્ઞેયને પ્રકાશી શકે. પરને જાણે ત્યારે સ્વને નથી જાણતું અને સ્વને જાણે ત્યારે પરને નથી જાણતું. એકમાત્ર કેવળજ્ઞાનમાં જ એવું સામર્થ્ય છે કે તે સ્વ અને પર બન્નેને એકસાથે પ્રકાશી શકે છે. આમ, આત્મા તેની સ્વપરપ્રકાશક શક્તિ વડે પોતાને પ્રકાશિત કરે છે અને લોકાલોકને પણ પ્રકાશિત કરે છે. આત્માની આ જ્ઞાનજ્યોતિ સ્વયં પ્રગટ

- છે. તેને પ્રગટાવવી પડતી નથી, માટે તે સ્વયંજ્યોતિ છે.
- (૫) 'સુખધામ' આત્મા અનંત સુખનું ધામ છે. સુખ એ આત્માનો સ્વભાવ છે. તે કોઈ બાહ્ય નિમિત્તને આધીન નથી. સ્વાધીન અને શાશ્વત સુખરૂપ આત્મા છે.

આત્મા પોતે જ સુખરૂપ છે, સ્વયં જ સુખનું ધામ છે. તેના એકેક પ્રદેશે અનંત સુખ રહેલું છે. આત્મા સર્વાંગે સહજાનંદની મૂર્તિ છે. આત્મા સર્વ પ્રકારે સુખથી ભરેલો છે. આત્મામાં અખંડ, અમર્યાદિત પરિપૂર્ણ સુખનો સાગર ભરેલો છે. બરફની પાટમાં જેમ એકલી શીતળતા ભરી છે, તેમ આત્મસ્વભાવમાં એકલું સુખ ભર્યું છે, તેમાં દુ:ખનો છાંટો પણ નથી. નિરાકુળતા એ આત્માની સુખશક્તિનું લક્ષણ છે. આત્મામાં આવો સુખસ્વભાવ રહેલો હોવા છતાં જીવને પોતાના સુખસ્વરૂપનું ભાન ન હોવાથી પર્યાયમાં તે સુખ પ્રગટતું નથી. સુખસ્વરૂપનું લક્ષ કર્યા વિના પર્યાયમાં સુખ પ્રગટતું

પોતાના સ્વરૂપમાં જ સુખ પડેલું છે, પણ સ્વરૂપના અજ્ઞાનના કારશે જીવ પર- દ્રવ્યમાં સુખની કલ્પના કરે છે; પરંતુ કોઈ પણ બાહ્ય વસ્તુથી સુખ ઊપજતું નથી, કારણ કે પુદ્દગલદ્રવ્યમાં સુખ ગુણ રહેલો નથી. શરીર, ઇન્દ્રિયો અને ઇન્દ્રિયોના વિષય-ભૂત પદાર્થો એ બધાં જ પૌદ્દગલિક પદાર્થો છે, પરદ્રવ્યો છે અને જ્ઞાયકના જ્ઞેયમાત્ર છે. પણ સ્વરૂપનું લક્ષ નહીં હોવાથી જીવ બાહ્ય સામગ્રીઓમાંથી સુખ મેળવવાનો પ્રયત્ન કરે છે. જેમ કસ્તુરીમૃગ પોતાની નાભિમાં જ કસ્તુરી હોવા છતાં સુગંધ માટે બહાર દોડે છે, તેમ પોતાના સ્વરૂપમાં જ સુખનો સાગર ભરેલો હોવા છતાં, સમજણ ન હોવાના કારણે જીવ બાહ્ય વિષયમાંથી સુખ પ્રાપ્ત કરવા મથે છે, સુખ મેળવવા બાહ્યમાં ઝાંવા મારે છે, પરંતુ તેને મળે છે સુખને બદલે દુઃખ. બાહ્ય પદાર્થોમાં સુખની કલ્પના કરવી, ઇચ્છા રાખવી તે જ આકુળતા છે. પોતાના સુખ માટે બાહ્ય સામગ્રીનો સંયોગ મેળવવાનો પ્રયાસ કરવો તે જ આકુળતા છે, વ્યગ્રતા છે, પરાધીનતા છે અને ત્યાં દુઃખ જ છે. જે આત્મા પોતાનું સ્વાધીન સુખસ્વરૂપ ભૂલીને, પરમાં આસક્ત થઈને, પરમાં સુખ શોધે, તેને સુખ ક્યાંથી પ્રાપ્ત થાય? માટે પરજ્ઞેયમાંથી સુખ પ્રાપ્ત કરવાના સર્વ ઉપાયો જૂઠા છે, આકાશકુસુમવત્ છે. ભૌતિક સુખ તે સુખ નથી, સુખાભાસ છે.

ખારી જમીનમાં ક્ષાર હોવાના કારણે, તેના ઉપર પડતાં સૂર્યનાં કિરણો પરાવર્તન પામે એટલે ત્યાં પાણી જેવું લાગે છે. એ ઝાંઝવાના જળ દેખી હરણ ત્યાં પાણી પીવા જાય, પણ પાણી મળે નહીં; તેમ જીવ દેહ, સ્ત્રી, પુત્ર, પરિવાર, લક્ષ્મી, અધિકાર વગેરેમાંથી સુખ મેળવવા વલખાં મારે છે, પણ તે કશામાં સુખ આપવાનો ગુણ છે જ નહીં તો જીવને સુખ કઈ રીતે મળે? ઝાંઝવામાંથી કદી કોઈને જળ મળ્યું જ નથી, તેમ

બહાર ફાંફાં મારવાથી કદી કોઈને સુખ મળ્યું જ નથી.

જીવને પુણ્યોદયે કંઈક અનુકૂળતા પ્રાપ્ત થાય છે, જેને તે સુખ માને છે. આ કહેવાતા સુખના આહ્લાદ પછી પરિણામે અનંત દુઃખની પ્રાપ્તિ થાય છે. વિષયસુખના ક્ષણિક આનંદ પછી પરિણામે દુઃખ જ મળે છે, કારણ કે –

- ૧) જેમ જેમ ભૌતિક સુખનાં સાધનોનો ભોગ-ઉપભોગ થાય છે, તેમ તેમ તૃષ્ણા વધતી જાય છે. વધતી તૃષ્ણાને સંતોષવા માટેનાં સુખનાં સાધનો પુણ્યના અભાવે ન મળવાથી દુઃખ વધતું જ જાય છે.
- ર) ભોગ-ઉપભોગ સમયે રાગાદિ થવાથી અશુભ કર્મોનો બંધ થાય છે. એ અશુભ કર્મોનાં ઉદયકાળે અત્યંત દુઃખનો અનુભવ થાય છે.
- ૩) ભોગ્ય વસ્તુને મેળવવા હિંસાદિ પાપનાં કાર્યો કરવાં પડે છે. એ પાપનાં કાર્યોથી અશુભ કર્મોનો બંધ થાય છે. એ કર્મોનાં વિપાકકાળે દુઃખ ભોગવવું પડે છે.
- ૪) લોભપૂર્વક અધિક ભોગ કરવાથી વ્યાધિ, અપકીર્તિ આદિનું દુઃખ આવે છે.
- પ) ભોગમય જીવન જીવવાથી આત્મિક સાધના ન થઈ શકે અને તેથી પરિણામે પરલોકમાં દુઃખ ભોગવવું પડે છે.

વિષયસુખનો અનુભવ તો તેનાં સાધનો મળે ત્યારે થાય, પરંતુ તે પહેલાં જ એ વિષયસુખની ઝંખનાના કારણે પણ કેટલું દુઃખ છે? વિષયસુખનાં સાધનો મેળવવામાં અપાર માનસિક અને શારીરિક તાપ હોય છે. આ પ્રમાણે વિષયસુખ પામ્યા પહેલાં અને પછી તાપ-દુઃખ રહ્યાં જ કરે છે. વિષયસુખના અનુભવ વખતે પણ તાપ ચાલુ જ હોય છે, કારણ કે –

- ૧) ભોગ-ઉપભોગકાળે ઇષ્ટ સુખના વિરોધી પ્રત્યે દ્વેષભાવ રહેવાથી મનમાં દ્વેષરૂપી તાપ રહ્યા કરે છે.
- ર) ભોગ-ઉપભોગકાળે ભૌતિક સાધનોનો વિયોગ ન થાય તે માટે અપાર ચિંતા રહે છે તથા રોગાદિના ભયરૂપી તાપ રહ્યા કરે છે.
- 3) ગમે તેટલું વિષયસુખ પ્રાપ્ત થવા છતાં ઇન્દ્રિયો તૃપ્ત નહીં થવાથી વિષયોને મેળવવા ઇન્દ્રિય સદા ઉત્સુક રહે છે, તૃષ્ણા રહ્યા જ કરે છે.

આ પ્રમાણે અનેક પ્રકારે ભૌતિક વસ્તુઓથી પ્રગટ થતું સુખ દુઃખરૂપ જ છે એમ જ્ઞાનીઓનું કહેવું છે.

અનાદિ કાળથી જીવ બહારના પદાર્થની હોંશમાં હણાઈ રહ્યો છે. પર તરફના

વલણથી વૃત્તિનું ઉત્થાન થાય છે, ક્લેશ થાય છે. તેમાં માત્ર દુઃખ છે. શરીર, સ્ત્રી, બંગલા વગેરે પરપદાર્થને આત્મા ક્યારે પણ ભોગવી શકતો જ નથી, પણ તે તરફની તેની વૃત્તિ કે 'આ મને ઠીક છે, આ મને અઠીક છે', તેને તે ભોગવે છે. જડ વસ્તુથી આત્માને સુખ મળતું જ નથી, પરંતુ જડ વસ્તુમાં જીવ આસક્ત થાય છે અને તે વસ્તુ પોતાને ઇષ્ટ છે તથા તેનાથી પોતાને સુખ મળે છે એવો જે રાગ જીવ કરે છે, તે રાગનો જ તેને સ્વાદ આવે છે. આત્મા અજ્ઞાનવશ રાગના સ્વાદને સુખનો સ્વાદ માને છે. રાગ તો વિકાર છે, પર તરફના વલણવાળો ભાવ છે, દુઃખરૂપ છે. સુખ તો સ્વભાવસન્મુખતામાં છે.

જીવની સામે બન્ને છે, સ્વભાવ અને પરપદાર્થ. જ્યાંથી સુખ મળે ત્યાં અનુસંધાન કરવું જોઈએ અને જ્યાંથી દુઃખ મળે ત્યાંથી વૃત્તિને ખેંચી લેવી જોઈએ. સ્વભાવમાં સુખ છે તો ત્યાં દષ્ટિનું સ્થાપન કરવું જોઈએ અને પરસન્મુખતાથી દુઃખ છે તો પર તરફથી નજર હટાવી લેવી જોઈએ.

સ્વ તરફના વલણમાં - અંતર્મુખ અવલોકનમાં જ સુખ છે, કારણ કે આત્મા જ સુખનું ધામ છે. તેથી જ્ઞાનીઓ કહે છે કે 'હે જીવ! તું સિદ્ધ છે, સ્વતંત્ર છે, પરિપૂર્ણ છે, સુખધામ છે; પણ તને તારા સ્વરૂપની ખબર નથી, તેથી તું દુઃખી છે. તું સ્વઘર ભૂલ્યો છે. પારકા ઘરને તું તારું ઘર માની બેઠો છે, તેથી જ તું દુઃખી છે. સુખ તારા સ્વઘરમાં જ છે. એક વાર બાહ્ય લક્ષ છોડીને તારા સ્વઘરમાં તો જો. પરમાં લક્ષ કરી કરીને અનાદિથી તું ભ્રમણ કરી રહ્યો છે. હવે તારા અંતરસ્વરૂપ તરફ નજર કર. એક વાર અંદર જો. અંદર પરમ આનંદના ખજાના ભર્યા છે. એક વાર અંદર ડોકિયું કર. તને તારા સ્વભાવના કોઈ અપૂર્વ, પરમ, સહજ સુખનો અનુભવ થશે.'

જીવને આત્માનુભવ થતાં અતીન્દ્રિય આનંદનાં વાજાં વાગે છે. આત્માનું આનંદ-સ્વરૂપે પરિશમન થઈ જતાં 'હું પોતે સુખધામ છું' એમ તે અનુભવવા લાગે છે. સ્વયં પોતાને સુખસ્વભાવી અનુભવીને તે પોતામાં તૃપ્ત થાય છે. તેને થાય છે કે 'અહો! હું જે કાંઈ ઇચ્છું છું તે તો મારામાં જ છે. મને જે કાંઈ જોઈએ છે, જે મને ઇષ્ટ છે, જે સુખ-શાંતિ છે એ બધું હું જ છું.' આમ, તેને પરમ તૃપ્તિ થાય છે. આત્માનુભવ પછી તેને કોઈ અતૃપ્ત ભાવ રહેતો નથી. તેને કોઈ અસંતોષ નથી રહેતો કે 'હજી મારે બહારથી કાંઈ પ્રાપ્ત કરવાનું બાકી છે.' તેને બીજા કોઈની કોઈ આધીનતા કરવાની જરૂર રહેતી નથી. પોતાનું પરમ અદ્ભુત સ્વતત્ત્વ અનુભૂતિમાં પ્રાપ્ત થયું હોવાથી તે ભાવે છે કે 'જગતના બાહ્ય ક્ષેત્રમાં પણ મારું રહેવાનું સ્થાન તો મારો ચૈતન્યાત્મા જ છે. મારું આટલું સુંદર ચૈતન્યતત્ત્વ એ જ આનંદથી ખીલેલો બગીયો છે, એ જ અનંત ગુણોના ભાવોથી ભરેલું વિશામનું સ્થાન છે. એમાં જ હું હવે સદાકાળ

રહીશ. એનાથી બહાર જગતમાં કશે પણ બીજું કોઈ ક્ષેત્ર, બીજું કોઈ વિશ્રામનું સ્થાન મારા માટે નથી.' તે પોતાના સુખધામમાં જ સદાકાળ માટે સ્થિત થઈ જાય એવી ભાવના ભાવે છે.^૧

આમ, આત્માનું અદ્ભુત સ્વરૂપ અહીં પાંચ બોલો દ્વારા પ્રકાશી, શ્રીમદ્ કહે છે - 'બીજું કઢીએ કેટલું?'; અર્થાત્ મુખ્યપણે જે કહેવાનું હતું તે કહી દીધું. વિશેષ શું કહીએ? આ પાંચ બોલો દ્વારા જે કહેવાયું છે તેમાં મુખ્યત્વે આત્મસ્વરૂપ અંગેની બધી વાત આવી જાય છે, માટે હવે વિશેષ શું કહેવું? હવે આત્મસ્વરૂપનો યથાર્થ નિર્ણય કરી, તેનો અગાધ મહિમા લાવી, તેની પ્રાપ્તિનો પુરુષાર્થ કર. 'કર વિચાર તો પામ' એમ કહી તે શુદ્ધાત્માની પ્રાપ્તિ કઈ રીતે થાય તે શ્રીમદે સંક્ષેપમાં સમજાવ્યું છે. આ પંક્તિનું પ્રયોજન અને રહસ્ય સમજાવતાં શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ લખે છે કે –

'આત્માનું આવું અદ્દભુત સ્વરૂપ છે; તેની વિભૂતિઓ અને ગુણો અનંત છે. તેથી તેનું વર્ણન કર્યે પાર આવે તેમ નથી. મુખ્યતાએ કહેવાનું હતું તે બધું કહી દીધું છે, કંઇ પણ ગોપવ્યું નથી, ગુપ્ત રાખ્યું નથી, તો પછી અધિક શું કહેવું?

છતાં સંક્ષેપમાં કહું તો દેહ એ જ આત્મા છે એવો અવિવેક તો સદાકાળ સુલભ છે. પરંતુ કરોડો ભવને વિષે આત્મા અને દેહ તરવાર અને મ્યાનની માફક કેવળ ભિન્ન છે એવો અતિ ઉપયોગી નિર્મળ વિવેક પ્રાપ્ત થવો અત્યંત દુર્લભ છે. એ વિવેક જાગૃત થવાનું બળવાન કારણ વિચાર છે.

ગુણશી, લક્ષણથી અને વેદનથી જ્ઞાનીઓએ આત્મત્વનું સ્વરૂપ જેમ બતાવ્યું છે તેમ કહ્યું. હવે તે પર વિચાર કરવો, તત્ત્વપરીક્ષા કરી શ્રદ્ધા લાવવી અને પછી અનુભવ કરવો. દિવ્ય અંતરંગ વિચાર વિના આત્મજ્ઞાન થવું શક્ય નથી.'^ર

પ્રથમ જીવમાં મુમુક્ષુતા ઉત્પન્ન થવાથી બીજભૂમિકા તૈયાર થાય છે અને પછી તે સત્પાત્રતારૂપ બીજભૂમિકામાં સત્પુરુષનાં પરમાર્થવચનનું પરિણમન થાય છે ત્યારે ૧- શ્રીમદે તેમના અંતિમ સંદેશામાં આ જ ભાવના ભાવી હતી. જુઓ : 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૬૬૦ (આંક-૯૫૪)

'સુખ ધામ અનંત સુસંત ચહી, દિન ૨ાત્ર ૨હે તદ્ધ્યાનમહીં; પરશાંતિ અનંત સુધામય જે, પ્રણમું ૫૬ તે વર તે જય તે.'

એવું એ અનંત સુખનું ધામ, શુદ્ધ, સહજ, આત્મસ્વરૂપ જેને સુસંત, મહાત્મા પુરુષો નિરંતર ઇચ્છે છે અને રાત્રિ-દિવસ તેના જ ધ્યાનમાં નિમગ્ન રહે છે; તથા જે પદ સર્વોત્કૃષ્ટ શાંતિરૂપ અનંત, અક્ષય, શાશ્વત સુધા - અમૃતરસથી ભરેલું છે, તે જગત શિરોમિક સર્વશ્રેષ્ઠ પદને પરમ ઉત્કૃષ્ટ ભક્તિભાવે હું પ્રશામ કરું છું. તે સર્વોત્કૃષ્ટ પરમ પદ ત્રિકાળ જયવંત વર્તો! ૨- શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ, 'આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર (વિશેષાર્થ સહિત)', ચોથી આવૃત્તિ, પૃ.૩૪૩-૩૪૪

સુવિચારદશાનું પ્રગટવું થાય છે. આ સુવિચારદશાનું ફળ આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ છે. આત્મજ્ઞાન થયા પછી મોહદશાની ક્રમશઃ ક્ષીણતા થતાં ઉદાસીનતા વર્ધમાન થયા કરે છે અને અંતમાં મોહનો સંપૂર્ણ ક્ષય થતાં અન્ય ત્રણ ઘાતી કર્મોનો નાશ થઈ કેવળજ્ઞાન પ્રગટે છે. ત્યારપછી અઘાતી કર્મો ક્ષય થતાં નિર્વાણપદની પ્રાપ્તિ થાય છે.

સાધનામાં વિચારનું આવું મહત્ત્વપૂર્ણ સ્થાન હોવા છતાં મોટાભાગના જીવો વિચારહીન સ્થિતિમાં પ્રવર્તે છે. વિચારહીનતા એટલે કંઈ વિચારોનો સર્વથા અભાવ નહીં. એકેન્દ્રિયથી લઈને અસંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય સુધીની ગતિઓમાં જ્યાં મનની અપ્રાપ્તિના કારણે વિચારહીનતા વર્તે છે, એની અહીં વાત નથી. સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિયમાં વિચારોની ઉપસ્થિતિ હોવા છતાં અજ્ઞાન સહિત અને અજાગૃતિરૂપ જે પ્રવર્તન છે તેની વાત અત્રે અભિપ્રેત છે. વિચાર કરવાની યોગ્યતા મળી હોવા છતાં તેનો અનુપયોગ અથવા દુરુપયોગ જ્યાં થાય છે, તેની વિચારણા અત્રે કરવી છે.

એક મોટા કિલ્લામાં એક માણસ પુરાઈ ગયો હોય અને તેને બહાર નીકળવાના દારની જાણ ન હોય, બહાર નીકળવાનું લક્ષ પણ ન હોય તો તે અંદર ફર્યા તો કરશે પણ તેનું ફરવું નિર્ધાક રહેશે, અર્થાત્ તેના આ ફરવાથી તે કિલ્લાની બહાર નીકળી નહીં શકે. હવે જો તેને દાર બતાવવામાં આવે અને જો તે બહાર નીકળવાનું લક્ષ કરી એ દાર તરફ ચાલવા લાગે તો તે કિલ્લાની બહાર નીકળી શકે. બન્ને વખતે ચાલવાની કિયા થઈ રહી હોવા છતાં બન્નેનું પરિણામ જુદું આવે છે. એક અંતહીન ચક્કર છે, બીજું મુક્તિનું કારણ છે. એવું જ વિચારપ્રક્રિયાનું છે. વિચાર તો દરેક સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય કરે છે, પણ એ વિચારો મુક્તિનું કારણ નથી બનતા. વિચારપ્રક્રિયામાં પરમાર્થલક્ષ જોડવામાં આવે તો તે મુક્તિનું કારણ બને છે. વિચારને જ્યાં ત્યાં ભટકવા ન દેતાં આત્મસન્મુખ કરવામાં આવે તો તે આત્મજ્ઞાનનું કારણ બને છે.

'આત્મવિચાર'માં ચિંતન, મનન, નિદિધ્યાસન, અનુપ્રેક્ષા, ભાવના, ભેદજ્ઞાનનો અભ્યાસ, ધ્યાન વગેરે સર્વ સમાવેશ પામે છે, કારણ કે આ બધી ક્રિયાઓ આત્મતત્ત્વના અનુસંધાનની પ્રક્રિયાઓનો ઓછાવત્તા અંશે નિર્દેશ કરે છે. ગમે તે પ્રકારે આત્મવિચાર કરવાથી સ્વરૂપજાગૃતિ સધાય છે. મનને વારંવાર સ્વરૂપ સાથે જોડતાં રહેવાથી શરીર સાથેનું તાદાત્મ્ય ઘટતું જાય છે, દેહાધ્યાસ મોળો પડતો જાય છે. કાયાથી ભોગવાતા વિષયો તેમજ સર્વ ઔદયિક ભાવોથી ભિન્તતાની બુદ્ધિ દઢ થાય છે. સ્વ-પરના ભિન્તત્વના વિચાર દ્વારા પરિણામને સ્થિર કરતાં પરના વિચાર છૂટીને કેવળ નિજસ્વરૂપના જ વિચાર રહે છે.

વિચારહીનતાની ભૂમિકામાંથી જીવ ઉપર ઊઠે છે ત્યારે તે આત્મવિચારણાની -વિચારશીલતાની ભૂમિકા ઉપર આવે છે. પરંતુ વિચારશીલતાથી પણ તેને લક્ષ્યની પ્રાપ્તિ થઈ જતી નથી. જેણે આત્મપ્રાપ્તિની અંતિમ ઊંચાઈ સુધી પહોંચવું છે, તેણે નિર્વિકલ્પતાની પરાકાષ્ઠાએ પહોંચવું જ જોઈએ. અધ્યાત્મના શિખર ઉપર ચઢતાં ચઢતાં અંતે જગ્યા એટલી સાંકડી થઈ જાય છે કે ત્યાં આત્મા સંબંધી વિચાર પણ ઊભા નથી રહી શકતા. ત્યાં તો માત્ર એકલી નિર્વિકલ્પતા જ ઊભી રહી શકે છે. કેવળ એક અખંડ અભેદ ઉપયોગ માત્ર! જ્ઞાનીઓ વિચારોને ઉલ્લંઘીને જ ત્યાં પહોંચ્યા છે, જ્યારે અજ્ઞાની વિચારમાં જ અટકી રહ્યો છે. વિચારધારામાંથી નિર્વિચારધારામાં ફૂદકો મારવાનો છે. શબ્દમાંથી શૂન્યમાં ફૂદકો મારવાનો છે. એવી જગ્યાએ છલાંગ લગાવવાની છે કે જ્યાં કેવળ મૌન છે. જીવ જ્યારે સર્વ વિકલ્પોનો ત્યાગ કરે છે, અર્થાત્ આત્મસંબંધીના વિચારો પણ જ્યારે વિરામ પામે છે, ત્યારે જ તેને સાચો આરામ - આત્માનંદ પ્રાપ્ત થાય છે.

મોક્ષરૂપી કાર્યની સિદ્ધિ માટે જ્ઞાનીઓ જે ઉપદેશ આપે છે, તેમાં બન્ને પ્રકારનાં વચનો આવે છે. જ્ઞાનીઓ પ્રારંભમાં વિચાર કરવાનો શ્રમ લેવાનો બોધ આપે છે અને અમુક અંશે પ્રગતિ થયા પછી તે શ્રમ છોડવાનું પણ તેઓ કહે છે. પ્રથમ દેષ્ટિએ તે પરસ્પર વિરુદ્ધ લાગે છે, પણ વાસ્તવમાં તે વિરોધી નથી. જેમ અગાશીમાં જવા માટે સીડીની સહાય લઈને ઉપર ચઢતાં સીડીના છેલ્લા પગથિયે પહોંચાય છે ત્યારે પણ હજી અગાશીમાં પહોંચાતું નથી, છેલ્લું પગથિયું છોડતાં જ અગાશીમાં પગ મૂકી શકાય છે. અગાશીમાં જવા ઇચ્છનાર એમ નથી કહેતો કે છેલ્લે જો સીડી છોડવાની જ છે તો તેને પકડવાની જ શી જરૂર છે? કારણ કે તે સમજે છે કે સીડી પકડવાથી કામનો પ્રારંભ થાય છે અને તેને છોડવાથી કાર્યની પૂર્ણતા થાય છે. તેમ ધર્મની પણ બે ભૂમિકાઓ છે અને તે સમજવી જરૂરી છે. કાર્યપદ્ધતિ આટલી સરળ અને સીધી હોવા છતાં તેની સમજણના અભાવે, સ્વની પ્રાપ્તિ અર્થે પુરુષાર્થ કરનારા જીવોમાંથી બહુ ઓછા જીવો સફળતાને વરે છે.

આમ, સ્વરૂપનો અનુભવ કરવા માટે આત્મવિચારને પણ છોડવાના છે, તે છતાં શરૂઆત તો આત્મવિચારથી જ થાય છે. આત્મવિચાર દ્વારા જ સ્વરૂપના અભ્યાસની શરૂઆત થાય છે. ચિત્તને આત્મવિચારમાં ગૂંથેલું રાખતાં તે પરભાવમાં ખેંચાતું નથી. 'હું ચિદાનંદ છું', 'હું શુદ્ધ છું', 'હું સહજ સુખ સ્વરૂપ છું', 'હું અનંત શક્તિનો નિધાન છું', 'હું સર્વજ્ઞ સ્વભાવી છું' ઇત્યાદિ પ્રકારે પોતાના નિજસ્વરૂપમાં જ અહંબુદ્ધિ કરી, નિજાત્માના અનુસંધાનમાં રહેવાથી ચૈતન્યનો રસ ઘૂંટાય છે. કરી ફરીને એ જ બોધનું દઢીકરણ કરવાથી ચૈતન્યનો રસ વધતો જાય છે. જેમ કેરીનો સ્વાદ જાણ્યા પછી જીવ ફરી ફરી કેરી ખાય છે અને તેની રુચિ ઓછી થતી નથી પણ વધે જ છે; તેમ વારંવાર એ જ વિચારણાથી સાધકનો ચૈતન્ય તરફનો રસ ઓછો થતો નથી, બલ્કે

વધે જ છે. જેમ જેમ ચૈતન્યનો રસ ઘૂંટાય છે, તેમ તેમ આનંદતરંગ ઊઠે છે. આ આનંદતરંગ હજી સવિકલ્પદશાનો છે. નિર્વિકલ્પ અનુભૂતિનો આનંદ કંઈ ઓર હોય છે. સ્વભાવ તરફનો આનંદ સાત્ત્વિક આનંદ છે અને સ્વભાવમાં સ્થિર થતાં જે આનંદ થાય છે તે તાત્ત્વિક આનંદ છે. શુદ્ધાત્મસ્વરૂપનું ઘોલન કરી, તેનું ધ્યાન કરી, તેમાં જ સ્થિર થતાં આત્માના આનંદામૃતનો રસાસ્વાદ પ્રાપ્ત થાય છે. જે સાધક અંતરમાં ઊતરી શુદ્ધ સ્વરૂપનો વિચાર કરે છે, તેનું ધ્યાન કરે છે, તેમાં જ લીનતા કરે છે, તેમાં જ સ્થિરતા કરે છે તે શુદ્ધ સ્વરૂપને અવશ્ય પામે છે.

આત્મજ્ઞાનની સિદ્ધિ દિવ્ય આત્મવિચારમાં સમાયેલી છે. આત્મવિચારનો આવો મહિમા હોવાથી શ્રીમદે આ ગાથામાં તેનો બોધ કર્યો છે. જીવે આ અદ્ભુત બોધ દ્વારા આત્મવિચારણા ખીલવીને આત્મતત્ત્વનો આશ્રય કરવો જોઈએ. આત્મતત્ત્વનો આશ્રય જ સુખ, શાંતિ અને સલામતી બક્ષે છે. આત્મસ્વરૂપની દષ્ટિ જ શરણરૂપ છે. જીવ પોતાના ઉપયોગને બહાર ભટકાવે છે, તેથી તો તે શરણહીન બને છે. તેનું શરણ છે તેનું શાશ્વત સ્વરૂપ. સુવિચારણા દ્વારા પોતાના અદ્ભુત આત્મસ્વભાવનું શરણ લેવું જોઈએ. આત્મા બધાથી નિરાળો છે, સ્વતંત્ર છે. પોતાના જ પરિણમનથી પરિણમતો પોતાનું કાર્ય કરી રહ્યો છે. તેની વિચારણા દ્વારા અંતરમાં આત્મશ્રદ્ધાનરૂપ આત્મદ્ધીપ તૈયાર થાય છે, જ્યાં ચિત્તવૃત્તિની ડોલાયમાન થતી નાવ સુસ્થિત થઈ સાચું સંરક્ષણ મેળવે છે. આ આત્મદ્ધીપ અને આત્મશરણ જ સાચા અર્થમાં ધર્મદીપ અને ધર્મશરણ છે.

આત્માનો આવો અદ્ભુત મહિમા છે. જગતમાં જે કંઈ પણ સુંદરતા છે, જે કંઈ પણ પવિત્રતા છે તે બધી આત્મામાં રહેલી છે. આત્મવસ્તુમાં અનંત અનંત ગંભીર ભાવો ભરેલા છે. ચર્ચા દ્વારા અંત ન આવે એટલાં અનંતાં રહસ્યો અને અનંતા ભાવો આત્મસ્વભાવમાં ભરેલાં છે. સર્વાર્થસિદ્ધ વિમાનના દેવો ૩૩ સાગરોપમ કાળ સુધીના તેમના આયુષ્ય દરમ્યાન આત્મસ્વભાવની અપુનરુક્ત ચર્ચા કરે તોપણ અંત ન આવે એવા અનંત અનંત ગૃઢ ભાવો આત્મામાં ભરેલા છે. એક સાગરોપમ કાળ એટલે ૧૦ કોડાકોડી પલ્યોપમ કાળ અને એક પલ્યોપમનો કાળ એટલે અસંખ્ય અબજો વર્ષનો કાળ. એવા ૩૩ સાગરોપમ આયુષ્યવાળા સર્વાર્થસિદ્ધ વિમાનના એકાવતારી સમ્યગ્દષ્ટિ દેવો તેમના સમગ્ર આયુષ્ય દરમ્યાન આત્માની ચર્ચા કર્યા કરે તોપણ તેનો અંત આવે તેમ નથી. આત્માના ગુણોને એક પછી એક, વચ્ચે ક્યારે પણ અટક્યા વગર કહ્યા જ કરે તોપણ તેઓ તેમના સંપૂર્ણ જીવનમાં આત્માના અસંખ્યાત ગુણોને જ કહી શકે ૧- જુઓ : પંડિત શ્રી બનારસીદાસજીકૃત, 'સમયસારનાટક', સર્વવિશૃદ્ધિ દ્વાર, સવૈયા ૧૧૬

^{&#}x27;शुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धता में केलि करे, शुद्धता में थिर दै अमृतधारा बरसे।'

અને અનંત ગુણો બાકી રહી જાય. આત્મા આવો મહાન ગુણભંડાર છે. આત્મા અનંત ગુણોથી ઠસોઠસ ભરેલો છે. તેના અનંત ગુણો વાણીમાં નથી આવી શકતા, પરંતુ સ્વાનુભૂતિની એક ઝલકમાં સર્વ ગુણો સમાયેલા હોય છે. આત્માના અનુભવમાં સર્વ ગુણોનું નિર્મળ પરિણમન થાય છે, અનંતા ગુણોનો સ્વાદ તેમાં આવી જાય છે. અનુભવની સમય સમયની દરેક પર્યાયમાં અનંત ગુણોનો સ્વાદ આવે છે. અનંતગુણસંપન્ન આત્માનો આવો અગાધ મહિમા ચિંતવી એવો ઉલ્લાસ પ્રગટાવવો જોઈએ કે બીજા બધા પ્રત્યેનો પ્રેમ ઊડી જાય, બધેથી પરિણતિ હટી જાય અને ઉપયોગ ચૈતન્યગુણધામમાં પ્રવેશી જાય.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'શુદ્ધ બુદ્ધ ચૈતન્યદાન, સિદ્ધભાવ સાક્ષાત્; સર્વ પ્રકાશક પરમ દેવ, પરમ પુનિત વિખ્યાત. પોતે પોતામાં રહ્યો, સ્વયંજ્યોતિ સુખધામ; તું સ્વયંભૂ શંભુ વિભુ, અનંત નામ અનામ. પરમ પુરુષ ઉત્તમ મહા, તું ત્રિભુવન શિરતાજ; બીજું કહીએ કેટલું? પાર કદી ન પમાય. જો જિજ્ઞાસા સત્ય છે, લેવા એ નિજ ધામ; સદ્દ્યુર વયનામૃત તણો, કર વિચાર તો પામ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૩ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૬૫-૪૬૮)

निश्चरेष देवर्षे दराजियो, क्यांची क्या देवारे. पदी मौनवा क्येमहारी, देवर देव माध्यमांचे. ભૂમિકા ગાથા ૧૧૭માં શ્રીગુરુએ કહ્યું કે આત્મા શુદ્ધ છે, બોધસ્વરૂપ છે, ચૈતન્યનો નિબિડ પિંડ છે, જ્ઞાનજ્યોતિ છે અને સુખનો ભંડાર છે. આનાથી વધારે કેટલું કહેવું? જો જીવ પોતાના સ્વરૂપનો વિચાર કરે તો તે અવશ્ય મોક્ષપદને પામે.

મોક્ષપદની પ્રાપ્તિના ઉપાય સંબંધી શિષ્યે જે શંકા કરી હતી તેનું અદ્ભુત, દૃદયસ્પર્શી અને ન્યાયયુક્ત સમાધાન શ્રીગુરુએ ગાથા ૯૭થી શરૂ કર્યું હતું, તે અહીં સમાપ્ત થાય છે. સંકલનાબદ્ધ ૨૧ ગાથાઓમાં શ્રીમદ્દ્ શ્રીગુરુમુખે મોક્ષમાર્ગનું તાત્ત્વિક સ્વરૂપ, માર્ગપ્રાપ્તિનો સાંગોપાંગ અવિકલ ક્રમ અને રહસ્યપૂર્શ કળશરૂપ ત્રણ ગાથાઓ પ્રકાશી, હવે પ્રસ્તુત ગાથામાં, ગાથા ૪૫થી શરૂ કરેલો ગુરુ-શિષ્ય વચ્ચેનો સંવાદ પૂર્ણ કરે છે.

શિષ્યને ઉદ્દબોધન કરતી આ છેલ્લી ગાથામાં શ્રીગુરુ કહે છે –

'નિશ્ચય સર્વે જ્ઞાનીનો, આવી અત્ર સમાય; ઘરી મૌનતા એમ કહી, સહજસમાધિ માંય.' (૧૧૮)

સર્વે જ્ઞાનીઓનો નિશ્ચય અત્રે આવીને સમાય છે; એમ કહીને સદ્દગુરુ મૌનતા ધરીને સહજ સમાધિમાં સ્થિત થયા, અર્થાત્ વાણીયોગની અપ્રવૃત્તિ કરી. (૧૧૮)

મોક્ષના ઉપાય સંબંધી અગત્યના મુદ્દાઓની સમજણ શ્રીગુરુ શિષ્યને આપે છે. શ્રીગુરુને મોક્ષમાર્ગ માટે વિશેષ કાંઈ કહેવાનું હવે રહેતું નથી, કેમ કે આત્મજ્ઞાનનો સર્વ સાર તેમાં આવી જાય છે. વળી, શ્રીગુરુ કહે છે કે અહીં જે કંઈ કહેવાયું છે, સમજાવાયું છે, તે સઘળું સર્વ જ્ઞાનીઓને સમ્મત છે; તેમના ઉપદેશથી વિરુદ્ધ એક પણ વચન પ્રકાશવામાં આવ્યું નથી. સર્વ જ્ઞાનીઓનો નિશ્ચય અહીં આવીને સમાય છે.

જે વાત સર્વ જ્ઞાનીઓએ સ્વીકારેલ છે તેનું નિરૂપણ અહીં કર્યું છે એમ જણાવી, શ્રીગુરુ વાણીયોગની પ્રવૃત્તિ પૂરી કરી સહજ સમાધિમાં સ્થિત થાય છે. સત્યુરુષો મુખ્યપણે તો નિર્વિકલ્પ સ્વરૂપાચરણ વિષે જ નિમગ્ન હોય છે, પણ ક્યારેક વિકલ્પ ઊઠતાં ધર્મોપદેશ આપે છે. તેમનું મુખ્ય કાર્ય તો સ્વરૂપમાં લીન થઈ પરમાનંદને સાધવાનું છે, પરંતુ કોઈ સુપાત્ર જીવને જોઈને તેમને કરુણા ઉત્પન્ન થતાં તેને ઉપદેશ પણ આપે છે. શિષ્યની મોક્ષમાર્ગ સંબંધી શંકાઓનું સચોટ સમાધાન સરળપણે સંક્ષેપમાં કરી, તેની ઊંડી વિચારણા કરવાની ભલામણ કરી શ્રીગુરુ પોતાનું વક્તવ્ય પૂરું કરે છે અને તેઓ સહજ સમાધિમાં સ્થિત થાય છે. ભાષાસમિતિ વચનગુપ્તિમાં પરિણમતાં, શ્રીગુરુ મૌન થઈ આત્મસમાધિમાં લીન થાય છે.

વિશેષાર્થ જેવો ધર્મ કરવો હોય તેવો પોતાના આત્માને ઓળખવો જોઈએ. આત્માને ઓળખવો હોય તો જેમણે આત્માને ઓળખ્યો છે તેમનું પડખું સેવવું જોઈએ. સદ્ગુરુના નિરંતર અને નિકટ સમાગમથી આત્માની સમજણ પ્રાપ્ત થાય છે, તેનો અચિંત્ય મહિમા જાગે છે, તેને પ્રાપ્ત કરવાની તીખી તમન્ના જાગે છે. સદ્ગુરુને યથાર્થપણે ઓળખી, તેમની દઢ શ્રદ્ધા કરી, તેમનાં વચનો દ્વારા તત્ત્વોનું યથાર્થ સ્વરૂપ જાણી, તેમાં હેય-જ્ઞેય-ઉપાદેય તત્ત્વ ઓળખી, તત્ત્વોની યથાર્થ પ્રતીતિ કરી, વિપરીત માન્યતાઓ છોડી, યથાર્થ ભેદજ્ઞાન આદરી, અંતર્મુખતાનો અભ્યાસ કરતાં સ્વાનુભૂતિ પ્રગટે છે, નિજવૈભવના ભોક્તા થવાય છે. સદ્ગુરુનાં વચનોના અવલંબનથી કલ્યાણનું મૂળ એવું સમ્યગ્દર્શન પમાય છે.

સદ્ગુરુનાં પરમ શાંતરસમૂળ વીતરાગવચનો અંતરરોગ ટાળવા માટે અમૃત સમાન છે. પોતાના શાંત સ્વભાવને ભૂલીને પરમાં સુખ માનવું તે રોગ છે. તે રોગ સદ્ગુરુનાં વચનામૃતથી દૂર થાય છે. સદ્ગુરુનાં વચનો વડે આત્મસ્વભાવ ઓળખાય છે. આત્મસ્વભાવ ઓળખાતાં સ્વવિષયમાં રૃચિ જાગે છે અને ઇન્દ્રિયવિષયો પ્રત્યે વૈરાગ્ય આવે છે. ઇન્દ્રિયવિષયમાં રહેલી સુખબુદ્ધિનું વિરેચન થાય છે. વિષયોમાંથી સુખબુદ્ધિ ટળતાં મિથ્યાત્વરૂપી રોગ મટે છે. સાચી ધગશપૂર્વક જીવ જો સદ્ગુરુના વચનના અવલંબને શરીર વગેરે સર્વને શ્રદ્ધામાંથી જતાં કરે, અર્થાત્ આત્મા સિવાય સર્વ પરમાંથી અહંમમત્વ છોડી દે અને પરમાં સુખબુદ્ધિ વગેરે સઘળા વિપરીત અભિપ્રાયોને તજી દે તો અલ્પ કાળમાં તે મુક્ત થાય છે.

જેમ વૈદ્ય કહે કે આંગળી કપાવી નાખશો તો જ શરીર બચશે, તો ત્યાં આંગળી કપાવી નખાવતાં શરીર ટકશે એવો વિશ્વાસ આવવાથી આંગળી કપાવી નાખે છે. તેમ સદ્ગુરુ કહે છે કે 'જો તારે સમાધિસુખમાં સ્થિર થવું હોય તો શરીર અને રાગાદિની શ્રદ્ધા છોડ. હું શરીર છું, વિકારી છું એવી માન્યતા છોડ. રાગ અને શરીર જાય તોપણ તું રહીશ. તારો નાશ નહીં થાય. સિદ્ધ ભગવંત શરીર અને રાગ વિના જ જીવે છે. એ જ સાચું જીવન છે. પોતાના આત્માને શરીરરૂપ-વિકારરૂપ માનવાથી આત્માનું ભાવમરણ થાય છે. તું તારા સ્વભાવને શરીરથી અને વિકારથી જુદો ઓળખ. મારો આત્મા જ્ઞાન-દર્શનની મૂર્તિ છે, શરીરાદિ હું નથી અને રાગાદિ મારું સ્વરૂપ નથી એમ શ્રદ્ધા કરી તારા આત્મસ્વભાવની દઢતા કર અને શરીરાદિનો મહિમા ટાળ.

આત્માના મહિમા વડે શરીરાદિને ગૌણ કર. તારા શુદ્ધ સ્વભાવને ઓળખી, વિકારથી જુદો જાણી, વિકારને જતા કર.′

શરીરે ઝેર ચડ્યું હોય તો વૈદ્ય વમન કરાવીને તે કઢાવી નાખે છે, તેમ આત્મા ઉપર જે મિથ્યાત્વનું ઝેર ચડ્યું છે તે સદ્ગુરુ કઢાવે છે. તેમના બોધના અવલંબને મિથ્યાત્વરૂપી ઝેરનું વમન થાય છે, એટલે કે આત્માની ઓળખાણ વડે ઊંધી શ્રદ્ધાનું વમન કરતાં સમ્યક્ શ્રદ્ધા થાય છે. 'હું શરીર છું કે વર્તમાન વિકાર જેટલો છું' એમ ન માનતાં, 'હું શરીર અને વિકારથી રહિત શુદ્ધ પરમાત્મા છું' એમ પોતાના આત્માને ઓળખીને, મિથ્યા શ્રદ્ધાનું વમન કરતાં શુદ્ધ શ્રદ્ધા થાય છે. 'હું પરનું કરી શકું, પર મારું કરી શકે, પરથી મને લાભ-નુકસાન છે', એ આદિ સર્વ ઊંધી માન્યતા છૂટીને, 'હું તો જ્ઞાતાસ્વભાવી છું' એવી શ્રદ્ધા થાય છે.

પોતાના શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપની શ્રદ્ધા કર્યા પછી જીવ કમે કમે સ્થિર થાય અને રાગાદિનો ત્યાગ કરે તો આત્મસિદ્ધિરૂપ કાર્ય પૂર્ણ થાય. સાચી શ્રદ્ધા થયા પછી પણ જે રાગાદિ થાય, તે રાગાદિ પોતાના સ્વરૂપમાં નથી એમ સાધક માને છે. સાચી સમજણ આવતાં જે રાગ થાય તેને તે આદરણીય નહીં માનતાં, પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને જ આદરણીય માનીને તે તેમાં લીન થતો જાય છે અને ક્રમે ક્રમે સંપૂર્ણ સ્થિરતા કરીને મુક્ત થાય છે. પોતાના આત્માને ઓળખ્યા પછી જે રાગ થાય તેને સ્વરૂપસ્થિરતા વડે ક્રમે ક્રમે ટાળતાં એકલો શુદ્ધ આત્મા રહી જાય છે. જે પોતાને વિકારી અને શરીરવાળો માને છે, તેને રાગ વધે છે અને નવાં નવાં શરીરોનો સંયોગ થયા કરે છે, પરંતુ જે પોતાના આત્માને સર્વ પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી રહિત શુદ્ધ માને છે તે મુક્ત થાય છે.

મુક્તિ અર્થે પહેલાં તો પોતાના આત્માની દરકાર થવી જોઈએ કે 'મેં મારા આત્મા માટે વીતી ચૂકેલા અનંત કાળમાં કાંઈ નથી કર્યું. આજ સુધી શરીરાદિની મમતા માટે આત્માને જતો કર્યો છે, પણ આત્મા માટે કદી શરીરાદિને જતાં કર્યાં નથી. આત્માને ભૂલીને બહારના પદાર્થોનો મહિમા કર્યો હતો, જેના ફળરૂપે હું આ સંસાર-દુ:ખનો ભોગવટો કરી રહ્યો છું.' જીવે સંસારની તમામ આશાઓને, ભવિષ્યની સઘળી યોજનાઓને, સઘળાં સપનાંઓને અભરાઈ ઉપર ચડાવી દેવાં જોઈએ. તેણે પરિઘ તરફથી કેન્દ્ર પ્રત્યે જવાનું શરૂ કરવું જોઈએ. પરિઘ ઉપરની પ્રવૃત્તિ ગૌણ કરી કેન્દ્ર પ્રત્યે જવાનું શરૂ કરવું જોઈએ. પરિઘ ઉપરની પ્રવૃત્તિ ગૌણ કરી કેન્દ્ર પ્રત્યે સજાગ થવું જોઈએ. સઘનપણે જાગૃત થવું જોઈએ. કેન્દ્ર પ્રત્યે તીવપણે બોધપૂર્ણ થાય તો જીવ અત્યારે અને અહીં જ તેને પ્રત્યક્ષ અનુભવી શકે છે. આ કાર્ય અત્યારે પણ ઘટી જ શકે છે. જીવ ઇચ્છે તો ચોક્કસ હમણાં જ થઈ શકે છે, પરંતુ તેને માટે સઘન જાગરૂકતાની, તીવ બોધની જરૂર છે.

જીવને કેન્દ્રસ્થ થવામાં જપ, તપ, ધ્યાનાદિ વિધિઓ સહાયકારી નીવડે છે. જીવને તેના કેન્દ્ર ઉપર પહોંચવા માટે સત્સાધનો ઉપયોગી છે. આત્મવિકાસ માટે આ બધી વિધિઓ આવશ્યક તથા ઉપકારી છે. આ વિધિઓ દ્વારા આત્મા સુધી પહોંચવાનું લક્ષ હોય તો જ તેનું સેવન સાર્થક થાય છે. સત્સાધનો દ્વારા નિજાત્માની ઓળખાણ, તેની પ્રતીતિ અને તેમાં રમણતા એ જ ધર્મની યથાર્થ આરાધના છે. પોતાના આત્માનું અવલંબન લેવું તે ધર્મ છે અને તે ધર્મ આચરતાં અવશ્ય મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. માત્ર નિજભગવાન આત્માનો આશ્રય અહવો એ જ એક કરવા યોગ્ય કાર્ય છે. ભગવાન થવાની એ જ વિધિ છે. મોક્ષના અનંત અતીન્દ્રિય આનંદને પામવાનો એ જ ઉપાય છે. મોક્ષના ઉપાય સંબંધી સર્વ જ્ઞાનીપુરુષોનો આ જ મત છે કે જે શ્રીગુરુએ અત્યંત કરુણાપૂર્વક સુશિષ્ય સમક્ષ પ્રકાશ્યો છે.

સર્વ દેશ-કાળ અને મત-પંથના જ્ઞાનીપુરુષોનો મોક્ષના તાત્ત્વિક ઉપાય સંબંધી એક જ મત હોય છે. સર્વ જ્ઞાનીપુરુષો પરમાર્થમાર્ગ એકસરખો જ બતાવે છે. તેથી જ શ્રીમદે અહીં 'નિશ્ચય' શબ્દનો પ્રયોગ કરીને એમ બતાવ્યું છે કે સર્વ જ્ઞાનીઓના ઉપદેશની પદ્ધતિ અને પરિભાષા ભિન્ન ભિન્ન હોવા છતાં પણ સ્વાનુભવના આધારે થયેલો નિશ્ચય એક જ પ્રકારનો હોય છે, તેમાં ભિન્નતા હોતી નથી. આ વિષે શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે –

'આ ન્યાયમાં (ભાવમાં) અનંત જ્ઞાનીનો નિક્ષય સંક્ષેપમાં સંકેલાયો છે, સર્વ જ્ઞાનીઓનો અવિરોધ નિર્ણય અત્રે આવીને સમાય છે. જે જે નિર્ણય કહ્યા તે બધા આત્મધર્મને અનુલક્ષીને કહ્યા છે. અનંત જ્ઞાનીનો એકમત (અભિપ્રાય) છે અને એક અજ્ઞાની જીવના અનંત મત છે.'^૧

અજ્ઞાનીઓને આત્માનુભવ ન હોવાના કારણે એક જ વિષયમાં અનેક અભિપ્રાયો હોય છે, જ્યારે આત્માનુભવના કારણે અનેક જ્ઞાનીઓનો એક જ અભિપ્રાય હોય છે. સ્વાનુભવના આધારે, પરિભાષાના ભેદને ઓળંગીને જ્ઞાનીઓ એકબીજાના મંતવ્યોમાં રહેલ સામ્ય પારખી શકે છે. દેશ-કાળ કે મત-પંથના ભેદોને વીંધીને એકબીજાના અનુભવોની ભાષા તેઓ ઓળખી લે છે. ગમે તે રીતે અનુભવ થયો હોય, પણ બધા અનુભવીઓની ન્યાત એક જ છે. ઉચ્ચ શિખર ઉપર પહોંચવા માટે ભિન્ન ભિન્ન માર્ગે ઉપર જતા યાત્રિકો જેમ જેમ ઉપર જાય છે, તેમ તેમ એકબીજાની નજીક આવતા જાય છે અને ટોચ ઉપર પહોંચતાં તો સૌ એક જ સ્થળે આવીને મળે છે; તેમ જેમને જેમને આત્મતત્ત્વનો અપરોક્ષ અનુભવ થાય છે, તેમનામાં એક મૂળભૂત સાધર્મ્ય આવી જાય છે. તે છતાં તેમની અભિવ્યક્તિમાં ભેદ હોઈ શકે છે, કારણ કે તે અભિવ્યક્તિ

નીચેની બાબતો ઉપર આધાર રાખે છે –

- (૧) અભિવ્યક્તિ કરનાર વ્યક્તિનું અનુભવની ઘટના પહેલાંનું માનસિક ઘડતર.
- (૨) અભિવ્યક્તિ કરનાર વ્યક્તિની આજુબાજુની પરિસ્થિતિ, દેશ, કાળ આદિ.
- (૩) અભિવ્યક્તિ કરનાર વ્યક્તિ પોતાના અનુભવની વાત જેની આગળ વ્યક્ત કરી રહી હોય તેની બૌદ્ધિક અને આધ્યાત્મિક ભૂમિકા.
- (૪) અભિવ્યક્તિ કરનાર વ્યક્તિની શબ્દમાં અભિવ્યક્ત કરવાની પોતાની શક્તિ.

અભિવ્યક્તિ ભલે ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારે, ભિન્ન ભિન્ન પદ્ધતિએ, ભિન્ન ભિન્ન શબ્દોમાં થઈ હોય; પણ આત્માની તાત્ત્વિક સત્તા દેહથી પર છે અને એ સત્તામાં ઠરવું એ જ મુક્તિ છે - એ વાત દરેક અનુભવી પુરુષના, દરેક જ્ઞાનીના અંતરમાં વસી ગઈ હોય છે. વચનભેદ હોવા છતાં સર્વ મત-દર્શનના જ્ઞાનીઓએ એક જ વાત કરી છે, તેમનું પ્રયોજન એકમાત્ર મોક્ષનું જ હોય છે. તેમણે જુદાં જુદાં નામોએ એક સત્ને જ પ્રરૂપ્યું છે. જી શ્રીમદ્ લખે છે –

'મહાત્માઓએ ગમે તે નામે અને ગમે તે આકારે એક 'સત્'ને જ પ્રકાશ્યું છે. તેનું જ જ્ઞાન કરવા યોગ્ય છે. તે જ પ્રતીત કરવા યોગ્ય છે, તે જ અનુભવરૂપ છે. અને તે જ પરમ પ્રેમે ભજવા યોગ્ય છે.

તે 'પરમસત્'ની જ અમો અનન્ય પ્રેમે અવિચ્છિન્ન ભક્તિ ઇચ્છીએ છીએ.

તે 'પરમસત્'ને 'પરમજ્ઞાન' કહો, ગમે તો 'પરમપ્રેમ' કહો, અને ગમે તો 'સત્-ચિત્-આનંદ સ્વરૂપ' કહો, ગમે તો 'આત્મા' કહો, ગમે તો 'સર્વાત્મા' કહો, ગમે તો એક કહો, ગમે તો અનેક કહો, ગમે તો એકરૂપ કહો, ગમે તો સર્વરૂપ કહો, પણ સત્ તે સત્ જ છે. અને તે જ એ બધા પ્રકારે કહેવા ચોગ્ય છે, કહેવાય છે. સર્વ એ જ છે, અન્ય નહીં.

એવું તે પરમતત્ત્વ, પુરુષોત્તમ, હરિ, સિદ્ધ, ઇશ્વર, નિરંજન, અલખ, પરબ્રહ્મ, પરમાત્મા, પરમેશ્વર અને ભગવત આદિ અનંત નામોએ કહેવાયું છે.'^ર

અભિવ્યક્તિમાં ભલે ભેદ હોય, પણ સર્વ જ્ઞાનીપુરુષોનું પ્રયોજન એક જ હોય છે. અનંતા જ્ઞાનીઓનો નિશ્વય એક જ પ્રકારનો હોય છે, તેમાં કોઈ ભેદ પડતો નથી

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજીકૃત, 'યોગબિન્દુ', શ્લોક ૩

'मोक्षहेतुर्यतो योगो, भिद्यते न ततः क्वचित् । साध्याभेदात् तथाभावे, तृक्तिभेदो न कारणम् ।।'

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૨૬૭ (પત્રાંક-૨૦૯)

અને એ જ રહસ્ય અહીં ગોપવ્યા વિના પ્રગટ કરવામાં આવ્યું છે. શ્રીમદ્ આ ગાથામાં કહે છે કે અનંત જ્ઞાનીઓએ નિજપદની પ્રાપ્તિના ઉપાયનું જે રહસ્ય પ્રકાશ્યું છે તે જ અત્રે કહેવામાં આવ્યું છે. જેમણે પોતાનું શુદ્ધ સ્વરૂપ પ્રાપ્ત કર્યું છે એવા સર્વ જ્ઞાનીઓએ શુદ્ધાત્માની પ્રાપ્તિ માટે જે સદુપાય બતાવ્યો છે તે જ અત્રે કહેવામાં આવ્યો છે. સર્વ જ્ઞાનીઓએ પ્રતિપાદિત કરેલા સત્યનો સાર અહીં પ્રસ્તુત કરવામાં આવ્યો છે એમ શ્રીમદે ઘોષિત કર્યું છે.

પોતાને અનુભવસિદ્ધ થયેલો મોક્ષનો ઉપાય સર્વ જ્ઞાનીઓને સમ્મત છે એમ કહી શ્રીમદે તેની પ્રમાણભૂતતા તથા તેમની પોતાની લઘુતાનો પરિચય આપ્યો છે. શ્રીમદે સર્વત્ર પોતાની અનુભવવાણી ઉચ્ચારતાં તીર્થંકરોની અને પૂર્વાચાર્યોની સાક્ષી આપી છે, જેમ કે –

'પાંચમા અભ્યાસ સિવાયનો, તેની પ્રાપ્તિ સિવાયનો બીજો કોઇ નિર્વાણમાર્ગ મને સૂત્રતો નથી; અને બધાય મહાત્માઓને પણ એમ જ સૂત્ર્યું હશે - (સૂત્ર્યું છે).'^૧

'..... વાક્યો પ્રત્યેક મુમુક્ષુઓને મેં અસંખ્ય સત્પુરુષોની સમ્મતિથી મંગળરૂપ માન્યાં છે, મોક્ષનાં સર્વોત્તમ કારણરૂપ માન્યાં છે.'^ર

'એ જ સર્વ શાસ્ત્રનો, સર્વ સંતના હૃદયનો, ઈશ્વરના ઘરનો મર્મ પામવાનો મહા માર્ગ છે.'³

'સર્વ સ્થળે એ જ મોટા પુરુષોનો કહેવાનો લક્ષ છે, એ લક્ષ જીવને સમજાયો નથી.'⁸

'આમાં કહેલી વાત સર્વ શાસ્ત્રને માન્ય છે.'^પ

'એમાં નિર્ગ્રંથ પ્રવચનની સમસ્ત હાદશાંગી, ષટ્દર્શનનું સર્વોત્તમ તત્ત્વ અને જ્ઞાનીના બોધનું બીજ સંક્ષેપે કહ્યું છે;^{7દ}

'તીર્થંકરે પણ એમ જ કહ્યું છે; અને તે તેના આગમમાં પણ હાલ છે, એમ જાણવામાં છે.'^૭

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૨૨૯ (પત્રાંક-૧૪૩)

ર- એજન, પૃ.૨૪૬ (પત્રાંક-૧૬૬)

૩- એજન, પૃ.૨૫૧ (પત્રાંક-૧૭૨)

૪- એજન, પૃ.૨૬૦ (પત્રાંક-૧૯૪)

૫- એજન, પૃ.૨૬૩ (પત્રાંક-૨૦૦)

૬- એજન, પૃ.૨૬૮ (પત્રાંક-૨૧૧)

૭- એજન, પૃ.૩૪૫ (પત્રાંક-૩૯૭)

શ્રીમદ્ત્તી આ પદ્ધતિ પૂર્વાચાર્યોની પદ્ધતિનું સ્મરણ કરાવે છે. આચાર્યશ્રી કુંદકુંદ-દેવ 'સમયસાર' શાસ્ત્રની પ્રથમ ગાથામાં લખે છે કે –

'ધ્રુવ, અચળ અને અનુપમ ગતિને પ્રાપ્ત એવા સર્વ સિદ્ધ ભગવંતોને નમસ્કાર કરીને હે ભવ્યો! અનાદિ-અનંત એવું જે શ્રુતજ્ઞાન શ્રુતકેવળીઓ દ્વારા ઉપદેશાયેલું છે, તદનુસાર આ સમયસાર ગ્રંથમાં સ્વ-પરના અનાદિ મોહને નાશ કરવા માટે કહું છું.'

એ જ પ્રમાણે ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજ પણ 'અધ્યાત્મસાર'માં કહે છે કે –

'આ ગ્રંથને વિષે શાસ્ત્ર(જિનાગમ)થી તથા પંડિતોના સંપ્રદાય(ઉત્કૃષ્ટ બુદ્ધિમાન એવા હરિભદ્રાદિ પૂર્વસૂરિઓના સંપ્રદાયથી, અવિચ્છિન્ન ચાલી આવતી પરંપરાથી થયેલા ગુરુઓના આમ્નાય)થી અને અનુભવના યોગથી સારી રીતે પરિચિત થયેલી કોઈ અનિર્વચનીય એવી પ્રક્રિયાને હું કહું છું (કહીશ).'ર

શિષ્યને આત્માનાં છ પદ સંબંધી રહેલી તેની શંકાઓનું સચોટ સમાધાન આપી, તેને નિઃશંક કરી, તેનાં અંતર્ચક્ષુ ખોલી શ્રીગુરુ મૌન થાય છે. શ્રીગુરુનું વાણીયોગમાં પ્રવર્તન થયું હતું, તેમાંથી સહજ અટકવું થાય છે અને ઉપયોગ સહજ ભાવે સ્વરૂપમાં લીન થઈ જાય છે. શ્રીગુરુ સહજ ભાવે ત્રણે યોગ સ્થિર કરી આત્મ-સમાધિમાં લીન થઈ જાય છે. શિષ્યના અંતરમાં દિવ્ય પ્રકાશને પ્રગટવામાં નિમિત્ત થવાનું કાર્ય પૂર્ણ કરી શ્રીગુરુ સહજ સમાધિમાં મગ્ન થાય છે. સહજ સમાધિ વિષે શ્રીમદ્ પ્રકાશે છે –

'શરીર ઠીક રહે તે પણ એક જાતની સમાધિ. મન ઠીક રહે તે પણ એક જાતની સમાધિ. સહજસમાધિ એટલે બાહ્ય કારણો વગરની સમાધિ..... સમક્તિદૃષ્ટિ જીવને સહજસમાધિ છે. સત્તામાં કર્મ રહ્યાં હોય, પણ પોતાને સહજસમાધિ છે. બહારનાં કારણોથી તેને સમાધિ નથી, આત્મામાંથી મોહ ગયો તે જ સમાધિ છે..... સમક્તિ આવ્યા વગર કોઈને સહજસમાધિ થાય નહીં. સમક્તિ થવાથી સહેજે સમાધિ થાય.'³

૧- જુઓ ઃ આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'સમયસાર', ગાથા ૧

^{&#}x27;वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते । वोच्छामि समयपाहुइमिणमो सुयकेवलीभणियं ।।'

૨- જુઓ ઃ ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીકૃત, 'અધ્યાત્મસાર', પ્રબંધ ૧, શ્લોક ૭

[.] हुआ . उत्पन्धार श्रा पसास्य १५ श्रुस्त, अन्यार स्टार , श्रुवार १, श्रुस 'शास्त्रात्परिचितां सम्यक् संप्रदायाच्च धीमताम् । इहानुभवयोगाच्च प्रक्रियां कामपि ब्रुवे ।।'

૩- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૭૨૧ (ઉપદેશછાયા-૧૧)

સાધકને જ્યારે સમ્યગ્દર્શન થાય છે ત્યારે નિર્વિકલ્પ શુદ્ધોપયોગ થાય છે, પરંતુ ત્યારપછી શુદ્ધોપયોગરૂપ ધ્યાન તેમને ક્યારેક જ આવે છે. સમ્યગ્દર્શન નિરંતર ટકે છે, પણ ઉપયોગની એકાગ્રતા ટક્તી નથી. તેમનાં શ્રદ્ધા-જ્ઞાનમાંથી નિજવિષય છૂટતો નથી અને ચારિત્રની આંશિક પરિણતિ પણ ત્યાં રહે છે. આત્માના શુદ્ધ સ્વરૂપનું જ્ઞાન થાય છે ત્યારથી અંશે સ્વરૂપસ્થિરતાનું મંડાણ થાય છે. ત્યારપછી જેમ જેમ પુરુષાર્થ વધતો જાય છે, તેમ તેમ સ્થિરતા પણ વૃદ્ધિ પામતી જાય છે અને ઉચ્ચ ને ઉચ્ચ ગુણસ્થાનક પ્રાપ્ત થતું જાય છે. મુનિદશામાં મુખ્યપણે સ્વરૂપાચરણમાં જ લીનતા રહે છે. તેમનો ઉપયોગ વારંવાર અંતરમાં સ્થિર થાય છે, વારંવાર નિર્વિકલ્પ ધ્યાન થાય છે, વારંવાર આત્મસ્વભાવમાં ડૂબકી મારીને નિર્વિકલ્પ અનુભૂતિને પ્રાપ્ત થાય છે. તેમને અંતર્મુહૂર્ત કાળ સુધી સ્વાનુભવ રહે છે અને વારંવાર થોડા થોડા કાળ પછી ફરી પાછી સ્વાનુભવ દશા પ્રાપ્ત થયા જ કરે છે.

શુભાશુભ ભાવને ટાળવા માટે મુનિદશામાં સ્વરૂપની સ્થિરતારૂપ શુદ્ધ ઉપયોગ (સાતમું ગુણસ્થાનક) હોય છે, પણ જ્યારે તેઓ સ્વરૂપમાં નિર્વિકલ્પપણે સ્થિર ન રહી શકે ત્યારે શુભ ઉપયોગમાં (છકા ગુણસ્થાનક) આવે છે અને ત્યારે શાસ્ત્રનું શ્રવણ વાંચન, દેવ-ગુરુની ભક્તિ, શિષ્યને ઉપદેશ આદિ શુભ ક્રિયા તેમને હોય છે. તીલ્ર વિષય-કષાયનાં પરિણામ તેમને હોતાં નથી, પણ શુભ ભાવ હોવાના કારણે તેઓ શુભ ક્રિયા કરતાં દેખાય છે. શુભ ભાવ હોવાના કારણે જ્યારે તેમને સહજ કરુણા જાગે છે ત્યારે શિષ્યના આત્મકલ્યાણ અર્થે ધર્મોપદેશ, માર્ગદર્શન આદિ કાર્યોમાં તેઓ પ્રવૃત્ત થાય છે.

તેઓ નિષ્કારણ કરુણાને વશ થઈને શિષ્યને બોધ આપે છે, માર્ગદર્શન આપે છે, પ્રેરણા આપે છે. તેઓ શિષ્ય માટે જે મહેનત કરે છે તે કરુણાને વશ થઈને કરે છે, આનંદ માટે નહીં. આનંદ તો તેમને કેવળ આત્મામાં જ ભાસે છે. તેમને એવી કરુણાબુદ્ધિ હોય છે કે 'જે મને મળ્યું છે તે એને પણ કહી દઉં, એને પણ તે મળી જાય.' અજ્ઞાની કોઈને માર્ગદર્શન આપે છે તો તે આનંદને વશ થઈને આપે છે, કોઈ માટે કંઈ કરે તે આનંદ માટે કરે છે; જ્યારે જ્ઞાની નિષ્કારણ કરુણાથી બોધદાન કરે છે. બોધદાન કરતી વખતે પણ તેમની સ્વરૂપપ્રતીતિ છૂટતી નથી એવી તેમની સ્વરૂપ-મગ્નતા અને સ્વરૂપખુમારી હોય છે.

જ્ઞાનીની દશા અત્યંત પવિત્ર હોય છે. કદી મંદ રાગમાં જોડાય ત્યારે છજ્ા પ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે હોય, તો વળી સ્થિર થતાં સાતમા અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે આવે છે. પુરુષાર્થની નબળાઈના કારણે અલ્પ અસ્થિરતા આવી જાય છે અને પ્રશસ્ત રાગની વૃત્તિ ઊપજતાં તેઓ છકે ગુણસ્થાનકે આવે છે, પરંતુ એ અલ્પ અસ્થિરતા આત્મજ્ઞાનને રોધક પણ નથી અને સ્વરૂપસ્થિરતામાં અત્યંતપણે બાધક પણ નથી. ફરી પાછો શુદ્ધ ઉપયોગ સધાતાં તેઓ સાતમા ગુણસ્થાનકે આવે છે. આમ, તેઓ છજ્ઞા-સાતમા ગુણસ્થાનકે ઝૂલે છે. જ્યારે તેઓ શુદ્ધ ઉપયોગમાં હોય છે ત્યારે કાયાની ચેખ્ટા - હલન-ચલન, ગમનાગમન, ઊઠવું-બેસવું આદિ અટકી જાય છે. એ વખતે અડોલ કાષ્ઠપ્રતિમા જેવી નિશ્ચલ કાયસ્થિતિ હોય છે. વચનનું પ્રવર્તન સહજ રોકાઈ જાય છે અને તેઓ કેવળ આત્માનંદમાં લીન હોય છે. 'હું આ આનંદ ભોગવી રહ્યો છું', 'મારા આત્માના સહજ આનંદને વેદું છું' એવા વિકલ્પ પણ તેમને હોતા નથી, કારણ કે તેઓ નિર્વિકલ્પ દશામાં સ્થિત હોય છે.

ચૈતન્યસ્વરૂપમાં એકાગ્રતા થતાં ચાલવાની વૃત્તિ ન ઊઠે, બોલવાની વૃત્તિ ન ઊઠે કે મનમાં બીજા વિચારો ન આવે એ શરીરની, વચનની તથા મનની ગુપ્તિ છે. જ્ઞાની પોતાના આત્મામાં જ ઉપયોગને સાવધાન કરીને સ્વદ્રવ્યમાં એકાગ્ર થાય છે ત્યારે તેમને ત્રિગુપ્તિ હોય છે, એટલે કે મન-વચન-કાયા સંબંધી પ્રવૃત્તિનો ઉપયોગ છૂટતાં ઉપયોગ સ્વરૂપમાં જ ગુપ્ત થઈ જાય છે. સ્વદ્રવ્યમાં ઉપયોગ એકાગ્ર થતાં, પરદ્રવ્ય (મન-વચન-કાયા)માં પ્રવૃત્તિ ન રહેતાં મન-વચન-કાયાનો સમ્યક્ પ્રકારે નિરોધ થાય છે અને સ્વરૂપમાં જ ઉપયોગ ગુપ્ત રહે છે. અજ્ઞાની જીવ પાપચિંતન ન કરવાને, મૌન ધારવાને તથા ગમનાદિ ન કરવાને ગુપ્તિ માને છે; પણ પ્રશસ્ત રાગ વડે વિવિધ પ્રકારના જે વિકલ્પો થાય છે તેના તરફ તેનું લક્ષ નથી હોતું. સ્વરૂપમાં લીનતા થતાં મન-વચન-કાયાની ચેષ્ટા થાય નહીં એ જ સાચી ગુપ્તિ છે. આવી સહજસમાધિદશા જ્ઞાનીને વારંવાર આવતી હોય છે. સમાધિદશા વખતની સ્થિરતા વિષે પંડિત શ્રી દૌલતરામજીએ 'છ ઢાળા'માં કહ્યું છે —

'સમ્યક્ પ્રકાર નિરોધ મન-વચ-કાય, આતમ ધ્યાવતે; તિન સુથિર મુદ્રા દેખિ મૃગગણ ઉપલ ખાજ ખુજાવતેં.'^૧

અહીં જણાવ્યા પ્રમાણે મુનિ જ્યારે ગુપ્તિમાં હોય છે ત્યારે તેઓ એવા સ્થિર હોય છે કે ખંજવાળ આવતાં હરણ જેમ પથ્થર સાથે પોતાના શરીરને ખંજવાળે છે, તેમ મુનિની સ્થિર મુદ્રા જોઈને, તેમને પાષાણવત્ જાણીને, તેમના શરીર સાથે તે પોતાના શરીરને ઘસે છે.

મારી ચિત્તવૃત્તિ એટલી શાંત થઇ જાઓ કે કોઇ વૃદ્ધ મૃગ જેના માથામાં ખૂજલી આવતી હોય તે આ શરીરને જડપદાર્થ જાણી પોતાનું માથું ખૂજલી મટાડવા આ શરીરને ઘરો!'

૧- પંડિત શ્રી દૌલતરામજીરચિત, 'છ ઢાળા', ઢાળ ૬, કડી ૪ સરખાવો : 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૬૨૭ (પત્રાંક-૮૫૦)

^{&#}x27;મારું ચિત્ત, મારી ચિત્તવૃત્તિઓ એટલી શાંત થઇ જાઓ કે કોઇ મૃગ પણ આ શરીરને જોઇ જ રહે, ભય પામી નાસી ન જાય!

મુનિની શાંતતા અજબ હોય છે. તેમની મુદ્રામાં રૌદ્રભાવ, રાગભાવ કે હાસ્યાદિ ભાવ નથી હોતા, પરંતુ અત્યંત શાંત ભાવ હોય છે. તેમની મુદ્રામાંથી અદ્ભુત શાંતિ પ્રવહતી હોય છે. તેમની મુદ્રાનાં દર્શનથી જીવને શાંતિનો એવો અનુભવ થાય છે કે તે તેમની સાથેનું અનુસંધાન તોડી શકતો નથી. તે તેમને જોતો જ રહી જાય છે. તે એવો પ્રભાવિત થઈ જાય છે કે તેને બીજે કશે પણ જવાનું મન થતું નથી, તેમની પાસે જ બેસી રહેવાનું મન થાય છે. સુપાત્ર જીવને તેમના સાન્નિધ્યમાં ધન્યતાનો અનુભવ થાય છે, અહોભાવ સ્ફુરે છે. સહજ આત્મસ્વરૂપમાં ગુપ્ત થનારા અસંગ મહાત્માઓ આવા પ્રત્યક્ષ શાંતિમૂર્તિ હોય છે. ગુપ્તિ વખતે સ્વરૂપમાં જ તેમનો ઉપયોગ લીન હોય છે અને સ્થિર બિંબ થઈને અતીન્દ્રિય આનંદનો સ્વાદ માણે છે. ચારિત્ર-મોહનીયના ઉદયના કારણે ગુપ્તિરૂપે સ્થિર ન રહેવાય ત્યારે તેઓ સમિતિપૂર્વક, સંયમહેતુએ, જિનઆજ્ઞા અનુસાર સ્વરૂપલક્ષે બાહ્ય પ્રવૃત્તિમાં પ્રવર્તે છે. શ્રીમદ્ 'અપૂર્વ અવસર'ના કાવ્યમાં લખે છે —

'આત્મસ્થિરતા ત્રણ સંક્ષિપ્ત યોગની, મુખ્યપણે તો વર્તે દેહપર્યંત જો; ઘોર પરીષ્ઠહ કે ઉપસર્ગ ભયે કરી, આવી શકે નહીં તે સ્થિરતાનો અંત જો.

સંચમના હેતુથી ચોગપ્રવર્તના, સ્વરૂપલક્ષે જિનઆજ્ઞા આધીન જો; તે પણ ક્ષણ ક્ષણ ઘટતી જાતી સ્થિતિમાં, અંતે થાચે નિજસ્વરૂપમાં લીન જો.^{,૧}

ચારિત્રમોહનીયના ઉદયના કારણે જ્યારે જ્ઞાની આત્મામાં એકામ નથી થઈ શકતા ત્યારે તેઓ સમિતિપૂર્વક પ્રવર્તે છે. નિરિચ્છ જ્ઞાનીપુરુષનો સર્વ યોગવ્યાપાર ભાવપ્રતિબંધ વિનાનો, અનાસક્ત ભાવવાળો હોય છે, એટલે સ્નેહરૂપ - આસક્તિરૂપ ચીકાશના અભાવે તે કોરાધાકડ એવા જ્ઞાનીને કર્મરજ વળગતી નથી. તેઓ યોગપ્રવૃત્તિ કરવા છતાં બંધાતા નથી. જે યોગપ્રવૃત્તિ કરતાં અજ્ઞાની જીવો રાગથી ભરેલા હોય છે, તે પ્રવૃત્તિ કરતાં જ્ઞાની વૈરાગ્યયુક્ત હોવાથી, અજ્ઞાની જનોને બંધનું કારણ થતી યોગપ્રવૃત્તિ જ્ઞાનીપુરુષને નિર્જરાનું કારણ થાય છે. આ વિલક્ષણ વાત જ્ઞાનીના અપૂર્વ જ્ઞાનનું તથા અનન્ય વૈરાગ્યનું અદ્ભુત સામર્થ્ય સૂચવે છે.

પરમ વિરક્ત જ્ઞાનદશાવાળા મહાત્મા પુરુષની વાત ન્યારી છે. તેઓ ખાય છે, પીએ છે, બોલે છે, ચાલે છે ત્યારે પણ તેમની અંતરંગ ચેષ્ટા તો કંઈક જુદી જ હોય ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.પદ૪ (આંક-૭૩૮, 'અપૂર્વ અવસર', કડી ૪,૫) છે. તેમની અંતર્મુખ પુરુષાર્થસભર ચેષ્ટા આત્મિક પરિણતિયુક્ત હોય છે. બાહ્ય યોગ-ચેષ્ટા વખતે પણ અંતરમાં આત્મસ્વાસ્થ્ય એવું ને એવું જ રહે છે. તેઓ યોગિકિયામાં વર્તતી વખતે પણ નિરંતર અસંગપણાને જ ભજે છે. 'હું જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા છું, અસંગ છું' એવી દષ્ટિએ વર્તવાનો પુરુષાર્થ તો તે વખતે પણ ચાલુ રહે છે. ત્રણે યોગની પ્રવૃત્તિ કરતા હોવા છતાં નજર નિશાન ઉપર જ હોય છે, ચિત્ત આત્મસન્મુખ જ હોય છે. ચિત્તવૃત્તિપ્રવાહ સ્વરૂપની સન્મુખ જ રહે છે. તેમનું શરીર સંસારમાં અને ચિત્ત મોક્ષમાં હોય છે. તેમની પકડમાંથી શુદ્ધાત્મા ખસતો નથી. ગમે તેવા કર્મોદયમાં પણ તેઓ શુદ્ધાત્માની પકડ જાળવી રાખે છે. જ્ઞાની આવી અનુભવધારામાં ન રહી શકે ત્યારે લક્ષધારામાં રહે છે. લક્ષધારામાં હોય ત્યારે થતી ધર્મોપદેશ આદિ પ્રવૃત્તિ શિષ્યને આત્મવિકાસમાં ખૂબ સહાયક નીવડે છે. સ્વરૂપમાં પુનઃ એકાગ્રતા સધાતાં તેઓ સમાધિમાં નિમગ્ન થાય છે, અર્થાત્ લક્ષધારામાંથી અનુભવધારામાં સુસ્થિત થાય છે.

શ્રીગુરુએ સુપાત્ર શિષ્યના નિમિત્તે જે વાશીયોગ પ્રવર્તાવ્યો હતો, તેમાંથી ઉપયોગ પાછો વાળીને તેઓ સ્વરૂપમાં સ્થિર થાય છે. શ્રીગુરુની વાશી જે સહજતાથી પ્રગટી હતી, તે સહજતાથી અટકી જાય છે. સુશિષ્યના પુશ્યયોગના નિમિત્તે ભાષા વર્ગણાનો જેટલો યોગ હતો, તેટલાં વચન નીકળ્યાં. હવે જે પરિશામો વચનવિષયમાં પ્રવર્તતાં હતાં, તે પરિશામો સ્વવસ્તુસ્વભાવના વેદનમાં પ્રવર્તવાં લાગ્યાં. જે ભાવમન વિકલ્પસમૂહના કારણે ચલાયમાન થઈ પ્રવર્તતું હતું, તે ભાવમન સર્વ વિકલ્પોથી વિરામ પામ્યું અને સ્વવસ્તુસ્વભાવના અનુભવરૂપે પ્રવર્ત્યું. આવી અદ્ભુત સમાધિદશા શ્રીગુરુને વારંવાર સહજ વર્તતી હોય છે.

મોક્ષનો અપરિચિત માર્ગ બતાવી અનન્ય ઉપકાર કરનાર શ્રીગુરુની તો દશા જ કંઈક નિરાળી છે! શ્રીગુરુ સંસારના કિનારા ઉપર હોવા છતાં પણ સંસારના કિનારે નથી. આ કિનારા ઉપર હોવા છતાં જાણે બીજા કિનારા ઉપર છે! તેઓ આ વિશ્વમાં છે, પણ આ વિશ્વના નથી! તેઓ જગતજીવો જેવા દેખાય છે પણ તેમના જેવા નથી! દેહાદિ યોગની પ્રવૃત્તિમાં હોય અથવા શિષ્યની સમસ્યાનું સમાધાન કરતા હોય ત્યારે ચર્મચક્ષુએ જોવામાં આવે તો તેઓ આ કિનારાના લાગે, જગતજીવો જેવા લાગે; પરંતુ જ્યારે અંતરંગ દષ્ટિથી જોવામાં આવે તો તેમની વિદેહી દશાનું ભાન થાય. ત્યારે સમજાય છે કે તેમને જગતજીવો જેવા જ માનવા એથી વિશેષ મૂર્ખતા બીજી કોઈ હોઈ ન શકે. તેઓ દેહાદિની પ્રવૃત્તિમાં હોય કે શિષ્યને સર્વ જ્ઞાનીઓનો નિશ્વય સમજાવતા હોય, તેમની વૃત્તિ આત્મસન્મુખ જ હોય છે અને આત્મલીનતા સધાતાં તેઓ સહજ સમાયિમાં સ્થિત થાય છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'નિશ્ચય સર્વે જ્ઞાનીનો, એક પ્રકાર અભેદ; તેમાં મત ભેદ જ નથી, અભેદ એ જ અખેદ. નિશ્ચળ ભાવ સૌ જ્ઞાનીનો, આવી અત્ર સમાચ; પૂર્ણપણે સુપ્રકાશથી, તત્ત્વ દેષ્ટિએ જણાય. ગુદ્ધનું ગુદ્ધ તને કહ્યું, સાર તણો એ સાર; ધરી મૌનતા એમ કહી, વૃત્તિ આત્માકાર. ભાષા પુદ્દગલ ખેરવ્યાં, ઉદય અવ્યાપક ત્યાંય; લીન આત્મભાવે થયા, સહજસમાદિ માંચ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૪ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૬૯-૪૭૨)

ખંડ - ૨

પ્રકરણ - ૧૧

શિષ્યબોધબીજપ્રાપ્તિકથન

(ગાથા ૧૧૯ - ૧૨૭)

राहे अर्थ हा कार्य एक्ट्री कार करें कारतान.

બૂમિકા કેવળજ્ઞાનના બીજસ્વરૂપ એવા કલ્યાણપ્રદ સમ્યગ્દર્શનના નિવાસનાં સ્થાનક બૂમિકા એવાં આત્માનાં છ પદનું વિસ્તૃત કથન શ્રીમદે અદ્ભુત શૈલીથી ગુરુ-શિષ્યના સંવાદ દારા ગાથા ૪૫ થી ૧૧૮ સુધી કર્યું. ગાથા ૧૧૮માં શ્રીમદ્ જણાવે છે કે શ્રીગુરુ પોતાનું વક્તવ્ય પૂરું કરી સહજ સમાધિમાં મગ્ન થાય છે. શ્રીગુરુ દારા પ્રાપ્ત થયેલ છ પદની અદ્ભુત દેશના પામીને સુશિષ્યનું અંતઃકરણ પરમ સંતોષ અનુભવે છે. છ પદની આ દેશનાને ઝીલીને સુશિષ્યને અલૌકિક વિચારદશા જાગે છે. શ્રીગુરુએ આપેલ પ્રત્યેક ઉત્તર ઉપર શિષ્ય ઊંડાણથી વિચાર કરે છે અને તેથી તેને છ પદની નિઃશંક પ્રતીતિ થાય છે.

'કર વિચાર તો પામ' એવી શ્રીગુરુની આજ્ઞા ઉપાસતાં સુશિષ્યના અંતરમાં દઢ તત્ત્વનિર્ણય તથા તત્ત્વનિશ્ચય થાય છે. તત્ત્વનું સ્વરૂપ દરેક પડખાથી, જેમ છે તેમ અવિરોધપશે સમજાયાથી તથા સંપૂર્ણપશે સંદેહરહિત થવાથી તેનું હૃદય અનુપમ ભાવોથી સભર થઈ જાય છે. તેનો આનંદ અત્યંત વધી જાય છે અને તેવી સ્થિતિમાં શ્રીગુરુની શાંત-વીતરાગી મુદ્રા અને સમાધિસ્થ દશાનું દર્શન થતાં તેનું ચિત્ત અંતર્મુખ બને છે.

સુશિષ્યને શ્રીગુરુની શાંત મુખાકૃતિનું અવલોકન કરતાં, તેમનાં મન-વચન-કાયાની અદ્ભુત ચેષ્ટાનાં રહસ્યો નિહાળતાં, તેમના અદ્ભુત ગુણો દેષ્ટિગોચર થાય છે અને તે ઉપર વિચાર કરતાં તેના અંતરમાં શ્રીગુરુ પ્રત્યે અત્યંત અહોભાવ જાગૃત થાય છે. તેનો શ્રીગુરુ પ્રત્યેનો પ્રેમ અત્યંત વધી જાય છે. તેના પ્રેમભાવમાં વધુ ઊંડાણ આવતાં તેને પ્રેમસમાધિ પ્રાપ્ત થાય છે. પ્રેમસમાધિ એટલે સત્યુરુષનાં સુખરૂપ સ્મરણ-દર્શનથી સહજપણે ઉત્પન્ન થતી સ્થિરતા અથવા એકાગ્રતા. શ્રીગુરુના સંશયહારી વચનામૃત, ઉપકારી સમાગમ અને આત્મસમાધિદશાવાળી મુદ્રાનું અનુસંધાન થવાથી તેના ભાવો અત્યંત વૃદ્ધિ પામે છે અને તેને આનંદરૂપ, ઉત્તમ ફળને આપનારી તેમજ સુગમતાએ આત્મસમાધિ પ્રાપ્ત કરાવનારી એવી પ્રેમસમાધિ પ્રાપ્ત થાય છે.

સુશિષ્યના અંતરમાં શ્રીગુરુ પ્રત્યે પ્રેમ પ્રવહતો હોવાથી શ્રીગુરુએ આપેલ સ્વરૂપ-લક્ષી બોધનું ઘોલન સહજતાથી થાય છે. જીવ જ્યારે પોતાના આત્મસ્વરૂપને દર્શાવનારાં વચનોનું ઘોલન કરે છે, ત્યારે તે વચનોમાં રહેલ દિવ્ય ભાવ તેને સ્પર્શતા જાય છે અને 'દેહ તે હું' એવી પકડવાળી માન્યતા છૂટતી જાય છે. સંકલ્પ-વિકલ્પ અતિ મંદ થાય છે અને પંચ ઇન્દ્રિયનો સંગ છોડી તેનો ઉપયોગ આત્મસન્મુખ થતો જાય છે.

ઉપયોગ શાંત અને સ્થિર થતાં સુશિષ્ય વિશેષ વિશેષ અંતર્મુખ થઈ, અંતે અતીન્દ્રિય અને નિર્વિકલ્પ બની સ્વસંવેદન કરે છે - આત્માનો અનુભવ કરે છે.

શ્રીગુરુની છ પદની અદ્ભુત દેશનાથી, તેમની આત્મસમાધિદશા વખતની અલૌકિક મુદ્રાનાં દર્શનથી અને તેમના પાવનકારી સત્સમાગમના નિમિત્તથી સુશિષ્યને બોધબીજની પ્રાપ્તિ થાય છે. શ્રીગુરુએ આત્માનાં છ પદનો ઉપદેશ જેવા પ્રકારે કર્યો હતો, તેવા પ્રકારે તેનું સ્વરૂપ હવે તેને અનુભવથી સમજાય છે. તેને પોતાનું શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપ દેહથી સ્પષ્ટપણે ભિન્ન ભાસે છે. આત્મા સંબંધીનો અનુભવ સહિતનો આવો વાસ્તવિક બોધ થાય ત્યારે બોધબીજની પ્રાપ્તિ થઈ કહેવાય.

બોધબીજનું બીજું નામ સમ્યગ્દર્શન છે. સમ્યગ્દર્શન થતાં દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ અજ્ઞાન દૂર થાય છે અને નિર્વિકલ્પ સ્વસંવેદન થાય છે. સ્વસંવેદન થતાં કેવળજ્ઞાનરૂપી વૃક્ષનું બીજ પ્રગટ થાય છે. જેમ બીજમાંથી વૃક્ષ થાય છે, તેમ સમ્યગ્દર્શન અખંડ આત્મ-સ્થિરતારૂપ કેવળજ્ઞાનમાં પરિણમે છે. આ વિષે શ્રીમદ્દ કહે છે –

'જે અવિરતિસમ્ચક્**દષ્ટિનામા ચોશું ગુણસ્થાનક છે; જ્યાં મોક્ષમાર્ગની સુપ્રતી**તિ થાય છે. આનું બીજું નામ 'બોધબીજ' છે. અહીં આત્માના અનુભવની શરૂઆત થાય છે, અર્થાત્ મોક્ષ થવાનું બીજ અહીં રોપાય છે.'^ર

સુશિષ્યને આત્માનુભૂતિ - બોધબીજની પ્રાપ્તિ થાય છે. પ્રથમ વાર થયેલી આ નિર્વિકલ્પ દશા અલ્પ ક્ષણોની હોય છે, પરંતુ આ અલ્પ કાળની અનુભૂતિ વખતે તેને અવર્ણનીય શાંતિ અને અનુપમ આનંદનું વેદન થાય છે. આ દશા અલ્પ ક્ષણો માટે માણીને જ્યારે તે વિકલ્પાત્મક દશામાં આવે છે ત્યારે તે શ્રીગુરુ પ્રત્યેના ભક્તિભાવથી અત્યંત છલકાઈ જાય છે. શ્રીગુરુની કૃપાથી થયેલ અનુભૂતિનું વર્ણન કરવા, પોતાનો ઉલ્લાસ પ્રદર્શિત કરવા અને શ્રીગુરુના ઉપકાર પ્રત્યેનો પોતાનો અહોભાવ વ્યક્ત કરવા તે આતુર થઈ જાય છે.

આત્માનો અનુભવ થયા પછી શિષ્યના અંતરમાં પ્રગટેલી દશાનું તથા કલ્યાણ-દાતા શ્રીગુરુના ઉપકાર પ્રત્યેના શિષ્યના ભક્તિભાવનું અદ્ભુત હૃદયસ્પર્શી વર્શન શ્રીમદે સુશિષ્યના મુખે 'શિષ્યબોધબીજપ્રાપ્તિકથન' શીર્ષક હેઠળ નવ ગાથા(૧૧૯ થી ૧૨૭)માં રજૂ કર્યું છે. ગાથા ૧૧૯ થી ૧૨૩ સુધીમાં સુશિષ્ય તેનો સ્વાનુભવ શ્રીગુરુ સમક્ષ વ્યક્ત કરે છે તથા ગાથા ૧૨૪ થી ૧૨૭ સુધીમાં પોતાના સ્વાનુભવમાં કારણભૂત એવા શ્રી ૧- જુઓ : આયાર્યશ્રી ગુણધરજીકૃત, 'કસાય પાહું'ની આયાર્યશ્રી વીરસેનજીકૃત ટીકા, 'જયધવલા',

પુસ્તક ૧, ભાગ ૧, પ્રકરણ ૩૧, પૃ.૪૪-૪૫

'केवलणाणंसस्स ससवेयणषच्चक्खेण णिब्बाहेणुवलंभादो ।'

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૭૩૬ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૧)

સદ્ગુરુદેવના ઋશનો સ્વીકાર કરે છે. શ્રીમદે આ ગાથાઓમાં શિષ્યનો અદ્ભુત સમર્પણ ભાવ દર્શાવ્યો છે.

ગાથા ૧૧૯ થી ૧૨૩માં શ્રીમદે છ પદની સંક્ષિપ્ત વ્યાખ્યા કરી છે. તેમાં શ્રીમદ્નો ગંભીર શુભાશય બે પ્રકારે જોવામાં આવે છે –

- (૧) કોઈ ભવ્ય જિજ્ઞાસુ જીવ 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'નો અભ્યાસ કરી આગળ વધતાં છ પદની યથાર્થ વ્યાખ્યા ભૂલી જાય અથવા તેની સમજણમાં અયથાર્થતા આવી જાય અથવા કંઈ સંદેહ ઉત્પન્ન થાય તો તેના સમાધાન અર્થે તે પદોની સંક્ષિપ્ત વ્યાખ્યા કરીથી કહી છે, જેથી ન્યાયયુક્ત સિદ્ધાંતો તેના અંતરમાં દઢ થાય અને સમજણમાં કોઈ પણ પ્રકારની ભૂલ થવા ન પામે. કદાપિ આત્માર્થી જીવ વિચક્ષણ અને સુબુદ્ધિવાન હોય અને તેથી જો ઉપરોક્ત દોષનો ઉદ્ભવ થવાની શક્યતા ન હોય તો ત્યાં પણ આ વ્યાખ્યાથી તે જીવના નિર્મળ ભાવોની વૃદ્ધિ થાય એ શુભાશય છે.
- (૨) શ્રી જ્ઞાનીપુરુષોએ આ છ પદને સમ્યગ્દર્શનનાં મુખ્ય નિવાસભૂત કહ્યાં છે; જે અત્યંત સંદેહરહિત છે, સહજ વિચારમાં સપ્રમાણ થવા યોગ્ય છે, પરમ નિશ્ચયરૂપ જણાવા યોગ્ય છે એમ કહ્યું છે. તેની પ્રતીતિરૂપે શિષ્યનું દષ્ટાંત અહીં મોજૂદ છે. શ્રીગુરુના ઉપદેશ પછી સુશિષ્યને વિચારબળ વડે છ પદના ભાવોનો નિશ્ચય થાય છે, આત્મજ્ઞાન પ્રગટે છે અને તે પોતે પોતાના અનુભવનું શ્રીગુરુ સમક્ષ નિવેદન કરે છે. તે અનુભવ-સ્વરૂપ કથનની સચોટ અસર વાંચનાર અથવા શ્રવણ કરનાર જિજ્ઞાસુ જીવ ઉપર થયા વિના રહેતી નથી. તેથી આ વાંચીને કે સાંભળીને જિજ્ઞાસુ જીવના અંતરમાં જાગૃતિ આવે, છ પદના ન્યાય સપ્રમાણ જણાય અને પરિણામે સ્વાનુભવનો પુરુષાર્થ ઉપાડવા અંતરમાં વૃત્તિ ઊછળે એવો શુભ આશય પણ અહીં જણાય છે.

કૃતજ્ઞતાના ભાવથી ભાવિત થયેલો સુશિષ્ય, પોતાને થયેલી બોધબીજપ્રાપ્તિને વાણી દ્વારા પ્રદર્શિત કરતાં કહે છે –

'સદ્દગુરુના ઉપદેશથી, આવ્યું અપૂર્વ ભાન; <mark>ગાથા</mark> નિજપદ નિજમાંહી લહ્યું, દૂર થયું અજ્ઞાન.' (૧૧૯)

શિષ્યને સદ્દગુરુના ઉપદેશથી અપૂર્વ એટલે પૂર્વે કોઇ દિવસ નહીં આવેલું એવું ભાન આવ્યું, અને તેને પોતાનું સ્વરૂપ પોતાને વિષે યથાતથ્ય ભાસ્યું, અને દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ અજ્ઞાન દૂર થયું. (૧૧૯)

ભાવાર્થ શ્રી સદ્ગુરુના ઉપદેશથી શિષ્યને અપૂર્વ ભાન આવ્યું અને તેનું અનાદિનું અજ્ઞાન દૂર થઈ જ્ઞાનપ્રકાશ થયો. સદ્ગુરુના સર્વોત્તમ સદુપદેશથી તેની આત્મભાંતિ દૂર થઈ. સદ્ગુરુની દેશનાના નિમિત્તે દેશનાલબ્ધિ, પ્રાયોગ્યલબ્ધિ અને

કરણલબ્ધિ પ્રગટ થતાં પોતાનું સ્વરૂપ પોતાના વિષે યથાતથ્ય ભાસ્યું. અનાદિ કાળથી દેહ, ઇન્દ્રિય, પ્રાણ આદિને તે પોતાનું સ્વરૂપ સમજતો હતો, તે અજ્ઞાન દૂર થયું અને આત્મામાં નિજબુદ્ધિરૂપ અનુભવસિદ્ધ નિશ્ચય થયો.

ત્રણ લોક અને ત્રણ કાળમાં ઉત્કૃષ્ટમાં ઉત્કૃષ્ટ પદાર્થ આત્મા છે અને તે જ પોતાનું સ્વરૂપ છે એવો પ્રગટ અનુભવ સુશિષ્યને શ્રીગુરુના બોધથી થયો છે. સદ્ગુરુના ચરણસેવન વિના નિજ ચિદાત્મતત્ત્વનો લક્ષ થવો દુર્લભ છે. આત્મજ્ઞાની ગુરુનાં દર્શન, સમાગમ, બોધ, આજ્ઞા, સેવા આદિથી સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય છે. જેમ જેમ જીવ સદ્દગુરુનાં બોધ અને આજ્ઞામાં એકતાન થતો જાય છે, તેમ તેમ તે આત્માવલંબી થતો જાય છે અને કોઈ ધન્ય પળે ચિત્તવૃત્તિ સ્વરૂપમાં લય પામતાં સ્વરૂપનો સાક્ષાત્કાર થાય છે. આમ, પુષ્ટનિમિત્તરૂપ સદ્દગુરુના ઉપદેશનું અવલંબન આત્માને સ્વરૂપારોહણ કરવાનો સુગમ અને શ્રેષ્ઠ ઉપાય છે એમ અહીં સિદ્ધ થાય છે.

વિશેષાર્થ સદ્ગુરુની વાણીનો મહિમા અપરંપાર છે. તેમના એક એક શબ્દમાં નર્યું માધુર્ય ભર્યું હોય છે, અમૃત ભર્યું હોય છે, આત્મહિતની પ્રેરણા ભરી હોય છે. તેમનો પરમાર્થપ્રેરક ઉપદેશ જીવને અનાદિની મોહનિદ્રામાંથી જગાડે છે. સદ્ગુરુના પરમ શાંત રસમૂળ વચનામૃત જીવને દેહ અને રાગથી ભિન્ન કરીને સ્વરૂપમાં સ્થિર થવામાં પરમ અવલંબનરૂપ છે. ચક્રવર્તીને છ ખંડનું રાજ, ૯૬,૦૦૦ સ્ત્રી, ૯૬ કરોડ પાયદળ, ૯૬ કરોડ ગામ, ૭૨,૦૦૦ નગર, ૪૮,૦૦૦ પાટણ હોય છે; પરંતુ એ સર્વના અવલંબને અંતર્મુખ થઈ શકાતું નથી; પણ સદ્ગુરુની વીતરાગવાણીના અવલંબને અંતર્મુખ થવાય છે. વીતરાગવાણીના આધારે ઉપયોગની દિશા પલટાતાં આત્માનંદની પ્રાપ્તિ થાય છે.

સદ્ગુરુને અંતરમાં એકમાત્ર ચૈતન્યરસ જ ઘૂંટાય છે, તેથી તેમની વાણીમાં પણ ચૈતન્ય જ નીતરે છે. આમ હોવાથી સદ્ગુરુના દરેક શબ્દમાં એવું સામર્થ્ય ભર્યું હોય છે કે જો તે યથાર્થ રુચિપૂર્વક સાંભળવામાં આવે તો જાત અને જગત પ્રત્યેની જીવની દિષ્ટિમાં પરિવર્તન આવે છે; પરંતુ જો સદ્ગુરુનો ઉપદેશ માત્ર કર્શેન્દ્રિયના મનોરંજનનું સાધન બની રહે તો જીવના ઉદ્ઘારની કોઈ શક્યતા નથી રહેતી. આત્મહિતની રુચિ વિનાનું શ્રવણ તો જીવે આ ચતુર્ગતિપરિભ્રમણમાં ભમતાં ભમતાં અનેક વાર કર્યું છે, પણ તેથી કાંઈ કારજ સર્યું નથી. હવે તો એવી રીતે શ્રવણ કરવું જોઈએ કે સીધાં પરિભ્રમણનાં પ્રત્યાખ્યાન જ લેવાઈ જાય. જીવ ઉપર શ્રવણનો આવો પ્રભાવ ન પડે તો તેનો કોઈ આરો કે ઓવારો નથી.

જીવમાં સુપાત્રતા પ્રગટી હોય તો સદ્ગુરુના બોધનું રુચિપૂર્વક શ્રવણ થાય છે. સુપાત્ર જીવને અનંત કાળના પરિભ્રમણથી થાક લાગ્યો હોય છે. તેને સમજાયું હોય છે

કે 'મારો પરમાં પોતાપણાનો જે ભાવ છે તે જ પરિભ્રમણ કરાવે છે. એ મિથ્યા ભાવના કારણે હું અત્યાર સુધી પરની ચિંતાથી ધેરાયેલો રહ્યો છું અને તેથી જ પરિભ્રમણની સમસ્યાનું મને ભાન પણ નથી રહ્યું, તેનું વિસ્મરણ જ થયા કર્યું છે. આ ઘણી મોટી અક્ષમ્ય ભૂલ હું કરતો રહ્યો છું.' તેને એવી ઝૂરણા જાગે છે કે 'હવે ગમે તે થાઓ. પણ મારે આ પરિભ્રમણ અને તેનાં કારણોથી છૂટવું જ છે.' તેને પરિભ્રમણથી મક્ત થવાની જિજ્ઞાસા વેદના સહિત ઉત્પન્ન થઈ હોય છે. આ વેદનાના કારણે પંચેન્દ્રિયના વિષયોમાં રહેલી આસક્તિ મોળી પડે છે. સંસારને સ્પષ્ટ પ્રીતિથી સેવવાનો અભિપ્રાય શિથિલ થાય છે. જગતમાં રહેલી તેની સુખબુદ્ધિ મંદ પડે છે. જે જગતમાંથી સુખ મેળવવા તે નિરંતર ઝાંવા મારતો હતો, તે જગત તેને અનિત્ય, અસાર, અરમણીય લાગે છે. આખો સંસાર તેને દુઃખમય લાગે છે. આ વૈરાગ્ય તેનામાં મુક્તિનો મક્કમ નિર્ધાર જગાડે છે. પૂર્ણ સુખ પૂર્ણ નિર્દોષતામાં લાગ્યું હોવાથી પરિપૂર્ણ નિર્દોષ દશા પ્રાપ્ત કરવાનું ધ્યેય બંધાય છે. તે ભાવે છે કે 'હું વીતરાગ ભગવાન અને વીતરાગ સંતોનો ઉપાસક છું. મારા જીવનમાં પણ તેમના જેવો વીતરાગી રસ આવવો જ જોઈએ. વીતરાગરસના સ્વાદ વગર જીવનમાં સંતોષ નથી. ભલે દુનિયાની ગમે તેટલી વિભૂતિ મળે, અજ્ઞાનમય જીવન તો સાવ રસ વગરનું છે, ફીક્કું છે. ચૈતન્યનું જ્ઞાનમય જીવન જ સરસ છે. ભલે તે માટે દુનિયાની ગમે તેવી પ્રતિકુળતા સહન કરવી પડે. મારે એ મેળવવું જ છે. સદ્દુરુના બોધના આશ્રયે મારે મારી જીવનદશા પલટાવી નાખવી છે.'

આવા સુપાત્ર જીવને જ્યારે મહત્પુણ્યના ઉદયથી સદ્ગુરુનો ઉપદેશ પ્રાપ્ત થાય છે ત્યારે તે એ ઉપદેશથી રંગાઈ જાય છે. સદ્ગુરુની આત્મલક્ષી, આત્મહિત કરનારી વીતરાગવાણીને ઝીલીને સત્પાત્ર જીવ તેને પોતાના અંતરમાં પરિણમાવી દે છે. જેમ કોરા ઘડા ઉપર પાણીનું ટીપું પડતાં જ ઘડો તે ટીપાને ચૂસી લે છે, તેમ જેને તીવ આત્મજિજ્ઞાસા જાગી છે અને ભવબંધનના દુઃખથી જે અતિ સંતપ્ત છે એવો આત્માર્થી જીવ, સદ્ગુરુ પાસેથી આત્મશાંતિનો ઉપદેશ મળતાં જ તેને ચૂસી લે છે, એટલે કે એ ઉપદેશને તરત જ પોતાના આત્મામાં પરિણમાવી દે છે.

જેમ તૃષાતુરને શીતળ પાણી મળતાં તે તેને પ્રેમપૂર્વક પીએ છે, તેમ આત્માના અર્થીને ચૈતન્યના શાંત રસથી ભરપૂર સદ્દ્ગુરુની વાણી મળતાં તે તેને અત્યંત રુચિપૂર્વક ઝીલીને અંતરમાં પરિણમાવી દે છે. કોઈ ધખધખતા તડકામાં રેતીના રણ વચ્ચે આવી પડ્યો હોય, તરસથી તરફડતાં પ્રાણ કંઠગત થઈ ગયો હોય, 'પાણી, પાણી'નો પોકાર કરતો હોય અને આવા સંજોગોમાં જો તેને શીતળ, મધુર પાણી મળે તો તે કેવી તલપથી પીએ; તેમ વિકારની આકુળતારૂપ ધોમ ધખતા તડકામાં, ભવરણની વચ્ચે ભમતાં જે જીવને આત્મશાંતિની ખૂબ તૃષા લાગે છે, તે આત્મશાંતિનો પોકાર કરે છે;

આવા સમયે જ્ઞાનીની શીતળ મધુરી વાણી મળતાં તે આત્મશાંતિની અતિશય તલપથી ચૈતન્યના શાંત રસથી ભરપૂર વાણીનું પાન કરે છે અને તેને તે બોધ અંતરમાં પરિણમી જાય છે.

આત્માર્થી જીવને સદ્ગુરુનો ઉપદેશ શ્રવણ કરવામાં અત્યંત ઉલ્લાસ આવે છે. આત્માનો મહિમા વધારવા સદ્ગુરુ એકની એક વાત ફરી ફરી કહે તો તેનાથી તેને કંટાળો નથી આવતો. જીવને દેહ ઉપર રાગ હોવાથી તથા ખાદ્ય પદાર્થો આરોગવાથી દેહની પુષ્ટિ થાય છે એવો વિશ્વાસ હોવાથી, રોટલા વગેરે વારંવાર ખાવામાં કંટાળો નથી આવતો; તેમ સુપાત્ર જીવને આત્માની રુચિ થઈ હોવાથી અને સદ્ગુરુના ઉપદેશથી આત્માર્થનું પોષણ થાય છે એવો વિશ્વાસ હોવાથી, સદ્ગુરુનો બોધ વારંવાર શ્રવણ કરતાં પણ તે કંટાળતો નથી.

આત્માર્થી જીવ જગતની મમતા ઘટાડીને, સત્સમાગમે આત્માનું સ્વરૂપ સાંભળી, તે બોધનું ચિંતન કરે છે. સુપાત્ર જીવને સદ્દ્ગુરુ દ્વારા આત્માનો બોધ પ્રાપ્ત થતાં સુવિચારણા જાગે છે. બીજા બધા વિકલ્પો દૂર કરીને તે ફરી ફરી એ બોધનું જ સ્મરણ કરે છે. બોધનું અવલંબન લેતાં તેની શક્તિઓની દિશા બદલાઈ જાય છે. બોધના આશ્રયથી તેનામાં રૂપાંતરણ ઘટિત થાય છે. બોધ એવો કીમિયો છે કે જેનાથી બધું જ બદલાઈ જાય છે. જ્યારે જીવ કોઈ વૃત્તિની પાસે - કોઈ ભાવની પાસે બોધને લઈ જાય છે, તો એ બોધથી તે વૃત્તિના - તે ભાવના ગુણધર્મ બદલાઈ જાય છે અને તેની શક્તિઓ એવી ને એવી જ નથી રહેતી જેવી તે પહેલાં હતી. શક્તિઓ માટે એક નવો માર્ગ ખૂલી જાય છે. હવે એ શક્તિઓ બહિર્યાત્રા નથી કરતી, પણ તેની અંતર્મુખ યાત્રા શરૂ થાય છે. એ આત્મા તરફ ગતિ કરે છે. અનાદિથી જે આત્મસ્વરૂપ એકદમ અપરિચિત ભાસતું હતું, તે હવે પરિચિત લાગવા માંડે છે. અનંત કાળથી પરપદાર્થોમાં તીવ મમતા કરીને જે આત્માનો પરિચય કરવાની તેણે દરકાર કરી ન હતી, તે આત્માનો વારંવાર પરિચય કરવાનું તેને મન થાય છે. શરીરથી ભિન્ન એવા આત્માના અસ્તિત્વનો પરિચય કરવાનો તે વારંવાર પ્રયત્ન કરે છે.

આ પુરુષાર્થ કરતાં બહારના કોઈ પણ અંતરાયોથી તે મૂંઝાતો નથી. તે તરફ તેનું લક્ષ પણ જતું નથી. તેના લક્ષમાં તો એકમાત્ર ચૈતન્ય ઘોળાયા કરે છે. જીવનની બાહ્ય પ્રતિકૂળતાઓથી ગભરાઈને તે પોતાની સાધના છોડી દેતો નથી. નાની-મોટી આફ્તો પસાર કરીને તે આગળ વધતો રહે છે. દરેક આફ્રત પાર કરીને તે મોક્ષમાર્ગે પ્રગતિ કરતો રહે છે. આફ્રતને એકબાજુ ફગાવી તે પોતાનું કામ ચાલુ રાખે છે. તેને તો સ્વભાવની પ્રાપ્તિ ન થાય ત્યાં સુધી ચેન નથી પડતું. આવી દશા આવે ત્યારે આત્માની ખરી ધગશ જાગી કહેવાય. આવી દશાવાળો જીવ આત્માને પ્રાપ્ત કરીને જ

જંપે છે. જ્યાં સુધી આવું અંતરપરિણમન ન થાય ત્યાં સુધી પોતાના આત્માર્થની કચાશ સમજીને, સૂક્ષ્મ નિજાવલોકન કરીને તે આત્માર્થની ઉગ્રતા કરે છે.

આત્માર્થી જીવને સંસારનાં કાર્યોમાંથી રસ ઊડી જાય છે. તેને આત્મા સિવાય બીજે બધે નીરસતા લાગે છે. તેને રૂંવાડે રૂંવાડે સ્વભાવ પ્રત્યેનો ઉત્સાહ જાગે છે. તેને તો માત્ર આત્મસન્મુખ થવાનું જ ગમે છે. તે દેહાદિથી ભિન્ન એવા આત્માનું અસ્તિત્વ લક્ષમાં લઈને પોતાનાં પરિણામને વારંવાર આત્મસન્મુખ કરે છે. તેની વિચારધારા આત્મવસ્તુ તરફ જ પ્રવાહિત થાય છે. તેની રહેણીકરણી આત્મવસ્તુને અનુરૂપ થાય છે. કોઈ પણ પ્રવૃત્તિ કરતી વખતે તે સતત આત્મજાગૃતિ સેવે છે. તેની પરિણતિ વેગપૂર્વક સ્વઘર તરફ વધતી જાય છે અને ઉપયોગની વધુ ને વધુ સૂક્ષ્મતા વડે તે બધી સૂક્ષ્મ વિપરીતતાઓને પણ તોડતો જાય છે. તેને ભેદજ્ઞાનના બળથી અંતરમાં શાંતિ આવતી જાય છે.

સતત ઘોલનના પ્રતાપે એક એવી ક્ષણ આવે છે કે ચિત્તવૃત્તિપ્રવાહ ચૈતન્યસત્તામાં લય પામે છે અને તેને આત્માનો અનુભવ થાય છે. આત્મા વિષય-કષાયોથી છૂટીને ચૈતન્યના પરમ ગંભીર શાંત રસમાં ઠરી જાય છે. તેને પોતાનું અત્યંત સુંદર મહાન અદ્ભુત આનંદમય અસ્તિત્વ સ્વસંવેદનપૂર્વક પ્રતીતિમાં આવી જાય છે. ઉપયોગ સ્વાનુભવમાં પ્રવર્તતાં નિર્વિકલ્પ આનંદદશા અનુભવાય છે. ત્યાં દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર સંબંધી, નય-પ્રમાણ વગેરે સંબંધી કોઈ પણ વિચાર હોતો નથી, સર્વ વિકલ્પો વિલય પામ્યા હોય છે. સ્વાનુભવ થતાં દષ્ટિમાં ગુંલાટ મારી તે અજ્ઞાનીમાંથી જ્ઞાની થાય છે, બેભાનમાંથી સભાન થાય છે. તેને આત્માનું અપૂર્વ ભાન પ્રગટે છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

'પરિભ્રમણ કરતો જીવ અનાદિકાળથી અત્યાર સુધીમાં અપૂર્વને પામ્યો નથી. જે પામ્યો છે, તે બધું પૂર્વાનુપૂર્વ છે. એ સઘળાની વાસનાનો ત્યાગ કરવાનો અભ્યાસ કરશો. દઢ પ્રેમથી અને પરમોલ્લાસથી એ અભ્યાસ જયવંત થશે, અને તે કાળે કરીને મહાપુરુષના યોગે અપૂર્વની પ્રાપ્તિ કરાવશે.'^૧

સદ્ગુરુના ઉપદેશના અવલંબને જીવનો ઉપયોગ જ્યારે સ્વરૂપમાં એકાત્ર થાય છે ત્યારે તેને નિજપદની પ્રાપ્તિ થાય છે. અનાદિથી જીવ પુદ્દગલ સાથે એકતા માનતો હોવાથી, પોતાના સ્વતત્ત્વને જાણતો નહીં હોવાથી દુઃખી થાય છે. પરંતુ તેનું સ્વતત્ત્વ તો પુદ્દગલથી અત્યંત જુદું છે. તેનું ચૈતન્યતત્ત્વ શરીરાદિ સાથે જરા પણ એકમેક થયું નથી, સગરૂપ અશુદ્ધ પણ થયું નથી. એવું ને એવું જ્ઞાનાનંદથી ભરપૂર શુદ્ધ ચૈતન્યતત્ત્વ શાશ્વતપણે બિરાજે છે. પરદ્રવ્ય-પરભાવથી ભિન્ન એવા સ્વતત્ત્વને દેખતાં જ પરમ આનંદની, પ્રસન્નતાની પ્રાપ્તિ થાય છે.

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૨૫૬ (પત્રાંક-૧૮૩)

જો કોઈ માણસને પોતાનું મકાન જોવું હોય અને જો તે મકાનને પીઠ દઈને ઊભો રહે તો તે મકાન જોઈ શકે નહીં. પરંતુ જો તે માણસ મકાનસન્મુખ મુખ રાખે અને પછી પોતાની દેષ્ટિ મકાન તરફ કરે તો તે માણસ તે મકાન અને તેની અંદરની ઘરવખરી વગેરે બધું જોઈ શકે. તેમ જો આત્મા જોવો હોય તો અંતર્દષ્ટિ વડે જ દેખાય, નિજઘર તરફ દષ્ટિ કરીને જુએ તો જ દેખાય. સ્વ તરફ દષ્ટિ કરે તો અનંત જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્રાદિ ગુણોનો ભંડાર એવો આત્મા દેખાય. ત્રિકાળી શુદ્ધ નિજાત્મપ્રભુ તરફ દષ્ટિ કરવી એ જ તાત્ત્વિક મોક્ષમાર્ગ છે.

નિજપદ તો સતત અંતરમાં હાજર છે જ, પણ જીવે તેના ઉપર દિષ્ટિ માંડી નથી. જીવનો સંબંધ તેની સાથે થયો નથી, અર્થાત્ સંબંધ હોવા છતાં પણ તે સંબંધનું તેને ભાન નથી. જેમ કે નાક ઉપર ચશ્મા હોવા છતાં એનું ભાન જો ન રહે તો તે વ્યક્તિ અન્યત્ર ચશ્મા શોધવાનો પ્રયત્ન કરે છે. ચશ્માનું નાક ઉપર હોવું, તે સાથે એનું ભાન હોવું તે પણ એટલું જ અગત્યનું છે. તે રીતે સ્વતત્ત્વ હાજર છે જ. સ્વતત્ત્વથી જીવ જરા પણ વેગળો નથી, માત્ર વિમુખ જ થયો છે. તેણે તેને કોઈ દિવસ ગુમાવ્યું જ નથી, કારણ કે તે તેનું અસ્તિત્વ છે. એ એક જ સંપત્તિ એવી છે કે જે ખોઈ શકાતી નથી, કારણ કે જીવ પોતે જ તે છે. છતાં જીવ તેને શોધે છે કે જે ક્યારે પણ ખોવાયું નથી, જેનું માત્ર વિસ્મરણ જ થયું છે.

સ્વતત્ત્વની પ્રાપ્તિ માટે 'જાગવું' એ જ એક ઉપાય છે. જાગૃત થવા સિવાય બીજો કોઈ માર્ગ નથી. આત્મ-અજ્ઞાન એ નિદ્રા છે, તેમાંથી જાગવું જરૂરી છે. ઊંઘમાંથી જાગવું એ જ સત્યને મેળવવું છે. જીવ ઊંઘમાં હોવાથી આત્મા પાસે છે છતાં તે તેને જોતો નથી. જ્ઞાનીઓ પોકાર કરીને જીવને જગાડે છે. તેઓ જીવની ઊંઘ ઉડાડે છે, ઘાતક એવી સ્વપ્નદશામાંથી જગાડે છે. તેમનો બોધ જીવની નિદ્રાને અને સ્વપ્નોના અંધકારને તોડી નાખે છે. તેમના ઉપદેશથી જીવ ભાનમાં આવે છે, જાગૃત થાય છે.

જીવ જાગૃત થતાં 'હું શરીર નથી, હું રાગ-દેષ નથી, હું તો માત્ર ચૈતન્ય છું, જ્ઞાયક છું, જાણનારો છું. રાગ-દેષ તો પર છે, પરના નિમિત્તે ઊપજે છે, એ મારો સ્વભાવ નથી. હું રાગ-દેષથી ભિન્ન, સિદ્ધ સમાન શુદ્ધ, જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા, સહજ, આનંદથી પરિપૂર્ણ, અનંત ગુણરત્નોનો સમુદ્ર, ચિદ્રૂપ આત્મા છું' એવું નિજપદ સ્વસંવેદનમાં આવે છે. આવું નિજપદ જેણે નિજમાં પ્રાપ્ત કર્યું, આત્મભાવનું અને અન્ય ભાવનું ભિન્નપશું સ્વસંવેદનથી જેને સમજાયું, તેને બોધબીજ ઉત્પન્ન થયું એમ કહેવાય છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

'આ આત્મભાવ છે, અને આ અન્યભાવ છે, એવું બોધબીજ આત્માને વિષે પરિણમિત થવાથી અન્યભાવને વિષે સહેજે ઉદાસીનતા ઉત્પન્ન થાય છે, અને તે

ઉદાસીનતા અનુકમે તે અન્યભાવથી સર્વથા મુક્તપણું કરે છે.'

સ્વ અને પરની ભિન્તાનો અનુભવાત્મક બોધ થતાં આત્મામાં ચૈતન્યના શાંત રસની વર્ષા થાય છે અને અનાદિના વિષય-કષાયની ભયંકર આગ ક્ષણમાત્રમાં ઠરી જાય છે. શ્રાવણ માસમાં ઘનઘોર વર્ષા થતાં જેમ શ્રીષ્મ ઋતુનો ઉકળાટ શમી જાય છે, તેમ આત્મભાન થતાં ચૈતન્યમાં આનંદના ફુવારા ઊડે છે, શાંતિની અમીધારા વરસે છે અને તે શાંતિની શીતળ ધારા વિષય-કષાયના અગ્નિને બુઝાવી દે છે. જ્ઞાન થતાં જ આત્મા ચૈતન્યના પરમ શાંત રસમાં મગ્ન થાય છે અને તે વિષય-કષાયોથી જુદો પડી જાય છે.

એક બાજુ વીતરાગી શાંત રસનો દરિયો અને બીજી બાજુ સંસારનો રાગરૂપી દાવાનળ, તે બન્નેને ભિન્ન જાણનારું સમ્યગ્જ્ઞાન રાગના દાવાનળને બુઝાવી નાંખે છે અને જીવ શાંતિમાં ઠરી જાય છે. જેમ બરફ અને અગ્નિનો સ્પર્શ તદ્દન ભિન્ન જાતિનો છે. બરફ ઠંડો છે અને અગ્નિ ઉષ્ણ છે. તેમ ચૈતન્ય અને રાગનો અનુભવ તદ્દન જુદી જાતિનો છે. ચૈતન્ય શાંતરસરૂપ છે અને રાગ આકુળતારૂપ છે. પોતાના સ્વરૂપનું ભાન થતાં જ જીવ ચૈતન્યના શાંત રસનું પાન કરે છે અને તેને કોઈ આકુળતા કે દુઃખ રહેતાં નથી.

આત્મા તો અવિકારી, જ્ઞાનસ્વભાવી છે, પણ જીવ તેનાથી અજાણ હોવાના કારણે શરીરમાં આત્મબુદ્ધિ કરે છે. આત્મસ્વરૂપનું અજ્ઞાન હોવાથી જીવ પોતાને દેહ, ઇન્દ્રિય, પ્રાણ, બુદ્ધિરૂપ માને છે અને પરમાં અહં-મમબુદ્ધિ કરી દેહાત્મભાવને પોષતો રહે છે. દેહમાં આત્મબુદ્ધિરૂપ મૂળ ભૂલના કારણે સ્ત્રી-પુત્રાદિમાં મમબુદ્ધિની કલ્પના થાય છે, રાગાદિ પરભાવને વિષે આત્મભાવની કલ્પના થાય છે અને જીવ મૂઢ બને છે. ર શરીરમાં આત્મબુદ્ધિ કરી હોવાથી શરીરને અનુકૂળ એવી વસ્તુઓમાં તેને સુખ-સલામતી દેખાય છે અને તેથી તે તેમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટની કલ્પનાઓ કર્યા કરે છે. તે અનુકૂળ સામગીમાં રાગ કરે છે અને પ્રતિકૂળ સામગીમાં દેખ કરે છે. શરીરમાં અહંબુદ્ધિ, શરીરાશ્રિત વસ્તુઓમાં મમબુદ્ધિ અને ઇષ્ટ-અનિષ્ટબુદ્ધિ કરવાથી અનેક પ્રકારની આકુળતા ઉત્પન્ન થાય છે, વિધવિધ પ્રકારના સંકલ્પ-વિકલ્પ થાય છે. તે સતત ક્લેશમય રહે છે. આમ, અજ્ઞાની જીવનું આખું જીવન બેહોશીમાં જ વ્યતીત થાય છે.

જીવ મોહને વશ થઈ, આત્મભાન ભૂલી, અનાદિથી આવી બેભાન દશામાં ડૂબેલો હતો; તે હવે સદ્દ્ગુરુના ઉપદેશ દ્વારા જાગ્યો, અર્થાત્ તેને હવે અપૂર્વ ભાન

'स्वपराध्यवसायेन देहेष्वविदितात्मनाम् । वर्तते विभ्रमः पुंसां पुत्रभार्यादिगोचरः ।।'

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૪૨૧ (પત્રાંક-૫૨૫)

૨- જુઓ : આચાર્યશ્રી પૂજ્યપાદસ્વામીકૃત, 'સમાધિતંત્ર', શ્લોક ૧૧

પ્રગટ્યું. અહીં 'આવ્યું અપૂર્વ ભાન' દારા માત્ર આત્માની બૌદ્ધિક સમજણ કે શાસ્ત્રોક્ત માહિતી અભિપ્રેત નથી, પરંતુ સ્વાનુભવથી ઉત્પન્ન થયેલી પ્રતીતિ અને જાગૃતિ અભિપ્રેત છે. જે સ્વરૂપ સમજ્યા વિના જીવ અનંત દુઃખ પામ્યો હતો, તે સ્વરૂપનું ભાન - પૂર્વે કોઈ દિવસ નહીં થયેલું એવું ભાન, સદ્દ્ગુરુના ઉપદેશ દારા લાધ્યું અને પોતાનું સ્વરૂપ પોતાને વિષે જેમ છે તેમ યથાતથ્ય ભાસ્યું. જેમ પવન વાદળાંને દૂર કરી સૂર્યનું દર્શન કરાવે છે, તેમ સદ્દ્ગુરુના બોધ દારા અજ્ઞાન દૂર થઈ સ્વરૂપસૂર્યનું દર્શન થાય છે. અનાદિનું દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ અજ્ઞાન દૂર થાય છે. જે સદ્દ્ગુરુના ઉપદેશ દારા પોતાને અપૂર્વ ભાન પ્રગટે છે, તેમના પ્રત્યે શિષ્યને અહોભાવ થાય છે અને અંતરમાં તે ઊંડી કૃતજ્ઞતાનો ભાવ વેદે છે. ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા લખે છે —

'તે કૃતજ્ઞ શિષ્યને સદ્ગુરુનો અનન્ય ઉપકાર કેવો વેદાય? જેમ બેશુદ્ધ કરતા ઔષધથી (ધતૂરા, મદીરા, chloroform) જીવ શરીરનું ભાન ભૂલી જાય છે, બેલેશ બની જાય છે, તેમ આત્મા દર્શનમોહના ઉદયથી આત્મભાન ભૂલી બેભાન થઇ ગયો હતો, તે આત્મભાન જેણે જગાડ્યું તે સદ્દગુરુ ભગવાનનો કેવો અનન્ય પરમ ઉપકાર? જેણે અનંત ગુણનિધાન અચિત્ય ચિન્તામણિ સ્વરૂપ એવા આત્માનું ભાન પ્રગટાવી સમ્યગ્દર્શન કરાવ્યું એવા સદ્દગુરુ ભગવાનનો કેવો અનંત અપાર અચિત્ય ઉપકાર?'

જ્ઞાનરૂપી અંજનશલાકા(આંજવાની સળી)થી અજ્ઞાનરૂપી અંધકારથી અંધ એવા પોતાનાં નેત્ર ખોલનાર સદ્દ્પુરુનો શિષ્યને અત્યંત મહિમા વર્તે છે. મિથ્યાત્વના તાળાના કારણે જે ચૈતન્યખજાનો બંધ હતો, તે શ્રી સદ્દ્પુરુ ભગવાને અનંત કૃપા કરીને બતાવ્યો અને જ્ઞાનાનંદરૂપી નિધાનનો સ્વામી બનાવ્યો; તેથી શિષ્ય શ્રીગુરુનો ઉપકાર માને છે. પોતાના અંતરમાં શ્રીગુરુનો અદ્ભુત પ્રભાવ વેદાતાં શિષ્યને શ્રીગુરુ પ્રત્યે અપૂર્વ ભક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે.

આમ, આ ગાથામાં સુશિષ્ય પોતાને થયેલા અપૂર્વ ભાનનો સ્વીકાર કરે છે.^ર

'मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् । यत्त्वयोत्त्कं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ।।'

અર્થ – હે ભગવાન! મારા ઉપર અનુગ્રહ કરવા આપે જે પરમ ગોપ્ય-ગોપનીય અધ્યાત્મવિષયક વચનોનું કથન કર્યું છે, તેનાથી મારું અજ્ઞાન નષ્ટ થઈ ગયું છે, અર્થાત્ મારી અવિવેકબુદ્ધિ નષ્ટ થઈ ગઈ છે.

– 'શ્રીમદ્ ભગવદ્ગીતા', અધ્યાય ૧૧, શ્લોક ૧

૧- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', પૃ.૪૭૮

૨- આ પ્રકારનું કથન 'શ્રીમદ્ ભગવદ્ગીતા'માં પણ જોવા મળે છે. શ્રીકૃષ્ણ ઢારા સદુપદેશનું ષાન કર્યા પછી અર્જુન 'શ્રીમદ્ ભગવદ્ગીતા'ના અગિયારમાં અધ્યાયમાં શ્રીકૃષ્ણને સંબોધીને કહે છે :

સુશિષ્યને દેશનાલિલ્ધ પ્રગટ્યા પછી બાકી રહેલી બે લિલ્ધ પણ પ્રગટે છે અને વિકલ્પ ઠરી જતાં નિર્વિકલ્પ સ્વસંવેદનનો અદ્ભુત આનંદ પ્રગટે છે. આ કાર્યમાં શ્રીગુરુનો ઉપદેશ નિમિત્તકારણ છે અને શિષ્યની સત્પાત્રતા તે ઉપાદાનકારણ છે. સદ્દ્ગુરુના ઉપદેશનું ઉત્તમ નિમિત્ત પામીને સુપાત્ર શિષ્ય પોતાના સ્વરૂપને પામે છે. આ રીતે અહીં નિમિત્ત અને ઉપાદાનની સંધિ ગર્ભિતપણે બતાવી છે.

મધ બનાવવા માટે મધમાખી ફૂલ ઉપર બેસે છે. ફૂલની પરાગરજ લે છે. એ પરાગરજ એના પેટમાં પહોંચે છે ત્યારે એની સાથે અમુક પ્રકારના રસ મળે છે. એ રસ મળે ત્યારે જ પેલી પરાગરજમાંથી મધ તૈયાર થાય છે. ત્યારપછી મધમાખી એ મધનો મધપૂડામાં સંગ્રહ કરે છે. પરાગરજ ફૂલમાં રહેલી હોય છે, પરંતુ એ મધ નથી. મધમાખીના પેટમાં જે રસ હોય છે એ પણ મધ નથી. એ બન્નેના સંયોજનથી મધ તૈયાર થાય છે. તેમ નિમિત્ત અને ઉપાદાન બન્નેના સંયોજનથી કાર્ય નીપજે છે. પરાગરજ એટલે સદ્ગુરુબોધ, મધમાખી એટલે જીવ અને પેટના રસ એટલે જીવની ઉપાદાનશક્તિ. સદ્ગુરુનાં વચનામૃત, મુદ્રા અને સત્સમાગમ દારા આજ પર્યંત સુષુપ્ત રહેલી જીવની ઉપાદાનશક્તિ જાગૃત થાય છે. જીવમાં એક નવીન પ્રકારનું આધ્યાત્મિક વલણ પ્રગટે છે. પરમાર્થના લક્ષે આત્માર્થી જીવ જેમ જેમ સદ્ગુરુર્યી ફૂલ તરફ વધુ આકર્ષાતો જાય છે, જેમ જેમ બોધરૂપી પરાગરજ વધુ ને વધુ ગ્રહણ કરતો જાય છે; તેમ તેમ તેની ઉપાદાનશક્તિ વધુ ને વધુ જાગૃત થતી જાય છે. એ સત્પુરુષાર્થના પરિણામે આત્મજ્ઞાનરૂપી મધની ઉત્પત્તિ થાય છે.

આત્મપ્રાપ્તિના કાર્યમાં શિષ્યની આત્મપ્રાપ્તિની ઝૂરણા - વેદના કેવી હોય છે અને આ કાર્યમાં સદ્દ્ગુરુ કઈ રીતે મદદરૂપ બને છે તે એક ઉદાહરણ દ્વારા સમજીએ –

એક પાંચ વર્ષના બાળકની મા મેળામાં ખોવાઈ ગઈ. મેળાની અપાર ભીડમાં તેઓ બન્ને છૂટા પડી ગયા. દીકરો પોલીસચોકીએ પહોંચ્યો. તે મા ખોવાયાની ફરિયાદ લખાવવા ઇચ્છતો હતો, તેથી તેને ઇન્સ્પેક્ટર પાસે લઈ જવામાં આવ્યો. બાળકે તે ઇન્સ્પેક્ટરને કહ્યું કે 'મારી મા મેળામાં ખોવાઈ ગઈ છે.' તેણે બાળકને એવી જગ્યાએ ઊભો કર્યો કે જ્યાંથી મેળામાં આવનારી બધી સ્ત્રીઓ નીકળતી હતી. તેણે બાળકને કહ્યું કે 'અહીંથી નીકળતી બધી સ્ત્રીઓને ધ્યાનથી જો અને તારી માને તું શોધી લે.' જેમ બાળકે પોતાની માને સ્વયં શોધવી પડશે, કોઈ તેની મા શોધી આપશે નહીં, ઇન્સ્પેક્ટર પણ નહીં; તેમ આત્માર્થીએ આત્માની પ્રાપ્તિ સ્વયં જ કરવી પડશે. સદ્ગુરુ માત્ર સહાયક છે. પોતાના પુરુષાર્થ વિના અન્ય દારા તે મળી જશે એવી આશા જીવે રાખવી વ્યર્થ છે.

બાળક જાણતો હતો કે સાંજ સુધી જો મા નહીં મળે તો મા વિના અંધારામાં

અને તે પણ એકલા એકલા આખી રાત કાઢવી પડશે. આ સભાનતાથી તે સર્વ કાર્યોને ભુલીને માત્ર તેની માને શોધવાના કાર્યમાં જ લીન રહ્યો. સાધકને પણ ખ્યાલ હોય છે કે જીવનની સંધ્યા સુધીમાં જો આત્મા નહીં મળે તો ચાર ગતિમાં અને ચોર્યાસી લાખ યોનિઓમાં અનંત કાળ સુધી ભટકવું પડશે. પોતાને અનંત દુઃખ ભોગવવું પડશે એવી ખબર હોવાથી તે મનુષ્યભવનો અમુલ્ય સમય વિષય-કષાયમાં બરબાદ નથી કરતો. જો એ બાળકને કોઈ કહે કે તડકામાં ઊભા રહીને બહુ થાકી ગયો હશે. જરા ખા-પી. રમતો રમ, પછી માને શોધજે. હજી તો આખો દિવસ બાકી છે, જલદી શું છે?..... તો તે તેનું સાંભળે? ના. એવું નથી કે બાળક ભૂખ્યો જ રહેશે. તે ખાશે પણ ખરો, પણ તેને એમાં રસ નહીં પડે. તડકો સહન નહીં થાય તો છાયડામાં બેસશે પણ ખરો, પણ તેનું ધ્યાન તો માને શોધવામાં જ લાગેલું રહેશે. એક પણ સ્ત્રી તેના ધ્યાનની બહાર નહીં જાય. તેમ સાધક ભોજનાદિ કરે પણ તેનું ધ્યાન સદા આત્મા ઉપર હોય છે. પુષ્યોદયે અનુકૂળ સુવિધાઓ મળે તો તેમાં અજાગૃત થઈ લિપ્ત નથી બનતો. તે પોતાનું ધ્યાન સદા આત્મા ઉપર રાખે છે. વ્યવહારમાં જોડાવું પડે તો જોડાય છે. પણ દુષ્ટિ લક્ષ ઉપરથી હટતી નથી. જેમ બાળકને સાંજ પડ્યા પહેલાં માને શોધવી જ છે એવી તાલાવેલી હતી, તેમ આ દેહ છૂટે તે પહેલાં દેહદેવળનો દેવ પ્રાપ્ત કરવો જ છે એવી સાધકને તીવ્ર તાલાવેલી રહે છે.

જેમ બાળકે પોતાની માની ખોજ માટે મેળાની સમસ્ત સ્ત્રીઓને બે ભાગમાં વિભાજિત કરી હતી, એકમાં માત્ર પોતાની મા અને બીજામાં સર્વ અન્ય સ્ત્રીઓ; તેમ આત્માર્થી પણ સ્વરૂપપ્રાપ્તિ માટે વિશ્વનાં સમસ્ત દ્રવ્યોને બે ભાગમાં વિભાજિત કરે છે. એકમાં માત્ર સ્વદ્રવ્ય, અર્થાત્ નિજ શુદ્ધાત્મા અને બીજામાં તમામ પરદ્રવ્ય, અર્થાત્ પોતાના આત્મા સિવાયના અન્ય સર્વ જડ-ચેતન પદાર્થો.

જેવી રીતે બાળકને પોતાની માને શોધવા માટે અન્ય સર્વ સ્ત્રીઓને જોવી તો પડતી હતી, તે છતાં મળવા-આદરવા-ભેટવાયોગ્ય સ્ત્રી તો તેને માત્ર પોતાની મા જ લાગતી હતી; તેમ આત્માર્થીને આત્મપ્રાપ્તિના પંથે વિચરતાં બીજા પદાર્થો જોવા- જાણવા તો પડે છે, પણ તન્મય થવા જેવો પદાર્થ તો તેને એક સ્વ-આત્મા જ લાગે છે. ત્રણ કાળ - ત્રણ લોકમાં પોતાપણું સ્થાપિત કરવા જેવો પદાર્થ તો એક પોતાનો આત્મા જ પ્રતીત થાય છે.

બાળક માને શોધવાની પ્રક્રિયામાં અનેક સ્ત્રીઓને જોતો હતો, પણ તેની દષ્ટિ કોઈ પણ સ્ત્રી ઉપર જામતી ન હતી. જેવું નક્કી થતું કે આ તેની મા નથી કે તરત તે નજર ફેરવી દેતો. તેની નજર સામે સેંકડો સ્ત્રીઓ આવતી, પણ આ મારી મા નથી તે જણાતાં જ દષ્ટિ તરત જ તે સ્ત્રી ઉપરથી હટી જતી. બાળક તે અન્ય સ્ત્રીને જોયા જ કરતો ન હતો, પરંતુ તેના ઉપરથી દેષ્ટિ ખસેડી તરત પોતાની માને શોધવા લાગતો. માની બાથમાં જવાની તેને તલપ લાગી હતી. સુંદર સ્ત્રી દેખાય તોપણ તેનું ચિત્ત તો માને શોધવામાં જ લાગેલું રહેતું. તેને સુંદરતામાં રસ પડતો ન હતો. સ્ત્રીની સુંદરતા આદિમાં તે અટકતો ન હતો. કોની મા હશે એવા વિચારમાં પણ તે અટકતો ન હતો. તેમ સાધક પણ વિકલ્પોમાં ઉલઝાતો નથી, વિકલ્પોને વ્યર્થ લંબાવતો નથી. જે પરપ્રવૃત્તિ કરવી પડે તે પતાવી તત્કાળ તે સંબંધી વિકલ્પોથી તે નિવૃત્ત થઈ જાય છે. સાધક પરપદાર્થને જાણતી વખતે તે સંબંધીના વિકલ્પો લંબાવતો નથી. જે પ્રયોજનથી તેને જાણવાનું થાય છે, તે પ્રયોજન સિદ્ધ થતાં તે સંબંધી વિકલ્પોને વિરામ આપે છે. જેમ બીજી સ્ત્રીઓની સુંદરતાદિનું પ્રયોજન ન હોવાથી બાળક ત્યાંથી નજર હટાવી લેતો હતો, તેમ આત્મપ્રાપ્તિનાં કાર્યમાં સાધક પરપદાર્થના અવલોકનને લાભપ્રદ માનતો નથી અને લક્ષ્યસિદ્ધિના નિજકાર્ય પ્રત્યે પૂર્ણપણે સમર્પિત રહે છે.

જેમ તે બાળક બીજી સ્ત્રીઓને જાણવા છતાં તેને ભેટતો ન હતો, પણ જેવી તેની મા મળી કે તરત જ તેને ભેટી પડ્યો; તેમ આત્માર્થી સાધક પરદ્રવ્યોને જાણે તો છે, પણ તે તેમાં તન્મય નથી થતો; પરંતુ જ્યારે આત્મા તેના જ્ઞાનનું જ્ઞેય બને છે ત્યારે તે તેમાં જ તન્મય થઈ જાય છે. તે અત્યંત આનંદવિભોર બની જાય છે. આ આનંદમય નિજાનુભૂતિની દશા એ જ સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રની અવિરુદ્ધ એકતા છે અને એ જ મુક્તિનો એકમાત્ર માર્ગ, ધર્મનો ધોરી રસ્તો, કર્મક્ષયનો સચોટ ઉપાય છે.

બાળકને પોતાની માની ખોજ કરવાની જેવી તીવ્ર લગની અને અદમ્ય ઉત્કંઠા જાગી હતી, તેવી જો જીવને નિજાતમાં માટે જાગે તો અવશ્ય તેની પ્રાપ્તિ થાય જ છે. આત્માની પ્રાપ્તિ માટે જેવો અને જેટલો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ, તેવો અને તેટલો પ્રયત્ન કરે તો અવશ્ય તેની પ્રાપ્તિ થાય છે. સદ્ગુરના બોધનું શ્રવણ કરી, જીવ જો તે બોધ આત્મામાં પરિણમાવે તો અવશ્ય આત્માની પ્રાપ્તિ થાય છે. અપૂર્વ પુરુષાર્થથી પામવા યોગ્ય મોક્ષમાર્ગ અનાયાસે પ્રાપ્ત થતો નથી. તે તો પુરુષાર્થ પ્રમાણે પ્રાપ્ત થાય છે, માટે અપાર ઝૂરણા અને અથાક પુરુષાર્થથી મંડી પડવું જોઈએ. સદ્ગુરુના આશ્રયે યથાર્થ પુરુષાર્થ કરતાં જીવને આત્માનું નિર્વિકલ્પ સ્વસંવેદન થાય છે અને અવર્શનીય સુખનો અનુભવ થાય છે.

બાળકને તો મા મળી જતાં બધું મળી ગયું, પણ તેણે એવું નક્કી કર્યું હતું કે મા મળી જાય તો શોધ કરવામાં મદદ કરનાર ઇન્સ્પેક્ટરને રૂા. ૫૦૦/- ભેટ આપવા. બાળકે તેની માની શોધ ઇન્સ્પેક્ટરની સુરક્ષામાં રહીને કરી હતી, ઇન્સ્પેક્ટરના માર્ગ-દર્શનમાં કરી હતી, તેથી ઇન્સ્પેક્ટર આ ભેટનો અધિકારી હતો. જો ઇન્સ્પેક્ટરની સુરક્ષા મળી ન હોત તો તે આમ તેમ ભટકતો હોત અને કોઈ પણ તેને ઉપાડી જાત. ઇન્સ્પેક્ટરે તેને સુરક્ષા આપી અને વધુમાં એવું સ્થાન બતાવ્યું કે જ્યાંથી તે પ્રત્યેક સ્ત્રીને જોઈ પોતાની માની શોધ કરી શકે, માટે તે ભેટનો અધિકારી ઇન્સ્પેક્ટર હતો. તે જ પ્રમાણે સદ્ગુરુના સંરક્ષણ અને માર્ગદર્શન હેઠળ આત્મપ્રાપ્તિના પુરુષાર્થનો પ્રારંભ થાય છે. પુરુષાર્થ સફળ થતાં ઉપયોગને તો નિજસત્તા મળી જાય છે, તેથી હવે તેને અન્ય કંઈ જ જોઈતું નથી. તો કાર્યસિદ્ધિનો યશ કોને આપવો? જો સદ્ગુરુની શીતળ કૃપામય છાયા ન હોત તો મતિકલ્પનામાં કે અસદ્ગુરુના ચક્કરમાં ફસાઈને તેનું જીવન બરબાદ થઈ ગયું હોત. સદ્ગુરુએ શિષ્યને સહાય કરી, તેથી નિજપદપ્રાપ્તિનું સમગ શ્રેય તે શ્રીગુરુને આપે છે.

સુશિષ્ય સઘળાનો યશ સદ્ગુરુની અનન્ય કૃપાને જ આપે છે, કારણ કે તે જાણે છે કે આ બધો પ્રભાવ સદ્ગુરુનો જ છે. તેઓ જિહ્વાથી ઉપદેશ આપે છે અને પોતાના જીવનથી દેખાડે છે કે તે ઉપદેશનું પાલન કરવાથી કેવું સુંદર ફળ આવશે. શ્રીગુરુનાં વચન અને વર્તન એ બન્નેમાંથી બોધ પ્રહણ કરી સુશિષ્ય પોતાને આત્મસિદ્ધિ અર્થે તૈયાર કરે છે. તે નિજપદપ્રાપ્તિના માર્ગે દઢ પુરુષાર્થથી આગળ વધતો જાય છે. સ્વસંવેદન થતાં તેને અપૂર્વ ભાન પ્રગટે છે અને અજ્ઞાન નષ્ટ થઈ જાય છે. તે અનાદિના દેહાત્મબુદ્ધિના સંસ્કારો સામેના જંગમાં જીત મેળવે છે. આમ, શિષ્યની સમસ્ત કલ્યાણયાત્રામાં સદ્ગુરુનો પ્રકૃષ્ટ પ્રભાવ અજોડ ભાગ ભજવી જાય છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'સદ્ગુરુના ઉપદેશથી, થયો સઘ સદ્બોધ; વિવેકની સુવિચારણા, પ્રગટે આત્મ પ્રબોધ. સહજે સ્થિતિ નિજભાવથી, આવ્યું અપૂર્વ ભાન; ભાંતિ ટળી શાંતિ મળી, નિરખ્યું નિજપદ સ્થાન. બહિરાત્મતા દૂર થઈ, અંતર આતમભાવ; નિજપદ નિજમાંહી લહ્યું, સહેજે બન્યો બનાવ. મોહભાવની માન્યતા, પુત્રાદિક ધનધાન; સદ્ગુરુબોધે એ બધું, દૂર થયું અજ્ઞાન.' મ

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૪ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૭૩-૪૭૬)

का केटें किन वन्ध देश के, वेदर्भ के तका देश, अन्द अभव काक्षितिक, के, देशकात्रक्ष्ट्रेय. ગાથા ૧૧૯માં સુશિષ્ય કહે છે કે આત્મજ્ઞાની ગુરુનો ઉપદેશ સાંભળી, પૂર્વે કદી નહીં થયેલું એવું આત્મભાન પ્રગટ્યું છે. પોતાનું સ્વરૂપ પોતાને વિષે યથાતથ્ય ભાસ્યું છે અને દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ અજ્ઞાન ટળ્યું છે, અર્થાત્ જ્ઞાનદશા પ્રગટી અને અનાદિની અજ્ઞાનદશા ટળી.

શ્રીગુરુના સચોટ સમાધાન દ્વારા સુશિષ્યને સુવિચારદશા પ્રગટી અને તેથી તેને અત્યંત સંદેહરહિતપણે છ પદનો નિર્ણય તથા નિશ્ચય પ્રગટ્યા, જેના પરિશામે તેને આત્માનુભૂતિ થઈ. આ તથ્ય તેણે ગાથા ૧૧૯માં 'આવ્યું અપૂર્વ ભાન' તથા 'નિજપદ નિજમાં લહ્યું' એમ કહીને દર્શાવ્યું છે. આજ સુધી જે જ્ઞાન મિથ્યાજ્ઞાનરૂપે પ્રવર્તતું હતું તે સમ્યક્ થયું. સમ્યગ્જ્ઞાન થતાં તેને પોતાનું સ્વરૂપ કેવું ભાસ્યું છે તે જણાવતાં સુશિષ્ય કહે છે –

ંભારચું નિજસ્વરૂપ તે, શુદ્ધ ચેતનારૂપ; આથા અજર, અમર, અવિનાશી ને, દેહાતીત સ્વરૂપ.' (૧૨૦)

પોતાનું સ્વરૂપ શુદ્ધ ચૈતન્થસ્વરૂપ, અજર, અમર, અવિનાશી અને દેહથી સ્પષ્ટ જુદું ભારચું. (૧૨૦)

નિજપદ જ્યારે નિજમાં પ્રાપ્ત થયું ત્યારે સુશિષ્યને પોતાનું સ્વરૂપ શુદ્ધ ચૈતન્યમય ભાસ્યું. નિર્મળ જ્ઞાનરૂપ અને નિર્મળ દર્શનરૂપ પોતાનું સ્વરૂપ તેને પ્રતીત થયું. પોતે માત્ર જાણવા-જોવાના સ્વભાવરૂપ છે એમ તેને ભાસ થયો. નિજતત્ત્વ શુદ્ધ ચૈતન્યમય ભાસતાં સુશિષ્યને પોતાની ત્રિકાળી સત્તાનું ભાન થયું. તેને અનુભવ થયો કે તેનું સ્વરૂપ દેહથી સર્વથા ભિન્ન છે અને તેથી પોતાનું સ્વરૂપ ન જરે છે, ન મરે છે, ન તેનો નાશ થાય છે. દેહ પૌદ્ગલિક છે, વિનાશી છે, પણ પોતે તો દેહથી ભિન્ન, શુદ્ધ ચૈતન્યમય, અજર, અમર અને અવિનાશી છે એમ તેને પોતાનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટપણે ભાસ્યું. પૂર્વે અજ્ઞાનદશાના કારણે જે તત્ત્વ સમજાયું ન હતું, તે તત્ત્વ જ્ઞાનદશા પ્રગટતાં સ્પષ્ટપણે સમજાયું છે, ભાસ્યું છે.

આમ, શ્રીગુરુએ આપેલાં સમાધાનથી 'આત્મા છે' એવું પ્રથમ પદ અને 'આત્મા નિત્ય છે' એવા બીજા પદની જે પ્રતીતિ સુશિષ્યને વિચારપૂર્વક થઈ હતી, તે હવે અનુભવથી થઈ છે એ વાત 'ભાસ્યું' શબ્દ દ્વારા સૂચિત થાય છે. પ્રથમ બે પદની તેને અનુભવપૂર્વક જે પ્રતીતિ થઈ છે, તે કેવી છે તે '**શુદ્ધ રોતનારૂપ', 'અજર',** 'અમર', 'અવિનાશી' અને 'દેહાતીત સ્વરૂપ' શબ્દો દ્વારા સુશિષ્ય પ્રસ્તુત ગાથામાં જણાવે છે.

ચેતન અને ચેતનાને પરસ્પર આધાર-આધેય સંબંધ છે. ચેતન આધાર છે અને ચેતના આધેય છે. આધેય ચેતનાને જ્યારે પોતાના ઉદ્ગમસ્થળ ચેતનનો આધાર મળે ત્યારે જ તે સ્થિર રહી શકે છે. ચેતના (ચિત્તવૃત્તિપ્રવાહ) જ્યારે ચેતન(આત્મસત્તા)માં સ્થિત થાય છે ત્યારે જ્ઞાન અને આનંદ પ્રગટે છે. આજ સુધી જીવ પોતાની ચેતનાને તેના આધારસ્વરૂપ ચેતન ઉપર આધારિત ન કરતાં પર પ્રત્યે લગાવતો રહ્યો છે અને તે જ તેની મૂળ ભૂલ છે. અજ્ઞાન અને સ્વસ્વરૂપ પ્રત્યેના પ્રમાદથી જીવનો ઉપયોગ કેન્દ્રમાંથી - સ્વમાંથી ખસીને કર્મકૃત વ્યક્તિત્વ તથા ભાવોમાં જોડાય છે. દિશામૃઢતાના કારણે જીવ પંચ ઇન્દ્રિયના વિષયોમાં ભટકે છે. પરમાં સુખાદિની કલ્પનાના પરિણામે તે વ્યાકુળ રહે છે, વિકલ્પોમાં ગૂંચવાયેલો રહે છે. સદ્દ્યુરના બોધનો આશ્રય કરતાં તેની આ પરદ્રષ્ટિ મટે છે, તેની મિથ્યા માન્યતાઓ નષ્ટ થાય છે અને ચેતના ચેતનમાં સ્થિર થાય છે. સદ્દ્યુરના બોધના વિચારથી ચિત્તવૃત્તિપ્રવાહ તેના ઉદ્દ્યમસ્થળ આત્મસત્તામાં સ્થિરતા પામે છે. સદ્દ્યુરના ઉપદેશ દ્વારા સ્વરૂપની પ્રતીતિ થાય છે અને અનુક્રમે અવ્યાબાધ સ્વરૂપમાં સ્થિતિ થાય છે.

બાળપણથી જ બકરીના ટોળામાં રહેલા સિંહના બચ્ચાને સજાતીય સિંહના દર્શનથી પોતાના ભુલાયેલા મૂળ સ્વરૂપનું - સિંહપણાનું ભાન થાય છે, એ દષ્ટાંત સુપ્રસિદ્ધ છે. પોતે સિંહનું બચ્ચું છે એવી પ્રતીતિ થતાં જેમ તેનામાં શક્તિ સ્ફુરાયમાન થાય છે, તેમ સદ્વુરુના બોધ દ્વારા જીવને નિજસ્વરૂપનું ભાન થતાં તેનું વીર્ય સ્ફુરાયમાન થાય છે. સિંહ જેવો, એટલે કે સિદ્ધ ભગવાન જેવો જીવ પોતાના સાચા સ્વરૂપને ભૂલીને પોતાને બકરીના બચ્ચા જેવો, એટલે કે દીન-હીન-રાગી-પામર માની રહ્યો છે. સદ્વુરુ ઉપદેશરૂપી સિંહનાદથી તેને તેનું પરમાત્મસ્વરૂપ છે. અમારા જેવું જ તારું સ્વરૂપ છે. આપણી બન્નેની એક જ જાત છે. તારી અવસ્થામાં નબળાઈ છે તો શું થયું? શક્તિ અપેક્ષાએ તો આપણે બન્ને સમાન છીએ. ભ્રમથી તેં તને પામર માન્યો છે અને તારા પરમાત્મપણાને તું ભૂલ્યો છે. અમારી મુદ્રા સાથે તારી મુદ્રા (લક્ષણ) મેળવીને જો તો તને ખાતરી થશે કે તું પણ અમારા જેવો જ છે. તારા સ્વચ્છ જ્ઞાનસરોવરમાં જો તો તને તારી પ્રભુતા તારામાં સ્પષ્ટ દેખાશે. સ્વસન્યુખ

૧- જુઓ : ગણિશ્રી દેવચંદ્રજીરચિત, શ્રી અજિતનાથ ભગવાનનું સ્તવન, કડી ૪

^{&#}x27;અજકુલગત કેશરી લહે રે, નિજપદ સિંહ નિહાળ; તિમ પ્રભુભક્તે ભવિ લહે રે, આતમશક્તિ સંભાળ.'

વીર્ય ઉલ્લસાવીને એક વાર શ્રદ્ધારૂપી સિંહનાદ કર તો તને ખાતરી થશે કે તું પણ સિદ્ધ પરમાત્મા જેવો જ છે. તારામાં પણ સિદ્ધ ભગવાન જેવું જ પરાક્રમ ભર્યું છે. તારો આત્મા પણ પ્રભુતાથી ભરેલો છે.' આમ, પરિપૂર્ણ શુદ્ધ જ્ઞાયકસ્વભાવનો મહિમા શ્રીગુરુ શિષ્યને જણાવે છે. આવા ચૈતન્યતત્ત્વનું ભાન થતાં જ સુશિષ્યની સુષુપ્ત શક્તિઓ જાગૃત થાય છે. તેનો આત્મા જાગી ઊઠે છે અને તે પોતાના ચિદાનંદ-સ્વભાવની સન્મુખ થાય છે.

શ્રીગુરનો ઉપદેશ સાંભળી સુશિષ્ય અનુપ્રેક્ષણ કરે છે કે 'જ્ઞાનીઓએ ભેદજ્ઞાનના સતત અભ્યાસથી તત્ત્વદષ્ટિ પ્રાપ્ત કરીને આત્માના યથાર્થ સ્વરૂપને જોયું, જાણ્યું, અનુભવ્યું અને તેમાં જ સમાઈ ગયા છે. અનુભવરૂપ અમૃતરસના આહ્લાદમાં નિમગ્ન એવા જ્ઞાનીઓએ પોતાનો આત્મા જેવા પ્રકારે જાણ્યો છે, તેવા પ્રકારે બોધ્યો છે. તેમના જેવું જ મારું સ્વરૂપ છે. શરીર તે હું નથી. શરીર મારું સ્વરૂપ નથી. મન, વચન પણ મારાં નથી. તો પછી તેનાથી તદ્દન ભિન્ન એવાં ધન, સ્વજન આદિ કાંઈ પણ મારાં થઈ જ કેમ શકે? શરીરાદિ મારાથી ભિન્ન છે, તે મારું સ્વરૂપ નથી; પણ સિદ્ધ સમાન, સદા ઉપયોગ લક્ષણવાળો, શુદ્ધ, બુદ્ધ, ચૈતન્યઘન, સ્વયંજ્યોતિ, સુખધામ - જેવું જ્ઞાનીના જ્ઞાનમાં ભાસ્યમાન છે તેવો હું સહજસ્વરૂપી આત્મા છું. આવા સ્વરૂપમાં જ મારો ઉપયોગ રમણ કરે એમાં જ માર્ડુ કલ્યાણ છે. સર્વ મહાયુરુષોએ પોતાના ઉપયોગને આત્મસ્વરૂપમાં જ જોડી રાખ્યો છે અને ભારે ભારે ઉપસર્ગો આવવા છતાં તેઓ પોતાના ધ્યાનથી વિચલિત થયા નથી. હું પણ બાહ્ય પદાર્થોનું લક્ષ છોડી મારા સ્વરૂપ તરફ અભિમુખ થાઉં.' આમ, આત્માના ત્રિકાળી શુદ્ધ સ્વભાવ તરફ વળતાં, તેની રુચિ કરી ત્યાં જ એકતાન થતાં અશુદ્ધતા ટળે છે અને નિજપદની પ્રાપ્તિ થાય છે. ધ્રુવ તત્ત્વની નિરંતર ભાવના કરતાં આત્મજ્ઞાન પ્રગટે છે. આત્મજ્ઞાની ગુરુની કૃપાથી અંતર્મુખ દષ્ટિ પામી, સતત અભ્યાસથી તે સાક્ષાત્ અનુભવ-અમૃતને પામી ધન્ય બને છે.

જ્યારે સુશિષ્યને નિજપદનું દર્શન થાય છે ત્યારે તેને પોતાનું સ્વરૂપ શુદ્ધ ચેતનારૂપે જણાય છે. સ્વમાં પહોંચતાં કર્મકૃતમાં કરેલું તેનું હુંપણું મટી જાય છે, વિલીન થઈ જાય છે અને પોતાનું આત્મસ્વરૂપ શુદ્ધ ચેતનારૂપ ભાસે છે. આત્મતત્ત્વ ચૈતન્યમય છે. આત્મસ્વરૂપ ચૈતન્યથી પૂર્ણપણે રચાયેલું છે. ચેતના એ જ આત્માનું સ્વરૂપ છે. ઘડામાં બોર ભરેલાં હોય, ત્યાં ઘડો જુદો છે અને બોર જુદાં છે; એવી રીતે ચેતના કંઈ આત્મામાં નથી, પણ જે ચેતના છે તે જ આત્મા છે. જેમ બુંદીના લાડવામાં બુંદી જ બુંદી છે, બુંદી જ તેનું સ્વરૂપ છે; તેમ આત્મામાં ચેતના જ છે, ચેતના એ જ આત્માનું સ્વરૂપ છે. આત્મા જ્ઞાનમય છે. તે જ્ઞાનમાત્ર છે. દરેક દશામાં,

સ્વભાવદશામાં કે વિભાવદશામાં તેની જ્ઞાનક્રિયા તો ચાલુ જ રહે છે.

આત્મા સર્વ પરથી ભિન્ન, પરિપૂર્ણ જ્ઞાનસ્વભાવી છે; અર્થાત્ આત્મા પરની અપેક્ષા વગર પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવથી પરિપૂર્ણ છે. જેમ સોનાને ત્રાંબાના સંયોગની અપેક્ષાએ જોવામાં આવે તો જેટલા પ્રમાણમાં ત્રાંબાનો સંયોગ હોય, તે અનુસાર ૧૪ કેરેટ, ૨૨ કેરેટ વગેરે ભેદથી સોનાની ઓળખ થાય છે, પણ ત્રાંબાના સંયોગનું લક્ષ છોડીને એકલા સોનાને જોવામાં આવે તો તે એકલું ૨૪ કેરેટ સોનું જ છે. સોનું અને ત્રાંબાનો ભેદ જાણનાર માત્ર સોનાની જ કિંમત કરે છે, ત્રાંબાની નહીં. તેમ આત્મા પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવથી પૂર્ણ છે. પરસંયોગથી અને પરસંયોગના લક્ષે થતા ભાવોની દિષ્ટિથી જોતાં જ્ઞાનમાં અપૂર્ણતા દેખાય છે, પણ પરસંયોગ અને રાગાદિ ભાવોની અપેક્ષા છોડીને એકલા જ્ઞાનસ્વભાવને જોવામાં આવે તો તે હંમેશાં પૂર્ણ જ છે. જ્ઞાનસ્વભાવમાં કોઈ અપૂર્ણતા કે વિકાર નથી. જીવની ચેતના શુદ્ધ જ છે.

જીવની ચેતના આકાશ જેવી શુદ્ધ છે. આકાશની સ્વચ્છતા અંતહીન છે. વાદળાં આવે છે, જાય છે; પરંતુ આકાશ ઉપર એનો કોઈ ડાઘ કે પ્રભાવ પડતો નથી. આકાશ વાદળાંથી અસ્પર્શ્ય રહે છે, સ્વચ્છ રહે છે. આકાશમાં વાદળાંનાં કોઈ પદચિહ્ન પડતાં નથી. વાદળાંની કોઈ નિશાની, રેખા કે સ્મૃતિ રહેતી નથી. શેષ કંઈ જ રહેતું નથી. આકાશ વાદળાંથી ભરાઈ ગયું હોય ત્યારે એવું જણાય છે કે આકાશ મલિન થઈ ગયું છે, પરંતુ હકીકતમાં આકાશનો ખૂણો રંચમાત્ર પણ ભીંજાયો નથી. વાદળાં આવતાં-જતાં રહે છે, છતાં પણ આકાશ તો સ્વચ્છ અને શુદ્ધ જ રહે છે. ચેતનાની બાબતમાં પણ આ જ વાત છે. વિચારો આવે છે અને જાય છે, પણ જીવની શુદ્ધ ચેતનાને તે સ્પર્શી શકતા નથી. તેને દૂષિત કે કલુષિત કરી શકતા નથી. ચેતના સ્વચ્છ અને શુદ્ધ જ રહે છે.

અજ્ઞાની જીવો રાગની સાથે ચેતનાને એકમેક કરે છે, તેથી તેમને રાગની જ પ્રસિદ્ધિ થયા કરે છે, પોતાના અત્માની પ્રસિદ્ધિ થતી નથી. આનું નામ અધર્મ છે. ચેતનાને રાગથી જુદી ઓળખે, રાગ સાથે એકતા છોડીને ત્રિકાળી સ્વભાવ સાથે જ એકતા પ્રગટ કરે તો આત્માની પ્રસિદ્ધિ થાય. જ્યારે અંદર આવી પ્રસિદ્ધિ થાય ત્યારે જીવને સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થયું એમ શ્રી વીતરાગદેવ કહે છે. અત્રે શિષ્યને નિજાત્માની પ્રસિદ્ધિ થઈ છે, સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થયું છે. પહેલાં તે પરને પોતાનું સ્વરૂપ માની રાગાદિમાં અટકતો હતો, પણ હવે પોતે દેહાદિ પરદ્રવ્ય અને રાગાદિ પરભાવોથી અત્યંત ભિન્ન, એક, શુદ્ધ, દર્શન-જ્ઞાનમય, અરૂપી તત્ત્વ છે એમ તેને અનુભૂતિ થઈ છે. અહીં 'સમયસાર' ગ્રંથની ૩૮મી ગાથા ઉલ્લેખનીય છે. શાસ્ત્રકાર આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવ કહે છે –

'હું એક, શુદ્ધ, સદા અરૂપી, જ્ઞાનદર્શનમય ખરે; કંઇ અન્ય તે મારું જરી પરમાણુમાત્ર નથી અરે!"

પ્રત્યક્ષ એવો ચૈતન્યજ્યોતિરૂપ આત્મા તે હું છું. હું એક છું, સર્વ અશુદ્ધ પર્યાયોથી જુદો, જ્ઞાનસ્વરૂપે અનુભવાતો હું સદા શુદ્ધ જ છું. ઉપયોગલક્ષણે સનાતન સ્ફુરિત એવો હું જ્ઞાન-દર્શનમય છું, સદા અરૂપી છું. તેનાથી ભિન્ન અન્ય કાંઈ પણ, પરમાણુમાત્ર પણ મારું નથી.

પહેલાં જીવ અનાદિ મોહની ઉન્મત્તતાથી અત્યંત અપ્રતિબુદ્ધ હતો તેને જ્ઞાની ગુરુએ વારંવાર ઉપદેશ આપીને જાગૃત કર્યો ત્યારે પરમેશ્વરરૂપ એવા પોતાના આત્માને જાણીને, તેની શ્રદ્ધા કરીને તથા તેને અનુભવીને સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપે પરિણમેલો શિષ્ય પોતાને જે રીતે અનુભવે છે, તેનું વર્શન કરતાં આચાર્યશ્રી કહે છે કે –

'મારા જ અનુભવથી પ્રત્યક્ષ જણાઉ એવો હું ચૈતન્યમાત્ર જ્યોતિસ્વરૂપ આત્મા છું. મારાં મિત-શ્રુતજ્ઞાનને અંતરમાં એકાગ્ર કરીને હું મારું સ્વસંવેદન પ્રત્યક્ષ કરું છું, અર્થાત્ મારાં મિત-શ્રુતજ્ઞાનને ઇન્દ્રિયો અને વિકલ્પોથી ભિન્ન કરીને સ્વસંવેદનપ્રત્યક્ષ વડે હું મારો અનુભવ કરું છું. અનંત ગુણ-પર્યાયથી નિરંતર પરિણમવા છતાં મારું ચૈતન્યસ્વરૂપ સદા એકરૂપે જ રહે છે, તેથી હું એક છું. ભેદરૂપ વ્યવહાર ભાવો વડે હું ભેદાઈ જતો નથી. મારા અનુભવમાં તો જ્ઞાયક એકાકાર સ્વભાવ જ આવે છે, માટે હું એક છું. ખંડ ખંડ બંદરૂપ નહીં અનુભવતો હું મારા આત્માને એક જ્ઞાયકભાવરૂપ જ અનુભવું છું. દેહાદિ પરદ્રવ્યો તથા શુભાશુભ પરભાવોથી જુદો જ્ઞાનસ્વરૂપે અનુભવતો હું સદા શુદ્ધ છું. ભેદના વિકલ્પોને હું નથી અનુભવતો, પણ જ્ઞાયકસ્વભાવ તરફ વળીને નિર્વિકલ્પ થતાં અંતરમાં આનંદસ્વરૂપ આત્માને હું શુદ્ધપણે અનુભવું છું. મારા વેદનમાં શુદ્ધાત્મા જ છે. હું ચૈતન્યમાત્ર હોવાથી સામાન્ય-વિશેષ ઉપયોગ લક્ષણને કદી પણ ઉલ્લંઘતો નથી, તેથી હું સદા દર્શન-જ્ઞાનમય છું. હું દર્શન-જ્ઞાન વડે પરિપૂર્ણ

'अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमङ्ओ सदारूवी । णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तंपि ।।'

सरभावो : (१) आयार्यश्री डुंडडुंडडेवકृत, 'ભावधाडुड', गाथा पट 'एगो में सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो । सेसा में बाहिरा भावा सब्बे संजोगलक्खणा।।'

> (२) आयार्थश्री पूरुयपादस्यामीकृत, 'ઇष्टोपदेश', श्लोक २७ 'एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः । बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ।।'

૧- જુઓ ઃ આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'સમયસાર', ગાથા ૩૮

વસ્તુ છું. હું મારા આત્માને દર્શન-જ્ઞાન-ઉપયોગરૂપે - શુદ્ધ ચેતનારૂપે જ અનુભવું છું. પુદ્દગલના સ્પર્શાદિ ગુણોને જાણવા છતાં હું સ્પર્શાદિપણે ક્યારે પણ પરિણમતો નથી. રૂપી પદાર્થોને જાણવા છતાં હું તે રૂપી સાથે તન્મય થતો નથી. હું તો જ્ઞાન સાથે જ તન્મય છું, માટે હું સદા અરૂપી છું. આમ, એક, શુદ્ધ, જ્ઞાન-દર્શનમય, સદા અરૂપી આત્માને હું અનુભવું છું અને આવા મારા સ્વરૂપને અનુભવતો હું પ્રતાપવંત વર્તું છું. સ્વસંવેદનપ્રત્યક્ષ આત્માના અનુભવથી પ્રતાપવંત વર્તતા એવા મને, મારાથી બાહ્ય સમસ્ત પદાર્થોમાં કોઈ પણ પરદ્રવ્ય - પરમાણુમાત્ર પણ મારાપણે ભાસતું નથી કે જેમાં હું એક થઈને મોહ ઉત્પન્ન કરું.'

શ્રીગુરુ દ્વારા પરમ અનુગ્રહપૂર્વક શુદ્ધાત્માનું સ્વરૂપ સમજાવવામાં આવતાં, નિરંતર ઉદ્યમ વડે તે સ્વરૂપને સમજીને, શિષ્ય પોતાના આત્માને આવો અનુભવે છે એમ આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવ 'સમયસાર' ગ્રંથના જીવ અધિકારનો ઉપસંહાર કરતી ગાથા ૩૮માં કહે છે. તેવી જ રીતે શ્રીમદે આ ગાથાની પ્રથમ પંક્તિમાં, શિષ્યના અનુભવસિદ્ધ કથન વડે પ્રથમ પદ 'આત્મા છે' તેનું સંક્ષિપ્ત વર્ણન ઉપસંહારરૂપે કર્યું છે.

પ્રથમ પંક્તિમાં શિષ્ય કહે છે કે તેને નિજસ્વરૂપ - આત્મસ્વરૂપ શુદ્ધ ચેતનારૂપ 'ભાસ્યું'. પ્રથમ પદમાં ગાથા ૪૯-૫૦માં કહ્યું હતું કે 'ભાસ્યો દેહાદયાસથી, આત્મા દેહ સમાન', અર્થાત્ અનાદિ અજ્ઞાનના કારણે શિષ્ય દેહ, ઇન્દ્રિય, પ્રાણ વગેરેને નિજસ્વરૂપ માનતો હતો. તેના અનુસંધાનમાં હવે શિષ્ય કહે છે કે તે અનાદિ અજ્ઞાન દૂર થતાં, દેહાધ્યાસ છૂટી જતાં, તેને નિજસ્વરૂપ શુદ્ધ ચેતનારૂપ 'ભાસ્યું' છે. આ વિષે શ્રીમદે અન્યત્ર કહ્યું છે કે –

'આજ સુધી અસ્તિત્વ ભારસું નથી. અસ્તિત્વ ભાસ થવાથી સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત થાય છે. અસ્તિત્વ એ સમ્યક્ત્વનું અંગ છે. અસ્તિત્વ જો એક વખત પણ ભાસે તો તે દેષ્ટિની માફક નજરાય છે, અને નજરાયાથી આત્મા ત્યાંથી ખસી શકતો નથી. જો આગળ વધે તોપણ પગ પાછા પડે છે, અર્થાત્ પ્રકૃતિ જોર આપતી નથી. એક વખત સમ્યક્ત્વ આવ્યા પછી તે પડે તો પાછો ઠેકાણે આવે છે. એમ થવાનું મૂળ કારણ અસ્તિત્વ ભારસું છે તે છે.

જો કદાય અસ્તિત્વની વાત કહેવામાં આવતી હોય તોપણ તે બોલવામાત્ર છે, કાસ્ણ કે ખરેખર અસ્તિત્વ ભારસું નથી.'

શિષ્યને પોતાનું અસ્તિત્વ ભાસ્યું છે એમ ગાથાની પ્રથમ પંક્તિ દ્વારા સ્પષ્ટ થાય છે. તેને પ્રથમ પદ 'આત્મા છે'ની અનુભવ સહિતની પ્રતીતિ થઈ છે. વળી, શિષ્યને ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૭૬૦ (વ્યાખ્યાનસાર-૧, ૨૨૦)

બીજું પદ 'આત્મા નિત્ય છે'ની અનુભવ સહિતની પ્રતીતિ થઈ છે તે આ ગાથાની બીજી પંક્તિ દ્વારા સ્પષ્ટ થાય છે. શિષ્ય કહે છે કે નિજપદ દેહાદિથી ભિન્ન, અજર, અમર અને અવિનાશી છે એમ અનુભૂતિ થઈ છે. શિષ્યની આ અનુભૂતિ વિષે બહ્યચારીજી શ્રી ગોવર્ધનદાસજી લખે છે –

'વૃદ્ધાવસ્થા, મરણ અને નાશ એ દેહના ધર્મ છે અને આત્મા અજર, અમર, અવિનાશી, ચૈતન્ચસ્વરૂપ, નિત્ય પદાર્થ છે એવી શ્રદ્ધા થઈ છે. દેહ ને આત્માના ધર્મ ભિન્ન સમજાયા તેથી જેમ નારિચેળમાં ગોળો જુદો ખખડે તેમ દેહથી આત્મા પર છે, તદ્દન ભિન્ન છે એમ અનુભવ થયો છે.'^૧

નારિયેળમાં કાચલી (ટોપો) અને કોપરું પરસ્પરથી ભિન્ન છે, પરંતુ જ્યાં સુધી અંદર પાણી (રસ) રહેલું છે, ત્યાં સુધી એ બન્ને ભિન્ન વસ્તુ એકરૂપે લાગે છે. પાણી સુકાતાં તે બન્ને પ્રત્યક્ષ ભિન્ન જણાય છે. તેમ દેહ અને આત્મા પરસ્પરથી ભિન્ન છે, પરંતુ દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ રસના કારણે બે ભિન્ન દ્રવ્યો શ્રદ્ધામાં એકપણે ભાસે છે. આત્મ-ભાન થતાં બન્નેનું ભિન્નપણું અનુભવાય છે. 'હું આ દેહથી ભિન્ન એવો અજર, અમર, અવિનાશી આત્મા છું' એવો અનુભવ થાય છે.

આત્મા દેહ સાથે એકક્ષેત્રે રહેતો હોવા છતાં તે દેહ અને દેહના ધર્મોથી સર્વથા ભિન્ન છે. આત્મા ચેતનદ્રવ્ય છે. સુખ-દુ:ખનું સંવેદન કરનાર જ્ઞાનધારક પદાર્થ છે. અનંત પુદ્દગલપરમાણુઓનો બનેલો દેહ અચેતન છે. દેહમાં જ્ઞાન નથી. દેહ સુખ-દુ:ખ અનુભવી શકતો નથી. આત્મા પોતાના જ અનંત ગુણ-પર્યાયરૂપ ધર્મમાં સદા રહે છે, પોતામાં જ વ્યાપે છે, તન્મયપણે રહે છે. જ્ઞાન, આનંદ વગેરે ધર્મો વ્યાપ્ય છે અને આત્મા વ્યાપક છે; રૂપ, રસ, ગંધ, સ્પર્શ વગેરે ગુણો વ્યાપ્ય છે અને પુદ્દગલ વ્યાપક છે. રૂપાદિ ગુણોમાં આત્મા વ્યાપક નથી, અર્થાત્ વ્યાપ્ય-વ્યાપક ભાવ એક જ દ્રવ્યમાં હોય, બીજા દ્રવ્યમાં ન હોય. એક દ્રવ્ય બીજા દ્રવ્યમાં વ્યાપે નહીં, પરંતુ પોતાના જ ગુણ-પર્યાયમાં વ્યાપે. આત્મા શરીરમાં વ્યાપતો નથી, પરંતુ તેનાથી ભિન્ન જ રહે છે. શરીરમાં આત્મા કદી તન્મય થયો નથી, થતો નથી અને થશે પણ નહીં. આત્મા શરીર સાથે એકક્ષેત્રાવગાહે રહેલો હોવા છતાં તે શરીરરૂપ કદી પણ થતો નથી. દૂધ અને પાણીની જેમ આત્મા અને શરીરનો એકક્ષેત્રાવગાહ સંબંધ હોવા છતાં આત્મા અને શરીર તદ્દન જુદાં છે. આત્માએ અનંત શરીરો ધારણ કર્યાં છતાં આત્મા અને શરીર બન્ને સર્વથા ભિન્ન જ છે.

અનાદિ મિથ્યાત્વના કારણે જીવને સ્વ-પરનો વિવેક હોતો નથી, તેની ભિન્નતા લક્ષમાં આવતી નથી. ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મા અને પુદ્દગલપરમાણુઓના બનેલા જડ શરીરનો ૧- બહ્નચારીજી શ્રી ગોવર્ધનદાસજી, 'આત્મસિદ્ધિ વિવેચન', બીજી આવૃત્તિ, પૃ.૯૪

સાંયોગિક સંબંધ થતાં દેવ, મનુષ્ય આદિ પર્યાયો નીપજે છે, જેમાં મિથ્યાદષ્ટિ જીવ પોતાપણું માને છે. શરીર સાથે થયેલા સંયોગ સંબંધમાં તે આત્મબુદ્ધિની સ્થાપના કરે છે. તે મિથ્યા દેહાધ્યાસથી મનુષ્યાદિ પર્યાયને પોતાની માને છે. ગાઢ દેહાસક્તિના કારણે તે પોતાને દેહસ્વરૂપ જ માને છે. તે શરીરની ઉત્પત્તિથી પોતાની ઉત્પત્તિ અને શરીરનો વિયોગ થતાં પોતાનું મરણ માને છે. તે દેહના પરિણમનને પોતાનું પરિણમન માને છે. તેને આત્માના પરિણમન અને દેહના પરિણમનનો ભેદ સમજાતો નથી. આ આત્માનું પરિણમન છે અને આ દેહનું પરિણમન છે એમ ભિન્ન ભિન્ન ભાવ ભાસતો નથી. તે દેહના પરિવર્તનોમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટ કલ્પના કરી દુઃખી થાય છે. આવા અજ્ઞાની જીવ વિષે શ્રીમદ્ લખે છે —

'દેહ જીવ એકરૂપે ભાસે છે અજ્ઞાન વડે, ક્રિયાની પ્રવૃત્તિ પણ તેથી તેમ થાય છે; જીવની ઉત્પત્તિ અને રોગ, શોક, દુખ, મૃત્યુ, દેહનો સ્વભાવ જીવ પદમાં જણાય છે.'

અહીં જણાવ્યા પ્રમાણે અજ્ઞાનના કારણે શરીર અને આત્મા એકરૂપ ભાસે છે. તે બન્ને દ્રવ્ય ભિન્ન હોવા છતાં જીવ ભાંતિવશ બન્નેમાં તદ્રૂપ સંબંધ માને છે. જ્યાં સુધી આત્મા અને શરીરનું ભિન્નપણું જાણવામાં આવ્યું નથી, ત્યાં સુધી ક્રિયાની પ્રવૃત્તિ તદનુસાર થતી રહે છે. આત્મા સદા શાશ્વત, ત્રિકાળવર્તી અને સ્વયંસિદ્ધ હોવાથી અનુત્પન્ન છે. જ્યારે જીવ નવો દેહ ધારણ કરે છે ત્યારે તે દેહની ઉત્પત્તિ થાય છે, અર્થાત્ નામ કર્મના ઉદયનિમિત્તે ઔદારિક વર્ગણાનું શરીરરૂપે પરિણમન થાય છે; છતાં અજ્ઞાનદશાના કારણે દેહની ઉત્પત્તિને જીવ પોતાની ઉત્પત્તિ માને છે. દેહમાં રોગ આદિ થાય છે તે દેહનો સ્વભાવ છે, પુદ્દ્ગલનું તથાપ્રકારનું પરિણમન છે; છતાં અજ્ઞાનના કારણે જીવ તેને પોતાનો સ્વભાવ ગણે છે. જીવ દેહને પોતાનો માનતો હોવાથી તે દેહની સેવા કરવામાં લાગી જાય છે અને તેને જ સ્વની સેવા ગણી તે આત્મતત્ત્વને ભૂલી જાય છે.

દેહના સંયોગમાં રહેલો આત્મા જાણવાના સ્વભાવવાળો છે. જીવ પોતાનું ભિન્ન અસ્તિત્વ અને ભિન્ન ગુણધર્મ ઓળખ્યા વગર સંયોગના અસ્તિત્વને જ પોતાનું અસ્તિત્વ માને છે. આ ભૂલભરેલી માન્યતાના કારણે તેનું જાણવું પણ ભૂલભરેલું હોય છે અને તેનું આયરણ પણ ભૂલભરેલું હોય છે. આને જ શાસ્ત્રીય ભાષામાં મિથ્યાદર્શન, મિથ્યાન્જ્ઞાન તથા મિથ્યાચારિત્ર કહેવાય છે અને આ જ સંસારનો માર્ગ છે. દેહ તરફ દષ્ટિ કરતાં, તે તરફ ઉપયોગ લગાડતાં, પર-ઉપયોગના કારણે અનંત કાર્મણ વર્ગણાનું આવવું થાય છે અને તે કર્મરૂપે આત્મા સાથે બંધાય છે. તેનાથી જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માને ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ. દ૪૨ (આંક-૯૦૨, કડી ૨)

સંસારમાં પરિભ્રમણ કરવું પડે છે. જીવ પોતાના અવિકારી જ્ઞાનસ્વરૂપને જ જુએ, એ સ્વરૂપમાં જ તેની દ્રષ્ટિ રહે તો તેનું સંસારપરિભ્રમણ અટકે. તેથી સદ્ગુરુના ઉપદેશના આશ્રયે આત્મા અને દેહની પૃથક્તાનો નિર્ધાર કરવો જોઈએ.

હાઈડ્રોજન અને ઑક્સિજનના સંયોજનથી પાણીનો અશુ (H_2O) બને છે. હાઈડ્રોજનના ગુણધર્મો જુદા છે, ઑક્સિજનના ગુણધર્મો જુદા છે. હવે જો પાણીમાંથી ઑક્સિજનને છૂટો કરવો હોય તો સૌ પ્રથમ તે જુદા ગુણધર્મોનો છે અને તેને છૂટો પાડી શકાય છે એવી શ્રદ્ધા હોવી જોઈએ. રસાયણશાસ્ત્રના શિક્ષક પાસેથી તેના ગુણધર્મો શીખી, શુદ્ધ ઑક્સિજન મેળવવા માટે કઈ પ્રક્રિયા કરવી જોઈએ તેનો અભ્યાસ કરી, તેમના માર્ગદર્શન હેઠળ પ્રયોગ કરવામાં આવે તો શુદ્ધ ઑક્સિજન મેળવવો સહજ સાધ્ય છે.

તે જ પ્રમાણે આત્મા તથા પુદ્દગલના સંયોગના કારણે આત્મા મનુષ્ય આદિ રૂપે દેખાય છે. શુદ્ધ આત્મદ્રવ્યના ગુણધર્મો પુદ્દગલના ગુણધર્મોથી સર્વથા જુદા છે. તે સંયોગમાંથી શુદ્ધ આત્મદ્રવ્યની પ્રાપ્તિ કરવી હોય તો તે અંગેની યથાર્થ વિધિ અનુસરવી જોઈએ. જેઓ શુદ્ધ બન્યા છે, તેમના માર્ગદર્શનમાં સૌ પ્રથમ શુદ્ધ જીવદ્રવ્યના ગુણધર્મો શરીરના ગુણધર્મોથી જુદા છે, અર્થાત્ તે બન્ને ભિન્ન છે એવી શ્રદ્ધા કરવી જોઈએ, શુદ્ધ આત્મદ્રવ્યની પ્રાપ્તિની પ્રક્રિયાનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ તથા તદનુસાર પ્રયોગ કરતાં દેહથી ભિન્ન એવા શુદ્ધ આત્માનો અનુભવ થાય છે; તેને જ સમ્યગ્દર્શન (યથાર્થ શ્રદ્ધા), સમ્યગ્જ્ઞાન (યથાર્થ બોધ) અને સમ્યક્ચારિત્ર (યથાર્થ આચરણ - લીનતા) કહેવાય છે અને એ જ મોલમાર્ગ છે.

'હું દેહાદિથી ભિન્ન એવો કેવળ જ્ઞાનસ્વરૂપ શુદ્ધ આત્મા છું' એવું નિરંતર ભાવન કરતાં અનંત આત્માઓ મુક્તિ પામ્યા છે. 'આ દેહ તે હું' એવી દેહમાં આત્મભાવના એ અન્ય દેહ ધારણ કરવાનું બીજ છે અને 'આ આત્મા તે હું' એમ આત્મામાં જ આત્મભાવના તે વિદેહપ્રાપ્તિનું બીજ છે. જો કે અનાદિ દેહાધ્યાસના સંસ્કારના કારણે દેહમાંથી આત્મબુદ્ધિ ત્યાગવી જીવને દુષ્કર લાગે છે, તથાપિ તેમ કરવાનો જેને નિશ્ચય થાય છે તે તેમાં અવશ્ય સફળ થાય છે. તે સદ્દ્રુના ઉપદેશથી પોતાના સ્વરૂપની જાણકારી મેળવે છે અને જેવું સ્વરૂપ છે તેવી જ શ્રદ્ધા કરે છે. તે સુવિચારણાથી દઢ નિર્ણય કરે છે કે 'હું દેહ નથી. દેહ મારાથી સર્વથા ભિન્ન છે. દેહ પરપદાર્થ છે. તેના પરિણમનથી મને કોઈ લાભ-નુકસાન નથી. દેહને ગમે તે થાય તેનાથી મને કોઈ ફરક નથી પડતો.' ભેદજ્ઞાનના અભ્યાસથી કોઈ ધન્ય પળે તેને સ્વાનુભવ થાય છે અને પોતાનું અસ્તિત્વ તેને દેહાદિથી ભિન્ન સ્પષ્ટપણે અનુભવમાં આવે છે. તે દેહાદિ પરિવર્તનોથી ભિન્ન પોતાને એક અખંડ સત્તારૂપે અનુભવે છે.

તેનો દેહાધ્યાસનો ભ્રમ મટે છે, દેહને પોતાનું સ્વરૂપ માની લેવારૂપ વિરાટ ભૂલ નષ્ટ થાય છે. દેહાતીત સ્વરૂપમાં એકત્વબુદ્ધિ સ્થપાય છે અને દેહમાંથી એકત્વબુદ્ધિ તૂટે છે. આત્માની પકડ થતાં દેહની પકડ છૂટે છે. શ્રીમદ્દ લખે છે –

> 'પ્રથમ દેહ દૃષ્ટિ હતી, તેથી ભાસ્યો દેહ; હવે દૃષ્ટિ થઇ આત્મમાં, ગયો દેહથી નેહ.'^૧

અનાદિથી પોતાના સ્વરૂપનું ભાન ન હોવાથી 'દેહ તે જ હું' એમ માન્યું હતું, દેહને જ સર્વસ્વ માન્યો હતો, તેની જ સારસંભાળ માટે સર્વ પ્રવર્તન કર્યું હતું. પોતાના શુદ્ધ સહજાત્મસ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થઈ, તેથી હવે આત્મામાં દેષ્ટિ સ્થિર થતાં દેહ ઉપરથી મમત્વ નષ્ટ થઈ ગયું.

પોતાનું દેહાતીત સ્વરૂપ લક્ષગત થતાં દેહનું મોહ-મમત્વ નષ્ટ થઈ જાય છે. અજ્ઞાનદશામાં ચર્મનેત્રથી જોતાં મનુષ્યદેહ જીવંત ભાસે છે અને મૃત્યુ પશ્ચાત્ અગ્નિદાહ પછી તે રાખના ઢગલારૂપે જણાય છે, જ્યારે સદ્ગુરુએ બક્ષેલ જ્ઞાનનેત્રથી તો વર્તમાન પર્યાયમાં પણ સંયોગરૂપ મળેલ તે દેહ રાખના ઢગલારૂપે જ જણાય છે. જ્ઞાનનેત્રના પ્રતાપે તે પોતાને દેહથી ભિન્નપણે જ જુએ છે. તેને પોતાના દેહાતીત સ્વરૂપની જાગૃતિ સતત રહે છે. તે પોતાને અજર, અમર, અવિનાશીરૂપે જાણે છે.

(૧) આત્મા અજર છે – આત્મા ક્યારે પણ જરતો નથી, અર્થાત્ જીર્ણ થતો નથી. શરીર જીર્ણ થાય છે, પણ આત્મા જીર્ણ થતો નથી. કાળના વ્યતીત થવા સાથે શરીર વૃદ્ધ થાય છે, આત્મા વૃદ્ધ થતો નથી. વસ્ત્ર જીર્ણ થતાં દેહ જીર્ણ થતો નથી, તેમ દેહ જીર્ણ થતાં આત્મા જીર્ણ થતો નથી. ર

પ્રતિસમય શરીરનાં અનંત પરમાશુઓ જરતાં જાય છે અને પ્રતિસમય નવાં પરમાશુઓ ગ્રહણ થતાં રહે છે. દેહ પરિવર્તનશીલ છે. તેમાં નિરંતર પરિવર્તન ચાલ્યા જ કરે છે. શરીર પ્રતિક્ષણ બદલાતું જાય છે. એક ક્ષણ માટે પણ તે સ્થિર નથી રહેવાનું. જે રૂપ કાલે હતું, તે આજે નથી હોતું અને આજે છે તે કાલે નથી રહેવાનું. શરીર જીર્ણ થાય છે, પણ આત્મા અજર રહે છે. આત્મા અસંખ્યાતપ્રદેશી છે, છતાં તેના પ્રદેશો ખંડ ખંડરૂપે થઈને કદી પણ જુદા પડતા નથી. તે અખંડ જ રહે છે. શરીરમાંથી પરમાશુઓ છૂટાં પડે છે, પરંતુ આત્માના પ્રદેશો છૂટા પડતા નથી. આમ, જરા અવસ્થા આત્માની નહીં પણ દેહની થાય છે અને આત્મા દેહથી સર્વથા પ્રકારે

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૨૯૭ (આંક-૨૬૬, કડી ૭)

૨- જુઓ ઃ આચાર્યશ્રી પૂજ્યપાદસ્વામીકૃત, 'સમાધિતંત્ર', શ્લોક ૬૪

^{&#}x27;जीर्णे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न जीर्णं मन्यते तथा । जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः ।।'

ભિન્ન છે, તેથી તે અજર છે.

(૨) આત્મા અમર છે – આત્મા મરતો નથી, અર્થાત્ અમર છે. દેહનો સંયોગ મટી જાય પછી પણ આત્મા રહે છે. દેહના હોવા પહેલાં પણ આત્મા હતો, અત્યારે છે અને દેહના નાશ પછી પણ રહે છે.

આત્મા ત્રિકાળ શાશ્વત હોવાથી તે અનુત્પન્ન છે. જીવાત્મા કર્મના નિમિત્તથી એક શરીર છોડે છે અને બીજું શરીર ધારણ કરે છે. પુદ્ગલદ્રવ્ય શરીરરૂપે પરિણમે છે. આવા શરીરની ઉત્પત્તિને અજ્ઞાની જીવો પોતાની ઉત્પત્તિ માને છે. પુદ્દગલ રૂપી છે, તેથી તેના પરિશમનરૂપે બનેલી રૂપી પર્યાયને અજ્ઞાની જીવો પોતાની પર્યાય માને છે, અર્થાત શરીરરૂપ બનેલી પર્યાયને પોતાની પર્યાય માને છે. જેની ઉત્પત્તિ હોય તેનું મૃત્યુ અવશ્ય થાય છે. આત્મા અનુત્પન્ન છે, તેથી આત્માનું મૃત્યુ થતું નથી. મૃત્યુ શરીરનું થાય છે, જીવનું નહીં. મૂર્ત ઇન્દ્રિયોવાળા શરીરનો વિનાશ થવો તેને જ મૃત્યુ કહેવામાં આવે છે. શરીરના વિનાશ વખતે પણ અમૂર્ત આત્મા તો અસ્પર્શ્ય જ રહે છે. જેવી રીતે અગ્નિથી ઝૂંપડી સળગે છે, એની વચ્ચે રહેલ આકાશ સળગતું નથી; તેવી જ રીતે રોગરૂપી અગ્નિથી શરીરનું જ મૃત્યુ થાય છે, પરંતુ તેની વચ્ચે રહેલ આત્માનું મૃત્ય થતું નથી. વળી, શરીરનો વિનાશ થાય એટલે તેનો સંપૂર્ણ અભાવ થયો એમ નથી. શરીરનાં પુદ્ગલપરમાશુનો કદી પણ નાશ થતો નથી, પરંતુ પુદ્ગલની જે શરીરરૂપી પર્યાય બની હતી તે પર્યાયનો લય થાય છે. શરીરનાં પુદ્દગલો અન્યરૂપે પરિણમી જાય છે. પુદ્દગલનો નાશ થતો નથી. પુદ્દગલદ્રવ્ય તો શાશ્વત જ રહે છે. આમ, શરીર જે પુદ્દગલદ્રવ્યની પર્યાય છે તે મરે છે. આત્મા તો તે શરીરનો સંગ છોડી ચાલ્યો જાય છે. આત્માનું મરણ નથી.

(3) આત્મા અવિનાશી છે – આત્મા નાશરહિત છે. તે ત્રિકાળી સત્ છે. તે ત્રિકાળ આદિ-અંતરહિત છે. તે અનાદિ-અનંત નિત્ય છે. આત્મદ્રવ્ય સ્વતંત્ર રીતે સ્વયંસિદ્ધ છે. પરથી ન તો તેની ઉત્પત્તિ છે, ન તો તેનો નાશ છે, ન તેનું રક્ષણ થાય છે. તે પોતાની અનંત શક્તિ વડે સ્વયંરક્ષિત છે. તે ત્રણે કાળ આત્મારૂપે જ રહે તેવો શાશ્વત પદાર્થ છે. તેનો કદી નાશ થતો નથી.

આત્માની જે ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવત્વશક્તિ છે તે આત્માનો સ્વાધીન સ્વભાવ છે. દ્રવ્ય-ગુણ ધ્રુવ રહીને પર્યાયમાં ક્રમે ક્રમે પરિણમન થયા કરે છે. પર્યાયોનાં ઉત્પત્તિ-નાશ હોવા છતાં પણ દ્રવ્ય ત્રિકાળી, અવિનાશી, સ્થિર છે. ગાડાનું પૈડું ધરીના આધારે સતત ફરે છે. તે પૈડું આખો દિવસ ફરવા છતાં પણ ધરી તો એમ ને એમ ઊભી રહે છે. તે તો અંદર સ્થિર રહે છે – અચળ રહે છે. તેવી જ રીતે આત્મામાં પરિણમન થાય છે, પણ દ્રવ્ય તો સદા સ્થિર – સદા નિત્ય છે. અજ્ઞાની જીવ અસ્થિરતાને જુએ છે,

પણ જે સ્થિર છે, ધ્રુવ છે, અચળ છે; તે તત્ત્વ પ્રત્યે તેની નજર પણ જતી નથી. પર્યાય ઉપર તેની દેષ્ટિ હોવાથી તેને ધ્રુવ દ્રવ્યનો કંઈ પણ ખ્યાલ જ આવતો નથી. જીવ આ અપરિવર્તનશીલ તત્ત્વને ઓળખી લે - ધ્રુવની પકડ કરી લે તો જીવનની દિશા બદલાય અને અંધકારને બદલે પ્રકાશમાં આગળ વધાય. તે જીવનનો હેતુ અને ધર્મનો પરિચય પામે તથા આત્મસ્વરૂપમાં તેની પ્રતિષ્ઠા થાય.

પોતાનું અજર, અમર, અવિનાશી, દેહાતીત સ્વરૂપ અનુભવ્યું હોવાથી જ્ઞાનીને દેહની ગમે તેવી પ્રતિકૂળ અવસ્થા પણ ચલિત કરી શકતી નથી. તેમને મરણાદિનો ભય નથી લાગતો. જાાનીપુરુષો મરણ વખતે મરણપીડાની અનંતી અનંતી ભીંસમાં પણ ભીંસાતા નથી, જ્યારે અજ્ઞાનીને સંયોગદષ્ટિ હોવાથી અંતકાળે તે મરણનાં અનંત દુઃખમાં ભીંસાઈ જાય છે. અજ્ઞાનીની વૃત્તિ નિરંતર બહિર્મુખ રહી હોવાથી આવા પ્રસંગે અજ્ઞાની તીવ્ર ખેદમાં સરી પડે છે. અજ્ઞાની મરણ વખતે દારુણ રીતે મરે છે, પણ જ્ઞાની તો નિજાનંદની લહેરમાં ઝૂલતાં ઝૂલતાં દેહ છોડે છે.

જેમ પહેલાના જમાનામાં સતી સ્ત્રીઓ પતિની પાછળ હર્ષ અને ઉલ્લાસ સાથે, શૂરાતનથી સળગતી ચિતામાં પોતાના પ્રાણને હોમી દેતી હતી; જરા પણ ભય કે ખચકાટ વગર જેમ સળગતા દીવા ઉપર પતંગિયું ફૂદી પડે છે; જેમ કોઈ રાજપૂતને યુદ્ધના ઢોલ અને બુંગિયા વાગે ત્યારે એવું શૂરાતન ચડી જાય કે લોઢાની જાડી કોશને પણ હાથ વડે બેવડી વાળી નાંખે; તેમ મોક્ષને પ્રાપ્ત કરવા સંગ્રામે ચડેલા જ્ઞાનીપુરુષો દેહવિયોગ વખતે એવા શૂરાતનમાં આવી જાય છે કે આત્માનંદમાં ઝૂલતાં ઝૂલતાં તેઓ નિ:સ્પૃહ ભાવે કલેવર ફેંકીને ચાલ્યા જાય છે, જાણે કે દેહ સાથે તેમને ક્યારે પણ કોઈ સંબંધ જ હતો નહીં!

જેમને પોતાની તાત્ત્વિક સત્તાનો અનુભવ થાય છે, તેઓ પરદ્રવ્યની સાથે તાદાત્મ્ય ન અનુભવતાં તેના માત્ર દ્રષ્ટા થઈને રહે છે. તેઓ મન, વાણી અને કાયાથી પોતાની ભિન્નતા જાણે છે તેમજ મન, વાણી અને કાયાની ક્રિયાને તટસ્થભાવે જુએ છે. 'હું માત્ર જ્ઞાનધારક પદાર્થ છું અને જ્ઞાન એ જ મારી ક્રિયા છે' એવું ભાન તેમને સતત રહે છે. આ જ સમ્યગ્જ્ઞાન છે એમ શ્રીમદ્ તેમના 'મૂળ માર્ગનું રહસ્ય'

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી પૂજ્યપાદસ્વામીકૃત, 'ઇપ્ટોપદેશ', શ્લોક ૨૯

'न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा । नाहं बालो न वृद्धोहं, न युवैतानि पुदुगले ।।'

ર- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'પ્રવચનસાર', ગાથા ૧૬૦

'णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं । कत्ता ण ण कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं ।।' પદમાં જણાવે છે. જુઓ -

'છે દેહાદિથી ભિ**ભ્ન આતમા રે, ઉપયોગી સદા અ**વિનાશ, એમ જાણે સદ્દગુરુ ઉપદેશથી રે, કહ્યું જ્ઞાન તેનું નામ ખાસ.'^૧

અહીં જણાવ્યું તેમ દેહાદિથી ભિન્ન, અર્થાત્ નોકર્મ-દ્રવ્યકર્મ-ભાવકર્મથી ભિન્ન એવો સદા ઉપયોગલક્ષણવાળો ચૈતન્યસ્વરૂપ અવિનાશી આત્મા પોતે છે એમ સદ્દ્ગુરુના ઉપદેશથી જાણવું તેનું નામ યથાર્થ જ્ઞાન છે. આત્માના અસ્તિત્વ તથા નિત્યત્વની શિષ્યને થયેલી અનુભૂતિનું આ ગાથામાં સરળ, સ્પષ્ટ અને સંક્ષિપ્ત વર્ણન છે, જે ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે શિષ્યને સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું છે.

નિર્ભાત જ્ઞાનરૂપી કાર્ય શ્રીગુરુના જ્ઞાનદાનની બલિહારી છે. શ્રીગુરુએ આપેલ અસીમ લાભદાયક ઉપદેશના પરિણામે શિષ્યને સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રગટ્યું. શુદ્ધાત્મસ્વરૂપમાં બિરાજમાન થવાનો શ્રીગુરુનો ઉપદેશ અંગીકાર કરી, શિષ્ય સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રગટાવી સંસારનાં જન્મ-જરા-મરણાદિ સર્વ દુઃખોથી અને સર્વ ક્લેશોથી વિરામ પામ્યો. જગતમાં ઘણાં પ્રકારનાં પરાક્રમ થાય છે, પરંતુ જન્મ-જરા-મરણનો નાશ અને તે પણ સર્વ કાળ માટે થઈ જાય, તેના જેવી સિદ્ધિ આ જગતમાં બીજી કોઈ નથી. શ્રીગુરુના કલ્યાણકારી ઉપદેશથી શિષ્યને આત્મજ્ઞાન પ્રગટ્યું અને જન્મ-મરણના મૂળ એવા મિથ્યાત્વનો છેદ ઉડાવવારૂપ સર્વોત્કૃષ્ટ સિદ્ધિ તેણે મેળવી.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'ભાસ્યું નિજસ્વરૂપ તે, જ્ઞાનગુણ સંયુક્ત; દેહાદિ જડ યોગથી, સર્વ પ્રકારે મુક્ત. કેવળ સમવસ્થિત જે, શુદ્ધ ચેતનારૂપ; સહજ સ્વતંત્ર નિવૃત્તિમય, પરમાનંદ સ્વરૂપ. અનુત્પન્ન અવિચળ સદા, અંત રહિત અશરીર; અજર, અમર, અવિનાશી ને, અતિશય ગુણ ગંભીર. ઉદાસીન સહુ જગતથી, કેવળજ્ઞાન સ્વરૂપ; વીર્ય અનંત નિજ આત્મનું, દેહાતીત સ્વરૂપ.'

* * *

૧- 'શ્રીમાદ્ રાજચંદ્ર', છઠ્ઠી આવૃત્તિ, પૃ.પર૩ (આંક-૭૧૫, કડી ૬)

૨- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૪ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૭૭-૪૮૦)

हर्ता काइता इश्मिं, दिला व चर्तिकोषां भे, व्यक्ति वहीतिक लायमां, श्रेषे आइन्हीं स्थंपे. ગાથા ૧૨૦માં સુશિષ્ય કહે છે કે આત્માનુભૂતિ થતાં તેને પોતાનું સ્વરૂપ શુદ્ધ ચૈતન્યમય, અજર, અમર, અવિનાશી અને દેહાતીત સ્પષ્ટપણે ભાસ્યું છે. સદ્ગુરુના ઉપદેશથી અનાદિ અજ્ઞાન ટળી જતાં આત્મદષ્ટિ પ્રાપ્ત થઈ છે અને પોતાનું સ્વરૂપ જેમ છે તેમ તેને સ્પષ્ટપણે પ્રતીત થયું છે એવી જાહેરાત આ ગાથામાં સુશિષ્યે કરી છે.

આમ, આત્માનાં પ્રથમ બે પદની - અસ્તિત્વ તથા નિત્યત્વની પ્રતીતિ થઈ છે એમ કહી, હવે ત્રીજા અને ચોથા પદની, અર્થાત્ કર્તૃત્વ અને ભોક્તૃત્વ પદની યથાર્થ પ્રતીતિ કયા પ્રકારે થઈ છે તે વિષે શિષ્ય ગાથા ૧૨૧ તથા ૧૨૨માં જણાવે છે.

સ્વાનુભવ થતાં આત્માનાં કર્તૃત્વ તથા ભોક્તૃત્વનું પરિણમન કેવા પ્રકારે થાય છે તે વિષે શિષ્ય જણાવે છે —

ંકર્તા ભોક્તા કર્મનો, વિભાવ વર્તે જ્યાંય; વૃત્તિ વહી નિજભાવમાં, થયો અકર્તા ત્યાંય.' (૧૨૧)

ું જ્યાં વિભાવ એટલે મિથ્યાત્વ વર્તે છે, ત્યાં મુખ્ય નયથી કર્મનું કર્તાપણું અને ભોક્તાપણું છે; આત્મસ્વભાવમાં વૃત્તિ વહી તેથી અકર્તા થયો. (૧૨૧)

ભાવાર્થ અનાદિથી પોતાના નિર્મળ, નિરાકુળ, સુખમય ચૈતન્યસ્વભાવને ભૂલી જઈ શિષ્ય વિભાવરૂપે પરિશમતો હતો, અર્થાત્ રાગાદિ ભાવકર્મના કર્તા-ભોક્તા રૂપે પરિશમતો હતો. તે વિકારી ભાવોનું નિમિત્ત પામી, કાર્મણ વર્ગણાનાં પુદ્દગલ-પરમાણુઓ ખેંચાઈને જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મરૂપે સ્વયં પરિશમી, આત્મપ્રદેશોની સાથે એકક્ષેત્રાવગાહે સ્થિત થતાં હતાં અને યોગ્ય સમયે તથારૂપ રસ આપી છૂટાં પડી જતાં હતાં. આમ, અજ્ઞાનના કારણે તે દ્રવ્યકર્મના કર્તા-ભોક્તારૂપે પરિશમતો હતો.

સદ્ગુરુના ઉપદેશ દ્વારા સમ્યક્ અભિપ્રાય થવાથી તથા ભેદજ્ઞાનના અભ્યાસથી ઉપયોગ ત્રિકાળી શુદ્ધ આત્મદ્રવ્ય તરફ વળતાં તે કર્મનો કર્તા-ભોક્તા રહેતો નથી. અંતર્મુખી વીતરાગી પુરુષાર્થ વડે આત્મસ્વભાવમાં એકાગ્ર થવાથી, તેનું ચૈતન્યબળ વૃદ્ધિગત થાય છે અને તેથી રાગાદિ વિકારી ભાવોના કે તેના નિમિત્તે બંધાતાં શુભાશુભ દ્રવ્યકર્મના કર્તા-ભોક્તારૂપે તે પરિણમતો નથી. ઉપયોગ શુદ્ધ સ્વરૂપમાં લીન થતાં તે પરનો અકર્તા-અભોક્તા થાય છે. મોક્ષના ઉપાય સંબંધી બોધ આપતાં

શ્રીગુરુએ શિષ્યને કહ્યું હતું કે 'જો દેહાધ્યાસ છૂટે તો તું કર્મનો અકર્તા-અભોક્તા થશે.' તે અનુસાર જ્યારે સુશિષ્યની વૃત્તિ નિજભાવમાં વહેતી થઈ, અર્થાત્ દેહાધ્યાસ છૂટ્યો અને સ્વાનુભવ થયો ત્યારે તે પોતાને પરના અકર્તા-અભોક્તારૂપે અનુભવે છે.

વિશેષાર્થ અત્મામાં અનંત શક્તિઓ છે. નિજસ્વભાવના અખંડ જ્ઞાનપરિશમનમાં એકસાથે અનંત શક્તિઓ ઊછળે છે, જે સ્વપરપ્રકાશક જ્ઞાનમાં સ્વયં ઝળકે છે. તેમાંથી જે વચનગોચર છે, માત્ર તેનું જ જિનવાણીમાં નિરૂપણ થઈ શક્યું છે. આત્માની અનંત શક્તિઓમાંથી બહુ થોડી શક્તિઓ સત્શાસ્ત્રોમાં કહેવામાં આવી છે. વચનગોચર શક્તિઓમાંથી એક શક્તિ છે અકર્તૃત્વશક્તિ. જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્મામાં વિકારના અકર્તાપણારૂપ શક્તિ વિદ્યાન છે. જ્ઞાતૃત્વપરિશામ સિવાયનાં સર્વ કર્મ વડે કરાતાં પરિશામોથી વિરમેલી આ અકર્તૃત્વશક્તિ છે. તે શક્તિ વિકારથી તો સદા ઉપરમ-સ્વરૂપ જ છે. જ્ઞાયકસ્વભાવી આત્માની અકર્તૃત્વશક્તિ એવી છે કે તેનો સ્વભાવ કદી પણ રાગના કર્તાપણે પરિશમતો જ નથી અને આવા સ્વભાવ તરફ ઝૂકેલી પર્યાય પણ રાગના કર્તાપણે પરિશમતી નથી. વૃત્તિ જ્યારે નિજભાવમાં વહે છે ત્યારે પર્યાયમાંથી વિકારી ભાવોનું કર્તાપણું છૂટી જાય છે અને તે જ આ અકર્તૃત્વશક્તિનું નિર્મળ પરિશમન છે.

આત્મામાં અકર્તૃત્વસ્વભાવ અનાદિ-અનંત છે. સ્વભાવની અપેક્ષાએ આત્મા વિકારનો કર્તા છે જ નહીં. ત્રિકાળી ચૈતન્યસ્વરૂપી આત્માનો સ્વભાવ જ્ઞાન-દર્શન-આનંદરૂપ છે. વિકારી ભાવો કરવાનો આત્માનો સ્વભાવ નથી. વિકારના કર્તા થવાનો આત્માનો સ્વભાવ નથી, પણ વિકારના અકર્તારૂપ જ્ઞાતૃત્વપરિણામ થયા કરે એવો આત્માનો ત્રિકાળ સ્વભાવ છે. ત્રિકાળી આત્મદ્રવ્યમાં તો વિકારનું અકર્તાપણું છે અને તેની મુખ્યતા કરવામાં આવે તો અલ્પ કાળમાં પર્યાયમાંથી પણ વિકારનું કર્તાપણું ટળી જાય છે.

વિકાર કરવાનો આત્માનો સ્વભાવ નથી, તેથી સમસ્ત વિકારી ભાવો કર્મથી કરવામાં આવેલા છે એમ કહેવામાં આવે છે; પરંતુ તેનો આશય એમ નથી કે કર્મ આત્માને વિકાર કરાવે છે. જીવ જે વિકારી ભાવ કરે છે તે કંઈ કર્મ નથી કરાવતું. વિકારનું પરિણમન પરના કારણે થતું નથી, પણ આત્માના કર્તૃત્વધર્મના કારણે થાય છે. આત્માના કર્તૃત્વ નામના ધર્મના કારણે આત્મા વિકારના કર્તાપણે પરિણમે છે, કોઈ પરદ્રવ્ય તેને વિકાર કરાવે છે એવું નથી. વિકારનો કર્તા કર્મ નથી. આત્મા પોતે ૧- શ્રી 'સમયસાર' અંથના પરિશિષ્ટમાં આત્માની ૪૭ શક્તિઓનું વર્ણન છે, તેમાં ૨૧મી અકર્તૃત્વશક્તિ અને ૪૨મી કર્તૃત્વશક્તિ બતાવી છે. વિકારના અકર્તાપણાની અપેક્ષાએ અકર્તૃત્વશક્તિ બતાવી છે અને નિર્મળ પર્યાયના કર્તાપણાની અપેક્ષાએ કર્તૃત્વશક્તિ બતાવી છે. શ્રીમદે અહીં ગાથા ૧૨૧માં અકર્તૃત્વશક્તિ અને ગાથા ૧૨૨માં કર્તૃત્વશક્તિની અપેક્ષાએ કથન કર્યું છે.

પર્યાયમાં વિકારપણે પરિણમે છે, તેથી તે આત્માનો જ ધર્મ છે. જો કે વિકારનું કર્તાપણું એ કાંઈ આત્માનો ત્રિકાળી સ્વભાવરૂપ ધર્મ નથી, પણ એક ક્ષણ પૂરતી પર્યાયનો ધર્મ છે. તે પર્યાય આત્માની છે, તેથી તેને આત્માનો ધર્મ કહેવામાં આવે છે. સ્વરૂપમાં સ્થિર નહીં રહેવાથી તથા કર્મના ઉદયમાં જોડાવાના કારણે જીવ વિકારરૂપે પરિણમે છે. વિકાર કરનાર જીવ પોતે જ છે, પરંતુ તેના ત્રિકાળી સ્વભાવમાં વિકારનું કર્તાપણું નથી. આ અકર્તા જ્ઞાયકસ્વભાવને મુખ્ય કરીને વિકારી ભાવો જ્ઞાનથી કરાયેલા નથી, પણ કર્મથી કરાયેલા છે એમ કહેવામાં આવે છે. જ્ઞાનથી તે વિકારી ભાવો ભિન્ન છે, તેથી તેને કર્મથી કરાયેલા કહ્યા છે. વિકારી ભાવોને કર્મકૃત કહીને જ્ઞાન-સ્વભાવ વિકારથી ભિન્ન છે એમ બતાવ્યું છે.

કર્મના ઉદયમાં જોડાવાથી વિકાર ઉત્પન્ન થાય છે, માટે સ્વપરભેદજ્ઞાન કરતી વખતે વિકારને કર્મના ખાતે જમા કરી તેને કર્મકૃત ભાવ કહેવામાં આવે છે. ચૈતન્યનો ધર્મ હોવા છતાં તેને કર્મકૃત કહ્યા છે, કારણ કે શુદ્ધ સ્વરૂપનો અનુભવ લેવાનો હોવાથી, વિકાર કર્મકૃત છે એમ કહી, તેના ઉપર જીવે સ્થાપેલું સ્વામિત્વ છોડાવવાનું પ્રયોજન છે. વિકારી ભાવ ત્રિકાળી દ્રવ્યસ્વભાવને અવલંબીને નહીં પણ કર્મને અવલંબીને ઉત્પન્ન થાય છે એનું ભાન કરાવવા તેને કર્મકૃત કહ્યા છે. સ્વસન્મુખતાનો અભાવ તથા કર્મ પ્રત્યેનો ઝુકાવ બતાવવા વિકારને કર્મકૃત કહ્યા છે. આમ, રાગાદિ વિકારી ભાવ આત્માની પર્યાયમાં થતા હોવા છતાં તેને આત્માના ભાવ ન કહેતાં કર્મકૃત ભાવ કહ્યા છે. વિકાર આત્મા જ કરે છે, તે આત્માની જ અવસ્થા છે અને તેનાં માઠાં ફળ પણ આત્માએ જ ભોગવવાં પડે છે; છતાં તે કર્મકૃત ભાવની સંજ્ઞા પામે છે.

અજ્ઞાનદશામાં જીવ પોતાના અકર્તાસ્વભાવને ભૂલીને, પર્યાયની ઊંધાઈથી વિકારના કર્તાપણે પરિણમે છે. પરદ્રવ્યનું કર્તાપણું તો કોઈ પણ જીવને નથી, કારણ કે પરદ્રવ્યથી તો આત્મા અત્યંત ભિન્ન છે, પણ અજ્ઞાનીને વિકારનું કર્તાપણું છે. વિકારથી જુદો પોતાનો જ્ઞાયકસ્વભાવ, જે અનંત શક્તિઓથી ભરેલો છે, તેને તે જણાતો નથી; તેથી વિકારનો કર્તા થઈ તે સંસારમાં રખડે છે. વિકારનો કર્તૃત્વરૂપ પ્રવૃત્તિપ્રવાદ અનાદિ હોવા છતાં તે આત્માના સ્વભાવથી ઉત્પન્ન થયેલો નથી, તેથી તેની નિવૃત્તિ થઈ શકે છે. જડ-ચેતનનું અને સ્વભાવ-વિભાવનું ભેદજ્ઞાન કરવાથી અભેદ, અખંડ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થવાથી વિકારના કર્તૃત્વરૂપ પ્રવૃત્તિ નિવૃત્ત થાય છે અને તેથી પૌદ્દ્રગલિક કર્મનો, એટલે કે નવાં દ્રવ્યકર્મનો બંધ પણ નિવૃત્ત થાય છે. વ

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવકૃત, 'સમયસારકલશ', કલશ ૪૭

^{&#}x27;परपरिणतिमुज्झत् खंडयद् भेदवादानिदमुदितमखंडं ज्ञानमुच्चंडमुच्चैः । ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्तेरिह भवति कथं वा पौद्गलः कर्मबंधः ।।'

પોતાના ત્રિકાળી અકર્તાધર્મની સન્મુખ થતાં વિકારનું કર્તાપણું છૂટે છે. જ્ઞાયક-સ્વભાવનો આશ્રય કરતાં જીવ વિકારનો અકર્તા થાય છે. શુભ કે અશુભ સમસ્ત પરિણામો આત્માના જ્ઞાયકભાવથી જુદાં છે, તેથી પર્યાયનું વલણ જ્યાં જ્ઞાયકસ્વભાવ તરફ વળે છે, ત્યાં જ્ઞાતાપણું જ રહે છે અને શુભાશુભ પરિણામનું કર્તાપણું છૂટી જાય છે. જ્ઞાનીની દેષ્ટિ પોતાના જ્ઞાતાસ્વભાવ ઉપર હોય છે. તેઓ જ્ઞાતાસ્વભાવની દષ્ટિના બળ વડે નિર્દોષતારૂપે જ પરિણમે છે, એટલે તેમને મિથ્યાત્વપરિણામ તો થતાં જ નથી. જે અલ્પ રાગાદિ ભાવ થાય છે, તેને જ્ઞાયકભાવથી ભિન્ન જાણ્યા હોવાથી તેની મુખ્યતા નથી, તેથી તેનું પણ અકર્તાપણું જ છે. જે અલ્પ વિકાર થાય છે તેના તેઓ જ્ઞાતાપણે પરિણમે છે, કર્તાપણે પરિણમતા નથી. સ્વભાવદષ્ટિમાં રહેતા જ્ઞાની સદા જ્ઞાતાપણે પરિણમતા હોવાથી નિરાસવ હોય છે.

જ્ઞાનીને પોતાના અકર્તાસ્વભાવની દેષ્ટિ થઈ હોવાથી તેઓ પર્યાયમાં પણ અકર્તા-પણે પરિણમે છે. તેઓ પોતાની અકર્તૃત્વશક્તિને નિર્મળપણે ઉલ્લસાવે છે. વિકારથી ઉપરમ પામીને તેઓ ઉપશાંત થયા હોય છે. સ્વભાવ તરફના વેદનની મુખ્યતામાં તેમને સમતા અને શાંતિ હોય છે. તેમને અનુભવપૂર્વકની પ્રતીતિ થઈ હોય છે. 'અહો, હું તો જ્ઞાનસ્વભાવી આત્મા છું. મારા જ્ઞાનમાં પરનું કે વિકારનું કર્તૃત્વ નથી. મારા કર્તૃત્વ વિના જ જગતનાં કાર્યો થઈ રહ્યાં છે. મારાં જ્ઞાતાપરિણામ રાગનાં પણ કર્તા નથી. મારા જ્ઞાયકભાવ સિવાય સર્વત્ર મારે અકર્તાપણું જ છે.' આમ, તેઓ પૂર્વકર્મના ઉદય વખતે કર્તા ન થતાં માત્ર જ્ઞાતા રહે છે.^ર

પોતાના જ્ઞાયકસ્વભાવને ઓળખતાં જ વર્તમાન પર્યાયનું જોર તે તરફ વળી જાય છે. પછી સ્વભાવ તરફના વલણથી પર્યાયે પર્યાયે જીવને અકર્તારૂપ પરિણામ થતાં જાય છે અને વિકારનું કર્તૃત્વ છૂટતું જાય છે. એમ કરતાં કરતાં વિકારનો સર્વથા અભાવ થઈ સાક્ષાત્ સિદ્ધદશા પ્રગટે છે. આત્મા અને તેની શક્તિઓ અનાદિ-અનંત છે, તેના આશ્રયે વિકારના કર્તૃત્વનો અભાવ થઈને જે સિદ્ધદશા પ્રગટે છે, તેનો કદી અંત આવતો નથી. સાદિ-અનંત કાળ સુધી સ્વભાવમાંથી અકર્તૃત્વપરિણામનો પ્રવાહ વહ્યા જ કરે છે. જ્ઞાયકસ્વભાવ તરફ વળતાં વિકારનો તો અંત આવી જાય છે, કેમ કે તે આત્માના સ્વરૂપમાં નથી; પણ જ્ઞાયકસ્વભાવના આશ્રયે જે અકર્તૃત્વપરિણામ પ્રગટે છે,

'भावास्त्रवाभावमयं प्रपन्नो द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः । ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो निरासवो ज्ञायक एक एव ।।'

२- જુઓ : पंडित श्री अनारसीदासक्छकृत, 'समयसारनाटक', कर्ताक्रमिकिया द्वार, सवैया १५ 'पूरव करम उदै आइके दिखाई देइ, करता न होइ तिन्हको तमासगीर है।।'

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવકૃત, 'સમયસારકલશ', કલશ ૧૧૫

તેનો કદી અંત આવતો નથી, કેમ કે તે તો આત્માનું સ્વરૂપ જ છે. જેમ આત્માનો અંત નથી, તેમ તેના આશ્રયે પ્રગટેલાં નિર્મળ પરિણામનો પણ અંત નથી.

આમ, વૃત્તિ નિજભાવમાં - આત્મસ્વભાવમાં વહે ત્યારે આત્મા અકર્તા થાય છે. કર્તાપણાને સાપેક્ષ ભોક્તાપણું હોવાથી કર્તાપણું મટતાં ભોક્તાપણું પણ રહેતું નથી. તે વિષે હવે વિચારીએ –

જ્ઞાયકસ્વરૂપ આત્મામાં જેમ ક્રોધાદિ વિકારના અકર્તાપણારૂપ શક્તિ છે, તેમ તેનામાં હર્ષ-શોકાદિ વિકારના અભોક્તાપણારૂપ શક્તિ પણ છે. સમસ્ત કર્મથી કરવામાં આવેલાં અને આત્માના જ્ઞાતૃત્વમાત્રથી જુદાં એવાં પરિણામોના અનુભવના ઉપરમસ્વરૂપ આ અભોક્તૃત્વશક્તિ છે. આત્માનો સ્વભાવ વિકારના ભોગવટાથી રહિત છે. હર્ષ-શોક આત્માના જ્ઞાતાભાવથી જુદા છે. આ જ્ઞાતાભાવના લક્ષે પર્યાયમાંથી હર્ષ-શોકનું ભોક્તાપણું ટળી જાય છે અને તે જ અભોક્તૃત્વશક્તિનું નિર્મળ પરિણમન છે.

શરીર કપાય તોપણ તેનું વેદન આત્માને થતું નથી અને તે તરફના અણગમાનું વેદન કરવાનો પણ આત્માનો સ્વભાવ નથી. જ્ઞાયકસ્વભાવનું વેદન કરવાનો આત્માનો સ્વભાવ છે. પરલક્ષે થતા હર્ષ-શોકના ભાવોને અનુભવવાની યોગ્યતા એકસમયવર્તી પર્યાયમાં છે, પણ આત્માનો ત્રિકાળી સ્વભાવ તો તે અનુભવથી રહિત જ છે. જો ત્રિકાળી સ્વભાવ જ તેવો હોય તો વિકારનું વેદન છૂટીને નિર્વિકાર આનંદનું વેદન થઈ શકે નહીં. આત્માનો ત્રિકાળી સ્વભાવ હર્ષ-શોકના ભોગવટા વગરનો, જ્ઞાયક રહેવાનો છે. આ જ્ઞાયકસ્વભાવને મુખ્ય કરીને હર્ષ-શોકાદિ વિકારી ભાવોને કર્મથી કરવામાં આવેલા કહેવાય છે. કર્મ તરફના વલણવાળો જીવ જ હર્ષ-શોકનો ભોક્તા થાય છે, માટે તેને આત્માનું કાર્ય ન કહેતાં કર્મનું કાર્ય કહેવામાં આવે છે.

આત્માથી ભિન્ન એવા શરીર, ધન, સ્ત્રી, અન્ન, વસ્ત્ર વગેરે પરપદાર્થને ભોગવવાનું તો આત્માના સ્વરૂપમાં કદી છે જ નહીં. 'હું પરદ્રવ્યનો ભોગવટો કરું છું' એમ અજ્ઞાની માને છે, પણ તે તો માત્ર તેની ભ્રમણા છે. તે કદી પરને ભોગવી શકતો નથી, પણ પર તરફના વલણથી હર્ષ-શોકના ભાવ કરીને, અજ્ઞાનભાવથી માત્ર તે હર્ષાદિ વિકારી ભાવોને ભોગવે છે. તે પરવસ્તુને નથી ભોગવતો, પણ પરમાં સુખ-દુઃખની કલ્પના કરીને માત્ર વિકારી ભાવોને જ ભોગવે છે. જો કે આ હર્ષ-શોકના ભાવો પણ આત્માના જ્ઞાયકભાવથી જુદા છે, તેથી તેને ભોગવવાનો પણ આત્માનો સ્વભાવ નથી. આત્માનો સ્વભાવ તો જ્ઞાયકસ્વભાવમાં એકાગ્ર થઈને પોતાના વીતરાગી આનંદને ભોગવવાનો છે.

આ રીતે આત્માનાં દ્રવ્ય, ગુણ કે પર્યાયમાં કશે પણ પરદ્રવ્યનો તો ભોગવટો છે

જ નહીં. હર્ષ-શોકનો ભોગવટો આત્માનાં દ્રવ્ય કે ગુણમાં નથી, માત્ર પર્યાયમાં એક સમયપૂરતો છે. વિકારના અભોક્તાસ્વરૂપ એવા ત્રિકાળી દ્રવ્ય-ગુણ તરફ વળતાં, પર્યાયમાંથી હર્ષ-શોકનું ક્ષણિક ભોક્તાપણું પણ છૂટી જાય છે અને તેથી દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાય ત્રણેથી આત્મા અભોક્તા થઈ જાય છે.

અભોક્તાસ્વભાવને ભૂલીને બહારની વસ્તુને ઠીક-અઠીક માનવી, તેનાથી પોતાને સુખ-દુઃખ થાય એમ માનવું તે સંસારનું મૂળ છે. આત્માર્થી જીવ જાણે છે કે 'જડમાં તો કશે પણ સુખ નથી અને જડ તરફના વલણથી હર્ષાદિની લાગણી થાય તેમાં પણ સુખ નથી. સુખ તો માત્ર પોતાના સ્વભાવમાં છે અને અંતર્મુખ થઈ તે સ્વભાવમાં સ્થિર થવાથી જ પોતાને પોતાના સુખનું વેદન થાય છે. સંયોગ તરફનું પોતાનું વલણ સંકોચવાથી, અંતર્મુખ થઈ સ્વભાવમાં સ્થિર રહેતાં અતીન્દ્રિય સુખનું વેદન થાય છે.'

જ્ઞાનને અંતરમાં વાળતાં જે અતીન્દ્રિય આનંદનો ભોગવટો થાય છે, તેમાં હર્ષ-શોકના ભોગવટાનો અભાવ છે. જ્ઞાયકસ્વભાવ તરફ વળીને તેનું વેદન જે નથી કરતો, તે જ વિકારનો ભોક્તા થઈને ચાર ગતિમાં રખડે છે. જો નિજજ્ઞાયકસ્વભાવ તરફ વળે તો વિકારનું વેદન રહે નહીં, પણ આનંદનું વેદન થાય. આત્માનો લક્ષ કરવામાં આવે તો હર્ષ-શોકનું વેદન થતું નથી. જે અભોક્તાસ્વભાવને લક્ષમાં લે છે, તેને ગમે તે સંયોગમાં પણ પોતાની શાંતિનું વેદન છૂટતું નથી.

જ્ઞાનીને અભોક્તાશક્તિનું નિર્મળ પરિશામન શરૂ થઈ ગયું હોય છે. તેમને અલ્પ હર્ષાદિ વખતે પણ, તેનાથી ભિન્ન જ્ઞાયકસ્વભાવની દષ્ટિ વર્તતી હોવાથી તેમને હર્ષાદિનું વેદન નથી, પણ જ્ઞાયકસ્વભાવનું વેદન વર્તે છે. જ્ઞાની શુદ્ધ દ્રવ્ય ઉપર દષ્ટિ રાખતા હોવાથી તેઓ હર્ષ-શોકના ભોક્તા નથી થતા, પણ જ્ઞાતા રહે છે. અજ્ઞાની પર્યાયદષ્ટિથી એકલા હર્ષ-શોકના ભોગવટાને જ જુએ છે, એટલે તેને જ્ઞાતાપણું નથી રહેતું; પરંતુ જ્ઞાની તો આત્મસ્વભાવ ઉપર દષ્ટિ રાખતા હોવાથી, અતીન્દ્રિય આનંદના ભોગવટા સહિત, 'પર્યાયમાં થતા હર્ષ-શોકનો હું ભોક્તા નથી' એમ હર્ષ-શોકના તેઓ જ્ઞાતા રહે છે.

જ્ઞાનીને હર્ષ-શોકનાં જે અલ્પ પરિશામ થાય છે તેમાં તેઓ તન્મય થતા નથી. જો તેમાં તન્મય થઈ જાય તો તેમને અભોક્તાપશું રહેતું નથી. અજ્ઞાની હર્ષ-શોક વગેરેમાં તન્મય થઈને તેને જ ભોગવે છે, તેનાથી જુદા જ્ઞાનસ્વભાવનું જરા પણ વેદન તેને હોતું નથી. હર્ષ-શોકનાં પરિશામ જ્ઞાતાપરિશામથી જુદાં જ છે એમ અનુભવથી જાણતા હોવાથી જ્ઞાની હર્ષ-શોકના ભોક્તા નથી થતા, પણ જ્ઞાતા જ રહે છે.

વિકારના ભોગવટારહિતનો આત્માનો જ્ઞાન-આનંદસ્વભાવ ઓળખે તો અભોક્તા-

સ્વભાવની શ્રદ્ધાથી સમ્યગ્દર્શન થતાં અભોક્તાપણું પ્રગટે છે અને પછી તો સ્વભાવમાં જેમ જેમ લીનતા થતી જાય, તેમ તેમ વિકાર છૂટતા જાય છે અને કેવળજ્ઞાન પ્રગટે છે. આત્માના જ્ઞાયકસ્વભાવમાં વિકારનું ભોક્તાપણું જરા પણ નથી એમ જાણી જીવ સ્વભાવદષ્ટિના આધારે વિકારનો ક્ષણે ક્ષણે અભાવ કરતો જાય છે અને છેવટે વિકારનો સર્વથા અભાવ કરીને પૂર્ણ આનંદનો ભોક્તા થઈ જાય છે.

આમ, જ્ઞાનસ્વભાવ જે સદા નિર્લેપ જ છે, તેનો અંતરમાં આશ્રય કરવાથી પર્યાયમાં પણ નિર્લેપતા પ્રગટે છે. નિજ ત્રિકાળી શુદ્ધ જ્ઞાયકસ્વભાવનો પક્ષ લેતાં પર્યાયમાં પણ અસંગતાનો અનુભવ થાય છે. ચૈતન્યનો આવો લક્ષ કરનાર બડભાગીનો સંસારસમુદ્ર શીઘ્રમેવ સુકાઈ જાય છે. અજ્ઞાની જીવ સદા નિર્લેપ રહેલા વસ્તુસ્વભાવના યથાર્થ ભાન વિના સમયવર્તી પર્યાયમાં રહેલા રાગ સાથે તથા નિમિત્ત સાથે સંબંધ જોડે છે. જ્ઞાનીએ ધ્રુવ, શુદ્ધ જ્ઞાયકસ્વભાવના આશ્રયે તે સંબંધ તોડ્યો હોય છે અને તેથી તેમને પર્યાયમાં રાગાદિ વિભાવનો કે નિમિત્તનો સંબંધ રહેતો નથી. અજ્ઞાની-જ્ઞાનીનાં પરિશમન વિષે શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ લખે છે –

'અજ્ઞાની જીવ ભૂલથી આત્માને રાગાદિ વિભાવ ભાવોનો કર્તા, ભલાંબૂરાં કાર્યોનો કર્તા, મકાન નગર આદિનો કર્તા માનીને અભિમાન કરે છે. જે પોતાના સહજ સ્વાભાવિક કર્મ નથી તેને ફુબુદ્ધિથી પોતાનાં કર્મ માનીને રાગદ્ધેષ કરી સંસારબંધ કરે છે.

જ્ઞાની ધર્માત્મા શુદ્ધ જ્ઞાન પરિણતિનો જ પોતે કર્તા છે એમ માને છે, અને સર્વ પરભાવોથી સર્વથા ભિજ્ન છું એમ સમજે છે. જો શુભાશુભ ભાવો થાય છે, તો તે તેને મંદ તીવ્ર કષાયનો ઉદય જાણી પોતાનો સ્વભાવ માનતા નથી, પણ નૈમિત્તિક, ઔદયિક, ઔપાધિક ભાવો છે એમ શ્રદ્ધા રાખે છે અને ત્યાં પણ એવી ભાવના રાખે છે કે આ વિભાવ ન હોય તો ઠીક; માત્ર સ્વસંવેદનરૂપ વીતરાગભાવમાં પરિણમન હોય તો સાર્યું. આમ પવિત્રાત્મા જ્ઞાની પુરુષ પરમાં કર્તાપણું નહીં માનતા હોવાથી નવીન કર્મથી બંધાતા નથી, ઉદયગત કર્મોને વેદી નિર્જરા કરે છે અને સ્વરૂપસ્થિરતાથી કર્મોનો એકીસાથે સામટો નાશ કરે છે.

જીવ અનાદિથી પોતાની કર્તાબુદ્ધિ-ભોક્તાબુદ્ધિ પોષતો રહ્યો છે. 'પરનું પરિશમન પરના આધારે જ થાય છે. તેમાં મેં કંઈ જ કર્યું નથી. તેમાં હું કંઈ જ કરી શકતો નથી. પરને હું ભોગવી શકતો નથી.' આ સત્યને તે સમજતો નથી, સ્વીકારતો નથી અને મિથ્યા કર્તા-ભોક્તાપણું સેવી પોતાનું બગાડે છે. 'હું છું તો આ કાર્ય થઈ શકે, મારા સિવાય કોઈ આ કાર્ય કરી શકે નહીં' એવા મિથ્યા અભિમાનમાં તે અહર્નિશ ૧- શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ, 'આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર (વિશેષાર્થ સહિત)', ચોથી આવૃત્તિ, પૃ.૩૫૬-૩૫૭

રાચે છે. જીવે પોતાની દષ્ટિનું પરિવર્તન કરવાની જરૂર છે. સ્વભાવ તરફ દષ્ટિ જતાં તે જ્ઞાતા બને છે અને કર્તા-ભોક્તાબુદ્ધિ ટળી જાય છે. દષ્ટિ બદલવાની જરૂર છે. તેનું વીર્ય જો ઊંધી દિશામાં વપરાય તો અનંત દુઃખ અને શોકની પરંપરા સર્જાય છે, પરંતુ એ જ વીર્ય જો સવળી દિશામાં વળે છે તો તે વીર્ય નિજ અનંત અવ્યાબાધ સુખની પ્રાપ્તિ કરાવે છે.

કર્તા-ભોક્તાબુદ્ધિ તોડવા માટે પોતાની વૃત્તિ જ્ઞાયકતત્ત્વની સન્મુખ કરવી જોઈએ. દરેક પ્રસંગ વખતે દરેક કાર્ય કરતી વખતે જ્ઞાયકતત્ત્વનું સ્મરણ કરવું કે 'હું કરનારો નથી, ભોગવનારો નથી, કેવળ જોનારો છું.' દ્રષ્ટાને અલગ કરવો જોઈએ. અનંત જન્મોથી પરમાં તાદાત્મ્ય કરવાનું જ જીવ શીખ્યો છે, તોડવાનું નથી શીખ્યો. હવે તેણે આ તાદાત્મ્ય તોડવાનો અભ્યાસ કરવાનો છે. પોતાની જાતને ઢંઢોળીને જગાડવાની છે કે 'મારે કર્તૃત્વ-ભોક્તૃત્વભાવ કરવાનો નથી. ચારે તરફ આ જે કંઈ હું જોઈ રહ્યો છું તે એક નાટક છે અને હું એક પ્રેક્ષકથી વધારે કંઈ જ નથી. હું કર્તા-ભોક્તા નથી, હું ફક્ત જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા છું.'

દરેક ઘટનામાં કર્તા-ભોક્તાભાવ સ્થાપ્યા વિના જ્ઞાયકભાવે તેને જોવી જોઈએ. તેને એવી રીતે જોવી ઘટે કે જાણે તે ઘટના રંગમંચ ઉપર ભજવાઈ રહી હોય. તે ઘટના નાટકરૂપે જોવી જોઈએ, તેનાથી અલગ, એક તટસ્થ પ્રેક્ષકની જેમ. જે ઘટનાઓ નાટકમાં ઘટિત થઈ રહી છે, તેના માત્ર દર્શક બની જવું જોઈએ. તેને એવી રીતે જોવી જોઈએ કે જાણે એ ઘટના કોઈ બીજાના જીવનમાં બની રહી છે. તેને પૃથક્પણે જોવી જોઈએ. તેની સાથે એકાત્મ બનીને નહીં.

જીવે સતત યાદ રાખવું જોઈએ કે સમગ્ર ઘટનાથી પોતે પૃથક્ છે, અસ્પર્શ્ય છે. રાગાત્મક-દેષાત્મક પ્રતિક્રિયા વિના જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવે તેને જોવી જોઈએ. કોઈ અપમાન કરે તો તે અપમાનને તટસ્થપણે જોવું જોઈએ. તે ઘટનામાં કર્તા-ભોક્તા બનીને ક્રોધ ન કરવો જોઈએ. જો અપમાનની ઘટનામાં તાદાત્મ્ય સ્થપાશે તો ક્રોધનાં પરિણામ અવશ્ય જાગશે, પરંતુ જો તેને જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવે નિહાળવામાં આવે તો ક્રોધનાં પરિણામ નહીં થાય. કોઈ અપમાન કરી રહ્યું હોય ત્યારે આખી ઘટનાના તટસ્થ પ્રેક્ષક થઈ જવાથી ક્રોધ નહીં આવે. એ રીતે જ જ્યારે પ્રશંસાનું દશ્ય હોય ત્યારે આહ્લાદિત ન થવું જોઈએ, ઉદાસીન થઈને તેને પણ નાટકની જેમ જોવું જોઈએ.

રસ્તા ઉપર ચાલતી વખતે ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ કે પોતે નથી ચાલતો, માત્ર શરીર ચાલે છે. ધીરે ધીરે એક આહ્લાદક અનુભવ થશે કે રસ્તા ઉપર ચાલતી વખતે અંદર બે ભાગ પડી ગયા છે. એક ચાલી રહ્યો છે અને એક સ્થિરપણે જાણી રહ્યો છે. એ જ પ્રમાણે ભોજન કરતાં લાગશે કે એક ભોજન કરી રહ્યો છે અને એક જ્ઞાતાભાવે જાણી રહ્યો છે. ભોજન કરો ત્યારે સ્મરણમાં એ સાધી રાખવું જોઈએ કે ભૂખ શરીરને લાગે છે, પોતાને નહીં. આત્મા ભોજન અને ભોજન કરનાર શરીર બન્નેથી ભિન્ન છે. ભોજન અને શરીરની પાર જે જ્ઞાયકતત્ત્વ છે તે હું છું એવો ભાવ રહેવો જોઈએ. ભોજન તથા ભોજન કરનાર શરીરને જ્ઞાયકભાવે જાણવાં જોઈએ. ભોજનની ક્રિયામાં એકાત્મ ન થવું જોઈએ.

જેમ શરીર અને તેની ક્રિયાના કર્તા-ભોક્તા નથી બનવાનું, પણ જ્ઞાતા બનવાનું છે, તેમ તેશે પોતાની ભાવદશાના પણ જ્ઞાતા બનવાનું છે. જેમ બહારનાં પરિવર્તનોને પોતાથી ભિન્ન જોવામાં આવે છે. શરીરને પોતાથી ભિન્ન જોવામાં આવે છે; તેમ પોતાના ભાવોને પણ પોતાથી ભિન્ન જોવાના છે. આ અભ્યાસ સ્થૂળ ચીજોને જોવાથી શરૂ કરવો જોઈએ, કારણ કે એ સરળ છે. ત્યારપછી સૂક્ષ્મ ભાવો તરફ જવાનું છે. પોતાના ભાવોનું અવલોકન કરવાથી જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવ સર્વાધિક પુષ્ટ થાય છે અને સ્વની નિકટતા વધુ ને વધુ સધાતી જાય છે. પોતાના ભાવોનું માત્ર હોશપૂર્ણ અવલોકન કરવું જોઈએ કે ક્રોધાદિ મારામાંથી પસાર થઈ રહ્યા છે. ક્રોધને ભિન્નપણે જોવો જોઈએ. ક્રોધ જાગે, ધુમાડાની જેમ તમને ચારે તરફથી ઘેરી લે ત્યારે જાગૃતિ રાખવી જોઈએ કે 'હું ક્રોધ નથી. મારે ક્રોધને માત્ર જોવો-જાણવો છે. ક્રોધની સાથે એક થવાનું નથી.' અનાદિની મિથ્યા માન્યતાના કારણે જીવ પોતાને ક્રોધથી અભિન્ન માને છે, પરંતુ જ્યારે એ કોધનું અવલોકન કરવા લાગે છે ત્યારે તેને તેની ભિન્નતાનો બોધ સ્પષ્ટ થતો જાય છે. જો કે આવો બોધ જલદીથી નહીં આવે. કારણ કે ક્રોધ સાથે જન્મોજન્મની એકતા છે. તે એક્ય એક દિવસમાં તૂટી નહીં જાય, પરંતુ જીવ જો પ્રયત્ન કરે તો તે અવશ્ય તૂટી શકે. જીવે પોતાના વિભાવ સાથે અતાદાત્મ્ય સાધવાનું છે. એની સાથેનો એકત્વનો સંબંધ તોડી નાખવાનો છે. ક્રોધાદિથી દૂર હટી તટસ્થપણે એને જાણવો જોઈએ. જ્ઞાયક ભાવે તેને માત્ર જાણ્યા કરવાનું છે.

જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવની સાધનાના પરિણામે જીવને પોતાના સ્વરૂપની ઉપલબ્ધિ થાય છે. જ્ઞાયકભાવ એક સનાતન પ્રક્રિયા છે. જાત અને જગતનું જ્ઞાતાભાવે દર્શન કરવાનું છે. વિકારો, શરીર કે દશ્યોને કર્તા-ભોક્તાભાવ વિના જોવાનાં છે. સ્વ અને પરનાં ક્ષેત્રોમાં થતાં તમામ પરિવર્તનોના તટસ્થ પ્રેક્ષક બની જવાનું છે. જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવની પ્રક્રિયાનો અભ્યાસ કરતાં જીવ ગહનથી ગહનતર થતો જાય છે. દ્રષ્ટાભાવના વારંવાર અભ્યાસથી તે અંદરની તરફ વળે છે અને જેટલો અંદર જાય છે તેટલો સુખી હોવાનો અનુભવ કરે છે. તે અંદર ને અંદર ઊતરતો જાય છે અને વધારે શાંત, વધારે મૌન, વધારે એક્ત્વવાળો, વધારે સ્વતંત્ર, વધારે મહિમાવાન, વધારે પ્રસન્ન થતો જાય છે. જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવના નિરંતર અભ્યાસથી તે સ્વમાં સ્થિર થતો જાય છે અને અપૂર્વ

શાંતિનો અનુભવ કરે છે. કોઈ પણ પરસંયોગ વિનાના સુખની પ્રથમ ઝલક તે મેળવે છે. તે અત્યંત આનંદથી ભરાઈ જાય છે. સ્વરૂપનો અનુભવાત્મક બોધ થાય છે કે 'જે ચાલે છે, તે હું નથી; જે સ્થિર છે, તે હું છું. જે વાસનાથી ભરેલો છે, તે હું નથી; જે અમૃતનો સોત છે, અજર-અમર છે, શાશ્વત ચૈતન્ય છે, તે હું છું.' પોતાના સ્વરૂપની ભાળ લાગી જવાથી ચૈતન્યમહેલનાં દાર ખૂલી જાય છે અને અવર્શનીય શાંતિ, આનંદ, તૃપ્તિનો સ્વાદ ચાખ્યો હોવાથી આગળની યાત્રા ખૂબ જ સરળ બને છે. સ્વરૂપના સ્પષ્ટ, પ્રત્યક્ષ બોધથી તેનું સમગ્ર જીવન ફેરવાઈ જાય છે. તેનું અદ્ભુત રૂપાંતરણ થઈ જાય છે. કર્તા-ભોક્તામાંથી તે અકર્તા-અભોક્તા બને છે. તે હવે ભોજન કરે છે છતાં ઉપવાસી છે, ભીડમાં હોવા છતાં એકલો છે, સૂતો છે છતાં જાગૃત છે. આ સર્વ જ્ઞાયકભાવની સાધનાનો પ્રતાપ છે.

સતત જ્ઞાયકભાવમાં રહેવું જોઈએ. એક પણ ક્ષણને બેહોશીમાં ન જવા દેવી જોઈએ. જેવી કર્તા-ભોક્તાની વૃત્તિ ઊઠે કે તરત જ્ઞાયકને સંભારવો જોઈએ. કર્તા-ભોક્તાભાવનો નાશ કરવા જ્ઞાતાભાવરૂપ શસ્ત્રને ધારદાર કરવું જોઈએ. એ જ મૂળ ધર્મ છે. દરેક પ્રસંગમાં વૃત્તિને જ્ઞાયકતત્ત્વની સન્મુખ કરતા રહેવું જોઈએ. પરિઘ ઉપરથી દેષ્ટિ હટાવી કેન્દ્રમાં દેષ્ટિ સ્થાપવી જોઈએ. સંજોગો નિરંતર બદલાયા જ કરશે, પરંતુ દેષ્ટિ કેન્દ્ર ઉપર જ રાખવી જોઈએ. સ્વભાવ ઉપર દેષ્ટિ રાખી અપ્રભાવિત રહેવું જોઈએ. અક્ષુબ્ધ અને અસ્પર્શ્ય રહીને મન-વચન-કાયાની પ્રવૃત્તિ કરવી જોઈએ. પરજ્ઞેયમાં કર્તા-ભોક્તાભાવ ન કરતાં ઉપયોગને અપ્રભાવિત રાખવો જોઈએ.

જીવ ઉપયોગસ્વરૂપ છે. તેનો ઉપયોગ પરજ્ઞેયોને જાણવામાં પ્રવર્તે છે. પરને જાણતી વખતે તેનો ઉપયોગ કર્તા-ભોક્તાભાવમાં સરી પડે છે. તેણે એવો પુરુષાર્થ કરવો જોઈએ કે પરને જાણતી વખતે કર્તા-ભોક્તાભાવ ન ઊઠે. જો તે પરને માત્ર જ્ઞાતાભાવથી જ જાણે, તો તેનો ભાવ પરથી પ્રભાવિત થયા વિના, પરમાં જોડાય નહીં, એટલે કે કુંવારો જ રહે. જ્યારે તે કર્તા-ભોક્તાભાવે પરને જાણે છે ત્યારે તે પર સાથે સગાઈ કરે છે. તેણે એવી જાગૃતિ રાખવાની છે કે પરને જાણતી વખતે તેમાં જોડાણ ન થઈ જાય, અર્થાત્ તેનો ઉપયોગ કુંવારો રહે, અપ્રભાવિત રહે, અસ્પર્શ્ય રહે. ઉપયોગ જ્યારે અપ્રભાવિત રહે છે ત્યારે તે ઉપયોગમાં એટલી સ્વચ્છતા, એટલો પ્રકાશ ઝળકી ઊઠે છે કે તે પ્રકાશમાં સ્વયંનો બોધ થાય છે, સ્વની અનુભૂતિ - સ્વસંવેદન થઈ જાય છે.

જ્ઞાનીઓ જ્યારે નિર્વિકલ્પ અવસ્થામાં હોય છે ત્યારે તેમનો ઉપયોગ સ્વજ્ઞેયમાં રમે છે અને જ્યારે સવિકલ્પ અવસ્થામાં હોય છે ત્યારે તેમનો ઉપયોગ બહાર જાય છે ખરો, પણ અપ્રભાવિત જ રહે છે. આ જ કારણથી જ્ઞાનીઓનો ઉપયોગ સદૈવ શુદ્ધ કહેવામાં આવે છે. જેઓ આ પ્રમાણે પરથી અપ્રભાવિત રહે છે, તેઓ સંસારમાંથી પસાર થાય છે; પરંતુ સંસાર તેમનામાંથી પસાર થતો નથી.

જ્ઞાનીઓ પરજ્ઞેયને જાણે છે, પણ તેમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટની, કર્તા-ભોક્તાની કલ્પના કરતા નથી. તેઓ કર્મધારાનો ત્યાગ કરી જ્ઞાનધારામાં સ્થિત રહે છે. જાણવાના બે પ્રકાર છે - એક જ્ઞાનધારા અને બીજી કર્મધારા. એકમાં વસ્તુને જેમ છે તેમ જાણવાનું થાય છે. આ જ્ઞાનધારા છે. બીજામાં વસ્તુને ઇષ્ટ-અનિષ્ટ બુદ્ધિપૂર્વક જાણવાનું થાય છે. આ કર્મધારા છે. જ્ઞાનધારા જ્ઞાનના પારિણામિક ભાવ-સ્વભાવ સાથે તન્મય છે, તેને અનુરૂપ છે; અને કર્મધારા પરપદાર્થોનાં ગ્રહણ-ત્યાગના વિકલ્પો સહિત હોવાના કારણે જ્ઞાનના પારિણામિક ભાવ-સ્વભાવ સાથે તન્મય નથી, તેને અનુરૂપ નથી. જ્ઞાનધારાયુક્ત ચેતન 'જ્ઞાતા' કહેવાય છે, જ્યારે કર્મધારાયુક્ત ચેતન 'કર્તા-ભોક્તા' કહેવાય છે. જ્ઞાતા રહેવું એ ધર્મ છે, જ્યારે કર્તા-ભોક્તા થવું એ અધર્મ છે. જ્ઞાનધારા અને કર્મધારાને થોડા દષ્ટાંત વડે સમજીએ —

- (૧) 'હું જ્ઞાનસ્વભાવી, શુદ્ધ ચૈતન્ય છું અને વર્તમાનમાં સ્ત્રીશરીરનો સંયોગ હોવાથી પર્યાયધર્મે હું સ્ત્રી છું', એવું જાણવું તે જ્ઞાનધારારૂપ છે. અનેક અવસ્થાઓમાં ગૂંથાયેલી એક અખંડ સત્તાનું દર્શન થાય છે તે જ્ઞાનધારા; અને સ્ત્રીશરીર સાથે પોતાનો સંબંધ જોડીને તેમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટ કલ્પના કરવી કે 'સ્ત્રી થવાથી હું દુઃખી છું. તે મને અંતરાયભૂત નીવડે છે. આ ન હો તો ઠીક.' આ સર્વ કર્મધારા છે.
- (૨) 'આ વિષ્ટા નામનો એક પીળા રંગનો, કોઈ વિશેષ પ્રકારની ગંધવાળો પદાર્થ છે. તે પહેલાં અન્નરૂપે હતો, હવે વિષ્ટા થવાથી ખેતરોમાં ખાતરરૂપે નાખવામાં આવશે.' આ પ્રકારનું જ્ઞાન તે જ્ઞાનધારા છે. પરંતુ 'આ વસ્તુ ઘૃણાજનક છે. તેને મારાથી દૂર કરો.' આ પ્રકારનું જ્ઞાન તે કર્મધારા છે.
- (૩) 'આજનો દિવસ બહુ જ ગરમ છે' તે જ્ઞાનધારા છે. પરંતુ 'ગરમીથી મને બહુ પીડા થાય છે. ગરમી ઓછી થાય તો સારું.' આ કર્મધારા છે.

કોઈ પદાર્થ કે વિષયનું જાણવું તે અનિષ્ટ નથી, પરંતુ તેની સાથે થતા દંદાત્મક વિકલ્પો કે જે અંતસ્તલને ક્ષુબ્ધ કરે છે, અશાંતિના અગાધ સાગરમાં ધકેલી દે છે તે અનિષ્ટ છે. જ્ઞાન તો દર્પણ છે. તેની સમક્ષ જે આવે તેને તે જાણે છે, તેમાં કંઈ અનિષ્ટ નથી. તેમાં ભલે ધન, સ્ત્રી, કુટુંબ જણાતું હોય; તે જાણવું કાંઈ અનિષ્ટ નથી, પરંતુ તે સંબંધી દંદાત્મક વિકલ્પો, કર્તા-ભોક્તાની ધારણા તે અનિષ્ટ છે.

કર્મધારારૂપ પ્રવર્તન તો પ્રાણીમાત્ર સદાકાળથી કરતો આવ્યો છે. જ્ઞાનીને આ

અનાદિ કાળનો અધ્યાસ દૂર થયો હોય છે. તેમણે ચિત્તમાં ઊઠતા ઇષ્ટ-અનિષ્ટના અનાદિગત સંસ્કારોનો નાશ કર્યો હોય છે. તેમણે કર્મધારાનો ત્યાગ કરીને જ્ઞાન- ધારારૂપ પુરુષાર્થનો આશ્રય લીધો હોય છે. તેમને પોતાના અકર્તા-અભોક્તાસ્વભાવની અનુભવપૂર્વકની ખાતરી હોય છે. તેઓ પરના કે રાગના કર્તા-ભોક્તાપણાની કલ્પના નથી કરતા. જો કર્તૃત્વ-ભોક્તૃત્વબુદ્ધિ દૂર ન થાય તો તેઓ જ્ઞાની કેવી રીતે કહેવાય? તેઓ જો અજ્ઞાની જીવોની જેમ કર્તા-ભોક્તાબુદ્ધિ કરે તો તેમના અને અજ્ઞાની જીવો વચ્ચે શું ફરક રહે? જ્ઞાનીઓનું બાહ્ય જીવન ભલે અજ્ઞાની જેવું લાગે, ભલે તેઓ સાંસારિક ક્રિયા કરતા હોય, પરંતુ તેમનો અંતરંગ અભિપ્રાય જ્ઞાનધારાયુક્ત જ હોય છે.

જ્ઞાની કર્તા-ભોક્તાની કલ્પના વિના સર્વને જાશે છે. તેઓ સર્વથી અલિપ્ત રહે છે. જેમ કોઈ બેકાબૂ ઘોડાને અનેકવિધ ઉપાયો દ્વારા કેળવ્યા પછી તે કોઈ ખાસ વિશેષ પ્રયત્ન વગર કેવળ માલિકના ઇશારે બરાબર ચાલે છે; એ પ્રમાણે ચિત્તને જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા રહેવાના અભ્યાસ દ્વારા સાધ્યા પછી તે કોઈ ખાસ વિશેષ પ્રયત્ન વગર જ્ઞાનધારામાં સ્થિર રહે છે. અજ્ઞાનાવસ્થામાં કોઈ બાહ્ય વિષય પ્રત્યે ઉન્મુખ થવાથી જે રીતે ચિત્ત કર્મધારામાં વહી જતું હતું તે રીતે હવે વહી જતું નથી. જ્ઞાની હવે કર્તા-ભોક્તાની વ્યર્થ કલ્પના કરતા નથી અને તેથી અકર્તા-અભોક્તા રહે છે. તેઓ વિષયને જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાભાવે જાણે છે અને સ્વરૂપસ્થિરતા તરફ આગળ વધતા જાય છે.

જીવ પોતાના ઉપયોગને પરજ્ઞેયોના પ્રભાવમાંથી મુક્ત કરે તો અનંત સુખ-શાંતિ-આનંદનાં દ્વાર તેના માટે ખુલ્લાં જ છે. તેણે દશ્યનું તાદાત્મ્ય તોડી દ્રષ્ટામાં તાદાત્મ્ય સાધવું જોઈએ. જ્ઞાનને તો માત્ર નિજપરમાત્મસ્વરૂપમાં જ વિશ્રામ પ્રાપ્ત થાય એવું છે. પોતાના ઉપયોગને સંસારની તુચ્છ રમતોમાંથી છોડાવી, નિજકાર્યમાં ઉદ્યુક્ત થવું જોઈએ. જીવન સફળ કરવા અધ્યાત્મ-અભિયાનમાં ઝુકાવી દેવું જોઈએ. જીવ અનાદિથી સ્વ-પરના ભેદજ્ઞાનના અભાવે પરનો ગ્રાહક બનેલો છે, પર ઉપર પોતાનું સ્વામીપણું રાખીને બેઠો છે. પોતાના અને પરના ભિન્ન ભિન્ન નિશ્ચિત સ્વલક્ષણોનું જ્ઞાન ન હોવાથી, બીજાના અને પોતાના એકત્વનો અધ્યાસ હોવાથી તે કર્તા-ભોક્તા થાય છે. જ્યારે તે જ આત્મા પોતાના અને પરના ભિન્ન ભિન્ન નિશ્ચિત સ્વલક્ષણોના જ્ઞાનના કારણે સ્વ-પરના એકત્વનો અધ્યાસ નથી કરતો ત્યારે તે અકર્તા-અભોક્તા થાય છે.

સુશિષ્યે પોતે કર્મનો અકર્તા-અભોક્તા થયો એવી જાહેરાત આ ગાથામાં કરી છે. જ્યારે તેને મિથ્યાત્વ વર્તતું હતું ત્યારે તે કર્મનો કર્તા-ભોક્તા થતો હતો. શ્રીગુરુના ઉપદેશથી સંસારની તમામ વળગણાઓ તોડીને, સંકલ્પ-વિકલ્પથી રહિત થઈને તે સ્વરૂપમાં ઠર્યો છે. વૃત્તિ નિજભાવમાં જતાં તેનું પરભાવનું કર્તૃત્વ-ભોક્તૃત્વ છૂટી ગયું છે. આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે -

'કર્તા ભોકતા કર્મનો, જ્યાં લગે નહીં નિજભાન; મિથ્યાભાવ અજ્ઞાનનો, ભૂલ્યો નિજ ગુણસ્થાન. લેતો દેતો અન્યને, **વિભાવ વર્તે જ્યાંય;** ઇષ્ટ અનિષ્ટ પદાર્થમાં, રતિ અરતિ છે જ્યાંહિ. પણ સત્ જ્ઞાન પ્રભાવથી, ટળી ગયો પરભાવ; **વૃત્તિ વહી નિજભાવમાં**, જે છે ભવોદધિ નાવ. જે ઉપયોગે આત્મમાં, આત્મભાવ છે જ્યાંહિ; દેહાદિક ત્રિક યોગનો, થયો અકર્તા ત્યાંય.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૪ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૮૧-૪૮૪)

अभिवर किन्द्रियाम ने, के के भेगाउँ५,

ગાથા ૧૨૧માં સુશિષ્યે કહ્યું કે જ્યાં સુધી વિભાવ વર્તે છે ત્યાં સુધી જીવ કર્મનો કર્તા અને ભોક્તા છે, પરંતુ જ્યારે વૃત્તિ આત્મસન્મુખ થાય છે ત્યારે તે કર્મનો કર્તા-ભોક્તા રહેતો નથી, અર્થાત્ કર્મનો અકર્તા-અભોક્તા બને છે.

વૃત્તિ આત્મસ્વભાવમાં વહેતાં આત્મા અકર્તા-અભોક્તા થાય છે, પરંતુ તે વખતે આત્મા કાંઈ અપરિજ્ઞામી થઈ જતો નથી, એટલે કે પર્યાય નષ્ટ થઈ જતી નથી. આત્મા અકર્તા-અભોક્તા બનવા છતાં પણ પરિષ્ઠામનું અસ્તિત્વ રહે છે, પર્યાય રહે છે, કારણ કે દ્રવ્ય અને પર્યાય ક્યારે પણ છૂટાં ન પડી શકે એવું વસ્તુનું બંધારણ છે. આત્મા અકર્તા-અભોક્તા થયો એમ કહેવાનો અર્થ એમ થાય છે કે પરિષ્ઠામ નિજભાવમાં વહેતાં, પરના કર્તા-ભોક્તાપણાની જગ્યાએ જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાપણું આવ્યું અને પોતાના નિજ નિર્મળ પરિષ્ઠામનો તે કર્તા-ભોક્તા થયો. આમ, વૃત્તિ નિજભાવમાં વહેતાં આત્મા વિકારનો અને જડ કર્મનો અકર્તા-અભોક્તા થયો, તે છતાં પણ તે નિર્મળ પર્યાયરૂપ કાર્યનો કર્તા-ભોક્તા અવશ્ય છે. આ જ વાત પ્રસ્તુત ગાથામાં બતાવવામાં આવી છે –

'અથવા નિજપરિણામ જે, શુદ્ધ ચેતનારૂપ; આથા કર્તા ભોક્તા તેહનો, નિર્ધિકલ્પ સ્વરૂપ.' (૧૨૨)

અથવા આત્મપરિણામ જે શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપ છે, તેનો નિર્વિકલ્પસ્વરૂપે કર્તાભોક્તા થયો. (૧૨૨)

'અથવા' શબ્દ પ્રયોજી આગલી ગાથામાં કરેલી વાત બીજી રીતે વર્ણવતાં સુશિષ્ય કહે છે કે જેનો વિભાવ નિવૃત્ત થયો છે અને જેની વૃત્તિ નિજભાવમાં વહી છે, તે જીવ નિર્મળ પરિશામનો કર્તા અને તેના આનંદનો ભોક્તા બને છે. સ્વાનુભવદશામાં જ્ઞાનોપયોગ આત્મામાં સ્થિર થવાથી નિર્વિકલ્પ સ્વરૂપની અનુભૂતિ થાય છે. ત્યાં 'મારે કરવું છે', 'હું કરું છું', 'હું ભોગવું છું', 'મેં કર્યું', 'મેં ભોગવ્યું' એવા પરદ્રવ્ય કે સ્વદ્રવ્ય સંબંધીના વિકલ્પો રહેતા નથી. શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વભાવમાં જ સહજ પરિશમન થાય છે, તેથી તે પોતાના શુદ્ધ ચૈતન્યભાવોનો કર્તા અને ભોક્તા થાય છે. પરિશતિ નિજભાવમાં વહેતાં પરના કર્તા-ભોક્તાપણાની જગ્યાએ જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાપણું આવે છે અને તે જ ચેતનનું શુદ્ધ સ્વરૂપ છે. શુદ્ધ ચૈતન્યરૂપ પરિશમતાં જ્યારે એ નિર્મળ પર્યાય પોતાને ત્રિકાળી દ્રવ્યપણે અનુભવે છે ત્યારે દૈતપણાના અભાવમાં એક

પણ વિકલ્પ ઉત્પન્ન થતો નથી અને એ નિર્વિકલ્પ દશામાં જે નિર્મળ પરિણામ પ્રગટે છે એનો તે કર્તા અને ભોક્તા બને છે.

આમ, શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપી આત્મા જ્યારે શુદ્ધ ચેતનારૂપે પરિશમે છે ત્યારે તેની નિર્વિકલ્પ દશા હોય છે. પૂર્ણ નિરુપાધિક સ્વરૂપ સાથે એકાકાર થતાં તે વિભાવનો અકર્તા-અભોક્તા બને છે અને સાથે સાથે સ્વભાવનો નિત્ય, નવીન, અતીન્દ્રિય આનંદ માણી રહ્યો હોવાથી તે સ્વભાવનો કર્તા-ભોક્તા બને છે. શ્રીગુરુએ જે ઉપદેશ કર્યો હતો કે 'ચેતન જો નિજ ભાનમાં, કર્તા આપ સ્વભાવ', તેને અનુસરીને સુશિષ્ય કહે છે કે આત્માનો ઉપયોગ સ્વરૂપમાં લીન થવાથી નિર્વિકલ્પ દશામાં શુદ્ધ ચૈતન્યરૂપ નિજ પરિશામોનો તે કર્તા-ભોક્તા થયો. શ્રીગુરુનો બોધ તેને અનુભવ સહિત પ્રતીતિમાં આવ્યો છે તેની જાહેરાત આ ગાથા દ્વારા કરવામાં આવી છે.

વિશેષાર્થી પરદ્રવ્યથી ક્યારે પણ આત્માનું કાર્ય સરતું નથી તેમજ રાગાદિ પરભાવથી પણ સ્વની પ્રાપ્તિ થવી શક્ય નથી. વળી, 'હું સચ્ચિદાનંદ શુદ્ધ પરમાત્મા છું' ઇત્યાદિ વિકલ્પ દ્વારા પણ ચૈતન્યના અનુભવનું પ્રયોજન સિદ્ધ થતું નથી. જીવ નિર્વિકલ્પ થાય ત્યારે જ તેને આત્માનું સંવેદન થાય છે. ધર્મની યાત્રાનો પ્રારંભ વિચારની ભૂમિકાએ થાય છે અને તેનો અંત નિર્વિચારની ભૂમિકામાં આવે છે. ધર્મ-યાત્રાનો અંત વિચારના અતિક્રમણમાં છે. ત્યાં બધા વિચાર વિલીન થઈ જાય છે. વિચાર દ્વારા વિશ્વની સર્વ વસ્તુની વ્યર્થતા પકડાય છે તથા યથાર્થ વિચારણા ચાલુ રહેતાં અંતે વિચારની વ્યર્થતા પણ પકડાય છે અને તેથી સાધક નિર્વિચાર થઈ જાય છે.

જીવની ચેતના વિચારોના ઘેરામાંથી મુક્ત થાય છે ત્યારે અસ્તિત્વનો પ્રકાશ ઝળહળી ઊઠે છે. જીવે વિચારોથી મુક્તિ મેળવવા માટે દઢ નિર્ણય કરવો જોઈએ કે 'હું વિચાર નથી, વિચાર મારા નથી, વિચાર સાથે મારે કોઈ સંબંધ નથી.' તેણે વિચારથી જુદા રહેવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. વિચારોની પ્રક્રિયા પરત્વે પણ માત્ર દર્શકપણાનો ભાવ કેળવવો જોઈએ. વિચારોને પોતાપણે માનવા અથવા પોતાના માનવા એ મોટી ભૂલ છે. તે ભૂલ જીવને વિચારોમાંથી મુક્ત થવા દેતી નથી. તેને પોતાના માનવાથી જે તાદાત્મ્ય ઊભું થાય છે, તે તાદાત્મ્ય જીવને વિચારથી અલગ થવા દેતું નથી. વિચારોને દ્રષ્ટાભાવે જોતા રહેવાથી તેની સાથે સંબંધિત એવા સર્વ મિથ્યા ભાવ છૂટી જાય છે અને વિચારોની હારમાળાનો પણ અંત આવી જાય છે.

વિચારોથી મુક્ત થવા જીવે તટસ્થપણે વિચારોને જોવાનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ. વિચારોની સાથે કોઈ પણ પ્રકારનું તાદાત્મ્ય સ્થાપવું ન જોઈએ. તેના વિષે કોઈ શુભ-અશુભ નિર્ણય કરવો ન જોઈએ. તેના તરફ સારો કે ખરાબ કોઈ ભાવ રાખવો ન જોઈએ. આ વિચાર સારો છે કે આ વિચાર ખરાબ છે - એવું મૂલ્યાંકન ન કરવું જોઈએ, કેમ કે એકને સારો અને બીજાને ખરાબ માનતાં જ સારું ગહણ કરવાની અને ખરાબને છોડવાની વૃત્તિ ઊભી થાય છે, જેના પરિણામે સાક્ષીભાવે રહી શકાતું નથી. સારા-ખરાબનો ભેદ કરનારો કદાપિ સાક્ષી બની શકતો નથી. વિચારોને પકડવાની કે ભગાડવાની ચેપ્ટા કરવા જતાં સાક્ષી ખોવાઈ જાય છે, કંઈક કરવાનો ભાવ પ્રગટતાં તટસ્થ દર્શન કરનારો જ્ઞાયક છુપાઈ જાય છે. વિચાર પ્રત્યેનો કોઈ પણ ભાવ જીવને વિચાર સાથે બાંધી દે છે.

વિચારને પકડવાની કે ધક્કો મારવાની પ્રતિક્રિયા એ જીવની સહજ ટેવ છે. જો વીતરાગતા સાધવી હોય તો જીવે આ ટેવનો અંત લાવવો પડશે. પ્રતિક્રિયારહિત નિરીક્ષણ કરવાનું છે. વિચારને પકડવાના પણ નથી અને ધક્કો પણ મારવાનો નથી. તેને માત્ર જોવાના છે. એમાં ખૂબ જાગૃતિની જરૂર પડે છે, કારણ કે સારા વિચાર આવશે અને ટેવ પ્રમાણે તેને પકડવાનું મન પણ થશે તથા ખરાબ વિચાર પણ આવશે અને આદત મુજબ તેને ધક્કો મારવાનું મન પણ થશે. જો જાગૃતિ રાખવામાં આવે તો જ આ વૃત્તિ ધીરે ધીરે શિથિલ થતી જાય છે અને જીવ વિચારોને તટસ્થપણે જોવા સમર્થ બને છે. આ રીતે વિચારોને જોવામાં જે સમર્થ બને છે, તે વસ્તુતઃ વિચારમાંથી મુક્ત થવામાં સમર્થ બને છે અને એક વખત એવો આવે છે કે જ્યારે કોઈ વિચાર જ નથી રહેતો. વિચારોની પસંદગી નાશ પામતાં વિચારોના આગમન માટેનું તેમજ તેને ટકવા માટેનું મૂળ કારણ જ નષ્ટ થઈ જાય છે, પણ જ્યાં સુધી વિચારો માટે શુભ-અશુભના નિર્ણયની વૃત્તિ હોય છે ત્યાં સુધી એમ બનતું નથી. આ વૃત્તિ ચિત્તને મૌન અને શાંત બનવામાં બાધક છે. સારા-નરસાના આધારે થયેલી વૈચારિક પસંદગી વિચારોની પેલે પાર લઈ જઈ શકતી નથી, તેથી શુભ કે અશુભ બન્નેની પસંદગી ન કરવી જોઈએ.

જેમ બારીમાંથી રસ્તે ચાલ્યા જતા રાહદારીઓને કોઈ જુએ છે, તેવી જ રીતે પોતાની અંદર મનના રસ્તા ઉપર ચાલતા વિચારોરૂપી રાહદારીઓ જોવાના છે - માત્ર જોવાના છે. પરિઘ ઉપર શું ચાલી રહ્યું છે તેને કેવળ જોવાનું છે. રસ્તા ઉપરની અવરજવર જોતાં સજ્જનને જોઈને તેને પકડવાની કે દુર્જનને જોઈને તેને ભગાડવાની ચેપ્ટા કોઈ કરતું નથી; તેમ વિચારોની અવરજવર જોતા રહેવાનું હોય છે, તેમાં એકની પણ પસંદગી કરવાની હોતી નથી. કોઈ નિર્ણય લેવાનો હોતો નથી. કોઈ અશુભ નહીં, કોઈ શુભ નહીં. સારા-નરસાનું મૂલ્યાંકન કરવાનું હોતું નથી, કેવળ દર્શન કરવાનું હોય છે. જેમ રસ્તા ઉપર ચાલતા લોકો પ્રત્યે ઉદાસીન રહેવામાં આવે છે, એમ વિચારવામાં નથી આવતું કે કોણ જઈ રહ્યું છે, ક્યાં જઈ રહ્યું છે; તેમ ચાલી રહેલા વિચારો પ્રત્યે ઉદાસીન થવાનું હોય છે.

જે પોતાની સમસ્ત વિચારધારા પ્રત્યે જાગૃતિ કેળવે છે, વિચારોનો સાક્ષીમાત્ર બની જાય છે, તે એક અદ્ભુત અનુભવમાંથી પસાર થાય છે. તે અનુભવે છે કે જે જે વિચારનો તે સાક્ષી બને છે, તે તે વિચાર તિરોહિત થવા માંડે છે, આવતાં બંધ થાય છે. વિચારોના સહજ અને સરળ નિરીક્ષણમાં વિચાર તિરોહિત થવા માંડે છે. પસંદગી વિનાનું નિરીક્ષણ કરવાથી વિચાર ક્ષીણ થવા માંડે છે. જ્યાં વિચારોનું માત્ર દર્શન થાય છે, ત્યાં તેને પોષણ મળતું નથી અને તેથી તે ટકી શકતા નથી. વિચારોનું તટસ્થ દર્શન કરવાથી વિચારોની ગતિ ક્ષીણ થાય છે અને અંતે નિર્વિચાર સ્થિતિ ઉદ્ભવે છે. તટસ્થ, પસંદગીરહિત નિરીક્ષણથી નિર્વિચાર દશા આવે છે. વિચારોને સાક્ષીભાવે જોવાનો અભ્યાસ કરતા રહેવાથી વિચાર શૂન્ય થવાય છે. એક અવર્શનીય મૌન, એક અપૂર્વ શાંતિ રહી જાય છે અને માત્ર જ્ઞાયક જ બાકી બચે છે.

વિચારોનું તટસ્થપણે પસંદગીરહિત નિરીક્ષણ કરવાથી ઉપયોગ વિકલ્પથી છૂટો પડી જાય છે અને ત્યારે તે ઉપયોગ નિજ ચિદાનંદતત્ત્વને જ તન્મયપણે જાણે છે. ઉપયોગ સૂક્ષ્માતિસૂક્ષ્મ થતો જઈ, જે સમયે ઇન્દ્રિયોના અને મનના વ્યાપારનો સંગ છોડી દે છે; તે જ સમયે સ્વાધીન, સ્વાશ્રયી, અતીન્દ્રિય, પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન નિજ શુદ્ધાત્મ-સ્વરૂપને સ્પષ્ટપણે જાણે છે. ઉપયોગમાં એ કાળે કોઈ વિકલ્પનું શ્રહણ થતું નથી. સાધક અત્યાર સુધી તો આત્માને ગુણ અને લક્ષ્યાથી જાણતો હતો, પણ જ્યારે નય સંબંધી સમસ્ત વિકલ્પોના પક્ષને ઓળંગી જઈ તે વિકલ્પાતીત બને છે ત્યારે તે ચૈતન્યને સ્વસંવેદનથી જાણે છે - અનુભવે છે.

સ્વસંવેદનજ્ઞાન દ્વારા ઇન્દ્રિયો તથા વિકલ્પોથી અગોચર એવા આત્માને તે અનુભવે છે. અનંત ગુણોથી શોભિત, અનંતશક્તિધારક, ચેતનાયુક્ત એવા આત્મપદનો તે અનુભવ કરે છે. તેને સર્વ ઉપાધિથી ભિન્ન, શુદ્ધ, બુદ્ધ, અનંત જ્ઞાનાદિ ગુણોનો પિંડ આત્મા પ્રત્યક્ષ અનુભવમાં આવે છે. દેહાદિથી ભિન્ન એવું પોતાનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ અનુભવાય છે. આત્માનુભૂતિની ક્ષણોમાં તે સ્વભાવમાં ઠરી ગયો હોવાથી એ ક્ષણોમાં તે સ્વભાવરૂપ બની જાય છે. ત્યારે તે, તેનો સ્વભાવ જેવો છે તેવો - અસંગ, અબદ્ધ, અસ્પૃષ્ટ હોય છે. તે પરદ્રવ્યથી કે પરભાવથી લેપાતો નથી. આત્મામાં કશે પરદ્રવ્ય પણ નથી અને તેના ઊંડાણમાં કશે પરભાવ પણ નથી. દ્રવ્યસ્વભાવે જીવમાત્ર શુદ્ધ છે. અનુભવ વખતે જીવની પર્યાય પણ સ્વભાવ સમાન શુદ્ધ થઈ જાય છે.

નિર્વિકલ્પ અનુભૂતિમાં પરમાનંદનો અનુભવ થાય છે. આત્માની શક્તિમાં જે આનંદ છે, તેમાં એકાગ્રતા થતાં સ્વાનુભવદ્દશામાં આનંદનો પ્રગટ અનુભવ થાય છે. સ્વમાં સ્થિરતા થતાં નિજાનંદનો સ્વાદ આવે છે. અનુભવ એ શાશ્વત ચિંતામણિ છે. જીવ એમાં જેટલો લીન થાય છે, તેટલો તેને આનંદનો સ્વાદ આવે છે. ચિંતામણિ રત્ન પુણ્ય હોય તો મળે અને પુણ્ય ખૂટતાં ચાલ્યો જાય છે, જ્યારે અનુભવ પરને કે રાગને અનુસરીને નહીં પણ પોતાના ધ્રુવ, શાશ્વત સ્વભાવને અનુસરીને થાય છે, તેથી તે શાશ્વત ચિંતામણિ છે. અનુભવ અવિનાશી રસનો કૂપ છે. અનુભવમાં અંતરના અવિનાશી આનંદનો રસ છલકાય છે. અનુભવ આનંદરસનો મોટો ફૂવો છે.

અનુભવદશા સુખરૂપ છે, વિશ્રામરૂપ છે, સ્થિરતારૂપ છે. તેમાં નિજકલ્યાણ છે, તે જ મોક્ષપંથ છે. વિકલ્પ અને રાગ તો દુઃખરૂપ છે, અવિશ્રામરૂપ છે, અસ્થિરતારૂપ છે. તેમાં કલ્યાણ નથી, તે સંસારનો પંથ છે. અનુભવમાં સમભાવ છે, તૃપ્તિ છે. ચૈતન્યના અનુભવમાં જ શાંતિ છે, તેમાં જ સુખ છે અને તેમાં જ ધર્મ છે. અનુભવમાં ધર્મનાં બધાં વિધિ-વિધાન સમાઈ જાય છે.

અનુભવથી જ ચૈતન્યધામ પમાય છે. ચૈતન્યજ્યોતિ અનુભવથી જ પમાય છે. રાગરહિત અમલ પદ અનુભવથી જ પ્રાપ્ત થાય છે. નિશ્ચય મોક્ષમાર્ગની શરૂઆત અનુભવથી જ થાય છે અને પૂર્ણ મુક્ત દશા પણ અનુભવથી જ પ્રાપ્ત થાય છે. શ્રાવક-દશા, મુનિદશા, વીતરાગદશા, કેવળજ્ઞાનદશા - આ પૂજ્ય દશાઓ આત્માના અનુભવથી જ પ્રાપ્ત થાય છે. આત્માના અનુભવથી જ કેવળજ્ઞાનરૂપ અમિત તેજ પ્રગટ થાય છે. અનુભવથી જ અબાધિત દશા પમાય છે. તેનાથી જ સિદ્ધદશા પમાય છે. અતુલ પરમાત્મદશા અનુભવથી જ પમાય છે. આત્માના અનુભવથી જ અનંત મહિમાવાળું પરમેશ્વરપદ પમાય છે. અનુભવ સિવાય બહારના કોઈ કારણથી પરમેશ્વરપદ પમાતું નથી. અનુભવ વિના સાધ્યની સિદ્ધિ થતી નથી.

ભવવાસરૂપી મોટું ઘનઘોર વાદળ વિખેરી નાખવા માટે સ્વાનુભવ એ પ્રચંડ પવન સમાન છે. આ સ્વાનુભવ જ ભવવાસ મટાડવાનો પરમ ઉપાય છે. વીતરાગી સંતો આત્માના અનુભવને જ ભવના નાશનો ઉપાય કહે છે. સંતો સ્વાનુભવરૂપી સુધાનું પાન કરીને અજર-અમર મોક્ષપદને સાધે છે. અત્યાર સુધી અનંતા સંતો અનુભવરસના પ્યાલા પીને અજર-અમર થયા છે.

સર્વ ગંથોનો સાર અનુભવ છે. ચારે અનુયોગના બધા ગ્રંથોનો સાર અનુભવ છે. નવ તત્ત્વોનો સાર પણ અનુભવમાં જ સમાય છે. બધાં વિધાનોનો સાર એ જ છે કે અંતરમાં જઈ આત્માનો અનુભવ કરવો. ગ્રંથોમાં વારંવાર તે જ કહ્યું છે. સર્વ સત્શાસ્ત્રોમાં વારંવાર અનુભવની પ્રશંસા કરવામાં આવી છે. આત્માનો અનુભવ તે જ ઉત્તમમાં ઉત્તમ વસ્તુ છે. અનુભવથી ઊંચું અન્ય કોઈ પદ નથી. તેની સામે ઇન્દ્રનું ઇન્દ્રાસન પણ તુચ્છ તરણા સમાન છે. મુનિજન વગેરે અનુભવી જીવોના ચરણને ઇન્દ્રાદિ સેવે છે. અનુભવ જગત-ઉદ્ધારક છે. અનુભવ મોક્ષનું નિધાન છે અને સુખનું નિધાન છે. અનુભવની પર્યાયમાં અનંત ગુણનો સ્વાદ સમાઈ જાય છે. અનંત ગુણનો

રસ અનુભવમાં સમાઈ જાય છે. અહો! આત્માના અનુભવનો શું મહિમા!

સ્વાનુભવ થતાં સાધક શુદ્ધ ચેતનારૂપ પરિણત થઈ જાય છે. તે શુદ્ધ ચેતનારૂપ નિજપરિણામોનો કર્તા-ભોક્તા બને છે. શુદ્ધ ચેતનાનું સ્વરૂપ સમજવા માટે પ્રથમ ચેતનાનું સ્વરૂપ સમજવું આવશ્યક છે. ચેતના એટલે ચૈતન્યશક્તિ. જે ચેતે તે ચેતના. જે જાણે, વેદે તે ચેતના. જે સ્વરૂપથી સદા પ્રકાશમાન છે, અવિનાશી છે તે ચેતના છે.

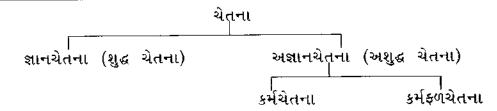
આત્માનું સ્વરૂપ ચેતના છે. ચેતના તે જ આત્મા છે. આત્માની પ્રત્યેક પર્યાયમાં ચેતના વ્યાપેલી છે. સંસારી જીવોની દરેક સમયની પર્યાયમાં રાગ-દેષ તો વ્યાપેલા હોય જ છે અને તે સાથે ચેતના પણ વ્યાપેલી હોય છે, જ્યારે સિદ્ધ ભગવંતોની દરેક પર્યાયમાં માત્ર ચેતના વ્યાપેલી હોય છે. રાગાદિ સઘળા આત્માની સર્વ પર્યાયોમાં વ્યાપીને પ્રવર્તતા નથી. રાગાદિ સર્વ આત્મામાં સર્વ કાળે હોતા નથી. આત્માની પર્યાય રાગાદિ રહિત હોઈ શકે છે, પણ ચેતનારહિત હોઈ શકતી જ નથી. અજ્ઞાનાવસ્થાની તારતમ્યતામાં પણ ચેતના તો સતત પ્રકાશમાન હોય છે. નિગોદવાસી જીવમાં પણ ચેતના તો સતત પ્રકાશમાન હોય છે. નિગોદવાસી જીવમાં પણ ચેતના સંપૂર્ણપણે આવરિત થતી નથી. આમ, ચેતના આત્માની દરેક પર્યાયમાં હોય જ છે. એવું નથી કે કોઈમાં હોય અને કોઈમાં ન હોય. તેથી નક્કી થાય છે કે રાગ-દેષ તે આત્મા નથી, ચેતના તે આત્મા છે. રાગ-દેષાદિ વિકારો તે આત્માનો અંતરસ્વભાવ નથી. ચેતના જ આત્માનો અંતરસ્વભાવ છે. જ્યાં જ્યાં જીવ છે ત્યાં ત્યાં ચેતના છે અને જ્યાં જ્યાં ચેતના છે ત્યાં ત્યાં જીવ છે. ગુણ વિના દ્રવ્ય એકલું રહી શકે નહીં તથા દ્રવ્ય વિના ગુણ એકલો રહી શકે નહીં. જેમ પાણી વિના શીતળતા એકલી ન રહે, તેમ આત્મા વિના ચેતના એકલી ન રહે. ચેતના આત્મામાં જ પ્રસરે છે. ચેતના ત્રણે કાળે આત્માથી ભિન્ન એવા પરદ્રવ્યમાં પ્રગટતી નથી.

સંવેદનશક્તિ, અનુભવશક્તિ આત્મામાં જ છે, જડમાં નથી. જ્ઞાનનો અનુભવ, કર્તાભાવનો અનુભવ કે ભોક્તાભાવનો અનુભવ એ ત્રણે અનુભવ ચેતના દ્વારા જ થાય છે.^૧ આત્માના ચેતના ગુણની પરિણતિને ઉપયોગ કહે છે. આત્માનો ઉપયોગ સ્વમાં લીન છે કે અન્યત્ર, તે અનુસાર ચેતનાના બે ભેદ પડે છે.^૨ –

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર'ની આચાર્યશ્રી અકલંકદેવકૃત ટીકા, 'તત્ત્વાર્થવાર્તિકમ્', અધ્યાય ૧, સૂત્ર ૪-૧૪

^{&#}x27;जीवस्वभावश्चेतना,...यत्सिबिधानादात्मा ज्ञाता द्रष्टा कर्ता भोक्ता च भवित तल्लक्षणो जीवः ।' ૨- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'સમયસાર'ની આચાર્યશ્રી જયસેનજીકૃત ટીકા, 'તાત્પર્યવૃત્તિ', મૂળ ગાથા ૩૮૭ની ટીકા

^{&#}x27;ज्ञानाज्ञानभेदेन चेतना तावद्द्विविधा भवति । अज्ञानचेतना । सा द्विधा कर्मचेतना कर्मफलचेतना च ।'



(૧) જ્ઞાનચેતના અથવા શુદ્ધ ચેતના

આત્માથી અભિન્ન સ્વતઃ સ્વાભાવિક સહજ સુખના વેદનને, જ્ઞાનમાત્ર અનુભવને જ્ઞાનચેતના કહે છે. શુદ્ધાત્માને અનુભવનારી ચેતના તે જ્ઞાનચેતના છે. જેના દારા આત્મા શુદ્ધ જાણવામાં આવે તેનું નામ જ્ઞાનચેતના છે. જે જ્ઞાનચેતનાનું કાર્ય તો અંતરની અનુભૂતિ છે. જ્ઞાનચેતના અંતર્મુખ થઈ આત્માના સાક્ષાત્કારનું કાર્ય કરે છે. જ્ઞાનચેતનામાં આત્મા નિજાનંદને અનુભવતો, અત્યંત શુદ્ધપણે પ્રકાશતો હોવાથી તેને શુદ્ધ ચેતના પણ કહે છે. શુદ્ધતાની ઉપલબ્ધિ થતી હોવાથી જ્ઞાનચેતનાને શુદ્ધ ચેતના પણ કહેવામાં આવે છે. શુદ્ધ ચેતના એક જ પ્રકારની હોય છે, કેમ કે શુદ્ધતા એક જ પ્રકારની હોઈ શકે છે. આત્મામાં જે ભેદ જણાય છે તે કર્મોના નિમિત્તે થતા ભેદ છે. આત્માનું નિજરૂપ - શુદ્ધ સ્વરૂપ તો એક જ પ્રકારનું છે, તેમાં કોઈ ભેદ નથી; તેથી શુદ્ધ ચેતનાનો એક જ પ્રકાર છે. શુદ્ધ સ્વભાવની સન્મુખ થતાં જ શુદ્ધ ચેતના પ્રગટે છે. જ્ઞાનને અંતરમાં વાળીને જેમણે દેહ અને રાગથી ભિન્ન શુદ્ધ સ્વરૂપને અનુભવ્યું છે તેમને અંતરમાં અપૂર્વ શુદ્ધ ચેતના ખીલી છે એમ કહેવાય છે. સમ્યગ્દર્શન થતાં - ચોથા ગુણસ્થાનકથી શુદ્ધ ચેતનાની શરૂઆત થાય છે અને તેના બળ વડે જ્ઞાની અલ્પ કાળમાં જ કેવળજ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરે છે.

શુદ્ધ ચેતના કારણરૂપે સર્વ જીવોને હોય છે. નિગોદથી માંડીને સિદ્ધ સુધીના બધા જીવોને કારણ શુદ્ધ ચેતના હોય છે. નિગોદના જીવો, મિથ્યાદષ્ટિ જીવો, તેમજ અભવી જીવોમાં પણ કારણ શુદ્ધ ચેતના સદા હોય જ છે. સ્વભાવદષ્ટિથી જોવામાં આવે તો દરેક જીવમાં શુદ્ધ ચેતના છે. બધા જીવોને ઉત્પાદ-વ્યય વિનાની એકરૂપ શુદ્ધ ચેતના હોય છે. આ ત્રિકાળી કારણ શુદ્ધ ચેતનાને સેવવાથી કાર્ય શુદ્ધ ચેતના પ્રગટે છે. મિથ્યાદષ્ટિ જીવોને કારણ શુદ્ધ ચેતનાનું ભાન નથી હોતું, તેઓ તેનો આશ્રય નથી કરતા, તેથી તેમને કાર્યરૂપ ફળ આવતું નથી. જ્ઞાનીએ પોતાની ત્રિકાળી શક્તિના અવલંબને શુદ્ધ ચેતનાને કાર્યરૂપે પ્રગટાવી હોય છે. જ્ઞાનીને જ્ઞાનચેતના હોય છે, પણ

૧- જુઓ : પંડિત શ્રી રાજમલજીકૃત, 'પંચાધ્યાયી', ઉત્તરાર્ધ, શ્લોક ૧૯૬

^{&#}x27;अत्रात्मा ज्ञानशब्देन वाच्यस्तन्मात्रतः स्वयम् । स चेत्यतेऽनया शुद्धःशुद्धा सा ज्ञानचेतना ।।'

હજી અંશે વિકાર અને અધૂરાશ છે, તેથી ત્યાં પરિપૂર્ણ જ્ઞાનચેતના હોતી નથી. તેમને અંશે જ્ઞાનચેતના પ્રગટી હોય છે. કેવળી તથા સિદ્ધ ભગવાને પોતાના શુદ્ધ આત્માના અવલંબને પરિપૂર્ણ શુદ્ધ ચેતના પ્રગટ કરી હોય છે. તેમને અનાદિ-અનંત કારણ શુદ્ધ ચેતનાના આશ્રયે સાદિ-અનંત કાર્ય શુદ્ધ ચેતના પ્રગટી હોય છે, તેથી તેઓ નિરાકુળ આનંદને અખંડપણે અનુભવે છે.

(૨) અજ્ઞાનચેતના અથવા અશુદ્ધ ચેતના

આત્મજ્ઞાનરહિત મિથ્યાદેષ્ટિ જીવને સ્વ-પરનું ભેદજ્ઞાન હોતું નથી, તેથી કર્મકૃત ભાવો અને કર્મકૃત અવસ્થાઓને તે અજ્ઞાનથી પોતાનાં માને છે, માટે તેને અજ્ઞાન-ચેતના અથવા અશુદ્ધ ચેતના હોય છે. રાગ-દ્વેષાદિ પરભાવોમાં તન્મયપણે પ્રવર્તવું, અર્થાત્ જ્ઞાનધારા અને રાગધારાનું ભેદજ્ઞાન ન થવું તે અજ્ઞાનચેતનાનું લક્ષણ છે. અજ્ઞાનીને જ્ઞાન અને રાગ વચ્ચે એકત્વબુદ્ધિ વર્તે છે. તે પોતાના શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વભાવનું ભાન યૂકેલો હોવાથી શુદ્ધ સ્વભાવને અનુભવતો નથી અને રાગાદિ પરભાવને પોતાના સ્વભાવભૂત માને છે. આવી જે અજ્ઞાનીની ચેતના તે અજ્ઞાનચેતના છે. જ્ઞાન સિવાય અન્ય ભાવોમાં 'આ હું છું' એવો અનુભવ કરવો તે અજ્ઞાનચેતના છે. તે બે પ્રકારે છે – કર્મચેતના અને કર્મફળચેતના. 4

- 9) કર્મચેતના જ્ઞાન સિવાય અન્ય અનાત્મીય ભાવોના કર્તા થવું, 'હું કરું, હું કરું' એવા ભાવો કરવા તેને કર્મચેતના કહે છે; અથવા પ્રવૃત્તિ કરવાની પ્રધાનતાથી સુખ- દુઃખરૂપ પરિણામોના અનુભવને કર્મચેતના કહે છે. જીવ પરમાં કશું જ કરી શકતો નથી, છતાં એમ માને છે કે 'મેં કર્યું, હું કરું તો જ થાય' આવી પરમાં કરવાપણારૂપ કર્તૃત્વબુદ્ધિ તે કર્મચેતના છે.
- ર) કર્મફળચેતના જ્ઞાન સિવાય અન્ય અનાત્મીય ભાવોના ભોક્તા થવું, તેમાં તલ્લીન થઈને તેના પરિજ્ઞામરૂપ અનુભવ કરવો, અર્થાત્ 'હું ભોગવું છું, હું ભોગવું છું' એવા ભાવો કરવા તેને કર્મફળચેતના કહે છે; અથવા સુખ-દુ:ખરૂપ કર્મફળના અનુભવને કર્મફળચેતના કહે છે. જીવ પરદ્રવ્યને ભોગવી શકતો નથી, છતાં એમ માને છે કે 'આ ભોગવું તો ઠીક, આ ભોગવું તો અઠીક' આવી પરને ભોગવવાની બુદ્ધિ તે કર્મફળચેતના છે.
- 'હું પરનો કર્તા છું' એ કર્મચેતના છે અને 'હું પરનો ભોક્તા છું' એ કર્મ-૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'સમયસાર'ની આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવકૃત ટીકા, 'આત્મ-ખ્યાતિ', મૂળ ગાથા ૩૮૭ની ટીકા

'ज्ञानादन्यत्रेदमहमिति चेतनम् अज्ञानचेतना । सा द्विधा - कर्मचेतना कर्मफलचेतना च ।'

ફળચેતના છે. જ્ઞાન સિવાય અન્ય સર્વ પરદ્રવ્યો તથા પરભાવોના કર્તા-ભોક્તાપણાનો ભાવ થવો તે અજ્ઞાનચેતના અથવા અશુદ્ધ ચેતનાનું લક્ષણ છે. કર્મ અને કર્મફળ તરફ જ એકાગ્ર થઈ તેનો જ અનુભવ કરવો તે અજ્ઞાનચેતના છે. શુદ્ધાત્માનુભૂતિરૂપ જે પરિણામ છે તે જ્ઞાનચેતના છે. આ રીતે ચેતનાના ત્રણ ભેદ કહેવામાં આવ્યા છે - જ્ઞાનચેતના, કર્મચેતના અને કર્મફળચેતના. જાાનચેતના માત્ર સમ્યગ્દેષ્ટિને જ હોય છે, કારણ કે તેમને શુદ્ધ આત્મિક ભાવોની પ્રધાનતા છે; જ્યારે કર્મચેતના અને કર્મફળ-ચેતના મિથ્યાદેષ્ટિને હોય છે, કારણ કે તે પરના તથા વિકારના કરવા-ભોગવવાના ભાવોમાં રોકાયેલો હોય છે.

મોક્ષાર્થી જીવે આવી અનાદિ સ્થિત અશુદ્ધ ચેતનાનો ત્યાગ કરી જ્ઞાનચેતનાને પ્રગટાવવી જોઈએ. તેણે અજ્ઞાનચેતનાનો પ્રલય કરી જ્ઞાનચેતનાને જ અંગીકાર કરવી જોઈએ. પોતાના ત્રિકાળી ધ્રુવ સ્વભાવ તરફ વળવું જોઈએ. દષ્ટિને સ્ત્રી, પુત્ર, મકાન, પરિપ્રહ તેમજ રાગ-દ્વેષ ઉપરથી ખસેડી જ્ઞાનસ્વભાવમાં સ્થાપવી જોઈએ. દષ્ટિનું જોર ત્રિકાળી જ્ઞાનસ્વભાવ તરફ વાળવું જોઈએ. તેણે પોતાના જાણવા-જોવાના સ્વભાવનું જ અવલંબન લેવું જોઈએ. 'પરભાવો હું નથી, પણ તેમાં સર્વત્ર જે ચેતનભાવ વસી રહ્યો છે તે મારું સ્વરૂપ છે, ચેતનભાવ અનાદિ-અનંત એકરસમય છે, બીજા કલુષિત રસને એમાં ન ભેળવું તો ચેતનરસ એકલો અત્યંત મધુર વીતરાગસ્વાદવાળો છે' - આવી જાગૃતિ કેળવવી જોઈએ.

કર્મચેતના અને કર્મફળચેતના તે બન્ને અશુદ્ધ હોવા છતાં તેમાં પણ ચેતના તો રહેલી જ છે. તે ચેતનાનું ચેતનપશું ઓળખતાં રાગાદિ પરભાવોથી નિજભાવનું ભેદ- જ્ઞાન થાય છે અને જીવને જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાસ્વભાવ અનુભવમાં આવે છે. ભેદજ્ઞાનના બળ વડે નિજાત્મપ્રભુમાં એકત્વ થતાં સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ નિર્વિકલ્પ દશા પ્રગટે છે. પરિણતિ શુદ્ધાત્મદ્રવ્યમાં સ્થિર થવાથી સ્વરૂપની અનુભૂતિ થાય છે અને શુદ્ધ ચેતના પ્રગટે છે. તે હવે પરભાવનો કર્તા-ભોક્તા રહેતો નથી, પરંતુ નિજપરિણામોનો કર્તા-ભોક્તા બને છે. 'દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મ અને નોકર્મથી ભિન્ન હું તો એક કેવળ જ્ઞાયકસ્વભાવી પદાર્થ છું' એવો બોધ તે જીવને સતત વર્તે છે અને જ્ઞાનચેતના વડે નિરંતર પોતાને શુદ્ધ સ્વરૂપે અનુભવે છે.

१- शुओ : आयार्यश्री डुंदडुंददेवर्दृत, 'प्रवयनसार', गाधा १२३ 'परिणमदि चेदणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा । सा पण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा ।।'

ર- જુઓ : ગણિશ્રી દેવચંદ્રજીરચિત, 'વિહરમાન જિન સ્તવન', શ્રી સુરપ્રભ ભગવાનનું સ્તવન, .કડી ૩

^{&#}x27;વારિ પરભાવની કર્તૃતા મૂલથી, આત્મપરિણામ કર્તૃત્વ ધારી.'

જ્ઞાનચેતના એ જ્ઞાનીનું ચિહ્ન છે. તે પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવને સ્પર્શનારી છે. જ્ઞાનચેતનાનો સંબંધ શાસ્ત્રના ભણતર સાથે નથી. અમુક શાસ્ત્ર આવડે તો જ્ઞાનચેતના કહેવાય એમ નથી, પણ પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવને સ્પર્શે - અનુભવે એનું નામ જ્ઞાનચેતના છે. અંતરમાં જ્ઞાનસ્વભાવને સ્પર્શા વિનાનું શાસ્ત્રાદિનું ગમે તેટલું જાણપણું હોય તોપણ તેને જ્ઞાનચેતના કહેવાતી નથી. જીવને નવ પૂર્વનું જ્ઞાન હોય, પણ જો આત્માને જાણે નહીં તો તેની ચેતના જ્ઞાનચેતનાની સંજ્ઞા પામતી નથી. એક આત્મસ્વરૂપને જાણ્યા વિના બધું જાણેલું નકામું છે.

જ્ઞાનચેતનાનું કાર્ય વિકલ્પ કે વાણી નથી. કોઈને પ્રશ્ન થાય કે જ્ઞાનચેતના પ્રગટે એટલે શું બધાં શાસ્ત્રોના અર્થ ઉકેલતાં આવડી જાય? બીજાને ઉપદેશ આપીને સમજાવતાં આવડી જાય? તો એનો ઉત્તર એમ છે કે આમ થાય જ એવું અનિવાર્ય નથી, કારણ કે અહીં 'જ્ઞાન' શબ્દ આત્માની અનુભૂતિના અર્થમાં વપરાયો છે. જ્ઞાનચેતનાના ફળમાં શાસ્ત્રના અર્થ ઉકેલતાં આવડે જ એવું કાંઈ અનિવાર્ય નથી, પણ આત્માના અનુભવનો ઉકેલ અવશ્ય પામી જવાય એવી જ્ઞાનચેતના છે. જે જીવ પોતાના આત્માને ચેતી લે છે, જાણી લે છે, આત્માને સ્વસંવેદન પ્રત્યક્ષ કરી લે છે; તેને શાસ્ત્રોના અર્થ ઉકેલતાં ન પણ આવડે એવું બની શકે છે. કેટલાક જીવ એવા પણ હોય છે કે જેમને જ્ઞાનચેતના પ્રગટી હોય છે અને સાથે સાથે શાસ્ત્રોનાં અર્થને પામવાની અને ઉકેલવાની શક્તિ પણ પ્રગટી હોય છે. જ્ઞાનચેતના હોય ત્યાં શાસ્ત્રોનાં અર્થ પામવાની શક્તિ ન જ હોય એવું પણ નથી. પરંતુ શાસ્ત્રજ્ઞાન એ કાંઈ જ્ઞાનચેતનાનો માપદંડ નથી. કોઈ જીવ શાસ્ત્રોના અર્થોની ઝપટ બોલાવતો હોય એટલામાત્રથી તેને જ્ઞાનચેતના ઊઘડી ગઈ એમ કહી શકાય નહીં. બીજી બાજુ કોઈ જીવને ભાષાનો યોગ ન હોય કે શાસ્ત્ર તરફનો વિશેષ ઉઘાડ ન હોય, છતાં અંદર જ્ઞાનચેતના હોય એવું બને અને કોઈને જ્ઞાનચેતનાની સાથે તેવો વિશેષ ઉઘાડ હોય એવું પણ બને. જો કે તે ઉઘાડ કાંઈ જ્ઞાનચેતનાની નિશાની નથી. જ્ઞાનચેતનાનું કાર્ય અંતરમાં થાય છે, બહારમાં નહીં. જ્ઞાનચેતના અંતરમાં પોતાના આનંદસ્વરૂપી આત્માને ચેતે છે. પોતાને દેહપણે-રાગપણે જ ચેતે - અનુભવે તે અજ્ઞાનચેતના. અંદરમાં જ્ઞાનસ્વભાવને ચેતે - અનુભવે એનું નામ જ્ઞાનચેતના.

આવી જ્ઞાનચેતના તે જ્ઞાની ધર્માત્માનું લક્ષણ છે. તેમની ચેતના આત્માની પ્રસિદ્ધિ કરે છે. સર્વ અવસ્થામાં તેમની ચેતના આત્માને પ્રસિદ્ધ કરે છે. જ્ઞાનીની ચેતના હાલતાં, ચાલતાં, ઊઠતાં, બેસતાં, ખાતાં, પીતાં અનંત ગુણોના પુંજ એવા આત્માની પ્રસિદ્ધિ કરે છે. આથી વિપરીત, અજ્ઞાની જીવ પોતાના સ્વભાવને ભૂલીને ચેતના વડે પરની પ્રસિદ્ધિ કરે છે. અજ્ઞાનીની ચેતના વિકારની પ્રસિદ્ધિ કરે છે. અજ્ઞાની

રાગાદિ અશુદ્ધતાને જ અનુભવે છે. તેને ભેદજ્ઞાનનો અભાવ હોવાથી તે રાગાદિ પરભાવને પોતાનું સ્વરૂપ માને છે. જ્ઞાનીએ રાગ અને જ્ઞાનને જુદાં જુદાં ઓળખી લીધાં છે. તેઓ રાગને પોતાનો સ્વભાવ નથી માનતા, જ્ઞાનને જ પોતાનો સ્વભાવ માને છે. રાગ વખતે પણ 'હું રાગપણે થઈ ગયો છું' એમ માનતા નથી. રાગનાં પરિણામ વખતે પણ 'હું તો જ્ઞાનપણે જ છું' એમ માને છે. કોઈ મોટા ઘરની શેઠાણી, નોકર કામ ઉપર ન આવ્યો હોય ત્યારે ઘરનું કામ કરે છે, પણ તેને એ વાત લક્ષમાં રહે જ છે કે 'હું શેઠાણી છું, નોકર નથી.' ઘરની સફાઈનું કામ કરતી વખતે પણ લક્ષ તો છે જ કે 'હું શેઠાણી છું.' માત્ર ઘરની સફાઈનું કામ કરવાથી કોઈ નોકર થઈ જતું નથી. એ જ રીતે બધી વિકારી અવસ્થાઓમાં પણ જ્ઞાની તો જાણે જ છે કે 'હું એનાથી જુદો, શુદ્ધ, બુદ્ધ, ચૈતન્યસ્વરૂપ છું, વિકારભાવ એ માર્ડુ સ્વરૂપ નથી.' પોતાની પર્યાયમાં વિકાર દેખાય છે ત્યારે પણ તે વિકારી ભાવોનો પ્રવેશ પોતાના ત્રિકાળી શુદ્ધ આત્મદ્રવ્યમાં નથી, આત્મસ્વભાવમાં તેનો અભાવ છે એમ જાણતા હોવાથી તેમનો ઉપયોગ રાગાદિમાં જોડાવાને બદલે સ્વરૂપ તરફ ઢળે છે.

'પર્યાય એક ક્ષણ પૂરતી છે અને રાગાદિ ક્ષણિક પર્યાયમાં થતા વિભાવ છે, હું તેનાથી જુદો છું' એવી પ્રતીતિ જ્ઞાનીને કાયમ રહે છે. તેમને જ્ઞાનોપયોગની જાગૃતિ સતત રહે છે. તેઓ રાગાદિને પર જાણે છે. 'મારું સ્વરૂપ જ્ઞાન છે, રાગાદિ વિકાર પર છે' એમ જાણી તેઓ રાગમાં તન્મય થતા નથી. તેમનું સ્વપરપ્રકાશક જ્ઞાન રાગને જાણે છે ખરું, પણ રાગ સાથે તન્મય નથી થતું. તેમને રાગાદિની વૃત્તિ ઊઠે છે તે વખતે પણ જ્ઞાન રાગની સાથે તન્મય થયા વિના રાગને જાણે છે. રાગમાં તન્મય થઈને જ્ઞાન કામ કરતું નથી.

જ્ઞાનીને રાગ સર્વથા મટી ગયો હોતો નથી. જો રાગ સર્વથા મટી ગયો હોય તો સર્વજ્ઞદશા હોય. જ્ઞાનીને સંપૂર્ણ સ્વરૂપસ્થિરતા પ્રગટી ન હોવાથી તેઓ અસ્થિર થાય છે અને રાગ ઊપજે છે, પણ રાગને તેઓ પરજ્ઞેય તરીકે જાણે છે. તેઓ રાગના માત્ર જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા રહે છે. સાધકની ભૂમિકામાં રાગ હોય છે, પણ તે વખતે તેમની ચેતના તો રાગથી જુદી જ પરિણમે છે. રાગાદિ હોવા છતાં તેમની જ્ઞાનચેતના રાગથી અલિપ્ત રહે છે. જ્ઞાનચેતના રાગથી ભિન્ન રહીને અંતર્મુખ થયેલી હોય છે. જ્ઞાનચેતના રાગાદિ પરભાવને સ્પર્શતી નથી, પણ સ્વભાવને સ્પર્શે છે. તે શુદ્ધ સ્વભાવને સ્પર્શે છે અને રાગથી જુદી જ રહે છે. જ્ઞાનચેતના રાગથી જુદી રહીને સમયે સમયે પોતાનું કાર્ય કરે છે.

રાગથી જુદી પડીને શુદ્ધ સ્વભાવમાં એક થયેલી જ્ઞાનચેતના શુદ્ધ પરિણતિરૂપ વીતરાગવૈભવ સહિત હોય છે. જ્ઞાનચેતનામાં વીતરાગતા હોય છે. જ્ઞાનચેતના શુદ્ધ આત્માને અનુભવનારી ચેતના છે. શુદ્ધ ચેતન વસ્તુ રાગ વગરની છે, તેથી તેનો અનુભવ પણ રાગ વગરનો જ હોય છે. વસ્તુ રાગરૂપ નથી, તેથી તેની અનુભવરૂપ પર્યાય પણ રાગરૂપ નથી. જ્ઞાનચેતનામાં એક્લી વીતરાગતા ભરી હોય છે, આનંદ ભરેલો છે. નિર્વિકલ્પ સ્વસંવેદન પછી પણ જ્ઞાનપરિણતિ અને શ્રદ્ધાપરિણતિ વીતરાગસ્વભાવે જ રહે છે. જ્ઞાનીનું જ્ઞાન-દર્શન શુદ્ધ જ હોય છે. તેમનાં જ્ઞાન-શ્રદ્ધા યથાર્થ હોય છે. ચારિત્રપરિણતિમાં કેટલીક શુદ્ધિ થઈ હોય છે અને કેટલાક વિકાર પણ હોય છે. તેથી સાધકદશાના કાળ દરમ્યાન વીતરાગી દશા તેમજ રાગી દશા સાથે સાથે વર્તે છે. તેમને મિશ્રભાવની ધારા હોય છે. તેમને રાગ થાય છે, પણ તે વખતે તેમનાં શ્રદ્ધા-જ્ઞાનમાં નિર્મળતા હોય છે. રાગ તેમની જ્ઞાનચેતનાને મલિન નથી કરી શકતો.

જ્ઞાનચેતનાનું અચિંત્ય સામર્થ્ય છે. અનંતાનુબંધી સિવાય બાકીના ત્રણ પ્રકારના કષાયના ઉદય પણ શુદ્ધ જ્ઞાનચેતનાને મલિન કરી શકતા નથી. ક્રોધ આવતાં ભરત ચક્રવર્તીએ પોતાના ભાઈ બાહુબલિને મારવા માટે ચક્ર છોડ્યું હતું. તે વખતનો ક્રોધ પણ તેમના સમ્યક્ત્વને કે જ્ઞાનચેતનાને ડગાવી શક્યો નહીં - નષ્ટ કરી શક્યો નહીં. ક્રોધ સામે અડગપણે ટકી રહેવાનું અપાર સામર્થ્ય જ્ઞાનચેતનામાં છે. ક્રોધાદિના સામર્થ્ય કરતાં જ્ઞાનચેતના ઘણી જ બળવાન છે. તેનામાં અપાર તાકાત છે. જેમ સાંકડા રસ્તા ઉપરથી જાન જતી હોય, વરરાજા ગાડામાં બેઠા હોય અને સામેથી બીજું ગાડું આવે તો બેમાંથી સામેના ગાડાવાળાએ ગાડું ખસેડવું પડે, વરરાજાનું ગાડું ખસે નહીં. એવી જ રીતે જ્ઞાનચેતના અને રાગાદિ સામસામા ભેટે છે, તેમાંથી રાગાદિને જ ખસી જવું પડે છે, જ્ઞાનચેતના ટળતી નથી. રાગાદિને શુદ્ધ જ્ઞાનચેતના નમતી જ નથી. રાગને જાણીને તેનાથી જુદી રહેનાર, સ્વસ્વરૂપમાં ઢળનાર એવી જ્ઞાનચેતનાના બળ વડે જીવ જરૂર મોક્ષ પામે છે. જ્ઞાનચેતનાના બળ વડે તમામ રાગ-દેષ ટળી જાય છે અને જીવની મુક્તિ થાય છે. તે સિદ્ધપદને પામે છે.

જ્ઞાનચેતનાનો મહિમા અપાર છે. શુદ્ધાત્મસ્વરૂપને અનુભવનારી આ સમ્યક્ ચેતના તે જ મુક્તિનો ઉપાય છે. તે જ આનંદનો ઉપાય છે. તે જ શાંતિનો ઉપાય છે. જેને જ્ઞાનચેતના પ્રગટે છે તે જીવ સર્વ પરભાવોથી છૂટો પડી જાય છે અને નિજાનંદને અનુભવવામાં લીન થઈ જાય છે. અત્યાર સુધી તે રાગ, દેષ અને દુઃખને વેદતો હતો, પણ હવે તે આનંદને વેદે છે. શુદ્ધાત્મસ્વરૂપ ભાસ્યું હોવાથી પરનું કર્તા-ભોક્તાપશું છૂટીને નિજપરિણામોનું જ કરવા-ભોગવવાપશું રહે છે. આ વિષે શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે —

'જયારે "ભારસું નિજસ્વરૂપ તે શુદ્ધ ચેતનારૂપ" એટલે કે આત્માની ચથાર્થ પ્રતીતિ (સમ્ચગ્દર્શન) અને સમ્ચગ્જ્ઞાન થતાં પૂર્ણ કૃતકૃત્ય, નિરૂપાધિક પોતાનું સ્વરૂપ જેવું હતું તેવું જ જાણ્યું. તે અભેદ સ્વરૂપમાં પરનું કાંઇ કરવાનું અને ભોગવવાનું નથી, જે કંઇ કરવા કે ભોગવવાનું છે તે સ્વજાતિનું જ છે. તે નિરાલંબન સહજ સ્વભાવનું કાર્ચ છે. જ્ઞાનમાં (જ્ઞાતાશક્તિની) નિર્મળતામાં થયું, કરવું, રમવું, ટકવું, ઠરવું, તે જ્ઞાનકિયાનું કરવું છે. તે અવસ્થા (પર્યાય) પૂર્ણ થતાં અવ્યાબાધ અનંત સુખને ભોગવવાપણું છે.'

જ્ઞાનસ્વભાવ તરફ વળતાં જ શિષ્યની પરિશતિ સ્વભાવમાં પ્રવેશી જાય છે. પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપના અનુભવથી તેનું જ્ઞાન અત્યંત શુદ્ધ થઈ પ્રકાશે છે. તે શુદ્ધ ચેતનારૂપ નિજપરિશામોનો કર્તા-ભોક્તા થાય છે. તેને શુદ્ધ ચૈતન્યરૂપ આત્મપરિશામોની અમૃતરસધારા વહે છે. આત્મિક રસથી ભરપૂર, અતીન્દ્રિય આનંદથી ભરપૂર શુદ્ધ ચેતનારૂપ પરિશામોને તે માશે છે. તે ચૈતન્યના પ્રશમ રસમાં તરબોળ થઈ જાય છે. આનંદને અનુભવતો તે મોક્ષ તરફ દોડે છે.

આ ગાયાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે -

'અથવા નિજપરિશામ જે, વસ્તુ ધર્મનો ભાવ; સહજપણે જે પરિશમે, શુદ્ધ હૃદય સમભાવ. શાંતપણું અંતર ભર્યું, શુદ્ધ ચેતનારૂપ; સુમતિ સહેલી સાથમાં, અનુપમ પ્રેમ સ્વરૂપ. નિજ અનુભવ અમૃતમહા, અક્ષય સુખ ભંડાર; કર્તા ભોકતા તેલનો, નિત્ય અચળ અવિકાર. પૂર્ણાનંદે તૃપ્ત જે, તૃષ્ણા રહિત અનુપ; નિર્મોહી વીતરાગ જે, નિર્દ્ધક્રત્ય સ્વરૂપ.'ર

* * *

૧- શ્રી કાનજીસ્વામી, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચનો', આઠમી આવૃત્તિ, પૃ.૩૭૮-૩૭૯

ર- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૫ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૮૫-૪૮૮)

मिथा ६६मी निक्युर्यता, ते पामे ने पंयः रामक दमी मां शिपमां, नाइप्रमानिर्धिं ભૂમિકા ગાથા ૧૨૨માં સુશિષ્યે કહ્યું કે આત્માનું શુદ્ધ ત્રિકાળી ચેતનાસ્વરૂપ જેવું છે, તેવી જ શુદ્ધ અવસ્થા તે પામ્યો છે અને તેનો નિર્વિકલ્પસ્વરૂપે તે કર્તા-ભોક્તા બન્યો છે.

ગાથા ૧૨૦માં 'આત્મા છે' અને 'તે નિત્ય છે' એ બે પદ પોતાને યથાર્થ સમજાયાં છે એમ સુશિષ્યે કહ્યું હતું. તેમાં તેને થયેલા આત્માના અનુભવનો રણકો સ્પષ્ટ જણાય છે. ગાથા ૧૨૧-૧૨૨માં આત્માનું કર્તૃત્વ તથા ભોક્તૃત્વ જે પ્રકારે તેને અનુભવથી સમજાયું છે તે તેણે દર્શાવ્યું. ત્રીજું અને ચોથું પદ સમજાવવા શ્રીમદે આગળ ઉપર ૧૬ ગાથા રચી હતી, જેમાં શ્રીગુરુએ ૧૦ ગાથામાં આત્માનું કર્તૃત્વ અને ભોક્તૃત્વ સમજાવ્યું હતું. તે જ વાતને સારરૂપે બે ગાથામાં સુશિષ્યની અનુભવ-કથનીરૂપે શ્રીમદે અત્રે પુનઃ સમજાવી છે. હવે આત્માનાં અંતિમ બે પદ - 'મોલ છે' અને 'તેનો ઉપાય છે', સુશિષ્યને જે પ્રકારે શ્રીગુરુએ સમજાવ્યાં હતાં અને તે જે પ્રકારે તેને સમજાયાં છે એ દર્શાવતાં તે કહે છે —

'મોક્ષ કહ્યો નિજશુદ્ધતા, તે પામે તે પંથ; સમજાવ્યો સંક્ષેપમાં, સકળ માર્ગ નિર્ગ્રથ.'(૧૨૩)

અર્થ આત્માનું શુદ્ધપદ છે તે મોક્ષ છે અને જેથી તે પમાય તે તેનો માર્ગ છે; શ્રી સદ્દગુરુએ કૃપા કરીને નિર્ગ્રંથનો સર્વ માર્ગ સમજાવ્યો. (૧૨૩)

ભાવાર્થ મોક્ષ એટલે આત્માનું અત્યંત શુદ્ધપશું. રાગ-દેષ-અજ્ઞાનથી છૂટી જવું અથવા સર્વ કર્મથી મુક્ત થવું તે મોક્ષ છે. મોક્ષ એ તો આત્માની પરિપૂર્ણ શુદ્ધ અવસ્થાનું નામ છે. જો મોક્ષનો સંબંધ ચૌદ રજ્જવાત્મક લોકના અંગ ભાગમાં આવેલ કોઈ ક્ષેત્ર સાથે એકાંતે જોડવામાં આવે તો એ ક્ષેત્રમાં રહેલા સર્વ જીવ શુદ્ધ હોવા ઘટે, સુખી હોવા ઘટે, પરંતુ એમ તો છે નહીં. જ્યાં અનંતા સિદ્ધ ભગવંતો બિરાજે છે, ત્યાં અનંતા નિગોદના જીવો પણ છે, જે અશુદ્ધ છે, દુઃખી છે. તેથી જ અહીં મોક્ષનું પારમાર્થિક સ્વરૂપ સ્પષ્ટ કરતાં કહ્યું કે મોક્ષ એ આત્માની શુદ્ધ દશાની પ્રાપ્તિનું નામ છે. સર્વકર્મરહિત, સર્વવિકારરહિત એવું પરમ પવિત્ર, અવિનાશી, અનંત સુખમય મોક્ષયદ જે ઉપાય વડે પ્રાપ્ત થાય તે જ મોક્ષનો પંથ, અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગ છે. મોક્ષનો એકમાત્ર ઉપાય રત્નત્રયની આરાધના છે, માટે સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપ રત્નત્રયનું સેવન એ જ સાચો મોક્ષમાર્ગ છે.

ગાથાની બીજી પંક્તિમાં સુશિષ્ય અત્યંત કૃતજ્ઞભાવે કહે છે કે નિર્ગ્રથોએ પ્રરૂપેલ એવો મોક્ષનો પંથ શ્રી સદ્દ્ગુરુએ જેમ છે તેમ યથાતથ્ય સમજાવ્યો છે, જે તેને અનુભવથી સમજાયો છે. શુભાશુભ ભાવોની પરંપરાથી ટકી રહેતી અશુદ્ધ અવસ્થાનો છેદ ઉડાડવા, શુદ્ધાત્મસ્વરૂપનાં શ્રદ્ધા-જ્ઞાન-સ્થિરતા કરવારૂપ સત્ય પંથ સંક્ષેપમાં છતાં પરિપૂર્ણપણે સમજાવી શ્રીગુરુએ તેના ઉપર પરમ ઉપકાર કર્યો છે; એમ તે વિનમ્નભાવે કહે છે.

બાણમાંથી નીકળતું સોનું અશુદ્ધ હોય છે. પહેલાં શુદ્ધ હતું અને પછી અશુદ્ધ બન્યું એમ નથી, પણ સદાથી તે અશુદ્ધ જ હતું. સાથે સાથે તેમાં શુદ્ધ થવાની લાયકાત પણ સમાયેલી હતી. ધાતુવિજ્ઞાનની વિશિષ્ટ પ્રક્રિયા દ્વારા તેની શુદ્ધિ કરી શકાય છે. આ જ વાત સંસારી જીવને લાગુ પડે છે. તેનામાં રાગ-દ્વેષરૂપી અશુદ્ધતા હોવાથી તે અશુદ્ધ છે. અનાદિ કાળથી અશુદ્ધ હોવા છતાં શુદ્ધ થવાની યોગ્યતા પણ તેમાં સદાથી છે. તે અશુદ્ધ આત્માને શુદ્ધ કરવાનો વિશિષ્ટ ઉપાય પણ છે.

આ ઉદાહરણમાં સમાનતાની સાથે તેમાં રહેલો તફાવત પણ સમજી લેવો ઘટે છે. સોનું ખનિજ ધાતુ છે, એટલે કે જડ પદાર્થ છે. તેને શુદ્ધ કરવા બીજી કોઈ વસ્તુની જરૂર રહે છે. જ્યારે જીવ તો ચેતન છે, પોતાની શુદ્ધિ કરવા સ્વયં સમર્થ છે. પોતાની અશુદ્ધતાનું સાચું કારણ સમજીને, તેના અભાવ માટે યોગ્ય ઉપાય યોજીને જીવે પોતાની શુદ્ધિ કરવાની છે. પોતાના આત્માને અન્ય કોઈ શુદ્ધ કરી શકે એમ નથી, તેમજ તેને શુદ્ધ કરવાની જવાબદારી પણ કોઈ બીજા ઉપર નથી. જેમણે પોતામાં રહેલી અશુદ્ધતા દૂર કરી છે, તેઓ શુદ્ધતાના માર્ગની જાણકારી અન્ય જીવોને આપી શકે છે; અને એવા શુદ્ધ જીવોને જોઈ, જીવ પોતાનામાં તેમના જેવા થવાનો ઉત્સાહ ઉત્પન્ન કરી શકે છે; તથાપિ શુદ્ધ થવાનો સત્ય પુરુષાર્થ તો જીવે પોતે જ કરવો પડે છે. વિશિષ્ટ ઉપાય વડે જ્યારે આત્મા સંપૂર્ણ શુદ્ધ થાય છે ત્યારે તે અવસ્થાને મોક્ષ કહેવાય છે.

દરેક જીવ એક ચૈતન્યદ્રવ્ય છે. મોક્ષ એ જીવની પૂર્ણપવિત્ર અવસ્થા છે. મોક્ષ એટલે વિકારી અવસ્થાથી મુક્ત થવું. વિકારનું કારણ જીવ પોતે જ છે, તેથી તે પોતે જ એ વિકારને દૂર કરી શકે છે. તેનાં બંધનનો અને મુક્તિનો આધાર તે પોતે જ છે, તેમજ મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાની જવાબદારી પણ તેની પોતાની જ છે. જીવનો મોક્ષ તેના પોતાના જ હાથમાં છે. તે પુરુષાર્થ કરે ત્યારે જ મોક્ષ થાય છે. કોઈ બીજાના પુરુષાર્થથી તેની મોક્ષ અવસ્થા પ્રગટતી નથી.

સર્વ દ્રવ્યો એકબીજાથી સર્વથા ભિન્ન હોવાના કારણે તેનાં ગુણો અને પર્યાયો પણ ત્રિકાળ જુદાં જ છે અને દરેક દ્રવ્યનાં ગુણ-પર્યાય પોતપોતાના દ્રવ્યના જ આધારે છે. કોઈ પણ દ્રવ્યનાં ગુણ-પર્યાય કદી પણ કોઈ અન્ય દ્રવ્યના આધારે નથી હોતાં. દરેકે દરેક દ્રવ્ય પોતે પોતાથી અસ્તિરૂપ છે અને પરથી નાસ્તિરૂપ છે. પરની પોતામાં નાસ્તિ હોવાથી પરતત્ત્વ આત્મામાં કાંઈ કરી શકતું નથી. કોઈ પણ પરતત્ત્વ આત્મામાં કંઈ પણ કરવા, કદી પણ સમર્થ નથી. જીવ પોતે, પોતા વડે, પોતામાં વિકાર કરે છે અને પોતે, પોતા વડે, પોતામાંથી વિકાર ટાળી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી શકે છે. આત્મા પોતે જ ષટ્કારકરૂપ થઈને પોતાનું કાર્ય નિપજાવવાને સમર્થ છે.

કોઈ પણ કાર્યની સિદ્ધિમાં ષટ્કારકની પ્રવૃત્તિ બને છે. વિશ્વના પ્રત્યેક કાર્યમાં ષટ્કારકની પ્રવૃત્તિ અવશ્ય હોય છે. ષટ્કારકની પ્રવૃત્તિ વિના કોઈ પણ કાર્યસિદ્ધિ થતી નથી. જ્યાં કર્તા ક્રિયા કરે છે, ત્યાં સહજપણે ષટ્કારકની હાજરી અવશ્ય હોય છે. તે છ કારકો નીચે પ્રમાણે છે –

- ૧) કર્તા જે સ્વતંત્રપણે કાર્ય કરે તે કર્તા છે.
- ર) કર્મ કર્તા જેને પ્રાપ્ત કરે તે કર્મ છે.
- 3) કરણ જેના વડે કર્મ થાય તે સાધનને કરણ કહે છે.
- ૪) સંપ્રદાન જેના માટે કર્મ કરવામાં આવે તે સંપ્રદાન છે.
- પ) અપાદાન જેમાંથી કર્મ કરવામાં આવે તે વસ્તુ અપાદાન છે.
- દ) અધિકરણ જેમાં, અર્થાત્ જેના આધારે કર્મ કરવામાં આવે તે અધિકરણ છે.

નિશ્ચયથી છએ કારકો એક જ દ્રવ્યમાં છે. દ્રવ્ય પોતે જ, પોતાને, પોતા વડે, પોતા માટે, પોતામાંથી, પોતામાં કાર્યસિદ્ધિ કરતું હોવાથી નિશ્ચયથી છએ કારકો એક જ દ્રવ્યમાં છે. આ વાત આત્મા ઉપર ઘટે છે. આત્મા પોતે જ છ કારકરૂપ થઈને કેવળ-જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે. તે આ પ્રમાણે —

- ૧) આત્મા પોતે અનંત શક્તિવાળા જ્ઞાયકસ્વભાવ વડે સ્વતંત્ર છે અને તેથી પોતે જકર્તા છે.
- ર) પોતે અનંત શક્તિવાળા કેવળજ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરતો હોવાથી કેવળજ્ઞાન કર્મ છે અથવા કેવળજ્ઞાનથી પોતે અભિન્ન હોવાથી આત્મા પોતે જ કર્મ છે.
- 3) પોતાના અનંત શક્તિવાળા પરિશમનસ્વભાવરૂપ ઉત્કૃષ્ટ સાધન વડે કેવળજ્ઞાન પ્રગટ કરતો હોવાથી આત્મા પોતે જ કરશ છે.
- ૪) પોતાને જ કેવળજ્ઞાન અર્પણ કરે છે, તેથી આત્મા પોતે જ સંપ્રદાન છે.
- પ) પોતાનામાંથી મતિ-શ્રુતાદિ અપૂર્ણ જ્ઞાન દૂર કરીને કેવળજ્ઞાન પ્રગટ કરે છે અને પોતે સહજ જ્ઞાનસ્વભાવ વડે ધ્રુવ રહે છે, તેથી પોતે જ અપાદાન છે.

૬) પોતાનામાં જ, અર્થાત્ પોતાના જ આધારે કેવળજ્ઞાન પ્રગટ કરે છે, તેથી પોતે જ અધિકરણ છે.

આ રીતે આત્મા પોતે જ, પોતાને, પોતા વડે, પોતાને માટે, પોતાનામાંથી, પોતાનામાં કેવળજ્ઞાનરૂપી કાર્ય સિદ્ધ કરે છે. પરમાર્થે કોઈ દ્રવ્ય આત્માનું કર્તા-હર્તા થઈ શકતું નથી. પરમાર્થે કોઈ દ્રવ્ય આત્માને સહાય કરી શકતું નથી. આત્મા સ્વયં પોતાના સ્વભાવના અવલંબને નિજશુદ્ધિ કરે છે.

આત્માની અવસ્થામાં જે વિકારભાવ થાય છે તે ઉપાધિભાવ છે. શરીરાદિ પર-દ્રવ્યની ઉપાધિ આત્મામાં નથી, પણ પોતાની પર્યાયમાં જે વિકાર થાય છે તે વિકારની ઉપાધિવાળો આત્મા છે. ઉપાધિભાવ પરમાં નથી, તેમજ પરના કારણે પણ નથી. ઉપાધિ-ભાવનું કારણ કોઈ પરદ્રવ્ય નથી, પણ આત્મા પોતે જ છે. જીવમાં વિકાર કરવાની શક્તિ છે. શુભાશુભ કર્મના ઉદય વખતે સ્વરૂપનું ભાન ચૂકી જતાં તે ઉદયની સાથે જોડાઈ જાય છે અને વિકારરૂપે પરિણમે છે. વિકાર પરના અવલંબને થતો આત્માની પર્યાયનો ધર્મ છે. ઉપાધિભાવ થાય તેવો ધર્મ જો આત્માનો પોતાનો ન હોય તો બીજાં અનંતા પરદ્રવ્યો ભેગાં થઈને પણ તેનામાં ઉપાધિભાવની ઉત્પત્તિ કરાવી શકે નહીં.

વિકાર કરવો તે ખરેખર તો દોષ છે, પણ તે આત્માની પર્યાયમાં થાય છે તેથી તેને આત્માનો ધર્મ કહેવામાં આવે છે. રાગાદિ ઉપાધિભાવ આત્માની પર્યાયમાં થતા હોવાથી તેને આત્માનો ધર્મ કહેવાય છે. આત્મા રાગાદિને જ્યાં સુધી પોતાની પર્યાયમાં ધારી રાખે છે ત્યાં સુધી તે આત્માનો પોતાનો ધર્મ છે અને તેનો કર્તા આત્મા પોતે છે. તે ઉપાધિભાવને આત્મા એકસમયવર્તી પર્યાયમાં ધારણ કરતો હોવાથી તે ઉપાધિભાવ પણ આત્માનો એક ધર્મ છે. એ ધર્મની અપેક્ષાએ આત્મા સોપાધિક છે. ઉપાધિભાવ એકસમયવર્તી અશુદ્ધ પર્યાયમાં થતો હોવાથી સોપાધિક ધર્મ આત્માનો ત્રિકાળી સ્વભાવ નથી, પણ ક્ષણિક છે.

અનંત કાળથી જે વિકારભાવ થતો આવ્યો છે તેને પર્યાયમાં આત્મા પોતે ધારી રાખે છે, તેથી તે પણ આત્માનો ધર્મ છે, પણ તે ત્રિકાળી સ્વભાવ નથી. આત્માની અવસ્થામાં જે અશુદ્ધતા ઉત્પન્ન થાય છે તે હંમેશ માટે થતી નથી, અશુદ્ધતા તેનો સ્વભાવ નથી, તે આત્માનો ત્રિકાળી સ્વભાવરૂપ ધર્મ નથી, તેમજ તે મોક્ષમાર્ગની પ્રાપ્તિનો ધર્મ પણ નથી; તે માત્ર ક્ષણિક પર્યાય પૂરતો ક્ષણિક ધર્મ છે.

વિકાર પર્યાયમાં થતો હોવાથી તે એક સમયની ઉપાધિ છે, પણ આત્મા ત્રિકાળ કેવળ નિરુપાધિક સ્વભાવવાળો છે. ઉપાધિ વખતે પણ નિરુપાધિક સ્વભાવ આત્મામાં વિદ્યમાન છે. ત્રિકાળી નિરુપાધિક એવું શુદ્ધ દ્રવ્ય અને ક્ષણિક ઉપાધિરૂપ અશુદ્ધતા એ

બન્નેની યથાર્થ ઓળખાણ થતાં શુદ્ધ દ્રવ્યની દષ્ટિથી પર્યાયનો ઉપાધિભાવ ટળતો જાય છે અને આત્માની શુદ્ધતા વધતી જાય છે, મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટતો જાય છે. આ તથ્યને એક દષ્ટાંત વડે સમજીએ. ફાનસના કાચ ઉપર મેસ લાગેલી હોય તો અંદર રહેલી જ્યોતિનો પ્રકાશ બહાર દેખાતો નથી, પણ તેથી કાંઈ જ્યોતિ નથી એમ માની શકાય નહીં. કાચ ઉપર લાગેલી મેસને લૂછવાથી તે જ્યોતિ પ્રગટ થાય છે અને પ્રકાશ બહાર રેલાય છે. જ્યોતિ તો બન્ને અવસ્થામાં વિદ્યમાન છે, પણ કાચને સાફ કરવાથી તે પ્રગટ થઈ. તેમ આત્મદ્રવ્ય તો મોક્ષસ્વભાવી જ છે, પણ પર્યાયની અશુદ્ધિના કારણે તે મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટ થતો નથી. શુદ્ધ દ્રવ્યના લક્ષે પર્યાયને શુદ્ધ કરતાં મોક્ષસ્વભાવ પ્રગટ થાય છે. મોક્ષસ્વભાવ તો અશુદ્ધ અને શુદ્ધ બન્ને અવસ્થામાં વિદ્યમાન છે, પણ પર્યાયને શુદ્ધ કરવાથી તે પ્રગટ થાય છે. નિજ શુદ્ધ સ્વભાવમાં અખંડપણે રમણતા થવાથી શુભાશુભ ભાવ છેદાય છે અને આત્માનું જે શુદ્ધ સ્વસ્થ છે તે પૂર્ણપણે પ્રગટ થાય છે. સર્વ બંધભાવથી રહિત એવા આત્માનું શુદ્ધ સ્વભાવરૂપે પરિણમવું તે જ મોક્ષ. પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવમાં અખંડપણે સ્થિરતા કરવી તે જ મોક્ષ.

આત્માની પૂર્ણ શુદ્ધ અવસ્થા તે મોક્ષ છે અને આત્માને શુદ્ધ કરવાની જે રીત, તે મોક્ષનો માર્ગ છે; અર્થાત્ આત્માની અશુદ્ધ અવસ્થા જે રીતે દૂર થાય અને આત્મા જે પ્રકારે શુદ્ધ થાય તે જ મોક્ષનો માર્ગ છે - મોક્ષનો પંથ છે - મોક્ષનો ઉપાય છે. આત્મામાં અનાદિ કાળથી રાગ-દેષરૂપ અશુદ્ધિ ઉત્પન્ન થયા કરે છે, શુભાશુભ ભાવોની પરિશતિમાં જ તે ફસાઈ રહ્યો છે. જ્યાં સુધી તે મોક્ષના ઉપાયનું સેવન ન કરે ત્યાં સુધી રાગ-દેષની ઉત્પત્તિ થયા જ કરે છે. આ ઉત્પત્તિ રોકવાનો એકમાત્ર ઉપાય છે રત્નત્રયની આરાધના. શ્રી ભોગીલાલ ગિ શેઠ લખે છે —

'આત્માને શુદ્ધ કરવાનો અને સહજ સુખ પ્રાપ્ત કરવાનો એકમાત્ર ઉપાય રત્નત્રયની આરાધના છે, આત્મધ્યાન છે. નિર્મળ અને શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વભાવી આત્માની શ્રદ્ધા તે સમ્યગ્દર્શન, સમસ્ત પરદ્મવ્યથી ભિશ્ન, અરૂપી, અવિનાશી, સ્વાધીન એવા આત્માનું જ્ઞાન તે સમ્યગ્જ્ઞાન અને તે જ્ઞાનમાં સ્થિર થવું, ટકવું, ઠરવું તે સમ્યક્-યારિત્ર. આ રત્નત્રયીરૂપ સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યગ્યારિત્ર એ ત્રણની એકતા તે મોક્ષમાર્ગ છે, અર્થાત્ આત્માના જ્ઞાન, દર્શન, યારિત્રની શુદ્ધતા થાય તે જ મોક્ષમાર્ગ છે.'?

દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રને સમ્યક્ સ્વરૂપે પ્રગટ કરવાથી જ મોક્ષ થાય છે. સમ્યગ્દર્શન,

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી મલ્લિષેણસૂરિજીકૃત, 'સ્યાદ્વાદ મંજરી', શ્લોક ૮ની ટીકા

^{&#}x27;स्वस्वरूपावस्थानं हि मोक्षः ।'

૨- શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠ, 'આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર (વિશેષાર્થ સહિત)', ચોથી આવૃત્તિ, પૃ.૩૬૩-૩૬૪

સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રનો અર્થ છે આત્માની પ્રતીતિ, તેનું જ્ઞાન અને તેમાં સ્થિરતા. આત્મપદાર્થની જે સ્વરૂપે સત્તા છે તેને તેવો જ માનવો એ સમ્યગ્દર્શન છે, તેવો જ જાણવો એ સમ્યગ્જ્ઞાન છે અને તેમાં જ લીન થવું એ સમ્યક્ચારિત્ર છે. શુદ્ધાત્મસ્વરૂપનો નિશ્ચય કરવો તે સમ્યગ્દર્શન, શુદ્ધાત્મસ્વરૂપનું પરિજ્ઞાન કરવું તે સમ્યગ્જ્ઞાન અને શુદ્ધાત્મસ્વરૂપમાં લીન થવું તે સમ્યક્ચારિત્ર છે. શુદ્ધ આત્મસ્વભાવની શ્રદ્ધા કરવી, તે સ્વભાવને જાણવો અને તેમાં રમવું તે જ સત્ય દર્શન, સત્ય જ્ઞાન અને સત્ય આચરણ છે - રત્નત્રયધર્મ છે - મોક્ષનો પંથ છે. આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજી 'શ્રી તત્ત્વાથિ વિગમ સૂત્ર'માં લખે છે –

'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ।'२

અહીં મોક્ષમાર્ગ શબ્દ એકવચનમાં પ્રયોજવામાં આવ્યો છે, બહુવચનમાં નહીં. મુક્તિના માર્ગ ત્રણ નથી પણ એક છે અને તે ત્રણેની એકતારૂપ જ છે. સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્ર એ ત્રણેની એકતારૂપ મુક્તિનો માર્ગ છે. જેમ આરોગ્ય મેળવવા માટે ઔષધનું જ્ઞાન, ઔષધ વિષે શ્રદ્ધા અને ઔષધનું વિધિપૂર્વક સેવન એ ત્રણેની જરૂર છે. આ ત્રણમાંથી એકના પણ અભાવે આરોગ્યની પ્રાપ્તિ થતી નથી; તેમ આત્માના આરોગ્ય માટે - મોક્ષ મેળવવા માટે સમ્યગ્દર્શન આદિ ત્રણેની જરૂર છે. આ ત્રણમાંથી એકનો પણ અભાવ હોય તો મોક્ષની પ્રાપ્તિ થતી નથી. સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-યારિત્રની એકતાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. આત્માના સત્ય સ્વરૂપનું જ્ઞાન-શ્રદ્ધાન તથા તે પ્રમાણેનાં આચરણ દ્વારા આત્માની શુદ્ધિ થતી જાય છે અને મોક્ષ પ્રગટે છે.

જેમ અગ્નિમાં પાચક, પ્રકાશક અને દાહક એમ ત્રણ ગુણ છે; તેમ આત્મામાં દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્ર એમ ત્રણ ગુણ છે. જેમ અગ્નિ પાચક ગુણ વડે અનાજને પકવે છે, તેમ આત્મા દર્શન (શ્રદ્ધા) ગુણ વડે પોતાના શુદ્ધ સ્વભાવને પકવે છે. જેમ અગ્નિ પ્રકાશક ગુણ વડે વસ્તુને પ્રકાશે છે, તેમ આત્મા જ્ઞાન ગુણ વડે સ્વ-પરને પ્રકાશે છે. જેમ અગ્નિ પોતાના દાહક ગુણ વડે દાદ્ય પદાર્થોને બાળે છે, તેમ આત્મા પોતાના ચારિત્ર ગુણ વડે વિકારી ભાવોને બાળી નિ:શેષ કરે છે.

રત્નત્રય એ આત્માનો ધર્મ છે. આત્માનો ધર્મ આત્મામાં રહે છે, નહીં કે શરીરમાં. તેથી શરીરની ક્રિયાથી મોક્ષ થાય એ માનવું ભૂલ ભરેલું છે. જીવમાં પુદ્દગલ વ્યાપતું નથી, પુદ્દગલમાં જીવ વ્યાપતો નથી; બન્ને વચ્ચે વ્યાપ્ય-વ્યાપક સંબંધ નથી. જે

'दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः

स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः ।।'

૨- આચાર્યશ્રી ઉમાસ્વાતિજીપ્રણીત, 'શ્રી તત્ત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર', અધ્યાય ૧, સૂત્ર ૧

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી અમૃતચંદ્રદેવકૃત, 'પુરુષાર્થસિદ્ધિ-ઉપાય', શ્લોક ૨૧૬

પોતામાં વ્યાપે છે અને જીવમાં વ્યાપતાં નથી એવાં અનંતા પુદ્ગલો પોતાની કિયાથી આત્માને કઈ રીતે મોક્ષમાં લઈ જઈ શકે? જો શરીર જીવનું કાર્ય કરે તો શરીરરૂપે પરિણમેલાં અનંતા પુદ્ગલ અનંત દ્રવ્યો મટી એક ચૈતન્યદ્રવ્ય બની જાય; અને આમ જો દ્રવ્યોનો લોપ થવા લાગે તો જીવનો પણ લોપ થઈ જાય. એટલે શરીરની કિયા વડે મોક્ષ થાય એમ માનવું તે માત્ર ભ્રમણા છે. શરીરની કિયા એ પુદ્ગલનો ધર્મ છે અને રત્નત્રય એ આત્માનો ધર્મ છે. આત્માનો ધર્મ આત્મામાં છે અને તે માત્ર આત્માના આશ્રયે પ્રગટે છે.

જેમ મોરના ઈડામાં મોર થવાની તાકાત છે, તેમ ચૈતન્યશક્તિમાં કેવળજ્ઞાન પ્રગટ કરવાની તાકાત છે. સર્વજ્ઞ પરમાત્માને કેવળજ્ઞાન થયું તે કાંઈ શરીરના મજબૂત સંઘયણમાંથી, રાગમાંથી કે કાળમાંથી આવ્યું નથી. આત્મદ્રવ્ય પરિપૂર્ણ શક્તિનો પિંડ છે, જેમાં એકાત્ર થવાથી તેના અવલંબને જ કેવળજ્ઞાન પ્રગટે છે. દ્રવ્યમાં સામર્થ્યરૂપે હતું તે જ પર્યાયમાં વ્યક્ત થાય છે. નાનકડું ઈંડું ક્રમે કરીને સાડા ત્રણ હાથનો મોર બને છે. નાના ઈંડામાં તેવી શક્તિ હતી, તેથી તેનો વિકાસ થઈને તેમાંથી મોર થાય છે; તેમ આત્માની ચૈતન્યશક્તિની પ્રતીતિ કરતાં, તેમાં રમણતા કરતાં તેનો વિકાસ થતાં મોક્ષ થાય છે.

સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર વડે આત્માની ઉપાસના કરવી એ મોક્ષાર્થી જીવનું પ્રયોજન છે. મોક્ષના ભણકારા જેને વાગે છે, તે મંગલ અભિપ્રાયવાળો મોક્ષાર્થી જીવ આત્માને જાણી, શ્રદ્ધી, આત્મનિષ્ઠ થવાનો અભ્યાસ કરે છે. ચૈતન્યની પ્રાપ્તિ કરવી એ જ જેનો મંગલ અભિપ્રાય છે એવો મોક્ષાર્થી જીવ મુક્તિને માટે જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માની ઓળખાણ કરે છે, શ્રદ્ધા કરે છે અને તેમાં સ્થિર થવાનો પુરુષાર્થ કરે છે. ધનની પ્રાપ્તિનો અભિલાષી, જેમ રાજાને ઓળખીને અને શ્રદ્ધા કરીને ઘણા ઉદ્યમપૂર્વક તેની સેવા કરીને તેને પ્રસન્ન કરે છે; તેમ જેને એકમાત્ર ચૈતન્યની પ્રાપ્તિની જ મંગલ અભિલાષા છે, બંધનથી છૂટવાની જ અભિલાષા છે, સંસારની કોઈ અભિલાષા નથી તે મોક્ષાર્થી જીવ સર્વ પ્રકારના પ્રયત્ન વડે આત્માને જાણે છે, તેની શ્રદ્ધા કરે છે અને પછી તેમાં ઠરવાનો ઉદ્યમ કરે છે.

મોક્ષાર્થી જીવ આત્માનો નિર્ણય કરે છે અને પછી અંતર્મુખ પ્રયત્ન કરતાં કરતાં તેને આત્માની અપૂર્વ અનુભૂતિ થાય છે. અનુભૂતિમાં જે અતીન્દ્રિય સ્વરૂપ જણાય છે તે જ પોતાનું સ્વરૂપ છે એમ તેને દઢ શ્રદ્ધાન થાય છે.^૧ ત્યારપછી તે આત્મસ્વરૂપમાં

'यत्पश्यामीन्द्रियैस्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः । अन्तः पश्यामि सानन्दं तदस्तु ज्योतिरुत्तमम् ।।'

૧- જુઓ : આચાર્યશ્રી પૂજ્યપાદસ્વામીકૃત, 'સમાધિતંત્ર', શ્લોક પ૧

જ વારંવાર લીન થવાનો પ્રયત્ન કરે છે. 'આ શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્મા તે જ હું છું અને તેના સેવનથી પૂર્ણ સુખરૂપ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે' એવી નિઃશંક શ્રદ્ધા સહિત તે તેમાં લીન થવાનો પુરુષાર્થ કરી મોક્ષને સાધે છે. મોક્ષને સાધવાની આ જ રીત છે. આ જ વીતરાગ સન્માર્ગ છે. સ્વરૂપનો નિર્ણય અને ઉપયોગની અંતર્મુખતા એ જ સર્વ નિર્ગથોનો મંગલ ઉપદેશ છે અને તેમાં પણ સૌથી પહેલી વાત છે આત્મ-સ્વરૂપના નિર્ણયની.

જ્યાં સુધી સ્વરૂપની યથાર્થ પ્રતીતિ થતી નથી, શુદ્ધ સ્વરૂપનો વજભીંત જેવો નિર્ણય થતો નથી; ત્યાં સુધી ધર્મની શરૂઆત સંભવતી નથી. જીવ શુદ્ધ સ્વરૂપરૂપે પોતાને ન જાણે, ન માને, ન વિચારે, ન ભાવે ત્યાં સુધી મોક્ષમાર્ગે શરૂઆત થઈ શકતી નથી. તેથી પોતાના શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપની પ્રતીતિ અત્યંત આવશ્યક છે. 'હું શુદ્ધ, બુદ્ધ, ચૈતન્યધન છું' એમ વિશ્વાસ કરીને 'હા' પાડે, પૂર્ણ સ્વરૂપની પ્રતીતિ કરે ત્યારે જ મોક્ષમાર્ગની વાસ્તવિક શરૂઆત થાય છે.

પિતાએ ચોપડામાં લખ્યું હોય કે પાંચ લાખનું સોનું અમુક જગ્યાએ રાખ્યું છે, તો સોનું હજી જોયું પણ ન હોય, તોપણ પિતાનો વિશ્વાસ કરી પુત્ર તે વાત માની લે છે; તેમ ત્રિલોકનાથ સર્વજ્ઞે સાક્ષાત્ જ્ઞાનથી આત્માનું શુદ્ધ, પૂર્ણ, મુક્ત સ્વરૂપ જે રીતે અનુભવ્યું અને કહ્યું તે પ્રમાણે વર્તમાનમાં પોતાને પ્રત્યક્ષ ન હોવા છતાં વિશ્વાસપૂર્વક માનવું ઘટે છે. ત્રિલોકનાથરૂપી સાક્ષાત્ મહાવૈદ્ય કહે છે કે 'તું અમારા જેવો પૂર્ણ છે, પવિત્ર છે, અવિનાશી છે, નીરોગી છે. તારું સ્વરૂપ કાંઈ સંયોગાધીન નથી, વર્તમાન અવસ્થા પૂરતો તું નથી. તારા સ્વરૂપનો તું નિર્ણય કરશે તો અનાદિથી પોતાને ભૂલી જવારૂપ મહાક્ષયરોગ લાગુ પડ્યો છે તે મટી જશે. વર્તમાનમાં શુદ્ધ પૂર્ણ સ્વભાવનો નિર્ણય કર તો તું આત્મઆરોગ્ય સંપન્ન કરી શકીશ.'

જે જીવ 'હું પામર છું, ઊણો છું' એમ માને તો મોક્ષમાર્ગ તરફ તેનું વીર્ય ઊપડતું નથી. પોતાને હીણો માનતાં મોક્ષપંથે પ્રગતિ સધાતી નથી. અળસિયું અને નાગનું બચ્ચું બન્ને દેખાવમાં સરખાં હોય છે, પરંતુ માર્ગમાં પ્રતિબંધ આવતાં અળસિયું પાછળ ખસે છે, જ્યારે નાગનું બચ્ચું ફુંફાડો મારે છે, કારણ કે નાનું હોવા છતાં તે ફ્લીધર નાગ છે. તેમ આત્મા વર્તમાન પર્યાયમાં નિર્બળ અને પામર છે, છતાં સ્વભાવે તો સિદ્ધ પરમાત્મા જેવો પૂર્લસામર્થ્યવંત છે. પોતાને અળસિયા જેવો હીણો માનતાં પુરુષાર્થ ઊપડતો નથી, પરંતુ નાગના બચ્ચાની જેમ કડક વીર્યવંત થવાથી માર્ગના સર્વ પ્રતિબંધ સહજમાં જિતાઈ જાય છે. પૂર્લતાના લક્ષે ઊપડેલો સાધક પૂર્ણ થયા વિના રહેતો નથી.

આમ, વર્તમાન અવસ્થામાં દુઃખ હોવા છતાં ત્રિકાળી સ્વભાવમાં આનંદ છે,

વર્તમાન અવસ્થામાં ઉપાધિ હોવા છતાં ત્રિકાળી સ્વભાવ નિરુપાધિક છે, વર્તમાન અવસ્થામાં અશુદ્ધતા હોવા છતાં ત્રિકાળી સ્વભાવ પરિપૂર્ણ શુદ્ધ છે. સ્વતત્ત્વની આવી યથાર્થ ઓળખાણ કરીને શુદ્ધ સ્વભાવમાં રમણતા કરવાથી અવસ્થામાંથી વિકાર ઘટતો જાય છે અને અંતે વીતરાગતા - કેવળજ્ઞાન - મોક્ષ થાય છે.

અહીં એ ધ્યાન રાખવું ઘટે છે કે જીવ શુદ્ધ સ્વરૂપના લક્ષે પર્યાયની શુદ્ધિ કરે તો મોક્ષ પ્રગટે છે. માત્ર શુદ્ધ સ્વરૂપની વાતો કરવાથી કંઈ વળતું નથી. કેટલાક લોકો શુદ્ધ સ્વરૂપની માત્ર વાતો કરે છે અને પર્યાયની શુદ્ધિ પ્રત્યે દુર્લક્ષ સેવે છે. ર્તઓ એમ કહે છે કે 'હું સ્વભાવથી તો શુદ્ધ, બુદ્ધ, ચૈતન્યઘન, સચ્ચિદાનંદસ્વરૂપી આત્મા છું. આ જે દોષ થાય છે તે તો એક સમયની પર્યાયમાં થાય છે, તેથી તેના ઉપર લક્ષ શા માટે આપવું?' પરંતુ તેણે વિચારવું ઘટે કે આવી એક સમયની પર્યાયનો પ્રવાહ અનાદિથી ચાલ્યો આવે છે. પોતાનું સ્વરૂપ જો પૂર્ણ શુદ્ધ છે તો તે તેનો આશ્રય લેવાને બદલે બહાર ફાંફાં મારીને પોતાની પર્યાયને શા માટે મલિન કરે છે? જે પોતાના દોષો ઉપર ધ્યાન આપતો નથી અને પૂર્જજ્ઞાનાનંદી સ્વભાવની કેવળ વાતો કરે છે, તેણે પોતાની જાતને પૂછવું ઘટે છે કે 'જો તું શુદ્ધ જ્ઞાયકસ્વભાવી છે તો તને રાગ-દેખ કેમ થાય છે? સ્વભાવ અને સંયોગનો ભેદ જાણતો હોય તો પરિસ્થિતિમાં આવતા અનિષ્ટ પલટાઓ પ્રત્યે ગૌણતા કેમ આવતી નથી? અધ્યાત્મનાં ગ્રંથો વાંચવા છતાં પરનાં કર્તા-ભોક્તાપણામાં શા માટે રાચે છે? તેમાં કેમ ન્યૂનતા આવતી નથી? પ્રસંગ આવે ત્યારે જાગૃતિ કેમ રહેતી નથી? નાનકડાં પીછાં જેટલાં નિમિત્તથી તો તું હજુ વિક્ષુલ્ધ થઈ ઊઠે છે અને આવી અવસ્થામાં તું શુદ્ધાત્માની વાતો કરે છે એ કેટલા અંશે વ્યાજબી છે?'

'આત્મા શુદ્ધ છે, બુદ્ધ છે, પરમાત્મા છે; માટે બીજું કાંઈ કરવાપણું રહેતું નથી' આવી તત્ત્વજ્ઞાનની વાતોનો મર્મ સમજ્યા વિના અનેક જીવો ભ્રમિત થયા છે. જીવ પોતાની પશુતાને ટાળશે, ઉત્થાનનો માર્ગ અહશે ત્યારે જ શુદ્ધ થશે. તેથી જીવે શુદ્ધાત્માની વાતોનો ઉપયોગ દોષોને ભૂલવા માટે નહીં પણ તેને ટાળવા માટે કરવો જોઈએ. જીવની અધમતા તો એવી છે કે તે સારામાં સારા, ઊંચામાં ઊંચા સત્યનો પણ દુરુપયોગ કરે છે. પોતાનાં નિકૃષ્ટ જૂઠાણાંઓને ઢાંકવા માટે સાચા સિદ્ધાંતોનો ઉપયોગ કરવામાં તે જરા પણ ખચકાટ અનુભવતો નથી. તેણે સિદ્ધાંતોને પોતાની પાપસ્થિતિ ભૂલવાનું એક સાધન બનાવી દીધું છે. પાપ કરવું છે, પણ પાપને સ્વીકારવાની તૈયારી નથી, પાપ ટાળવાની હિંમત નથી, તેથી તે આવી તરકીબ કરે છે. અંદર અધમ વિચારો છે, પણ શુદ્ધાત્માની કોરી વાતો કરી બહારથી સારા દેખાવાનો ડોળ કરે છે. શુદ્ધાત્માની વાતોની આડમાં તે ઊંડી અને ભયંકર છેતરપિંડી કરે છે.

શુદ્ધાત્માની વાતો ગમવાનાં બે કારણ હોઈ શકે છે. કાં એની આડ લઈને પોતાની પાપસ્થિતિ વિસારી દેવી છે, કાં શુદ્ધાત્મસ્વરૂપને દશામાં પ્રગટાવવું છે. જે જીવ શુદ્ધાત્માની વાતો કરીને પોતાની પાપસ્થિતિ વિસારે છે, તેનો ઉદ્ધાર મુશ્કેલ બને છે. કોરા તત્ત્વજ્ઞાનથી ઊગરવું બહુ જ કઠણ છે. બીમાર માણસ જો એમ માની લે કે મને કોઈ રોગ જ નથી તો તેનો રોગ મટશે તો નહીં, પરંતુ રોગ વધુ વકરી જશે અને તે તંદુરસ્ત નહીં થઈ શકે; પરિણામે તેનું મૃત્યુ જ નીપજશે. શુદ્ધાત્માની વાતો માત્ર શબ્દમાં જ રહે તો તે ઘણી ઘાતક બની શકે છે, પ્રકાશ સુધી પહોંચવામાં તે બાધક બની શકે છે, કારણ કે જો અંધકારનો સ્વીકાર જ નથી તો તેને દૂર કરવાનો પ્રયાસ જ કઈ રીતે થાય? અંધકારથી - પાપથી ભાગવું એ સાધના નથી, એ તો પલાયનવૃત્તિ છે. તે પુરુષાર્થનો માર્ગ નથી, પુરુષાર્થહીન પ્રાણીની મિથ્યા તૃપ્તિ છે. અંધકારનાં સ્તરોને વટાવી પ્રકાશ સુધી પહોંચવાનું છે. પાયનાં સ્તરોને ઉખેડીને શુદ્ધ સ્વભાવ સુધી પહોંચવાનું છે. અશુદ્ધતાનો વિનાશ કરીને શુદ્ધતાની ઉપલબ્ધિ કરવાની છે. સાધનાનો એ જ સાચો માર્ગ છે. જો પોતે શુદ્ધ છે, પરમાત્મા છે એવી એકાંત માન્યતા સેવે તો તે પોતાનું મહા અનર્થ કરે છે.

જ્ઞાનીઓ કહે છે કે પોતાની વાસ્તવિક સ્થિતિ પ્રત્યે જાગૃત થાઓ. કોઈ પ્રકારનો ભ્રમ ન સેવો. તેનાથી પીડા તો જરૂર થશે, કારણ કે 'હું સમાટ છું' એવું સ્વપ્ન તૂટી જશે અને મહારાજાપણું મટીને ભિક્ષુકપણું જ્ણાશે. નિશ્ચયસિદ્ધાંતોની આડ લીધી હતી, હવે જાગૃત થવાથી એ પશુ કે જે જીવમાં સંતાયેલો હતો તે તેની સમક્ષ ખડો થશે. જાગવાથી પીડા અવશ્ય થશે તોપણ જાગવું જરૂરી છે. જાગવાથી જ એ પશુતાનું ભાન થશે. પશુતાનું જેને ભાન થાય છે તેને જ તેનાથી ભિન્તતાનો બોધ પ્રગટે છે. પોતાની પશુતાનું અવલોકન થવાથી જ તેની સાથેનું તાદાત્મ્ય દૂર થાય છે. પક્ષપાતરહિત થયેલું નિરીક્ષણ દોષોથી નિરીક્ષકને જુદો પાડે છે. જીવમાં તે એવું એક બિંદુ જન્માવે છે, જેની પૂર્ણતાએ આત્માનુભવનો સિંધુ હિલોળા લેતો થાય છે.

આમ, આંતરિક પશુતાનાં દર્શન વિના શુદ્ધાત્માનુભૂતિ થવી શક્ય નથી, અર્થાત્ વર્તમાન દોષોને ઓળખ્યા-ટાળ્યા સિવાય ત્રિકાળી શુદ્ધ સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ સંભવતી નથી. તેથી જીવે કેવળ શુદ્ધતાની વાતો કરી સંતોષાઈ ન જતાં પોતાની પર્યાયની શુદ્ધિ કરવી જોઈએ. તેણે શુદ્ધ દ્રવ્યના લક્ષે પર્યાયમાં શુદ્ધતા પ્રગટાવવી જોઈએ. શુદ્ધ જ્ઞાનાનંદસ્વરૂપી આત્માની પ્રતીતિ, ઓળખાણ અને રમણતા દ્વારા નિજ શુદ્ધતા પામવાથી મુક્ત દશા પ્રગટે છે. એ સિવાય બીજી કોઈ રીતે મોક્ષ થતો નથી. અનંત કાળનું અનંત દુઃખ ટાળવાનો આ જ એક ઉપાય છે. આ જ સર્વ નિર્ગથ પુરુષોના ઉપદેશનો સાર છે. સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપે પરિણમેલા એવા નિર્ગથ પુરુષોના માર્ગની ઉદ્ઘોષણા કરતાં

શ્રીમદ્લખે છે -

'કાયાની વિસારી માયા, સ્વરૂપે સમાયા એવા, નિર્ગ્રંથનો પંથ ભવઅંતનો ઉપાય છે.'^૧

અપૂર્વ આત્મજાગૃતિ વડે જેઓ કાયાની માયા અર્થાત્ દેહાધ્યાસ ટાળી દે છે, તે મહાપુરુષો દેહાત્મબુદ્ધિ દૂર થવાથી આત્માના શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપમાં સમાય છે. બાહ્ય ભાવોથી તેમની વૃત્તિ વિરામ પામી, અંતર્મુખ થઈ, પોતાના શુદ્ધ સહજાત્મસ્વરૂપમાં લીન થતાં તેઓ સમાધિસ્થ થાય છે. દેહાત્મબુદ્ધિરૂપ દર્શનમોહ કે જે મુખ્ય અભ્યંતર પરિગ્રહની ગંથિ - ગાંઠ છે, તેને છેદીને તે જ્ઞાનીપુરુષ અન્ય બાહ્ય અને અંતરંગ સર્વ પરિગ્રહરૂપ ગંથિને છેદવા સમર્થ બને છે. દર્શનમોહ અને ચારિત્રમોહરૂપ વિકટ ગંથિનો છેદ કરીને તે મહાપુરુષ વીતરાગસર્વજ્ઞપદે વિરાજિત થાય છે. નિર્ગથ મહાત્માઓ મોહ- ગંથિને છેદવાનો જે ઉપાય - જે માર્ગ દર્શાવે છે, તે જ સંસારના અંતનો, અર્થાત્ મોક્ષપ્રાપ્તિનો ઉપાય છે.

આવો નિર્ગંથનો માર્ગ પૂર્ણ રીતે સંક્ષેપમાં શ્રીગુરુએ સમજાવ્યો છે એમ સુશિષ્ય દારા આ ગાથાની બીજી પંક્તિમાં જાહેર થાય છે. જન્મોજન્મના પરિભ્રમણ દરમ્યાન સુશિષ્યને પૂર્વે ક્યારે પણ નિર્ગંથમાર્ગનું ભાન થયું ન હતું. શ્રીગુરુ દ્વારા તેને નિર્ગંથના માર્ગની સમજણ મળી અને અંતર્મુખ થવાની પ્રેરણા મળી. અનાદિ કાળથી તેનો જ્ઞાનોપયોગ જે પરસન્મુખ થતો હતો, તેની દિશા બદલાઈ સ્વસન્મુખ થયો. પરને જાણવાવાળો ઉપયોગ સ્વસન્મુખ થતાં તેણે સ્વને જાણ્યો. તેને સ્વાનુભવ થયો અને તેનું અનાદિનું અજ્ઞાન દૂર થયું. આવા કલ્યાણકારી નિર્ગંથમાર્ગ વિષે શ્રીમદ્ કહે છે –

'નિર્ગ્રંથ ભગવાને પ્રણીતેલા પવિત્ર ધર્મ માટે જે જે ઉપમા આપીએ તે તે ન્યૂન જ છે. આત્મા અનંત કાળ ૨ખડ્યો, તે માત્ર એના નિરુપમ ધર્મના અભાવે. જેના એક રોમમાં કિંચિત્ પણ અજ્ઞાન, મોહ, કે અસમાધિ રહી નથી તે સત્પુરુષનાં વચન અને બોધ માટે કંઇ પણ નહીં કહી શકતાં, તેનાં જ વચનમાં પ્રશસ્ત ભાવે પુનઃ પુનઃ પ્રસક્ત થવું એ પણ આપણું સર્વોત્તમ શ્રેય છે.'ર

સર્વોત્તમ શ્રેય કરનારો નિર્ગ્રંથનો માર્ગ શ્રીગુરુએ શિષ્યને સંક્ષેપમાં સમજાવ્યો છે. જેમ છાશમાંથી નવનીત જુદું કરવામાં આવે છે, તેમ નિર્ગ્રથમાર્ગનો સાર કાઢી સંક્ષેપમાં સમજાવ્યો છે. સંક્ષેપમાં એટલે અપૂર્ણ નહીં પણ ટૂંકામાં છતાં સંપૂર્ણપણે. જેમ કોઈ પુરુષની છબી (portrait) તે પુરુષપ્રમાણ (life size), અર્થાત્ પુરુષના કદ જેટલી

૧- 'શ્રીમદ્દ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૬૪૨ (આંક-૯૦૨)

૨- એજન, પૃ.૧૮૧ (પત્રાંક-પર)

મોટી પણ હોય અથવા અંગુલિની મુદ્રિકામાં સમાય એટલી (locket size) નાની પણ હોય; છતાં તે નાની છબી પણ મોટી છબીની જેમ તે પુરુષની સંપૂર્ણ આકૃતિ રજૂ કરે છે. તેમ વિસ્તૃત નિર્ગ્રંથ પ્રવચનને ટૂંકામાં છતાં સંપૂર્ણપણે અહીં રજૂ કરવામાં આવ્યું છે, જેની સહાયથી સ્વસન્મુખ થતાં નિર્ગ્રંથમાર્ગ પ્રાપ્ત થાય છે.

અત્યંત મહાન ગ્રંથરાશિમાંથી સારભૂત કથન કરવું એ કાંઈ સહેલું કાર્ય નથી. સંક્ષેપનો વિસ્તાર કરવો સહેલો છે, પણ વિસ્તારનો સંક્ષેપ કરવો સહેલો નથી; કારણ કે વિસ્તારનો ટૂંકામાં છતાં સંપૂર્ણપણે સંક્ષેપ કરવામાં ઘણી વિશેષ કુશળતાની જરૂર પડે છે. 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'માં શ્રીમદ્દ્માં રહેલી આ કુશળતા પ્રગટ દેખાય છે, જે અત્યંત પ્રશંસનીય છે. તેમણે અહીં સમગ્ર શાસ્ત્રોનો સાર સંક્ષેપમાં દર્શાવ્યો છે.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે -

'મોક્ષ કહ્યો નિજશુદ્ધતા, વર્જિત સર્વ વિભાવ; પરમ જ્યોતિ નિજ આત્મની, પ્રગટ સહજ સ્વભાવ. એવો જે શિવસ્વરૂપ છે, તે પામે તે પંથ; સમ્યક્ રત્નત્રય વડો, બાહ્યાંતર નિર્ગ્રથ. સરલપણે સદ્દગુરુ પ્રભુ, યથાર્થ ન્યાય પ્રમાણ; સમજાત્યો સંક્ષેપમાં, ખરો માર્ગ નિર્વાણ. નિશ્ચય ને વ્યવહાર બે, મળી થયો છે પંથ; સરળ માર્ગ નિર્વાણનો, સકળ માર્ગ નિર્ગ્રથ.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૫ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૮૯-૪૯૨)

 ગાથા ૧૨૩માં સુશિષ્યે જણાવ્યું કે જીવની પૂર્ણ શુદ્ધ દશાને મોક્ષ કહે છે ભૂમિકા અને તે શુદ્ધતા જે રીતે પમાય તે મોક્ષનો ઉપાય છે, મોક્ષમાર્ગ છે; નિર્ગ્રથનો આ સંપૂર્ણ માર્ગ શ્રીગુરુએ કૃપા કરીને સંક્ષેપમાં સમજાવ્યો છે. આમ, ગાથા ૧૨૩માં સુશિષ્યે, 'મોક્ષ છે' અને 'મોક્ષનો ઉપાય છે' એવાં આત્માનાં અંતિમ બે પદની પોતાને થયેલી પ્રતીતિ, પોતાનો અનુભવયુક્ત અભિપ્રાય દર્શાવ્યો છે.

આમ, સમ્યગ્દર્શનને પ્રાપ્ત કરાવનાર એવાં આત્માનાં છ પદની સંક્ષિપ્ત વ્યાખ્યા શ્રીમદે શિષ્યના મુખે ગાથા ૧૧૯ થી ૧૨૩માં આપી છે. આ ગાથાઓમાં છ પદની સમજણનો સાર, શિષ્ય પોતાનો સ્વાનુભવ વ્યક્ત કરતો હોય તેવા સ્વરૂપે શ્રીમદે આપ્યો છે. હવે ગાથા ૧૨૪ થી ૧૨૭માં શ્રીગુરુએ મોક્ષમાર્ગ બતાવવારૂપ જે કરુણા કરી તે અર્થે તેઓ પ્રતિ અત્યંત ઉલ્લાસપૂર્વક કૃતજ્ઞતાનો ભાવ સુશિષ્યે દર્શાવ્યો છે. આ ચાર ગાથાઓમાં પોતાના ઉપકારી શ્રીગુરુ પ્રત્યેનો અહોભાવ તથા ભક્તિરસનો અસ્ખલિત પ્રવાહ પૂર્ણ વેગથી વહેતો હોય એમ સ્પષ્ટ દેખાય છે. સ્વાનુભવથી થયેલ આનંદનો સુંદર આવિર્ભાવ તથા શ્રીગુરુના ચરણે પોતાનું સર્વસ્વ સમર્પણ કરી, તેમની જ આજ્ઞાએ વર્તવાની તીવ્ર ઉત્કંઠા તેમજ યથાર્થ પુરુષાર્થ ઉપાડી પૂર્ણ શુદ્ધ દશા પ્રાપ્ત કરવાનો ઉચ્ચ મનોરથ પણ તેમાં દેખાય છે. ઉપર્યુક્ત ભાવોને વ્યક્ત કરવા જે શબ્દ- રચના શ્રીમદે કરી છે, તેનું અર્થગાંભીર્ય ખૂબ ઊંડું છે. સમર્પણભાવ વ્યક્ત કરતી આ ચાર ગાથાઓ વિશેષતાથી સમજવા યોગ્ય છે. તેમાંની પ્રથમ ગાથામાં સુશિષ્ય કહે છે –

ંઅહો! અહો! શ્રી સદ્દગુરુ, કરુણાસિંધુ અપાર; આ પામર પર પ્રભુ કર્યો, અહો! અહો! ઉપકાર.' (૧૨૪)

અહો! અહો! કરુણાના અપાર સમુદ્રસ્વરૂપ આત્મલક્ષ્મીએ યુક્ત સદ્દગુરુ, આપ પ્રભુએ આ પામર જીવ પર આશ્ચર્યકારક એવો ઉપકાર કર્યો. (૧૨૪)

૧- જેમ પ્રકૃતિમાં નિમગ્ન એવા કોક્લિના આનંદની અભિવ્યક્તિ કરતો ટહુકાર અન્ય જનોને પણ પ્રસન્તાનું નિમિત્ત બને છે, તેમ અહીં સુશિષ્ય શ્રીગુરુના ગુણોમાં નિમગ્ન બની સમર્પણભાવથી તરબોળ બન્યો છે અને તેની આ અભિવ્યક્તિ અન્ય જનોને સમર્પણભાવનું નિમિત્ત બને છે. માટે જ સમર્પણભાવ વ્યક્ત કરતી આ ચાર ગાથાઓનું શ્રીમદ્ના ભક્તોમાં વિશિષ્ટ મહત્ત્વ છે અને આ ચાર ગાથાઓ પ્રશિપાત સ્તુતિ તરીકે તેમના દૈનિક નિત્યક્રમમાં સ્થાન ધરાવે છે.

ભાવાર્થ માયા કરુણાના સમુદ્ર છે. જેમ સમુદ્રની ગહનતા અને વિશાળતા માપી શકાય નહીં, તેમ શ્રીગુરુની કરુણા પણ માપી ન શકાય એવી છે. નિષ્કારણ કરુણાની મૂર્તિ એવા શ્રીગુરુ પામર જીવનો હાથ ઝાલી, ધર્મોપદેશ આપી, સત્પુરુષાર્થ માટે ઉત્સાહ વધારી, આત્મજ્ઞાન પમાડી તેને ઉચ્ચ દશાએ પહોંચાડે છે. આ તેમનો અમાપ-અસીમ ઉપકાર છે. શ્રીગુરુનો ઉપકાર પરમાર્થરૂપ હોવાથી અનંત કાળનું સંસારપરિભ્રમણ અને તેના કારણે ઉત્પન્ન થનાર અનંત પ્રકારનાં દુઃખો ટળી જાય છે અને જીવ સ્વાધીન એવા અવ્યાબાધ સુખનો સ્વામી બને છે. સુશિષ્ય આ અલૌકિક ઉપકારની મહત્તા સમજતો હોવાથી 'ગુરુ કર્યો ઉપકાર' એમ કહેવાને બદલે અહીં 'પ્રભુ કર્યો ઉપકાર' એમ કહે છે, કારણ કે ગુરુ અને પ્રભુમાં હવે શિષ્યને ભેદ લાગતો નથી. ગુરુનું કૃપામૃત એક વાર પણ જેણે ચાખ્યું છે તે શિષ્ય તો એમ જ કહેશે કે ગુરુ અને પરમાત્મા એમ બે ભિન્ન પદ છે જ નહીં, ગુરુ એ જ પરમાત્મા છે. શ્રીગુરુમાં આવી પરમેશ્વરબુદ્ધિ થઈ હોવાથી સુશિષ્ય તેમની ભક્તિમાં લીન થઈ જાય છે.

પોતાને સાચા નિર્ગ્રથમાર્ગ ઉપર લાવનાર કરુણાસિંધુ સદ્દ્ગુરુના અપાર ઉપકાર પ્રત્યે શિષ્યને અંતરમાં અહોભાવ વર્તે છે. શ્રીગુરુના ઉપકારને સ્તવતાં તે કહે છે કે 'પૂર્વે કદી નહીં પ્રતીત કરેલો, નહીં જાણેલો, નહીં આદરેલો એવો સ્વરૂપપ્રાપ્તિનો -માર્ગ, આપ કરુણાસિંધુ પ્રભુની અપરંપાર કૃપાથી આ અબુધ જીવને અત્યંત સરળતાથી પ્રાપ્ત થયો. અનાદિ કાળથી હું સંસાર-અટવીમાં મારા પોતાના સ્વચ્છંદથી રખડ્યો હતો. વિષરીત ભાવો કરી મેં કર્મનો અસહ્ય ભાર મારા નિર્મળ જ્યોતિસ્વરૂપ શુદ્ધાત્માના પ્રદેશે પ્રદેશે લાઘો હતો અને પરિણામે હું ખૂબ દીન મૂઢ પામર બન્યો હતો. મારા સદ્ભાગ્યે આપ મળ્યા. આપની કૃપાથી મને સમજાયું કે આપે વિષમ ઉદયકાળની સામે પડી, પરમ આશ્ચર્યકારક સ્વવીર્ય વડે કર્મોને બાળી-પ્રજાળી, રાગ-દેષની શૃંખલાને તોડી-ફોડી, પરપરિણતિને ભસ્મ કરી છે; તેમજ સ્વરૂપની અનંત શાંતિ, અવ્યાબાંધ સુખ અને અપૂર્વ શીતળતા પ્રગટ કર્યાં છે. આપના જ્ઞાનસામર્થ્યે અને વીતરાગતાએ મને આપનું શરણ લેવા પ્રેર્યો છે. આપે મારા ચિંતનને નૂતન દિશા આપી મારી ચાલમાં વેગ પૂર્યો છે. આપના ધૈર્ય અને વીરતાના ગુણોનું દાન મેળવી, મારો પુરુષાર્થ અકલ્પ્ય રીતે વૃદ્ધિમાન થતો ગયો છે. આપની અસીમ કૃપાએ મારા અજ્ઞાનના અંધ પડદાને સળગાવી દીધો છે. મારા સ્વચ્છંદ અને પ્રમાદના કોચલાને તોડી મને મક્ત કર્યો છે. આ પામરમાં આપની દિવ્ય કરુણાના સામર્થ્યથી પ્રભુતા પ્રગટી છે. મારી પ્રત્યેક પર્યાયમાં આપશ્રીનો અસીમ ઉપકાર વેદાઈ રહ્યો છે. અનંત કાળથી જે જ્ઞાન ભવહેતુ થતું હતું, તે જ્ઞાનને જાત્યાંતર કરી આપે ભવનિવૃત્તિરૂપ કર્યું છે. તેથી હે મંગલમૂર્તિ! હે કલ્યાણમૂર્તિ! હે સદ્દ્ગુરુદેવ! આપે કરેલો ઉપકાર અમાપ છે.'

આત્માર્થી જીવને સંસારનું સ્વરૂપ યથાર્થપણે સમજાયું હોવાથી અસંસારગત ભાવો પ્રગટપણે વિદ્યમાન છે, ત્યાં તેનો ઉપયોગ રોકાય છે. તેને તેનો મહિમા જાગે છે. સંસારનું એકાંત દુઃખમય સ્વરૂપ નક્કી થયું હોવાથી અને એમાંથી છૂટવાની જિજ્ઞાસા બુલંદ બની હોવાથી, જે દ્વારા એમાંથી છુટાય એ ઉપકારી બળ પ્રત્યે તેને પ્રેમ જાગે છે. સત્પુરુષને જોઈને તેના અંતરમાં શંખનાદ થાય છે કે 'આ જ મારા ઉપકારી ગુરુ છે.' તેમની આંખોમાં તેને પોતાના ઉદ્વારની યોજના દેખાય છે અને તેથી તે તેમના શ્રીચરણોમાં અર્પિત થઈ જાય છે.

સપાત્રદશાવાન જીવ સંસારથી વિમુખ થઈ, સદ્ગુરૂની વધુ ને વધુ સન્મુખ થવાનો પ્રયત્ન કરે છે. તે સદ્ગુરની જીવનચર્યાનું, તેમની મુખમુદ્રાનું, તેમની ચેષ્ટાનું અવલોકન કરે છે અને તેમાંથી તેને આત્મહિત સાધવાનો માર્ગ મળે છે. આત્માર્થ સાધવા માટે જીવની કેવી અને કેટલી તૈયારી હોવી જોઈએ એ તેને સમજાય છે. તેને તેમના નિકટ પરિચયથી જણાય છે કે સદ્દુગુરૂ સમત્વશ્રેણીએ ડગ માંડી અબંધપરિણામી રહેવાની કળામાં પારંગત થયા છે. તેઓ પરમ શાંત દશામાં બિરાજમાન છે. તેઓ તો ચંદનથી પણ વધ શીતળ છે. કારણ કે ચંદન ભલે શીતળ ગણાય, પણ તેને જો બહુ ઘસવામાં આવે તો તેમાંથી અગ્નિ પ્રગટે છે કે જે તેના સ્વભાવથી તદ્દન ઊલટું છે. જ્યારે પરમ શીતળ એવા સદ્ગુર તો ઉપસર્ગ-પરિષહના ગમે તેવા પ્રતિકૂળ સંજોગોમાં પણ સમ, શાંત, ધૈર્યવંત જ રહે છે. સ્વભાવસન્મુખતાના બળ વડે આવી પડેલા ઉપસર્ગ, પરિષહ, અંતરાય આદિને તેઓ સમત્વભાવે વેદી લે છે. તેમને સ્વાધીન આત્મતત્ત્વની અનુભૃતિ થઈ હોવાથી, 'પરથી મને કોઈ લાભ-નુકસાન નથી' એવો તેમનો દઢ નિર્ણય પ્રત્યેક પળે જણાઈ આવે છે. તેમને જગતના કોઈ પણ પદાર્થ કે સંયોગ ઇષ્ટ લાગતા નથી. 'પરમાંથી મારે કશું પ્રાપ્ત કરવાનું છે' એવી બુદ્ધિ તેમને છુટી ગઈ છે. આત્મસુખ અને આત્મશાંતિના અમૃતરસથી પરિતૃપ્ત એવા મહાન સદ્દ્ગુરુને નથી કોઈ દુન્યવી વસ્તુની આવશ્યકતા કે નથી દુનિયાનાં કોઈ માનપાનની મહત્તા. આત્મામાં જ સંતુષ્ટ હોવાથી તેઓ નિઃસ્પૃહ છે. તેમને કોઈ પણ પ્રકારની આકાંક્ષા નથી. તેમને કોઈ ચાહના રહી નહીં હોવાથી ચિંતા. વ્યગ્રતા વિલીન થઈ ગઈ છે. તેમને સદા શાંત દશા વર્તે છે.

સદ્ગુરુની દશા અને ચેષ્ટાનાં રહસ્યોનું ફરી ફરી નિદિધ્યાસન કરવાથી સુશિષ્યને સમજાય છે કે તેઓ કેવા મનોનિગ્રહી છે. તેમને મૌન રહેવું, અમૌન રહેવું બન્ને સુલભ છે. તેઓ મૌન હોય કે વચનયોગ દ્વારા કંઈક પ્રકાશી રહ્યા હોય, તેમની આજુબાજુ શુદ્ધાત્માનું તેજ સદા વિલસતું રહે છે. તેમને કંઈ પણ કર્તવ્યરૂપ નહીં હોવાથી જે કંઈ પણ ઉદયમાં આવે છે તેટલું જ તેઓ કરે છે. તેઓ સહજપરિણામી છે, સહજસ્વરૂપી છે, સહજપણે પ્રાપ્ત ઉદય ભોગવે છે. તેઓ સહજ ભાવે વિચરતા હોવાથી કોઈ પણ ઉદય વખતે તેમનું ચિત્ત અનાસક્ત રહે છે, તેમના અંતરમાં કોઈ પણ ચીજની રેખા નથી દોરાતી. જ્યારે કોઈ ચીજને જોરથી પકડવામાં આવે છે ત્યારે ચિત્ત ઉપર તેની રેખા દોરાય છે, તેમજ કોઈ ચીજને જોરથી છોડવામાં આવે છે તોપણ ચિત્ત ઉપર તેની રેખા દોરાય છે; પરંતુ જો ન પકડવામાં આવે કે ન છોડવામાં આવે તો કોઈ પણ રેખા નથી દોરાતી. સદ્ગુરુનું ચિત્ત રેખાંકિત નથી હોતું, કારણ કે તેઓ અનાસક્ત હોય છે. અચિત્ય સુખસ્વરૂપ આત્મા તેમને સર્વ દ્રવ્યથી પ્રત્યક્ષ જુદો ભાસ્યો છે, તેથી તેઓ અસંગ થયા છે, અપ્રતિબદ્ધ થયા છે, મુક્ત થયા છે, નિર્વિકલ્પ થયા છે, પરમોત્કૃષ્ટ સ્વાનુભવગોચર પદમાં લીન થયા છે. તેઓ અંતરમાં ઠરી, નિજાનંદમાં તરબોળ થયા છે. તેઓ ચૈતન્યના આનંદમાં ઝૂલે છે.

સદ્ગુરુની આ ઉત્કૃષ્ટ દશા પ્રત્યે સુશિષ્યનું શિર સહેજે ઝૂકી જાય છે. ગુણગણના ભંડાર એવા સદ્ગુરુને જોઈને તેનું મસ્તક આપોઆપ તેમના ચરણોમાં ઝૂકી જાય છે. અશરણ એવા આ સંસારમાં ઉત્તમ શરણરૂપ સદ્ગુરુનાં દર્શન થતાં તેને અપાર આનંદ થાય છે. સદ્ગુરુના આત્મપ્રદેશોમાં વિશિષ્ટ ઘટના બનેલી હોવાથી જ્યારે તેમનાં દર્શન થાય છે ત્યારે સુશિષ્યના અસંખ્ય પ્રદેશો પરમ હર્ષથી અને પરમ ભક્તિથી ઉલ્લસી જાય છે. સદ્ગુરુનાં દર્શન કરતાં રોમાંય ઉલ્લસે છે, હર્ષાશ્રુ સરવા માંડે છે, કંઠ ગદ્ગદ થઈ જાય છે, સમસ્ત શરીર પુલક્તિ થઈ જાય છે અને દેહભાન કથંચિત્ વિસ્મૃત થઈ જાય છે. તેને અત્યંત ઉલ્લાસ આવે છે. તે સાત્ત્વિક આનંદને અનુભવે છે અને સંસારનાં સર્વ દુઃખો ભૂલી જાય છે.

સદ્ગુરુ ભગવંતમાં પ્રગટ થયેલા શાંતિ, આનંદ, નિઃસ્પૃહતા, અંતર્મુખતા, નિર્લેપતા આદિ દિવ્ય ગુલો દષ્ટિગોચર થાય છે ત્યારે સુશિષ્યને પોતાની ક્ષતિઓ જણાયા વિના રહેતી નથી. તેમની મહાનતા સમજાય ત્યારે પોતાની પામરતા પ્રતીત થાય છે. અસંગ, ઉદાસીન, અંતરમગ્ન, બોધિસમાધિમય, અલૌકિક, અચિંત્ય એવી સદ્ગુરુની આત્મદશાની ઝાંખી થતાં સુશિષ્યને સદ્ગુરુ પ્રત્યે બહુમાન જાગે છે અને પોતાની મોહાધીન, પામર દશા અત્યંત ખૂંચે છે. તેનું સમસ્ત માન ગળી જાય છે. 'અહો! સદ્ગુરુ પ્રભુ ક્યાં અને હું ક્યાં?' એવો ભાવ જાગતાં સ્વચ્છંદ, મિથ્યા આગ્રહ, અહંકારાદિ તમામ ભાવ ખરી પડે છે, ઓગળી જાય છે. ચિત્તમાં એમ જ રહે છે કે 'પ્રભુ કેવા મહાન છે! હું તો તેમની ચરણરજ થઈને રહું તોપણ બસ છે!' તે પોતાનાં દોષો અને નબળાઈઓ દૂર કરવા માટે અને તે મંગળકારી મૂર્તિમાં દર્શિત થતા ગુણોની પ્રાપ્તિ માટે વિવિધ પ્રકારે પ્રાર્થના, વિનયાદિ કરે છે. તે સદ્ગુરુના સ્વરૂપનો યથાર્થ

પરિચય કરી, તેમનું અવલંબન લઈ તે રૂપ થવાની ભાવના ભાવે છે. જેમ દ્રૌપદીના ચીરહરણનું ચિત્ર જોતાં સહાનુભૃતિનો, ઝાંસીની રાણીનું ચિત્ર જોતાં શૌર્યનો, દુશ્મનને જોતાં શત્રુતાનો, કામિનીને જોતાં કામનો, નિર્દોષ બાળકને જોતાં વાત્સલ્યનો ભાવ વિના પ્રયાસે સ્ફુરી આવે છે; તેમ સદ્ગુરુની શાંત મૂર્તિને નીરખતાં અંતરમાં શાંત ભાવનું સહેજે સ્ફુરણ થાય છે. આમ, જીવ શાંતતાની મૂર્તિ એવા સદ્ગુરુનો પરિચય કરી, તેમનામાંથી પ્રેરણા મેળવી, પ્રબળ પુરુષાર્થથી પોતાનું શાંત સ્વરૂપ પ્રગટાવી શકે છે. સદ્દ્ગુરુની અદ્ભુત દશાનું અવલંબન લેતાં તેને ઉત્તમોત્તમ ફળ પ્રાપ્ત થાય છે.

જેઓ સર્વ અજ્ઞાનનો નાશ કરી સર્વ ભયથી મુક્ત થયા છે, જેઓ જીવન્મુક્ત બની વિચરી રહ્યા છે, જેમની વિદેહી દશા તેમની વીતરાગી મુખમુદ્રામાં ઝળહળી રહી છે, જેમણે દેહધારીપણું વિસારી અશરીરી ભાવપણે આત્મસ્થિતિ પ્રગટાવી છે એવા પરમપ્રેમમૂર્તિ, આનંદમૂર્તિ, ચૈતન્યમૂર્તિ એવા શ્રીગુરુની દશા અવર્ણનીય છે. પ્રચુર આનંદની સાક્ષાત્ અમીમય મૂર્તિની શોભા વર્ણવવા સર્વ ભાષા અપૂર્ણ નીવડે છે. શ્રીગુરુની શાંત, વીતરાગસ્વરૂપ, જ્ઞાનસ્થિરતારૂપ અદ્ભુત દશાનું વર્ણન શબ્દાતીત હોવાથી શિષ્યના મુખમાંથી માત્ર 'અહો! અહો!'ના અશ્વર્યોદ્દ્ગાર સરી પડે છે. સદ્દગુરુની દશાની પ્રશંસા કરતાં તે 'અહો! અહો!' બોલી ઊઠે છે. શ્રીમદ્ જ્ઞાનીનો મહિમા ગાતાં લખે છે —

'અહો ચેતન! અહો તેનું સામર્શ્ય! અહો જ્ઞાની! અહો તેની ગવષેણા! અહો તેમનું ધ્યાન! અહો તેમની સમાધિ! અહો તેમનો સંચમ! અહો તેમનો અપ્રમત સ્વભાવ! અહો તેમની પરમ જાગૃતિ! અહો તેમનો વીતરાગ સ્વભાવ! અહો તેમનું નિરાવરણ જ્ઞાન! અહો તેમના ચોગની શાંતિ! અહો તેમના વચનાદિ ચોગનો ઉદય!'

'શ્રી ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર'માં પણ આવે છે કે વૃક્ષ નીચે ધ્યાનમુદ્રામાં વિરાજતા શ્રી અનાથી મુનિને જોઈને, તેમનાથી અત્યંત પ્રભાવિત થયેલા રાજા શ્રેણિક બોલી ઊઠે છે - 'અહો વર્ણ! અહો રૂપ! અહો આર્યની સૌમ્યતા! અહો ક્ષમા! અહો નિર્લોભતા! અહો ભોગની અસંગતા!' મુનિની આવી મુદ્રા જોઈને રાજા શ્રેણિકના મુખેથી 'અહો! અહો!' એવા ઉદ્દગારો સ્વતઃ સરી પડે છે. ર

'अहो! वण्णो! अहो! रूवं!, अहो! अज्जस्स सोमया! । अहो! खंती! अहो! मुत्ती!, अहो! भोगे असंगया! ।।'

નોંધ ઃ શ્રી અત્તાથી મુનિના ચરિત્ર માટે જુઓ - 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૬૦-૬૩ (મોક્ષમાળા, શિક્ષાપાઠ-૫,૬,૭)

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૮૨૧ (હાથનોંધ-૨, ૧૧)

૨- જુઓ : 'શ્રી ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર', અધ્યયન ૨૦, ગાથા ૬

જ્યારે મનુષ્ય કોઈ અસાધારણ રૂપ, જ્ઞાન, શક્તિ જોઈ એનાથી પ્રભાવિત થઈ જાય છે અને તેના માટે એનું વર્શન કરવું અશક્ય બની જાય છે, ત્યારે તેના મુખમાંથી આશ્ચર્યકારક ઉદ્ગારો સરી પડે છે. પ્રસ્તુત ગાથામાં '**અઢો'** શબ્દ બે બેના જોડકામાં યાર વાર પ્રયોજવામાં આવ્યો છે. પહેલું જોડકું શ્રીગુરુની દશા માટે પ્રયોજવામાં આવ્યું છે અને બીજું જોડકું શ્રીગુરુના ઉપકાર માટે પ્રયોજવામાં આવ્યું છે.

સંસારથી તારનાર એવા સદ્ધર્મનો નિષ્કારણ કરુણાથી જેમણે ઉપદેશ કર્યો છે તે સદ્ગુરુનો ઉપકાર અમાય છે. જીવને સંસારમાં અટકી રહેલો જોઈને સદ્ગુરુને કરુણા આવે છે અને તેઓ તેને અનંત અને અપાર સંસારથી પાર પામવા પુરુષાર્થ કરવા પ્રોત્સાહિત કરે છે. તેઓ એકાંત અને અનંત શોકરૂપ - દુઃખપ્રદ સંસારમાં મોહિની ન આણતાં અજ્ઞાનથી નિવૃત્ત થવાની પ્રેરણા કરે છે. તેઓ જીવને વાત્સલ્યથી આત્મહિતનો માર્ગ દર્શાવે છે, સ્વાનુભૂતિની શીખ આપે છે. કરુણાસાગર સદ્ગુરુ બોધદાન કરી શિષ્યને કૃતાર્થ કરે છે.

વરસાદ તો વર્ષા ઋતુમાં જ અને તે પણ ન્યૂનાધિક માત્રામાં આવે છે, પરંતુ સદ્વુરુની કરુણાની અમૃતવર્ષા તો પ્રત્યેક ઋતુમાં - બારે માસ અને વિપુલ માત્રામાં વરસે છે. સૌથી વિરલ વાત તો એ છે કે કરુણાની અસ્ખલિત ધારા વરસાવતા હોવા છતાં તેઓ તો અત્યંત નિષ્કામ - નિઃસ્વાર્થ જ હોય છે. કરુણાના બદલામાં તેમને જગતસુખની કે માનપાનની કોઈ ઇચ્છા હોતી નથી. તેમને ક્યારે પણ કોઈ અપેક્ષા નથી હોતી. તેમની કરુણા અસીમ, બિનશરતી અને અપેક્ષાવિહીન હોય છે. તેમની વીતરાગતામંડિત કરુણા એક તરફ તેમને સર્વથી અસ્પૃષ્ટ રાખે છે, તો બીજી તરફ તે જીવને તેના દોષોનું ભાન કરાવી, એ દોષોથી મુક્ત થવાની દિવ્ય પ્રેરણા તથા માર્ગદર્શન આપી તેનું કલ્યાણ કરે છે. કોઈ જીવ આત્મસ્વરૂપ પામે, માત્ર એ જ હેતુથી તેમની ઉપદેશરૂપ વાણી વહે છે. નિઃસ્વાર્થ પરોપકારના વટવૃક્ષ, નિષ્કામ સ્નેહના દાતાર, નિર્લેપતાની જીવંત મૂર્તિ એવા સદ્વુરુના ગુણોનો મહિમા અપાર છે. શ્રીમદ્દ લખે છે –

'જે સત્પુરુષોએ જન્મ, જરા, મરણનો નાશ કરવાવાળો, સ્વસ્વરૂપમાં સહજ અવસ્થાન થવાનો ઉપદેશ કહ્યો છે, તે સત્પુરુષોને અત્યંત ભક્તિથી નમસ્કાર છે. તેની નિષ્કારણ કરુણાને નિત્ય પ્રત્યે નિરંતર સ્તવવામાં પણ આત્મસ્વભાવ પ્રગટે છે, એવા સર્વ સત્પુરુષો, તેના ચરણારવિંદ સદાય હૃદયને વિષે સ્થાપન રહો!'

જેમની દિવ્ય વાણી જન્મ, જરા અને મૃત્યુની પેલે પાર લઈ જઈ પોતાના સહજાનંદસ્વરૂપમાં સ્થિર કરાવનારી છે, તે સત્પુરુષોને ત્રિકરણ યોગે નમસ્કાર છે. ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છઠ્ઠી આવૃત્તિ, પૃ.૩૯૫ (પત્રાંક-૪૯૩, 'છ પદનો પત્ર') અનંતદુઃખરૂપ સંસારમાંથી અનંતસુખરૂપ મોક્ષ પ્રાપ્ત કરાવનારો બોધ આપીને મહાન ઉપકાર કરનારા સત્પુરુષોને પરમ ભક્તિભાવે નમસ્કાર છે. પરમ કૃપા કરી, અમૃત વયનો પ્રકાશી, પરમ શાંતિનો માર્ગ સમજાવી, અનંત કાળથી ભિડાયેલાં અંતરનાં દ્વારો ઉઘાડનારા પરમ ઉપકારી, કૃપાસાગર સત્પુરુષોને પરમ પ્રેમે નમસ્કાર છે.

વળી, આ અમાપ ઉપકાર સત્પુરુષો કોઈ પણ બદલાની સ્પૃહા વિના, નિષ્કારણ કરુણાથી પ્રેરિત થઈને કરે છે કે જે ઉપકારને સંભારતાં પણ આત્મસ્વભાવ પ્રગટે છે. જન્મ-જરા-મરણનો નાશ કરવાવાળા અને સ્વસ્વરૂપમાં સ્થિર કરાવનાર ઉપદેશ આપનારા સત્પુરુષો સ્વપરકલ્યાણક જીવન વ્યતીત કરતા હોવાથી સર્વ જીવો તરફ કેવળ નિષ્કારણ કરુણાભાવવાળા હોય છે. તેમની નિષ્કારણ કરુણા પ્રત્યે નિરંતર સ્તવન, કીર્તન, પૂજન, આદર, સત્કાર, બહુમાન આદિ વિવિધ ભાવો સહિત વર્તવાથી જીવને વિશુદ્ધ ભાવોની પ્રાપ્તિ થાય છે અને અનુક્રમે શુદ્ધ સ્વભાવ પ્રગટ થાય છે. આવા નિષ્કારણ કરુણાના ધારક સર્વ સત્પુરુષોના ચરણારવિંદ સદા દૃદયને વિષે સ્થાપન રહો.

સદ્ગુરુ નિષ્કારણ કરુણાથી ઇચ્છે છે કે જીવ વિભાવને છોડી શાશ્વત સુખમય સ્વભાવમાં રમણતા કરે. તેઓ અખૂટ ધીરજપૂર્વક જીવમાં મૂળગત પરિવર્તન લાવવાની પ્રક્રિયા શરૂ કરે છે. તેઓ તેને અપૂર્વ સમજણ તથા માર્ગદર્શન આપે છે. સદ્ગુરુ શિષ્યની દશાને કેન્દ્રમાં રાખીને માર્ગદર્શન આપે છે. તેઓ બોધ આપતી વખતે શિષ્યને કેન્દ્રમાં રાખે છે. તેની દશા અને તેના ઉત્સાહને નજરમાં રાખીને તેઓ બોલે છે. જો તેઓ પોતાને કેન્દ્રમાં રાખીને બોલે તો શિષ્યને તે સમજાય નહીં અને તેથી શિષ્ય સાથે તેમનો કોઈ પણ પ્રકારનો સંબંધ બંધાય નહીં. જ્યાં સુધી શિષ્યની સાથે સંબંધ ન જોડાય, ત્યાં સુધી તેનું કલ્યાણ થઈ શકે નહીં. તેથી શિષ્ય જ્યાં છે ત્યાંથી તેઓ તેનો હાથ પકડે છે અને ત્યાંથી જ બધી સમસ્યાઓને ઉકેલવાની શરૂઆત કરે છે. સદ્દ્ગુરુનું માહાત્મ્ય એવું છે કે તેઓ શિષ્યની ભૂમિકા ઉપર આવતા નથી, પણ પોતે એ ભૂમિકા સુધી ઝૂકીને, શિષ્યની સાથે રહીને, તેની સાથે સંબંધ બાંધીને તેને ધીમે ધીમે ઉપર ચઢાવતા જાય છે. એક બાજુ તેઓ પોતાની ઊંચાઈ તો જાળવી જ રાખે છે અને બીજી બાજુ શિષ્યની ભૂમિકા સુધી પહોંચીને તેને ઉપર ચઢાવે છે.

શિષ્યને ઘડવા માટે સદ્દ્ગુરુ અપાર શ્રમ લે છે. શિષ્યને ઘડવો એ કંઈ મૂર્તિ સર્જવા જેવું સહેલું કાર્ય નથી. શિષ્યને ઘડવા માટે તો અદ્ભુત ધૈર્ય જોઈએ. મૂર્તિકાર મૂર્તિ બનાવે તો પથ્થર વચ્ચે ઝંઝટ ઊભી કરતો નથી. તે સમર્પિત રહે છે. પણ સદ્દ્ગુરુએ જડ પથ્થરમાંથી નહીં પણ જીવંત વ્યક્તિમાંથી પ્રતિમા સર્જવાની હોવાથી તેમનું કાર્ય અત્યંત વિકટ છે, અખૂટ ધૈર્ય માંગી લે છે. તેઓ જ્યારે શિષ્યને ઘડે છે ત્યારે શિષ્ય અનેક સમસ્યાઓ ઊભી કરે છે. તેના સ્વચ્છંદ, કષાય, પ્રમાદ, ઇન્દ્રિય- લોલુપતા વગેરે દોષો ખૂબ દખલગીરી કરે છે. ક્યારેક તો શ્રીગુરુ કંઈક કહે અને શિષ્ય કંઈક જુદું સમજે એવું પણ બને છે. બન્નેનાં દષ્ટિબિંદુ જ જુદાં હોવાથી આમ બને છે, તેથી શિષ્ય પોતાનો આશય સમજી શકે એ ભૂમિકા સુધી તેને લાવતાં શ્રીગુરુએ ખૂબ ધીરજ રાખવી પડે છે. શ્રીગુરુ અત્યંત ધૈર્યવંત હોય છે. સદ્દ્યુરુનું બીજું નામ જ છે 'અનંત ધીરજ'!

રૂપાંતરણ લાવવા માટે શ્રીગુરુ શિષ્યમાં મોટી તોડફોડ કરે છે. શ્રીગુરુ અહંકાર નિર્મૂળ કરવાનું કાર્ય શરૂ કરે છે ત્યારે શિષ્યને ખૂબ પીડા થાય છે, કારણ કે શિષ્યનો અહં પોતાનું મૃત્યુ સહન કરી નથી શકતો. જેટલો અહં વધુ, તેટલી પીડા વધુ. શિષ્ય આ તોડફોડ અને તેનાથી થતી પીડા માટે તૈયાર નથી હોતો. તેને ખબર નથી હોતી કે તેના અભિપ્રાયો તોડી નાંખવામાં આવશે, તેના સિદ્ધાંતો બદલી દેવામાં આવશે, તેના આગ્રહો ઝૂંટવી લેવામાં આવશે, તેના સ્વચ્છંદ-પ્રમાદ બાળી મૂકવામાં આવશે. તેથી તે આટલી બધી તોડફોડ થાય ત્યારે ફરિયાદ કરે છે કે 'હું તો ગુરુ પાસે કંઈક બનવા આવ્યો હતો, તૂટવા નહીં. તેમણે તો તોડફોડ શરૂ કરી. હું સુખી થવા આવ્યો હતો, પણ તેમણે તો દુઃખી કરી મૂક્યો!' તે સમજતો નથી કે જેની તૂટવાની તૈયારી નથી હોતી, તે શિષ્ય નથી બની શકતો. સર્જનની યથાર્થ પ્રક્રિયા તે જાણતો નથી. સર્જનની પ્રક્રિયામાં તૂટવું એ એક આવશ્યક અંગ છે. મૂર્તિ સર્જવાની પ્રક્રિયામાં તૂટવું અર્થાત્ અનાવશ્યક ભાગનું દૂર થવું એ અનિવાર્ય છે. પીડા તો થશે, પરંતુ નવસર્જનનો યમત્કાર પણ ત્યારે જ થશેને?

સદ્ગુરુ તો બહ્યા છે. બહ્યા એટલે સર્જનહાર. તેઓ શિષ્યમાં નવસર્જનનું કાર્ય કરે છે. શિષ્ય ઉપર કામ કરતાં શિષ્ય ગમે તેટલાં તોફાન કરે તોપણ તેઓ અકંપ રહે છે. અનંતગુણિનધાન સદ્ગુરુ શિષ્યની ગમે તેવી અવળચંડાઈથી પણ કંપાયમાન નથી થતા, કોપાયમાન નથી થતા અને શિષ્યના કલ્પાણનું કાર્ય ચાલુ જ રાખે છે. શિષ્ય ગમે તે કરે તોપણ તેઓ તેને પાછો પકડી લાવી, ઝાલી રાખી, શિષ્યમાં નવસર્જનનું કાર્ય પૂરું કરીને જ રહે છે.

શિષ્ય સદ્ગુરુ પાસે જાય પછી તે જે અવસ્થામાં જીવતો હોય તે અવસ્થા બદલાયા વિના રહે જ નહીં. શિષ્ય સદ્ગુરુ પાસે જાય છે ત્યારે તે જેવો હતો તેવો જ તે કદાપિ રહી શકતો નથી. તેનામાં આમૂલ પરિવર્તન અવશ્ય થાય છે. સદ્ગુરુ પાસે જવું એટલે પરિવર્તન - નવનિર્માણ માટે તૈયાર થવું. પોતાની જાતને તોડવી પડશે, નવી બનાવવી પડશે. ઘાટ ખરાબ છે તેથી પોતાની જાતને ગાળી નાખવી પડશે. પોતાને નવેસરથી ઢાળી, એક નવા ઘાટનું નિર્માણ કરવું પડશે. પોતે બેડોળ છે તો હથોડો ખમવો પડશે.

શિષ્યની બેડોળતા દૂર કરી સુંદર ઘાટ આપનાર સદ્યુરુને આ બાબતમાં કુંભાર સાથે સરખાવી શકાય. માટીમાંથી પાત્ર બનાવતી વખતે કુંભાર પોતાનો એક હાથ અંદરની તરફ ધરી રાખી આધાર આપે છે અને બહારમાં બીજા હાથથી ટપલાં પણ મારતો રહે છે. આ રીતે સદ્યુરુ પણ બન્ને કાર્ય સાથે કરે છે. અલ્પ સમજવાળાને કુંભારનો અંદર રહેલો હાથ દેખાતો નથી, તેથી તેને એમ લાગે છે કે કુંભાર માત્ર ટપલાં મારીને જ ઘાટ ઘડી રહ્યો છે. કાચા શિષ્યને માત્ર સદ્યુરુની ટકોર જ દેખાય છે અને તેથી તે નારાજ થઈ જાય છે. સાચા શિષ્યને જ્યારે સદ્યુરુ ટકોર કરે છે ત્યારે તેમનામાં તેને તારણહારનાં દર્શન થાય છે. તે આ ટકોરથી નારાજ થતો નથી. જેને આત્મકલ્યાણ કરવું જ છે, તે તો સદ્યુરુની ટકોરને આવકારે છે. જેને સદ્યુરુ ઉપર સાચો પ્રેમ છે તે ટકોર મળતાં વિચારે છે કે 'તેઓ મારું કેટલું ધ્યાન રાખે છે! જેમ કુંભારનાં ટપલાં તે માટીનું અપમાન નથી, પણ તેનું સન્માન જ છે; તેમ સદ્યુરુદેવની ટકોર પણ મારા માટે તો ખુશીનું કારણ છે કે તેમણે મને ઘાટ ઘડવાને પાત્ર તો સમજયો!' આમ, સુશિષ્યને સદ્યુરુના મારમાં પણ મહેરનો અનુભવ થાય છે.

સદ્ગુરુ યુક્તિથી, લાગણીથી, પ્રેમથી શિષ્યના દોષો કઢાવે છે. તેમનો પ્રેમ શિષ્યને જ્ઞાનના પંથે ચઢાવી, તેને કચારિત્રમાંથી મુક્તિ અપાવે છે. તેઓ શિષ્યની સંભાળ લે છે પણ શિષ્યને પોતાના ઉપર ખોટી રીતે નિર્ભર થવા દેતા નથી. તેઓ જાણે છે કે વધુ પડતી સંભાળ અહિતકારી છે. જેમ નાની નાની વાતમાં બાળકનું વધુ પડતું ધ્યાન રાખનાર મા-બાપ પોતાના સંતાનનો વિકાસ રૂંધે છે, તેમ ડગલે ને પગલે અપાતા નિરાકરણથી પ્રારંભમાં ભલે સરળતા અનુભવાય, પણ આગળ જતાં તો તેના કારણે શિષ્યનો વિકાસ રૂંધાઈ જાય છે. જેવી રીતે કોઈને તરતા આવડતું ન હોય અને તે તરતાં શીખવનાર શિક્ષક પાસે શીખવા જાય તો સૌ પ્રથમ તો શિક્ષક તેને પાણીમાં એકલો જ ધકેલી દે છે કે જેથી તે જાતે જ હાથ-પગ હલાવીને તરતાં શીખી શકે. કોઈ સમસ્યા આવી પડે તો તેના નિરસન માટે તેઓ તૈયાર જ રહે છે, તેમજ હાથ-પગના હલન-ચલનમાં જે ભૂલ હોય તે તેઓ સુધારી આપે છે. આમ, જાતે પુરુષાર્થ કરીને તે તરણકળામાં પારંગત બને છે. સદ્દ્ગુરુ પણ કંઈક આવું જ કરે છે. સાધનાપથ ઉપર શિષ્યને જાતે જ મથામણ કરી આગળ ધપવા દે છે. કંઈ પણ સમસ્યા ઉદ્ભવે તો તેઓ તેને માર્ગદર્શન આપે છે. સદ્દગુરૂ તો શિષ્યની ત્વરિત પ્રગતિ અને સ્વતંત્ર અસ્મિતા જોવા ઇચ્છે છે. તેથી તેઓ કદાપિ તેને તૈયાર સાધનાપથ ચીંધતા નથી. સાધનાનો માર્ગ અંદરથી ખુલવો જોઈએ, બહારથી નહીં. પોતાની સાધનાની કેડી શિષ્યે પોતે જ કંડારવી પડે છે. સદ્દ્યુરુ સાધનાપથ ઉપર તેને નિરંતર વિધવિધ પ્રકારે પ્રેરણા, ઉત્સાહ, બળ આપતા રહે છે. આ રીતે શિષ્યની યાત્રા શૂન્યથી શરૂ થઈ, સદ્દ્ગુરુના પ્રતાપે સરળતાથી પૂર્ણતાને પામે છે.

આમ, સદ્ગુરુ જીવને અંધકારમાંથી બહાર લાવે છે. અંધકારનો અભાવ કરી પોતાના પ્રકાશનું સર્જન કરવામાં જીવને તેઓ સર્વ રીતે સહાયભૂત બને છે. સદ્ગુરુ તો અનંત ગુણના નિધાન હોય છે, પ્રેમસ્વરૂપ હોય છે, જ્ઞાનાવતાર હોય છે, નિષ્કારણ કરુણાના સાગર હોય છે; તો સાચો શિષ્ય કેવો હોવો જોઈએ? સુશિષ્ય થવા માટે કેવી પાત્રતા જોઈએ? સુશિષ્ય બનવા માટે જોઈએ માત્ર પોતાની પામરતાનો સ્વીકાર અને ચિત્તશુદ્ધિનો દઢ સંકલ્પ. જ્યાં પોતાની પામરતાનો પૂરી નમ્નતાથી, જેમ છે તેમ સ્વીકાર થાય છે ત્યાં શિષ્યત્વ પ્રગટી ઊઠે છે. 'ગમે તે ભોગે મારે સુધરવું જ છે' એવો દઢ સંકલ્પ થતાં શિષ્યત્વનો પ્રારંભ થાય છે. સંકલ્પ જીવની શક્તિઓને એકત્રિત કરે છે, એક ઉચ્ચ લક્ષ્યબિંદુ તરફ કેન્દ્રિત કરે છે અને જીવને સફળતાના પંથે દોરી જાય છે.

સુશિષ્ય બનવા માટે અમુક શાસ્ત્રજ્ઞાન કે અમુક ક્રિયાનિષ્ઠા ઇત્યાદિની કોઈ આવશ્યકતા નથી. શાસ્ત્રોનાં જ્ઞાન કે તપશ્ચર્યારૂપી ધનની યાદી દ્વારા જેઓ પોતાને શિષ્ય બનવાને યોગ્ય ગણે છે, તેઓ પોતાના અહંકારને જ પોષણ આપે છે અને અહંકારથી મોટી અપાત્રતા બીજી કોઈ જ નથી. અહંકારથી ભરેલો જીવ સિદ્ધત્વની યાત્રા ઉપર નીકળી નથી શકતો, જ્યારે પોતાને પામર સમજનાર જીવનો માર્ગ સરળ થઈ જાય છે. પોતાની પામરતાનો સ્વીકાર કરનાર અને સુધરવાનો સંકલ્પ કરનાર જીવના શિષ્યત્વનો શુભારંભ થઈ જાય છે. તે પોતાની જાતને સત્યની શોધ માટે સમર્પિત કરે છે.

આત્માર્થ સાધવા સિવાય જેના અંતરમાં બીજી કોઈ કામના નથી, જે એકાકી થઈને પણ આત્માને સાધવા માંગે છે, જગતમાં બીજાનો સંબંધ રહે કે ન રહે તેની જેને પરવા નથી, દુનિયા તેને માન આપે કે નહીં તેની જેને દરકાર નથી એવો આત્માર્થી જીવ અતિશય ભક્તિપૂર્વક સદ્ગુરુની વાત ઝીલે છે. તે પરમ સદ્બોધને પોતાના આત્મપ્રદેશોમાં અવધારી, તદનુસાર વર્તવાનો નિશ્ચય કરે છે. સદ્ગુરુ પાસે સાધનાની રૂપરેખા જાણી લઈ તે મંડી પડે છે. સાધનાની અંતિમ સફળતા બાબત તેને પૂરી નિઃશંકતા તો છે જ; અને સાથે સાથે સાધનાના દરેક ડગલે તથા હરેક વળાંકે સંશયાત્મકતા કે અધીરજ પણ તેને સતાવતી નથી. તેને વારે વારે સાધનાપ્રક્રિયા અંગે સદ્ગુરુ પાસે માર્ગદર્શન માટે દોડવું પડતું નથી. સદ્ગુરુ પ્રત્યેની દઢ આશ્રયભક્તિરૂપ ભૂમિનો મક્કમ આધાર પામી તે સાધનાપથ ઉપર આવતાં વિઘ્નોને સરળતાથી ઉલ્લંઘી જાય છે અને પોતાની આત્મદશાને ઊર્ધ્વ ને ઊર્ધ્વ કરતો જાય છે.

જેમના કલ્યાણમય ઉપદેશથી પોતાને સ્વસ્વરૂપની ઉપલબ્ધિ થઈ છે એવા સદ્ગુરુનો અભૂતપૂર્વ ઉપકાર તે સુપાત્ર શિષ્ય માથે ચડાવે છે. તેને આત્માનુભૂતિનો યથાર્થ માર્ગ દર્શાવનાર સદ્ગુરુ પ્રત્યે અસીમ પ્રમોદ, બહુમાન, ભક્તિ, ઉલ્લાસભાવ ઊમટે છે. તે આત્મા સમજાવનાર વીતરાગી સદ્વુરુના ઉપકારને સદૈવ પોતાના સમરાભમાં રાખે છે. પોતાના આદર્શને - પ્રેરણામૂર્તિને તે પોતાના જ્ઞાનમાં હાજર રાખી નિરંતર તેમની પૂજા કરે છે. તેને સદ્વુરુના અનુગ્રહનું સતત વેદન રહે છે. ક્યારેક તે વેદન સ્તુતિરૂપે પ્રગટ થાય છે, ક્યારેક કીર્તનરૂપે પ્રસ્ફુટિત થાય છે, તો ક્યારેક અશુઓરૂપે વહેવા માંડે છે.

શિષ્યના સમગ્ર વ્યક્તિત્વમાં સદ્દ્ગુરુના ઉપકારનો જ સ્વર ગુંજે છે. તેના વ્યક્તિત્વના દરેકે દરેક અંશમાં આ ગુંજન વ્યાપી જાય છે, વિસ્તરી જાય છે. શરીરના એકેક ક્શમાં સદ્દ્ગુરુનો ઉપકાર વેદાય છે. નસોમાં વહેતી લોહીની ધારામાં સદ્દ્ગુરુનો ઉપકાર વેદાય છે. સદ્દગુરુનો ઉપકારના વેદન વિના એની નસોમાં લોહીનું ભ્રમણ થતું નથી. આવતા-જતા શ્વાસમાં સદ્દ્ગુરુનો ઉપકાર વેદાય છે. એક પણ શ્વાસ સદ્દ્ગુરુના ઉપકારના સ્મરણ વિના અંદર આવતો નથી અને એક પણ ઉચ્છ્વાસ સદ્દ્ગુરુના ઉપકારના સ્મરણ વગર બહાર નીકળતો નથી. હૃદયના દરેક ધબકારામાં સદ્દ્ગુરુના ઉપકારનું સ્મરણ હોય છે. હૃદયનો એક પણ ધબકારો સદ્દ્ગુરુના ઉપકારના સ્મરણ વિના ધબકતો નથી. માત્ર એક જ વાત, એક જ તંત - 'આ પામર ઉપર આપ પ્રભુએ અનંત ઉપકાર કર્યો છે.' બ્રહ્મચારીજી શ્રી ગોવર્ધનદાસજી લખે છે –

'સંસારમાં કોઇ ધંધે લગાડી આપે તો તેનો ઉપકાર જિંદગી સુધી યાદ કરે છે કે મને આણે આજીવિકાનું સાધન કરી આપ્યું; તો અનંત કાળથી સંસારમાં પરિભ્રમણ કરતો આવ્યો છે તે ભ્રમણ કરતો અટકાવ્યો, સદ્દગુટુના યોગથી દિશા ફરી ગઇ, કર્મબંધ કરતો હતો તેથી અટક્યો, બહિર્મુખ હતો તેથી ફરીને અંતર્મુખ થયો, તે ઉપકાર, બુદ્ધિથી માપી ન શકાય તેવો છે. આ ક્યારે મનાય? પોતાની પામરતાનું ભાન થાય ત્યારે તે પુરુષનો ઉપકાર સમજાય.'

કોઈ જીવ સર્પના ડંખથી દુ:ખમાં તરફડતો હોય, તે વખતે કોઈ સજ્જન ગારુડીમંત્ર વડે તેનું ઝેર ઉતારી આપે તો એ દુ:ખમાંથી મુક્ત કરવા બદલ તે સજ્જન પ્રત્યે તે જીવ જેમ અત્યંત ઉપકારવશ થઈ જાય; તેમ રાગાદિ કષાયોરૂપી ફૂંકાડા મારતા મિથ્યાત્વરૂપી સર્પના ડંખથી સંસારભ્રમણરૂપી દુ:ખમાં તરફડતા જીવને કોઈ સદ્દ્યુરુ જ્ઞાનરૂપી ગારુડીમંત્ર વડે સંસારભ્રમણનાં દુ:ખથી મુક્ત કરે તો તે જીવ તેમના પ્રત્યે કેટલો ઉપકારવશ થઈ જાય! આવા ઉપકારને વશ થયેલો શિષ્ય સદ્દ્યુરુને બહુમાનપૂર્વક કહે છે, 'હે પ્રભુ! અનાદિથી મારા ચૈતન્યતત્ત્વને ભૂલીને, પરમાં અને વિકારમાં જ મારાપણું માનીને હું આકુળ-વ્યાકુળ થઈ રહ્યો હતો. આપશ્રીએ કરુણા વરસાવીને વારંવાર મને પ્રતિબોધી, પરદ્રવ્ય અને વિકારથી અત્યંત ભિન્ન જ્ઞાનાનંદથી પરિપૂર્ણ ૧- બહ્યારીજી શ્રી ગોવર્ધનદાસજી, 'આત્મસિદ્ધિ વિવેચન', બીજી આવૃત્તિ, પૃ.૯૮

એવું મારું સ્વદ્રવ્ય સમજાવીને આપે મને ઉગાર્યો છે. પરમ મહિમાવંત એવું મારું અસ્તિત્વ સમજાવીને, મારો ઉત્સાહ નિજસ્વરૂપ તરફ વાળીને આપે મારા ઉપર અનન્ય ઉપકાર કર્યો છે. પરમાં અને વિકારમાં ઘૂંટાયેલી મારી એક્ત્વબુદ્ધિ ટળતાં હવે હું ચૈતન્યસ્વરૂપમાં સ્થિર થયો છું. હું મને નિત્ય ઉપયોગસ્વરૂપે જ અનુભવું છું. હવે પરદ્રવ્ય કે રાગાદિ ભાવો મારા સ્વરૂપમાં એકપણે ભાસતા નથી. આપે ભેદવિજ્ઞાનના દિવ્ય મંત્રો વડે મને સજીવન કર્યો છે. હે કલ્યાણકારી પ્રભુ! હું આપનો જેટલો ઉપકાર માનું તેટલો ઓછો છે.'

સુશિષ્યને સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થવાથી તેને સુપ્રતીતિ થઈ છે કે તેના સંસારનો અંત હવે સમીપ જ છે અને અનંત સુખનો કિનારો હાથવેંતમાં જ છે. આ દશા પ્રાપ્ત કરવામાં શ્રીગુરુનો જ પરમ ઉપકાર હોવાથી તેમના પ્રત્યે અંતઃકરણપૂર્વકની ભક્તિ અને પૂજ્યભાવથી 'અહો! અહો! ઉપકાર' એવા ઉદ્ગાર સ્વતઃ નીકળી આવે છે. શ્રીમદ્ ભાવપૂર્ણ શબ્દોમાં સદ્ગુરુના માહાત્મ્યની સ્તુતિ કરતાં કહે છે –

'અહો! સર્વોત્ફષ્ટ શાંત રસમય સન્માર્ગ -

અહો! તે સર્વોત્કૃષ્ટ શાંત રસપ્રધાન માર્ગના મૂળ સર્વજ્ઞદેવ :— 🦠

અહો! તે સર્વોત્કૃષ્ટ શાંત રસ સુપ્રતીત કરાવ્યો એવા પરમકૃપાળુ સદ્દગુટુદેવ -આ વિશ્વમાં સર્વકાળ તમે જચવંત વર્તો, જચવંત વર્તો.'^૧

સદ્ગુરુનો અનંતો ઉપકાર અને તે પણ કેવો નિઃસ્પૃહતાસભર! સદ્ગુરુ જ જીવનને સાર્થકતા બક્ષે છે. જન્મથી મૃત્યુ પર્યંતની જીવનયાત્રા એ માત્ર કર્મની ઘટના છે. જીવનયાત્રામાં કોઈ અર્થ હોતો નથી, પણ તેમાં અર્થ નિર્મિત કરવો પડે છે. આ અર્થહીન જીવનને સદ્ગુરુ પરમ અર્થ બક્ષે છે. જીવન અણઘડ રહે તો તેનું મૂલ્ય બે કોડીનું પણ નથી, પરંતુ સદ્ગુરુનો દિવ્ય સ્પર્શ મૂલ્યહીન અસ્તિત્વને અમૂલ્ય બનાવે છે. તેઓ ટાંકણા વડે જીવનને ઘડે છે અને અમૂલ્ય મૂર્તિનું સર્જન કરે છે. સદ્ગુરુરૂપી સમર્થ શિલ્પીને જીવન સોંપતાં બેડો પાર થઈ જાય છે. સદ્ગુરુ શિષ્યના અંતરના અનાદિ દારિદ્રયને મિટાવી શાશ્વત નિધાનનાં દ્વાર ખોલી આપે છે. અનાદિ પરિભ્રમણમાં અનંત દુઃખોને પામેલા શિષ્યને સદ્ગુરુ પોતાનાં અલૌકિક વચનામૃત, મુદ્રા અને સત્સમાગમનો સમર્થ આધાર આપી સંસારસમુદ્રની પાર ઊતારે છે. આવા અનંત ઉપકારી સદ્ગુરુને અત્યંત ભક્તિથી નમસ્કાર કરતાં શિષ્ય પ્રાર્થના કરે છે —

માયાના દુરંત પ્રસંગમાં પણ કેવળ જેમની ઉદાસ અવસ્થા છે, સંસારના સર્વ ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૮૩૦ (હાથનોંધ-૩, ૨૩)

હે પરમકૃપાળુ સદ્ગુરદેવ!

હર્ષ-શોકજન્ય પ્રસંગમાં પણ જેમના સમભાવની અભૂતપૂર્વ ધારા અસ્ખલિતપણે વહેતી રહે છે એવા આપને હૃદયની ભાવભીની ભક્તિથી વંદના હો!

હે પ્રભુ! આપ તો અસંગ છો, ચૈતન્યમાં લીન છો; છતાં પણ પરમ કારુણ્યવૃત્તિથી મારું કલ્યાલ કરવા, મારો ઉદ્ધાર કરવા આપે અનંત કૃષા કરી આપની અંતરંગ દશાનું મને દર્શન કરાવ્યું. મારા આત્મવિકાસનો પંથ મને સુરેખપણે દોરી બતાવ્યો. આપે મને પ્રેમથી, વાત્સલ્યથી, મૃદુતાથી, ધૈર્યથી અમૂલ્ય બોધ આપ્યો. દૂર-સુદૂર ભાગતી મારી ચેતનાનું આપ સમર્થ પ્રભુએ સમીપીકરણ કર્યું. આપના અપ્રતિમ ચૈતન્યના પ્રબળ ધક્કાથી, આપે પ્રેરેલ ઉત્સાહ અને શૂરવીરતાથી બહિર્મુખ એવો હું અંતર્મુખ થયો. ગગન જેવા અસીમ સ્વરૂપમાં વિહરનાર, બાહાભાવનિરપેક્ષ એવા આપના ગુણાતિશયપણાથી, સમ્યક્ચારિત્રથી, પરમ જ્ઞાનથી, પરમ શાંતિથી, પરમ નિવૃત્તિથી મારી અશુભ વૃત્તિઓ પરાવર્તિત થઈ, શુભ ભાવને પામી અંતે સ્વરૂપ તરફ વળી. આપે મને આત્મજ્ઞાન પમાડી, ઉચ્ચ દશાએ લાવી મારા ઉપર અલૌકિક, અશ્ચર્યકારક, અદ્ભુત ઉપકાર કર્યો છે. અહો! પડવાના ભયંકર સ્થાનકે મને સાવચેત કરી, તથારૂપ સામર્થ્ય બક્ષી, આ દાસનો આત્મમહેલ રચવામાં આપ અચિત્ય, અકલ્પ્ય, અવર્ણનીય આલંબનરૂપ બન્યા છો. આપની આ અપરંપાર કૃપા યાદ આવતાં રોમાંચિત થઈ જવાય છે. અહો! શું એ ઉપકાર!! અહો! ધન્ય એ ઉપકાર!!!

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'અલો! અલો! શ્રી સદ્ગુરુ, આ અપૂર્વ શુભ જ્ઞાન; શોભા અપરંપાર છે! જોતાં આવ્યું ભાન. અચરિજકારી આપ છો, કરુણાસિંધુ અપાર; સ્વયંભૂરમણ સમુદ્રથી, અધિક દયા ભંડાર. નિષ્કારણ પરમાર્થને, સમજાવી સાક્ષાત; આ પામર પર પ્રભુ કર્યો, ભાવકૃષા વરસાત. પતિત હું પાવન થયો, આશ્રય પામી સાર; પથ્થર નવપલ્લવ કર્યો, અલો! અલો! ઉપકાર.' વ

* * *

૧- 'રાજરત્ન_ુપૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૫ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૯૩-૪૯૬)

रेडं अल भरणा के भर्डं, कात्माण को राम, ते तो अलको कालिमों, बन्दें भरवणाधीन. ગાથા ૧૨૪માં સુશિષ્યે કરુણાસિંધુ એવા સદ્દગુરુના અમાય ઉપકાર પ્રત્યે કૃતજ્ઞપણે અહોભાવ દર્શાવ્યો છે. સદ્દગુરુની ઉચ્ચ આત્મદશા તથા તેમના પરમ ઉપકારને વાચા દારા કહી શકાય તેવાં નહીં હોવાથી શિષ્યે 'અઢો! અઢો!' શબ્દ કહીને આશ્ચર્યયુક્ત અદ્ભુતતાના ભાવ પ્રદર્શિત કર્યા.

શ્રીગુરુના પરમ ઉપકારનો પ્રત્યુપકાર વાળવાનો ભાવ સુપાત્ર શિષ્યને થતાં, તે હવે ઉપકારનો બદલો વાળી શકવાની શક્યતા ઉપર વિચાર કરે છે. શ્રીગુરુના પાવન ચરણમાં આત્મનિવેદન કરતાં તે કહે છે –

ું પણચરણ કને ધરું, આત્માથી સૌ હીન; આથા તે તો પ્રભુએ આપિયો, વર્તું ચરણાંધીન.' (૧૨૫)

હું પ્રભુના ચરણ આગળ શું ધરું? (સદ્ગુરુ તો પરમ નિષ્કામ છે; એક અર્થ નિષ્કામ કરુણાથી માત્ર ઉપદેશના દાતા છે, પણ શિષ્યધર્મે શિષ્યે આ વચન કહ્યું છે.) જે જે જગતમાં પદાર્થ છે, તે સૌ આત્માની અપેક્ષાએ નિર્મૂલ્ય જેવા છે, તે આત્મા તો જેણે આપ્યો તેના ચરણસમીપે હું બીજું શું ધરું? એક પ્રભુના ચરણને આધીન વર્તું એટલું માત્ર ઉપચારથી કરવાને હું સમર્થ છું. (૧૨૫)

ભાવાર્થ પોતાના ઉપર કરેલા અલ્પ ઉપકારને પણ ભૂલતા નથી અને યથાશક્તિ પ્રત્યુપકાર વાળવાના ભાવ સેવે છે તથા તે ભાવને કાર્યાન્વિત કરવા તત્પર રહે છે. અહીં શિષ્ય વિનયી છે, વિવેકી છે, સુપાત્ર છે, ઉચ્ચદશાવાન છે; તેથી શ્રીગુરુએ કરેલા અનાપ ઉપકારનો પ્રત્યુપકાર વાળવાનો ભાવ તેને સહેજે થાય છે. તે વિચારે છે કે 'શ્રીગુરુએ નિષ્કારણ કરુણાથી મારા ઉપર અનંત ઉપકાર કર્યા છે. મને જ્ઞાનદાન આપી કૃતાર્થ કર્યો છે. અજ્ઞાનથી અંધ એવા મને ઉપદેશરૂપ અંજન આંજી દેખતો કર્યો છે. મારા અમયદિત સંસારને મયદિત કર્યો છે. આવા પરમ ઉપકારી શ્રીગુરુના ચરણસમીપે દક્ષિણારૂપે હું શું મૂકું તો ઉપકારનો બદલો વાળી શકાય? હું શ્રીગુરુના ચરણકમળમાં શું ધરું?' વ્યવહારમાં કોઈએ કોઈને કંઈ પણ વસ્તુ આપવી હોય તો તે તેના હાથમાં આપવામાં આવે છે, પણ અહીં શિષ્ય શ્રીગુરુને પરમેશ્વરરૂપ માનતો હોવાથી ભક્તિથી તેમના ચરણમાં કંઈક ધરવાનો ભાવ કરે છે. આ ભાવ શ્રીગુરુ પ્રત્યેનો તેનો પૂજ્યભાવ દર્શાવે છે. 'શ્રીગુરુના ચરણકમળમાં હું શું અર્પણ કરી શકું?' તેનો વિચાર કરતાં શિષ્યને

લાગે છે કે જગતના સર્વ પદાર્થો આત્મા કરતાં હીન છે, સર્વ વસ્તુઓ આત્માથી ઊતરતી છે, તેથી શ્રીગુરને આત્મા સિવાય અન્ય કોઈ પણ વસ્તુ અર્પણ થઈ શકે તેમ નથી. બીજી જ ક્ષણે જાગૃત શિષ્ય શ્રીગુરને કહે છે કે 'આપના ચરણે ધરવા યોગ્ય વસ્તુ એક આત્મા સિવાય બીજું કંઈ પણ નથી, પણ આ આત્મા તો આપે જ આપ્યો છે, આત્મસ્વરૂપની ઓળખાણ આપે જ કરાવી છે. મને તો આત્માના હોવાપણાનું ભાન પણ ન હતું. આપે જ મારી દેહાત્મબુદ્ધિ દૂર કરી આત્મદષ્ટિ કરાવી હોવાથી આપે જ મને આત્મા આપ્યો છે. મારા જીવનમાં જે અદ્ભુતતા પ્રગટી છે તે આપની જ પ્રસાદી છે. જેણે જે આપ્યું હોય તેને એ જ પાછું આપવું અયોગ્ય છે, તેમાં પણ પ્રસાદીનું પાછું વાળવું તો બહુ મોટો અવિનય છે.'

વ્યવહારમાં કોઈએ કોઈ ચીજ આપી હોય તો બદલામાં તે જ ચીજ તેને પાછી આપવામાં આવતી નથી, કારણ કે તેમ કરવામાં વિશેષતા શી? આ કારણે બદલામાં યથાશક્તિ બીજી કોઈ ચીજ આપવામાં આવે છે. તેમ અહીં સુશિષ્ય કહે છે કે 'મારી પાસે સર્વશ્રેષ્ઠ માત્ર એક આત્મા છે કે જે આપને અર્પણ કરી શકાય, પરંતુ તે પણ આપે આપેલો છે, તેથી આપના ચરણે આત્મા ધરવા ઇચ્છું તો તે ઠીક નથી લાગતું. હવે તો એક જ ઉપાય છે કે આપના ચરણને આધીન વર્તું. મન-વચન-કાયાથી પૂર્ણ રીતે આપની આજ્ઞામાં રહું. મારી હવે પછીની સર્વ વર્તના આપની ઇચ્છા અનુસાર અપાની આજ્ઞા અનુસાર થાઓ એવી ભાવના ભાવું છું.' આમ, પ્રત્યુપકારમાં કોઈ પણ વસ્તુ ધરવાને બદલે, પરમોપકારી શ્રીગુરના ચરણોમાં તે આત્મસમર્પણ કરે છે.

વિશેષાર્થ અજ્ઞાની જીવ નિરંતર દુઃખી હોય છે. તે જન્મ લે છે ત્યારે દુઃખી થાય છે, બીમાર પડે તો દુઃખી થાય છે, વૃદ્ધાવસ્થા આવે તો દુઃખી થાય છે, મૃત્યુ દેખાય તો દુઃખી થાય છે. તે જીવનમાં દુઃખ જ દુઃખ અનુભવે છે. જે પ્રિય છે એનો વિયોગ થતો રહે છે, જે અપ્રિય છે એનો સંયોગ થતો રહે છે; ઇચ્છિત થતું નથી અને અનિચ્છિત થતું રહે છે; પ્રિયને નજીક લાવવાની કે અપ્રિયને દૂર કરવાની ઇચ્છા તેને વ્યાકુળ કરે છે; તે જે પોતાની પાસે છે એનાથી તૃપ્ત નથી થતો અને જે નથી એને પ્રાપ્ત કરવા વ્યાકુળ થાય છે; તેની જરૂરિયાતોની કોઈ સીમા નથી; તેથી જ્યારથી તે જન્મ લે છે ત્યારથી અનેક આવશ્યકતાઓની પૂર્તિ માટે તે વ્યાકુળ રહે છે.

પરદ્રવ્યો પ્રત્યેની આસક્તિના કારણે તે વ્યાકુળતાથી પીડાય છે. ચમરી ગાયનું પૂછડું ખૂબ સુંવાળું હોય છે. તેના વાળ ઝાડ-ઝાંખરામાં ભરાઈ જતાં વાળ પ્રત્યેના પ્રેમના કારણે તે ગાય ત્યાં ને ત્યાં ઊભી રહી જાય છે અને પરિણામે શિકારીના બાણથી વીંધાઈને મરણ પામે છે. તેમ અજ્ઞાની જીવ દુનિયાના પદાર્થો પ્રત્યેની આસક્તિના કારણે સંસારના પ્રસંગોમાં અટકી જાય છે અને પોતે હણાઈ રહ્યો છે,

લૂંટાઈ રહ્યો છે એનું તેને ભાન પણ પડતું નથી.

અજ્ઞાની જીવનું ચિત્ત, તેનું વર્તન, તેની દશા ઊંધા પડેલા વાંદા જેવી છે. ઊંધો પડેલો વાંદો સીધો થવા પગ કેવા હલાવે, આમથી તેમ ડોલે, તરફાડેયાં મારે. કેવી પરાધીન, લાચાર દશા! એને પગ છે પણ ચાલી શકતો નથી, શક્તિ છે પણ કશું કરી શકતો નથી. એની આસપાસની દુનિયાને ઊંધી જ જુએ છે, કારણ કે પોતે ઊંધો પડેલો છે; તેમ અજ્ઞાનીને પણ દુનિયા ઊંધી દેખાય છે, કારણ કે તેની દષ્ટિ ઊંધી છે. તે મૂંઝાયેલો રહે છે. જેમ ઊંધા વાંદાની પ્રવૃત્તિ સતત ચાલુ રહે છે, તે શાંત રહેતી જ નથી, જોરથી પગ હલાવે છે, ધમપછાડા મારે છે; તેમ અજ્ઞાની જીવ પણ શાંત રહી શકતો નથી. સતત પ્રવૃત્તિ, હિલચાલ, ધમાલ કરતો રહે છે; પણ તેનું કંઈ વળતું નથી. વાંદાની જેમ તેની પણ બધી મહેનત નિર્શક જાય છે. અત્યંત કરુણ પરિસ્થિતિ છે. ત્યાં કોઈ જીવદયાના પરિણામવાળો સજ્જન એ વાંદાને સીધો કરે છે અને એને એવી રીતે મૂકે છે કે જેથી કોઈના પગ નીચે એ કચડાઈ ન જાય. એ જ રીતે નિષ્કામ કરુણાવંત સદ્પુરુ જીવની વિપરીત દશાને સવળી કરે છે. તેની દષ્ટિ સવળી કરી, તેને યોગ્ય માર્ગદર્શન આપે છે કે જેથી તે અનંત દુ:ખમાંથી મુક્ત થાય. હવે તેની સઘળી શક્તિઓ સન્માર્ગે ન મોક્ષમાર્ગે યોજાય છે.

વસ્તુ, વ્યક્તિ, પરિસ્થિતિ સંબંધી વિપરીત માન્યતાઓના કારણે જીવ દુઃખી થાય છે. સદ્ગુરુએ આપેલા તત્ત્વબોધથી પૂર્વે બંધાયેલી માન્યતાઓ બદલાય છે. તેમના બોધના આધારે વિપરીત માન્યતાઓ પરિવર્તન પામે છે. સદ્ગુરુના બોધના આધારે જાત અને જગત સંબંધી યથાર્થ શ્રદ્ધા થાય છે. તેને જાત અને જગતનું યથાર્થ દર્શન થાય છે. સદ્ગુરુના અનુભવસિદ્ધ તત્ત્વબોધના આશ્રયે પુરુષાર્થ ઊપડતાં તેને સમ્યગ્દર્શન થાય છે.

સદ્ગુરુ જીવમાં ક્રાંતિ સર્જી દે છે. સદ્ગુરુમાં જીવને પરમાત્માની ઝલક મળે છે, વિરાટનું દર્શન થાય છે. સદ્ગુરુ પ્રત્યે દૂરથી દષ્ટિ કરતાં જીવને એમ લાગે છે કે 'તેઓ મારા જેવા જ છે, મારી જેમ જ બધું કરી રહ્યા છે', પણ પાસે જઈને જોતાં તો જાણે 'મારી અને તેમની વચ્ચે અલંઘ્ય ખાડી છે' એવું લાગે છે. સદ્ગુરુને બાહ્ય દષ્ટિથી જોતાં તેઓ સામાન્ય માનવી લાગે છે, પણ જ્યારે તેમની ઓળખાણ થાય છે ત્યારે પરમાત્મરૂપ જણાય છે. સદ્ગુરુને જોતાં જ જાણે શુદ્ધાત્માનું આમંત્રણ મળવા લાગે છે. તે આમંત્રણ જીવને આકર્ષે છે. સદ્દ્ગુરુનો પોકાર જીવને મોક્ષમાર્ગ તરફ ખેંચે છે. તેને અંદરથી મોક્ષનાં ભણકારા ઊઠે છે. તે મુક્તિનાં સપનાં જુએ છે. તે આત્મહિતને સાધવા તત્પર થાય છે. તે સંસારની આસક્તિ છોડીને ધર્મનો માર્ગ અહણ કરે છે. અસત્સંગ-અસત્પ્રસંગમાંથી, આરંભ-પરિગ્રહમાંથી તેની રૃચિ ટળે છે અને તેને સ્વાધ્યાય, જપ, તપ વગેરે ગમવા માંડે છે. પોતાના અંતરવિશ્વમાં પડેલ સ્થૂળ-સૂક્ષ્મ

દોષોથી તે અકળાઈ ઊઠે છે. ભયપ્રસંગે માતાના પાલવને વધુ જોરથી પકડી લેતા બાળકની જેમ તે મોહાસક્તિથી મૂંઝાઈને સદ્ગુરુનો આશ્રય વધુ દઢતાથી ગ્રહે છે.

સદ્ગુરુના કૃપાબળ દ્વારા જીવ પોતાના અસ્તિત્વને સાર્થક કરવા ભણી ડગ માંડે છે. સદ્ગુરુ તેને ધર્મની કળા શીખવાડે છે. સદ્ગુરુ શિષ્યને જે કહે છે, તે વાત શિષ્યની દશાને ધ્યાનમાં રાખીને, તેના અંતરરોગને પારખીને કહે છે. તેઓ શિષ્યના અંતઃકરણ સાથે અનુસંધાન કરી તેને સત્સાધન સૂચવે છે. તેનો લાભ શેમાં છે તે જોઈને તેને બોધ આપે છે. શિષ્યના અવચેતન મનમાં પડેલી અંથિઓનું કારણ તથા મારણ શોધી, તેને સાધનદશા અને જ્ઞાનદશાનાં સોપાન ઉપર આગળ ધપાવે છે. શિષ્ય જ્યાં છે ત્યાંથી તેણે પ્રથમ પગલું કઈ તરફ, કેવી રીતે ભરવું તે અંગેનો ઇશારો કરે છે. તેમના માર્ગદર્શનમાં વીતરાગતા સાથે કરુણાનો, જ્ઞાનદાન સાથે વિશિષ્ટ પ્રજ્ઞાનો અકલ્પ્ય સુમેળ હોય છે.

સદ્ગુરુ શિષ્યને માર્ગ સંબંધી સમજણ આપે છે તથા તેના સંશયો દૂર કરે છે. તેઓ સતત પ્રેરણા અને બળ પ્રદાન કરે છે. સદ્ગુરુનું જીવન અવલોકતાં શિષ્યને એવો વિશ્વાસ આવે છે અને એવો અનુભવ થાય છે કે 'મને અહીં શાંતિ અવશ્ય પ્રાપ્ત થશે.' હજુ તેને તાત્ત્વિક સુખની અનુભૂતિ તો થઈ નથી, પણ સદ્ગુરુના સમાગમમાં તેને સાત્ત્વિક આનંદની જે શીતળ લહેરી અનુભવાય છે, એનાથી તેને સ્વરૂપસમુદ્રની નિકટતાનો ભરોસો બેસે છે.

સદ્ગુરુ શિષ્યનું ઘડતર કરે છે. શિષ્યને કંઈ પણ તકલીફ આવે, મુશ્કેલી પડે તો તેઓ તરત જ મદદે દોડી આવે છે, પણ તેઓ શિષ્યને પરાધીન – પરાવલંબી નથી બનાવતા. તેઓ શિષ્યને સમસ્યાનો ઉકેલ જાતે શોધવા ઉત્સાહ આપે છે. તેઓ તેને સ્વાવલંબી બનાવે છે. શિષ્ય પડે ત્યારે સદ્ગુરુ પ્રેમથી તેની સામે જુએ છે, નેત્રથી સહારો અને સધ્યારો આપે છે કે 'હું અહીં જ છું, તું ઊઠવાનો પુરુષાર્થ કર.' સુશિષ્ય પોતાની અલ્પ શક્તિઓને કામે લગાડે છે. સદ્ગુરુના બોધથી મળેલી યુક્તિ અનુસાર પુરુષાર્થ કરે છે, સફળ થાય છે અને સદ્ગુરુ તરફ વિજયનું સ્મિત કરે છે. સદ્ગુરુ તેને બમણા વાત્સલ્યથી સ્મિત આપે છે. સુશિષ્ય આગળ ધપતો રહે છે. સદ્દ્ગુરુ પોતાનું કાર્ય ચાલુ રાખે છે. તેમને ખાતરી છે કે આગળ જતાં ભયંકર ઉદય વખતે પણ પોતાનો માર્ગ જાતે શોધી તે સફળ થઈ શકશે.

આમ, સદ્ગુરુ માત્ર ઇશારો કરે છે, જ્ઞાનપ્રકાશ આપે છે. તેઓ નકશો નથી આપતા, પ્રકાશ આપે છે. જીવન ઝરણા જેવું અસ્થિર છે. તે બાંધેલ કિનારાઓ વચ્ચે વહી રહેલો પ્રવાહ નથી. તેનો નકશો રોજ બદલાય છે, તેથી જ સદ્દ્ગુરુ નકશાને બદલે પ્રકાશ આપે છે કે જેથી જીવ જાતે રસ્તો જોઈ શકે, નક્કી કરી શકે. પરંતુ જેને સાધનાનો ઉત્સાહ નથી, પુરુષાર્થ કરવો નથી; તેને પ્રકાશ નહીં નકશો જોઈએ છે. તેને તૈયાર સૂચનો જોઈએ છે. તે સ્વયં વિચારણા કરી, વિવેક પ્રગટાવી આગળ વધવા માંગતો નથી. આવો નિર્માલ્ય જીવ ધ્યેય સુધી પહોંચી શકતો નથી. જીવે સદ્ગુરુએ આપેલ સમજણને અંગીકાર કરી વિવેક પ્રગટાવવો જોઈએ, જેથી તે સાધનામાર્ગે આગળ વધી શકે.

સદ્ગુરુ જીવને સાચી દિષ્ટે આપીને, સાધનાના દરેક વિઘ્નને ઓળંગવા માટે - જીવનના દરેક પડકારને ઝીલવા માટે તેને બળિયો બનાવે છે. તેઓ અંધની લાકડી સમાન નથી, પણ અંધને મળતી દિષ્ટે સમાન છે. લાકડી તો ક્યારેક ભૂલી જવાય કે ખોવાઈ પણ જાય. સદ્ગુરુ તો અંધને મળેલી દિષ્ટે છે, જે નિરંતર ડગલે ને પગલે સાથે રહીને માર્ગ દેખાડે છે. સદ્ગુરુએ આપેલ દિષ્ટે એ જ સાધકજીવનની ખરી મૂડી છે. શિષ્યને આવું શ્રેયસ્કારી માર્ગદર્શન આપનાર મહા ઉપકારી, નિષ્કારણ કરુણાશીલ સદ્ગુરુનો મહિમા અપરંપાર છે.

સમ્યગ્દ સ્ટિ બળદની ખરી જે વિષ્ટા ઉપર પડે તે વિષ્ટાને પણ ધન્ય કહી છે. સમ્યગ્દ સ્ટિ તિર્યંચ કે જેમનાથી કોઈ જીવ ઉપર ઉપકાર થઈ શકતો નથી, તેમની ખરી નીચેની માત્ર ધૂળ નહીં પણ વિષ્ટા પણ ધન્ય છે! સમ્યગ્દ સ્ટિ જીવનું કેવું માહાત્મ્ય છે! સમ્યગ્દ સ્ટિ જીવનું કેવું માહાત્મ્ય છે તો પછી અપાર સંસારસાગર તરી જવાનો ઉપાય બતાવનાર એવા ઉપકારી સમ્યગ્દ સ્ટિ ગુરુના માહાત્મ્યની તો વાત જ શું કરવી? અપાર એવા સંસારસાગરમાંથી તરવાનો સાચો માર્ગ બતાવનાર સદ્દગુરુનું માહાત્મ્ય અમાપ છે, અજોડ છે, અવર્શનીય છે.

પોતાને સત્પથનું ભાન કરાવી અપાર ભવસમુદ્રમાંથી ઉગારનાર શ્રીગુરુ પ્રત્યે શિષ્યને અત્યંત અહોભાવ વર્તે છે. કોઈ માણસ મધદરિયે તોફાનમાં ફસાયેલો હોય, બધે પાણી જ પાણી દેખાતું હોય, કશે પણ કાંઠો દેખાતો ન હોય, પોતે ક્યાં પડ્યો છે, કિનારો કઈ બાજુએ છે એ સમજાતું ન હોય, ડૂબી જ જવાશે એમ લાગતું હોય, ઊગરવાનો જ માત્ર લક્ષ હોય, તેવામાં હેલીકોપ્ટરમાં કોઈ વ્યક્તિ આવે અને સીડી મોકલીને કહે કે 'પકડી લે ભાઈ! હું તને ઉપર લઈ લઉં છું'; અને તેને બચાવી લે, તો તે ડૂબતા માણસને તે વ્યક્તિ પરમેશ્વર સમાન લાગે છે. તે તેમનો જેટલો આભાર માને તેટલો ઓછો છે! તેમ ભવસમુદ્રમાં ભ્રમણ કરતા સુશિષ્યનું પણ એક જ લક્ષ હોય છે કે તે આ ભવભમણમાંથી કઈ રીતે બહાર નીકળે? ત્યાં ભવસમુદ્રમાં ફસાયેલા સુશિષ્યને શ્રીગુરુ બહાર નીકળવા માટેનો ઉપાય બતાવે છે, જેને સુશિષ્ય ઉગ્ર પુરુષાર્થ સહિત ગ્રહણ કરીને બચી જાય છે; અને તે સદ્દગુરુનો આભાર માને છે. તે ઉપકારવશ ગદ્દગદ થઈ જાય છે.

શ્રીગુરુના ઉપકારનું સ્ટા કરતાં ભાવવિભોર થઈ સુશિષ્ય કહે છે કે 'હે સહજાનંદી નાથ! આપના ઉપકારનું કઈ રીતે વર્ણન કરું? આપે આપની ચમત્કારિક શૈલીથી માર્રું હૈયું ઝંકૃત કર્યું. કોઈ અજબગજબની જાદુઈ લીલાથી મારો સંસારનો પાયો હચમચાવી નાંખ્યો. આપની નિઃસ્વાર્થ સ્નેહવર્ષાથી આ સંસારરૂપી રણપ્રદેશની બળબળતી લાયમાં શીતળતાનો અનુભવ કરાવ્યો. મારો હૃદયપલટો કરાવી ધર્મનું સામાજ્ય સ્થાપ્યું. મારા અંધકારરૂપ જીવનમાં સત્સૂર્યરૂપ એવા આપના કારણે ધર્મનું સુપ્રભાત થયું. આપની એ અસીમ કૃપા માટે હું સદૈવ આપનો ઋણી રહીશ.'

સુશિષ્ય ભાવે છે કે 'આત્માને અનંત ભ્રમણામાંથી સ્વરૂપમય પવિત્ર શ્રેણીમાં લાવવો તે એવું કેવું નિરુપમ સુખ છે કે તેનો અનુભવ કરાવનાર હે પ્રભુ! આપના ચરણે હું શું ધરું? આપે મારા માટે જે જે પરિશ્રમ ઉઠાવ્યો છે તે કેવી રીતે વિસારી શકાય? એ બધું તો મારા હૃદયપટ ઉપર શાશ્વત કોતરાઈ ગયું છે. આપનું આ અનંત ઋણ હું કેવી રીતે ચૂકવી શકીશ? શેનાથી ચૂકવી શકીશ? અહો નાથ! આ અતિ અમૂલ્ય ઉપકારનો બદલો હું કઈ રીતે વાળી શકીશ? આપના માટે હું શું કરું?'

સુશિષ્યને શ્રીગુરુના અનહદ ઉપકારનું વેદન થતાં તેમના ચરણોમાં કંઈક સમર્પણ કરવાની શુભ ભાવના જાગે છે. 'ચરણે શું ધરું?' એવું મનોમંથન શરૂ થાય છે. ભારતમાં ગુરુદક્ષિણાની આ પરંપરા પ્રાચીન કાળથી ચાલી આવે છે. રાજા-મહારાજાનાં, શેઠ-શ્રીમંતોનાં અને સામાન્ય પ્રજાજનોનાં સંતાનો વર્ષો સુધી ઋષિમુનિઓના આશ્રમમાં રહી વિદ્યાસંપાદન કરતાં અને જ્યારે વિદ્યાભ્યાસ પૂર્ણ થાય ત્યારે ગુરુઆજ્ઞા લઈ ઘરે પાછા ફરતાં પહેલાં શ્રીગુરુના ચરણે ગુરુદક્ષિણા અર્પી ગુરુઋણ ચૂકવવાનો પ્રયત્ન કરતા. તે રીતે અહીં પણ શ્રીગુરુના અમાપ ઉપકારનો વિચાર થતાં સુશિષ્યને પણ ગુરુદક્ષિણા અર્પવાનો ભક્તિભાવ ઊભરાઈ આવે છે અને તેથી પૂછે છે કે 'હે પ્રભુ! ઉપકારનો પ્રત્યુપકાર વાળવા આપના ચરણ આગળ હું શું ધરું?'

શિષ્ય વિચારે છે કે સદ્દ્ગુરુને કંઈ પણ ધરવું હોય તો તે સૌથી શ્રેષ્ઠ વસ્તુ જ હોવી જોઈએ. આ જગતમાં સર્વ વસ્તુઓમાં જે શ્રેષ્ઠ હોય તે જ શ્રીગુરુને અર્પણ કરવા યોગ્ય છે અને જગતના સમસ્ત પદાર્થો જોતાં આત્માથી ચડિયાતું કંઈ જ નથી. શિષ્યની દેષ્ટિ પૂર્ણાનંદ ત્રિકાળી તત્ત્વ ઉપર હોવાથી તેને હવે આત્મા જ સર્વશ્રેષ્ઠ લાગે છે અને આત્મા આગળ બધું જ હીન જણાય છે. આત્માની ઓળખાણ થઈ હોવાથી તેને જગતની બધી વસ્તુઓ તુચ્છ લાગે છે, હીન લાગે છે. આત્માનું અનંત સુખસ્વરૂપ તેને અમૂલ્ય ભાસે છે. આત્મા પાસે સંસારના સમસ્ત પદાર્થો નિર્માલ્ય ભાસે છે.

શિષ્ય અજ્ઞાનદશામાં તો વિષયોને સુખરૂપ માનતો હતો, એને તલ્લીન થઈને ભોગવતો હતો, પણ આત્માનુભવ થતાં વિષયોમાં રહેલ તેની સુખબુદ્ધિનો નાશ થાય છે, વિષયોમાં રહેલી આદરબુદ્ધિ વિલીન થાય છે. આત્માના મહિમાવંત રસ આગળ બાહ્ય વિષયોનો રસ છૂટી જાય છે. આત્માના અચિત્ય મહિમા આગળ કોઈ વસ્તુ સુંદર લાગતી નથી. આત્માના અપરિમિત આનંદનો સ્વાદ માણ્યો હોવાથી તેને હવે બહાર કશે પણ ગમતું નથી. આનંદસ્વરૂપ એવા આત્માના અતીન્દ્રિય આનંદનો સ્વાદ ચાખ્યો હોવાથી તેને આ જગતની કોઈ વસ્તુ સારી લાગતી નથી. આત્મા સમાન સુખસ્વરૂપ અન્ય કોઈ વસ્તુ જગતમાં હતી નહીં, છે નહીં અને હશે નહીં એવું તેના લક્ષમાં આવે છે. જગતના સમસ્ત પદાર્થો આત્મરત્ન આગળ ઝાંખા છે, સર્વોત્કૃષ્ટ પદાર્થ તો કેવળ આત્મા જ છે એમ તેને અનુભવથી સમજાય છે.

શિષ્યને જગતની સર્વ વસ્તુઓ આત્માથી હીન જણાય છે, તેથી શ્રીગુરુને કંઈ પણ ધરવું હોય તો આત્મા સિવાય કોઈ પણ વસ્તુ યોગ્ય લાગતી નથી. પરંતુ તેને તરત જ વિચાર આવે છે કે 'આત્મા તો મારા પ્રભુએ જ મને આપ્યો છે. તેમણે જ મને આત્માની સમજણ આપી છે. તેમણે જ મને નિજતત્ત્વનું ભાન કરાવ્યું છે. શાશ્વત આત્મતત્ત્વની ઓળખાણ કરાવી તેમણે જ મને આત્મતત્ત્વમાં સ્થિર કર્યો છે. મારી દેહાત્મબુદ્ધિ દૂર કરી તેમણે મને આત્માનો અનુભવ કરાવ્યો છે. આમ, તેમણે જ મને આત્મા આપ્યો છે.'

શ્રીગુરુએ શિષ્યને શુદ્ધાત્માની ઓળખાણ કરાવી. તેમણે શિષ્યને તેનું સ્વરૂપ સમજાવ્યું કે 'તું તો શુદ્ધ ચૈતન્ય આત્મા છે, અસંયોગી પદાર્થ છે, નિરપેક્ષ વસ્તુ છે. જે પણ ઇન્દ્રિયો અને મનથી ગ્રાહ્ય થાય છે તે બધું તારાથી પર છે. પરવસ્તુ તારામાં નથી. ખરેખર જે તારું હોય તે તારાથી કદી જુદું ન પડે અને તારાથી જુદું પડે તે કદી પણ તારું હોય નહીં.' જ્ઞાન આત્માથી કદી જુદું નહીં પડે, કેમ કે તે આત્માથી જુદું નથી, પણ તે જ આત્મા છે. શરીરાદિ આત્માનાં નથી, એટલે તે આત્માથી છૂટાં પડી જાય છે. પહેલેથી જ છૂટાં હતાં તેથી છૂટાં પડ્યાં; એકમેક થઈ ગયાં હોત તો છૂટાં ન પડી શકત. એ જ રીતે જ્ઞાન અને રાગ પણ એકમેક થઈ ગયાં નથી, ભિન્ન સ્વરૂપે જ રહ્યાં છે, તેથી ભિન્ન પડી જાય છે.

શ્રીગુરુએ આત્માનો મહિમા ગાઈને શિષ્યને આત્મપ્રાપ્તિ માટે પ્રોત્સાહિત કર્યો. તેમણે શિષ્યને ઉત્સાહિત કરતાં કહ્યું કે 'હે ભવ્ય! તું પોતે જ ચૈતન્યપરમાત્મા છે, પરંતુ પરદ્રવ્ય અને પરભાવની રુચિમાં ઘસડાઈ જવાથી તું નિજપ્રભુતાને જાણી શકતો નથી. તારી પ્રભુતાનો સ્વીકાર કર. તું મોક્ષસ્વરૂપ છો. અનંત જ્ઞાન-દર્શન-સુખ આદિથી પરિપૂર્ણ તારું અવ્યાબાધ સ્વરૂપ છે. તું શુદ્ધ, બુદ્ધ, ચૈતન્યઘન, સ્વયંજ્યોતિસ્વરૂપ અને સુખનું ધામ છો. આનો તું વિચાર કરીશ તો તું પરમપદ પામીશ. પૂર્ણ શુદ્ધ સ્વભાવનો આશ્રય કરતાં પર્યાયમાં પણ પૂર્ણ શુદ્ધ પ્રગટશે. માટે હે જીવ! નિજસ્વભાવાકાર વૃત્તિમાં

જ તું અભિમુખ થા. હે શાર્દૂલ! તારા પુરુષાર્થને અખંડપણે જાગૃત રાખ. દેહ માટે અનંત ભવ વ્યતીત કર્યા, હવે આત્માર્થ માટે આ જીવન અર્પણ કરી દે.'

જે જીવ આત્માની ઓળખાણ કરે છે તે જ પોતાના જીવનને સફળ કરે છે, બાકીના જીવોનું જીવન નિષ્ફળ જાય છે. જીવ આત્માની ઓળખાણ કરતો નથી અને પોતાનું જીવન વેડફી નાખે છે. જીવન દરમ્યાન આત્માની સમજણ કરી લેવાની તે દરકાર પણ નથી કરતો. તે હીરા-મોતી વગેરે પારખવામાં જીવન ગાળે છે, પણ આત્માને પારખવાની દરકાર નથી કરતો. તેને પરપદાર્થને પારખતાં આવડે છે, પણ તે નિજ ચૈતન્યચિંતામણિને નથી પારખતો. તે પરની પરીક્ષા કરવામાં ઘણી હોંશિયારી બતાવે છે, પણ આત્મા વિષે તેને કંઈ જ ખબર નથી હોતી. પોતાની તેને કિંમત નથી અને બીજાની કિંમત કરવા જાય છે. તે આત્મામાં પ્રીતિ કરતો નથી અને પરમાં પ્રીતિ કરે છે. ધર્મી જીવ પરપદાર્થની પ્રીતિ છોડીને આત્માની પ્રીતિ કરે છે, જ્યારે બહિર્દષ્ટિ જીવ આત્માની પ્રીતિ કરતો નથી. તે પરની ચિંતા પોતાને ગળે વળગાડે છે. બહારની ચીજો જીવની છે જ નહીં અને તે જીવની સાથે આવશે પણ નહીં, માટે જીવે તે સર્વથી ભિન્ન એવા નિજાત્માની પ્રીતિ કરવી જોઈએ, પરનો મહિમા છોડી આત્માને જાણવામાં પોતાની વૃત્તિને લગાવવી જોઈએ.

શિષ્યને પોતાના આત્માના ઐશ્વર્યનું ભાન ન હતું. શ્રીગુરુએ તેને તેના આત્મ-ગુણરત્નાકરનું ભાન કરાવ્યું. રત્નદીપના એક રહેવાસીને રત્નોની ઓળખ ન હતી. તે બીજા દ્રીપમાં ગયો. તેના શરીર ઉપર રત્નદ્રીપના નીલમણિની રજ ચોંટી હતી. તે સરોવરમાં સ્નાન કરતો હતો ત્યારે તેના તે નીલમણિની રજના પ્રભાવથી સરોવરનું પાણી લીલા પ્રકાશથી ઝગઝગાટ કરવા લાગ્યું. આ જોઈને તેને અચંબો થયો કે વાહ! આ પાણીમાં આવો સુંદર ઝગઝગાટ ક્યાંથી આવ્યો? એવામાં એક ઝવેરી ત્યાં આવ્યો. તે નીલમણિને ઓળખી ગયો. ઝવેરીએ તેને કહ્યું કે 'અરે ભાઈ! તમારા શરીરે જે નીલમણિની ૨૪ ચોંટી છે તે ઘણી કિંમતી છે. જો તેના પ્રકાશના કારણે ૪ આ સરોવરનું પાણી કેવું શોભી રહ્યું છે! આ રજક્શ પાસે અહીંના રાજાની સમસ્ત સંપત્તિ પણ તુચ્છ છે.' ત્યારે તે માણસ આશ્ચર્ય પામ્યો કે 'અરે, આવાં રત્નોથી ભરેલા દ્વીપમાં તો હું રહું છું. અત્યાર સુધી રત્નો વચ્ચે રહીને મેં રત્નોને ઓળખ્યાં નહીં અને દીન રહ્યો! હવે દીનતા કેવી?' તેવી જ રીતે શ્રીગુરૂએ શિષ્યને કહ્યું કે 'હે ચૈતન્યપુરૂષ! તં જાગૃત થઈને તારી વસ્તુનો નિર્ણય કર. તારામાં મહાન રત્નોની ખાણ ભરેલી છે.' પરમોત્કૃષ્ટ કરુણાથી ઝરી રહેલાં સદ્દગુરુનાં સુધામય વચનોને ઝીલી લઈ, શિષ્યે તે વચનો પોતાના હૃદયસિંહાસન ઉપર પધરાવ્યાં. તે રાજી થયો, પ્રસન્ન થયો કે 'અહા! હું આવો આત્મા! મને દીનતા કેમ શોભે? મારાં નિધાનને હું ભૂલ્યો હતો. હવે

શ્રીગુરુએ મારાં નિધાન મને બતાવ્યાં છે.' શિષ્યને પોતાની શક્તિમાં વિશ્વાસ બેઠો, પોતામાં શ્રદ્ધા થઈ અને સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થઈ.

પોતાને આત્માનો અનુભવ કરાવનાર શ્રીગુરુને શિષ્ય પરમ ઉલ્લસિત ભાવે હર્ષોદ્ગારપૂર્વક કહે છે કે 'હે પ્રભુ! આપે જ મને આત્મા આપ્યો છે. આપ સિવાય મને કોણ કહેનાર હતું કે તું અંતરમાં જા. આપે જ મને આત્મામાં જવા પ્રેરણા કરી. આપે તો આત્મા સિવાય અન્ય કોઈ પણ વસ્તુ માટે મારી પસંદગીનો અવકાશ જ રહેવા ન દીધો! અંતરમાં સ્વભાવનો એવો મહિમા ઘૂંટાવ્યો, રુચિનું પોષણ અને સ્વરૂપનું ઘોલન એવું પ્રબળ કરાવ્યું કે આત્મા પ્રાપ્ત થયે જ છૂટકો! સ્વરૂપપ્રાપ્તિનો માર્ગ આપે અત્યંત સુગમ કરી દીધો અને તેથી જ આપના પ્રસાદથી હું નિજસ્વરૂપને પામ્યો છું.'

શ્રીગુરુની અપરંપાર કૃપાના સામર્થ્યથી જ શિષ્યને આત્મપ્રભુનો ભેટો થયો. શ્રીગુરુએ અધ્યાત્મની બંસરી વગાડી, અંધકારમાં ડૂબી રહેલા સત્ને પ્રકાશમાં લાવી, પ્રાણવંતો બનાવ્યો. શ્રીગુરુના પરમ પ્રતાપે શિષ્ય જડમાંથી ચૈતન્યવંત બન્યો. શ્રી કાનજીસ્વામી કહે છે –

'નમોથ્યુણં સ્તુતિમાં આવે છે કે હે પ્રભુ! આપ 'જીવદયાણં' છો. આપે જ મને જીવ આપ્યો, એમ પોતાના ગુણનો આરોપ કરીને, સદ્દગુરુને અનંત ઉપકારના કરવાવાળા કહે છે..... અનંત કાળમાં આત્મપણાનું ભાન ન હતું તે આપે જ ચથાતથ્ય બતાવ્યું, હું જક જ હતો તે જકતા પલટાવીને આપે જ મને જીવત્વ - 'આત્મા' આપ્યો. હું મને ભૂલીને પુણ્ય-પાપ-રાગાદિમાં મારાપણાની કલ્પના કરીને પરવસ્તુમાં ચેતનઘર્મ માનતો હતો, તે ભૂલ ટાળીને આત્માને એવો જાણ્યો કે હું તો શુદ્ધ, બુદ્ધ, ચૈતન્યદ્યન છું, સ્વાધીન છું, એમ સમ્યગ્જ્ઞાન થયું, તે આપની કરુણાના પ્રતાપે છે.

'હું' આત્મા બન્યો માટે આપ જ 'જીવદયાણં' છો.^{'૧}

શ્રીગુરુએ આત્મભાન કરાવ્યું - આત્મા આપ્યો. તેનો પ્રત્યુપકાર વાળવા માટે આપી શકાય એવો કોઈ પદાર્થ વિશ્વમાં છે જ નહીં, તેથી શ્રીગુરુને શું આપવું એની શિષ્ય વિચારણા કરે છે અને એ વિચારણાના અંતે, બધું શોધતાં જડી આવે છે કે જેમણે આત્મા આપ્યો તેમની જ આજ્ઞાએ ત્રણે યોગના એકત્વથી વર્તવું એ જ એક ઉચિત ઉપાય છે. મન-વચન-કાયાની એકતાથી શ્રીગુરુની આજ્ઞાભક્તિમાં અખંડપણે રહી, તેમની જ ઇચ્છાને સર્વ પ્રકારે અનુસરી, રત્નત્રયની આરાધનામાં અનુરક્ત રહેવું એમ ૧ શ્રી કાનજીસ્વામી, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચનો', આઠમી આવૃત્તિ, પૃ.૩૮૪

નક્કી કરી શિષ્ય કહે છે કે 'વર્તુ ચરણાધીન'.

શિષ્ય આત્મા આપનાર શ્રીગુરુ પ્રત્યે વિનયથી અર્પાઈ જાય છે. તે પરમ ઉપકારી શ્રીગુરુના ચરણોમાં પોતાનું સર્વસ્વ ન્યોચ્છાવર કરી દે છે. શ્રીગુરુના ચરણમાં સર્વ સમર્પણ કરીને શિષ્ય ભાવના ભાવે છે કે 'હે પ્રભુ! હું આપના ચરણે પ્રણત છું. આ ધરતી ઉપર બધું જ નશ્વર છે, અનિત્ય છે, ક્ષણભંગુર છે, નિર્માલ્ય છે. જીવન, સ્વજન, ધન - સંસારનું સર્વ અસાર છે, અશરણરૂપ છે. આપની કૃપાદષ્ટિ જ સારરૂપ છે. આપની કૃપાદષ્ટિ જ સારરૂપ છે. આપનું શરણ મારું સૌભાગ્ય છે. પારાની જેમ સરી જતું, સરકી જતું, વેરાઈ જતું, વીખરાઈ જતું મારું મન આપના બોધ વડે સ્થિર થયું છે. આપની ઇચ્છા જ મારા માટે સર્વસ્વ છે. હે નાથ! મારી બધી ઇચ્છાઓ અને યોજનાઓ છોડી દઈ મારા જીવન માટે આપની જે ઇચ્છા હોય તે હું સ્વીકારું છું. હું મારી જાતને અર્પું છું. મારું જીવન, મારું બધું જ આપને સમર્પું છું. મને આપની સાથેની સર્વકાલીન અભેદતા આપો. મારું પોતાનું અસ્તિત્વ જ ન રહો. આપને રાજી કરવામાં, આપની સર્વ ઇચ્છાને પ્રશંસવામાં, તે જ સત્ય માનવામાં મારો પ્રત્યેક સમય વીતે એવા આશીર્વાદ આપો.'

આમ, 'શું પ્રભુચરણ કને ઘરું?' એવી મૂંઝવણના ઉકેલરૂપે સુશિષ્ય 'વર્તુ ચરણાશીન'નો નિશ્ચય કરે છે, અર્થાત્ શ્રીગુરુના શરણે આજ્ઞાંકિતપણે વર્તવાની પ્રતિજ્ઞા કરે છે. જો કે સદ્દગુરુને શિષ્યના બદલાની કિંચિત્માત્ર ઇચ્છા હોતી નથી. સદ્દગુરુ તો પરમ નિષ્કામ હોય છે. માત્ર નિષ્કારણ કરુણાથી જ તેઓ ઉપદેશના આપનાર છે. આ તો શિષ્ય શ્રીગુરુનું ઋણ ચૂકવવાનો પોતાનો ધર્મ બજાવે છે.

જેમનો આત્માર્થબોધક દિવ્ય ઉપદેશ મુખકમલમાંથી નીકળતાં જ સુપાત્ર જીવને હૃદય સોંસરવો ઊતરીને તેને આત્મદર્શન પમાડે છે, શાશ્વત-અતીન્દ્રિય આનંદરસનો ભોક્તા બનાવે છે; એવા ઉપકારી પરમકૃપાળુ શ્રીગુરુ તો નિઃસ્પૃહ અને નિષ્કામ છે. શ્રીગુરુ તો નિષ્કારણ કરુણાના અખૂટ ભંડાર છે અને નાત-જાત, સંપ્રદાય, દેશ, વેશ, ઉંમર, લિંગ કે એવા કોઈ પણ લૌકિક પ્રકારને લક્ષમાં રાખ્યા વગર કેવળ શિષ્યના કલ્યાણ માટે તેમની અમૃતવાણીરૂપ ગંગા તેમના અલૌકિક દિવ્ય હિમગિરિરૂપ વ્યક્તિત્વમાંથી સહજપણે પ્રવહે છે. તેમના નિષ્કારણ ગુણાતિશયને વંદન કરતાં શ્રીમદ્ લખે છે –

'જે છ પદથી સિદ્ધ છે એવું આત્મસ્વરૂપ તે જેનાં વચનને અંગીકાર કર્યે સહજમાં પ્રગટે છે, જે આત્મસ્વરૂપ પ્રગટવાથી સર્વકાળ જીવ સંપૂર્ણ આનંદને પ્રાપ્ત થઈ, નિર્ભય થાય છે, તે વચનના કહેનાર એવા સત્પુરુષના ગુણની વ્યાખ્યા કરવાને અશક્તિ છે; કેમ કે જેનો પ્રત્યુપકાર ન થઈ શકે એવો પરમાત્મભાવ તે જાણે કંઈ પણ ઇચ્છયા વિના માત્ર નિષ્કારણ કરૂણાશીલતાથી આપ્યો, એમ છતાં પણ જેણે અન્ય જીવને વિષે આ મારો શિષ્ય છે, અથવા ભક્તિનો કર્તા છે, માટે મારો છે, એમ કદી જોયું નથી, એવા જે સત્પુરુષ તેને અત્યંત ભક્તિએ ફરી ફરી નમસ્કાર હો!'⁹

શ્રીમદ્ કહે છે કે છ ષદથી સિદ્ધ છે એવું આત્મસ્વરૂપ સર્વ કાળને માટે વિદ્યમાન છે; પરંતુ એ મૂળ આત્મસ્વરૂપ અજ્ઞાની જીવને વિષે અનાદિથી અપ્રગટ છે. સદ્ગુરુએ આપેલ સમજ્ણને આત્મામાં પરિણમાવતાં તે આત્મસ્વરૂપ સહજતાથી પ્રગટે છે. શ્રી સદ્ગુરુનાં વચનામૃતથી જ્યારે સ્વરૂપનો નિઃશંક નિર્ણય થાય છે ત્યારે સર્વ સંકલ્પ-વિકલ્પ નષ્ટ થઈ જતાં ચંચળતા વિલીન થાય છે, ચિત્તમાં મોકળાશ રહે છે, જાગૃતિ રહે છે અને સ્વસંવેદન પ્રગટે છે.

આ આત્મસ્વરૂપ પ્રગટવાથી અનંત સમાધિસુખથી યુક્ત એવી દશા પ્રાપ્ત થાય છે. જીવ અનાદિ કાળથી દુઃખી હતો. તેનાં એ તમામ દુઃખનો અંત આવતાં તે પરમાનંદમય થાય છે. તેના સઘળા ભયનો અંત આવે છે અને તે નિર્ભય થાય છે. ભયપરિશામને સ્થાને તેનામાં કોઈ અલૌકિક સાહસ જાગૃત થઈ જાય છે. પોતાનું અને પરનું સ્વરૂપ સમ્યક્ પ્રકારે જાણ્યું હોવાથી તે સાત ભયથી રહિત નિર્ભય થઈ જાય છે. તે સાત ભય આ પ્રમાશે છે –

(૧) આ લોકનો ભય - દસ પ્રકારના પરિગ્રહનો નાશ થવાનો ભય, (૨) પર-લોકનો ભય - પરલોકમાં મારી કઈ ગતિ થશે? કયા ક્ષેત્રે જવું પડશે? એ આદિ દુર્ગતિમાં જન્મ લેવાનો ભય, (૩) મરણ ભય - પ્રાણ છૂટી જવાનો, નાશ પામવાનો ભય, (૪) વેદના ભય - રોગાદિ દુઃખ આવી પડવાનો ભય, (૫) અરક્ષા ભય -પોતાની રક્ષા કરનાર કોઈ નથી એમ જાણી થતો ભય, (૬) અગુપ્તિ ભય - પોતાની વસ્તુ સાચવવાનું સ્થળ નથી, તેથી તે ચોરાઈ જવાનો ભય અને (૭) અકસ્માત ભય -અચાનક વિપત્તિ આવવાનો ભય.

જેમના ઉપદેશથી શુદ્ધ સ્વરૂપ પ્રગટે છે એવા સત્પુરુષનો મહિમા અચિત્ય છે, અવર્જ્ઞનીય છે. શ્રીમદ્ કહે છે કે સત્પુરુષના ગુજ્ઞોની શી વ્યાખ્યા કરું? શું મહિમા કરું? તે વાજ્ઞીમાં સમાય એમ નથી. તેમના મહિમાનો અલ્પાંશ જ વચનમાં આવી શકે છે. સત્પુરુષનો મહિમા કહેવામાં પોતે અસમર્થ છે એમ શ્રીમદ્ જણાવે છે. આત્માનું સામર્થ્ય અને ભાષા પરનું પ્રભુત્વ બન્ને હોવા છતાં શ્રીમદ્ પોતાની અશક્તિ દર્શાવે છે, કેમ કે કંઈ પણ લેવાની સ્પૃહા વિના પરમાત્મભાવ આપનાર સત્પુરુષનો ઉપકાર અનંતો છે; તો આ અનંતા ઉપકાર માટે શબ્દો લાવવા ક્યાંથી? ઉપકાર અનંત છે, શબ્દ સંખ્યાત છે; ઉપકાર અમયંદિત છે, શબ્દો મર્યાદિત છે; ઉપકાર ચેતનવંતો છે, ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છટ્ટી આવૃત્તિ, પૃ.૩૯૫ (પત્રાંક-૪૯૩, 'છ પદનો પત્ર')

શબ્દ જડ છે; માટે એ ઉપકારનું વર્જીન કરવા કોઈ શબ્દ શક્તિમાન નથી.

સદ્ગુરુ નિષ્કારણ કરુણાશીલતાથી જીવને પરમાત્મભાવ આપે છે. તેની અંદર પરમાત્મા હતો, પણ તે ખોવાયેલો હતો. અનંત કાળથી જીવ પોતાની ગુણસંપત્તિ ખોઈ બેઠો હતો, તેનું તેને ભાન પણ ન હતું. જેમણે પોતાના એ પરમાત્મતત્ત્વનું ભાન કરાવ્યું કે જેથી આત્મા સ્વભાવપરિણામી થયો, તેમના માટે જીવ અત્યંત ભક્તિથી કહે છે કે 'તેમણે મને પરમાત્મભાવ આપ્યો.' કોઈ પણ જીવને જ્યારે પોતાના સદ્ગુરુ દારા આત્મપ્રાપ્તિ થાય છે ત્યારે તેને એવો અપૂર્વ અહોભાવ ઊછળે છે કે 'તેમણે જ મને મારો પરમાત્મા આપ્યો.' મેં પુરુષાર્થ વડે પ્રાપ્ત કર્યું એવો ભાવ સત્પાત્ર જીવને કદી પણ નથી આવતો. તેને અંદર-બહાર બધે નમ્રતા અને લઘુતા જ વર્તે છે.

સદ્દગુરુની કરુણાની નિષ્કારણતાની પરાકાષ્ઠા છે કે પોતે શિષ્ય ઉપર મહાન ઉપકાર કરવા છતાં તેમને કદી એવું લાગતું નથી કે 'આ મારો શિષ્ય છે. તે મારો આદર-સત્કાર કરે છે, તે મારી ભક્તિ-સ્તુતિ-સેવા કરે છે માટે મારો છે.' પોતે શિષ્ય માટે આટલું વિરાટ કાર્ય કરે છે છતાં તેમના અંતરમાં કદી 'આ મારો શિષ્ય છે, તેણે મને આધીન થઈને વર્તવું જોઈએ' ઇત્યાદિ કોઈ પણ પ્રકારનો મારાપણાનો ભાવ શિષ્ય માટે હોતો નથી. સદ્દગુરુને 'આ શિષ્ય મારો છે' એવો ભાવ સપનામાં પણ ઉદ્દભવતો નથી. 'આ મારી પાસે આવે છે માટે મારો છે અને આ મારી પાસે નથી આવતો માટે મારો નથી' એવો પોતાના-પરાયાનો ભાવ તેમને કદાપિ થતો નથી. પોતાના શુદ્ધ ચૈતન્યસ્વરૂપને પામ્યા હોવાથી તેમને કોઈ પણ વખતે પોતાના-પરાયાનો ભાવ થતો નથી. જે જ્ઞાનજ્યોતિ પોતામાં જ્વલંતપણે અનુભવી છે, તેનું જ દર્શન તેઓ સર્વ જીવમાં કરે છે, તેથી સર્વ જીવ પ્રત્યે એક જ પ્રકારનો ભાવ રહે છે. કોઈ જીવની વિષમ દશા જોઈને તેમને થાય છે કે કર્મને વશ થઈ કર્મ જેમ નાચ કરાવે તેમ તે નાચે છે, પણ તે જીવ તો રૂડો જ છે, તે શુદ્ધસ્વરૂપી જ છે. આમ, સદ્ગુરુ સર્વ જીવમાં શુદ્ધાત્મા જુએ છે. તેથી કોઈ પણ જીવને વિષે તેમને મમત્વભાવ ઊઠતો નથી. શિષ્યમાં મારાપણાનો ભાવ તેમને ક્યારે પણ થતો નથી. આવા સત્પુરુષને અત્યંત ભક્તિથી ફરી ફરી નમસ્કાર હો!

'આવા નિષ્કારણ કરુણામૂર્તિ શ્રીગુરુ પ્રત્યે મારે કેવી રીતે વર્તવું?' એનો વિચાર કરતાં શિષ્યને અંતરમાંથી એક જ જવાબ મળે છે કે શ્રીગુરુના ચરણને આધીન વર્તવું, અર્થાત્ શ્રીગુરુની આજ્ઞાએ વર્તવું. શિષ્યનો આત્મા દઢ ભાવે સાક્ષી પૂરે છે કે શ્રીગુરુના ચરણોમાં આજ્ઞાંકિતપણે વર્તવામાં જ પરમ કલ્યાણ છે. તેને દઢ નિશ્ચય વર્તે છે કે શ્રીગુરુના ઉપદેશના બળે હવે ગમે તેવા વિષમ કર્મોદય સામે હિંમતથી ઝઝૂમવું જ છે. શ્રીગુરુની આજ્ઞામાં સ્થિર થતાં જ સર્વ કર્મ નિષ્યભાવી થઈ ચાલ્યાં જશે. શ્રીગુરુના

પરમ ઉપશમરૂપ ચરણકમળ સમીયમાં વસીને, તેમની સર્વ આજ્ઞાનું પાલન કરીને ચોક્કસ મુક્તિ પામીશ. સુશિષ્યની આ મનોદશાનું પ્રતિબિંબ નીચેની પ્રાર્થનામાં સ્પષ્ટપણે ઝીલાય છે –

'હે પરમકૃપાળુ સદ્ગુરુદેવ!

આપની અનંત કૃષા અને અનંત અનુગ્રહથી આ દાસ આત્માની વાતનું શ્રવણ પણ કરી શક્યો છે. આપની કૃષા વિના મારો સંસારનો રસ ઓછો ન થઈ શકત. હજુ મારા દોષો અપાર છે. આપની દિવ્ય દેશના મળ્યા પછી પણ હું તો હજુ રાગનાં અને દેષનાં કાર્યોમાં તણાઈ જાઉં છું, પણ ત્યારે આપ મને તારવા ત્યાં હાજર રહો છો. આ દાસના જીવનમાં જે કંઈ પણ ઠીક થઈ રહ્યું છે તે બધું માત્ર આપની કૃષાનું - આપના આશીર્વાદનું જ ફળ છે અને જે કંઈ પણ અયોગ્ય છે એ બધું મારા મંદ પુરુષાર્થના કારણે જ થાય છે. અનંત જન્મોનો અંત લાવવા આ જન્મ મળ્યો છે અને આપની વજા જેવી વાણીના પ્રતાપે હવે હું પાછાં પગલાં કરવાનો નથી. આપ મારા માટે અથાક શ્રમ લો છો, પણ એના બદલામાં આપવા માટે મારી પાસે તો કંઈ પણ નથી. જો કે આપ નિઃસ્પૃહી હોવાથી કંઈ લેવા પણ તૈયાર ન થાઓ, છતાં હું આપને વચન આપું છું કે આપની આજ્ઞાભક્તિમાં અખંડપણે રહી, આપની ઇચ્છાને સર્વ પ્રકારે અનુસરી પૂર્ણ પદને પ્રાપ્ત અવશ્ય થઈશ, અવશ્ય થઈશ, અવશ્ય થઈશ.'

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'શું પ્રભુચરણ કને ઘરું, જોયું કરી વિચાર; ક્યાંહિ નજર પહોંચે નહિ, જોતાં આ સંસાર. સાર સાર પણ વસ્તુ જે, આત્માથી સૌ હીન; આત્મા વિના સૌ શૂન્ય છે, શું આપું હું દીન. કાળ અનાદિથી ભૂલ્યો, આત્મા એ હું અજાણ; તે તો પ્રભુએ આપિયો, જે છે સુખની ખાશ. તે નિર્દંભપણે કરી, ચિત્ત પ્રસન્ન અદીન; સદાકાળ હું આપનો, વર્તું ચરણાદીન.'

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૫ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૪૯૭-૫૦૦)

आ देशारा कारव्या, व्यन्ती अल्ड आहित, दाका,दाका डुं ६१का छुं, तेर अल्यूको शक. ગાથા ૧૨૫માં સુશિષ્યે શ્રીગુરુચરણે સર્વોત્કૃષ્ટ વસ્તુ ધરવાનો ભાવ કર્યો. ભૂમિકા જો કે વિચાર કરતાં તેને જણાયું કે આત્મા જ સર્વોત્કૃષ્ટ પદાર્થ છે અને એ તો શ્રીગુરુએ જ આપ્યો હોવાથી એ પાછો આપવામાં કોઈ વિશેષતા નથી, તેથી તેણે શ્રીગુરુચરણાધીન વર્તવાની સમ્યક્ ભાવના કરી.

વિનયવંત શિષ્યે શ્રીગુરુના ચરણમાં પોતાનું સર્વસ્વ ધરી, તેમની આધીનતા સ્વીકારવાની ભાવના સેવી હતી. પ્રસ્તુત ગાથામાં પ્રભુને આધીન વર્તવાની ભાવનાને દઢ કરતાં શિષ્ય કહે છે –

'આ દેહાદિ આજથી, વર્તો પ્રભુ આધીન; દાસ, દાસ હું દાસ છું, તેહ^૧ પ્રભુનો દીન.' (૧૨૬)

આ દેહ, 'આદિ' શબ્દથી જે કંઇ મારું ગણાય છે તે, આજથી કરીને સદ્ગુરુ પ્રભુને આધીન વર્તો, હું તેહ પ્રભુનો દાસ છું, દાસ છું, દીન દાસ છું. (૧૨૬)

ભાવાર્થ શ્રીગુરુના ઉપદેશથી આત્માનું અપૂર્વ ભાન આવ્યું, અર્થાત્ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપનું ભાન થયું તે શ્રીગુરુનો તેના પ્રત્યેનો અમાપ ઉપકાર છે. જે સ્વરૂપ સમજ્યા વિના આ જીવ અનંત દુઃખ પામ્યો હતો, તે પદ સમજાતાં સંસાર-સમુદ્રનો કિનારો સમીપ થયો; અને તે શ્રીગુરુની અનંત કૃપાનું જ કળ છે. શ્રીગુરુના ઉપકારોનું વેદન થતાં સમર્પણભાવથી પ્રેરાઈને શિષ્ય કહે છે કે 'આજથી આ દેહાદિ જે કંઈ મારું ગણાય છે તે આપના ચરણમાં અર્પણ કરેું છું, અર્થાત્ મન-વચન-કાયાના યોગ અને જગતમાં જે કંઈ પરિઅહાદિ મારું ગણાય છે તે સર્વ આપની આજ્ઞા મુજબ વર્તો. હું તો આપ પ્રભુનો દીન દાસ છું. આ દેહાદિ હવે આપની આજ્ઞા આરાધવા બંધાયેલાં છે, અર્થાત્ આપની આજ્ઞા અનુસાર ભાવ કરીશ, વચન ઉચ્ચારીશ અને કાયા પ્રવર્તાવીશ. મારું પ્રવર્તન પૂર્ણપણે આપને આધીન હો. આપની આજ્ઞા એકનિષ્ઠાએ ઉપાસવાની આ જીવની પૂર્ણ તૈયારી છે. આ દીન પાસે આનાથી વિશેષ આપને ચરણે ૧- શ્રીમદ્દના અનુયાયીઓ જ્યારે આ ગાથા પ્રશિપાત સ્તુતિ તથા દેવવંદનમાં બોલે છે ત્યારે તેઓ 'તેઢ પ્રભુનો દીન'ના બદલે શ્રીમદ્દને ઉદેશીને 'આપ પ્રભુનો દીન' એમ ઉચ્ચારણ કરે છે. (જુઓ : શ્રીમદ્દ્ રાજચંદ્ર આશ્રમ, અગાસ દારા પ્રકાશિત 'નિત્યક્રમ', આઠમી આવૃત્તિ, પૃ.૩૭ તથા દ૪ - પ્રશિપાત સ્તુતિ અને સંધ્યાકાળનું દેવવંદન.)

ધરવા કંઈ નથી.'

શિષ્યની તૈયારી કેવી છે તે 'આજશો' શબ્દ દ્વારા સૂચિત થાય છે. શિષ્યના અંતરમાં પૂર્ણ પદ સાધવાની તીવ્ર લય લાગી છે અને તેથી અલ્પ સમયનો પણ વ્યય ન કરતાં આજથી જ પ્રભુની આજ્ઞાએ વર્તવાનો નિશ્ચય કરે છે અને તે અર્થે દેહ તથા ધન-વાડી વગેરે જે કંઈ પોતાનાં ગણાય છે તે શ્રીગુરુને અર્પણ કરે છે. તે શ્રીગુરુની આજ્ઞામાં દાસભાવે વર્તવાનો નિર્ણય કરે છે. આ ગાથાની બીજી પંક્તિમાં 'દાસ' શબ્દ ત્રણ વખત વપરાયો છે. તેનું પ્રયોજન એમ જણાય છે કે શિષ્ય મન, વચન અને કાયા એમ ત્રણે પ્રકારે દાસત્વ સ્વીકારે છે. વળી, તેનો અર્થ એમ પણ કરી શકાય કે શ્રીગુરુના અનેક દાસમાંથી હું તો સૌથી નિમ્ન કોટિનો દાસ છું, અર્થાત્ શ્રીગુરુના દાસનો દાસ છું; અને આમ તે પોતાની દીનતાનો સ્વીકાર કરી અભિમાનનો ત્યાગ કરે છે. અહીં જે દૈન્યત્વનો ભાવ પ્રદર્શિત કર્યો છે તે લાચારીનો કે મજબૂરીનો ભાવ નથી, પરંતુ શ્રીગુરુની વિરાટતા અને પોતાની વામનતાના ભાનથી ઉત્પન્ન થયેલો લઘુતાનો ભાવ છે.

વર્તમાન હીણા કાળમાં નિષ્કારણ કરુણાશીલ સદ્ગુરુનો યોગ થવો અત્યંત દુર્લભ છે. પૂર્વના મહાપુણ્યના કારણે જો તેવો યોગ સંપ્રાપ્ત થાય તો તેની કિંમત કોઈ પણ પ્રકારે થઈ શકે એમ નથી. વિદ્યમાન સત્પુરુષનો યોગ થવો એ આત્માર્થી જીવ માટે, જેનું કોઈ પ્રકારે મૂલ્ય ન થઈ શકે તેવો ઉપકારી પ્રસંગ છે, કેમ કે નિઃસ્પૃહતાધારી સદ્ગુરુ જીવને આત્મકલ્યાણનો માર્ગ દર્શાવી તેના ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે.

જીવે પરપદાર્થમાં નિજબુદ્ધિ કરી હોવાથી તે પરિભ્રમણદશા પામ્યો છે, પણ જો નિજને વિષે નિજબુદ્ધિ કરે તો તેની પરિભ્રમણદશા ટળે છે. જેના ચિત્તમાં નિજમાં નિજબુદ્ધિ કરવાનો વિચાર ઊગે છે, તેણે તે જ્ઞાન જેમના આત્મામાં પ્રકાશ પામ્યું છે એવા સદ્દ્ગુરુની દાસાનુદાસપણે ભક્તિ કરવી એ પરમ શ્રેય છે. સદ્દ્ગુરુ પ્રત્યેની ભક્તિથી જ જીવ મંગળ સિદ્ધિને વરે છે. સદ્દ્ગુરુ પ્રત્યેની નિષ્કામ ભક્તિ જીવને તેના અંતરના પ્રભુનો ભેટો કરાવે છે.

આત્મા પ્રાપ્ત કરવા માટે ભક્તિ એ ઉત્તમ સાધન છે. ભક્તિ એટલે સત્પુરુષના દિવ્ય સ્વરૂપની ઓળખાણ. ભક્તિ એટલે સદ્ગુરુની આત્મદશાની સાચી રીતે ઓળખાણ અને તેના પ્રત્યે હૃદયથી પ્રીતિ. ભક્તિ એટલે સદ્ગુરુના લોકોત્તર ગુણોનું દર્શન અને તે ગુણોની પ્રાપ્તિ અર્થે તેમની સાથે દિવ્ય પ્રેમ સંબંધ જોડવાની ચેષ્ટા. ભક્તિ એટલે પ્રીતિના બળથી હૃદય ઝળહળી ઊઠતાં પ્રશસ્ત રાગયુક્ત ભાવોર્મિનું ઊછળવું અને તે ભાવોર્મિનું અનુપમ શબ્દ દ્વારા પ્રકાશિત થવું. ભક્તિ એટલે ભાવવિભોર દશામાં કોઈ

વાર શાંત થઈ જતાં તથા અંતરના ઊંડાણમાં ઊતરતાં વિકલ્પો વિલીન થઈ જવાથી આત્મપ્રભુનો ભેટો થવો.

ભક્તિ શબ્દ 'મર્ज્' ધાતુ ઉપરથી બનેલો છે. 'મર્ज્' એટલે જોડાવું. જે નિયત સમયમર્યાદા કે સાનુકૂળ ક્ષેત્રની અપેક્ષા વગર નિરંતર સદ્ગુરુ સાથે અંતરથી જોડાયેલો રહે એ જ સાચો ભક્ત છે. ભક્ત દુકાનમાં, રસોડામાં કે ગમે ત્યાં હોય અને ગમે તે પ્રવૃત્તિ કરી રહ્યો હોય, તે સદ્ગુરુ સાથે અંતરથી જોડાયેલો રહે છે. પ્રભુ સમીપમાં જ છે એમ તે અનુભવે છે અને તે પ્રમાશે જ જીવે છે. ભક્તિ તો આવા અંતરંગ સંબંધની નિષ્પત્તિ છે. જો અંતરંગ જોડાશ ન હોય તો સદ્ગુરુનો બાહ્ય સમાગમ મળવા છતાં ભક્તિ પ્રગટતી નથી.

આંબાના ઝાડ ઉપરની કેરીઓનો સંબંધ આંબાની ડાળ મારફતે જ એકબીજા સાથે બંધાયેલો હોય છે. જો બે કેરીને ઝાડ ઉપરથી તોડીને ટોપલામાં બાજુબાજુમાં - અત્યંત નિક્ટ મૂકવામાં આવે તોપણ તે બન્ને વચ્ચે કોઈ સંબંધ હોતો નથી, કારણ કે આંબામાં જે જીવનરસ ડાળીએ ડાળીએ ફરીને એક કેરીનો સંબંધ બીજી કેરી સાથે જોડતો હતો તે સંબંધ હવે તૂટી ગયો છે. ટોપલીઓમાં પડેલી તે કેરીઓ હવે એકલી છે, અલગ છે; સાથે હોવા છતાં, નજીક હોવા છતાં, અરે! બાહ્યથી સ્પર્શતી હોવા છતાં પણ તે એકબીજાથી અલગ છે, અજાણી છે, પારકી છે. ભલે બાહ્યથી તે એકબીજાને સ્પર્શતી પણ હોય, છતાં તેનાં અંતર હવે સ્પર્શતાં નથી. તેમ સદ્દ્યુટુ સાથે બાહ્યથી ગમે તેટલી નિકટતા હોય, પણ જો સદ્દ્યુટુ સાથેનો અંતરસ્પર્શ વિકસ્યો ન હોય અથવા અંતરસ્પર્શને અવરોધ કરે એવા દોષને પોષવામાં આવે તો તેમનો યોગ અફળ જાય છે. અનંત કાળ પર્યંત તે જીવે સંસાર-ઉકરડામાં સડ્યા કરવું પડે છે. સાચો સાધક બાહ્ય સમાગમ તો ઇચ્છે જ છે, પણ તેને વિશેષ ભાવના તો અંતરસ્પર્શની જ હોય છે. માત્ર બાહ્ય નિકટતાથી નહીં, પણ યથાર્થ અંતરસ્પર્શથી જ ભક્તિ જાગે છે.

જીવ સદ્ગુરુનો આશ્રય અંતરથી ગ્રહે તો યથાર્થ ધર્મારાધના થાય છે. ધર્મની સાચી સમજ આપનાર, આત્મસાધનાની અમૂલ્ય પ્રેરણા દેનાર સદ્ગુરુનો આશ્રય જ ઉત્તમ શરણ છે. સદ્ગુરુ સિવાય ત્રણે જગતમાં કોઈ શરણભૂત નથી, માટે જ સદ્ગુરુનો આશ્રય ગ્રહવારૂપ ભક્તિમાર્ગ શ્રી જિને નિરૂપણ કર્યો છે કે જે માર્ગ સર્વ અશરણને નિશ્વળ શરણરૂપ બની સુલભપણે જ્ઞાનદશા ઉત્પન્ન કરાવનાર છે. સદ્ગુરુની ભક્તિ સર્વ દોષને સુલભતાથી ક્ષય કરે છે. શ્રીમદ્ લખે છે –

'ઘણા ઘણા પ્રકારથી મનન કરતાં અમારો દઢ નિશ્ચય છે કે ભક્તિ એ સર્વોપરી માર્ગ છે, અને તે સત્પુરુષના ચરણ સમીપ રહીને થાય તો ક્ષણ વારમાં

મોક્ષ કરી દે તેવો પદાર્થ છે.'

ભક્તિમાર્ગ સર્વોપરી છે, સર્વોત્કૃષ્ટ છે. ભક્તિમાર્ગની આરાધના અત્યંત સરળ છે. ભક્તિમાર્ગમાં દિવ્ય પ્રેમની સાધના કરવી એ મુખ્ય લક્ષ્ય છે. સામાન્ય મનુષ્ય વ્યવહાર જીવનમાં પ્રેમ કરવા એટલો બધો ટેવાઈ ગયો છે કે પ્રેમ કરવો તેના માટે જાણે કે સહજ - સ્વાભાવિક બની ગયું છે. આવો મનુષ્ય જ્યારે ભક્તિમાર્ગની આરાધના તરફ પ્રવૃત્ત થાય છે ત્યારે તેણે તો માત્ર જગતના પદાર્થો પ્રત્યે વહેતી યોતાના પ્રેમની ધારાને સદ્વપુરુ તરફ વાળવાની હોય છે અને તેથી તો આ પ્રક્રિયાને સમજણપૂર્વક અપનાવવામાં આવતાં તેમાં કઠિનતા અનુભવાતી નથી. આ પ્રક્રિયામાં માત્ર પ્રેમની દિશાને બદલવાના પુરુષાર્થ સિવાય કોઈ અન્ય પરિશ્રમ કરવો પડતો નહીં હોવાથી તેમાં કઠિનતા નથી, તેથી બીજી સાધનાપદ્ધતિ કરતાં ભક્તિમાર્ગ સરળ છે. અન્ય સાધનાપદ્ધતિઓ સામાન્ય જીવ માટે દુર્ગમ છે, કઠિન છે. ભક્તિમાર્ગની સાધના બીજા માર્ગ કરતાં પ્રમાણમાં સરળ છે અને પડવાનાં સ્થાનકો નહીંવત્ છે. આ કારણોને લીધે શ્રીમદે આ કાળમાં ભક્તિમાર્ગને સર્વોપરી કહી, તેનું અવલંબન અંગીકાર કરવા પ્રેરણા કરી છે.

ઘણા મહાત્માઓએ મુખ્યપણે ભક્તિમાર્ગનો આશ્રય કર્યો છે અને પોતાના આશ્રિતોને પણ ભક્તિમાર્ગનું અવલંબન લેવાની મુખ્યતાએ પ્રેરણા કરી છે, કારણ કે તે પ્રમાણે વર્તવાથી સ્વપરકલ્યાણનો માર્ગ શીધ્ર પ્રશસ્ત થશે એવા નિર્ણય ઉપર તેઓ આવેલા છે. તેમને એવો નિશ્ચય છે કે શ્રી સદ્દ્ગુરુદેવની ભક્તિ પ્રત્યે લીન થવું એ આત્મકલ્યાણનો સરળતમ અને સર્વોપરી ઉપાય છે, મોક્ષનો ધુરંધર માર્ગ છે. શ્રીમદ્દ્ લખે છે –

'પ્રભુભક્તિમાં જેમ બને તેમ તત્પર રહેવું. મોક્ષનો એ ધુરંધર માર્ગ મને લાગ્યો છે.'^ર

'આ કાળની અપેક્ષાએ મન, વચન, કાચા આત્મભાવે તેના ખોળામાં અર્પણ કરો, એ જ મોક્ષનો માર્ગ છે.'³

અહીં કોઈને પ્રશ્ન થાય કે શ્રી જિનેશ્વરદેવપ્રણીત પવિત્ર જૈનદર્શનમાં સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રને મોક્ષમાર્ગ કહ્યો છે, જ્યારે અહીં ભક્તિને મોક્ષમાર્ગ કહ્યો છે; તો શું આ પ્રતિપાદન પરસ્પર વિરોધી નથી? તેનું સમાધાન આ રીતે વિચારવાથી થઈ જશે.

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૨૬૪ (૫ત્રાંક-૨૦૧)

ર- એજન, **પ**.૩૩૫ (પત્રાંક-૩૮૦)

૩- એજન, પૃ.૧૬૯-૧૭૦ (પત્રાંક-૩૭)

ભક્તિ શબ્દમાં ત્રણ ભાવો અંતર્ગત રહ્યા છે - (૧) પ્રેમ (હૃદયની સોંપણી), (૨) શ્રદ્ધા (બુદ્ધિની સોંપણી) અને (૩) અર્પણતા (ઇચ્છાની સોંપણી).

જ્યાં પ્રેમ છે ત્યાં શ્રદ્ધા છે. શ્રદ્ધા પ્રેમની સાથે રહે છે, પ્રેમને ઉજ્જ્વળ રાખે છે, ટકાવે છે. પ્રેમ અને શ્રદ્ધા એક જ સિક્કાની બે બાજુઓ છે. પ્રેમ અને શ્રદ્ધા વધતાં અર્પણતા આવતી જાય છે અને વિકસે છે. આ ત્રણની એકતા એટલે ભક્તિ. આ ગુણોનો ત્રિવેણી સંગમ એટલે અગોચર અને અગમ એવા અલૌકિક પદાર્થનો અનુભવ.

સત્યુરુષમાં પ્રેમ એટલે તેમના દેહ પ્રત્યે પ્રેમ નહીં પણ દેહથી ભિન્ન એવા અનંત ઐશ્વર્યયુક્ત વૈભવ અને ગુણોથી શોભિત જ્યોતિસ્વરૂપ, સ્વપરપ્રકાશક આત્મા પ્રત્યે પ્રેમ અને આદર. સત્પુરુષ પ્રત્યેના પ્રેમના કારણે જડ અને ચેતન વચ્ચેની વહેંચણી, દેહ અને આત્મા વચ્ચેની સાચી અને યથાર્થ ખતવણી સહજ થાય છે અને તેને સમ્યગ્જ્ઞાન કહે છે. વળી, સત્પુરુષના ઉપદેશમાં તે જ વાત આવે છે ત્યારે તે જ્ઞાનની દઢતા થાય છે. આને વ્યવહારથી સમ્યગ્જ્ઞાન કહ્યું છે. સત્પુરુષનાં સ્વરૂપ અને વચનોમાં શ્રદ્ધાને વ્યવહારથી સમ્યગ્દર્શન કહ્યું છે.

ભક્તિમાં સમાવેશ પામેલો ત્રીજો ભાવ છે અર્પણતા. અર્પણતા એટલે મન, વયન અને કાયાની સર્વ પ્રવૃત્તિ સત્પુરુષને આધીન હોવી. સર્વ ભાવ સત્પુરુષના પવિત્ર યરણકમળમાં સોંપી દેવા. અર્પણતા એટલે અહં-મમત્વભાવનો આત્મબુદ્ધિએ ત્યાગ કરવો અને શ્રી સદ્પુરુની આજ્ઞાનુસાર વર્તવું. જેમ જેમ સદ્પુરુ પ્રત્યે શિષ્યના ભાવો પ્રેમ અને શ્રદ્ધારૂપી ગુફાના ઊંડાણમાં જાય છે અને અર્પણતાનો પ્રકાશ તે ભાવોને અજવાળે છે, સહાયભૂત થાય છે; તેમ તેમ તે બન્ને ગુણોની વિશુદ્ધતા વધે છે, સ્થૂળ દોષોનું જવું થાય છે, સૂક્ષ્મ દોષો દેખાવા શરૂ થાય છે અને આજ્ઞામાં રહીને દોષોના ક્ષય માટેનો પુરુષાર્થ થાય છે. ઇચ્છાઓ, તૃષ્ણાઓ ક્ષીણ થતી જાય છે. આ પ્રમાણે રાગ-દેષનું, ઇચ્છાઓનું ક્ષીણ થવું, તેનો સંયમ થવો તેને વ્યવહારથી સમ્યક્ચારિત્ર કહ્યું છે.

જ્યારે પ્રેમ, શ્રદ્ધા અને અર્પણતા ક્રમે કરીને વધી શુદ્ધતા પ્રત્યે જાય છે ત્યારે પ્રેમસમાધિ આવે છે. પ્રેમસમાધિ એટલે ભગવાનરૂપ સત્પુરુષના સતત સુખરૂપ સ્મરણથી ઉત્પન્ન થતી એકાગ્રતા અને આ એકાગ્રતાના પરિણામે જન્મ પામતી આનંદપ્રદ શાંતિ. આ અનુભવ અદ્ભુતતા સર્જવા સમર્થ થાય છે. કોઈ અતીવ શુભ અને સુભગ પળે સ્વાનુભૂતિ પ્રગટે છે. આમ, સત્સ્વરૂપના અનન્ય ચિંતનથી આજ્ઞાના આરાધનના ફળરૂપે પોતાના શુદ્ધસ્વરૂપી ચૈતન્યાત્માનો શુદ્ધ અનુભવ થાય છે અને નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપ રત્નત્રય પ્રગટે છે. આ જ પુરુષાર્થથી આત્મા આખરે કૈવલ્યપદને પ્રાપ્ત કરે છે. આ ઉપરથી એ સમજાશે કે ભક્તિમાં રહેલ પ્રેમ-શ્રદ્ધા-અર્પણતા તથા શ્રી જિનના સિદ્ધાંતમાં પ્રરૂપેલ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર વચ્ચે કોઈ તાત્ત્વિક ભેદ નથી.

જ્યારે ભક્તનું આત્મવીર્ય સ્ફુરાયમાન થઈ સત્પુરુષને પ્રેમ કરવા પ્રત્યે વળે છે ત્યારે તેને સત્ય જ્ઞાનનો લાભ થાય છે. તે જ પ્રમાણે ભક્તનું આત્મવીર્ય જ્યારે સત્પુરુષમાં શ્રદ્ધા કરવા તરફ કાર્યશીલ થાય છે ત્યારે તેને સત્ય દર્શનનો લાભ થાય છે. એ જ રીતે ભક્તનું આત્મવીર્ય જ્યારે સત્પુરુષના પવિત્ર ચરણોમાં પોતાનું માનેલું સર્વસ્વ અર્પણ કરવા તૈયાર થાય છે ત્યારે તેને સત્ય ચારિત્રનો લાભ થાય છે. આમ, વીર્ય જ્યારે પ્રેમ, શ્રદ્ધા અને અર્પણતાની એકતા અને પૂર્ણતા માટે કાર્યાન્વિત થાય છે ત્યારે મોક્ષમાર્ગની આરાધના થાય છે અને ત્રણેની પૂર્ણતા થતાં મોક્ષ થાય છે. આ ઉપરથી ભક્તિ મોક્ષનો હેતુ છે એ કથન સ્પષ્ટ થાય છે.

આમ, ભક્તિ તે મોક્ષસાધનાનું એક અનિવાર્ય અને અનુપમ અંગ છે. સદ્ગુરુનું સ્મરણ, ચિંતવન, ધ્યાન જીવના માનાદિ ભયંકર દોષ હરી લે છે, વિષયોથી વિરક્તિ આપે છે, ચિત્તની નિર્મળતા નિપજાવે છે, વિકલ્યોનો કોલાહલ મટાડી સ્થિરતા તથા શાંતિ બક્ષે છે. સદ્ગુરુની ભક્તિથી શિષ્યને પાત્રતાની વૃદ્ધિથી માંડીને કલ્યાણપરંપરાની પ્રાપ્તિ થાય છે. ઇહલોક તેમજ પરલોકમાં સુખ અને શાંતિની પ્રાપ્તિ થાય છે. સદ્ગુરુની ભક્તિ કરવાથી શિષ્યને નિર્વિકલ્પ સમાધિનું સુખ પ્રગટે છે, તેથી સદ્ગુરુની ભક્તિના પરમ અવલંબનપૂર્વક આત્મપુરુષાર્થ જાગૃત રાખવા માટે શાસ્ત્રોમાં અનેક સ્થળે ભલામણ કરવામાં આવી છે. સદ્ગુરુના પ્રબળ નિમિત્તના અવલંબન વિના સીધેસીધું સ્વરૂપશ્રેણીએ ચઢવું અત્યંત દુષ્કર છે. જેમને આત્મસ્વરૂપ પ્રગટ્યું છે એવા સદ્ગુરુના અવલંબનથી તે શ્રેણીએ ચઢવું સુગમ થઈ પડે છે. સદ્ગુરુ પ્રત્યેની પારમાર્થિક ભક્તિના પરમોત્કષ્ટ ફળનું સ્વરૂપ પ્રતિપાદન કરતાં શ્રીમદ્ લખે છે —

'જે સત્પુરુષોએ સદ્દગુરુની ભક્તિ નિરૂપણ કરી છે, તે ભક્તિ માત્ર શિષ્યના કલ્યાણને અર્થે કહી છે. જે ભક્તિને પ્રાપ્ત થવાથી સદ્દગુરુના આત્માની ચેષ્ટાને વિષે વૃત્તિ રહે, અપૂર્વ ગુણ દૃષ્ટિગોચર થઇ અન્ય સ્વચ્છંદ મટે, અને સહેજે આત્મબોધ થાય એમ જાણીને જે ભક્તિનું નિરૂપણ કર્યું છે, તે ભક્તિને અને તે સત્પુરુષોને ફરી ફરી ત્રિકાળ નમસ્કાર હો!'

અહીં શ્રીમદે ભક્તિમાર્ગના અતિ મહાન સિદ્ધાંતનું, પરમ રહસ્યનું વિલક્ષણ શૈલીથી ઉદ્દ્વાટન કર્યું છે. જ્ઞાનીપુરુષો દ્વારા સદ્દ્ગુરુની ભક્તિનું નિરૂપણ કરવા પાછળનો હેતુ માત્ર એટલો જ હોય છે કે તે દ્વારા શિષ્યનું કલ્યાણ થાય. સદ્દ્ગુરુની ભક્તિથી શિષ્યનું કલ્યાણ થતું હોવાથી સત્પુરુષોએ સદ્દ્ગુરુની ભક્તિ કરવાનું ઠેકાણે ૧- ઉપર્યુક્ત વિચારણા શ્રી ભોગીલાલ ગિ. શેઠરચિત 'નિર્વાણમાર્ગનું રહસ્ય', પૃ.૩૬-૩૮ના અધારે કરવામાં આવી છે.

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૯૫ (પત્રાંક-૪૯૩, 'છ પદનો પત્ર')

ઠેકાણે સૂચવ્યું છે. અહીં એ ધ્યાન રાખવું ઘટે છે કે સદ્દ્ગુરુને એવી ઇચ્છા નથી હોતી કે જીવ તેમની ભક્તિ કરે, પરંતુ આત્મકલ્યાણ કરવા ઇચ્છનાર જીવે તેમની ભક્તિ અવશ્ય કરવી ઘટે છે. શ્રીમદ્દ્ લખે છે –

'જોકે જ્ઞાની ભક્તિ ઇચ્છતા નથી, પરંતુ મોક્ષાભિલાષીને તે કર્યા વિના ઉપદેશ પરિણમતો નથી, અને મનન તથા નિદિધ્યાસનાદિનો હેતુ થતો નથી, માટે મુમુક્ષુએ જ્ઞાનીની ભક્તિ અવશ્ય કર્તવ્ય છે એમ સત્પુરુષોએ કહ્યું છે.'

સદ્ગુરુની ભક્તિ કરવાથી માત્ર શિષ્યને જ લાભ થાય છે, સદ્ગુરુને કોઈ જ પ્રકારનો લાભ થતો નથી. શ્રી ધનંજય કવિ 'વિષાપહાર સ્તોત્ર'માં કહે છે કે હે પ્રભુ! ઇન્દ્ર આપની સેવા-ભક્તિ કરે છે, પરંતુ આપની સેવા કરીને તે આપના ઉપર કોઈ પણ પ્રકારનો ઉપકાર કરતો નથી. જેમ કોઈ મનુષ્ય સૂર્યની સામે છત્ર રાખે તો છત્ર રાખવાથી તે કાંઈ સૂર્ય ઉપર ઉપકાર કરતો નથી, પરંતુ છત્ર રાખીને તે મનુષ્ય તાપથી બચે છે અને તેને છાયાનું સુખ પ્રાપ્ત થાય છે; તેમ ઇન્દ્ર પ્રસંગે પ્રસંગે આપની સેવામાં હાજર થાય છે, તેમાં તે આપના ઉપર કોઈ ઉપકાર કરતો નથી, પરંતુ આપની સેવા-ભક્તિ કરવાથી ઇન્દ્રને જ લાભ થાય છે. ઇન્દ્રને આપની સેવાથી શુભાસવ થાય છે અને તે અશુભ આસવરૂપ આતાપથી બચી જાય છે. આપને પોતાના હૃદયમાં પધરાવવાથી આત્મિક સુખરૂપ શીતળતાનો લાભ થાય છે. આથી ઇન્દ્ર આપની જે ભક્તિજન્ય સેવા કરે છે તેમાં તેનું જ હિત થઈ રહ્યું છે. ર

સદ્ગુરુ પ્રત્યે આત્મકલ્યાણકારી ભક્તિ જાગવાથી જીવને સદ્ગુરુના આત્માની ચેષ્ટાને વિષે વૃત્તિ રહે છે. તેમનું બાહ્યાચરણ ગૌણ થઈ જાય છે અને અંદરના અલૌકિક સ્વરૂપ પ્રત્યે વૃત્તિ રહે છે. તેમની શાંતતા, પ્રસન્નતા, નિષ્કારણ કરુણા, નિઃસ્પૃહતા, અસંગતા, વીતરાગતાદિથી યુક્ત અંતરંગ પરિણતિ પ્રત્યે વૃત્તિ રહે છે. સદ્ગુરુનું શુભાશુભ ભાવો તેમજ તે ભાવોનાં ફળ પ્રત્યેનું વલણ, તેમનો તીવ અંતર્મુખી પુરુષાર્થ, દરેક પ્રસંગે અડગ રહેતી તેમની શ્રદ્ધા, દરેક ઉદય વખતે પણ શુદ્ધાત્માની પકડ અને અવિરત જાગૃતિ - આ સર્વ અદ્ભુત ચેષ્ટાઓ પ્રત્યે ભક્તની વૃત્તિ કેન્દ્રિત રહે છે. ભક્તને સદ્ગુરુની દિવ્યતાથી વ્યાપ્ત ચેષ્ટાઓ વારંવાર સ્મરણમાં

'प्रभु की सेवा करके सुरपित, बीज स्वसुख के बोता है, हो अगम्य अज्ञेय न इस से, तुम्हें लाभ कछु होता है; जैसे छत्र सूर्य के सम्मुख, करने से दयालु जिनदेव, करनेवाले ही को होता, सुखकर आतापहर स्वयमेव।'

૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્કી આવૃત્તિ, પૃ.૨૬૩ (પત્રાંક-૨૦૦)

૨- જુઓ : શ્રી ધનંજય કવિ, 'વિષાયહાર સ્તોત્ર', ૧૭

આવે છે. તેઓશ્રીનાં વિશિષ્ટ જ્ઞાન, વૈરાગ્ય આદિ અનેક અદ્ભુત ગુણોની સ્મૃતિ તેને રહ્યા કરે છે.

જેને ભક્તિ પ્રગટે છે તેને નિજછંદે ચાલવાની વૃત્તિ રહેતી નથી. તેને સદ્ગુરુના અપૂર્વ ગુણ દષ્ટિગોચર થયા હોવાથી સ્વચ્છંદનો નિરોધ થાય છે. સ્વચ્છંદના કારણે જીવને 'હું જાણું છું', 'હું સમજું છું' એવા પ્રકારનું અભિમાન રહ્યા કરે છે, થોડું પણ શાસ્ત્રજ્ઞાન હોય તે દર્શાવવાની ઇચ્છા રહ્યા કરે છે. તે પોતાની કલ્પના પ્રમાણે જ્ઞાનીનાં વચનનું તોલન કરે છે. જ્ઞાનીને વિષે પોતા સમાન કલ્પના રહ્યા કરે છે. ભક્તિ જાગતાં આ સર્વ ભાવો નાશ પામે છે. ભક્તિ પ્રગટ થતાં સ્વચ્છંદ હટી જાય છે. જીવ ઉપર પહેલાં સ્વચ્છંદનું ચલણ ચાલતું હતું, તેને બદલે હવે ભક્તિ પ્રગટવાથી સદ્ગુરુની આજ્ઞાનું ચલણ ચાલે છે.

આત્મસ્વભાવ પ્રગટ કરી શકે એવું સામર્થ્ય ભક્તિમાં છે. ભક્તિથી દર્શનમોહનો રસ ઘટે છે અને તેથી સ્વભાવને પ્રગટવા યોગ્ય ભૂમિકા તૈયાર થાય છે. જેમણે દર્શનમોહનો અભાવ કર્યો છે એવા નિર્મોહી સદ્ગુરુનો મહિમા ચિંતવવાથી, તેમના ગુણોનો મહિમા કરવાથી દર્શનમોહનો રસ ઘટતો જાય છે. નિર્મોહી પુરુષ પ્રત્યે ભક્તિ જાગવાથી દર્શનમોહનો અભાવ કરવા તરફ ભક્તનું પ્રયાણ શરૂ થાય છે. યથાર્થ ભક્તિથી દર્શનમોહ નાશ પામે છે અને આત્મબોધ થાય છે.

શ્રીમદે સર્વ પ્રકારની ભક્તિને યોગ્ય એવા જ્ઞાની ભગવંતોને તો વંદન કર્યા જ છે, પણ આત્મિક ફળ દેવાવાળી આવી ઉત્કૃષ્ટ ભક્તિને પણ શ્રીમદે નમસ્કાર કર્યા છે કે 'તે ભક્તિને અને તે સત્પુરુષોને ફરી ફરી ત્રિકાળ નમસ્કાર હો!'

શિષ્યને શ્રીગુરુ પ્રત્યેની ભક્તિથી શ્રીગુરુની ચેષ્ટાને વિષે વૃત્તિ રહે છે, તેમના અપૂર્વ ગુણ દષ્ટિંગોચર થવાથી સ્વચ્છંદ મટે છે અને સહેજે આત્મબોધ થાય છે. આત્મા પ્રગટ થતાં તે સુખ, શાંતિ અને સલામતીનો અનુભવ કરે છે. શિષ્ય જાણે છે કે આવી ભૂમિકા આવવી એ શ્રીગુરુની અપાર કૃપાનું જ ફળ છે. શ્રીગુરુની કોઈ પણ સ્પૃહા વિનાની કરુણાના પ્રતાપે જ પોતાનો ઉદ્ધાર થયો છે. શ્રીગુરુના પરમ સામર્થ્યવંત શરણ દ્વારા જ પોતાને આત્માની ઉપલબ્ધિ થઈ છે. શ્રીગુરુ દ્વારા આત્મપ્રાપ્તિ થઈ હોવાથી તેને સદ્ગુરુ પ્રત્યે અત્યંત આભારની લાગણી થઈ આવે છે, તે કૃતજ્ઞતાનો અનુભવ કરે છે. આમ, તેને સાધનામાર્ગની યથાર્થ સમજ આપનાર શ્રીગુરુનો અનુગ્રહ અંતરમાં સતત વેદાય છે.

શ્રીગુરુનો અમાપ ઉપકાર વેદાયો હોવાથી શિષ્યને પ્રત્યુપકારરૂપે તેમના ચરણમાં ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.૩૯૫ (પત્રાંક-૪૯૩, 'છ પદનો પત્ર') કંઈક ધરવાના વિકલ્પો થાય છે, પરંતુ સાથે સાથે તેને એ પણ ભાન હોય છે કે પ્રત્યુપકારની મારી કોઈ લાયકાત જ નથી. તેને સ્પષ્ટપણે ભાસે છે કે શ્રીગુરુએ જે આપ્યું છે એનો અનંતમો ભાગ પણ બદલામાં પોતે આપી શકે એમ નથી. નિષ્કારણ કરુણાના સાગર એવા નિઃસ્પૃહી શ્રીગુરુને આ દેહ, ધન, વૈભવની શી મહત્તા છે? આમ, પોતાની પાસે આપવા જેવું કંઈ ન હોવાથી તે નિરંતર શ્રીગુરુની ચરણસેવા ઇચ્છે છે. તે પોતાને આત્મજ્ઞાન પમાડનાર શ્રીગુરુના ચરણને આધીન વર્તવાનો નિર્ણય કરે છે. અત્યંત અહોભાવથી, પરિપક્વ પ્રેમ-શ્રદ્ધા-અર્પણતાના નિષ્કર્ષરૂપે તે નિશ્ચય કરે છે કે 'આ દેહાદિ સર્વ આજથી આપને આધીન પ્રવર્તો.'

શિષ્ય સંકલ્પ કરે છે કે 'આજથી હું શ્રીગુરુને આધીન પ્રવર્તીશ.' 'આજથી' શબ્દ શિષ્યનો અદમ્ય ઉત્સાહ દર્શાવે છે. શિષ્ય જાણે છે કે 'હવે મને એક દિવસ પણ ગુમાવવો પરવડે તેમ નથી. અત્યાર સુધી મેં ઘણો કાળ વ્યર્થ ગુમાવ્યો, પણ આજથી હું શ્રીગુરુને સમર્પિત રહી મારો પ્રત્યેક દિવસ સાર્થક કરીશ. હવે હું શ્રીગુરુના આશ્રયના બળ વડે પ્રત્યેક દિવસે આગળ ને આગળ વધીશ.' શિષ્ય નવા ઉત્સાહ અને શ્રદ્ધાથી આગળ વધવાનો ભાવ કરે છે. શિષ્ય આજથી નવું જીવન શરૂ કરવાનો દઢ નિર્ણય કરે છે. તેના આ સંકલ્પથી તેની પ્રગતિ અવશ્ય થશે. તેને સિદ્ધિ અવશ્ય મળશે. આજથી પ્રયત્ન શરૂ કરતાં તે એક દિવસ જરૂર પૂર્ણતાને પામશે.

શ્રીગુરુનો અસીમ ઉપકાર વેદાતો હોવાથી શિષ્ય શરીર અને અન્ય તમામ વસ્તુઓ જે વ્યવહારથી પોતાની માલિકીની ગણાય છે તે શ્રીગુરુને સમર્પિત કરે છે. તે તન, મન, ધનાદિ બધું શ્રીગુરુને અર્પિત કરી દે છે. તે શ્રીગુરુને પોતાનું ગણાતું સર્વ પરમ પ્રેમભાવથી અર્પણ કરે છે. તે પોતાની ગણાતી વસ્તુઓ ઉપરનો મમત્વભાવ, માલિકીભાવ છોડી દે છે અને તે વસ્તુઓ શ્રીગુરુની છે એવી રીતે તેની સાથે વ્યવહાર કરે છે. તે વસ્તુઓ પ્રત્યે તે દ્રસ્ટીપણાનો ભાવ રાખી તેનો ઉપયોગ કરે છે. શિષ્ય તે વસ્તુઓનો દ્રસ્ટી રહી તેનો શ્રીગુરુની આજ્ઞા પ્રમાણે ઉપયોગ કરે છે.

શિષ્યને શ્રીગુરૂ ઉપર એવો પ્રેમ જાગે છે કે તે પોતાનું સમસ્ત માલિકીપણું તેમને આપી દે છે અને સ્વેચ્છાએ સમર્પિત થઈ જાય છે. 'આ જગતમાં અદ્ભુત ગુણોના નિધિ અને સર્વથા સેવવા યોગ્ય આ મારા શ્રીગુરુ જ છે' એવો તેને નિશ્ચય રહે છે અને તે નિશ્ચયને અનુસરવાનો તે સર્વ શક્તિથી પુરુષાર્થ કરે છે. શ્રીગુરુને આધીન વર્તવાના દઢ નિશ્ચયપૂર્વક તે શ્રીગુરુની નિશ્ચામાં તેમની આજ્ઞાના આરાધનમાં લાગી જાય છે. તે અંતરતમમાં સદ્દ્ગુરુના ઉપકારના સ્મરણને સદૈવ જીવંત રાખી, સતત શ્રીગુરુની આજ્ઞા પ્રતિ ઝૂકેલો રહે છે.

શ્રીગુરુની ઇચ્છા તે જ તેમની આજ્ઞા છે. શ્રીગુરુએ આજ્ઞા વ્યક્ત કરવી પડે

એટલો પરિશ્રમ પણ સુશિષ્ય તેમને નથી આપતો. એ તો સામે ચઢીને પોતા માટેની શ્રીગુરુની ઇચ્છા શોધે છે અને તેને આજ્ઞારૂપ સમજીને તેનું આરાધન શરૂ કરે છે. તે શ્રીગુરુની ઇચ્છા જાણી શીધ્રમેવ તેને અનુરૂપ વર્તવાનો પુરુષાર્થ કરે છે. જેમને પોતાને પરમાંથી કંઈ જ લેવું નથી એવા શ્રીગુરુની ઇચ્છા તો શિષ્ય સ્વરૂપમાં ઠરે એ માટેની જ હોય.

દેહ ત્યાગવાનો પ્રસંગ આવે તોપણ શ્રીગુરુની આજ્ઞાને ગૌણ ન કરવી એવી ખુમારીપૂર્વક શિષ્ય શ્રીગુરુની આજ્ઞાનું પાલન કરે છે. પૂર્ણ સમર્પણભાવ હોય તો જ જીવ આજ્ઞાનું એકનિષ્ઠાએ આરાધન કરી શકે છે. સમર્પણ એટલે પોતાની ઇચ્છાનો ત્યાગ કરી, સદ્વગુરુની ઇચ્છાને સ્વીકારવી. સમર્પણમાં પોતાની ઇચ્છા પૂર્ણ કરાવવાના ભાવને કોઈ સ્થાન નથી. સદ્વગુરુ પોતાની ઇચ્છા અનુસાર વર્તે તેવા ભાવને સમર્પણમાં કદાપિ સ્થાન મળતું નથી. સમર્પણમાં કોઈ હઠાગ્રહને અવકાશ નથી. સમર્પણ એ તો સદ્વગુરુની મરજીનો આનંદથી કરેલો સ્વીકાર છે, જેમાં સંઘર્ષનો કોઈ પ્રશ્ન જ નથી. સમર્પણનો અર્થ છે 'આપની ઇચ્છાનુસાર જ થાઓ.' 'જેવી આપની મરજી.' 'મારે જે જોઈએ છે તે કેવી રીતે પામવું એમ નહીં, પણ આપ જે ઇચ્છો છો તેનો સ્વીકાર કઈ રીતે કરવો; આપની મરજી મને અનુકૂળ થાઓ એમ નહીં, પણ મારું મને અને મારાં વલણ આપની મરજી અનુસાર બદલું' એ સમર્પણનું સાચું સ્વરૂપ છે. પોતાની પકડ છોડી સદ્વગુરુ જે કરે તે કરવા દેવાની પૂર્ણ તૈયારી તે જ સાચું સમર્પણ છે.

જીવે સર્વાર્પણપણે સદ્ગુરુની ઉપાસના કરવી જોઈએ. તેણે સદ્ગુરુની આજ્ઞાનું પૂર્ણતઃ પાલન કરવું જોઈએ. કેવળ સદ્ગુરુની ચરણચંપી કરવાથી કે પ્રશંસા કરવાથી પ્રયોજન સિદ્ધ થતું નથી. સદ્ગુરુની આજ્ઞાનું પાલન એ જ સદ્ગુરુની સાચી ઉપાસના છે, જેના પ્રતાપે શિષ્ય સરળતાથી તથા શીધ્રતાથી પોતાના લક્ષ્ય સુધી પહોંચી શકે છે. સદ્ગુરુની આજ્ઞાનુસાર જીવન જિવાય તો જ તે જીવન સાર્થક છે. આયુષ્ય અલ્પ છે, બુદ્ધિ મંદ છે, કષાયોની તીવતા છે, વિષયોમાં લુબ્ધતા છે, માટે સદ્ગુરુની આજ્ઞાને માથે ચઢાવી વીતરાગી અભ્યાસમાં પ્રવૃત્ત થવું. અનાદિ કાળથી આત્મા મોહનિદ્રાને આધીન છે, તેને સદ્ગુરુની આજ્ઞાથી જગાડવો, કલ્યાણમાર્ગે પ્રેરવો.

સદ્ગુરુની આજ્ઞાને અંગીકાર કરવી એ જ કલ્યાણનો ઉપાય છે. આત્મકલ્યાણ માટે સદ્ગુરુ-આજ્ઞા એ મોટામાં મોટું સાધન છે. સદ્ગુરુની આજ્ઞાના અવિચળ આરાધન વિના સંસાર છૂટતો નથી. સદ્ગુરુની આજ્ઞામાં હંમેશાં પ્રવૃત્ત રહેવાનો બોધ જ્ઞાનીઓ નિરંતર આપે છે. ગચ્છાદિના મતમતાંતર, સંપ્રદાયના હઠાગ્રહ, શાસ્ત્રીય અભિનિવેશ આદિ કારણે જીવનું વિચારબળ કુંઠિત થઈ જાય છે; તેથી મતાગ્રહાદિનો ત્યાગ કરી, સત્યની જિજ્ઞાસા રાખી, સદ્ગુરુની આજ્ઞામાં પ્રવૃત્ત રહેવા યોગ્ય છે. આજ્ઞાપાલનથી

વૃત્તિનું નિયંત્રણ થાય છે, મનની મનસ્વિતા કાબૂમાં આવે છે, સંયમ પુષ્ટ થાય છે, માનાદિ ભયંકર શત્રુઓ હણાતા જાય છે, દેહાધ્યાસનો પ્રભાવ ઓછો થાય છે, ન કલ્પેલાં કાર્યો કરવાની શક્તિ પ્રગટે છે, શાંતિ અનુભવાય છે. આજ્ઞાપાલનમાં ચિત્તને સ્થિર રાખતાં તેને અન્યત્ર જવાનો અવકાશ નથી મળતો, તેથી સાંસારિક વિકલ્પો અટકી જાય છે. આજ્ઞાપાલનથી સંસાર સંબંધીના વિકલ્પો દૂર થતાં જીવ અંતર પ્રતિ આગળ ધપે છે. કૃપાસિંધુ એવા સદ્દ્ગુરુની આજ્ઞાના પાલન દ્વારા સત્પાત્રતાવાન શિષ્યની વૃત્તિઓ સમસ્ત સંસારમાંથી સમેટાઈ જઈ ભીતર તરફ વળે છે.

સદ્ગુરુની આજ્ઞાનો આવો મહિમા હોવાથી સુપાત્ર જીવ સદ્ગુરુની આજ્ઞાનું અખિન્નપણે આરાધન કરે છે. તે શ્રીગુરુની આજ્ઞાને ધ્યાનમાં રાખી પોતાનાં પરિણામ તપાસતો રહે છે. દરેક કાર્યમાં 'હું કેમ વર્તું તો શ્રીગુરુને રુચે?' એમ વિચારી આત્માની પરિણતિ તે મુજબ કરે છે. તે વિચારે છે કે 'આવી પરિસ્થિતિમાં હું કઈ રીતે વર્તીશ તો શ્રીગુરુને ગમશે?' 'આ સમયે મારું કર્તવ્ય શું છે?' 'આ સમયે શ્રીગુરુની મારા માટે શું ઇચ્છા હશે?' શ્રીગુરુની ઇચ્છા અંગેની વિચારણા થતાં તેની મનોસ્થિતિ તરત બદલાઈ જાય છે. 'જે હું હાલ કરી રહ્યો છું તે શ્રીગુરુની ઇચ્છા અનુસાર હશે કે કેમ?' એટલો વિચાર થતાવેંત વર્તમાન કાર્યાદિમાં વિવેક અને સંયમ ઉમેરાઈ જાય છે. આથી વિપરીત, જે આચરણ વખતે શ્રીગુરુની ઇચ્છા – આજ્ઞાની વિચારણા નથી, તે આચરણથી તેની દશા અધોગામી બને છે. સુપાત્ર શિષ્ય હંમેશાં શ્રીગુરુની ઇચ્છા અનુસાર વર્તવાની રુચિ, જાગૃતિ રાખે છે. તે શ્રીગુરુની ઇચ્છા અનુસાર જીવી પોતાના આત્માનું દિન-પ્રતિદિન કલ્યાણ કરતો જાય છે. શ્રીગુરુની આજ્ઞાનું સેવન કરી તે પોતાની દશા વર્ધમાન કરતો જાય છે. દેહાદિ શ્રીગુરુને આધીન પ્રવર્તાવી તે આગળ વધતો જાય છે. ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા લખે છે –

'મન-વચન-કાયાના યોગ અને જગતમાં જે કંઇ પરિગ્રહાદિ મ્હારું ગણાય છે, તે સર્વ સદ્દગુદુ પ્રભુને આધીન વર્તો! હું આપ સદ્દગુદુ પ્રભુનો દાસાનુદાસ છું, દીન દાસ છું, ચરણરેણું છું – આમ આત્મનિવેદન કરતો શિષ્ય કેવી આત્મસમર્પણ ભાવના ભાવે, તેનું દર્શન કરાવતું આ મહાન આત્મસમર્પણ સૂત્ર આત્મસિદ્ધિશાસ્ત્રમાં આપ્યું છે. સદ્દગુદુના અનન્ય ઉપકારની અદ્દભુત ભાવના વ્યક્ત કરતા આ પરમ ભાવવાહી અમર સૂત્રની ભાવમાં બરોબરી કરી શકે એવું (તેવું) સમસ્ત વાલ્મયમાં બીજું સૂત્ર પ્રાયે મળવું દુર્લભ છે.'

શિષ્ય શ્રીગુરુને કહે છે કે 'હે પ્રભુ! હું આપનો દાસ છું, દાસ છું, દાસ છું. હું આપનો દીન દાસ છું.' શિષ્યને સદ્દગુરુ પ્રત્યે અપૂર્વ અહોભાવ વર્તે છે. તેને સદ્દગુરુ ૧- ડૉ. ભગવાનદાસ મહેતા, 'રાજજ્યોતિ મહાભાષ્ય', પૃ.૪૮૮-૪૮૯

પ્રત્યે પરમ વિનય વર્તે છે. તે મન, વચન, કાયા સર્વ દ્વારા તેમનો વિનય કરે છે. સદ્ગુરુ પ્રતિ મનમાં બહુમાન જાગૃત થવું તે સદ્ગુરુનો માનસિક વિનય છે. શબ્દો દ્વારા બહુમાન પ્રગટ કરવું, તેઓ વાત કરતા હોય ત્યારે વચ્ચે બોલવું નહીં, પૂછવું હોય તો વિનમતાથી પૂછવું વગેરે વાચિક વિનય છે. સદ્ગુરુને વંદન કરવાં, આગમન સમયે ઊભા થવું, ઉચ્ચાસન આપવું, તેમની પાછળ ચાલવું, પાદપ્રક્ષાલન કરી તેને મસ્તકે ધરવું વગેરે કાયિક વિનય છે. શિષ્યને સદ્ગુરુ પ્રત્યે અત્યંત મહિમા વર્તે છે. તેને સદ્દ્ગુરુમાં પ્રભુતુલ્ય ભાવ આવે છે અને આ પરમ દૈન્યપશું સૂચવે છે. આ વિષે શ્રીમદ્ એક પત્રમાં લખે છે —

'સત્પુરુષમાં જ પરમેશ્વર બુદ્ધિ, એને જ્ઞાનીઓએ પરમ ધર્મ કહ્યો છે; અને એ બુદ્ધિ પરમ દૈન્યત્વ સૂચવે છે; જેથી સર્વ પ્રાણી વિષે પોતાનું દાસત્વ મનાય છે અને પરમ જોગ્યતાની પ્રાપ્તિ હોય છે. એ 'પરમ દૈન્યત્વ' જ્યાં સુધી આવરિત રહ્યું છે ત્યાં સુધી જીવની જોગ્યતા પ્રતિબંધયુક્ત હોય છે.'

જીવને જ્યાં સુધી સદ્ગુરુ પ્રત્યે પરમેશ્વરબુદ્ધિ નથી આવતી ત્યાં સુધી અત્યંત ભક્તિ પ્રગટતી નથી. પરમેશ્વરબુદ્ધિ આવ્યા વિના, સદ્ગુરુના યોગથી આત્માને જે લાભ થવો જોઈએ તે થતો નથી. પરમેશ્વરબુદ્ધિ નથી આવતી ત્યાં સુધી જીવમાં યથાર્થ લઘુતા પણ નથી આવતી. એ બન્ને સાથે જ હોય છે. સદ્ગુરુ પ્રત્યે પરમ માહાત્મ્ય આવે તો જીવને પરમ લઘુત્વ આવ્યા વિના રહે નહીં. જો તેનામાં પરમ વિનયની ઓછપ હોય તો તેણે વિનયમાં વૃદ્ધિ કરી તે ઓછપને ટાળવી જોઈએ. તેણે પરમ વિનયમાં વર્તવું જોઈએ. જે પરમ વિનયાન્વિતપણે સદ્ગુરુને આધીન વર્તે છે તે અવશ્ય શાશ્વત મોક્ષમાર્ગને આરાધે છે અને તેના જીવનમાં સહજાત્મસ્વરૂપ પ્રગટ થતાં તે કૃતકૃત્ય થઈ જાય છે.

જેને પરમ દૈન્યત્વ ગુણ પ્રગટે છે તેને માત્ર શ્રેષ્ઠજનો પ્રત્યે આદર નથી હોતો, પરંતુ સર્વ જીવો પ્રત્યે આદર હોય છે. પરમ દૈન્યત્વ ગુણ પ્રગટતાં તે સર્વને આદર આપે છે. સર્વ જીવ પ્રત્યે, અસ્તિત્વમાત્ર પ્રત્યે તેને આદર હોય છે. જ્યારે પરમ દૈન્યત્વ પ્રગટે છે ત્યારે સર્વ પ્રાણી વિષે પોતાનું દાસત્વ મનાય છે. સદ્દ્ગુરુ પ્રત્યે પરમ વિનય પ્રગટવાના ફળરૂપે જીવનો બીજા સાથેનો વ્યવહાર પણ અત્યંત મધુર થઈ જાય છે. સર્વને વિષે તે પોતાનું દાસત્વ માને છે.

આમ, સદ્ગુરુ પ્રત્યે વિનય જાગવાથી એ લાભ થાય છે કે સર્વ જીવ પ્રત્યે પોતાનું દાસત્વ મનાય એવી વિનમતા પણ સાથોસાથ ઉત્પન્ન થાય છે. સદ્ગુરુની ઓળખાણ થતાં પોતાના સ્વરૂપની ઓળખાણ થાય છે, કર્મકૃત વ્યક્તિત્વનું અભિમાન ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૃ.૨૮૯ (પત્રાંક-૨૫૪) ઓગળી જાય છે અને પ્રાણીમાત્રમાં પોતાના જેવો જ આત્મા દેખાવાથી સૌની સેવાનો ભાવ ઊપજે છે. આ પરિણામ વિચાર કે તર્કથી સમજી શકાય એવાં નથી, વેદનથી જ સમજી શકાય છે. સદ્ગુરુની વિશેષ નિકટ રહેવા મળે, સેવામાં રહેવા મળે, પણ જો સૌનું દાસત્વ સ્વીકારવા જેટલાં કોમળ પરિણામ ન થાય તો તે દર્શાવે છે કે સદ્ગુરુની સાચી ઓળખાણ થઈ નથી, તેમના પ્રત્યે પરમેશ્વરબુદ્ધિ પ્રગટી નથી, તેમના પ્રત્યે પરમ વિનય જાગ્યો નથી, કેમ કે જો યથાર્થ ઓળખાણ થઈ હોય તો તેનું ઉપરોક્ત ફળ અવશ્ય દેખાવું જોઈએ.

શિષ્યને શ્રીગુરુમાં પરમેશ્વરબુદ્ધિ વર્તે છે અને તે પરમ દીનભાવે સદ્ગુરુના ચરણોમાં પોતાનું ગણાતું સર્વ સમર્પણ કરે છે. સમર્પણ કરતાં જ બધું પલટાઈ જાય છે અને તેના જીવનમાં કાંતિ ઘટિત થાય છે. પોતાનાં ગણાતાં દેહાદિ સર્વ શ્રીગુરુને આધીન પ્રવર્તાવવાનો તે નિશ્ચય કરે છે. સુશિષ્ય ભાવના કરે છે કે –

હે પરમકૃષાળુ સદ્ગુરુદેવ!

આપની અનુપમ ભક્તિના પ્રતાપે મારામાં શાંતિ, સંયમ, ધૈર્ય, સમતા અને દઢતાના ઉમદા ગુણો પ્રગટી રહ્યા છે; જેના સુંદર ફળરૂપે નિઃશંકતા, નિર્ભયતા અને નિઃસંગતાના નૂતન વિશ્વમાં હું ડગ માંડી શક્યો છું. હે નાથ! આપની ભક્તિનું ફળ આવડું મોટું છે તેની યથાર્થ પ્રતીતિ આ દાસના અંતરમાં નિશ્ચયે પ્રકાશિત થઈ છે. હવે એક ક્ષણ પણ મારે અટકવું નથી. આપની કૃપાથી અદ્ભુત પુરુષાર્થ ફોરવી, સમસ્ત પરભાવોથી રહિત થવું છે. મારે સમયે સમયે આપ પ્રભુનો સાથ પામવો છે અને આપના પવિત્ર ચરણથી ચિર અભેદતા સાધવી છે. તે અર્થે મારી વૃત્તિ અને પ્રવૃત્તિનો દોર હું આપના સમર્થ હાથમાં સોંપું છું. મારું સઘળું પ્રવર્તન મારી અલ્પ અને મંદ મતિ વડે નહીં પણ આપની મહાપ્રજ્ઞા દ્વારા સંચાલિત થાઓ. સદ્દગુરુની આજ્ઞામાં વર્તવાનો જેનો દઢ નિશ્ચય વર્તે છે અને જે તે નિશ્ચયને આરાધે છે, તેનું જ જ્ઞાન સમ્યક્પરિણામી થાય છે - આ વાત સદૈવ મારા લક્ષમાં રહો.

હે પ્રભુ! હવે તો એવા ભાવ રહે છે કે ગમે તે સંજોગોમાં પણ આ વિષમ સંસારયાત્રાનું શીધ્રતાથી સમાપન કરવું છે. તે માટે હે કરુણાસાગર ભગવંત! આપના પાવનકારી ચરણકમળમાં 'હું' અને 'મારું' કહેવાતું-ગણાતું સર્વસ્વ આપને અર્પણ કરી, આપનું અનન્ય શરણ અંતરના નિર્મળ ભાવથી સ્વીકારું છું. મન, વચન, કાયાથી હું આપનું દાસત્વ સ્વીકારું છું. કૃત, કારિત, અનુમોદનથી સર્વ પ્રકારે સર્વ કાળ આપની આજ્ઞાભક્તિમાં જ મારે રહેવું છે. મારું અલાયદું અસ્તિત્વ ઓગાળી મારે આપના સર્વ દાસના દાસનો પણ દાસ થઈ જીવન સાર્થક કરવું છે. આપના વચનામૃત, મુદ્રા અને સત્સમાગમના અભૂતપૂર્વ આશ્રયત્રયથી સંસારપરિભ્રમણના મૂળ કારણરૂપ રાગ-હેષ-

અજ્ઞાનનો નાશ કરવા હું કટિબદ્ધ થયો છું અને મને શ્રદ્ધા છે કે આ દાસ ઉપર નિરંતર વરસતી આપની મહત્ કૃપાના ફળરૂપે સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપ રત્નત્રયને પૂર્ણપણે આરાધી, ત્રણ લોકના નાથ સમાન મારું અવ્યાબાધ સહજાત્મસ્વરૂપ હું શીઘ્રમેવ પ્રગટાવી શકીશ.

હે કૃપામૃતસિંધુ! આપની સાથે કેવળ એકરૂપતા થતાં સુધી હું આપનો પરમ વિનયવંત દીન પૂજક રહું તેવા આ દાસને આશીર્વાદ આપશોજી.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે –

'આ દેહાદ આજશી, સદાકાળ થઈ શુદ્ધ; સર્વાર્પણ સદ્ વૃત્તિથી, વર્તો રહી અવિરુદ્ધ. આત્માનો પરિણામ જે, (તે) વર્તો પ્રભુ આઘીન; તે મહાલક્ષ વિલોકતાં, થાવું કદી ન દીન. સેવક જે તુજ ચરણનો, કિંકર બાળક બાપ; દાસ, દાસ હું દાસ છું, સદ્ગુણ આપ અમાપ. પરમ ઇષ્ટ વલ્લભ મને, આપથી કરો અભિન્ન; દાસ દાસ હું દાસ છું, તેહ-આપ પ્રભુનો દીન.' ધ

* * *

૧- 'રાજરત્ન યૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', યૃ.૨૪૬ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૫૦૧-૫૦૪)

४६२-१। गई दाभका दने, क्लिक जनाकी आहे,

ગાથા ૧૨૬માં સુશિષ્યે કહ્યું કે 'દેહ આદિ તમામ વસ્તુઓ જેના ઉપર **ભૂમિકા** મારી માલિકી ગણાય છે તે હું આજથી આપને સમર્પિત કરું છું, કારણ કે આપે મારા ઉપર અસીમ ઉપકાર કર્યો છે.' પોતે શ્રીગુરુનો દાસાનુદાસ છે, તેથી તેના દેહાદિ આજથી શ્રીગુરુની આજ્ઞા પ્રમાણે પ્રવર્તશે એમ સુશિષ્યે ભક્તિભાવથી આત્મ-નિવેદન કર્યું છે.

પોતાનું સર્વસ્વ અર્પણ કર્યા પછી પણ સુશિષ્યના ચિત્તમાંથી શ્રીગુરુના મહાન ઉપકારનું સ્મરણ ખસતું નથી. શ્રીગુરુએ કરેલ અપાર, અદ્દભુત, અલૌકિક ઉપકાર વારંવાર યાદ આવતાં તેનું હૃદય અહોભાવથી ઉભરાય છે. શ્રીગુરુએ તેના ઉપર કેવો ઉપકાર કર્યો છે તે દર્શાવતાં આ વિભાગની અંતિમ ગાથામાં તે કહે છે –

'ષદ્ સ્થાનક સમજાવીને, ભિન્ન બતાવ્યો આપ; આથા મ્યાન થકી તરવારવત્, એ ઉપકાર અમાપ.' (૧૨૭)

છયે સ્થાનક સમજાવીને હે સદ્દગુરુ દેવ! આપે દેહાદિથી આત્માને, જેમ મ્યાનથી તરવાર જુદી કાઢીને બતાવીએ તેમ સ્પષ્ટ જુદો બતાવ્યો; આપે મપાઈ શકે નહીં એવો ઉપકાર કર્યો. (૧૨૭)

શ્રીગુરુએ સમ્યગ્દર્શનના નિવાસભૂત એવાં આત્માનાં છ પદ જેમ છે તેમ manal સમજાવ્યાં. 'આત્મા છે', 'આત્મા નિત્ય છે', 'આત્મા કર્તા છે', 'આત્મા ભોકતા છે', 'મોક્ષ છે' અને 'મોક્ષનો ઉપાય છે' - એ છ સ્થાનકો વિષેની બધી શંકાઓ દૂર કરી તે છ પદ યથાતથ્ય સમજાવ્યાં, તેમજ પ્રયોજનભૂત અને ઉપાદેયતત્ત્વ એવો આત્મા સુપ્રતીત કરાવ્યો. જેમ મ્યાનથી તલવાર ભિન્ન છે, તેમ આત્મા શરીરથી ભિન્ન છે એમ સ્પષ્ટપણે સમજાવી તેનો અનુભવ કરાવ્યો.

દેહાદિથી સ્પષ્ટ જુદો એવો જ્ઞાયક આત્મા બતાવી, અનુભવ કરાવી શ્રીગુરુએ સુશિષ્ય ઉપર પરમ ઉપકાર કર્યો છે. શ્રીગુરુના અપૂર્વ બોધથી અનાદિ અજ્ઞાનરૂપી ૧- 'શિષ્યબોધબીજપ્રાપ્તિકથન' વિભાગની આ નવમી અને અંતિમ ગાથા છે. આ ગાથા પછી શિષ્ય કંઈ પણ કહેતો નથી અને શ્રીગુરુનું વક્તવ્ય તો પહેલેથી જ સમાપ્ત થઈ ગયું છે. આમ, ગાથા ૪૫થી શરૂ થયેલો ગુરુશિષ્યસંવાદ અહીં પૂર્ણતા પામે છે. ત્યારપછી ઉપસંહારરૂપે શ્રીમદ્ ૧૫ ગાથા દ્વારા અગત્યના મુદ્દાઓ અને સલાહરૂપ વચનો કહી 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'નો વિષય પૂર્ણ કરે છે.

અંધકારમાંથી સુશિષ્યનું અલૌકિક પ્રકાશમય ચૈતન્યલોકમાં પદાર્પણ થયું, તેમની કૃપાથી ઝળહળતો સમકિતસૂરજ ઊગ્યો અને સ્વાધીન, અખંડ, સુખમય નિજ સહજાત્મસ્વરૂપની તેને પ્રતીતિ થઈ. શ્રીગુરુએ યથાર્થ માર્ગદર્શનથી, બોધથી, પ્રેરણાથી પવિત્ર પરમાર્થમાર્ગમાં પ્રવેશ કરાવી; અપૂર્વ આત્મિક ગુણો પ્રગટાવવાનું સામર્થ્ય આપી તેને સહજાનંદનો સ્વામી બનાવ્યો. ખરેખર અચિંત્ય ચિંતામણિસ્વરૂપ, પરમ હિતકારી, પરમ અદ્ભુત, સર્વ દુઃખનો નિઃસંશય આત્યંતિક ક્ષય કરનાર, પરમ અમૃતસ્વરૂપ સર્વોત્કૃષ્ટ સમ્યક્ત્વના દાતા એવા શ્રીગુરુનો ઉપકાર અસીમ અને અપરંપાર છે.

બિશેષાર્થી આ લોક ત્રિવિધ તાપથી આકુળ-વ્યાકુળ છે. ઝાંઝવાના પાણી વડે તૃષા છિપાવવા ઇચ્છે એવો દીન છે. અજ્ઞાનના કારણે સ્વરૂપનું વિસ્મરણ થઈ જવાથી ભયંકર દુઃખદાયક પરિભ્રમણ જગતના જીવોને પ્રાપ્ત થયું છે. તેઓ સમયે સમયે સંયોગજન્ય ખેદ, જ્વરાદિ રોગ, મરણાદિ ભય, વિયોગાદિ દુઃખ અનુભવે છે. કેવળ અશાતામય એવા આ સંસારમાં સર્વ જીવ સુખને ઇચ્છે છે. દુઃખ સર્વને અપ્રિય હોવાથી દુઃખથી મુક્ત થવા સર્વ જીવ ઇચ્છે છે, છતાં પણ તેઓ દુઃખથી છૂટી સુખ પામી શકતા નથી. પ્રાણીમાત્રને દુઃખ અણગમતું હોવા છતાં તથા તે ટાળવા અર્થે સર્વ કોઈ પ્રયત્ન કરતા હોવા છતાં તે દુઃખ મટતું નથી. અશરણતાવાળા આ જગતને એક સદ્ગુરુ જ શરણરૂપ છે. સદ્ગુરુની વાણી વિના કોઈ એ તાપ અને તૃષા છેદી શકે નહીં એમ સર્વ બુધજનનો નિર્ધાર છે.

આત્મવિકાસ માટે સદ્ગુરુનો સમાગમ ખૂબ આવશ્યક છે. દુનિયાની ચાલ તો ઊંધી છે. સદ્ગુરુના સમાગમ દ્વારા સાચી દિશા પકડાય છે. જીવ સદ્ગુરુના સાન્િધ્યમાં આવે ત્યારે તેનું હૃદય પાવન થાય છે, મન સ્થિર થાય છે, ધર્મ સાચો છે અને દુન્યવી લાભ ખરેખર લાભ નથી એની આપોઆપ ખાતરી થાય છે. સદ્ગુરુના સંગથી આજ સુધી અપરિચિત રહેલી નિજાત્માની ઐશ્વર્યતા અને વિરાટતાનો પરિચય થાય છે. સદ્ગુરુની આત્માનંદી મુદ્રા, સમતામય દૃષ્ટિ અને વીતરાગતાસભર ચર્યા નિહાળતાં પોતાના આત્માના અપરંપાર ગુણોનું લક્ષ થાય છે, જ્ઞાયકતાનું ભાન જાગૃત થાય છે. સદ્ગુરુના સંગમાં તેમની નિરાલંબદશાના અવલોકનથી દ્રવ્યસ્વતંત્રતા ઉપર ભરોસો બેસે છે. સ્વરૂપસ્થ સદ્ગુરુના દર્શનમાત્રથી કર્તૃત્વભાવ છોડી દ્રષ્ટાસ્વભાવમાં ઠરવાની પ્રેરણા મળે છે, ઉત્સાહ સાંપડે છે, ઉપાય જડે છે. માટે જે જીવે આત્માનું કલ્યાણ કરવું હોય તેણે દુર્લભ એવો સદ્ગુરુનો સત્સંગ સેવવો જોઈએ, કેમ કે તે જ આત્મહિતનો સર્વોત્કૃષ્ટ ઉપાય છે.

આત્માને વિભાવથી મુક્ત કરવાને અર્થે અને સ્વભાવથી યુક્ત રહેવાને અર્થે જો કોઈ પણ મુખ્ય ઉપાય હોય તો તે આત્મારામ એવા સદ્ગુરુનો નિષ્કામ બુદ્ધિથી ભક્તિયોગરૂપ સંગ છે. આવા આત્મારામ પુરુષ તો સદા આત્મામાં લીન રહે છે, પરંતુ નિષ્કારણ કરુણાથી અન્ય જીવનું કલ્યાણ કરવા જ તેઓ તેને સત્સમાગમ બક્ષે છે. સ્વિલારી સદ્દ્ગુરુ પોતે તો નિઃસ્પૃહ પુરુષ છે, પરંતુ પરમ કારુણ્યવૃત્તિથી જ તેઓ વચનયોગમાં પ્રવૃત્ત થાય છે અને વાણીમાં જેટલું આવી શકે તેટલું કહી મૌન થઈ જાય છે.

સદ્ગુરુ જીવનું દુ:ખ નાશ કરવા દિવ્ય વાણી દ્વારા તેને સ્વરૂપનું ભાન કરાવે છે. તેઓ અમીદષ્ટિ વરસાવી પ્રેરણા કરે છે કે 'હે જીવ! ભાંતિજન્ય સર્વ દુ:ખોનો અંત ત્યારે જ શક્ય છે જ્યારે તું તારા ત્રિકાળી સ્વરૂપમાં દક્ષ બને. તે અર્થે તારે માત્ર અંતર્દષ્ટિ કરવાની છે. અંતર્મુખ થતાં દુ:ખ સ્વયમેવ નાશ પામે છે. તું જિંદગીભર લક્ષ્મી અને અધિકાર પાછળ દોડતો રહ્યો છે, પરંતુ તે મળવા છતાં તને સુખ-શાંતિ પ્રાપ્ત નથી થયાં. તું આજ સુધી દુ:ખ અને અશાંતિ જ ભોગવતો રહ્યો છે, માટે પ્રમાદ છોડી હવે સ્વસ્વરૂપને ભજ. આ જીવનમાં આત્માનો લક્ષ સૌથી પ્રથમ કર્તવ્ય છે. દેહથી ભિન્ન, સ્વપરપ્રકાશક, પરમજ્યોતિસ્વરૂપ એવો આ આત્મા, તેમાં નિમગ્ન થવા યોગ્ય છે. અંતર્મુખ થઈ, સ્થિર થઈ, તે આત્મામાં જ રહેવાથી અનંત અપાર આનંદ અનુભવાશે. ત્રિકાળી જ્ઞાયકના આશ્રયે અનંત સુખમય સ્વપરિશતિ પ્રગટશે.'

સદ્ગુરુનો ઉપદેશ અનુભવ સહિત હોવાથી એ ઉપદેશ અન્ય જીવને જાગૃત કરે છે. સદ્ગુરુની વીતરાગવાણી જીવને નિશદિન મોક્ષમાર્ગમાં પ્રેરે છે. પરમકૃપાળુ સદ્ગુરુની વાણી જીવને મોક્ષમાર્ગે દિશા આપે છે, વેગ આપે છે, સંવેગ આપે છે, સંકલ્પબળ આપે છે. એના પ્રકાશમાં જીવ પોતાના ચૈતન્યદેવનો ચમત્કાર તરત પકડી શકે છે. સદ્ગુરુનાં અમોઘ રામબાણ જેવાં વચનામૃતને જે સત્પાત્ર જીવ ઉલ્લસિત ભાવથી સાંભળે છે, તે જીવ જડ-ચેતનને યથાર્થપણે ભિન્ન સ્વરૂપે પ્રતીત કરે છે, અનુભવે છે, અનુક્રમે સ્વરૂપસ્થ થાય છે.

જીવને નિજસ્વરૂપનું ભાન કરાવી, શુદ્ધ સ્વરૂપમાં સ્થિતિ કરાવનાર કોઈ હોય તો તે એકમાત્ર સદ્ગુરુ અને તેમની બોધવાણી છે. એ વાણી મૃતને સજીવન કરે છે. સંજીવની ઔષધિરૂપ એ વચનનાં ઊંડાણ, રણકાર અને પડકાર કાંઈક જુદાં જ છે. પ્રબળ પુરુષાર્થ જગાવી મિથ્યાત્વના તો એ ભૂકા કરી નાંખે છે. સદૈવ સ્વરૂપનો મહિમા ગાનાર આ વચનોનું શ્રવણ, મનન અને નિદિધ્યાસન આત્માને ઉજ્જવળતા અપીં ભવસાગર પાર કરાવે છે. અપૂર્વ અર્થનું નિરૂપણ કરનાર પરમશાંતરસપ્રતિપાદક તેમનો બોધ સદૈવ પૂર્વાપર અવિરોધ હોય છે અને એ એકમાત્ર આત્માર્થને જ ઉપદેશે છે. એમાં કોઈ નય ક્યારે પણ દુભાતો નથી. અહો! સદ્ગુરુની આશયગંભીરતા, ધીરજ, ઉપશમ અને અચળ આત્મસામર્થ્ય! અહો! અહો! વારંવાર અહો!

શ્રીગુરુએ સુશિષ્યને આત્માનું હોવાપશું, ત્રિકાળી ટકવાપશું, કર્તાપશું, ભોક્તા-પશું, મોક્ષનું હોવાપશું અને મોક્ષનો ઉપાય એવાં છ પદો યુક્તિયુક્ત દલીલોથી સમજાવ્યાં. વળી, સ્યાદ્વાદસિદ્ધાંતને લક્ષમાં રાખી નિશ્ચય અને વ્યવહાર એમ બન્ને પડખાંથી તત્ત્વને સમજાવી, તેના સર્વ સંશયોનું સચોટ સમાધાન આપી, અવિરુદ્ધ નિશ્ચય કરાવ્યો.

આ છ પદ સમ્યગ્દર્શનને રહેવાનાં ઠેકાજ્ઞાં છે એમ જ્ઞાનીપુરૃષોએ કહ્યું છે, કારણ કે જેમ છે તેમ આત્માનું સ્વરૂપ સમ્યક્ષણે પ્રતીત થવું એ સમ્યગ્દર્શન છે અને આ છ પદના નિશ્ચયથી આત્માનું સમ્યક્ સ્વરૂપ સમજાય છે. આ છ પદનો વિવેક જીવને સ્વસ્વરૂપ સમજવાને અર્થે કહ્યો હોવાથી શ્રીગુરૃએ આ ષટ્પદની દેશનામાં આત્માને પરથી ભિન્ન સિદ્ધ કરી, આત્માને પ્રસિદ્ધ કરવાનું પ્રોત્સાહન આપ્યું છે.

શ્રીગુરુએ ષટ્સ્થાનક સમજાવી દેહાદિથી, અર્થાત્ દેહ, કર્મ અને રાગથી ભિન્ન એવા ત્રિકાળી શુદ્ધ જ્ઞાનાનંદસ્વભાવી આત્માની ઓળખાણ કરાવી છે. મ્યાનથી ભિન્ન તલવારની જેમ દેહથી આત્માનું સ્વરૂપ ભિન્ન છે એમ બતાવ્યું છે. જેમ મ્યાનમાં રહેલી તલવાર મ્યાનથી ભિન્ન છે, તેમ આ દેહદેવળમાં બિરાજમાન આત્મા દેહથી ભિન્ન છે. બહારથી જોતાં માત્ર મ્યાન દેખાય છે, પણ મ્યાનથી તલવાર જુદી છે; તેમ અબુધ જીવોને માત્ર દેહ જ દષ્ટિમાં આવે છે, આત્મા નહીં; પણ આત્મા દેહથી સર્વથા ભિન્ન જ છે.

આત્મા અને શરીર આ બન્ને પદાર્થ સર્વથા ભિન્ન હોવા છતાં પણ એક જ ક્ષેત્રમાં સાથે વસેલાં છે. એકસાથે રહેલાં બે તત્ત્વ સંયોજન(compound)રૂપે પણ હોઈ શકે અને મિશ્રણ(mixture)રૂપે પણ સાથે હોઈ શકે. આત્મા અને દેહ જો સંયોજનરૂપે હોય તો કોઈ ત્રીજો નવો જ પદાર્થ ઉત્પન્ન થઈ જાય અને તેના ગુણધર્મો પણ સાવ જુદા જ હોય. જો આત્મા અને અનાત્મા (દેહ) પોતાના ગુણધર્મો ખોઈ બેસે તો તો કોઈ આત્મા પાછો પોતાના મૂળ સ્વરૂપમાં આવી જ ન શકે અને ક્યારે પણ મુક્ત ન થઈ શકે. પરંતુ એવું નથી. જેમ તેલ અને પાણીને ગમે તેટલાં ભેગાં કરવામાં આવે તોપણ તે એકાકાર થતાં નથી, તેમ આત્મા અને પુદ્દગલ એકાકાર થતાં નથી. આત્મા અને પુદ્દગલ ગમે તેટલાં સાથે રહે તોપણ કોઈ દિવસ તે સંયોજનરૂપ થતાં નથી, એટલે કે એકાકાર થઈ જતાં નથી, હંમેશાં મિશ્રણરૂપે જ રહે છે.

આત્મા અને દેહ મિશ્રણરૂપે રહેલા છે, પોતપોતાના ગુણધર્મ જાળવીને એક જ ક્ષેત્રમાં સાથે રહેલા છે અને તેથી તે છૂટા પાડી શકાય છે. જેમ સોનામાં તાંબુ, પિત્તળ, રૂપું આદિ ધાતુઓનું મિશ્રણ થઈ ગયું હોય તોપણ તે ભિન્ન ભિન્ન ઘટકોના ભિન્ન ભિન્ન ગુણધર્મોને જાણનાર માણસ તેને છૂટાં પાડી શકે છે; તેવી જ રીતે આત્મા-અનાત્માના ગુણધર્મો જે જાણે છે તે તેને છૂટા પાડી શકે છે.

આત્મા-અનાત્મા સંયોગ સંબંધે ભેગા થાય છે, પણ એકાકાર થતા નથી, કારણ કે બન્ને ટંકોત્કીર્ણ સ્વભાવવાળા છે. એક દ્રવ્ય બીજા દ્રવ્યનું કંઈ કરી શકતું નથી, એ તેના ટંકોત્કીર્ણ સ્વભાવના કારણે છે. ટંકોત્કીર્ણ સ્વભાવ હોવાથી બન્ને પોતપોતાના ગુણધર્મો જાળવી રાખે છે. બન્નેના ગુણધર્મો ક્યારે પણ બદલાતા નથી. પુદ્રગલ સાથે દીર્ધ કાળ રહેવા છતાં શુદ્ધ ચેતન ટંકોત્કીર્ણ સ્વભાવના કારણે ક્યારે પણ પુદ્રગલ સાથે તન્મયાકાર થતું નથી, એકત્વભાવને પામતું નથી, સર્વથા જુદું જ રહે છે. અજ્ઞાની જીવને ભાંતિના કારણે તે તન્મયાકાર ભાસે છે.

જેમને આત્મા-અનાત્માની ભિન્નતાનો યથાર્થ બોધ થયો છે, તેઓ શરીર સાથે પોતાને જોડતા નથી. 'શરીર સાથે મારો કિંચિત્માત્ર પણ સંબંધ નથી. શરીરની અંદર રહીને પણ શરીરથી જુદો એવો હું સ્વપરપ્રકાશક, પરમજ્યોતિસ્વરૂપ, ચિંદાનંદધન પદાર્થ છું' એવો તેમનો સ્વ અંગેનો દઢ નિર્ધાર હોય છે. જેને આ ભિન્નતાનો બોધ નથી, તે આત્મા-અનાત્મામાં ભેળસેળ કરી નાખે છે. શરીરના સ્તર ઉપર જીવનારને એ વાતનો અહેસાસ પણ નથી હોતો કે શરીરથી ભિન્ન એવું પોતાનું કોઈ સ્વતંત્ર અસ્તિત્વ છે. આ શરીરની અંદર, છતાં શરીરથી જુદું એવું એક તત્ત્વ પણ ત્યાં વસેલું છે, જે પ્રત્યે તે સભાન હોતો નથી.

અજ્ઞાની જીવને શરીર સાથે એવો તાદાત્મ્ય સંબંધ હોય છે કે તેને એમ લાગે છે કે 'શરીર એ જ હું છું.' તે શરીરને પોતાનું અસ્તિત્વ માનતો હોવાથી શરીર થાકી જાય તો પોતે થાકી ગયો એમ માને છે; શરીરને ભૂખ લાગે તો પોતાને ભૂખ લાગી એમ માને છે; શરીરને ભૂખ લાગે તો પોતાને ભૂખ લાગી એમ માને છે. આમ, શરીરનાં બધાં દુઃખ તેનાં દુઃખ બની જાય છે. શરીરનો જન્મ, શરીરનું ઘડપણ, શરીરનું મૃત્યુ બધું તેનું બની જાય છે. અજ્ઞાની હંમેશાં બહારથી બધું જોવાને ટેવાયેલો છે, તેથી તે શરીરને જ ઓળખે છે, શરીરને જ પોતાનું સ્વરૂપ માને છે. એના જેવી અન્ય કોઈ ભ્રાંતિ નથી.

વસ્તુ પોતાની ન હોય, પરંતુ તેનો માત્ર ક્ષણિક સંયોગ થયો હોય, તોપણ એટલામાત્રથી તેના ઉપર માલિકીભાવ કરવો એ તો મહા અનીતિ છે. શરીર તો પુદ્દગલદ્રવ્ય છે, તેને જીવ 'મારું' કઈ રીતે કહી શકે? જીવ શરીરમાં માલિકીભાવ સેવે એ તો મહા અનાચાર છે. જીવ જો શરીર પ્રત્યેનો માલિકીભાવ પોષતો હોય તો જ્ઞાનીની દષ્ટિએ તે ભયંકર અનીતિ આચરી રહ્યો છે.

જીવ જે વસ્તુ ઉપર પોતાનું માલિકીપશું માને છે, તે વસ્તુ તેને આવરણરૂપ

બની જાય છે. જીવ ચૈતન્યજ્યોતિ છે અને શરીર તેનાથી ભિન્ન દ્રવ્ય છે, છતાં તેણે શરીરમાં માલિકીભાવ કરીને શરીરને પોતાનું આવરણ બનાવી દીધું છે. તે જરા પણ વિવેક રાખ્યા વિના, બેભાન બનીને પોતાના માલિકીપણાનું ક્ષેત્ર વધારતો જ જાય છે. માલિકીભાવનો વિસ્તાર જેટલો વધે છે, એટલું દુઃખ વધે છે. જીવ માલિકીભાવ ક્યાં ક્યાં વિસ્તારીને બેઠો છે એ તેણે ચકાસવું જોઈએ. અન્યનો માલિક થવા જે જતો નથી, તે જ પોતાના સ્વાધીન શાશ્વત આનંદનો સ્વામી બને છે.

ધર્મની શરૂઆત એ બોધની પ્રાપ્તિમાં છે કે 'પોતે માત્ર જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા છે, શુદ્ધ ચેતના છે.' જેટલો તે પોતાની શુદ્ધ ચેતના સાથે પરિચિત થતો જાય છે, એટલો શરીરાદિ જડ પદાર્થો સાથેનો તેનો સંબંધ તૂટતો જાય છે. આમ થાય છે ત્યારે એક એવી ઘડી આવે છે કે જ્યારે તેને દેહથી પૃથક્ જ્ઞાનની જ્યોતિનો અનુભવ થાય છે. ચેતના અને શરીર જો એક ક્ષણ માટે પણ અલગ જણાઈ જાય તો તેનું ફળ બહુ મોટું આવે છે. મૃત્યુ બાબતનો તમામ ભય એ જ ક્ષણથી સમાપ્ત થઈ જાય છે, કારણ કે હવે તેણે જાણી લીધું છે કે તે શરીર નથી, પણ શરીરથી પર એવું શાશ્વત દ્રવ્ય છે. શરીર નષ્ટ થઈ જાય તોપણ તે નષ્ટ થનાર નથી. આ પ્રતીતિ, અમરત્વનો આ અનુભવ, મૃત્યુથી પર એવા જગતમાં પ્રવેશ એ જ સાધનાનો સાર છે. 'શરીરથી હું ભિન્ન છું' એ તથ્યને અનુભવના સ્તરે જાણી લેવું એ જ ધર્મનો મર્મ છે.

આવો દેહથી ભિન્ન આત્માનો અનુભવ સદ્ગુરુની અનન્ય કૃષા દ્વારા પ્રગટે છે. સદ્ગુરુની કૃપાદષ્ટિથી જીવના દેહાત્મબુદ્ધિના અનાદિ ગાઢ પડળ છેદાઈ જાય છે. સદ્ગુરુની આજ્ઞાના એકનિષ્ઠ આરાધનથી દેહાધ્યાસના સંસ્કારોનો અવશ્ય નાશ થાય છે. કોઈ જીવને છીંકણી સૂંઘવાની ટેવ હોય, દિવસમાં ૫૦-૧૦૦ વાર છીંકણી સૂંઘતો હોય; તે જીવ આ ટેવ છોડવાનો સંકલ્પ કરે તોપણ તેને એકદમ છોડવી અત્યંત કષ્ટરૂપ છે; પણ જો તે અત્તર સૂંઘવાની ટેવ પાડે તો તેની છીંકણી સૂંઘવાની ટેવ આપોઆપ છૂટી જાય છે. એ પ્રમાણે જીવ જો સદ્ગુરુના બોધના ઘોલન વડે આત્મભાવના કરે તો તેના દેહાધ્યાસના કુસંસ્કાર ઝડપથી તૂટી જાય છે.

શ્રીગુરુએ શિષ્યને દેહથી ભિન્ન આત્મા બતાવ્યો. તેમણે શિષ્યને અનુભવપૂર્વકનો નિશ્ચય કરાવ્યો. તેને અનુભવ સહિતની પ્રતીતિ થઈ કે 'હું દેહથી ભિન્ન છું. હું અચળ આત્મા, મારા સહજ પરમાત્મસ્વરૂપમાં જ નિવાસ કરી રહ્યો છું. ચલમાં રહ્યો હોવા છતાં પણ હું તો અચળ છું. આ દેહ ચલ છે, પણ તેની ભીતર રહેલો હું અચળ છું. દેહનો મારી સાથે કોઈ સંબંધ નથી. હું તો અમૂર્ત જ્ઞાનમાત્ર છું. ક્યારે પણ મારો વિનાશ થતો નથી. જેમ વસ્ત્ર નષ્ટ થતાં દેહ નષ્ટ નથી થતો, તેમ દેહ નષ્ટ થતાં હું નષ્ટ નથી થતો. હું જ્ઞાયક આત્મા છું, પરિપૂર્ણ છું, અવિનાશી છું, આનંદસ્વભાવી છું.

ભલે દેહની ગમે તેવી અસહ્ય સ્થિતિ થાય, વ્યાધિ આવે, કફ વધી જાય, શરીર કંપવા લાગે, તેનો નાશ થઈ જાય પણ એમાં મને કોઈ દુઃખ નથી. દેહનું જે કંઈ પણ થાય, એનો હું તો માત્ર જ્ઞાતા છું.' સર્વથી નિરાળું એવું જે જ્ઞાનમાત્ર સ્વરૂપ છે તે સ્વરૂપનું જ અખંડ ધ્યાન રહે એવી તેને ભાવના રહે છે.

શ્રીગુરુએ શિષ્યને જડ-ચેતનનાં ભિન્ન લક્ષણો બતાવી સ્વ-પરનું ભેદજ્ઞાન કરાવ્યું. ભેદજ્ઞાન એ મોક્ષનો માર્ગ છે. ભેદજ્ઞાન વિના મોક્ષપદની પ્રાપ્તિ થવી શક્ય જ નથી. જીવાજીવની પ્રતીતિ તે સમ્યગ્દર્શન છે અને તે માટેનું સત્સાધન છે ભેદજ્ઞાન. ભેદજ્ઞાન લારા જીવાજીવની, અર્થાત્ સ્વ-પરની યથાર્થ પ્રતીતિ થાય છે. ભેદજ્ઞાન એટલે શું? ભેદજ્ઞાન એટલે ભિન્નતાનો બોધ. પરંતુ માત્ર આટલા અર્થથી મોક્ષમાર્ગનું પ્રયોજન સાધી શકાતું નથી. કોઈ પણ બે દ્રવ્ય વચ્ચેની ભિન્નતાનો બોધ કાર્યકારી નથી થતો. કોઈ પણ બે દ્રવ્ય વચ્ચે ભિન્નતાનો બોધ અથવા કોઈ પણ બે પક્ષ કે બાબતો વચ્ચે ભેદ પાડવાથી યથાર્થ ફળ આવતું નથી. ભેદજ્ઞાન એટલે એવા બે પક્ષ વચ્ચે ભેદ પાડવો કે જેમાં એક પક્ષ 'હું' હોય. જે બે પક્ષ વચ્ચે ભિન્નતા કરવામાં આવે તે બેમાંથી એક પક્ષમાં પોતે હોવું જરૂરી છે. એક તરફ હું પોતે અને બીજી તરફ અન્ય સર્વ બાબતો - એમ બન્નેનાં લક્ષણો જાણી ભેદ કરવો એ છે ભેદજ્ઞાન. દા.ત. રિશયા અને ચીનનો તુલનાત્મક અભ્યાસ કોઈ ભારતીય કરે એને ભેદજ્ઞાન ન કહેવાય, પરંતુ એ જ વ્યક્તિ જો ભારત અને ચીન વચ્ચેના સંબંધની અનેક પ્રકારે સમીક્ષા કરે તો એ ભેદજ્ઞાન ગણાય.

જેમ ઇંગ્લૅન્ડ અને ન્યૂઝીલેન્ડ વચ્ચે ક્રિકેટ મેચ રમાતી હોય ત્યારે તેમાં કોશ જીતે-હારે તેનો ભારતીયને ખાસ ફરક પડતો નથી, પણ મેચ જો ભારત અને પાકિસ્તાન વચ્ચે રમાતી હોય તો કરોડો ભારતીઓની આંખો ટી.વી. ઉપર મંડાઈ રહે છે અને કોણ જીતે છે તેની ઉત્કંઠા રહે છે, કારણ કે તે બેમાંથી એક પક્ષ પોતે છે. તેથી કોઈ પણ બે પક્ષ વચ્ચે નહીં પણ સ્વ અને પર વચ્ચે ભેદજ્ઞાન કરવાનું છે. શ્રીગુરુ દ્વારા ભેદજ્ઞાનની કળા શીખીને સ્વપરભેદજ્ઞાન કરતાં સ્વ અને પરની ઓળખાણ થાય છે. 'હું કોણ છું' તે સમજાતાં જ પોતાના પક્ષનો ખ્યાલ આવે છે અને આગળની વાતો સરળ અને સહજ બની જાય છે. મૂળમાં ભૂલ છે. 'હું' સમજવામાં જ ભૂલ થઈ

'जीवाजीवविभत्ती जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी ।

रायादिदोसरहिओ जिणसासण मोक्खमग्गगुत्ति ।।'

(२) आयार्यश्री पूज्यपादस्वामीकृत, 'समाधितंत्र', श्लोक ७८ 'आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिक बहिः ।

तयोरन्तरविज्ञानादभ्यासादच्युतो भवेत् ।।'

૧- જુઓ : (૧) આચાર્યશ્રી કુંદકુંદદેવકૃત, 'ચારિત્રપાહુડ', ગાથા ૩૯

છે, તેથી વિરોધ પક્ષને જ પોતાનો પક્ષ સમજી તેની જ ફિકર કરવામાં આજ સુધી સમય ગુમાવ્યો છે.

ત્રાજવામાં જેમ બે જ પલ્લાં હોય છે, તેમ ભેદવિજ્ઞાનની પ્રક્રિયામાં પણ બે જ પક્ષ છે. ભેદવિજ્ઞાનમાં ત્રીજા પક્ષનું અસ્તિત્વ જ નથી. ત્રાજવાના એક પલ્લામાં 'હું' આવે છે અને બીજા પલ્લામાં 'અન્ય', અર્ઘાત્ 'હું' સિવાયની વિશ્વની તમામ વસ્તુઓ આવે છે. હું એટલે નિજાત્મા અને અન્ય એટલે નિજથી ભિન્ન જે કાંઈ છે તે બધું જ. અન્યમાં પુદ્ગલાદિ પાંચ અચેતન પદાર્થ, અર્ઘાત્ પુદ્ગલ, ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશ, કાળ એ પાંચ અજીવ દ્રવ્યો; તે ઉપરાંત અન્ય સર્વ જીવોની પણ ગણના થાય છે. પર એટલે માત્ર જડ નહીં પણ નિજાત્માથી ભિન્ન એવા સર્વ જડ અને ચેતન પદાર્થ તે પર. જે કંઈ સ્વસીમાની બહાર છે તે બધું પર.

પરથી ભિન્ન સ્વની ઓળખાણ કરવા માટે પરને જાણવું આવશ્યક છે. પરને જાણવું એ પણ સ્વની ઓળખાણ માટે છે, કેમ કે પરથી ભિન્ન એવા નિજાત્માને અનુભવવો છે. પરને ન જાણે તો તેમાં આત્મબુદ્ધિ થઈ જવાનો સંભવ છે, તેથી આત્માને જેનાથી ભિન્ન અનુભવવો છે એને પણ જાણવું એટલું જ જરૂરી છે. આત્માને જાણવામાં ભૂલ ન થઈ જાય તે માટે જ પરને જાણવાનું છે.

સ્વની પ્રતીતિ, જ્ઞાન અને લીનતા કરવાથી જ મોક્ષની પ્રાપ્તિ છે, પરંતુ સ્વને ઓળખવા માટે પરને જાણવાની જરૂર છે. શાસ્ત્રોમાં પરનું - પુદ્ગલનું વર્ણન આપવાનું પ્રયોજન એ છે કે જીવ સમજી શકે કે 'આ બધી પર્યાયો પરની - પુદ્ગલની છે, મારી નથી.' જીવ અનંત કાળથી પરમાં પોતાપણું સ્થાપીને બેઠો છે. હવે જો તેણે પરથી છૂટા થવું હોય તો પરનાં લક્ષણોનું યથાર્થ જ્ઞાન કરી લેવું જરૂરી છે. આ બધી પર્યાયો પરની - પુદ્ગલની છે એમ સમજાતાં જ મનમાં પ્રશ્ન ઊભો થાય છે કે 'તો પછી મારી પર્યાયો કઈ છે?' 'આ પરની - પુદ્ગલની પર્યાયો છે, મારી પર્યાયો નથી' એમ સમજાતાં જ દેષ્ટિ તેના ઉપર ટકતી નથી અને પોતાનું સ્વરૂપ કેવું છે તે જાણવાની તેને ઉત્સુકતા થાય છે. ઇન્દ્રિયો દ્વારા પરની - પુદ્ગલની પર્યાયો જાણવામાં રસ નથી રહેતો અને તેથી તે પોતાના સ્વરૂપને જાણવાને ઉત્સાહી થાય છે. પોતાનું સ્વરૂપ જાણવાથી 'એ જ હું' એમ લક્ષણો દ્વારા ખાતરી થતાં ચિત્ત ત્યાં જ રમમાણ રહે છે અને સ્વની અનુભૂતિ થાય છે.

આમ, પરને જાણવું જરૂરી તો છે, પરંતુ ભેદવિજ્ઞાનની પ્રક્રિયામાં પર ગૌણ છે, સ્વ મુખ્ય છે. પરને માત્ર જાણવાનું છે, જ્યારે સ્વને જાણીને તેમાં જામી જવાનું છે, તેમાં રમવાનું છે. પરને છોડવા માટે એને જાણવાનું છે, જ્યારે સ્વને ત્રહણ કરવા માટે એને જાણવાનું છે. શ્રીમદે સત્તર વર્ષની ઉંમર પહેલાં જે ૧૨૫ બોધવચનો લખ્યાં છે, તેમાં સ્વ-પર વિષે દસ બોલ લખ્યા છે, જેમાં પ્રથમ બોલમાં સ્વ અને પરને ભિન્ન ભિન્ન જુઓ એમ જણાવ્યું છે અને પછી તે બન્નેને ભિન્ન ભિન્ન જાણીને શું કરવું તે માટે બીજા નવ બોલ લખ્યા છે. જુઓ –

'સ્વદ્રવ્ય અન્ય દ્રવ્ય ભિન્ન ભિન્ન જુઓ.

સ્વદ્રવ્યના રક્ષક ત્વરાથી થાઓ.

સ્વદ્રવ્યના વ્યાપક ત્વરાથી થાઓ.

સ્વદ્ભવ્યના ધારક ત્વરાથી થાઓ.

સ્વદ્ભવ્યના ૨મક ત્વરાથી થાઓ.

સ્વદ્રવ્યના ગ્રાહક ત્વરાથી થાઓ.

સ્વદ્રવ્યની રક્ષકતા ઉપર લક્ષ રાખો (દો).

પરદ્રવ્યની ધારકતા ત્વરાથી તજો.

પરદ્રવ્યની રમણતા ત્વરાથી તજો.

પરદ્રવ્યની ગ્રાહકતા ત્વરાથી તજો.'

અહીં શ્રીમદ્ જણાવે છે કે હે જીવો! તીવ જિજ્ઞાસા વડે સ્વદ્રવ્યને જાણીને ત્વરાથી તેના રક્ષક થાઓ, તેના વ્યાપક થાઓ, તેના ધારક થાઓ, તેમાં રમણતા કરો, તેના ગ્રાહક બનો. સ્વદ્રવ્યની રક્ષકતા ઉપર લક્ષ રાખો. પરદ્રવ્ય આશ્રિત જેટલા ભાવો છે તે ભાવો આત્મામાં ધારણ કરવા જેવા નથી, તેની ધારકતા ત્વરાથી છોડવા જેવી છે, તેની રમણતા તથા ગ્રાહકતા છોડી તેનાથી વિરક્ત થાઓ.

જો જીવ પોતાને ભૂલીને, પોતાના સિવાય કોઈ પણ બીજા પદાર્થના અશ્રયે સુખ પ્રાપ્ત થશે એમ માને તો ત્યાં મિથ્યાત્વનું સેવન થાય છે અને તેથી તે દુઃખી થાય છે. 'મારું સુખ મારા આત્મામાં છે, કોઈ પણ સંયોગને આધીન મારું સુખ નથી, મારું જ્ઞાન જ સ્વયમેવ સુખ-શાંતિરૂપ છે' એમ જેને પોતાના જ્ઞાનસ્વભાવની ઓળખાણ થઈ નથી તેવો અજ્ઞાની જીવ 'મારું સુખ પરવસ્તુના આધારે છે અને પરસંયોગો અનુકૂળ હોય તો જ મારું સુખ ટકી શકે' એમ માને છે. તેનું મન હંમેશાં એમ ઇચ્છતું હોય છે કે 'પરપદાર્થો ભેગા કરીને હું સુખ માણું.' તેની તૃષ્ણાનો કોઈ અંત નથી હોતો. પરદ્રવ્યોના સંગ્રહમાં તેને પોતાની અધિકતા ભાસે છે. પરમાંથી સુખ લેવાનો અભિપ્રાય વર્તતો હોવાથી તે નિતનવીન વિકલ્પો કર્યા જ કરે છે. તે સુખ મેળવવા માટે વલખાં મારે છે. તે સદાય સંયોગોમાંથી સુખ ઇચ્છે છે. સ્વાધીન ૧- 'શ્રીમદ રાજચંદ્ર', છકી આવૃત્તિ, પૂ.૧૩ (આંક-પ, બોધવચન ૧૦૮-૧૧૭)

Jain Education International

સુખસ્વભાવને નહીં જાણતો હોવાથી તે સ્વતંત્ર થઈ શકતો નથી અને તે સંયોગોનો ગુલામ બની જાય છે. પોતાના સુખ માટે પરાશ્રય લેવો તે જ મહાન ગુલામી છે અને તે જ અનંત દુઃખ છે. આ ગુલામી જીવ અનાદિથી અજ્ઞાનવશ કરતો આવ્યો છે.

અનાદિથી પરાશ્રયની - ગુલામીની ટેવ હોવાથી અજ્ઞાની જીવ સુખની પ્રાપ્તિ માટે પરમાં ફેરફાર કરવારૂપ કર્તૃત્વબુદ્ધિ નિરંતર સેવી રહ્યો છે. આ મિથ્યાત્વને ટાળવા માટે, ઊંધી માન્યતાને સવળી કરવા માટે શ્રીગુરુ સમજાવે છે કે 'હે જીવ! તારો સ્વભાવ પરિપૂર્ણ છે, તારા જ આશ્રયે તને સુખ થાય છે. કોઈ બીજાનો આશ્રય કરવા જતાં તો દુઃખ અને બંધન જ થાય છે; સુખનો માર્ગ પરને આધીન નથી, પણ સ્વદ્રવ્યને આશ્રિત છે. તું જો તારું હિત કરવા ચાહતો હોય તો સ્વદ્રવ્યને જાણ, કેમ કે તારું હિત સ્વદ્રવ્યના આશ્રયે જ છે; પરદ્રવ્યના આશ્રયે તારું હિત નથી.'

શ્રીગુરુનાં આવાં પુરુષાર્થપ્રેરક વચનોએ સુશિષ્યની સુષુપ્ત ચેતનાને જાગૃત કરી. સુશિષ્યે પોતાના અમર્યાદિત સામર્થ્યવાન આત્માનો અશ્રય કર્યો. તેને સમસ્ત પરથી સ્વાત્માની ભિન્તતાનો અને જ્ઞાનમાં એકત્વતાનો નિર્ણય થયો. શ્રીગુરુનાં વીતરાગ-વચનામૃતના અવલંબને તેને દેહ અને જ્ઞાયક આત્માનું ભેદજ્ઞાન થયું. ચૈતન્યસ્વરૂપમાં ઊંડા ઊતરતાં તેને નિર્વિકલ્પ આત્માનુભવ પ્રગટ્યો, સમ્યક્ત્વની પ્રભુતા પ્રગટી. તેણે ચૈતન્યસ્વરૂપ આત્માને દેહથી પ્રગટ જુદો અનુભવ્યો. શ્રીગુરુના અનહદ ઉપકારનો જ આ પ્રતાપ છે. શ્રીગુરુએ જ સુશિષ્યને તેના સ્વરૂપનો નિશ્વય કરાવ્યો, જેના પરિણામે સ્વસ્વરૂપ પ્રગટ થયું. શ્રીમદ્ લખે છે –

'જે અચિંત્ય દ્રવ્યની શુદ્ધચિતિસ્વરૂપ કાંતિ પરમ પ્રગટ થઇ અચિંત્ય કરે છે, તે અચિંત્ય દ્રવ્ય સહજ સ્વાભાવિક નિજસ્વરૂપ છે એવો નિશ્ચય જે પરમ કૃપાળુ સત્પુરુષે પ્રકાશ્યો તેનો અપાર ઉપકાર છે.'^૧

શ્રીગુરુના અગિશત ઉપકારોની સ્મૃતિ અને તેમનું અચિંત્ય માહાત્મ્ય શિષ્યના અંતરમાં સદૈવ જાગૃત રહે છે. શ્રીગુરુના આ અમાપ ઉપકારનું સ્મરણ કરતાં સુશિષ્ય કહે છે કે 'વીતરાગશ્રુતનાં પરમ રહસ્યને આત્મસાત્ કરી, અન્યને તેનું દાન આપનાર પરમ નિઃસ્પૃહ અને કરુણાશીલ મહાત્માનો યોગ પ્રાપ્ત થવો અતિશય કઠણ છે. આપનો આવો મહાદુર્લભ યોગ પ્રાપ્ત થવાથી હું ભાગ્યશાળી બન્યો છું. આપનો અપ્રતિમ આધાર મને મળ્યો છે. હે તારણહાર સ્વામી! આપે મારું કાંડું પકડ્યું અને મને આપના પડખામાં રાખ્યો. આપની કરુણાનાં અમીછાંટણાં થયાં. આપના આશીર્વાદ મારા ઉપર વરસ્યા. આપની કૃયાના બળે મારા અભિપ્રાયની તમામ વિપરીતતાઓ વિલીન થઈ. સ્વરૂપજાગૃતિ પ્રેરતો આપનો અલૌકિક બોધ મને સાંપડ્યો અને મને સ્વ-પરની યથાર્થ ૧- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, પૃ.દર૦ (પત્રાંક-૮૩૩)

સમજણ થઈ. આપે કરાવેલ તત્ત્વશ્રદ્ધાથી અંતર્મુખી પુરુષાર્થ પ્રગટ્યો અને દેહથી ભિન્ન એવા નિજાત્માનો અનુભવ થયો. આપના અસીમ અનુગ્રહથી આપે દર્શાવેલ સ્વભાવ મારી પર્યાયમાં સાકાર થયો. આપે જેવો એક્ત્વ-વિભક્ત આત્મા બતાવ્યો, તેવો શુદ્ધાત્મા આપના પ્રતાપે મને પ્રાપ્ત થયો, તેથી ફરી ફરી હું આપનો ઉપકાર માનું છું. આપના આ ઉપકારનું સ્મરણ કરીને હું આપને ફરી ફરી નમસ્કાર કરું છું.'

શ્રીગુરુનો એ અચિંત્ય પરમ અદ્ભુત ઉપકાર છે કે તેમણે અનુભવેલ શુદ્ધાત્ય-સ્વરૂપના જ્ઞાન, આનંદ આદિ અનંત ગુણો શિષ્યમાં પણ પ્રગટે એવા કરુણામંડિત શુભાશયથી એ પ્રગટાવવાનાં ગૂઢ રહસ્યો સહજમાત્રમાં તેમણે સુશિષ્યને બતાવ્યાં. તેમણે સુશિષ્યને ષટ્સ્થાનક સમજાવીને મ્યાનથી તલવાર જેમ ભિન્ન છે, તેમ દેહાદિથી ભિન્ન આત્મા બતાવ્યો. આ તેમનો અમાપ ઉપકાર છે. શ્રીગુરુના આ અનહદ ઉપકાર વિષે ડૉ. તરુલતાબાઈ મહાસતીજી કહે છે —

'જીવને ધર્મની શરૂઆત સંવરથી થાય છે. તેમાં પ્રથમ સંવર તે સમ્યગૃદર્શન – બોધિબીજ, સમ્યગૃદર્શન આવે તો જ અનાદિના આરુવરૂપ મિથ્યાત્વ જાય. જ્યાં સુધી મિથ્યાત્વ પડ્યું છે ત્યાં સુધી ધર્મચાત્રા શરૂ થતી નથી...... છચે પદની વિશદ વ્યાખ્યા કરવાની સાથે શિષ્યને આંગળી પકડી ધર્મપથ પર મૂકી દીધો કે જેથી તેનો વિકાસ હવે વધતો ચાલશે. મિથ્યાત્વ આરુવ જેનો રોકાય અને સમકિત સંવર જેને થાય તેના આત્મપરિણામોમાં એવી જબરદસ્ત તાકાત પેદા થાય કે એ ભવે જ મુક્તિ લઇ લે. અને કદાચ પરિણામોની હાનિ-વૃદ્ધિ થયા કરતી હોય તો પણ એ જીવનો મોક્ષ તો નિશ્ચિત જ.'

પરમોપકારી શ્રીગુરુએ આત્માનું જે સમ્યક્ સ્વરૂપ બતાવ્યું હતું તે અનુભવમાં લેતાં સુશિષ્યે જગતની સૌથી મહત્ત્વપૂર્ણ અમૂલ્ય વસ્તુ પ્રાપ્ત કરી લીધી. સુશિષ્યના આત્મામાં આનંદરસની અપૂર્વ ધારા ઉલ્લસી. તેને નિરપેક્ષ, નિર્ભેળ, નિષ્કારણ આનંદની પ્રાપ્તિ થઈ. પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપ સાથે જોડાતાં તે કોઈ અપેક્ષા વિના, કોઈના આધાર વિના, કોઈની સહાયતા વિના, કોઈ ઉપર નિર્ભર રહ્યા વિના આનંદિત થયો. પૂર્વે કદી નહીં અનુભવાયેલી એવી ગંભીર શાંતિ પ્રગટી, કષાયભાવ છૂટતાં અકષાયી શાંતિ પ્રગટી, આત્માનો અનુભવ થતાં દુઃખ ગયું અને સુખ પ્રાપ્ત થયું, અશાંતિ શમી અને શાંતિ મળી, સંસારભાવ વિલીન થયો અને મોક્ષભાવ પ્રગટ્યો. આત્માની પરિણતિ સંસારથી છૂટીને ઝડપથી મોક્ષપુરી તરફ ચાલવા માંડી. હવે તે ભવવનમાં ભૂલો નહીં પડે. સમ્યગ્દર્શન પામીને તેનું જીવન ધન્ય બની ગયું.

સમ્યગ્દર્શનને શ્રાવણ માસની - વર્ષાઋતુની ઉપમા આપીને કવિ ભૂધરદાસજી ૧- ડૉ. તરુલતાબાઈ મહાસતીજી, 'હું આત્મા છું', ભાગ-૩, પૃ.પર તેનું નીચે પ્રમાણે ભાવવાહી વર્ણન કરે છે –

'અબ મેરે સમકિત સાવન આયો, બીતિ ફુરીતિ મિથ્યામતિ ગ્રીષમ, પાવસ સહજ સુહાયો.

ગુરુ ધુનિ ગરજ સુનત સુખ ઉપજે, મોર સુમન વિહસાયો; સાધક ભાવ અંકુર ઉઠે બહુ, જિત તિત હરષ સવાયો."

સમ્યક્ત્વરૂપી શ્રાવણ આવતાં અજ્ઞાનદશારૂપ ગ્રીષ્મ કાળના તીવ્ર આતાપો શમી જાય છે અને આત્મામાં ચૈતન્યરસની ધારા વરસે છે. શ્રીગુરુની ધ્વનિરૂપ મેઘગર્જના સાંભળીને સુખ ઊપજે છે અને ચિત્તરૂપી મયૂર નાચી ઊઠે છે. આત્મભૂમિમાં સાધકભાવરૂપી અંકુરા ઊગે છે અને અસંખ્ય આત્મપ્રદેશે સર્વત્ર આનંદ આનંદ છવાઈ જાય છે.

શ્રીગુરુની કૃપાથી દેહથી ભિન્ન ચૈતન્યનું અપૂર્વ વેદન થતાં જે શાંતિ અને આનંદનો અનુભવ થયો તે વાણીથી વર્ણવી શકાય એમ નથી. તે તો વિકલ્પથી પાર, વચનથી પાર, સ્વસંવેદનગમ્ય છે. આવી અવર્ણનીય અનુભૂતિ કરાવનાર શ્રીગુરુનો મહિમા પણ અવર્ણનીય છે. વચનામૃત, મુદ્રા અને સત્સમાગમ દ્વારા આત્મા તરફ લઈ જનાર શ્રીગુરુના ઉપકારોનું શું વર્ણન થાય? સુશિષ્ય આત્માની અવર્ણનીય અનુભૂતિથી પરમ તૃષ્તિ અનુભવે છે અને આ દશામાં કારણભૂત એવા શ્રીગુરુનો અવર્ણનીય અમાપ ઉપકાર વેદે છે.

છ પદના પત્રના ઉપસંહારરૂપે શ્રીગુરુના બોધને અંગીકાર કરવાથી પોતાના જીવનમાં કેવો મહાલાભ થયો છે તેનું સ્મરણ કરતાં શ્રીમદ્ લખે છે –

'જો કદી પ્રગટપણે વર્તમાનમાં કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થઇ નથી, પણ જેના વચનના વિચારયોગે શક્તિપણે કેવળજ્ઞાન છે એમ સ્પષ્ટ જાણ્યું છે, શ્રદ્ધાપણે કેવળજ્ઞાન છે એમ સ્પષ્ટ જાણ્યું છે, શ્રદ્ધાપણે કેવળજ્ઞાન થયું છે, ઇચ્છાદશાએ કેવળજ્ઞાન થયું છે, મુખ્ય નથના હેતુથી કેવળજ્ઞાન વર્તે છે, તે કેવળજ્ઞાન સર્વ અવ્યાબાદ્ય સુખનું પ્રગટ કરનાર, જેના યોગે સહજ માત્રમાં જીવ પામવા યોગ્ય થયો, તે સત્પુરુષના ઉપકારને સર્વોલ્ફ્રષ્ટ ભક્તિએ નમસ્કાર હો! નમસ્કાર હો!!'

અહીં શ્રીમદે જણાવ્યું છે કે ભરત ક્ષેત્રે આ કળિયુગમાં મનુષ્યદેહ ધારણ કર્યો છે અને તેથી પૂર્ણ પરમાત્મપદની યોગ્યતા આ ભવમાં દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવ જોતાં સંભવિત જણાતી નથી, છતાં પણ સદ્દ્યુરુના અપૂર્વ અલૌકિક ઉપદેશને ગ્રહણ કરવાથી અમારા

૧- કવિ ભૂધરદાસજી, 'અધ્યાત્મ ભજન ગંગા', પદ ૧, કડી ૨

૨- 'શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર', છક્રી આવૃત્તિ, યૃ.૩૯૫-૩૯૬ (પત્રાંક-૪૯૩, 'છ પદનો પત્ર')

વર્તમાન જીવનમાં કેવળજ્ઞાનની શક્તિરૂપે સ્પષ્ટપણે પ્રતીતિ થઈ ગઈ છે. સ્વાનુભૂતિથી પરમાત્મપદનો અમને નિઃશંકપણે જે નિશ્ચય થયો છે, તે શ્રી સદ્દ્ગુરુદેવની નિષ્કારણ કરુણાનું ફળ છે.

અમારા આત્મામાં કેવળજ્ઞાનની સ્પષ્ટ પ્રતીતિ થઈ હોવાથી અમને શ્રદ્ધા અપેક્ષાએ કેવળજ્ઞાન થયું છે. એકમાત્ર શુદ્ધ આત્માનો જ અમને લક્ષ રહે છે, તેથી વિચારદશાએ અમને કેવળજ્ઞાન પ્રગટ્યું છે. ત્રણ કાળ - ત્રણ લોકના સર્વોત્કૃષ્ટ દુન્યવી વૈભવને તરણાતુલ્ય તુચ્છ શ્રદ્ધીએ છીએ અને અંતરમાં તેને જરા પણ નથી ઇચ્છતા, એક કેવળજ્ઞાનને જ ઇચ્છીએ છીએ, તેથી ઇચ્છાદશાએ અમને કેવળજ્ઞાન થયું છે. શુદ્ધાત્મદ્રવ્ય કેવળજ્ઞાનમય હોવાથી મુખ્ય એવો જે દ્રવ્યાર્થિક નય તેની અપેક્ષાએ પણ અમને કેવળજ્ઞાન છે.

આ પ્રમાણે અમારા આત્મામાં ઉત્પન્ન થયેલું સ્વસંવેદનપ્રત્યક્ષ જે સમ્યક્ત્વ છે તે ક્રમે કરીને વધતું વધતું સર્વ મોહનીય કર્મનો નાશ કરી, અનંત અવ્યાબાધ સુખને પ્રગટ કરવાવાળું છે. આવી વિશિષ્ટ નિર્વિકલ્પ સમાધિ સુધી પહોંચવામાં જેમનાં વચનો, મુદ્રા અને સમાગમ અમને પરમ ઉપકારભૂત થયાં છે, જેમના યોગથી અમારા આત્મામાં ઊંચી ઊંચી અધ્યાત્મદશા પ્રગટ કરવાની યોગ્યતા પ્રાપ્ત થઈ છે, તેવા મૂર્તિમાન મોક્ષ-સ્વરૂપ શ્રી સત્પુરુષના ઉપકારને અમે ફરી ફરી પ્રણામ કરીએ છીએ. અનંત ઉપકારી, આત્મદાતા એવા સત્પુરુષના ચરણોમાં વારંવાર ભક્તિથી, અત્યંત અત્યંત ભક્તિથી, સર્વોત્કૃષ્ટ ભક્તિથી નમસ્કાર હો! નમસ્કાર હો! જો કે તેમના અપૂર્વ ઉપકારનો બદલો અમે કોઈ પણ રીતે વાળી શકવાને સમર્થ નથી, છતાં તેમના પ્રત્યે અમારી કૃતજ્ઞતા યત્ફિંચિત્ પ્રગટ કરવા માટે અને અમારા આત્માને વિશેષ વિશેષ નિર્મળ બનાવવા માટે અમે અમારા ચિત્તમાં તે મહાપુરુષનું વારંવાર સ્મરણ કરીએ છીએ.

સુશિષ્યને શ્રીગુરુના અમાય ઉપકાર પ્રત્યે અત્યંત અહોભાવ વર્તે છે. તે વિચારે છે કે 'આ દાસ ઉપર પ્રભુના અનેકવિધ અનંત ઉપકાર છે. મારા પરમ ઉપકારી પ્રભુને હું કઈ વિધિથી પૂજું? જેમનું જીવન અને ઉપદેશ નિરંતર જ્ઞાનપ્રકાશ ફેલાવી રહ્યાં છે, તેમની લાખો દીવાથી આરતી ઉતારું તોષણ એ ઉપકારભાનુ આગળ એ દીવાઓ અત્યંત ઝાંખા લાગે છે. જેમણે મને આત્મિક સુધારસમાં તરબોળ કર્યો છે, તેમનો ક્ષીરસાગરના નીરથી અભિષેક કરું તોષણ એ અભિષેક એ ઉપકારસાગર આગળ એક બિંદુમાત્ર પણ લાગતો નથી. જેમણે મુક્તિદાયક મોક્ષમાર્ગ દર્શાવ્યો છે, તેમનું કલ્પવૃક્ષનાં ફળથી પૂજન કરું તોષણ એ ઉપકારમેરુ આગળ તુચ્છ લાગે છે. આ રીતે દૈવી સામત્રીઓથી પૂજન કરતાં પણ તેમને પૂજવાની ભાવના તૃપ્ત થાય એમ નથી. પરમોપકારી પ્રભુ પ્રત્યેની ભક્તિભાવના ત્યારે તૃષ્ત થશે કે જ્યારે આત્મિક સામત્રીથી

તેમનું પૂજન કરીશ. જ્યારે આત્માના અસંખ્ય પ્રદેશે કેવળજ્ઞાનના દીવડા પ્રગટાવી પ્રભુની આરતી ઉતારીશ, આત્માના પ્રદેશે પ્રદેશે અનંત અવ્યાબાધ સુખસિંધુ ઉછળાવી પ્રભુનો અભિષેક કરીશ, આત્માના સર્વ પ્રદેશોને સર્વથા મુક્ત કરીને એ મુક્તિફળથી પ્રભુનું પૂજન કરીશ. ત્યારે જ તેમનું યથાર્થ પૂજન થશે. કૃપાસિંધુ પ્રભુના આશીર્વાદથી આવું દિવ્ય પૂજન કરવાનું સામર્થ્ય જરૂર પ્રાપ્ત થશે.' શિષ્ય અત્યંત અહોભાવથી શ્રીગુરુને પ્રાર્થે છે –

હે પરમકૃપાળુ સદ્ગુરુદેવ!

આપ મળતાં મારા સર્વ સંશયો ટળી ગયા છે. હવે મને મારા અસ્તિત્વપણાનો કોઈ કાળે પણ સંશય પ્રાપ્ત નહીં થાય. હું જ્ઞાયકમાત્ર છું એવા મારા ચૈતન્યપણામાં કોઈ કાળે પણ સંશયને અવકાશ નથી. મારા નિત્યપણાનો - ત્રિકાળ હોવાપણાનો ક્યારે પણ સંશય નહીં થાય. કર્તૃત્વ-ભોક્તૃત્વના કારણે વર્તમાનમાં બંધદશા છે એ વાતમાં સંશય નથી; અને આ બંધદશા નિ:સંશય, શીઘ્રમેવ ટળવાની છે એ વાતમાં પણ કિંચિત્માત્ર સંશય નથી. પૂર્ણ સુખધામ એવું મોક્ષપદ છે એમાં લેશ પણ સંશય નથી. હે કરુણાના અખૂટ ભંડાર! એ મોક્ષપદનો સરળ અને સર્વોત્તમ ઉપાય બતાવી આપે મને નિ:શંકતા આપી છે, નિર્ભય બનાવી નિ:સંગતાના પંથે ચડાવ્યો છે તે આપનો અનંત ઉપકાર છે.

હે પ્રભુ! બાર અંગ અને ચૌદ પૂર્વના સારરૂપ આપની અમૃતમય વાણીની અનુપમ ધારાથી મને આત્મસ્વરૂપ યથાતથ્ય સમજાયું છે. એના યથાર્થ આશ્રયથી મને અવ્યાબાધ નિજસ્વરૂપનો અત્યંત આહ્લાદક અનુભવ થયો છે. અનાદિ કાળથી અજ્ઞાનના કારણે હું દેહને જ મારું સ્વરૂપ માનતો હતો. કોઈ મ્યાનમાંથી તલવાર જુદી કાઢીને બતાવે તેમ આપે દેહાદિથી આત્માને સ્પષ્ટ જુદો - બે ફ્રાડ ભિન્ન કરી બતાવ્યો છે. આપે મને બતાવ્યું કે જે સર્વ અવસ્થામાં પ્રગટ ચૈતન્યમય જ રહે છે, જે અજન્મ-અજર-અમર છે અને જે સમસ્ત પરદ્રવ્ય અને પરભાવથી અત્યંત ભિન્ન અને સર્વોપરી છે તે હું છું. અહો! આપનો અમાય ઉપકાર! હે નાથ! હું આપનો સદૈવ ઋણી રહીશ.

આ ગાથાની પાદપૂર્તિ કરતાં શ્રી ગિરધરભાઈ લખે છે -

'ષ**ર સ્થાનક સમજાવીને,** ઊંડી છાપી છાય; ભૂંસે ભૂંસાયે નહીં, જેથી નાવે યાપ. સર્વ પદાર્થોથી મને, **ભિશ્ન બતાવ્યો આપ;** જડથી ચેતન હું જુદો, કંચૂકીથી જેમ સાપ. શ્રીફળમાં ગોળો જુદો, તુસથી જેમ તંદુલ; મ્યાન થકી તરવારવત, જેમ શરીર દુકૂળ. જે અજ્ઞાન અનાદિનું, ટાળ્યું દઈ જવાબ; આત્મસ્વરૂપ ઓળખાવીયું, એ ઉપકાર અમાપ.'

* * *

'શ્રી સુભાગ્ય ને શ્રી અરાળ, આદિ મુમુક્ષુ કાજ; તથા ભવ્યહિત કારણે, કહ્યો બોધ સુખસાજ.'

શ્રીમદે 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'ની રચના કરી ત્યારે તેમણે 'શિષ્યબોધબીજ-પ્રાપ્તિકથન' પછી આ ગાથા મૂકી હતી. આ ગાથામાં શ્રીમદે આ શાસ્ત્રની રચના કોના નિમિત્તે થઈ તે દર્શાવ્યું છે. તેમણે આ ગાથા પછીથી કાઢી નાખી હતી. આ ઉપરથી અનુમાન કરી શકાય છે કે તેમણે પ્રથમ 'શિષ્યબોધબીજપ્રાપ્તિકથન' પછી આ શાસ્ત્રની પૂર્શાહુતિ કરવાનો વિચાર કરી આ ગાથાની રચના કરી હશે, પણ પછીથી 'ઉપસંહાર'ની રચના કરતાં આ ગાથા રદ કરી હશે.

આ ગાથામાં શ્રીમદ્ જણાવે છે કે તેમણે તેમના પરમાર્થસખા શ્રી સૌભાગ્યભાઈ અને શ્રી અચળ, અર્થાત્ શ્રી ડુંગરશીભાઈ આદિ મુમુક્ષુજનને અર્થે તથા ભવ્ય જીવોના કલ્યાણ માટે પરમાનંદમય મોક્ષની સમગ્ર સામગ્રીરૂપ બોધ 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર'માં કહ્યો છે. આમ, આ શાસ્ત્રની રચના કોના અર્થે અને કેમ કરી હતી તે અહીં જણાવ્યું છે.

* * *

૧- 'રાજરત્ન પૂ. શ્રી અંબાલાલભાઈ', પૃ.૨૪૬ (શ્રી ગિરધરભાઈરચિત, 'શ્રી આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્રની પાદપૂર્તિ', ગાથા ૫૦૫-૫૦૮)